संस्कृत वाड्मय कोश

प्रथम खण्ड

(ग्रंथकार)

संपादक
डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर

डि लिट्.

अवकाश प्राप्त संस्कृत विभागाध्यक्ष, नागपुर विश्वविद्यालय

प्रकाशक
भारतीय भाषा परिषद
36-ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता-700 017

कृतज्ञता-ज्ञापन

भारत सरकार के मानव ससाधन विकास मत्रालय
की आशिक आर्थिक सहायता से प्रकाशित

संपादक
डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर

प्रकाशक
भारतीय भाषा परिषद
36-ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता-700 017
दूरभाष 449962

प्रथम आवृत्ति
1100 प्रतिया
1988

मुखपृष्ठ
जयत गावली

मुद्रक
अरविंद मार्डीकर
भाग्यश्री फोटोटाइपसेटर्स एण्ड ऑफ्सेट प्रिन्टर्स
262-सी, उत्कर्ष-अभिजित,
लक्ष्मीनगर, नागपुर-440 022

मुद्रण कार्य सहयोगी
प'पायरम् प्रिटींग एण्ड पॅकेजिग प्राडक्ट्स
(ऑल इंडिया रिपार्टर लि अगीकृत)
व्यकटेश ऑफसट
एस्केज स्कॅनर
मॉडर्न बुक बाईडिंग वर्क्स
प्रकाश बेलूरकर
हरिचद मूरे
दिलीप गाठे

मूल्य 500 रुपये (दोना खण्डों का एकत्रित मूल्य)

प्रकाशकीय

"सस्कृत वाड्मय कोश" भारतीय भाषा परिषद का सबसे महत्त्वपूर्ण और गरिमामय प्रकाशन है। परिषद ने अब तक के अपने सारे प्रकाशनो मे एक समन्वयात्मक व सास्कृतिक दृष्टि को सामने रखा। परिषद का पहला प्रकाशन 'शतदल' भारत की विभिन्न भाषाओ से सगृहीत सौ कविताओ का सकलन है जिनको हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। इसके पश्चात् भारतीय उपन्यास कथासार और भारतीय श्रेष्ठ कहानिया इसी दृष्टि को आगे बढाने वाली प्रशस्त रचनाएं सिद्ध हुई। कन्नड और तेलुगु से अनूदित "वचनोद्यान" और "विश्वम्भरा" इसी परम्परा के अतर्गत हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन "सस्कृत वाड्मय कोश" सुरभारती सस्कृत मे प्रतिबिंबित भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन और मौलिक चिंतन को राष्ट्र वाणी हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करनेवाली विशिष्ट कृति है। सस्कृत वाड्मय की सर्जना में भारत के सभी प्रान्तो का स्मरणीय तथा स्पृहणीय अवदान रहा है। इसलिए सच्चे अर्थों मे सस्कृत सर्वभारतीय भाषा है। सस्कृत वाड्मय जितना प्राचीन है, उतना ही विराट् है। इस विशालकाय वाड्मय का साधारण जिज्ञासुओ के लिए एक विवरणात्मक ग्रथ प्रकाशित करने का विचार सन् 1979 मे परिषद के सामने आया। फिर योजना बनी। पर योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक ऐसे विद्वान की आवश्यकता थी जो सस्कृत साहित्य की प्राय सभी विधाओं के मर्मज्ञ हो, सम्पादन कार्य मे कुशल हो, संकलन की प्रक्रिया मे कर्मठ हो और साथ ही निष्ठावान् भी हो। जब ऐसे सुयोग्य व्यक्ति की खोज हुई तो विभिन्न सूत्रो से एक ही मनीषी का नाम परिषद के समक्ष आया और वह है — डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर।

परिषद पर वाग्देवी की जितनी कृपा है, उतना ही स्नेह उस देवी के वरद पुत्र डॉ वर्णेकर का रहा। पिछले सात वर्षो से वे इस कार्य मे निरंतर लगे रहे और ऋषितुल्य दीक्षा से उन्होंने इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न किया। उन्होने यह सारा कार्य आत्म साधना के रूप में किया है और इसके लिए आर्थिक अर्घ्य के रूप में परिषद से कुछ भी नहीं लिया। यह परिषद का सौभाग्य है कि इतनी प्रशस्त कृति के लिए डॉ वर्णेकर जैसे योग्य कृतिकार की निष्काम सेवा उपलब्ध हो सकी। इस गौरवपूर्ण प्रकाशन को सुरुचिपूर्ण समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए भारतीय भाषा परिषद अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है।

परमानन्द चूडीवाल
मंत्री

वाङ्मुख

ससार का समस्त वाड्मय परम शिव का वाचिक अभिनय है। मानव मन को उन्मुख बनाकर सग्रहणीय ज्ञान को सप्रसारित करनेवाला सारस्वत साधन ही वाक् है जो व्यक्ति को व्यक्त करने की शक्ति प्रदान करती है। वाक् कभी निरर्थक नही होती, सदा सार्थक और सशक्त रहती है। वाक् और अर्थ की प्राकृतिक प्रतिपत्ति का प्रापचिक परिणाम ही वाड्मय है। इसलिए प्रकृति जितनी पुरानी है, वाड्मय भी उतना ही पुराना है। पर नित्य जीवन मे नैसर्गिक रूप से निर्गदित इस वाड्मय को निगमित, नियमित और नियत्रित रूप में निबद्ध करने का पहला प्रयास निरुक्तकार और निघटु-रचना के उन्नायक यास्क की 'समाम्नाय' भावना मे पाया जाता है। इस प्रकार वाड्मय कोश की सबसे प्राचीन और परिनिष्ठित परिकल्पना यास्क कृत "निघटु" मे परिलक्षित होती है।

यास्क से पूर्व भी निघटु-रचना का प्रमाण मिलता है। शाकपूणि की रचना मे शब्दो का सकलन और उनका प्रयोजन विवक्षा का विषय रहा। पर यास्क ने पहली बार निघटु के साथ "निरुक्त" की परिकल्पना कर, शब्द को अर्थ का विस्तार दिया और अर्थ को शब्द का आश्रय दिलाया। आकार मे लघु होने पर भी इस ग्रथ का ऐतिहासिक महत्त्व है क्यो कि विश्व मे उपलब्ध वाड्मय मे सबसे प्राचीन कोश होने का गौरव इसी ग्रथ को प्राप्त है। यास्क से पूर्व "निघण्टु" शब्द का प्रयोग प्राय बहुवचन मे हुआ करता था--- जैसे "निघण्टव" कस्मात्? "निगमा इमे भवति-छादोभ्य समाहृत्य समाम्नातास्ते निगतव एव सतो निगमनान्निघण्टव उच्यते।" विशाल वैदिक साहित्य से निगमित पद-पदार्थ का वाड्मय-भण्डार होने के कारण इनको निघण्टु कहा गया और यास्क के पश्चात् यह शब्द कोश के अर्थ में एकवचन में रूढ हो गया। आज भी कुछ भारतीय भाषाओ मे शब्दकोश के अर्थ में "निघण्टु" शब्द का प्रयोग बहुधा प्रचलित है।

यास्क का "निरुक्त" कोश रचना की प्रक्रिया को एक नया आयाम प्रदान करता है। "निघण्टु" की शब्द-कोशीयता "निरुक्त" में ज्ञान-कोशीयता का रूप धारण करती है। शब्द का सही और पूरा ज्ञान प्राप्त करने मे (केवल अर्थ ग्रहण करने से नही) उसके प्रयोग मे अपने आप प्रवीणता प्राप्त होती है। शब्द को आधार बनाकर समस्त सग्रहणीय ज्ञान को उच्चरित करने की इसी प्रवृत्ति ने सस्कृत वाड्मय मे विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश की रचनात्मक प्रक्रिया का बीज बोया। यास्क का "निरुक्त" सभवत इस दिशा में पहला कदम था। आदि शकराचार्य छादोग्य उपनिषद् के भाष्य मे नारद और सनत्कुमार के सवाद के प्रसग में नारद द्वारा उल्लिखित अनेक विद्याओ मे से एक 'देव-विद्या' की व्याख्या करते हुए उसको निरुक्त की सज्ञा देते हैं। इससे पता चलता है कि "निरुक्त" भावना के प्रति शकर जैसे ब्रह्मवेत्ता के मन मे कितना आदर था।

वास्तव में छादोग्य-उपनिषद् के इस प्रकरण को पढते समय ऐसा लगता है कि विश्व-कोश या ज्ञान-कोश की भावना के प्रथम प्रवर्तक नारद ही थे जो कि वेद, पुराण, कल्प, शास्त्र, विद्या आदि ज्ञान की विभिन्न शाखाओं मे अपने को पारगत मानते थे। फिर भी उनको भीतर से शाति नहीं थी क्यों कि उन्होंने सब कुछ पाया, पर आत्मा को नहीं पहचान पाया। इसी अभाव की ओर सकेत करते हुए सनत्कुमार कहते हैं "तुम जो कुछ जानते हो, वह केवल नाम है" (यद्वै किंचिदध्यगीष्ठा नामैवैतत्)। तब नारद को पता चलता है कि "हम जिसको ज्ञान मान कर उसका समुपार्जन करते हैं और उस पर गर्व करते हैं, वह केवल नाम है।" नाम शब्द मे समस्त लौकिक ज्ञान समाहित है। इसलिए सस्कृत वाड्मय के प्राचीन कोशकारों ने नाम का आश्रय लेकर ज्ञान का प्रसार करने का स्पृहणीय कार्य किया है।

अमरसिह का "नाम-लिगानुशासन", जो "अमरकोश" के नाम से ससार भर में प्रसिद्ध है, इसी परपरा की अगली कडी है और बहुत मजबूत कडी है। "अमर-कोश" पर लिखी गई पचास से अधिक टीकाए इसकी लोकप्रियता, उपादेयता और प्रत्युत्पन्नता को प्रमाणित करती हैं। चौथी या पाचवी शती (ई) में प्रणीत यह पद्यबद्ध रचना मूलत पर्यायवाची शब्द कोश है, पर विश्व-कोश के प्रणयन की प्रेरणा बाद में इसी से मिली है। शाश्वत का "अनेकार्थ-समुच्चय", हलायुध-कोश के नाम से प्रसिद्ध "अभिधान-रत्नमाला" (दसवीं शती) यादवप्रकाश की "वैजयती", हेमचन्द्र का "अभिधान-चिन्तामणि", महेश्वर (सन् 1111 ई) के दो कोश "विश्वप्रकाश" और "शब्दभेद-प्रकाश", मखक कवि का "अनेकार्थ" (बारहवी शती) अजयपाल का "नानार्थ-संग्रह" (तेरहवीं शती), धनजय की "नाममाला", केशव स्वामी का "शब्दकल्पद्रुम" (तेरहवीं शती), मेदिनिकर का "नानार्थ शब्द कोश"

(मेदिनि कोश के नाम से प्रसिद्ध) (चौदहवीं शती) आदि अनेक कोश "अमर कोश" से प्रेरणा प्राप्त कर प्रणीत हुए। इनमें से अधिकांश पद्य बद्ध हैं। पर इनकी दृष्टि ज्ञान की अपेक्षा शब्द पर ही अधिक थी।

कोशकारों का ध्यान सामान्य ज्ञान की ओर आकृष्ट करनेवाला प्रथम प्रयास तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य के "वाचस्पत्यम्" (1823) ने किया है। राजा राधाकांत देव का "शब्द-कल्पद्रुम" (1828-58) भी इसी दृष्टि से प्रस्तुत था, पर वाचस्पत्यम् का प्रमुख स्वर "वाक्" रहा जब कि शब्द कल्पद्रुम का विवेचन शब्द की परिधि से बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। इतना तो स्पष्ट है कि "शब्द-कल्पद्रुम" के "शब्द" को "वाचस्पत्यम्" ने "वाक्" की विशाल परिधि में प्रसारित किया है। वास्तव में ये दोनों कोश अपनी-अपनी दृष्टि में शब्द-कोश और विश्व-कोश दोनों तत्त्वों को साथ लेकर रूपायित हुए हैं। साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, तंत्र, दर्शन, संगीत, काव्य-शास्त्र, इतिहास, चिकित्सा आदि अनेक विषयों का विवेचन न्यूनाधिक मात्रा में इन दोनों कोशों में समाविष्ट है। इस प्रकार शब्द कोश को वाङ्मय कोश बनाने का पहला भारतीय प्रयास इन दोनों कोशों में संपन्न हुआ है। यह प्रसन्नता की बात है कि मोनियर विलियम्स, विल्सन आदि पाश्चात्य तथा वामन शिवराम आपटे जैसे प्राच्य विद्वानों ने इस वाङ्मय शब्द-साधना को काफी आगे बढ़ाया। आपटे का "व्यावहारिक संस्कृत अंग्रेजी शब्द कोश" केवल शब्द-कोश नहीं है, बल्कि एक प्रकार से संस्कृत वाङ्मय कोश का ही प्रकारांतर है। इसमें शब्दों की व्याख्या करते समय कोशकार ने रामायण, महाभारत आदि प्रसिद्ध ग्रंथों के अतिरिक्त काव्य-साहित्य, स्मृति-ग्रंथ, शास्त्र-ग्रंथ, दर्शन-शास्त्र आदि सस्कृत वाङ्मय से संबंधित ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का जो सोदाहरण परिचय दिया है, उससे स्पष्ट होता है कि यह केवल शब्द कोश नहीं है, बल्कि प्राच्य विद्या की पद-निधि है। जर्मन विद्वान डॉ राथ एवं बोथलिंक द्वारा प्रणीत जर्मन कोश "वार्टर बच" (1858-75) में भी लगभग इसी प्रकार का प्रयास परिलक्षित होता है। वास्तव में वामन शिवराम आपटे को वाङ्मयनिष्ठ शब्द-कोश का प्रणयन करने की प्रेरणा "वाचस्पत्यम्" और "वार्टर बच" दोनो से मिली है जैसा कि उन्होंने अपने कोश की भूमिका में बडी विनम्रता के साथ स्वीकार किया है।

फिर भी संस्कृत में "वाङ्मय कोश" की आवश्यकता बनी रही। अंग्रेजी में "इनसाइक्लोपेडिया अमरीकाना (1829-33) आदि विश्व कोशों के स्वरूप के अनुरूप भारतीय भाषाओं में भी साहित्यिक तथा साहित्येतर विश्व-कोश धीरे धीरे बनने लगे हैं। इस शताब्दी के पूर्वार्ध में इस दिशा में जो कार्य हुआ, उसमें विश्वबन्धु शास्त्री का 'वैदिक शब्दार्थ पारिजात' (1929) प्रथमतः उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने "वैदिक पदानुक्रम कोश" (सात खण्डों में) 'ब्राह्मणोद्धार कोश', 'उपनिषदुद्धार कोश' आदि की भी रचना की जो शब्द-कोश और विश्व-कोश के लक्षणों से युगपत् अभिलक्षित हैं। इस सदर्भ में चमूपति का 'वेदार्थ शब्द कोश', मधुसूदन शर्मा का 'वैदिक कोश', केवलानन्द सरस्वती का 'ऐतरेय ब्राह्मण आरण्यक कोश' और लक्ष्मण शास्त्री का 'धर्म शास्त्र कोश' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। म म.प रामावतार शर्मा का "वाङ्मयार्णव" वर्तमान शताब्दी का महान कोश है जो सन् 1967 मे प्रकाशित हुआ।

भारत की स्वाधीनता के पश्चात् लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से संबंधित संदर्भ-ग्रंथों का प्रणयन बड़ी प्रचुरता के साथ होने लगा और इसी प्रसग में प्रायः प्रत्येक भारतीय भाषा में विश्व-कोशों की रचना हुई। तेलुगु भाषा समिति ने 1967 और 1975 के बीच में सोलह खंडों मे 'विज्ञान सर्वस्वम्' के नाम से भाषा, साहित्य, दर्शन, इतिहास, भूगोल, भौतिकी, रसायन, विधि, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि अनेक विषयों में विश्व-कोश का प्रकाशन किया। इसी प्रकार मलयालम में 1970 के आसपास 'विश्व विज्ञान कोशम्' का प्रकाशन हुआ। साहित्य प्रवर्तक सहकार समिति (कोट्टायम, केरल) ने यह कार्य सम्पन्न कराया। मराठी में पहले से ही कोश कला के क्षेत्र में स्पृहणीय कार्य हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् यह कार्य और अधिक निष्ठा के साथ सम्पन्न हुआ। प महादेव शास्त्री जोशी द्वारा संपादित "भारतीय सस्कृति कोश" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा ने बारह खण्डों में 'हिन्दी विश्व कोश' का प्रकाशन किया। बगीय साहित्य परिषद द्वारा 1973 के आसपास पाच खण्डों में प्रकाशित "भारत कोश" भी भारतीय साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपादेय है। साहित्य अकादेमी ने हाल ही में "इनसाइक्लोपेडिया आफ इंडियन लिटरेचर" के नाम से बृहत् प्रकाशन आरभ किया है। अंग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित साहित्य कोशों में इसका विशेष महत्त्व वहेगा। यह सारा कार्य विगत पच्चीस वर्षो मे लगभग सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से सम्पन्न हुआ। पर विश्वकोश की इस अखिल भारतीय चितन धारा मे संस्कृत तनिक उपेक्षित रही। संस्कृत साहित्य अथवा वाङ्मय को लेकर कोई विशेष और उल्लेखनीय प्रयास नही हुआ। फिर भी डा. राजवंश सहाय "हीरा" जैसे मनीषियों ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास अवश्य किया है। डा हीरा के दो कोश "संस्कृत साहित्य कोश" और "भारतीय शास्त्र कोश" 1973 मे प्रकाशित हुए। हिन्दी साहित्य

सम्मेलन द्वारा दो खण्डो मे प्रकाशित "हिन्दी साहित्य कोश" की भाति ये दोनो कोश सस्कृत वाङ्मय के जिज्ञासुओ के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुए।

किन्तु समग्र सस्कृत वाङ्मय का विवेचन प्रस्तुत करनेवाले सर्वागीण कोश का अब तक एक प्रकार से अभाव ही रहा। सस्कृत के प्रतिष्ठित विद्वान और समर्पित कार्यकर्त्ता डा श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा सम्पादित इस महत्वपूर्ण ग्रथ "सस्कृत वाङ्मय कोश" के माध्यम से इस अभाव को दूर करने का विनम्र प्रयास भारतीय भाषा परिषद कर रही है। यह परिषद का अहोभाग्य है कि इस अमोघ कार्य को सम्पन्न करने के लिए डॉ वर्णेकर जैसे वाङ्मय तपस्वी की अनर्घ सेवाए मिली है। विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होते ही परिषद के अनुरोध पर केवल वाङ्मय सेवा की भावना से प्रेरित होकर वे इस बृहद् योजना मे प्रवृत्त हुए और पाच छह वर्षो मे उन्होने यह महान कार्य सम्पन्न किया। सस्कृत साहित्य और भारतीय सस्कृति के प्रकाड विद्वान, समालोचक, कवि और चिंतक होने के कारण डॉ वर्णेकर इस दुष्कर कार्य को सुकर बना सके, अन्यथा सस्कृत वाङ्मय, सस्कृत के प्रसिद्ध कोशकार वामन शिवराम आपटे के शब्दों में, इतना विशालकाय है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी मनीषी और मेधावी क्यों न हो, जीवन भर सश्रम अध्ययन करने पर भी समग्र रूप से इसमे निष्णात नही बन सकता। वैदिक वाङ्मय से लेकर अधुनातन सृजनात्मक रचना तक हजारों वर्षों से चली आ रही इस विराट् परपरा को कोश की कौस्तुभ काया मे समाविष्ट करना साधारण कार्य नही है और यही कार्य डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने किया है।

इस कोश के दो खण्ड हैं - ग्रथकार खण्ड और ग्रथ खण्ड। प्रथम खण्ड (ग्रथकार खण्ड) की पूर्व पीठिका के रूप में "सस्कृत वाङ्मय दर्शन" के नाम से समस्त सस्कृत वाङ्मय के अतरंग का दिग्दर्शन बारह प्रकरणो मे किया गया है। प्रथम खण्ड मे लगभग 2700 प्रविष्टिया है और द्वितीय खण्ड मे 9000 से अधिक हैं। ग्रथकार खण्ड के अतर्गत ग्रथो का भी सक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होता है जब कि ग्रथ खण्ड में उन्ही ग्रथो का विस्तार से विवेचन किया जाता है। इससे कही कही पुनरूक्ति का आभास हो सकता है। पर जहा तक सभव है, इससे कोश को मुक्त रखने का ही प्रयास किया गया है।

इस कोश की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें केवल सस्कृत साहित्य से सबधित प्रविष्टिया ही नही, बल्कि धर्म, दर्शन, ज्योतिष, शिल्प, सगीत आदि अनेक विषयो पर सस्कृत मे रचित विशाल तथा वैविध्यपूर्ण वाङ्मय का सक्षिप्त परिचय समाविष्ट है। इसलिए यह केवल सस्कृत 'साहित्य' कोश न होकर सच्चे अर्थों मे सस्कृत 'वाङ्मय' कोश है। इस दृष्टि से हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओ मे यह अपने ढग का पहला प्रयास है।

यह सारा कार्य निष्काम कर्मयोगी डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने अर्थ-निरपेक्ष दृष्टि से सम्पन्न कर परिषद को मान-सम्मान प्रदान किया है इसलिए वे सच्चे अर्थों मे मानद और मान्य हैं।

यह बात डॉ वर्णेकर भी स्वीकार करते हैं और हम भी बडी विनम्रता के साथ निवेदित करना चाहते है कि इस कोश मे सस्कृत वाङ्मय के सबंध मे "बहुत कुछ" होने पर भी "सब कुछ" नहीं है। यह एक महान कार्य का शुभारभ है जो कि न समग्र होने का दावा कर सकता है और न मौलिक कहा जा सकता है। यह ध्येयनिष्ठ और अध्ययन साध्य सकलन है जिसमे विवेक विनय का आश्रय लेकर विकास के पथ पर आगे बढ़ना चाहता है।

इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन को यथोचित महत्त्व देकर स्तवनीय मनोदय से मुद्रण कार्य को सुरुचिपूर्ण ढग से सपन्न कराने के लिए भाग्यश्री फोटोटाईपसेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिंटर्स, नागपुर के प्रति आभार प्रकट करना परिषद अपना कर्तव्य समझती है।

आशा है, सस्कृत के विद्वान, अध्येता, प्रेमी और आराधक इस साधना का स्वागत करेंगे और परिषद के इस प्रयास को अपने "परितोष"पूर्वक साधुवाद से सप्रत्यय बनाएगे।

पाडुरग राव
निदेशक

भारतीय भाषा परिषद
36-ए, शेक्सपीयर सरणी,
कलकत्ता-700 017

संपादकीय उपोद्घात

प्रस्तावना :- सन् १९७९ जुलाई में नागपुर विश्वविद्यालय के सस्कृत विभागाध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त करने के बाद, पारिवारिक सुविधा के निमित्त, मेरा निवास बंगलोर में था। सेवानिवृत्ति के कारण मिले हुए अवकाश मे अपने निजी लेखो के पुनर्मुद्रण की दृष्टि से सपादन अथवा पुनर्लेखन करना, सगीत का अपूर्ण अध्ययन पूरा करना, अथवा कुछ संकल्पित ग्रंथों का लिखना प्रारंभ करना आदि विचार मेरे मन में चल रहे थे।

इसी अवधि में एक दिन मेरे परम मित्र डॉ. प्रभाकर माचवे जी का कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद की ओर से एक पत्र मिला जिसमें परिषद द्वारा संकल्पित संस्कृत वाङ्मय कोश का निर्माण करने की कुछ योजना उन्होंने निवेदन की थी और इस निमित्त कुछ सस्कृतज्ञ विद्वानों की एक अनौपचारिक बैठक भी परिषद के कार्यालय में आयोजित करने का विचार निवेदित किया था। इसी संबध में हमारे बीच कुछ पत्रव्यवहार हुआ जिसमें मैने यह भारी दायित्व स्वीकारने मे अपनी असमर्थता उन्हें निवेदित की थी। फिर भी संस्कृत सेवा के मेरे अपने व्रत के अनुकूल यह प्रकल्प होने के कारण कलकत्ते मे आयोजित बैठक में मै उपस्थित रहा।

भारतीय भाषा परिषद के संबध मे मुझे कुछ भी जानकारी नहीं थी। कलकत्ते में परिषद का सुदर और सुव्यवस्थित भवन इस बैठक के निमित्त पहली बार देखा। सर्वश्री परमानंद चूड़ीवाल, हलवासिया, डॉ प्रतिभा अग्रवाल इत्यादि विद्याप्रेमी कार्यकर्ताओ से चर्चा के निमित्त परिचय हुआ। सभी सज्जनो ने संकल्पित "संस्कृत वाङ्मय कोश" के सपादक का सपूर्ण दायित्व मुझ पर सौंपने का निर्णय लिया। इस बैठक में आने के पूर्व मेरे अपने जो सकल्प चल रहे थे, उन्हे कुण्ठित करने वाला यह नया भारी दायित्व, जिसका मुझे कुछ भी अनुभव नहीं था, स्वीकारने में मैने अपनी ओर से कुछ अनुत्सुकता बताई। मेरी सूचना के अनुसार सपादन में सहाय्यक का काम, वाराणसी के मेरे मित्र प नरहर गोविन्द बैजापुरकर जो उस बैठक मे आमंत्रणानुसार उपस्थित थे, पर सौंपने का तथा संस्कृत वाङ्मय कोश का कार्यालय वाराणसी मे रखने का विचार मान्य हुआ। वाराणसी में इस प्रकार के कार्य के लिए आवश्यक मनुष्यबल तथा अन्य सभी प्रकार का सहाय मिलने की सभावना अधिक मात्रा मे हो सकती है, यह सोचकर मैने यह सुझाव परिषद के प्रमुख कार्यकर्ताओ को प्रस्तुत किया था। इस कार्य मे यथावश्यक मार्गदर्शन तथा सहयोग देने के लिए, यथावसर वाराणसी मे निवास करने का मेरा विचार भी सभा मे मजूर हुआ। मेरी दृष्टि से कोशकार्य का मेरा वैयक्तिक भार, इस योजना की स्वीकृति से कुछ हलका सा हो गया था।

हमारी यह योजना काशी मे सफल नही हो पाई। 8-10 महीनों का अवसर बीत चुका। परिषद की ओर से दूसरी बैठक हुई जिसमे काशी का कार्यालय बद करने का और मेरा स्थायी निवास नागपुर मे होने के कारण, नागपुर मे इस कार्य का "पुनश्च हरि ओम्" करने का निर्णय हमे लेना पड़ा।

दिनाक 1 अप्रैल 1982 को नागपुर मे कोश का कार्यालय शुरू हुआ। इस अभावित दायित्व को निभाने के लिए "मित्रसप्राप्ति" से प्रारभ हुआ। वाराणसी और नागपुर मे सभी दृष्टि से बहुत अतर है। काशी की सस्कृत परंपरा अनादिसिद्ध है। नागपुर की कुल आयु मात्र दो-ढाइसौ वर्षों की है। कोश हिन्दी भाषा में करना था। नागपुर की प्रमुख भाषा मराठी है। पुराने द्वैभाषिक मध्यप्रदेश की राजधानी जब तक नागपुर में रही, तब तक हिन्दी का प्रचार और प्रभाव कुछ मात्रा मे दिखाई देता था। अत हिन्दी भाषा के विशेषज्ञ सहकारी नागपुर में मिलना सुलभ नहीं था। नागपुर की अपनी सीमित सी सस्कृत परपरा भी है परंतु हिन्दी भाषी अथवा हिन्दी ज्ञानी संस्कृतज्ञ उनमें नही के बराबर हैं। स्वयं मैं हिन्दी में लेखन भाषण आदि व्यवहार कई वर्षो से करता हूँ, परतु हिन्दी भाषा या साहित्य का विधिवत् अध्ययन मैने कभी नहीं किया। कहने का तात्पर्य, नागपुर में संस्कृत वाङ्मय कोश का सपादन और वह भी हिन्दी माध्यम मे करना, मेरे लिए जमीन पर नाव चलाने जैसा दुर्घट कार्य था। नागपुर में इस कार्य में जिनका सहकार्य मुझे मिल सका वे हैं - प्र मु सकदेव, ना.ग.वझे, डॉ.लीना रस्तोगी, डॉ कुसुम पटोरिया, डॉ गु.वा.पिंपळापुरे, डॉ. भागचंद्र जैन, सत्यपाल पटाईत, पद्माकर भाटे, ना गो दीक्षित, श्रीमती उषा महांकाल, श्रीमती शोभा

देशपाडे इन सभी सहायकों का मैं हृदय से आभारी हू। लेखको के हस्तलिखित सामग्री का टंकन करने का कार्य मेरे मित्र श्री. नत्थूप्रसाद तिवारी तथा श्री रोटकर ने नित्य नियमितता से किया।

इस संपादन कार्य के लिए विविध प्रकार के ग्रंथों की आवश्यकता थी। सभी ग्रथ खरीदना असंभव और अनुचित भी था। परिषद की ओर से कुछ ग्रथ खरीदे गए। बाकी ग्रथों का सहाय नागपुर के सुप्रसिद्ध हिन्दु धर्म सस्कृति मडल तथा भोसला वेदशास्त्र महाविद्यालय, तथा अन्य व्यक्तियों एव ग्रथालयों से यथावसर मिलता रहा।

कोश का सामान्य स्वरूप

कोश सपादन एक ऐसा कार्य है कि जिसमें स्वयप्रज्ञा का कोई महत्त्व नहीं होता। संपादक को अपनी जो भी प्रविष्टिया लेनी हो अथवा उन प्रविष्टियों में जो भी जानकारी सगृहीत करनी हो, वह सारी पूर्व प्रकाशित ग्रंथों के माध्यम से सचित करनी पड़ती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत कोश के संपादन के लिए अनेक पूर्वप्रकाशित मान्यताप्राप्त विद्वानों के कोश तथा वाङ्मयेतिहासात्मक ग्रथो का आलोचन किया गया। उन सभी ग्रथो का निर्देश संदर्भ ग्रंथों की सूची मे किया है। पूर्व सूरियो के अनेकविध ग्रथो से उधार माल मसाला लेकर ही कोश ग्रंथों का निर्माण होता है। तदनुसार ही इस सस्कृत वाङ्मय कोश की रचना हुई है। इसमें हमारी कोई मौलिकता नहीं। संकलन, संक्षेप, सशोधन एव सपादन यही हमारा इसमें योगदान है।

सस्कृत वाङ्मय की शाखाए विविध प्रकार की हैं। उनमे से अन्यान्य शाखाओं में अन्तर्भूत ग्रथ एवं ग्रंथकारों का पृथक्करण न करते हुए, एकत्रित तथा सविस्तर परिचय देनेवाले विविध कोश तथा ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टिकोन से विवेचन करने वाले तथा परिचय देने वाले वाङ्मयेतिहासात्मक ग्रथ, पाश्चात्य सस्कृति का संपर्क आने के पश्चात्, पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने निर्माण किए है। उन ग्रथों में उन वाङ्मय शाखाओं के अन्तर्गत ग्रंथ तथा ग्रथकारो का सविस्तर परिचय मिलता है। प्रस्तुत कोश के परिशिष्ट में ऐसे अनेक कोशात्मक तथा इतिहासात्मक ग्रथों के नाम मिलेंगे।

प्रस्तुत सस्कृत वाङ्मय कोश की यह विशेषता है कि इसमें संस्कृत वाङ्मय की प्राय· सभी शाखाओं में योगदान करने वाले ग्रथ एवं ग्रथकारो का एकत्र सकलन हुआ है। इस प्रकार का "सर्वंकष" सस्कृत वाङ्मय कोश करने का प्रयास अभी तक अन्यत्र कहीं नही हुआ। इस वाङ्मय कोश में विविध प्रकार की त्रुटिया विशेषज्ञो को अवश्य मिलेगी। हमारी अपनी असमर्थता के कारण हम स्वय उन त्रुटियो को जानते हुए भी दूर नहीं कर सके। फिर भी उन त्रुटियों के साथ इस ग्रथ की यही एक अपूर्वता हम कह सकते हैं कि यह सस्कृत के केवल ललित अथवा दार्शनिक शास्त्रीय या वैदिक साहित्य का कोश नहीं अपि तु उन सभी प्रकार के ग्रथों तथा उनके विद्वान लेखकों का एकत्रित परिचय देने वाला हिन्दी भाषा में निर्मित प्रथम कोश है।

इसके पहले इस प्रकार का प्रयास न होने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें पहला कारण यह है कि भारतीय भाषा परिषद जैसी दूसरी कोई संस्था इस प्रकार का कार्य करने के लिए उद्युक्त नहीं हुई। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आज 20 वीं शती के अतिम चरण मे जितने विविध प्रकार के कोश, इतिहास, शोधप्रबध इत्यादि उपकारक ग्रथ उपलब्ध हो सकते हैं, उतने 1960 के पहले नहीं थे। अब इस दिशा से संस्कृत वाङ्मय के विविध क्षेत्रों में पर्याप्त कार्य नए विद्वान कर रहे हैं। हो सकता है कि इसी कोश के सशोधित और सुधारित आगामी सस्करण का कार्य करनेवाले भावी संपादक, यहां की सभी प्रविष्टियों के अन्तर्गत अधिक जानकारी (और वह भी दोषरहित) देकर, संस्कृत वाङ्मय कोश की इस नई दिशा में अधिक प्रगति अवश्य करेंगे। संस्कृत वाङ्मय की विविध शाखाओं एवं उपशाखाओ के अन्तर्गत अधिक से अधिक ग्रथकारों तथा ग्रथों का आवश्यकमात्र परिचय सक्षेपत सकलित करने का प्रयास, इस कोश के सपादन में अवश्य हुआ है।

अति प्राचीन काल से लेकर 1985 तक के प्रदीर्घ कालखड में हुए प्रमुख ग्रंथो और ग्रथकारों को कोश की सीमित व्याप्ति में समाने का प्रयास करते हुए इसमें अपेक्षित सर्वंकषता नहीं आ सकी, तथापि सभी वाङ्मय शाखाओं का अन्तर्भाव इसमें हुआ है। वैसे देखा जाए तो प्रविष्टियों में दिया हुआ परिचय भी संक्षिप्ततम ही है। संस्कृत वाङ्मय में ऐसे अनेक ग्रथ और ग्रथकार हैं कि जिनका परिचय सैकड़ों पृष्ठों में पृथक् ग्रंथों द्वारा विद्वान लेखकों ने दिया है। आधुनिक लेखकों में भी ऐसे अनेक ग्रंथकार और ग्रथ हैं कि जिनका परिचय सैकड़ों पृष्ठों के ग्रंथों में देने योग्य है। कई ग्रंथों और ग्रंथकारों पर बृहत्काय शोधप्रबंध अभी तक लिखे गए हैं और आगे चलकर लिखे जावेंगे। इस अवस्था में इस कोश की प्रविष्टियों में परिचय देते हुए किया हुआ गागर में सागर भरने का प्रयास देखकर "महाजन· स्मेरमुखो भविष्यति" यह तथ्य हमारी दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है। परन्तु

अधिक से अधिक ग्रथों एव ग्रंथकारों का आवश्यकतम परिचय मर्यादित पृष्ठसंख्या में देना यही उद्देश्य रख कर हमने यह संपादन किया है।

इसी संक्षेप की दृष्टि से यथासंभव लेखकों के नामनिर्देश में श्री, पूज्यपाद इत्यादि आदरार्थक उपाधिवाचक विशेषणों का प्रयोग कहीं भी नहीं किया। परंतु नामनिर्देश सर्वत्र आदरार्थी बहुवचन में ही किया है। पाश्चात्य लेखकों के अनुकरण के कारण हमारे ग्रंथकार प्राचीन ऋषि, मुनि, आचार्य तथा सन्तों का नाम निर्देश एकवचनो शब्दों में करते हैं। प्रस्तुत कोश में उस प्रथा को तोड़ने का प्रयत्न किया है।

ग्रथकारों के माता, पिता, गुरु, समय, निवासस्थान इत्यादि का निर्देश "इनके पिता का नाम --- था और माता का नाम --- या" इस प्रकार की वाक्यो की पुनरुक्ति टालने के लिए, वाक्यो मे न करने का प्रयत्न सर्वत्र हुआ है। इसमें अपवाद भी मिल सकेंगे।

यह सस्कृत वाङ्मय का ही कोश होने के कारण प्राय प्रत्येक प्रविष्टि में सस्कृत वचनों के कई अवतरण देना संभव था। कुछ प्रविष्टियों में, सस्कृत अवतरण दिए गए हैं। परंतु प्राय सभी अवतरणों के साथ हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अपवाद कृपया क्षन्तव्य है।

हिन्दी भाषा की अन्यान्य प्रकार की शैलिया है। यह संस्कृत वाङ्मय का कोश होने के कारण भाषा का स्वरूप सस्कृतनिष्ठ ही रखा गया है। साथ ही इस कोश के अनेक पाठक हिन्दी के विशेषज्ञ न होने की सभावना ध्यान मे लेते हुए, सुगम एव सुबोध शब्दप्रयोग करने का यथाशक्ति प्रयास हुआ है।

प्राचीन विख्यात सस्कृत लेखकों के जीवन चरित्र प्राय अज्ञात ही रहे हैं। तथापि कुछ महानुभावो के संबध में उद्बोधक एवं मार्मिक दन्तकथाएँ आज तक सर्वविदित हुई हैं। इनमें से कुछ कथाओं में ऐतिहासिक तथ्याश तथा उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के कुछ वैशिष्ट्य व्यक्त होने की संभावना मान कर, हमने इस कोश में उन किंवदन्तियों का संक्षेपत अन्तर्भाव किया है। विशेष कर महाकवि कालिदास और भोज के सबंध में बल्लालकवि कृत भोजप्रबन्ध के कारण, इस प्रकार की किंवदन्तियों की संख्या काफी बड़ी है। अत कुछ स्थानों में किंवदन्तियों की सख्या अधिक दिखाई देगी। जिन पाठको को वहाँ अनौचित्य का आभास होगा उनसे हम क्षमा चाहते हैं।

कई ग्रथकारों के विषय में उल्लेखनीय जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। ऐसे स्थानों में केवल उनके द्वारा लिखित ग्रथो का नामनिर्देश मात्र किया है।

जिनके समय का पूर्णतया (जन्म से मृत्यु तक) पता नहीं चला, उनका समय निर्देश प्राय ईसवी शती में किया है। क्वचित् विक्रम सवत् तथा शालिवाहन शक का भी निर्देश मिल सकेगा।

वैदिक सूक्तों के द्रष्टा माने गए ऋषियो को ग्रथकार ही मान कर उनका सक्षिप्त परिचय दिया गया है। ऐसी ऋषिविषयक सभी प्रविष्टियों की सामग्री प महादेवशास्त्री जोशी कृत भारतीय सस्कृतिकोश (10 खंड-मराठी भाषा में) से ली गई है। वेदों का निरपवाद अपौरुषेयत्व मानने वाले भावुक विद्वान उन प्रविष्टियों को सहिष्णुतापूर्वक पढे।

सस्कृत वाङ्मय का प्राचीन कालखड बहुत बड़ा होने के कारण, तथा उस कालखड के विषय में अल्पमात्र ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होने कारण सैकडो ग्रथ और ग्रथकारों के स्थल-काल के संबंध में तीव्र मतभेद हैं। गत शताब्दी में अनेकों विदेशी और देशी विद्वानों ने उन विषयों में अखण्ड वाद-विवाद करते हुए एक-दूसरे का मत खण्डन किया है। अत उनमे से एक भी मत शत-प्रतिशत ग्राह्य नहीं माना जा सकता। प्रस्तुत कोश में उन विवादों द्वारा जो प्रधान मतभेद व्यक्त हुए हैं उनका संक्षेप में निर्देश किया है। किसी भी मत का खण्डन या समर्थन यहां हमने नही किया और उन विवादों के विषय में हमारा अपना कोई भी अभिप्राय व्यक्त नहीं किया।

ग्रंथकारों की भाषा और शैली का वर्णन, "प्रासादिक, अलकारप्रचुर, रसार्द्र, पाण्डित्यपूर्ण" इस प्रकार के रूढ विशेषणों को टालकर किया है। सर्वत्र पुनरुक्ति और विस्तार टालना यही इसमें हमारा हेतु है। भाषा तथा शैली की विशेषता दिखानेवाले उदाहरण और उनके हिन्दी अनुवाद देने से ग्रंथ का कलेवर दस गुना बढ जाता। कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, माघ, हर्ष, भारवि, इत्यादि श्रेष्ठ ग्रंथकार तथा उनका अनुसरण करने वाले सैकड़ों उत्तरकालीन ग्रंथकारों के काव्य, नाटक, चम्पू, कथा, आख्यायिका इत्यादि प्रबधों से उनके साहित्य गुणों का परिचय हो सकता है। तात्पर्य इस कोश में ग्रथों का परिचय मात्र है पर्यालोचन नहीं। पर्यालोचन प्रबधों का कार्य है कोश का नहीं।

ग्रंथकारों के जन्म और मृत्यु की तिथि के सबध में जहाँ मिल सके वहाँ उनका उल्लेख हुआ है। परंतु जहाँ निश्चित उल्लेख सदर्भ ग्रथों में नही मिले वहाँ केवल ई शताब्दी में उनका समय निर्दिष्ट किया है। ग्रंथकार के जन्म मृत्यु की तिथि न मिलने पर भी ग्रंथलेखन का समय जहाँ मिल सका वहाँ उसका निर्देश हुआ है। जिन प्रविष्टियों में माता, पिता, समय, स्थल इत्यादि विषय में कुछ भी जानकारी नहीं मिल सकी ऐसे लेखकों के संबंध

मे, "इनके बारे मे कुछ भी जानकारी नही मिलती"- इस प्रकार का वाक्य न लिखते हुए मौन स्वीकार किया है। अन्यथा उसी वाक्य की पुनरुक्ति अनेक स्थानों पर करनी पडती, जिससे कोश की मात्र अक्षरसख्या बढ़ जाती। कुछ प्रविष्टियो मे, निवेदन के अन्तर्गत वाक्यों से ही स्थल, काल का अनुमान सहजता से हो जाता है। ऐसी प्रविष्टियों मे स्थल-काल आदि निर्देश पृथकृता से हमने नहीं किया। ग्रथकार के विशिष्ट निवासस्थान की जानकारी जहाँ नही मिली ऐसे स्थानो मे उसके प्रदेश का निर्देश किया है। गुरु परपरा को हमारी सस्कृति में विशेष महत्त्व होने के कारण प्राय सर्वत्र गुरु का निर्देश किया है। वेदशाखा और गोत्र तथा आश्रयदाता का भी यथासंभव निर्देश करने का सर्वत्र प्रयास हुआ है।

ग्रथकार खड की प्रविष्टियो मे ग्रथकारों के जितने ग्रथों का उल्लेख किया है उन सभी ग्रथों का परिचय कोश के ग्रथ खड मे नही मिलेगा। परतु ग्रथ खड मे जिन ग्रथो के सक्षेपत परिचय दिए हैं उनके लेखकों का ग्रथकार खड में सभवत परिचय मिलेगा। इस नियम मे भी अपवाद भरपूर हैं और इन अपवादो का कारण है हमारी सीमित शक्ति एव जानकारी की अनुपलब्धि।

आधुनिक महाराष्ट्र मे कुलनामो का प्रचार अधिक होने के कारण प्राय सभी महाराष्ट्रीय ग्रथकारों का निर्देश कुलनाम, व्यक्तिनाम और पितृनाम इस क्रम से किया है। (जैसे केतकर, व्यकटेश बापूजी)। परतु प्राचीन ग्रथकारों की प्रविष्टियो मे इस नियम के अपवाद मिलेगे।

इस कोश मे हस्तलिखित एव उल्लिखित ग्रथो तथा ग्रथकारो का परचिय प्राय नहीं दिया है। इस नियम के भी कुछ अपवाद मिलेंगे।

आधुनिक दाक्षिणात्य समाज मे नामो का निर्देश, ए बी सी इत्यादि अग्रेजी वर्णों का प्रयोग कुलनाम या मूल निवासस्थान के आद्याक्षर की सूचना के हेतु उपयोग मे लाया जाता है। अत आधुनिक दाक्षिणात्य ग्रथकारो के नामो की प्रविष्टी उन अग्रेजी आद्याक्षरों के अनुसार की है। जैसे बी श्रीनिवास भट्ट यह प्रविष्टि ब के अनुक्रम मे मिलेगी।

इस कोश के ग्रथकार खड मे केवल सस्कृत भाषा को ही जिन्होंने अपनी वाड्मय सेवा का माध्यम रखा ऐसे ही ग्रथकारो का उल्लेख अभिप्रेत है। फिर भी हिन्दी, मराठी, बगला, तमिल, तेलुगु इत्यादि प्रादेशिक भाषाओ के जिन ख्यातनाम लेखको ने सस्कृत मे भी कुछ वाड्मय सेवा की है, उनका भी उल्लेख यथावसर ग्रथकार खड में हुआ है।

19 वी शताब्दी मे जिन पाश्चात्य पडितो ने सस्कृत वाड्मय के क्षेत्र मे बहुत बडा योगदान शोधकार्य के द्वारा किया है, उनमे से कुछ विशिष्ट महानुभावो के परिचय ग्रथकार खड मे मिलेंगे। पाश्चात्य पद्धति मे प्रभावित कुछ आधुनिक भारतीय लेखको का भी इसी प्रकार निर्देश हुआ है। ऐसी प्रविष्टिया अपवाद स्वरूप समझनी चाहिए।

कोश की प्रत्येक प्रविष्टि के साथ सदर्भ ग्रथो का निर्देश इस लिए नही किया कि उस निमित्त विशिष्ट ग्रथो का निर्देश बारबार होता और उस पुनरुक्ति से अकारण अक्षरसख्या मे वृद्धि होती। प्रविष्टियो मे अन्तर्भूत जानकारी अन्यान्य ग्रथो से सकलित की है और उसका अनावश्यक भाग छाट कर सक्षेप मे लिखी गई है। अनेक प्रविष्टियो मे आधारभूत ग्रथो के वाक्य यथावत् मिलेंगे। उनके लेखको को हम अभिवादन करते है।

अनवधान तथा अनुपलब्धि के कारण कुछ महत्त्वपूर्ण प्रविष्टियों के अनुल्लेख के लिए तथा कुछ उपेक्षणीय प्रविष्टियो के अन्तर्भाव के लिए सुज्ञ पाठक क्षमा करेगे। भ्रम और प्रमाद मानवी बुद्धि के स्वाभाविक दोष हैं। हम अपने को उन दोषो से मुक्त नही समझते। फिर भी प्रविष्टियों के अन्तर्गत जानकारी में जो भी त्रुटिया अथवा सदोषता विशेषज्ञो को दिखेगी, उसका कारण जिन ग्रथों के आधार पर उस जानकारी का सकलन हुआ वे हमारे आधार ग्रथ है।

प्रविष्टियो मे प्राय अपूर्ण सी वाक्यरचना दिखेगी। अनावश्यक शब्दविस्तार का संकोच करने के लिए यह टेलिग्राफिक (तारवत्) वाक्यपद्धति हमने अपनाई है। सस्कृत ग्रथो के नाम मूलत विभक्त्यन्त होते हैं। परतु इस कोश में ग्रथनामो का निर्देश विभक्ति प्रत्यय विरहित किया है। जैसे अभिज्ञान- शाकुंतल, किरातार्जुनीय, ब्रह्मसूत्र, इत्यादि।

संस्कृत वाङ्मय दर्शन - सामान्य रूपरेखा

प्रस्तुत कोश का सपादन तथा सकलन दो विभागो मे करने का सकल्प प्रारभ से ही था, तदनुसार दोनों खण्ड एक साथ प्रकाशित हो रहे हैं- प्रथम खण्ड मे ग्रंथकारो का और द्वितीय खण्ड में ग्रन्थो का परिचय वर्णानुक्रम से ग्रथित हुआ है। किन्तु इस सामग्री के साथ और भी कुछ अत्यावश्यक सामग्री का चयन दोनों खडों में किया है। प्रथम खण्ड के प्रारंभिक विभाग के अतर्गत "सस्कृत वाड्मय दर्शन" का समावेश हुआ है। सस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत, सैकडो लेखको ने जो मौलिक विचारधन विद्यारसिको को समर्पण किया, उसका समेकित परिचय विषयानुक्रम से देना यही इस वाड्मयदर्शनात्मक विभाग का उद्देश्य है। सस्कृत वाड्मय का वैशिष्ट्यपूर्ण विचारधन ही भारतीय सस्कृति

का परम निधान है। सदियों से लेकर इसी विचारधन के कारण सस्कृत भाषा की और भारत भूमि की प्रतिष्ठा सारे ससार मे सर्वमान्य हुई है। भारतीय मस्कृति का उत्स यही विचारधन होने के कारण, इस सस्कृति का आत्मस्वरूप तत्त्वत जानने की इच्छा रखनेवाले ससार के सभी मनीषी और मेधावी सज्जन, सस्कृत भाषा तथा सस्कृत वाङ्मय के प्रति नितान्त आस्था रखते आए हैं। सस्कृत वाङ्मय के इस विचारधन का परिचय मूल सस्कृत ग्रथों के माध्यम से करने की पात्रता रखने वालो की सख्या, सस्कृत भाषा का अध्ययन करने वालों की सख्या के ऱ्हास के साथ, तीव्र गति से घटती गई। इस महती क्षति की पूर्ति करने का कार्य गत सौ वर्षो मे, सस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट अगो एव उपागो का विस्तारपूर्वक या संक्षेपात्मक पर्यालोचन करनेवाले उत्तमोत्तम ग्रथ निर्माण कर, अनेक मनीषियो ने किया है।

ससार की सभी महत्त्वपूर्ण भाषाओ मे इस प्रकार के सुप्रसिद्ध ग्रथ पर्याप्त मात्रा मे अभी तक निर्माण हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे। उनमे से कुछ अल्पमात्र ग्रथो पर यह "सस्कृत वाङ्मय दर्शन" का विभाग आधारित है। इसमे हमारे अभिनिवेश का आभास यत्र-तत्र होना अनिवार्य है, किन्तु हमारा आग्रहयुक्त निजी अभिमत या अभिप्राय प्राय कही भी नही दिया गया। सस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत विविध शाखा- उपशाखाओ के ग्रंथ एव ग्रथकारो का सक्षेपित और समेकित परिचय एकत्रित उपलब्ध करने के लिए "सस्कृत वाङमय दर्शन" का विभाग इस कोश के प्रथम खण्ड के प्रारम्भ मे जोडा गया है, जिसमे प्रकरणश. -(1) सस्कृत भाषा का वैशिष्ट्य, (2) मत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् स्वरूप समग्र वेदवाङ्मय का परिचय तथा वेदकाल, आर्यो का कपोलकल्पित आक्रमण, परपरावादी भारतीय वैदिक विद्वानो की वेदविषयक धारणा इत्यादि अवातर विषयो का भी दर्शन कराया है। (3) वेदांग वाङ्मय का परिचय देते हुए कल्प अर्थात् कर्मकाण्डात्मक वेदांग के साथ ही स्मृतिप्रकरणात्मक उत्तरकालीन धर्मशास्त्र का परिचय जोडा है। वास्तव मे स्मृति-प्रकरणकारो का धर्मशास्त्र, कल्प-वेदागान्तर्गत धर्मसूत्रो का ही उपबृहित स्वरूप है, अत कल्प के साथ वह विषय हमने सयोजित किया है। इसी प्रकरण मे व्याकरण वेदाग का परिचय देते हुए निरुक्त, प्रातिशाख्य, पाणिनीय व्याकरण, अपाणिनीय व्याकरण, वैयाकरण परिभाषा और दार्शनिक व्याकरण इत्यादि भाषाशास्त्र से सबधित अवातर विषय भी समेकित किए हैं। छद शास्त्र के समकक्ष होने के कारण उत्तरकालीन गण-मात्रा छद एव सगीत-शास्त्र का परिचय वहीं जोड कर उस वेदाग की व्याप्ति हमने बढाई है। उसी प्रकार ज्योतिर्विज्ञान के साथ आयुर्विज्ञान (या आयुर्वेद) और शिल्प-शास्त्र को एकत्रित करते हुए, सस्कृत के वैज्ञानिक वाङ्मय का परिचय दिया है। यह हेरफेर विषय-गठन की सुविधा के लिए ही किया है। हमारी इस सयोजना के विषय में किसी का मतभेद हो सकता है।

(4) पुराण-इतिहास विषयक प्रकरण मे अठारह पुराणो के साथ रामायण और महाभारत इन इतिहास ग्रंथो के अतरग का एव तद्विषयक कुछ विवादो का स्वरूप कथन किया है। महाभारत की सपूर्ण कथा पर्वानुक्रम के अनुसार दी है। प्रत्येक पर्व के अतर्गत विविध उपाख्यानो का साराश उस पर्व के साराश के अत में पृथक् दिया है। महाभारत का यह सारा निवेदन अतीव सक्षेप मे "महाभारतसार" ग्रथ (3 खड- प्रकाशक श्री शकरराव सरनाईक, पुसद- महाराष्ट्र) के आधार पर किया हुआ है। प्रस्तुत "महाभारतसार" आज दुष्प्राप्य है।

उत्तरकालीन सस्कृत साहित्य मे विविध ऐतिहासिक आख्यायिकाओं, घटनाओ एव चरित्रो पर आधारित अनेक काव्य, नाटक चम्पू तथा उपन्यास लिखे गये। इस प्रकार के ऐतिहासिक साहित्य का परिचय भी प्रस्तुत पुराण-इतिहास विषयक प्रकरण के साथ सयोजित किया है।

(5-8) दार्शनिक वाङ्मय के विचारो का परिचय (अ) न्याय-वैशेषिक, (आ) साख्य-योग, (इ) तत्र और (ई) मीमासा- वेदान्त इन विभागो के अनुसार, प्रकरण 5 से 8 में दिया है। इसमें न्याय के अन्तर्गत बौद्ध और जैन न्याय का विहगावलोकन किया है। योग विषय के अतर्गत पातजल योगसूत्रोक्त विचारो के साथ हठयोग, बौद्धयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग का भी परिचय दिया है। 9 वें प्रकरण मे वेदान्त परिचय के अन्तर्गत शकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व और चैतन्य जैसे महान तत्त्वदर्शी ज्ञानियो के निष्कर्षभूत द्वैत-अद्वैत इत्यादि सिद्धान्तों का विवेचन किया है। साथ ही इन सिद्धान्तों पर आधारित वैष्णव और शैव संप्रदायो का भी परिचय दिया है। इन सभी दर्शनों के विचारो का परिचय उन दर्शनो के महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दो के विवरण के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

दर्शन-शास्त्रो के व्यापक विचार पारिभाषिक शब्दो में ही संपिण्डित होते हैं। एक छोटी सी दीपिका के समान वे विस्तीर्ण अर्थ को आलोकित करते हैं। पारिभाषिक शब्दो का यह अनोखा महत्त्व मानते हुए दर्शन शास्त्रों के विचारों का स्वरूप पाठको को अवगत कराने के हेतु हमने यह पद्धति अपनायी है।

(9) जैन-बौद्ध वाङ्मय विषयक प्रकरण में उन धर्ममतों की दार्शनिक विचारधारा एव तत्संबंधित काव्य-कथा स्तोत्र आदि ललित सस्कृत साहित्य का भी परिचय दिया है।

(11) नाट्य-शास्त्र एव नाट्य-साहित्य विषयक प्रकरणों मे दशरूपक इत्यादि शास्त्रीय ग्रंथो में प्रतिपादित विविध नाटकीय विषयो के साथ सम्पूर्ण सस्कृत नाट्य वाड्मय का विषयानुसार तथा रूपक प्रकारानुसार वर्गीकरण दिया है। इसमे अर्वाचीन सस्कृत नाटको का भी परामर्श किया गया है।

(12) अत में ललित साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्यादि सारे काव्य प्रकारो का परामर्श करते हुए सस्कृत सुभाषित सग्रहो और विविध प्रकार के कोशग्रथो का परिचय दिया है। 17 वी शती के पश्चात् निर्मित सस्कृत साहित्य, पुराने पर्यालोचनात्मक वाड्मयेतिहास के ग्रथो में उपेक्षित रहा। स्वराज्यप्राप्ति के बाद इस कालखंड में लिखित सस्कृत साहित्य का समालोचन "अर्वाचीन सस्कृत साहित्य" "आधुनिक नाट्यवाड्मय" इत्यादि विविध प्रबन्धों द्वारा हुआ। अर्वाचीन सस्कृत साहित्य को अब विद्वत्समाज मे मान्यता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत प्रकरण में सभी प्रकार के अर्वाचीन ग्रथों का तथा पत्र-पत्रिकाओ एव उपन्यासो का परामर्श किया है।

"सस्कृत वाड्मय दर्शन" के विभाग में इस पद्धति के अनुसार समग्र सस्कृत वाडमय के अतरग का दर्शन कराते हुए विविध सिद्धान्तों, विचार प्रवाहो एव उललेखनीय श्रेष्ठ ग्रथो का सक्षेपत परिचय देना आवश्यक था। कोश के ग्रथकार खड और ग्रथ खड मे सस्कृत वाड्मय का जो भी परिचय होगा वह विशकलित रहेगा। एक व्यक्ति के प्रत्येक अवयव के पृथक्-पृथक् चित्र देखने पर उस व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का आकलन नहीं होता, एक सहस्त्रदल कमल की बिखरी हुई पखुडियो को देखने से समग्र कमल पुष्प का स्वरूप सौंदर्य समझ मे नही आता। उसी प्रकार वर्णानुक्रम के अनुसार ग्रथो एव ग्रथकारो का सक्षिप्त परिचय जानने पर समग्र वाड्मय तथा उसके विविध प्रकारो का आकलन होना असभव मान कर हमने यह "सस्कृत वाड्मय दर्शन" का विभाग कोश के प्रारभ में सयोजित किया है।

81, अभ्यकर नगर
नागपुर- 440 010
श्रीरामनवमी
7 अप्रैल 1988

श्रीधर भास्कर वर्णेकर
सपादक
सस्कृत वाड्मय कोश

संस्कृत वाङ्मय दर्शन

अनुक्रमणिका

परिशिष्टों के विषय

परिशिष्ट (क) - ऋग्वेद के मत्रद्रष्टा ऋषि। (ख)- वैदिक वाङ्मय। (ग)- वेदांग। (घ) आयुर्वेद। (ड)- वास्तुस्थापत्यशास्त्र। (च)- पुराण-इतिहास। (छ)- स्मृतिग्रथ, उपस्मृतिग्रथ, नीतिशास्त्रग्रथ। (ज)- दार्शनिक वाङ्मय (न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, तत्र, मीमासा। (झ)- वेदान्त (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत (माध्व), शुद्धाद्वैत (वल्लभ), निम्बार्क, (ञ)- काश्मीर शैवदर्शन, वीरशैव। (ट)- जैन ग्रथ (धर्मशास्त्र आगम), (ठ)- जैनदर्शन (ड) बौद्धवाङ्मय।

* * *

संस्कृत वाङ्मय दर्शन

प्रकरण - 1

1 संस्कृत भाषा

सस्कृत शब्द का प्रयोग अनेकविध अर्थों में सस्कृत साहित्य में किया गया है। उन सभी प्रयोगों में सुशोभित करना, अलंकृत करना, पवित्र करना, प्रशिक्षित करना, सतेज करना, निर्दोष करना, इत्यादि भाव व्यक्त होते है। जब किसी भाषा को संस्कृत विशेषण लगाया जाता है, तब यह अर्थ माना जाता है कि वह भाषा अर्थात् उस भाषा के बहुत से शब्द, निश्चित अर्थ व्यक्त करने की दृष्टि से भाषा शास्त्रीय पद्धति के अनुसार विवेचन कर, निर्दोष किए गए हैं। उन शब्दो में स्वर, व्यजन, ऱ्हस्व, दीर्घ इत्यादि किसी प्रकार की विकृतता सदोषता बाकी नहीं रही। बहुताश शब्दो का निरुक्ति व्युत्पत्ति आदि दृष्टि से पूर्णतया संशोधन करने के कारण, सपूर्ण भाषा में जो परिपूर्णता, परिपक्वता या विशुद्धता निर्माण हुई, उसी कारण भारतीय मनीषियों ने अपनी सस्कारपूत भाषा की स्तुति, "दैवी वाक्" (सस्कृतं नाम दैवी वाक्) (काव्यादर्श- 1-33) इस अनन्य साधारण विशेषण से की। देवभाषा, अमरभाषा, गीर्वाणवाणी, अमृतवाणी, सुरभारती, इत्यादि सस्कृत भाषा के निर्देशक अनेकविध रूढ शब्दप्रयोग, इस भाषा की सस्कारपूर्तता के कारण निर्माण हुई अपूर्वता अद्‌भुतता, सुदरता इत्यादि गुणों को ही व्यजित करते हैं।

आस्तिक दृष्टिकोण के अनुसार सभी चराचर सृष्टि की निर्मिति सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी परमात्म तत्त्व से हुई है। अर्थात् इस सृष्टि के अन्तर्गत सभी सचेतन प्राणिमात्र के कठ से प्रस्फुटित होने वाली शब्दस्वरूप वाणी भी परमात्म तत्व की ही निमिति है। यह शब्दरूप वाणी आदिकाल में समुद्रध्वनि के समान अव्याकृत-अस्फुट थी। श्री सायणाचार्य (अर्थात् श्रीविद्यारण्य स्वामी) अपने ऋग्वेदभाष्य में कहते हैं - "अग्निमीळे पुरोहितम् इत्यादि-वाक् पूर्वस्मिन् काले समुद्रादिध्वनिवद् एकात्मिका सती अव्याकृता = प्रकृति प्रत्यय पदं वाक्यम् इत्यादि विभागकारिग्रन्थरहिता आसीत्। तदा देवै प्रार्थित इन्द्र. एकस्मिन् एव पात्रे वायो स्वस्य च सोमरसग्रहणरूपेण वरेण तुष्ट ताम् अखण्डवाच मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययादिविभाग सर्वत्र अकरोत्"।

अर्थात् आदिकाल में समुद्रध्वनि के समान अव्यक्त वेदवाणी को इन्द्र भगवान् ने सोमरस से प्रसन्न होने के कारण, प्रकृति प्रत्यय इत्यादि विभाग भाषा में निर्माण कर उसे अर्थग्रहण के योग्य किया। वेदों में भाषा की उत्पत्ति के संबध में चार प्रसिद्ध मन्त्र मिलते हैं -

(1) देवीं वाचमजनयन्त देवा तां विश्वरूपा पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मान् उपसुष्टतेतु ॥ ऋ 8-100 ॥

(2) चत्वारि शृगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ ऋ. 4-58-3 ॥

(3) इन्द्रा-वरुणा यदृषिभ्यो मनीषा वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे। यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा। यज्ञ तन्वाना तपसाभ्यपश्यन् ॥ ऋ 8-59-6 ॥

(4) चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ऋ 1-164-45 ॥ अथर्व -6-25-27-26-1

इन वाणी विषयक मन्त्रों पर भाष्य लिखने वाले यास्क, पतजलि, सायण जैसे महामनीषियो ने अपने भाष्य ग्रंथो में वैदिक भाषा की उत्पत्ति का सबध साक्षात् देवों से ही जोडा है। सायणाचार्य ने तो संस्कृत भाषा का पर्यायवाचक शब्द "देवभाषा" इस सामासिक शब्द का विग्रह "देवसृष्टा भाषा देवभाषा" इस प्रकार कर, यह भी कहा है कि यह देवभाषा "सर्वजनमान्या" और "सर्वविदिता" है। त्रेता युग में इन्द्र चन्द्र भूतेश जैसे देवता इस भाषा के अक्षर निर्माता थे इत्यादि अर्थ के वचन प्राचीन ग्रन्थो में मिलते हैं।

भाषाविज्ञान का मत

आधुनिक भाषाविज्ञान के पडितों ने ससार के जो विविध भाषापरिवार माने है उन में आर्यपरिवार (जिसे इडोजर्मनिक और इण्डोयूरोपियन भी कहते हैं) नामक सर्वप्रमुख भाषापरिवार माना है। इस परिवार में यूरोप, उत्तर-दक्षिण अमरीका, नैऋत्य आफ्रिका, आस्ट्रेलिया और ईरान जैसे विशाल प्रदेशों की अनेकविध भाषाओं का अन्तर्भाव होता है। उन सब में सस्कृत भाषा को अग्रस्थान दिया जाता है। संस्कृत भाषा की प्रमुखता के कारण इस भाषा परिवार का "सास्कृतिक भाषा परिवार" यह नामकरण कुछ विद्वानों ने संमत किया था। परतु इस परिवार के प्रदेशों में इंडिया और यूरोप ये दो प्रमुख प्रदेश हैं। इन दोनो का निर्देशक "इण्डोयूरोपीय" यही नाम सर्वत्र रूढ हुआ।

आदिम आर्यभाषा

इण्डोयूरोपीय परिवार की सभी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर आधुनिक भाषा वैज्ञानिक इस सिद्धान्त पर पहुचे कि इन विविध प्रदेशस्थ भाषाओ का मूल स्रोत कोई "आदिम भाषा" रही होगी। सस्कृत, अवेस्ती, ग्रीक और लॅटिन के सब से पुराने लेखो के शब्दों का मन्थन कर, जो सारभूत भाषास्वरूप उपलब्ध हुआ उस कल्पित भाषा को "आदिम भाषा" का बहुमान प्रदान किया गया। यह तथाकथित कल्पित आदिम आर्य भाषा, सस्कृत, अवेस्ती, ग्रीक, जर्मन, लॅटिन, केल्टी, स्लावी, बाल्टी, आर्मीनी, अल्बेनी, तोरखारी और हिट्टाइट इन सभी इण्डोयूरोपीय भाषाओ की जननी मानी गई।

इस काल्पनिक आदिम भाषा का उपयोग करनेवाली आर्यजाति की भी कल्पना की गई और आर्यजाति का मूलस्थान यूरोप की पूर्व और एशिया की पश्चिम सीमा रेखा पर कही तो भी होना चाहिये, इस निर्णय पर पहुचने पर, डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे भारतीय भाषावैज्ञानिक, प्रो बेडेस्टाइन का मत प्रमाणभूत मान कर, उराल पर्वत का दक्षिणी प्रदेश ही आदिम आर्य जाति का मूल निवासस्थान मानते हैं। इस कल्पित, तथाकथित आदिम आर्यभाषा की सब से निकट भाषा सस्कृत ही मानी गई है।

इस सस्कृत भाषा मे ससार का प्राचीनतम वेदवाड्मय भरपूर मात्रा मे और अविकृत स्वरूप में, आज भी उपलब्ध होता है। समग्र मानवजाति के प्राचीनतम इतिहास के वाड्मयीन प्रमाण, भारत की इस देववाणी में आज प्राप्त होते हैं।

मानव समाज को जब तक अपने प्राचीनतम इतिहास के प्रति आस्था या जिज्ञासा रहेगी और जब तक ग्रथालयो एव सग्रहालयों मे प्राचीनतम वाड्मय एव वस्तुओ का सग्रह करने की प्रेरणा मानव मे रहेगी, तब तक सस्कृत भाषा मे उपनिबद्ध प्राचीन वेदवाड्मय को अग्रपूजा का स्थान देना ही होगा।

भाषाविज्ञान के निष्कर्ष

वैदिक वाडमय का भाषाशास्त्रीय अध्ययन करने पर आधुनिक भाषा पडित इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि, वैदिक सहिताओ के सूक्तो मे स्थान स्थान पर बोली के भेद दिखाई देते हैं। ऋग्वेद के प्रथम और दशम मडल के सूक्तो की भाषा, अन्य मडलो की भाषा की तुलना मे, उत्तरकालीन दिखाई देती है। ब्राह्मणग्रथो, प्राचीन उपनिषदो और सूत्र ग्रथो की भाषा क्रमश विकसित हुई मालूम होती है। पाणिनि के समय तक वैदिक वाड्मय की भाषा और तत्कालीन शिष्टो की भाषा मे पर्याप्त अतर पड गया था। पाणिनि के पूर्ववर्ती पचीस श्रेष्ठ वैयाकरणो ने इस भाषा के शब्दो का बडी सूक्ष्मेक्षिका से अध्ययन किया था। पाणिनि के समय तक उत्तर भारत मे उदीच्य, प्राच्य और मध्यदेशीय, तीन विभाग सस्कृत भाषान्तर्गत शब्दो में रूपान्तर होने के कारण हो गए थे।

वैदिक सस्कृत और विदग्ध सस्कृत भाषा मे प्रधानतया जो भद निर्माण हुए उनका सक्षेपत स्वरूप निम्नप्रकार है-

1 अनेक वैदिक शब्दो का लौकिक भाषा में अर्थान्तर हो गया।

2 कुछ प्रत्यय, धातु, सर्वनाम वैदिक और लौकिक सस्कृत मे विभिन्न हो गए।

3 वैदिक सस्कृत में क्रिया से दूर रहने वाले उपसर्ग, लौकिक भाषा में क्रिया के पूर्व रूढ हुए।

4 उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरो के कारण वैदिक सस्कृत मे जो सगीतात्मकता थी, वह लौकिक भाषा में उन स्वरों का विलय होने से, लुप्त हो गई।

5 वैदिक मे कर्ता और क्रियापद के वचन मे भिन्नता थी। लौकिक भाषा में वहा एकता आयी। यही बात विशेषण और विशेष्य के सबध मे हुई।

6 वैदिक भाषा में केवल वर्णिक छद मिलते हैं किन्तु लौकिक सस्कृत मे वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छद मिलते हैं। अनुष्टुप् के अतिरिक्त कुछ वैदिक छन्द लौकिक सस्कृत में लुप्त हो गए।

2 संस्कृत और एकात्मता

सस्कृत भाषा के (ओर समस्त ससार के) सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण भगवान् पाणिनि हुए। उन्होंने अपने शब्दानुशासन द्वारा सस्कृत भाषा को विकृति से अलिप्त रखा। लौकिक व्यवहार मे, लोगो की शुद्धवर्णोच्चार करने की अक्षमता के कारण, अथवा वर्णोच्चार मे मुखसुख की प्रवृत्ति के कारण, संस्कृत से अपभ्रशात्मक प्राकृत भाषाए भारत के विभिन्न भागों में उदित और यथाक्रम विकसित होती गईं। परतु पाणिनीय व्याकरण के निरपवाद प्रामाण्य के कारण सस्कृत भाषा का स्वरूप निरतर अविकृत रहा। ससार की भाषाओ के इतिहास मे यह एक परम आश्चर्य है। पणिनीय व्याकरण के प्रभाव के कारण "अमरभाषा" यह सस्कृत भाषा का अपरनाम चरितार्थ हो गया।

पाणिनि के समय में शिष्ट समाज के परस्पर विचार-विनिमय की भाषा सस्कृत ही थी। उनके बाद भी कई सदियाँ तक यह काम सस्कृत भाषा करती रही। श्रीशकराचार्य जैसे प्राचीन विद्वान अपना सैद्धान्तिक दिग्विजय संस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ कर

ही करते थे। कुछ इतिहासज्ञों के मतानुसार मगध साम्राज्य तथा बौद्ध सप्रदाय के प्रभाव के कारण सस्कृत का प्रभाव कुछ काल तक सीमित सा हो गया था, परंतु पुष्यमित्र शुंग की राज्यक्रान्ति के बाद मौर्य साम्राज्य समाप्त होकर संस्कृत भाषा का महत्त्व फिर से यथापूर्व स्थापित हो गया। प्राय. 12 वीं सदी तक सस्कृत सभी हिंदु राज्यों की राजभाषा रही।

12 वीं सदी शताब्दी के बाद आज की हिंदी, गुजराती, बंगला, मराठी इत्यादि प्रादेशिक भाषाएं लोकप्रिय होती गईं। उनका अपना साहित्य निर्मित होने लगा। परतु पाली, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी इत्यादि के समान यह अर्वाचीन प्रादेशिक भाषाए, सस्कृत के तद्‌भव और तत्सम शब्दों से उपजीवित और परिपोषित होती गई। पाश्चात्य साहित्य का परिचय और प्रभाव होने के पहले का सभी प्रादेशिक भाषाओं का संपूर्ण साहित्य सस्कृतोपजीवी ही रहा। सस्कृत भाषा में शास्त्रीय चिकित्सा करने की जो अद्‌भुत क्षमता है, उसके अभाव के कारण पाली-प्राकृत भाषा के अभिमानी धर्माचार्यो को यथावसर सस्कृत का ही प्रश्रय लेना पडा।

दक्षिण की तमिळ, मलयालम, कन्नड और तेलुगु ये चार भाषाए भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार द्रविड परिवार की भाषाए मानी जाती हैं। परतु उन भाषाओं में सस्कृत के तत्सम और तद्‌भव शब्दों का प्रमाण उत्तर भारत की हिन्दी आदि प्रादेशिक भाषाओं के प्राय बराबरी में है। किंबहुना कुछ मात्रा में अधिक भी है और उनका सपूर्ण साहित्य भी इस सुरभारती के स्तन्य पर ही परिपुष्ट हुआ है। यही एक कारण है कि, भारत में भाषाएं विविध हैं, परंतु उसका साहित्य एकात्म और एकरूप है। इस सनातन राष्ट्र के जीवन में इस महनीय भाषा के कारण ही सदियों से सास्कृतिक सरूपता और एकात्मता रही है। आगे चल कर भी अगर इस राष्ट्र को अपनी भाषिक और सास्कृतिक एकात्मता दृढ रखनी होगी, तो संस्कृत का सार्वत्रिक प्रचार करना पडेगा।

संस्कृत भाषा की अखिल भारतीयता

प्राचीनता जैसे सस्कृत भाषा की अनोखी विशेषता है, वैसे ही उसकी वाङ्मय राशि की अखिल भारतीयता भी दूसरी विशेषता है। ई 12 वीं शताब्दी से भारत के अन्यान्य प्रदेशों मे विविध प्रादेशिक भाषाओं का धीरे धीरे विकास प्रारभ हुआ। इन सभी प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य निरपवाद सस्कृत साहित्योपजीवी रहा। सस्कृत का पौराणिक वाङ्मय, उस साहित्य का स्फूर्तिस्थान रहा। व्यास और वाल्मीकि की प्रतिभा ही मानों सभी प्रादेशिक आयामों की लेखनी से शत सहस्र प्रकारों में पल्लवित और पुष्पित हुई। आधुनिक युग मे पाश्चात्य साहित्य कें सपर्क से प्रादेशिक साहित्य की वल्लरिया अन्यान्य दिशाओं और आयामों में उभर आयी। आज वे सारी अपने अपने प्रादेशिक राज्यों की राजभाषाए हुई हैं। परतु इतनी सारी प्रगति के बावजूद हिंदी, मराठी, बगाली, गुजराती, तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम इन सारी प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य में, अखिल भारतीयता नहीं आयी। कुछ अभिनन्दनीय अपवाद छोड कर, प्राय सभी प्रादेशिक भाषाओं का सारा का सारा लेखक वर्ग सीमित प्रदेशस्थ ही रहा। याने मराठी का लेखक वर्ग महाराष्ट्र के बाहर, या कन्नड का लेखक वर्ग कर्नाटक के बाहर कहीं मिलता, न आगे चल कर मिलेगा। हिंदी भाषा को अखिल भारतीय भाषा के नाते शासकीय वैधानिक और विविध पक्षीय समर्थन प्राप्त होने पर भी, हिंदी का साहित्यिक वर्ग उत्तर भारतीय ही रहा है।

भारत के सभी प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यों को इतिहास ग्रथ पढते समय उनकी सीमित प्रादेशिकता ठीक ध्यान में आती है। आज के भाषिक अभिनिवेश के युग की चाल देखते हुए यह साफ दिखाई देता है कि, हिंदी, बगाली, मराठी, कन्नड इत्यादि भारत की विविध प्रादेशिक भाषाओ में से, किसी भी भाषा का प्रमुख लेखक वर्ग भविष्य काल में अखिल भारतीय नहीं होगा।

वाङ्मय के अन्तर्गत ललित और विविध शास्त्रीय वाङ्मय शाखा के इतिहास ग्रथों का आलोचन करते हुए जो बात प्रमुखता से ध्यान में आती है, वह है उनके लेखकों की अखिल भारतीयता। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और कामरूप से कच्छ तक, फैले हुए समग्र भारत वर्ष के अन्तर्गत सभी प्रदेशो में जन्म पाए हुए महामनीषियों की प्रतिभा एव पाण्डित्य का अद्‌भुत वैभव इस भाषा के गद्य, पद्य और सूत्ररूप ग्रथों में अपनी दिव्य दीप्ति से चमक रहा है।

सस्कृत वाङ्मय के सभी प्राचीन और अर्वाचीन लेखकों के सभी ग्रथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। फिर भी जितने प्रकाशित हुए हैं और उनमें से जितने परिमित ग्रथों का परामर्श, सस्कृत वाङ्मय के इतिहास ग्रथों में आज तक किया गया है, उनकी और उनके लेखकों की सख्या इतनी आश्चर्यकारक है, कि मानो सस्कृत वाङ्मय में अखिल भारतवर्ष का प्रज्ञावैभव अतिप्राचीन काल से आज तक सचित हुआ है। इसी कारण भारत की समस्त सुबुद्ध जनता के हृदय में संस्कृत भाषा के और सस्कृत भाषीय समग्र वाङ्मय के प्रति नितांत आत्मीयता और श्रद्धा है। जिस भाषा के और तन्दतर्गत वाङ्मय के प्रति संपूर्ण राष्ट्र की जनता श्रद्धायुक्त आत्मीयता रखती है वह भाषा और वह साहित्य उस समूचे राष्ट्र का "दैवी निधान" होता है। उसका संरक्षण अध्ययन और प्रसारण करना उस राष्ट्र के निष्ठावान सज्जनों का अनिवार्य कर्तव्य होता है। सस्कृत भाषा और सस्कृत वाङ्मय के प्रति अखिल भारतीय विद्यारसिकों का यही दायित्व है।

3 संस्कृत की लिपि

मोहन जो दडो और हडप्पा मे जो प्राचीनतम सामग्री प्राप्त हुई उसमें कुछ लेख भी हैं। ये ऐसी लिपि में हैं जो ब्राह्मी या खरोष्ठ्री (जो भारत की प्राचीनतम लिपिया मानी गई हैं) से मेल नहीं खाती। उस लिपि का वाचन करने का प्रयास कुछ विद्वानो ने किया, परतु उनके वाचन मे एकवाक्यता न होने के कारण, वह लिपि अभी तक अवाचित ही मानी जाती है।

अजमेर जिले के बडली या बर्ली गाव में और नेपाल की तराई मे पिप्रावा नामक स्थान मे दो छोटे छोटे शिलालेख मिले हैं। उनके अक्षर पढे गए हैं, परतु जिस लिपि मे वे लिखे गए है वह सम्राट अशोक से पूर्वकालीन मानी गई है।

वैदिक वाङ्मय, त्रिपिटक साहित्य, जैन ग्रथ, पाणिनि की अष्टाध्यायी इत्यादि प्राचीन प्रमाणो से प्राचीन भारत की लेखनकला का अस्तित्व प्रतीत होता है और उन प्रमाणो से भारत को लिपिज्ञान पाश्चात्य या चीनी सभ्यता के सपर्क से प्राप्त हुआ इस प्रकार के यूरोपीय विद्वानो के मत का खडन होता है। जैनों के पन्नवणासूत्र में और समवायग सूत्र में 18 लिपियों के नाम मिलते हैं। बौद्धो के ललितविस्तर मे 64 लिपियों के नाम आए हैं, जिनमें ब्राह्मी और खरोष्ठ्री का भी निर्देश है। अशोक के शहाबाजगढी और मनसहरा वाले लेख खरोष्ठी में है। इसके पूर्व का, इस लिपि का कोई लेख नहीं मिलता। अशोक के बाद यह लिपि भारत म विदेशी राजाओ के सिक्को और शिलालेखों मे पाई गई है। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश और पजाब मे खरोष्ठी के लेख मिले और शेष भाग मे ब्राह्मी के लेख मिले हैं। खरोष्ठी, अरेबिक के समान, दाई से बाई और लिखी जाती है। पजाब मे तीसरी सदी तक इस लिपि का प्रचार कुछ मात्रा मे था। बाद मे वहा से भी वह लुप्त हुई।

भारत की प्राचीन लिपियो में ब्राह्मी अधिक सुचारु और परिपूर्ण लिपि थी। इसी कारण इसको साक्षात् ब्रह्मा द्वारा निर्मित माना गया। इस लिपि की भारतीयता के बारे मे पाश्चात्य विद्वानो मे दो मत हैं। विल्सन, प्रिंसेप, आफ्रेट मूलर, सेनार्ट, डीके, कुपेरी, विल्यम जोन्स, वेबर टेलर, बूलर आदि विद्वान इसका मूल भारत के बाहर मानते हैं, परतु एडवर्ड, टामस, डासन, कनिंघम जैसे पाश्चात्य पडित और श्रीगौरीशकर हीराचन्द ओझा, डा तारापुरवाला जैसे भारतीय लिपि-शास्त्रज्ञों के मतानुसार, ब्राह्मी का उत्पत्तिस्थान भारत ही माना जाता है।

ई पू 5 वी शती से 4 थी शती तक के प्राप्त लेखो मे ब्राह्मी लिपि मिलती है। बाद में ब्राह्मी की पाच प्रकार की उत्तरी और छह प्रकार की अवातर (पश्चिमी, मध्यप्रदेशी, तेलुगु-कन्नडी, ग्रन्थलिपि, कलिग लिपि और तमिल) लिपिया मिलती है।

उत्तरी ब्राह्मी लिपियों मे ई 8 वी सदी से प्रचारित हुई नागरी लिपि विशेष महत्वपूर्ण मानी गई हैं। गुजराती और बगला लिपि मे इसका सादृश्य दिखाई देता है। मराठी और हिंदी भाषाओ की यही लिपि है। नेपाल की यह राजलिपि है और सस्कृत के बहुसख्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रथ इसी लिपि मे मिलते हैं। 10 वी सदी से 12 वीं सदी तक, इस लिपि मे यथोचित सुधार होता गया और 12 वी सदी मे उसका वर्तमान रूप सुस्थिर सा हो गया। टकमुद्रण की सुविधा के लिए, वीर सावरकर, आचार्य विनोबाजी भाव, जैसे मनीषियों ने इस लिपि मे कुछ विशेष सुधार सुझाए और स्वराज्यप्राप्ति के बाद भारतीय शासन ने उसका विद्यमान स्वरूप निश्चित किया, जिसमे अको के लिए यूरोपीय चिन्ह सार्वत्रिक समानता की दृष्टि से स्वीकृत किए हुए है। नागरी का देवनागरी और नन्दिनागरी भी कहते है।

अतिप्राचीन काल से सस्कृत भाषा विद्यालयो के अध्ययन-अध्यापन का और विद्वानो के भाषण तथा लेखन का माध्यम सपूर्ण भारत भर मे रहा। अशिक्षित या अल्पशिक्षित समाज मे सस्कृत भाषा का लेशमात्र परिचय होने पर भी, उसके प्रति परम श्रद्धा थी और आज भी है। सस्कृत का कोई भी वचन बहुजन समाज मे प्रमाणभूत माना जाता रहा। जातिभेद की कट्टरता तथा छुआछूत की दुष्ट रूढी के कारण निकृष्ट स्तर के समाज मे इस भाषा का प्रचार कुछ प्रदेशों मे नहीं हुआ। वेदाध्ययन के लिए स्त्रियो तथा निकृष्ट वर्गीयो के लिए मनाई रही किन्तु लौकिक काव्यनाटकादि साहित्य के अध्ययन के लिए तथा पुराण-श्रवण के लिए यह मनाई नही थी। परतु विद्याप्रेमी वर्ग, सपूर्ण भारत भर मे सस्कृत का अध्ययन, अध्यापन और लेखन निरतर करता आया। यह सारा सस्कृतज्ञ वर्ग, अपनी प्रादेशिक भाषा की लिपि के अतिरिक्त देवनागरी लिपि से परिचित रहा। गुजराती लेखन मे तो जहा जहा सस्कृत वचन आते है वहा वे देवनागरी मे लिखे जाते हैं।

भारत म भाषिक एकात्मता के साथ समान-लिपि का पुरस्कार सभी एकात्मतानिष्ठ सज्जनो ने सतत किया। सस्कृत के क्षेत्र में यह लिपि की समानता अभी तक सुरक्षित रही है। सस्कृत का प्रचार-प्रसार जिस मात्रा में सर्वत्र बढेगा उतनी मात्रा मे भारतीय नेताओ की समान राष्ट्रीय लिपि की अपेक्षा बराबर पूरी होगी।

पाश्चात्य देशो मे सस्कृत लेखन या मुद्रण के लिए, वहा की लिपि में, सस्कृत वर्णो के यथोचित उच्चारण के लिए यथावश्यक सुधार कर रोमन लिपि मे ही सस्कृत का मुद्रण हो रहा है। परतु उस आतरराष्ट्रीय लिपि (इंटरनेशनल स्क्रिप्ट) का भारत के सस्कृतज्ञ समाज में पर्याप्त प्रचार न होने के कारण, उसके पढने में वे असमर्थ रहते हैं।

संस्कृत की अखंड धारा

संस्कृत भाषा का विभाजन वैदिक और लौकिक इन दो प्रकारो में पाणिनि के समय से ही किया जाता था। पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों का प्रकरणश वर्गीकरण कर, भट्टोजी दीक्षित (ई 17 शती) ने "सिद्धान्त कौमुदी' नामक जो प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ निर्माण किया, उसमें भी लौकिक शब्दों का विवरण करने के बाद वैदिक शब्दों का विवरण स्वतत्र खड में किया है।

समग्र सस्कृत वाड्मय का विभाजन भी इन्हीं दो विभागों में प्राय किया गया है। आधुनिक काल में सस्कृत वाड्मय का पर्यालोचन करने वाले अनेक ग्रथ भारतीय और अभारतीय भाषाओ मे लिखे गए। इन संस्कृत वाड्मयेतिहास के ग्रथों में कुछ ग्रथ केवल वैदिक वाड्मयेतिहास विषयक और कई ग्रथ लौकिक सस्कृत वाड्मय का पर्यालोचन करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध सस्कृत वाड्मय, जैन सस्कृत वाड्मय तथा प्रादेशिक सस्कृत वाड्मय का भी पृथक परामर्श लेने वाले इतिहास ग्रंथ प्रसिद्ध हुए हैं।

साहित्य, व्याकरण, तत्वज्ञान, इत्यादि शास्त्रीय विषयों के वाड्मय के भी इतिहास प्रबन्ध पृथक् पृथक् लिखे गए हैं। हिंदी भाषा में इन सभी प्रकारों के इतिहास प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। अनेक शोधछात्र सस्कृत वाड्मय के किसी विशिष्ट अग या अश का सर्वंकष विवेचन करनेवाले शोधप्रबन्ध निर्माण कर रहे हैं। इन सब वाड्मयेतिहास के लेखको ने प्राय 12 वीं या अधिक से अधिक 15 वीं शताब्दी तक निर्माण (और आधुनिक मुद्रणयुग में मुद्रित) हुए वाड्मय का ही परामर्श लिया है।

सस्कृत वाड्मय के हस्तलिखित ग्रथो की सूचिया भी अनेक विश्वविद्यालयो एव शोधसस्थानों के द्वारा निर्माण हुई हैं और हो रही हैं। परतु इन सभी के लेखको एव सपादकों ने 15 वी या 16 वी शताब्दी के बाद भी जो भरपूर सस्कृत वाड्मय सारे भारत के सभी प्रदशों में निर्माण होता रहा और जिसका कुछ अश प्रकाशित भी हुआ, उसका परामर्श अपने ग्रथों में नहीं किया। सस्कृत वाड्मय के इस उपेक्षित निधान की ओर स्वराज्य प्राप्ति के बाद कुछ सस्कृतोपासको का ध्यान आकृष्ट हुआ उन्होंने अर्वाचीन सस्कृत साहित्य का सर्वंकष परामर्श करने वाले समीक्षात्मक शोध प्रबन्ध लिखे। अर्वाचीन सस्कृत साहित्य विषयक प्रबन्धों ने जो एक बडा कार्य किया है वह याने यूरोपीय विद्वानो ने 12 वी शताब्दी के बाद निर्माण हुए सस्कृत वाड्मय की उपेक्षा करते हुए, यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया था कि, उस कालमर्यादा के बाद सस्कृत मे वाड्मय निर्मिति हुई नहीं इसका कारण वह "मृत" या "मृतवत्" हो गई थी। लोगो के भाषण व्यवहार मे उपयोग न होना और नवीन वाड्मय की निर्मिति न होना, ये दो प्रमुख कारण, सस्कृत को मृतभाषा घोषित करने के लिए दिए गए और सर्वसामान्य स्तर के सुशिक्षितो ने उन्हे प्रमाणभूत मान कर, सस्कृत को मृतभाषा कहना शुरू किया था। सस्कृत वक्ताओं ने अपने भाषणो द्वारा उसकी सजीवता का प्रमाण निरतर स्थापित किया और आज भी वे कर रहे है। परतु साहित्यनिर्मिति का प्रमाण उपलब्ध करना कठिन था। अर्वाचीन सस्कृत साहित्य विषयक प्रबन्धो ने वह भी प्रमाण स्थापित कर दिया।

सस्कृत भाषा की और सस्कृत वाड्मय की, अति प्राचीन काल से अद्यावत् अखिल भारतीयता, उसके प्रति भारत के सभी भाषाभाषी सुबुद्ध जनता की श्रद्धायुक्त आत्मीयता, भारत की विद्यमान सभी प्रादेशिक भाषाओं की शब्दसमृद्धि बढाने की उसकी अद्भुत नवशब्द-निर्माण क्षमता इन तीन कारणो से किसी एक प्रदेश की राज्यभाषा न होते हुए भी सस्कृत समस्त भारत की एक सर्वश्रेष्ठ तथा अग्रपूज्य भाषा मानी जाती है। भारतीय सस्कृति का मूलग्राही एव सर्वंकष ज्ञान सस्कृत वाड्मय के अवगाहन से ही हो सकता है यह निर्विवाद सत्य होने के कारण, भारत के बाहर अन्यान्य राष्ट्रों के प्रमुख विश्वविद्यालयो मे सस्कृत का अध्ययन बडे आदर से होता है।

आधुनिक भाषा-वैज्ञानिको के मतानुसार दक्षिण भारत की तमिल, मलयालम, तेलुगु, तुळू, कोडगू, तोडकोटा और कैकाडी भाषाओं को द्राविड भाषा-परिवार के अन्तर्गत माना जाता है। साथ ही मध्य भारत की गोंडी, कुरुख, माल्टो, कंध, कुई, और कोलामी जैसी वन्य जातियो की भाषाए भी द्राविड भाषा परिवार के अन्तर्गत मानी जाती हैं। काल्डवेल नामक भाषा वैज्ञानिक ने, द्राविड भाषाओ का तौलानिक अध्ययन अपने शोध प्रबन्ध द्वारा प्रस्तुत किया है, जिसमें सस्कृत और तमिल भाषा में दृश्यमान भेद विशद करने का प्रयास किया है। इस विभिन्नता के बावजूद, भारत की आर्यपरिवारान्तर्गत भाषाओं के विकास में जिस मात्रा में सस्कृत की सहायता मिली है, उसी मात्रा में द्रविड परिवार की प्रमुख दाक्षिणात्य भाषाओ के विकास में भी सस्कृत की पर्याप्त सहायता मिली है। मलयालम भाषा मे तो सस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्दों का प्रमाण प्रतिशत 80 तक माना जाता है। भारतीय भाषाओं में जो विभाजन रेखा पाश्चात्य भाषविज्ञों ने निर्माण की है उसे मानने पर भी उत्तर और दक्षिण भारत की न्यान्य भाषाओं को एकात्मक एव एकरूप करनेवाली भाषा संस्कृत ही है। इस दृष्टि से भारत की भाषिक एकात्मता चाहने वाले सभी सज्जनों को संस्कृत की श्रीवृद्धि करना अत्यावश्यक है।

प्रकरण - 2

1 वेदवाङ्मय

ससार के सभी देशो के विद्वानों ने भारत के वेद वाङ्मय की अतिप्राचीनता और श्रेष्ठता शिरोधार्य मानी है। धर्म, शास्त्र, दर्शन, विद्या, कला आदि विविध सास्कृतिक विषयों के मूल तत्त्व, अन्वेषकों को वैदिक वाङ्मय में ही दिखाई देते हैं। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के विख्यात निर्माता डॉ श्रीधर व्यकटेश केतकर, ज्ञानकोष की अपनी प्रस्तावना में, वेदों का महत्त्व वर्णन करते हुए कहते हैं, "वेद सब विद्याओं का उद्‌गम स्थान है इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। अपने (भारतीय) तथा अनेक यूरोपीयों के सामान्य पूर्वजों के प्राचीनतम स्थितिबोधक वाङ्मयान्तर्गत अवशेष के नाते से, वेदों को विश्व के वाङ्मयीन इतिहास मे अग्रस्थान देना आवश्यक है, यह बात यूरोपीय पडितों ने भी मान्य की है। हजारों वर्षों से कोटि कोटि भारतीय लोग वेदाक्षरो को ईश्वरी वाणी मानते आए हैं। भारतीय वाङ्मय मे वेद ही प्राचीनतम होने के कारण, भारतीयों का आध्यात्मिक जीवनक्रम और उनकी सस्कृति का यथार्थ ज्ञान, वैदिक वाङ्मय का अध्ययन किये बिना प्राप्त नहीं होगा। उसी प्रकार वेदकालीन परिस्थिति ठीक समझे बिना एव पूर्वस्थितिबोधक वाङ्मयान्तर्गत अवशेष समझे बिना, अपने पूर्वजों की जानकारी हमे नही होगी, यह जानकर वेदो के विषय मे पूज्यबुद्धि धारण करना अपना कर्तव्य है। यूरोपीय विद्वान भी इस तथ्य को समझ गए है। चीन, जापान के पडितों को भी वेदाभ्यास की आवश्यकता है, क्यो कि बौद्ध सम्प्रदाय की जन्मभूमि हिंदुस्थान ही होने के कारण, वेदो की जानकारी के अभाव मे, उस सम्प्रदाय का रहस्यज्ञान याने इतिहाससहित ज्ञान, यथार्थतया प्राप्त होना असभव होगा। नए विद्वानो को पुराना ज्ञान होना आवश्यक है। पश्चिम के इसाई विद्वानों को "पुराना करार" (ओल्ड टेस्टामेंट) समझे बिना "नया करार" (न्यू टेस्टामेट) नहीं समझ मे आ सकता। उसी प्रकार वेदकालीन धर्म और वेदोक्त तत्त्वों को ठीक समझे बिना, किस परिस्थिति मे, नवीन मतो एव धर्मों का उद्‌गम हुआ यह समझ में आना असभव है।"

वेदो के प्राचीन और अर्वाचीन अभ्यासको के मतो का सारसर्वस्व, ज्ञानकोशकार डॉ केतकर जी के वेदविषयक प्रस्तुत प्रतिपादन मे अन्तर्भूत हुआ है। अत वेदो की महिमा के विषय मे अधिक प्रतिपादन करने की आवश्यकता इस प्रकरण में नहीं है।

वेदो के विषय में हिंदू समाज मे अतिप्राचीन काल से आत्यतिक श्रद्धा धधकती रही है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, परमात्मा के निश्वास हैं, (अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदो अथर्वांगिरस)। मनुस्मृति में कहा है कि "वेद सर्व ज्ञानमय है (सर्वज्ञानमयो हि स।) और सपूर्ण वेद, धर्म का मूल है (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्) । वेदो की निन्दा करने वालों के प्रति "नास्तिक" शब्द से तिरस्कार व्यक्त किया जाता था- (नास्तिको वेदनिन्दक)।

वेद का लक्षण अन्यान्य विद्वानों द्वारा विविध प्रकार से बताया गया है। वेदों के विख्यात भाष्यकार सायणाचार्य, "अपौरुषेय वाक्य वेद" याने अपोरुषेय वाक्य को वेद कहते हैं, इस प्रकार "वेद" की व्याख्या करते हैं। आगे चल कर सायणाचार्य कहते है कि, "जिस विषय का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा नहीं हो सकता, उस विषय ज्ञान, वेद द्वारा हो सकता है, इसी मे वेद की वेदता है।-

(प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते। एत विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता।।)

अन्यत्र वे कहते है, कि "इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का परिहार करने का अलौकिक उपाय जिसके द्वारा बताया जाता है, उसे वेद कहते है- (इष्टप्राप्ति-अनिष्टपरिहारयो अलौकिकम् उपायम् वेदयते स वेद ।

आधुनिक काल मे आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द ने "विद्" - धातु के सारे अर्थ ध्यान मे लेते हुए वेद का लक्षण बताया है- "विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्दन्ति विदन्ते सर्वा सत्यविद्या· यै यत्र वा स वेद।" याने जिसके सहाय मे अथवा जिसके अन्तर्गत, सभी सत्य विद्याओ का ज्ञान प्राप्त होता है उसे वेद कहते हैं।

वेदो के प्रति इतनी उत्कट भक्ति भारतीय समाज मे अति प्राचीन काल से दृढतापूर्वक रही अत उसके अविकृत रक्षण का अद्‌भुत कार्य इस समाज के विद्यानिष्ठ लोगो ने किया। अविकृत विशुद्ध स्वरूप में संरक्षित वेदो के समान दूसरा कोई भी प्राचीनतम ज्ञाननिधि आज ससार मे नहीं है। विशेष आश्चर्य याने यह सारी महान् ज्ञानराशि वैदिको ने कण्ठस्थ करते हुए सुरक्षित रखी। इसके लिए अष्ट "विकृति" युक्त वेदपठन की अद्‌भुत पद्धति उन्होने चालू की।

"जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घन।" अष्टौ विकृतय प्रोक्ता क्रमपूर्वा· महर्षिभि ।।

इस श्लोक मे उन आठ विकृतियो याने पद्धतियो का यथाक्रम नामनिर्देश किया है। पठन की इस पद्धति के कारण ही

वेदों में विकृतता निर्माण नही हुई। वेदो का रक्षण एव वेदार्थ की मीमांसा के उद्देश्य से "अनुक्रमणी" नामक सूची ग्रथो की रचना हुई। इसके द्वारा किसी भी मत्र के ऋषि, देवता और छद का पता मिलता है। शौनक की अनुवाकानुक्रमणी और कात्यायन की सर्वानुक्रमणी ग्रथ प्रसिद्ध है। माधवभट्ट ने भी दो सर्वानुक्रमणिया लिखीं। यजुर्वेद की शुक्लयजु सर्वानुक्रमणी, अथर्ववेद की बृहत्सर्वानुक्रमणी और सामवेद की अनेक अनुक्रमणिया विद्यमान है।

वेदो की उत्पत्ति के विषय मे प्राचीन ग्रथों मे एकवाक्यता नहीं दिखाई देती। एक मत है कि वेद परमात्मा के मुख से निकले शब्द हैं। पुराणवाङ्मय में इसी दृष्टि से आविर्भूत, विनि सृत उत्सृष्ट आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है। परपरा के अनुसार ब्रह्मा के चार मुखो से चार वेदों का निर्माण माना जाता है। ब्रह्मा को ही प्रजापति कहा गया है। उनका हुकार प्रथम ऋषियो ने सुना इसलिये उसे "श्रुति' कहा गया। वेद शब्दरूप होने से आकाश से उत्पन्न हुए, यह भी एक मत है। शब्द, आकाश का ही गुण है। हृदयाकाश या चिदाकाश से जो दिव्य वाणी प्रकट हुई, वही वेद कहलाई। यह वाणी तपस्या मे निमग्न ऋषियों के अत करण मे प्रकट हुई - इसी कारण वेदों की स्फूर्ति जिन ऋषियो को हुई, वे मत्रो के द्रष्टा थे (रचयिता नहीं) यह माना जाता है।

विष्णुपुराण मे वेदो का प्रवर्तन विष्णु भगवान द्वारा कहा है। अन्य पुराणो मे यह भी उल्लेख है कि वेद की प्राप्ति वामदेव याने शिव से हुई। शिव के जो पाच मुख हैं, उनमे एक वामदेव है। ऋक्, यजुस्, साम का मूलस्थान भी रूद्र ही है।

कई पुराणो मे, वेदों की निर्मिति ओकार या प्रणव मे मानी गई है। शिवपुराण (7, 6, 27) के अनुसार अ, उ, म और सूक्ष्म नाद से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एव अथर्ववेद निर्माण हुए। भगवद्गीता (7, 8) के अनुसार सारा वाङ्मय ही ओकार से निर्मित है। महाभारत मे भी कहा गया है कि पहले वेद एक मात्र था। वह ओकारस्वरूप था। देवीमाहात्म्य मे देवी को यह श्रेय दिया गया है। मत्स्यपुराण मे गायत्री को वेदमाता माना गया है। कुछ पुराणो मे सूर्य से वेदो की उत्पत्ति कही गई है।

प्रारंभिक अवस्था मे वेद एकमात्र था। भगवान व्यास ऋषि ने यज्ञविधि के अनुसार उस का चार भागो मे विभाजन किया। इसी कारण उन्हे "वेदव्यास" (याने वेदो का विभाजन अथवा विस्तार करने वाले) कहते है। चारो वेदो का मण्डल, अष्टक, वर्ग, सूक्त, अनुवाक, खण्ड, काण्ड, प्रश्न, छद इत्यादि विविध प्रकारो से वर्गीकरण किया गया। गद्य और पद्य भाग के प्रत्येक अक्षर का परिगणन हुआ। सब प्रकार के धार्मिक कर्मों म वेदमत्रो का यथोचित विनियोग कर, वैदिक हिंदुओ ने वेदो को अपनी जीवनपद्धति मे महत्वपूर्ण स्थान दिया।

संहिता और ब्राह्मण

"मन्त्र-ब्राह्मणयो वेदनामधेयम्" इस वचन के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण स्वरूप वाङ्मय को वेद कहते है। मन्त्रो के समुच्चय को "सहिता' कहते है। अर्थात् सहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ मिलाकर वेदवाङ्मय होता है। "ब्राह्मण" - नामक ग्रन्थो मे सहिता के मन्त्रो का सविस्तर विवरण किया गया है। यज्ञयागों का सविस्तर प्रतिपादन यही ब्राह्मण ग्रन्थो का मुख्य उद्देश्य है और उसी दृष्टि से उनमें वेदो का विवरण किया है।

ब्राह्मण ग्रथो के तीन विभाग होते है- (1) ब्राह्मण, (2) आरण्यक और (3) उपनिषद्। इस प्रकार सपूर्ण वैदिक वाङ्मय मे (1) मत्र सहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक और (4) उपनिषद् इनका मुख्यत अन्तर्भाव होता है।

प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से वेदो के दो विभाग माने जाते है - (1) कर्मकाण्ड और (2) ज्ञानकाण्ड। सहिता, ब्राह्मण और अशत आरण्यक इनमें प्रमुखतया वैदिक कर्मकाण्ड का और उपनिषदो मे केवल ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन मिलता है।

इस चतुर्विध वैदिक वाङ्मय का मानवी जीवन के, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमो से सबध जोडा जाता है। ब्रह्मचर्याश्रम मे संहिताओ का पठन, गृहस्थाश्रम मे, ब्राह्मण ग्रन्थानुसार यज्ञ-यागादि कर्मो का आचरण, वानप्रस्थाश्रम मे अरण्यवास करते हुए, आरण्यको के अध्ययन द्वारा यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का आकलन और सन्यास आश्रम मे कर्मकाण्ड का परित्याग कर उपनिषदो का श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करते हुए, परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति, इस प्रकार चतुर्विध वेदवाङ्मय का जीवन की चतुर्विध अवस्थाओ से वैदिको ने सबध जोडा था।

श्रीशंकराचार्य के अनुसार, वैदिक धर्म प्रवृत्तिपर और निवृत्तिपर माना हुआ है। (द्विविधो हि वैदिको धर्म प्रवृत्तिलक्षण निवृत्तिलक्षण च) वैदिक वाङ्मय की सहिता और ब्राह्मणो का प्रवृत्तिपर धर्म से ओर आरण्यक (अशत) तथा उपनिषदो का निवृत्तिपर धर्म से सबध माना गया है।

प्रस्थानत्रयी

उपनिषद् वाङ्मय, वेदो का अन्तिम भाग होने के कारण, उसे 'वेदान्त' भी कहते है। बादरायण व्यास ऋषि ने उपनिषदो को व्यवस्थित रूप देने के लिए ब्रह्मसूत्र अथवा शारीरक सूत्रो की रचना की। श्रीमद्भगवद्गीता में भी (ब्रह्मसूत्रो के समान) उपनिषदो का सार-सर्वस्व समाविष्ट होने के कारण, वेदान्त वाङ्मय मे उपनिषदो के साथ ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता का भी अन्तर्भाव होता है

और उन तीनो को मिलाकर "प्रस्थानत्रयी" कहते हैं। अर्थात् वैदिक धर्म का सपूर्ण स्वरूप यथार्थतया समझने के लिए संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदो के साथ ही ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता का भी अध्ययन नितान्त आवश्यक है। संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक (अशत) प्रवृत्तिपर वैदिक धर्म की प्रस्थानत्रयी है और उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और गीता निवृत्तिपर वैदिक धर्म की प्रस्थानत्रयी है। ऋक्सहिता, यजु सहिता और सामसहिता को मिलाकर "त्रयी" कहते है।

2 ऋग्वेद संहिता

प्रसिद्ध ज्योति शास्त्रज्ञ वराहमिहिर कहते है कि, "वेदो हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता" - अर्थात् वेदों की निर्मिति परमात्मा ने यज्ञों के लिए ही की है। यज्ञविधि में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा नामक चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है और उन चारो का ऋग्, यजुस्, साम और अथर्व वेद से यथाक्रम सबध रहता है।

यज्ञविधि के समय विशिष्ट देवताओ का प्रशसापर मन्त्रो व्दारा आवाहन करनेवाले ऋत्विक् को "होता" कहते हैं। देवताओ के आवाहन के निमित्त आवश्यक मन्त्रो का सकलन जिस सहिता में हुआ है वही है ऋक्सहिता अथवा ऋग्वेद। "ऋच्यते-स्तूयते प्रतिपाद्य अर्थ यथा सा ऋक्" - याने जिस मन्त्र द्वारा प्रतिपाद्य विषय का स्तवन किया जाता है उसे "ऋक्" कहते है। इन ऋचाओं का समूह याने ऋग्वेद - (ऋचा समूहो ऋग्वेद ।) ऋग्वेद सहिता में सभी मन्त्र पादबद्ध अथवा छन्दोबद्ध होते है।

इस ऋग्वेद का सूक्त और मण्डल रूप मे विभाजन शाकल ऋषि ने किया। "सूक्त" याने जिन मन्त्रो में ऋषि की कामना सपूर्णतया व्यक्त होती है ऐसा मन्त्रात्मक स्तोत्र- (सपूर्णऋषिकाम तु सूक्तमित्यभिधीयते। - बृहद्देवता)

वैदिक सूक्त चार प्रकार के होते हैं **(1) ऋषिसूक्त** - अर्थात एक ही ऋषि के मत्रो का समूह। **(2) देवतासूक्त** - अर्थात् एक ही देवता की स्तुति का मन्त्रसमूह। **(3) अर्थसूक्त** - अर्थात् एक विशिष्ट अर्थ की समाप्ति तक के मत्रो का समूह। और **(4) छन्दःसूक्त** - अर्थात् समान छन्द के मत्रो का समूह।

ऋग्वेद का विभाजन और भी दो प्रकार से किया गया है (1) मण्डल, अनुवाक् एव सूक्त और (2) अष्टक, अध्याय, वर्ग। सपूर्ण ऋग्वेद सहिता मे 10 मण्डल, 85 अनुवाक् और 1017 सूक्त है। अथवा 8 अष्टक, 64 अध्याय और 208 वर्ग विद्यमान है। सारे मत्र 15 छदो मे रचित हैं जिनमें गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पक्ति, बृहती और जगती प्रमुख माने जाते है। सपूर्ण मत्रो की सख्या है 10580 शब्दो की सख्या है 1,53,826 और अक्षरो की सख्या 4,32,000 है। ऋग्वेद का प्रारभ अग्निसूक्त से और अत मज्ञानसूक्त से होता है।

ऋग्वेद के द्रष्टा

ऋग्वेद मे अनेक ऋषियो का निर्देश हुआ है। भारतीय परपरा के अनुसार ऋषि मत्रो के "द्रष्टा" हैं, रचयिता नहीं [ऋषयो मन्त्रद्रष्टार । ऋषिर्दर्शनात् (यास्काचार्य)] ऋग्वेद के ऋषिगण अन्यान्य कुटुबो से सबधित हैं। केवल प्रथम और दशम मण्डल मे अन्यान्य परिवार के ऋषि के मत्र सगृहीत किए हुए हैं।

आठवे मण्डल मे कण्व और अगिरा ऋषि के मत्र हैं। इस मण्डल मे "प्रगाथ"- नामक छद का प्राधान्य होने के कारण, इस मण्डल के ऋषियो को "प्रगाथ" कहते हैं।

नवम मण्डल में सोमविषयक मत्रो का सग्रह है। सोम को "पवमान" याने पावन करनेवाला कहते हैं। अत इस मण्डल को "पवमान मण्डल" कहते हैं।

दशम मण्डल मे अन्यान्य कुलो के ऋषियो के मत्रो का सग्रह है। इस मण्डल में केवल देवतास्तुति के अतिरिक्त अन्य विषयो का भी समावेश हुआ है। द्वितीय मण्डल से सप्तम मण्डल तक एक एक कुल के ही ऋषियो मे मन्त्रो का सग्रह है। जैसे - मण्डल 2-गृत्समद्। 3-विश्वामित्र। 4-वामदेव। 5-अत्रि। 6-भारद्वाज। 7-वसिष्ठ।

कुछ अन्वेषको के मतानुसार ऋग्वेद का दशम मण्डल उत्तरकालीन माना जाता है। पहले और दसवे मण्डल के सूक्तो की सख्या प्रत्येकश 191 है।

व्यासकृत चरणव्यूह नामक ग्रथ मे (जिस पर महीदास की महत्त्वपूर्ण टीका उपलब्ध है) ऋग्वेद की पाच शाखाए बताई हैं - (1) शाकल, (2) बाष्कल, (3) आश्वलायन, (4) शाखायनी और (5) माण्डूकेयी। इनमे से आज शाकल और बाष्कल शाखा की ही सहिता उपलब्ध है।

ऋग्वेद सहिता निर्माण होने के पश्चात् उसे शुद्ध स्वरूप में सुरक्षित रखने के लिए तथा अर्थज्ञान के लिए उसका "पदपाठ" तैयार करने का कार्य शाकल्य ऋषि ने किया। शाकल्य का समय, निरुक्तकार यास्क (ई 3 शती) और ऋक्प्रातिशाख्यकार शोनक (ईसा पूर्व) से भी प्राचीन माना जाता है। इस का कारण यही है कि, यास्काचार्य ने शाकल्य के वचन उद्धृत किए हैं और ऋक्प्रातिशाख्य की रचना शाकल्य के पदपाठ पर ही आधारित है।

ऋग्वेद के सूक्तों में मन्त्रों की सख्या 3 से 58 तक है। तथापि सामान्यत प्रत्येक सूक्त की मत्रसख्या 10 से 13 तक दिखाई देती है।

ऋग्वेदी परंपरा

भगवान व्यास के ऋग्वेदी शिष्य पैल ऋषि ने अपनी संहिता के दो विभाग कर, एक बाष्कल को और दूसरी इन्द्रप्रमिति को पढाई। बाष्कल की शाखा में बाध्य, अग्निमाठर, पराशर और जातुकर्ण्य इत्यादि शिष्य-परंपरा निर्माण हुई। इन्द्रप्रमिति की शाखा में, माण्डूकेय, सत्यश्रवा, सत्यहित, सायश्रिय, देवमित्र, शाकल्य, रथीतर, शाकपूणि, बाष्कली, भारद्वाज इत्यादि शिष्य-परपरा निर्माण हुई। इन में देवमित्र और शाकल्य ने शिष्य परपरा का अधिक विस्तार किया।

ऋग्वेद की 21 शाखाओ में शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शाखायन और माण्डूकेय यह पाच शाखाए प्रमुख मानी जाती हैं। तथापि उनमें केवल शाकल शाखा की संहिता आज उपलब्ध है और उसी का सर्वत्र अध्ययन होता है। शाखायन शाखा की संहिता उपलब्ध नहीं है (कहते हैं कि पांडुलिपि विद्यमान है।) तथापि शाखायन शाखीय ब्राह्मण, आरण्यक और कल्पसूत्र (श्रौत और गृह्य) उपलब्ध हैं। उसी प्रकार शाखायनों के (शाखायन, कौषीतकी, महाकौषीतकी और शावध्य नामक) चार विभागों में से, केवल कौषीतकी शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र और कल्पग्रथ उपलब्ध हैं।

3 वेदकाल

पाश्चात्य विद्वानों ने अन्यान्य प्रमाणों के आधार पर वेद संहिताओ की रचना का काल निर्धारित करने के जो प्रयास किए वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं। परतु इस विषय मे आज तक विद्वानों मे एकवाक्यता नहीं हो सकी और आगे चलकर वह होने की सभावना भी नहीं है। भारतीय प्राचीन परंपरा के अनुसार वेद के आविर्भाव का कालनिर्णय करना असभव माना गया है। इतिहासज्ञों के मतानुसार वेद ससार की आद्य ज्ञानराशि मानी गयी है। उसकी निर्मिति के विषय में इसा पूर्व 1000 से 75000 वर्षों तक का काल निर्धारित करने वाले गतभेद प्रसिद्ध हैं। इस विषय मे विद्वानों के मत निम्न प्रकार हैं।

प्रो मैक्समूलर	ईसापूर्व	13 वीं सदी	प्रो लुडविग्	ईसापूर्व	45 से 60 वीं सदी
प्रो मैकडोनेल	ईसापूर्व	13 वीं सदी	प्रो हाग्	ईसापूर्व	45 से 60 वीं सदी
प्रो वेबर	ईसापूर्व	15 से 12 वीं सदी	लोकमान्य तिलक	ईसापूर्व	45 से 60 वीं सदी
प्रो व्हिटनी	ईसापूर्व	20 से 15 वीं सदी	श्री शकर बालकृष्ण पावगी	ईसापूर्व	70 वीं सदी
प्रो केजी	ईसापूर्व	20 वीं सदी	श्री अविनाशचद्र दास	ईसापूर्व	250 से 750 वी सदी
प्रो याकोबी	ईसापूर्व	45 से 60 वी सदी			

वेदकाल के विषय मे इन विद्वानों ने अपना मत प्रतिपादन करने के लिए जो विविध युक्तिवाद या तर्क प्रस्तुत किए, उनका साराश इस प्रकार कहा जा सकता है -

प्रो मैक्समूलर का कहना है कि, बौद्ध धर्म का उद्‌गम ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया मे अर्थात् वैदिक धर्ममतो का विरोध और खडन करने के लिए ही हुआ। अर्थात् बौद्ध धर्म के उद्‌गम (ईसापूर्व 500) के पहले सपूर्ण वैदिक वाङ्मय मे सूत्र, ब्राह्मण और सहिता की रचना का काल प्रो मैक्समूलर ने सामान्य तर्क के आधार पर इस प्रकार निर्धारित किया है -

सूत्रकाल - इ पू 600 से 200 तक। ब्राह्मणकाल - इ पृ 800 से 600 तक। सहिताकाल - इ पू 1000 से 800 तक।

काव्यविकास के लिए सामान्यत दो सौ वर्षों का समय लगता है इस कारण वैदिक साहित्य का आरभ ईसा पूर्व 1200 से 1000 वर्षों तक ही मानना योग्य होगा ऐसा मैक्समूलर के प्रतिपादन का सार है।

प्रो. याकोबी और लोकमान्य तिलक

सन 1893 मे जर्मनी के बॉन शहर में प्रो याकोबी और महाराष्ट्र के पुणे शहर मे लोकमान्य तिलक, जिन दोनों का परस्पर कोई सपर्क या सबध नही था, वेदकाल के विषय में अन्वेषण कर रहे थे। दोनों की कालनिर्धारण की पद्धति अलग अलग थी, परतु दोनों का निष्कर्ष एक समान निकल आया। उनके प्रतिपादन का सक्षेप इस प्रकार कहा जा सकता है :—

ब्राह्मण काल मे नक्षत्रो की गणना कृतिका से होती थी। वेदों में उन्हें एक वर्ण मिला, जिस में कहा है कि कृत्तिकाओं के उदय काल में ''वासन्ती सक्रान्ति'' (व्हर्नल एक्विनॉक्स) भी हो रही थी। ग्रहगति की गणना के आधार पर इन विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला कि, ईसापूर्व सन 2500 में कृत्तिका नक्षत्र के उदयकाल पर, ''वासन्ती सक्रान्ति'' होना सभव है, अर्थात ब्राह्मण ग्रंथों का रचनाकाल वही होने की सभावना है।

वैदिक सहिता में उन्हें और एक ऐसा वर्णन मिला कि जिसके अनुसार मृगशिरा नक्षत्र में वासन्ती सक्रान्ति हो रही थी। अयनगति की गणना के अनुसार सृष्टिचक्र में यह अवस्था ईसापूर्व सन 4500 में हो सकती है। अर्थात् यही सहिता की रचना का काल होना सभव है।

लोकमान्य तिलक और याकोबी इन दोनो पडितो ने ज्योतिषशास्त्र के आधार पर सहिता और ब्राह्मण ग्रथो की रचना का समय निर्धारित किया है, फिर भी दोनो के प्रतिपादन मे अतर है। याकोबी ईसापूर्व 4500 से 2500 तक सहिताकाल मानते हैं और इस काल के उत्तरार्ध मे सहिताओ की रचना मानते हैं। जब कि लोकमान्य तिलक ईसापूर्व 4500 से 2500 वर्ष पीछे जाकर, ईसापूर्व 6000 में सहिता की निर्मिति मानते हैं। पाश्चात्य और भारतीय विद्वानो की वेदकालनिर्णय के विषय मे दृष्टि किस प्रकार की थी इस की कल्पना इस उदाहरण से ठीक समझ मे आ सकती है।

विटरनिट्झ का मत

ज्योतिष ओर भूगर्भशास्त्र के आधार पर वेदो का काल ई पू 6000 अथवा 2500 मानना विटरनिट्झ योग्य नहीं समझते। वे ब्राह्मण ग्रथो के आधार पर पाणिनि ने अपन व्याकरण मे निर्धारित की हुई सस्कृत भाषा और अशोक के शिलालेखों की (इ स 300) भाषा, इनका वैदिक भाषा मे साम्य ध्यान मे लेकर, ऋग्वेद का समय इसी (याकोबी और तिलक द्वारा निर्धारित) कालखड म सभवनीय मानते है।

शिलालेखो का अध्ययन करनेवाले विद्वानो ने यह मत प्रतिपादन किया है कि ई पू 300 तक दक्षिण भारत में आर्यो का तथाकथित ब्राह्मणधर्म दृढमूल हो चुका था। बोधायन और आपस्तब इत्यादि वैदिक शाखाओ का प्रचार भी इस इस समय तक दक्षिण मे हो गया था। अर्थात् उत्तर म दक्षिण की ओर प्रगति करने वाले आर्यो का दक्षिणदिग्विजय (जिसे अनेक विद्वान सर्वथा काल्पनिक और अनैतिहासिक मानत हैं) ई पू 700-800 तक पूर्ण हो चुका होगा। विजय पाने पर धर्मप्रचार करने मे काफी अवधि लगती है। अत ई पू 300 आर्यो के दक्षिण-दिग्विजय का काल मानना उचित नहीं होगा। ई पू 300 आर्यो के दक्षिण मे पहुच होगे तो, भारत के उत्तर मे और अफगानिस्तान मे उनका वास्तव्य ई पू 1200 से 1500 की अवधि में रहा होगा। इसी समय के पूर्व सिधु नदी क किनारे पर वेदो की रचना होना सभव है।

जे हर्टल नामक विद्वान, ऋग्वेद की रचना भारत की वायव्य दिशा मे नही मानते। वे झरतुष्ट (इ पू 500) के बाद मे ईरान मे वेदो की रचना मानते थे।

प्रा बूलर, पाच-सातसा वर्षो की अल्पावधि मे आर्यो का अखिल भारतीय दिग्विजय सभवनीय नहीं मानते परतु ओल्डेनबर्ग उसे सभाव्य मानते हैं।

प्रो जी ह्यूसिग ने कूनीफार्म शिलालेख के कुछ नामो का ऐसा कुछ रूपातर किया है कि जिस कारण वे नाम भारतीय नामो से मेल खाते हैं। उन नामो के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि आर्य लोग ई पू 1000 के आगे-पीछे आर्मिनिया से अफगानिस्थान मे आए होगे और वही उन्होंने वेदो की रचना की होगी, क्यो कि वेदो मे वर्णित कुछ प्राकृतिक वर्णन अफगानिस्तान के प्राकृतिक दृश्यो से मेल खाते है।

बोधाझकोई का इष्टिकालेख

1907 मे एशिया मायनर के बोधाझकोई नामक स्थान मे, ह्यूगो विकलर नामक अन्वेषक को, एक इष्टिकालेख प्राप्त हुआ। लेख का सबध हिट्टाइट और मिट्टानी के राजाओ मे हुई सधि से है। यह घटना ई पू 14 वी शताब्दी की मानी गई है। लेख में सधि के सरक्षक देवताओ की नामावलि मे बाबिलोनी और हिट्टाइट की देवताओं के नामो के साथ मित्र, वरुण, इद्र और नासत्यौ इन मिटानी (अथवा मितनी) देवताओ के नामो का निर्देश और कुछ भारतीय पद्धति के सख्या चित्र भी मिलते हैं। इन वैदिक देवताओ के नामो के कारण इस इष्टकालेख लेख को वैदिक अन्वेषको की दृष्टि से असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ एडवर्ड मेयर कहते है कि जिस कालखड मे भारतीय और ईरानी समाजो की भाषा और धर्मप्रणाली अविभक्त थी उस काल मे मेसोपोटेमिया और सीरिया इन प्रदेशो मे आर्यो का प्रवेश हो चुका था। इसी काल मे आर्य लोग भारत के वायव्य प्रदेश मे वास्तव्य करने लगे थे। इसी कारण ई पूर्व 14 वीं शती के बोधाझकोई इष्टकालेख मे मित्र, वरुण, इद्र नासत्यौ इन वैदिक देवताओ का नामोल्लेख मिलता है। एवम् आर्यो की ईरान से अफगानिस्थान द्वारा सिधु नदी की दिशा से होनेवाली प्रगति और वेदो मे उपलब्ध सप्तसिधु प्रदेश का वर्णन इन दो बातो का समन्वय करते हुए कुछ विद्वानों ने वेदरचना का काल ई पू 1400 पहले का माना है।

बोधाझकोई के सदर्भ मे एक स्वाभाविक शका यह है कि मूलत भारतवासी आर्य लोग दिग्विजय अथवा वैवाहिक सबधों के कारण, पश्चिम की ओर आगे बढे होगे और ई पू 14 वी शताब्दी मे बोधाझकोई की घटना मे अपनी इष्ट देवताओं के नाम सन्धिलेख मे उन्होंने प्रविष्ट किए होगे। पाश्चात्य मतानुयायी विद्वानो को यह सयुक्तिक शका एक चुनौती है और उसका निरसन करना उनके लिए कठिन है।

वेबर के मतानुसार ई पू 16 वी शताब्दी मे ईरान के आस पास रहनेवाले लोगो के समूह ने भारत की ओर प्रस्थान

किया। सिधु नदी के तट पर निवास करते समय इस समूह के विद्वानो ने वैदिक ऋचाओं की रचना की। उन ऋचाओं के सग्रह को ही ऋग्वेद कहते हैं।

मत्र, ब्राह्मण और सूत्र इनकी निर्मिति का मॅक्समूलर के माने हुए सूत्रकाल (ई. पू 1200-1000) के बारे मे व्हिटनी का मतभेद है। छदों का काल व्हिटनी के मतानुसार ई पू 2000 से 1500 तक माना गया है। प्रो केणी ने व्हिटनी के मत को अपनी अनुमति दी है।

प्रो. हाग ने वेदाग ज्योतिष के आधार पर वेदकाल का निर्णय करने का प्रयत्न किया है। अपने अध्ययन से प्रो हाग ने यह निष्कर्ष निकाला है कि, ई पू 12 वी शताब्दी के पहले भारतीयो का ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान इतना अधिक प्रगत हुआ था कि (1) वे नक्षत्र-तारकाओ के विषय मे सूक्ष्म निरीक्षण कर सकते थे। (2) ब्राह्मण ग्रथो मे प्राय सभी क्रिया कर्मों का समावेश हो चुका था। हाग के मतानुसार ब्राह्मणो की रचना का समय ई पू 1400 से 1200 तक और सहिताओ की रचना का काल ई पू 2000 से 1400 तक निर्धारित हुआ है। तथापि कुछ ऋचाओ एव यज्ञविधि मे मत्रों का काल इस के कई शतक पहले हो सकता है। तात्पर्य वैदिक साहित्य का प्रारभ काल ई पू 24 वीं शताब्दी मानने मे प्रत्यवाय नही होना चाहिए। सभवत यही ऋग्वेद का प्रारभ काल था।

"चत्वारींति वा अन्यानि नक्षत्राणि अर्थत एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्वादधीत एता ह वै प्राचो दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्चवन्ते" इस मत्र के आधार पर ऋग्वेद का समय निर्धारित करने का प्रयत्न ज्योतिर्विदों ने किया है। प्रस्तुत मत्र मे कहा है कि, अन्य सारे नक्षत्र पूर्व दिशा की ओर जाते है, परतु कृत्तिका नक्षत्रपुज पूर्व की ओर नही जाता। शतपथ ब्राह्मण के इस वर्णन के अनुसार कृत्तिका नक्षत्र की स्थिति ई पू 3000 के समय हो सकती है। अत वही कृत्तिका नक्षत्र का काल हो सकता है। तैत्तिरीय सहिता, शतपथ से पूर्वकालीन होने के कारण, उसका समय शतपथ से दो सौ वर्ष पूर्व माना जा सकता है। तात्पर्यत ऋग्वेद सहिता ई पू 3200 से भी पूर्वकालीन होनी चाहिए।

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक का सास्कृतिक कार्य उनके राजनैतिक कार्य जैसा ही महान था। प्राचीन सस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में उनका योगदान अनेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने सपूर्ण सस्कृत वाङ्मय में यत्र तत्र उपलब्ध ज्योति शास्त्र विषयक निर्देशो के आधार पर वैदिक वाङ्मय की निर्मिति के चार विभाग किये है

(1) मृगशीर्ष-पूर्व काल (प्री-ओरायन पीरियड)-ई पू 6000 से 4000

(2) मृगशीर्षकाल-(ओरायन पीरियड) ई पू 4000 से 2500

(3) कृत्तिकाकाल-ई पू 2500 से 1400

(4) सूत्रकाल-ई पू 1400 से 500

अपने "ओरायन" (मृगशीर्ष) नामक पाण्डित्यपूर्ण ग्रथ की प्रस्तावना मे लोकमान्यजी ने, वेदकाल विषयक अपना मत-प्रतिपादन स्पष्टतया किया है। वे कहते है कि "ऋग्वेद मे निर्देशित परपरा जिस जिस काल का सकेत करती है, वह काल ई पू 4000 के बाद का नही है। यह काल याने, जब वसत सपात मृगशीर्ष में होता था, अर्थात् मृगशीर्ष से विषुवीय वर्ष का प्रारभ होता था।

ऋग्वेद का यही काल जर्मन पडित प्रो कायाकोबीने ने भी निर्धारित किया है। उन्होंने अपना निष्कर्ष, ऋग्वेद से आधुनिक काल तक, ऋतु चक्र मे जो क्रमश परिवर्तन हुए, उसके आधार पर किया है।

डा रामकृष्ण गोपाल भाडारकर ने वेदो मे प्रयुक्त "असुर" शब्द का "असिरीयन्" शब्द से साम्य दिखाते हुए ई पू 2500 तक वेद-रचना का काल निश्चित किया है।

अथर्ववेद का काल

अर्थववेद का नाम-निर्देश ऋग्वेदीय शाखायन तथा आश्वालायन श्रौत सूत्रो मे, कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय ब्राह्मण में, शुक्ल यजुर्वेदी शतपथ ब्राह्मण में और पतजलि के व्याकरण महाभाष्य में मिलता है। इन ब्राह्मण ग्रथो ने वेदत्रयी से इस चतुर्थवेद का सबध जोडा है और इसे त्रयी का "शुक्र" अर्थात रहस्य माना है। इसका प्रमुख कारण यह है कि, इस में तीनों वेदो के मत्र सगृहीत हुए है।

भाषा की दृष्टि मे ऋग्वेदीय मत्रों का अश छोड कर, अन्य मत्रो की भाषा में, भाषाशास्त्रज्ञो की दृष्टि से अपनी कुछ निजी विशेषता मानी जाती है। तथापि केवल उसी एक प्रमाण के आधार पर इस सहिता की रचना का काल निश्चित करना कठिन है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद मे कुछ भौगोलिक और सास्कृतिक चित्रण अनोखा सा मिलता है। जैसे ऋग्वेद में चित्रक (चीता) का उल्लेख नहीं है, परतु अथर्ववेद मे उस वन्य प्राणी का उल्लेख आता है। यह प्राणी बगाल मे अधिक सख्या में दिखता है अत अथर्ववेद का सबध उस प्रदेश से माना जा सकता है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद मे चार वर्णो का नामोल्लेख है परतु अथर्ववेद मे ब्राह्मण का श्रेष्ठत्व (जो ऋग्वेद में नहीं मिलता) बताया गया है। अथर्ववेद मे ब्राह्मण को "भूदेव" माना गया है और उसे पौरोहित्य का अधिकार है।

ऋग्वेद मे जिन देवताओं का स्वरूप प्राकृतिक दृश्यों सा है, उनका दर्शन अथर्ववेद मे आसुरी और विनाशक स्वरूप मे होता है।

इस प्रकार के कुछ प्रमाणो के आधार पर अथर्ववेद का उत्तरकालीनत्व सिद्ध किया जाता है परतु ऋग्वेद में अथर्वा का निर्देश देख कर दोनो वेदो के समकालीनत्व का भी तर्क किया जाता है। तथापि ऋग्वेदीय देवताओ का स्वरूप प्राकृतिक शक्ति जैसा है और ऋषियो द्वारा उनकी भक्तिपूर्ण स्तुति की जाती है। वे देवता मानवों की इच्छापूर्ति करते हैं, इसलिए उन्हें बलिभाग अर्पण कर प्रसन्न किया जाता है। इसके विरुद्ध अथर्ववेद मे उन देवताओ का पैशाचिक स्वरूप और मानवों पर आपत्ति लाने की उनकी वृत्ति देख कर, आभिचारिक पुरोहित अभिचार मत्रो के प्रयोग से उन्हे दूर हटाने का और क्वचित् प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। समकालीन मानी गई सहिताओ मे दिखनेवाली यह भिन्नस्वरूप विचारधारा चिन्तनीय है।

4 यजुर्वेद संहिता

यज्ञविधि मे दूसरे ऋत्विक् को अध्वर्यु कहते हैं। यज्ञ का सारा क्रियात्मक अनुष्ठान अध्वर्यु द्वारा ही होता है। यह अध्वर्यु जिस वेद के मत्रो का प्रयोग करता है, वह है यजुर्वेद। अत यजुर्वेद को ही अध्वर्युवेद कहते हैं। यजुर्वेद के मन्त्र प्रधानतया गद्यात्मक है। (गद्यात्मका यजु)। अथवा जिन मन्त्रो के अक्षरो का अन्त अनिश्चित होता है उसे यजु कहते है- (अनियताक्षरावसानो यजु)।

"यजुस्" शब्द जिस "यज्" धातु मे साधित हुआ, उस धातु के देवपूजा, सगतिकरण और दान (यज् देवपूजा सगतिकरणदानेषु) ये तीन अर्थ पाणिनीय धातुपाठ मे कहे है। तदनुसार यजुर्वेद के मन्त्रो का देवपूजा इत्यादि धार्मिक विधियो मे सबध रहता है। ऋचाओ से स्तवन और यजु से यजन करना चाहिए (ऋग्भि स्तुवन्ति यजुर्भि यजन्ति) ऐसा सम्प्रदाय है।

पतजलि के व्याकरण महाभाष्य मे कहा है कि, "एकशतम् अध्वर्युशाखा। यजुरेकशतात्मकम्" याने यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाए थी। परतु आज उनमे से केवल पाच शाखाए विद्यमान है (1) कठ शाखा - इसकी कपिष्ठल नामक उपशाखा थी वह आज लुप्त हो चुकी है। इस शाखा के ब्राह्मण काश्मीर मे अत्यल्प सख्या मे मिलते है। (2) कालाप शाखा - इसका दूसरा नाम है मैत्रायणी। आज इस शाखा के लोग गुजरात मे कही कहीं मिलते हैं। मैत्रायणी सहिता के चार काड है जिनमे 54 प्रपाठक है। प्रा श्रोडर ने काठकी व कालाप शाखाओ का सपादन किया है। यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता मे सात काड है जिनके 44 प्रपाठक है। इसी सहिता की (3) आपस्तम्ब और (4) हिरण्यकेशी नामक दो शाखाए विद्यमान है। इन शाखाओ के ब्राह्मण गोदावरी के परिसर मे होते है। प्राचीन काल मे तैत्तिरीय अथवा आपस्तब शाखा के लोग नर्मदा के दक्षिण प्रदेश मे रहते थे। (5) वाजसनेयी शाखा - ऋषि याज्ञवल्क्य इस शाखा के प्रवर्तक माने गए हैं। वाजसनेयी सहिता की काण्व और माध्यन्दिन नामक दो उपशाखाए है। काण्वशाखीय महाराष्ट्र मे और माध्यन्दिन शाखीय मध्यभारत तथा ईशान्य प्रदेश मे मिलते है। याज्ञवल्क्य की वाजसनेयी सहिता मे 40 अध्याय है। अतिम 40 वा अध्याय ही ईशावास्योपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार यजुर्वेद की जो पाच शाखाए आज यत्र तत्र विद्यमान है उनमे से कठ-कपिष्ठल, कालाप, (मैत्रायणी) तैत्तिरीय और काठक इन शाखाओं का कृष्ण यजुर्वेद मे अन्तर्भाव होता है। यजुर्वेद के दूसरे भाग का नाम है शुक्ल यजुर्वेद अथवा वाजसनेयी सहिता। काण्व और माध्यन्दिन, शुक्ल यजुर्वेद की उपशाखाए है।

यजुर्वेद का वर्गीकरण

- शुक्ल (वाजसनेयी)
  - काण्व
  - माध्यन्दिन
- कृष्ण (तैत्तिरीय)
  - आपस्तब
  - हिरण्यकेशी (कपिष्ठल)
  - कठ
  - काठक
  - कालकाप (मैत्रायणी)

यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण सज्ञाओ का एक कारण यह बताया जाता है कि- शुक्ल यजुर्वेद की सहिता मे केवल मत्रों का ही सग्रह है। उनका विनियोग बतानेवाले ब्राह्मण भाग का मिश्रण इस सहिता मे नही है। अत इसे "शुक्ल" सज्ञा दी गई। कृष्ण यजुर्वेद मे छदोबद्ध मत्र और उनका विनियोग बतानेवाले गद्यात्मक वाक्य, दोनों का मिश्रण पाया जाता है।

इन सज्ञाओ का दूसरा कारण, एक प्रसिद्ध कथा के द्वारा बताया जाता है। वह कथा इस प्रकार है वेदव्यास ने सपूर्ण

यजुर्वेद वैशंपायन को पढाया। वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को वह पढ़ाया। गुरू-शिष्य के झगडे मे वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से अपना ज्ञान वापिस माग लिया। अहकारी याज्ञवल्क्य ने उसका वमन किया, जिसका चयन वैशंपायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिरी पक्षियों के रूप में किया। इसलिये उस वेद सहिता का नाम तैत्तिरीय सहिता कहा गया।

पुरानी विद्या का वमन करने पर याज्ञवल्क्य ने नवीन वेदविद्या की प्राप्ति के लिए सूर्य भगवान की आराधना की। प्रसन्न होकर सूर्य ने वाजी (घोडा) का रूप लेकर याज्ञवल्क्य को नई सहिता प्रदान की। इसी नई सहिता का नाम है शुक्ल यजुर्वेद। यह सहिता "वाजी" द्वारा प्राप्त होने के कारण इसे "वाजसनेयी" सज्ञा दी जाती है। इस वाजसनेयी सहिता के दो सस्करण आज मिलते है। प्रो वेबर ने दोनों संस्करणो का सकलन किया है।

वाजसनेयी सहिता में 40 अध्याय, 303 अनुवाक्, 1975 कण्डिकाए 29625 शब्द और 88875 अक्षर सगृहीत है। प्रारभ के 25 अध्यायों में महान् यज्ञो में आवश्यक मत्रमय प्रार्थनाए है। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड मे अन्तर्भूत विविध विषयो का चयन इस संहिता मे हुआ है।

काण्व संहिता : शुक्ल यजुर्वेद की इस सहिता में 40 अध्याय, 338 अनुवाक् और 2086 मत्र हैं। इस सहिता का पाचरात्र सहिता से विशेष सबध है। पहले यह शाखा उत्तर भारत मे थी, परतु आज वह केवल महाराष्ट्र मे ही विद्यमान है।

काठक संहिता . इस सहिता के पाच खड है (1) इठिमिका, (2) मध्यमिका, (3) ओरमिका, (4) याज्यानुवाक्या, (5) अश्वमेधाद्यनुवचन। इन पाच खडो मे 40 स्थानक, 113 अनुवचन, 843 अनुवाक् और 3091 मत्र है।

कठकपिष्ठल संहिता . यह सहिता अपूर्ण मिलती है। इसके प्रथम अष्टक में 8 अध्याय है। द्वितीय और तृतीय अध्याय खडित हैं। चतुर्थ, पचम एव षष्ठ अध्यायो के मत्र-तत्र खडित हैं। बाकी अष्टको के अध्यायो की सख्या अनिश्चित है। काठक सहिता से यह सहिता अनेक विषयो मे विभिन्न सी है।

कालाप (मैत्रायणी) संहिता इस गद्य-पद्यात्मक सहिता में चार काड है, जिनके प्रपाठकों की सख्या इस प्रकार है ,काड-1 प्रपाठक 11, काड- 2-प्र 13, काड- 3-प्र -16, काड 4-प्र -14।

इस सहिता मे कुल 3144 मत्र है, जिनमें 1701 ऋग्वेद की ऋचाए है। चातुर्मास्य, वाजपेय, अश्वमेध, राजसूय, सौत्रामणि इत्यादि यज्ञो के विधि और मत्र इस सहिता मे मिलते हैं।

तैत्तिरीय (आपस्तंब) संहिता : इसमे 7 काड, 44 प्रपाठक और 631 अनुवाक् है। इसमे भी राजसूय, याजमान, पौरोडाश इत्यादि यज्ञो के वर्णन मिलते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदी परंपरा

भगवान व्यास से यजुर्वेद का ग्रहण करने पर वैशपायन ने अपनी सहिता की 27 शाखाए की और आलबी, चरक आदि अपने शिष्यो को उसका प्रदान किया। आगे चल कर उन 27 शाखाओ का विस्तार 86 शाखाओ मे हुआ, जिनमे से आज काठक, कपिष्ठल और मैत्रायणी ये तीन ही सहिताए यत्र तत्र विद्यमान है। वैशम्पायन से झगडा होने पर उसके शिष्य याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेवता से जो वाजसनेयी अथवा शुक्ल यजुर्वेद की सहिता प्राप्त की, उसकी 67 उपशाखाए है, जिनमे से 15 प्रमुख मानी जाती है। महाभारत के शातिपर्व मे अध्वर्युवेद (यजुर्वेद) की 101 शाखाए बताई है। वह सख्या कृष्ण यजुर्वेद की काठक, कपिष्ठल और मैत्रायणी संहिताए तथा मैत्रायणी ब्राह्मण, मैत्रायणी सूत्र, मानवसूत्र और वराहसूत्र यह सबधित ग्रथ प्रथम जर्मनी में मुद्रित हुए। अब वे भारत में भी मुद्रित हो चुके हैं।

शुक्ल यजुर्वेदी परंपरा

याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवर्तित शुक्ल यजुर्वेद की 67 शाखोपशाखाओं मे 15 भेद हैं। उनमें काण्व और माध्यदिन संहिता को और कात्यायन तथा पारस्कर सूत्रों को विशेष महत्व है। काण्व शाखीय ब्राह्मण सपूर्ण भारत मे मिलते है, अत उन में द्रविड (दाक्षिणात्य) काण्व और गौड (औत्तराह) काण्व इस प्रकार भेद माने जाते हैं। आज के वैदिक ब्राह्मण समाज मे जो अन्यान्य शाखाए और उपशाखाए मिलती हैं, उनका मूल वेदो की शाखोपशाखाओ मे ही है।

5 सामवेद संहिता

यज्ञ में तीसरे ऋत्विक् को उद्गाता कहते हैं। इस उद्गाता के लिए चयन किए हुए मत्रसग्रह का नाम ही सामवेद है।

यज्ञ के समय जिस देवता के लिए हवन किया जाता है, उसका आवाहन उचित स्वरों में मत्रो को गाते हुए "उद्गाता" ऋत्विक् को करना होता है। इस मंत्रगान को ही "साम" कहते हैं।

सामगान के पांच प्रकार

(1) प्रस्ताव	इस का गायन प्रस्तोता करता है।	(4) उपद्रव	इसका गायन उद्‌गाता करता है।
(2) उद्‌गीत	इस का गायन उद्‌गाता करता है।	(5) निधान	इसका गायन प्रस्तोता करता है।
(3) प्रतिहार	इसका गायन प्रतिहर्ता करता है।		

सामविधान ब्राह्मण : सामवेद से सबंधित इस ग्रथ में ऐंद्रजालिक प्रयोगों का प्रतिपादन किया है। वैदिक परपरा के अनुसार सामध्वनि सुनाई देते ही अन्य वेदों का अध्ययन बद किया जाता है। आपस्तब स्मृतिकार कहते है कि, कुत्ता, गधा, भेड, बकरी इत्यादि प्राणियो का, बालक के रोने का अथवा किसी वाद्य का ध्वनि सुनाई देते ही वेदों का अध्ययन तत्काल बद करना चाहिए।

चरणव्यूह तथा पातजल महाभाष्य में सामवेद के एक सहस्र भेदों का निर्देश है (सामवेदस्य किल सहस्रभेदा भवन्ति- चरणव्यूह)। (सहस्रवर्मा सामवेद - व्याकरण महाभाष्य)। व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में चारों वेदों के शाखाओं की सख्या बताई है .-

"एकविंशतिधा बाह्‌वृचम्। एकशतम् अध्वर्युशाखा। सहस्रवर्मा सामवेद। नवधा आथर्वणो वेद.। आज ये सारे शाखा भेद उपलब्ध नहीं हैं परतु आज कौथुम राणायनीय, जैमिनीय ये तीन ही सामवेद की शाखाए जीवित मानी जाती हैं।

सामवेद गानप्रधान होने के कारण उसमें केवल गानोचित ऋचाओं का ही सग्रह किया हुआ है। सामवेद की कुल 1549 ऋचाओं में से 75 ऋचाए ऋग्वेद के बाहर की हैं। इसी कारण सामवेद का पृथक अस्तित्व नहीं माना जाता। ऋग्वेदीय ऋचाओं के आधार पर सामगान की रचना होती है, अत ऋचाओ को "सामयोनि" कहते हैं।

सामवेद की विद्यमान तीन शाखाओं मे से कौथुम शाखा विशेष प्रसिद्ध है। कौथुम शाखा के पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक नामक दो भाग हैं। आर्चिक = ऋचाओं का समूह, जिन की ऋचाओं की कुल सख्या 1810 है। इन में कुछ ऋचाओं की पुनरावृत्ति होती है। पुनरावृत्त ऋचाओं की सख्या छोडकर इस सहिता की कुल सख्या 1549 ही रहती है।

पूर्वार्चिक . सामवेद के इस विभाग को छन्दसी अथवा छन्दसिका कहते हैं। इसमे कुल 585 ऋचाए, छह प्रपाठका मे सगृहीत की हैं। प्रपाठकों में कुल 59 "दशतय" (अर्थात् दस ऋचाओ का समूह) किए हैं। प्रारभिक 12 दशतय अग्निविषयक, बाद में 36 दशतय सोमविषयक और अत में 11 दशतय सोमविषयक हैं। पूर्वार्चिक के अत मे 55 मत्रो का एक जो पर्व है उसे "अरण्यकाण्ड" कहते है। इसके आगे उत्तरार्चिक का आरभ होता है। पूर्वार्चिक मे (1) ग्रामगेय गान और (2) अरण्यगेय गान नामक दो गान प्रकार हैं। ग्रामगेय गान से सबधित ऊहगान और अरण्यगेय गान से सबधित ऊह्यगान नामक दो विकृत गानप्रकार माने गए हैं। अरण्यगान विकृत होने के कारण और ऊह्यगान रहस्यात्मक होने के कारण उनका गायन अरण्य मे ही करने की परम्परा है।

उत्तरार्चिक : सामवेदीय कौथुम शाखा के इस उत्तर भाग में 40 गेय साम हैं, जिनमे प्रत्येकश 3-3 ऋचाए होती है। कुल 9 प्रपाठकों में प्रत्येकश दो या क्वचित् तीन भाग हैं। उत्तरार्चिक के अनेक मत्र पूर्वार्चिक से लिए गए है। इसमे सात अनुष्ठानों का निर्देश किया है -

(1) दशरात्र, (2) सवत्सर, (3) एकाह, (4) अहीन, (5) सत्र, (6) प्रायश्चित्त और (7) क्षुद्र।

पूर्वार्चिक में ऋचाओं का क्रम, छद और वर्णनीय देवताओं के अनुसार है। उत्तरार्चिक मे वह क्रम यज्ञानुसार किया है। पूर्वाचिक में अनेक योनि और ताल-लय हैं, उत्तरार्चिक मे उसका अभाव है। कौथुम शाखा के इन दो भागों का केवल सहिता पाठ मात्र आज उपलब्ब्ध है। यह सहितापाठ ही ताल, लय, और वाद्यो सहित गाया जाता है। सामगायक पुरोहित सप्तस्वरों का निर्देश अगुलि सकेत द्वारा करता है।

सामवेदी उद्‌गाता पुरोहित होने के लिए छात्र को आर्चिक द्वारा सगीत की दीक्षा लेनी पडती थी। उत्तरार्चिक के कुछ सूक्त कंठस्थ होने के बाद दृढ अभ्यास करने पर, सामवेदी उद्‌गाता पुरोहित तैयार होता था। भारतीय सगीत विद्या का मूलस्रोत सामगान में ही मिलता है। उस प्राचीनतम काल में ही इस देश का सगीत इतनी प्रगत अवस्था में था कि उसे जान कर प्राचीन भारतीय सस्कृति की विकसित अवस्था की कल्पना की जा सकती है।

राणायनीय शाखा - सामवेद की यह शाखा, कौथुम शाखा से विशेष भिन्न नहीं है। इस की मत्रसख्या भी कौथुम के बराबर है। भेद केवल उच्चारण मे है। जैसे कौथुम शाखा मे जहा "हा उ" उच्चारण होता है वहा राणायनीय शाखीय "हा वु" उच्चारण करते हैं। कौथुम "राह" कहते हैं वहा राणायनीय "राई" कहते है।

जैमिनीय शाखा - इस शाखा की कुल मत्रसख्या 1687 और सामगानों की सख्या 3681 है। इस शाखा की एक उपशाखा तलवकार नाम से प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध केनोपनिषद् इसी शाखा से सबंधित है।

इस प्रकार सामवेद का सबध, यज्ञ, इन्द्रजाल और सगीत इन तीन विषयों के साथ जुडा हुआ है। मत्रो की दृष्टि से

यह वेद स्वतंत्र नही है फिर भी उसकी विशेषता अनोखी है और यज्ञविधि में उसका अपना स्थान स्वतंत्र है। चरणव्यूह की टीका मे महीदास कहते हैं कि, सामवेद की कुल सोलह शाखाओं में से कौथुमी, जैमिनीय और राणायनीय ये तीन शाखाएँ गुर्जर, कर्णाटक और महाराष्ट्र मे विद्यमान हैं। सायणाचार्य ने केवल राणायनीय शाखा पर अपना भाष्य लिखा है।

सामवेद मे पाठभेद

सामवेद की कौथुम और राणायनीय शाखाओ मे कुछ अल्पमात्र पाठभेद है। राणायनीय शाखा के पाठ प्रमुख माने जाते थे। परतु सन 1842 मे स्टीव्हन्सन (लदन) और 1848 में बेनफे (लिप्झिग्) इन पाश्चात्य विव्दानों ने जर्मन अनुवाद तथा टिप्पणी सहित सामवेदीय शाखाओ का सस्करण प्रकाशित किया। इस कारण नवीन वैदिक विव्दान, परम्परागत पाठ को अप्रमाण मानते है। आगे चल कर वही नया राणायनीय पाठ, सायणभाष्य के साथ भारत में प्रकाशित हुआ। सन 1868 में कौथुम शाखा प्रकाशित हुई, परतु उसमे पाठ सुव्यवस्थित न होने के कारण सामवेदीय विव्दान उसे प्रमाणभूत नही मानते। इस प्रकार सामवेद के प्रमाणभूत पाठ, आज विवाद और अन्वेषण के विषय हुए हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार समग्र वेद समकालीन माने गए है। अत उनकी पौर्वापर्यविषयक चर्चा को महत्त्व नहीं दिया जाता। सामवेद मे ऋग्वेद के मत्र अवश्य मिलते है, परतु ऋग्वेद में भी (1-5-8) साम का निर्देश किया है। इसका अर्थ ऋग्वेद को साम का अस्तित्व अज्ञात नहीं था। साम अगर उत्तरकालीन होते तो, ऋग्वेद मे साम का यह उल्लेख नही होता।

सामगान

यज्ञविधि में उद्गाता को अपने साममत्रो का गायन करना पडता है। मत्रों के गानविधि का विवेचन करने वाले कुछ ग्रथ भी निर्माण हुए, उनमे चार प्रमुख ग्रथो मे सामगान की पद्धति का पूर्णतया विवरण किया है। सामान्य लौकिक सगीत शास्त्र मे सामगान की पद्धति अलग सी है। तथापि सगीत शास्त्रोक्त सप्त स्वरो का प्रयोग सामगान मे होता है। सामगान पद्धति मे गेय स्वरो के नाम - क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वर्य इस प्रकार दिए जाते हैं। सामवेदीय छादोग्य उपनिषद् मे, सामगान के हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधान नामक पाच विभाग बताए हैं। उनमे से प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार का अन्त करण के भावो से और निधान का तानो से सबध माना जाता है।

शतपथ ब्राह्मण मे कहा है कि "नासामा यज्ञो भवति। न व वाऽहिंकृत्य साम गीयते।" अर्थात् सामगान के बिना यज्ञ नही होता और हिंकृति के बिना सामगान नही होता। इस प्रकार सामगान की महिमा अन्यत्र विविध स्थानों मे वर्णन की है। सामवेद के मत्रो मे उपासना के साथ योगविधि और आध्यात्मिक उपदेश भी किया हुआ है।

ऋचाओं का सामगान मे रूपान्तर करने के हेतु, हा, उ, हो, इ, ओ, हो, वा, ओ, इ, औ, हा, इ, इस प्रकार के पद जोडे जाते है। इन पदो को "स्तोभ" कहते है। स्तोभ और स्वर की सहायता से ऋचा का रूपान्तर गान मे होता है।

वेदो मे स्वरांकन

वेद ग्रथों मे स्वरो का निर्देश करने के चार प्रकार विद्यमान है। ऋग्वेद मे उदात्त स्वर का चिह्न नही होता। अनुदात्त स्वर का निर्देश अक्षर के नीचे आडी रेखा से होता है और स्वरित का निर्देश उपर खडी रेखा से किया जाता है।

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी और काठक सहिता मे उदात्त का निर्देश उपर खडी रेखा से होता है। शुक्ल यजुर्वेदी शतपथ ब्राह्मण मे उदात्त स्वर, नीचे आडी रेखा से दिखाया जाता है। परतु सामवेद मे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों का निर्देश 1,2,3 अको मे किया जाता है। उसी प्रकार सगीत के षड्जादि स्वरो का निर्देश 1 से 7 तक अको द्वारा किया जाता है। अधिकाश सामवेदी मत्रो मे पाच ही सगीत-स्वरो का उपयोग होता है।

ऋचाओ का सामगान मे परिवर्तन करने के लिए, (1) विकार, (2) विश्लेषण, (3) विकर्षण, (4) अभ्यास, (5) विराम और (6) स्तोभ इन छ उपायो का अवलब होता है। स्वरमण्डल मे इन छ उपायो के साथ सामगान होता है। सामगान के विविध प्रकार, मधुछन्दस्, वामदेव, इत्यादि जिन ऋषियो ने निर्माण किए उन्ही के नाम से वे गानप्रकार प्रसिद्ध हैं।

हस्तवीणा

जिन सामवेदियो को गेय स्वरो के उच्चारण की शक्ति नहीं थी, उन्होने स्वरनिर्देशन के लिए "हस्तवीणा" की पद्धति शुरू की। हाथो की पहली, दूसरी इत्यादि अगुली द्वारा षड्ज, ऋषभ, गधार इत्यादि स्वरो का निर्देश करने की पद्धति नारदीय शिक्षा मे बताई है। आज सामगायको की सख्या अत्यल्पतम है। वे "हस्तवीणा" द्वारा स्वरो का निर्देश करते हैं।

सामवेदी परंपरा

भगवान् व्यास ने जैमिनि को सामवेद की सहिता प्रदान की। महाभारत के अनुसार यही जैमिनि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में और जनमेजय के सर्पसत्र मे उपस्थित थे। जैमिनि द्वारा सुमन्तु, सुत्वा, सुकर्मा इत्यादि शिष्यपरपरा प्रवर्तित हुई। सुकर्मा ने सहस्र सहिताओ का विस्तार कर, शिष्य परपरा बढ़ाई। परतु वे सारे शिष्य विद्युत्पात अथवा भूचाल स्वरूप इन्द्र के प्रकोप के

कारण नष्ट हुए और उनके साथ सामवेद की सहस्त्र शाखाओ का विलय हुआ। आगे चलकर सुकर्मा के पौषिंजी, हिरण्यनाभ और कौसल्य इन शिष्यो ने कुछ सहिताओं का प्रवचन किया। उनमें से आसुरायणीया, वार्तातेरेया, प्रांजल, ऋग्वेदविद्या, प्राचीनयोग्या और राणायनीय नामक सात शाखाएं अवशिष्ट रहीं। राणायनीय शाखा के शाख्यायनीय, सात्यमुद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लागल, कौथुम, गौतम और जैमिनीय नामक नौ भेद हैं। आज सामवेद की शाखाओ में से कर्नाटक में कौथुमी तथा गुजरात और महाराष्ट्र में राणायनी विद्यमान है।

6 आर्यों का मनगढंत आक्रमण

वेदनिर्मिति के काल और स्थल का अन्वेषण करने के उद्योग में, पाश्चात्य विद्वानो द्वारा आर्य लोग, उनका मूल वसतिस्थान, उनका किसी बाहर भूभाग से वायव्य सीमा की ओर से भारत में आक्रमण, उस आक्रमण की दक्षिण भारत की ओर प्रगति और उस प्रगति के प्रयत्न में आर्यों द्वारा भारत के मूल निवासी द्रविड, नाग इत्यादि समाजो का पराभव तथा विनाश इत्यादि निराधार कल्पनाओ को अवास्तव महत्त्व दिया गया है। सस्कृत भाषा और तदन्तर्गत विविध प्रकार के वाङ्मय का यूरोपीय विद्वानो को जब से परिचय हुआ, तब से वहा के अनेक विद्वानो को, भाषाविज्ञान, पुराणकथाशास्त्र इत्यादि विषयों का तौलनिक अध्ययन करते हुए, एक बात ध्यान में आयी कि प्राचीन भारतीय तथा यूरोपीय और अन्य कुछ राष्ट्रो की सस्कृति में अनेक बातो में अद्भुत साम्य है। इस साम्य के कारण यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि समान सस्कृति वाले ये भिन्न भिन्न समाज मूलत एक ही वश के होना सभव है। उनका मूलस्थान भी एक ही होना चाहिए। उस सभाव्य मूल स्थान से वे समाज, किसी कारण ससार में यत्र तत्र प्रसृत हुए होगे। इस कल्पित समाज को इडो-यूरोपीय अथवा आर्य नाम दिया गया। सुप्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने आर्यों के इस काल्पनिक आक्रमण की कल्पना पर विशेष बल दिया था, परतु सन 1888 में उनका मत परिवर्तन हुआ, तब वे कहते हैं कि, "आर्यों के मूलस्थान के विषय में उपलब्ध प्रमाण इतने पोले और निराधार हैं कि उसके आधार पर, ससार के किसी भी भूभाग को आर्यो का मूलस्थान करके सिद्ध करना सभव हो सकता है। (The evidence is so plain that it is possible to make out a more or less plausible case for almost any part of the world ")

इसी सदर्भ मे वे कहते हैं कि "मैं जब जब "आर्य" सज्ञा का उपयोग करता हू तब तब मेरे समक्ष आर्यवश नहीं, अपि तु "आर्यन्" भाषा होती है। भाषा के नाम पर वश की कल्पना करना सरासर भूल है।"

आधुनिक वाङ्मय मे "आर्य" सज्ञा का प्रयोग सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स ने किया। परतु उन्होंने भी भाषावश के अर्थ में वह प्रयोग किया था न कि मानववश के अर्थ में। ऋग्वेद मे प्रयुक्त आर्य और अनार्य सज्ञा वशवाचक नहीं है, यह तथ्य डॉ श्रीधर व्यकटेश केतकर ने अपने महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश में सविस्तर प्रतिपादित किया है।

आर्यों का भारत पर आक्रमण सिद्ध करने वाले विद्वान, ऋग्वेद के दाशराज्ञ युद्ध का उल्लेख प्रबल वैदिक प्रमाण के नाते प्रस्तुत करते हैं। परतु प्रत्यक्ष वैदिक वाड्मय की दृष्टि से इस प्रमाण को कितना महत्त्व देना चाहिए यह प्रश्न बाकी रहता है। एक सहस्त्र सूक्तो के ऋग्वेद मे इस युद्ध का निवेदन केवल तीन सूक्तो मे हुआ है, जिस मे सुदास नामक राजा को, दस राजाओ द्वारा विरोध होने के कारण, भडके हुए युद्ध का निर्देश किया गया है। इस अत्यल्पमात्र वैदिक प्रमाण के अतिरिक्त, सारे ससार के प्राचीन वाड्मय मे तथाकथित आर्यो के आक्रमण की और दूरान्वित सकेत करने वाला भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। प्रत्यक्ष ऋग्वेद में भी उन तीन सूक्तो के अतिरिक्त दूसरा कोई भी प्रमाण नहीं है। किसी भी भटकने वाले जनसमूह में, किसी भूभाग के प्रति उत्कट आत्मीयता की भावना नहीं होती, परतु ऋग्वेद के मन्त्रो में ऋषियों की भूमिभक्ति की ओर सकेत करते हुए प्रसिद्ध विद्वान जयनाथपति आर्याक्रमणवादियो को पूछते हैं, "आपने ससार में ऐसे सुसस्कृत लोग कहीं देखे है कि जिन्हे अपने मूल निवासस्थान का विस्मरण हो कर नए घर का आकर्षण हुआ है।" (Have you ever found cultured foreigners, forgetting their old homes and becoming enamoured of their newly made conquest)

आर्यों के आक्रमण की भ्रान्त धारणा को जिस प्रकार वेदो में प्रमाण नहीं है, उसी प्रकार पुराणों की विशाल वाङ्मयराशि मे भी कोई प्रमाण नही है। भारतीय पुराण वाड्मय के प्रसिद्ध अध्येता पार्जिटर (अथवा पारगीटर) कहते हैं कि "वायव्य दिशा की ओर से भारत पर हुए आक्रमण की कल्पना स्वभावत ही असभव है और परम्परा की दृष्टि से भी वह अनावश्यक है। (Impossible in itself---wholly unnecessary according to tradition)

इस आर्याक्रमण की कल्पना का स्वामी विवेकानद ने साफ शब्दो में इन्कार और धिक्कार किया है। स्वामीजी कहते हैं, "पाश्चात्यों के इतिहास मे अग्रेज, अमेरिकन इत्यादि कुछ लोगो द्वारा स्थान स्थान पर मूल निवासी लोगों को पराजित और गुलाम करने की घटनाए हुई। उसी के आधार पर इतिहास-सशोधकों की बुद्धि भारत के प्राचीन काल में उडान करती है। कोई तिब्बत को तो कोई मध्य एशिया ~~को आर्यों~~ का मूलस्थान कहता है। देशाभिमानी और घमडी पाश्चात्य विद्वान अपने अपने भूभाग की ओर आर्यों का मूलस्थान खींचता है। कोई उत्तर ध्रुव प्रदेश का भी प्रतिपादन करते हैं। परंतु हमारे वेद-पुराण आदि ग्रंथों में

ऐसा एक भी शब्द नहीं, जो आर्यों के आक्रमण की कल्पना सिद्ध कर सके। शूद्र वर्ण मूलत अनार्य है यह विचार, जितना तर्कदुष्ट उतना ही निर्बुद्ध है। (But there is not one word in our scnpture, not one to prove that the Aryans ever came, from any where out side of India- of Ancient India, which includes Afaganistan, within it The theory that the shoodra caste is all non-Aryan is equally illogical and equally irrational)

वेदकाल के अन्वेषण में तथाकथित आर्यवश और उस के भारत पर आक्रमण का विषय, कुछ यूरोपीय पडितो द्वारा चर्चा का विषय बनाया गया। परंतु उनके इस विचार का खंडन अनेक श्रेष्ठ विद्वानों ने अकाट्य युक्तिवादों से किया है। तथापि आज भी भारत की सभी पाठ्य पुस्तको मे आर्यों के आक्रमण के पाठ बालकों को पढ़ाए जाते हैं यह दुर्भाग्य है। तात्पर्य वेद निर्मिति के स्थल एवं काल के विषय में आनुषंगिकतया प्रसृत हुई आर्यों के आक्रमण की कल्पना मिथ्या होने के कारण, उसके आधार पर निर्धारित वेद कालविषयक मतमतातरो को विशेष महत्त्व देने की आवश्यकता हम नहीं मानते।

7 वेदविषयक परंपरागत दृष्टिकोण

वेदो की रचना का कालनिर्णय करने का प्रयास करनेवाले आधुनिक अभारतीय तथा भारतीय विव्दानों ने अपने भिन्न भिन्न मतों का प्रतिपादन करते हुए एक ने दूसरे का खडन किया है। इस परस्पर शिरश्छेद के कारण इस विषय में प्रतिपादित मतों में से कोई भी एक विशिष्ट मत प्रतिष्ठित नहीं हुआ है। प्राय भारतीयों को वेदो की प्राचीनता प्रतिपादन करने वाला मत ग्राह्य लगता है और अभारतीय लोगो को उस की अर्वाचीनता प्रतिपादन करने वाला मत उपादेय लगता है। इस वेदकाल विषयक विवाद में, वेदों के प्रति नितात श्रद्धा अन्त करण में धारण करने वाले परपरावादी भारतीय विद्वानों के युक्तिवादों को ध्यान में लेना अत्यत आवश्यक है। वैदिक धर्म का परिचय होने के लिए उन युक्तिवादो का ठीक आकलन विशेष महत्त्व रखता है।

प्राचीन भारतीय विद्वानो के मतानुसार वेदनिर्मिति के काल का निर्णय करना असभव माना गया है। संसार के सभी इतिहासज्ञो का इस बात में मतैक्य है कि वेद ससार का आज उपलब्ध होने वाला सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ज्ञानधन है। परतु उसका काल वे निर्धारित नहीं कर सके। ईसापूर्व 1000 से 75000 वर्षों तक अन्यान्य शताब्दियो में वेदों की निर्मिति मानने में कोई स्वारस्य नहीं। इन अन्वेषको का अध्ययन और चिन्तन अभिनन्दनीय है परतु उनके निष्कर्ष स्वीकारयोग्य नही है।

प्राचीन परपरावादी भारतीयो की इस विषय मे जो धारणा है उसका साराश इस प्रकार दिया जा सकता है-

वेद नित्य है और सृष्टि के प्रारभ से ही वेदो का आविर्भाव हुआ होगा। जिस परमात्मा ने सृष्टि की निर्मिति की, उसी परमात्मा ने उसके पहले वेद निर्माण किए होगे। जैसे कुम्हार जब घट की निर्मिति करता है तो उसके पहले अपनी बुद्धि में उसकी निर्मिति कर, तदनुसार मिट्टी को आकार देता है। कोई भी कार्य किसी कर्ता के बिना नहीं हो सकता। यह ब्रह्माण्ड भी एक कार्य ही है, अत तर्कानुसार उसके भी किसी कर्ता का अस्तित्व मानना ही चाहिए। प्रत्येक कर्ता अपना कार्य, अपनी बुद्धि में आलिखित करने के बाद ही उसे साकार करता है। इस निरपवाद सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्डरूपी कार्य का आलेख, उसके कर्ता की बुद्धि में प्रथम निर्माण होना चाहिये। परपरावादियो का युक्तिवाद है कि सृष्टि के विधाता ने जिस आलेख अथवा जिस विचार की सर्वप्रथम कल्पना अपनी बुद्धि मे की, वही "आम्नाय" याने वेद है। सामान्य तर्क के अनुसार ब्रह्माण्डरूपी कार्य के कर्ता को (कार्यनिर्मिति के पहले) स्फूर्ति होना आवश्यक है, इस तथ्य को मान्यता देने पर भी यह शका उपस्थित होती है कि सृष्टि निर्माता की वह स्फूर्ति वेदस्वरूप ही थी, इस बात को मान्य करनेवाला प्रमाण नहीं है। वेदो को ही परब्रह्म परमात्मा का आद्य विचार क्यों माने।

इस शका का उत्तर प्रत्यक्ष और अनुमान इन प्रमाणो द्वारा देना असभव होने के कारण आप्तवाक्यरूपी प्रमाण के द्वारा देना आवश्यक होता है। वैदिको की धारणा के अनुसार वेद ही परमश्रेष्ठ आप्तवाक्य है। इस विषय में वेदों के वचन इस प्रकार है -

(1) यज्ञेन वाच पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधु पुरुत्रा
ता सप्तरेभा अभिसन्नवन्ते।। (ऋ 10/71/3)

(2) बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्र
यत् प्रैरयत् नामधेय दधाना।
यदेषा श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्
प्रेम्णा तदेषां निहितं गुहावि।। (ऋ 10/71/1)

(3) तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत
ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मादजायत।। (ऋ 10/90/9)

(4) तस्मादृचो पातक्षन्
यजुस्तस्मादपाकयन्।
सामानि यस्य लोमानि
अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।। (ऋ 10/7/20)

इन वेदवचनों में यज्ञ (यजनीय, पूजनीय ईश्वर परमात्मा) से ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों की उत्पत्ति स्पष्ट शब्दों में कही है। अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आप्तवाक्य का प्रामाण्य क्यों मानना चाहिए यह स्वतत्र

चर्चा का विषय है। आप्तवाक्य का प्रामाण्य मानने वाले दार्शनिक आचार्यों ने उस सबध में उत्कृष्ट युक्तिवाद प्रस्तुत किए है। श्रेष्ठ दार्शनिको द्वारा अगीकृत "आप्तवाक्य" के आधार पर, वेदो का जनिता परमात्मा ही है यह मत वैदिकों ने मान्य किया है। उसी मान्यता के साथ आनुषगिकतया यह भी मानना पडता है कि सर्वज्ञ और निर्दोष परमेश्वर ही अगर वेदों का जनक होगा, तो उसके वेद भी सर्वज्ञानमय और निर्दोष ही होने चाहिए। जगद्गुरू श्रीशंकराचार्यजी ने वेदों का सर्वज्ञानमयत्व मानते हुए यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया है कि, "महत· ऋग्वेदादे शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिन· सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म। न हि ईदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यत सभव अस्ति।" (ब्रह्मसूत्र शा भा 1-1-3) अर्थात् ऋग्वेदादि महान् शास्त्र अनेक विद्यास्थानो से (4 वेद, 6 शास्त्र, धर्मशास्त्र, पूर्वोत्तर मीमांसा और तर्कशास्त्र इन चौदह विद्याओ को "विद्यास्थान" कहते हैं) विकसित हुआ है और वह प्रदीपवत् सारे विषयो को प्रकाशित करता है। इस प्रकार के सर्वज्ञानसपन्न शास्त्र का (अर्थात वेदो का) उत्पत्तिस्थान ब्रह्म ही हो सकया है, क्यो कि, सर्वज्ञ परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त और किसी से ऋग्वेदादि सर्वज्ञानसपन्न शास्त्र की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

सर्वज्ञ ईश्वर ही वेदो का जनक होने के कारण, उसका वेदरूप कार्य भी सर्वज्ञानपूर्ण होना चाहिए, इस अनुमान से भी जगद्गुरू शकराचार्य का युक्तिवाद अधिक वेदनिष्ठापूर्ण है। वे कार्यरूप वेदो का सर्वज्ञानमयत्व सिद्धवत् मानकर उसके कारण की सर्वज्ञानमयत्व का तर्क प्रस्तुत करते है। इस तर्क के अनुसार परब्रह्म परमात्मा सर्वज्ञानमय होने के कारण, वही वेदों का जनक या निर्माता माना जा सकता है।

श्रीशकराचार्यजी ने वेदो का ईश्वर- कर्तृकत्व सिद्ध करते हुए, वेदो के विषय में "विद्यास्थानोपबृहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिन, सर्वज्ञकल्पस्य इत्यादि जो विशेषण प्रयुक्त किए हैं, उनमे यत्किंचित् भी अतिशयोक्ति का अश नहीं है। इसका पहला कारण श्रीशकराचार्य जैसे परमज्ञानी महापुरुष ने उन विशेषणो का प्रयोग किया है और दूसरा कारण यह है कि, अतिप्राचीन काल से आज तक की प्रदीर्घ कालावधि मे विविध प्रकारों से जो वेदो का मथन और चिन्तन हुआ, उससे भी उन विशेषणो की यथार्यता सिद्ध हुई है।

जगद्गुरू श्रीशकराचार्य की वेदो की "सर्वज्ञानमयता पर इतनी प्रगाढ श्रद्धा है कि अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में, पाचरात्र नामक मत का खडन करते हुए, उन्होने यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया है कि, "शाडिल्य को चारो वेदो में नि श्रेयस का मार्ग न दिखने के कारण" उसने इस शास्त्र (पाचरात्रदर्शन) का ज्ञान प्राप्त किया, इस प्रकार के पाचरात्र दर्शन के स्तुतिवाक्यो में से वेदो की निन्दा ध्वनित होती है, अत वह दर्शन भी अग्राह्य मानना चाहिए। (विप्रतिषेधश्च भवति। चतुर्षु वेदेषु पर श्रेय अलब्ध्वा शाण्डिल्य इद शास्त्रम् अधिगतवान् इत्यादि वेदनिन्दादर्शनात्)।

भगवान् व्यास ने भी "विप्रतिषेधाच्च" (2-2-45) इस ब्रह्मसूत्र के द्वारा यही मत सूचित किया है। इस प्रकार वेदों का ईश्वरकर्तृकत्व उपपत्ति और उपलब्धि (अनुमान और आप्तवाक्य) इन प्रमाणो के आधार पर सिद्ध मानते हुए, अर्वाचीन (पाश्चात्य तथा पौरस्त्य) पडितो ने अथवा प्राचीन वेदविरोधी नास्तिक पण्डितो ने माना हुआ वेदो का पौरुषेयत्व याने पुरुषकर्तृकत्व वैदिको की परम्परा मे अप्रमाण माना गया है।

वेदों का नित्यत्व और अपौरुषेयत्व

परपरावादियो ने शिरोधार्य माना हुआ वेदो का नित्यत्व तथा अपौरुष्येत्व का सिद्धान्त विविध "आस्तिक" दर्शनो के आचार्यों ने अन्यान्य युक्तिवादो मे प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है- भगवान् जेमिनिजी ने अपने पूर्व-मीमासा दर्शन में इस विषय की चर्चा की है। "कर्मैके तत्र दर्शनात्" इस सूत्र से आगे 12 सूत्रो में वेदो का अनित्यत्व प्रतिपादन करनेवाले पूर्वपक्ष के तर्क सविस्तर देकर, आगे "नित्यस्तु स्याद दर्शनस्य परार्थत्वात्" (1-1-6) इत्यादि छ सूत्रो व्दारा अनित्यवादी पक्ष के तर्कों का खडन करते हुए वेदो का नित्यत्व बडी मार्मिकता से प्रतिपादन किया है।

उत्तर-मीमामा दर्शन मे भगवान् बादरायण व्यासजी ने "शास्त्रयोनित्वात्" इस सूत्र के द्वारा वेदों का उद्गम परब्रह्म से ही हुआ है इस सिद्धान्त को स्थापित कर, यह निष्कर्ष बताया है कि, परमात्मा नित्य होने के कारण उस का ज्ञान याने वेद भी, नित्य ही होना चाहिये।

वैशेषिक दर्शन मे वेदों का अपौरुषेयत्व और स्वत·प्रामाण्य "तद्वचनात् आम्नायस्य प्रामाण्यम्" इस सूत्र द्वारा प्रतिपादन किया है। इस सूत्र का विवरण करते हुए उपस्कारभाष्य में कहा है कि सूत्रस्थ "तत्" शब्द ईश्वरबोधक है, क्यों कि ईश्वर ही वेदो का जनक है यह बात सुप्रसिद्ध और सिद्ध है। (तद् इति अनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धि-सिद्धतया ईश्वरं परामृशति"- (वैशैषिक सूत्र उपस्कार भाष्य)। इसी सूत्र का दूसरे प्रकार से अर्थ निकाल कर, वेदों का प्रमाण्य सिद्ध किया गया है। जैसे- "सूत्रस्थ तत् शब्द, समीपस्थ धर्म यह अर्थ बताता है। अत धर्म का प्रतिपादन करने के कारण, वेद को प्रामाण्य प्राप्त हुआ है। जो वाक्य प्रामाणिक या प्रमाणासिद्ध अर्थ का प्रतिपादन करता है वह (वाक्य) प्रमाणभूत ही होता है। (यद् वा तत् इति सन्निहितं धर्ममेव परामृशति। तथा च धर्मस्य वचनात्-प्रतिपादनात् वेदस्य प्रामाण्यम्। तत् प्रमाणम् एव यत इत्यर्थ· (उपस्कारभाष्य)

अन्य साधारण ग्रन्थो के समान वेद भी ग्रन्थ रूप ही होने के कारण, पौरुषेय अर्थात् मनुष्यनिर्मित ही होने चाहिये, यह

सामान्य तर्क सर्वत्र रूढ है। प्रस्तुत भाष्यकार ने उस तर्क का भी खण्डन मार्मिकता से किया है। भाष्यकार कहते है- अतीन्द्रिय विषयों पर सहस्त्रावधि शाखाओं की इतना महान ग्रन्थराशि व्यक्त करना हम जैसे मानवों का काम नहीं है। अर्थात् वह ईश्वर का ही काम हो सकता है। (वेदस्तावत् पौरुषेय वाक्यत्वात् इति साधितम्। न च अस्मदाद्य तेषां सहस्रशाखाच्छिन्नाना वक्तार. सम्भाव्यन्ते अतीन्द्रियार्थत्वात्। न च अतीन्द्रियार्थदर्शिन अस्मदादय)।

वैशैषिक दार्शनिको ने वेदों का अपौरुषेयत्व प्रतिपादन करने के लिए अनेकविद्ध तर्क प्रस्तुत किए हैं। न्यायदर्शनकार गौतममुनि "मन्त्रायुर्वेदप्रमाण्यवत् च तत्प्रामाण्यम् आप्तप्रामाण्यात्", इस सूत्र के भाष्य में कहते हैं" वेदों के अर्थ के जो द्रष्टा एवं प्रवक्ता हैं, वे ही आयुर्वेदादि के प्रवक्ता हैं। अत आयुर्वेदादि शास्त्रो को हम जैसे प्रमाणभूत मानते हैं, वैसे ही वेदों को भी प्रमाण मानना चाहिये। (ये एव आप्ता वेदार्थानां द्रष्टार प्रवक्तारश्च ते एव आयुर्वेद-प्रभृतीनाम् इति आयुर्वेद-प्रामाण्यवत् वेदप्रामाण्यम् अनुमातव्यम्।)

साख्य दर्शन के प्रवर्तक भगवान कपिल ऋषि वेदों के नित्यत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं, "शब्द और अर्थ का सबध नित्य है, इस लिए वेदरूप शब्दराशि नित्य ही होना चाहिए।" इस विधान पर आक्षेपक कहते हैं, "तास्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे"। इस वेदवचन के अनुसार वेद यजनीय (यज्ञ) ईश्वर से उत्पन्न हुए। इस कारण वे नित्य नहीं हो सकते क्यों कि उत्पन्न होने वाला प्रत्येक पदार्थ घटपटादि के समान अनित्य ही होता है- (न नित्यत्व वेदाना कार्यत्वश्रुते (साख्यसूत्र-4-45)।

इस युक्तिवाद में वेदों के नित्यत्व का खडन करने वाले ने भी वेदों का ईश्वरकर्तृकत्व मान्य किया है।

वेद अगर घटपटादि पदार्थों के समान उत्पन्न हुए हैं, तो उनका अपौरुषेयत्व अर्थात् ईश्वरकर्तृकत्व क्यों माना जाये। यह भी प्रश्न उपस्थित किया गया। उस का समाधान करते हुए साख्यदर्शनकार कहते हैं कि वेद पौरुषेय हो ही नहीं सकते, क्यों कि सृष्टि के प्रारंभ में, ऐसा कोई पुरुष अस्तित्व में ही नहीं था जो वेदो की रचना कर सके- (न पौरुषेयत्व, तत्कर्तु) वेदो के पौरुषेयत्व का खडन करते हुए, "सृष्टिनिर्मिति के अवसर पर परमात्मा की स्वाभाविक शक्ति से वेदो का प्रादुर्भाव होता है अत वे "स्वत प्रमाण" हैं- (नित्यशक्त्याभिव्यक्ते स्वत प्रामाण्यम्) इस युक्तिवाद से वेदों का अपौरुषेयत्व साख्य दर्शन में प्रतिपादित किया हुआ है।

इस प्रकार बुद्धकाल के पूर्व काल में ही वेदों का अपौरुषेयत्व, नित्यत्व, स्वत प्रामाण्य इत्यादि विषयों पर बड़े मार्मिक विवाद चलते आए हैं। सभी आस्तिक दर्शनकारों ने अपने सूत्रो तथा भाष्यों द्वारा, वेदविरोधी युक्तिवादो का खडन करते हुए, अपनी विचार शक्ति का परिचय दिया है। उनके सिध्दान्तों का तथा दार्शनिको के मार्मिक युक्तिवादों का ठीक आकलन किए बिना, प्राचीन भारतीयो का वेदविषयक दृष्टिकोण ध्यान में आना सभव नहीं है। अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में दार्शनिक विद्वानो ने जो अद्भुत बुद्धिकौशल्य व्यक्त किया है, उसकी भूरि भूरि प्रशसा अभारतीय विद्वानों ने भी की है। इस सबध में प्रसिद्ध यूरोपीय पडित म्यूर कहते है- "अर्थात् इन दार्शनिको के वाद विवाद जो पढता है उसे उनके युक्तिवाद की तीक्ष्णता, तर्कों की निर्दोषता और प्रासगिक उचित दृष्टान्तो की मौलिकता तथा सजीवता, इन की ठीक कल्पना आए बिना नहीं रहती।"

वेदों का शब्दक्रम

वेदो का अपौरुषेयत्व, नित्यत्व एव स्वत प्रामाण्य, इन सिद्धान्तों का अपने प्रखर तर्कों एव युक्तवादों से प्रस्थापित करने वाले परंपरावादी वैदिक पडितो का और एक आग्रह है कि, वेद-मत्रों के अक्षरों का परपरागत जो क्रम है, वह सर्वथा अपरिवर्तनीय है। उसके एक भी अक्षर, वर्ण या मात्रा में भी लेशमात्र परिवर्तन करने पर वह मत्र "वैदिक" नहीं रहेगा। "अग्निमीळे पुरोहितम्" इस मत्र का "ईळे अग्नि पुरोहितम्" इस प्रकार पाठान्तर करने से अर्थहानि भले ही न हो, परतु उस मंत्र के वैदिकत्व की हानि अवश्य होती है। वैदिक वाक्यों और अवैदिक वाक्यों में यही महत्त्वपूर्ण भेद है। "पात्रम् आहर" इस लौकिक वाक्य की रचना "आहर पात्रम्"- इस प्रकार उलटी करने पर भी कोई दोष नहीं माना जाता। परतु वैदिक वाक्य में इस प्रकार से परिवर्तन करने से उसमें मंत्रत्व नहीं रहता। इसका साम्प्रदायिक कारण यह माना गया है कि, वेद नित्य होने के कारण, उनके शब्दों का क्रम प्रत्येक कल्प में एकरूप ही रहता है। प्राचीन कल्पों के विशिष्ट क्रम की शब्दराशि, कल्पान्तरों के पश्चात् मत्रद्रष्टा के हृदय में उसी अनुक्रम से प्रकट होती है। नए कल्पो के ऋषि नूतन वेदों का निर्माण नहीं करते। वास्तव में ऋषि वेदमंत्रों के कर्ता या निर्माता होते ही नहीं। इसी कारण वेदों का अपौरुषेयत्व सम्प्रदायानुसार माना गया है। इस प्रकार वेदों का अपौरुषेयत्व मान्य करने पर, भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा (प्रतारणा करने की इच्छा) इत्यादि पुरुषकृत दोषों की वेदों में कल्पना भी करना अयोग्य होती है। इसी सर्वंकष निर्दोषता के कारण वेदवाक्यों को आप्तवचनरूप निरपवाद प्रामाण्य साम्प्रदायिकों द्वारा दिया गया है।

साम्प्रदायिकों का वेदों के विषय में और भी एक सिद्धान्त है। उसे बताकर इस विषय को विराम देंगे।

"अग्निमीळे पुरोहितम्। यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातरम्।" इस आद्य वेदमंत्र में भाषा के प्रमुख स्वरों और व्यंजनों का अन्तर्भाव होता है। अत यह आद्य वेदमंत्र ही सर्व वर्णों का अर्थात् वर्णात्मक भाषाओं का मूल है।

प्राचीन वैदिक विद्वानों की वेदविषयक धारणाएं किस प्रकार की थीं, और उनका समर्थन किस प्रकार के युक्तिवादों से किया जाता था इसकी सक्षेपत सामान्य कल्पना प्रस्तुत विवेचन से आ सकती है। हमने यहां अर्वाचीन और प्राचीन दोनों मतों का यथाशक्ति सक्षेपत परिचय दिया है। पाठक अपना मत निर्धारित करें।

8 अथर्ववेद

यज्ञविधि में ऋग्वेदी होता, यजुर्वेदी अध्वर्यु, सामवेदी उद्गाता के अतिरिक्त ब्रह्मा नामक एक चौथा ऋत्विक् रहता है। यह ब्रह्मा चारो वेदो का विशेषज्ञ हो ऐसी अपेक्षा होती है। अत· वह अथर्ववेद का विशेषज्ञ भी होता है। ऋग्, यजुस् और साम इस "वेदत्रयी" से अर्थवेद का स्थान स्वतत्र है। तथापि वैदिको के कर्मकाण्ड में अथर्ववेद का स्थान त्रयी के समान महत्वपूर्ण रहता है। वैदिक वाङ्मय के अनुक्रम में सर्वत्र ऋग्वेद को प्रथम स्थान दिया है। "यज्ञैरथर्वा प्रथम पथस्तते" (ऋ - 1-83-5) इस ऋग्वेद वचन से यह भी सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के मत्रदृष्टा को अथर्वा का ज्ञान था। अर्थात् इस वचन के आधार पर ऋग्वेद का प्राचीनत्व और अथर्व वेद अर्वाचीनत्व मानने वाले आधुनिक विद्वानों का भी खडन होता है।

अथर्ववेद का सपूर्ण नाम है अथर्वाङ्गिरस। यज्ञविधि में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् इस वेद के मन्त्रों का प्रयोग करता है अत· इसे "ब्रह्मवेद" भी कहते हैं।

गोपथ ब्राह्मण (1-4) मे अथर्वण और अगिरस (जिनके नामो से इस चतुर्थ वेद का नामकरण हुआ) के उपपत्ति की एक कथा आती है। तदनुसार, सृष्टि की उपपत्ति के लिए ब्रह्मदेवजी ने जब घोर तपश्चर्या की, तब उनके शरीर से दो स्वेद-प्रवाह बहने लगे, जिनके एक प्रवाम से भृगु ऋषि निर्माण हुए, जिन्हे अथर्वण नाम प्राप्त हुआ और दूसरे प्रवाह से अगिरा नामक ऋषि की उत्पत्ति हुई। इन दो ऋषियों द्वारा पवर्तित मन्त्रराशि को ही अथर्वांगिरस सज्ञा प्राप्त हुई। दूसरी उत्पत्ति के अनुसार, सृष्टि के आरंभ काल मे अग्नि, वायु, आदित्य और अगिरा इन चार ऋषियों के अन्तकरण में संपूर्ण वेदराशि का स्फुरण हुआ। इनमें से अगिरा ऋषिका नाम अथर्वाङ्गिरस वेद के नाम में पाया जाता है। तीसरी उपपत्ति के अनुसार, अथर्वा और अगिरस नाम के दो ऋषि थे, जिन्हें अभिचार मन्त्रों का विशेष ज्ञान था। अथर्वा ऋषि रोगनाशक मत्रों के और अगिरस ऋषि शत्रुनाशक मन्त्रों के ज्ञाता थे। इस प्रकार के आभिचारिक मन्त्रो का प्राधान्य, अथर्वांगिरस की विशेषता मानी जाती है।

अथर्ववेद मे दो प्रकार के मन्त्र है (1) रोग, हिंस्त्रपशु, पिशाच्च, मत्रप्रयोग करने वाले शत्रु इत्यादि के विरोध अथवा विनाश करने मे उपयोगी, और (2) परिवार मे, गाव में तथा इतरत्र शाति स्थापन करने में, शत्रुओं से मित्रता करने में, जीवन में दीर्घ आयुरारोग्य तथा धनसमृद्धि प्राप्त करने में, प्रवास में सरक्षण मिलने में उपयोगी। अर्थात् अथर्ववेद के कुछ मत्र विनाशक और कुछ विधायक स्वरूप के है। भारतीय आयुर्वेद का मूल अथर्ववेद में ही मिलता है। ज्वर, कुष्ट, राजयक्ष्मा, खासी, गजापन, दृष्टिक्षय, शक्तिक्षय, सर्पबाधा, व्रण, बुद्धिभ्रश इस प्रकार की व्याधियों का उपचार करनेवाले मन्त्र इस वेद में होने के कारण आयुर्वेद का मौलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने वालों के लिए अथर्ववेद का अध्ययन उपकारक होता है। उसी प्रकार धर्मशास्त्र के (विशेषत गृह्य सूत्रो के) पुत्रजन्म, विवाह, राज्याभिषेक, मृत्यु इत्यादि विषयों से भी अथर्ववेद के कई सूक्तों का सबध स्पष्ट दिखाई देता है।

अथर्ववेद की सहिता के 20 काण्ड हैं, जिनमे 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक, 739 सूक्त और 5849 मन्त्र हैं। उनमें से लगभग 1200 मन्त्र ऋग्वेद मे मिलते हैं। प्रारभिक 13 काण्डो का विषय जारण, मारण, उच्चाटन से संबंधित है। 14 वें काण्ड में विवाह, 18 वें काड मे श्राद्ध और 20 वें काण्ड में सोमयाग इन विषयो के मन्त्र हैं। इस वेद का षष्ठाश भाग गद्यात्मक है। अन्वेषक मानते हैं कि 19 और 20 वा काड इस सहिता में बाद में जोड़ा गया, क्यों कि 20 वें काड में मात्र ऋग्वेद की ऋचाए है। अथर्ववेदान्तर्गत ऋग्वेदीय ऋचाओ में से पचास प्रतिशत ऋचाएं दशम मडल में मिलती हैं और बाकी प्रथम तथा अष्टम मडल मे मिलती हैं। इसी प्रकार सपूर्ण वेदत्रयी के अनेक मन्त्र आथर्वण सहिता में उपलब्ध होने के कारण उसे त्रयी का सार अथवा मूल मानते हैं।

पतजलि ने अथर्ववेद की नौ शाखाओं का निर्देश (नवधा आथर्वणो वेद) किया है। परतु आज उसकी पैप्पलाद तथा शौनक नामक दो ही शाखाए सायण भाष्य सहित प्राप्त होती हैं। पैप्पलाद शाखा की पाण्डुलिपि प्रो बूल्हर ने प्रथम खोज निकाली। उसके पश्चात् ब्लूमफिल्ड ने उसका छायांकन कर प्रकाशन किया। सन 1870 में काश्मीर-नरेश रणवीरसिह को पैप्पलाद शाखा की एक प्रति उनके ग्रंथ सग्रहालय में मिली। वह भूर्जपत्र पर शारदा लिपि में लिखी थी। उन्होंने डॉ राथ को उपहार रूप में वह प्रति समर्पण की। राथ की मृत्यु के पश्चात् ट्युबिंजन विश्वविद्यालय को वह प्राप्त हुई। उसके अधिकारियों ने सन 1901 में अमेरिका में उसका प्रकाशन किया।

शौनक शाखा का संस्करण, संपादन और प्रकाशन (सायणभाष्य सहित) सन 1856 में राथ और व्हिटनी इन दो पाश्चात्य पंडितों ने किया। ग्रिफिथ ने अथर्ववेद का पद्यानुवाद प्रकाशित किया, जिसकी प्रस्तावना में वेदविषयक भरपूर जानकारी उन्होंने दी है।

अथर्ववेद से संबंधित अवान्तर साहित्य में गोपथ ब्राह्मण, कौषीतकी ब्राह्मणारण्यक, वैतान श्रौतसूत्र, कौशिक्य गृह्यसूत्र, खादिर गृह्यसूत्र, पैठीनसी धर्मसूत्र और श्रीशकराचार्य के मतानुसार प्रश्न, मुण्ड, माडूक्य तथा नृसिंहतापिनी इन चार उपनिषदों का अन्तर्भाव होता है। प्रश्नोपनिषद पैप्पलाद शाखीय और मुण्ड-माण्डूक्य शौनक शाखीय हैं। मुक्तकोपनिषद में 13 अथर्वण उपनिषदों के नाम दिए हैं। उनके अतिरिक्त कौषीतकी गृह्यसूत्र, गोभिल गृह्यसूत्र, दैवतसहिता, दैवत षडविंश ब्राह्मण, द्राह्यायण गृह्य सूत्रवृत्ति इत्यादि ग्रंथ संपदा आथर्वण वाङ्मय में अन्तर्भूत होती है।

अथर्ववेद की 14 शाखोपशाखाओं में पिप्पलाद और शौनक प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त चारणविद्या नामक शाखा के चार भेद माने गए हैं। नरहरि व्यकटेश शास्त्री कृत चतुर्वेदशाखानिर्णय नामक ग्रंथ में, वेदों की शाखाओं एव उपशाखाओ के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

वेदविस्तार

मत्स्यपुराण में कहा है कि "एक आसीत् यजुर्वेद" याने प्रारंभ में केवल एकमात्र यजुर्वेद था। वायु और विष्णु पुराण में भी यही कहा है। भगवान व्यास ने यज्ञविधि की व्यवस्थानुसार चार संहिताए तैयार की और पैल को ऋग्वेद, वैशपायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद एव सुमतु को अथर्ववेद की संहिता पढा कर उन्हें अपने अपने शिष्य प्रशिष्यों द्वारा वेद का सर्वत्र प्रचार करने का आदेश दिया।

विविध प्रकार के यज्ञों के विधि-विधानों की ठीक व्यवस्था के लिए ब्राह्मण ग्रथों की निर्मिति का कार्य भी भगवान वेद व्यास ने ही किया। उनके द्वारा जिस शिष्यपरपरा का विस्तार हुआ उनके कारण वेदों की अनेक शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार हुआ, जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक पुराणो में तथा भागवत और महाभारत के शातिपर्व (अध्याय 342) में मिलता है। तथापि इस वेदविस्तार की व्यवस्थित जानकारी के लिए चरणव्यूह नामक तीन ग्रथ प्रसिद्ध हैं (1) शौनक कृत- इसपर काशी-निवासी महीदास ने सन 1556 में भाष्य लिखा। (2) कात्यायन कृत- इसपर योगेश्वर उपनाम के त्र्यबक शास्त्री नामक विद्वान ने 17 वीं शताब्दी में टीका लिखी। (3) व्यास कृत।

दशग्रंथ

प्राचीन परपरा के अनुसार वैदिक वाड्मय के अध्येताओं में "दशग्रंथी विद्वान" को बडी मान्यता थी। जिस वैदिक छात्रने, (1) सहिता, (2) ब्राह्मण, (3) पदक्रम, (4) आरण्यक, (5) शिक्षा, (6) छद, (7) ज्योतिष, (8) निघटु, (9) निरूक्त और (10) अष्टाध्यायी, इन दस ग्रथों का पाङ्क्त अध्ययन किया हो उसे दशग्रथी विद्वान कहते हैं।

9 आरण्यक वाङ्मय

वैदिक वाङ्मय का सबध जिस वैदिक धर्म से है, उसके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाड नामक दो विभाग हैं। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत नानाविध यज्ञ-यागों का विधान किया है, जिसका सविस्तर विवेचन ब्राह्मण ग्रथों में मिलता है। इस ब्राह्मण वाड्मय के गद्यपद्यात्मक परिशिष्ट विभाग को 'आरण्यक' सज्ञा दी है। इस विभाग का अध्ययन अरण्य में रह कर करने की परिपाटी थी। उसी कारण इस वाङ्मय को 'आरण्यक' सज्ञा प्राप्त हुई, (अरण्य एव पाठ्यत्वात् आरण्यकमितीर्यते) ऐसी भी एक उपपत्ति बताई जाती है।

यज्ञ-यागों की गूढता और वर्णाश्रमों के धर्माचार यही है आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषय। कुछ उपनिषदो का भी अन्तर्भाव आरण्यकों में होता है। इस कारण आरण्यक और उपनिषदों की निश्चित सीमारेषा बताना असभव सा है।

जिस प्रकार मत्र और ब्राह्मण इन दोनों को मिलाकर "वेद" कहते हैं, उसी प्रकार आरण्यक और उपनिषद को "वेदान्त" कहते हैं, क्यों कि यह वाङ्मय वेद का अन्तिम भाग है। जिस प्रकार विशिष्ट ब्राह्मण ग्रथों का विशिष्ट वैदिक सम्प्रदाय से संबंध है, उसी प्रकार, आरण्यकों एव उपनिषदों का भी वैदिक सप्रदायों से संबध होता है (देखिए-परिशिष्ट)

ब्राह्मण- आरण्यक और उपनिषद इनका परस्पर संबध निम्न प्रकार से है —

(1) ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण से, ऐतरेय आरण्यक और ऐतरेय उपनिषद संबंधित है।

(2) ऋग्वेद शांखायन (अर्थात कौषीतकी) ब्राह्मण से, कौषीतकी आरण्यक और कौषीतकी उपनिषद सबधित है।

(3) कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण से, तैत्तिरीय आरण्यक और तैत्तिरीय उपनिषद सबधित है। महानारायण उपनिषद भी तैत्तिरीय आरण्यक से सबंधित है।

(4) शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के 14 वें मडल का प्रारंभिक तृतीयाश भाग "आरण्यक" है और बाकी दो तृतीयांश भागों को "बृहदारण्यक उपनिषद" कहते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद सभी उपनिषदों में बडा और अनेक दृष्टि से परिपूर्ण

है। शुक्ल यजुर्वेद के माध्यन्दिन और काण्व इन दोनों शाखाओं के आरण्यक, माध्यन्दिन आरण्यक और काण्व-बृहदारण्यक नाम से प्रसिद्ध हैं। इन दोनों बृहदारण्यकों में विशेष अतर नहीं है।

(5) सामवेद के ताण्डय ब्राह्मण से छादोग्य उपनिषद सबधित है। छादोग्य का प्रारंभिक भाग आरण्यक के समान है।

(6) सामवेद की जैमिनीय शाखा का जैमिनीय-ब्राह्मणोपनिषद्ब्राह्मण ही "तलवकार आरण्यक" नाम से प्रसिद्ध है। इस ब्राह्मण मे आरण्यक और उपनिषद का अन्तर्भाव हुआ है।

ऐतरेय-आरण्यक : सपूर्ण आरण्यक वाङ्मय में ऋग्वेद के ऐतरेयारण्यक को विशेष महत्व दिया जाता है। सन 1876 में सत्यव्रत सामाश्रमीजी, सायणभाष्य सहित इसका प्रथम मुद्रण किया। सन 1909 मे कीथ ने अग्रेजी अनुवाद के साथ उसका प्रकाशन किया। इस आरण्यक पर षड्गुरु शिष्य की "मोक्षप्रदा" नामक टीका का निर्देश मिलता है, परतु वह टीका उपलब्ध नहीं है।

इसमें कुल अठराह अध्यायों का पाच भागों में वर्गीकरण किया है और प्रत्येक अध्याय का विभाजन अनेक खडों मे किया है। प्रथम आरण्यक में गवामयन, महाव्रत, प्रात.सवन, माध्यदिन सवन और सायसवन का वर्णन है।

द्वितीय आरण्यक के 4, 5, 6 अध्यायों को ही "ऐतरेय उपनिषद" कहते हैं।

तृतीय आरण्यक में निर्भुज और प्रतृण्ण सहिता (सधि) के भेद और स्वर, स्पर्श, उष्म आदि वर्णों का विवेचन किया है।

चतुर्थ आरण्यक में ऋचाओं का सकलन और पचम में महाव्रत का सवन तथा निष्कैवल्य शस्त्र (अर्थात् वैदिक स्तोत्र) का विवेचन किया है।

इन पाच आरण्यकों में से पहले तीन आरण्यकों का प्रचार ऐतरेय महीदास ने, चौथे का अश्वलायन ने और पाचवे का शौनकाचार्य ने किया है ऐसा माना जाता है। ऐतरेय आरण्यक के विषय-प्रतिपादन से आरण्यकों मे प्रतिपादित विषयों की स्थूल रूपरेखा समझ में आ सकती है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद का शाखायन (कौषीतकी), कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय और शुक्ल यजुर्वेद का बृहदारण्यक वानप्रस्थाश्रमी वैदिकों के लिए महत्वपूर्ण है। यज्ञादि महाव्रतों का और होत्रों का विवरण यही सारे आरण्यकों का प्रमुख विषय है।

10 उपनिषद् वाङ्मय

वेदान्त वाङ्मय मे दशोपनिषद शब्दप्रयोग सर्वत्र रूढ है।

"ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुड-माण्डूक्य-तित्तिरि । छान्दोग्यम् ऐतरेय च बृहदारण्यक तथा।।

इस प्रसिद्ध श्लोक में उन दशोपनिषदो का परिगणन हुआ है।

श्रीशकराचार्यजी ने अपने अद्वैत वेदान्त विषयक भाष्यो मे इन दस उपनिषदो के अतिरिक्त श्वेताश्वतर, महानारायण, मैत्रायणी कौषीतकी और नृसिहतापिनी इन अवातर पाच उपनिषदों के भी वचन उद्धृत किए हैं। अत उनका भी दशोपनिषदो के समान ब्रह्मज्ञान में प्रामाण्य माना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता को उपनिषद की मान्यता है। इस प्रकार प्रमाणभृत उपनिषदा की सख्या केवल दस ही नहीं है।

मुक्तोपनिषद नामक ग्रथ में 108 उपनिषदों के नाम उल्लिखित हैं और चार वेदों के अनुसार उनका वर्गीकरण भी किया है जैसे -
ऋग्वेद 10 उपनिषद। कृष्ण यजुर्वेद . 32 उपनिषद,। शुक्ल यजु 19 उपनिषद। सामवेद 16 उपनिषद और अथर्ववेद 31 उपनिषद।
वेदों की प्रत्येक शाखा का एक एक उपनिषद माना जाता है। मुक्तकोपनिषद में कहा है कि आध्यात्मिक साधक ने आत्मसमाधान के लिए ईशोपनिषद से प्रारभ करते हुए केन, कठ, प्रश्न इस क्रमानुसार उपनिषदो का स्वाध्याय करना चाहिए। दस उपनिषदो से समाधान प्राप्त नहीं हुआ तो सत्ताईस, बत्तीस, अडतीस अथवा अन्त मे 108 उपनिषदो का अध्ययन करना चाहिये। इसका अर्थ ब्रह्मजिज्ञासा पूर्ण होने तक साधक ने उपनिषदों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए।

मुक्तोपनिषद के वर्गीकरण में वैदिक और अवैदिक इस प्रकार का उपनिषदों का भेद नहीं माना है। अवैदिक माने गए उपनिषदों का अन्तर्भाव सामान्यत अथर्ववेदीय उपनिषदो मे होता है। उनका सबध पुराण और तत्रशास्त्र से होता है और उनमे दार्शनिकता की अपेक्षा धार्मिकता पर अधिक बल दिया गया है। डायसन नामक पाश्चात्य मनीषी ने, विषयों की दृष्टि से उत्तरकालीन "अथर्ववेदीय उपनिषदों" का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है

(1) वेदान्तसिद्धान्तपरक प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, गर्भ, गारुड इत्यादि।
(2) योगसिद्धान्तपरक अमृतबिन्दु, छुरिका, नाद, बिन्दु इत्यादि।
(3) सन्यासधर्मपरक . आश्रम, सन्यास, सर्वसार, ब्रह्म, इत्यादि।
(4) विष्णुस्तुतिपरक कैवल्य, नीलरूद्र, अथर्वशिरस् इत्यादि।

वैदिक उपनिषदो में से ईश, केन, कठ, मुडक, श्वेताश्वर और महानारायण की रचना छन्दोबद्ध तथा साहित्यिक गुणो से युक्त है और इनमें आध्यात्मिक विचारो का स्थैर्य विशेष रूप में दिखाई देता है।

अथर्ववेदीय उपनिषद वाङ्मय उत्तरकालीन और बहुसख्याक है जिसमें गर्भ, पिण्ड, आत्मबोध इत्यादि उपनिषद विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

उपनिषद वाङ्मय के अन्तर्गत अधिकतम 250 तक उपनिषदो का अन्तर्भाव होता है, जिनमें श्रीशकराचार्य के उत्कृष्ट भाष्यग्रंथों के कारण ईश, केन, कठ इत्यादि दस और ग्यारहवा श्वेताश्वतर विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त अमृतबिंदू, ध्यानबिंदु, कैवल्य, गर्भ, गोपालतापनी, रामपूर्वतापनी, नृसिहोत्तरतापनी, छुरिका, जाबाल, संन्यास, नारायणीय, महानारायण, मैत्री, योगतत्त्व, सर्व, वज्रसूची इत्यादि 32 उपनिषदो को भी विशेष महत्त्व दिया जाता है।

वैदिक वाङ्मय में जिस "विद्या" का प्रतिपादन हुआ है उसके (1) परा और (2) अपरा नामक दो विभाग किए जाते हैं। चार वेदो को "अपरा" विद्या और जिसके द्वारा परब्रह्म का साक्षात्कार होता है उसे "परा" विद्या कहा है- (तत्र अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेद अथर्वाङ्गिरस ---। परा च सा यया तदक्षरम् अधिगम्यते (मुण्डकोपनिषद)। इसी परा विद्या को ब्रह्मविद्या अथवा "उपनिषद्" कहते हैं।

व्याकरण के अनुसार "उपनिषद्" शब्द उप + नि+सद् धातु को क्विप् प्रत्यय लगा कर सिद्ध होता है। उन प्रत्येक का अर्थ - उप = उपगम्य, उपलभ्य। नि=नितरा, नि शेषेण। सद् (मूल धातु षद्लृ) = (1) विशरण (नाश करना), (2) गति (गमन करना), (3) अवसादन (शिथिल करना) इस प्रकार भाष्यकारो ने विशद किया है। तदनुसार उपनिषद् शब्द के घटकावयवो का अर्थ जोड कर, संपूर्णतया तीन अर्थ व्यक्त होते हैं - (1) (उप) गुरु के पास जा कर, जिसका (नि) निश्चय से परिशीलन करने पर, अविद्या (अर्थात जन्म-मरण का बीज) का सद् नाश होता है, ऐसी मोक्षदायक विद्या)

(2) गुरु के पास जाकर जिसकी प्राप्ति, मुमुक्षु का निश्चित ही ब्रह्मपद तक गमन कराती है ऐसी मोक्षदायक विद्या।

(३) गुरु के पास जाने पर, जिसकी प्राप्ति होने से, जन्ममरण का उपद्रव शिथिल होता है (सद्) ऐसी स्वर्गदायिनी अग्निविद्या।

तात्पर्य "उपनिषद्" इस स्त्रीलिगी शब्द का पारिभाषिक अर्थ, मानव का आत्यतिक कल्याण करने वाली विद्या का प्रतिपादन करने वाले प्राचीन वैदिक वाङ्मयान्तर्गत ग्रन्थ- (उपनिषदिति विद्या उच्यते। तच्छीलिना गर्भ-जन्म-जरादि- निशातनात् तदवसानाद् वा, ब्रह्मणो वा उपगमयितृत्वात उपनिषद्। तदर्थत्वाद् ग्रन्थोऽपि उपनिषद् (तैत्तिरीयभाष्य की प्रस्तावना)

उपनिषद् शब्द का उपासना (धारणा, ध्यान) अर्थ में भी श्रीशकराचार्यजी ने अपने भाष्यो में यत्र तत्र प्रयोग किया है। इस का कारण उपनिषदो में ब्रह्मप्राप्ति की विविध प्रकार की उपासनाओ का प्रतिपादन किया गया है।

वैदिक धर्म का स्वरूप प्रवृत्तिपर और निवृत्तिपर है। प्रवृत्तिपर (अभ्युदायात्मक) वैदिक धर्म का मार्गदर्शन मन्त्र-ब्राह्मणात्मक सहिताओ मे और निवृत्तिपर (नि श्रेयसात्मक) धर्म का मार्गदर्शन उपनिषदात्मक वैदिक वाङ्मय मे मिलता है।

उपनिषदो को ही "वेदान्त" सज्ञा प्राप्त होने का एक कारण यह है कि, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन वैदिक धर्म के तीन काण्डो मे से अतिम ज्ञानकाण्ड (और उसका साधनभूत उपासनाकाण्ड) का प्रतिपादन उपनिषद् वाङ्मय मे किया गया है। दूसरा कारण-ईशावास्यादिक उपनिषद, वैदिक सहिताओ के अत में ग्रथित हुए हैं।

उपनिषदो मे प्रतिपादित आध्यात्मिक सिद्धान्तो एव साधनाओ का स्वरूप विशद करने की दृष्टि से चारो वेदों के विशिष्ट उपनिषदो का सक्षेपत परिचय यहा प्रस्तुत किया है।

ऋग्वेदीय उपनिषद

(1) ऐतरेय - इस उपनिषद में केवल तीन ही अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कहा है कि इस जगत् की निर्मिति जिस परब्रह्म से हुई, उसी का उत्कृष्ट व्यक्त स्वरूप है मानव। मानव के इन्द्रियो, मन और हृदय इन तीन करणस्थानो में आत्मा का निवास होता है और तदनुसार वह जागृति, स्वप्न एव सुषुप्ति (अर्थात गाढतम निद्रा) इन तीन अवस्थाओ का अनुभव पाता है।

द्वितीय अध्याय मे, आत्मा के त्रिविध जन्मो का विचार किया है। इस ससार (अर्थात जन्म-मरण चक्र) का अत अथवा स्वर्गस्थ अमरत्व या पूर्णावस्था ही मोक्ष है। वही मानव का परम पुरुषार्थ है। तृतीय अध्याय में आत्मस्वरूप का वर्णन करते हुए "प्रज्ञान" ही ब्रह्म है यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।

(2) कौषीतकी उपनिषद— ऋग्वेद के कौषीतकी ब्राह्मण में विशिष्ट 15 अध्यायो को कौषीतकी आरण्यक मानते हैं। उस आरण्यक के तीन से छ जिन चार अध्यायो का विभाग है-उसी का नाम है कौषीतकी उपनिषद। इसमें प्रधानतया मरणोत्तर आत्मा के दो मार्गों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में प्रज्ञा को ही आत्मा का प्रतिक कहा है। अंतिम दो अध्यायों में ब्रह्मवाद का प्रतिपादन है। कौषीतकी उपनिषद की विशेषता, ज्ञान से कर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने में मानी जाती है।

सामवेदीय उपनिषद

(1) छान्दोग्य— छन्दोग शब्द का अर्थ है सामवेद। इसी कारण "छान्दोग्य" का अर्थ होता है- "छन्दोगम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थ" अर्थात् सामवेद से सबंधित ग्रथ। इसके कुल आठ अध्यायो में पद्रह से चौबीस तक खड हैं। उपनिषद वाङ्मय जिस अध्यात्म विद्या या ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करता है उसको विशद एव सुगम करनेवाली रोचक तथा उद्बोधक कथाएं छादोग्य में अधिक मात्रा में मिलती हैं। छादोग्य उपनिषद का अध्यायानुसार सक्षिप्त साराश -

अध्याय-1 इस अधयाय के 13 खड हैं। आरभ में "ओम् इति एतद् अक्षरम् उद्‌थीथम् उपासीत"- (अर्थात ओम् यह अक्षर ही उद्गीथ याने सामवेद है, इस निष्ठा से उसकी उपासना करनी चाहिए ऐसा अर्थ इस मत्र से होता है। आगे चलकर साम के अवयवो का विवेचन करते हुए उन अवयवो की उपासना का फल बताया है। अतिम 13 वे खड में स्तोभाक्षरो का फल सहित विवेचन किया है। स्तोभाक्षर का अर्थ है, सामवेद की गेय ऋचाओ के अतिरिक्त, हाइ, हाऊ, हाउ, ऊ, हिं इत्यादि अर्थहीन अक्षरो का समूह। इन की उपासना से कुछ अदृष्ट फल का साधक को लाभ होता है।

अध्याय- 2 इस अध्याय मे कुल 24 खड हैं। प्रथम खड मे, हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाच प्रकार के सामो की उपासनाविधिया बताई है। बाद मे 8 वे मे 21 वे खड तक आदित्यादि सात सामो की उपासना बता कर, आदित्य के किस अवयव को किस सामावयव का रूप प्राप्त होता है यह सिद्ध किया है। 22 वें खड मे किस देवता का किस स्वर में स्तुतिगान करना यह बताया है। 23 वे खड मे, सामावयव उद्गीथ ओकार और शुद्ध ओकार में भेद सिद्ध किया है। 24 वें खड मे प्रात सवन, मध्याह्न सवन और सायसवन, की देवताए और उनका उपासनाओ का फल इस विषय का प्रतिपादन किया है।

अध्याय 3 19 खडों के इस अध्याय मे आदित्योपासना और उसका फल इस विषय का प्रतिपादन किया है। प्रारभिक पाच खडो मे यज्ञफल और कर्मफल बताते हुए, तीनों सवनकर्मो के समय के सूर्य के रूप बताए हैं। आगे अध्याय समाप्ति तक आदित्य ही ब्रह्म है यह सिद्ध किया है।

अध्याय- 4 सत्रह खण्डो के इस अध्याय मे वायु और प्राण ब्रह्म के चरण होने के कारण उनकी उपासना का महत्त्व प्रतिपादन किया है। प्रारंभिक नौ खडो में जनश्रुति की कथा के आधार पर, विद्यादान और उसकी विधि का प्रतिपादन किया है। दृढश्रद्धा, अन्नदान और विनय अध्यात्मविद्या की प्राप्ति के तीन साधन बताए हैं। दसवे अध्याय से लेकर आगे श्रद्धा और तप ये दो ब्रह्म प्राप्ति के श्रेष्ठ साधन हैं, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन, उपकोसल सत्यकाम जाबालि की कथा द्वारा किया है। अन्त मे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होने पर साधक किस प्रकार ब्रह्मस्वरूप होता है यह बताकर अध्याय की समाप्ति की है।

अध्याय- 5 इसमे 25 खण्ड है। चौथे अध्याय मे जिस "देवयान" का निवेदन किया है उसकी प्राप्ति "पचाग्निविद्या" का ज्ञान रखने वाले को किस प्रकार होती है यह प्रमुखता से बताया है। प्राण और इन्द्रियो के सवाद द्वारा प्राण की श्रेष्ठता सिद्ध की है। तीसरे खण्ड मे श्वेतकेतु की कथा के आधार पर ससार का दु खस्वरूप प्रतिपादन किया है। 11 वे खण्ड से 24 खण्ड तक प्राचीनशाल इत्यादि पाच विद्वानो ने आत्मा और ब्रह्म का निर्णय किया है।

अध्याय- 6 इसमे 15 खण्ड हैं, जिन मे आरुणि ने पुत्र श्वेतकेतु की कथा द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता का उद्‌बोध किया है। इसी श्वेतकेतु की कथा में एक मूलभूत सत्य का ज्ञान होने पर, सभी ज्ञान प्राप्त होता है यह सिद्धान्त अनेक दृष्टान्तो द्वारा बताया है। आत्मज्ञानी पुनर्जन्म से मुक्त होता है और अज्ञानी पुनर्जन्म के फेरे में घूमता है इसकी चर्चा भी अध्याय में की है।

अध्याय- 7 इस अध्याय मे ब्रह्म की जिन सोलह स्वरूप मे उपासना होती है, उनका निरूपण किया है।

अध्याय- 8 इसके पूर्वार्ध मे, अन्तकरण तथा बाह्य विश्व मे निवास करने वाले आत्मतत्त्व को प्राप्त करने की विधि बतायी है और उत्तरार्ध मे आत्मा के सत्य तथा असत्य स्वरूप का परिचय दिया है। जाग्रत, स्वप्न और सुषप्ति ये आत्मा की तीन अवस्थाए है। सुषुप्ति की अवस्था मे वह अपने निजी विशुद्ध स्वरूप मे रहता है, यही सारे प्रतिपादन का अभिप्राय है।

केनोपनिषद - इसका सबध सामवेद की तलवकार शाखा से होने के कारण और (सामवेदीय) तलवकार ब्राह्मण ग्रथ में इस का अन्तर्भाव होने के कारण, इसको "तलवकार उपनिषद" भी कहते हैं। इस का प्रारभ, "केनेषित पतति प्रेषित मन" इस प्रथम वाक्य के "केन" शब्द होने से इसे केनोपनिषद कहते हैं। इस के कुल चार खण्डो में प्रतिपादित विषयो का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है

खण्ड - 1 - आत्मा ही सर्वनियामक किन्तु अज्ञेय और अनिर्वचनीय है। ब्रह्मतत्त्व, वाक् चक्षु, मन इत्यादि इन्द्रियो मे अतीत होने के कारण उसकी उपासना असभव है। लोग जिसकी उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

खण्ड - 2 - बाह्य वस्तुओ के समान ब्रह्म इन्द्रियगोचर न होने के कारण, शब्द स्पर्श इत्यादि विषयो के रूप में उसका ज्ञान नही होता। इसी कारण जो उसे नही जानता वही वास्तव में उसे जानता है और यह समझता है कि मै ब्रह्म को जानता

हूं, उसके लिए ब्रह्म अज्ञात है। इस जन्म में ब्रह्मज्ञान हुआ तो ही जीवित की सार्थकता है। ब्रह्मज्ञान न होने में बडी हानि है। बुद्धिमान लोग प्राणिमात्रों में ब्रह्म का साक्षात्कार पा कर अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति करते हैं।

खण्ड - 3 .- इसके यक्षोपाख्यान में अग्नि, वायु, इन्द्र इत्यादि देवताओं का सारा सामर्थ्य वस्तुत· उनका निजी सामर्थ्य नहीं होता, अपि तु परब्रह्म का ही होता है, यह सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। उस सर्वशक्तिमान ब्रह्म तत्त्व का ज्ञान गुरु के उपदेश द्वारा ही होता है, यह सिद्धान्त हैमवती उमा के उपदेश से सूचित किया है। जस प्रकार नेत्रों का निमेष और उन्मेष अथवा बिजली का चमकना तत्काल होता है अथवा अन्त करण को प्रतीति तत्काल होती है, उसी प्रकार गुरुपदेश से मंदबुद्धि पुरुष को भी ब्रह्मज्ञान तत्काल होता है। साथ ही ब्रह्मज्ञान के लिए सांग वेदाध्ययन, सत्य, तप, दम और अग्निहोत्रादि कर्म, इनकी भी आवश्यकता होती है। तप, दम और कर्म ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा (आधारभूमि) है और वेद-वेदाङ्ग तथा सत्य उसका आयतन (निवासस्थान) है। ब्रह्मविद्या से ही पापों का क्षय होकर मानवजीव अनन्त और महान् स्वर्ग में स्थिरपद होता है, अर्थात् वह जन्ममरण के चक्र से मुक्त होता है।

केनोपनिषद लघुकाय ग्रंथ है तथापि भगवान् शकराचार्य ने उस पर दो भाष्य- (प्रथम पदभाष्य और बाद में वाक्यभाष्य) लिखकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। वाक्यभाष्य में सर्वत्र (विशेषत· तृतीय खड के प्रारंभ में) युक्तिवादों से विरोधी मतों का खंडन और अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन जगद्गुरु ने किया है।

कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद

काठकोपनिषद - कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा आज लुप्त है तथापि उस शाखा का काठकोपनिषद प्रसिद्ध है। पाणिनि के " कठचरकात् लुक्" इस सूत्र से, चरक के समान कठ यह किसी ऋषि का नाम प्रतीत होता है। इस उपनिषद में वाजश्रवस् ऋषि के पुत्र नचिकेता को मृत्यु द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान प्रतिपादन किया है।

कठोपनिषद के दो अध्यायों का "वल्ली" नामक उपप्रकरणों में विभाजन किया है।

प्रथमवल्ली - वाजश्रवा ऋषि ने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान करते हुए क्षीण जीर्ण गायो का दान देना शुरू किया। तब पुत्र नचिकेता ने प्रश्न किया "पिताजी" आप मेरा दान किसे करेंगे। यही प्रश्न उस बालक ने बार बार पूछा, तब चिढ़ कर पिता ने कहा "मृत्यवे त्वा ददामि" - मै तेरा दान मृत्यु को दूंगा। नचिकेता यमराज के भवन में पहुच गया। तीन दिन तक उपोषित रहते हूए नचिकेता ने उनकी प्रतीक्षा की। वापस लौटने पर यमराज ने उसे तीन वर प्रदान किए। इसमें नचिकेता ने मरणोत्तर आत्मा की गति के बारे में प्रश्न पूछा। इस गूढ प्रश्न का उत्तर टालने के हेतु नचिकेता को कई प्रलोभन बताए गए। नचिकेता ने उन्हें नकारा। उसकी तीव्र विरक्ति और जिज्ञासा देख कर मृत्युदेव ने उसे आत्मज्ञान बताया। उपनिषदों के अनेकविध उपाख्यानो में कठोपनिषद का यह नचिकेतोपाख्यान अतीव रोचक एव लोकप्रिय है।

द्वितीयवल्ली - मनुष्य जीवन में श्रेय और प्रेय दोनों की प्राप्ति होती है। प्रेय का त्याग कर, जो श्रेय का अर्थात् ब्रह्मज्ञान का स्वीकार करता है उसका हित होता है। जो प्रेय का पीछा करता है, वह बारबार मृत्यु का शिकार होता है। आत्मज्ञान या ब्रह्मविद्या की प्राप्ति केवल तर्क द्वारा नहीं होती। अनुभवसम्पन्न आचार्य के उपदेश से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। आत्मज्ञान से मानव हर्ष और शोक से विमुक्त होकर परम आनद का अनुभव पाता है।

ओंकार ही नित्य शाश्वत अविनाशी ब्रह्मतत्त्व का आलंबन है। "अणोरणीयान् महतो महीयान्"- आत्मस्वरूप ब्रह्म का ज्ञान, वैराग्यसम्पन्न और इन्द्रियजयी पुरुष को ही होता है। उस ज्ञान से वह शोकमुक्त होता है।

तृतीयवल्ली - विद्या और अविद्या इन में स्वरूपभेद और फलभेद विशद करने के लिए रथरूपक का वर्णन —

"आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च।। इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्।।

(1-3-4)

इन मन्त्रों में किया है जो अत्यत समर्पक है। रथरूपक में बुद्धि को सारथी कहा है। संसारी आत्मा का परमपद तक प्रवास निर्विहन होने के लिए, इन्द्रियरूप अश्वों को विषयमार्ग पर सम्हालने वाला बुद्धिरूप सारथी "विज्ञानवान्" (आत्मानात्मविवेकयुक्त) और समाहित (स्थिर) होना आवश्यक है। उसमें दोष रहा तो "रथी" (आत्मा) परमपद तक न पहुंचते हुए, जन्म मरण के चक्र में फस जाता है।

इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मन । मनसस्तु परा बुद्धि बुध्देरात्मा महान् परः।।

महत· परमव्यक्तम् अव्यक्तात् पुरुष· परः। पुरुषान्न पर किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।। (क्र 1-3-11)

इन मन्त्रों में इन्द्रियां और उनके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, अव्यक्त (अर्थात् मूल प्रकृति) इन सब से परे जो सूक्ष्मतम पुरुष तत्त्व है, वही जीव का परम प्राप्तव्य अथवा गन्तव्य स्थान है। यह परम तत्त्व समस्त भूतमात्र में निगूढ है, फिर भी

अविद्या (माया) के विचित्र प्रभाव के कारण उसका आकलन होना असभव है। परतु एकाग्र बुद्धि द्वारा सूक्ष्मदर्शी साधक उसका आकलन कर सकता है। इस लिए कठोपनिषद की इस वल्ली मे लय-चिन्तन की साधना का कठिन अभ्यास बताया है। उस अभ्यास के लिए श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी आचार्य को शरण जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

चतुर्थवल्ली - इन्द्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति बहिर्मुखी होने के कारण, अन्तरात्मा की ओर प्रवृत्त होना दुष्कर है। परतु जिस साधक ने बहिर्मुख इन्द्रियों के व्यापार निरुद्ध कर, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया, उस के लिए कुछ भी ज्ञातव्य नही बाकी रहता। सर्वज्ञ परमात्म तत्त्व से एकत्व होने के कारण, वह भी सर्वज्ञ होता है और अज्ञानमूलक शोक की बाधा उसे कतई नहीं होती।

मनुष्य देह में, अगुष्ठ-प्रमाण हृदय-कमल के अन्तर्गत निर्धूम ज्योति स्वरूप आत्मा का निवास होता है, यह रहस्य जो जानता है, वह अपने शरीर के सबध मे उदासीन हो जाता है। प्रत्येक शरीर में विराजमान आत्मतत्त्व परस्पर भिन्न होता है, ऐसा भेदभाव रखने वाले का अध पात होता है। भेददर्शन से पुनर्जन्म होता है और अभेद-दर्शन द्वारा जन्म-मरण से मुक्तता प्राप्त होती है, इस सिद्धान्त का यहा प्रतिपादन हुआ है।

पंचमवल्ली - नचिकेता का मूल प्रश्न मरणोत्तर जीव की अवस्था के विषय मे था। उस प्रश्न का उत्तर इस वल्ली मे दिया गया है। "यथाप्रज्ञ सभव" इस सिद्धान्त के अनुसार मरणोत्तर जीव को जन्मप्राप्ति होती है, परतु जो साधक इन्द्रियो की बहिर्मुख प्रवृत्ति का निरोध कर, शरीरस्थ हृदयाकाश (अर्थात बुद्धि) में चैतन्यरूप से अभिव्यक्त परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार पाते हैं, उन्हें शाश्वत शाति का लाभ होता है, अन्य किसी को वह लाभ नहीं होता।

षष्ठवल्ली - कार्य के स्वरूप से कारण के स्वरूप का ज्ञान होता है, इस सिद्धान्त के अनुसार, जिस अव्यक्त तत्त्व से संसाररूप अश्वत्थ वृक्ष का विकास हुआ है, वह सनातन होने के हेतु उसका मूल कारण भी सनातन ही होना चाहिए। उस मूल कारण मे विकास की शक्ति भी होनी चाहिए। अर्थात् इस समग्र ससाररूप कार्य की उत्पत्ति, स्थिति और विलय, उस मूल कारण में ही होना चाहिए। घट जिस प्रकार मृत्तिका से विभिन्न नही हो सकता, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड का कोई भी पदार्थ, उसके मूल कारण से (अर्थात् परमात्मतत्त्व से) विभिन्न नही हो सकता। उस सर्वशक्तिमान् परमात्मतत्त्व का जिन्हे ज्ञान होता है, वे "अमृत" होते है और जिन्हें यह ज्ञान नही होता, वे अपनी अपनी वासना के अनुसार पुनर्जन्म के फेरे मे पडते है। अत इसी नरदेह मे परमात्मा का साक्षात्कार पाना ही मानव का परम कर्तव्य है। आत्मसाक्षात्कार की साधना इस अवसर पर मृत्युदेव ने सविस्तर बताई है। इस साधना को ही "योग" कहा है। तदनुसार आत्मज्ञान पानेवाले का शोक नष्ट होता है। यही आत्मज्ञानी का लक्षण है।

कठोपनिषद के अन्त मे अमृतत्व की प्राप्ति के लिए एक गूढ यौगिक साधना बताई है। तदनुसार मनुष्य शरीर मे हृदयस्थान मे निकलनेवाली एक सौ एक नाडियो मे से सुषुम्ना नामक नाडी द्वारा, हृदयस्थ अन्तरात्मा का शरीर से बाहर सक्रमण होने पर, अमृतत्व की प्राप्ति होती है (तयोर्ध्वमायन् अमृतत्वमेति)।

श्वेताश्वतर उपनिषद - कृष्ण यजुर्वेदान्तर्गत इस महत्त्वपूर्ण उपनिषद के प्रवक्ता श्वेताश्वतर ऋषि को तप प्रभाव से और देवप्रसाद से जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ वह उन्होने "अत्याश्रमी" (अर्थात परमहस) ऋषियो को निवेदन किया। इस उपनिषद के छ अध्यायो के 173 मत्रो मे यह तत्त्वज्ञान बताया गया है, जिस मे योग, साख्य, द्वैत, अद्वैत सगुण, निर्गुण इत्यादि विविध तात्त्विक विषयो का अन्तर्भाव हुआ है।

उपनिषदों का अन्तरंग

वेदमत्रो का आध्यात्मिक अर्थ अत्यत गूढ होने के कारण उसे विशद करने के हेतु उपनिषदो का आविर्भाव हुआ। इसका अर्थ यही है कि अध्यात्मविद्या के विषय मे वेदो का जो आशय वही उपनिषदो का भी आशय है। तथापि उपनिषदो के मुख्यतम सिद्धान्त के विषय मे मध्ययुगीन श्रेष्ठ विद्वानो मे तीव्र मतभेद प्रकट हुए। अन्यान्य आचार्यों ने उपनिषदो का रहस्यभूत सिद्धान्त विभिन्न प्रकार बताया है। जैसे- (1) श्री शकराचार्य - अद्वैतवाद, (2) श्री रामानुजाचार्य- विशिष्टाद्वैतवाद, (3) श्री वल्लभाचार्य - विशुद्धाद्वैतवाद, (4) श्रीनिंबार्काचार्य - द्वैताद्वैतवाद (5) श्रीमध्वाचार्य- द्वैतवाद।

इस प्रकार आचार्यो ने परस्परविरोधी सिध्दान्त उपनिषदो से कैसे सिद्ध किए इस विषय मे बडा ही आश्चर्य मालूम होता है और सामान्य स्थूल बुद्धि के जिज्ञासु का सदेह कायम रह जाता है। साम्प्रदायिक लोग अपने अपने आचार्य का सिद्धान्त ही उपादेय मानता है।

उपनिषदो का रहस्य प्रतिपादन करने के हेतु भगवान् बादरायण (व्यास ऋषि) ने ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता की रचना की। परतु उन के भी तात्पर्य के विषय मे आचार्यों ने अपने मतभेद कायम रखे हैं। महापडितो के इस प्रखर मतभेद के कारण, उपनिषदों का सिद्धान्त अब बुद्धिवाद का नहीं अपि तु **श्रद्धा** का विषय बना है।

द्वैतवादी, अद्वैतवादी पक्षों के युक्तिवादों का संक्षेपतः परिचय :-

(1) **द्वैतवाद** - उपनिषद वेदमूलक हैं। वेदों की "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय. (ऋ. 1-164-16) जैसी ऋचाओं में जीवात्मा और परमात्मा का द्वैत स्पष्टतया प्रतिपादन किया है। अर्थात् उपनिषदों में भी उसी द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन होना चाहिये।

अद्वैतवाद - द्वैतवाद के प्रतिकूल अद्वैतवादी कहते हैं कि, "ऐतादात्म्यमिदं सर्वम्, तत् सत्यम् स आत्मा, तत् त्वमसि श्वेतकेतो। (छांदोग्य अ. 6)

"य एवं वेद अहं ब्रह्माऽ स्मीति, स इदं सर्व भवति। तस्य ह न देवाश्च न भूत्या ईशते। आत्मा ह्येषा भवति (बृहदारण्यक)

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वम् ओंकार एव। यच्च अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव (माण्डूक्य)

इत्यादि वेदवचनों में जीवात्मा, परमात्मा और जगत् इनका अभेद अर्थात अद्वैत स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन किया है, अतः अद्वैतवाद ही उपनिषदों का मुख्य सिद्धान्त है।

त्रैतवाद - "ईशावास्यमिदं सर्वम्," "उद्वयं तमस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्" इत्यादि वैदिक मंत्रों में ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन तत्त्वों का स्पष्ट निर्देश होने के कारण "त्रैतवाद" ही वेद-वेदान्त का प्रतिपाद्य सिद्धान्त है।

ज्ञान-कर्म-वादी-उपनिषदों में (1) तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति (श्वेताश्व 6/15) (2) तरति शोकम् आत्मवित् (छान्दोग्य-7-1-3) (3) विद्याऽमृतमश्नुते (ईश-11)। इस अर्थ के अनेक वचन मिलते हैं जिन में ज्ञानमार्ग को ही मोक्षसाधन कहा है।

कर्ममार्गवादी कहते हैं कि- (1) "अपाम सोमम् अमृता अभूम" (2) अक्षय्यं वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति"। इत्यादि अनेक वचनों में कर्ममार्ग को ही अमृतत्व (अर्थात् मोक्ष) की प्राप्ति का साधन कहा है।

ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी- (1) "अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।" (2) तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।" (3) तपो विद्या च विप्रस्य नि श्रेयसकरं परम्। इत्यादि वचनों का प्रमाण लेते हुए, ज्ञान और कर्म का समुच्चय ही मोक्षसाधन मानते हैं।

उपनिषदों में ज्ञान, कर्म, द्वैत, अद्वैत इत्यादि सिद्धान्तों के उपोद्बलक प्रमाण-वचनों का युक्तिपूर्वक समन्वय लगाकर, भाष्यकारों ने अपने अपने सिद्धान्तों की स्थापना की है। इस प्रकार उपनिषदों का मूलभूत सिद्धान्त यह अत्यंत विवाद्य विषय हुआ है। इन विवादों के अनेकविध मार्मिक युक्तिवाद जानने की इच्छा रखने वालों को श्री शंकराचार्यादि भाष्यकारों के ग्रंथों का पांक्त अध्ययन करता आवश्यक है।

भाष्यकारों के शास्त्रार्थ से अलिप्त रहते हुए उपनिषदों के केवल मूलमंत्रों का परिशीलन करने पर एक बात ध्यान में आती है कि सारे ही उपनिषदों में सर्वव्यापी तथा सर्वान्तर्यामी चैतन्यमय परमात्मा का साक्षात्कार करना और जीवात्मा-परमात्मा की एकता का अथवा अद्वैतता की अनुभूति के लिए धारणा और ध्यान की विविध साधनाओं का प्रतिपादन मुख्यतया किया हुआ है।

ये साधनाएं अथवा उपासनाए ही ब्रह्मजिज्ञासुओं के लिए उपनिषदों का विहित आचारधर्म है। वेदों के संहिता-ब्राह्मणात्मक कर्मकाण्ड में प्रतिपादित आचारधर्म और आरण्यक-उपनिषदात्मक ज्ञानकाण्ड में प्रतिपादित आचारधर्म में पर्याप्त अतर है। कर्मकाण्ड में स्वर्गप्रद क्रतु तथा यज्ञ को महत्त्व है, किंतु ज्ञानकांड में अपवर्गप्रद धारणा तथा ध्यान (अर्थात् अंतरंग योग) पर सारा महत्त्व केंद्रित है। कर्मकाण्ड का उद्दिष्ट ही स्वर्गसुख है किन्तु ज्ञानकांड का उद्दिष्ट मोक्षसुख या ब्रह्मानंद है।

परिशिष्ट- ए
वेद और आरण्यक

ऋग्वेद से सबधित	—	ऐतरेय और सांख्यायन आरण्यक।
यजुर्वेद कृष्ण से संबधित	—	तैत्तिरीय, सांख्यायन आरण्यक।
यजुर्वेद शुक्ल	—	बृहदारण्यक
सामवेद	—	(आरण्यक नहीं है)

परिशिष्ट- ओ
वेद और उपनिषद

ऋग्वेद से संबंधित	—	ऐतरेय, माण्डूक्य, कौषीतकी
यजुर्वेद (कृष्ण) से संबंधित	—	तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर
यजुर्वेद (शुक्ल) से संबंधित	—	बृहदारण्यक, ईश
सामवेद से संबंधित	—	केन, छादोग्य
अर्थर्ववेद से संबधित	—	प्रश्न, मुण्डक,

प्रकरण - 3

वेदांग वाङ्मय

वेदों का यथोचित अर्थ जानने में वेदांगों का महत्त्व निरपवाद है। इस संदर्भ में "अग" शब्द का अर्थ "अंग्यन्ते अभीभिः इति अंगानि" अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के जानने में सहायता होती है उसे अग कहते हैं। वेद जैसे दुर्बोध विषय के आकलन में वेदांगों का उपयोग होता है, अत· इस वाङ्मय शाखा का महत्त्व असाधारण है। यह वेदाग साहित्य उपनिषदों के पूर्व निर्माण हुआ था। मुण्डकोपनिषद (1/15) में अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेदों के साथ छ. वेदांगों का उल्लेख यथाक्रम मिलता है ·—

(1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) व्याकरण, (4) निरुक्त, (5) छंद और (6) ज्योतिष। इन छ वेदागों का प्रत्येकश· स्वतंत्र महत्त्व है।

वेदों का अर्थ निर्दोष रीति से आकलन होने के लिए वेदाग नामक वाङ्मय प्राचीन पडितो ने निर्माण किया। पाणिनीय शिक्षा में दो श्लोकों द्वारा छ· वेदागों का आलकारिक पद्धति से वर्णन इस प्रकार किया है —

"छन्द· पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।

शिक्षा घ्राण तु वेदस्य, मुख व्याकरण स्मृतम्।। तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीयशिक्षा 41-42)

इन छ· अगों सहित किया हुआ वेदाध्ययन ही निर्दोष होता है।

1 शिक्षा

शिक्षा को वेदपुरुष का "घ्राण" कहा है— (शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य)। सायणाचार्य ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा का अर्थ, "स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा"— अर्थात् स्वर, वर्ण आदि का उच्चारण के प्रकार जिसमें पढाएं जाते हैं, उसे शिक्षा कहते हैं। वेद के इस अग की ओर वैदिक काल में ही ऋषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ था। ब्राह्मण ग्रथों में शिक्षा से संबंधित नियमों का उल्लेख यत्र तत्र पाया जाता है। तैत्तिरीय उपनिषद की प्रथम वल्ली में शिक्षा के, वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान इन छ अंगों का उल्लेख मिलता है। पाणिनीय शिक्षा में वेदपाठ करने वाले के छ· दोष, "गीती शीघ्री शिर कम्पी तथा लिखितपाठक । अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडते पाठकाधमा.।। (32) इस श्लोक में बताए हैं, और उसके छ गुणों का निर्देश "माधुर्यमक्षरव्यक्ति पदच्छेदस्तु सुस्वर.। धैर्यं लय समर्थश्च षेडते पाठका गुणा ।।33।। इस श्लोक में किया है।

प्रत्येक वेद में कुछ वर्णो के उच्चारण, अलग प्रकार से होते हैं। जैसे मूर्धन्य "ष" का उच्चारण, शुक्ल यजुर्वेद में, विशिष्ट स्थान पर "ख" किया जाता है। इस उच्चारण-भेद का परिचय उन वेदों की अपनी निजी शिक्षा में दिया जाता है।

शिक्षासग्रह नामक ग्रंथ में एकत्र प्रकाशित छोटी बड़ी 32 शिक्षाओं का समुच्चय है। यह शिक्षासंग्रह बनारस सीरीज से युगलकिशोर पाठक के संपादकत्व में सन 1893 में प्रकाशित हुआ है। ये शिक्षाए चारों वेदो की भिन्न भिन्न शाखाओ से सबध रखती हैं। शिक्षाविषयक कुछ महत्वपूर्ण ग्रथों का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया है।

शिक्षा (वेदाग) विषयक ग्रन्थो मे पाणिनीय शिक्षा (श्लोक सख्या 60) याज्ञवल्क्यशिक्षा (श्लोक संख्या 232), वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी, पाराशरी, माण्डव्य, अमोघनन्दिनी, माध्यन्दिनी, वर्णरत्नप्रदीपिका, केशवी, मल्लशर्म, नारदीय, माण्डूकी, आपिशली, चद्रगोमी इत्यादि प्राचीन ग्रथो की गणना होती है। इन सभी शिक्षा-ग्रथों में **पाणिनीय शिक्षा** विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस शिक्षा के रचयिता स्वय सूत्रकार पाणिनि नहीं माने जाते क्यों कि ग्रथ के अंत में पाणिनिस्तुतिपर कुछ श्लोक आते हैं। पाणिनीय शिक्षा पर अनेक टीकाए लिखी गई हैं। याज्ञवल्क्य शिक्षा में वैदिक स्वरो का सोदाहरण प्रतिपादन किया है। वासिष्ठी शिक्षा में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मत्रो की विभिन्नता सविस्तर बताई है।

(1) याज्ञवल्क्य शिक्षा - श्लोक सख्या 232-। इसका सबध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से है। वैदिक स्वरो के उदाहरण, लोप, आगम, विकार तथा प्रकृतिभाव इन चार प्रकारों की सधिया, वर्णो के विभेद, स्वरूप, परस्पर साम्य आदि विषयों का विवेचन इस शिक्षा में किया है।

(2) वासिष्ठी शिक्षा - इसका सबध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी सहिता से है। इस शिक्षा के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद की समग्र सहिता में ऋग्वेदीय मन्त्र 1467 और याजुष मत्र 2823 है। इस सहिता में आने वाले ऋग्मत्र तथा याजुष मत्रों की पृथकता सविस्तर बताई है।

(3) कात्यायनी शिक्षा - श्लोक संख्या 131-। इस पर जयन्तस्वामी कृत संक्षिप्त टीका है।

(4) पाराशरी शिक्षा - श्लोक सख्या 160-।

(5) **माण्डव्य शिक्षा** - शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित। वाजसनेयी संहिता में आने वाले केवल औष्ठ्य वर्णो का ही संग्रह इस शिक्षा की विशेषता है।

(6) **अमोघनन्दिनी शिक्षा** - श्लोक संख्या 130-। इस के संक्षिप्त संस्करण की श्लोक संख्या केवल 17 है। इस में स्वरों का तथा वर्णो का सूक्ष्म विचार किया है।

(7) **माध्यन्दिनी शिक्षा** - इसकी गद्यात्मक आवृत्ति बड़ी और पद्यात्मक छोटी है। इसमें केवल द्वित्व के नियमों का विचार किया है।

(8) **वर्णरत्नप्रदीपिका** - श्लोक संख्या 227-। लेखक-भारद्वाजवंशी अमरेश । समय-अज्ञात । इसमें वर्णों, स्वरों तथा संधियों का सविस्तर विवेचन किया है।

(9) **केशवी शिक्षा** - लेखक- केशव दैवज्ञ। पिता- गोकुल दैवज्ञ। इस शिक्षा के दो प्रकार हैं। पहिली में माध्यन्दिन शाखा से संवाद परिभाषाओं का विवेचन तथा प्रतिज्ञासूत्र के समस्त नौ सूत्रों की विस्तृत व्याख्या उदाहरणों के साथ दी है। दूसरी 2। पद्यात्मक शिक्षा में स्वरविषयक विवेचन है।

(10) **मल्लशर्मशिक्षा** - लेखक- मल्लशर्मा। पिता- अग्निहोत्री खगपति। कान्यकुब्ज ब्राह्मण। श्लोक संख्या- 65-। रचनाकाल ई 1726-।

(11) **स्वरांकुश शिक्षा** - लेखक जयन्त स्वामी। 25 श्लोकों में स्वरों का विवेचन।

(12) **षोडश श्लोकी शिक्षा** - लेखक- अनन्तदेव। शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित।

(13) **अवसाननिर्णय शिक्षा** - लेखक- अनन्तदेव। शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित।

(14) **स्वरभक्तिलक्षणशिक्षा** - लेखक- महर्षि कात्यायन।

(15) **प्रातिशाख्य प्रदीपशिक्षा** - लेखक- बालकृष्ण। पिता- सदाशिव। यह शिक्षा परिमाण में बहुत बड़ी है। इसमें प्राचीन ग्रथों के मतों का निर्देश होने के कारण वैदिक शिक्षा शास्त्र को आकलन के लियी यह ग्रंथ उत्तम माना गया है।

(16) **नारदीय शिक्षा** - सामवेद से सबंधित। स्वरों के रहस्य जानने के लिए यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस पर शोभाकर भट्ट कृत विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है। गौतमी तथा लोमशी नामक अन्य दो शिक्षाए सामवेद से सबंधित हैं।

(17) **माण्डूकी शिक्षा** - श्लोक संख्या 179-। विषय- अथर्ववेद के स्वरों एवं वर्णों का विवेचन उपरिनिर्दिष्ट सभी शिक्षा ग्रथ मुद्रित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रंथ अमुद्रित पड़े हैं। शिक्षा ग्रंथों के पूर्व, आपिशली, पाणिनि तथा चंद्रगोमी द्वारा रचित शिक्षासूत्र निर्माण हुए थे, जिन का निर्देश वाक्यपदीय की वृषभदेव कृत टीका में, व्याकरण की बृहद्वृत्ति में एवं न्यास में मिलता है। चद्रगोमी ने पाणिनि की अष्टध्यायी के आधार पर अपने व्याकरण की जिस प्रकार रचना की, उसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा सूत्रों के आधार पर वर्णसूत्रों की (सख्या 50) रचना की है। आपिशलिकृत शिक्षा सूत्रों के आठ प्रकरणों में स्थान, करण, प्रयत्न, स्थान-पीडन, इत्यादि विविध शिक्षा विषयों का अध्ययन कर डा. सिद्धेश्वर वर्मा ने "फोनेटिक आब्जरवेशन आफ् एन्शन्ट हिंदूज" नामक उत्कृष्ट ग्रथ लिखा है। शिक्षाशास्त्र, इस देश की उच्चारण विषयक प्राचीन गवेषणा की व्याप्ति तथा गहनता का निदर्शन है। इस वेदाग के कारण वैदिक उच्चारण की परपरा इतनी निर्दोष रही है कि, भारत के किसी प्रदेश का वेदाध्यायी अपनी शाखा के अन्य प्रदेशीय वेदाध्यायी के साथ, समान स्वरों में उन मत्रों का उच्चारण कर सकता है। आजकल उच्चारण के स्वरूप को समझने के लिए उपलब्ध यत्रोपकरण प्राचीन काल में नहीं थे। फिर भी वैदिकों के उच्चारण में, समानता रही इसका संपूर्ण श्रेय शिक्षा को ही है।

2 कल्प (वैदिक कर्मकाण्ड)

कल्पसूत्र

वैदिक धर्म का कर्मकाण्ड बड़ा जटिल है। उसका विविध प्रकार से ज्ञान कल्पसूत्रों में प्रतिपादन किया है। कल्प शब्द का अर्थ, जिस मे यज्ञ-यागादि प्रयोग कल्पित याने समर्थित किये जाते हैं उसे कल्प कहते हैं- (कल्प्यन्ते समर्थ्यन्ते यज्ञ-यागादि-प्रयोगाः यत्र इति कल्पः) अथवा (वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्)। इनमें से कुछ सूत्रों को श्रौत सूत्र कहते हैं कारण उनमें श्रुतिविहित यज्ञयागों का विधान और विवरण होता है। दूसरे गृह्यसूत्रों में गृहस्थाश्रमी लोगों के लिए जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों का प्रतिपादन होता है और तीसरे धर्मसूत्रों में सामाजिक, राजनैतिक और पारमार्थिक कर्तव्यों का उपदेश होता है। कल्प नामक वेदांग का सूत्रमय वाङ्मय इस प्रकार त्रिविध होता है। इनके अतिरिक्त चौथे प्रकार के सूत्रों का नाम है शुल्बसूत्र, जिनका संबंध यज्ञीय शिल्पशास्त्र से है।

'ऋग्वेदियों के (1) शांखायन तथा आश्वलायन नामक श्रौतसूत्र हैं, जिन में एक ही प्रकार के कर्मकाण्ड का प्रतिपादन मिलता है। परंतु शांखायन श्रौतसूत्र (जो आश्वलायन सूत्रों से प्राचीन माने जाते हैं) में राजाओं के लिए विहित कुछ महायज्ञ

सविस्तर बताये हैं। शाखायन सूत्र के कुल अष्टादश अध्यायों मे दशपूर्णमास यज्ञ से लेकर वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध इन महायज्ञों का विवरण किया है। इन शाखायन सूत्रो का विवेचन अमृतकृत भाष्य और गोविदकृत टीका मे मिलता है।

आश्वलायन सूत्रों के कर्ता थे आश्वलायन जो शौनक ऋषि के शिष्य थे। ऐसा माना जाता है कि इन गुरु शिष्यो ने ऐतरेय आरण्यक के अतिम अध्याय लिखे। आश्वलायन श्रौतसूत्रों मे ऐतरेय आरण्यक के अनुसार यज्ञयागादि का विवरण दिया है।

सामवेद के मशक (अथवा आर्षेय) श्रौतसूत्र, लाट्यायन श्रौतसूत्र और द्राह्यायण (अथवा दाक्षायण) नामक तीन श्रौतसूत्र मिलते हैं। उनमें मशक सूत्रो में पचविश ब्राह्मण और अनुब्राह्मण के अनुसार सोमयाग की क्रियाओं का परिगणन किया है। लाट्यायन सूत्र भी पचविश ब्राह्मण से सबधित है, परतु द्राह्यायण सूत्र का सबध सामवेद की राणायणीय शाखा से है।

कृष्ण यजुर्वेद से सबधित (1) आपस्तब, (2) हिरण्यकेशी (अथवा सत्याषाढ), (4) बोधायन (यह आपस्तब से प्राचीनतर है), (4) भारद्वाज, (5) मानव (कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी सहिता से इसका सबध है और सुप्रसिद्ध मनुस्मृति की रचना इसी के आधार पर मानी जाती है और (6) वैखानस इन छ श्रौतसूत्रों मे केवल मानव सूत्र मैत्रायणी शाखा से सबधित है। अन्य पाच सूत्र तैत्तिरीय शाखा से सबधित है।

शुक्ल यजुर्वेद के कात्यायन श्रौतसूत्र मे अध्याय सख्या 26 है और उस मे शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित कर्मकाण्ड का प्रतिपादन किया है। इसके 22, 23 और 24 इन तीन अध्यायो मे सामवेद का कर्मकाण्ड मिलता है। इस ग्रथ की निर्मिति सूत्रकाल के अतिम चरण में मानी जाती है। इसका कर्काचार्य कृत भाष्य प्रसिद्ध है। कात्यायन श्राद्धसूत्र नामक ग्रथ मे, श्राद्धविधि का विवेचन 9 कडिकाओं में किया है। उसपर कर्काचार्य, गदाधर और कृष्णमित्र कृत टीकाए हैं। कात्यायन कृत शुल्बसूत्र का वाराणसी मे प्रकाशन हुआ है।

अथर्ववेद का वैतानसूत्र, यजुर्वेद के कात्यायन श्रौतसूत्र से और गोपथ ब्राह्मण से सबधित है। वैतान सूत्र मे किसी भी प्रकार की मौलिकता न होने के कारण उसे अर्वाचीन मानते हैं और उसके प्रणेता ऋषि भी अनेक माने जाते है। अथर्ववेद से सबधित किसी श्रौतसूत्र की आवश्यकता पूर्ण करने के हेतु इसकी रचना मानी जाती है।

चारो वेदो से सबधित श्रौतसूत्रों का अध्ययन याज्ञिक कर्मकाण्ड की यथार्थ जानकारी के लिए आवश्यक होता है। श्रौतसूत्रो में वर्णित यज्ञविधि, यजमान के कल्याणार्थ पुरोहितो द्वारा किए जाते हैं। इन पुरोहितों की सख्या कुछ यज्ञो मे 16 तक होती है। पुरोहितवर्ग के अध पतन के साथ कर्मकाण्डात्मक वैदिक धर्म की ग्लानि होती गई।

श्रौतसूत्रो मे 14 प्रकार के यज्ञकर्मो का विधान किया है, जिन में 7 हविर्यज्ञ और 7 सोमयज्ञ होते है। हविर्यज्ञो मे दर्शपूर्णमास्य और चातुर्मास्य यज्ञों का विशेष महत्त्व है। इनमे अग्निहोत्र अधिक प्रचलित है। इन हविर्यज्ञो मे दुग्धघृत आदि हविर्द्रव्यों की आहुतिया दी जाती हैं।

सोमयज्ञों मे अग्निष्टोम का विधि सुकर होता है। उसमे भी सोलह पुरोहितो की आवश्यकता होती है। सोमयज्ञ के एकाह (एक+अहन्-दिन) द्वादशाह और अनेकाह नामक तीन प्रकार दिनसख्या के अनुसार होते हैं। सोमयाग से सबधित अग्निचयन नामक कर्म सपूर्ण वर्ष तक चालू रहता है। इस कालावधि मे यज्ञ से सबधित विविध प्रकार की सामग्रियों का चयन होता है।

2-अ गृह्यसूत्र वाङ्मय

कल्प नामक वेदाग के अन्तर्गत श्रौतसूत्रो के पश्चात् गृह्यसूत्रो की रचना मानी जाती है। प्रत्येक वेद से सबधित गृह्यसूत्रों का स्वरूप निम्न प्रकार है -

ऋग्वेदीय (1) शांखायन गृह्यसूत्र - इसके छ अध्यायो मे चार अध्याय मौलिक हैं।

(2) शांबव्य गृह्यसूत्र - इसका सबध कौषीतकी शाखा से है। शाखायन श्रौतसूत्र के पहले दो अध्यायो के विषयो का ही दर्शन इसमे होता है, तथापि इसमे पितृविषयक एक स्वतत्र और मौलिक अध्याय मिलता है।

(3) आश्वलायन गृह्यसूत्र - ऐतरेय ब्राह्मण से सबधित इस सूत्र ग्रथ में आश्वलायन श्रौतसूत्रान्तर्गत विषयो का प्रतिपादन कुल चार अध्यायो मे विस्तार से किया है।

सामवेदीय - (1) गोमिल गृह्यसूत्र - कर्मकाण्ड विषयक समग्र सूत्र वाङ्मय मे यह अतिप्राचीन, सर्वांग परिपूर्ण और रोचक ग्रथ माना गया है।

(2) खादिर गृह्यसूत्र - इसका सबध मुख्यतया द्राह्यायण शाखा से है। राणायनीय शाखा मे भी इसका प्रामाण्य माना जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदीय - (1) आपस्तंब गृह्यसूत्र - आपस्तब श्रौतसूत्रो के 26 और 27 वें अध्याय मे इसका अन्तर्भाव होता है परतु 26 वे अध्याय में केवल मत्रपाठ ही होने के कारण, 27 वा अध्याय ही गृह्यसूत्र माना जाता है।

(2) हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र - हिरण्यकेशी कल्पसूत्र के 29 और 30 वें अध्याय में इसका अन्तर्भाव होता है।

(3) **बोधायनगृह्यसूत्र** - यह ग्रथ अप्रसिद्ध है।

(4) **मानव गृह्यसूत्र** - मानव श्रौतसूत्र से इसका अधिकाश संबंध है। "विनायक पूजा" विषयक प्रतिपादन इसकी विशेषता है।

(5) **काठक गृह्यसूत्र** - इसका सबध मानव गृह्यसूत्र और विष्णुस्मृति से है।

(6) **भारद्वाज गृह्यसूत्र** - अप्रसिद्ध है।

(7) **वैखानस गृह्यसूत्र** - इस ग्रथ का आकार बडा है। इसकी रचना उत्तरकालीन मानी जाती है।

कृष्ण यजुर्वेद के उपरिनिर्दिष्ट सात गृह्य सूत्रों मे से तीन ही प्रकाशित हुए हैं।

शुक्ल यजुर्वेदीय - पारस्कर गृह्यसूत्र - इसे वाजसनेय अथवा कातेय गृह्यसूत्र भी कहते हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र से सबधित इस ग्रथ का सुप्रसिद्ध याज्ञवाल्क्यस्मृति पर विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

अथर्ववेदीय - कौशिक गृह्यसूत्र - इस सूत्र ग्रथ में अभिचार इन्द्रजाल, तत्रप्रयोग इत्यादि से सबधित विषयों का अन्तर्भाव है। अन्य वेदो के गृह्यसूत्रों में अनुलिखित और भी विविध विषय इसमें प्रतिपादित किए हैं। वेदकालीन या सूत्रकालीन समाज-जीवन का सपूर्ण चित्र इस प्रतिपादन द्वारा दिखाई देता है।

इस प्रकार के वैदिक सूत्र वाङ्मय मे वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड मे अन्तर्भूत पारिवारिक तथा वैयक्तिक जीवन से सबंधित धर्मविधिविषयक जानकारी सविस्तर प्राप्त होती है। व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक की विविध सस्कारात्मक क्रियाओं से सबंधित अन्यान्य वेदातर्गत मत्रों का विनियोग गृह्यसूत्रकारो ने बताया है। श्रौतसूत्रों में वर्णित यज्ञविधि के लिए गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण इन तीन अग्निकुण्डो की आवश्यकता होती है किंतु गृह्यसूत्रानुसार बताए हुए देवयज्ञ में एक ही अग्निकुण्ड की आवश्यकता होती है।

सपूर्ण गृह्यसूत्र वाङ्मय मे मानव की "सत्त्वशुद्धि" के लिए प्रमुख चालीस सस्कारों का विधान किया है। उनमें 22 प्रकार के विशिष्ट यज्ञो एव जीवन के 18 सस्कारों का अन्तर्भाव होता है। इन 22 यज्ञों में से आठ (पाच महायज्ञ और तीन पाकयज्ञ मिलाकर) यज्ञ गृह्यकर्मात्मक और बाकी चौदह यज्ञ श्रौतकर्मात्मक है। गृहस्थाश्रमी के लिए ये सारे यज्ञ आवश्यक है, परतु उनमें से (1) ब्रह्मयज्ञ (अथवा वेदयज्ञ) - याने वेदों का नित्य पठन, (2) देवयज्ञ - याने प्रति दिन देवताओ के निमित्त आहुति-समर्पण, (3) पितृयज्ञ - अर्थात् पितरो के प्रीत्यर्थ श्रद्धापूर्वक तर्पण, (4) भूतयज्ञ - भूतपिशाचों के निमित्त बलिसमर्पण और (5) मनुष्ययज्ञ (अतिथियज्ञ) - याने अतिथि अभ्यागतों का सत्कार, ये पाच यज्ञ, वैदिक धर्म पर निष्ठा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति ने निरलसता से करने चाहिए, ऐसी कल्पसूत्रों की अपेक्षा है। इन पाच महायज्ञों में भी ब्रह्मयज्ञ सर्वश्रेष्ठ माना गया है जिस मे प्रात सध्या, सायसध्या गायत्रीजप और यथाशक्ति वेदपारायण सर्वथा अपरिहार्य माने गये हैं।

गृह्य संस्कार

उपरिनिर्दिष्ट पच महायज्ञो के व्यतिरिक्त गृह्यसूत्रो में जो विशिष्ट गृह्य सस्कार त्रैवर्णिको के लिए बताए हैं, उनका सक्षेपत. परिचय -

(1) पुसवन - गर्भवती का अपत्य पुत्र ही हो इस निमित्त सस्कार।

(2) जातकर्म - पुत्र जन्म के समय का सस्कार।

(3) नामकरण - जन्म के 12 वे दिन अपत्य का नाम रखना।

(4) क्षुधाकर्म - बालक का अन्नग्रहण।

(5) गोदान - जन्मजात बालो को काटना।

(6) उपनयन - ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के बालक का क्रमश 8 वें, 12 वें और 16 वें वर्ष, द्विजत्वप्राप्ति निमित्त सस्कार। इसे मौजीबंधन भी कहते हैं।

(7) समावर्तन - अध्ययन समाप्ति की विधि

(8) विवाह -

(9) महायज्ञ - उपर बताए हुए पाच यज्ञो का नित्य आचरण।

(10) दर्शपूर्णमास्यादि - विशिष्ट महान यज्ञ याग, वर्षारंभ पर सर्पों को बलि समर्पण, गृहप्रवेश, खेती से संबंधित उत्सव, सांड इत्यादि पशुओं का विसर्जन, पूज्य पुरुषों की जयंती पुण्यतिथी समारोह।

(11) अन्त्येष्टि - 2 साल से छोटे बच्चो का दफन और उनसे बड़े मृतों का दहन।

(12) श्राद्ध - मृत्यु की तिथि पर प्रतिवर्ष मृतात्मा को पिंडदान।

(13) पितृमेध - मृत्यु के एक वर्ष बाद मृत व्यक्ति की अस्थि पर स्मारक निर्माण करना अथवा तीर्थक्षत्र में अस्थिओं का विसर्जन करना।

वैदिक गृह्यसूत्रो में वर्णित अनेक सस्कार आज भी वैदिक भारतीयों के जीवन में देशकालानुसार प्रचलित हैं।

3-आ धर्मसूत्र वाङ्मय

चारों वेदों के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र उपलब्ध होते हैं, परतु धर्मसूत्र नही मिलते। सामवेद का गौतम धर्मसूत्र और कृष्ण यजुर्वेद के आपस्तंब, हिरण्यकेशी तथा बौधायन इन तीन धर्मसूत्रों के अतिरिक्त गौतम, वसिष्ठ, मानव, वैखानस और विष्णु इन नामों के धर्मसूत्र मिलते हैं, परंतु उनका किसी विशिष्ट वेदशाखा से सबध नहीं हैं। ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और अथर्ववेद के अपने धर्मसूत्र नहीं है। सामवेद का एकमात्र गौतम धर्मसूत्र उपलब्ध है और कृष्ण यजुर्वेद के तीन धर्मसूत्र प्रचलित हैं।

(1) आपस्तंब सूत्र - इसमें कृष्ण यजुर्वेदीय आपस्तंब श्रौतसूत्र ग्रंथ के 28 और 29 वें अध्यायो का सक्षेप किया है। बूल्हर के मतानुसार इस ग्रथ की आर्ष शैली के कारण इसका समय ई पू 4 शतक माना है। इसमें त्रैवर्णिक ब्रह्मचारी और गृहस्थों के कर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य-विवेक, तपश्चर्या इत्यादि धर्माचार से संबधित और विवाह, दायभाग इत्यादि अर्थ-काम संबंधित लोकाचार का सविस्तर विवेचन हुआ है।

(2) हिरण्यकेशी धर्मसूत्र - साम्प्रदायिको के मतानुसार हिरण्यकेशी, आपस्तब शाखा की उपशाखा मानी जाती है। आपस्तंबीय धर्मसूत्र से इस ग्रथ का दृढ सबध होने के कारण, उसके विषयो का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होने के लिए यह ग्रथ उपयुक्त माना गया है। हिरण्यकेशी श्रौतसूत्रों के 29 अध्यायों में से 26 और 27 वें अध्यायो के विषय इन सूत्रो में सक्षेपत- बताये हैं। ई 5 वीं शताब्दी में हिरण्यकेशी धर्मसूत्र, आपस्तब से विभक्त हुआ ऐसा विद्वानो का अभिप्राय है।

(3) बोधायन धर्मसूत्र - कृष्ण यजुर्वेद की बोधायन शाखा आज कहीं भी अस्तित्व में नहीं है। परतु 14 वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्य बौधायन शाखीय थे। इसका अर्थ प्राचीन काल में वह शाखा दक्षिण भारत में विद्यमान थी। इस ग्रंथ का बौधायन श्रौतसूत्रों से विशेष संबध नहीं है। इसके विषयो से यह सूचित होता है कि आपस्तब धर्मसूत्र से, यह ग्रंथ पूर्वकालीन है। वर्णाश्रम धर्म, विशेष प्रकार के यज्ञविधि, राजकर्तव्य, न्यायदान, दण्डविधान, मिश्र जातिया, विवाह के प्रकार, स्त्रीधर्म, इत्यादि विषयों का विवेचन बोधायन धर्मसूत्र में हुआ है। धर्मसूत्र विषयक ये तीन ही ग्रथ विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं और वे तीनों कृष्ण यजुर्वेद से सबधित हैं। इनके व्यतिरिक्त अन्य धर्मसूत्र-

(1) गौतम धर्मसूत्र - इसका सबंध किसी कल्प सूत्र से नहीं है तथापि सामवेद की राणायनीय शाखा की गोतम नामक उपशाखा से इस का सबंध लगाया जाता है। कुमारिल भट्ट ने गौतम धर्मशास्त्र का सबध सामवेद के साथ बताया है, इसका कारण गौतम धर्मसूत्र का 26 वा अध्याय सामवेदीय ब्राह्मण में शब्दाश मिलता है। (सामवेदी ब्राह्मण ग्रथो की सख्या है 10-। यह सब से प्राचीनतम धर्मसूत्र माना जाता है।

वसिष्ठ धर्मशास्त्र - तीस अध्यायो का यह ग्रथ गद्यपद्यात्मक है। पद्याश प्राय· त्रिष्टुप् नामक वैदिक छंद में लिखा है। आपस्तंब सूत्र के समान इस में विवाह विषयक छ. विधिया बताई हैं। कुमारिल भट्ट इसे ऋग्वेद से सबधित मानते हैं।

मानव धर्मसूत्र - इसी का पद्यमय आशय मनुस्मृति में मिलता है, और इसके अनेक अवतरण वसिष्ठ धर्मशास्त्र में मिलते हैं।

वैखानस धर्मसूत्र - ई 3 री शताब्दी में इसकी रचना मानी जाती है। चार आश्रमो के कर्तव्यों में वैखानस (सन्यासी) आश्रम के कर्तव्य इसमें सविस्तर बताए हैं। इस ग्रथ का स्वरूप गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र के समन्वय सा है। वैष्णव सम्प्रदायो में इस ग्रथ का आदर होता है।

विष्णु धर्मशास्त्र - ऋग्वेद की कौषीतकी अर्थात् साख्यायन शाखा से इस का सबध है।

शुल्बसूत्र - कल्पसूत्र के उपरिनिर्दिष्ट तीन प्रकारो के अतिरिक्त चौथा प्रकार शुल्बसूत्र कहा जाता है। आपस्तब शाखा के 30 वें प्रश्न के अंतिम प्रकरण का विषय शुल्बसूत्र में समाविष्ट होता है। प्राचीन काल के भूमितिशास्त्र का विकास अथवा आधुनिक भूमिति का मूल स्वरूप इस शुल्बसूत्र द्वारा व्यक्त होता है।

प्रायश्चित्त सूत्र - वैतान (श्रौत) सूत्र का अगभूत ग्रथ है।

परिशिष्ट (अ)

चारों वेदो की सभी शाखा-उपशाखाओं का परिचय उपर दिया है। उसी का संक्षेप में परिचय होने की दृष्टि से प्रस्तुत परिशिष्ट उपयुक्त होगा -

ऋग्वेद

शाकल शाखा	बाष्कल शाखा
(1) ऐतरेय ब्राह्मण	कौषीतकी (सांख्यायन) ब्राह्मण
(2) ऐतरेय आरण्यक	सांख्यायन आरण्यक कौषीतकी उपनिषद
(3) ऐतरेय उपनिषद	(बाष्कल शाखा आज विद्यमान नहीं है)

यजुर्वेद

- शुक्ल
  - काण्व
    - (1) शतपथ ब्राह्मण
    - (2) बृहदारण्यक
    - (3) बृहदारण्यकोपनिषद
      ईशावास्य उपनिषद
  - माध्यन्दिन
    - (१) शतपथ ब्राह्मण
    - (२) बृहदारण्यक
    - (३) बृहदारण्यकोपनिषद
      ईशावास्योपनिषद
- कृष्ण

कृष्ण यजुर्वेद

- तैत्तिरीय
  - (1) तैत्तिरीय सहिता
    तैत्तिरीय ब्राह्मण
  - (2) तैत्तिरीय आरण्यक
  - (3) तैत्तिरीय उपनिषद
- मैत्रायणी
  - (1) मैत्रायणी सहिता
  - (2) मैत्रायणीय उपनिषद
- कठ
  - (1) काठक सहिता
  - (2) कठोपनिषद
- कपिष्ठलकठ
  - (1) कपिष्ठलकठ सहिता
- श्वेताश्वतर
  - (1) श्वेताश्वतर उपनिषद

सामवेद

- I कौथुम
  - (1) (आठ ब्राह्मण)
    - (1) पचविश (2) षडविश
    - (3) सामविधान (4) आर्षेय (5) मत्र
    - (5) देवताध्याय (7) वश
    - (8) सहितोपनिषद
  - (2) छादोग्य उपनिषद
- II जैमिनीय
  - (1) जैमिनीय ब्राह्मण
  - (2) जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण
  - (3) आर्षेय केनोपनिषद
- III राणायनीय
  (इसके ग्रथ नहीं है)

अथर्व वेद

- पैप्पलाद
  - (1) प्रश्नोपनिषद
- शौनक
  - (1) गोपथ ब्राह्मण
  - (2) मुण्डक, माण्डूक्य उपनिषद

परिशिष्ट (आ) वेद और उनसे संबंधित ब्राह्मण ग्रंथ

	ब्राह्मण
(1) ऋग्वेद -	ऐतरेय, कौषीतकी (साख्यायन)
(2) शुक्ल यजुर्वेद -	शतपथ
(3) कृष्ण यजुर्वेद -	तैत्तिरीय, काठक
(4) सामवेद -	पचविंश-षडविंश, सामविधान, संहितोपनिषद, आर्षेय, मत्र, देवताध्याय वश, जैमिनीय, जैमिनीयोपनिषद्
(5) अथर्ववेद -	गोपथ ब्राह्मण

परिशिष्ट - (इ)
वेद और उनसे संबंधित सूत्रवाङ्मय

ऋग्वेद

श्रौतसूत्र (2)
(1) शाखायन
(2) आश्वालायन

गृह्यसूत्र (3)
(1) शाखायन
(2) आश्वालयान
(3) शाबव्य

धर्मसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद

श्रौतसूत्र (6)
(1) आपस्तब
(2) हिरण्यकेशी
(3) बोधायन
(4) भारद्वाज
(5) मानव
(6) वैखानस

गृह्यसूत्र (7)
(1) आपस्तब
(2) हिरण्यकेशी
(3) बोधायन
(4) भारद्वाज
(5) मानव
(6) वैखानस
(7) काठक

धर्मसूत्र (5)
(1) आपस्तब
(2) हिरण्यकेशी
(3) बोधायन
(4) मानव
(5) वैखानम

शुक्ल यजुर्वेद

श्रौतसूत्र
कात्यायन

गृह्यसूत्र
पारस्कर (अथवा वाजसनेय या काटेय)

धर्मसूत्र

सामवेद

श्रोतसूत्र
मशक, लाट्यायन,
द्राह्यायण

गृह्यसूत्र
गौभिल
खादिर

धर्मसूत्र
गौतम

अथर्व वेद

श्रौतसूत्र
वैतान

गृह्यसूत्र
कौशिक

धर्मसूत्र

परिशिष्ट (३) - (सूत्र-वेदसंबंध)

श्रोतसूत्र

ऋग्वेदीय	कृष्ण यजुर्वेदीय	शुक्ल यजुर्वेदीय	सामवेदीय	अथर्ववेदीय
(1) शांखायन	(1) आपस्तंब	(1) कात्यायन	(1) मशक	(1) वैतान
(2) आश्वालायन	(2) हिरण्यकेशी		(2) लाट्यायन	
	(3) बौधायन		(3) द्राह्यायण	
	(4) भारद्वाज			
	(5) मानव			
	(6) वैखानस			

गृह्यसूत्र

ऋग्वेद	कृष्णजुर्वेद	शुक्ल यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
(1) शांखायन	(1) आपस्तब	(1) पारस्कर	(1) गोभिल	(1) कौशिक
(2) आश्वालायन	(2) हिरण्यकेशी	(वाजसनेय अथवा काठक)	(2) खादिर	
(3) शाबव्य	(3) बौधायन			
	(4) भारद्वाज			
	(5) मानव			
	(6) वैखानस (7) काठक			

धर्मसूत्र

ऋग्वेद	कृष्णयजु	शुक्ल यजु	साम	अथर्व
	(1) आपस्तंब			
	(2) हिरण्यकेशी			
	(3) बौधायन			
	(4) मानव			
	(5) वैखानस			

3 "धर्मशास्त्र"

संस्कृत वाङमय में वेदों से लेकर अनेक ग्रथों में "धर्म" शब्द का भित्र भित्र स्थानों पर विविध अर्थो में प्रयोग हुआ है। मीमासको ने "वेदप्रतिपाद्य प्रयोजनवदर्थो धर्म" अथवा "वेदेन प्रयोजनम् उद्दिश्य विधीयमानोऽर्थो धर्म" इत्यादि वाक्यों में धर्म शब्द का विशिष्ट अर्थ बताया है, जिस के अनुसार मानव जीवन की उद्देश्य पूर्ति के लिए, वेद वचनोंद्वारा आदेशित कर्तव्य को धर्म कहा है। मनुस्मृति में

"वेद स्मृति सदाचार. स्वस्य च प्रियमात्मन ।

एतच्चतुर्विध प्राहु। साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।। (2-12)

इस सुप्रसिद्ध श्लोक में वेदवचन, स्मृतिवचन, सज्जनों का आचार और स्वत का प्रिय ये चार धर्म के अर्थात् कर्तव्य कर्मो के प्रबोधन, तत्त्व बताये हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका-मिताक्षरा में" स च धर्म षड्विधः। वर्णधर्म आश्रमधर्म वर्णाश्रमधर्मः, गुणधर्म, निमित्तधर्मः साधारणधर्मश्च" — इस वाक्य में धर्म के छ. प्रकार बताये हैं। मनुस्मृति में ही

धृति क्षमा दमोस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह । धीर्विद्या सत्यक्रोधो। दर्शकं धर्मलक्षणम्।। (6-92)

इस सुप्रसिद्ध श्लोक मे अखिल मानवमात्र के सामान्य धर्म के दस प्रकार के तत्त्व बताये हैं। संस्कृत वाङ्मय में "धर्मशास्त्र" शब्द से जिस विशिष्ट शास्त्र का बोध होता है, उस में मनु-याज्ञवल्क्य प्रभृति द्वारा लिखित वेदानुकूल स्मृतिग्रथों का प्राधान्य से अन्तर्भाव होता है। इन स्मृतिग्रन्थो मे प्रतिपादित आचार धर्म श्रौतसूत्रो, गृह्यसूत्रो एव धर्मसूत्रो पर आधारित होने के कारण, वेदाग (कल्प) प्रकरण मे ही हमने धर्मशास्त्र विषयक विवरण का अन्तर्भाव किया है।

मनुर्यमो वसिष्ठोऽत्रिर्दक्षो विष्णुस्तथाङ्गिरा । उशना वाक्यतिर्व्यास आपस्तम्बोऽथ गौतम ।।
कात्यायनो नारदश्च याज्ञवल्क्य पराशर । सवर्तश्चैव शखश्च हारीतो लिखितस्तथा।।
एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा। तान्येवातिप्रमाणानि न हन्तव्यानि हैतुभि ।।

धर्मशास्त्रकारो की यह नामावलि वाचस्पत्य कोशकार ने दी है। इन के अतिरिक्त, वृद्धदेवल, सोम, जमदग्नि, प्रजापति, विश्वामित्र, शातातप, पैठीनसि, पितामह बौधायन, छागलेय, जाबालि, च्यवन, मरीची, कश्यप इत्यादि अनेक धर्मशास्त्रकारो के नाम भी मान्यताप्राप्त हैं। इन धर्मशास्त्रकारो के स्मृतिरूप ग्रथो मे तथा उनमे प्राचीन धर्मसूत्रो मे, जो विविध विधिया बतायी गयी है, उन का मूल, वैदिक मत्रो मे पाया जाता है। इस दृष्टि से वेद वाङमय ही धर्मशास्त्र का मूल है। किन्तु वेद सहिताए धर्मसबधी निबध नही है। उनमे तो धर्मसबधी बाते प्रसगवश आती गई है। वास्तव मे आचार धर्म विषयक शास्त्रीय पद्धति के अनुसार सारा विवेचन, स्मृतिग्रन्थो मे और उनकी मार्मिक टीकाओ मे मिलता है। विद्वानो के मतानुसार व्यवस्थित धर्मशास्त्र का प्रारभ वेदागभूत धर्मसूत्रो मे माना जाता है। गौतम, बौधायन तथा आपस्तब के प्रारंभिक धर्मसूत्र निश्चित ही ईसापूर्व सातवीं से चौथी शती के मान जाते है। धर्मसूत्र वाङ्मय के सबध मे यथोचित चर्चा इस प्रकरण के प्रारभ में वैदिक वाङमय के साथ ही की गई है। अत यहा उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक है। जिन स्मृतिग्रथो का धर्मशास्त्र से साक्षात् सबध माना जाता है, उनकी कुल सख्या उत्तरकालीन प्रमाणो के अनुसार एक सौ तक मानी जाती है। इन मे से कुछ पूर्णतया गद्य मे, कुछ गद्य- पद्य मे और अधिकाश पद्य-मय है। कुछ तो प्राचीन धर्मसूत्रो के पद्यात्मक रूपातर मात्र हैं और कुछ स्मृतियाँ साम्प्रदायिक हैं, यथा हारीत स्मृति वैष्णव है।

स्मृतिकारो मे मनु का नाम अग्रगण्य है। और 'यद्वै किचन मनुरब्रवीत् तद् भेषजम्" (मनु ने जो कुछ कहा है वह औषध है) इन शब्दो मे तैत्तिरीय सहिता एव ताण्ड्य महाब्राह्मण जैसे प्राचीन ग्रथो ने मनुप्रोक्त धर्मशास्त्र की प्रशसा की है। वर्तमान मनुस्मृति मे 12 अध्याय एव 2694 श्लोक है। इस की रचना का काल, कुछ आतर तथा बाह्य साक्षियो के आधार पर ई-पू दूसरा शताब्दी से ईसा के उपरात दूसरी शताब्दी के बीच मे मानी जाती है। इस मे जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, उपनयन इत्यादि सस्कार, ब्रह्मचारी के नियम, आठ प्रकार के विवाह, गृहस्थाश्रम का धर्माचरण, सापिण्ड्य- विचार, श्राद्धकर्म, विधवा के कर्तव्य, वानप्रस्थ और सन्यासी के कर्तव्य, राजधर्म, मत्रि परिषद की रचना, युद्धनियम, करनियम, बारह राजाओ का मडल, षाड्गुण्य प्रयोग, न्यायालय का व्यवहार, स्त्रीधन, सपत्ति के उत्तराधिकारी, राज्य के सात अग, वैश्य एव शूद्र के कर्तव्य, मिश्रित तथा अन्य जातियो के आचारनियम प्रायश्चित, निष्काम कर्म की प्रशसा इत्यादि मानव के धर्मजीवन से सबधित अनेक विध विषयो का प्रतिपादन धारावाही शैली मे किया है। मनुस्मृति पर मेधातिथि, गोविदराज, कुल्लूकभट्ट, नारायण, राघवानन्द, नन्दन एव रामचद्र इत्यादि विद्वानो ने मार्मिक टीकाएँ लिखी है।

जिस प्रकार धर्मशास्त्रविषयक मनुस्मृति मे राजनीति की चर्चा आने के कारण, प्राचीन भारतीय राजनीति मे उसका महत्त्व माना जाता है, उसी प्रकार अर्थशास्त्रान्तर्गत राजनीति का विवरण करने वाले कौटिलीय अर्थशास्त्र मे प्राचीन धर्मशास्त्र से सबधित व्यवहार का विवेचन पर्याप्त मात्रा मे होने के कारण, उस ग्रन्थ का अध्ययन भी धर्मशास्त्र के आकलन के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मनुस्मृति जैसे आदर्श धर्मशास्त्र मे जिन विषयो का प्रतिपादन हुआ है, उसी प्रकार के विविध विषयो का विवेचन उत्तर कालीन अनेक स्मृति-ग्रथो एव धर्मनिबधो मे हुआ है। धर्मशास्त्र विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की नामावलि परिशिष्ट में दी है तथा प्रस्तुत कोश मे यथास्थान उनका सक्षेपत परिचय दिया गया है। इन सभी धर्मशास्त्रकारो ने अपने ग्रन्थो द्वारा जो वैचारिक योगदान समय समय पर दिया, उस मे इस देश का पुत्ररूप समाज (अर्थात हिंदू समाज) धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक इत्यादि सभी क्षेत्रो मे एकसूत्र मे सदियो से आबद्ध रहा। प्राचीन धर्मशास्त्रियो ने प्रत्येक जाति के सदस्यो एव प्रत्येक व्यक्ति को इस देश के समाज का अविच्छेद्य अग माना है। यही एक महत्त्व का कारण है कि जिसने इस समाज को भीषण परकीय आक्रमणो मे भी पर्याप्त मात्रा मे सुव्यवस्थित रखा। आज भारत मे जिन कुप्रथाओ का सर्वत्र प्रचार दिखाई देता है, उनका मूल कारण धर्मशास्त्र मे निर्दिष्ट वर्णधर्म और जातिधर्म के तत्कालीन विधि-निषध माने जाते हैं। आज के समाज सुधारवादी लोगो का, धर्मशास्त्र मे प्रतिपादित, जातिव्यवस्था एव वर्णव्यवस्था पर बडा रोष है। प्रस्तुत प्रकरण में उस विवाद में जाने की आवश्यकता

हमें प्रतीत नहीं होती, परतु भारतीय समाज की संस्कृति एव सभ्यता का ऐतिहासिक पर्यालोचन करने वालो को, प्राचीन एव मध्ययुगीन धर्मशास्त्र में प्रतिपादित विषयो का ज्ञान नितांत आवश्यक है इसमें संदेह नहीं।

वैदिक धर्मशास्त्र विषयक वाङ्मय में जिन अनेक विषयो की चर्चा हुई है उनकी विविधता देखते हुए यह ज्ञात होता है कि, भारतीय धर्मशास्त्रकारों की धर्मसंबधी धारणा सर्वस्पर्शी थी। उन की दृष्टि में धर्म किसी संप्रदाय या पंथ का द्योतक नहीं है, अपि तु व्यक्ति तथा समाज को अपने चरम लक्ष्य तक पहुचाने वाला तथा उनके जीवन में दु ख का परिहार करने वाला अथवा शान्ति- समाधान देने वाला आचार एवं व्यवहार है। उस के अगोंपागो की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने की अपेक्षा रखने वाले जिज्ञासुओं को मूल ग्रथों का ही अवगाहन करना आवश्यक है। यहा धर्मशास्त्रान्तर्गत विविध विषयों का केवल विहंगावलोकनात्मक परिचय कुछ परिभाषिक शब्दों के माध्यम से सख्यानुक्रम से दिया है, जिस से हिंदू समाज के धर्मशास्त्र का अंशत. परिचय हो सकेगा।

दो प्रकार का धर्म - [1] इष्ट (अर्थात यज्ञ-याग) और [2] पूर्त (अर्थात- मदिर जलाशय का निर्माण, वृक्षारोपण, जीर्णोद्धार, इ.। इन दोनों का निर्देश "इष्टापूर्व" शब्द से होता है।

मुक्ति के दो साधन - तत्त्वज्ञान एव तीर्थक्षेत्र में देहत्याग। तिथियों के दो प्रकार- (1) शुद्धा- (सूर्योदय से सूर्यास्त तक रहनेवाली) (2) विद्धा (या सखडा) इस के दो प्रकार माने जाते हैं- (अ) सूर्योदय से 6 घटिकाओ तक चलकर दूसरी तिथि में मिलनेवाली और (आ) सूर्यास्त से 6 घटिका पूर्व दूसरी तिथि मे मिलने वाली।

आशौच के दो प्रकार- जननाशौच और मरणाशौच।

दो प्रकार के विवाह - अनुलोम और प्रतिलोम। **दो प्रकार की वेश्याएं** - (1) अवरुद्धा (अर्थात उपभोक्ता के घर मे रहने वाली) (2) भुजिष्या स्वतत्र घर मे रहने वाली।

पूजा के तीन प्रकार - वैदिकी, तात्रिकी एव मिश्रा। तात्रिकी पूजा शूद्रों के लिए उचित मानी गई है।

जप के तीन प्रकार - वाचिक, उपांशु और मानस।

तीन तर्पण योग्य - (1) देवता (कुलसख्या 31), (2) पितर और (3) ऋषि (कुलसख्या-30)

गृहमख के तीन प्रकार - अयुत होम, लक्षहोम, एव कोटिहोम।

यात्रा के योग्य त्रिस्थली - प्रयाग, काशी एव गया।

त्रिविध कर्म- सचित, प्रारब्ध एव क्रियमाण।

तीन ऋण - देवऋण, ऋषिऋण एव पितृऋण।

तीन प्रकार का धन- शुक्ल, शबल, एव कृष्ण।

कालगणना के तीन भारतीय सिद्धान्त - सूर्यसिद्धान्त, आर्यसिद्धान्त, एव ब्राह्मसिद्धान्त।

मृत पूर्वजों के निमित्त तीन कृत्य- पिण्ड पितृयज्ञ, महापितृयज्ञ और अष्टका श्राद्ध।

कलिवर्ज्य तीन कर्म- नियोग विधि, ज्योतिष्टोम मे अनुबन्ध्या गो की आहुति, एव ज्येष्ठ पुत्र को पैतृक सम्पत्ति का अधिकाश प्रदान।

रात्रि में वर्जित तीन कृत्य- स्नान, दान एव श्राद्ध। (किन्तु ये तीन कृत्य ग्रहण काल में आवश्यक हैं।)

विवाह के लिए वर्जित तीन मास- आषाढ, माघ एव फाल्गुन। (कुछ ऋषियो के मत से विवाह सभी कलों में सपादित हो सकता है।)

वर्ष की तीन शुभ तिथियां - चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (वर्ष प्रतिपदा), कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा एव विजया दशमी।

चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ काम एव मोक्ष

(2) चार वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

चार आश्रम - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास।

गृहस्थाश्रमी के प्रकार- (1) शालीन, (2) वार्ताजीवी (3) यायावर (4) चक्रधर और (5) घोराचारिक।

चार मेध - अश्वमेध, सर्वमेध, पुरुषमेध और पितृमेध। चार मेध (यज्ञ) करने वाला विद्वान "पक्तिपावन" माना जाता है।

यज्ञों के चार पुरोहित - अध्वर्यु, आग्निध्र, होता एवं ब्रह्मा।

चार वेदव्रत - महानाम्नी व्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदान, (इन की गणना सोलह सस्कारों में की जाती है।)

चार कायिक व्रत - एकभुक्त, नक्तभोजन, उपवास और अयाचित भोजन।

चार वाचिक व्रत - वेदाध्ययन, नामस्मरण, सत्यभाषण और अपैशुन्य (पीछे निन्दा न करना।)

पापमुक्ति के चार उपाय - व्रत, उपवास, नियम और शरीरताप।

चार प्रकार की तांत्रिक दीक्षा - क्रियावती, वर्णमयी, कलावती एव वेधमयी।

वानप्रस्थों के चार प्रकार - वैखानस, उदम्बर, वालखिल्य एव वनवासी। आहार की दृष्टि से दो प्रकार - (1) पचनामक (पक्वभोजी) और (2) अपचमानक (अपना भोजन न पकानेवाले) ऐसे दो प्रकार भी माने जाते हैं।

वानप्रस्थाश्रमी के लिए आवश्यक श्रौत यज्ञ -
(1) आग्रायण इष्टि, (2) चातुर्मास्य, (3) तुरायण एव (4) दाक्षायण (अमावस्या पूर्णिमा के दिन ये यज्ञ करना चाहिए)
सन्यासियों के चार प्रकार - कुटीचक, बहूदक, हस, और परमहस। (परमहस के दो प्रकार - विद्वत्परमहस और विविदिषु)

भारत में मान्य चार युग - कृत, त्रेता, द्वापर एव कलि (या तिष्य)

चार प्रकार के प्रलय - नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यंतिक

सभी कर्मों के लिए शुभवार - सोम, बुध, गुरु, एव शुक्र।

धार्मिक कृत्य करने के लिए विचारणीय चार तत्त्व - तिथि, नक्षत्र, करण एव मुहूर्त (इनमें मुहूर्त का महत्व सर्वश्रेष्ठ है)

विवाह के योग्य चार नक्षत्र - रोहिणी, मृगशीर्ष, उत्तरा फाल्गुनी एव स्वाति।

तिथिवर्ज्य चार कर्म - षष्ठी को तैल, अष्टम को मास, चतुर्दशी को क्षुरकर्म और पूर्णिमा-अमावस्या को मैथुन।

चार धाम - बदरीनाथ, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वर एव द्वारका। जीवन में इन धामो की यात्रा होना आवश्यक है।

उत्कल (उडिसा) के चार महत्त्वपूर्ण तीर्थ - चक्रतीर्थ (भुवनेश्वर), शखतीर्थ (जगन्नाथ पुरी), **पद्मतीर्थ** (कोणार्क), गदाक्षेत्र (जाजपुर)।

वेदमंत्रों के पांच विभाग - विधि, अर्थवाद मन्त्र, नामधेय और प्रतिषेध।

यज्ञ के पांच अग्नि - (1) आहवनीय (2) गार्हपत्य (3) दक्षिणाग्नि (इन्हें त्रेता तीन पवित्र अग्निया कहते हैं।) (4) औपासन एव (5) सभ्य। पचाग्नि आराधना करने वाले गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण को "पक्तिपावी" उपाधि दी जाती है।

पंच महायज्ञ - दैव, पितृ, मनुष्य, भूत एव ब्रह्म।

पांच मानस व्रत - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अकल्कता (अकुटिलता)।

देवता पंचायतन - विष्णु, शिव, सूर्य, देवी और गणेश। इन पाच देवताओं की स्थापना में जो देवता केंद्र स्थान में स्थापित हो, उसके नाम से पचायतन कहा जाता है।

दुर्गापूजा में प्रयुक्त पांच चक्र - राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र वीरचक्र एव पशुचक्र (इन के अतिरिक्त तात्रिक साधना में उपयुक्त चक्र हैं — अकडमचक्र, ऋणधन शोधनचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र इ सब तात्रिक चक्रों में श्रीचक्र प्रमुख एव प्रसिद्ध है।)

संन्यासी के भिक्षान्न के पांच प्रकार - माधुकर, प्राक्प्रणीत, अयाचित, तात्कालिक एव उपपन्न।

पंचामृत - दुग्ध, दधि, घृत, मधु एव शर्करा।

पंचगव्य - गाय का दूध, दही, घृत मूत्र और गोबर इनका विधियुक्त मिश्रण इसीको "ब्रह्मकूर्च" कहते हैं।

पांच महापातक - ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी से सभोग और महापातकी से दीर्घकाल तक संसर्ग।

पापफल के पांच भागीदार - कर्ता, प्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक, एव निमित्त।

वाराणसी के पांच प्रमुख तीर्थस्थान - दशाश्वमेध घाट, लोलार्क (एक सूर्यतीर्थ), केशव, बिन्दुमाधव एव मणिकर्णिका।

जगन्नाथपुरी के पांच उपतीर्थ - मार्कण्डेय सरोवर, वटकृष्ण, बलराम, महोदधि (समुद्र) एव इन्द्रद्युम्न सर।

मानव धर्मशास्त्र के अनुसार काल की पांच इकाईयां - 18 = निमेष = काष्ठा। 30 काष्ठा = कला। 40 कला = नाडिका। 2 नाडिका = मुहूर्त। 30 मुहूर्त = अहोरात्र।

पंचांग के पांच अंग - तिथि, वार, नक्षत्र, योग, एव करण।

तिथियों के पांच विभाग - नन्दा (1,6,11) भद्रा (2,7,12) विजया (3,8,13) रिक्ता (4,9,14) पूर्णा - (5,10, पूर्णिमा)

दिन के पांच भाग - प्रात सगव, मध्याह्न, अपराह्न और सायाह्न (सपूर्ण दिन 15 मुहूर्तों में बाटा जाता है। दिन का प्रत्येक भाग तीन मूहूर्तों का रहता है। (श्राद्ध के लिए आठवें से बारहवें तक के पाच मुहूर्त योग्य काल हैं।

छः प्रकार का धर्म - वर्णधर्म, आश्रमधर्म, गुणधर्म, निमित्तधर्म और साधारण धर्म।

दिन के छः कर्म - स्नान, सध्या, जपहोम, देवतापूजन एव अतिथिसत्कार।

ब्राह्मण के षट् कर्म - यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान एव प्रतिग्रह।

यतियों के छः कर्तव्य - भिक्षाटन, जप, ध्यान, स्नान, शौच और देवार्चन।

जल स्नान के छः प्रकार - नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाग, मलापकर्षण एव क्रियास्नान।

गौण स्नान - मन्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य एवं मानस। ये स्नान रोगियों के लिए बताये गए हैं।

नारियों एवं शूद्रों के लिए वर्जित छः कार्य - जप, तप, सन्यास, तीर्थयात्रा, मन्त्रसाधन और देवताराधन।

संवत् प्रवर्तक छः महापुरुष - युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन एव कल्कि।

सात सोमयज्ञ - अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम।

सात पाकयज्ञ - अष्टका, पार्वण-स्थालीपाक, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी।

सात हविर्यज्ञ - अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध एवं सौत्रामणि।

पूजनीय सप्तर्षि - कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, एव वसिष्ठ-अरुधती। ऋषि पचमी व्रत में इनका पूजन होता है।

श्राद्ध में आवश्यक सात विषयों की शुचिता - कर्ता, द्रव्य, पत्नी, स्थल, मन, मन्त्र एव ब्राह्मण।

अस्पृश्यता न मानने के स्थान - मदिर, देवयात्रा, विवाह यज्ञ और सभी प्रकार के उत्सव, सग्राम और बाजार।

पुनर्भू - (अर्थात् पुनर्विवाहित "विधवा") के सात प्रकार - (1) विवाह के लिए प्रतिश्रुत कन्या, (2) मन से दी हुई, (3) जिसकी कलाई मे वर के द्वारा कंगन बाध दिया है। (4) जिसका पिता द्वारा जल के साथ दान दिया हो, (6) जिसने वर के साथ अग्निप्रदक्षिणा की हो और (7) जिसे विवाहोपरान्त बच्चा हो चुका हो। इनमें प्रथम पाच प्रकारों में वर की मृत्यु अथवा वैवाहिक कृत्य का अभाव होने के कारण, इन कन्याओं को "पुनर्भू" (अर्थात पुनर्विवाह के योग्य) माना जाता है।

सात प्रकार से पापियो से संपर्क - यौन, स्रौव, मौख, एकपात्र मे भोजन, एकासन, सहाध्ययन, अध्यापन।

न्यास के सात प्रकार - हसन्यास, प्रणवन्यास, मातृकान्यास, मन्त्रन्यास, करन्यास, अतर्न्यास और पीठन्यास।

सात मोक्षपुरी - अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काची, अवन्तिका (उज्जयिनि), एवं द्वारका।

(27 या 28) नक्षत्रों के 7 विभाग - (1) ध्रुवनक्षत्र उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी। **(2) मृदु नक्षत्र** अनुराधा, चित्रा, रेवती, मृगशीर्ष। **(3) क्षिप्र नक्षत्र** - हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्। **(4) उग्र नक्षत्र** - पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा। **(5) चर नक्षत्र** - पुनर्वसु श्रवण, धनिष्ठा, स्वाती, शतभिषक्। **(6) क्रूर नक्षत्र** - मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा आश्लेषा। **(7) साधारण** - कृत्तिका, विशाखा।

प्रमुख आठ यज्ञकृत्य - (1) ऋत्विग्वरण (2) शाखाहरण, (3) बर्हिराहरण (4) इध्माहरण (5) सायदोह (6) निर्वाप (7) पत्नीसन्नहन और (8) बर्हिरास्तरण।

आठ गोत्र संस्थापक - विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य। प्रत्येक गोत्र के साथ 1,2,3 या 5 ऋषि होते हैं, जो उस गोत्र के प्रवर कहलाते हैं। धर्मशास्त्र के अनुसार सगोत्र एव सप्रवर विवाह वर्जित माना जाता है।

आठ प्रकार के विवाह - ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस एव पैशाच।

संन्यास लेने के पूर्व करने योग्य आठ श्राद्ध - दैव, आर्ष, दिव्य, मानुष, भौतिक, पैतृक, मातृश्राद्ध और आत्मश्राद्ध।

आठ दान के पात्र - माता-पिता, गुरु, मित्र, चरित्रवान व्यक्ति, उपकारी, दीन, अनाथ एव गुणसपन्न व्यक्ति।

व्रतों के आठ प्रकार - तिथिव्रत, वारव्रत, नक्षत्रव्रत, योगव्रत, सक्रान्तिव्रत, मासव्रत, ऋतुव्रत और सवत्सरव्रत।

दुष्ट अन्न के आठ प्रकार - जातिदुष्ट, क्रियादुष्ट, कालदुष्ट, ससर्गदुष्ट, सल्लेखा, रसदुष्ट, परिग्रहणदुष्ट और भवदुष्ट।

भूमिशुद्धि के आठ साधन - समार्जन, प्रोक्षण, उपलेपन, अवस्तरण, उल्लेखन, गोक्रमण, दहन, पर्जन्यवर्षण।

तांत्रिक पूजा में उपयुक्त आठ मण्डल - (1) सर्वतोभद्र मडल, (2) चतुर्लिंगतोभद्र (3) प्रासाद (4) वास्तु (5) गृहवास्तु (6) ग्रहदेवतामडल (7) हरिहरमडल (8) एकलिगतोभद्र।

पितरों की नौ कोटियाँ - अग्निष्वात, बर्हिषद, आन्यव, सोमप, रश्मिप, उपहूत, आयुन्तु, श्राद्धभुज एव नान्दीमुख।

तांत्रिक क्रिया में आवश्यक नौ मुद्राएं -अर्थात् हस्तक्रियाएं - आवाहनी, स्थापिनी, सन्निधापिनी, सन्निरोधिनी, समुखीकरणी, सकलीकृती, अवगुण्ठनी धेनुमुद्रा, महामुद्रा।

पाप के नौ प्रकार - अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, जातिभ्रशकर, सकरीकरण, अपात्रीकरण, मलावह और प्रकीर्णक।

नौ प्रकार के कालमान - ब्राह्म, दैव, मानुष, पित्र्य, सौर, सायन, चान्द्र, नाक्षत्र एव बार्हस्पत्य (व्यवहार मे इनमें से अतिम पाच ही प्रयुक्त होते हैं।

दस यज्ञपात्र या यज्ञायुध - रूप्य, कपाल, अग्निहोत्रवहणी, शूर्प, कृष्णाजिन, शम्भा, उलूखल, मुसल, दृषद और उपला। इनके अतिरिक्त सुरु जुहू उपभृत ध्रुवा, इडापात्र, पिष्टोद्वपनी इत्यादि अन्य पात्रों का भी उपयोग यज्ञकर्म मे होता है।

विष्णु के दश अवतार - मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। श्रीमद्भागवत पुराण में विष्णु के अवतारों की संख्या 24 बताई है।

दस प्रकार के ब्राह्मण - (पाच गौड और पाच द्रविड) अथवा देवब्राह्मण, मुनिब्राह्मण, द्विजब्राह्मण, क्षत्रब्राह्मण, वैश्यब्राह्मण, शूद्रब्राह्मण, निषादब्राह्मण, पशुब्राह्मण, म्लेच्छब्राह्मण और चाडालब्राह्मण।

अद्वैती संन्यासियों की दस शाखाएं - तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती एव पुरी।

दस महादान - सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, घर, दुलहिन एव कपिला गाय (सोने या चादी का दान, दाता के बराबर तोलकर ब्राह्मणों को दिया जाता है, तब उसे तुलापुरुष नामक महादान कहते है।

पापमुक्ति के दस उपाय - (1) आत्मापराध स्वीकार, (2) मत्रजप (3) तप (4) होम, (5) उपवास (6) दान (7) प्राणायाम (8) तीर्थयात्रा (9) प्रायश्चित्त और (10) कठोर व्रतपालन।

अशुद्ध को शुद्ध करने वाली दस वस्तुएं - जल, मिट्टि, इगुद, अरिष्ट (रीठा), बेल का फल, चावल, सरसों का उवटन, क्षार, गोमूत्र और गोबर।

विवाह योग्य 11 नक्षत्र — रोहिणी, मृगशीर्ष, मघा, उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, स्वाती, मूल, अनुराधा एव रेवती।

12 देवतीर्थ — विन्ध्य की दक्षिण दिशा में 6 नदियाँ- गोदावरी, भीमरथी, तुगभद्रा, वेणिका, तापी और पयोष्णी। विन्ध्य की उत्तर दिशा में 6 नदियाँ- भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, वितस्ता, (चद्र-सूर्य ग्रहण के काल मे इन देवतीर्थों मे स्नान श्रेयस्कर माना है।

बारह ज्योतिर्लिंग- सौराष्ट्र में सोमनाथ। (आन्ध्र कुर्नूल जिले मे श्रीशैल पर) मल्लिकार्जुन। मध्यप्रदेश (उज्जयिनी) मे महाकाल। ओकारक्षेत्र में (मध्यप्रदेश मे नर्मदा तट पर) परमेश्वर। हिमालय मे केदार। महाराष्ट्र (पुणे के पास) भीमशकर। वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में विश्वेश्वर। महाराष्ट्र में (नासिक के पास) त्र्यम्बकेश्वर। चिताभूमि में (विहार) वैद्यनाथ। दारुकावन मे नागेश। सेतुबन्ध में (तामिळनाडु) रामेश्वर। महाराष्ट्र में (औरगाबाद के पास) घृष्णेश्वर।

चौदह विद्याएं — 4 वेद, 6 वेदाग, पुराण, न्याय, मीमासा एव धर्मशास्त्र। (इन मे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र मिलाकर 18 विद्याएँ भी मानी जाती हैं, जिनका अध्ययन ब्रह्मचर्याश्रम मे आवश्यक माना जाता है। आयुर्वेदादि चार उपवेद छोड कर अन्य 14 धर्मज्ञान के प्रमाण माने जाते हैं।

काशी में विद्यमान 14 महालिंग — ओकार, त्रिलोचन, महादेव, कृत्तिवास, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदार, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, माणिकर्णीश, अविमुक्त एव विश्वेश्वर।

सोमयाग के 16 पुरोहित — होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छसी, अग्निध, पोता, उद्‌गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, और सुब्रह्मण्य।

सोलह संस्कार — गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, गोदान, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।

18 प्रकार की शान्तियाँ — अभयशान्ति, सौम्य, वैष्णवी, रौद्री, ब्राह्मी, वायवी, वारुणी, प्राजापत्य, त्वाष्ट्री, कौमारी, आग्नेयी, गान्धर्वी, आगिरसी, नैर्ऋती, याम्या, कौबेरी, पार्थिवी एव ऐन्द्री इन शान्तियो के अतिरिक्त विनायक शान्ति (या गणपतिपूजा), नवग्रह, उग्ररथ (षष्ट्यब्दिपूर्तिनिमित्त), भैमरथी, (70 या 75 वर्षो की आयु पूर्ण होने पर, अमृतामहाशान्ति, उदकशान्ति, वास्तुशान्ति, पुष्याभिषेकशान्ति इत्यादि शान्तियाँ धर्मशास्त्र मे कही हैं।

चैत्र से लेकर बारह मासों की 24 एकादशियों के क्रमश· नाम — कामदा, वरुथिनी। मोहिनी, अपरा। निर्जला, योगिनी। शयनी, कामदा। पुत्रदा, अजा। परिवर्तिनी, इन्दिरा। पापाकुशा, रमा। प्रबोधिनी उत्पत्ति। मोक्षदा, सफला। पुत्रदा, षट्‌तिला। जया, विजया। आमर्दकी (आमलकी), पापमोचनी। इनमे शयनी (आषाढी और प्रबोधिनी (कार्तिकी) एकादशी का उपोषणादि व्रत सर्वत्र मनाया जाता है।

वैश्वदेव के देवता :- अग्नि, सोम, अग्निष्टोम, विश्वेदेव, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, द्यावापृथिवी, स्विष्टकृत् (अग्नि), वासुदेव, सकर्षण, अनिरुद्ध, पुरुष, सत्य, अच्युत, मित्र, वरुण, इन्द्र इद्राग्नी वास्तोष्पति, इ । गृहस्थाश्रमी को भोजन के पूर्व इन देवताओ को भोजन समर्पण करना चाहिये।

देवपूजा के उपचार :- जल, आसन, आचमन, पंचामृत, अनुलेप (या गन्ध), आभूषण, दीप और कर्पूर से आरती, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार, प्रदक्षिणा इत्यादि।

विवाह के धार्मिक कृत्य :- वधूवर गुणपरीक्षा, वरप्रेषण, वाग्दान, मण्डपवरण, नान्दीश्राद्ध एव पुण्याहवाचन, वधूगृहगमन, मधुपर्क, स्नापन, परिधायन एवं सन्नहन, समजन, प्रतिसरबन्ध, वधूवर-निष्क्रमण, परस्पर-समीक्षण, कन्यादान, अग्निस्थापन एवं होम, पाणिग्रहण, लाजाहोम, अग्निपरिणयन, अश्मारोहण, सप्तपदी, मूर्धाभिषेक, सूर्योदीक्षण, हृदयस्पर्श, प्रेक्षकानुमंत्रण, दक्षिणादान, गृहप्रवेश, धृवारुंधती-दर्शन, हरगौरीपूजन, आर्द्राक्षतारोपण, मंगलसूत्रबंधन, देवकोत्थापन एव माण्डपोद्वासन। इन विविधकृत्यों में मधुपर्क, होम, अग्निप्रदक्षिणा, पाणिग्रहण, लाजाहोम एव आर्द्राक्षतारोपण विधि महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

व्रतों में आवश्यक कुछ कर्तव्य :- स्नान, संध्यावदन, होम, देवतापूजन, उपवास, ब्राह्मणभोजन कुमारिका-विवाहिता का भोजन, दरिद्रभोजन, दान, गोप्रदान ब्रह्मचर्य भूमिशयन, हविष्यान्नभक्षण, इ।

धर्मशास्त्र में निर्दिष्ट महत्त्वपूर्ण व्रत उत्सव :- नागपंचमी, व मनसा पूजा रक्षाबन्धन, कृष्णबन्धन, कृष्णजन्माष्टमी, हरतालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषिपंचमी, अनन्तचतुर्दशी, नवरात्रि (या दुर्गोत्सव), विजया दशमी, दीपावलि, भातृद्वितीया (या यमद्वितीया) मकरसंक्रान्ति, वसंत पचमी, महाशिवरात्रि, होलिका एवं ग्रहण, अक्षय्य तृतीया, व्यासपूजा, तथा रामनवमी इत्यादि।

भूतबलि के अधिकारी :- कुत्ता, चाण्डाल, जातिच्युत, महारोगी, कौवे, कीडे मकोडे इत्यादि। भोजन के पूर्व इन को अन्न देना चाहिए।

श्राद्ध के विविध प्रकार :- नित्य, नैमित्तिक, पार्वण, एकोद्‌दिष्ट, प्रतिसावत्सरिक, मासिक, आमश्राद्ध (जिस में बिना पका हुआ अन्न दिया जाता है) हेमश्राद्ध। (भोजनाभाव में, प्रवास में, पुत्रजन्म में, या ग्रहण में हेमश्राद्ध किया जाता है। स्त्री तथा शूद्र हेमश्राद्ध कर सकते हैं।) धृवश्राद्ध, आभ्युदयिक, नान्दीश्राद्ध, महालयश्राद्ध, आश्विन कृष्णपक्ष में किये जाते हैं। मातामह श्राद्ध (या दौहित्र प्रतिपदाश्राद्ध), अविधवा नवमीश्राद्ध (कृष्णपक्ष की नवमी को होता है) जीवच्छ्राद्ध (जीवश्राद्ध) सघातश्राद्ध (किसी दुर्घटना में अनेको की एक साथ मृत्यू होने पर किया जाता है) वृद्धिश्राद्ध, सपिण्डन, गोष्ठश्राद्ध, शुद्धिश्राद्ध कर्मांग, दैविक, यात्राश्राद्ध, पुष्टिश्राद्ध, इ षण्णवति श्राद्ध नामक ग्रथ (ले गोविंद और रघुनाथ) मे एक वर्ष मे किये जानेवाले 96 श्राद्धो का विवरण है।

श्राद्ध में निमंत्रण योग्य पंक्तिपावन ब्राह्मण के गुण :- त्रिमधु (मधु शब्द युक्ततीन वैदिक मत्रो का पाठक) त्रिसुपर्ण का पाठक, त्रिणाचिकेत एव चतुर्मेध (अश्वमेघ, पुरुषमेध, सर्वमेध, एव पितृमेध) के मत्रो का ज्ञानी, पाच अग्नियों को आहुति देने वाला, ज्येष्ठ साम का ज्ञानी, नित्य वेदाध्यायी, एव वैदिक का पुत्र।

दान योग्य पदार्थ :- (उत्तम)- भोजन, गाय, भूमि, सोना, अश्व, एव हाथी इ। (मध्यम)- विद्या, गृह, उपकरण, औषध इ.। (निकृष्ट)- जूते, हिंडोला, गाडी, छाता, बरतन, आसन, दीपक, फल, जीर्णपदार्थ इ

उपपातक (सामान्य पापकर्म) :- गोवध, ऋणादान (ऋण को न चुकाना), परिवेदन (बडो भाई से पहले विवाह करना) शुल्क लेकर वेदाध्यापन, स्त्रीहत्या, निंद्य जीविका, नास्तिकता, व्रतत्याग, माता-पिता का निष्कासन, केवल अपने लिए भोजन बनाना, स्त्रीधन पर उपजीविका, नास्तिको के ग्रथो का अध्ययन इत्यादि (ऐसे उपपातक पचास तक बताए गये हैं।

ब्रह्मबन्धु (केवल जातिमात्र से ब्राह्मण) के प्रकार :- शूद्र एवं राजा का नौकर, जिसकी पत्नी शूद्र है, ग्रामपुरोहित, पशुहत्या से जीविका चलानेवाला, एव पुनर्विवाहिता का पुत्र।

भूमि की अशुद्धता के कारण :- प्रसूति, मरण, प्रेतदहन, विष्ठा, कुत्ते, गधे तथा सूअरो का स्पर्श, कोयला, भूसी, अस्थि एव राख का सचय (इन कारणो से दूषित भूमि की शुद्धि समार्जनादि उपायों से करना आवश्यक है)

मंगल वृक्ष :- अश्वत्थ, उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र, न्यग्रोध, पलाश, शमी, बिल्व, अमलक, नीम, इ

तीर्थयात्री को गंगा तटपर त्यागने योग्य कर्म :- शौच, आचमन, केशशृंगार, अघमर्षण सूक्तपाठ, देहमर्दन, क्रीडा, कौतुक, दानग्रहण, सभोग, अन्यतीर्थों की प्रशंसा, वस्त्रदान, ताडन, तीर्थजल को तैर कर पार करना।

पवित्रस्थान :- सरोवर, तीर्थस्थल, ऋषिनिवास, गोशाला एव देवमदिर, गगा, हिमालय, समुद्र और समुद्र मे मिलनेवाली नदियाँ, पर्वत (श्रीमद् भागवत में पुनीत पर्वतों के 27 नाम दिये हैं (भाठ 5-19-16) अग्निहोत्र शाला इ।

नर्मदा के प्रमुख उपतीर्थ :- महेश्वर (ओंकार), शुक्लतीर्थ (चाणक्य को यहां सिद्धि प्राप्त हुई थी), भृगुतीर्थ, जामदग्न्यतीर्थ (समुद्रसगम का स्थान) अमरकण्टक पर्वत, माहिष्मती (ओंकार मांधाता), भृगुकच्छ (भडोच)।

गया के उपतीर्थ :- अश्मप्रस्थ (प्रेताशिला) निरविन्द-गिरि, क्रौंचपदी, ब्रह्मकूप, प्रभास (मुण्डपृष्ठ) उत्तरमानस, उद्यन्त पर्वत, अगस्त्य कुण्ड, फल्गुतीर्थ, महाबोधि वृक्ष, गदालोल, भरताश्रम, अक्षयवट, रामशिला।

संस्कृत में धर्मशास्त्र विषयक वाङ्मय चार प्रकार का है- 1) **सूत्र वाङ्मय**, 2) **स्मृतिवाङ्मय**, 3) **उपस्मृति ग्रंथ और** 4) **निबन्ध ग्रंथ। संपूर्ण धर्मशास्त्रीय ग्रंथों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रस्तुत कोश में बहुसख्य प्रथों का निर्देश यथाक्रम हुआ है।**

4 निरुक्त

भाषिक व्यवहार में अर्थ की अभव्यक्ति शब्दो द्वारा होती है। अर्थ मुख्य और उसे व्यक्त करनेवाले शब्द गौण माने जाते है। शब्द से अर्थ का आकलन प्राय. निरुक्ति द्वारा होता है। विशेषत वैदिक शब्दो का अर्थ जानने में निरूक्ति ही प्राधान्य से सहायक होती है। ऋग्वेदियों के दशग्रथ में यास्ककृत निरुक्त का अन्तर्भाव होता है। वस्तुत यह निरुक्त निघटु की टीका है। निघंटु याने वेदों के दुर्बोध शब्दों का कोश। महाभारत के अनुसार प्रजापति कश्यप निघटु के कर्ता माने गए है।

निघंटु के प्रारभिक तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं, जिसमें एकार्थवाही शब्दो का सग्रह किया हुआ है। चौथे नेगमकाण्ड में अनेकार्थवाही और पांचवे दैवतकाण्ड में वैदिक देवताओ के नाम संकलित किए है।

निघंटु पर देवराज यज्वा की "निघटुनिर्वचन" नामक टीका में नैघण्टुक काण्ड का विवेचन अधिक मात्रा में किया है। इस टीका के उपोद्घात में वेदों के सायणपूर्व भाष्यकारो के सबध में पर्याप्त जानकारी मिलती है। भास्करराय ने निघण्टु के सारे वैदिक शब्द अमरकोश की तरह श्लोको में संगृहीत किये हैं। यास्काचार्य की "निरुक्त नामक महत्वपूर्ण टीका के पश्चात् निघण्टु और निरुक्त दोनों को मिलाकर "निरुक्त" सज्ञा रूढ हुई। वेदपुरूष के षडग में इसी निरुक्त की श्रोत्रस्थान में गणना होती है।

निरुक्त में शब्दो के केवल अर्थ नहीं होते, अपि तु उसके अशो की छानबीन कर, अर्थ का ग्रहण किया जाता है। गति, गमन, रति, रमण, जैसे नामो में मूल, गम्, रम् आदि धातुओं से नाम की व्युत्पत्ति की जाती है। वधू जैसे शब्द में वध् धातु दिखता है परतु वह हिंसार्थक होने से, उस शब्द से मिलते-जुलते वह धातु से वधू शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। अग्नि जैसे शब्द के विविध अर्थ ध्यान में लेकर उसके स्वर-व्यजन विभाग कर व्युत्पत्ति की जाती है। शब्द कितना भी दुर्बोध हो तो भी इन प्रकारो में से किसी एक प्रकार से उसकी व्युत्पत्ति करना निरुक्तकार आवश्यक मानते हैं। अनेकार्थक शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से की जाती है।

यास्क के निरुक्त में, नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के लक्षण, भावविकारलक्षण, पदविभागपरिज्ञान, उपधाविकार, वर्णलोप, वर्णवपर्यय, सप्रसार्य तथा असप्रसार्य धातु इत्यादि शब्द शास्त्रविषयक विविध विषयों का विवेचन होने के कारण, निरुक्त को व्याकरण का ही एक भाग माना जाता है।

संस्कृत भाषा में सारे नाम धातुज होते हैं (नाम च धातुजम्) इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वैयाकरण शाकटायनाचार्य ने किया था। गार्ग्य नामक आचार्य ने इस सिद्धान्त का खडन किया था परतु निरुक्तकार यास्क ने गार्ग्य के युक्तिवाद का खण्डन कर, "नाम च धातुजम्" इस सिद्धान्त को अपने वेदाग में प्रतिष्ठित किया। अर्वाचीन भाषाशास्त्री भी निरुक्तकार के इस सिद्धान्त को ग्राह्य मानते हैं।

यास्काचार्य का काल पाणिनिपूर्व (ई 800 से 1000) माना जाता है। उसके पहले भी वैदिक शब्दो का अर्थनिर्धारण करने वाले जो संप्रदाय थे उनका नामनिर्देश निरुक्त में हुआ है जैसे आधिदैवत आध्यात्म, आख्यानममय, ऐतिहासिक, नैदान, पारिव्राजक, याज्ञिक। इनमें 12 नैरुक्त अर्थात् निरुक्तिवादी भी थे — आग्रायण, औपमन्यव, औदुबरायण, और्णवाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकी, गार्ग्य, मालव, तैटीकी, आर्ष्यायणी, शाकपूणि और स्थौलष्ठीवी।

यास्क ने अपने निरुक्त मे शाकपूणि को विशेष मान्यता देते हुए उसके मतो का परामर्श किया है। यास्क के निरुक्त को ही उत्तरकालीन वेदभाष्यकारो ने प्रमाण मान कर वेदार्थ का निर्धारण किया है।

निरुक्त के 14 अध्यायो मे अतिम दो अध्याय यास्ककृत नही माने जाते। अत उन्हें परिशिष्ट कहते हैं।

कौत्स ऋषि के मतानुसार वेद अर्थरहित माने गए थे। यास्क ने इस विचार का खण्डन, "नैष स्थाणोरपराध यदेनम् अन्धो न पश्यति। पुरुषापराध. स भवति।" (निरुक्त-1-16) याने अधे को खभा नही दिखता, यह खंभे का अपराध नही। यह तो पुरुष का अपराध है, इन तीखे शब्दो में किया है।

"स्थाणुरयं भारहर किलाभूत्। अधीत्य वेदान् न विजानाति योऽर्थम्।। योऽर्थज्ञ इत् सकल भद्रमश्रुते। नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।"

इस सुप्रसिद्ध वचन में, यास्क ने वेदो का पठन करने पर उसका अर्थ न जानने वाले की योग्यता भारवाहक स्थाणु के समान कही है। वेदो का अर्थज्ञान प्राप्त करने वाला, पापरहित होकर स्वर्गगमन करता है, इन शब्दो में अर्थज्ञान की प्रशसा कर कौत्सवाद का खण्डन किया है।

निरुक्त पर दुर्गाचार्य, स्कन्द महेश्वर (गुजराथवासी, 7 वीं शती) और वररुचि की टीकाए उपलब्ध हैं। दुर्गाचार्य ने अपनी वृत्ति में प्राचीन टीकाकारो के मतों का परामर्श किया है। वररुचि के निरुक्तनिचय में यास्काचार्य के सिद्धान्तो का 100 श्लोकों में प्रतिपादन मिलता है।

5 प्रातिशाख्य

वेदांग व्याकरण, को वेदपुरुष का मुख माना है। भगवान पतजलि ने अपने व्याकरण महाभाष्य में इसे प्रधान अंग कहा है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन उन्होंने अनिवार्य माना है। (रक्षार्थं वेदानाम् अध्येयं व्याकरणम्)।

प्रातिशाख्य नामक वाङ्मय वेदों के शिक्षा, छद और व्याकरण इन तीन अगों से सबंधित है। प्रस्तुत ग्रंथ में व्याकरण वाङ्मय के साथ ही प्रातिशाख्य वाङ्मय का यथोचित परिचय दिया जा रहा है।

वेदों के जो सुप्रसिद्ध छह अग माने गए हैं उनमें प्रातिशाख्य का निर्देश नहीं है। प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है, "शाखां शाखा प्रति प्रतिशाखम्"। प्रतिशाखेषु भव प्रातिशाख्यम्"। अर्थात जिस ग्रंथ में वेद की एक एक शाखा के नियमों का वर्णन हो, वह "प्रातिशाख्य" कहलाता है। उपलब्ध प्रातिशाख्यो में एक एक चरण की सभी शाखाओ के नियमों का सामान्य रूप से उल्लेख मिलता है। प्रातिशाख्य के लिए प्राचीन ग्रंथों में पार्षद और पारिषद शब्द की भी प्रयोग होता है। व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि ने "सर्ववेदपारिषद हि इद शास्त्रम्"- इन शब्दों में प्रातिशाख्य शास्त्र की प्रशंसा की है।

इस विषय में दो मत हैं। एक मत के अनुसार प्रातिशाख्य, शिक्षा, छंद और व्याकरण इन तीन वेदांगों से सबधित है। वह उन वेदागों के सामान्य नियमों की विशेष रूप में स्थापना करता है। दूसरे मत के अनुसार उपर्युक्त तीन वेदागों ने जिन नियमों का विधान किया, उनसे भिन्न नियमों का विधान इस में होने के कारण, प्रातिशाख्य वेदाध्ययन में अर्थज्ञान के लिए सहाय करने वाला स्वतंत्र शास्त्र है। प्रातिशाख्यों का महत्त्व, वैदिक सहिताओ के पाठ तथा स्वरूप के विषय में विशेष होने के कारण, आचार्य शौनक ने इसे, अनिंद्य, आर्ष और पूर्ण वेदाग कहा है- (कृत्स्न च वेदागमनिंद्यमार्षम्- 14-69)।

व्याकरण शास्त्र के विकास की दृष्टि से प्रातिशाख्य उस शास्त्र की प्रारंभिक अवस्था का द्योतक है। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में रूढ प्राय सारे पारिभाषिक शब्द प्रातिशाख्य के ग्रथों में प्रयुक्त हुए हैं। वैदिक संहिताओ के पाठ और उसका स्वरूप आज तक अविच्छिन्न रखने मे, प्रातिशाख्यो के वैदिक भाषा विषयक सूक्ष्म नियम कारणीभूत हुए है। अत वेदागो का परिचय देते समय, शिक्षा और व्याकरण के बीच मे प्रातिशाख्य का परिचय देना अत्यावश्यक है।

ऋक्प्रातिशाख्य - रचयिता- महर्षि शौनक। इस पद्यबद्ध सूत्ररूप ग्रथ मे शिक्षा के विषयो का प्रतिपादन होने के कारण इसे शिक्षाशास्त्र भी कहते हैं। यह प्रातिशाख्य, ऐतरेय आरण्यक के सहितोपनिषद् का अक्षरश अनुसरण करता है। तथा आरण्यक में निर्दिष्ट माण्डूकेय, माक्षव्य, आगस्त्य, शूरवीर नामक आचार्यों के सहिता विषयक मतों का प्रतिपादन करता है। इस ग्रथ मे ऋग्वेद की एकमात्र उपलब्ध शाकल शाखा की शैशिरीय नामक उपशाखा का सागोपांग विवेचन प्रस्तुत किया है। इस के पारिभाषिक शब्द मौलिक एव अन्वर्थक हैं। इस के चतुर्दश पटल में ग्रथकार की भाषा-समीक्षा में सूक्ष्मेक्षिका का दर्शन, उच्चारण दोषों के सूक्ष्म विवरण में होता है।

इस प्रातिशाख्य के 18 पटलो मे निम्न प्रकार से विषयो का विभाजन किया है -

पटल- (1) स्वर, व्यजन, स्वरभक्ति, रक्त, नाभि, प्रगृह्य आदि पारिभाषिक शब्दो के लक्षण।

(2) प्रश्लिष्ट क्षैप्र, उद्ग्राह, भुग्न आदि नाना प्रकार की सधियों के लक्षण और उदाहरण।

(3) में स्वरपरिचय और 4 से 9 तक विसर्ग की रेफ में परिणति, नकार के नाना विकार, नतिसंधि, अर्थात् स का ष में और न का ण में परिवर्तन, क्रमसधि, (वर्ण का द्विर्वचन), व्यंजनसंधि, प्लुतिसंधि आदि विविध सन्धि प्रकारो का विवेचन।

(10-11)- उदात्तादि स्वरो के परिवर्तन के नियम।

(12-13)- पदविभाग, व्यंजनो के रूप तथा लक्षणों का प्राचीन ऋषियों के मतनिर्देश सहित विवेचन।

(14)- वर्णों के उच्चारण में दोष।

(15)- वेदपारायण की पद्धति का परिचय।

(16 से 18)- गायत्री, उष्णिक्, बृहती, पक्ति, आदि वैदिक छन्दों का विवेचन।

फलत वेदसमीक्षा के लिए शिक्षाशास्त्र में समाविष्ट विषयो के अतिरिक्त विषयों का प्रतिपादन प्रातिशाख्यो का विषय है।

ऋक्प्रातिशाख्य में प्रतिपादित विषयों के परिचय से समग्र प्रातिशाख्य शास्त्र का प्रारूप समझ में आ सकता है।

ऋक्प्रातिशाख्य पर शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार उवट का भाष्य प्रसिद्ध है। उवट, भोजराजा के शासन काल में (अर्थात् 11 वीं शताब्दी में) अवन्ती नगरी के निवासी थे। अत ऋक्प्रातिशाख्य का समय 5 वीं या 6 ठी शताब्दी माना जाता है।

वाजसनेयी प्रातिशाख्य- रचयिता- कात्यायन मुनि। यह कात्यायन, पाणिनीय सूत्रों पर वार्तिक लिखने वाले से भिन्न हैं। इनका समय पाणिनि के पूर्व माना जाता है। इस प्रातिशाख्य में अध्याय सख्या आठ और कुल सूत्रसख्या 734 है।

अध्यायो में विषयों का प्रतिपादन साधारणत निम्न प्रकार से हुआ है।

अध्याय	- 1	(सूत्र- 169) वर्णोत्पत्ति अध्ययन विधि, सज्ञा- परिभाषा और वर्णों के उच्चारण- स्थान।
-"-	- 2	(सूत्र- 653) स्वर के नियम।
-"-	- 3	(सूत्र- 151) सन्धि के नियम।
-"-	- 4	(सूत्र- 198) सन्धि, पदपाठ एव क्रमपाठ के नियम।
-"-	- 5	(सूत्र- 46) - समास मे दो पदो के पृथक् ग्रहण को ' अवग्रह" कहते है। इस अध्याय मे अवग्रह के नियम बताए हैं।
-"-	- 6	(सूत्र- 31) आख्यात, (क्रियापद) और उपसर्ग के नियम।
-"-	- 7	(सूत्र- 12) परिग्रह के नियम। परिग्रह का अर्थ है मध्य मे इति शब्द रख कर पद का दोहराना।
-"-	- 8	(सूत्र- 62)। वर्ण समाम्नाय, अर्थात् वर्णमाला, अध्ययन विधि, वर्णो के देवता, पदचतुष्टय एव उनके गोत्र तथा देवता इन विषयो का विवरण।

कात्यायन के प्रातिशाख्य मे परिभाषा, स्वर तथा सस्कार इन तीन विषयो का विस्तृत विवेचन होने के कारण उन्हे "स्वर-सस्कार-प्रतिष्ठापयिता" उपाधि दी गई है। इसमे काण्व, काश्यप, शाकटायन, शाकल्य एव शौनक आदि दस आचार्यो के मत उद्धृत किए हैं। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी मे इस प्रातिशाख्य की परिभाषा एव कुछ सूत्रो का शब्दश अगीकार किया है। अत इस का रचनाकाल पाणिनि से पूर्व अर्थात् ई पू आठवी शती तक माना जाता है।

कात्यायनकृत वाजसनेयी प्रातिशाख्य पर उवटकृत "मातृवेद" और अनन्तभट्ट कृत "पदार्थप्रकाशक" नामक दो व्याख्याए प्रकाशित हुई है। इन के अतिरिक्त (1) "प्रतिज्ञासूत्र" और (2) भाषिक सूत्र नामक दो परिशिष्ट सूत्र, व्याख्यासहित प्रकाशित हुए है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य - कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता का यह सूत्रमय प्रातिशाख्य प्रश्न नामक दो खडो मे विभक्त है। प्रत्येक खड मे 12 अध्याय है। प्रतिपाद्य विशय अन्य प्रातिशाख्य जैसे ही है केवल उदाहरण तैत्तिरीय सहिता से दिए है।

इस प्रातिशाख्य पर माहिषेय कृत "पदक्रमसदन" नामक प्राचीन भाष्य है। प्रातिशाख्यो का विषय होता है प्रकृतिपाठ (अर्थात् सहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ)। इस दृष्टि से माहिषेय भाष्य का "पद-क्रमसदन"- नाम अन्वर्थक है। दूसरा सोमयाजी कृत "त्रिभाष्यरत्न" और तीसरा है गोपालयज्वा का "वैदिकाभरण"।

सामवेद के पुष्पसूत्र (नामान्तर-फुल्लसूत्र) और ऋक्तत्र (अथवा ऋक्तत्र व्याकरण) नामक सूत्रबद्ध प्रातिशाख्य उपलब्ध है। पुष्पसूत्र का सबध गानसहिता से है अत इसमे उन स्थलो का विशेष निर्देश होता है, जिनमे "स्तोभ" का विधान या अपवाद होता है। हरदत्तविरचित सामवेदीय सर्वानुक्रमणी के अनुसार, सूत्रकार वररुचि को पुष्पसूत्र के रचयिता माना गया है। इस वररुचि के सबध में कोई जानकारी नही है। इस ग्रथ के दस प्रपाठको म से पचम प्रपाठक मे उपाध्याय अजातशत्रु की व्याख्या उपलब्ध है।

दूसरा सामवेदीय प्रातिशाख्य, ऋक्तत्र के रचयिता शाकटायन का है, जिनका निर्देश यास्क तथा पाणिनि ने अपने ग्रथो मे किया है। इसके पाच प्रपाठको में कुल सूत्रसख्या दो सौ अस्सी है। कुछ विद्वानो ने औदव्रजि को ऋक्तत्र का रचयिता माना है। समन्वय की दृष्टि से औदव्रजि यह व्यक्ति का नाम और शाकटायन गोत्र का नाम माना जा सकता है।

अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य — (1) चतुराध्यायिका- यह सब से प्राचीन अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य माना गया है। सन 1862 मे व्हिटनी द्वारा इसका सपादन होकर, जर्नल ऑफ् अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी के 7 वे खड मे यह प्रकाशित हुआ। व्हिटनी की प्रति में शौनक का नाम निर्दिष्ट होने के कारण, उन्होने इसे "शौनकीया चतुराध्यायिका" नाम से प्रकाशित किया। परतु वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय तथा उज्जयिनी सग्रह मे इसी ग्रथ का नाम "कौत्सव्याकरण" मिलता है। इस कारण कौत्स को इस के रचयिता मानते है। चार अध्यायो मे अन्य प्रातिशाख्यो के समान विषयो का प्रतिपादन इस मे मिलता है।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य- सन 1940 म डॉ सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा यह ग्रथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रथ के लघु और बृहत् दो पाठ मिलते हैं। अन्य प्रातिशाख्यो मे मिलनेवाले पारिभाषिक शब्दो का तथा शाकल्य के अतिरिक्त अन्य आचार्यो के नामो का निर्देश इस ग्रथ मे नहीं मिलता। अर्थवेद के मूल पाठ को निश्चित समझने मे इन दोनो प्रातिशाख्यो से सहायता मिलती है।

6 व्याकरण वाङ्मय की रूपरेखा

"मुख व्याकरण स्मृतम्" इस वचन के अनुसार व्याकरण को वेदपुरुष का मुख अर्थात मुख्य अग कहते है। भगवान पतजलि कहते हैं कि- "प्रधान हि षट्सु अगेषु व्याकरणम्"- वेदो के छह अगो में व्याकरण प्रधान अग है।

गोपथब्राह्मण मुडकोपनिषद्, रामायण, महाभारत जैसे प्राचीन ग्रथो में शब्दशास्त्र के अर्थ मे व्याकरण शब्द का प्रयोग

किया है। पाणिनि के शब्दानुशासन मे प्रयुक्त, धातु. प्रातिपदिक, नाम,. विभक्ति, उपसर्ग, इत्यादि अनेक पारिभाषिक शब्द (सज्ञाए) गोपथब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण जैसे वैदिक ग्रथो मे उपलब्ध होते हैं।

प्राचीन परपरा के अनुसार व्याकरण के (और सभी शास्त्रो के) प्रथम प्रवक्ता थे ब्रह्मा। उनके बाद, बृहस्पति, इन्द्र, महेश्वर, इत्यादि प्राचीन वैयाकरण हुए। वेदो के शब्दो का आकलन अल्प प्रयत्न से हो सके इस उद्देश्य से व्याकरण की उत्पत्ति हुई। महाभाष्यकार पतजलि व्दारा बताई गई एक जनश्रुति के अनुसार, एक बार देवो ने अपने अधिराजा इन्द्र से प्रार्थना की "वेद हमारी भाषा है। परतु वह अव्याकृत अवस्था में होने के कारण, दुर्बोध हुई है। आप उसे व्याकृत करें। सर्व प्रथम इन्द्र ने यह कार्य किया। प्रत्येक पद का विभाजन कर, प्रकृति, प्रत्यय, विभागश उन्होने वेद की भाषा का "व्याकरण" किया। व्याकरण की उत्पत्तिविषयक इस जनश्रुति के अनुसार इन्द्र को ही आदि वैयाकरण माना जाता है। इन्द्र को यह ज्ञान बृहस्पति से प्राप्त हुआ था। इन्द्र द्वारा भरद्वाजादि ऋषियो ने इसका अध्ययन-अध्यापन किया।

अग्निपुराण के 349 से 359 तक के 11 अध्यायो में व्याकरण की उत्पत्ति की जानकारी दी है। तदनुसार स्कन्द ने कात्यायन को यह ज्ञान सिखाया और आगे उसका ही प्रचार हुआ। स्कन्द के व्याकरण को ही "कौमार व्याकरण" कहते हैं।

वैदिक प्रातिशाख्यो मे भी सन्धि, विश्लेष जैसे व्याकरण सबधी विषयो की चर्चा होती है। वैसे अन्य एक वेदाग निरुक्त मे भी वैदिक शब्दो के अर्थनिर्णय के लिए व्याकरण से सबधित धातुओ का विचार होता है।

व्याकरण शास्त्र मे दो प्राचीन सप्रदाय प्रसिद्ध हैं। एक ऐन्द्र और दूसरा माहेश्वर (अथवा शैव)। वर्तमान प्रसिद्धि के अनुसार कातन्त्र व्याकरण ऐन्द्र सम्प्रदाय का और पाणिनीय व्याकरण शैव सम्प्रदाय का माना जाता है।

व्याकरण शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ मुनि पाणिनि ने अपने शास्त्र मे दस प्राचीन आचार्यों का नामनिर्देश किया है। उनके अतिरिक्त अन्यत्र 15 आचार्यो का उल्लेख मिलता है। दस प्रातिशाख्य और सात अन्य वैदिक व्याकरण उपलब्ध है। इन प्रातिशाख्य आदि ग्रथो मे 59 प्राचीन व्यैयाकरण आचार्यों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि प्रातिशाख्यो मे शिक्षा और छद वेदागो का समावेश हुआ है, तथापि प्रातिशाख्यो को मूल वैदिक व्याकरण कहा जा सकता है। पाणिनि ने अपनी सुप्रसिद्ध अष्टाध्यायी में वैदिक और लौकिक, दोनो प्रकार के शब्दो का विवेचन किया है। सामान्यत विद्वत्समाज मे "व्याकरणम् अष्टप्रभेदम्" - माना जाता है। इन आठ व्याकरणो के विषय मे कुछ मतभेद है। परतु बोपदेव कृत कविकल्पद्रुम के,

इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नापिशली शाकटायन । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिका ।।

इस सुप्रसिद्ध श्लोक मे निर्दिष्ट इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न आपिशलि, शाकटायन आदि आठ आचार्यों को आदि शाब्दिक मानते है, और सामान्यत इन्ही के ग्रथो द्वारा प्रस्थापित आठ पृथक सप्रदाय माने जाते हैं।

कुछ लोग पाच व्याकरण मानते हैं और उनमे सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ और लिङ्गानुशासन इन पाच अगो का अन्तर्भाव करते हैं। अन्य मतानुसार वे पाच अग है- पदच्छेद, समास, अनुवृत्ति, वृत्ति और उदाहरण।

आज तक जितने व्याकरणशास्त्र निर्माण हुए उनका विभाजन (1) छादसमात्र प्रातिशाख्यादि, (2) लौकिकमात्र-कातन्त्रादि और लौकिक-वैदिक उभयविध-आपिशल, पाणिनीय इत्यादि। इनमे लौकिक व्याकरण के जितने ग्रथ उपलब्ध हैं, वे सब पाणिनि के उत्तरकालीन है। पाणिनि ने अपने शब्दानुशासन मे, आपिशल, काश्यप, गार्ग्य, गालव चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन इन दस वैयाकरणों का नामत उल्लेख किया है, इससे इनकी इस शास्त्र में कितनी महान योग्यता थी इसका अनुमान किया जा सकता है। इन के अतिरिक्त महेश्वर, बृहस्पति, इन्द्र, वायु भरद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि काशकृत्स्न, रौढि, चारायण, माध्यंदिनि, वैयाघ्रपद, शौनकि, गौतम, शन्तनु, और व्याडि इन पद्रह महत्त्वपूर्ण नामो का भी निर्देश अन्यत्र मिलता है। प्रातिशाख्यो के, शौनक, कात्यायन, वररुचि, आश्वलायन, शाखायन, चारायण इत्यादि नामो का उल्लेख प्रातिशाख्य वाड्मय के परिचय मे पहले आ चुका है। प्रातिशाख्य वाड्मय में 59 वैदिक व्याकरण प्रवक्ताओ के नाम मिलते हैं।

पाणिनि के उत्तरकालीन व्याकरण-सूत्रकार -

	सूत्रकार	सूत्रग्रंथ			
(1)	कातत्र	कातत्र	(7)	पाल्यकीर्ति	--"--
(2)	चद्रगोमी	चान्द्र	(8)	शिवस्वामी	--"--
(3)	क्षपणक	क्षपणक	(9)	भोजदेव	सरस्वतीकठाभरण
(4)	देवनन्दी	जैनेन्द्र	(10)	बुद्धिसागर	बुद्धिसागर
(5)	वामन	विश्रान्त विद्याधर	(11)	हेमचद्र	हैमव्याकरण
(6)	अकलक	जैन शाकटायन	(12)	भद्रेश्वरसूरि	क्षपणक

(13)	अनुभूतिस्वरूप	सारस्वत	(15)	क्रमदीश्वर	जौमर
(14)	बोपदेव	मुग्धबोध	(16)	पद्मनाभ	सुपद्म

इन वैयाकरणो का काल ई.पू. शती से ई 14 वीं शती तक माना गया है।

पाणिनि का शब्दानुशासन न केवल व्याकरण विषय में ही अपि तु, ससार के समस्त वाड्मय में एक अद्भुत कृति है। प्राचीन भारतीय वाड्मयेतिहास की दृष्टि से वह अतिप्राचीन और अर्वाचीन काल को जोडने वाला महान सेतु है। भाष्यकार पतजलि के मतानुसार, पाणिनीय सूत्रो मे एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हो सकता। वेदार्थज्ञान के लिए जिस स्वरज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता होती है, उसकी पूर्तता पाणिनीय सूत्रो से होती है। पाणिनि ने केवल वैदिक स्वर विशेष के परिज्ञान के लिए 400 सूत्र रचे हैं। वेद के षडगो में व्याकरण को वेदपुरुष का मुख (अर्थात् प्रमुख अंग) जिस कारण माना है, उसका साक्षात्कार पाणिनि के व्याकरण में यथार्थ रीति से होता है।

पाणिनि के काल के सबध मे मतभेद स्वाभाविक है। गोल्डस्ट्रकर, वेबर, कीथ आदि पाश्चात्य विद्वान ई पू 7 वीं से चौथी शती तक पाणिनि का आविर्भावकाल सिद्ध करते हैं। इस विषय में पाश्चात्य पडितो द्वारा प्रस्तुत 7 प्रमाणो का खण्डन कर विख्यात वैयाकरण प युधिष्ठिर मीमासक ने किया है। उन्होंने वह कालमर्यादा महाभारत युद्ध से 200 वर्ष पश्चात् अर्थात् 2900 विक्रम पूर्व प्रतिपादित की है।

अष्टाध्यायी के वार्तिककार- सस्कृत वाड्मय में वार्तिक नामक एक वाड्मय प्रकार माना जा सकता है। वार्तिक का लक्षण है "उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता"। पाणिनीय सूत्रो के भी उक्त, अनुक्त और दुरुक्त का, वार्तिकीय पद्धति के अनुसार, कई आचार्यो द्वारा चिन्तन हुआ। इस कार्य में कात्यायन का नाम अग्रगण्य है। भाष्यकार पतजलि ने "प्रियतद्धिता हि दाक्षिणात्या। यथा लोके वेदे च प्रयोक्तव्ये लौकिक-वैदिकेषु प्रयुञ्जते।" इस वचन के अनुसार, अष्टाध्यायी के वार्तिककार कात्यायन को दाक्षिणात्य माना है। प युधिष्ठिर मीमासक, कात्यायन का काल विक्रमपूर्व 2900-3000 मानते हैं। कात्यायन के साथ, भारद्वाज, सुनाग, क्रोष्टा, वाडव, व्याघ्रभृति, और वैयाघ्रपद्य इत्यादि अन्य वार्तिककारो के नाम भी वार्तिककारो में मान्यताप्राप्त हैं।

व्याकरण वाड्मय में पतजलिकृत महाभाष्य अपने ढग का एक अद्भुत ग्रथ है। इस ग्रथ मे भगवान पतजलि ने व्याकरण जैसे दुरूह और नीरस विषय को सरल और सरस किया है। सारे विद्वान इसकी, सरल, प्राजल भाषा और रचना-सौष्ठव की मुक्तकठ से प्रशसा करते हैं। पाणिनीय व्याकरण का यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रथ है। सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य में जहा मतभेद उत्पन्न होता है वहा, "यथोत्तर मुनींना प्रामाण्यम्" इस नागेश भट्ट के वचनानुसार, पतजलि मुनि का ही मत ग्राह्य माना जाता है।

पाश्चात्य विद्वानो ने पतजलि का काल ई पू दूसरी शती माना है। प युधिष्ठिर मीमासक पतजलि को वि पू 2000 अथवा 1200 तक के मानते हैं।

पातजल महाभाष्य पर भर्तृहरि कृत महाभाष्य-दीपिका, कैयटकृत महाभाष्यप्रदीप, पुरुषोत्तमदेवकृत प्राणपणा, वनेश्वरकृत चिन्तामणि, शेषनारायणकृत सूक्तिरत्नाकर, विष्णुमित्रकृत क्षीरोद, नीलकण्ठ वाजपेयी कृत भाष्यतत्त्वविवेक, शिवरामेन्द्र सरस्वतीकृत महाभाष्यरत्नाकर, तिरुमलयज्वाकृत अनुपदा, इत्यादि 20 व्याखाए उपलब्ध हैं। इससे महाभाष्य की विद्वन्मान्यता व्यक्त होती है। इन टीका ग्रथो मे कैयटकृत "प्रदीप"- टीका पर भी अनेक टीकाए लिखी गई जिनमें नागेशभट्ट कृत "उद्योत" विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी पर तीस से अधिक वृत्ति नामक ग्रथ लिखे गए। उनमे जयादित्य और वामन की काशिका-वृत्ति विशेष प्रसिद्ध है। प्रस्तुत काशिकावृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धिकृत "न्यास" नामक व्याख्या भी विद्वन्मान्य है। इसके अतिरिक्त अनुन्यास और महान्यास नामक टीका भी काशिका पर उपलब्ध है।

ई 16 वीं शताब्दी के बाद पाणिनीय व्याकरण की परपरागत अध्ययन प्रणाली के स्थान पर कातन्त्र की प्रणाली के अनुसार, प्रक्रियानुसार अध्ययन की प्रणाली का प्रारभ हुआ। इस पद्धति के अनुसार लिखे गए ग्रन्थो मे धर्मकीर्ति कृत रूपावतार, रामचद्र शेष कृत प्रक्रियाकौमुदी, भट्टोजी दीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदी और नारायण भट्ट (केरलवासी) कृत प्रक्रियासर्वस्व ये ग्रथ विशेष प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। रूपावतार, प्रक्रियाकौमुदी इत्यादि प्रक्रियाग्रथो मे अष्टाध्यायी के समस्त सूत्रो का अन्तर्भाव नहीं हुआ था। भट्टोजी दीक्षित के सिद्धान्त कौमुदी ने इस त्रुटि को समाप्त किया। उन्होंने स्वय अपनी सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढ मनोरमा नामक व्याख्या लिखी।

इनके अतिरिक्त ज्ञानेन्द्र सरस्वतीकृत तत्त्वबोधिनी, नागेशभट्ट कृत बृहच्छब्देन्दुशेखर तथा लघुशब्देन्दुशेखर, रामकृष्णकृत रत्नाकर और वासुदेव वाजपेयीकृत बालमनोरमा इत्यादि टीका ग्रथ प्रसिद्ध हैं। बालमनोरमा अत्यत सुबोध होने के कारण प्रौढ छात्रों के लिए विशेष उपादेय है।

व्याकरण के क्षेत्र में आचार्य भर्तृहरि (ई 6 श) कृत वाक्यपदीय ग्रन्थ का कार्य कुछ अनोखा है। इस ग्रथ ने व्याकरण

को दर्शन क्षेत्र में प्रविष्ट किया। भर्तृहरि शब्दाद्वैत के सस्थापक थे। उनकी दृष्टि में "स्फोट" ही एकमात्र परम तत्व है और यह जगत् उसी का विवर्त रूप है।

भट्टोजी दीक्षित की परम्परा में नागेश भट्ट (ई 18 शती) का कार्य सर्वोच्च माना जा सकता है। इनका परिभाषेन्दुशेखर पाणिनि व्याकरण की परिभाषाओं का विवेचन करनेवाला सर्वमान्य ग्रथ है। इनका शब्देन्दुशेखर, प्रौढमनोरमा की व्याख्या है। इन दो महत्वपूर्ण ग्रंथों के कारण "शेखरान्त व्याकरणम्" यह सुभाषित रूढ हुआ। नागेश भट्ट (नागोजी) की लघुमजूषा शब्द और अर्थ के सिद्धान्तों की मीमांसा करनेवाला, भर्तृहरि के वाक्यदीय की योग्यता का पाण्डित्यपूर्ण ग्रथ है। इनके अतिरिक्त हरि दीक्षित (भट्टोजी के पौत्र) के लघुशब्दरत्न तथा बृहच्छब्दरत्न, वैद्यनाथ पायगुडे के प्रभा, चिदस्थिमाला, गदा एव छाया नामक टीकात्मक ग्रथ, तर्कसग्रहाकार अन्नभट्ट के महाभाष्यप्रदीपोद्योतन, अष्टाध्यायीमिताक्षरा इत्यादि अर्वाचीन काल में निर्माण हुए व्याकरणशास्त्र विषयक ग्रथ इस वेदाङ्गात्म शास्त्र का अखंड प्रवाह सिद्ध करते हैं। सिद्धान्त कौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित का अन्तर्भाव अर्वाचीन संस्कृत लेखकों में होता है। नव्य व्याकरण की परम्परा सिद्धान्तकौमुदी से मानी जाती है। उस युगप्रवर्तक ग्रथ के पश्चात् निर्माण हुए सभी प्रौढ पाण्डित्यपूर्ण ग्रथ अर्वाचीन सस्कृत वाङ्मय की प्रगल्भता के उत्कृष्ट प्रमाण कहे जा सकते हैं।

7 विविध व्याकरण संप्रदाय

"व्याकरण" को मुख्य स्थान दिया गया। व्याकरण शब्द का प्रयोग गोपथब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद्, रामायण, महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रंथों में हुआ है। प्राचीन परम्परा के अनुसार ब्रह्मा, बृहस्पति, इद्र चद्र, प्रजापति, त्वष्टा, वायु, भरद्वाज, काशकृत्स्न, कुमार, भागुरी, रौढि, माध्यन्दिनि, पौष्करसादि, व्याडि, शौनकि, गौतम, चारायण, वैयाघ्रपद्य इत्यादि व्याकरण शास्त्रज्ञों के नाम यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। भगवान पाणिनि द्वारा इस क्षेत्र में जो कार्य हुआ, उसकी अलौकिकता के कारण व्याकरण का विभाजन (1) पाणिनि के पूर्वकालीन और (2) पाणिनि के उत्तरकालीन इन दो भागों मे किया जाता है। स्वयं पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के सूत्रों में उपरिनिर्दिष्ट नामावलि के अतिरिक्त आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन इन दस शाब्दिकों का उल्लेख किया है।

व्याकरण को एक वेदाग माने जाने के कारण, जिन प्रातिशाख्यों से वैदिक शब्दों का विचार प्रारभ हुआ इसी को व्याकरण शास्त्र का मूलस्रोत माना जाता है। जिन पाणिनिपूर्व वैयाकरणों की नामावली उपर दी है उनके ग्रथ तो उपलब्ध नहीं होते परतु उनमें से अनेकों के वचन या मत यत्र तत्र मिलते है, जिनसे उनके विचारों की सूक्ष्मता का परिचय मिलता है।

"ऐन्द्र व्याकरण"

ऐन्द्र व्याकरण का उल्लेख प्राचीन ग्रथों में अनेकत्र मिलता है। जैन परपरा के अनुसार ऐसी मान्यता है कि भगवान् महावीर ने इन्द्र के लिये शब्दानुशासन कहा। उसे उपाध्याय (लेखाचार्य) ने सुनकर लोक मे "ऐन्द्र" नाम से प्रकट किया। जिनविजय उपाध्याय और लक्ष्मीवल्लभ मुनि जैसे कुछ जैन ग्रथकारों ने जैनेन्द्र व्याकरण को ही "ऐन्द्र" व्याकरण बताने का प्रयत्न किया है।

वस्तुत "ऐन्द्र" और "जैनेन्द्र" ये दोनों व्याकरण भिन्न हैं। जैनेन्द्र से अतिप्राचीन उल्लेख "ऐन्द्र व्याकरण" के सबध मे प्राप्त होते हैं। दुर्गाचार्य ने "निरुक्तवृत्ति" के प्रारंभ में ऐन्द्र व्याकरण का सूत्र निर्दिष्ट किया है। शाकटायन व्याकरण मे ऐन्द्र व्याकरण का मत प्रदर्शन किया है। (चरक के व्याख्याता भट्टारक हरिश्चन्द्र ने ऐन्द्र व्याकरण का निर्देश किया है। दिगम्बर जैनाचार्य सोमदेव सूरि ने अपने "यशस्तिलकचम्पू" (आश्वास-1) मे ऐन्द्र व्याकरण का उल्लेख किया है। डॉ. ए सी बर्नेल ने ऐन्द्र व्याकरणसे सबधित चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्य के उल्लेखों का सग्रह कर "ऑन दी ऐन्द्र स्कूल ऑफ ग्रामेरियन्स" नामक ग्रंथ लिखा है। ऐन्द्र व्याकरण की रचना का समय ईसा पूर्व पाचवी-छठी शताब्दी माना जाता है परतु वह व्याकरण अभी तक अप्राप्त है।

"जैनेन्द्र व्याकरण"

"सिस्टिम्स ऑफ सस्कृत ग्रामर" नामक अपने ग्रथ में डॉ बेलवलकर ने देवनन्दी नामक दिगम्बर जैनाचार्य को इस व्याकरण का प्रवर्तक कहा है। उन्होंने इस व्याकरण के दो उपलब्ध पाठो का उल्लेख किया है, जिनमें पाणिनीय व्याकरण का संक्षेप दिखाई देता है। बोपदेव ने जिन आठ प्राचीन शाब्दिकों (अर्थात वैयाकरणों का) निर्देश किया है उनमें जैनेन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम माना गया है। इस व्याकरण में पाच अध्याय होने से इसे "पचाध्यायी" भी कहते हैं। इसमें सिद्धान्त कौमुदी की तरह प्रकरण विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधान क्रम को लक्ष्य कर इसमें सूत्रों की रचना की गई है। इसमें सज्ञाएं अल्पाक्षरी हैं और पाणिनीय व्याकरण के आधार पर ही इसकी रचना हुई है। परतु यह केवल लौकिक व्याकरण है, जब कि पाणिनीय व्याकरण लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के शब्दप्रयोगों को लक्ष्य करता है। जैनेन्द्र व्याकरण में "छादस (वैदिक) प्रयोग भी लौकिक मान कर सिद्ध किये गये हैं। जैनेन्द्र व्याकरण के दो सूत्रपाठ मिलते हैं, जिनमें प्राचीन सूत्रपाठ के 3000 सूत्र और संशोधित पाठ के 3700 सूत्र हैं। दोनों सूत्रपाठों पर भिन्न भिन्न टीका ग्रथ लिखे गये हैं। इस व्याकरण पर देवनन्दी

का स्वोपज्ञ भाष्य होने के उल्लेख मिलते हैं, परतु भाष्य ग्रथ उपलब्ध नहीं है। जैनेन्द्र व्याकरण पर आधारित अभयनन्दीकृत महावृत्ति (12000 श्लोक परिमाण) प्रभाचद्र (वि 12 वीं शती) कृत शब्दाम्भोज-भास्करन्यास (16000 श्लोक परिमाण), महाचंद्रकृत "लघुजैनेन्द्र" (अभयनन्दीकृत महावृत्ति पर आधारित), गुणनन्दीकृत शब्दार्णव (जैनेन्द्र व्याकरण का परिवर्तित सूत्रपाठ), श्रुतकीर्तिकृत पचवस्तुटीका, सोमदेवकृत शब्दार्णवचन्द्रिका, गुणन्दीकृत शब्दार्णवप्रक्रिया, रत्नर्षिकृत (ई 18 वीं शती) भगवद्वाग्वादिनी टीका, मेघविजयकृत (ई 18 वीं शती) जैनेन्द्रव्याकरण वृत्ति, विजय विमलकृत अनिट्कारिकावचूरि, वशीधरकृत जैनेन्द्रप्रक्रिया, नेमिचन्द्रकृत प्रक्रियावतार और राजकुमारकृत जैनेन्द्रलघुवृत्ति इत्यादि अनेक विवरणात्मक व्याकरणग्रथों की रचना हुई है।

"शाकटायन व्याकरण"

पाणिनी प्रभृति प्राचीन विद्वानों ने जिस शाकटायन का नामोल्लेख किया उनका व्याकरण आज उपलब्ध नहीं हैं परतु आज जो शाकटायन व्याकरण उपलब्ध है, उसके निर्माता का वास्तविक नाम है पाल्यकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है शब्दानुशासन। इस तथाकथित शाकटायन व्याकरण मे, पाणिनि की तरह विधानक्रम से सूत्ररचना की गई है। इस पर कातत्र व्याकरण का प्रचुर प्रभाव है। ग्रथ 4 अध्यायो तथा 16 पादो मे विभक्त है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि से पूर्वकालीन सागोपाग कोई भी व्याकरण ग्रथ उपलब्ध न होने के कारण और पाणिनि का ग्रथ सर्वांग परिपूर्ण होने के कारण, वही सस्कृत व्याकरण शास्त्र का आद्य और सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना जाता है। समस्त ससार मे किसी भी राष्ट्र के वाङ्मय में, इस प्रकार का और इस योग्यता का ग्रथ अभी तक निर्माण नहीं हुआ। पाणिनीय शब्दानुशासन न केवल वैदिक एव लौकिक शब्दों के यथार्थज्ञान के लिए अपि तु प्राचीन भारतीय संस्कृति के विविध अगो के परिचय के लिए भी प्रमाणभृत महान आकर ग्रथ है। व्याकरण भाष्यकार पतजलि के मतानुसार पाणिनीय सूत्रों में एक भी वर्ण अनर्थक नही है ("तत्राशक्य वर्णेन अपि अनर्थकेन भवितुम्) भारत में व्याकरण शास्त्र की प्रवृत्ति वैदिक शब्दो के अर्थनिर्धारण के निमित्त हुई। इस कार्य का प्रारभ प्रातिशाख्यकारों द्वारा हुआ। प्रातिशाख्यो में वर्णसधि आदि शब्दशास्त्र से सबधित विषयो का विवेचन होने के कारण, व्यवहार मे उन्हें "वैदिक व्याकरण" कहा जाता है। इस समय जो प्रातिशाख्य ग्रथ उपलब्ध या ज्ञात हैं उनके नाम हैं 1) ऋक्प्रातिशाख्य, 2) आश्वलायन प्रातिशाख्य, 3) बाष्कल प्रातिशाख्य, 4) शाखायन प्रा 5) वाजसनेय प्रा 6) तैत्तिरीय प्रा 7) मैत्रायणीय प्र 8) चारायणीय प्रा 9) साम प्रा और अर्थव प्रा इनमें से ऋक्प्रातिशाख्य निश्चय ही पाणिनि से प्राचीन है। प्रातिशाख्यों के अतिरिक्त तत्सदृश जो अन्य वैदिक व्याकरण के ग्रथ उपलब्ध हैं उनके नाम है 1) ऋक्तन्त्र - शाकटायन या औदव्रजिद्वारा प्रणीत, 2) लघुऋक्तन्त्र 3) अथर्वचतुरध्यायी - शौनक अथवा कौत्सप्रणीत, 4) प्रतिज्ञासूत्र - कात्यायनकृत और 5) भाषिकसूत्र - कात्यायनकृत। इन वैदिक व्याकरण विषयक ग्रथों मे, अग्निवेश्य, इन्द्र, काश्यप, जातूकर्ण्य, भरद्वाज, शाकल्य, हारीत इत्यादि 50 से अधिक आचार्यों का नाम-निर्देश मिलता है, परतु उनके ग्रथ उपलब्ध नहीं है। ये सारे नाम वैदिक व्याकरण की मात्र प्राचीनता के प्रमाण कहे जा सकते है।

अष्टाध्यायी

पाणिनीय शब्दानुशासन आठ अध्यायो मे विभाजित होने के कारण "अष्टाध्यायी" नाम से सुप्रसिद्ध है। इन आठ अध्यायो का प्रत्येकश चार पादो मे विभाजन किया है। पादो की सूत्रसख्या समान नहीं है। पाणिनीय सूत्रो के सज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम और अतिदेश नामक पाच प्रकार होते हैं। अष्टाध्यायी के प्रथम व द्वितीय अध्याय में सज्ञा और परिभाषा के सूत्र हैं। तृतीय, चतुर्थ और पचम अध्यायो मे कृत् और तद्धित प्रत्ययो का निरूपण है। छठे अध्याय मे द्वित्व, सप्रसारण, सधि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घत्व आदि के सूत्र है। सातवे अध्याय मे "अगाधिकार" प्रकरण आया है। इस मे प्रत्यय के कारण मूलशब्दो मे तथा शब्द के कारण प्रत्ययो मे सभाव्य परिवर्तन का विवरण किया है। और आठवे अतिम अध्याय में द्वित्व, प्लुत, णत्व, षत्व इत्यादि का विवरण है। अष्टाध्यायी के, प्राच्य, उदीच्य और दाक्षिणात्य नामक तीन पाठ विद्वानों ने माने हैं, तथापि ढाई हजार वर्षो की प्रदीर्घ कालावधि मे इस महनीय ग्रथ का पाठ प्राय अविकृत रहा है। अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ विशद करनेवाली एक "वृत्ति" सूत्रो के साथ ही निर्माण हुई थी, अत पतजलि ने अष्टाध्यायी को ही "वृत्तिसूत्र नाम दिया है।"

वृत्तियां

"सूचनात् सूत्रम्" इस वचन के अनुसार अल्पाक्षर सूत्रो का अभिप्राय विशद करनेवाले अनेक वृत्तिग्रथ निर्माण हुए, जिनमे सूत्रों का पदच्छेद वाक्याध्याहार (पूर्व प्रकरणस्थ पदो की अनुवृत्ति एव सूत्रबाह्य पद का योग) उदाहरण, प्रत्युदाहरण, पूर्वपक्ष और समाधान किया जाता है। इस प्रकार के वृत्तिग्रथो की सख्या अल्प नहीं थी, परतु उनमें जयादित्य और वामन (ई 8 वीं शती) विरचित "काशिका" नामक वृत्ति अत्यत महत्वपूर्ण है। इसमे बहुत से सूत्रों की वृत्तिया और उदाहरण, प्राचीन वृत्तियों से सग्रहित हैं। काशिकावृत्ति की सबसे प्राचीन व्याख्या जिनेन्द्रबुद्धि-विरचित काशिका-विवरणपजिका है, जो "न्यास" नाम से व्याकरण वाङ्मय में प्रसिद्ध है। ई 14 वीं शती मे शरणदेव ने अष्टाध्यायीपर "दुर्घट" नामक वृत्ति लिखी है। सस्कृत भाषा के जो अनोखे शब्द व्याकरण से साधारणतया सिद्ध नहीं होते, उन बौद्ध ग्रथों के शब्दो का साधुत्व सिद्ध करने का प्रयास,

इस दुर्घटवृत्ति में किया गया है। शरणदेव बौद्ध मतानुयायी थे। इन वृत्तियों के अतिरिक्त भट्टोजी दीक्षित कृत शब्दकौस्तुभ (अपूर्ण), अप्पय्य दीक्षितकृत सूत्रप्रकाश, विश्वेश्वर सूरिकृत व्याकरणसिद्धान्त-सुधानिधि, तथा दयानन्द सरस्वतीकृत अष्टाध्यायीभाष्य इत्यादि वृत्तिग्रंथ उल्लेखनीय हैं। पाणिनीय व्याकरण पर आचार्य व्याडि (अपर नाम दाक्षायण) ने सग्रह नामक ग्रथ रचा था। पतजलि कृत महाभाष्य, भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय की पुष्पराज तथा हेलाराजकृत टीका, तथा जैनेन्द्रव्याकरण की महानन्दी टीका, इत्यादि ग्रथों में इस व्याडिकृत सग्रह ग्रथ के उद्धरण मिलते है, परतु आज यह महत्वपूर्ण ग्रथ उपलब्ध नहीं है। पातजल महाभाष्य का प्रचार होने के पूर्व, सग्रह ग्रथ का ही अध्ययन प्रचलित था।

8 पाणिनीय व्याकरण का विस्तार

"उक्त-अनुक्त-दुरुक्त-चिन्ता वार्तिकम्" इस वचन के अनुसार, किसी महत्वपवपूर्ण ग्रथ की चिकित्सा करनेवाले विद्वानों ने मूल ग्रन्थ के सबध में जो टिप्पणात्मक पूरक वाक्य या श्लोक लिखे होते हैं उन्हें "वार्तिक" संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के श्लोकवार्तिक, तत्रवार्तिक इत्यादि प्राचीन ग्रथ उपलब्ध होते हैं। व्याकरण शास्त्र में "वृत्तेर्व्याख्यान वार्तिकम्" अर्थात् पाणिनीय शब्दानुशासन की वृत्ति का व्याख्यान करनेवाले वचन 'वार्तिक' नाम से निर्देशित होते हैं। पातजल महाभाष्य मे भारद्वाज, क्रोष्टा, सुनाग, व्याघ्रभूति इत्यादि वार्तिककारों के साथ कात्यायन (या कात्य) का निर्देश हुआ है। किन्तु कात्यायन के वार्तिकपाठ का ही परामर्श प्राधान्य से किया गया है। पतजलि के मतानुसार वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य था। कुछ विद्वान उसे पाणिनि का साक्षात् शिष्य मानते हैं। कात्यायन का वार्तिकपाठ स्वतत्र रूप मे उपलब्ध नहीं होता। वह पाणिनीय व्याकरण का ही पूरक अग होने के कारण सूत्रो मे ही ग्रथित हुआ है। इन वार्तिको के बिना पाणिनीय व्याकरण का सर्वंकष ज्ञान नहीं हो सकता।

पातंजल महाभाष्य

सस्कृत वाड्मय में अनेक शास्त्रों के पांडित्यपूर्ण भाष्य ग्रथ निर्माण हुए। पाणिनीय व्याकरण पर विवेचन करने वाले अनेक ग्रथो का परामर्श लेते हुए पतजलि ने अपना व्याकरण-महाभाष्य लिखा। पाणिनि, कात्यायन और पतजलि व्याकरण शास्त्र के "त्रिमुनि" (या मुनित्रय) माने जाते हैं। शब्दापशब्द का विवेक करते समय "यथोत्तर मुनीना प्रामाण्यम्" याने सूत्रकार पाणिनि से वार्तिकार कात्यायन प्रमाण, और कात्यायन से भी उतरकालीन ग्रथकार होने के कारण, भाष्यकार पतजलि मुनि के मत परम प्रमाण माने जाते हैं। पतजलि को शुगवशीय महाराजा पुष्यमित्र का समकालिक माना जाता है। अत ई पू द्वितीय शती में पतजलि का आविर्भाव विद्वान मानते है। युधिष्ठिर मीमासक पतजलि को विक्रम पूर्व 1200 से पूर्वकालिक मानते हैं। विभिन्न प्राचीन ग्रथो मे, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, शेषराज, चूर्णिकार इत्यादि नामों से पतजलि का निर्देश मिलता है। सस्कृत वाड्मय मे पतजलि के नामपर तीन ग्रथ प्रसिद्ध है। 1) सामवेदीय निदानसूत्र, 2) योगसूत्र और 3) व्याकरण महाभाष्य।

"योगेन चित्तस्य, पदेन वाचा मल शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् त प्रवर मुनीना पतजलि प्राजलिरानतोऽस्मि।।"

यह श्लोक वैयाकरणो की परपरा मे प्रसिद्ध है। इसके अनुसार वैद्यक, योग तथा व्याकरण इन तीनो के अधिकारी लेखक पतजलि मुनि, एक ही व्यक्ति माने गये है। सभी शास्त्रीय विषयो के समान, व्याकरण विषयक ग्रथो की शैली प्राय शुष्क, नीरस होती है, परतु पातजल महाभाष्य इस दृष्टि से अपवाद है। भाषा की सरलता, प्राजलता, स्वाभाविकता, विषय प्रतिपादन शैली की उत्कृष्टता, वाक्यो की असामासिकता, तथा लघुता के कारण, इस भाष्य की भूरि भूरि प्रशसा सभी विद्वान करते हैं। व्याकरण महाभाष्य पर भर्तृहरिकृत महाभाष्य-प्रदीपिका और कैयटकृत प्रदीप नामक दो टीका ग्रथ उल्लेखनीय हैं। कैयटकृत प्रदीप टीका के असाधारण महत्त्व के कारण उस पर रामानद सरस्वती, ईश्वरानद सरस्वती, अन्नभट्ट, नागेशभट्ट इत्यादि 14 विद्वानो ने टीका ग्रथ लिखे हैं। पाणिनि का व्याकरण सूत्रात्मक तथा उसकी अपनी प्रतिपादन शैली कुछ जटिल सी होने के कारण, केवल लौकिक शब्दों की सिद्धि के विषय मे जिज्ञासा रखनेवालो के लिए "प्रक्रियानुसारी" व्याकरण ग्रन्थो की आवशक्यता निर्माण हुई। यह आवश्यकता कुछ समय तक कातत्र आदि प्रक्रियानुसारी अन्य व्याकरणो के द्वारा निभाई जाती थी। ई 15-16 वी शती से पाणिनीय व्याकरण का सूत्रपाठ के क्रमानुसार अध्ययन खडित होकर, प्रक्रियापद्धति के अनुसार, सर्वत्र होने लगा। अष्टाध्यायी पर आधारित तीन महत्त्वपूर्ण प्रक्रियानुसारी ग्रथ लिखे गये—

ग्रंथ		**ग्रंथकार**
रूपावतार	—	धर्मकीर्ति
प्रक्रियाकौमुदी	—	रामचद्र (ई 14 वीं शती)
सिद्धान्तकौमुदी	—	भट्टोजी दीक्षित (ई- 16-17 वीं शती)

भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी में व्याकरण की प्रक्रियापद्धति परिपूर्ण रूप से प्रकट हुई। इस ग्रथ के पूर्व भाग मे

लौकिक शब्दों का अनुशासन तथा उत्तरभाग में वैदिक शब्दो का अनुशासन सुव्यवस्थित पद्धति से किया गया है। अत यह ग्रंथ व्याकरण समाज में महाभाष्य से भी उपादेय माना गया।

"कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रम । कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रम ।।"

यह सुप्रसिद्ध सुभाषित इस ग्रथ की महनीयता का एक प्रमाण कहा जा सकता है। प्रक्रियाकौमुदी तथा सिद्धान्तकौमुदी पर अनेक व्याख्याए लिखी गईं। भट्टोजी ने स्वय अपनी सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढमनोरमा नामक टीका लिखी, जिसमे उन्होंने प्रक्रियाकौमुदी और उसकी टीकाओं का स्थान स्थान पर खडन किया है। भट्टोजी की प्रौढमनोरमा पर उन के पौत्र हरि दीक्षित ने बृहच्छब्दरत्न और लघुशब्दरत्न नामक दो व्याख्याएँ लिखी हैं। अन्य टीकाओ मे ज्ञानेन्द्र सरस्वती की तत्त्वबोधिनी, नागेशभट्ट कृत बृहच्छब्देन्दुशेखर- एव लघुशब्देन्दुशेखर और वासुदेव वाजपेयी की बालमनोरमा विशेष उल्लेखनीय हैं। पडितराज जगन्नाथ ने भट्टोजी की प्रौढमनोरमा टीका के खंडनार्थ "कुचमर्दिनी" नामक टीका लिखी है। ई-18 वीं शती मे केरल निवासी नारायण भट्ट ने प्रक्रियासर्वस्व नामक प्रक्रिया ग्रथ लिखा है। इसके 20 प्रकरणों मे सिद्धान्तकौमुदी से भिन्न क्रमानुसार विषय प्रतिपादन किया है। इन सुप्रसिद्ध प्रक्रिया ग्रथों के अतिरिक्त लघु सिद्धान्तकौमुदी, मध्यकौमुदी जैसे छात्रोपयोगी प्रक्रिया ग्रथ निर्माण हुए जिनके अध्ययन से पाणिनीय व्याकरण का परिचय आज भी छात्रो को सर्वत्र दिया जाता है।

9 "पाणिनीयेतर व्याकरण ग्रंथ"

सस्कृत व्याकरण शास्त्र की परपरा में पाणिनीय व्याकरण का सार्वभौम अधिराज्य निर्विवाद है। परतु इस के अतिरिक्त अन्य कुछ व्याकरण सप्रदाय भी पाणिनि के पश्चात् निर्माण हुए जिनमे कवल लौकिक सस्कृत भाषा के शब्दों का अनुशासन किया गया है। इस पाणिनीतर व्याकरण वाड्मय मे, कातन्त्र व्याकरण का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस के अपर नाम हैं कलापक और कौमार। कातन्त्र शब्द का अर्थ, दुर्गासिह आदि वैयाकरणो ने लघुतन्त्र किया है, और "कौमार" शब्द का अर्थ कुमारों (बालकों) का, अर्थात् यह बालोपयोगी व्याकरण है। पुराण परपरावादियो के अनुसार, कुमार कार्तिकेय की आज्ञा से किसी शर्ववर्मा द्वारा इस व्याकरण की रचना मानी जाती है। काशकृत्स्न के धातुपाठ और उपलब्ध सूत्रो से कातत्र-धातुपाठ तथा सूत्रों की तुलना से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कातन्त्र एक काशकृत्स्नतत्र का ही सक्षेप है। इस का लेखक कथासरित्सागर और दुर्गासिह (कातन्त्रवृत्ति टीकाकार) के अनुसार कोई शर्ववर्मा था जिसने आख्यातान्त भागोंकी रचना की और बाद के कृदन्त भागों की रचना किसी कात्यायन ने की। श्रीपतिदत्त ने कातन्त्र-परिशिष्ट लिख कर यह व्याकरण पूरा किया। अत में किसी विजयानन्द (नामान्तर-विद्यानन्द) ने कातन्त्रोत्तर नाम का ग्रथ लिखा। पाणिनीय व्याकरण के समान ही कातन्त्र व्याकरण का प्रचार सर्वत्र (विशेष कर बगाल और मारवाड मे) अधिक मात्रा मे रहा। भारत के बाहर मध्य एशिया मे भी इसके अस्तित्व का प्रमाण उपलब्ध हुआ है। कातन्त्र व्याकरण पर शर्ववर्मा, वररुचि और दुर्गासिह की वृत्तियो के उल्लेख मिलते हैं। दुर्गासिह की वृत्तिपर दुर्गासिह (9 वीं शती), उग्रभूति (11 वी शती) त्रिलोचनदास, वर्धमान (12 वी शती), पृथ्वीधर, उमापति (13 वीं शती), जिनप्रभसूरि, (14 वी शती) चारित्रसिह, जगध्दर (मालतीमाधव के टीकाकार) और पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर (ई 15 वीं शती) इत्यादि विद्वानो द्वारा टीका ग्रथ लिखे गये हैं।

"चान्द्र व्याकरण"

काश्मीर के नृपति अभिमन्यु के आदश पर चन्द्राचार्य ने व्याकरण महाभाष्य का प्रचार करत हुए नये व्याकरण की रचना की। इस व्याकरण के मगलाचरण-श्लोक से ज्ञात होता है कि लेखक चन्द्राचार्य या चन्द्रगोमी बौद्ध मतानुयायी थे। चाद्र व्याकरण और धातुपाठ का प्रथम मुद्रण जर्मनी मे हुआ। यह व्याकरण पाणिनीय तत्र की अपेक्षा लघु, विस्पष्ट और कातत्र आदि की अपेक्षा सपूर्ण है। महाभाष्य का प्रभाव इसमे विशेष दिखाई देता है। इस मे पाणिनीय तत्र का स्वरप्रक्रिया निदर्शक भाग नही है। अंतिम सप्तम और अष्टम अध्याय अप्राप्त है, जिनमे वैदिकी स्वरप्रक्रिया का प्रतिपादन होने की सभावना, युधिष्ठिर मीमासकजी ने सिद्ध की है। चान्द्र व्याकरण पर धर्मदास द्वारा लिखी हुई वृत्ति का मुद्रण, रोमन अक्षरो में जर्मनी मे हुआ है। बौद्ध भिक्षु कश्यप ने चान्द्र सूत्रों पर बालबोधिनी नामक लघुवृत्ति, ई-14 वी शती मे लिखी। यह वृत्ति लघुकौमुदी के समान सुबोध है। चान्द्र व्याकरण से सबधित धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र लिगानुशासन, उपसर्गवृत्ति, शिक्षा और सूत्रकोष निर्माण हुए थे, जिन के उद्धरण मात्र यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं।

"सरस्वती-कण्ठाभरण"

सस्कृत वाड्मय के इतिहास मे परमारवशीय धाराधीश्वर महाराजा भोज (ई 12 वी शती) का नाम अत्यत सुप्रसिद्ध है। उनकी विद्वत्ता, रसिकता एव उदारता का परिचय देने वाली अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। भोजराजा ने सरस्वतीकण्ठाभरण नाम के दो ग्रंथ रचे थे- एक अलकार-विषयक और दूसरा व्याकरण-विषयक, जिसका अपर नाम है शब्दानुशासन। इस शब्दानुशासन मे आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय मे चार पाद तथा सूत्रो की कुल सख्या 6411 है। प्रारभिक सात अध्यायों में लौकिक

शब्दों का और अतिम आठवे अध्याय मे वैदिक शब्दो एव स्वरो का प्रतिपादन है। इस शब्दानुशासन में पाणिनीय और चान्द्र व्याकरणो का अनुसरण हुआ है। इस ग्रथ पर भोज की स्वकृत व्याख्या के प्रमाण मिलते हैं, उसके अतिरिक्त दण्डनाथ नारायणभट्ट की हृदय-हारिणी, कृष्णलीलाशुक (ई 13 वी शती) की "पुरुषकार" और रामसिह की रत्नदर्पक नामक व्याख्याएं लिखी गई हैं।

"हैम शब्दानुशासन"

श्वेताम्बर जैन सप्रदाय मे आचार्य हेमचन्द्र सूरि (ई 13 वीं शती) का नाम उनकी ग्रथसपदा के कारण विख्यात है। सर्वतोमुखी पांडित्य के कारण "कालिकालसर्वज्ञ" उपाधि उन्हे प्राप्त हुई थी। गुजरात में महाराजा सिद्धराज (अपरनाम-जयसिह) के आदेश से इन्होंने शब्दानुशासन की रचना की, जो हैम शब्दानुशासन नाम से प्रसिद्ध है। यह सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओ का व्याकरण है। प्रारंभिक 7 अध्यायों के 28 पादो में (सूत्रसख्या- 3566) सस्कृत भाषा के और अतिम आठवें अध्याय मे (सूत्रसख्या- 1119), — प्राकृत (शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची, और अपभ्रश इत्यादि) भाषाओं के शब्दों का विवेचन किया है। प्राकृत भाषाओ को व्याकरणबद्ध करने कार्य सर्वप्रथम हेमचन्द्राचार्य ने ही किया। इस शब्दानुशासन मे कातत्र व्याकरण का अनुसरण हुआ है। इसमे यथाक्रम सज्ञा, स्वरसन्धि, व्यजनसन्धि, नाम, कारक, षत्व णत्व, स्त्रीप्रत्यय, समास, आख्यात, कृदन्त और तद्धित विषयक प्रकरण हैं। अपने इस ग्रथ पर हेमचद्र ने बालको के लिए लघ्वी, मध्यम बुद्धिवालो के लिए मध्यमा, और कृशाग्र बुद्धिमानो के लिये बृहती इस प्रकार तीन वृत्तियाँ लिखी, जिनकी श्लोकसख्या बहुत बडी है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण पर 90 सहस्त्र श्लोकपरिमाण का "शब्दमहार्णवन्यास" या बृहन्यास नाम का विवरण लिखा था। इसके अतिरिक्त देवेन्द्र सूरिकृत हेमलघुन्यास, विनयविजयगणिकृत हैमलघुप्रक्रिया, मेघविजयकृत, हैमकौमुदी इत्यादि टीकाग्रथ लिखे गये, जो अभी तक दुष्प्राप्य है।

ई 14 वी शती में क्रमदीश्वरने सक्षिप्तसार नामक व्याकरण लिखा। यह सम्प्रति उसके परिष्कर्ता जुमरनन्दी के नाम पर जौमर व्याकरण नाम से विदित है। ई 14 वी शती मे सारस्वत सूत्रों को रचना हुई। उसके रचयिता नरेन्द्रचार्य और परिष्कर्ता थ अनुभूतिस्वरूपाचार्य। इस सारस्वत व्याकरण पर, क्षेमेन्द्र (काश्मीरी क्षेमेन्द्र से भिन्न), धनेश्वर, अमृतभारती, सत्यप्रबोध, माधव, चन्द्रकीर्ति जैनाचार्य, रघुनाथ, (भट्टोजी दीक्षित के शिष्य) मेघरत्न, मण्डन, वासुदेव-भट्ट आदि 18 विद्वानो ने व्याख्याए लिखी, जो प्राय अमुद्रित है। इन व्याख्याओ के अतिरिक्त तर्कतिलक भट्टाचार्य, रामाश्रय आदि वैयाकरणो ने सारस्वत व्याकरण को रूपातर मे प्रस्तुत किया है।

देवगिरि (महाराष्ट्र) मे ई 15 वी शती के सुप्रसिद्ध हेमाद्रि (या हेमाडपत) नामक अमात्य के आश्रित बोपदेव ने मुग्धबोध नामक बालोपयोगी व्याकरण की रचना की। बोपदेव ने कविकल्पद्रुम नाम से धातुपाठ का संग्रह किया और उस पर कामधेनु नामक टीका भी लिखी है। मुग्धबोध व्याकरण पर नन्दकिशोर भट्ट, विद्यानिवास, दुर्गादास विद्यावागीश (ई 17 वीं शती), आदि 16 वैयाकरणो ने टीकाएं लिखी है।

प्रस्तुत प्रकरण के प्रारभ मे जैनेन्द्र और शाकटायन व्याकरणों का यथोचित परिचय दिया गया है। इन महत्त्वपूर्ण व्याकरणों के अतिरिक्त पद्मनाथ दत्त (ई 15 वी शती) का सुपद्मव्याकरण, शुभचन्द्र का चिन्तामणि व्याकरण, भरतसेन का द्रुतबोध, रामकिंकर का आशुबोध, रामेश्वरी का शुद्धाशुबोध, शिवप्रसाद का शीघ्रबोध, काशीश्वर का ज्ञानामृत, रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामी का हरिनामामृत बालराम पचानन का प्रबोधप्रकाश, इत्यादि सामान्य श्रेणी के व्याकरण ग्रथ और सप्रदाय निर्माण होने पर भी, पाणिनीय व्याकरण का प्रभाव आज तक अबाधित है।

10 "धातुपाठ"

वैयाकरण समाज मे "पचाग व्याकरण" यह शब्दप्रयोग होता है। वे पाच अग है- 1) सूत्रपाठ 2) धातुपाठ 3) गणपाठ 4) उणादिपाठ और 5) लिगानुशासन। मुख्य सूत्रपाठ को ही शब्दानुशासन कहते है। अवशिष्ट चार अग, शब्दानुशासन के "खिल" या परिशिष्ट माने जाते हैं। इन चारों खिलपाठो का सूत्रपाठ से निकट सबध है और व्याकरण शास्त्र के सर्वंकष ज्ञान के लिये उनका आकलन होना भी आवश्यक है। उत्तरकालीन वैयाकरणो ने परिभाषापाठ नामक और भी एक अग विकसित किया है।

प्राचीन भाषाशास्त्रज्ञो में निरुक्तकार एव शाकटायन जैसे वैयाकरण सपूर्ण नाम शब्दों को आख्यातजन्य (अथवा धातुजन्य) मानते थे। "नामानि आख्यातजानि" अथवा "नाम च धातुजम्" इस सिद्धान्त की प्राय सर्वमान्यता के कारण, सभी वैयाकरणो ने अपने अपने शब्दानुशासनो मे सबद्ध धातुपाठो की रचना की। पाणिनि से पूर्ववर्ती 26 शब्दानुशासनकारों में से काशकृत्स्न का धातुपाठ चन्नवीर कवि की कन्नड टीका के साथ युधिष्ठिर मीमांसकजी ने प्रकाशित किया है। अन्य विद्वानों के धातुपाठों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, परतु वे धातुपाठ उपलब्ध नहीं हैं।

संपूर्ण व्याकरण सप्रदायों मे पाणिनीय व्याकरण अपने पाचो अगो से परिपूर्ण है। आज जो पाणिनीय धातुपाठ उपलब्ध है, उसे काशिका वृत्ति के व्याख्याता जिनेन्द्रबुद्धि ने अन्यकर्तृक कहा है (अन्यो गणकार अन्यश्च सूत्रकार) परतु युधिष्ठिर

मीमासकजी ने अनेक प्रमाणो मे उस विधान का खडन कर, सूत्रपाठ के समान धातुपाठ भी पाणिनिकृत सिद्ध किया है। नागेश भट्ट के मतानुसार, धातुपाठ में अर्थनिर्देश भीमसेन ने किया है। इस मत की भी अयथार्थता युधिष्ठिरजी ने अपने सस्कृत व्याकरण शास्त्र के इतिहास में सप्रमाण मे सिद्ध की है। पाणिनीय सूत्र पाठ के समान धातुपाठ में भी पूर्ववर्ती आचार्यों का अश लिया गया है। पाणिनीय धातुपाठ से सबधित अनेक व्याख्याग्रथ निर्माण हुए। उनमे से कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रथ तथा ग्रथकारो की सूची प्रस्तुत है -

ग्रंथ	ग्रंथकार
आख्यातचद्रिका	भट्टमल्ल
कविरहस्य	हलायुध
क्रियाकलाप	विजयानन्द
क्रियापर्यायदीपिका	वीरपाडव
क्रियाकोश (आख्यातचद्रिका का सक्षेप)	रामचन्द्र
प्रयुक्ताख्यात-मजरी	सारग
क्रियारत्न समुच्चय (हैमधातुपाठ की व्याख्या)	दशबल (अपरनाम-वरदराज)

पाणिनीय धातुपाठ पर भीमसेन, क्षीरस्वामी, मैत्रेयरक्षित, हरियोगी, देव, सायणाचार्य आदि विद्वानों ने व्याख्याएँ लिखी हैं। इनके अतिरिक्त धर्मकीर्तिकृत रूपावतार, विमलसरस्वतीकृत रूपमाला, रामचन्द्रकृत प्रक्रियाकौमुदी, भट्टोजी दीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी, और नारायण भट्टकृत प्रक्रिया-सर्वस्व इन प्रक्रिया ग्रन्थों मे पाणिनीय धातुपाठ की धातुओ का प्रसगत व्याख्यान हुआ है।

पाणिनि के उत्तरकालीन व्याकरणकारो ने भी अपने निजी धातुपाठ लिखे हैं। इनमे कातत्र (या कालाप और कौमार) व्याकरण का जो पृथक् धातुपाठ है, उसपर दुर्ग, मैत्रेय, रमानाथ इत्यादि वैयाकरणो ने वृत्तियाँ लिखी है। चन्द्रगोमि-प्रोक्त चान्द्र व्याकरण का धातुपाठ, ब्रूनो लिबिश ने चान्द्र व्याकरण के साथ प्रकाशित किया है। आचार्य देवनन्दी के जैनेन्द्र व्याकरण एव जैनेन्द्र धातुपाठ का सशोधन, गुणनन्दी ने किया, जो उनके शब्दार्णव के अन्त मे छपा हुआ है। आचार्य श्रुतकीर्ति ने जैनेन्द्र व्याकरण पर पचवस्तु नामक प्रक्रियाग्रथ लिखा, जिसके अन्तर्गत जैनेन्द्र धातुपाठ का भी व्याख्यान है। आचार्य पाल्यकीर्ति के द्वारा शाकटायन व्याकरण के धातुपाठ पर लिखे गए व्याख्याग्रथ अप्राप्य हैं। हेमचद्र सूरि ने अपने हैम व्याकरण से सबद्ध सभी अगों का प्रवचन किया। उसके अन्तर्गत धातुपाठ का भी प्रवचन है। यह हैम धातुपाठ काशकृत्स्न-धातुपाठ सदृश है। हर्षकुलगणि (ई 16 वी शती) ने हैम धातुपाठ का कविकल्पद्रुम नाम से पद्यबद्ध रूपातर किया और उस पर धातुचिन्तामणि नाम की टीका भी लिखी है। इसके अतिरिक्त हैम धातुपाठ पर गुणरत्न सूरि की क्रियारत्न-समुच्चय और जयवीर गणि की अवचूरि व्याख्या उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त मलयगिरि, क्रमदीश्वर, सारस्वत, बोपदेव और पद्मनाभदत्त इनके शब्दानुशासनों के अपने अपने धातुपाठ हैं और उनपर कतिपय विद्वानो के व्याख्या ग्रथ लिखे गये है। बोपदेव का धातुपाठ पद्यबद्ध है और वह कविकल्पद्रुम नाम से प्रसिद्ध है।

"गणपाठ"

गणपाठ नामक व्याकरणाग मे विशिष्ट क्रमानुसार या गणानुसार शब्दों का सकलन होता है। सामान्य अर्थ मे धातुपाठ का निर्देश भी गणपाठ शब्द से हो सकता है, परन्तु व्याकरण सम्प्रदाय मे 'गणपाठ' शब्द से केवल प्रतिपादिक शब्दो के समूहो का सकलन निर्देशित होता है। इसमे गणपाठात्मक शास्त्रकारो ने शास्त्र का सक्षेप करने की प्रथा शुरु की। पाणिनि के पूर्वकालीन और उत्तरकालीन गणपाठ प्रसिद्ध हैं। पाणिनि के गणपाठ पर यज्ञेश्वर भट्ट नामक आधुनिक वैयाकरण की गणरत्नावलि नामक व्याख्या विशेष उल्लेखनीय है। इस मे व्याख्याकार ने गणरत्नमहोदधि का अनुकरण करते हुये पहले गणशब्दो को श्लोकबद्ध किया और पश्चात् उनकी व्याख्या की है। चद्रगोमी के चान्द्र व्याकरण का जो गणपाठ है उसकी वृत्ति स्वय लेखक ने लिखी है। पाल्यकीर्ति के शाकटायन व्याकरण के गणपाठ मे अनेक गणो के पुराने दीर्घ नामो के स्थान पर लघु नामो का निर्देश किया है। उसी प्रकार पाणिनि के अनेक गणो को परस्पर मिला कर लाघव करने का प्रयास किया है। महाराजा भोज ने अपने गणपाठ को सूत्रपाठ मे ही अन्तर्भूत किया है, और प्राचीन आचार्यों के द्वारा आकृतिगण रूप से निर्दिष्ट गणो मे समाविष्ट होने वाले अनेक शब्दो का यथासभव सकलन किया है। भोज ने पूर्व वैयाकरणो द्वारा अपठित कतिपय नवीन गणो का भी पाठ किया है। आचार्य हेमचन्द्र का गणपाठ उसकी स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति मे उपलब्ध होता है। इसमे हेमचन्द्र ने पाल्यकीर्ति के शब्दानुशासन और उसकी अमोघावृत्ति का अत्यधिक अनुकरण किया है और गणपाठ के अन्यान्य गणो मे, पूर्वाचार्यों द्वारा स्वीकृत प्राय सभी पाठान्तरों का अपने गणपाठ मे सग्रह किया है।

गणकारों मे वर्धमान (ई 13 वी शती) का कार्य अत्यत महत्त्वपूर्ण है। उसने व्याकरण से सबधित गणपाठ का श्लोकबद्ध सकलन एव उसकी गणरत्न-महोदधि नामक सविस्तर व्याख्या लिखी है, जिसमें पूर्ववर्ती पाणिनि, चद्रगोमी, जिनेन्द्रबुद्धि, पाल्यकीर्ति,

हेमचंद्र प्रभृति सोलह वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत पाठभेदों अथवा मतो का परामर्श किया है। सर्वसग्राहकता के कारण गणरत्न-महोदधि गणपाठ विषयक एक सर्वोत्कृष्ट ग्रथ माना जाता है। जौमर व्याकरण के गणपाठ पर न्यायपचानन ने गणप्रकाश नामक टीका लिखी है। इन महत्त्वपूर्ण गणपाठों के अतिरिक्त जौमर, सारस्वत, मुग्धबोध, सौपद्म, इन व्याकरणों से सबद्ध तथा अन्य भी गणपाठ व्याकरण वाङ्मय में विद्यमान हैं।

11 "उणादि सूत्र"

व्याकरण के पाच अगों में उणादि सूत्रपाठ चौथा अग है। सस्कृत के भाषाशास्त्र मे, जिन शब्दों मे धात्वर्थ का अनुमान प्रतीत होता है, उन शब्दों को यौगिक मानते है। जिनमें धात्वर्थानुगमन प्रतीत होने पर भी, किसी विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है, वे योगरूढ कहे जाते हैं और जिन शब्दो में धात्वर्थ का अनुगमन प्रतीत नहीं होता वे रूढ माने जाते हैं। यास्काचार्य और शाकटायन के मतानुसार सभी सस्कृत शब्द धातुज हैं। कोई भी शब्द रूढ नहीं। इस मत का प्रतिवाद भी कुछ वैयाकरणो ने किया। विवादास्पद शब्दों का धातुजत्व सिद्ध करने के लिये एक ऐसा मार्ग वैयाकरणों ने निकाला जिससे दोनो मतों का समन्वय हो सके। इसी प्रयत्न में उणादिपाठ का उदय हुआ। शब्दानुशासन के कृदन्त (कृत प्रत्ययान्त धातुज) शब्दो के प्रकरण के परिशिष्ट अश को उणादि पाठ नाम दिया गया। उणादि सूत्रों द्वारा विवादास्पद शब्दों की, कृदन्त शब्दों के समान प्रकृति प्रत्ययात्मक व्युत्पत्ति दी गई और शब्दानुशासनान्तर्गत कृदन्त प्रकरण से उन्हें पृथक् कर, उनका रूढार्थ भी अभिव्यक्त किया गया। इसी कारण प्राय सभी उणादि सूत्रो के व्याख्याकार औणदिक शब्दों को रूढ मानते हुए वर्णानुपूर्वी के परिज्ञान के लिये, उनमें प्रकृति प्रत्यय विभाग की कल्पना स्वीकार करते हैं।

मज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च तत परे। कार्याद् विद्यादनूबन्धम् एतत् शास्त्रम् उणादिषु।।

अर्थात् किसी नाम शब्द मे धातु का अश देख कर उसके प्रत्यय की कल्पना करना और शब्द मे गुण-वृध्दि इत्यादि देख कर उस प्रत्यय के अनुबन्ध की योजना करना, यही उणादि सूत्रो का तत्र है। इस तत्र के अनुसार पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों के उणादि सूत्र उपलब्ध नहीं होते। पाणिनि ने "उणादयो बहुलम्" इस सूत्र से सकेतित उणादि प्रत्ययो के निदर्शन के लिये, किसी उणादि पाठ का प्रवचन किया होगा। पाणिनीय वैयाकरणो द्वारा पचपादी और दशपादी दोनों प्रकार के उणादि सूत्र समादृत हैं। इनमें से पचपादी उणादि सूत्रो के प्रवक्ता आदिशाब्दिक शाकटायन तथा पाणिनि भी माने जाते हैं। दशपादी उणादि सूत्रों के प्रवक्ता के सबध मे भी विवाद है। प्राय दोनो के प्रवक्ता पाणिनि को मानने के पक्ष मे विद्वानो की अनुकूलता है। प युधिष्ठिर मीमासक के विचार में पचपादी उणादि सूत्र पाणिनिप्रोक्त हैं। पचपादी उणादि की कुछ वृत्तियाँ उपलब्ध हैं। उनके सूत्रपाठ मे अनेक प्रकार की विषमताएँ है। सूत्रो मे न्यूनाधिकता और सूत्रगत पाठों में अतर प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। अर्थात् अष्टध्यायी तथा धातुपाठ के समान पचपादी उणादिपाठ के भी प्राच्य, औदीच्य और दाक्षिणात्य तीन पाठ होना सभव है।

दशपादी उणादि सूत्रो के प्रवक्ता ने पचपादी पाठ के आधार पर ही अपनी रचना की है। पाणिनीय धाातुपाठ मे अनुपलब्ध अनेक धातुओं का निर्देश दशपादी में मिलता है। पचपादी तथा दशपादी पर कुछ वृत्तिग्रथ लिखे गए हैं। कातत्र व्याकरण मे सबधित एक षट्पादी उणादिपाठ उपलब्ध होता है जिस पर कातत्र व्याकरण के व्याख्याता दुर्गसिह ने वृत्ति लिखी है। भोजदेव ने अपने व्याकरण से सबधित उणादि सूत्रो का प्रवचन अपने सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरण के 1-2-3 पाठो मे किया है। इस पर दण्डनाथ की व्याख्या मद्रास से पृथक् प्रकाशित हुई है। आचार्य हेमचद्र ने अपने व्याकरण से सबद्ध उणादिपाठ लिखा और उस पर स्वयं विवृति लिखी। हैम व्याकरण के उणादि सूत्रो की सख्या 1006 है और विवृत्ति का श्लोक-परिमाण 2400 है। इनके अतिरिक्त जौमर, सारस्वत और सुपद्म व्याकरण से सबधित उणादि सूत्र भी वृत्तिसहित विद्यमान है।

लिंगानुशासन

शब्दानुशासन में शब्दलिग का ज्ञान आवश्यक माना जाता है। अत लिगानुशासन, शब्दानुशासन का एक अग माना गया है। परतु धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ के समान लिगानुशासन व्याकरणशास्त्र के सूत्रों से सबद्ध नही है। व्याकरणो के प्राय प्रत्येक प्रवक्ता ने स्वीय व्याकरण से सबद्ध लिगानुशासन का प्रवचन किया है और हर्षवर्धन, वामन जैसे कुछ ऐसे भी ग्रथकार हैं, जिन्होंने केवल लिगानुशासन का ही प्रवचन किया। हर्षवर्धन का लिगानुशासन जर्मन भावानुवाद सहित जर्मनी मे मुद्रित हुआ है और व्याख्या तथा परिशिष्टों सहित इसका सस्करण मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। वामन के लिगानुशासन मे केवल 33 कारिकाए हैं। पाल्यकीर्ति, हेमचन्द्र सूरि, पद्मनाथ आदि अन्य व्याकरणकारों के भी लिगानुशासन विषयक सक्षिप्त ग्रथ हैं।

12 परिभाषा

संस्कृत शब्दानुशासनों से संबधित, विविध परिभाषा सग्रह प्रसिद्ध हैं। ये परिभाषाएँ सूत्ररूप होती हैं जिनका कार्य कमरे में रखे हुए दीपक के समान होता है। जिस प्रकार प्रज्वलित दीपक सारे कक्ष को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार परिभाषात्मक

सूत्रवचन सारे व्याकरणशास्त्र को प्रकाशित करता है। "परितो व्यापृता भाषा परिभाषा प्रचक्षते" इन शब्दों मे परिभाषा शब्द का स्पष्टीकरण दिया जाता है। कुछ परिभाषाएं पाणिनीय आदि शास्त्रों के अन्तर्गत ही सूत्ररूप में होती हैं और अन्य कुछ परिभाषाएँ सूत्रपाठों से बाह्य होती है। सामान्यत 1) ज्ञापित 2) न्यायसिद्ध और 3) वाचनिक इन तीन प्रकार की परिभाषाएँ मानी गयी हैं। ज्ञापित परिभाषाएं वार्तिककार एवं भाष्यकार (पतंजलि) के वचनस्वरूप होती है। इनके अतिरिक्त कुछ परिभाषाओं का एक अंश सूत्रों द्वारा ज्ञापित होता है, और अवशिष्ट अंश लौकिक न्यायद्वारा अथवा पूर्वाचार्यों के वचन द्वारा पठित होता है। इस प्रकार की परिभाषा "मिश्रित परिभाषा" कही जाता है।

परिभाषाओं के संबंध में वैयाकरणों का संकेत है कि व्याकरण सूत्रों के अनुसार शब्द का सिद्धि करते समय जहां विप्रतिपत्ति अर्थात् मतभेद निर्माण होते है, वहां शास्त्रीय कार्य की पूर्ति के लिए परिभाषा का आश्रय लेकर कार्यनिर्वाह किया जाता है। इसी दृष्टि से "अनियमप्रसंगे नियमकारिणी" यह परिभाषा की व्याख्या की गई है।

पाणिनीय वैयाकरणो द्वारा स्वीकृत परिभाषाओं के त्रिविध पाठ उपलब्ध होते है। 1) क्षीरदेवविरचित परिभाषावृत्ति में आश्रित 2) परिभाषेन्दुशेखर आदि मे आश्रित और 3) पुरुषोत्तमदेवकृत परिभाषावृत्ति में उपलब्ध। इनमें संगृहीत परिभाषाओं की संख्या 93 से 140 तक मिलती है। सम्प्रति पाणिनीय वैयाकरणो द्वारा, नागेशभट्ट के परिभाषेन्दुशेखर में पठित 133 परिभाषाएँ प्रामाणिक मानी जाती हैं। पुणे निवासी काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर ने सांप्रत उपलब्ध विविध परिभाषा पाठों तथा उनकी वृत्तियों का "परिभाषासंग्रह" किया जिसका प्रकाशन भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर द्वारा, सन 1967 में हुआ है। परिभाषाओं के संबंध में ("व्याडिविरचित", "पाणिनिप्रोक्त" इत्यादि विशेषणों से) यह माना जाता है कि इनके मूल रचयिता व्याडि तथा पाणिनि रहे होंगे।

इन परिभाषा सूत्रों पर अनेक व्याख्या ग्रंथ लिखे गये जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं

परिभाषावृत्ति	पुरुषोत्तम देव	परिभाषारत्न	- अप्पा सुधी
"	- क्षीरदेव	परिभाषा प्रदीपार्चि	- उदयशंकर भट्ट
"	- नीलकण्ठ वाजपेयी	परिभाषेन्दुशेखर	- नागेश भट्ट
परिभाषार्थसंग्रह	वैद्यनाथ शास्त्री	परिभाषा भास्कर	- शेषाद्रिनाथ सुधी
परिभाषाभास्कर	- हरिभास्कर अग्निहोत्री	सार्थपरिभाषापाठ	रामप्रसाद द्विवेदी

प्राय इन सभी व्याख्याओं पर टीका ग्रंथ लिखे गये हैं। परिभाषाओं के विवृति परक ग्रंथो में, नागेशभट्ट कृत परिभाषेन्दुशेखर का विशेष स्थान है। इसी ग्रंथ का प्राधान्यात सर्वत्र अध्ययन होता है और 'शेखरान्तं व्याकरणम्" इस प्रसिद्ध वचन के अनुसार पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन- अध्यापन की परिसमाप्ति परिभाषेन्दुशेखर के अध्ययन समाप्त होने पर मानी जाती है। परिभाषेन्दुशेखर पर कुछ प्रसिद्ध टीकाएँ विद्यमान हैं

टीका	**- लेखक**		
गदा	- वैद्यनाथ पायगुण्डे	त्रिपथगा	(1) राघवेन्द्राचार्य, (2) वेंकटेशपुत्र
लक्ष्मीविलास	- शिवराम	भैरवी	भैरव मिश्र
चन्द्रिका	विश्वनाथ भट्ट	सर्वमंगला	- शेष शर्मा
चित्रप्रभा	- ब्रह्मानंद सरस्वती	शंकरी	शंकरभट्ट

नागपुर के न्यायाधीश रावबहादुर नारायण दाजीबा वाडेगावकर ने लिखी हुई परिभाषेन्दुशेखर की सविस्तर मराठी व्याख्या 1936 में प्रकाशित हुई। काशीनाथ शास्त्री अभ्यंकर के परिभाषासंग्रह में कातंत्र (कालाप), चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हेम मुग्धबोध और सुपद्म इन व्याकरण संप्रदायों की परिभाषाओं का संकलन किया है। इन परिभाषाओं पर भी टीकाग्रंथ लिखे गये है।

शान्तनव शास्त्र

पाणिनीय संप्रदाय मे उणादि के समान फिट्सूत्र नामक एक संक्षिप्त शास्त्र है जिसके द्वारा शब्दो के प्रकृति-प्रत्यय विभाग के बिना, उन्हे अखण्ड मान कर उदात्तादि स्वरनिर्देश किया जाता है। रूढ शब्दों को पाणिनि अव्युत्पन्न मानते थे, परंतु स्वरप्रक्रिया की दृष्टि से उन्हे व्युत्पन्न ही मानते थे। इसी लिए उन्होंने शब्दो के स्वर-परिज्ञान के लिये पांच सौ सूत्रों की रचना की है। परंतु पाणिनीय शास्त्र के व्याख्याता कात्यायन और पतंजलि रूढ शब्दों को अव्युत्पन्न मानते थे। अत उन्हे रूढ शब्दों के स्वरनिर्देश के लिए "फिट्सूत्र जैसे शास्त्र की, जिस मे शब्द को अखण्ड मान कर स्वरनिर्देश किया जाता है, आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रकार के शास्त्र के प्रवक्ता नाम शन्तनु था। अत फिट्सूत्रों को "शान्तनव सूत्र" कहते है। इस शान्तनव शास्त्र को "फिट्सूत्र" संज्ञा प्राप्त होने का कारण, इसका प्रथम सूत्र फिट् है। "पाणिनि ने जिस अर्थ मे "प्रातिपदिक" संज्ञा का प्रयोग किया, वही "फिट्" संज्ञा का अर्थ है। इस संज्ञा-वाचक सूत्र के कारण यह शास्त्र "फिटसूत्र" नाम से प्रसिद्ध हुआ। युधिष्ठिर

मीमासक जी के प्रतिपादनानुसार फिट्सूत्र, पाणिनि और आपिशलि से भी पूर्ववर्ती हैं और उसके रचयिता राजर्षि शन्तनु को मानना वे अनुचित नही मानते और सप्रति उपलभ्यमान चतु:पादात्मक फिट्सूत्र, शन्तनुकृत किसी बृहत्तंत्र का एकदेश होने की सभावना उन्होंने प्रतिपादन की है। फिट्सूत्रो पर प्रक्रियाकौमुदी के टीकाकार विठ्ठल, भट्टोजी दीक्षित, और श्रीनिवास यज्वा ने व्याख्याए लिखी है। एक अज्ञातनाम वैयाकरण की व्याख्या जर्मनी मे प्रकाशित हुई थी। भट्टोजी की फिट्सूत्र व्याख्या पर जयकृष्ण और नागेशभट्ट ने टीकाएँ लिखी हैं।

13 दार्शनिक वैयाकरण

संस्कृत व्याकरणशास्त्र के प्राय अधिकतम ग्रथो में वेदो तथा लौकिक भाषा में प्रयुक्त शब्दों के साधुत्व निर्धारण की प्रक्रिया का और तत्सबधी नियमो का अत्यत सूक्ष्मेक्षिका से चिन्तन हुआ है। साधु शब्द और असाधु शब्द विषयक इस चिन्तन के साथ ही, शब्द के नित्यत्व और अनित्यत्व के विषय में भी व्याकरण शास्त्रज्ञो ने अति प्राचीन काल से चर्चा शुरू की थी। इसी चर्चा में "स्फोट" अर्थात् नित्य शब्द का सिद्धान्त प्रस्थापित हुआ। पाणिनि ने "अवङ् स्फोटायनस्य" इस अपने सूत्र में स्फोटायन नामक प्राचीन वैयाकरण का निर्देश किया है। स्फोटायन नाम का स्पष्टीकरण पदमंजरी (काशिकावृत्ति की व्याख्या) के लेखक हरदत्त ने, "स्फोटो अयन परायण यस्य स , स्फोटप्रतिपादन-परो वैयाकरणाचार्य " इस वाक्य में दिया है। तदनुसार, ये स्फोटसिद्धान्त के प्रथम प्रवक्ता थे। इस प्रमाण के आधार पर शब्द के नित्यत्व का सिद्धान्त वैयाकरणो में पाणिनि से पूर्वकाल में ही स्थापित हुआ था। शब्दनित्यत्व (अर्थात स्फोट-सिद्धान्त) का समर्थन करने वाले आचार्यों की परम्परा में औदुम्बरायण, सग्रहकार व्याडि, महाभाष्यकार पतजलि, जैसे समर्थ वैयाकरण हुए, जिनके द्वारा व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक स्वरूप का सूत्रपात हुआ। परतु इस दिशा में ठोस कार्य भर्तृहरि के वाक्यपदीय नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के द्वारा हुआ। वाक्यप्रदीय नाम से ही यह ज्ञात होता है कि यह ग्रथ, वाक्य और पद का विवेचन करता है। इस ग्रथ के प्रथम काण्ड में अखण्डवाक्य-स्वरूप स्फोट का, द्वितीय काण्ड मे दार्शनिक दृष्टि मे वाक्य का और तृतीय काण्ड में पद का विवरण किया है। इन तीन काण्डों के क्रमश नाम है (1) आगम काण्ड, (2) वाक्यपदीय काण्ड और (3) प्रकीर्ण काण्ड।

प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान का यह प्रमुख ग्रथ है। इस में शब्द और अर्थ के सबध का निरूपण दार्शनिक ढग से किया गया है। वैयाकरणो के दार्शनिक तत्त्वो का विशद विवेचन करने वाला यही एकमात्र उत्कृष्ट ग्रथ है। इस ग्रथ पर स्वय भर्तृहरि ने व्याख्या लिखी है। यह अपूर्ण स्वरूप मे उपलब्ध है और इस पर वृषभदेव ने टीका लिखी है। इस टीका के अतिरिक्त द्वितीय काण्ड पर पुण्यराज की और तृतीय काण्डपर हेलाराज की व्याख्या उपलब्ध है। कुछ अन्य व्याख्याओ के भी निर्देश मिलते हैं। व्याकरण के दार्शनिक विचारो मे स्फोटवाद अत्यत मौलिक एव महत्त्वपूर्ण होने के कारण उस का विवेचन करने वाले कुछ तात्त्विक ग्रथ, दार्शनिक वैयाकरणो ने लिखे जिन में उल्लेखनीय ग्रथ हैं -

(1) स्फोटसिद्धि ले - आचार्य मण्डनमिश्र । इसमें 36 कारिकाएँ है, जिन पर लेखक की निजी व्याख्या है। (शकराचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने पर, मण्डनमिश्र सुरेश्वराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए) इस स्फोटसिद्धि पर ऋषिपुत्र परमेश्वर की व्याख्या, मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रसिद्ध हुई है। भरत मिश्रकृत स्फोटसिद्धि नामक अन्य एक ग्रथ का प्रकाशन तिरुअनन्तपुर से सन् 1927 में हुआ है जिस पर स्वय लेखक की व्याख्या है। स्फोटसिद्धि-न्याय-विचार नामक ग्रंथ, सन् 1917 में त्रिवेन्द्रम (वास्तव नाम तिरुअनन्तपुरम्) में म म गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित हुआ। इस मे 245 कारिकाएँ है। इस के लेखक का नाम अज्ञात है। इन के अतिरिक्त केशव कविकृत स्फोटप्रतिष्ठा, शेषकृष्ण कविकृत स्फोटतत्त्व, श्रीकृष्णभट्टकृत स्फोटचन्द्रिका, आपदेवकृत स्फोटनिरूपण, कुन्दभट्टकृत स्फोटवाद, प्रसिद्ध हैं।

दार्शनिक व्याकरण ग्रथो में वैयाकरणभूषण तथा वैयाकरणभूषणसार का अध्ययन विशेष प्रचलित है। इस ग्रंथ की कारिकाओं की रचना सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित ने की है। उन कारिकाओ की व्याख्या का नाम है वैयाकरणभूषण, जिसके लेखक है कौण्डभट्ट। "वैयाकरण-भूषणसार" इसी ग्रथ का सक्षेप है जिस पर, हरिवल्लभकृत दर्पण, हरिभट्टकृत दर्पण, मन्नुदेवकृत कान्ति, भैरवमिश्रकृत परीक्षा, रुद्रनाथकृत विवृति, और कृष्णमिश्रकृत रत्नप्रभा इत्यादि टीकाग्रथ प्रसिद्ध हैं। इसी दार्शनिक ग्रथ परपरा में नागेशभट्टकृत वैयाकरण-सिद्धान्त-मजूषा और जगदीश तर्कालिकारकृत शब्दशक्तिप्रकाशिका भी उल्लेखनीय हैं।

वैयाकरणो के दार्शनिक ग्रथो का मुख्य विषय शब्द के नित्यानित्यत्व का विवेचन करते हुए, नित्यत्वपक्ष की स्थापना करना है। इस के अतिरिक्त पदमीमासा, वाक्यमीमासा, धात्वर्थ, लकारार्थ, प्रातिपदिकार्थ, सुबर्थ, समासशक्ति, शब्दशक्ति, इत्यादि विविध तात्त्विकविषयो का परामर्श इन ग्रथो में होने के कारण ये ग्रथ भारतीय भाषाविज्ञान की दृष्टि से तथा जागतिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

14 छन्द. शास्त्र

वेदमत्रो का यथोचित उच्चारण छदो के ज्ञान के बिना असभव है। प्रत्येक सूक्त को देवता ऋषि, और छद के ज्ञान हुए बिना वेदो का अध्यापन या जप करने वाला पापी माना जाता है। सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन कहते है कि "मन्त्र का ऋषि, छद, देवता और विनियोग न जानते हुए, उस मत्र से जो यजन करवाता है अथवा उसका अध्यापन करता है, वह खभे से टकराता है, गढ्ढ मे जा पडता है अथवा महापाप का भागी होता है।" भास्कराचार्य ने छदस् शब्द की निरुक्ति "छदांसि छादनात्" वेदो का आच्छादन या आवरण होने के कारण छदस् सज्ञा हुई। छद् छादने अथवा चद् आह्लादने इन धातुओ से छदस् शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। पाणिनीय शिक्षा मे छद को वेद पुरुष का चरण कहा है। ("छद पादौ तु वेदस्य")। मानव जिस प्रकार चरणो के आधार पर खडा होता है उसी प्रकार वेदो को छदो का आधार है।

सहिता तथा ब्राह्मण ग्रथो मे गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुभ्, बृहती, पक्ति, त्रिष्टुभ, और जगती इन प्रमुख सात वैदिक छदो का नामनिर्देश हुआ है। वेदागभूत छद शास्त्र की दृष्टि से पिगलकृत छद सूत्र नामक ग्रथ प्रमाणभूत माना गया है।

पिगलाचार्य अथवा पिगलनाग कृत छन्द सूत्रो को ही छद शास्त्र कहते है। इस शास्त्र का निर्देश "छदोविचिती" नाम से भी होता है। तदनन्तर उत्तरकालीन छदो का विवेचन पिगलसूत्रो मे मिलता है। अत पिगलाचार्य के काल के विषय मे मतभेद हुए है।

वैदिक छदो का सर्वप्रथम विवेचन साख्यायन श्रौतसूत्रो मे मिलता है। उसके बाद निदान सूत्रो के प्रारभिक पटलो मे ऋक्प्रातिशाख्य के अतिम तीन पटलो मे और छन्दोनुक्रमणी मे हुआ है। शुक्लयजुर्वेद मे भी छदो का निर्देश मिलता है। पिगलाचार्य का छन्द सूत्र इनसे उत्तरकालीन है और उसमे भी कतिपय पूर्वकालीन छन्द शास्त्रज्ञो का निर्देश हुआ है।

महर्षि पिगलकृत "छन्द सूत्र" ग्रन्थ आठ अध्यायो का है जिन मे वैदिक एव लौकिक छदो का स्वरूप बताया है। इस ग्रथ मे वर्णवृत्तो की सख्या अपार (1 कोटि, 61 लाख, 77 हजार, दो सौ सोलह) बताई है। उनमे से केवल पचास छदो का संस्कृत साहित्य मे उपयोग हुआ है।

वैदिक यज्ञ के प्रात सवन मे गायत्री, माध्यदिन सवन मे त्रिष्टुभ और तृतीय सवन मे जगती छद का प्रयोग होता है। गायत्री छद के 24 अक्षर और तीन चरण होते है। उष्णिक् के 28 अनुष्टुभ के 32, बृहती के 36 पक्ति के 40, त्रिष्टुभ के 44 और जगती 48 अक्षर होते है। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी मे ऋग्वेद के सभी मत्रो की सख्या का निर्देश छदो के अनुसार किया है। तदनुसार

गायत्री मे 2467 मत्र।	पक्ति मे 312 मत्र।
उष्णिक मे 341 मत्र।	त्रिष्टुभ मे 4253 मत्र।
अनुष्टुभ् मे 855 मत्र।	जगती मे 1350 मत्र।
बृहती मे 181 मत्र।	

इनके अतिरिक्त तीन सौ मत्र अतिजगती, शक्वरी अतिशक्वरी अष्टी, अत्यष्टी, इत्यादि अवान्तर छन्दो मे रचित है। एकपदा ऋचाओ की सख्या छह और नित्यद्विपदा ऋचाओ की सख्या सत्रह है। इसी सूची के अनुसार ऋग्वेद मे त्रिष्टुभ छद का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। बाद मे गायत्री और जगती का क्रम आता है।

अनुष्टुप् छद

सस्कृत के विदग्ध वाङ्मय मे उपयोजित छदो का मूल वैदिक छदो मे ही माना जाता है। रामायण की कथा के अनुसार अनुष्टुभ् का लौकिक आविष्कार वाल्मीकि के मुख से क्रौंचवध का करुण दृश्य देखते ही हुआ। प्राय सभी पुराणो एव महाकाव्यो मे अनुष्टुभ् छद का ही प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थो मे अनुष्टुभ् छद का लक्षण —

1 पचम लघु सर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयो । गुरु षष्ठ च पादाना शेषष्वनियमो मत ।।

2 श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पचमम् द्विचतु पादयोर्हस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ।।

3 अष्टाक्षर समायुक्त सर्वलोकमनोहरम्। तदनुष्टुभ समाख्यात न यत्र नियमो गणे।।

4 पचम लघु सर्वत्र गुरु षष्ठमुदीरितम्। समे लघु विजानीयात् विषमे गुरु सप्तमम्।।

इन श्लोकों में बताया गया है और प्राय वह प्रमाणभूत माना जाता है। परतु इन कारिकाओ मे निर्दिष्ट लक्षणो का यथायोग्य पालन कालिदास माघ जैसे श्रेष्ठ कवियो ने भी सर्वत्र नहीं किया है। अत महाकवियो द्वारा प्रयुक्त अनुष्टुभ छदो का स्वरूप ध्यान में लेते हुए एक सुधारित लक्षण बताया गया है। वह है —

अष्टाक्षरसमायुक्त विषमेऽनियतच यत्। षष्ठ गुरु समे पाद पचम सप्तम लघु।। तदनुष्टुभिति ज्ञेय छद सत्कविसम्मतम्।।

वैदिक त्रिष्टुभ् छद से इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति जैसे एकादश अक्षरो के छदो की, जगती छद से, द्वादशाक्षरी वशस्थ की और शक्वरी से वसत तिलका की उत्पत्ति मानी गयी है।

वेदमत्रों के छद अक्षरसख्या-निष्ठ है। मत्रो को चरणों मे विभाजित कर उन चरणो की अक्षरसख्या का निर्देश करने की पद्धति रूढ होने के पहले, छदोगत अक्षरसख्या का निर्देश होता था। 23 अक्षरसख्या तक वृत्त सविशेष होते है। आगे चलकर 24 से 48 अक्षरों तक अतिछद माने गए। उनके आगे कतिया होती हैं जिन का सप्रकार उल्लेख वाजसनेयी सहिता मे हुआ है।

अनुष्टभ् के 8, त्रिष्टुभ के 11, जगती के 12, इस प्रकार अक्षरसख्या की वृद्धि का क्रम देखते हुए वैदिक छदो का विकासक्रम ध्यान मे आता है। उसी प्रकार त्रिपदा गायत्री, चतुष्पदी अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ जगती, पचपदा पक्ति, षटपदी महापङ्क्ति, इस पदवृद्धि के क्रम मे भी छदो का विकासक्रम दिखाई देता है। श्री व्हर्वान अर्नोल्ड नामक पाश्चात्य विद्वान ने अपने "वैदिक मीटर" नामक प्रबध मे दो से आठ तक चरणो के श्लोकबधो के अन्यान्य 88 प्रकारो का निर्देश किया है। इन मे एक ही छद के चरणो मे समान और असमान अक्षरसख्या दिखाई देती है।

यति और गण

प्राचीन छद शास्त्र ने वैदिकमत्रो के पादो मे यति अर्थात विरामस्थान नहीं माने थे, परतु कुछ छदो मे चौथे, पाचवे, आठवे अक्षर पर विरामस्थान आता है। वैदिक छन्दशास्त्र के आधुनिक विद्वान ऐसे स्थानो का निर्देश द्विभगी, चतुर्भगी इस प्रकार की सज्ञा से करते है। पिंगल कृत छन्द सूत्र मे वृत्तविषयक सूत्रो मे "य-म-त-र-ज-भ-न-स इन अक्षरसज्ञा के आठ 'गण' बताए हैं। ये गण तीन अक्षरो के होते है। गणो की अक्षरसख्या का निर्देश करने वाला "यमाताराजभानसलगं" यह एक प्राचीन सत्र (जो पिगलकृत नहीं है) प्रसिद्ध है। इस सूत्र मे स पर्यंत कोई भी तीन अक्षर लेने पर, उनके प्रथमाक्षर से सूचित गण की मात्राओ का परिचय मिलता है। जैसे "यमाता" इन तीन अक्षरो मे 'य' शब्द य गण का बोध लेकर, उसकी मात्रा आदिलघु और अन्य दो गुरु है, यह बोध मिलता है। उसी प्रकार 'मातारा' 'ताराज' आदि अक्षरो मे गणमात्रा का निर्देश सूचित होता है। सूत्रस्थ "ल" का अर्थ लघु और 'ग' अर्थ गुरु है। सस्कृत साहित्य के अन्तर्गत सारे वृत्तो का नियमन इस त्र्यक्षरात्मक गणपद्धति से होता है। इस प्रकार की गणपद्धति मे यति (विरामस्थान) का बोध होता नहीं यही एक महत्त्वपूर्ण दोष माना जाता है।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र मे आवर्तनी सस्कृत वृत्तो एव मात्रावृत्तो का विवेचन है। मात्रावृत्तो मे रचित गानानुकूल रचनाओं को 'ध्रुवा' कहते है। अनेक गानानुकूल रचनाओं का प्रारभ प्राकृत एव अपभ्रश भाषाओ मे रूढ होने के पश्चात्, सस्कृत कवियो ने उन्हे आत्मसात् किया। जयदेव के गीतगोविंद की रचना इसी प्रणाली मे हुई है।

छन्द शास्त्र विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रथ

पिंगलाचार्य ने अपने ग्रथ मे क्रोष्टुकी, तण्डी, यास्क, काश्यप सैतव रात तथा माण्डव्य आदि पूर्वाचार्यो का उल्लेख किया है। अभिनवगुप्ताचार्य ने अपनी 'अभिनवभारती' (भरतनाट्यशास्त्र की टीका) में कात्यायन, भट्टशकर और जयदेव के अवतरण उद्धृत किए हैं। अग्निपुराण के (328-34) सात अध्यायो मे पिंगल के अनुसार छन्दोविचिती का विवेचन मिलता है। पिंगल के पहले भरत, जनाश्रयी आदि शास्त्रकारो की पाच छदविचितिया प्रचलित थीं जिनमे त्र्यक्षरी गणपद्धति से छदो का विमर्श किया था परतु पिंगलाचार्य की छदोविचिती सर्वमान्य होने के बाद पूर्वकालीन छदोविचितिया लुप्त हो गईं। पिंगलसूत्रो की विद्वन्मान्यता के कारण उन पर हलायुध, श्रीहर्षशर्मा वाणीनाथ (16 वीं शती), लक्ष्मीनाथ, यादवप्रकाश और दामोदर इन पंडितो ने टीकाग्रथ लिखे।

नारायण कृत वृत्तोक्तिरत्न और चद्रशेखर कृत वृत्तमौक्तिक, पिंगलाचार्य के छन्द पर आधारित पद्यग्रथ हैं। जनाश्रयी की छदोविचिति (अध्यायसख्या 6) मे दिए हुए उदाहरणो का कुछ ऐतिहासिक महत्त्व दिया जाता है। पिंगलाचार्य के ग्रथ मे 'यति' (वृत्तो मे विरामस्थान) को महत्त्व न होने का दोष निर्दिष्ट किया है।

'वृत्तरत्नावली' इसी एकमात्र नाम से दुर्गादत्त, नारायण, वेंकटेश (अवधान सरस्वती के पुत्र), रामस्वामी, यशवतसिह, सदाशिवमुनि, कालिदास, कृष्णराज, इत्यादि अनेक विद्वानो ने रचना की है। छन्द शास्त्र विषयक ग्रथों की निर्मिति सस्कृत वाड्मय क्षेत्र मे अखड होती रही। अर्वाचीन कालखड मे रामदेव (18 वीं शती) बगाल मे राधापुर के नायब दीवान यशवतसिह के आश्रित कवि ने वृत्तरत्नावली लिखी। इस लक्षण ग्रथ में उदाहरणार्थ लिखे हुए श्लोकों में रामदेव (जो चिरजीव नाम से भी प्रसिद्ध थे) ने अपने आश्रयदाता यशवतसिह की स्तुति पर श्लोकरचना की है।

गोपालपुत्र गगादास ने छदोमजरी नामक ६ प्रकरणो का ग्रथ लिखा, जिसमे उदाहरणात्मक सभी श्लोक कृष्णस्तुति परक है। नागपुर के पडित वसतराव शेवडे ने अपनी वृत्तमजरी मे लिखे हुए लक्षणश्लोक लक्ष्यभूतवृत्त में ही लिखे हैं और उसी वृत्त मे लिखे हुए स्तोत्र उदाहरणो मे अपनी उपास्य देवता भगवती की स्तुति की है।

छन्द'शास्त्र में पद्यात्मक रचना का विवेचन हुआ है। पद्यरचना (1) छद (2) वृत्त और (3) जाति, इन तीन प्रकारो की होती है। सामान्यत छद अक्षरसख्यापर, वृत्त अक्षसख्या पर तथा गणक्रम पर और जाति मात्राओं की सख्या पर आधारित होती है। वेदों में प्रयुक्त छन्दों में कहीं लघु-गुरू मात्राओं का अनुसरण नहीं किया जाता। अत समस्त वैदिक छद अक्षरछंद ही हैं। जिन की कुल सख्या 26 है। इन छब्बीस छदों के दो मुख्य भेद हैं (1) केवल अक्षर गणनानुसारी। (2) पादाक्षरगणनानुसारी इस में अक्षरो के पादों में नियमत विभक्त होने की व्यवस्था होती है।

वैदिक छंद

समस्त वैदिक छन्दो की सख्या 26 मानी गई है, परतु इनमे स मा (अक्षर सख्या 24), प्रमा (अ-स 8) प्रतिमा (अ स 30) ये पाच छद वेद में प्रयुक्त नहीं किए जाते। इन्हे गायत्रीपूर्व पचक कहते हैं। अवशिष्ट 21 छदों का तीन सप्तको में वर्गीकरण किया जाता है - प्रथम सप्तक में— गायत्री, उष्णिक (अ स 28), अनुष्टुभ् (अ स 32), बृहती (अ स 36), पक्ति (अ स 40), त्रिष्टुभ् (अ स 44), तथा जगती (अ स 48), इन महत्त्वपूर्ण छदों का अन्तर्भाव होता है।

द्वितीय सप्तक में अन्तर्भूत, अतिजगती (अ स 52) शक्वरी (अ स 56), अतिशक्वरी (अ स 60), अष्टि (अ स 64), अत्यष्टि (अ सं 68), धृति (अ स 72), अतिधृति (अ स 76), ये सात छद यअतिच्छन्द' नाम से प्रसिद्ध है।

तृतीय सप्तक में— कृति (अ. स 80), प्रकृति (अ स 84), आकृति (अ स 88), विकृति (अ स 92), सस्कृति (अ स 96), अभिकृति (अ स 100) और उत्कृति (अ स 104)।

इन 3 सप्तको को नाट्यशास्त्र में क्रमश (1) दिव्य (देवो की स्तुति मे प्रयुक्त), (2) दिव्येतर (मानवो की स्तुति मे प्रयुक्त) और (3) दिव्यमानुष्य (दिव्य और मानुष उभय प्रकार के व्यक्तियो की स्तुति मे प्रयुक्त) यह सज्ञाए दी हुई हैं।

प्रथम सप्तक में अन्तर्भूत गायत्री इत्यादि छन्दो के दैव आसुर, प्राजापत्य, आर्ष, मानुष, साम्न, आर्ष तथा ब्राह्म नामक आठ प्रकार माने गए है। उसी प्रकार इन के प्रत्येकश भेद और उपभेद भी होते है। जैसे -

1 गायत्री — एकपदा, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा, और पचपदा।
2 उष्णिक् — पुर उष्णिक, ककुबुष्णिक, परोष्णिक, पिपीलिका, मध्योष्णिक्।
3 अनुष्टुभ् — विराट् अनुष्टुभ (दो प्रकार), चतुष्पाद अनुष्टुभ्।
4. बृहती — पुरस्ताद्बृहती, उरोबृहती, मध्याबृहती उपरिष्टाद्बृहती,
5. पक्ति — विराट्पक्ति, सतोबृहती, पङ्क्ति, विपरीता पक्ति, आस्तार पक्ति, विष्टार पक्ति और पथ्या पक्ति
6. त्रिष्टुभ् — अशिमारिणी, महाबृहती, और यवमध्या।
7 जगती — उपजगती, महासतोबृहती, महापक्ति जगती

द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के छद, 'अतिच्छद' नाम से प्रसिद्ध है। इन में से तृतीय सप्तक के कृति, प्रकृति इत्यादि छदो का ऋग्वेद मे अभाव है। आचार्य शौनक (ऋक्प्रातिशाख्यकार) के कथनानुसार गायत्री से लेकर अतिधृति तक 14 छद ऋग्वेद मे उपलब्ध होते हैं।

छन्दो का वृत नामक दूसरा वर्ग अक्षरसख्या तथा 'गण इन दोनो पर अवलबित होने के कारण "अक्षरगणवृत" अथवा गणवृत्त कहा जाता है। इन गणवृत्तो मे चार चरण (अथवा पाद) होते हैं, और प्रत्येक चरण 12 अक्षरो का होता है। वृत्त मे चारो चरणों के अक्षर समान होते है तब उसे 'समवृत्त' कहते हैं और जहा प्रथम-तृत्तीय तथा द्वितीय-चतुर्थ चरणो मे अक्षर सख्या भिन्न होती है, उसे "अर्धसमवृत" कहते हैं। जहा चारो चरणो मे प्रत्येकश सख्या अलग अलग होती है, उसे विषम वृत्त कहते हैं। विषमवृत्तो की सख्या नगण्य है।

वृत्तो का वर्गीकरण

वृत्तों का वर्गीकरण अन्यान्य प्रकारो से ग्रन्थकारो ने किया है। सगीत शास्त्रज्ञो ने वृत्तो की गेयता का वैशिष्ट्य ध्यान मे लेते हुए सामान्यत 60 तक वृतों का जो वर्गीकरण किया है वह मार्मिक है। तदनुसार (अ) त्र्यक्षरी गणो के आवर्तनी वृत्त। (आ) चार (अथवा अधिक अक्षरो के गणों के अनावर्तनी वृत्त। (इ) त्र्यक्षरी गणों के अन्तर्वर्तनी वृत्त और (उ) अर्धसम तथा विषम वृत्त यह चार प्रकार वृत्तो में माने जाते है।

(अ) 7 त्र्यक्षरी गणो के आवर्तनी समवृत्तों में विद्युन्माला, मणिबध, हसी, चपकमाला, दोधक, प्रहरण कलिका, प्रमाणिका, मरालिका (अथवा कामदा), शुद्धकामदा, ललित, इन्द्रवज्रा, उपेद्रवज्रा, उपजाति, सौदामिनी, भुजगप्रयात, सारग, वशस्थ, तोटक, स्रग्विणी, चामर, पचचामर, चित्रवृत्त, विबुधप्रिया, पृथ्वी, मदारमाला, सुमदारमाला, (वागीश्वरी), मदिरा (उमा) हसकला, वरदा, हसगति और अमृतध्वनि, इन 31 वृत्तो की गणना होती है।

(आ) चार अक्षरी गणों के आवर्तनी समवृत्तों मे, वियद्गगा, वारुणी, देवप्रिया, मदाकिनी और सुरनिम्रगा इन पाच वृत्तों का अन्तर्भाव होता है।

(इ) त्र्यक्षरी गणो के अनावर्तनी समवृत्तो मे इद्रवशा, शालिनी, द्रुतविलबित, प्रियवदा, स्वागता, रथोद्धता, यूथिका, विभावरी, भद्रिका, वियोगिनी, हरिणीप्लुता, वसततिलका, मालिनी, वैश्वदेवी शिखरिणी, हरिणी, मदाक्राता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा इन 19 वृत्तों का अन्तर्भाव होता है।

(उ) अर्धससय तथा विषय वृत्तों मे, वियोगिनी, हरिणीप्लुता, माल्यभारा, पुष्पिताग्रा, और अपरवक्त्र इन का अन्तर्भाव होता है।

सगीतप्रेमी विद्वानों का एक ऐसा वर्ग है जो छदोबद्ध, वृत्तबद्ध अथवा जातिबद्ध पद्य रचना का सप्तस्वरो से दृढ सबध मानते हैं। सगीत का विवेचन करने वाले नाट्यशास्त्रकार भरत, अभिनवगुप्त इत्यादि ग्रथकार अपने ग्रथो में छदों का भी विवेचन यथावसर करते हैं। अत वेदाग भूत छद शास्त्र की ही एक शाखा मानकर सगीत शास्त्र विषयक वाङ्मय का परामर्श इसी अध्याय में करना हम उचित मानते हैं।

15. संगीत शास्त्र

भारत की सभी विद्या, कला, शास्त्रो का मूल सर्वज्ञानमय वेदो में ही है। अत सगीत का मूल भी वेदों में ही है, यह तथ्य अनुर्क्तसिद्ध है। चार वेदो मे से सामवेद गानात्मक ही है। "गीतिषु सामाख्या" अर्थात गानात्मक वेदमत्रों को साम सज्ञा दी जाती है। गानात्मकता ही साम का लक्षण है। एव भारतीय सगीतशास्त्र का आरभ वैदिक काल मे ही मानना उचित होगा। यजुर्वेद मे 'अगायन् देवा । स देवान् गायत उपवर्तता तस्माद् गायन्त स्त्रिय कामयन्ते। कामुका एन स्त्रियो भवन्ति।" (9-1)

"उदकुम्भानधि निधाय परिनृत्यन्ति। पथो निघ्नतीरिद मधु गायन्त्यो मधु वै देवाना परममन्नाद्यम्।" (7-5) इत्यादि अनेक मन्त्रो में गायन तथा स्त्रियो के नर्तन का उल्लेख मिलता है। गायक पुरुष स्त्रियो को प्रिय होता है यह ऋषियों का मत भी इस मत्र मे व्यक्त हुआ है।

तैत्तिरीय ब्राम्हण मे "अप वा एतस्मात् श्री राष्ट्र क्रामति। योऽश्वमेघेन यजते। ब्राह्मणौ वीणागाधिनौ गायत । श्रियो वा एतद्रूप यद् वीणा। श्रियमवास्मिन् तद्धत । यदा खलु वै पुरुष श्रियमश्नुते वीणास्मै वाद्यते।'

इस मत्र से पता चलता है कि आनद के अवसर पर वीणावादन उस काल मे भी होता था।

आपस्तब गृहयसूत्र मे बताया है कि गर्भवती के सीमन्तोन्नयन सस्कार के समय विशिष्ट स्वरो मे वीणावादन करना चाहिए।

सामगान

वैदिक यज्ञ विधि मे 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् को अपने मत्रों का गायन करना पडता है। अत मत्रो की गानविधि का विवेचन कुछ ग्रथो में किया गया है। उन ग्रथो मे वर्णाम्रेडन, वर्णदीर्घीकरण, वर्णान्तरप्रक्षेपण, इत्यादि विषयो के सगीत शास्त्रीय लक्षण बताए हैं। सामगान की पद्धति लौकिक सगीत शास्त्र की पद्धति से विभिन्न सी है तथापि षड्ज, ऋषभ, गाधार, मध्यम पचम, धैवत और निषाद, इन सगीत शास्त्रोक्त सात स्वरों का प्रयोग सामगान के विधि मे होता है। परन्तु उसमे केवल यही भेद है कि सामगान की पद्धति म उन प्रसिद्ध स्वरों के लिए 1 क्रुष्ट, 2 - प्रथम, 3 - तृतीय, 4 - चतुर्थ, 5 - मन्द्र और 6 - अतिस्वर्य यह सज्ञा दी जाती है। सज्ञाभेद के कारण मूलभूत स्वरो मे भिन्नता नहीं है। सामवेदीय छादोग्य उपनिषद मे हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ प्रतिहार और निधान नामक सामगान के पाच प्रकार बताए हैं। उनमे से प्रस्ताव, उद्गीथ और प्रतिहार के स्वरों का स्थायीभाव तथा हृदयस्थ अन्य भावों से सबध होता है। निधान का सबध तानों से आता है।

शतपथ ब्राह्मण मे कहा है कि "नासाम यज्ञो भवति। न वाऽहिंकृत्य साम गीयते।" अर्थात् सामगान के बिना यज्ञ होता नहीं और हिंकृति के बिना सामगान होता नहीं। ऋचाओ का सामगान में रूपान्तर करते समय हा, उ, हा ओ, इ, ओ, हो, वा, औ हा इ, ओवा इ, इस प्रकार "स्तोभ" नामक अक्षरों का उच्चारण किया जाता है। स्तोभ और क्रुष्ट आदि स्वरों की सहायता से ही गायत्र्यादि छदोबद्ध ऋचाओं का सामगान में रूपान्तर होता है।

वेदों के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरो का अकन अन्यान्य प्रकारों से होता है। सामवेद मे इन स्वरों का निर्देश 1,2,3 इन अको से करते हैं। उसी प्रकार सगीत के स्वरों का निर्देश 1 से 7 आकडो से करते हैं। अधिकाश मत्रो मे प्रारंभिक पाच ही स्वरो का प्रयोग होता है।

ऋचाओं का सामगान में परिवर्तन करने के लिए विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम और स्तोभ नामक छह उपायो का उपयोग किया जाता है। इन उपायों के सहित, स्वरमडलो में गाए जाने वाले मत्रों को ही साम सज्ञा प्राप्त होती है। सामगान के विविध प्रकारों का वामदेव्य, मधुच्छान्दस, बृहद्रथन्तर, श्वेत, नौधस, यज्ञयतीय, इलांग, सेतु, पुरुषगति इत्यादि नामों से निर्देश होता है। प्राय जिन ऋषियो ने ये प्रकार निर्माण किए, उन्हीं के नाम उनके प्रकारो को दिए है।

राग' उत्पन्न होते है। वेंकटमखी के चतुर्दण्डि-प्रकाशिका नामक ग्रंथ में दाक्षिणात्य (अथवा कर्णाटकी) सगीत में प्रचलित 62 मेलों के नाम बताए हैं।

उत्तर हिंदुस्थानी सगीत की पद्धति में कल्याण, बिलावल, समाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोडी इन दस मेलों या ठाठों में 124 रागो की व्यवस्था होती है, ऐसा अभिनवरागमंजरीकार का मत है।

संगीतरत्नाकर में ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तर्भाषा, रागाग, भाषाग, क्रियाग और उपाग इन दस वर्गो मे रागों की व्यवस्था की है।

सगीतशास्त्र में 1) शिवमत, 2) कृष्णमत, 3) हनुमन्मत और 4) भरतमत ये चार मत प्रसिद्ध हैं। इन का पृथक् समर्थन करने वाले प्रमुख ग्रंथकारों में अपने निजी मतभेद हैं। सपूर्ण रागव्यवस्था के मूलभूत छह राग माने जाते हैं। उनका मूल भेद- कारण है भारत का ऋतुमान। इस देश में सपूर्ण वर्ष का विभाजन छह ऋतुओं में होता है। प्रत्येक ऋतु मे गाने योग्य विशिष्ट राग माना गया है। अत राग व्यवस्था का मूलाधार ऋतुभेदमूलक छह राग माने जाते हैं। राग व्यवस्था का यह सिद्धांत हिंदुस्थानी संगीतशास्त्र मे आठवीं शताब्दी से रूढ हुआ। दाक्षिणात्य सगीत मे समयानुसार रागव्यवस्था नहीं मानी जाती। वस्तुत रागव्यवस्था का समर्थन करने वाले चार मतवादियो में एक वाक्यता नहीं है। जैसे शिवमत के अनुयायी रागविबोधकार सोमनाथ और कृष्णमत के अनुयायी, संगीतरत्नाकर के टीकाकार प कल्लीनाथ इन के मन्तव्यानुसार वसत ऋतु में वसत राग का गायन प्रशस्त माना गया है, परतु भरत और हनुमत मतों के अनुसार हिंडोल राग का गायन वसत ऋतु में प्रशस्त माना गया है।

सस्कृत साहित्यान्तर्गत सगीत शास्त्र पर ग्रथ लेखन करने वालो मे विद्वान राजाओ की बहु सख्या विशेष रूप मे दिखाई देती है। 12 वीं शताब्दी में मिथिला या तिरहूत के राजा नान्यदेव (अपरनाम राजनारायण) ने भरतवार्तिक नामक भरतनाट्यशास्त्र का भाष्य सतरह अध्यायों में लिखा। प्राचीन तालपद्धति (जो आज कालबाह्य हो चुकी है) का विवरण नान्यदेव ने अपने ग्रथ में किया है। इससे अतिरिक्त 140 रागों का विवेचन नान्यदेव ने कश्यप और मतग इन प्राचीन ग्रथकारो के मतानुसार किया है। 12 वीं शताब्दी में कल्याण के चालुक्यवशीय प्रसिस्ध राजा जगदेकमल्ल अथवा प्रताप चक्रवर्ती ने संगीतचूडामणि नामक पद्रह अध्यायों का ग्रथ लिखा। उसी 12 वीं शताब्दी मे कर्नाटक के अधिपति सोमेश्वर (अथवा भूलोकमल्ल) ने मानसोल्लास नामक ढाई हजार श्लोकों के ग्रंथ का प्रणयन किया। सोमेश्वर महाराज सगीतविद्या के महान उपासक थे। उन्हीं के कर्तृत्व के कारण दाक्षिणात्य संगीत, "कर्णाटकी सगीत" कहा जाता है। देवगिरी के राजा हरिपाल देव को 'विचारचतुर्मुख' और 'वीणातत्रीविशारद" यह उपाधियाँ उनके सगीत प्रावीण्य के कारण प्राप्त हुई थीं। एक बार हरिपाल देव श्रीरगम् क्षेत्र में गए थे। वहा के गायक और नर्तक कलाकारों ने उन्हें सगीत विषयक ग्रथ लिखने का आग्रह किया। उस आग्रह का आदर करते हुए महाराजा ने "संगीतसुधाकर" नामक छह अध्यायों का ग्रथ लिखा। 14 वीं शताब्दी मे मेवाड के राजा हमीर ने सगीत शृगारहार नामक ग्रथ लिखा। इस ग्रंथ में जैतसिंह नामक सगीत शास्त्रज्ञ राजा का नाम निर्देश लेखक ने किया है। तजौर के अधिपति रघुनाथ नायक ने सगीतसुधा नामक ग्रंथ लिखा जिसमें 264 रागों का विवेचन करते हुए लेखक ने कहा है कि, श्री विद्यारण्यस्वामी (कर्नाटक के हिंदुसाम्राज्य के सस्थापक और शृंगेरी शाकरपीठ के आचार्य) ने अपने सगीतसार नामक ग्रथ मे जिस पद्धति से रागविवेचन किया है उसी पद्धति से प्रस्तुत ग्रंथ में राग विवेचन किया हुआ है। विद्यारण्यस्वामी का सगीतसार ग्रथ अप्राप्य है।

छत्रपति शिवाजी महाराज के पिता शहाजी सगीतशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने आश्रित वेदनामक पण्डित से सगीत-पुष्पांजलि और सगीतमकरद नामक दो ग्रन्थों का निर्माण करवाया। वेद पडित के पिता चतुरदामोदर का सगीतदर्पण ग्रथ सुप्रसिद्ध है।

17 वीं शताब्दी में गढदुर्ग अथवा जबलपूर के राजा हृदयनारायण ने हृदयकौतुक और हृदयप्रकाश नामक दो ग्रथो का प्रणयन किया। इन ग्रंथों में हृदयनारायण ने लोचन पडित की रागतरगिणी का अनुसरण किया है। इसी शताब्दी के नेपाल के नृपति जगज्योतिर्मल्ल ने अनेक संगीत शास्त्रज्ञों को आश्रय दे कर उनसे सगीत विषयक ग्रथों का लेखनकार्य करवाया। साथ ही स्वयं महाराज ने सगीतसारसग्रह स्वरोदयदीपिका और गीत-पचाशिका जैसे ग्रथों की लेखन किया।

18 वीं शताब्दी में त्रिवाकुर (त्रावणकोर) के राजा बलरामवर्मा (रामवर्मा) ने बलरामभरतम् नामक 18 अध्यायो का ग्रथ लिखा। इस ग्रथ में भाव, राग और ताल का परस्परावलबित्व प्रतिपादन किया है। इसी शताब्दी में तजौर के मराठा नृपति तुकोजी भोसले ने सगीतसारामृत नामक गद्य ग्रथ शाङ्र्गदेव के सगीतरत्नाकर के अनुसार लिया। तुकोजी महाराज ने नाट्यवेदागम नामक नाट्यकला विषयक ग्रंथ भी लिखा है। इसी शताब्दी में उत्कलप्रदेश के पार्लकिमिडी के राजा गजपति वीरश्री नारायण देव ने कविरत्न पुरुषोत्तम देव से सगीतशास्त्र का अभ्यास करते हुए, सगीतनारायण नामक ग्रथ लिखा। इसमें सगीतविद्या का सभी शाखाओं का विवेचन किया हुआ है। मम्मटकृत सगीतरत्नमाला नामक ग्रंथ के अवतरण इस ग्रंथ में दिखाई देते हैं।

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सस्कृति की तुलना अनेक विषयों के सबध में होती रहती है। सगीत शास्त्रविषयक ग्रथों

में भारतीय नृपतियों द्वारा दिया हुआ भरपूर योगदान देखते हुए भारतीय सस्कृति की श्रेष्ठता का एक अंश ध्यान में आता है। पाश्चात्य नृपतियों में इस प्रकार संगीतशास्त्र पर ग्रंथ लेखन करने वालों की संख्या इतनी बड़ी मात्रा में नहीं है।

16। ज्योतिर्विज्ञान

भारत में ज्योतिर्विज्ञान या ज्योति:शास्त्र की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वेद भगवान् के षडगों में ज्योति.शास्त्र को नेत्र का स्थान दिया गया है- (ज्योतिषासायमनं चक्षु.)। वेदों का निर्माण यज्ञों के लिए हुआ। यज्ञों का अनुष्ठान ऋतु, अयन, तिथि नक्षत्रादि शुभ काल के अनुसार होता है और काल का ज्ञान ज्योति·शास्त्र के द्वारा होता है, अर्थात् ज्योति.शास्त्र कालविधान का शास्त्र होने के कारण, सम्यक् कालज्ञान रखने वाला ज्योतिर्विद ही यज्ञ को ठीक समझ सकता है। यह आशय,

"वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता कालनुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा । तस्मादिद कालविधानशास्त्र यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्"।।

इस सुप्रसिद्ध श्लोक में ग्रथित किया है। ज्योतिषशास्त्र के द्वारा सूर्यादि ग्रहों एवं संवत्सरादि काल का बोध होता है। इस शास्त्र में प्रधानत. आकाशस्थ ग्रह, नक्षत्र , धूमकेतु आदि ज्योति.स्वरूप पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमण, काल ग्रहण इत्यादि घटनाओं का निरूपण एवं उनके संचारानुसार शुभाशुभ फलों का भी कथन किया जाता है। वेदांग ज्योतिष के ऋग्वेद ज्योतिष, यजुर्वेद ज्योतिष और अथर्ववेद ज्योतिष नामक तीन विभाग माने जाते हैं। ऋग्वेद ज्योतिष की श्लोकसख्या 36 है और उसके कर्ता थे लगधाचार्य। इस पर सोमाकर ने भाष्य लिखा है। वेदमंत्रों में ज्योतिषशास्त्र के अनेक सिद्धांत बिखरे हैं। इन मत्रस्थ सिद्धान्तों के आधार पर ही कालान्तर में ज्योतिषशास्त्र का विकास हुआ।

बारह राशियो की गणना, 360 दिनों का वर्षमान तथा अयन, मलमास, क्षयमास, सौरमास, चाद्रमास इत्यादि विषयों का ज्ञान भारतीयों को वेदकाल से ही प्राप्त हुआ था। यजुर्वेद ज्योतिष की श्लोकसख्या 44 है। इसके कर्ता शेषाचार्य माने जाते हैं। अथर्व ज्योतिष मे 14 प्रकरण एव 162 श्लोक हैं। इसके प्रवक्ता पितामह और श्रोता थे कश्यप। वेदांग ज्योतिष में पाच वर्षों का युग माना जाता है। एक वर्ष में ग्रीष्म. शिशिर और वर्षा तीन ही ऋतुएं माने जाते थे। बाद में दो दो मासों के चार ऋतु और चार मासों की वर्षा ऋतु मिला कर पाच ऋतु माने गए। निमेश, लव, कल, त्रुटी, मुहूर्त, अहोरात्र इत्यादि कालमान वेदाग ज्योतिष मे माने गये हैं। क्रांति-वृत्त के समप्रमाण 27 भागों को "नक्षत्र" सज्ञा दी गयी। चद्रमा एक नक्षत्र में एक दिन रहता है। दिन और रात के 30 मुहूर्त या 60 नाड़िया मानी जाती हैं।

वराहमिहिर के पचसिद्धान्तिका नामक ग्रथ में ज्योतिषशास्त्र के पाच सिद्धान्त बताए हैं — (1) पितामह सिद्धान्त, (2) वसिष्ठ सिद्धान्त, (3) रोमक सिद्धान्त, (4) पौलिश सिद्धान्त, एवं (5) सूर्य सिद्धान्त। इनमें रोमक सिद्धान्त ग्रीस देश का और पौलिश सिद्धान्त अलेक्जेंड्रियावासी पौलिश का माना जाता है। सूर्य सिद्धान्त के कर्ता सूर्य नामक आचार्य थे। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, नक्षत्र-ग्रहयुत्यधिकार, उदयादत्ताधिकार, शृगोन्नत्यधिकार, पानाधिकार तथा भूगोलाधिकार नामक 10 प्रकरणों में ज्योतिषशास्त्र के महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन हुआ है।

विकासकाल

ई 5 वीं शती के बाद ज्योतिष शास्त्र मे होरा, बीजगणित, अकगणित, रेखागणित एव फलित इत्यादि शाखाओं का विकास हुआ। इस कालखड में बृहज्जातककार वराहमिहिर, सारावलीकार कल्याणवर्मा (ई छठी शती) षट्पचाशिकाकार पृथुयशा, खण्डखाद्यक एव ब्रह्मस्फुटसिद्धात के कर्ता ब्रह्मगुप्त, लघुमानसकार मुजाल, ग्रहगणित एव गणितसंग्रह के कर्ता महावीर, रत्नसार-पद्धति जैसे ग्रथों के लेखक श्रीपति, गणितसार और ज्योतिर्ज्ञान के लेखक श्रीधराचार्य इत्यादि विद्वानों ने इस शास्त्र का विकास प्रभृत मात्रा में किया। ई 10 वीं शती के पश्चात् फलज्योतिष के जातक, मुहूर्त, सामुद्रिक, तात्रिक, रमल एव प्रश्न प्रभृति अगों का विकास हुआ। रमल एव तात्रिक का भारतीय ज्योतिष में प्रवेश यवनों के प्रभाव के कारण हुआ। इस कालखड में सिद्धान्तशिरोमणि एव मुहूर्तचिन्तामणि के लेखक भास्कराचार्य (ई 12 वीं शती), अद्भुतसागरकार बल्लालसेन (मिथिला नरेश के पुत्र), ताजिकनीलकण्ठीकार नीलकण्ठ दैवज्ञ, मुहूर्तचिन्तामणिकार रामदैवज्ञ (नीलकण्ठ के अनुज) इत्यादि महान् ज्योतिर्विदों ने इस शास्त्र की प्रगति की। अनेक टीकाग्रथों का प्रणयन इसी कालखड में हुआ। ई 16 वीं शती के बाद शतानंद, केशवार्क, कालिदास, महादेव, गंगाधर, भक्तिलाभ, हेमतिलक, लक्ष्मीदास, ज्ञानराज, अनन्तदेवज्ञ, दुर्लभराज, हरिभद्रसूरि, विष्णु दैवज्ञ, सूर्य दैवज्ञ, जगदेव, कृष्ण दैवज्ञ, रघुनाथ, गोविन्द दैवज्ञ, विश्वनाथ, विठ्ठल दीक्षित, आदि ज्योति.शास्त्रज्ञ हुए। आधुनिक काल में पाश्चात्य गणित शास्त्र के कुछ ग्रंथों के अनुवाद सस्कृत में हुए। राजस्थान के महाराजा जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, उज्जयिनी, वाराणसी एवं मथुरा में वेधशालाओं का निर्माण कर इस शास्त्र के अध्ययन की विशेष सुविधा उपलब्ध की।

पंचाग

ज्योतिर्विदों एवं दैवज्ञों के व्यवहार में "पंचाग" का उपयोग सर्वत्र होता है। जिस पुस्तक में तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण, इन काल के पांच अंगों की सविस्तार जानकारी दी जाती है उसे "पंचाग" कहते हैं। कालगणना एवं कालनिर्देश,

पचांग के आधार पर किया जाता है। सूर्य, चंद्र आदि ग्रहों की गति के कारण, काल के प्रस्तुत पाच अग होते है। आकाशस्थ ग्रहों के समयानुसार स्थान का पता ज्योतिर्विद विद्वान पचाग के आधार पर निर्धारित करते हैं। पचाग का विकास यथाक्रम होता गया। प्रारंभ मे (ई. 16 वीं शती) तिथि और नक्षत्र इन दो अगो का विचार होता था। बाद मे वार और करण का विचार उनके साथ होने लगा। ई 7 वीं शती मे पांचवे अग "योग" का भी विचार होने लगा। गत दो हजार वर्षो मे आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ जैसे महान् ज्योति शास्त्रज्ञ भारत मे हुए। उनके अनुयायी वर्ग द्वारा अन्यान्य पंचांग स्थापित हुए। आज भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे जो पचाग प्रचलित हैं, उनकी निर्मिति सौर, ब्राह्म या आर्य सिद्धान्त के अनुसार हुई है। अत उनमे एकवाक्यता नहीं है। आज भारत में 30 पचाग प्रचलित है। उन में वर्षारंभ, मासारभ की एकता नहीं दिखाई देती। मासों के नामों में भी समानता नहीं है। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और आन्ध्र मे ग्रहलाघव पर आधारित पचाग होते हैं। तामिलनाडु, केरल में आर्यपक्षीय पचाग होते हैं। बगाल, ओडिसा मे सौर पचाग प्रचलित है। उत्तर भारत मे मकरद ग्रथ पर आधारित, मारवाड में ब्राह्मणपक्षीय और काश्मीर मे खडखाद्य ग्रथ पर आधारित पचाग प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त श्री वैष्णव स्मार्त, माध्व इत्यादि संप्रदायों के भी पचाग स्वतत्र होते हैं। इन भारतीय पचागो के अतिरिक्त पारसी, मुसलमान और ईसाई सप्रदायों के भी अपने-अपने पचाग प्रचलित हैं।

पचाग मे सुधार करने के प्रयत्न बार-बार होते रहे। 1904 मे लोकमान्य तिलक ने विविध पचागो मे एकवाक्यता लाने का प्रयत्न किया। स्वतत्रताप्राप्ति के बाद भारत सरकार ने मेघनाद साह की अध्यक्षता मे पचाग सुधारसमिति नियुक्त की। प्रस्तुत समिति ने 1955 मे शालिवाहन शक की वर्षगणना तथा आर्तव वर्षमान स्वीकार कर नया अखिल भारतीय पचाग प्रचलित किया है, परतु लोकव्यवहार मे उसे अभी तक कोई प्रतिष्ठा नहीं मिली।

फल ज्योतिष से सबधित शकुनशास्त्र, निमित्तशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, चूडामणि शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, रमल शास्त्र, (या पाशक विद्या) लक्षण शास्त्र, आय शास्त्र इत्यादि शास्त्रो पर लिखित सस्कृत ग्रथ अल्पमात्रा मे विद्यमान है। विज्ञाननिष्ठ नव शिक्षित समाज में इन शास्त्रों के प्रति श्रद्धा नहीं है।

ज्योतिष शास्त्रीय परिभाषा :- एक नाडी - स्त्री या पुरुष के जन्म नक्षत्र के अनुसार, आद्य, मध्य, और अन्त्य नाडी निर्धारित होती है। जन्म नक्षत्रानुसार जिनकी एक ही नाडी होती है, उन स्त्री-पुरुषों का विवाह निषिद्ध माना जाता है।

दो अयन - दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन का प्रारभ कर्क सक्रांति से और उत्तरायण का आरभ मकर सक्रमण मे होता है। दक्षिणायण में सूर्य का अयन (गति) दक्षिण दिशा की ओर तथा उत्तरायण मे वह उत्तर दिशा की ओर दीखता है।

दो पक्ष - शुक्ल और कृष्ण। अमावस्या से पौर्णिमा तक शुक्ल और पौर्णिमा से अमावस्या तक कृष्ण पक्ष कहा जाता है।

तीन अमावस्या - (1) आषाढ वद्य अमावस्या (दीप पूजा) (2) श्रावण वद्य अमावस्या (पिठोरी) और (3) भाद्रपद वद्य अमावस्या (सर्वपित्री) ज्योतिष शास्त्र मे विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

तीन गण - (1) देव गण (2) मनुष्य गण और (3) राक्षस गण। विवाह सबध में स्त्री-पुरुष के गण का विचार किया जाता है।

साढे तीन सुमुहूर्त - (1) वर्ष प्रतिपदा (2) अक्षय्य तृतीया (3) विजया दशमी और (4) बलि प्रतिपदा- यह अर्ध मुहूर्त माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार किसी मगल कार्य का शुभारभ करने के लिए ये मुहूर्त लाभप्रद माने गये है।

चातुर्मास्य - आषाढ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक का काल।

घात चतुष्टय - (1) घात चद्र (2) घात तिथि (3) घात नक्षत्र और (4) घात वार।

पंचांग - (1) तिथि, (2) वार, (3) नक्षत्र, (4) योग और (5) करण।

पंच पर्वकाल- (1) व्यतीपात, (2) वैधृति, (3) सक्रांति, (4) पौर्णिमा और (5) अमावस्या अथवा अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पौर्णिमा और रविसक्रांति।

षड् ऋतु - (1) वसत- चैत्र बैशाख, (2) ग्रीष्म- ज्येष्ठ-आषाढ, (3) वर्षा- श्रावण भाद्रपद, (4) शरद- आश्विन-कार्तिक। (5) हेमन्त- मार्गशीर्ष- पौष। (6) शिशिर- माघ-फाल्गुन

कपिला षष्ठी योग- भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि पर मगलवार, रोहिणी नक्षत्र और व्यतीपात आने पर कपिला षष्ठी नामक शुभ योग माना जाता है। यह योग साठ वर्षो मे एक बार आता है।

छह काल विभाग- (1) वर्ष (2) अयन (3) ऋतु (4) मास (5) पक्ष और (6) दिन।

नव ग्रह- चन्द्र, सूर्य, मगल, बुध, गुरु, शनि, राहु और केतु। आधुनिक ज्योतिषी हर्षल (वरुण) नेपच्यून (प्रजापति) और प्लूटो नामक अन्य तीन ग्रहो का भी विचार करते हैं।

द्वादश स्थान - तनुस्थान, धन स्थान, पराक्रम स्थान, मातृ, सतति, शत्रु, जाया, मृत्यु, भाग्य, पितृ, लाभ और व्यय। जन्म कुडली देखते समय इन स्थानो का विचार होता है।

बारह राशियाँ - मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह कन्या तुला वृश्चिक, धन, मकर, कुभ और मीन

सोलह संवत् - भारतीय काल गणना में 16 प्रकार के संवत् जाते है। वे विशिष्ट महापुरुषों के आविर्भाव से सबंधित हैं - कल्प संवत्, सृष्टि संवत्, वामन संवत्, श्री राम, श्री कृष्ण, युधिष्ठिर, बौद्ध, महावीर, श्री शंकराचार्य, विक्रम, शालिवाहन, कलचुरि, बलभी नागार्जुन, बंगाल और हर्ष। सतरहवां शिव संवत् शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक से संबंधित है।

ज्योतिषशास्त्र के 18 प्रवर्तक :- सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग,मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, पवन, भृगु और शौनक।

ज्योतिष शास्त्र के 18 सिद्धांत :- ब्रह्म सिद्धांत, सूर्य, सोम, वसिष्ठ., रोमक., पौलस्त्य., बृहस्पति., गर्ग , व्यास., पराशर., भोज, वराह , ब्रह्मगुप्त, सिद्धान्तशिरोमणि, सुन्दर, तत्वविवेक, सार्वभौम और लघुआर्य सिद्धांत।

27 नक्षत्रों के नाम :- अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रप्रदा और रेवती। इनमें अश्विनी से चित्रा तक 14 देवनक्षत्र और स्वाती से रेवती तक 13 यम-नक्षत्र कहलाते हैं। मृग से हस्त तक नौ नक्षत्र पर्जन्यदायक होते हैं।

साठ संवत्सरों के नाम :- प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, स्वर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमसंधी, विलंबी, विकारी, शार्वरी, पल्व, शुभकृत्, शोभिन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्रवग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत, परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, नल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्री, दुर्मति, दुंदुभी, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन ओर क्षय।

17 आयुर्विज्ञान

वैदिक विज्ञान के अतर्गत आयुर्विज्ञान भी परपरावादियों के मतानुसार अनादि माना जाता है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में ईश्वर को ही आद्य वैद्य कहा है। वैदिक गाथाओं मे वैद्यक शास्त्र से संबधित कुछ आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं जैसे- (1) अश्विनी कुमारों ने वृद्ध च्यवन भार्गव को यौवन मिला दिया। (2) दक्ष का कटा हुआ मस्तक फिर से जुड़ा दिया। (3) इन्द्र को बकरे का शिश्न लगाया गया। (4) पूषा को नये दात दिये गये। (5) भग का अधत्व निवारण किया गया इत्यादि। अथर्ववेद में आयुर्विज्ञान से सबधित अनेक विषयों का वर्णन होने के कारण, अथर्ववेद को ही "आद्य आयुर्वेद" कहा जाता है। वैस ही आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद तथा अथर्ववेद का उपाग कहा जाता है। अथर्ववेद में अरुधती, अपामार्ग, पृश्निपर्णी इत्यादि वनस्पतियों का औषधि दृष्ट्या उपयोग बताया है, साथ ही मत्र-तंत्रादि दैवी उपचार भी रोग निवारणार्थ पर्याप्त मात्रा में कहे गये हैं।

आयुर्वेद के शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, ग्रह, विष (अगदतत्र) और वाजीकरण नामक आठ विभाग प्रसिद्ध हैं। इसी कारण "अष्टांग आयुर्वेद" यह वाक्यप्रचार रूढ है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, धन्वतरि, माधव, भावमिश्र इत्यादि आचार्यो के आयुर्वेद विषय ग्रथ सर्वत्र प्रमाणभूत माने जाते हैं। अथर्ववेदीय प्रमाणों के अनुसार राक्षसों द्वारा रोगों का प्रादुर्भाव माना जाता है। अत रोग निवारणार्थ अथर्ववेद में औषधिमंत्रों के प्रयोग बताये गये हैं। चरक-सुश्रुतादि के शास्त्रीय ग्रथो में भी भूत-पिशाच बाधा के कारण मानसिक रोगों की पीडा मानी गयी है। पूर्वजन्म के पाप इस जन्म में रोग निर्माण करते हैं और इस जन्म में घोर पातक करने वाला अगले जन्म में रोगग्रस्त होता है, जैसे-ब्रह्महत्या करने वाला भावी जन्म में क्षय रोगी होता है। मद्यपान करने वाले के दांत काले होते हैं, अन्न चुराने वाला अग्निमाद्य से पीडित होता है। आधुनिक आयुर्विज्ञान में जतु के कारण कई रोगों की उत्पति मानी जाती है। प्राचीन आयुर्विज्ञान के ग्रथों में भी यह जतु सिद्धात माना गया था।

भगवान बुद्ध के समकालीन जीवक नामक वैद्य बालरोग विशेषज्ञ थे। आयुर्वेद के कुमारभृत्या नामक विशिष्ट अग के प्रवर्तक, जीवक ही माने जाते हैं।

वाग्भट के ग्रंथ में प्रतिपादित शल्यतत्र या शल्यक्रिया आधुनिक यूरोपीय शस्त्रक्रिया पद्धति (सर्जरी) की जननी मानी जाती है। भारतीय वैद्यों तथा वैद्यक-ग्रंथों को बाहरी देशों में विशेष मान्यता थी। एक कथा के अनुसार वाग्भट की मृत्यु मिस्र देश में हुई थी।

चरक और सुश्रुत के ग्रंथ सर्वमान्य थे, अतः उन पर अनेक टीका-उपटीकाएँ लिखी गयीं। बाद में नाडी-परीक्षा, रसायन जैसी नई शाखाएं निर्माण हुई, किन्तु यथावसर आयुर्वेद की प्रगति कुंठित सी रही। रसायनतत्र का उपयोग आयु तथा बुद्धिसामर्थ्य की वृद्धि करने में विशेष लाभदायक माना जाता है। रसतंत्रकारों में नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नागार्जुन के नाम पर उपलब्ध रसरत्नाकर, रसेन्द्रमंगल, रसकच्छपुट, सिद्धनागार्जुन, आरोग्यमंजरी, योगसार एवं रतिशास्त्र नामक ग्रथ विशेष उल्लेखनीय हैं।

आयुर्विज्ञान की भारतीय परंपरा अति प्राचीन होने के कारण इस क्षेत्र में अनेक प्राचीन महर्षियों के तथा उनकी संहिताओं के नामों का उल्लेख होता है। परंपरा के अनुसार ब्रह्मा ने लक्ष श्लोकात्मक ब्रह्मसंहिता निर्माण की थी जिसमें निर्दिष्ट 16 से अधिक योग आयुर्विज्ञान विषयक ग्रंथों में आज भी मिलते हैं।

ब्रह्मा से आयुर्विज्ञान का ग्रहण दक्ष और भास्कर ने किया। दक्ष की परपरा में सिद्धांत का तथा भास्कर की परंपरा में चिकित्सा पद्धति का प्राधान्य माना जाता था। अश्विनीकुमार की आश्विनसहिता, चिकित्सासार तत्र, अश्विनीकुमार संहिता इन ग्रथों का उल्लेख अन्य ग्रथों में मिलता है। क्षीरसमुद्र के तट पर स्थित चद्रपर्वत पर विविध प्रकार की औषधियां अमृत प्राप्ति के लिए अश्विनीकुमारों द्वारा उगाई गयी, इस प्रकार का उल्लेख वायु पुराण में मिलता है। अश्विनीकुमार के शिष्य इन्द्र के द्वारा प्रवर्तित योगों में ऐन्द्रिय, रसायन, सर्वतोभद्र, दशमूलाद्य तैल और हारीतक्यलेह विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इन्द्र के शिष्यों में कश्यप की वृद्धजीवकीय तत्र नामक सहिता में, कुछ सिद्धयोग बताये हैं। अगस्त्य के कुछ योग चिकित्सासार संग्रह एव नावनीतक ग्रथ में उद्धृत हैं। भारद्वाज कृत भेषजकल्प और भारद्वाजी प्रकरण ग्रथों की पांडुलिपिया मद्रास में विद्यमान हैं। भरद्वाज-शिष्य द्वितीय धन्वन्तरि के द्वारा आयुर्वेद का विभाजन आठ अगों में किया गया ऐसी मान्यता है। इसी धन्वन्तरि को "आयुर्वेद-प्रवर्तक" तथा "सर्वरोग-प्रणाशन" उपाधिया दी गई। धन्वन्तरिकृत सन्निपातकलिका, धातुकल्प, रोगनिदान, वैद्यचिन्तामणि धन्वन्तरि निघण्टु इत्यादि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। पुनर्वसु आत्रेय के छह शिष्यों में अग्निवेश का तंत्र विशेष प्रसिद्ध हुआ। अग्निवेशतंत्र कायचिकित्सा प्रधान था। नाडीपरीक्षा और अग्निवेश-हस्तिशास्त्र नामक उसके ग्रथ प्रसिद्ध हैं। आत्रेय संहिता की पांडुलिपि विद्यमान है। आत्रेय के दूसरा शिष्य भेल (या भेड) की सहिता प्रकाशित हुई है।

चरक सहिता मे शालाक्यतत्र को आयुर्वेद का द्वितीय अग माना है। नाक, कान, गला इत्यादि के रोगों की चिकित्सा में शलाका का उपयोग होने के कारण इस अग को यह नाम प्राप्त हुआ।

शालाक्यतत्रकारों में इन्द्रशिष्य निमि, निमि-शिष्य कराल तथा शौनक, काकायन इत्यादि नाम प्रसिद्ध हैं। कराल ने 96 प्रकार के नेत्र-रोगों का निर्देश किया था, जिनका उल्लेख चरक-सहिता मे हुआ है।

शल्यचिकित्सा आयुर्वेद का तृतीय अग है जिसके प्रवर्तक थे दिवोदास धन्वन्तरि। इनके सात प्रमुख शिष्यों में सुश्रुत का नाम प्रसिद्ध है। सुश्रुत सहिता में शल्यमूलक आयुर्विज्ञान का प्रतिपादन हुआ है। इस सहिता के वृद्ध सुश्रुत और लघुसुश्रुत नामक दो पाठ प्रसिद्ध हैं।

कौमारभृत्या नामक अग का जनकत्व कश्यपशिष्य जीवक या वृद्धजीवक को दिया जाता है। इनकी काश्यप सहिता (या वृद्धजीवकीय तत्र) का प्रतिसस्करण वात्स्य ने किया। इस विषय पर रावण कृत कुमारतत्र, बालतत्र, बालचिकित्सा उल्लेखनीय हैं। रावण के नाडीपरीक्षा, अर्कप्रकाश और उड्डेशतत्र नामक ग्रथ भी उपलब्ध हैं।

आयुर्वेद में "अगदतत्र" शब्द का प्रयोग विष-प्रशामक उपाय के अर्थ मे होता है (अगदो विषप्रतिकार । तदर्थं तन्त्रम्) काश्यप, उशना, बृहस्पति, आलवायन, दारुवाह, नग्नजित, आस्तिक आदि ऋषि इस अगदतत्र के विशेषज्ञ थे।

रसायनतत्र को आयुर्वेद का अत्यत महत्त्वपूर्ण अग माना जाता है भृगु, अगस्त्य, वसिष्ठ, माडव्य, व्याडि, पतजलि, नागार्जुन इत्यादि आचार्य रसायनतत्र के विशेषज्ञ थे।

उपरनिर्दिष्ट आठ अगो के समान (1) स्वास्थ्यानुवृत्ति (2) रोगच्छेद और (3) औषधि नामक तीन स्कन्धों में भारतीय आयुर्विज्ञान का विभाजन किया जाता है जिसके कारण "**त्रिस्कंध आयुर्वेद**" यह पयोग रूढ हुआ है। चरक सहिता में कहा है कि (1) हितायु (2) अहितायु (3) सुखायु और दु खायु इन चार प्रकारो से मानवी आयु का विचार आयुर्वेद का विषय है।

भारतीय आयुर्विज्ञान के अनुसार पच महाभूतों के विकारों का समुदाय अर्थात् स्थूल शरीर और चेतना का अधिष्ठान सूक्ष्म शरीर, इन दो विभागो मे शरीर की कल्पना की गई है। शरीरस्थ पच महाभूतो एव पच तन्मात्राओ के सयोग से "पचमहाभूतद्रव्य-गुण सग्रह" होता है और मन, बुद्धि आत्मा मिल कर "अध्यात्म द्रव्य गुण सग्रह" होता है।

प्राणी द्वारा भक्षित अन्न से जो सजीव कण शरीर मे निर्माण होते हैं, उन्ही से कफ, वात और पित्त नामक तीन धातुओं (धारणाद् धातु) की निर्मिति होती है। त्रि-धातुओ की साम्यावस्था ही शरीर का स्वास्थ्य होता है। विषमता उत्पन्न होने पर इन्हीं धातुओं को "दोष" कहते है। आयुर्वेद की चिकित्सापद्धति में त्रिधातु या त्रिदोष का विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन्ही का प्रकोप होने पर शरीर मे जो निरुपयोगी द्रव्य निर्माण होते हैं उन्हे "मल" कहते हैं। त्रिस्कधान्तर्गत स्वास्थ्यानुवृत्तिकर शास्त्र में धातुसाम्य का रक्षण और धातुवैषम्य का निवारण करने का विवेचन होता है। रोगोत्पत्ति के तीन कारण होते हैं- (1) असात्म्य - इन्द्रियार्थ- सयोग, (2) प्रज्ञापराध और (3) परिणाम। अर्थात (1) भोग्य तथा भोज्य पदार्थ का अतिसेवन, विपरीत सेवन और अल्पसेवन या असेवन (2) स्वाभाविक मन प्रवृति का हठात् निरोध या उद्रेक (3) ऋतुमान, विष, कृमि इत्यादि कारणों से रोगो की उत्पत्ति शरीर में होती है।

कफ, वात पित्त इन तीन धातुओ से रस,रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात स्थूल धातुओं की उत्पत्ति होती है। इनमे जतुरूप दोष उत्पन्न होने की सभावना होती है, अत इन्हे "दूष्य"- कहते है। सप्त धातुओं में जतुरूप दोषों का प्रादुर्भाव ही रोग है। शरीर समधातुमय तथा निर्मल रहना ही निरोगावस्था या आरोग्य है।

आयुर्वेद में दो प्रकार की रोग-चिकित्सा मानी है- (1) दोष-प्रत्यनीक (दोषो का मूलत प्रशमन करना) और (2) व्याधिप्रत्यनीक (व्याधि होने पर उसका प्रशमन करना)। इन दोनों में दोषप्रत्यनीक चिकित्सा श्रेयस्कर मानी है। चिकित्सा शब्द का अर्थ (चरक के मतानुसार) रोगी के शरीर में धातुसाम्य प्रस्थापित करने वाली क्रिया। चिकित्सा ही वैद्य का प्रधान कर्म है। चिकित्सा में दोष, दूष्य, ऋतु, काल, वयोमान, मनोवस्था, आहार इत्यादि बातों पर ध्यान रखना आवश्यक माना है।

चिकित्सा के अन्य दो प्रकार हैं.- (1) द्रव्यभूत और (2) अद्रव्यभूत। द्रव्यभूत चिकित्सा- औषध, आहार, बस्ती, शस्त्र, यंत्र इत्यादि के द्वारा होती है, और अद्रव्यभूत चिकित्सा लघन, मर्दन, मत्रप्रयोग आदि के द्वारा होती है। द्रव्य चिकित्सा में स्वरस, हिम, फांट, कषाय, आसव, घृत, तैल, क्षार, सत्व, भस्म, गुटिका, वटिका, सिद्धरसायन इत्यादि विविध द्रव्यकल्पों का उपयोग आयुर्वेदीय ग्रंथों में बताया है।

आयुर्वेद के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथकार एवं ग्रंथ

आयुर्वेद के क्षेत्र मे चार महान आचार्य माने जाते हैं। उनके संबध में एक श्लोक प्रसिद्ध है -

निदाने माधव श्रेष्ठ सूत्रस्थाने तु वाग्भट । शारीरे सुश्रुत प्रोक्त चरकस्तु चिकित्सिते ।।

अर्थात् रोगनिदान मे माधव, सूत्रस्थान मे वाग्भट, शरीरविज्ञान मे सुश्रुत और रोगचिकित्सा में चरक सर्वश्रेष्ठ हैं।

सुश्रुत संहिता- सुश्रुत विश्वामित्र गोत्री तथा शालिहोत्र के पुत्र थे। दिवोदास धन्वन्तरि (जो साक्षात् भगवान धन्वन्तरि के अवतार माने जाते हैं और जिन्होंने शल्यतत्र का इह लोक में निर्माण किया) सुश्रुत के गुरु थे। सुश्रुत की संहिता में पाच स्थान (या विभाग) हैं- (1) सूत्र स्थान (2) निदान स्थान (3) शारीर स्थान (4) चिकित्सा स्थान और (5) कल्प स्थान। इनमें शरीर स्थान के अन्तर्गत वैद्यशिक्षा, औषधमूल विभाग, औषधि चिकित्सा, पथ्यापथ्य विचार जैसे महत्त्वपूर्ण विषयो का विवेचन है। सुश्रुत के अनुसार शस्त्रोपचार और व्रणोपचार का आयुर्विज्ञान में विशेष महत्त्व है। अस्थिरोग, मूत्रविकार, जलोदर, अंडवृद्धि, त्वचारोपण, मोतीबिन्दु इत्यादी के सुधार के लिए शस्त्रक्रिया के प्रयोग सुश्रुत ने बताए हैं। शस्त्रक्रिया में उपयुक्त एक सौ से अधिक शल्यशस्त्रो का वर्णन सुश्रुत सहिता में मिलता है। सुश्रुत संहिता के लघु सुश्रुत और वृद्ध सुश्रुत नामक सक्षिप्त एव परिवर्धित सस्करण प्रसिद्ध है।

चरक संहिता-चीनी प्रमाणो के अनुसार चरकाचार्य कनिष्क महाराज के चिकित्सक थे। परपरा के अनुसार चरक भगवान् शेष के अवतार माने जाते है। चरक सहिता में स्थान नामक आठ विभाग हैं। (1) सूत्र स्थान- इसमे औषधिविज्ञान, आहार, पथ्य-अपथ्य, विशिष्ट रोग, उत्तम एव अधम वैद्य, शरीर तथा मानस चिकित्सा इत्यादि विषयों का विवेचन है। (2) निदान स्थान- इसमे प्रमुख आठ रोगो का विवेचन है। (3) विमान स्थान- इसमें रुचि और शरीरवर्धन का विवेचन है। (4) शारीर स्थान- विषय - शरीर वर्णन। (5) इन्द्रिय स्थान- विषय - रोग चिकित्सा। (6) चिकित्सा - विषय - रोग निवारक उपाययोजना। (7) कल्प स्थान। (8) सिद्धि स्थान - इनमें सामान्य उपाय योजनाए बताई हैं। ई छठी शताब्दी के पूर्व दृढबल पांचनद ने चरक सहिता का सुधारित सस्करण तैयार किया जिसमें उसने सुश्रुत की शल्यक्रिया का अन्तर्भाव किया है। साप्रत यही चरक सहिता सर्वत्र प्रचलित है। इस सहिता का अरबी भाषा मे अनुवाद हो चुका है।

वाग्भट - इस नाम के दो महान् आचार्य हुए। उनमें अष्टाग सग्रहकार वाग्भट को वृद्धवाग्भट कहते हैं। इनके पितामह का नाम भी वाग्भट था और वे भी श्रेष्ठ भिषग्वर थे। वृद्धवाग्भट का जन्म सिधु देश में हुआ था। इनका समय ई 7 वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

दूसरे वाग्भट को धन्वन्तरि या गौतम बुद्ध का अवतार माना जाता था। वे श्रेष्ठ रसायन वैद्य थे। उनके ग्रथों मे अष्टागहृदय सर्वमान्य है। इनका समय सामान्यत ई 8 वीं या 9 वीं शती माना जाता है। मिश्र के राजा को उपचार करने के हेतु वाग्भट को विदेश जाना पड़ा। उनके उपचार से राजा रोगमुक्त हुआ और भारतीय वैद्यक शास्त्र की प्रतिष्ठा उस देश में स्थापित हुई।

शार्ङ्गधर संहिता - ई 11 वीं शताब्दी मे शार्ङ्गधराचार्य ने इस ग्रथ की रचना की। यह ग्रथ तीन खडों एव बत्तीस अध्यायों में विभाजित है। इस ग्रथ में रोगों के विषय मे अन्य प्रमाणिक ग्रथों की अपेक्षा अधिक विवेचन हुआ है। रसायन तथा सुवर्णादि धातुओं का भस्म करने की प्रक्रिया शार्ङ्गधर के ग्रथ की विशेषता है। साथ ही नाडीपरीक्षा का विवरण इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य माना गया है।

मदनकामरत्न - इसके कर्ता पूज्यपाद जैनाचार्य माने जाते हैं। यह ग्रथ अपूर्णसा है। आयुर्वेदीय रोग विनाशक औषधों के साथ इसमें कामशास्त्र से सबंधित बाजीकरण, लिगवर्धक लेप, पुरुष-वश्यकारी औषध, स्त्री-वश्यकारी भेषज, मधुर स्वरकारी गुटिका आदि के निर्माण की विधि बताई गई है। कामसिद्धि के लिए छह मत्र भी दिये गये हैं।

वैद्यसारसंग्रह - (या योगचिन्तामणि) - लेखक - हर्षकीर्तिसूरि। समय ई 18 वीं शती। आत्रेय, चरक, वाग्भट, सुश्रुत,

अश्वि, हारीलक, वृन्द, कलिक, भृगु, शेष आदि आयुर्वेद के ग्रंथों का रहस्य प्राप्त कर लेखक ने इस ग्रथ का प्रणयन किया है। इस ग्रथ के 29 उपकरणों में आयुर्वेदीय औषधि से संबंधित प्राय सभी विषयों की चर्चा हुई है।

वैद्यवल्लभ - ले. हस्तिरुचि। इस पद्यमय ग्रथ के आठ प्रकरणों में निम्नलिखित विषयों का प्रतिपादन हुआ है। — (1) सर्वज्वर प्रतिकार, (2) सर्व स्त्री-रोग प्रतिकार, (3) काम-क्षय शोफ-फिरंग-रक्तपित्त इत्यादि रोग प्रतिकार, (4) धातु प्रमेह मूत्र कृच्छ्र- लिग वर्धन-वीर्य वृद्धि-बहूमुत्र इत्यादि रोग प्रतिकार, (5) गुप्त रोग प्रतिकार (6) कुष्ट विष-मदाग्नि-कमसोदर- प्रभृति रोग प्रतिकार (7) शिर.कर्णाक्षिरोग प्रतिकार और पाक-गुटिकाद्यधिकार- शेष योग निरूपण।

द्रव्यावलीनिघण्टु - ले मुनि महेन्द्र। यह ग्रथ आयुर्वेदीय वनस्पतियों का कोश सा है। इसी प्रकार का आयुर्वेद- महोदधि नामक कोश ग्रन्थ सुषेण नामक विद्वान ने लिखा है। आचार्य अमृतनन्दी के निघण्टुकोश में आयुर्वेदीय पारिभाषिक शब्दों की संख्या 22 हजार है।

कल्याणकारक - लेखक- आचार्य उग्रादित्य। समय- ई 11-12 वीं शती। यह ग्रथ 25 अधिकारों में विभक्त हैं। इस ग्रथ में रोगचिकित्सा का प्रतिपादन रूढ पद्धतियों से विभिन्नतया किया है और औषधों के साथ मधु, मद्य और मास को अनुपानों में वर्ज्य किया है।

ज्वरपराजय - लेखक- जयरत्नगणि। समय ई 18 वीं शती। प्राचीन सुप्रसिद्ध ग्रथों पर आधारित।

आयुर्वेद विषयक अनुपलब्ध ग्रंथों की सख्या काफी बडी नहीं है। मूलत अप्राप्य ग्रथों के उदाहरण तथा नामोल्लेख यत्र-तत्र मिलते हैं।

18 शिल्पशास्त्र

कल्प नामक वेदाग के अन्तर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्रों के अनन्तर शुल्बसूत्रो की गणना होती है। इनमें आपस्तब, बौधायन और कात्यायन के शुल्बसूत्र सुप्रसिद्ध। आपस्तब का शुल्बसूत्र छह पटलो के अन्तर्गत 21 अध्यायों में विभक्त है। सूत्रसंख्या है 223। आपस्तब और बोधायन के शुल्बसूत्रो के विषय समान ही है। आपस्तब बोधायन की अपेक्षा में सरल तथा संक्षिप्त है। इस पर करविन्दस्वामी (ई 5 वीं शती) कपर्दिस्वामी (12 वीं शती), सुदरराज (ई 10 वीं शती) और गोपाल कृत टीकाए उपलब्ध है।

कात्यायन शुल्बसूत्र, कातीय शुल्ब परिशिष्ट अथवा कात्यायन शुल्बपरिशिष्ट नाम से भी पहचाना जाता है। यह दो भागो में विभक्त है। प्रथम भाग मे 90 सूत्र सात कडकाओ में विभक्त हैं। द्वितीय भाग में 40 या 48 श्लोक मिलते हैं। वेदियों की रचना के लिए आवश्यक रेखागणित, वेदियो का स्थानक्रम, नापने वाली रज्जू, निपुण वेदीनिर्माता के गुण तथा कर्तव्य इत्यादि विषयों का विवरण प्रस्तुत ग्रथ में हुआ है।

कात्यायन शुल्बसूत्र पर राम वाजपेयी (उत्तर प्रदेश मे नैमिष ग्राम के निवासी), काशी निवासी महीधर (ई 16 वीं शती), महामहोपाध्याय विद्याधर गौड (20 वीं शती), इन तीन पडितो की व्याख्याए उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मानव, मैत्रायणीय, वाराह, नामक शुल्बसूत्र के ग्रथ प्रचलित हैं। मानव शुल्बसूत्र मे सुपर्णचिति अथवा श्येनचिति नामक वेदी का वर्णन मिलता है जो अन्यत्र नहीं मिलता। कल्पविषयक वेदाग वाङ्मय की सक्षिप्त रूपरेखा ध्यान में आने के लिए इतना विवरण पर्याप्त है। भारतीय शिल्पशास्त्र का मूल इन शुल्ब सूत्रो मे माना जाता है।

शिल्प शब्द की उत्पत्ति शील-समाधौ (शीलति समादधाति इति शिल्पम्) इस धातु से हुई है। भृगु ने शिल्प की व्याख्या की है

नानाविधाना वस्तूनां यन्त्राणा कल्पसम्पदाम्। धातूना साधनाना च वास्तूना शिल्प-सक्षितम्।।

(नाना प्रकार की वस्तुए, यन्त्र, युक्ति प्रयुक्ति, धातु साधन, कृत्रिम पदार्थ और मदिर इत्यादि को शिल्प कहते हैं)।

शिल्पशास्त्र के अतर्गत 1) धातुखण्ड 2) साधनखण्ड और 3) वास्तुखण्ड नामक तीन खण्ड माने जाते हैं।

(1) धातुखण्ड मे, कृषिशास्त्र, जलशास्त्र और खनिजशास्त्र इन तीन उपशास्त्रों का अन्तर्भाव होता है। इस प्रकार शिल्पशास्त्र के तीन खण्डों के 9 उपशास्त्र माने गये हैं। शिल्पशास्त्रसबधी उपशास्त्रों में 22 विद्याओं तथा 64 कलाओं का समावेश किया जाता है।

कृषिशास्त्र मे 1) वृक्षविद्या 2) पशुविद्या और 3) मनुष्यविद्या अन्तर्भूत है।

1) वृक्षविद्या की कलाए सीकराद्युत्कर्षण, वृक्षारोपण, यवादीक्षुविकार, वेणुतृणादिकृति 2) पशुविद्या की कलाएं गजाश्वसारथ्य, गतिशिक्षा, पल्याणक्रिया, पशुचर्मांतनिर्हार, चर्ममार्दवक्रिया। 3) मनुष्यविद्या की कलाए क्षुरकर्म, कचुकादिसीवन, गृहभाण्डदि निर्माण वस्त्रसम्मार्जन, मनोनुकूल सेवा, नानादेशीय वर्णलेखन, शिशुसरक्षण, शय्यास्तरण, पुष्पादिग्रथन, अन्नपाचन।

धातुखण्ड के जलशास्त्र मे ससेचनविद्या, सहरणविद्या और स्तभनविद्या इन तीन विद्याओं का अन्तर्भाव होता है। संसेचन विद्या की जलवाय्वग्निसयोग नामक एक कला मानी गई है। अन्य दो विद्याओं की कोई कला नहीं है।

धातुखण्ड के अन्तर्गत खनिजशास्त्र में द्रुतिविद्या, भस्मीकरणविद्या और संकरविद्या नामक विद्याएं मानी गई हैं। उसमें द्रुतिविद्या की रत्नादिसदसज्ज्ञान नामक एक कला है। भस्मीकरणविद्या की क्षारनिपासन, क्षारपरीक्षा, स्नेहनिष्कासन और इष्टिकादिभाजन नाम चार कलाए हैं।

संकरविद्या की कलाए औषधिसयोग, काचपात्रादिकरण, लोहाभिसार, मकरदादिकृति इत्यादि।

पृथक्करणविद्या की 1 कला संयोग धातुज्ञान। इस प्रकार शिल्पशास्त्र का धातुखड समाप्त होता है।

2) साधनखण्ड : शिल्पशास्त्र का दूसरा खंड साधनखड है। इस खड में भी 3 शास्त्र होते हैं जिनके नाम है 1) नौकाशास्त्र 2) रथशास्त्र और 3) विमानशास्त्र। नौकाशास्त्र की 3 विद्याएं 1) तरीविद्या 2) नौविद्या और 3) नौकाविद्या।

तरीविद्या में बाह्वादिभि जलतरणम् नामक एक कला है। नौविद्या में सूत्रादि रज्जूकरण और पटबधन नामक दो कलाए हैं और नौकाविद्या में नौकानयन की एक कला मानी गई है।

रथशास्त्र : इस की 3 विद्याए 1) पथविद्या 2) घटापथविद्या और 3) सेतुविद्या। पथविद्या में समभूमिक्रिया और शिलार्चा नामक दो कलाएं हैं।

घण्टापथविद्या में विवरणकरण नामक एक कला है और सेतुविद्या में वृत्तखण्डबन्धन, जलबन्धन और वायुबधन नामक 3 कलाएँ मानी गई हैं।

साधन खण्ड के विमानशास्त्र में शकुतविद्या और विमानविद्या नामक दो विद्याए हैं। उनमें शकुतविद्या की शकुंतशिक्षा नामक एक कला और विमानविद्या की स्वलेपादिविक्रिया नामक एक कला होती है। इस प्रकार शिल्पशास्त्र के साधन खंड का विस्तार है।

3) वास्तुखण्ड: इस खड मे 1) वेश्मशास्त्र 2) प्राकारशास्त्र और 3) नगररचनाशास्त्र नामक तीन शास्त्रों का अंतर्भाव होता है।

वेश्मशास्त्र में 1) वासोविद्या 2) कुट्टिविद्या 3) मदिरविद्या और 4) प्रासादविद्या नामक चार विद्याओं का अन्तर्भाव होता है।

वासोविद्या में चर्म कौषेय कार्पासादि पटबधन नामक एक कला है। कुट्टिविद्या में 1) मृदाच्छादन और 2) तृणाच्छादन नामक दो कलाए होती हैं।

मदिरविद्या में चार कलाएं 1) चूर्णावलेप 2) वर्णकर्म 3) दारुकर्म और 4) मृत्कर्म।

प्रासादविद्या की कलाएँ 1) चित्राद्यालेखन 2) प्रतिमाकरण 3) तलक्रिया और 4) शिखरकर्म।

प्राकारशास्त्र : यह वास्तुखड का दूसरा शास्त्र है। इसमें 1) दुर्गविद्या 2) कूटविद्या 3) आकरविद्या और 4) युद्धविद्या नामक चार विद्याए मानी गई हैं। उनमें केवल युद्धविद्या की 1) मल्लयुद्ध 2) शस्त्रसंधान 3) अस्त्रनिपातन 4) व्यूहरचना 5) शल्यहति और 6) व्रणव्याधिनिराकरण नामक छह कलाओं का अन्तर्भाव होता है।

नगररचना शास्त्र - इस शास्त्र में (1) आपण विद्या, (2) राजगृहविद्या, (3) सर्वजनावासीविद्या (4) उपवनविद्या और (5) देवालयविद्या नामक पांच विद्याएं होती हैं। उनमें केवल उपवनविद्या की वनोपवन रचना नामक एक कला मानी गई है।

उपरिनिर्दिष्ट वर्गीकरण के अनुसार भारतीय शिल्पशास्त्र एक महाविषय है और उसमें 3 खंड, 9 उपशास्त्र, 31 विद्याए तथा 64 कलाओं का अन्तर्भाव होता है। आज इन शास्त्र-विद्या-कलाओ का अध्ययन भारत मे होता है परंतु उनमें भारतीयता का कोई अंश नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय शिल्पशास्त्र के अगोपाग प्रभावित हो गए हैं। अब इनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक स्वरूप का रह गया है।

सस्कृत भाषा में लिखे हुए शिल्पशास्त्र विषयक अनेक ग्रंथों के नाम यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ थोडे ही ग्रंथों का अभी तक प्रकाशन हुआ है। भारतीय शिल्पशास्त्र के अर्वाचीन उपासक स्व रावबहादुर वझे (महाराष्ट्र) ने सन् 1928 में शिल्पशास्त्र विषयक ग्रथों की नामावली तैयार की थी। उसका निर्देश यहा किया जाता है।

अ) सूत्र ग्रंथ :- बोधायन शुल्बसूत्र, हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, गोभिल गृहयसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र, पाराशरसूत्र और वात्स्यसूत्र।

आ) संहिता ग्रंथ :- अर्थवसहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, अगस्त्यसहिता, हारीतसहिता, विश्वकर्मसंहिता और पद्मसहिता।

इ) पुराण ग्रंथ :- अग्निपुराण, वायुपुराण, गरुडपुराण, देवीपुराण और ब्रह्माण्डपुराण।

ई) ज्योतिषग्रंथ :- लग्नशुद्धि, नक्षत्रकल्प, भुवनदीपिका, ग्रहपीडामाला।

उ) गणितग्रंथ :- प्रमाणमंजरी, मानविज्ञान, लीलावती-गोलाध्याय, मानसंग्रह, विमानादिमान और मानबोध।

ऊ) चित्रविद्याग्रंथ :-कलानिधि, चित्रबाहुल्य, छायापुरुषलक्षण, वर्णसंग्रह, चित्रखंड, चित्रलक्षण, चित्रकर्मीयशिल्प।

ए) द्रव्यविद्याग्रंथ :- दारुसंग्रह, काष्ठशाला, काष्ठसंग्रह और मृतसंग्रह।

ऐ) प्रतिमाविद्या ग्रंथ :- रूपमण्डन, रूपावर्त, गंधर्वविद्या, रूपावतार, रूपविधिद्वारदीपिका, मूर्तिज्ञान, ध्यानपद्धति और प्रतिमालक्षण।

ओ) उपवनविद्याग्रंथ :- आहर्टिक, विहारकारिका, शार्ङधरपद्धति।

औ) वास्तुविद्या :- गृहवास्तुसार, निर्दोषवास्तु, वास्तुबोध, वास्तुमंजरी, वास्तुविचार, वास्तुसमुच्चय, वास्तुपद्धति, वास्तुशास्त्र, वास्तुतंत्र, वास्तुमाहात्म्य, वास्तुकोश, वास्तुरत्नावली, वास्तुप्रकाश, वास्तुचक्र, वास्तुराज, वास्तुकरण, वास्तुपुरुष, वास्तुनिधि, वास्तुनिर्माण, वास्तुशिरोमणि, वास्तुविद्या, वास्तुतिलक, वास्तुलक्षण, वास्तुसंग्रह, वास्तुप्रदीप, वास्तुविद्यापति, सनत्कुमारवास्तु, मानसारवास्तु, रुद्रयामलवास्तु, विश्वंभरवास्तु, कुमारवास्तु, वास्तुवल्लभ, वास्तुतंत्र, प्रतिष्ठातंत्र, मनुतंत्र, नलतंत्र, त्वाष्ट्रतंत्र, सुखानन्दवास्तु फेरुठक्कुरवास्तु।

शिल्पज्ञान, शिल्पप्रकाश, शिल्पसंग्रह, शिल्पकलादीप, शिल्प-साहित्य, शिल्परत्नाकर, शिल्पावतंस, शिल्पविज्ञान, शिल्पसर्वस्वसंग्रह, शिल्पार्थसार, शिल्पशास्त्रसार, शिल्पलेखा, शिल्पसंग्रह, शिल्पदीपिका, शिल्पदीपक, शिल्पविषय।

कश्यपशिल्प, हनुमच्छिल्प, नारायणशिल्प, वशिष्ठशिल्प कल्प, सृष्टि, आत्रेय, भारतीदीप प्राजापत्य, मार्कण्डेय, शौनक, विश्व, औशनस, ईशान, नग्नजित्, ब्राम्हीय, वाल्मीकि, वज्र, विश्वकर्मीय, प्रबोध, भारद्वाज, मय, अनिरुद्ध, कुमार, पाणिनि, बृहस्पति, वसुदेव, चित्रकर्म, ऋषिमय, सनत्कुमार, सारस्वत, भास्करीय, विश्वकर्म, शत्रुघ्नीय।

गौर्यागम, पंचरात्रागम, कुमारागम, अंशुमानभेदकागम, गुंजकल्प, धातुकल्प, नक्षत्रकल्प, द्रुमवर्णकल्प, युक्तिकल्पतरु, प्रसादकल्प, गौतममत, भोजमत, सौर, मयमत, कार्पार्य, नारदीय चित्रशास्त्र, महाविश्वकर्मीय, कापिल, कालापक, आग्नेय, गोपासम, ब्राह्मीय, बृहस्पतीय

इस प्रकार केवल वास्तुशास्त्र विषयक करीब 125 ग्रंथो के नाम स्व. रावबहादुर श्री. वझेजी ने उपलब्ध किए हैं। इसके अतिरिक्त यंत्रविद्या विषयक ग्रंथो की नामावली -

विमानशास्त्र :- अग्नियान, विमानचन्द्रिका, व्योमयानतंत्र, यंत्रकल्प, यानबिंदु, खेटयानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश, वैमानिकप्रकरण।

नौकाशास्त्र ग्रंथ :- अब्धियान, जलयानज्ञान, यज्ञागग्रंथसिंधु, पंचाशतकुण्डमण्डपनिर्णय, वास्तुटर्जविधि।

देवालयशास्त्र ग्रंथ :- केसरीराज, राजप्रासादमंडन, प्रासादकल्प, प्रासादकीर्तन, प्रासादकेसरी, प्रासादलक्षण, प्रसादर्दीपिका प्रासादालंकार, प्रासादविचार, प्रासादनिर्णय, राजगृहनिर्माण, केसरीवास्तु।

यंत्रशास्त्र विषयक ग्रंथ :- यंत्रार्णव, शिल्पसंहिता (अध्याय 18), यंत्रचिंतामणि, यंत्रसर्वस्व, यंत्राधिकार सूर्यसिद्धांत और सिद्धांतशिरोमणि इ।

खनिशाग्रंथ :- रत्नपरीक्षा, लोहवर्णन, धातुकल्प, लोहप्रदीप, महावज्र, भैरवतंत्र और पाषाणविचार इ।

तंत्रविद्याग्रंथ :- तंत्रसमुच्चय, महातंत्र, तत्त्वमाला।

रसविद्याग्रंथ :-रसरत्नसमुच्चय, शार्ङगधर।

प्राकारशास्त्रग्रंथ :- युद्धजयार्णव, बाणस्थापननिर्णय, समरांगण-सूत्रधार, विधातृमित्र, धनुर्वेद, जामदग्न्यधनुर्वेद, भारद्वाज धनुर्वेद, कोदण्डमण्डन।

नगररचनाशास्त्र ग्रंथ :-मयमत, युक्तिकल्पतरु।

वृक्षविद्याग्रंथ :-द्रुमवर्णकल्प, वृक्षायुर्वेद, नाकुल, शालिहोत्र।

पशुविद्याग्रंथ :- हस्त्यायुर्वेद, नाकुल, शालिहोत्र।

संकीर्णग्रंथ - आदिसार, मानवसूत्र, विशालाक्ष, विश्वकर्मीविद्या, प्रतिष्ठासारसंग्रह, ज्ञानरत्नकोष, नामसंगीत, विश्वसार, मयदीपिका, आदितत्त्व, आर्यादिलक्षण, विश्वकर्मप्रकाश, प्रबोधक, विश्वकर्म सिद्धांत, महासार, मानसार, विश्वसारोद्धार, अपराजितपृच्छा, ज्ञानप्रकाशदीपावली, विस्तारक, मनुसार, मंजुश्रीसाधन, विश्वधर्म, उद्धारधोरणी, मयजय, मयसंग्रह, कामिकादीप्ति, रत्नावलीसार, पद्मतंत्रक्रिया, मन शिल्प, मयविद्याप्रकाश, विश्वकर्मरहस्य, क्षीरार्णवविग्रह, सूत्रधार, सूत्रसंतान, क्षीरार्णवकारिका, हेमाद्रिप्रतिष्ठाभूलस्तम्भनिर्णय, मयमाया, सकलाधिकार, क्षीरार्णव, मयरत्नप्रयोगमंजरी, प्रयोगसंहिता शिल्परत्न, श्रीकलानिधि, शिवगृह-देवपद्धति ज्ञानरत्नकोष, गोविन्दकलानिधि, ज्ञानसार पराजित, ज्ञानकारिका, मातंगलीला चक्रावलीसंग्रह, भद्रमार्तण्डप्रकाश, विश्वकर्मप्रकाश, आर्यतत्त्व इत्यादि।

भारतीय शिल्पकला विषयक इन अप्रकाशित ग्रंथो की यह प्रदीर्घ तालिका यही बतलाती है कि हमारे पूर्वज इस भौतिक विद्या मे भी अग्रसर थे। इन अप्रकाशित ग्रंथो का गवेषण तथा प्रकाशन करने का कार्य केवल शासकीय सहायता से ही हो सकता है। स्वतंत्र भारत मे बडे बडे शिल्पशास्त्र के महाविद्यालयों का अब निर्माण हुआ है और उनमे शोधकार्य भी हो रहा है। परंतु हमारे आधुनकि वास्तुशास्त्रज्ञ और शिल्पशास्त्रज्ञ अगर संस्कृत का अध्ययन करेंगे तो ही उनके द्वारा भारत की इस प्राचीन प्रगत विद्या का परिचय कराने का कार्य हो सकता है। इंजिनिअर लोग संस्कृत नहीं जानते और संस्कृतज्ञ लोग इंजिनिअरिंग नहीं जानते इस कारण यह अनवस्था निर्माण हुई है।

प्रकरण - 4

1 "पुराण वाङ्मय"

हिंदु समाज के किसी भी धर्मकृत्य के सकल्प में "श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त"- यह शब्दप्रयोग आता है। अर्थात् इस समाज के परम्परागत धर्म का प्रतिपादन श्रुतियों (वेद), स्मृतियों (मनु-याज्ञवलक्यादि के धर्मशास्त्र विषयक ग्रंथ) और पुराणों में मूलतः हुआ है। श्रुति और स्मृति में प्रतिपादित आचारधर्म का विधान त्रैवर्णिकों के ही लिए है किन्तु पुराणों में प्रतिपादित धर्म सभी मानवमात्र के लिये है। "एष साधारण पन्था साक्षात् कैवल्यसिद्धिद "

अर्थात् मोक्षप्राप्ति कराने वाला यह (पुराणोक्त धर्म) सर्वसाधारण है ऐसा पद्मपुराण में कहा है। सदाचार, नीति, भक्ति इत्यादि मानवोद्धारक तत्त्वो का उपदेश पुराणो ने अपनी रोचक, बोधक तथा सरस शैली में भरपूर मात्रा में किया है। पुराण कथाओ के कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण, तर्कविसंगत एव असभाव्य अशों की ओर निर्देश करते हुए उनकी कटु आलोचना कुछ चिकित्सक वृत्ति के विद्वानो ने की है, परतु भारतीय परपरा का यथोचित आकलन होने के लिये वैदिक वाङ्मय के समान पुराण वाङ्मय का भी ज्ञान अनिवार्य है, इसमे मतभेद नही हो सकता।

"पुराण" शब्द की निरुक्तिमूलक व्याख्या, "पुरा नव भवति" (अर्थात् जो प्राचीन होते हुए भी नवीन होता है) एव **यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।** (अर्थात् (पुरा + अन) प्राचीन परपरा की जो कामना करता है) इत्यादि वाक्यों मे प्राचीन मनीषियों ने बताया है।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च। वशानुचरित चेति पुराण पंचलक्षणम् ।।

इस प्रसिद्ध श्लोक मे, सर्ग (विश्व की उत्पत्ति) प्रतिसर्ग (विश्व का प्रलय) वश, मन्वन्तर (काल में स्थित्यतर) एव राजर्षियो के वशो का ऐतिहासिक वृत्तान्त, इन पाच विषयो को पुराण का लक्षण माना गया है। कुछ अपवाद छोड कर सभी पुराणो मे इन पाच विषयो का सविस्तर प्रतिपादन दिखाई देता है। "इतिहास-पुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत्" यह भी एक वचन सुप्रसिद्ध है। तदनुसार वेदज्ञान के विकास का साधन इतिहास और पुराण ग्रथ माने जाते हैं। "इतिहास-पुराण"-- यह सामासिक शब्द प्रयोग वेद--उपनिषदो मे आता है। वायुपुराण तथा महाभारत, स्वरूपात पुराण होते हुए भी इतिहास कहलाए गये हैं।

"पुराण" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद अथर्ववेद, गोपथ और शतपथ ब्राह्मण, आपस्तब धर्मसूत्र, इत्यादि प्राचीन वैदिक ग्रथो मे हुआ है। अश्वमेधादि वैदिक यज्ञ-यागो मे सूतो द्वारा पुराणो का कथन होता था। इन प्रमाणो से पुराणों की प्राचीन परपरा सिद्ध होती है। उपनिषदो मे इतिहासपुराण को "पचमवेद" कहा है।

विष्णुपुराण में कहा है कि

"आख्या नैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि कल्पशुद्धिभि । पुराणसहिता चक्रे पुराणार्थविशारद "।

अर्थात् पुराणो के मर्मज्ञ (व्यास) ने आख्यानो, उपाख्यानो, गाथाओ और कल्पशुद्धि (आचार विधि) इन उपकरणों से युक्त पुराणसहिता का निर्माण किया और अपने प्रमुख शिष्य रोमहर्षण को उसका अधिकार दिया। रोमहर्षण ने अपने प्रमुख छह शिष्यों को यह सहिता पढाई। इस प्रकार अठारह पुराण सहिताओ का विस्तार हुआ। इन अठारह नामों का सग्रह एक सूत्रात्मक श्लोक मे किया गया है

म-द्वय भ-द्वय चैव ब्र-त्रय व-चतुष्टयम्। अ-ना-प-लि-ग-कू-स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।

अर्थ मद्वय - मत्स्य, मार्कण्डेय। भद्वय-भविष्य, भागवत। ब्रत्रय ब्रह्म, ब्रह्म-वैवर्त, ब्रह्माण्ड,। वयचतुष्टयम् = वराह, वामन, वायु, विष्णु। अ अग्नि। ना = नारद। प-पद्म। लि-लिंग। ग-गरुड। कू-कूर्म। स्क-स्कद। इस प्रकार आद्याक्षरों से पृथक् पृथक् पुराणो की नामावली का कथन हुआ है। पद्मपुराण में इन अठराह पुराणो का त्रिगुणों के अनुसार त्रिविध वर्गीकरण किया है।

1) **सात्त्विक पुराण** · विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वराह।

2) **राजस पुराण** · ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य और वामन।

3) **तामस पुराण** : मत्स्य, कूर्म, लिग, वायु, स्कन्द और अग्नि। सामान्यत सात्त्विक पुराण विष्णु माहात्म्य परक, राजस पुराण ब्रह्मविषयक और तामस पुराण शिव विषयक है।

भागवत पुराण के अनुसार अठराह पुराणो की श्लोकसख्या निम्नप्रकार है .

1) ब्रह्मपुराण - 10 सहस्त्र	3) विष्णु - 23 "	5) भागवत - 18 "
2) पद्म - 55 सहस्त्र	4) शिव - 24 "	6) भविष्य - 14,500

7) **नारद** - 25 "	11) लिंग - 11"	15) कूर्म - 17 "
8) **मार्कण्डेय** - 41 "	12) वराह - 24 "	16) मत्स्य - 14 "
9) **अग्नि** - 14,500	13) स्कंद - 81,100	17) गरुड - 19 "
10) **ब्रह्मवैवर्त** - 18 "	14) वामन - 10 "	18) ब्रह्माण्ड - 12 "

पुराणों की श्लोकसख्या के सबध मे विद्वानो मे मतभेद है। तथापि 18 पुराणा की सख्या कुल मिलाकर 40 लक्ष 20 हजार से अधिक मानी जाती है। देवी भागवत मे 18 उपपुराणों के नाम दिये हैं। प्राचीनता अथवा मौलिकता के विचार से उपपुराणों का भी महत्त्व पुराणो के समान है। उपपुराणो के नाम है सनत्कुमार नरसिंह, नन्दी, शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, मानव, उशनस् ब्रह्माण्ड, वरुण, कालिका, वसिष्ठ, लिंग, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, मारीच और भार्गव। इनके अतिरिक्त अन्य पुराणों के भी नाम मिलते है जैसे आदि, आदित्य, मुद्गल, कल्कि, देवीभागवत, बृहद्धर्म, परानन्द, पशुपति, हरिवंश तथा विष्णुधर्मोत्तर इ

जैन वाङ्मय मे जिन ग्रथो मे जैन पथी महापुरुषो के चरित्र वर्णित हैं उन्हे पुराण कहा जाता है। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव इन महापुरुषो को जैन परपरा मे "शलाकापुरुष" कहते हैं। इन के चरित्र जिन ग्रथों में वर्णित हैं, उनकी सख्या है 24। इन चौबीस ग्रथो को दिगम्बर लोग "पुराण" कहते है जब कि श्वताम्बर समाज मे उन्हीं को चरित्र कहा जाता है। जैनपुराणों के नाम है आदिपुराण, अजितनाथ०, सभवनाथ०, अभिनद०, सुमतिनाथ०, पद्मप्रभ०, सुपार्श्व०, चन्द्रप्रभ०, पुष्पदन्त०, शीतलनाथ०, श्रेयास०, वासुपूज्य०, विमलानाथ अनन्तजित०, धर्मनाथ०, शान्तिनाथ०, कुन्थुनाथ०, अमरनाथ०, मल्लिनाथ०, मुनिसुव्रत०, नेमिनाथ० पार्श्वनाथ० और सम्मतिपुराण।

बौद्ध वाङ्मय मे पुराणसदृश ग्रथ नहीं है। वैदिक पुराणो मे पद्म, भागवत, नारद, सोम एव साम्ब इन पाच पुराणो को "महापुराण" कहते है। परम्परा के अनुसार प्रत्येक पुराण की जो कुछ श्लोकसख्या बताई गई है, उतने श्लोक आज के उपलब्ध पुराणो मे नहीं मिलते। विष्णुपुराण की विष्णुचित्ती एव वैष्णवाकूत-चंद्रिका नामक टीकाओ मे 6 हजार से लेकर 24 हजार तक विष्णुपुराण की श्लोक सख्या का निर्देश है, परतु दानो टीकाएं केवल 6 हजार श्लोक वाले विष्णुपुराण की टीका करते है। कूर्मपुराण के भी 6 हजार श्लोक मिलते है। ब्रह्मपुराण मे 14 हजार श्लोक मिलते है। दूसरी ओर स्कन्दपुराण के सस्करण मे 81 हजार से अधिक श्लोक पाये जाते हैं। प्रा हाजरा के अनुसार समस्त उपपुराणो की कुल सख्या एक सौ तक है। इन मे से बहुत ही अल्प प्रकाशित हो सके है और जो प्रकाशित हुए है, उनमे पुराणो के "पचलक्षण" नहीं मिलते। सभी पुराणो मे केवल विष्णुपुराण मे "पचलक्षण" सम्यक् रूप मे मिलते है। अन्यत्र राजाओं के वशों का वर्णन वीरो के साहसिक कर्म गाथाए इत्यादि विषयो के साथ व्रत, श्राद्ध, तीर्थयात्रा और दान इन चार धर्मशास्त्रीय विषयो पर प्रभूत मात्रा मे विवरण किया गया है।

श्रीमद्भागवत पुराण के दस लक्षण बताये गये है

"अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थान पोषणमूतय । मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रय ।। (भागवत-2-10-1)

इन दस विषयो का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत मे होने के कारण अन्य पचलक्षणी पुराणो मे इस का महत्त्व विशेष माना जाता है। 12 स्कन्धो मे विभाजित 18 हजार श्लोको का भागवत पुराण आज सर्वत्र प्रचार मे है। इस पुराण मे प्रतिपादित भक्तिप्रधान तथा अद्वैतनिष्ठ धर्म को "भागवत धर्म" कहते है। भागवत में कपिल-देवहूति सवाद, सनत्कुमार-पृथु सवाद पुरजनोपाख्यान, अजामिलोपाख्यान, ययाति आख्यान, नारद-वसुदेव सवाद और श्रीकृष्ण उद्धव सवाद इत्यादि स्थानों पर अत्यत मार्मिक तत्त्वोपदेश किया गया है। सपूर्ण भागवत पुराण अत्यत काव्यमय है, फिर भी दशम स्कन्ध मे वेणुगीत, गोपीगीत युगुलगीत, महिषीगीत एव सपूर्ण रासपचाध्यायी मे ऐसी अप्रतिम काव्यात्मता प्रकट हुई जो अन्यत्र महाकाव्यों मे भी नहीं मिलती। सपूर्ण ग्रथ मे जितने भी भगवत्स्तोत्र मिलते है, उनमे साख्यदर्शन की परिभाषा एव सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए भक्तिपूर्ण वेदान्तरहस्य प्रतिपादन हुआ है। इस पुराण मे सर्वत्र पाडित्य इतनी अधिक मात्रा मे बिखरा है कि उसके कारण "विद्यावता भागवते परीक्षा" यह सुभाषित प्रसिद्ध हुआ। इसी कारण भागवत पुराण पर जितने विविध टीका ग्रथ लिखे गये, उतने अन्य किसी पुराण पर नहीं लिखे गये। इन सब टीकाओ मे श्रीधर स्वामी की भावार्थबोधिनी (या श्रीधरी) टीका सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है।

आधुनिक विद्वान पुराणो का वर्गीकरण निम्न प्रकार करते है 1) ज्ञानकोशात्मक पुराण अग्नि, गरुड एव नारदीय। 2) तीर्थों से सबधित पद्म, स्कन्द एव भविष्य 3) साम्प्रदायिक लिंग, वामन, मार्कण्डेय। 4) ऐतिहासिक वायु एव ब्रह्माण्ड। सभवत वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य एव विष्णु, विद्यमान पुराणो मे सबसे प्राचीन माने जाते है। आधुनिक काल मे पाश्चात्य एव भारतीय विद्वानों ने समग्र पुराण वाङ्मय का चिकित्सक दृष्टि से पर्यालोचन करने का अभिनदनीय कार्य किया है। ऐसे विद्वानो मे एफ इ पार्जिटर, डब्ल्यु किर्फेल, एस सी हाजरा, व्ही आर रामचद्र दीक्षितर, डॉ ए डी पुसाळकर, एस एम प्रधान एवं भारतरत्न पा वा काणे इत्यादि विद्वानो के नाम उल्लेखनीय है। पाश्चात्य विद्वानो ने अनेक पौराणिक वक्तव्यो में दोष ही देखे और उन्हें अव्यावहारिक मान कर छोड दिया। उन्होंने सर्वत्र भारतीय विषयो मे प्राचीन तिथिया निर्धारित करने मे संकोचवृत्ति

प्रदर्शित की है। वे पुराणों एव महाभारत के ज्योतिःशास्त्रीय वक्तव्यों में यथार्थता नहीं मानते और जहां यथार्थता दीखती है वहा "प्रक्षेप" (इटरपोलेशन) मानकर, निराकृत कर देते है। पारजिटर ने तो यह भी कह दिया है कि पुराण ग्रथ प्राकृत भाषीय ग्रंथों के संस्कृत रूपान्तर हैं। किर्फेल ने पार्जिटर के इस मत का विरोध किया है। पुराणों एव उपपुराणों के अतरग का परीक्षण करने वालों को उन की निर्मिति में कुछ क्रमिक विकास दिखाई देता है। इसी कारण पुराणों के काल निर्धारण के संबध मे मतभेद दिखाई देता है। परपरावादी मत का उल्लेख उपर किया गया है। आधुनिक चिकित्सकों में भारतरत्न म म पाडुरग वामन काणे का मत प्रतिपादन हमे उचित लगा। अत वह यहा उद्धृत करते हैं .

"अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण एव प्राचीन उपनिषदों में उल्लिखित "पुराण" के विषय मे हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है किन्तु इतना स्पष्ट है कि पुराण ने वेदों के समान ही पुनीतता के पद को प्राप्त कर लिया था और वैदिक काल मे वह इतिहास के साथ गहरे रूप से सबंधित था। पुराण साहित्य के विकास की यह प्रथम सीढी थी किन्तु हम प्राचीन कालो के पुराण के भीतर के विषयों को बिल्कुल नहीं जानते।

तैत्तिरीय आरण्यक ने "पुराणानि" का उल्लेख किया है, अत उस के समय में कम से कम तीन पुराण तो अवश्य रहे होंगे क्यों कि यह निर्देश बहुवचन में है। आपस्तंब धर्मसूत्र ने एक पुराण से चार श्लोक उद्धृत किये हैं और एक पुराण को भविष्यत् पुराण नाम से पुकारा है जिसमे प्रकट होता है कि पाचवी या चौथी ई पू शती तक कम से कम भविष्यत् पुराण नामक पुराण था। और अन्य पुराण रहे होंगे, या एक और पुराण रहा होगा जिसमे सर्ग एव प्रतिसर्ग साथ कुछ स्मृति के विषय रहे होंगे। इसे हम पुराण साहित्य के विकास की दूसरी सीढी कह सकते है जिसके विषय के बारे में हमें कुछ थोडा बहुत ज्ञात है।

महाभारत ने सैकडों श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें कुछ तो पौराणिक विषयों की गन्ध रखते है और कुछ पौराणिक परिधि में आ जो है। कुछ उदाहरण दिये जा रहे है वन पर्व मे विश्वामित्र की अतिमानुषी विभूति के विषय मे एव उनके इस कथानक के विषय में (कि वे ब्राह्मण हैं) दो श्लोक उद्धृत किये हैं। अनुशासन पर्व मे कुछ ऐसी गाथाए उद्धृत की हैं जो पितरों द्वारा पुत्रो की महत्ता के विषय मे गायी गयी हैं। ये गाथाए शब्दो एव भावों में इसी विषय में कहे गये पौराणिक वचनो से मेल रखती हैं। याज्ञवल्क्य ने (1/3) पुराण को धर्मसाधनों मे एक साधन माना है जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे पुराण, जिन मे स्मृति की बाते पायी जाती थीं, उस स्मृति (अर्थात याज्ञवल्क्य स्मृति) से पूर्व ही अर्थात् दूसरी या तीसरी शती में प्रणीत हो चुके थे। पुराणसाहित्य के विकास की यह तीसरी सीढी है। यह कहना कठिन है कि, वर्तमान मत्स्य पुराण मौलिक रूप से कम लिखा गया, किन्तु यह तीसरी शती के मध्य में या अन्त मे संशोधित हुआ क्यो कि इसमें आन्ध्र वश के अधःपतन की चर्चा तो है, किन्तु गुप्तो का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु यह सभव है कि मत्स्य का बीज इस के कई शतिया पुराना हो। यही बात वायु एव ब्रह्माण्ड के साथ भी है। ये दोनों लगभग ई 320-335 के आसपास सगृहित या सवर्धित हुए, क्यों कि इन्होंने गुप्तो की ओर सकेत तो किया है किन्तु गुप्त राजाओ के नाम नहीं लिये हैं। आज के रूप मे ये दोनों (वायु एव ब्रह्माण्ड) पुराण विकास की तीसरी सीढी मे ही रखे जाते हैं। महापुराणो मे अधिकाश 5 वीं या छटी शती और 9 वीं शती के बीच मे प्रणीत हुए या पूर्ण किये गये। यह है पुराण साहित्य के विकास की चौथी सीढी। उपपुराणो का सग्रह 7 वीं या 8 वीं शताब्दी के आरंभ से हुआ और उनकी सख्या 13 वीं शती तक या इसके आगे तक बढती गयी। यह है पुराण साहित्य के विकास की अंतिम सीढी। इस प्रकार हम देखते है कि पुराणों ने हिंदु समाज को ईसा के पूर्व की शतियों के कुछ उपरान्त से 17 वीं या 18 वीं शती तक किंबहुना आज भी प्रभावित किया हुआ है। नवीं शती के उपरान्त कोई अन्य महापुराण नहीं प्रकट हुए किन्तु अतिरिक्त विषयो का समावेश कुछ पुराणो में होता रहा, जिसका सबसे बुरा उदाहरण है भविष्य पुराण का तृतीय भाग, जिसमे आदम एव ईव, पृथ्वीराज एव जयचन्द्र, तैमूर, अकबर, चैतन्य, भट्टोजी, नादिरशाह आदि की कहानियाँ भर दी गयी हैं। पुराण शब्द ऋग्वेद मे एक दर्जन से अधिक बार आया है। वहा यह विशेषण है और इसका अर्थ है प्राचीन, पुरातन या वृद्ध। जब पुराण प्राचीन कथानको वाले ग्रन्थ का द्योतक हो गया तो "भविष्यत् पुराण" कहना स्पष्ट रूप से आत्मविरोध (या वदतोव्याघात) का परिचायक हो गया। किन्तु इस विरोध पर ध्यान नहीं दिया गया।" (भारत रत्न म म डॉ पाडुरग वामन काणे कृत धर्मशास्त्र का इतिहास। हिन्दी अनुवाद चतुर्थ भाग पृ 397-98)

2 "पुराणोक्त धर्म"

पुराणों का वेदों से दृढ संबध है। प्राय सभी पुराण तथा उपपुराण वेदानुकूल हैं। इसी कारण सनातन धर्मियों के प्रत्येक धार्मिक कृत्य के प्रारंभ में श्रुतिस्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं कर्म करिष्ये" यह सकल्पवाक्य उच्चारित होता है। वायुपुराण मे ऐसा बलपूर्वक कहा है कि

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सागोपनिषदो द्विज । न चेत् पुराण सविद्याद् नैव स स्याद् विचक्षण ।। 1-200 ।।

अर्थात् जो वैदिक विद्वान चारों वेदों का, उनके छ अगों एव उपनिषदों के साथ ज्ञान प्राप्त करता है, किन्तु वह पुराणों

का ज्ञान नहीं प्राप्त करता, तो वह 'विचक्षण' अर्थात मर्मज्ञ नहीं होगा। यही भाव अन्य पुराणो में भी व्यक्त किया गया है। इस का यही तात्पर्य है कि वेदों में प्रतिपादित ज्ञानकाण्ड एवं कर्मकाण्ड का मार्मिक ज्ञान देने वाले ग्रंथ पुराण ही है। बौद्ध धर्म के ऱ्हासकाल में "जनता का आकर्षण पुराणोक्त धर्म की ओर बढ गया। पुराणोक्त धर्म सभी वर्णों एवं जातियों के लिए आचरणीय होने के कारण, वह एक दृष्टि से भारत का राष्ट्रीय धर्म सा हो गया। पुराणों ने बुद्ध को भगवान् विष्णु के दस अवतारों में राम कृष्ण इत्यादि विभूतियो के साथ पूजनीय माना। बौद्ध धर्म के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसे प्राणभूत सिद्धान्तो को अपने धर्मविचारो मे अग्रक्रम देने के कारण तथा उनके साथ भगवद्भक्ति का परमानंददायक मुक्तिसाधन सभी मानवमात्र के लिये आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करने के कारण इस देश की बौद्ध मतानुयायी बहुसख्य जनता पुराणोक्त धर्म के प्रति आकृष्ट हो गयी। भारत के बाहर भी अनेक देशो के सास्कृतिक जीवन पर रामायण एवं महाभारत का गहरा प्रभाव पडा। जावा, सुमात्रा, काम्बोडिया जैसे सुदूर पूर्ववर्ती देशों मे बौद्ध धर्म के ऱ्हास के साथ इस्लाम का प्रभाव बढने पर भी, उन देशों की नृत्य, नाट्य आदि कलाओ मे आज भी रामायण-महाभारत जैसे श्रेष्ठ पुराण सदृश्य ग्रथों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारत के मध्ययुगीन इतिहास मे इस्लामी आक्रमको के घोर अमानवीय अत्याचारो के कारण इस देश के वैयक्तिक पारिवारिक एव सामाजिक जीवन मे जो भी धार्मिकता जीवित रह सकी, उसका स्वरूप "पुराणोक्त" ही था। इस काल में यज्ञ-यागात्मक वेदोक्त कर्मकाण्ड का तथा तान्त्रिक क्रियाओ का पुराणोक्त धर्मविचारो का प्रभाव, वैदिक कर्ममार्ग तथा बौद्धिक नीतिमार्ग पर पडा और प्राय सारा भारतीय समाज पुराणोक्त धर्मानुगामी बना। ब्राह्मणो के धार्मिक कृत्यो मे वैदिक मन्त्रो के साथ पौराणिक मत्र भी व्यवहृत होने लगे। शूद्रो तथा स्त्रियो को रामायण, महाभारत एव अन्य पुराणो के पढने का अधिकार पुराणोक्त धर्म के पुरस्कर्ताओं ने दिया। साथ ही अन्य वर्णियो के समान देवपूजा करने एव अपने व्रतो एव उत्सवो मे पौराणिक मन्त्रो का प्रयोग करने का भी अधिकार उन्हे मिला। अर्थात् इस विषय मे कुछ धर्मशास्त्रियो ने अपने अन्यान्य मत बाद मे व्यक्त किये हैं।

वेदो, जैमिनिसूत्रा, वेदान्तसत्रो जैसे प्राचीन धर्मग्रन्थों ने इस बात पर कभी विचार नहीं किया कि स्त्रिया एव शूद्र किस प्रकार उच्च आध्यात्मिक जीवन एव अंतिम सुदर गति प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने स्त्रिया और शूद्रो को वेद उपनिषदो के अध्ययन का अनधिकारी माना है। इस कारण शूद्र समाज का ध्यान भगवान् बुद्ध के धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। पुराणो ने सर्वप्रथम प्राचीन परपरागत सकुचित एव कृपण दृष्टिकोण को परिवर्तित किया। "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत ससिद्धि लभते नर" अथवा यत प्रवृत्तिर्भूताना येन सर्वमिद ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव" (गीता- 18/45-46) इस प्रकार के भगवद्गीता के वचनो मे पुराण-धर्म का सारसर्वस्व बताया गया है। एकादशीव्रत, श्राद्धविधि, कृष्णजन्माष्टमी जैसे सामाजिक महोत्सव, तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान, नामजप, अतिथिसत्कार, अन्नदान, जैसे साधारण से साधारण व्यक्ति को आचरणीय धार्मिक विधि और सबसे अधिक परमात्मा की सद्भाव पूर्ण अनन्य भक्ति इन पर अत्यधिक बल देकर पुराणो ने भारत के परपरागत धर्म मे स्पृहणीय परिवर्तन किया और उसे सर्वव्यापक स्वरूप दिया। धर्माचरण के इन विधियो का महत्त्व सैकडो आख्यानो, उपाख्यानो एव कथाओं द्वारा सामान्य जनता को समझाया। पुराणोक्त धर्म के भक्ति सिद्धान्त ने हिंदुसमाज के सभी दलो को प्रभावित किया। बौद्धो के महायान सम्प्रदाय ने तथा जैन सप्रदायो ने भी इस भक्ति सिद्धान्त का स्वागत किया। इस्लाम एव ईसाई धर्म मे भी भक्तिवाद का महत्त्व बताया गया है, परतु उस भक्ति का स्वरूप सकुचित तथा असहिष्णु सा है। पुराणोक्त भक्ति नवविधा है और उसमे उपास्य देवता के विषय मे अनाग्रह है।

"आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्। सर्वदेवनमस्कार केशव प्रतिगच्छति।। अथवा

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। (गीता- 9/23)

इस अर्थ के अनेक औदार्यपूर्ण वचन पुराण ग्रन्थो मे मिलते है जिनके द्वारा पुराणोक्त भक्तिमार्ग की व्यापकता व्यक्त होती है। इस उदारता या व्यापकता का मूल ऋग्वेद के

एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ।।

अर्थात् सत् तत्त्व एक मात्र है, विद्वान् लोग उसे अग्नि, यम, मातरिश्वा (वायु) इत्यादि अनेक नामों से पुकारते है इस मन्त्र मे बताया जाता है।

3 "पुराणोक्त आख्यान"

पुराण वाङ्मय का विस्तार एव उसके अन्तर्गत आये हुए विषयो के प्रकार, सक्षिप्त परिचय के लिए भी एक प्रदीर्घ विषय होता है। प्रस्तुत कोश मे यथास्थान सक्षेपत पुराणो का परिचय दिया गया है। यहा हम केवल पुराणान्तर्गत आख्यानों एव कथाओं का यथाक्रम सकेतमात्र करते हैं। परपरानुसार पुराणो का जो क्रम माना जाता है तदनुसार यहां सकेत दिया गया है। पुराणों की श्लोकसख्या विवाद्य है, परतु अध्यायों की सख्या निश्चित सी है। अत यहा अध्याय-सख्या का निर्देश किया है।

1) **ब्रह्मपुराण-कुल अध्याय-245 :**

1) पार्वती उपाख्यान (अध्याय 30-50)

2) श्रीकृष्ण चरित्र (अध्याय 180-212)

2) **पद्मपुराण-कुल अध्याय-641 :**

1) समुद्रमंथन, 2) वृत्रासुरसग्राम, 3) वामनावतार, 4) मार्कण्डेय एव कार्तिकेय की उत्पत्ति, 5) राम-चरित्र 6) तारकासुरवध, 7) स्कन्द-विवाह, 8) विष्णु-चरित्र (सृष्टिखंड पचमपर्व), 9) सोमशर्मा की कथा, 10) सकुला की कथा, 11) च्यवन का आख्यान (भूमिखंड), 12) शकुन्तलोपाख्यान, 13) उर्वशी पुरुरवा-उपाख्यान, (स्वर्गखड), 14) रामायण कथा, 15) शृगी ऋषि की कथा, 16) उत्तररामचरित्र की कथा, 17) भागवत महिमाख्यान (पातालखड), 18) रामकथा, 19) कृष्णकथा।

3) **विष्णु पुराण-कुल अध्याय-126 :**

1) ध्रुव-प्रह्लाद चरित्र, 2) अनेक काल्पनिक कथाए (प्रथम अश), 3) राजा भरत की कथा, 4) उर्वशी- पुरुरवा आख्यान, 5) ययाति कथा, 6) महाभारत की कथा, 7) रामचरित्र (तृतीय अश), 8) श्रीकृष्ण चरित्र (पचम अश)

4) **वायुपुराण-कुल अध्याय-112 :**

1) कृष्ण-राधा-चरित्र (अ 104) 2) गदाधर (विष्णु) आख्यान (अ 105-112)

5) **भागवत पुराण— कुल अध्याय-335 :**

1) शुकदेव की कथा, 2) परीक्षित का आख्यान, 3) नारद के पूर्वजन्म की कथा, 4) महाभारत युद्ध की कथा, द्रौपदी के पुत्रों की हत्या, 5) परीक्षित जन्म कथा, 6) यादवो का सहार, 7) श्रीकृष्ण का परमधाम गमन (स्कन्द 1)। 8) कच्छपावतार कथा, 8) नृसिहावतार कथा, (स्कध 2)। 9) वराह अवतार की कथा, 10) हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथा, 11) कर्दम-देवहूति की कथा (स्कन्ध 3)। 12) सती की कथा, 13) ध्रुव की कथा, 14) राजा वेन की कथा, 15) राजा पृथु की कथा, 16) पुरजनोपाख्यान (स्कन्ध 4)। 17) प्रियव्रत चरित्र, 18) आग्नीध तथा राजा नाभि का चरित्र, 19) ऋषभदेव की कथा, 20) भरतचरित्र, 21) गगावतरण की कथा (स्कन्ध 5)। 22) अजामिल की कथा, 23) दक्षपुत्रो के विरक्ति की कथा, 24) विश्वरूप कथा, 25) दधिचि ऋषि की कथा, 26) वृत्रासुरवध, 27) चित्रकेतु की कथा, 28) हिरण्यकशिपु की कथा, 29) प्रह्लाद चरित्र (स्कन्ध 7)। 30) गजेन्द्र उपाख्यान, 31) समुद्रमथन एव मोहिनी अवतार की कथा, 32) राजा बलि की कथा, 33) वामन चरित, 34) मत्स्यावतार की कथा, 35) राजा सुद्युम्न की कथा, 36) च्यवन ऋषि की कथा 37) नाभाग और अबरीष की कथा, 38) मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा, 39) राजा त्रिशकु और हरिश्चन्द्र की कथा, 40) सगर का चरित्र) 41) भगीरथ का चरित्र, 42) राम चरित्र, 43) परशुराम का चरित्र, 44) ययाति का चरित्र, 45) दुष्यन्त-शकुन्तलोपाख्यान, 46) भरत का चरित्र 47) राजा रन्तिदेव की कथा (स्कन्ध 9)। 48) कृष्णजन्म की कथा, 49) पूतनावध कथा, 50) शकट-भजन एव तृणावर्त की कथा, 51) यमलार्जुन कथा, 52) वत्सासुर एव बकासुर का वध, 53) अघासुर वध, 54) ब्रह्माजी के मोह की कथा, 55) धेनुकासुर का वध, 56) कालियवध की कथा, 57) प्रलबासुर वध, 58) दावानल मे गोपरक्षण, 59) गोवर्धनधारण, 60) शखचूड वध, 61) अरिष्टासुर वध, 62) कसवध, 63) रुक्मिणी स्वयवर, 64) शम्बरासुरवध, 65) जाम्बवती एव सत्यभामा से विवाह, 66) श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहो की कथाए, 67) उषा-अनिरुद्ध कथा, 68) राजा नृग की कथा, 69) साम्बविवाह की कथा, 70) जरासध वध, 71) शिशुपाल वध, 72) सुदामा की कथा (स्कन्ध-10)। 73) अवधूतोपाख्यान, 74) यदुवश का नाश, 75) श्रीकृष्ण का परमधाम गमन (स्कन्ध-11)। 76) मार्कण्डेय आख्यान (स्कन्ध-12)।

6) **नारदपुराण — अध्याय संख्या पूर्वखंड-125 + उत्तरखंड-82 .**

इस पुराण मे मुख्यतया अनेक तीर्थक्षेत्रो का माहात्म्य, देवताओ के योग, धर्माचार आदि का प्रतिपादन अधिक मात्रा मे है। केवल गंगावतरण कथा तथा धर्माख्यान इसमे उल्लेखनीय हैं।

7) **मार्कण्डेय पुराण — अध्याय संख्या-137 ·**

1) इक्ष्वाकुचरित, 2) तुलसीचरित, 3) रामकथा, 4) नहुष कथा, 5) ययातिकथा, 6) अग्नि, सूर्य आदि वैदिक देवताओं के आख्यान, 7) हरिश्चन्द्र आख्यान, 8) दत्तात्रेय अवतार कथा, 9) मदालसा, 10) ऋतुध्वज तथा अलर्क के आख्यान (अध्याय-44 तक)। 10) दुर्गासप्तशती (अर्थात भगवती का चरित्र) अध्याय 41-92)। 11) नाभाग, करधम, मरुत्त, नरिष्यत इत्यादि महापुरुषों के चरित्र, 12) श्रीकृष्ण चरित्र, 13) मार्कण्डेय चरित्र (अध्याय-93-137)।

8) **अग्निपुराण — (अध्याय संख्या-383) :**

1) मत्स्य, कर्म, वराह आदि अवतारो का वर्णन, 2) रामायण की कथा, 3) श्रीकृष्ण का चरित्र, 4) महाभारत आख्यान, 5) बुद्ध तथा कल्कि अवतार (इस पुराण में शास्त्रज्ञान अधिक विस्तार से निवेदित किया है। "आग्नेये ही पुराणेऽस्मिन् सर्व विद्या प्रतिष्ठिता (385-25) यह स्तुतिवचन यथार्थ है।

9) **भविष्य पुराण — अध्याय संख्या पूर्वार्ध 41 + उत्तरार्ध 171 .**

1) नागपचमी व्रत कथा, 2) सूर्यमाहात्म्य की कथा। इसमे अनेकानेक राजाओ का वर्णन है जो रानी व्हिक्टोरिया तक जाता है।

10) **ब्रह्मवैवर्त पुराण (या शिवपुराण) : अध्याय संख्या-276 :**

1) उषाहरण की कथा, 2) नारद जन्म कथा (ब्रह्मखण्ड), 3) सरस्वती, गगा, लक्ष्मी मे कलह, 4) गगोपाख्यान, 5) गगाविष्णु विवाह कथा, 6) वेदवती की कथा, 7) तुलसी कथा, 8) सावित्री कथा, 9) समुद्रमथन आख्यान, 10) दुर्गोपाख्यान, 11) बुद्धजन्म कथा, 12) समाधि वैश्य की कथा (प्रकृतिखड), 13) पार्वती की कथा, 14) स्कन्द एव गणेश के जन्म की कथा (प्रस्तुत पुराण में गणेश को श्रीकृष्ण परमात्मा का अवतार कहा है), 15) गजानन की कथा, 16) कार्तवीर्य की कथा, 17) परशुराम की कथा (गणपति खड), 18) श्रीकृष्ण की बाललीला, 19) तिलोत्तमा का आख्यान, 20) शिवपार्वती विवाह कथा, 21) कसवध कथा, 22) रुक्मिणी स्वयवर कथा, 23) मदनजन्म (श्रीकृष्णजन्म खड)

11) **लिंगपुराण— अध्याय संख्या .- पूर्वार्ध-108 + उत्तरार्ध 55 .**

1) दधीच क्षुप का आख्यान, 2) नन्दी की कथा, 3) शिव के 28 अवतार

12) **वराहपुराण— अध्याय संख्या 218**

1) गणेश जन्म की कथा, 2) नचिकेता का उपाख्यान, 3) द्वादशी माहात्म्य की कथा, (इस पुराण मे विष्णु स्तोत्रों एव पूजाविधियो का सग्रह अधिक मात्रा मे है।

13) **स्कन्द पुराण**

यह पुराण सनत्कुमार सूत, शकर, वैष्णव, ब्राह्म तथा सौर नामक 6 सहिताओ एव माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, रेवा, तापी और प्रभास नामक सात खडो में विभाजित है। श्लोक सख्या है 81 सहस्र। 1) दक्ष यज्ञ विध्वसन, 2) समुद्रमथन, 3) वृत्रासुरवध, 4) बलिबन्धन, 5) शिवगौरी विवाह, 6) कार्तिकेय जन्म, 7) तारकासुरवध, 8) शिवपार्वती की द्यूतक्रीडा, 9) कुपित शकर का वनगमन (केदारखड)। 10) अप्सराओ का उद्धार, 11) पार्वती जन्म कथा, 12) सोमनाथ माहात्म्य, कौरवपाण्डव युद्ध, 13) महिषासुरवध, 14) वेकटाचल माहात्म्य, 15) सीतापहरण कथा, 16) छायारूप सीता (माहेश्वर खडान्तर्गत कौमारिका खड)। 17) तुलसीविवाह, 18) मदनदहन कथा, 19) कार्तिकेय जन्म कथा, 20) भू-वराह आख्यान (वैष्णवखड)। 21) सीमन्तिनी भद्रायु का आख्यान, 22) शिवगौरी विवाह, 23) कार्तिकेय एव श्रियाल राजा का आख्यान (ब्रह्मोत्तर खड)। 24) पुरुरवा-उर्वशी कथा, 25) पद्मावती की कथा, 26) समुद्रमथन कथा, 27) माधाता की कथा, 28) सत्यनारायण की कथा (रेवा खड)।

14) **वामन पुराण . अध्याय संख्या 95**

1) शिव पार्वती चरित्र, 2) नर-नारायण उत्पत्ति, 3) वीरभद्र की उत्पत्ति, 4) मदनदहन कथा (अध्याय 5-6)। 5) देव-दानव युद्ध, 6) अधकासुर की कथा, 7) सुकेशी कथा, 8) महिषासुर कथा (अध्याय 7-20)। 9) उमा का जन्म, 10) बल आख्यान (अध्याय 21-42)। 11) वेन चरित्र 12) शिवपार्वती विवाह, 13) विनायक की उत्पत्ति, 14) चड-मुड वध कथा, 15) कार्तिकेय जन्म, 16) तारकोपाख्यान, 17) दडोपाख्यान, 18) चित्रागदाविवाह, 19) जभासुरवध, 20) अधक पराजय, 21) मरुतो की उत्पत्ति, 22) कालनेमिवध (अध्याय 43-73)। 23) धुधुदैत्य पराजय, 24) पुरूरवा का आख्यान, 25) श्रीराम-चरित्र, 26) गजेन्द्रमोक्ष कथा (अध्याय 74-88)। 27) वामनावतार-चरित्र (अध्याय 89-95)।

15) **कूर्मपुराण— अध्याय संख्या-पूर्वभाग 58 + उत्तरभाग 46 :**

1) शकर चरित्र, 2) दक्षयज्ञविध्वस, 3) श्रीकृष्णचरित्र, 4) व्यास-जैमिनि कथा, (पूर्वभाग)

16) **मत्स्य पुराण— अध्याय संख्या . 291 :**

1) प्रलय काल तथा मनु-मत्स्य कथा, 2) पृथुचरित्र, 3) स्कन्दचरित्र, 4) तारकासुर वधोपाख्यान, 5) ययाति चरित्र

17) **गरुड पुराण— अध्याय संख्या पूर्वखंड 221 + उत्तर खंड 35 .**

1) कृष्णलीला (अ 144)। 2) दशावतारो की कथाए, 3) दक्ष की उत्पत्ति, 4) सती की उत्पत्ति

18) **ब्रह्माण्ड पुराण— अध्याय संख्या-109 :**

1) कृष्णलीला, 2) रामायण की कथा, 3) परशुराम की कथा (अध्याय 21-27)। 4) गगावतरण की कथा (अ 47-57)। 5) भडासुरवधकथा, 6) ललितादेवी उपाख्यान।

सभी पुराणो मे इन कथाओं के अतिरिक्त अनेक सवादों मे तीर्थक्षेत्रों, देवताओ, नदियो, पर्वतो आदि का माहात्म्य, देवता स्तोत्र अनेक शास्त्रों के उपदेश, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, इत्यादि विविध विषयो का प्रतिपादन उनकी अपनी विशिष्ट शैली में किया है। भारतीय सस्कृति तथा परम्परा का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से जिज्ञासु को कम से कम किसी एक पुराण का ठीक अध्ययन करना आवश्यक है। आधुनिक विद्वानो ने पुराण का समय, रचनास्थान, श्लोकसख्या, पौर्वापर्य, ऐतिहासिक सामग्री, भूगोलज्ञान, इत्यादि, विविध दृष्टि मे पुराणो का परिशीलन किया है, परतु उनके प्रतिपादन मे कहीं भी एकवाक्यता नहीं दिखाई देती। सभी विषयो मे विद्वानो के मतभेदों के कारण किसी भी विषय के सबध मे निश्चित कुछ कहना अशक्य है।

4 "रामायण और महाभारत"

भारतीय सस्कृति के विकास तथा गठन में पुराण वाङ्मय का योगदान जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही, किंबहुना उससे भी अधिक मात्रा में रामायण और महाभारत रूपी इतिहास वाङ्मय का योगदान माना जाता है। भारत के राष्ट्रीय धर्म तथा नैतिक मूल्यों का यथोचित ज्ञान आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषों को, पुराणों एव रामायण महाभारत के द्वारा इतनी उत्कृष्ट रीति से हुआ है कि उसका परिणाम यहां की जीवन प्रणाली में शाश्वत सा हो गया है। श्रुति-स्मृति से भी पुराणों एव रामायण महाभारत रूप इतिहास की कथाओं द्वारा प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तो का प्रभाव अखिल भारत भर में, सभी पथोंपपथो एव जाति-उपजातियों में विभाजित हिन्दू समाज पर चिरकाल तक रहगा इसमे संदेह नहीं।

रामायण महाभारत का विस्तार पुराणग्रथो के समान भरपूर है तथा उनमें आधिदैविक अद्भुतता का अश भी पुराणों के समान पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। तथापि इन दो महाग्रथो की गणना पुराणों या उपपुराणों में नहीं होती। इन दोनों ग्रथों का स्वरूप पौराणिक शैली मे लिखित ऐतिहासिक महाकाव्यो जैसा है। रामायण तो "आदिकाव्य" ही माना गया है और उसके रचिता महर्षि वाल्मीकि को "आदिकवि" कहा गया है। ससार का कोई भी महाकाव्य इस महाकाव्य के समान, उनके अपने राष्ट्र मे सर्वमान्य नहीं हुआ है। वाल्मीकि रामायण की प्रस्तावना मे प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव ने वाल्मीकि ऋषि को अभिवचन दिया है कि

यावत् स्थास्यन्ति गिरय. सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

-इस धरती पर पर्वत और नदियाँ जब तक रहेंगी, तब तक रामायण की कथा सर्वत्र प्रचारित होती ही रहेगी।

ब्रह्माजी का यह अभिवचन आज तक सत्य हुआ है और निःसंदेह आगे भी होता रहेगा। बारह वीं शती में तमिल भाषा में इस महाकाव्य का प्रथम अनुवाद हुआ, उसके बाद हिंदुस्थान की सभी प्रादेशिक भाषा में रामायण के अनुवाद और रामायण पर आधारित उत्तमोत्तम काव्य ग्रथ निर्माण हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी का, नीति, धर्म एव तत्त्वज्ञान-प्रचुर महाकाव्य रामचरित मानस ई 17 वीं शती के पूर्वार्ध मे अवधी भाषा मे निर्माण हुआ, जो समस्त हिंदीभाषी प्रदेश में वेदतुल्य पवित्र माना जाता है। उत्तर भारत के लोकनाट्य मे "रामलीला" के प्रयोग अत्यत लोकप्रिय हैं। सदियो से लाखों की संख्या में जनता "रामलीला" का आनद लूट रही है। रामायण के महावीर हनुमान इस राष्ट्र के सकटमोचक ग्रामदेवता हैं। कल्हण की राजतरंगिणी में काश्मीर के राजा दामोदर की आख्यायिका में कहा है कि राजा को किसी शाप के कारण सर्पयोनि मे जाना पडा। उस अवस्था में राजा ने एक ही दिन मे सपूर्ण रामायण का श्रवण किया, तब उसको मुक्तता प्राप्त हुई। श्रीमद्भागवत मे (स्कन्ध 11 अध्याय 5) कलियुग की उपास्य देवता के नाते श्रीरामचद्र का निर्देश किया है। केवल श्रीराम ही नहीं तो रामायण ग्रथ भी उपासना का विषय हुआ है। अनेक उपासक अपनी उपासना में सुदरकाड का पारायण करते हैं और उसमें के श्लोकों का मत्रवत् विनियोग करते है। मानव जीवन के शाश्वत दिव्यादर्श चित्रित करने की प्रेरणा से महर्षि वाल्मीकि ने रामचरित्र विषयक अपने महाकाव्य की रचना की। इसकी अपूर्वता के कारण अतिप्राचीन काल से आज तक समस्त रसिक वर्ग ने इसे शिरोधार्य "आदिकाव्य" माना। इस आदिकाव्य का धीरोदात्त नायक, मानवी जीवन का ऊर्जस्वल आदर्श होने के कारण स राष्ट्र में परमपूज्य "धर्मपुरुष" माना गया। "रामो विग्रहवान् धर्म" यह सुभाषित सर्वमान्य हुआ और वाल्मीकि रामायण इस हिंदुराष्ट्र के समस्त सुशिक्षित एव अशिक्षित जनता का एक प्रमाणभूत धर्मग्रथ हो गया है। महर्षि वाल्मीकि ने अपने इतिहासात्मक महाकाव्य में दैवी और आसुरी सपदा का शाश्वतिक संग्राम इतने मनोरम स्वरूप में चित्रित किया है कि उसे पढ कर "रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्" (राम सीता लक्ष्मण आदि के समान अपना वर्तन रखना चाहिए न कि रावण कुंभकर्ण आदि असुरों के समान) यह प्रेरणा रामायण का श्रवण मनन करने वाले प्रत्येक सुबुद्ध व्यक्ति के अतःकरण में स्वयमेव अकुरित होती है।

अपने इस राष्ट्र के ऐतिहासिक एव अर्वाचीन सभी सात्त्विक सत्पुरुषो का स्वाभाविक व्यक्तिमत्त्व रामायणीय आदर्शवाद के कारण बना हुआ है। इस देश के रीतिरिवाजो पर रामायणीय घटनाओ का दृढ प्रभाव पडा हुआ है। कहते हैं कि बिहार की कुछ देहाती जातियो मे आज भी ससुराल जाने के बाद लडकी फिर कभी मायके नहीं आती, ना वह मायके बुलाई जाती। इस सामाजिक रूढि का मूलकारण बताते हुए अपने बिहारीबधु रामायण का प्रमाण देते हैं। वे कहते हैं, "सीतामाई ससुराल गई तो फिर मायके नहीं आई"।

रामायण का प्रभाव हमारे हिंदु समाज पर के कितना गहरा हो चुका है इसके और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। रामायण हमारे राष्ट्रीय सामाजिक और पारिवारिक जीवन मे घुल मिल गया है। रामायण का प्रत्येक सात्त्विक व्यक्तिमत्त्व, हमारे लिए अपना निजी पारिवारिक व्यक्तिमत्त्व सा हुआ है, उन्हे जो अप्रिय था वह हमे अप्रिय है। रामायण के व्यक्तित्व हमारे लिए केवल वाङ्मयीन या साहित्यिक व्यक्तित्व नहीं है अपि तु उन्हे हमारे भावविश्व में पवित्रतम और प्रियतम स्थान प्राप्त हुआ है। भारतीय हिंदुओ के भावविश्व मे प्रभु रामचद्र को जो परमोच्च स्थान प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार भारत-बाह्य जिन देशों की जनता ने अपने भावविश्व मे उन्हे परमोच्च स्थान दिया है, वे देश एक दृष्टि से भारत की सांस्कृतिक चतु सीमा मे समाविष्ट हो जाते है। तिब्बत, खोतान, सयाम, जावा, बालिद्वीप, सिहलदीप इत्यादि पौरस्त्य राष्ट्रो मे, हिंदुस्थान के राष्ट्रीय धर्म का प्रचार न होते हुए भी प्राचीन कालसे आजतक रामकथा का महत्त्व सपूर्ण समाज मे मान्य हुआ है।

5 रामकथा का विश्वसंचार

ई तीसरी सदी से चीन देश में बौद्ध साहित्य के द्वारा रामकथा का परिचय हुआ। तिब्बत मे आठवीं शती मे, खोतान मे नौवी शती मे, हिंदचीन एव कांबोडिया मे छठीं शती म, जावा मे पाचवीं शती मे, मलाया मे सत्रहवीं शती मे और बर्मा मे अठराहवीं शती म, रामायण कथा का प्रथम परिचय हुआ। राची के ईसाई विद्वान डॉ कामिल बुल्के ने अपने शोधप्रबध मे इस सबध मे भरपूर जानकारी दी है। डॉ बुल्के के प्रबध मे अन्यान्य पौरस्त्य देशो मे प्रचलित रामायण ग्रथो के नाम इस प्रकार दिय है -

काम्बोडिया रयाम कर (राम कीर्ति) यह ग्रथ प्राचीन ख्मेर भाषा मे लिखा है।

सयाम रामकियन और रामजातक। बर्मा रामयत् रामयागन् (लेखक यूतो)। मलाया हिकायत सेरिराम। जावा रामकेकेलिंग, रामायण काकाविन (लेखक योगीश्वर), तिब्बत रामायण। इन परदेशीय रामायणो मे मूल वाल्मीकीय रामकथा मे यत्र तत्र परिवर्तन किया है। भारत मे भी बौद्ध और जैन परम्परा मे प्रचलित रामकथा मे काफी हेर फेर किया गया है। इन देशों की शिल्पकला, चित्रकला, नृत्य-नाट्यकला इत्यादि सांस्कृतिक अगो पर रामचरित्र का भरपूर प्रभाव दिखाई देता है। सयाम का प्राचीन राजा सुमन मुनि (अथवा आटग) ने जो नई राजधानी निर्माण की, उसको नाम दिया अयोध्या। वह राजा अपने लिए "रामाधिपति" यह उपाधि धारण करता था। जावा मे नौवीं शती मे "परमवनम्" (ब्रह्मवन) में एक शिवमदिर का निर्माण हुआ जिस पर सर्वत्र रामायणीय घटनाओ का शिल्पाकन और चित्राकन किया है। 12 वीं शती मे कांबोडिया के राजा सूर्यवर्मा ने अगकोरवाट मे एक अतिविशाल मदिर का निर्माण किया। इस मदिर मे सर्वत्र रामायण (और साथ मे महाभारत तथा हरिवंश) की घटनाओं को शिल्पाकित किया है। सयाम के रामनाटको का प्रभाव 18 वीं शती मे बर्मा के नाट्य प्रेमियो पर भी पड़ने लगा। महर्षि वाल्मीकि के प्रति कृतज्ञता पूर्ण भक्तिभाव व्यक्त करने के लिए 7 वीं शताब्दी म हिंदचीन के राजा प्रकाशधर्म ने आदिकवि वाल्मीकि को भगवान् विष्णु का अवतार मान कर, उनका विशाल मदिर निर्माण किया। भारत मे वाल्मीकि के ही "अवतार" माने गये। राजशेखर अपने बालरामायण (महानाटक) की प्रस्तावना म

"बभूव वल्मीकभव कवि पुरा, तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थित पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर ।।

इस श्लोक मे वाल्मीकि की जो कल्पित अवतार-परपरा बताई, तदनुसार भर्तृमेण्ठ, भवभूति और स्वय राजशेखर वाल्मीकि के "अवतार" थे। परतु यह अवातर-परपरा राजशेखर तर ही सीमित नहीं है। भारत के सभी प्रादेशिक साहित्यो के इतिहास में सपूर्ण मध्ययुगीन साहित्य पर, आध्यात्मिक दृष्टि से कवियो की रामभक्ति का एव वाङ्मयीन दृष्टि मे मूल वाल्मीकि के आदिकाव्य का, इतना गहरा सस्कार दिखाई देता है कि, उस कालखण्ड मे भारत के सभी प्रदेशो मे मानो "वाल्मीकि के अवतार" ही प्रकट हुए थे। तामिल भाषा मे कम्ब रामायण, तेलगु मे रगनाथ रामायण और भास्कर रामायण, प्रेमानद और प्रीतमदास का गुजराती में रामायण, कन्नड भाषा मे पम्प रामायण, मलयालम मे एज्युतच्चन का अध्यात्मरामायण, बागला भाषा में कृतिवासा का रामायण, असमिया में माधवकदली का रामायण, उडिया भाषा म सारलादास तथा बलरामदास का रामायण, व्रज भाषा मे केशवदास की रामचद्रिका, अवधी भाषा में तुलसीरामायण, आधुनिक हिंदी म मैथिलीशरण गुप्त का साकेत काव्य, पंजाबी में गुरुगोविंदसिंह का गोविंद-रामायण, मराठी में सत एकनाथ का भावार्थ रामायण, श्रीधर का रामविजय, समर्थ रामदास का युद्धकाड, मोरोपत के 108 रामायण और नवकवि माडगूलकर का लोकप्रिय गीतरामायण इत्यादि रामायण ग्रथ उन उन

भाषाओं में अत्यत सर्वमान्य हुए हैं। उन प्रदेशों की जनता के अन्त.करण पर रामचरित्र विषयक ग्रथ के समान अन्य किसी भी ग्रंथ का प्रभाव नहीं पड़ा। ये सारे प्रादेशिक रामचरित्रकार महाकवि वाल्मीकि के "अवतार" ही मानने योग्य सत्कवि थे।

यूरोपीय भाषाओं में भारतीय भाषाओं के समान वाल्मीकि-रामायणपर आधारित काव्यग्रथ निर्माण नहीं हुए परतु वाल्मीकि रामायण के कुछ उल्लेखनीय अनुवाद हुए जैसे-

अंग्रेजी :- ग्रिफिथकृत छंदोबद्ध अनुवाद, एम.एन.दत्त कृत गद्यानुवाद (7 खड), रोमेशचद्र दत्त कृत सक्षिप्त पद्यानुवाद (रामायण, द एपिक ऑफ राम रेंडर्ड इन् टु इंग्लिश व्हर्स)।

इतालियन :- जी गोरेसी कृत, 4 विभाग, पैरिस में सन 1847-58 में प्रकाशित। ए. रौसेलकृत 3 विभाग-पॅरिस में सन् 1903-9 में प्रकाशित।

जर्मन :- एफ् रुकर्ट कृत सक्षिप्त पद्यानुवाद, रामायण विषयक शोध प्रबध- ए वेबर (उबेर डास रामायण), एच् याकोबी (डास रामायण) लुडविग (उबेर डास रामायण), ए बामगार्टनेर (डास रामायण), जे.सी.ओमन (दि ग्रेट इडियन एपिक्स), हॉपकिन्स (दि ग्रट एपिक ऑफ इडिया), विंटरनिट्स् (दि हिस्टरी ऑफ इडियन लिटरेचर) इन विद्वानो द्वारा लिखे इन प्रबधों मे राम कथा विषयक तथा रामायण काल विषयक जो अकल्पित तर्क उपस्थित किए गये, उनके कारण गत शताब्दी में रामायण के विषय में अनेक विद्वत्तापूर्ण शोध प्रबध भारत मे लिखे गये। अभी कुछ वर्ष पूर्व ब्रह्मीभूत श्रीकरपात्री महाराजद्वारा लिखित हिंदी प्रबंध सर्वत्र सम्मनित हुआ। रामायण विषयक परंपरावादी भारतीय दृष्टिकोण का समर्थ प्रतिपादन श्रीकरपात्रीजी ने किया है। सस्कृत भाषा में वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य रामायण भी लिखे गए जैसे अगस्त्य-रामायण, अध्यात्मरामायण अद्भुत-रामायण, आदिरामायण, आनंद-रामायण, चाद्ररामायण, भुशुडीरामायण, मजुलरामायण, मत्ररामायण, मैंदरामायण, सुब्रह्मरामायण, सुवर्चसरामायण, सौपद्यरामायण (या अत्रिरामायण) तीर्थरामायण, सौहार्द-रामायण स्वायभुवरामायण, और हेतुरामायण। इनमे रामकथा का स्वरूप अन्यान्य प्रकार का दिखाई देने के कारण कुछ विवाद अवश्य निर्माण हुए, परतु जनता की रामभक्ति अविचल रही। आज भी कुछ श्रद्धाहीन लेखक रामायण के विषय मे उलटी सीधी बाते मासिक पत्रिकाओ मे लिखते है परतु भारतीय जनता की रामभक्ति पर उसका विपरीत परिणाम नहीं हुआ और आगे भी नहीं होगा।

7 रामायणीय साहित्य

सस्कृत साहित्य मे रामचरित्र पर आधारित महाकाव्य, नाटक, चम्पू स्तोत्र इत्यादि काव्य प्रकारो मे अन्तर्भूत ग्रथों का प्रमाण बहुत ही बडा है। सपूर्ण ग्रथो की सूची यहा देना उचित नहीं, फिर भी सस्कृत वाङ्मय के केवल आधुनिक कालखड मे (अर्थात् 17 वीं शती के उपरात) लिखित ग्रथो म कुछ उल्लेखनीय ग्रथो की सूची यहाँ देते है, जिस से रामकथा का आकर्षण सस्कृत साहित्यिकों को कितनी अधिक मात्रा मे अखड रहा है इसका अनुमान हो सकेगा।

रामायणीय ग्रंथ	**- ग्रंथकार**		
रामायणसारसग्रह	अप्पय दीक्षित	रामकुतूहल	गोविंदसुत रामेश्वर
रामायणतात्पर्यनिर्णय	--"--	रामचरित	रघुनाथ
रामायणतात्पर्यसग्रह	--"--	--"--	विश्वक्सेन
रामायणसारस्तव	--"--	उदाराघव	चण्डीसूर्य
रामायणसारसग्रह	रघुनाथ नायक	कल्याणरामायण	शेषकवि
--"--	ईश्वर दीक्षित	भद्रादिरामायण	वीरराघव
रामायणकाव्य	मधुरवाणी	रामकथा-सुधोदय	श्रीशैल श्रीनिवास
मजुभाषिणी	राजचूडामणि दीक्षित	रामामृतम्	वेंकटरगा
(इसमे सपूर्ण रामकथा श्लेष गर्भ भाषा मे लिखी है)		यादवराघवीय	नरहरि
रामयमकार्णव	श्रीनिवासपुत्र वेंकटेश	रघुवीरवर्यचरित	तिरुमल कोणाचार्य
रामचद्रोदय	--"--	दशाननवध	योगीन्द्रनाथ
--"--	वेंकटकृष्ण (चिदबर निवासी)	रघुवीरचरित	सुकुमार
चित्रबंधरामायण	वेंकटमखी	सीतारामविहार	लक्ष्मण सोमयाजी
जानकीपरिणय	चक्रकवि	रामगुणाकर	रामदेव
सीतादिव्यचरित	श्रीनिवास	रामविलास	रामचद्र
गद्यरामायण	श्री निवासपुत्र वरदादेशिक	--"--	हरिनाथ
रघुवीरविजय	--"--	रामचद्रकाव्यम्	शम्भुकालिदास
रामायणसंग्रह	--"--	प्रसन्नरामायण	श्रीपादपुत्र देवरदीक्षित

रामचद्रोदय	कविवल्लभ	रामायणसग्रह	म म लक्ष्मण सूरि
राघवोल्लास	अद्वैतराम भिक्षु	रामाभ्युदय	अन्नदाचरण ठाकुर
--''--	पूज्यपाद देवानद	सगीतराघवम्	गगाधर कवि
बालराघवीय	शठगोपाचार्य	मथरादुर्विलसितम्	परमानद शर्मा
रमणीय-राघव	ब्रह्मदत्त	मारीचवधम्	-''--
अभिरामकाव्य	रामनाथ	मेघनादवधम्	--''--
रामकौतुक	रामकृष्णसुत कमलाकर	रावणवधम्	--''--
रामकथामृत	गिरिधरदास	सीतापरिणयम्	सूर्यनारायणाध्वरी
रामगुणाकर	रामदेव न्यायालकार	सीतास्वयवरम्	कामराज
रामविलासकाव्य	हरिनाथ	वैदेहीपरिणयम्	काशीनाथ
रामचरित	काशीनाथ	इत्यादि इत्यादि	
--''-	मोहनस्वामी	**''रामायणीय चम्पूकाव्य''**	
--''--	युवराज रामवर्मा	चम्पूराघवम्	आसुरी अनन्ताचार्य
रामलीलोद्यात	बाणेश्वरसुत रमानाथ	रामायणचम्पू	सुन्दरवल्ली
रामाभिषेकम्	केशव	चम्पूरामायण	सीतारामशास्त्री
रामकाव्य	रामानद तीर्थ	रघुनाथविजयचम्पू	कृष्णकवि
--''--	बालकृष्ण	रामचर्यामृतचम्पू	कृष्णय्यगार्य
रामाभ्युदयम्	वेंकटेश	रामचम्पू	बदलामूडी रामस्वामी
शितिकठ-रामायण	शितिकण्ठ	अमोघराघवचम्पू	विश्वेश्वरपुत्र दिवाकर
रघुवीरविलास	दामोदरसुत लक्ष्मण	कुशलव-चम्पू	वेंकटय्या सुधी
रघुपतिविजय	गोपीनाथ	रामकथा-सुधोदयचम्पू	देवराज देशिक
रामचद्रोदय	पुरुषोत्तम मिश्र	रामाभिषेकचम्पू	देवराज देशिक
--''--	रामदास	सीताविजयचम्पू	रामचद्र
रामचद्रमहोदय	सच्चिदानद	--''--	विश्वनाथ
रामरत्नाकर	मधुव्रत	रामाभ्युदयचम्पू	राम
रामरसामृत	श्रीधर	उत्तरकाण्डचम्पू	राघव
रघुनदनविलास	पात्राचार्य	उत्तरचम्पू	ब्रह्मपडित
त्रिक्रमराघवीय	नूतन कालिदास	-''--	राघवभट्ट
पौलस्त्य राघवीय	रामचद्र (पुल्लोलवशीय)	--''--	भगवन्त
श्रीरामविजय	अरुणाचलनाथ शिष्य	अभिनवरामायणचम्पू	लक्ष्मणदान्त
बालरामरसायन	कृष्णशास्त्री	रामायणचम्पू	रामानुज
ललितराघव	श्रीनिवास रथ	काकुत्स्थविजयचम्पू	वल्लीसहाय
जानक्यानदबोध	श्रीपतिगोविंद	सीताचम्पू	गुण्डुस्वामी शास्त्री
सीतारामाभ्युदयम्	गोपालशास्त्री	मारुतिविजयचम्पू	रघुनाथ
राघवचरित	आनद नारायण	आजनेयविजयचम्पू	नृसिह
राघवीयम्	राम पाणिवाद	उत्तरचम्पूरामायण	वेंकटकृष्ण/ इत्यादि।

रामकथा विषयक 30 से अधिक अर्वाचीन सस्कृत नाटको की नामावली इसी पर्यालोचनके नाट्य वाङ्मय विषयक प्रकरण मे दी है। अत उसका उल्लेख यहा आवश्यक नहीं है।

रामायण विषयक अर्वाचीन सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त प्राचीन या मध्ययुगीन काल में लिखित रामायणीय साहित्य का प्रमाण भी काफी बडा है। प्रस्तुत सस्कृत वाङ्मय कोश में यथास्थान उन सभी महत्त्वपूर्ण काव्यो, नाटको आदि का सक्षेपत परिचय दिया गया है।

7 रामराज्य

भारतीय धारणा के अनुसार आदर्श राज्य का पर्याय वाचक शब्द है रामराज्य। वाल्मीकीय रामायण के प्रारंभ में महाराजा दशरथ के राज्यशासन का वर्णन आता है जहां हम यह देखते हैं कि उस अयोध्यापति के राज्य के सभी प्रदेशों में अपार धनधान्य समृद्धि है, समाज के सभी घटक अपने अपने वर्णों तथा आश्रमों के आचार तथा तथा नीतिमर्यादाओं का अनुशासन स्वयं प्रेरणा से पालन करते है। राजा तथा उसके प्रमुख अधिकारी गण विनयसंपन्न होने के कारण यथा "राजा तथा प्रजा" इस न्याय के अनुसार प्रजाजन भी विनीत एवं मर्यादाशील हैं।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप। नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुत.।।

यह प्रजाजन का नैतिक और सास्कृतिक स्तर रामायण के अनुसार आदर्श माना गया है। वनवासी रामचद्र को वापस लौटाने के लिए स्वयं भरत उनके पास जाते हैं, तब श्रीरामचंद्रजी ने उन्हें राज्यव्यवस्था के संबंध में जो अनेकविध प्रश्न पूछे, उनमें स्वयं श्रीरामचंद्र जी की आदर्श राज्य की कल्पना हमारे लिए सुस्पष्ट होती है। लवणासुर का उपद्रव शान्त करने के लिये जब शत्रुघ्न के नेतृत्व में सेना देकर भेजा जाता है, तब श्रीरामचद्रजी उन्हें ऐसा सदेश देते हैं जिस में सुराज्य (अर्थात् रामराज्य) संवर्धन के लिए आदर्श सेना और आदर्श सेनापति के विषय में प्रतिपादन हुआ है। यह प्रतिपादन या मार्गदर्शन शाश्वत होने के कारण आज भी आदर्शवत् है। इसमें सैनिकों को यथोचित वेतन योग्य समय पर देने की महत्त्वपूर्ण सूचना भरत को भी दी गई है।

लोकमत का समादर यह आदर्श राज्य का एक प्रमुख लक्षण माना जाता है। वाल्मीकी के आदर्श राज्य की कल्पना में इस मूल्य का निर्देश यत्र तत्र मिलता है। महाराजा दशरथ ने अपनी वृद्धवस्था का विचार करते हुए जब अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को यौवराज्याभिषेक करने का निर्णय अन्तःकरण में लिया तब वह प्रजाजनों की अनुमति के बिना उस पर नहीं लादा गया। प्रजा के अन्यान्य स्तरों के प्रतिनिधियों की आम सभा में इस निर्णय पर विचार विमर्श हुआ और अन्त में प्रजाजनों की निरपवाद अनुमति मिलने पर ही श्रीराम के यौवराज्याभिषेक का निर्णय घोषित हुआ। महाराजा दशरथ जैसे आदर्श शासनकर्ता के शासन में ही प्रजाजनों से अथवा मत्रिमडल से विचार-विनिमय करने की पद्धति थी, इतना ही नहीं तो रावण के राज्य में भी श्रीराम से युद्ध करने के विषय पर, बिभीषण, कुम्भकर्ण, माल्यवान् प्रभृति अधिकारियों के साथ भरपूर विचार विमर्श होता है और उस में बिभीषण, कुम्भकर्ण और माल्यवान् रावण के निर्णय से अपनी असहमति कटु शब्दों में व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं।

रामायण के उत्तरकाण्ड में तो अत्यल्प विरोधी मत का भी अनादर आदर्श राज्य में नहीं होना चाहिए, यह महान् सिद्धान्त सीतात्याग के बारे में श्रीरामचद्रजी ने जो कठोर निर्णय लिया, उसमें दिखाई देता है। लोकमत का इतना आत्यतिक समादर किसी भी अन्य संस्कृति में नही हुआ था और न आगे होने की सभावना है।

आदर्श राज्य में सभी विद्याओं एव कलाओं की योग्य अभिवृद्धि के लिए राजाश्रय की अपेक्षा होती है। इस के लिए स्वयं राजा विद्यासपत्र और कलाप्रेमी होना चाहिये। अनपढ और कलाहीन शासक के द्वारा यह कार्य नहीं हो सकता। वनप्रयाण के समय श्रीरामचंद्र नें अपनी निजी सम्पत्ति का समर्पण विद्वानों को करने की सूचना लक्ष्मण को देते हैं, तब वेदादि विद्याओ की अन्यान्य शाखाओ का उनका सूक्ष्म ज्ञान हमे दिखाई देता है। उसी सम्पत्तिदान यज्ञ के समय, एक गरीब ब्राह्मण अपने परिवार का पोषण करने के लिये, श्री रामचद्रजी से द्रव्ययाचना करता है, तब मजाक मे उसे एक दण्ड देकर वे कहते है, यह दण्ड तू फेंक। वह जहा पडेगा वहा तक की सम्पत्ति तुझे मिलेगी। ब्राम्हण द्वारा फेंका गया दण्ड सरयू के तट पर जा पड़ा। प्रभु ने उस भूमर्यादा में जितना धन था उतना उसे दे दिया।

प्राचीन भारतीय सस्कृति में यज्ञ को असाधारण महत्त्व था। देवपूजा, दान और संगतिकरण (या समाज का सगठन) इन उद्देश्यों के लिए आदर्श राज्य में यज्ञविधि सम्पन्न होते थे। रामायण में महाराजा दशरथ ने पुत्रलाभ के हेतु पुत्रकामेष्टि यज्ञ का आयोजन वसिष्ठ ऋषि के नेतृत्व में किया था। दूसरा महान् अश्वमेघ यज्ञ स्वय प्रभु रामचद्र ने अपना सर्वंकष आधिपत्य सिद्ध करने के लिए राक्षससंहार के बाद किया था। इन दोनों यज्ञों का वर्णन पढने पर, आदर्श राज्य में लोगों के गुणों का, विद्वत्ता का, तथा विशिष्ट योग्यता का कितना समादर होना चाहिए, इस बात का ज्ञान हमें होता है। इस यज्ञसस्था का सरक्षण राज्यकर्ता का अपरिहार्य दायित्व माना जाता था। लोककल्याणार्थ देवताओं की कृपा सपादन करने के लिए विश्वामित्र जैसे तपस्वी ऋषि यज्ञ करते थे और ऐसे पवित्र कार्यों में विघ्न डालना, यह अपना कर्तव्य राक्षस (या राक्षसी वृत्ति के मानव) मानते थे। उनका संहार कर यज्ञसंस्था को सुरक्षित रखना आदर्श राजा का कर्तव्य माना जाता था। विश्वामित्र के यज्ञ के विघ्नों का निवारण करने के लिए दशरथ राजा से उनके प्राणप्रिय पुत्रों की मांग की गयी। आदर्श राजा ऋषिमुनियों के आदेश का भग नही करते थे। विश्वामित्र जैसे एक वनवासी तपस्वी का आदेश सार्वभौम सम्राट् दशरथ ने शिरोधार्य माना और अपने प्रिय पुत्रों को ऋषि के साथ सेना सहाय के बिना भेज दिया। रामायण की इस घटना में राज्यकर्ताओं के लिए कितना बडा सदेश भरा हुआ है।

जिस रामचंद्र ने विश्वामित्र के यज्ञ का संरक्षण किया, वही महापुरुष युद्ध काण्ड में रावणपुत्र मेघनाद के यज्ञ का विध्वस

करने का आदेश देता है। इस का कारण यज्ञ एक ऐसा आधिदैविक धर्मकार्य है जिसमें कर्ता को देवताओं की कृपा से दैवी सामर्थ्य का लाभ होता है। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे ब्राह्मण कुलोत्पन्न राक्षसों ने इसी दैवी सामर्थ्य की लिप्सा से कठोर तपश्चर्या और महान यज्ञ किये थ परंतु साधना से प्राप्त सामर्थ्य का विनियोग वे अपनी आसुरी संपदा के कारण, सज्जनो पर अत्याचार करने के लिए करने लगे थे। मेघनाद का वह यज्ञ फलद्रूप होता तो उस राक्षस का सहार करने का सामर्थ्य ससार भर में किसी के पास नहीं था। कर्म का अतिम परिणाम ही किसी भी कर्म का धर्मत्व अथवा अधर्मत्व सिद्ध करता है यह सदेश प्रभु रामचद्र जी के यज्ञरक्षण और यज्ञविध्वस के आचरण से हमें मिलता है।

रामायण का प्रत्येक व्यक्तित्व किसी न किसी गुण या अवगुण के प्रतीक सा हमें दिखाई देता है। उनमें दैवी संपद् और आसुरी सपद् से युक्त, मानव के दो प्रकार स्पष्ट रूप से व्यक्त होते हैं। भगवद्गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, "दैवी सपद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता"। याने देवी सपदा के गुण मोक्ष के लिये और आसुरी संपदा के अवगुण संसारबंधन के लिए कारणीभूत होते है। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी महनीय वाङ्मय कृतियों में दोनों सपदाओं का शाश्वत चित्रण कर विश्व को सन्देश दिया है कि "रामादिवत् वर्तितव्य न गवणादिवत्"।

रावण के आसुरी राज्य में बिभीषण एक अपवादात्मक व्यक्तित्व रामायण में मिलता है। रावण का सहोदर-सगा भाई-होते हुए भी इस की विवेकबुद्धि तामसी नहीं थी। उग्र तपश्चर्या के बाद प्रसन्न हुए भगवान् के समुख हाथ जोड़ कर वह प्रार्थना करते हैं कि, हे भगवान मेरा मन सदैव धर्मनिष्ठ रहे। मुझे सदैव तत्त्वज्ञान ही प्राप्त हो। भगवान ने बिभीषण की यह प्रार्थना पूर्ण की थी। उसी के कारण वह "कर्तुकर्तुम् अन्यथा कर्तुं समर्थ" भाई की राजसभा में निर्भयता से अपना विरोध उद्घोषित करता है। वैसे तो रामचद्रजी के अपार सामर्थ्य की कल्पना होने के कारण, कुम्भकर्ण, माल्यवान् जैसे सदस्यों ने भी रावण के पापकर्म का निषेध किया था, किन्तु असत्पक्ष का त्याग कर सत्पक्ष का स्वीकार करने का धैर्य, रावणसभा के सारे सदस्यों में से बिभीषण के अतिरिक्त अन्य किसी ने व्यक्त नहीं किया था। प्रत्यक्ष सहोदर का पक्ष एक असत्पक्ष है, यह निर्णय स्वयप्रज्ञा से ले कर, बिभीषण श्रीराम के सत्पक्ष मे प्रविष्ट हुए। इसमे रावण की कपटनीति का एक प्रयोग मानने वाले, रामपक्षीय नेताओं ने, बिभीषण के पक्षप्रवेश के बारे मे आशका व्यक्त की थी, परतु श्री रामचद्रजी ने शुद्ध अन्त करण से उसे (अपने घोर शत्रु के भाई को) अपना भाई माना और बिभीषण ने भी यह धर्मबन्धुत्व का नाता निरपवाद सभाला। प्रत्यक्ष युद्ध काल में ऐसे कुछ बिकट प्रसग उपस्थित होते थे कि उस समय अगर बिभीषण का सहाय न मिलता तो रामपक्ष की विजय असभव थी। पक्षनिष्ठा और सत्यनिष्ठा के सघर्ष मे सदसद्विवेक का उत्कृष्ट जीवनादर्श बिभीषण के चरित्र में हमें रामायण में दिखाई देता है। इस आदर्शभूत विवेकिता के कारण ही हिंदुओं के परपरागत प्रात स्मरण स्तोत्र में बिभीषण का नामस्मरण भारत भर में होता है। श्रीरामचद्रजी के सहकारियों में हनुमान् एक जैसे अद्भुत सहकारी थे जिनके सहकार्य के बिना सीता की खोज, लक्ष्मण के प्राणों का रक्षण और वानरों की सगठना होना असम्भव था। स्वय श्रीरामचद्रजी तो साक्षात् धर्म के प्रतीक थे ही (रामो विग्रहवान् धर्म) परतु उनका अदभुत अनुयायी भी उसी धर्म के अग (याने उत्कट भक्तियोग) का प्रतीक था। प्रतिकूल परिस्थिति मे नैष्ठिक व्रत का पालन करना ऋषिमुनियों को भी असभव होता है। परतु हनुमानजी ने यह भी योग्यता सिद्ध की थी। अपने परमश्रद्धेय नेता के आदेश का पालन करते हुए वे समुद्रोल्लघन करते हुए लका में पुहचे। उनका सारा प्रवास विघ्नमय था। उन सारे विघ्नों को उन्होंने परास्त किया। किन्तु अपरिचित सीता की खोज उस महानगरी मे करने के लिये, रावण का सारा अत पुर उन्हे रात के समय ढूढना पडा। अनेक सुंदर स्त्रियो को निद्रावस्था में अस्तव्यस्त पड़ी हुई निरखना पड़ा। यह कर्म उनके ब्रह्मचर्य व्रत के सर्वथा प्रतिकूल था। दूसरा कोई अविवेकी नैष्ठिक ब्रह्मचारी उनके स्थान में होता तो निद्रित स्त्रियों के मुखकमल निरखने का प्राप्त कर्म नहीं करता और स्वामिकार्य किये बिना वापस लौटता।

हनुमान् जी ने हजारों निद्रित स्त्रियों को निरखने के बाद अपना अन्त प्रेक्षण किया और देखा कि इस धर्मविरुद्ध कर्म के बाद भी अपना अन्त करण यथापूर्व शुद्ध है। जिस अधर्म कृत्य से अन्त करण निर्विकार रहता है वह वास्तव में अधर्मकृत्य नहीं होता किन्तु जिस धर्मकृत्य के कारण अन्त करण मे अहकार, दर्प, लोभ जैसे राजसी या तामसी विकार निर्माण होते है वह शास्त्रविहित होने पर भी वास्तव में धर्मकृत्य नहीं रहता। धर्म और अधर्म का महान् विवेक हनुमानजी के जीवन की इस विचित्र घटना से हमें मिलता है। महाभारतकार कहते हैं, "धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायास्" याने धर्म का सत्य स्वरूप गुहा में निहित पदार्थ के समान अगम्य है। महर्षि वाल्मीकिजी ने वह गुहागत धर्मतत्त्व अपने रामायण में इस प्रकार के अनेक प्रसंगों का चित्रण करते हुए विश्व के समुख रख दिया।

इसी प्रकार का धर्मनिर्णय ताटकावध के प्रसंग मे बताया जाता है। विश्वामित्र के यज्ञकर्म का विध्वंस करने का पाप करने वाली ताटका एक स्त्री थी। यज्ञशाला पर उसका आक्रमण होता है तब विश्वामित्र अपने बालवीर को उसका वध करने का आदेश देते हैं। रामचद्र की बाल्यावस्था होते हुए भी जन्मसिद्ध क्षत्रियत्व के कारण स्त्रीवध करना या न करना इस विषय

में उनके विशुद्ध अन्तःकरण में सन्देह निर्माण हुआ। उस घोर राक्षसी आक्रमण से वे विचलित तो नहीं हुए किन्तु सन्देह के कारण धनुष पर बाण नहीं चढ़ाते थे। उनकी उस सन्देहावस्था में विश्वामित्र के उपदेश द्वारा कर्म-अकर्म का विवेक महर्षि वाल्मीकि ने समाज को सिखाया।

रावण-बिभीषण के संबंध में जिस प्रकार विवेक और अविवेक का स्वरूप दिखाई देता है, उसी प्रकार वालि-सुग्रीव के संबंध में भी दिखाई देता है। उन राक्षस बंधुओं के समान ये वानरबंधु थे। दोनों महापराक्रमी और आपस में रामलक्ष्मण के समान नितांत आत्मीयता रखते थे। बीच में मायावी राक्षस के साथ वालि का संग्राम पहाडी प्रदेश में हुआ। दीर्घकाल तक वालि संग्राम से वापस नहीं आया। उस युद्ध में वालि मर चुका होगा यह सोच कर मंत्रिमंडल ने सुग्रीव से राजसिंहासन पर आरोहण करने की प्रार्थना की। भाई की मृत्यु की कल्पना से व्यथित हुए सुग्रीव ने बडे कष्ट से सिंहासनारोहण किया और राजकाज सम्हाला। कई दिनों के बाद मायावी राक्षस को परास्त कर विजयी वालि किष्किंन्धा में वापस लौटा। सुग्रीव को सिंहासन पर देख कर उसका सारा विवेक तत्काल समाप्त हो गया। वस्तुस्थिति जानने की क्षमता उसमें नहीं रही। सुग्रीव का सारा निवेदन उसे बनावट लगा। अपने दुर्जेय सामर्थ्य से उसने सुग्रीव और उसके हनुमान्, जाम्बवन् आदि अनुयायी वर्ग को निर्वासित किया। ऋषि के शाप के कारण जिस प्रदेश में वालि को प्रवेश करना असम्भव था उस दुर्गम प्रदेश में एक निर्वाचित राजा के समान सुग्रीव को वनवासी जीवन बिताना पड़ा। विवेक भ्रष्ट वालि ने भाई को निर्वासित कर पूरा बदला लेने के लिए उसकी पत्नी तारा को अपने अन्त.पुर में प्रविष्ट कर दिया।

सीता की खोज में भटकते हुए रामचद्रजी को सुग्रीव-वालि के विरोध का पता चला। वालि का सामर्थ्य सुग्रीव से अधिक था। वह सिंहासनाधीश्वर था और जिस रावण ने सीता का अपहरण किया था, उसको भी इसने परास्त किया था। रावण के विरोध में निर्वासित सुग्रीव की अपेक्षा उसके बलवत्तर भाई की मैत्री संपादन करना और उसके सहाय से रावण को परास्त कर सीता को वापस लाना, व्यावहारिक दृष्टि से उचित होता। परतु रामचद्र जी के धर्म अधर्म विवेक में वालि जैसे धर्मभ्रष्ट और विवेकभ्रष्ट राजा से मैत्री करना सम्मत नहीं था। उन्होंने अपने विवेक के अनुसार सुग्रीव से ही सख्य किया और भ्रातृपत्नी का अपहरण करने वाले नीतिभ्रष्ट वालि का युक्ति से सहार किया।

वालि के वध में जिस युक्ति का प्रयोग रामचद्रजी ने किया उसकी नैतिकता के विषय में आज के विद्वान काफी विवाद करते है। इस में रामचद्रजी का जो कुछ दोष दिखाई देता है वह उनके "मनुष्यत्व" के कारण क्षम्य माना जा सकता है। युद्ध में कभी कभी कपट नीति का अवलंब करना ही पड़ता है। वह न किया तो पराभव एवं विनाश अटल होता है।

वालि की तुलना में सुग्रीव अधिक सयमी और विवेकी अवश्य थे परतु उनका संयम और विवेक भी अतिरिक्त सामर्थ्य के आत्मविश्वास से कभी कभी छूट जाता है। लका पर आक्रमण करने के लिए रामचंद्र तथा सुग्रीवादि नेता लका का निरीक्षण करते थे। उस निरीक्षण में सुग्रीव की आंखे रावण पर पडीं। उनका क्रोधावेश एकदम फूट पडा और वहीं से वे रावण पर कूद पडे एव मारपीट कर वापस आये। तुरत श्री रामचद्रजीने उनके अविवेकपूर्ण पराक्रम की निर्भर्त्सना की। शत्रु से सघर्ष करते समय उसके गुणदोष एव बलाबल का ययार्थ विचार करते हुए अत्यंत सयम और विवेक से सग्राम करना चाहिए। केवल मारकाट याने युद्ध नहीं। स्वयं रामचद्रजीने जब रावण को समरांगण में अपने समुख देखा तो वे उसके महनीय व्यक्तित्व की भूरि भूरि प्रशसा करते हैं। स्त्रीविषयक पापवृत्ति न होती तो यह पुलस्त्य ऋषि का पौत्र साक्षात इन्द्रपद को विभूषित करने की योग्यता रखता है, ऐसा अपना अभिप्राय भी वे व्यक्त करते हैं और अत में उसका वध करने के बाद "मरणान्तानि वैराणि" कह कर उसके मृत शरीर को नम्रता से प्रणाम करते हैं। रामचद्रजी के इस आदर्श आचरण का प्रभाव हिंदुस्थान के इतिहास में कई स्थानों पर दीखता है। छत्रपति शिवाजी महाराज ने अफजलखान का वध करने के बाद उसकी कबर, उसकी योग्यता के अनुसार स्वय बनवायी। उस कलेवर का अनादर नहीं किया कारण "मरणान्तानि वैराणि" इस रामवचन का सनातन सस्कार। परंतु शिवाजी महाराज के पुत्र संभाजी की निर्घृण हत्या करने के बाद उस छत्रपति राजा के कलेवर का यथोचित समान औरगजेब द्वारा नहीं हो सका, इस का कारण "मरणान्तानि वैराणि" इस रामायणीय मर्यादा संस्कार उस म्लेच्छ बादशाह के अन्त करण पर नहीं था।

भारतीय स्त्रीजीवन मे "पातिव्रत्य" एक महान जीवनमूल्य माना गया है। पातिव्रत्य और पतिव्रता ये ऐसे सस्कृत शब्द हैं जिनके पर्याय अन्य विदेशी भाषा में नहीं मिलते। रामायण में सीता का व्यक्तित्व इस महनीय जीवनमूल्य का प्रतीक है। स्वयंवर के बाद सीता के व्यक्तित्व में जो अनेकविध गुण प्रकट हुए उन सब का मूल है उसका उत्कटतम पातिव्रत्य "भर्तृदेवा हिं नार्य" इस भारतीय सस्कृति के आदेश का, सीता ने शत-प्रतिशत पालन किया। पतिदेव वनवास के लिए सिद्ध हुए तब सीता ने कहा "मेरे माता पिता ने मुझे बचपन से यही पढ़ाया है कि किसी भी अवस्था में पति का अनुसरण करना चाहिये। उस शिक्षा का मै आज पालन करूंगी और आपके साथ वनवास के सारे कष्ट आनंद से सहूगी।" सीता के पातिव्रत्य का दिव्य स्वरूप उसके अपहरण के बाद विशेष रूप से प्रकट होता है। त्रिभुवनविजयी रावण उसका अनुनय करता है और वह महापतिव्रता

उसका घोर तिरस्कार तथा अपमान करती है। अपने पातिव्रत्य के दिव्य तेज से रावण को भस्मसात् करने का सामर्थ्य रखते हुए भी, दृढ सयम से उसका विनियोग वह नहीं करती क्यों कि उससे पतिदेव के पराक्रम का अनादर सिद्ध होता। रावण से वह साफ कहती है कि "इन्द्र के वज्राघात से और साक्षात मृत्यु के दण्डाघात से तू बच सकेगा परतु महावीर रामचंद्र के बाणाघात से तू नहीं बच सकेगा। राम की शरण जाने में ही तेरा कल्याण है।" रावण जैसे परमवीर का इतना घोर अनादर और तिरस्कार करने का धैर्य सीता के अतिरिक्त अन्य किमी ने नहीं दिखाया था। वह श्रेष्ठ धैर्य उसे विशुद्ध पातिव्रत्य के कारण प्राप्त हुआ था। एक पतिव्रता असहाय अवस्था मे कितना आत्मबल व्यक्त करती है इसका दर्शन वाल्मीकिजी ने सीता के व्यक्तित्व में दिखाया है।

अपने उत्कट पातिव्रत्य के इस दिव्य तेज की परीक्षा सीता को स्वयं पतिदेव के समक्ष देनी पड़ी थी। रावण वध के बाद सुस्नात होकर सीता प्रसन्न अन्त करण से राम के दर्शन को आती है। मन में वह सोचती थी कि वे नितान्त स्नेह से मेरा स्वीकार करेंगे। परंतु ऐसा नहीं हुआ। राक्षम सहार से मेरा कर्तव्य पूरा हुआ है। रावण के स्पर्श से और उसकी पापदृष्टि से दूषित होने के कारण मै तेरा स्वीकार नहीं कर सकता। अपने पतिदेव के इस प्रतिषेध का उत्तर सीता ने अग्निदिव्य कर के दिया। साक्षात् अग्निदेव ने उसके निष्कलक पातिव्रत्य का प्रमाण दिया। धर्मनिष्ठ पति द्वारा निर्वासित होने के बाद भी दूसरे वनवास में सीता की पतिभक्ति मे लेशमात्र अतर नहीं पडा। उस पतिविरहित दु सह वनवास में वह पति के कल्याण की प्रार्थना देवताओं से करती रही क्यो कि वह जानती थी कि केवल कठोर राजधर्म के पालन के लिए ही पतिदेव ने मेरा परित्याग किया है। उनके अन्त करण में मेरा स्थान अविचल है। अत मे वह कहती है

"यथाऽह राघवादन्य मनसाऽपि न चिन्तये। तथा मे पृथिवि देवि विवर दातुमर्हसि।"

-हे पृथ्वी देवी, मै अपने मन में रामचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किमी का भी चिन्तन नहीं करती, अत तू मुझे अपनी गोद में समा ले।

इन उद्‌गारों के साथ सीता अपनी पृथ्वीमाता के गोद मे अदृश्य हो जाती है। सीता की महनीयता का वर्णन करने के लिये ससार में दूसरा कोई उपमान नही है। इसीलिए महाकवि भवभूति कहते हैं "सीता इत्येव अलम्।"

रामायण में लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न आत्यतिक बधुप्रेम के प्रतीक मे मिलते हैं। भरत, राम की पादुका सिहासन पर रख कर, उपभोगशून्य वृत्ति से राज्य करते हैं। लक्ष्मण, राम की सेवा मे वनवास के प्रदीर्घ काल में अनिमेष जाग्रत रहते हैं और शत्रुघ्न, राम का वियोग सहन न होने के कारण, उनके साहचर्य के लिए अपने कार्यक्षेत्र से अयोध्या मे वापस लौटने की इच्छा रखते हैं। पारिवारिक एव सामाजिक एकात्मता निर्माण होने के लिये रामायण मे प्रदर्शित यह उदात्त भ्रातृस्नेह का आदर्श व्यक्ति व्यक्ति के अन्त करण में दृढमूल होने की नितान्त आवश्यकता है। रामराज्य की चरितार्थता धन धान्य की समृद्धि में जितनी है, उससे बढ कर रघुवश के इन चार सत्पुत्रों के सात्त्विक सबध मे दिखाई देती है। भाषा, धर्म, पथ इत्यादि भेदो के कारण परस्पर विभक्त होने वाले आधुनिक भारतीय समाज मे एकता या एकात्मता निर्माण करने के लिए सारे आदर्श अविचल रहने चाहिए।

रामायण के विहगावलोकन मात्र से व्यक्त होने वाले कुछ महनीय जीवनमूल्यों का दर्शन इस सक्षिप्त प्रकरण में दिया है। सपूर्ण वाल्मीकि रामायण उदात्त सिद्धान्तों का भाण्डागार है।

रामायण एक अखिल भारतीय मान्यता प्राप्त ग्रथ होने के कारण अन्यान्य प्रदेशो में प्रचलित रामायणों में पाठभेद पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। उन प्रादेशिक पाठभेदों का दर्शन सम्प्रति उपलब्ध अन्यान्य सस्करणों में होता है। गत शताब्दी मे रामायण के जो भिन्न भिन्न सस्करण प्रकाशित हुए, उनमे प्रथम सस्करण सन् 1806 में डॉ विल्यम केरी और डॉ जोशुआ मार्शमेन इन दो ईसाई पादरियों ने अग्रेजी अनुवाद के साथ रामायण के प्रथम दो खडों का प्रकाशन किया। यह सस्करण रामायण के वायव्य पाठ पर आधारित है। सन् 1829 में जर्मन विद्वान श्लेगेल ने प्रथम दो काडों का प्रकाशन लातिन अनुवाद के साथ किया। सपूर्ण रामायण का प्रकाशन सन 1843-1867 इस कालावधि में, गोरेशियो नामक रोमन विद्वान नें किया। यह सस्करण वगीय पाठ पर आधारित है। सन् 1888 में मुबई मे निर्णयसागर प्रेस ने और सन् 1912-1920 इस कालावधि में मुबई के गुजराती प्रेस ने सात खडों में रामायण का प्रकाशन किया। इन दोनों सस्करणों मे दाक्षिणात्य पाठ को प्रमाण माना है। सन् 1923-47 इस कालावधि मे लाहौर मे प. भगवद्दत्त, प रामलुभाया और प विश्वबधु द्वारा सपादित रामायण का प्रकाशन हुआ। यह सस्करण वायव्य पाठ पर आधारित है। अभी बडौदा विश्वविद्यालय द्वारा रामायण के पाठभेदों का तौलनिक अध्ययन और तदनुसार प्रामाणिक सस्करण प्रसिद्ध हुआ है। वायव्य, वंगीय और दाक्षिणात्य पाठो में रामायण के कथा प्रसंगों में भी विभिन्नता मिलती है। तीनों पाठो मे समान कथा प्रसगों का प्रमाण अल्प है।

4 रामायण का काल

रामायण की रचना का काल एक विवाद्य विषय है। याकोबी, मैक्डोनेल, विंटरनिट्झ, मोनियर विलियम्स और कामिल बुल्के के मतानुसार मूल रामायण की रचना इ पू पाचवी शती मानी गयी है। कीथ के मतानुसार चौथी शताब्दी मूल कथा

का काल माना गया है। डॉ शांतिकुमार नानूराम व्यास, मूल रामायण को रचना काल पाणिनिपूर्व (याने इ पू. 9 वीं शती) मानते हैं। इसका कारण पाणिनि के शिवादि गण में रवण और ककुत्स्थ शब्द पठित हैं जिनसे "रावण" और "काकुत्स्थ" शब्द सिद्ध होते हैं। "शूर्पणखा" शब्द की सिद्धि भी पाणिनि के सूत्रानुसार होती है। "नखमुखात् संज्ञायाम्" (4-1-58) इस सूत्र के कारण "शूर्पणखी" के अलावा "शूर्पणखा" यह संज्ञावाचक शब्द सिद्ध होता है। इस प्रकार के अतरंग प्रमाणों से पाणिनि का रामायणज्ञान स्पष्ट होता है। अत. रामायण संहिता पाणिनि पूर्व कालीन मानना ही उचित है।

टीकाग्रंथ

वाल्मीकि रामायण का महत्त्व केवल काव्य या इतिहास की ही दृष्टि से नहीं माना गया। अनेक वैष्णव संप्रदायों में वह एक धर्मग्रंथ माना गया है। अत रामायण के विद्वान उपासकों ने इस ग्रथ पर अपनी अपनी धारणाओं के अनुसार टीकाग्रंथ लिखे है। डा ओफ्रेक्ट की सूची के अनुसार 30 टीकाग्रंथ लिखे गये। इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण टीकाग्रथ

टीका	लेखक
1) रामानुजीय	कोण्डाड रामानुज। ई. 15 वीं शती
2) सर्वार्थसार	वेंकटकृष्णाध्वरी। ई 15 वीं शती।
3) रामायणदीपिका	वैद्यनाथ दीक्षित।
4) बृहद्विवरण और लघुविवरण	ईश्वर दीक्षित। ई. 15 वीं शती।
5) रामायणतत्त्व दीपिका (तीर्थीय)	महेश्वरतीर्थ। ई. 17 वीं शती।
6) रामायणभूषण	गोविंदराज (काचीनिवासी। ई. 18 वीं शती)
7) वाल्मीकि-हृदय	अहोबल आत्रेय। ई 17 वीं शती।
8) अमृतकतक (कतक)	माधवयोगी। ई 18 वीं शती।
9) रामायणतिलक	रामवर्मा। ई 18 वीं शती (शृंगवेरपुर के राजा)
10) रामायणशिरोमणि	वंशीधर। ई 19 वीं शती।
11) मनोहरा	लोकमान्य चक्रवर्ती। ई 16 वीं शती।
12) धर्माकूतम्	त्र्यबकमखी। ई 17 वीं शती।
13) चतुरर्थी	आज्ञानामा/ इसमें अनेक पद्यों के चार अर्थों का प्रदर्शन किया है।

इनके अतिरिक्त रामायणतात्पर्यदीपिका, रामायण–तत्त्वदर्पण इत्यादि टीका ग्रथो मे रामायण के तात्पर्य का प्रतिपादन करने का प्रयास हुआ है।

9 "महाभारत"

हिंदुस्थान के सांस्कृतिक वाङ्मय में महाभारत का महत्त्व अतुलनीय है। आदिकाव्य (रामायण) के समान महाभारत भी एक आर्ष महाकाव्य माना जाता है, तथापि यह मुख्यत इतिहास ग्रथ है। महाभारत के आदिपर्व में स्वयं ग्रंथकार ने "इतिहासोत्तमादस्माद् जायन्ते कविबुद्धय।" (अर्थात् इस उत्कृष्ट इतिहास ग्रथ से कवियों को प्रेरणा मिलती रहती है) इस वाक्यद्वारा महाभारत का इतिहासत्व उद्घोषित किया है। भरतवंशीय कौरव और पाडवो के महायुद्ध का वर्णन इस ग्रथ का कथा विषय है। पारपारिक मतानुसार यह युद्ध द्वापर युग के अत में हुआ और उसकी समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से युधिष्ठिर सवत् का प्रारभ हुआ। प्रचलित मतानुसार ई पू 3101 वर्ष में युधिष्ठिर संवत् प्रारभ हुआ तथापि ई सातवीं सदी तक के शिलालेखो मे इस सवत् का उल्लेख नहीं मिलता। वराहमिहिर के मतानुसार शक सवत्सर में 2526 मिला कर जो सख्या मिलती है उस वर्ष मे अर्थात् ख्रिस्तपूर्व 2604 मे युधिष्ठिर का राज्यारोहण माना जाता है। लोकमान्य तिलक ई पू 1400 मे भारतीय युद्ध मानते हैं। इस प्रकार महाभारतीय युद्धकाल के संबंध में मतभेद दिखाई देते हैं। इसका कारण महाभारतीय व्यक्तियो के नाम अन्यान्य प्राचीन ग्रथो में मिलते हैं जैसे अथर्ववेद के कुन्तापसूक्त मे परीक्षित् के राजशासन का वर्णन "जाया पति विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञ. परीक्षित" "जन स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञ परीक्षित" (127-7,10) इत्यादि वचनों में मिलता है। ब्राह्मण ग्रथों में परीक्षितपुत्र जनमेजय, दुष्यतपुत्र भरत और विचित्रवीर्यपुत्र धृतराष्ट्र का उल्लेख आता है। शाखयन श्रौतसूत्र में कौरवो के पराजय का निर्देश मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर इन नामों की व्युत्पत्ति के नियम दिये हैं। इन उल्लेखों से महाभारतीय व्यक्तियो की तथा कुरुक्षेत्र के महायुद्ध की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। कौरव-पांडवों के भीषण महायुद्ध की ऐतिहासिक कथा कृष्ण द्वैपायन व्यास ने रची और अपने पांच शिष्यों को वह पढाई। इस प्रथम ग्रथ का

नाम "जय नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा। (आदिपर्व अ-63) इस वचन के अनुसार "जय" था। इस प्रकार युद्धों का वर्णन करने की प्रथा वेदकाल में भी थी। ऋग्वेद के 7 वे मंडल में दिवोदासपुत्र सुदास ने दस राजाओं पर जिस युद्ध में विजय प्राप्त की उस "दाशराज्ञ युद्ध" का महत्त्व माना गया है। इस प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं उनसे संबंधित राजवंशों का वर्णन जिस वाङ्मय में होता है, उसे "इतिहास" संज्ञा थी। शतपथ ब्राह्मण एवं छांदोग्य उपनिषद् मे पुराण एवं इतिहास को "वेद" या "पंचमवेद" संज्ञा दे कर उस वाङ्मय के प्रति आदर व्यक्त किया है। वेदों का अर्थ समझने की याज्ञिकों और नैरुक्तों की पद्धति थी। ऐतिहासिकों के मतों का निर्देश यास्काचार्य के निरुक्त मे मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में "नाराशंसी गाथा" नामक मनुष्य प्रशंसात्मक काव्यों का उल्लेख मिलता है। इन प्रमाणों से इतिहास विषयक कुछ वाङ्मय वैदिक काल मे भी था यह सिद्ध होता है। उसी प्रणाली में कृष्ण द्वैपायन का "जय" नामक इतिहास मानना चाहिए। विद्यमान महाभारत का यही मूलस्रोत था। इस प्रकार के युद्धवर्णन पर आधारित वीरकाव्य सूत या बंदी जन राजसभाओं में या रणभूमि पर, वीरों को प्रोत्साहित करने के हेतु गाते थे। यह पद्धति आधुनिक काल तक समाज में प्रचलित थी। शिवाजी महाराज की राजसभा मे "पोवाडा" नामक मराठी वीरकाव्यों का गायन वीरों को प्रोत्साहित करने के निमित्त होता था। राजपूत राजाओं की सभा मे भी इस प्रकार के वीरकाव्यों का गायन होता था इसके प्रमाण मिलते है। मूल "जय" ग्रंथ भी सूतो द्वारा राजसभाओं मे गाया जाता होगा इस में संदेह नहीं। मूल जय ग्रंथ की श्लोकसंख्या परंपरा के अनुसार आठ सहस्र मानी जाती है। इसी "जय" ग्रंथ का द्वितीय संस्करण 24 सहस्र श्लोकों में हुआ, जिसका नाम "चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावद् भारत प्रोच्यते बुधैः" इस प्रसिद्ध श्लोक के अनुसार केवल "भारत" था। इस "भारत" संहिता मे महाभारत मे यत्र तत्र मिलने वाले "उपाख्यान" नहीं थे।

"मन्वादि भारतं केचिद् आस्तिकादि तथा परे। तथोपरिचरादन्ये विप्राः सम्यगधीयते।।"

इस श्लोक के अनुसार, "मनुश्लोक" (नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।। इस वंदनपरक श्लोक को "मनु" कहते है।) से अथवा आस्तिक आख्यान से या तो उपरिचर वसु (भगवान व्यास के मातामह) के आख्यान से माना जाता है। इसी ग्रंथ का तीसरा या अंतिम संस्करण सौति उग्रश्रवा के द्वारा माना जाता है। इसी संस्करण को "महाभारत" कहते हैं जिसके अन्तर्गत भारतोक्त इतिहास मे अनेक आख्यानों उपाख्यानों, तीर्थक्षेत्र- वर्णनों, राजनीति विषयक संवादों इत्यादि विविध विषयों का अन्तर्भाव हो कर, श्लोकसंख्या एक लाख तक हुई। यह महाभारत प्राचीन पद्धति का ज्ञानकोश माना जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थ के संबंध मे महाभारत मे जितना सूक्ष्म विवेचन मिलता है उतना संसार के अन्य किसी एक ग्रंथ में नहीं मिलता।

"यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरिः। ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमच्युते।।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"

इन सुप्रसिद्ध श्लोकों में महाभारत की महिमा बतायी गयी है। भारतीय हिंदुसमाज मे इस ग्रंथ की योग्यता ऋग्वेद के समान मानी गयी है। ब्रह्मयज्ञ में इसका "स्वाध्याय' विहित माना गया है। गत 15-20 शताब्दियों मे हिंदु समाज के हृदय पर इस ग्रंथ का अधिराज्य है। भारत के बाहरी देशों मे भी इसका प्रभाव व्यक्त हुआ है। ई. दूसरी शती के ग्रीक वाङ्मय मे इसके उल्लेख मिलते हैं। ई. छठी शती मे कांबोडिया के मंदिरों में इसका वाचन होता था। सातवीं शती मे मंगोलिया के लोग हिंडिंबवध जैसे आख्यान काव्यरूप मे गाते थे। दसवीं शती के पूर्व जावा द्वीप मे संपूर्ण महाभारत का अनुवाद हुआ था। ई. 19 वीं शती मे फ्रांझ बॉप ने सर्वप्रथम महाभारत के नलोपाख्यान का रूपांतर जर्मन भाषा मे किया तब उस आख्यान की अपूर्वता से यूरोपीय विद्वान चकित हुए थे। सन 1846 मे ॲडाल्फ हाल्ट्झमन ने जर्मन भाषा मे इस संपूर्ण ग्रंथ का यूरोप को प्रथम परिचय यथाशक्ति कराया।

संपूर्ण महाभारत का विभाजन 18 पर्वो मे किया गया है। "हरिवंश" नामक ग्रंथ इसका परिशिष्ट माना जाता है जिसके हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व और भविष्यपर्व नामक तीन भागों की संपूर्ण अध्याय संख्या 318 और श्लोक संख्या 20 हजार से अधिक है। महाभारत में श्रीकृष्ण का उत्तरचरित्र मिलता है। हरिवंश के विष्णुपर्व मे उनका बाल्य एवं यौवन काल का चरित्र चित्रित किया है। परंपरागत कथा के अनुसार "जय" ग्रंथ का "महाभारत" के रूप मे विकास होने का कार्य भगवान व्यास के अनंतर एक दो पीढियों में माना जाता है। परंतु उस ग्रंथ का विस्तार, भाषा वैचित्र्य विविध कथाएं, वर्णन और संवादात्मक चर्चा का परिशीलन करने वाले आधुनिक विद्वान महाभारत ग्रंथ का विकास इतना शीघ्र नहीं मानते। उनके मतानुसार यह विकास होने के लिए कुछ शताब्दीयों का समय लगा होगा। आश्वलायन गृह्यसूत्र में "सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल-सूत्रभाष्यभारत महाभारत-धर्माचार्याः तृप्यन्तु" इत्यादि तर्पणसूत्र के अनुसार विद्यमान महाभारत की उत्तर मर्यादा गृह्यसूत्रों से पूर्वकालीन (अर्थात् ई.पू. छठी शती के पूर्व) मानी जाती है। महाभारत मे शक, यवन पह्लव जैसे परकीय लोगों का निर्देश मिलता है। इन परकीयों के इस देश

पर आक्रमण ई.पू 4 थी से ई. 1-2 शती तक होते थे। अर्थात् इन आक्रमणों का निर्देश करने वाले श्लोक उस काल के बाद में लिखे गये। इस प्रकार प्राचीन महाभारत में कुछ अश प्रक्षिप्त माना जाता है। "जय" ग्रथ से ले कर उसका अंतिम संस्करण होते तक के कालखंड में मूलग्रथ के स्वरूप में जिस क्रम से परिवर्तन होता गया, उसकी यथार्थ कल्पना आज करना असभव है। सौती द्वारा हुए तृतीय संस्करण का स्वरूप क्या था यह भी जानना कठिन है। भारत वर्ष जैसे खडप्राय विशाल देश में, इस ग्रथ का प्रचार सूतवर्ग द्वारा मौखिक रूप मे सदियों ता चलता रहा। सैकड़ो लेखकों ने उसकी पाडुलिपियां करते समय अनवधान से भरपूर प्रमाद किए। इन सब कारणो से महाभारत की प्राचीत हस्तलिखित प्रतियों में कहीं भी एकरूपता नहीं मिलती। इन विविध प्राचीन प्रतियो का तौलनिक अध्ययन करते हुए महाभारत का अधिकाश प्रामाणिक सस्करण करने का कार्य, पुणे की भाडारकर प्राच्य विद्यामदिर द्वारा हुआ है। सामान्य अध्येताओं के लिये महाभारत के सारग्रंथ संपादन करने के भी प्रयत्न हुए। इसी शताब्दी के प्रारभ में श्री चिन्तामणराव वैद्य ने "सक्षिप्तभारतम्' का संपादन किया था जिस में श्लोक सख्या 8 हजार थी। सन् 1954 मे पुसद (महाराष्ट्र) के सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री शकर सखाराम सरनाईक ने माहुर (मातापुर विदर्भ) के विद्वान प वा ग जोशी के प्रधान सपादकत्व में "महाभारतसार" तीन खडों मे प्रकाशित किया, जिसकी श्लोकसंख्या 24 हजार से अधिक है। (इन सपादन कार्य में सहभागी होने का सद्भाग्य प्रस्तुत लेखक को भी मिला था) ये दोनों सारग्रथ आज दुर्लभ है।

रामायण-महाभारत में पौर्वापर्य

गत शताब्दी मे प्रसिद्ध जर्मन पडित वेबर ने भारतीय परंपरागत मत के प्रतिकूल यह मत उपस्थित किया कि रामायण की अपेक्षा महाभारत की रचना पहले हुई। परतु याकोबी, श्लेगेल, विंटरनिट्झ इत्यादि अन्य यूरोपीय विद्वान रामायण को महाभारत से पूर्वकालीन ही मानते हैं। इस विवाद में रामायण का उत्तरकालीनत्व प्रतिपादन करने वालों का कहना है कि, महाभारत में वर्णित लोकस्थिति प्रक्षोभयुक्त, मघर्षयुक्त एव अव्यवस्थित है, परतु रामायण में वर्णित परिस्थिति महाभारत की अपेक्षा अधिक शात, व्यवस्थित, सुसस्कृत एव आदर्शवादी है। सस्कृति का विकास महाभारत की अपेक्षा रामायण में अधिक मात्रा में प्रतीत होता है। रामायण मे सुन्दर पदविन्यास तथा रचना की सुबोधता उसकी उत्तरकालीनता का द्योतक है। परतु इस विवाद में रामायण की उत्तर कालीनता का खडन विद्वानों ने अनेक प्रमाण दे कर किया है। रामायण में रीछ और वानरवीरों का उल्लेख, दशमुखी रावण, सागर पर सेतु का निर्माण, हनुमान् द्वारा लकादहन जैसी अद्भुतता का प्रमाण महाभारत की अपेक्षा अधिक है। महाभारत मे म्लेच्छ समाज तथा भाषा का उल्लेख आता है। रामायण में म्लेच्छो का नाम भी नहीं है। महाभारत में सपूर्ण भारतवर्ष मे व्यवस्थित एव सुशासित आर्य सभ्यता दिखाई देती है, परतु रामायण में दक्षिण भारत मे वानर एव राक्षस समाज की सभ्यता का दर्शन होता है। आर्य सभ्यता उत्तर भारत तक सीमिति थी। महाभारत मे युद्ध का वर्णन प्रगत अवस्था में दीखता है जब कि रामायण के वानरवीर वृक्षो एव पत्थरों से, प्रतिपक्षी राक्षसवीरों से सग्राम करते हैं। इन प्रमाणों के अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह है कि रामायण में महाभारत कि घटनाओं तथा पात्रो का उल्लेख तक नहीं है, परंतु महाभारत में सपूर्ण रामकथा वनपर्व मे (अ 274-291) वर्णित है। महाभारत के इस उपाख्यान मे वाल्मीकीय रामायण के श्लोक शब्दशः मिलत हैं। रामायण के नायक एव खल नायक, महाभारत मे उपमान हुए हैं। आदि पर्व में भीष्म और द्रोण की प्रशसा में उन्हे श्रीराम की उपमा दी है। सभापर्व मे द्यूतक्रीडा के प्रति युधिष्ठिर के मोह का वर्णन करते हुए रामायण के काचनमृग से मोहित राम का दृष्टात दिया गया है। इस प्रकार के और भी अन्य कुछ प्रमाणों के आधार पर वेबर द्वारा उठाए गये महाभारत की उत्तरकालीनता के पक्ष का विद्वानो ने सपूर्णतया खडन कर परपरागत रामायण की पूर्वकालीनता प्रस्थापित की है। अब यह विवाद समाप्त हो चुका है।

महाभारत के 18 पर्वो के नाम 1) आदि, 2) सभा, 3) वन, 4) विराट, 5) उद्योग, 6) भीष्म, 7) द्रोण, 8) कर्ण, 9) शल्य, 10) सौप्तिक, 11) स्त्री, 12) शांति 13) अनुशासन, 14) आश्वमेधिक, 15) आश्रमवासिक, 16) मौसल, 17) महाप्रस्थानिक और 18) स्वर्गारोहण। इन के अतिरिक्त खिल पर्व नामक १९ वां पर्व हरिवश नाम से प्रसिद्ध है। यह खिल पर्व सौतिद्वारा ग्रन्थपूर्ति निमित्त निर्माण किया गया है।

10 साहित्य में महाभारत

महाभारत कवियों का उपजीव्य ग्रथ है। स्वय महाभारतकार ने "इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः" इस श्लोक में, अपने ग्रथ से कवियों को स्फूर्ति मिलती है यह जो घोषणा की वह सर्वथा यथार्थ है। इ पू दूसरी सदी से आज तक संस्कृत तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओ के साहित्यिकों ने काव्य-नाटक चम्पू इत्यादि विविध प्रकार के ग्रथ महाभारत से प्रेरणा लेकर लिखे हैं। पतजलि के महाभाष्य मे (ई.पू 2 शती) कंसवध और बलिबन्ध नामक दो नाटकों के प्रयोग का उल्लेख आता है। समस्त सस्कृत नाट्यवाङ्मय में यही सर्वप्रथम ज्ञात नाटक माने जाते हैं। इन दोनों नाटकों के विषय हरिवश तथा महाभारत के आख्यान से लिए गए हैं। भास का समय ई-2 शती माना जाता है। भासनाटकचक्र के 13 नाटकों में से मध्यमव्यायोग, पचरात्र, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभग, और बालचरित ये छह नाटक महाभारत तथा हरिवश पर आधारित हैं। कालिदास के तीन

नाटकों में दो नाटकों, (शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय), के कथानक महाभारत से लिए हुए हैं। भट्ट नारायण (ई. 8 वीं शती) के वेणीसंहार नाटक का विषय तो भारतीय युद्ध ही है। अभिनवगुप्त के ध्वन्यालोकलोचन में पाण्डवानन्द इत्यादि महाभारत पर आधारित नाटकों का उल्लेख हुआ है। इन के अतिरिक्त राजशेखर का बालभारत (अथवा प्रचण्डपाडव), क्षेमेन्द्र का चित्रभारत, हेमचन्द्र का निर्भयभीम, कुलशेखर का सुभद्राधनजय, रविवर्मा का प्रद्युम्नाभ्युदय, प्रह्लाददेव का पार्थपराक्रम, विजय पाल का द्रौपदी-स्वयंवर, विश्वनाथ का सौगन्धिका-हरण, रामचन्द्र का यादवाभ्युदय, रामवर्मा का रुक्मिणी-परिणय, शेषचिन्तामणि का रुक्मिणीहरण, शेषकृष्ण का कसवध इत्यादि अनेक नाटक महाभारत एव हरिवंश पर आधारित हैं। महाभारत पर आधारित काव्यग्रथो म वाकाटकनृपति सर्वसेन (ई 4 थी शती) कृत हरिविजय, भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, श्रीहर्षकृत नैषधचरित, वामनभट्टकृत नलाभ्युदय, अमरचन्द्रसूरिकृत बालभारत, वास्तुपालकृत नारायणानन्द लोलिबराजकृत हरिविलास, वेंकटनाथकृत यादवाभ्युदय, राजूचडामणि दीक्षित कृत रुक्मिणीकल्याण, वासुदेवकृत नलोदय, जयदेवकृत गीतगोविद इत्यादि ग्रथ सस्कृत साहित्य मे महत्त्वपूर्ण हैं। बहुलार्थ काव्यों में कविराजकृत राघवपाण्डवीय, हरदत्तसूरिकृत राघवनैषधीय, नलयादव-पाडव-राघवीय (ले-अज्ञात) इत्यादि काव्यों में महाभारतीय कथा वर्णित हुई है। उसी प्रकार त्रिविक्रम भट्ट (ई 10 वीं शती) कृत नलचम्पू, अनन्तभट्टकृत भारतचम्पू, शेषकृष्ण कृत पारिजात-हरणचम्पू इत्यादि ग्रथ महाभारत तथा हरिवश पर आधारित हैं। अर्वाचीन सस्कृत साहित्यिको ने भी यह परंपरा यथापूर्व चालू रखी है।

महाभारत की टीकाएं

1) ज्ञानदीपिका : ले-परमहस परिव्राजकाचार्य देवबोध या देवस्वामी। यह महाभारत की सर्व प्रथम उपलब्ध टीका आदि, सभा, भीष्म तथा उद्योग पर्व पर प्रकाशित हो चुकी है। समय ई 12 वीं शती के पूर्व।

2) विषमश्लोकी : (या दुर्घटार्थ-प्रकाशिनी या दुर्बोदपदभजिनी) ले-विमलबोध (ई 12 वी शती) यह टीका अठारहो पर्वो पर उपलब्ध है। इसके कुछ अश प्रकाशित हुए हैं।

3) भारतार्थ-प्रकाश : ले-नारायण सर्वज्ञ। ई 12 वीं शती। इन्होंने मन्वर्थवृत्ति निबध नामक मनुस्मृति की टीका भी लिखी है। इनकी विराट तथा उद्योग पर्व की टीका प्रकाशित है।

4) भारतोपायप्रकाश : ले-चतुर्भुज मिश्र। ई 14 वीं शती। विराट पर्व की टीका प्रकाशित है।

5) प्रक्रियामंजरी : ले-आनन्दपूर्ण (विद्यासागर) ई 15 वीं शती। आदि, सभा, भीष्म, शान्ति, तथा अनुशासन इन पाच पर्वो की टीका उपलब्ध है। ये गोवानरेश कदबवशी कामदेव के आश्रित थे। इन्होंने महाभारत के प्राचीन टीकाकारो मे अर्जुन, जगद्धर, जर्नादिन, मुनि, लक्ष्मण (टीका विषमोद्धारिणी जो सभा तथा विराट पर्व पर उपलब्ध है) विद्यानिधि भट्ट तथा सृष्टिधर इन के नामों का निर्देश किया है।

6) भारतार्थदीपिका (भारतसंग्रही दीपिका) ले-अर्जुन मिश्र। बगाल निवासी। ई 14 वीं शती। विराट तथा उद्योगपर्व की टीका प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने प्राचीन टीकाकारो मे देवबोध, विमलबोध, शाण्डिल्य तथा सूर्यनारायण का उल्लेख किया है।

7) निगूढार्था पदबोधिनी . ले-नारायण। ई 14 वीं शती।

8) लक्षाभरण (लक्षालंकार) : ले-वादिराज। ई 16 वीं शती। माध्वसप्रदायी। विराट तथा उद्योग पर्व की टीका प्रकाशित।

9) भारतभावदीप . ले-नीलकण्ठ चतुर्धर (चौधरी)। कोपरगाव (जिला अहमदनगर, महाराष्ट्र) के निवासी। समय ई 17 वीं शती। काशी मे लिखी गयी यह टीका सपूर्ण 18 पर्वो पर है। महाभारत की यह अतिम एव सर्वोत्कृष्ट टीका मानी जाती है। नीलकण्ठ के मन्त्ररामायण एव मत्रभागवत में रामायण तथा भागवत की कथा मे सबधित मत्र ऋग्वेद से क्रमबद्ध सगृहीत है। इन टीकाओ के अतिरिक्त वैशम्पायन कृत शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर टीका उपलब्ध है।

11 महाभारत की विचारधारा

शातिपर्व एव अनुशासनपर्व महाभारत के सैद्धान्तिक निधान माने जाते हैं। उसी प्रकार भीष्मपर्व के अन्तर्गत भगवद्गीता एक उपनिषद या तत्त्वज्ञान की प्रस्थानत्री मे से एक पृथक् "प्रस्थान" माना जाता है। भारत एव समस्त विश्व के तत्त्वचिंतको को श्रीमद्भगवद्गीताने अभी तक प्रबोधित किया है और आगे भी वह करते रहगी। भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग एव राजयोग इन चतुर्विध योगशास्त्रों के अनुसार जीवन का मार्मिक तत्त्वदर्शन भगवद्गीता मे हुआ है। सभी सप्रदायो के महनीय आचार्यो ने अपने अपने सिद्धात की परिपुष्टि करने की दृष्टि से गीता पर टीकाए लिखी। 12 वीं शती मे महाराष्ट्र के सन्तशिरोमणि ज्ञानेश्वर की भावार्थबोधिनी या ज्ञानेश्वरी नामक मराठी छंदबोध टीका कवित्व, रसिकत्व और परतत्त्वस्पर्श की दृष्टि से सर्वोत्तम मानी जाती है। शांतिपर्व और अनुशासन पर्व में भीष्मयुधिष्ठिर सवाद मे धर्म, अर्थ, नीति, अध्यात्म, व्यवहार इत्यादि विविध विषयों के विवाद्य प्रश्नों का विवेचन आने के कारण महाभारत का यह भाग प्राचीन भारतीय सस्कृति का ज्ञानकोश माना जाता है। इस समस्त ज्ञान के प्रवक्ता भीष्माचार्य, जिनके बारे में स्वय भगवान् कृष्ण कहते हैं कि

"स हि भूतं भविष्यच्च भवच्च भरतर्षभ। वेत्ति धर्मविदां श्रेष्ठः तमस्मि शरणं गत ।।"

वर्तमान, भूत और भविष्य काल के ज्ञानी होने के कारण भीष्म के प्रतिपादन में अनेक प्राचीन कथाओं का उल्लेख आता है। अत इस संवाद को कुछ विद्वान "इतिहास संवाद" कहते हैं। शांतिपर्व में वर्णाश्रम धर्म का धर्मशास्त्रानुसार प्रतिपादन किया गया है। परंतु संन्यासाश्रम के विषय में शक्रतापस संवाद के अन्तर्गत विशेष चेतावनी दी है कि बाल्यावस्था में या अज्ञानी दशा में सन्यास नहीं देना चाहिए। मोक्ष केवल संन्यास से ही मिलने की संभावना होती तो,

"पर्वताश्च द्रुमाश्चैव क्षिप्र सिद्धिमवाप्नुय ।।"

अर्थात् पर्वत और वृक्ष संन्यासी जैसे निस्सग होने के कारण तत्काल मोक्षप्राप्ति के अधिकारी होंगे। इस प्रकार समाज विघातक अनुचित सन्यास का निषेध शातिपर्व में किया गया है।

सभी वर्णों के लिये साधारण धर्म शांतिपर्व के अन्तर्गत पाराशर जनक सवाद में बताया गया है। पाराशर ऋषि जनक को कहते है :-

"आनृशस्यमहिंसाचाप्रसाद संविभागिता। श्राद्धकर्मतिथेय च सत्यमक्रोध एव च।।

स्वेषु दारेषु सन्तोष शौच नित्यानसूयता। आत्मज्ञान तितिक्षा च धर्मा. साधारणा नृप।।

(प्राणिमात्र के प्रति अनुकपा, विवेक, धनादि का दान, श्राद्धकर्म, अतिथिसत्कार, सत्यभाषण, क्रोध, सयम, स्वपत्नी मे संतोष, शुचित्व, अद्वैत, आत्मज्ञान और सहनशीलता यह सर्व मानव लिए साधारण धर्म है। महाभारत में चारों वर्णों के कर्म धर्मशास्त्र के अनुसार ही बताए हैं। तथापि शास्त्रविहित कर्म से उपजीविका होना असम्भव होने पर त्रैवर्णिकों के लिए अन्य वर्णों के कर्म करते हुए उपजीविका निभाने के पक्ष में अनुकूल मतप्रदर्शन किया है -

क्षत्रधर्मा वैश्यधर्मा नावृत्ति पतते द्विज ।

शूद्रधर्मा यदा तु स्यात् तदा पतति वै द्विज ।।

इस श्लोक मे शूद्रवृत्ति (अर्थात परिचर्यात्मकर्म) के अतिरिक्त अन्य वर्णों के कर्म करने से वृत्तिहीन द्विजों का पतन नहीं होता। भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य से आये हुए शक, यवन, पह्लव इत्यादि परकीय लोगों को महाभारत "दस्यु" कहता हैं। इन परकीयो को राष्ट्रीय समाज मे अन्तर्भूत करने का प्रश्न उस समय मे उठा होगा। इस विषय में शातिपर्व के 65 वें अध्याय में विवेचन मिलता है। इन दस्युओं ने माता, पिता, गुरु, आचार्य, तपस्वी जैसे श्रेष्ठों की सेवा करना, अहिंसा, सत्य, शाति से व्यवहार करना और अष्टकादि पाकयज्ञ करना ही धर्म है, इस प्रकार मार्गदर्शन महाभारत ने किया है। इस आदेश से परकीय समाज को राष्ट्रीय समाज के समकक्ष करने की वृत्ति व्यक्त होती है। इसी उदार वृत्ति के कारण प्राचीन काल में भारत मे प्रविष्ट हुए ग्रीक, शक, कुशाण, हूण, गुर्जर इत्यादि परकीय समाज के लोग इस देश के राष्ट्रीय समाज में समाविष्ट होकर शिव, स्कन्द, वासुदेव इत्यादि भारतीय देवताओं के उपासक बने थे। प्राचीन शिलालेखो एव नाणकों के प्रमाण से यह तथ्य सिद्ध हुआ है -

शान्तिपर्व के अन्तर्गत राजधर्म या राजनीति विषयक चर्चा कुल 76 अध्यायो मे हुई है। प्राचीन वाङ्मय मे राजनीति का अन्तर्भाव "अर्थशास्त्र" मे होता था। इसी कारण शान्तिपर्व में इस चर्चा के प्रास्ताविक श्लोक में "अर्थशास्त्र" शब्द का प्रयोग हुआ है।

राजसत्ता का उदय बताते हुए, मनु की कथा बताई गयी है। जिस समय राजस्थ्सा का सर्वथा अभाव था उस समय में "मात्स्यन्याय" चल रहा था। प्रबल अधार्मिक लोग, दुर्बल धार्मिक लोगों का विनाश कर रहे थे। ऐसी भयानक अवस्था में ब्रह्माजी ने मनु को राजा होकर प्रजारक्षण करने का आदेश दिया। जब मनु ने कहा -

"बिभेमि कर्मण पापाद् राज्य हि भृशदुस्तरम्। विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।।

(मिथ्याचरणी मनुष्यों पर राज चलाना दुष्कर कर्म है अत इस कारण लगने वाले पाप का मुझे डर लगता है।) मैं राजा होना नहीं चाहता। तब लोगों ने कहा दुराचार का पाप, दुराचारियों को ही लगेगा- "कर्तृन् एनो गमिष्यति"। और प्रजानन जो पुण्याचरण करेंगे उसका चतुर्थांश राजा को प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त प्रजा के धन का पचासवां भाग; और धान्य का दसवां भाग भी राजा को मिलेगा। इस प्रकार आदान प्रदान का सामाजिक सकेत (सोशल कॉन्ट्रॅक्ट) निश्चित हो कर मनु ने राजपद का स्वीकार किया। राजा का राज्याभिषेक होता था, तब उससे प्रतिज्ञा का उच्चारण किया जाता था। वह प्रतिज्ञा थी -

"प्रतिज्ञा चाधिरोहस्व कर्मणा मनसा गिरा। पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्।।"

यश्चाऽत्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीति-व्यपाश्रय । तमशङ्कं करिष्यामि स्ववशो न कदाचन।।

मै प्रजा की धर्म संस्कृति का रक्षण करूंगा, राजनीतिशास्त्र के अनुसार बर्ताव करूंगा, स्वेच्छा से कभी भी व्यवहार नहीं करूंगा इस प्रकार का आशय इस प्रतिज्ञा में भरा हुआ है।

प्रजा का पालन ही राजा का मुख्य कर्तव्य है, इस सिद्धान्त को स्थिर करने के लिए शांतिपर्व में (धर्मशास्त्र के अनुसार) नियम बताया गया कि "प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद् धनं चौरैर्हृतं यदि। तत्स्वकोशात् प्रदेयं स्यादशक्तेनोपजीवत.।। चोरों द्वारा लूटा गया प्रजानन का धन, चोरों से मिलने के प्रयत्न में अपयश आने पर राजा ने अपने निजी कोश से देना चाहिए। प्रजापालन का सपूर्ण दायित्व राजा को निभाना चाहिए, यह सिद्धान्त इस प्रकार के नियमों द्वारा दृढमूल किया गया था।

राज्य केवल सरक्षक ही नहीं अपि तु कल्याणकारी होना चाहिए यही भी तत्त्व शांतिपर्व में प्रतिपादन किया गया है। भीष्माचार्य कहते हैं -

"कृपणानाथवृद्धाना विधवाना च योषिताम्। योगक्षेम च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत्।।
आश्रमेषु यथाकाल चैलभाजनभोजनम्। सदैवोपहरेद् राजा सत्कृत्याभ्यर्च्य मान्य च।।

जीविकाहीन अनाथ, वृद्ध तथा विधवा स्त्रियों का पालन सरक्षण करना एव विद्या प्रदान करने वाले आश्रम, गुरुकुल, मठ, मदिरो मे रहने वाले विद्वान तपस्वी लोगों को अन्न, वस्त्र पात्र आदि सब आवश्यक साधन देना यह सारा दायित्व राजा का ही माना गया है। वार्धक्य वृत्ति (ओल्ड एज पेन्शन) की योजना इग्लड जैसे पाश्चात्य राष्ट्र मे आधुनिक काल मे मान्य हुई है। महाभारतकार ने यह योजना कलियुग के प्रारभ में सिद्धान्त रूप से प्रतिपादन की हे।

राजा के अमात्य अथवा तत्सम श्रेष्ठ अधिकारी चारों वर्णों मे चुने जाना चाहिये यह मत,-

"चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकान् शुचीन्। क्षत्रियाश्च तथा चाष्टौ बलिन शस्त्रपाणिन ।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नान् एकविंशतिसख्यया। त्रींश्च शूद्रान् विनीताश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके।।

इन श्लोको मे प्रतिपादन किया है। राजा की मत्रिपरिषद में चार ब्राह्मण, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य और तीन शूद्र मिला कर जो 26 अधिकारी नियुक्त किये जाते थे, वे सभी विद्या, विनय, शुचित्व इत्यादि गुणो से युक्त होना आवश्यक माना गया है। इन गुणो से हीन अधिकारी शासन में और समाज मे भी भ्रष्टाचार को बढावा देते हैं।

महाभारत के समय में राजसत्ता के समान गणसत्ता या गणतत्रात्मक राज्य भी अस्तित्व में थ। गणराज्य की अभिवृद्धि तथा सुरक्षा के हेतु आवश्यक बातों का सविस्तर कथन भीष्माचार्य ने किया है जो आज की परिस्थिति मे भी उपकारक है। भीष्म कहते हैं- लोभ, क्रोध तथा भेद जैसे दोषों से गणराज्यों को भय होता है। गणराज्य की परिषद् में मत्रचर्चा सारे सदस्यों की सभा मे नहीं होनी चाहिए। विशिष्ट योग्यता प्राप्त सदस्यों की सभा मे ही चर्चा हो कर गण के हित के कार्य करने चाहिए। इसका कारण जात्या च सदृशा सर्वे कुलेन सदृशास्तथा। न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूप-द्रव्येण वा पुन.।। गण के सदस्य जाति या कुल दृष्ट्या समान होने पर भी उद्योग बुद्धिमत्ता, धनसम्पत्ति में समान नहीं होते।

कर के विषय मे भीष्माचार्य की सूचना है कि, "ऊधश्छिद्यान तु यो धेन्वा क्षीरार्थी न लभेत् पयः। (गाय का स्तनपिण्ड काटने वाले को दूध नहीं मिलता) अत प्रजा पर असह्य करभार लाद कर उसका शोषण नहीं करना चाहिए। लोभी वणिग्जन माल के मूल्य एकदम बढा कर ग्राहको का शोषण करते हैं। अत सभी विक्रेय वस्तुओ के मूल्य राजा ने निर्धारित करने चाहिए। श्रोत्रिय (वेदाध्यायी) ब्राह्मणो से कर नहीं लेना चाहिए। अश्रोत्रिय तथा अग्निहोत्र न करने वाले ब्राह्मणों को करमुक्ति नहीं देनी चाहिए। ऐसे लोगों से सख्त काम करवा लेने चाहिए। राज्यऋण (स्टेट लोन) के विषयो में भी मौलिक सूचनाए भीष्माचार्य ने दी हैं। अविनीत तथा प्रजापीडक दुष्ट राजा का नियमन हर प्रयत्न से आवश्यक होने पर शस्त्र प्रयोग से भी करना ब्राह्मणों का कर्तव्य माना गया है।

"तपसा ब्रह्मचर्येण शस्त्रेण च बलेन च। अमायया मायया च नियन्तव्य यदा भवेत्।।"

इसी प्रकार दस्युओं (परकीय आक्रमणों) द्वारा आक्रमण होने पर अगर क्षत्रिय वीर असमर्थ सिद्ध हुए तो ब्राह्मणों ने शस्त्रधारण करना अधर्म नहीं माना। अर्थशास्त्र या राजधर्म के साथ मोक्षधर्म का भी मार्मिक विवेचन शातिपर्व तथा आश्वमेधिक पर्व के सवादो मे हुआ है। शातिपर्व के सुलभा-जनक सवाद में कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा और इन दोनों निष्ठाओ से भिन्न तीसरी निष्ठा मोक्षार्थियों के लिए बतायी है। वर्णाश्रम के विधिनिषेधो की प्रशसा "शाश्वत भूतिपथ" (अभ्युदय का मार्ग) इस शब्द में की है। सनातन वैदिक धर्म मे पशुयाग का विधान है, परतु आश्वमेधिक पर्व के शक्रऋत्विक् सवाद में, यज्ञ निमित्त पशुहवन कराने वाले शक्र को ऋषि कहते हैं

धर्मोपधानतस्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो। नाय धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते।।

जिस मे हिंसा हो रही है ऐसा यह यज्ञ धर्मकृत्य नहीं है। यह धर्म विघातक कर्म है। हिंसा को धर्म नहीं कहा जा सकता। इस विवाद का निर्णय करने के लिए वे वसु राजा के पास गये। उन दोनो का पक्ष सुन कर वसु राजाने निर्णय दिया

"उञ्छ मूल फल शाकमुपादाय तपोधना.। दानं विभवतो दत्वा नरा स्वर्यान्ति धार्मिका·।।
एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा। ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृति क्षमा। सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्।।

इसी विचारधारा का समर्थन करने वाली नेवले की कथा आश्वमेधिक पर्व मे बतायी गयी है। "उञ्छवृत्ति" (धान्यबाजार में या खेत मे पडे हुए धान्य कणों पर उपजीविका करना) से जीविका चलाने वाले एक गरीब ब्राह्मण ने स्वय भूखा रहकर, क्षुधार्त अतिथि को अपना सारा सत्तुरूप अन्न समर्पण किया। उस ब्राह्मण के घर की धूलि से नेवले का आधा शरीर सुवर्णमय हो गया। बाकी आधा शरीर युधिष्ठिर के यज्ञमडप की पवित्र धूलि से भी सुवर्णमय नहीं हुआ। इस रोचक कथा के द्वारा हिंसामय महायज्ञ से भी क्षुधार्त को अन्नदान देना श्रेष्ठ है यह सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है। यज्ञदान-प्रधान प्रवृत्तिमार्ग से पृथक् मोक्षप्रद निवृत्तिमार्ग का प्रतिपादन,

"निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यो धर्मो मोक्षाय तिष्ठति। सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता।।
आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकांक्षिणाम्। न कुट्यां नोदके संगो न वाससि न वासने।।
न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणालये। अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायण ।
आत्मन्येवात्मनो भाव समासज्जेत वै द्विज ।। एष मोक्षविदा धर्मो वेदोक्त सत्पथ सताम्।।

इन ओजस्वी शब्दों में अनुशासनपर्व मे किया है। यह निवृत्तिलक्षण धर्म ही संन्यासमार्ग है। संन्यास का वास्तव स्वरूप प्रतिपादन करते हुए शातिपर्व के सुलभा-जनक सवाद में राजर्षि जनक कहते हैं

काषायधारण मौण्ड्य त्रिविष्टब्ध कमण्डलुम्। लिंगान्युत्पथभूतानि न मोक्षायेति मे मति.।।
आकिंचन्ये न मोक्षोऽस्ति किंचन्ये नास्ति बन्धनम्। किंचन्ये चेतरे चैव जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते।।

अर्थात् केवल गेरवे वस्त्र परिधान करने से, सिर मुण्डाने से या दण्डकमण्डलु धारण करने से मोक्ष नहीं मिलता। दरिद्रता मोक्ष का या बन्धन का कारण नहीं है। मोक्षप्राप्ति केवल आत्मज्ञान से ही होती है। वह अध्यात्मज्ञान गृहस्थाश्रम में भी प्राप्त होता है। यही सिद्धान्तशान्ति पर्व के तुलाधार-जाजलि सवाद में भी बताया गया है। तुलाधार जाजलि से कहता है

"वेदाह जाजले धर्म सरहस्यं सनातनम्।
सर्वभूतहित मैत्र पुराण ये जना विदु ।।
"सर्वेषा य सुहृन्नित्यं सर्वेषा च हिते रत ।
"मा वृति स परो धर्मस्तेन जीवामि भूतले।।"
"तुला मे सर्वभूतेषु समा तिष्ठति जाजले।
नाऽह परेषा कृत्यानि प्रशसामि न गर्हये।।"
"यो हन्याद् यश्च मा स्तौति तत्रापि श्रृणु जाजले।
समौ तावपि मे स्याता न हि मेऽस्ति प्रियाऽप्रियम्"

इस प्रकार के उदात्त विचार व्यक्त करने वाला तुलाधार अपनी दुकानदारी का काम करता हुआ जाजलि ने देखा। महाभारतकार को कर्म तथा ज्ञान निष्ठाओ मे भी जो निष्ठा अभिमत थी वह यही तीसरी निष्ठा है। राजर्षि जनक ने इसी तीसरी निष्ठा का अवलब किया था। पारिवारिक जीवन में प्राप्त कर्तव्यों को निभाते हुए उनके बन्धन से अलिप्त रहना, किसी की आसक्ति न रखना, किसी का द्वेष, मत्सर, वैर न करना और सर्वभूतहित मे निरत रहना, यहि इस तीसरी निष्ठा का स्वरूप है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी को "निष्काम कर्मयोग" कहा है। शातिपर्व के नारायणीयोपाख्यान में भगवद्गीता में प्रतिपादित भागवत धर्म का स्वरूप समुचित पद्धति मे प्रतिपादन किया है। उपरिनिर्दिष्ट अर्थशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र के विषयों के अतिरिक्त दैववाद और प्रयत्नवाद, लक्ष्मी का प्रियस्थान, व्यावहारिक आचरण, गोप्रशसा, दानप्रशसा, लोकोपकारक पूर्तकर्मों की प्रशसा, इत्यादि विविध महत्त्वपूर्ण विषयो का विवेचन महाभारत में हुआ है। इन सभी विषयों के प्रतिपादन में महाभारत की वैशिष्ट्यपूर्ण विचारधारा का परिचय होता है।

पर्वानुक्रम के अनुसार महाभारत का कथासार

1 "आदिपर्व"

नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषि यज्ञ कर रहे थे। एक दिन पुराण सुनाने वाले सौति वहां आये। ऋषिगण ने उनसे पूछा, "आप कहा से आये हैं। वे कहने लगे "हम राजा जनमेजय के यज्ञ से आये हैं। किन्तु आस्तिक ऋषि ने यह यज्ञ पूरा नहीं होने दिया। उस सत्र में वैशम्पायन ने राजा जनमेजय को महाभारत की कथा सुनायी। उस कथा को श्रवण कर हम यहा आये

है। तब ऋषियों ने निवेदन किया, "महाराज, हमें यह जानने की अत्यत उत्कण्ठा है कि जनमेजय ने सर्पसत्र क्यों किया और आस्तिक ने उसे पूर्ण क्यों नहीं होने दिया, एव वैशम्पायन ने महाभारत का कैसे वर्णन किया? कृपया श्रवणलाभ करायें।" यह सुनकर सौति कहने लगे ·

जरत्कारु नाम के एक अविवाहित ऋषि तीर्थयात्रा कर रहे थे। एक बार उन्हें अपने मृत पूर्वजो का दर्शन हुआ। मृत पूर्वजों ने उनसे कहा, "जब तुम अपनी वशवृद्धि चलाओगे तभी हमें सद्गति प्राप्त होगी।" जरत्कारु ने उत्तर दिया, यदि मेरे नाम की स्त्री मुझे मिले तो मै अवश्य विवाह करूगा।" इतना कहकर जरत्कारु ऋषि चले गये।

कश्यप ऋषि की कद्रू और विनता नाम की दो पत्निया थी। एक दिन सूर्यरथ के अश्वों के रग के विषय में उन दोनो में विवाद हुआ। कद्रू का कहना था कि सूर्यरथ का अश्व सम्पूर्णतया श्वेत नहीं है, किन्तु विनता का आग्रह था कि वह केवल श्वेत ही है। इस बात पर होड लगी। निश्चित हुआ कि जिसका कथन असत्य हो वह दूसरी की दासी बने। कद्रू ने अपने सर्व पुत्रों (सर्पों से) से कहा कि "तुम सब अश्व की पूछ मे लिपट जाओ ताकि पूछ काली दीख पड़े और मुझे दासित्व प्राप्त न हो।" उनमें से कुछ सर्पों ने यह बात अमान्य की। अत कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि "जनमेजय के सर्पयज्ञ मे तुम्हारी मृत्यु होगी।"

दूसरे दिन दोनो अश्व देखने निकलीं। कुछ सर्पो ने जा कर उसकी पूछ काली कर दी थी। अत विनता कद्रू की दासी बन गयी। विनता को गरुड नामक एक पुत्र था। उसने सर्पों से पूछा, "हम आपके दास्य से मुक्त होने के लिये क्या उपाययोजना करे?" सर्पों ने कहा, हमें अमृत की प्राप्ति कर देने पर तुम मुक्त हो सकोगे।" गरुड ने यह बात मान ली। देवदानवों के समुद्रमन्थन के समय प्राप्त अमृत, यद्यपि अत्यत सुरक्षित स्थान पर था, परन्तु गरुड ने उसे प्राप्त किया और सर्पो को देकर मुक्ति प्राप्त की।

जिन सर्पों को कद्रू ने शाप दिया था उनमे से वासुकि नाम के सर्प से ब्रह्माजी न कहा, "तुम अपनी भगिनी जरत्कारु का विवाह जरत्कारु ऋषि से कर दो। उसका पुत्र तुम्हारी रक्षा करेगा। वासुकि ने उसका कहना शिरोधार्य कर अपनी भगिनी का जरत्कारु से विवाह कर दिया। इसी का पुत्र आस्तिक कहलाया।

पाण्डवो के पोते राजा परीक्षित ने अपने राज्यकाल में एक बार ऋषि के गले मे मृत सर्प पहना दिया। ऋषि के पुत्र ने यह देख कर राजा को शाप दिया, "तुम सात दिन के भीतर तक्षक सर्प के दंश से मृत्यु प्राप्त करोगे।" उसकी शापवाणी सत्य हुई। परीक्षित की मृत्यु के उपरान्त जनमेजय ने राजपद सम्हाला। उसने तक्षक से बदला लेने के लिये सर्पसत्र आरम्भ किया। आस्तिक वहा पहुचा। जनमेजय ने जब उसे मुहमागी बात देने का वचन दिया, तब उसने प्रार्थना की कि "सर्पसत्र अभी के अभी समाप्त हो।" इस प्रकार सर्पों की रक्षा हुई।

उस सर्पसत्र मे व्यास ऋषि की आज्ञा से वैशम्पायन ने राजा जनमेजय को महाभारत की कथा सुनायी। वेशम्पायन ने कथा आरम्भ की-

मत्स्य के उदर में दो बालक अवतीर्ण हुए। उनमें से लडका था मत्स्यराजा। उसको उपरिचर राजा ने आश्रय दिया और लडकी मत्स्यगन्धा का धीवर को समर्पण किया। उसे पराशर ऋषि से एक पुत्र हुआ। वही है व्यास ऋषि। उन्होंने इस महाभारत की रचना तीन वर्षो में सपूर्ण की, जिसके लेखक स्वय गणेशजी हुए थे।

चद्रवश के राजा शन्तनु के गगा से उत्पन्न पुत्र भीष्म ने स्वय ब्रह्मचारी रहकर मत्स्यगन्धा का विवाह शन्तनु से कराया। मत्स्यगन्धा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। 1) चित्रागद और 2) विचित्रवीर्य। उनमे से चित्रागद का अविवाहित अवस्था मे देहान्त हुआ और दूसरा विचित्रवीर्य विवाह होने के बाद यक्ष्मपीडित हो कर मर गया। व्यास ऋषि ने उनका वश बढाया। विचित्रवीर्य की पत्नियों को धृतराष्ट्र और पाण्डु ये पुत्र हुए और विदुर दासी से हुआ। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी को दुर्योधन, दु शासन आदि एक सौ पुत्र हुए और दु शला नामक एक कन्या हुई। धृतराष्ट्र को एक युयुत्सु नामक दासीपुत्र भी था। पाण्डुराजा की दो पत्निया थी, कुन्ती और माद्री। कुन्ती को धर्म, भीम, अर्जुन ये तीन और माद्री को नकुल और सहदेव ये दो पुत्र पाण्डु से हुए। पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त माद्री ने सहगमन किया। विवाह के पूर्व कुन्ती को सूर्य से कर्ण नामक एक पुत्र की प्राप्ति हुई थी। उसने कर्ण को गगा के प्रवाह मे छोड दिया जो एक सूत को प्राप्त हुआ।

पाण्डव प्रबल थे इस लिये दुर्योधन उनसे द्वेष रखता था। उसने एक समय भीम को विष देकर मारने का प्रयत्न किया। पाण्डवों को लाक्षागृहमें जलाने का षडयत्र भी रचा था, परन्तु उन सब सकटो में भी सुरक्षित रह कर हिडिम्बासुर और बकासुर का नाश पाण्डवों ने किया। द्रौपदी स्वयवर मे अर्जुन ने शर्त जीत ली। द्रौपदी सबकी पत्नी हुई और धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य प्रदान किया। इन्द्रप्रस्थ उनकी राजधानी थी। नारद के आदेशानुसार पाच पाडवों ने यह तय किया कि द्रौपदी के साथ जो पति (पाण्डवों मे से एक) एकान्त करे उसके अलावा कोई वहा जा कर यदि उन्हें देखे तो उसको एक वर्ष की तीर्थयात्रा करनी होगी।

एक बार रात के समय चोरों द्वारा एक ब्राह्मण की गाये चुराई गयीं। उस समय उनकी रक्षा के लिए अर्जुन को शस्त्रग्रहणार्थ धर्मराज और द्रौपदी के एकान्तका भग करना पडा। गायो को मुक्त कर अर्जुन तीर्थयात्रा करने के लिये गया।

तीर्थयात्रा करते करते वह द्वारका पहुंचा। वहां कृष्ण की अनुमति लेकर उसने सुभद्राहरण किया और वह इन्द्रप्रस्थ गया। सुभद्रा का पुत्र था अभिमन्यु। द्रौपदी को पांच पाण्डवों से पांच पुत्र हुए। उनके नाम थे- 1) प्रतिविन्ध्य, 2) सुतसोम, 3) श्रुतकर्मा, 4) शतानीक और 5) श्रुतसेन।

अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुचने पर श्रीकृष्ण भी वहां आये। कुछ दिनों के बाद उनकी सहायता लेकर अग्नि ने खाण्डववन भस्मसात् किया। तब अर्जुन ने मयासुर की रक्षा की। तक्षकपुत्र अश्वसेन छूट निकला।

महाभारत के आदिपर्व में आठ उपाख्यान मिलते हैं।

1) **शिष्यपरीक्षा** : धौम्य ऋषि के कुल तीन शिष्य थे। उनमें से आरुणि नामके शिष्य को ऋषि ने खेत में पानी देने की आज्ञा दी। खेत के निकट बहने वाले नाले में लेट कर खेत में पानी देने के कारण ऋषि ने अनुग्रह कर उसे वेदशास्त्रसम्पन्न बनाया। दूसरा शिष्य था उपमन्यु। उसको गोरक्षण का काम दिया। गुरुजी उसको खाने के लिये कुछ भी न देते थे। उसने अन्नग्रहण करने के लिये अलग अलग युक्तियां खोज निकाली। वह अरण्यस्थित घरों से जो भिक्षा ग्रहण करता उसे गुरु स्वय ले लिया करते। उसके बाद वह दो समय भिक्षा मागने लगा। धौम्य ऋषि ने उसको वह भी मना किया। उसके बाद गाय का दूध और बाद में दूध पीते समय बछडों के मुंह से टपकने वाला फेन पीकर भी जब न बना तो उसने आक के पत्ते खाये। उससे वह बेचारा अन्धा होकर कुए में गिर पडा। तब ऋषि ने प्रसन्न होकर उसको सब की तरह विद्या प्रदान की। तीसरा शिष्य था वेद। ऋषि ने उसे गाडी और हल में जोता। तब भी वह एकनिष्ठ बना रहा। यह देख कर धौम्य ने उसे भी सर्वज्ञ बना दिया।

2) **शकुन्तलाख्यान** : विश्वामित्र से मेनका को शकुन्तला नाम की पुत्री हुई। मातापिता से परित्यक्त शकुन्तला का पालनपोषण कण्वऋषि ने किया। एक समय कण्वऋषि की अनुपस्थिति में राजा दुष्यन्त वहां आया और उसने शकुन्तला को देखा। राजा का चित्त मोहित हुआ। वह क्षत्रियकन्या है यह जान कर दुष्यन्त ने उसके साथ गान्धर्व पद्धति के अनुसार विवाह किया। शकुन्तला ने भरत नाम के पुत्र को जन्म दिया। उसके नाम से ही अपने इस देश को भरतखण्ड कहा जाता है। कण्व ने शकुन्तला को उस पुत्र के साथ राजा के पास भेज दिया।

3) **कच-देवयानी-उपाख्यान** : देवदैत्यों के युद्ध में देवों का नाश होने लगा। देवों के गुरु बृहस्पति थे। उनको सजीवनी विद्या का ज्ञान नहीं था। उस विद्या का ग्रहण करने के लिये देवों ने गुरुपुत्र कच को दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास भेजा। असुरो को यह बात पसद नहीं थी। उन्होंने कच का दो बार वध किया, परन्तु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का कच से अत्यन्त प्रेम होने के कारण शुक्राचार्य ने उसे दो बार जीवित किया। तीसरे समय तो असुरों ने कच के मृत देह की राख मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को पिलायी। देवयानी के आग्रह से शुक्राचार्य ने संजीवनी मन्त्र का उच्चारण करते ही कच उनके पेट मे से बोलने लगा। तब शुक्राचार्य ने उसको सजीवनी मंत्र की दीक्षा दी। उसके उपरान्त कच उसका पेट फाड कर बाहर आया और मत्रसामर्थ्य से उसनि शुक्राचार्य को सजीव किया। देवो की ओर जाते समय देवयानी की प्रेमयाचना कच ने मान्य न करने के कारण, देवयानी ने कुपित हो कर उसे शाप दिया कि, "तुम्हारी विद्या तुहारे ही काम न आएगी।" कच ने भी शाप दिया कि, "एक भी ब्राह्मणपुत्र तेरा वरण नहीं करेगा।" कच ने बाद में वह विद्या देवों को सिखा दी।

4) **ययाति उपाख्यान** : असुरों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और दैत्यपुत्र शुक्राचार्य की कन्या देवयानी ने अपनी सखियों के साथ जलक्रीडा करते समय, तीर पर रखे हुए उनके वस्त्र तेज हवा ने एक कर दिये। जल्दी में शर्मिष्ठा ने देवयानी का वस्त्र परिधान किया। इस लिये उन दोनों में झगड़ा होकर शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएं में ढकेल दिया और वह चली गयी। बाद में ययाति नामक एक राजा मृगया करने के लिये वहां आया था। उसने देवयानी का हाथ पकड कर उसे कुए से बाहर निकाला। देवयानी ने यह हठ किया कि यदि शर्मिष्ठा मेरी दासी बनेगी तभी मै नगर में आऊगी। शर्मिष्ठा ने यह बात मान ली। देवयानी का विवाह ययाति के राजा के साथ होने के उपरान्त शर्मिष्ठा भी उसके साथ दासी बन कर गई। देवयानी को यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र और शर्मिष्ठा को द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र हुए।

5) **अणीमाण्डव्योपाख्यान** : एक बार माण्डव्यऋषि के तप करते समय कुछ चोर राजा के यहां चोरी कर के ऋषि के आश्रम में जा छिपे। इस लिये चोरों के साथ ऋषि को भी राजा ने सूलीपर चढ़ा दिया। अन्य चोर तो मर गये परन्तु यह देख कर कि माण्डव ऋषि सूली पर भी जीवित है। राजाने उन्हें सूली पर से उतारा। लेकिन उस शूल का अग्र अर्थात् अणी उनके शरीर में बिंधा रहने के कारण वे अणीमाण्डव्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। बाद में अणीमाण्डव्य यम के यहां गये और अपने इस भोग का कारण उसे पूछा। यम ने बताया, "तुमने शैशव में एक कीटक को सींक से छेदा था, इस लिये वही दुःख आज तुमको भोगना पड रहा है।" इतने से पाप के लिये इतना भारी दण्ड देने के कारण ऋषिने यम को शाप दिया, "शूद्र योनि में तुम्हारा जन्म होगा।" उसी शाप के कारण यमराज विदुर हुए।

6) **जम्बुकनीति** : किसी एक जंगल में शेर, भेड़िया, सियार, नेवला और चूहा ऐसे पांच मित्र रहते थे। उन्होंने एक

बार हट्टा कट्टा काला हिरन देखा। वह चपल होने के कारण उनके हाथ न लगा। जब वह सोया हुआ था तब सियार के कहने के अनुसार चूहे ने उसके खुर काटना शुरु किया। यह देख कर कि अब उससे भागा नहीं जाता शेर ने उसकी जान ले ली। वह हिरन सिर्फ मुझे ही मिल जाय ऐसी सियार की इच्छा हो गई और उसने एक षडयन्त्र रचा। उसने अन्य प्राणियों से कहा, "आप सब लोग नहा कर आइये तब तक मै यहा बैठता हू।" सबसे पहले पहल शेर आया। सियार उसे कहने लगा, "चूहे का कहना है कि आज मेरे पराक्रम के बल पर ही शेर को भोजन मिल रहा है। धिक् धिक् लानत है उसकी शूरता पर।" यह बात सुनते ही शेर दूसरा जानवर मारने के लिये जगल में गया। बाद में चूहा आया। सियार उससे कहने लगा कि, "नेवला कहता है, कि हिरन को शेर ने मारा है, इस लिये यह मास मुझे हजम नहीं होगा इस लिये मै चूहे को ही खाऊंगा।" यह सुनते ही चूहा भाग गया। बाद में भेडिया आया। सियार उसको कहने लगा, "शेर अभी कह रहा था कि मेरी शिकार खाने वाले तुम कौन हो? शेर तो यही कह कर क्रोधपूर्वक गया है कि मै अभी अपने बीवी-बच्चों को लाता हूँ।" यह सुनकर भेडिया भी भाग खड़ा हुआ। बाद में नेवला आया। सियार उससे बडे गर्व से कहने लगा, "देखो भाई। मैने अभी तक सब का पराभव कर उन्हें मार भगाया है। यदि तुम्हें घमण्ड हो तो आओ। युद्ध हो जाने दो।" सियार की यह बात सुन कर नेवला भी भाग गया। उसके उपरान्त सियार ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक भरपेट भोजन किया।

सार : डरपोक को डर दिखा कर, शूर के सामने नम्र होकर, दुर्बल को धमकी दे कर, जैसा बन पडे वैसा अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहिये।

6) धेनुहरण : कान्यकुब्ज देश में गाधिराजा का पुत्र विश्वामित्र बहुत पराक्रमी राजा था। एक समय जब वह अपनी सेना के साथ मृगया के लिये गया था, तब थक कर वसिष्ठ मुनि के आश्रम में गया। वसिष्ठ के पास नन्दिनी नाम की कामधेनु थी। उसके कृपाबल से विश्वामित्र भोजनादिका प्रबन्ध वसिष्ठने इतका उत्तम किया कि विश्वामित्रके मनमें गायकी प्राप्ति का अभिलाष उत्पन्न हुआ। वसिष्ठसे विश्वामित्र ने कहा कि, "मै अपना समस्त राज्य आप को देने को तैयार हू परन्तु कृपया आपकी कामधेनु मुझे दीजिये।" वसिष्ठ ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया। सारा राज्य दे कर भी वह अपनी कामधेनु मुझे नहीं देता इस बात पर उसे क्रोध आ गया और जबरदस्ती से वह कामधेनु को ले जाने लगा। तब कामधेनु के शरीर से हजारों वीर निकले और उन्होंने विश्वामित्र का पराभव किया। तब विश्वामित्र को यह ज्ञान हुआ कि "ब्रह्मतेज ही सच्ची शक्ति है। क्षत्रियबल उसके सामने कुछ भी नहीं" अत स्वय ब्राह्मण ही बनना होगा। बाद मे महान् तपश्चर्या कर वे सचमुच ब्राह्मण बन गये।

7) सुन्दोपसुन्दाख्यान : हिरण्यकश्यपू के वश में निकुम्भ नाम का एक असुर राजा था। जिसके दो पुत्र- सुन्द और उपसुन्द के बीच अत्यन्त प्रेम-भाव और एकमत था। सुन्दोपसुन्दों ने महान तपश्चर्या कर ब्रह्मा से वर माँगा कि, "एक दुसरे के अतिरिक्त और किसी व्यक्ति के हाथों हमे मृत्यु प्राप्त न हो।" वरप्राप्ति होते ही वे उन्मत्त होकर देवऋषियों को पीडा देने लगे।

तब ब्रह्माजी ने तिलोत्तमा नामक एक अतिसुदर अप्सरा निर्माण कर उनके पास भेज दी। उसका सौन्दर्य देख कर दोनों ही मोहाध हो गये। सुन्द कहने लगा, "यह मेरी स्त्री तुमको माँ के समान है।" और उपसुन्द कहने लगा, "यह मेरी स्त्री तुझे बहू के समान है।" वे दोनो भाई आपस में झगडने लगे। परिणाम यह हुआ कि दोनो भाइयों ने आपस में लड कर एक दूसरे का घात किया।

2 "सभापर्व"

मयासुर को खाण्डवन से विमुक्त करने के कारण उसने पाण्डवों के लिए कृतज्ञतापूर्वक एक अद्‌भुत राजप्रासाद निर्माण किया। उस प्रासाद मे बहुत ही चमत्कार थे। जहा पानी था वहां भूमि का भास हो रहा था और जहा भूमि वहा पानी का भास हो रहा था। यह प्रासाद दस हजार हाथ लम्बा चौडा था और उसका निर्माण करने के लिये मयासुर को चौदह मास लगातार परिश्रम करना पडा था। पाण्डवों ने बडे ठाठ बाठ से उस महान् प्रासाद में प्रवेश किया।

एक दिन नारदमुनि पाण्डवो से मिलने के लिये आये थे। उन्होंने देवसभा का वर्णन किया और पाण्डवों से कहा, "तुम्हारे पिता पाण्डुराजा मुझे स्वर्ग में मिले थे। उन्होंने यह सन्देश भेजा है कि तुम राजसूय यज्ञ करो।" यह सन्देश सुन कर धर्मराज ने श्रीकृष्ण को बुला कर उनकी राय ली। कृष्ण ने कहा, "राजसूय यज्ञ का विचार उत्तम है परन्तु इससे पहले सब राजाओं पर विजय प्राप्त करनी होगी। इस समय जरासन्ध अत्यन्त प्रबल राजा है। उसने 86 राजाओं को गुहा में बन्दी बना रखा है और बाकी 14 राजाओ को जीत कर वह एकदम 100 राजाओं को महादेव पर बली चढाने वाला है। यदि तुम राजसूय यज्ञ करना चाहते हो तो तुम्हें पहले जरासन्ध को मार कर उन राजाओ को मुक्त करना होगा। इस लिये भीम और अर्जुन मेरे साथ दो। हम तीनों शक्तियुक्ति से उसका नाश करके लौटेंगे। उसके बाद धर्मराज की आज्ञा लेकर वे तीनों निकले। जरासन्ध के यहा पहुंच कर भीम और जरासन्ध का तेरा दिन अहोरात्र मल्लयुद्ध हुआ। चौदहवें दिन जरासन्ध को थका हुआ सा देख श्रीकृष्ण ने भीम को सुझाया कि, "यही अवसर है।" उसके अनुसार भीम ने जरासन्ध की एक जांघ अपने पैर से दबाकर

दूसरी जाघ हाथ से पकड उसे बीच में से चीर कर शरीर के दो भाग कर दिये। बाद में बन्दी राजाओं को विमुक्त कर, जरासन्ध के पुत्र को गद्दी पर बिठा कर और पर्याप्त द्रव्य ले कर श्रीकृष्ण भीमार्जुनों के साथ इन्द्रप्रस्थ को वापस आये। इसके बाद भीम आदि चार पाण्डवो ने चारों दिशाओ में जा कर राजाओं से धन प्राप्त किया और राजसूय यज्ञ की सिद्धता होने लगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी को निमंत्रण भेजा गया। उसके अनुसार सब लोक एकत्रित हुए। हस्तिनापुर से भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, आदि महान् लोग आने पर यज्ञका कुछ न कुछ काम हर व्यक्ति पर सौपा गया और यज्ञ का आरम्भ हुआ। जब यज्ञ में अग्रपूजा का प्रश्न उठा तब धर्म ने भीष्म से पूछा, "किस व्यक्ति को यह बहुमान देना योग्य होगा?" भीष्म ने उत्तर दिया, "भगवान श्रीकृष्ण ही इसके योग्य व्यक्ति हैं।" इसके अनुसार सहदेव ने सबसे पहले श्रीकृष्ण की पूजा की। शिशुपाल को यह बात असह्य हुई। वह पाण्डवो, भीष्म और श्रीकृष्ण को भी क्रोधाविष्ट हो कर मनचाही गालियों देने लगा। यह देख कर श्रीकृष्ण एकत्रित समूहों को उद्देश्य कर बोले कि "सुनिये, शिशुपाल की माता को दिये गये वचन अनुसार मैंने आज तक इसके सौ अपराध सहन किये हैं। अब यह वध करने के सर्वथा योग्य है।" उनके स्मरण करते ही उपस्थित हुए सुदर्शन चक्र से श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का शिरउच्छेद किया। उसी समय धर्मराज ने शिशुपाल के पुत्र को वहीं राज्याभिषेक किया। अवभृतस्नान के उपरान्त यज्ञ समाप्त होने पर सब को यथोचित सम्मानित कर बिदा किया गया। सब लोग स्वस्थान लौटे। केवल दुर्योधन और शकुनि मयप्रासाद की शोभा देखने के लिये ठहरे। मयप्रासाद का दर्शन देखते देखते कई अवसरों पर दुर्योधन की अप्रतिष्ठा हुई। वह धरती को पानी समझ कर अपनी धोती सम्हाल कर चलता और पानी को भूमि समझ कर चलता तो पानी मे गिर पडता। यह समझ कर कि दरवाजा बन्द है वह उसे खोलने का प्रयत्न करता और दरवाजे को खुला जान कर जाने लगता तो दीवार से जा टकराता।

ऐसे हर प्रसग मे उसकी खिल्ली उडाई गयी। भीम ने तो "अन्धे का बेटा" कह कर उसे चिढाया। तब शकुनि और दुर्योधन ने हस्तिनापुर का रास्ता सुधारा। रास्ते से चलते चलते दुर्योधन को मूक देखकर शकुनि ने इस मूकता का कारण जानना चाहा। दुर्योधन तो मन ही मन कुढ रहा था। बोला "पाण्डवों का यह वैभव और मयप्रासाद देखते समय मेरा जो अपमान हुआ है वह मेरे लिए असह्य है, उस वैभव को प्राप्त कर सकने का कोई उपाय समझ मे न आने से ऐसा लगता है कि मै आत्महत्या कर लू।"

शकुनि ने कहा कि इसके लिये रामबाण युक्ति है। सुनो "धर्मराज को द्यूतकला का विशेष ज्ञान नहीं परन्तु द्यूत का निमत्रण वह कभी भी अस्वीकृत न करना उसका व्रत है। मै स्वयं कपट द्यूत में प्रवीण हू। हम पाण्डवों को द्यूत खेलने के लिये आमत्रित कर उनका समस्त राज्य जीत लेगे परन्तु यह सब धृतराष्ट्र की सम्मति से ही करना होगा।"

हस्तिनापर मे आते ही यह बात धृतराष्ट्र को सुनाई गयी। पहले पहल धृतराष्ट्र ने इसमें बहुत आनाकानी की परन्तु अन्त में उसने सम्मति दी। इसके लिये एक उत्तम प्रासाद का निर्माण होने पर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के पास विदुर के द्वारा यह सन्देश भेजा कि, "वे यहा आ कर इस नवीन प्रासाद का दर्शन करें और यहीं कौरवो के साथ मित्रत्व की भावना से द्यूत खेले। यह सुनकर धर्मराज द्रौपदी और अन्य पाण्डव वहाँ उपस्थित हुए।

यथासमय द्यूत का प्रारम्भ हुआ। जो दांव शकुनि लगाता था उसमें उसी की जीत थी। सम्पूर्ण राज्य, बन्धु और स्वय धर्मराज बाजी हार जाने पर शकुनि बोला, "अभी द्रौपदी तो है। सम्भव है इस दांव में तुम्हारी जीत हो।" परन्तु वह दाव भी शकुनि ने ही जीता। इसके अनन्तर दुर्योधन के कहने पर दु:शासन द्रौपदी को भरी सभा मे खींच लाया। विकर्ण और विदुर ने कहा कि, "द्रौपदी की यह विटम्बना इस सभा को शोभा नहीं देती। लेकिन कर्ण की सूचना के अनुसार दु:शासन ने द्रौपदी का चीरहरण करना चाहा। तब द्रौपदी ने दीनता से सर्व शक्तिमान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना की। उस सकट के समय एक वस्त्र के नीचे दूसरा, दूसरे के नीचे तीसरा इस प्रकार सैकडो वस्त्र निकले। अन्त में दु शासन थक कर बैठ गया। दुर्योधन ने अपनी बायी जघा खुली करके द्रौपदी को दिखाई। दोनो बार भीमने दु:शासन का रक्तप्राशन करने की और दुर्योधन की बायी जघा गदा के प्रहार से कुचलने की प्रतिज्ञाएँ की। जो कुछ घटना हुई वह अनुचित हुई यह जान कर धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को वर मांगने को कहा। उस वर के अनुसार पाण्डवों को पुन राज्य प्राप्त हुआ अनंतर वे इन्द्रप्रस्थ को लौटे।

यह बात कर्ण, दुर्योधन इत्यादि को अमान्य थी। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से हठ किया कि दूसरी बार द्यूत खेलने के लिये पाण्डवो को बुलाना ही होगा। उसके अनुसार धृतराष्ट्र ने द्यूत का निमंत्रण भेज कर पाण्डवों को आधे रास्ते से वापस बुलाया। पाण्डवों को आने पर पुनः द्यूतारम्भ हुआ। इसलिये उसको "अनुद्यूत" कहा जाता है। इस अनुद्यूत में एक ही दाव और एक ही बाजी थी। जो हारेगा उसे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा। अज्ञातवास में पहुचाने जाने पर फिर बारह वर्ष वनवास करना होगा। यह भी तय हुआ कि "यदि पाण्डव हारें तो उन्हें द्रौपदी के साथ इस बाजी की भुगतान करनी पडेगी।" यह दाँव भी शकुनि ने जीता। इसलिये द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव वन में गये। कुन्ती विदुर के घर में रहने लगी। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के साथ रथ, दास, दासी आदि सामग्री भेजी थी।

उपकथा १, जरासन्धजन्म : मगध देश में बृहद्रथ नाम का एक राजा था। उसकी दो रानियाँ काशीराजा की कन्याएँ थी। उसने पुत्रप्राप्ति के लिये अनेक यज्ञ किये थे किन्तु उसे पुत्रप्राप्ति नहीं हुई। बृहदथ राजा जब वृद्ध हो गया तब एक दिन उसे यह ज्ञात हुआ कि काक्षीवान् गौतम का पुत्र चण्डकौशिक नगर के समीप आया है। राजा वहा गया और उसने चण्डकौशिक की सम्मान से पूजा की। इतने में ही चण्डकौशिक की गोद पर एक आम्रफल टपका। ऋषि ने वह फल मन्त्रपूजित कर राजा को प्रदान किया और कहा कि, "इस फल से तुम्हें पुत्रप्राप्ति होगी। "वापस लौटने पर राजा ने दोनों पत्नियो को आधा आधा फल खाने के लिये दिया। कुछ काल के बाद रानियाँ गर्भवती हुई। यथाकाल प्रसूति में उनको आधा आधा पुत्र हुआ। रानीयों ने उसे चौराहे पर फेंक दिया। जरा नाम की राक्षसी ने उन दोनों भागों को जोडने पर एक सपूर्ण शरीर हुआ। जरा ने वह पुत्र राजा को दे दिया। जरा नाम की राक्षसी ने सन्धिद्वारा उत्पन्न करने के कारण उस पुत्र का नाम जरासन्ध रूढ हुआ।

उपकथा २, शिशुपाल जन्म: चेदि देश के राजा को एक पुत्र हुआ। उसकी तीन आखें और चार हाथ थे। जन्म होते ही वह गर्दभ के समान रेंकने लगा। वह अशुभ बालक देखते ही उसके माँ बाप उसका त्याग करने का विचार करने लगे। इतने में आकाशवाणी हुई कि "इसका त्याग मत करो। यह अत्यन्त पराक्रमी होगा। शस्त्र से ही इसे मृत्यु प्राप्त होगी। जिसके हाथों इसका अन्त होगा वह इसके जन्म के पूर्व ही उत्पन्न हो चुका है।" उसकी माँ ने कहा कि, "मै यह जानने के लिये अत्यत उत्सुक हूँ कि, "इसकी मृत्यू किसके हाथो से होगी?" आकाशवाणी ने फिर से कहा, "जिसकी गोद मे बिठाने पर इसके दोनों हाथ और तीसरी आँख आप ही आप गिरेगी, उसी के हाथों इसे मृत्यु प्राप्त होगी।" यह अद्भुत वार्ता सब ओर फैली और अनेक लोग उस बालक को देखने के लिये आने लगे। एक समय बलराम और श्रीकृष्ण अपनी फूफी के इस पुत्र को देखने के लिये आये। बालक को श्रीकृष्ण की गोद मे रखते ही उसके दोनों हाथ और तीसरी आँख गल गई। यह देख कर उसकी माता ने श्रीकृष्ण की प्रार्थना की।" मेरा पुत्र कितने ही अपराध क्यो न करे, तुम उसे क्षमा ही करना। कृष्ण ने कहा कि, "मैं केवल तुम्हारी ओर देख कर इसके एक सौ अपराध क्षमा करूगा और बाद मे अधिक अपराध करने पर इसका वध करूगा।" इसी के अनुसार धर्म के राजसूय यज्ञ मे श्रीकृष्ण ने उसका वध किया।

3 वनपर्व का सारांश

द्यूतक्रीडा में पराभूत पाण्डव वनवास के लिये निकले तब उनके साथ ब्राह्मणों का मेला निकला। उन सब का भरण-पोषण कैसे किया जाय इस चिन्ता में धर्मराज थे तब धौम्यऋषि ने उन्हे सूर्य भगवान की आराधना करने का आदेश दिया। धर्म की आराधना से सूर्यभगवान प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे एक ताम्रपात्र प्रदान किया और कहा कि "इस पात्र से जब तक द्रौपदी परोसती रहेगी तब तक तुम्हारा अन्न कम नहीं होगा।" वह पात्र ले कर धर्मराज काम्यक वन में गए। वहाँ जाते समय किर्मीर राक्षस ने उन्हे सताया तब भीम ने उसका नाश किया। पाण्डवो के वन मे रहते दुर्योधन, कर्णादि उन्हें मारने के लिये निकले। किन्तु व्यास ऋषि के कहने से वे वापस लौटे।

एक समय मैत्रेय ऋषि कौरवो के यहाँ गये। उन्होंने दुर्योधन को पाण्डवो का द्वेष न करने का उपदेश देते हुए कहा, "उससे तेरा कल्याण नहीं होगा।" दुर्योधन ने उनका कहना न मान कर वह अपना अक पीटने लगा। तब ऋषि ने कुपित होकर उसे शाप दिया कि, "युद्ध मे भीम की गदा से तेरा अक छिन्नभिन्न हो जाएगा।"

पाण्डवों के वनवास की वार्ता सुनने पर श्रीकृष्ण आदि यादव गण, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु आदि लोग पाण्डवों को मिलने के लिये वन मे गये। वहाँ वार्तालाप में श्रीकृष्ण ने कहा कि "मै शाल्व राजा के साथ युद्ध में निमग्न था, नहीं तो मे यह द्यूत होने ही नहीं देता।, "अनन्तर श्रीकृष्ण, सुभद्रा तथा अभिमन्यु को साथ ले कर द्वारका गये। द्रौपदी के पाच पुत्रो को साथ ले कर धृष्टद्युम्न अपने देश गया। धृष्टकेतु अपनी बहन (नकुल की पत्नी) रेणुमती को साथ ले कर गया। तत्पश्चात् पाण्डवो के द्वैतवन में जाने पर द्रौपदी और भीम का मत हुआ कि कौरवों ने कपटप्रयोग से हमारा राज्य छीन लिया है, अत "शठे शाठ्यम्" न्याय से हम कौरवों को परास्त करें। इस पर धर्मराज ने उत्तर दिया, "अविचार से किसी भी बात का फल अच्छा नहीं होता। कौरवो का पक्ष प्रबल है। उनसे युद्ध करने की क्षमता हमें प्राप्त करनी चाहिये।"

उसी चर्चा के समय व्यास मुनि वहा पहुचे। उन्होंने धर्मराज को एक मत्र दिया और कहा "यह मंत्र अर्जुन को दे कर उसे दिव्य अस्त्र की प्राप्ति के लिये भेजो" बाद में पाण्डव काम्यक वन में गये। धर्मराज ने अर्जुन को वह मत्र पढाया और दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति करने के लिये उसे रवाना किया। पाण्डवों का निवास उस वन में था उस समय बृहदश्व मुनि वहा आये। उनकी पूजा कर धर्मराज ने उनसे पूछा कि, "क्या मेरे समान अभागा राजा आपके देखने में या सुनने में आया है?" ऋषि ने कहा कि, "निषधदेश में वीरसेन राजा का पुत्र नल बहुत ही सुंदर था। विदर्भ देश के भीमक राजाकी कन्या दमयन्ती ने उसे स्वयंवर में वर लिया था। उन्हे इन्द्रसेन नाम का एक पुत्र और इन्द्रसेना नाम की एक पुत्री हुई। नल के भाई पुष्कर ने द्यूत क्रीडा के लिये नल को आवाहन किया। दमयन्ती का विरोध होने पर भी द्यूत का प्रारम्भ हुआ। दमयन्ती ने अपने

बच्चों को अपने मायके भेज दिया। द्यूत मे पराभूत होने पर नल वन में गया। साथ में दमयन्ती भी गयी। एक समय दमयन्ती को निद्रित अवस्था में त्याग कर नल चला गया। दमयन्ती दुखी हो कर कुछ दिन के लिये अपने मौसी के यहा रही और बाद में विदर्भ देश की ओर चली गयी। कुछ दिन वनवास में काट कर नल राजा अयोध्या में ऋतुपर्ण राजा के यहा नौकरी करता रहा। विदर्भदेश मे आने के बाद पतिपत्नी के मिलन से दोनो बडे आनन्दित हुए। ऋतुपर्ण से नल ने द्यूतविद्या प्राप्त की थी अत पुनश्च द्यूत खेल कर उसने अपना राज्य स्वाधीन किया। नल राजा को तीन वर्ष एकाकी वनवासका दु ख सहना पडा। परन्तु हे धर्मराज, तेरे साथ तेरे भाई हैं, द्रौपदी है, अलग अलग विषयों पर चर्चा करने के लिये ऋषिगण हैं। इतने सब सहायक होने के कारण, तुझे दु.ख करने का कारण नहीं। यदि तुझे भय लगता है कि वनवास के बाद दुर्योधन तुझे द्यूत खेलने के लिये बुलायेगा तो मैं तुझे द्यूतविद्या सिखाता हूं।'' बृहदश्व मुनि ने धर्मको द्यूतविद्या सिखाई।

एक दिन लोमश ऋषि धर्मराज से मिलने आये। वे कहने लगे कि ''मै इन्द्रलोक में गया था। वहाँ इन्द्र ने आप को संदेश दिया है कि, ''अर्जुन ने दिव्य अस्त्र- प्राप्त की है। देवो का महत्त्वपूर्ण कार्य कर के वह तुम्हें मिलने वापस आएगा।'' अर्जुन ने कहा है कि ''पाण्डवो को तीर्थयात्रा करने के लिये कहिये और उस समय उनकी रक्षा करने के लिये आप उनके साथ जाइये'' हे धर्मराज, यदि तुम तीर्थयात्रा करना चाहते हो तो इतना बडा परिवार साथ न रखो।'' ऋषि के आदेश के अनुसार केवल मिष्टान्न खाने के इरादे से जो ब्राह्मण उनके साथ थे, उन्हे वापस लौटा कर केवल तपस्वी ब्राह्मणो को साथ ले कर पाण्डव, धौम्य और लोमश ऋषि तीर्थयात्रा के लिये निकले।

इस यात्रा में धर्म ने लोमश ऋषि से पूछा, ''हमने कभी कुछ भी अधर्म नहीं किया। फिर भी हमें इतना दुख भुगतना पडता है और दुर्योधन के इतना अधर्मी होते हुए भी वह आनन्द से राज्य का उपभोग लेता है इसका कारण क्या है? लोमश ने उत्तर दिया, ''अधर्म मार्ग से चलने वाले पहले पहले सुखभोग प्राप्त कर सकते है किन्तु अन्त मे उनका जड से नाश होता है। देव दानवो के युद्ध में पहले पहले जीत हुई थी दानवो की, परन्तु विजयोन्माद में वे उन्मत्त हो गये और उनका विनाश हो गया। इसी तरह तेरी तीर्थयात्रा करने के बाद कौरवों का विनाश हो कर तुझे राज्य मिलेगा।'' पाण्डव तीर्थयात्रा करते करते उत्तर प्रदेश की ओर गये। वहाँ हिमाचल के निकट सुबाहु राजा का राज्य था। उसके पास धर्म ने अपने दास-दासी, आदि रखकर धर्म पैदल आगे गय। मार्ग मे साध्वी द्रौपदी को चक्कर आ गया। थक कर उसका जी घबरा हुआ था। उसके होश मे आने के बाद भीम ने हिडिंबा से हुये अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया। वह तुरन्त अपनी राक्षससेना ले कर वहा आ गया। पाण्डवों की आज्ञा से उसने द्रौपदी को उठाया। अन्य राक्षसो ने पाण्डवों को और ब्राह्मणो को उठाया। लोमशऋषि आकाश पथ से ही चले। इस प्रकार वे तीर्थयात्री बदरिकाश्रम पहुंचे।

पाण्डवों के वहा रहते एक दिन द्रौपदी ने एक दिव्यसुगंधी कमलपुष्प देखा। उसे देख कर द्रौपदी ने हठ लिया कि, ''ऐसे बहुत से फूल मुझे चाहिये।'' उसकी माग पूरी करने के लिये भीम उत्तर दिशा की ओर निकला। उसे रास्ते मे एक बंदर मिला। वह बोला, ''अभी मैं बहुत अशक्त हो गया हू। इस लिये मेरी यह पूँछ जरा बाजू मे रखकर तू आगे जा।'' भीम ने उसकी पूछ हटाने का प्रयास किया लेकिन वह असफल रहा। तब भीम का अहकार समाप्त हो गया। वह बंदर हनुमान् है यह ज्ञात होने पर, भीम ने उसकी क्षमायाचना की। हनुमान् ने भीम से कहा कि, ''अब तू यहा से आगे नहीं जा सकता। यह देवलोक का मार्ग है। तुझे यदि दिव्य कमलपुष्पों की इच्छा है तो इस रास्ते से जा।'' हनुमान् ने दिखाये रास्ते से भीम चल रहा था। कमलरक्षा के लिये वहाँ असख्य यक्ष थे। उनका विनाश करके बहुत से कमलपुष्प लेकर भीम वापस आ गया। बदरिकाश्रम में जटासुर नामक राक्षस धर्म, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को उठाकर आकाशमार्ग से भाग जा रहा था। तब भीम, घटोत्कचादि राक्षस और ऋषिगण बाहर गये थे। जटासुर ने कपटरूप से ब्राह्मण का वेष धारण कर लिया था। पाण्डवों के शस्त्र और द्रौपदी की उसे इच्छा थी। इस लिये वह वहा रहता था। आकाशपथ से जाते जाते सहदेव ने अपनी मुक्तता कर ली। और भीम को जोर जोर से पुकारा। भीम वहा आया। तब जटासुर ने सबको नीचे रख दिया और वह भीम के साथ युद्ध को सिद्ध हुआ। युद्ध में जटासुर को भीम ने मार डाला। इस घटना के बाद अर्जुन से मिलने के लिये पाण्डव वहा से गन्धमादन पर्वत की ओर निकले। मार्ग मे उनको वृषपर्वा राजर्षि का आश्रम दीख पडा। वहा उन्होंने एक सप्ताह निवास किया। अरण्यवासी ब्राह्मणो को वहां छोड़ कर वे आगे निकले। इतने मे पाण्डवों को गन्धमादन पर्वत के दर्शन हुए उसके निकट आर्ष्टिषेण राजर्षि का आश्रम था। वहाँ बहुत दिन वास्तव्य होने के पश्चात् एक दिन पाण्डवों ने गन्धमादन गिरि पर आरोहण किया। वहां उन्हें कुबेर के दर्शन हुए। कुबेर ने उनसे कहा कि ''यहा आप अपना घर समझ कर रहिये। ये यक्ष आपकी सेवा करेंगे।'' इस तरह वहां वे एक मास रहने के पश्चात् स्वर्ग में पाच वर्ष तक रह कर जिसने शस्त्रास्त्रों का ज्ञान पूर्णरूपेण ग्रहण किया था वह अर्जुन अपने भाइयों को मिलने के लिये वहा आया।

धर्मराज के पूछने के पर अर्जुन ने अपना वृत्तकथन प्रारम्भ किया। ''में आपसे बिदा ले हिमालय पर्वत पर पहुँचा। वहाँ तप करते समय एक दिन एक वराह मेरी ओर भाग आया, जिस पर मैंने बाण छोडा। उसी क्षण एक किरात के बाण ने उसे घायल कर दिया। शिकार पर हम दोनों के बाण एक साथ गिरे। किरात ने कहा, ''शिकार मेरा है। तेरा उसे बाण मारने का

क्या अधिकार? इतना कह उसने मुझ पर शरवर्षा शुरू की। प्रत्युत्तर में मैने भी उस पर बाण छोड़े परन्तु मै हार गया और भूमि पर गिर गया। उसी समय किरात गुप्त हो गया और श्रीशकर पार्वती के साथ वहा प्रकट हुये। उन्होंने मुझे अभय दे कर वर मागने की आज्ञा की। मैने दिव्य अस्त्रों की माग की जिस पर शकरने मुझे पाशुपतास्त्र सिखाया और वे चले गये। तत्पश्चात् इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर वहाँ आये। इन्द्र के अतिरिक्त तीन देवों ने मुझे अस्त्र दिये। इन्द्र ने कहा, "तुम स्वर्ग में आओ। मैं तुम्हे वहाँ शस्त्र दूगा।" अनन्तर इन्द्र का सारथि मातलि रथ ले कर वहा आया। उस रथ पर आरूढ हो कर मै स्वर्ग गया। वहा जाते ही इन्द्र ने मुझे शस्त्र दिये और विश्वावसु गधर्व के पुत्र चित्रसेन ने गायन, नर्तन आदि कलाओं का ज्ञान दिया।

एक दिन इन्द्र ने बहुत ही आनन्द से मुझे कहा कि "अर्जुन, अब तेरी शिक्षा पूरी हो गई है, अत· तुझे गुरुदक्षिणा देनी होगी। निवातकवच नाम के दैत्य हमारे शत्रु हैं और वे प्रबल हैं। उन्हें तू नष्ट कर यही हमारे लिए गुरुदक्षिणा है। मैने उन दानवों का नाश किया और वापस आते आते मातलि के कहने के अनुसार कालकेय असुरों का भी नाश किया। इन्द्र ने स्वर्ग में मेरा बहुमान किया और आनन्द से मुझे यहां आने की अनुज्ञा दी। उनकी आज्ञा मिलते ही मैं यहाँ तुम्हें मिलने आया हूँ। इस तरह मैने स्वर्ग में पांच वर्षो का काल व्यतीत किया। यह वृन्तान्त सुन कर धर्मराज ने अस्त्र देखने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने सारे अस्त्र दिखाये।

पाण्डव पुनश्च द्वैत वन में आने के लिये निकले। रास्ते में अगस्तिऋषि के शाप से सर्प हो पडे हुये राजा नहुष ने, भीम को पकड लिया। उसके प्रश्नों के उत्तर देकर धर्मराज ने भीम को विमुक्त किया। तदनन्तर पाण्डव द्वैतवन में पहुंचे एक दिन दुर्योधन उनको लज्जित करने के लिये अपने समस्त वैभव के साथ परिवार, सैन्य, स्त्रियाए आदि ले कर वहां आ गया। उसी स्थान पर गन्धर्वों से वह पराजित हो गया और उन सब को बांध कर गन्धर्व निकले। अपने कुल का अपमान न हो इस भावना से पाण्डवों ने कौरवों को विमुक्त किया।

उसके पश्चात् पाण्डव काम्यक वन में आये। वहा उनके सत्त्वहरण के लिये दुर्योधन ने दुर्वास ऋषि को भेजा था। परन्तु श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवों का सत्त्वरक्षण हुआ। एक समय द्रौपदी का हरण करने का प्रयत्न जयद्रथ ने किया परन्तु पाण्डवों ने उसे पराभूत कर छोड दिया। अपमानित होने पर जयद्रथ ने तप किया जिसके फलस्वरूप "अर्जुन के सिवाय अन्य पाण्डवों के विरुद्ध एक दिन तुझे युद्ध में विजय मिलेगी" ऐसा वर उसे शकर से मिला।

एक दिन धर्मराज ने मार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि "मेरे समान अभागा मानव आपको ज्ञात है "तब ऋषि ने उसे रामचन्द्र की कथा सुनाई।" क्या द्रौपदी के समान दुसरी पतिव्रता स्त्री है?" यह धर्मराज का दूसरा प्रश्न सुन कर मार्कण्डेय ने प्रारम्भ किया। मद्रदेश के राजा अश्वपति की पुत्री सावित्री की कथा सुनायी। सावित्री का विवाह शाल्वदेश के अन्ध एव राज्यभ्रष्ट राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से हुआ था। नारदऋषि के कहने के अनुसार एक वर्ष के बाद अपने पति की मृत्यू टालने के लिये सावित्री ने तीन दिन का व्रत किया। व्रत के बाद यमराज सत्यवान् के प्राणहरण करने आये थे, परन्तु सावित्री ने चातुर्य से उनको प्रसन्न किया और अपने पति को नव जीवन दिया। इस सावित्री के समान तुम्हारी द्रौपदी पतिव्रता है। उसके कारण तुम्हारे दु ख दूर होकर तुम्हे पुनश्च राज्यप्राप्ति अवश्य होगी।

वनवास के बारह वर्ष समाप्त होने आये थे। आगे युद्ध करना पडेगा इस विचार से धर्मराज चिन्तातुर थे। कर्ण के शरीर पर जन्मसिद्ध कवच-कुण्डल थे, जिनके कारण वह अजेय था। धर्मराज की इस चिन्ता को दूर करने के लिये इन्द्र ने ब्राह्मण का वेश धारण कर, कर्ण का कवचकण्डल विरहित किया और उसे एक दिव्य शक्ति प्रदान की। पाण्डव पुनश्च द्वैत वन में आये।

किसी ब्राह्मण की अग्नि उत्पन्न करने की "अरणी" एक हिरन ने भगाई। इस लिये पाण्डव उसका पीछा करने लगे। किन्तु वह उनके हाथ नहीं लगा। पाण्डव थक गये और वे तृष्णार्त होकर एक एक कर के पानी पीने जाने लगे। उस सरोवर पर एक यक्ष रहता था। वह कहता, "मेरे प्रश्नों का समाधान पहले करो और उसके बाद में पानी पीओ।" उसके अनुसार अकेले धर्मराज ने उसके प्रश्नों के उत्तर दे कर अपने मृत बधुओ को जीवित किया। वह यक्ष नहीं था बल्कि प्रत्यक्ष यमधर्म था। उसने उस ब्राह्मण की अरणी वापस दी और पाण्डवो से कहा कि "तुम तेरहवें वर्ष विराट के घर में रहो। मै तुम्हें वर देता हूं कि वहा तुमको कोई भी नहीं पहचानेगा।"

(उपकथा 1) उर्वशीशाप :अर्जुन के इन्द्रलोक में रहते समय उसके सौन्दर्य पर मोहित हुई उर्वशी एक दिन उसके पास आयी। उसकी प्रार्थना न मानने के कारण उसने अर्जुन को शाप दिया कि "तुम नपुसंक होंगे।" वह शाप सुनकर इन्द्र ने कहा कि, "हे अर्जुन, तुम घबराओ नहीं। एक वर्ष अज्ञातवास के समय में यह बात तेरे हित की ही होने वाली है।"

(उपकथा 2) अगस्त्य उपाख्यान : अगस्त्य ऋषि को विवाह करना था। उन्होंने एक अति सुन्दर कन्या निर्माण कर सन्तति के लिये तप करने वाले विदर्भ राजा को दी। उसका नाम था लोपामुद्रा। जब वह विवाहयोग्य हुई तब ऋषि ने उसके साथ विवाह किया। लोपामुद्रा के कहने के अनुसार ऋषि द्रव्यार्जन के लिये इल्वल दैत्य के पास आये। वह दैत्य अपने भाई वातापि को भेड़ का रूप दे कर उसका पका मास ब्राह्मणों को भक्षण के लिये देता था। भोजन के पश्चात् वह वातापि पुकारता

था और वातापि ब्राह्मणो का पेट फाड कर निकलता था। इस तरह उसने अनेक ब्राह्मणों की हत्या की थी। यही प्रयोग अगस्त्य ऋषि पर हुआ। परन्तु अगस्त्य ने उसे हजम कर लिया था। अगस्त्य ऋषि के पुत्र का नाम इध्मवाह था।

कालकेय नाम के असुर दिन में छिपते थे और रात को आश्रमवासी ऋषिओं का नाश करते थे। इस प्रकार ऋषिओं का नाश होने के कारण यज्ञादि क्रियाए बद पड गयी। तब देवताओं ने अगस्त्य ऋषि की प्रार्थना की। इस प्रार्थना को मानकर अगस्त्य ऋषि के समुद्र पीने के उपरान्त देवों ने कालकेय असुरो का सहार किया।

(उपकथा 3) गंगावतरण : राजा इक्ष्वाकु के वश में सगर नामक एक राजा था। उसे शकर के वरदान से साठ सहस्र पुत्रों की प्राप्ति हो गई। एक समय राजा सगर ने अश्वमेघ यज्ञ के निमित्त पृथ्वी पर अश्व छोडा, जिसका रक्षण सागरपुत्र करते थे। समुद्र के पास आते ही वह अश्व अदृश्य हो गया। तब सगरपुत्रों ने पृथ्वी का मथन करके अश्व की खोज करना आरम्भ किया। पृथ्वी के नीचे कपिल ऋषि तप कर रहे थे। उनके पास सगरपुत्रों ने अश्व देखा। उस समय सगर पुत्रों ने ऋषि का अपमान किया जिसके कारण ऋषि ने सगरपुत्रो को भस्म कर दिया। यह बात नारद ऋषि से राजा सगर को ज्ञात हुई तब उसका पौत्र अशुमान् राजगद्दी पर बैठा। अशुमान का पुत्र दिलीप जब राजा हुआ तब ऋषि के तपोबल से जलकर खाक हुए अपने पूर्वजो की बात उसने सुनी। उनके उद्धार के के लिये स्वर्ग की गंगा को लाया जाये इस उद्देश्य से उसने आजन्म तप किया। उसके पश्चात् उसके पुत्र भगीरथ ने गगा को प्रसन्न किया और उसका प्रवाह धारण करने के लिये, शंकर ने जब मान्य किया तब भगीरथ ने गगा को पाताल तक लाकर अपने पूर्वजों का उद्धार दिया।

(उपकथा 4) पतिव्रतामाहात्म्य और ब्राह्मणव्याधसंवाद : कौशिक नामक एक ब्राह्मण वेदाध्ययन करता था। उस समय उपर से एक बगुली की विष्ठा उन पर गिरी। ब्राह्मण ने कुपित हो कर उसकी ओर देखते ही वह मर कर नीचे गिरी। पश्चात् वह ब्राह्मण भिक्षा मागने के लिये एक घर गया। उस समय पतिसेवा । में रत पतिव्रता स्त्री को भीख देने में जरा देर हो गयी। तब वह ब्राह्मण कुपित हो कर स्त्री की निर्भत्सना करने लगा। उस पर वह स्त्री बोली "महाराज, भला आपके क्रोध से क्या होगा। मै कोई बगुली नहीं हू। आपको धर्मतत्त्व ज्ञात नहीं है। मिथिला नगरी में जाकर धर्मव्याध से वह जान लेना।" यह सुन कर ब्राह्मण चकित हुआ और वह धर्मव्याध की ओर गया। उस समय वह व्याध मास काट रहा था। उस ब्राह्मण को देखते ही उसने कहा कि "उस पतिव्रता ने आपको किस लिये मेरी ओर भेजा यह मैने जान लिया है।" उसके पश्चात् धर्मव्याध ने ब्राह्मण को धर्मतत्त्व बता कर अपने माता-पिता का दर्शन कराया और कहा कि "ये मेरे देव हैं। जैसे लोग देवों की पूजा करते है वैसे ही मैं इनकी पूजा करता हू। आप अपने मा बाप का अपमान करके घर से बाहर निकले। किन्तु वे बेचारे अब अन्धे हो गये है। इसलिये अब आप अपने घर जा कर उनकी सेवा करें यही आपका धर्म है।" यह सुन कर ब्राह्मण ने उसके कहने के अनुसार घर जाकर अपने माता-पिता को संतुष्ट किया।

(उपकथा 5) द्रौपदी-सत्यभामा संवाद : पाण्डवो के वनवासकाल में उनसे मिलने के लिये एक समय श्रीकृष्ण के साथ सत्यभामा आयी थी। इधर उधर की बाते समाप्त हो जाने के अनन्तर सत्यभामा ने द्रौपदी को प्रश्न किया, "पाण्डवों के समान वीर पुरुष तेरी आज्ञा कैसे मानते हैं? तुम्हारे पास कोई खास या मोहिनी विद्या है क्या? यदि हो तो मुझे कह देना ताकि मै भी श्रीकृष्ण को वश करूगी।" सत्यभामा का यह भाषण सुन कर द्रौपदी ने उत्तर दिया, "मोहिनी विद्या से पति को वश करना यह कोई पतिव्रता धर्म नहीं है। केवल मेरे पास सद्वर्तन के बिना कोई भी मंत्र-तंत्र नहीं है। मेरे बर्ताव की पद्धति मैं तुझे बताती हू। पाण्डवों के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष का चिन्तन मै कभी नहीं करती। उन्हें निरंतर सन्तुष्ट रखती हूँ। घर में स्वच्छता, अतिथि सत्कार, कुलधर्म, कुलाचार इन सब बातों के योग्य होने पर मेरा ध्यान सदैव रहता है। घर में नौकरों के होते हुए भी मै स्वय कुन्ती की सेवा करती हू। सभी परिश्रमी के खाने पीने की व्यवस्था योग्य काल में मैं ही करती हूँ। किसी पदार्थ का नाश होने नहीं देती। नित्य ही हंसमुख रह कर सब के साथ प्रेम से व्यवहार करती हू। इन सब बातों से पाण्डव मुझे वश हुये हैं। तू भी इसी तरह आचरण कर जिसमें तू भी श्रीकृष्ण को तेरे वश, में रहेंगे।

(उपकथा 6) मुद्गलोपाख्यान : मुद्गल नामक एक तपस्वी ऋषि अपने कुटुम्ब के साथ अरण्य में, रहते थे। देव, पितर और अतिथियों को सतुष्ट कर जो भाग बचेगा उसी पर अपना उदरनिर्वाह करने का उनका नियम था। उनकी सत्त्वपरीक्षा लेने के लिये दुर्वास ऋषि वहा अतिथि बन कर आये और मुद्गल ऋषि ने सिद्ध किया हुआ अन्न खा कर चले गये। फिर अन्न पकने के बाद सब अन्न खा कर चले जाना यही काम दुर्वास ऋषि ने जारी रखा। मुद्गल ऋषि को अनशन करना पड़ा। किन्तु प्रत्येक समय उन्होंने अतिथि को श्रद्धा के साथ सतोषित करने का उपक्रम नहीं छोडा। अन्त में दुर्वास ऋषि उन पर प्रसन्न हुए। इतने में ही देवदूत विमान से वहां आया और मुद्गल ऋषि को कहने लगा, "आपको आपके पुण्य के कारण स्वर्गप्राप्ति हो गयी है। आप विमान में बैठ कर स्वर्ग चलिये।" मुद्गल ऋषि ने उससे स्वर्ग के गुणदोषों की पृच्छा की। उस पर देवदूत ने कहा, "स्वर्ग में सभी सुखों की समृद्धि है। किन्तु दोष यह है कि, स्वर्ग में अपने से अधिक पुण्यवान लोगों

के अधिक भोग देख कर मन में ईर्ष्या निर्माण होती है और पुण्य की समाप्ति होते ही पृथ्वी पर आना पडता है।" यह सुन कर मुद्‌गल ऋषि ने देवदूत को जाने के लिये कहा और उन्होंने योग, वैराग्य, ज्ञान आदि साधनों से मुक्ति प्राप्त की।

4 विराटपर्व

अज्ञातवास के लिये पाण्डव विचार कर रहे थे। तब धर्मराज कहने लगे, "हम राजा विराट के यहा एक वर्ष तक रहेंगे। धौम्य ऋषि हमारे अग्निहोत्र, दास दासी आदि ले कर राजा द्रुपद के यहा जायें और इन्द्रसेनादिक हमारे रथ ले कर द्वारका जायें।" तत्पश्चात् राजा के यहा रहने की पद्धति की पूर्ण जानकारी धौम्य ऋषि ने पाण्डवो को दी। द्रौपदीसहित पाण्डव अन्यान्य नाम लेकर अलग अलग काम के लिये राजा विराट के यहाँ आये। आते समय उन्होंने अपने शस्त्र विराटनगर के बाहर एक बड़े शमी वृक्ष पर रखे। धर्मराज कक का नाम धारण कर विराट के सदस्य के नाते रहने लगे। भीम बल्लव नाम धारण करके विराट की पाकशाला का प्रमुख बन गये। द्रौपदी सैरन्ध्री नामसे राजा विराट की पटरानी सुदेष्णाकी दासी बन गयी। सहदेव तन्तिपाल नाम धारण कर कोषाध्यक्ष बना। अर्जुन ने बृहन्नला नाम धारण कर राजकन्या को सगीत सिखाने का कार्य स्वीकारा। नकुल ग्रन्थिक नाम से अश्वशाला का अध्यक्ष हो गया।

चार मास के पश्चात् विराट नगरी में देवता के उत्सव के निमित्त एक मेला भरा था जिसमें सैकडों मल्ल उपस्थित हुए थे। उनमें से जीमूत नामका एक महान् मल्ल था जिसके साथ युद्ध करने के लिये कोई भी तैयार नहीं था। तब विराट की आज्ञा ले भीम ने उसके साथ मल्लयुद्ध कर उसका नाश किया। उसके नाश के कारण लोग आनन्दित हुए।

दस मास होने के पश्चात् विराट के सेनापति तथा श्यालक कीचक ने एक समय द्रौपदी को देखा। उसके सौन्दर्य पर वह मोहित हुआ। सुदेष्णा की समति से वह द्रौपदी की मित्रत करने लगा। परन्तु द्रौपदी ने उसका तिरस्कार किया। कीचक ने सुदेष्णा की अनुमति से एक षडयत्र रचा। सुदेष्णा ने द्रौपदी को मदिरा लाने के लिये कीचक ने यहा आग्रह करके भेज दिया। द्रौपदी घर में आते ही मदोन्मत्त कीचक ने उसका हाथ पकड लिया। तत्काल द्रौपदी ने अपना हात छुडा कर कीचक को नीचे ढकेल दिया और वह दौडती हुई राजसभा मे आ धमकी। उसके पीछे कीचक भी आया और उसने द्रौपदी को नीचे गिरा कर लाथ मारी। रोते रोते द्रौपदी ने राजा की और राजसभा के लोगो की निन्दा की। विराट राजा ने कहा, "वहा तुम्हारा क्या हुआ यह मैं नही जानता। सो मै इस बात मे क्या कर सकता हू?" विराट का यह कहना सुनकर वह रानी सुदेष्णा के पास गयी। उसका सारा कथन सुनकर सुदेष्णा ने कहा, "यदि तू कहेगी तो मै उस सजा दूँगी।" तब द्रौपदी ने उत्तर दिया "नहीं, आप कुछ भी न करें। मेरे पति गाधर्व हैं, वे उसका बदला लेंगे। उसकी मृत्यु का समय समीप आया है।" रात के समय द्रौपदी भीम के पास गयी। विराट राजा के लिये चन्दन उगाल कर हाथो को जो घट्टे पड गये थे वे द्रौपदी ने भीम को दिखलाये और वह रोने लगी। उसके हाथ अपने मुह पर रखकर भीम भी कुछ समय के लिये रोया। उसके पश्चात् द्रौपदी ने उससे कहा, "मुझे पीडा पहुचाने वाला नीच कीचक यदि जीवित रहेगा तो मै प्राण त्याग करूगी।" यह सुन कर भीम ने उसे कीचक के वध की एक युक्ति बतायी। द्रौपदी ने वह मान ली और वह स्वस्थान आई।

दूसरे दिन कीचक राजगृह में आकर द्रौपदी से कहने लगा "कल भरी सभा में मैंने तुझे लाथ मारी किन्तु तुझे छुडाने के लिये कोई नहीं आया, इसका विचार कर। सेनापति होने के कारण मत्स्य देश का वास्तव राजा मै ही हू। विराट केवल नामधारी राजा है। इसलिये तू मेरा कहना मान। मै तेरा दास हू।" तत्पश्चात् द्रौपदी ने कहा, "यह बात किसी को भी ज्ञात नहीं होनी चाहिये। अपने यहा जा नृत्यशाला है वहा रात के समय सपूर्ण अधकार रहता है। उस समय तू वहा आ जा जिससे यह बात मेरे गन्धर्व पति को भी ज्ञात न होगी।" दोनो की यह बात पक्की हो कर कीचक वहा से गया। द्रौपदी ने यह सकेत भीम को बताया। भीम रात के अधकार मे वहा कीचक के पहले ही छुप कर बैठ गया। कीचक के वहा आते ही भीम ने उसको मार डाला। द्रौपदी ने यह बात पहेरेदारों से कही। अनन्तर कीचक का शव स्मशान की ओर ले जाते समय कीचक भाइयों ने उस भीड मे द्रौपदी को देखा। तत्काल उन्होंने कीचक के शव के साथ द्रौपदी को बाधकर ले चले। द्रौपदी जोर जोर से चिल्लाने लगी। यह सुनकर भीम ने अपना वेष बदल कर एक वृक्ष उखाडा और उसने कीचक के सभी भाइयों को मार डाला और द्रौपदी को मुक्त किया। इस तरह भीम ने स्वय कीचक और उसके 105 भाइयों को याने 106 कीचकों को नष्ट किया।

पाण्डवों की खोज के लिये दुर्योधन ने गुप्त दूत भेजे थे परन्तु वे पाण्डवो का पता नहीं लगा सके। किन्तु कीचक का वध गधर्वो ने किया यह बात दूतों ने दुर्योधन को कही। यह सुनकर कोई कहने लगा, "दूसरे अच्छे दूत भेज दें।" कोई कहता था, "बहुधा पाण्डवों का विनाश हुआ होगा।" कौरवसभा में उस समय त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा उपस्थित था। उसके कहने का आशय था, "कीचक का नाश हो गया है इसलिये आज तक उसने जो हमे पीडा और दुख दिया है उसका बदला हम लें। मै मत्स्य देश पर दक्षिण की ओर से चढाई करूगा। तुम सब उत्तर प्रदेश से आवो।" उसका वह कहना कर्ण को पसन्द आया। उसके अनुसार राजा सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से चढाई करके विराट के गोधन का अपहरण किया।

यह सुनकर पाण्डवों को साथ लेकर राजा विराट ने उस पर आक्रमण किया। युद्ध में भीम ने राजा सुशर्मा को जिन्दा पकडकर लाया। विराट ने उसको जीवनदान दिया। तब वह निकल गया। उस रात पाण्डव वहीं पर रहे।

दूसरे दिन उत्तर की गौएं कौरव सेना ले जा रही थी। यह वार्ता विराट पुत्र उत्तर को ज्ञात होने से वह कहने लगा कि, "क्या करें? यदि मुझे अच्छा सारथी मिले तो मै कौरवों से युद्ध कर उनसे अपनी गौएं छुडा कर लाऊगा।" तब द्रौपदीकी सूचनानुसार बृहन्नलाको याने अर्जुन को सारथी बना कर उत्तर रणभूमि में आया, किन्तु कौरवों की महान सेना देखते ही वह घबरा कर वापस भागने लगा। अर्जुन ने उसे धीरज दे कर शमी वृक्ष पर रखे हुये अपने शस्त्र निकालने को कहा। उसने अपने स्वयंका परिचय भी उत्तर को दिया। तब उत्तर को धीरज आया और वही अर्जुन का सारथी बन गया। अर्जुन रथ में बैठे कौरवों के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हुआ।

अर्जुन को देख कर दुर्योधन ने भीष्म से पूछा कि, "क्या पाण्डवों के तेरह वर्ष पूर्ण हुए? हमारी राय यह है कि उनके तेरह वर्ष अभी पूर्ण नहीं हुए है और इस अवस्था में अर्जुन के प्रकट होने के कारण पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष वनवास करना चाहिये।" भीष्म ने कहा कि, "पाण्डव कभी भी अधर्म नहीं करेंगे। उन्होंने प्रतिज्ञा के अनुसार अपने तेरह वर्ष पूर्ण किये हैं। उनका आधा राज्य वापस देना यही इस परिस्थिति में उचित होगा।" किन्तु दुर्योधन को यह बात नहीं जंची। अन्त में अर्जुन ने कौरवों को परास्त कर गौएं मुक्त कर दी। अपने शस्त्र फिर से शमी वृक्ष के कोटर में रख कर अर्जुन और उत्तर नगर वापिस लौटे। उनके पहले ही विराट और पाण्डव वहां आये थे। पाण्डव और द्रौपदी का परिचय उत्तर के द्वारा होने पर राजा विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा अर्जुन को देने की इच्छा व्यक्त की परन्तु अर्जुन के कहने पर अभिमन्यु से उसका विवाह विराट राजा ने बडे ठाटमाट से किया।

5 उद्योगपर्व

अभिमन्यु का विवाह होने के उपरान्त एक दिन, सभामे बैठे हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर तेरह साल पूरे कर चुके हैं। अब उन्हें आधा राज्य प्राप्त होना उचित होगा। परन्तु कौरव अनायास राज्य देंगे ऐसा नहीं लगता। अतः उनका मन जानने के लिए दूत भेजना चाहिये।" श्रीकृष्ण की यह बात मान्य की गई। द्रुपदराजा ने अपना पुरोहित कौरवों की ओर भेजा। श्रीकृष्ण द्वारका गये। पाण्डवों ने सब राजाओं की ओर युद्ध की सहायता करने के लिये दूत भेजे।

श्रीकृष्ण के द्वारका पहुचने के उपरान्त दुर्योधन सहायता मांगने के लिये उनके यहा गया। श्रीकृष्ण उस समय सो रहे थे। दुर्योधन उनकी तकिया के पास जा बैठा। उसी समय उसी कार्य के लिये अर्जुन भी वहां आया और श्रीकृष्ण के पैरों के पास बैठा। इस स्थिति में श्रीकृष्ण जी जाग उठे। उन्होंने अर्जुन की ओर प्रथम देखा। दुर्योधन ने कहा, "श्रीकृष्ण, हम दोनों तुम्हारी दृष्टि में समसमान है और मै पहले आया हू, इसलिये तुम मुझे सहायता दो" श्रीकृष्ण ने उससे कहा, "यह सत्य है कि तुम पहले आये हो परन्तु मैने प्रथम अर्जुन को देखा है और तुमसे वह कनिष्ठ होने के कारण उसका हठ पहले पूरा करना होगा। सो मैं निःशस्त्र होकर एक पक्ष में रहूगा और मेरी दस कोटि सेना दूसरे पक्ष में रहेगी। इसमें से जो अर्जुन पसंद करे वह ले।" अर्जुन ने श्रीकृष्ण को ही माग लिया। सेना का सहाय मिलने से दुर्योधन प्रसन्न हुआ।

दुर्योधन के जाने के उपरान्त श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा, "तुमने सेना को अस्वीकृत कर मेरा स्वीकार किस कारण किया?" अर्जुन ने उत्तर दिया, "जहा आप हैं वहीं विजयश्री है, दूसरा कारण यह कि बहुत दिनों से मेरे मन मे यह विचार भी रहा है कि आप मेरे सारथी बनें। आज मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी। इसी दृष्टि से मैंने आपका स्वीकार किया।" इसप्रकार भावी युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया।

राजा शल्य जब पाण्डवों की ओर आ रहा था तो रास्ते में दुर्योधन उसकी अच्छी व्यवस्था रख कर उसे अपनी ओर वश किया। सारी सेना दुर्योधन के साथ भेज कर अकेला शल्य पाण्डवों से मिलने के लिये आया। तब यह जान कर कि शल्यहि कर्ण का सारथी होगा, धर्मराज ने शल्यको कर्ण का तेजोभग करने की सूचना दी। उसे मान्य कर शल्य कौरवो की ओर चला गया।

द्रुपदराजा का पुरोहित कौरवों की ओर गया। उसने निवेदन किया कि "पाण्डवों को आधा राज्य देना योग्य है। और ऐसा न किया गया तो कौरवों का युद्ध में नाश होगा।" भीष्म ने इसकी पुष्टि की परन्तु कर्ण ने कहा, "पाण्डवों को यदि और बारह वर्ष वनवास करने की बात पसन्द नहीं तो युद्ध के लिये उन्हें सिद्ध होना पडेगा।" यह मतभेद देख कर धृतराष्ट्र ने उस पुरोहित को आदरसत्कार सहित बिदा किया और संजय को पाण्डवों के पास भेज दिया। उसने धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाया। "पाण्डवों, तुम सब भाई धार्मिक हो अतः तुम्हें युद्ध समान भयंकर कृत्य कर के अपने कुल का नाश करने के बदले सर्व संग परित्याग कर द्वारकानगरी में भीख मांगकर अपना उदरनिर्वाह करना योग्य है। यह राज्यतृष्णा आपकी धार्मिकता का नाश करेगी।

धर्मराज कहने लगे "आपस में युद्ध करना मुझे भी सम्मत नहीं है परन्तु प्रतिज्ञा के अनुसार तेरह साल पूरे होने के बाद भी कौरव हमारा आधा राज्य देने के लिये तैयार नहीं है। इस लिये यदि युद्ध होगा तो उसका दोष धृतराष्ट्र को होगा

हमें नहीं। फिर भी युद्ध के कारण होने वाला नाश टालने के लिये कौरव हमें कम से क्रम पाच गॉव प्रदान तो करें" पाण्डवोंका यह सन्देश सजय ने धृतराष्ट्र को बता कर उसकी निन्द, की। उस रात धृतराष्ट्र को नींद न आने के कारण उन्होंने विदुरको बुलवाकर उनसे विदुरनीति का श्रवण किया। दूसरे दिन भरी सभा मे सजयद्वारा धर्मराज का सन्देश कथन करने के उपरान्त भीष्म, द्रोण, विदुर, आदि सज्जनों ने दुर्योधन को समझाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे उसमें असफल रहे।

पाण्डवो की ओर से समझौते के लिये श्रीकृष्ण हस्तिनापुर मे आये। परन्तु दुर्योधन के घर पर न रहते हुए वे विदुर के घर रुके। दुसरे दिन कौरवो की राजसभा में जा कर आपस मे युद्ध न हो, इसलिये श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को आधा राज्य देने के बारो मे युक्तियुक्त सुन्दर व्याख्यान दिया। श्रीकृष्ण के व्याख्यान के अनन्तर भीष्म, द्रोण, विदुर आदि ने दुर्योधन को समझाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु दुर्योधन ने साफ कह दिया कि, "सुई की नोक पर रह सके इतनी धरती भी पाण्डवों को नहीं दूँगा।" उसके बाद कुन्ती का कहना सुनकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से चले गये। कर्ण को पाण्डव पक्ष मे लाने के लिये उन्होंने प्रयत्न किये। कौरवो के यहा का सारा वृतान्त सुना कर उन्होंने कहा कि "अब युद्ध अवश्यम्भावी है। " यह सुनकर पाण्डव सेना के साथ कुरुक्षेत्र पर युद्ध के लिये सिद्ध हुए। यह देख कर कि "श्रीकृष्ण पाण्डवो की ओर गये हैं, दुर्योधन ने सेना को युद्ध के लिये प्रस्तुत होने की आज्ञा दे कर, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि ग्यारह सेनापतियो की नियुक्ति की। भीष्म को सेनानायकत्व स्वीकार करने की प्रार्थना की। उस समय भीष्म ने कहा, "हे दुर्योधन, कौरव और पाण्डव मेरी दृष्टि में एक ही हैं। सो मैने निश्चय किया है कि मै पाण्डवो को हित की बाते सुनाऊगा। किन्तु युद्ध तुम्हारे लिये ही करूगा। इस में मेरी दो शर्ते होंगी। एक तो मै पाण्डवों का वध नहीं करूगा और दूसरी यह कि "मेरा सदा द्वेष करने वाला कर्ण यदि युद्ध में भाग ले तो मै युद्ध नहीं करूगा।" कर्ण ने यह सुन कर प्रतिज्ञा की कि, "जब तक भीष्म जीवित है, तब तक मै भी युद्ध नहीं करूगा।" भीष्म के नेतृत्व में कौरवों की सेना भी कुरुक्षेत्र पर आ गयी।

पाण्डवों की सेना में द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न आदि सात सेनापति थ, जिनमे धृष्टद्युम्न प्रमुख सेनापति था। धृष्टद्युम्न से बडा सेनापति अर्जुन और उसके मार्गदर्शक श्रीकृष्ण थे। दोनों ओर की सेनाओं को युद्ध के लिये देख कर, बलराम ने धर्मराज से कहा, "इस युद्ध में तुम्हारी विजय होगी। भीम और दुर्योधन दोनो ही गदायुद्ध में मेरे प्रिय शिष्य है। कौरवो का विनाश मै नहीं देख सकूगा। इसलिये मै तीर्थयात्रा करने जा रहा हू।" इतना कह कर वे चले गये। बाद मे विदर्भ का राजा रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों की ओर आया। उसने अर्जुन स कहा, "यदि तुमको डर हो या मेरी सहायता की अपेक्षा हो तो मुझे कहना। मै अकेला ही तुम्हारे शत्रुओ का नाश करूगा।" अर्जुन ने उत्तर दिया "मुझे न डर है और न तुम्हारी सहायता की अपेक्षा भी। तुम रहो या जाओ।" यह सुन कर रुक्मी ने दुर्योधन की ओर जाकर वैसा ही प्रस्ताव दिया। दुर्योधन से भी उसको वही उत्तर मिला। उसके बाद वह अपने देश की ओर चला गया।

उपकथा 1 प्रह्लाद की सत्यनिष्ठा . प्रल्हाद के पुत्र विरोचन और अगिरा ऋषि के पुत्र सुधन्वा के बीच जब कि वे एक कन्या स्वयंवर में वरण करने के हेतु से आये थे, विवाद हुआ कि, "दोनो में कौन श्रेष्ठ है।" इसमें यह निश्चित हुआ की, जो श्रेष्ठ माना जाएगा वह दूसरे के जीवन का अधिकारी होगा। अत श्रेष्ठता निश्चित करने के लिये वे प्रह्लाद की ओर गये। प्रल्हाद ने कहा, "विरोचन, तेरी माता से इसकी माता श्रेष्ठ है। मुझसे इनके पिता अगिरा श्रेष्ठ हैं। उसी प्रकार यह सुधन्वाभी तुझसे श्रेष्ठ है, अत तेरे प्राण अब उसके हाथ हैं।" यह सुन कर सुधन्वाने उत्तर दिया, "हे प्रह्लाद, धर्म को साक्षी मान कर तुमने सत्य कथन किया, पुत्र प्रेम से झूट नहीं कहा, इस लिये अब मैं तुम्हारे पुत्र तुमको वापस दे रहा हूँ"।

उपकथा 2 बैडालव्रत : एक बिलाव नदी पर तपश्चर्या का ढोंग रचा कर बैठा था। पक्षियो के पास आने पर भी वह उन्हे नहीं मारता था। यह देख कर चूहो ने अपने बालबच्चों की रक्षा करने के लिये उससे प्रार्थना की। हा ना कहते हुए उसने यह दायित्व स्वीकृत किया और चूहो पर हाथ साफ करना आरम्भ किया। यह बात चूहो के ध्यान में आते ही अतिम दुष्परिणाम का विचार कर शेष चूहे भाग गये।

6 भीष्मपर्व

जनमेजय राजा के पूछने पर वैशम्पायन ऋषि आगे बताने लगे, दोनों सेनाओं के, कुरुक्षेत्र पर इकट्ठा होने पर युद्ध-सम्बधी नियम निश्चित किये गये। दोनों सेनाओ को युद्धार्थ सिद्ध देख कर व्यास महर्षि धृतराष्ट्र से बोले, "युद्ध देखने की अगर इच्छा हो तो कहो दिव्य दृष्टि-द्वारा सजय तुम्हें युद्ध की वार्ता सुनाएगा।" धृतराष्ट्र ने युद्ध का पूरा समाचार सुनने की अपनी इच्छा व्यक्त की। सजय बताने लगा-

सुर्योदय होते ही दोनों सेनाए युद्धोत्सुक हो गयी। रणवाद्य बजने लगे। भीष्माचार्य ने सबके लिए उत्साहवर्धक भाषण दिया। श्रीकृष्ण की सूचना के अनुसार अर्जुन ने जयप्राप्ति के लिए भगवती की प्रार्थना की। भगवती ने इच्छानुसार वरप्रदान किया और अर्जुन ने रथ पर आरोहण किया। तदुपरान्त श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाण्डव पक्ष के सभी वीर योद्धओं ने अपने-अपने

शंख बजाये। अब युद्ध प्रारम्भ हो ही रहा था कि अर्जुन ने अपना रथ दोनों सेनाओं के बीच खडा करने के लिए श्रीकृष्ण से कहा। वहां अर्जुन ने दोनों सेनाओं में देखा की पितामह, प्रपितामह, इष्ट मित्र, बन्धु, पुत्र, पौत्र आदि उपस्थित हैं। उन्हें मार कर राज्य पाने की अपेक्षा भिक्षा मांग कर जीना योग्य होगा इस विचार से निरुत्साह होकर रथ में संज्ञा-शून्य सा बैठ गया। अर्जुन के उस शोक और मोह को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने उसे अपनी गीता सुनायी।

अर्जुन दो प्रकारों से मोह में आ गया था। एक मोह यह था कि भीष्मादिकों के शरीर-नाश के साथ-साथ उनकी आत्मा का नाश होता है, और दूसरा मोह, क्षात्र-धर्म युद्ध को, वह अधर्म समझने लगा था और भिक्षां देहि अधर्म को धर्म। अविनाशी आत्मा को, अर्जुन नाशवान् समझ रहा था और धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझ रहा था। इस लिए "आत्मा का नाश कोई नहीं कर सकता और तू क्षत्रिय होने के कारण युद्ध करना तेरा धर्म है। उसको तू कदापि त्याग नहीं सकता। अगर स्वधर्म का त्याग करेगा तो तुझे पाप लगेगा। युद्ध में तुझे पाप की आशंका होती हो तो कर्तव्यों को निभाते हुए पापों से अलिप्त रहने की योगयुक्ति इस प्रकार है, जय-पराजय, लाभ-हानी, सुख-दुःख इत्यादि द्वन्द्व समान मान कर निष्काम निर्भय बुद्धि से कर्तव्य करना चाहिए।" इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के उपदेश से प्रबुद्ध होकर अर्जुन युद्ध के लिए पुन. कटिबद्ध हुआ।

इतने में धर्मराज शस्त्र नीचे रख कर, कवच उतार कर हाथ जोड़ कर चुपके से पैदल ही पूर्व की तरफ स्थित कौरवों की सेना की ओर जाने लगे। उनके पीछे उनके बन्धु, श्रीकृष्ण और अन्य राजा-महाराजा भी प्रस्तुत हुये। धर्मराज ने सीधे भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य के पास पहुच कर उनसे प्रार्थना की कि उन्हें संग्राम में विजयश्री प्राप्त हो। उनमें से भीष्म ने बताया कि मुझे जीत लेने का उपाय मै तुझे बताऊगा। द्रोणाचार्य ने बताया कि मैं जब शस्त्र नीचे रखूँ, तभी कोई मेरा वध कर सकेगा, अन्यथा मेरा वध असभव है। सभी ने धर्मराज को आशीर्वाद दिया कि तेरी जय निश्चित है। इतना सब होने पर धर्मराज अपनी सेना की ओर जाने लगे। इसी बीच श्रीकृष्ण ने कर्ण को पा कर उससे कहा कि भीष्म के युद्ध में रहते अगर तू कौरवों की तरफ से युद्ध करना नहीं चाहता है तो पांडवों की तरफ से युद्ध कर। परतु यह सूचना कर्ण ने नहीं मानी। धर्मराज ने दोनों सेनाओं के बीच खडे हो कर उच्च स्वर से कहा, "कौरवों का पक्ष छोडकर हमारे पक्ष में आने की जिनकी इच्छा हो वे आ सकते हैं।" वह सुन कर धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु पांडवों की ओर आ गया।

1) पहले दिन भीष्म ने दिन भर घमासान युद्ध किया। विराट राजा के पुत्र श्वेत का वध किया और पांडवों की बहुत सी सेना नष्ट कर दी। भीष्म पितामह का पराक्रम देख कर आज जय प्राप्त करने की सभावना नहीं है समझ कर शाम को पांडवों ने युद्ध स्थगित किया। दोनो सेनाएं अपने-अपने शिबिर को चली गयी।

2) दूसरे दिन पाडवो ने सेना की रचना क्रौंच-व्यूह में की सूर्योदय के होते ही भीष्माचार्यजी की महाव्यूह से आबद्ध कौरव-सेना पाडवों पर चढ आयी। भीष्माचार्य ने पाडवों की सेना का बहुत ही नाश किया। तब उनसे युद्ध करने अर्जुन प्रस्तुत हुआ। कोई किसी को जीत न सका। इसी समय भीम ने कलिंग देशके राजा श्रुतायु और निषाद-राजा केतुमान का वध किया। उनकी सेना का इस प्रकार नाश किया कि भीम साक्षात् यमराज ही है ऐसा आभास कौरव सेना में निर्माण हुआ। तब भीम के साथ भीष्म युद्ध करने प्रस्तुत हुए। इतने में सात्यकि ने भीष्म के सारथी को मार डाला। उस समय घोडे उद्दाम होकर युद्ध-क्षेत्र के बाहर भीष्माचार्य के रथ को लेकर दौड पडे। दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण और अभिमन्यु के बीच युद्ध छिड गया। उनकी सहायता में एक ओर से दुर्योधन और दूसरी ओर अर्जुन वहा पहुंच गये। उस समय अर्जुन ने रथ, घोडे, हाथी, पदाति आदि सभी विरोधियों का सहार शुरू कर दिया। तब कौरवों की सेना तितरबितर होने लगी। इतने में सूर्यास्त का समय हो आया। भीष्माचार्य ने युद्ध स्थगित किया और दोनों सेनाएँ अपने-अपने शिबिर में विश्राम के लिए चली गयीं।

3) तीसरे दिन भीष्माचार्यने अपनी सेना को गरुड-व्यूह में आबद्ध किया। उधर पाडवों ने अर्धचन्द्र-व्यूहकी रचना की थी। युद्ध के प्रारभ मे ही अर्जुन ने कौरवों की सेना का अत्यधिक नाश किया। सेना भागने लगी। दुर्योधन ने अपने प्रोत्साहन से वापस लौटाया। परन्तु दुर्योधन भीष्म-द्रोण के पास जाकर कहने लगा, "आप अपने निजी उत्साह से युद्ध नहीं कर रहे। आपके रहते पाडवों का विजयी होना मुझे ठीक नहीं लग रहा है। अब उत्साह से युद्ध करने की कृपा करें।" यह सुन कर भीष्माचार्य क्रुद्ध हो कर बोले, "अब तक कई बार तुझको बताया कि पाडव अजेय हैं। मै बूढ़ा हो गया हू। केवल कर्तव्य-वश होकर ही युद्ध खेल ही रहा हूं।" कौरवोंकी सेना युद्ध के लिए फिर से लौटने पर अर्जुन ने महेन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के प्रयोग से कौरवों की सेना का बहुत ही सहार हुआ। सध्या के समय, पाडवों की सेना अपना जय घोष करते हुए अपने शिबिर में चली गयी।

4) चौथे दिन सबेरे दुर्योधन को देखते ही उसे मारने के लिये भीम तेजी से दौड पड़ा। तब दुर्योधन ने मगधदेशीय दस हजार हाथियों की सेना भीम पर भेजी। भीमसेन ने उस सारी सेना का नाश किया, तब दुर्योधन ने क्रोध से आदेश दिया की

"सब मिल कर पहले इस भीम को नष्ट करों"। तत्काल उसके चौदह भाई भीम पर टूट पडे। उनमें से आठ भाइयों का भीम ने वध किया और शेष भाग गये।

इतने में भगदत्त हाथी पर सवार भीम पर चढ आया। तब घटोत्कच ने उसका प्रतिकार किया। घटोत्कच अपनी मायावी पद्धति से युद्ध करने लगा, तब "अब शाम होनेको है। इस समय इस दुष्ट निशाचर के साथ युद्ध खेलने में जय कदापि होने वाली नहीं है। हम थक गये हैं। पाडवो के शस्त्रास्त्रों से हम घायल भी हुए हैं। इसी लिए कल ही युद्ध करें।' इस प्रकार भीष्माचार्य ने द्रोणाचार्य तथा दुर्योधन से सलाह करके युद्ध स्थगित रखने का आदेश दिया।

5) पांचवे दिन का प्रारंभ भीष्म और भीम के युद्ध मे हुआ। भीम ने भीष्माचार्य पर शक्ति चलायी। भीष्म ने तीर चला कर वह शक्ति तोड डाली। इतने में भीम ने धनुष्य-बाण उठाया, वह भी भीष्म ने तोड डाला। वह देख कर सात्यकि भीष्म पर तीर चलाने लगे। भीष्म ने उसके सारथी को मार डाला। तब घोड-सात्यकि के रथको ले कर दूर भाग खडे हुए। उसके बाद भीष्म ने पांडवों की सेना के कई वीरो का नाश किया। सात्यकि पुन तीर चलाते हुए आ पहुचा तब दुर्योधन ने उसके प्रतिकार में दस हजार रथ भिजवाये। उन सबका नाश सात्यकि ने किया। तब बडे क्रोध मे भूरिश्रवा सात्यकि पर चढ आया। सात्यकि के दस पुत्र उससे युद्ध करने लगे। उनका वह युद्ध बहुत समय तक चलता रहा। अंत मे भूरिश्रवा ने सात्यकि के दसो पुत्रो के धनुष्यों को और बाद मे उनके मस्तकों को काट डाला। वह देखकर सात्यकि भूरिश्रवापर बडे क्रोध मे चढ आया। उन दोनों में भयानक युद्ध हुआ। दोनों ने एक दूसरे के घोडे मार डाले और हाथ मे ढाल-तलवार लेकर युद्ध करने लगे। तब भीम ने सात्यकि को और दुर्योधन ने भूरिश्रवा को अपने रथपर बिठा लिया।

इसी समय जब भीष्म ने पाडवों की सेना का अत्यधिक सहार किया तब अर्जुन युद्ध करने सामने प्रस्तुत हुआ। तब दुर्योधन ने पचीस हजार रथियों को उसके प्रतिकार मे भिजवाया। अर्जुन-द्वारा उनका सहार होते-होते सूर्यास्त के कारण नियमानुसार युद्ध स्थगित कर दोनों सेनाए शिबिर मे वापस लौटीं।

6) छठे दिन भीम ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य ने भीम पर नौ तीर छोडे, प्रत्युत्तर मे भीम ने द्रोणाचार्य का सारथी मारा। तब घोडे का लगाम पकड कर रथ चलाना और साथ युद्ध करना दोनो काम साथ साथ करते हुए द्रोणाचार्य ने पाडवों की सेना का बहुत ही विध्वस किया। उसी तरह भीष्म ने भी भयकर विध्वस किया। भीम और अर्जुन ने भी कौरवा की सेना की वही दुर्गति की। अनन्तर भीम कौरव की सेना की सीमा तोड कर घुस पडा। उसका जिंदा पकडने के हेतु बहुत वीर उसे घेर कर युद्ध करने लगे। तब भीमसेन हाथ मे गदा उठा कर अपने रथ से नीचे उतर पडा। उसने अपनी गदा से उस सारी सेना का नाश किया। भीम को कौरवा की सेना मे घुसते देख कर उसकी सहायता के लिए धृष्टद्युम्न दौड पडा। उसने भीम को अपने रथ पर बिठा लिया और प्रमोहनास्त्र का प्रयोग कर के कौरव सेना को मोहित कर दिया। वह देख कर द्रोणाचार्य ने प्रज्ञास्त्र का प्रयोग कर के प्रमोहनास्त्र को असफल कर दिया। इसी तरह अभिमन्यु और विकर्ण, दु शासन और केकय देश के पाच वीर, दुर्योधन और द्रौपदी के पाच पुत्रो मे युद्ध हुआ। इस समय भीष्म उत्तर दिशा की ओर पाडव सैन्य का और अर्जुन दक्षिण की ओर कौरव सैन्य का विध्वस कर रहे थे। सूर्यास्त के समय दुर्योधन ने भीम पर आक्रमण किया। भीम ने उसके रथ के घोडे मारे, और तीरो से दुर्योधन को मूर्च्छित गिरा दिया। भीष्म ने पाडव सैन्य का बहुत विध्वस किया। भीमबाणों से लहूलुहान दुर्योधन भीष्म के पास पहुच गया। भीष्माचार्यने उसे औषधि दे दी जिससे दुर्योधन के शरीर के सारे व्रण दुरुस्त हो गये।

7) सातवें दिन कौरवो ने मडलव्यूह ओर पाडवो ने वज्रव्यूह की रचना की। युद्ध करते करते भीष्म का रथ धर्मराज के रथ के निकट आ गया। दोनों ने एक दूसरे पर सैकडों बाण छोडे। इतने मे भीष्म ने धर्मराजा के रथ के घोडे मारे। तब उसने नकुल के रथ का सहारा लिया। उन्होंने अपनी सारी सेना को आदेश दिया कि सब मिल कर भीष्म को नष्ट करे। वह सुनकर पाडवों की सेना भीष्म के इर्द-गिर्द इकट्ठा होकर युद्ध करने लगी। भीष्म के बाणो से पाडवों की सेना के सिर ताडवृक्ष के फल के समान टप् टप् टूट नीचे गिरने लगे। द्रोणाचार्य ने भी पाडवो की सेना का भारी विध्वस किया।

8) आठवें दिन भीष्म के बाणों से पाण्डव सैन्य का बहुत ही नाश होने लगा। तब धर्मराज ने पूरी सेना को भीष्म पर चढ जाने की आज्ञा दी। भीष्म की सहायता के लिए दुर्योधन अपने बधुओं समेत पहुँच गया। तब भीम ने भीष्माचार्य के सारथी को मार कर सुनाभ आदि धृतराष्ट्र के 3 पुत्रों का सहार किया। दु खित हो कर दुर्योधन भीष्माचार्य के पास जा कर कहने लगा कि भीम अब हमारे सर्वनाश पर तुला हुआ है। भीष्म कहने लगे, "पहले तूने हमारी एक भी नहीं सुनी। भीम तुम मे अब किसी को जिंदा नहीं रखेगा। युद्ध के सिवा अब कोई चारा नहीं है।" आगे चल कर युद्ध मे अलम्बुष राक्षस ने अर्जुन के पुत्र इरावान् का वध किया।

ऐरावत नाग की पुत्रवधू विधवा हुई। क्यों कि गरुड ने उसका पति मार डाला था। उसके पुत्रहीन होने से ऐरावत ने अर्जुन के द्वारा पुत्र उत्पन्न करवा लिया था। उसका नाम इरावान् था। अलम्बुष राक्षस के हाथो उसका वध होते देख कर

घटोत्कच ने अपना माया जाल फैला दिया। उसके मायाजाल के कारण सब कौरव सेना भाग जाने लगी। तब भीष्माचार्य पुन पाडव सैन्य का नाश करने लगे। भीमसेन आवेश से आगे बढा। उसका धृतराष्ट्र के तेरह पुत्रों ने प्रतिरोध किया। कइयो का भीम ने वध किया। बाकी सारे भाग गये। भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे। उस युद्ध में दोनो पक्ष के कई हाथियों, घोडों, रथों और पदातियों का सहार हुआ। सूर्यास्त होने पर भी कुछ समय तक युद्ध चालू ही रहा। तब युद्ध स्थगित किया गया और दोनो सैन्य अपने अपने शिबिर में चले गये।

उस रात में दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण इन चारो ने "पाण्डवो का नाश कैसे हो इस पर विचार करना शुरु कर दिया। कर्ण ने कहा, दुर्योधन, भीष्माचार्य का आतरिक आकर्षण पांडवों की ओर है। वे तहे दिल से युद्ध नहीं कर रहे हैं। तू उन्हें शस्त्र नीचे रखने कह दे। मैं पाण्डवो का सहार कर देता हूँ। दुर्योधन ने जाकर भीष्माचार्य को वही कहा। सुन कर वे बहुत ही कुपित हुए। क्रोधावेश में विशेष कुछ न कह कर उन्होंने इतना ही कहा कि, "विराट नगरी मे जब अर्जुन ने सबके वस्त्र हरण लिये थे, घोषयात्रा के समय तुम सब को कैदी बना के गधर्व ले जाने लगे, उस समय कर्ण का बल पौरुष कहाँ गया था? कल मै वह पौरुष प्रकट करूगा कि सब लोग मेरी स्तुति ही करेंगे। लेकिन मै शिखडी को नहीं मारूगा। वह जन्म से स्त्री था। बाद में किसी यक्ष की कृपा से उसे पुरुषत्व प्राप्त हुआ है। इसलिये उस पर मै तीर नहीं चलाऊगा।" वह सुन कर दुर्योधन अपने स्थान आ कर सो गया।

९) नौवें दिन भीष्माचार्य ने अपनी सेना को सर्वतोभद्र व्यूह मे आबद्ध किया। इधर पाडवो ने महाव्यूह की रचना की। उस दिन भीष्म ने अपूर्व पराक्रम दिखाया। उनके सामने खडा होने की किसी की हिम्मत नहीं पडती। पाडवों की सेना भागने लगी। वह देख कर कृष्ण ने अर्जुन के रथ को भीष्म के रथ के सामने ला खडा कर दिया। भीष्म और अर्जुन के बीच घोर युद्ध प्रारभ हुआ। भीष्म के सामने अर्जुन के पौरुष को अधूरा देख कर श्रीकृष्ण ने घोडों कि लगाम छोड कर हाथ मे सुदर्शन चक्र धारण किया और वे भीष्म को मारने दौड पडे। तब कौरवो की सेना मे अजीब तहलका मच गया। इतने मे अर्जुन दौडता आ पहुँचा। उसने श्रीकृष्ण के चरणों मे सिर नवा कर उनसे प्रार्थना की कि, "आप शस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा का भग मत किजिये। मै भीष्म को परास्त करता हूँ।" तब फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ पर आरूढ हुए और युद्ध चालू हुआ। भीष्म क अद्भुत आवेश के कारण पाडव सैन्य भाग जाने लगा।

उस दिन पाडव सैन्य का भारी विध्वंस हो जाने के कारण शिबिर पहुचते ही धर्मराज ने बडे ही दुःख के साथ श्रीकृष्ण से कहा, "मै यह युद्ध नहीं चाहता और राज्य भी नहीं चाहता। मै अब अरण्य मे जाकर अपने देह का सार्थक करूगा। भीष्म पितामह से लड कर व्यर्थ जान देने की अपेक्षा तपश्चर्या करना लाख गुना अच्छा है।" श्रीकृष्ण बोले, "तुम मुझे आज्ञा दो, मै कल ही भीष्माचार्य का वध करवाता हू।" लेकिन धर्मराज ने उस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होने कहा भीष्म ने मुझे पहले ही दिन बताया है कि तू फिर कभी आ। मुझे जीतने का उपाय मै तुझे बताऊँगा। तदनुसार हम अब भीष्म के पास चले जाए। धर्मराज की बात मान कर वे सब भीष्माचार्य के पास चले गए। भीष्म ने उन सबका बडे आनद मे आगत स्वागत किया। धर्मराज ने भीष्म से उनके पराजय की युक्ति पूछी। भीष्म ने बताया, तुम शिखडी को आगे कर के लडो। मै उसका मुह भी नहीं देखूगा। क्यों कि वह जन्म से स्त्री है। उसके पीछे रह कर अर्जुन मुझ पर तीर चलाए। तब मै अपना जीवनकार्य समाप्त कर दूगा।"

10) दसवे दिन धर्मराजा के आदेशानुसार अर्जुन ने शिखण्डी को आगे कर के भीष्माचार्य पर इतने तीर चालए कि उनका शरीर छिन्न विच्छिन्न हो गया। भीष्म उन तीरों के सहित रथ से नीचे गिर पडे। देवो ने उन पर पुष्पवर्षा की। उनके गिरते गिरते सूर्य दक्षिण की तरफ झुक गया। यह बात उनके ध्यान में आ गयी। इसलिये उत्तरायण के प्रारभ होने तक वे तीरो की शय्या पर वैसे ही लेटे रहे। भीष्म के गिर पडते ही युद्ध को स्थगित करके दोनो दलो के वीर भीष्माचार्य के पास बद्धाजलि हो कर खडे रहे। उनका स्वागत करके भीष्म ने कहा, "मेरा मस्तक लटक रहा है। उसे आधार चाहिए।" वह सुन कर बहुतेरे नरम नरम तकिये ले आये। वह देख कर भीष्म हसे। उन्होंने अर्जुन की तरफ देखा। भीष्मजी का अभिप्राय ध्यान मे ले कर अर्जुन ने तीन तीर इस ढग से छोडे की उनका एक तकिया ही लग गया। उससे भीष्म के लटकते मस्तक को आधार मिल गया। भीष्मजी की सुरक्षा कर देने के बाद सभी उनका आदेश लेकर भारी दुःख के साथ अपने अपने स्थान चले गये।

दूसरे दिन सबेरे ही सब लोगों के पहुँचते ही भीष्म ने उनसे जल मागा। कइयो ने उनके सामने खाने की चीजें और जल के कलश रखे। भीष्माचार्य ने जल देने अर्जुन से कहा। अर्जुन ने धरती में तीर चलाकर अमृत जैसा मधुर और सुगधित जल का निर्झर खिचवा लिया और भीष्माचार्य की प्यास बुझा कर उन्हे तृप्त किया। भीष्मजी ने अर्जुन की स्तुति की और दुर्योधन से कहा, "देख लिया तुमने अर्जुन का पराक्रम? पाण्डवो को जीतना सभव नहीं है। उनसे बैर छोड दो उन्हें उनका आधा राज दे कर, सुख से दिन बिताओ।" लेकिन यह बात दुर्योधन को नही जंची। बाद मे सब लोगों के अपने अपने

निवास स्थान चले जाने पर कर्ण भीष्म से मिलने पहुचा। "तुम्हारी आखों मे खटकने वाला तुम्हारा शत्रु- मैं कर्ण आ गया हूं।" उनका कहना सुनते ही भीष्माचार्य ने आखे खोली। बडे प्रेम से कर्ण को पास बुला कर कहा, "सूर्यसे, कुन्ती की कोख से जन्मे तुम 'कौंतिय' याने पाण्डवों के सगे भाई हो। तुम्हें पाण्डवों से स्नेहपूर्वक रहना चाहिए। बैर को भूल जावो जिससे युद्ध तथा संहार नहीं होगा। मैने तुमको अब तक जो भी भला बुरा कहा वह केवल इसलिये कि कौरव-पाण्डवों का बैर विद्वेष न बढने पाए। तुम्हारी वीरता से मैं पूरी तरह परिचित हू। मै चाहता हू कि मेरे पतन के साथ ही यह संग्राम समाप्त हो।" इस प्रकार भीष्माचार्य ने कर्ण को बहुत कुछ समझाया। उस पर कर्ण बोला, "मै जानता हू कि मै कुन्ती का पुत्र हूं। लेकिन मैने दुर्योधन का नमक खाया है। मै उनका विश्वासघात नहीं कर सकता।" यह सुन कर भीष्म ने कहा, "अगर तुम्हें बैर भुला देना ठीक न लगता हो, तो तुम क्षत्रिय धर्म के उचित ही युद्ध करो। अर्जुन के हाथ तुम्हें मृत्यु तथा सद्‌गति भी मिलेगी। मैने लाख प्रयत्न किये कि युद्ध न हो, परन्तु उसमें मैं असफल ही रहा। भीष्माचार्य का वह निवेदन सुन कर उन्हें प्रणाम कर के उनकी आज्ञा से कर्ण दुर्योधन के पास लौट पड़ा।

7 द्रोणपर्व

कथन के अनुसार कर्ण भीष्मजी से मिल कर लौट पडा था। दुर्योधन ने कर्ण से पूछा कि अब भीष्मजी के पश्चात् सेनापति पद किसे प्रदान करें। कर्ण ने द्रोणाचार्य जी का नाम सूचित करने पर दुर्योधन ने उनको सेनापति पद दिया। सेनापति बनने पर द्रोणाचार्य ने पाच दिन बडा ही घोर युद्ध किया। एक अक्षौहिणी से भी अधिक वीरों का नाश किया। लेकिन अत में धृष्टद्युम्न ने उनका वध किया। वह वृत्त सुनते ही धृतराष्ट्र ने द्रोणाचार्य की मृत्यु पर भारी शोक प्रकट किया और युद्ध का पूरा विवरण बताने के लिए सजय को आदेश दिया। उस पर सजय ने बताया

द्रोणाचार्य के सेनापति होने पर दुर्योधन ने कहा, "गुरुदेव, मेरी यह इच्छा है कि युद्ध में धर्मराज को तुम जीवित पकड लाओ।" कारण पूछने पर दुर्योधन ने बताया और अपने हृदय का छल कपट प्रकट कर के सुनाया। धर्मराज को हम मरवा डालें तो भीम, अर्जुन आदि दूसरे भी हम सब का पूरा नाश किये बिना सास नहीं लेंगे और अगर धर्मराज को जीवित ही पकड सके तो हम पुन उनसे द्यूत खेल सकेंगे और उन्हे पूर्ववत् वनवास को भिजवा दे सकेंगे। दुर्योधन के दिल की वह दुष्ट वासना सुन कर द्रोणाचार्य बोले, "अच्छी बात है। मै यह काम करके दिखाऊगा किन्तु अर्जुन को किसी तरह स धर्मराज की रक्षा करने की फुर्सत न मिलने पाए। अर्जुन दूसरी तरफ कहीं फसने पर मै धर्मराज को जीवित पकड ला सकूगा। अर्जुन के समक्ष यह बात कदापि होने वाली नहीं है।"

द्रोणाचार्य ने अपना रथ धर्मराज के रथ तक पहुचा दिया। यह देख कर धर्मराजा का विनाश हुआ इस तरह हाहाकार पाण्डवों की सेना मे मच गया। यह सुनते ही अर्जुन वहा पहुच गया और उसने धर्मराज का रक्षण किया।

शिबिर पहुचने पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा, "देखो हम सब अर्जुन के वहा पहुचने पर आज धर्मराज को जीवित पकडने मे असफल रहे। अर्जुन को जीतना असभव है। इसलिये अब अर्जुन को दूसरी तरफ किसी न किसी उपाय से रोक फसा देना चाहिए। वह सुन कर त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा और उसके भाई अर्जुन के साथ युद्ध करने की शपथ ले कर अपनी सेना के साथ सन्नद्ध हो गये। जीतेंगे या तो युद्ध मे मर मिटेंगे इस प्रकार की घोर प्रतिज्ञा कर लेने से वे सशप्तक कहलाते थे। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को जो अपना सैन्य दिया था वह "नारायण गण" नाम से प्रसिद्ध था। वह भी सशप्तकों के साथ चल पडा। बारहवे दिन इधर उधर युद्ध के प्रारभ होने के पहले ही सशप्तकों ने अर्जुन को युद्ध के लिए चुनौती दी। युद्ध के लिए चुनौती प्राप्त होने पर ना न कहने की अर्जुन की प्रतिज्ञा थी। धर्मराज की सुरक्षा का काम पाचाल्य राजपुत्र सत्यजित् को सौप कर अर्जुन संशप्तकों का युद्ध करने दक्षिण दिशा की तरफ चला गया और उधर युद्ध में काफी सशप्तकों का और नारायण गण का सहार करना उसने शुरु कर दिया।

12) अर्जुन के सशप्तकों की तरफ जाने पर बारहवें दिन का युद्ध शुरु हुआ। द्रोणाचार्य ने पाडव सैन्य का भयंकर सहार कर के अपना रथ धर्मराज के रथ के निकट पहुचा दिया। तब सत्यजित सामने आ कर युद्ध करने लगा। लेकिन द्रोणाचार्य ने उसका वध किया। वह देख, सहम कर धर्मराज भाग गये। अनन्तर विराट राजा का छोटा भाई शतानीक सामने आ गया। उसका भी नाश द्रोणाचार्य ने किया। तब पाण्डव सैन्य में भगदड मच गयी। यह देख कर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। परंतु इतनें मे भीम द्रोणाचार्य की सेना का सामना करने चढ आया। तब राजा भगदत्त हाथी पर सवार होकर युद्ध करने प्रस्तुत हुआ। उसने अपने हाथी को भीम के रथ पर चलाया। उसके हाथी ने भीम के रथ को नष्ट कर दिया। भीम उस हाथी के पेट पर नीचे से मुष्टिप्रहार करने लगा। तब वह हाथी चक्र के समान गोलाकार घूमने लगा, और भीम को पकड में लाने का मौका ढूंढने लगा। भीम उसके पेट के नीचे से सटक गया। हाथी पाण्डव सैन्य का सहार करने लगा। कोई उसको रोक न सका। पाण्डव सैन्य रोते चिल्लाते भागने लगा। यह वार्ता सुन कर भगदत्त के वध के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को

उस तरफ मोड़ दिया लेकिन संशप्तकों ने युद्ध के लिए आह्वान किया इसलिये फिर से इनसे युद्ध कर के अर्जुन ने दस हजार त्रिगर्त वीरों और चार हजार नारायण गणों को नष्ट किया और भगदत्त से लड़ने प्रवृत्त हुआ। फिर से सुशर्मा पर्याप्त सैन्य के साथ युद्ध करने पहुच गया। तब सुशर्मा के भाई का वध कर के और खुद सुशर्मा को बेहोश कर के अर्जुन भगदत्त की तरफ आ पहुचा। अर्जुन ने हाथी और भगदत्त को लक्ष्य कर के शरवर्षा की। प्रत्युत्तर मे भगदत्त ने अर्जुन पर वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र को श्रीकृष्ण ने अपने हृदय पर झेल लिया। वह अस्त्र श्रीकृष्ण के कठ में वैजयन्ती नामक कमलो की माला बन गया। बहुत पहले धरती ने अपने पुत्र नरकासुर के लिए वह अस्त्र विष्णु से माग लिया था। नरकासुर का वध श्रीकृष्ण के हाथों होते ही वह अस्त्र भगदत्त को प्राप्त हुआ था। वह वैष्णवास्त्र अजेय होने के कारण उससे अर्जुन को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने उसे अपनी छाती पर झेल लिया।

अनन्तर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "भगदत्त बहुत ही बूढा हो गया है। माथे पर की सिकुडन आख पर आ लटकने से उसे कुछ दिखाई नहीं देता, इसलिये उसने माथे पर पट्टी बाध रखी है। सूचना मिलते ही अर्जुन ने तीर चला कर उस पट्टी को तोड दिया। परिणाम भगदत्त को दिखाई देने मे विघ्न आ पडा। तब अर्जुन ने तीर चला कर हाथी और साथ साथ भगदत्त का संहार किया। भगदत्त का वध करने पर अर्जुन दक्षिण दिशा की ओर युद्ध करने चला गया। तब द्रोणाचार्य ने फिर पाण्डव सैन्य का सहार करना प्रारभ किया। वह देख कर नील नाम का राजा कौरवों के साथ युद्ध करने आगे बढा। उसका नाश अश्वत्थामा ने किया तब पाण्डव सैन्य फिर से भागने लगा।

इतने में सशप्तकों को पराभूत कर अर्जुन वहां पहुचा और द्रोणाचार्य की सेना का सहार करने लगा। कौरवों की सेना को भागती देख कर कर्ण आगे बढा। अर्जुन ने उस पर अनेक तीर चला कर उसके तीन भाइयों का वध किया। भीम ने भी अपनी गदा चला कर कर्ण की सेना का बहुत सहार किया।

13) तेरहवे दिन सबेरे दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा, "आपका सकल्प यह दिखाई देता है कि हमारा नाश हो। धर्मराज को आपने कल नहीं पकडा।" द्रोणाचार्य बोले, "तेरे लिए मै भरसक प्रयास तो कर रहा हूँ, फिर भी तू इस तरह उलाहना क्यों दे रहा है? खैर आज पाण्डव पक्ष के किसी महान योद्धा को मार कर ही सास लूगा किन्तु अर्जुन को कहीं दूर रुकवा देना। वह सुन कर सशप्तकों ने अर्जुन को दक्षिण की ओर युद्ध मे ललकारा। अर्जुन के चले जाने पर द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। वह रचना देख कर धर्मराज किंकर्तव्य विमूढ हो गये। उन्होंने अभिमन्यु से कहा, "चक्रव्यूह का भेदन करने का रहस्य तू, अर्जुन, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न इन चार वीरों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। तब तू चक्रव्यूह का भेदन करने प्रस्थान कर। हम तेरे पीछे पीछे उसी मार्ग से आगे बढेंगे।

चक्रव्यूह का भेदन कर के अभिमन्यु के भीतर प्रवेश करने पर भीम आदि पाडव अभिमन्यु के पीछ पीछे जाने लगे परन्तु जयद्रथ ने उनका मार्ग रोक लिया। पांडवो को उसने भीतर नहीं जाने दिया। वनपर्व के वर्णनानुसार भगवान शकर का जयद्रथ को विशेष वर प्राप्त था। व्यूह के भीतर घुसते ही अभिमन्यु समूचे सैन्य का विध्वस करने लगा। यह देख कर दु शासन उससे लडने आया, लेकिन अभिमन्यु के तीरों से वह मूर्च्छित हो गया। अनन्तर कर्ण प्रस्तुत हुआ। अभिमन्यु ने उसके धनुष्य को तोडा। इस युद्ध मे कर्ण का भाई शल्यपुत्र रुक्मरथ, दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण आदि वीरों का अभिमन्यु ने वध किया। तब कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा और बृहद्बल इन छह वीरो ने अभिमन्यु को घेर लिया। उनमे से बृहद्बल को अभिमन्यु ने नष्ट किया। तब द्रोणाचार्य के कहने से कर्ण ने उसका धनुष्य तोडा। कृतवर्मा ने घोडों के प्राण हर लिए। बाकी तीनों ने उस पर बाणों की बौछार की। अभिमन्यु ने हाथ में ढाल तलवार उठाई। द्रोणाचार्य ने ढाल-तलवार तोड दिया। अनन्तर उसने चक्र धारण किया। उसको भी सबने तोड दिया। बाद में अभिमन्यु ने गदा उठा कर बहुतेरे वीरो का नाश किया। तदनन्तर दु शासन का पुत्र और अभिमन्यु दोनो में गदा युद्ध जब छिडा तब दोनों एक दूसरे के गदाघातो से मूर्च्छित हो गिरे, परतु दु शासन का पुत्र पहले होश में आया। अभिमन्यु खडा हो ही रहा था कि दु शासन के पुत्र ने उसके मस्तक पर गदा प्रहार किया। उसी क्षण अभिमन्यु मृत्यु के अधीन होकर नीचे गिर पडा। अभिमन्यु का वध होने पर दोनो सेनाएं अपने अपने शिबिर चली गयी।

अभिमन्यु की मृत्यु के कारण धर्मराज बहुत ही शोक करने लगे। तब व्यास महर्षि वहा पहुचे। उन्होंने धर्मराज की सांत्वना की। अनन्तर सशप्तकों को पराभूत करके श्रीकृष्ण और अर्जुन वापस लौटे। अर्जुन ने अभिमन्यु के लिए बहुत शोक किया। जब उसे पता चला कि जयद्रथ के कारण पाण्डव अभिमन्यु की सहायता में नहीं बढ सके, और इसीसे अभिमन्यु का वध हुआ, तब अर्जुन ने, "कल सूर्यास्त से पहले जयद्रथ का वध करूंगा, न कर सकू तो खुद जल कर भस्मसात् हो जाऊगा।" इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा की। यह वार्ता जयद्रथ के कानों पर पडते ही वह अपने घर जाने की तैयारियां करने लगा। लेकिन द्रोणाचार्य के आश्वासन देने पर वह रुक गया।

उस रात में श्रीकृष्ण को नींद नहीं आयी। उन्होंने दारुक से कह रखा कि, "कल सबेरे मेरे रथ को सभी शस्त्रास्त्रों सहित तैयार रख। मैं अपना शंख विशेष ढंग से बजाऊंगा। उस समय रथ को सजा ले आना। अर्जुन और मुझमें तनिक भी भेद न होने के कारण उसके हाथों प्रतिज्ञा पूर्ति न होने पर मैं उसको निभाऊंगा।

14) चौदहवें दिन सबेरे कौरव सैन्य को व्यूहबद्ध करके द्रोणाचार्य ने जयद्रथ से कहा कि तुम यहां से छह कोसों पर व्यूह के बीच जाकर बैठो। वहां तुम्हें कोई भी नहीं मार सकेगा। जयद्रथ की रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य की नियुक्तियां हुईं। उनकी सहायता में एक लाख घोडे, साठ हजार रथ, चौदह हजार हाथी और इक्कीस हजार शस्त्रास्त्रों से युक्त पदाति सैन्य दिया हुआ था। जयद्रथ उनके साथ अपने स्थान चला गया। शकटव्यूह चौबीस कोस लम्बा, पीछे दस कोस चौडा बना था। उसके भीतर आगे चक्रव्यूह, इन सब व्यूहों के मध्यम भाग में सुई से लंबे सूचीव्यूह के मुख पर द्रोणाचार्य और एकदम पीछे की तरफ जयद्रथ था। द्रोणाचार्यजी की सुरक्षा के लिए उनके पीछे कृतवर्मा था। दु:शासन और विकर्ण सैन्य के आगे थे। सारी सिद्धता हो जाने पर चौदहवें दिन युद्ध आरंभ हुआ। अर्जुन ने तेजी से आगे बढकर अगाडी के हाथियों के सैन्य को लिए खडे दु:शासन को पराभूत किया। तब दु:शासन द्रोणाचार्य के पास भाग गया। अनन्तर अर्जुन द्रोणाचार्य के सामने प्रस्तुत हुआ। गुरु द्रोण से प्रार्थना करके वह आगे बढने लगा। द्रोणाचार्य ने कहा, "मुझे जीते बिना आगे बढना संभव नहीं।" उस पर ध्यान न देकर अर्जुन आगे चल पडा। वह देखकर, "शत्रु को जीते वगैर तू कभी आगे नहीं बढता है? इस प्रकार द्रोणाचार्य के टोकने पर आगे बढते घुसते अर्जुन ने जवाब में कहा, "आप मेरे लिए शत्रु नहीं है, गुरुदेव हैं। मैं तुम्हारा शिष्य याने पुत्र ही हूं।" वह कृतवर्मा के सम्मुख जा पहुंचा। अर्जुन के रथ के पहियों की रक्षा करने के लिए युधामन्यु और उत्तमौजा दो वीर थे। उनसे युद्ध करने में लगे कृतवर्मा को देख कर अर्जुन अकेला ही आगे बढ़ने लगा। उन दोनों को कृतवर्मा ने व्यूह के भीतर नहीं घुसने दिया। अर्जुन को आगे बढते देख काम्बोज देश का राजा श्रुतायुध हाथ में गदा लेकर सामने आ गया। वह गदा उसे अजेय बनाने के हेतु वरुण देव ने दी थी। देते समय वरुण देव ने बताया था कि युद्ध न करने वालों पर इसका प्रयोग करोगे तो गदा तुम्हीं को नष्ट कर देगी। लेकिन भूल वश श्रुतायुध ने गदा का उपयोग श्रीकृष्ण पर किया। श्रीकृष्ण युद्ध न करने वालों में होने के कारण गदा ने लौटकर श्रुतायुध का विनाश किया।

उसके अनन्तर श्रुतायुध का पुत्र सुदक्षिण, श्रुतायु व अश्रुतायु उनके पुत्र नियतायु व दीर्घायु अम्बष्ठ राजा आदि अनेक वीरों का नाश करने पर अर्जुन के सामने खडे होने की हिम्मत किसी की न हुई। दुर्योधन ने जब यह देखा की अर्जुन अविरोध जयद्रथ की ओर बढ रहा है, तब उसने द्रोणाचार्य से कहा, "आपको जीतना किसी को संभव नहीं है, तब अर्जुन आगे कैसे बढा? मेरा खाकर आप पाण्डवों का हित सोचते रहते हैं।" वह सुनकर द्रोणाचार्य को खेद हुआ। वे बोले, "अर्जुन तरुण है, मैं बूढ़ा हो गया हूँ। उसका सारथ्य भगवान् श्रीकृष्ण कर रहे हैं। उसके घोडे बहुत ही तेज हैं। अर्जुन जिन बाणों को छोडता है उनसे भी आगे एक कोस उसका रथ पहुंच जाता है। यहां व्यूह के अग्रभाग में पाण्डवों का सैन्य है, अर्जुन यहां नहीं है। धर्मराज को जीवित पकडने यह अच्छा मौका दिखाई दे रहा है। मैं यहीं युद्ध करता हूं। तू अर्जुन की ओर जा। "दुर्योधन ने कहा, "तुम्हारे सामने से जो निकल आगे बढा उसे मैं कैसे रोक सकूंगा?" उसपर द्रोणाचार्य ने मंत्रप्रयोग करके दुर्योधन को कवच पहना दिया। कवच धारण किये दुर्योधन अर्जुन की ओर पर्याप्त सैन्य साथ में लेकर चल पडा। और द्रोणाचार्य वहीं युद्ध करते रहे।

अर्जुन को आगे बढते देखकर अवन्ति देश के राजा विंद और अनुविंद युद्ध के लिये सामने डटे। उनका नाश करने पर अर्जुन ने तीरों को एक घर सा बना लिया। धरती का भेदन कर वहां एक सरोवर निर्माण किया। तब श्रीकृष्ण ने रथ के घोडों को खोला। उनके शरीर के तीरों को निकाला। उन्हें खूब लोटने दिया, पानी पिलाया, तैराया, चना आदि खिलाकर फिर से उन्हें रथ में जोड दिया। कौरवों की सेना अचरज से एकटक देखती ही रही। उनसे प्रतिकार में कुछ भी करते नहीं बना। अनन्तर अर्जुन आगे बढने प्रस्तुत हुआ। दुर्योधन ने उसका प्रतिकार किया। उसके शरीर पर कवच था, वह देखकर अर्जुन ने अपने तीर उसके नाखूनों और मांस ग्रंथियों के जोडों में चलाये। तब दुर्योधन को मर्मान्तिक वेदनाएं होने लगीं। दुर्योधन की सुरक्षा तथा सहायता में जो सैन्य साथ में था, उसका अर्जुन ने विनाश कर दिया। वह देखकर श्रीकृष्ण ने अपना शंख जोर से बजाया।

वहां से जयद्रथ बहुत दूर नहीं था। दुर्योधन की वह हालात देखकर भूरिश्रवा, अश्वत्थामा आदि वीर जो कि जयद्रथ के रक्षणार्थ थे, अब अर्जुन से युद्ध करने लगे।

उधर धर्मराज गुरु द्रोणाचार्य के साथ युद्ध कर रहे थे। युद्ध में उनके घोडे मारे जाने के कारण वे सहदेव के रथ पर सवार होकर युद्धक्षेत्र से हट गये थे। अनन्तर केकय देश के राजा बृहत्क्षत्र ने कौरवों की तरफ के क्षेत्रपूर्ति राजा का वध किया। चेदि देश के राजा धृष्टकेतु ने कौरवों की तरफ से चिरधन्वा का वध किया। मगध देश के राजपुत्र व्याघ्रदत्त और

उनकी सेना का नाश सात्यकि ने किया। ऋष्यशृंग के पुत्र अलम्बुष राक्षस का, (जिसका दूसरा नाम शालकटंकट था) वध घटोत्कच ने किया। उसके बाद सात्यकि द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगा।

इतने मे पहली सूचना के अनुसार श्रीकृष्णने जो अपनी सांकेतिक शख ध्वनि की। वह ध्वनि धर्मराज को सुनने को मिली। वह सुनकर उन्हें ऐसा लगा कि अर्जुन पर बड़ा भारी सकट मंडरा रहा है। धर्मराज ने सात्यकि को आज्ञा दी कि वे अर्जुन की सहायता में शीघ्र चले जाए। सात्यकि द्रोणाचार्य के आगे से अर्जुन के ही समान आगे बढा। लेकिन द्रोणाचार्य ने उसका पीछा किया। तब सात्यकि ने द्रोणगुरु के सारथी को मारा। सात्यकि का प्रतिकार जलसघ ने किया। उसका नाश करने के उपरान्त सात्यकि ने सुदर्शन का भी नाश किया। बाद दुर्योधन के सारथी को नष्ट कर उसे भी भाग जाने पर विवश किया, उसी तरह दु शासन को भी जीत लिया।

व्यूह के भीतर प्रवेश करने पर सात्यकि से द्रोणाचार्य ने बाजी लगाकर युद्ध किया। उन्होंने केकय राजा, बृहत्क्षत्र, चेदि राजा, धृष्टकेतु और उसका पुत्र, तथा जरासध का पुत्र इनका वध करके सैन्य का भारी विध्वस किया।

इधर अर्जुन की चिंता से धर्मराज को भारी दु ख हुआ। अब उन्होंने भीम को उधर यह कह कर भेजा कि जाते ही अर्जुन का क्षेम कुशल प्रकट करने के लिए तू जोर से गर्जना कर जिससे मैं निश्चित हो जाऊंगा। धर्मराजा के आदेश पर भीम चल पडा। द्रोणाचार्य ने उसे रोका। गुरु द्रोण का रथ ही भीम ने उठाकर फेंका। इस प्रकार आठ बार रथ उठा फेंक देने पर वह आगे निकल पडा। उससे युद्ध करने दुर्योधन के कुछ पुत्र प्रस्तुत हुए, उन सबका उसने नाश किया। कृतवर्मा को जीत कर आगे बढने पर सात्यकि और अर्जुन को कौरव सेना के साथ युद्ध करते उसने देखा। देखते ही उसने भीम गर्जना की। वह सुनकर इधर धर्मराज को बडा ही आनंद हुआ। भीम की गर्जना सुन कर कर्ण आगे बढा। घोड़ों और सारथी के मरने पर वह वृषसेन के रथ पर सवार होकर रण-क्षेत्र मे भाग निकला।

अनन्तर दुर्मर्षण आदि पांच, धृतराष्ट्र पुत्र रणक्षेत्र पर युद्ध के लिए पहुंचे। इनका भी वध भीमसेन ने किया। फिर एक बार कर्ण को भगाने पर दुर्योधन के आदेश से उसके चौदह भाई युद्ध के लिए आ गये। उन सब का वध भीमसेन ने किया। उनमे विकर्ण भी था, जिसने द्यूत में हारने पर भी "द्रौपदी दासी नहीं है" यह अपना मत व्यक्त धैर्य से किया था। वह याद करके विकर्ण की मृत्यु से भीमसेन को बहुत ही दु:ख हुआ। वह बोला, "सभी कौरवों का सहार करने की मेरी प्रतिज्ञा-पूर्ति मे ही मैंने तेरा वध किया। सचमुच क्षात्र धर्म बडा ही निष्ठुर है।" इस प्रकार अपने इकत्तीस भाई भीम के हाथों मारे गए देखकर दुर्योधन को विदुर का हितोपदेश याद आया।

भीमसेन और कर्ण दोनो मे फिर से युद्ध शुरु हुआ। भीम ने कर्ण के हाथ से धनुष्यो को बार-बार तोड कर उसके दल का बहुत ही विनाश किया। तब कर्ण को बडा क्रोध आ गया। उसने अस्त्र से भीम के रथ और घोडोका नाश किया और सारथी पर तीर चलाया। भीम के सारथी ने युधामन्यु के रथ का सहारा लिया और स्वय भीम एक मृत हाथी की आड़ मे जा छिपा। एक हाथी को उठाकर जब वह खडा हो गया, तब कर्ण ने तीर चलाकर हाथी के अग-अग को तोड डाला। पश्चात् हाथी, रथ, घोडे आदि भीम ने जो भी फेका वह सब कर्ण ने तोड डाला। तब भीम ने अपनी मुट्ठी उठायी, पर कर्ण के वध की प्रतिज्ञा अर्जुन की होने के कारण, भीम ने कर्ण को नहीं मारा। साथ ही कर्ण ने भी कुंती को दिये वचन को याद कर भीम को नहीं मारा। फिर भी धनुष्य के सिर से उसे चुभाया और "पेटू" आदि शब्दो के उसकी खूब निंदा की। भीम ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा, "युद्ध में देवेन्द्र की भी कभी पराजय होती है। तू तो मेरे सामने से कई बार भाग गया है। अब क्यो व्यर्थ बढ़कर बातें करता है?" "ये सारा दृश्य अर्जुन ने देखा और उस ने कर्ण पर तीखे तीर चलाये। तब कर्ण भीम को छोड दूर चला गया और भीम भी सात्यकि के रथ पर सवार होकर अर्जुन की ओर चल पडा।

सात्यकि से लडने अलम्बुश नामक राजा आ धमका। उसका नाश करके दु शासन आदि जो प्रतिकार करने वहा पहुंचे उनको पराभूत कर सात्यकि अर्जुन के पास जा पहुंचा। इतने में भूरिश्रवा युद्ध के लिए आ पहुचा। सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों ने एक दूसरे के घोडे मारे और धनुष्यों को तोडा। बाद में ढाल-तलवार लेकर उन्होंने युद्ध किया। ढाल-तलवार के टूटने पर वे दोनों बाहु-युद्ध करने लगे। भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर भूमि पर पटका और एक हाथ में तलवार लेकर और दूसरे हाथ से उसके केश पकड उसकी छाती पर लात जमाई और उसका शीश काटने प्रस्तुत हुआ।

इतने में श्रीकृष्ण की सूचना से अर्जुन ने तीर चलाकर उसका खड्गयुक्त दाहिना हाथ तोड डाला। तब भूरिश्रवा अर्जुन से बोला, "मै दूसरे से युद्ध कर रहा था। मेरा हाथ तोडने का अति नीच कर्म तूने क्यों किया? कृष्ण की सगति का ही यह परिणाम दिखाई देता है।" उसपर अर्जुन ने कहा, "क्षत्रिय वीर अपने दल-बल को साथ में लेकर लडतें रहते हैं, उनको एक दूसरे की रक्षा करनी पडती है, इसी लिए उसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। लेकिन तू स्वय अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता, तब अपनी सेना की रक्षा तू क्या कर सकेगा।" यह सुनने पर भूमि पर दर्भ बिछाकर भूरिश्रवा प्रायोपवेशन के लिए

बैठ गया। तब सात्यकि ने हाथ में तलवार उठाकर सब लोगों के रोकने पर भी भूरिश्रवा का सिर धड से अलग कर दिया। सात्यकि की निंदा करने वाले लोगों को सात्यकि ने उत्तर दिया की, "शत्रु को जो भी दुखदायी, वह सब कुछ अवश्य कर लेना चाहिए, इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में लिखा होने के कारण, इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है।

सात्यकि-जैसे पराक्रमी वीर को भूरिश्रवा जमीन पर कैसे पटक सका? धृतराष्ट्र के इस प्रश्न का उत्तर सजय ने इस प्रकार दिया। यदु के वश में वसुदेव और शिनि दो महावीर थे। देवकी की कन्या का स्वयवर था। शिनि ने वसुदेव के लिए कन्या को अपने रथ पर बिठा लिया। उस समय उपस्थित राजाओं से युद्ध हुआ। अन्यों को तो शिनि ने पराभूत किया, पर सोमदत्त ने आधा दिन घसमान युद्ध किया, और आखिर मे बाहु-युद्ध में शिनि ने सोमत्त को सबके सामने जमीन पर पटक दिया। एक हाथ में तलवार लेकर, दूसरे हाथ से उसके केश पकड लिए, पर उसे न मारते हुए छोड दिया। सोमदत्त उस अपमान को सहन नहीं कर सका। उसने शंकर को प्रसन्न करके वर माग लिया कि मुझे ऐसा पुत्र दो कि जो शिनि ने जिस प्रकार मेरा अपमान किया, उसी प्रकार सब के समक्ष वह शिनि के पुत्र का अपमान कर पाए। शकर ने वरप्रदान किया, और इसीलिए भूरिश्रवा उस दुर्घट कर्म को कर सका।

भूरिश्रवा के वध के पश्चात् अर्जुन ने कौरव-सेना का बहुत सहार किया। इतने म सूर्यास्त की बेला आ गयी। जयद्रथ की रक्षा मे जो प्रधान वीर और सेना थी उनको सूर्यास्त से पहले जीतना असभव देखकर श्रीकृष्ण ने युक्ति चलाई। उन्होंने सूर्य को आच्छादित कर अधेरा निर्माण किया। उस समय सूर्यास्त का आभास होकर कौरव-सेना हर्षप्रफुल्ल होकर उचक-उचक कर आकाश की ओर ताकने लगी। उन सब मे जयद्रथ भी एक था।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "वह देख जयद्रथ। तीर चला कर उसका सिर इस कदर उडा दे कि वह उसके पिता वृद्धक्षत्र, जो कुरुक्षेत्र में तपश्चर्या कर रहे हैं उनकी गोद मे जा गिरे, कारण जयद्रथ का सिर जो भूमि पर गिराएगा उसी के सिर के टुकडे-टुकडे हो जाएंगे इस प्रकार उन्होंने बताया था। इससे एक ही तीर से दोनो का नाश होगा।" उस पर अर्जुन ने तीर चलाया उस तीर मे जयद्रथका सिर सध्या-वदन में सलग्न वृद्धक्षत्र की गोद मे जा पडा। वृद्धक्षत्र की उसी क्षण मृत्यु हो गयी। जयद्रथ के वध के उपरान्त श्रीकृष्ण ने सूर्य का कृत्रिम आवरण दूर किया। उपरान्त, श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सात्यकि युधामन्यु और उत्तमौजा सबने अपने अपने शख उच्च स्वर से बजाए। उस स्वर को सुन कर धर्मराज समझ गये कि जयद्रथ का वध हुआ और उन्होने भी बाजे बजा कर समूची पाडव सेना को प्रमुदित किया।

जयद्रथ का वध होने के बाद कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने अर्जुन पर चढाई की। उनका पराभव अर्जुन द्वारा होने पर वहा कर्ण आ पहुचा। सात्यकि के लिये स्वतत्र रथ न होने के कारण श्रीकृष्ण ने अपनी शखध्वनि से विशेष सकेत किया। उसी क्षण दारुक रथ लेकर पहुचा। उस पर सवार होकर सात्यकि ने कर्ण को पराभूत किया। तब कर्ण ने दुर्योधन के रथ का सहारा लिया। इतने में सूर्यास्त हुआ, तब श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सात्यकि आदि सभी धर्मराज से मिलने गये। धर्मराज सभी से बडे प्रेमसे मिले।

उस रात युद्ध फिर से शुरु हुआ। पाडवो के बढते प्रभाव को देख कर दुर्योधन को बहुत ही दुःख हुआ। तब कर्ण ने कहा, "मै जाकर सभी पाडवो का नाश कर देता हू।" उसके इस बढाई मारने पर कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने उसकी निन्दा की। तब कर्ण और अश्वत्थामा के बीच कलह प्रारभ हुआ। लेकिन दुर्योधन ने दोनो को समझा दिया। अनन्तर कर्ण युद्ध करने लगा। उसने पाडव सैन्य का बहुत ही विध्वस किया। भीम, अर्जुन, सात्यकि और धृष्टद्युम्न इन्होंने भी कौरव-सेना का वैसा ही विनाश किया। उस युद्ध मे सात्यकि ने सोमदत्त का वध किया। बाद मे अधेरा छा गया और हाथ को हाथ न सूझता था। तब दोनो सेनाओ मे आग जलाकर युद्ध होने लगा।

सात्यकि ने भूरिश्रवा का नाश किया। भीमसेन ने दुर्योधन को और कर्ण ने सहदेव को रण-क्षेत्र मे हटाया। उस युद्ध मे कर्ण का प्रताप सबको असह्य हो गया। कर्ण के पास अर्जुन के लिए ही सुरक्षित एक शक्ति सगृहीत थी। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन को उसके सामने नहीं जाने देते थे। तब अर्जुन ने घटोत्कच को कर्ण से लडने भिजवा दिया। जटासुर का पुत्र अलम्बुष राक्षस उसका प्रतिकार करने आ पहुचा। उसका वध घटोत्कच के हाथो होने पर अलायुध नामक राक्षस युद्ध के हेतु आ गया। उसका भी नाश उसने किया। उपरान्त घटोत्कच और कर्ण दोनो मे युद्ध प्रारभ हुआ। घटोत्कच का असह्य पराक्रम देख कर कर्ण ने अस्त्र चलाया और उसे रथ, सारथी और घोडो का नाश किया। तब घटोत्कच आख से ओझल हो गया और लुक-छिपकर युद्ध करने लगा। उसने अपनी राक्षसी माया फैला दी। उससे कौरव-सेना पर सभी दिशाओसे तरह-तरह के शस्त्र आकर आघात करने लगे और सब का बहुत ही नाश होने लगा।

तब सभी ने कर्ण से कहा कि, "अर्जुन के लिए जो शक्ति तू ने खास रखी है उसका प्रयोग अब तू घटोत्कच पर कर दे। आज के इस भयानक सहार में से हम बच गये तो सब मिलकर अर्जुन के विनाश की योजना कर लेंगे। "उनके

आग्रह से कर्ण ने खास अर्जुन के वधार्थ सुरक्षित इन्द्र की दी हुई वासवी शक्ति का घटोत्कच पर प्रयोग किया। उसी क्षण राक्षसी माया का सवरण होकर घटोत्कच का भी नाश हो गया। घटोत्कच ने मरते-मरते अपना शरीर इतना फुलाया कि उसके मृत शरीर के नीचे आकर कौरवो की एक अक्षौहिणी सेना नष्ट हुई। घटोत्कच का वध होते ही उधर युद्ध लगातार चलता रहने से सभी को थकान के मारे भारी नींद आने लगी, तब अर्जुन की सूचना के अनुसार सभी आगम करने चले गये। कुछ समय बाद चंद्रोदय हुआ। तब दस घटिका रात्रि शेष बची थी। अनन्तर दोनो सेनाए जग पडीं और उनमें फिर से युद्ध प्रारभ हुआ।

उस समय द्रोणाचार्य ने द्रुपद राजा, विराट राजा और द्रुपद राजा के तीन पौत्र इनका वध किया। इतने में सूर्योदय हुआ। सभी वीर अपने-अपने वाहनो पर से उतर पडे। उन्होंने सूर्याभिमुख होकर हाथ जोड कर सध्यासमय का जप-जाप किया।

15) पद्रहवें दिन युद्ध का आरभ हुआ। इस समय द्रोणाचार्य ने अस्त्रो का प्रयोग करके अस्त्र न जानने वाली सेना का बहुत ही नाश किया। तब श्रीकृष्ण ने बताया "युद्ध में द्रोणाचार्य को जीतना सभव नहीं है। अगर उन पर झूठमूठ कोई यह प्रकट करे कि अश्वत्थामा चल बसा, तो वे शस्त्र को त्याग देंगे। उसी समय उनका वध हो सकेगा।" इतने में मालवदेश के राजा इद्रवर्मा का अश्वत्थामा नामक हाथी भीम के हाथो ढेर हो गया। भीम ने श्रीकृष्ण की सूचना के अनुसार द्रोणाचार्य पर जोर से चिल्लाकर कहा कि "अश्वत्थामा मर गया" इसको असभव मान कर द्रोणाचार्य ने भीम की बात पर ध्यान ही नहीं दिया ओर वे अपना युद्ध चलाते रह। उन्होने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और लाखो सैनिकों का सहार किया। वह देखकर बहुत से ऋषि-मुनि गुरुद्रोण के पास पहुचे और बताने लगे, "आप अधर्म से युद्ध कर रहे हैं। आपकी मृत्यु की वेला समीप आ पहुची है। अब शस्त्रो को त्यागने का समय आ गया है। फिर ऐसा नीच कर्म करने का कभी न सोचें।

ऋषियों का वह कथन, भीम का वह प्रकटन, और अपने मृत्यु के लिए ही जन्म पाए धृष्टद्युम्न को सम्मुख उपस्थित देख कर द्रोणाचार्य को बहुत ही दु:ख हुआ। इन बातों मे से भीम की घोषणा का तथ्याश जानने के लिए उन्होंने उस सबध म धर्मराज से पृछा। धर्मराज ने श्रीकृष्ण के आग्रह के कारण और, "झूट बोला जाए तो पाप लगता है, न बोला जाए तो जय-लाभ नही," यह धर्मसकट जान कर द्रोणाचार्य के पूछने पर जोर से कहा "अश्वत्थामा चल बसा" और "हाथी" एकदम धीमी आवाज मे कहा। उतना झूठ बताने के कारण धर्मराज का रथ जो पहले चार अगुल धरती से अधर-अधर घूमता था, वह जमीन पर आ गया।

धर्मराजा के कहने पर कि "अश्वत्थामा चल बसा" द्रोणाचार्य को तनिक भी शका नही रही। उन्होंने दु:ख वश अपने शस्त्र को त्याग दिया। प्राणायाम करके समाधि लगाई और परमात्मा का ध्यान करते रहे। इतने मे धृष्टद्युम्न ने झट आकर उनका सिर तलवार से अलग कर दिया।

द्रोणाचार्य के वध की वार्ता सुनकर अश्वत्थामा ने पाडवो की सेना पर "नारायणास्त्र" का प्रयोग किया। तब श्रीकृष्ण ने बताया "अपने-अपने वाहनो पर से नीचे उतर जाओ, हाथ के शस्त्रो को त्याग दो, तभी यह अस्त्र शांत हो जायेगा। इसका ओर कोई उपाय नहीं है।" "आदेशानुसार सभी ने शस्त्र त्याग किया। लेकिन भीम डटा रहा। वह अस्त्र तब भीम पर जा गिरा। तब श्रीकृष्ण ने उसे रथ के नीचे ढकेल दिया। तब वह अस्त्र अपने आप शात हुआ। उसके बाद कौरव-पाडवो की सेनाए अपने-अपने शिबिर चली गयीं। इस तरह भारतीय युद्ध के पंद्रह दिन पूरे हुए।

8 कर्ण पर्व

द्रोणाचार्य की मृत्यु पर सभी कौरव शोक करते है। बाद में सब की सम्मति से दुर्योधन ने सेनापति के पद पर कर्ण की नियुक्ति की। प्रात काल कौरव-सेना की, मकर-व्यूह में रचना करके कर्ण युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। इधर पांडवो ने अपनी सेना का अर्धचद्रकार व्यूह बना लिया।

16) सोलहवे दिन भीमसेन हाथी पर सवार होकर जब युद्ध में घुस पडा तब कुलूत देश का राजा क्षेमधूर्ति युद्ध के लिए सम्मुख खडा रहा। वह भी हाथी पर ही सवार था। उन दोनों का युद्ध होते-होते आखिर भीम ने अपनी गदा से क्षेमधूर्ति और उसके हाथी का नाश किया। अर्जुन के पुत्र श्रुतकर्मा ने अभिसार देश के राजा चित्रसेन का और धर्मराज के पुत्र प्रतिविंध्य ने चित्रराजा का वध किया। तब अश्वत्थामा भीम पर दौडा। भीम का और उसका बहुत समय तक युद्ध होने के बाद वे दोनो एक दुसरे के रथो मे मूर्च्छित हो गिरे। तब उनके सारथियो ने उनके रथों को युद्धक्षेत्र से बाहर कर दिया।

कुछ देर बाद होश में आकर अश्वत्थामा दक्षिण दिशा की ओर जहा अर्जुन संशप्तकों का नाश कर रहा था, उसे युद्ध के लिए ललकारने लगा। तब श्रीकृष्ण ने रथ को उधर मोड दिया। अर्जुन और अश्वत्थामा एक दूसरे पर तीरों की वृष्टि कर रहे थे। तब अर्जुन ने निशाना लगा कर उसके घोडों के लगाम तोड डाले। उससे घोडे चौंक कर उसके रथ को कर्ण की सेना की तरफ ले गये। इधर अर्जुन फिर से संशप्तकों के संहार में लग गया। इतने में उत्तर दिशा की ओर से पांडवों की

सेना में हल्ले-गुल्ले की आवाज श्रीकृष्ण को सुनाई दी। वहां मगध देश का दंडधार, हाथी पर सवार होकर सेना का विध्वंस कर रहा था। श्रीकृष्ण ने तत्काल अर्जुन के रथ को उस तरफ मोड दिया। तब दंडधार ने श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनो पर तीर चलाकर बडे जोर से गर्जना की। इतने में अर्जुन ने अपने तीरों से उसका धनुष्य, उसके दोनो हाथ और मस्तक तोड कर उसका नाश किया और हाथी को भी मार डाला। यह देख कर उसका भाई दंड अर्जुन पर चढ आया। उसका भी सिर अर्जुन ने काटा, और दक्षिण दिशा में जाकर संशप्तकों का नाश करने का अपना काम शुरु किया। इधर पाड्य राजा द्वारा कर्ण की सेना का नाश देख कर, अश्वत्थामा उसका प्रतिकार करने लगा। उस समय अश्वत्थामा ने बाणों की घोर वृष्टि की। उन सभी बाणों को पाड्य राजा ने वायव्यास्त्र चला कर उडा दिया। अश्वत्थामा ने उसके रथ के घोडे मारे। तब वह एक हाथी पर सवार होकर युद्ध करने लगा। तब अश्वत्थामा ने अपने बाणों से उस हाथी को तथा पाड्य राजा को भी यम-सदन पहुचा दिया। इधर नकुल और कर्ण में युद्ध छिडा। उस युद्ध में कर्ण ने नकुल के घोडे और सारथी का नाश किया। तब नकुल भागने लगा। कर्ण ने उसके गले में धनुष्य डाल कर उसे पकड लिया, और उससे कहा "तू हम लोगों से युद्ध करना छोड दे। तेरे लिए हम लोग भारी है।" इतना कह कर कुन्ती को दिए वचन के अनुसार कर्ण ने उसे छोड दिया और वह फिर से पाडव-सेना का नाश करने लगा। यह युद्ध दोपहर में हुआ।

दूसरी तरफ धर्मराज और दुर्योधन के बीच युद्ध होता रहा, जिसमे धर्मराज के बाणों से दुर्योधन मूर्च्छित पडा। तब भीम कहने लगा, "इसे मारने की मेरी प्रतिज्ञा है, आप इसे न मारे।" इतने में कृपाचार्य को दुर्योधन की सहायता में आते देख भीम गदा लेकर उनकी सेना पर टूट पडा। यह युद्ध तीसरे प्रहर हुआ।

शाम को कर्ण को आगे करके कौरवों का सैन्य युद्ध में जब पहुच गया तब अर्जुन ने बाणों की वृष्टि से आसमान को आच्छादित किया। तब कर्ण ने अस्त्र के प्रयोग से अर्जुन के बाणों को तोड कर उसी अस्त्र से पाडव-सेना का विध्वंस शुरू किया। यह देखकर अर्जुन ने अपने अस्त्र से उस अस्त्र का नाश करके, कौरव सेना का विनाश किया।

17) सत्रहवे दिन सबेरे कर्ण ने दुर्योधन से कहा, 'आज अर्जुन का वध किये बिना मैं वापस नही लौटूंगा। यद्यपि अर्जुन के धनुष्य से भी प्रभावी मेरा धनुष्य है तब भी उसका सारथ्य श्रीकृष्ण कर रहे है और अगर शल्य मेरा सारथ्य कर सके तो अर्जुन का नाश करने में मैं अवश्य सफल हूंगा'। यह सुनकर दुर्योधन शल्य से कर्ण का सारथ्य करने की प्रार्थना करने लगा। उसपर शल्य बहुत ही क्रुद्ध हुआ और दुर्योधन से बोला "मैं एक क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजा हूं और तू मुझे सूत का सारथ्य करने का आग्रह कर रहा है। यह अपमान मैं कदापि सहन करने वाला नही हूं। ऐसा ही अगर चलने वाला है तो मैं अपने घर लौट चला जाता हूं।" तब दुर्योधन ने उसकी बडी प्रशंसा की और कहा, "यह प्रथा है कि श्रेष्ठ कनिष्ठ का सारथ्य करे। शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया उस समय उनका सारथ्य प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव ने किया था। तुम कृष्ण से भी बढ कर कुशल सारथी हो, तुम अगर कर्ण का सारथ्य करोगे तो कर्ण निश्चय ही विजय प्राप्त करेगा।" शल्य ने कहा "सबके सामने तू मुझे कृष्ण से भी बढ कर मान रहा है, इससे मैं बहुत ही संतुष्ट हो गया हूं। मैं कर्ण का सारथ्य अवश्य करूंगा। लेकिन कुछ भी सुना कर उसे अपमानित करता जाऊंगा। उसे वह सब सहना पडेगा।" यह शर्त दुर्योधन और कर्ण दोनो को मंजूर होते ही शल्य सारथ्य करने रथ पर सवार हुआ और कर्ण भी युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ।

जब कर्ण अर्जुन का नाश करने को तीर मारने लगा तब उसका युद्धोत्साह कम करने के लिए शल्य ने कर्ण की मनमानी निंदा करना शुरू किया। इस लिए कि (उद्योग पर्व में) शल्य ने धर्मराज को आश्वासन दिया था कि मैं कर्ण का तेजोभंग करता रहूंगा, तदनुसार उसने किया। शल्य की बाते सुन कर कर्ण तमतमा उठा। यह देख कर उसे और चिढाने के लिए शल्य ने उसे एक कहानी सुनाई। एक धनी वैश्य समुद्र के तट पर रहता था। उसके अनेक पुत्र थे। वे प्रतिदिन तरह-तरह के पक्वान खाकर बची खुची जूठन एक कौए को देते रहते थे। उनकी जूठन खा-खाकर वह कौआ उन्मत्त हो गया। वह समझने लगा कि 'कोई भी पक्षी मेरी बराबरी नही कर सकेगा।' एक दिन समुद्र के तट पर अनेक हंस पहुच गए। वैश्य के पुत्रों ने कौए से कहा, "तू तो सभी पक्षियों में श्रेष्ठ है। कौए को वह बात सही लगने लगी और वह हंसो के साथ उडने की बात करने लगा। हंस बोले, "तू हमारे साथ कैसे उड सकेगा?" कौआ बोला, "उडने के एक सौ एक प्रकारों की जानकारी मैं रखता हूं और हर एक प्रकार से मैं सौ योजन दूर उड जा सकता हूं।" एक हंस बोला, "सर्व साधारण पक्षियों के समान मै भी उडना जानता हूं।" अनन्तर दोनो उडने लगे। समुद्र पर दूर तक उडने पर कौआ थक गया। जहां-तहां पानी का फैलाव और उतरने कहीं कोई पेडपौधा न देखकर वह बहुत ही घबरा गया। आगे उससे नही उडा गया। वह समुद्र की लहरों में डूबने लगा। तब हंस ने उस पर दया की और यह उडने का कौनसा प्रकार है? इस प्रकार का नाम क्या है? आदि बाते कह कर हंस ने उसे अपनी पीठ पर उठा लिया और समुद्र के तट पर ला छोड दिया।

प्रस्तुत कथा सुनाकर शल्य कर्ण से बोला, "उस कौए के समान तू कौरवों की जूठन पर पुष्ट हुआ है और गर्व से फूलकर अर्जुन को जीत लेने की इच्छा व्यक्त कर रहा है। अरे, उत्तर गो-ग्रहण के समय जब अकेला अर्जुन हाथ आ गया था तब

तू ने उसे क्यों नहीं मारा? सच पूछा जाए तो अर्जुन सूर्य के समान है और तू जुगनू के समान। सियार और शेर, खरगोश और हाथी, चूहा और बिल्ली, कुत्ता और बाघ, झूठ और सत्य, विष और अमृत में जितना अंतर है उतना तुझमें और अर्जुन में है। तू जहाँ उसकी बराबरी तक नहीं कर सकता वहाँ उसे जीतने की बात तो दूर की है।"

शल्य का भाषण सुनकर कर्ण बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने शल्य की, उसके देश की, उसके आचारों की भारी निन्दा की और बताया कि, तुझे मैं अभी नष्ट ही कर देता, लेकिन वचनबद्ध हूं। फिर कभी इस प्रकार की बातें करेगा तो मैं क्षमा नहीं करूंगा। उन दोनों में इस प्रकार का बखेड़ होते देख दुर्योधन ने दोनों को खूब समझा-बुझाया। कुछ देर बाद कर्ण फिर से युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

सत्रहवें दिन जब कि युद्ध प्रारभ हुआ संशप्तको का नाश करने अर्जुन दक्षिण दिशा की ओर चला गया और इधर कर्ण पांडव-सेना का निःपात करने लगा। धर्मराज ने कुछ समय तक कर्ण से युद्ध किया, परन्तु आखिर हार कर भाग जाने लगा। कर्ण ने उसका पीछा किया लेकिन कुन्ती को दिये वचन की याद कर उसने धर्मराज से कहा, "जा तुझे मै जीवित छोड देता हूं। फिर कभी मेरे साथ युद्ध करने का साहस मत कर। उसके बाद भीम के पराक्रम से कौरव-सेना भाग जाने लगी। तब कर्ण भीम से युद्ध करने बढा। परन्तु भीमसेन के बाणों से वह मूर्च्छित गिर पडा। तब उसका रथ शल्य ने रणक्षेत्र से हटाया। अनन्तर दुर्योधन के भाई भीम पर चढ़ आये। लेकिन वे भीम के पराक्रम से नष्ट हो गये। फिर से कर्ण पांडव-सेना का नाश करने लगा।

इतने में सशप्तकों को मार भगाकर अर्जुन उत्तर दिशा की ओर जा पहुचा। तब अश्वत्थामा से उसका भीषण युद्ध हुआ। उस युद्ध में अर्जुन के बाणो से अश्वत्थामा के मूर्च्छित होते ही उसका रथ सारथी ने समरागण से हटा दिया। दुर्योधन धर्मराज के साथ युद्ध कर रहा था, कर्ण वहा पर पहुच कर धर्मराज पर तीरों की वर्षा करने लगा। नकुल और सहदेव धर्म-राज की सहायता कर ही रहे थे। कर्ण ने जब धर्मराज और नकुल के रथों के घोडे मारे, तब वे दोनो सहदेव के रथ पर सवार हुए। उस समय शल्य ने कर्ण से कहा, "कर्ण, इन्हे मार कर तुझे क्या लाभ होने वाला है। अर्जुन के वध के लिए दुर्योधन ने तुझे सेनापति पद दे दिया है, इस लिये उसीसे जो कुछ युद्ध करना हो कर और अपना कौशल्य दिखा। दूसरी बात, दुर्योधन भीमसेन से लड रहा है, उसे बचाने की अपेक्षा यहा क्यों अपनी शक्ति यों ही बरबाद कर रहा है?" उस पर कर्ण दुर्योधन की सहायता मे दौडा। इधर धर्मराज कर्ण के मर्मान्तिक बाणों से विद्ध होकर अपने शिबिर में लेटे रहे थे। जब धर्मराज युद्ध-क्षेत्र पर कहीं भी दिखाई नही दिये तब उनकी खोज में श्रीकृष्ण और अर्जुन शिबिर को पहुचे। उन्हे देखकर धर्मराज को ऐसा लगा कि वे दोनों कर्ण को नष्ट करके शिबिर लौटे हैं और उन्होंने उन दोनों की बडी प्रशसा की। लेकिन अर्जुन ने जब सत्य वृत्तात बताया तब धर्मराज बहुत ही क्रोधित हुए और अर्जुन की निन्दा करके बोले, तू अपना गाण्डीव धनुष्य दूसरे किसी को देगा तो वही कर्ण का नाश करेगा।" इतना सुनते ही अर्जुन तलवार उठाकर धर्मराज को मारने प्रस्तुत हुआ। अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो "गाण्डीव धनुष्य दूसरे को दे दे" इस प्रकार कहेगा उसका शिरच्छेद मै करूगा। वह बात समझने पर श्रीकृष्णने अर्जुन को खूब समझाया। हिंसा और अहिंसा का विवेक समाज धारणा की दृष्टि से कैसे करे, अर्जुन को समझा दिया। एक व्याध पूरे समाज को सत्रस्त करने वाले पशु की हिंसा करने पर भी स्वर्गलोक पहुंचा किन्तु एक तपस्वी ब्राह्मण, डाकुओं को सच्चा मार्ग दिखाने पर उस मार्ग से बढे लोगों की हिंसा उन डाकुओं से होने पर, नर्क लोक को कैसे पहुँचा, आदि तात्त्विक विचार बताने पर श्रीकृष्ण ने कहा, "श्रेष्ठो को "तू" सबोधित करने पर उनका अपमान हो जाता है जो उनके वध के समानही समझा जाता है। तू धर्मराज की निन्दा कर। उससे तेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति हो जाएगी। श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने धर्मराज की निन्दा की, और बोला, "अब मै बडे बन्धु को अपमानित करने के पातक से मुक्त होने के लिए आत्महत्या कर लेता हूं।" तब श्रीकृष्ण हस कर बोले, "उसके लिए शस्त्र की आवश्यकता नही। तू अपने मूह से अपनी स्तुति कर ले। बस है।" तदनुसार अर्जुन ने आत्मस्तुति की। वह सुनने के उपरान्त अर्जुन के द्वारा की गई निन्दा के कारण कुपित धर्मराज वन को जान के लिये प्रस्तुत हुए। तब श्रीकृष्ण ने उनके पैर पड़ कर उन्हे प्रशात किया। अर्जुन ने भी धर्मराज को प्रणाम किया, और कर्णवध की प्रतिज्ञा करके वह युद्ध के लिये चल पड़ा।

समरागण पर आकर अर्जुन ने युद्ध करने भीम पर धर्मराज का क्षेम कुशल प्रकट कर दिया और वे दोनों कौरवसेना का नाश करने लगे। उस पर दु.शासन भीम पर दौडा। उन दोनों में कुछ काल तक युद्ध चला। अन्त में भीमसेन ने अपनी गदा दु.शासन पर इतनी तेजी से चलाई कि वह रथ से उडकर चालीस हाथ दूर जा गिरा। हाथ में खडग् लेकर भीम दौडता चला गया। जिस हाथ में भारतवर्ष की सम्राज्ञी द्रौपदी के केश खींचे थे, जिस हाथ ने पाण्डवो की सर्वोपरि प्रतिष्ठा का वस्त्र उतारने का निर्लज्ज प्रयत्न किया, उस दु शासन के हाथ को काट कर भीम उसके गले पर पाव देकर खडा रहा और जिसमे हिम्मत हो वह इस नरपशु को अब बचाए, मै इसका रक्त प्राशन करूगा। "इस प्रकार कौरव पक्षीय वीरों के नाम लेकर गरजकर ललकारने पर दु.शासन की छाती फोड कर उसका गरम रक्त अजलि से पीने लगा। वह दृश्य देखकर उसे प्रत्यक्ष

राक्षस, समझकर कौरवों की सेना भाग गई। लेकिन दुर्योधन के दस भाई भीम पर और कर्ण का पुत्र वृषसेन अर्जुन पर चढ आये। भीम ने उन दसों का और अर्जुन ने वृषसेन का कर्ण और दुर्योधन के समक्ष वध किया।

वृषसेन का वध देख कर कर्ण बहुत ही क्रुद्ध होकर अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा। उन दोनों का युद्ध देखने निमित आये हुए देवों तथा दानवों में भी दो दल हो गए। अर्जुन के प्रति सहानुभूति रखने वाले इन्द्र देव थे और कर्ण का पक्ष सूर्य और दैत्यो ने लिया था। युद्ध मे दोनों ने भिन्न भिन्न अस्त्रो के प्रयोग चलाए। अर्जुन पीछे नही हट रहा है, कर्ण ने खास अर्जुन के लिए अब तक सुरक्षित सर्पमुख बाण उस पर चलाया। उसी बाण पर खाडववन से भागा हुआ "अश्वसेन" नामक नाग आकर अर्जुन का बदला लेने के लिये बैठा था। बाण को छूटते देख, श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को नीचे दबाया। उसमे वह बाण अर्जुन के मुकुट को ही छिन्न करके विफल हुआ। उसपर अर्जुन ने माथे मे शुभ्र वस्त्र लगाया। जो नाग बाण पर बैठा था वही नाग कर्ण के पास आकर कहने लगा, "फिर से मुझे छोड दो। मै अर्जुन का नष्ट कर देता हू, "पर दूसरे के बल पर युद्ध करना मै नही चाहता" ऐसा कर्ण ने कहने पर नाग स्वय ही अर्जुन की ओर तीर के समान दौड पडा। अर्जुन ने तीर चलाकर उसके टुकडे टुकडे कर दिये।

आगे कुछ समय तक कर्ण और अर्जुन मे युद्ध चलता रहा। इसी बीच कर्ण शाप के कारण अस्त्रों के मंत्र स्मृति मे लाने में अपने को असमर्थ पाता गया, और उसके रथका बाया पहिया (शाप ही के कारण) पृथ्वी ने निगल लिया। तब कर्ण रथ से नीचे उतरा, और अर्जुन से कहने लगा, "मै रथ का पहिया खींच निकाल ले रहा हू। इस समय मुझपर तीर चलाओगे तो वह बात धर्म के विरुद्ध हो जाएगी।" उसका वह भाषण सुनकर श्रीकृष्ण कर्ण से बोले, "अब तुझे धर्म की बाते याद आ रही है, लेकिन जिस समय भरी सभा मे महासती द्रौपदी को, जो कि एकवस्त्रा, रजस्वला थी, विडम्बना की, पाडवों को जलाने के प्रयत्न किये, भीम को विषान्न खिलाया अकले अभिमन्यु को अनेको ने मिलकर मारा, उस समय तेरा धर्म कहा चला गया था? अब धर्म तेरी रक्षा करने मे असमर्थ है। अर्जुन, क्या देख रहा है। तीर चला और तोड दे कर्ण का कठनाल"। श्रीकृष्ण का भाषण सुन कर कर्ण ने लज्जा वश सिर झुकाया। पहिया धरती से नही निकाला। कर्ण उसी असहाय अवस्था मे युद्ध करने लगा। परतु अब उसमे उतना सामर्थ्य नही था। अर्जुन ने एक ही तीर मे उसका वध कर डाला। कर्ण के शरीर से निकला तेज सूर्य मे जा मिला।

कर्ण का वध होने पर कौरव पक्ष के किसी वीर मे युद्ध के लिए उत्साह नही रहा। सेना भाग गई। दुर्योधन के लाख कहने पर वे वापस लौटने तैयार नही हुए। तब शल्य के कहने पर युद्ध का स्थगित करके सभी अपने अपने निवासस्थान (शिबिर) को चले गये। उनके शिबिर को जाते ही बडे आनन्द के साथ पाण्डवसेना अपने शिबिर को पहुच गई। वे जोर से गरजने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन धर्मराज से बडे ही आनन्द से मिले और कर्णवध का वर्णन सुनाने लगे। धर्मराज कर्णार्जुन का युद्ध देखने बीच मे एक बार समरागण गये थे, लेकिन घायल होने के कारण वे अधिक समय तक वहा नही रह सके। अब कर्णवध का वृतात सुनकर वे फिर से वहा चले गये और कर्ण को मरा पडा अपनी आखो से देखा। तब आनन्द के आवेग मे उन्होने कृष्णार्जुन को प्रेम से गले लगा लिया और कहा, "आज मै धन्य हो गया हू। आज ही मे समझता हू कि मुझे जय मिली है। तेरह वर्ष कर्ण के आतंक मे मुझे नींद तक नही आती थी।" ऐसा कहकर उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुन का धन्यवाद दिए।

9 शल्य पर्व

वैशम्पायन जनमेजय राजा को आगे सुनाने लगे- उन्नीसवे दिन सबेरे सजय हस्तिनापुर पहुचा। उसने राजा धृतराष्ट्र को दुर्योधनादि सबका विनाश हुआ, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा, (तीन कौरव पक्ष के) और पाच पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि, (सात पाण्डव पक्ष के) कुल दस लोग भारतीय युद्ध मे बचे, वृतान्त सुनाया। वह सुन कर सभी पुत्रों की ओर खास कर दुर्योधन की मृत्यु से दुखी होकर धृतराष्ट्र ने बहुत शोक किया और बाद मे सजय से युद्ध का सविस्तर वर्णन करने को कहा।

तब सजय ने बताया, कर्ण की मृत्यु के बाद दुर्योधनादि सारी कौरव सेना भागकर शिबिर लौट आयी। तब कृपाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि अब भी पाण्डवो का राज्य उनको लौटा दो और उनसे सन्धि करो। सेना का जो नाश हुआ है उससे अधिक अब कुछ न हो। बचे वीरों तथा सैनिको को अपने घर जाने दो। उस पर दुर्योधन ने कहा, बात अब यहा तक पहुच गयी है कि पाण्डव अब हमारी एक भी नहीं सुनेंगे और पाण्डवो की शरण मे जाना मुझसे होगा भी नहीं। इतने लोगो का नाश हो चुकने पर मै पाण्डवो की शरण मे जाऊ तो लोग मुझे क्या कहेंगे? और विशेष बात यह है कि अब तक जिन्होंने मेरे लिए अपना सर्वस्व की बलि चढाई, उनके ऋण से मुक्त होने के लिए मुझे युद्ध ही करना अनिवार्य है। इतना कह कर दुर्योधन ने अश्वत्थामा से पूछा कि, कर्ण के बाद सेनापति पद किस सुयोग्य व्यक्ति को दिया जाय? तब अश्वत्थामा ने शल्य का नाम सूचित किया। वह सबको पसंद आ गया। तब दुर्योधन ने शल्य को सेनापति पद का अभिषेक किया।

धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया— सजय! कर्ण की मृत्यु जब हुई तब दोनों तरफ कितना सैन्य शेष था? सजय ने बताया कौरवों के पक्ष मे ग्यारह हजार रथ (11,000), दस हजार हाथी (10,000), दो लाख घोडे (2,00,000) और तीन करोड पदाति सैन्य (3,00,00,000) था, तो पाण्डवों के पक्ष मे छह हजार रथ (6,000) छह हजार हाथी (6,000), दस हजार घोडे (10,000) और दो करोड़ पदाति सैन्य (2,00,00,000) था।

18) अठारहवें दिन सबेरे युद्ध शुरु हुआ। उस युद्ध में नकुल के हाथो कर्ण पुत्र चित्रसेन का वध हुआ। वह देख कर कर्ण के दूसरे दो पुत्र, सुषेण और मत्यसेन नकुल पर दौडे। नकुल ने उनका भी जब नाश किया। तब कौरव सेना भयभीत होकर भागने लगी। उनका धैर्य बढाने के हेतु शल्य पाण्डवों से युद्ध करने लगा। उसने पाण्डवसेना की बहुत हानि की और धर्मराज पर बाणो की वर्षा की। तब भीम को बडा क्रोध आया। उसने अपनी गदा चला कर शल्य के रथ के घोडे मारे, सारथी को मार गिराया। सारथी के गिरतेही शल्य भाग गया। भीमसेन गदा घुमाकर युद्ध के लिये शल्य को ललकारने लगा तब दुर्योधनादि कौरवसेना ने भीम पर हमला चढाया। भीम की सहायता मे पाण्डव सैन्य के आते ही जो युद्ध हुआ, उसमे दुर्योधन ने पाण्डवों की तरफ से युद्ध करने वाले चेकितान नामक यादव का वध किया।

शल्य ने लौट कर धर्मराज पर तीखे तीर छोडे। तब धर्मराज ने अपने पार्श्ववर्तियों से कहा कि शल्य का काम मेरे हिस्से का है। मै उसका सामना करके उसे नष्ट करूंगा। मेरा रथ सभी शस्त्रास्त्रों से तैयार रखिए। मेरे रथ के बाई ओर धृष्टद्युम्न, दाहिने सात्यकि, पीछे अर्जुन, आगे भीम के रहने पर मै शल्य को जीत सकूगा। इस तरह की व्यवस्था करके धर्मराज और शल्य एक दूसरे पर तीर चलाने लगे। धर्मराज ने शल्य के रथ के घोडों और ध्वज को गिराया, तब अश्वत्थामा शल्य को अपने रथ पर सहारा देकर दूर हट गया। कुछ देर बाद दूसरे रथ पर सवार होकर शल्य धर्मराज के साथ लडने फिर से आ गया। उन दोनों का युद्ध चल रहा था तब धर्मराज ने शक्ति नामक शस्त्रों से शल्यका नाश किया। उस समय दुर्योधन के रोकने पर शल्य की सेना के सात सौ रथी पाण्डव सेना पर चढ गये। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने उन सबको परास्त किया। तब कौरवों की सेना भय से भाग जाने लगी। उनको धैर्य दिलाने के लिए जब दुर्योधन के प्रभावी भाषण से सेना फिर युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गयी। उनमे से म्लेच्छो का राजा शाल्व मस्त हाथी पर सवार होकर आगे बढा। तब धृष्टद्युम्न ने उस हाथी को गदाघात से ढेर किया और सात्यकि ने एक ही तीर मे शाल्व को नष्ट किया। फिरसे कौरवों की सेना मे भगदड मच गई। सेना को बडे कष्ट के साथ लौटा लेकर दुर्योधन युद्ध करने लगा। तब धृष्टद्युम्न ने उसके रथ के घोडो और सारथी को नष्ट किया। उस पर दुर्योधन एक घोडे पर सवार होकर शकुनि की ओर भाग गया। उसके पीछे पीछे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी गए।

दुर्योधन के भाग जाने पर उसके भाई भीमसेन पर टूट पडे। भीम ने उन सबका नाश तो किया ही, साथ साथ हजारों रथो तथा बहुत सारी सेना को ध्वस्त दिया। अब दुर्योधन और उसका भाई सुदर्शन दो ही घुडसवार सेना के बीच रह गये। उस सेना का नाश करने के लिए भीम, अर्जुन और सहदेव तीनो वहाँ पहुँच गये। तब सुदर्शन भीम से और त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा और शकुनि अर्जुन से युद्ध करने लगे। अर्जुन ने अपने बाणों से सत्यकर्मा सत्येषु और सुशर्मा का तथा उनकी सेना का नाश किया, और भीम ने सुदर्शन का वध किया। जब शकुनि और उसका पुत्र उलूक सहदेव पर दौडे। तब सहदेव ने पहले उलूक को और पश्चात् शकुनि को परलोक पहुचा दिया। अनन्तर बचे सभी सैनिकों को दुर्योधन ने आज्ञा दी कि, "पाण्डवो का नाश करके ही मुह दिखाओ। "उस आज्ञा के अनुसार वह सब सेना पाण्डव सेना पर दौड चढ गई। लेकिन वह सब पान्डवो की सेना द्वारा मारी गई।

धृतराष्ट्र ने पूछा, "कौरवो का पूरा सैन्य जब नष्ट हुआ तब पाण्डवो की तरफ कितनी सेना बची थी।"

सजय ने बताया, "दो हजार (2,000) रथ, सात सौ (700) हाथी, पाच हजार (5,000) घुडसवार और दस हजार (10,000) पदाति, इतना सैन्य पाण्डवों के पक्ष में शेष बचा था। दुर्योधन का घोडा जब युद्ध में गिर पडा तब दुर्योधन हाथ में गदा लेकर अकेला ही चल पडा। उसी समय धृष्टद्युम्न के कहने पर मुझे मारा जा रहा था, पर व्यास महर्षि के, वहां पहुंचते ही और कहने पर उसने मुझे जिन्दा छोड दिया। मै शस्त्रत्याग करके जब हस्तिनापुर जा रहा था, एक कोस की दूरी पर मुझे दुर्योधन मिला। उसने बडे ही दु:ख के साथ कहा, "धृतराष्ट्र से जाकर कह दो कि आपका पुत्र दुर्योधन ह्रद् में घूस पडा है।" इतना कहकर वह सरोवर में घुस पडा और मत्र के बल पर तल में पहुंच कर चुप बैठा। उसके जाने पर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा, तीनों उसकी तलाश करते हुए वहां पहुंच गए। मैने उन्हें दुर्योधन के जीवित होने का और हद में जा छिपें बैठने का वृत्त सुनाया। इतने में यह देखकर कि पाण्डव उसकी खोज में वहा पहुचे उन्होने मुझे रथ पर बिठा लिया और हम शिबिर पहुच गए। पूरी सेना के विध्वंस की वार्ता शिबिर में सुन कर सभी स्त्रियां भीषण आक्रोश करने लगी। दुर्योधन के मंत्री उन स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर की ओर चल पडे। तब धर्मराज की आज्ञा लेकर युयुत्सु उनके साथ गया।

10 गदापर्व

शिबिर में प्रवेश करने पर अश्वत्थामादि तीनो को वहा रहना असह्य हो गया। वे उस हद की ओर जाने प्रवृत्त हुए। इधर पाण्डवों ने दुर्योधन की खूब खोज की, लेकिन कुछ भी पता न चलने पर निराश होकर अपने शिबिर को लौट आए। उनके शिबिर को लौट आने पर ये तीनो उस हद के पास पहुच गए। वे तीनों दुर्योधन के साथ बातें कर रहे थे तब कुछ व्याध वहा पहुंच गए। दुर्योधन उस हद में छिपा है यह बात उन्होने पाडवों को बताई। उस पर धर्मराजादि सभी जयघोष के साथ दुर्योधन को नष्ट करने के हेतु वहा पहुचने चल पडे। वह जयघोष दूर ही से सुनाई देने पर, वे तीनों दूर जाकर एक बरगद के पेड के नीचे बैठ गए।

उन तीनों के निवृत्त होने पर पाडव वहीं पहुच गए। श्रीकृष्ण के कहने पर धर्मराज ने दुर्योधन की बहुत ही निर्भर्त्सना की। तब वह क्रुद्ध होकर पानी के बाहर आ गया। धर्मराज के कवच और शिरस्त्राण देने पर हाथ मे गदा लेकर दुर्योधन भीम के साथ युद्ध करने तैयार हुआ। इतने में बलराम अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके सयोग से वहा पहुच गये। उनके कहने पर वे सारे लोग कुरुक्षेत्र पहुच गये, और वहा उन दोनों (भीमसेन व दुर्योधन) के बीच गदायुद्ध हुआ। कोई भी हारता जीतता दिखाई नहीं देने लगा, तब अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण ने बताया, "भीम शक्तिमान् है सही, लेकिन गदायुद्ध के अभ्यास तथा कौशल में, दुर्योधन चढा बढ़ा है। बिना युक्ति किये, भीम का विजय होना असभव है। भीम ने दुर्योधन की जाघ तोडने की प्रतिज्ञा की ही है। उसके अनुसार भीम चलता है तो ही दुर्योधन को जीतने की सभावना है।" यह सुन कर अर्जुन ने अपनी जाघ पर थपकी देकर इशारे से भीम को सूचित किया। इशारा पाकर भीम झट समझ गया और युद्ध के होते होते भीम ने अकस्मात् अपनी गदा दुर्योधन की बाई जाघपर चलाई उसी क्षण दुर्योधन जमीन पर गिर पड़ा। उसके नीचे गिरते ही "तूने हमारी भरी सभा में गौ गौ कहकर खिल्ली उडाई। अब भोग ले अपने उसी कर्म का फल" इतना कह कर भीम ने उसके माथे पर एक लाथ जमायी। उससे धर्मराज को बहुत ही दु ख हुआ और बलराम तो हल उठा कर भीम को मारने दौड़े। उस पर श्रीकृष्ण ने उनको ज्यों त्यों करके समझाबुझा दिया। तब वे गुस्से मे ही द्वारका की ओर चले गए।

अनन्तर दुर्योधन श्रीकृष्ण से बोला, "तू बडा ही दुष्ट है। भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा आदि वीरो की अन्याय पूर्ण हत्या की जड़ तू ही है। मै जब भीम के साथ युद्ध कर रहा था, तब अर्जुन के द्वारा भीम को इशारो से बाई जाघ पर गदा चलाने की सूचना तूने की। इस प्रकार का अन्याय करने में तुझे शर्म आनी चाहिए थी। तेरे अन्याय के कारण ही हमारी हार हो गई।" दुर्योधन का वह भाषण सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा, "तूने अपने पातको के कारण ही मौत पाई, उसका दोष मुझ पर मत मढ। भीम को जहर खिलाना, पाण्डवो को लाक्षागृह मे जलाने का षडयत्र रचना, भरी सभा में रजस्वला महासती द्रौपदी की विडबना करना, अभिमन्यु को अनेको द्वारा मिल कर मारना आदि बहुत से अन्याय तू न करता, पाण्डवों को उनका राज्य पहले ही दे देता तो भीष्म, द्रोण आदि महावीरों का और तेरा भी नाश नहीं होता। हमारे अन्याय तेरे अन्यायो की प्रतिक्रिया ही थे। इसी लिए हमे दोषी न ठहरा अपने किये पापों के तू फल भोग रहा है।"

उसके बाद श्रीकृष्ण के साथ सभी शिबिर को लौट आये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को रथ से पहले नीचे उतरने के लिए कहा और आप पीछे से उतरे। तब अपना उदिष्ट समाप्त समझ कर हनुमान् भी वहा से चले गए। श्रीकृष्ण के उतरते ही अर्जुन का रथ जल कर भस्मसात् हो गया। उस अचभे को देखकर अर्जुन ने उसका कारण पूछा। तब श्रीकृष्ण ने बताया, "मै सारथी के नाते रथ पर होने के कारण और तेरा काम पूरा न हो पाने पर तेरा रथ अब तक नहीं जला, पर अब तेरा काम पूरा हुआ है। मुझे भी अब तेरे सारथी के रूप में उस रथ पर बैठने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध मे भीष्म, द्रोणादिकों के चलाए दिव्य अस्त्रों के कारण तेरा रथ जल कर खाक हो गया है।

उसके बाद पाडव सेना कौरवों के शिबिर मे घुस पडी। उसे वहा चादी, सोना, हीरे, मानिक, दास-दासी आदि बहुत कुछ मिला। श्रीकृष्ण ने पाडवो और सात्यकि से कहा कि अब हम आज की रात शिबिर के बाहर बिताए। तदनुसार वे सब ओघवती नदी के तट पर रातभर के विश्राम के लिए चले गये। वहा जाने पर धर्मराज के मन में इस बात की चिता उठी कि महापतिव्रता गाधारी क्रोधवश शायद हमें शाप देकर भस्म तो नहीं करेगी। इसलिए उन्होंने श्रीकृष्ण को गाधारी के पास भेजा। श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र और गाधारी के पास जाकर बहुत ही युक्तिपूर्वक भाषण से उन्हे समझाया तथा शात किया और फिर से वे पाडवो की तरफ लौट आए।

कृपाचार्यादि तीनो को लोगों द्वारा जब यह समाचार मिला कि दुर्योधन गदायुद्ध में आहत हुआ है, तब वे दुर्योधन के पास पहुच गये। ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी दुर्योधन को वहा धूल फाकते देखा, तब उन्होंने बहुत ही शोक किया। अश्वत्थामा ने तो यहा तक कहा कि प्रत्यक्ष मेरे पिताजी की मृत्यु से भी, राजन् तेरी इस विपन्न अवस्था का मुझे भारी दु.ख हो रहा है। मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज किसी न किसी उपाय से पाडव सेना का विध्वस करूंगा। इसके लिए तेरी स्वीकृति

चाहिए। यह सुन कर दुर्योधन को बड़ा आनन्द हुआ और कृपाचार्य के हाथों अश्वत्थामा को उन्होंने सेनापतित्व का अभिषेक किया। अभिषेक के अनन्तर दुर्योधन से विदा लेकर वे तीनो वहां से चल दिये और दुर्योधन रातभर वही अपने हाथों अतीव कष्ट से अगों को नोचनेवाले गिद्धों को हटाते लहूलुहान पड़ा रहा।

11 सौप्तिक पर्व

कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा तीनों दुर्योधन मे बिदा होकर एक जंगल में चले गये। वहा किसी पेड के नीचे रथ छोड़ कर संध्या वदन के बाद वहीं जमीन पर सो गये। दोनो को भारी परिश्रम के कारण नींद अच्छी आयी, पर अश्वत्थामा क्रोध तथा दु.ख के मारे नहीं सो सका।

रात के बढने पर अश्वत्थामा को दिखायी दिया कि उस बरगद के पेड पर सोए कौओं को एक उल्लू आकर मार रहा है। वह दृश्य देखकर उल्लू ने मानो गुरूपदेश ही दिया समझ कर अश्वत्थामा ने अपने दोनों मित्रों को जगाया और अपना विचार बताया, कि क्यों न सोए पाडव सैन्य का विध्वस किया जाय। उस पर वह अनुचित है, अधर्म है, उससे तेरी चारो ओर निंदा होगी, आदि आदि कृपाचार्य ने समझा दिया पर जब अश्वत्थामा अपने उस उद्दिष्ट की पूर्ति के लिए पाडव शिबिरों को जाने रथ पर जा बैठा तब वे दोनो भी उसके साथ लिए।

पाण्डवो के शिबिरद्वार पर पहुचने पर अश्वस्थामा ने कहा, "तुम दोनों दरवाजे पर रह कर भीतर से बाहर भाग आने वालो को नष्ट करते रहो। मै भीतर जाकर सोते हुए लोगों का नाश करता हू।" इतना कहकर वह पहले धृष्टद्युम्न के पास पहुचा और लातो से उसे रौंदने लगा। धृष्टद्युम्न उठने की कोशिश करने लगा। तब अश्वत्थामा ने उसे दोनों हाथों से पकडा और उठा कर जमीन पर पटक दिया, और जिस प्रकार बिना शस्त्र के पशु की हत्या कर देते है, उसी प्रकार उसने धृष्टद्युम्न की हत्या की। उसके बाद शिखडी, द्रौपदी के पुत्र आदि जो भी वहा थे उन सबका नाश अश्वत्थामा ने किया। जो भाग जाने के इरादे से शिबिर के दरवाजे पर पहुचे उनका नाश वहा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने किया। सबका नाश करने, पर बडी ही प्रसन्नता से वे तीनो दुर्योधन के पास आए, और उन्होंने वह सारा वृत्तात उसे सुनाया। वह सब सुनकर उस बुरी हालत में भी उसे बडा हर्ष हुआ और थोडे ही समय में उसके प्राण उड गये। संजय धृतराष्ट्र को कहता है, "धृतराष्ट्र राजा! तुम्हारी दुष्ट मंत्रणा मे, अन्यायपूर्ण व्यवहार से और घोर अपराध से ही इस तरह से कौरवों और दुर्योधन की मृत्यु के अनन्तर व्यासजी की कृपादृष्टि से प्राप्त मेरी दिव्य दृष्टि लुप्त हो गयी है।

वैशपायन जगमेजय राजा से बोले, "राजा, दूसरे दिन प्रात काल धृष्टद्युम्न का सारथी धर्मराज के पास आकर बताने लगा, "शिबिर की सारी सेना को कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा तीनों ने मार डाला। मै कृतवर्मा के पजों से ज्यों त्यों करके बच गया हू।" वह वृत्त सुनकर धर्मराजन कुछ देर शोक करते रहे। द्रौपदी के लिए नकुल को बुला भेजा और वे खुद सबके साथ शिबिर मे पहुचे। कुछ देर बाद द्रौपदी भी वहा पहुची। पुत्रो की मृत्यु से उसे अतीव दु.ख हुआ। दु:ख के आवेग में द्रौपदी बोली, "मेरे पुत्रो को घात करने वाला अश्वत्थामा जब तक जीवित है तब तक मै बिना कुछ खाए पिए यहीं बैठी रहूगी। इतना कह कर वह वहीं बैठी। उस पर धर्मराज ने उससे पूछा, "अश्वत्थामा तो भाग गया है, उसको युद्ध में जीत भी लिया तो तुझ पर कैसे प्रकट होगा और तू उसका विश्वास कैसे कर सकेगी?" द्रौपदी ने बताया, "अश्वत्थामा के माथे पर जन्म से ही एक मणि है। वह मणि तुम्हारे माथे पर बिराजते देखूंगी तभी मै जीवित वह सकूगी, अन्यथा नहीं।"

वह सुनकर भीम रथ पर सवार होकर अश्वत्थामा का नाश करने चल पडा। नकुल उसका सारथी बना। भीम को चल पडते देख श्रीकृष्ण धर्मराज से बोले, "भीम को अकेले जाने देना उचित नहीं क्यों कि अश्वत्थामा जितना शस्त्रास्त्रवेत्ता है उतना ही दुष्ट भी है। उसकी दुष्टता की एक कहानी सुनाता हूं, "अश्वत्थामा ने जब यह सुना कि द्रोणाचार्य ने अर्जुन को ब्रह्मास्त्र सिखाया है तब एकान्त में द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र मांगने लगा। द्रोणाचार्य ने उसकी अधमता देख कर उसे वह अस्त्र नहीं सिखाया। लेकिन वह जब बहुत ही गिड़गिडाया, तब उन्होंने वह अस्त्र उसे सिखा दिया, और बताया कि यह अस्त्र मानवों पर नही चलाना चाहिए। यही इसका नियम है। लेकिन तू अधम होने के कारण इस नियम का पालन तुझसे नहीं होगा। ब्रह्मास्त्र प्राप्ति के बाद एक बार अश्वत्थामा द्वारका पहुंचा। यादवों ने बडी आवभगत के साथ उसे रखवा लिया। एक दिन वह मेरे पास पहुचा और मेरा सुदर्शन चक्र मांगने लगा। मैने उससे कहा, हां, कोई बात नहीं, उठा ले जा चक्र, "लेकिन वह उसे उठा न सका। तब वह बहुत ही शरमिन्दा हुआ। बाद में मैने उससे पूछा, "तूने मेरा चक्र क्यों चाहा? क्या करने जा रहा था तू? तब वह बोला "मै ब्रह्मास्त्र से अन्यों को जीत सकता था। लेकिन तुम्हें जीतने का कोई साधन मेरे पास नहीं था। तुमसे चक्र लेकर उसीसे तुम्हें जीतने का मेरा विचार था।" कुछ दिनों बाद वह द्वारका से चला गया। धर्मराज, यह है अश्वत्थामा की अधमता। इसलिए भीम का अकेले जाना इष्ट नहीं है।" इतना कह कर श्रीकृष्ण खुद रथ पर सवार हो गए। धर्मराज और अर्जून उसी रथ पर साथ चल पड़े।

भीमसेन गंगा के किनारे व्यास महर्षि के आश्रम पर पहुचा। भीम को यह समाचार मिला था कि वह दुष्ट नराधम, अश्वत्थामा वहीं है। भीम के पीछे पीछे श्रीकृष्ण का भी रथ वहा धमका। वह सब देखकर कि अब छुटकारा नहीं है, भयभीत होकर पाण्डवों के विध्वस के लिए अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। तब श्रीकृष्ण के कहने पर पाडवों की तथा सबकी रक्षा के लिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। दोनो अस्त्र टकराकर सर्वनाश का समय आ गया, तब व्यास महर्षि और देवर्षि नारद ने बीच बचाव करके दोनों को अपने अपने अस्त्र समेट लेने के लिए कहा। तदनुसार अर्जुन ने तुरन्त अपने अस्त्र को समेट लिया, लेकिन अश्वत्थामा को उसे समेटना मुश्किल हो गया। तब ऋषि बोले जहा ब्रह्मास्त्रों से युद्ध होता है, उस जगह पर बारह वर्ष वर्षा नही होती और अकाल पडता है। हमारे कहने पर अर्जुन ने अपना अस्त्र समेट लिया है। तू अगर अपना अस्त्र समेट लेने में आपको असमर्थ पाता है तो तू माथे पर का मणि पाडवों को दे दे और अस्त्र को पांडवो पर प्रयुक्त न कर, तभी तू जिन्दा रह सकेगा। उस पर अश्वत्थामा ने अपना अस्त्र उत्तरा के गर्भ पर प्रयुक्त किया।

वह देख कर श्रीकृष्ण उससे बोले "उत्तरा के गर्भ को तो मै जीवित रख ही लूगा, पर गर्भहत्या (भ्रूणहत्या) करने वाले तुझ महादुष्ट और पातकी को अपने पाप का फल इसी जन्म मे भुगतना पडेगा। तीन हजार (3,000) साल तक तेरे शरीर से पूयमिश्रित खून बहता रहेगा। उस दुर्गंध को महते जगल मे तुझ अकेले को भटकते रहना पडेगा। तुझे कोई भी पहचान नहीं सकेगा।" वह सुनकर बडे दुख के साथ पाडवो को अपना मणि सौंप कर अश्वत्थामा जगल चला गया।

अनन्तर पाडव मणि प्राप्त करके अपने शिबिर लौट आये। द्रौपदीकी इच्छा के अनुसार उस मणि को धर्मराज ने अपने माथे धारण किया। तब द्रौपदी, जो प्राण त्यागके निश्चय से धरना देकर बैठी थी, बडी प्रसन्न हुई।

12 शान्ति पर्व

वैशम्पायन जनमेजय राजा को सुनाने लगे युद्ध में मृत लोगो के नाम तर्पण करने के बाद गगा के बाहर आकर धर्मराज वहीं एक महिना रहे। एक बार उनका क्षेमकुशल पूछने जब अनेक ऋषि वहाँ पधारे तब धर्मराजा ने अतरग का दुख प्रकट किया। धर्मराज ने कहा, "मेरे हाथों जातिवध का भारी पातक तो हुआ ही है, लेकिन हमारे सगे बडे भाई कर्ण का वध हमारे हाथों हुआ, इसी का मुझे बहुत ही दुख है। कौरव सभा मे कर्ण ने हमें कैसी भी कडी बाते क्यो न सुनाई, तब भी उसके चरणों की तरफ देखते ही मेरा क्रोध शात हो जाता था। उसके पाव कुन्ती के पावों जैसे दीखते थे। लेकिन वह ऐसा क्यों, कुछ समझ मे नही आता था। उसकी मृत्यु हो जाने पर वह बात मेरी समझ मे आ गई। अब उसको किसका शाप था और अंत में उसके रथ का पहिया धरती ने क्यो निगल लिया वह कृपा कर बताए।

नारद ऋषि बोले, "क्षत्रिय, युद्ध मे प्राणार्पण करके स्वर्ग लोक मे पहुच जाये, इसलिये देवो ने वह पुत्र 'कन्या' मे उत्पन्न किया था। उसी से आपस का वैरभाव बढा। उस कर्ण ने द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या की शिक्षा ग्रहण की। आगे अर्जुन को प्रबल जान कर एक बार कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र सीखने की प्रार्थना की। द्रोणाचार्य ने बताया कि ब्राह्मणो या क्षत्रियों को ही ब्रह्मास्त्र सीखने का अधिकार है। उसपर कर्ण महेंद्र पर्वत पर परशुराम के पास चला गया। अपने को ब्राह्मण (भार्गव गोत्र का) बतलाकर उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग सीख लिया। एक बार कर्ण ने किसी ब्राह्मण की गाय अनजान मारी। तब उस ब्राह्मण ने कर्ण को शाप दे दिया, "जिसमे तू स्पर्धा कर रहा है जिसे मारने के लिए बडा भारी व्यूह रचा है, उससे युद्ध करते समय तेरे रथ का चक्र धरती निगल लेगी और वह भी तुझे रणमे ही मार डालेगा।

एक बार परशुराम कर्ण के अक पर माथा टेककर जब सो रहे थे तब एक कीडे ने कर्ण की जाघ को नीचे से कतरा, लेकिन कर्ण ने जाघ नही हिलाई। जाघ के गरम खून का स्पर्श परशुराम के शरीर मे हुआ तब वे जाग पडे। उन्हे एक कीडा दिखाई दिया। पहले कृतयुग मे वह दश नाम का राक्षस था। उसने भृगुऋषि की पत्नी का अपहरण किया इसलिये उस ऋषि के शाप से वह कीडा बन गया। उसके चले जाने पर परशुराम कर्ण से बोले, "इतना भारी दुख ब्राह्मण सह नही सकता। तू ब्राह्मण नहीं है। अब सच सच बता तू यथार्थ मे कौन है? तब, इस डर से कि परशुराम शाप दे देगे (और अपनी विद्या भी लोप ही जाएगी) कर्ण ने बताया, "मै ब्राह्मण नहीं हू, क्षत्रिय भी नही हू, बल्कि सूत हू। केवल ब्रह्मास्त्र का प्रयोग सीखने के लिए ही आपको मैं भार्गव गोत्री हू बताया। वह सुन कर परशुराम क्रोध के मारे आग बबूला होकर बोले, "मुझे धोखा देकर तूने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग सीखा, परतु अत समय मे इस अस्त्र के मत्र याद नही आएगे। हट जा यहा से। तुझ जैसे झूठे आदमी को यहा एक क्षण भी रहना नही चाहिये। उसके बाद कर्ण वहा से चल दिया। ब्रह्मास्त्र और साथ मे दो भयानक शापों को प्राप्त कर कर्ण लौट गया।"

एक बार कलिग देश के राजा चित्रागद की कन्या का स्वयवर था। उसमे दश देश के राजा इकट्ठा हुए थे। लेकिन दुर्योधन ने उस कन्या का अपहरण किया। उस समय जो युद्ध छिडा, उसमे कर्ण ने दुर्योधन के लिए पराक्रम दिखा कर सभी

राजाओं को परास्त किया। उसका पराक्रम सुन कर जरासंघ उसका मित्र बन गया। आगे चल कर इन्द्र ने तुम्हारे हित के लिए उसके कवच-कुंडल (जो जन्मत उसे मिले थे) माग, लिए। इस तरह से कर्ण बडा बहादुर होने पर भी परिस्थिति से (शापादि से) पीड़ित था, और इसी लिए अर्जुन के हाथो उसका वध हुआ। लेकिन युद्ध में मृत्यु आने के कारण उसे सद्गति ही प्राप्त हुई है। इस लिए हे धर्मराज! उसके लिए शोक करना व्यर्थ है।

नारद ऋषि का वह भाषण सुनने पर भी धर्मराज का शोक शात नहीं हुआ। वे फिर से वन चले जाने की और तपश्चर्या करने की बातें करने लगे। उस समय अर्जुन, भीमसेन, द्रौपदी, व्यास महर्षि और श्रीकृष्ण ने उन्हे तरह तरह समझा बुझाने का प्रयत्न किया। व्यास महर्षि बोले "वन में रह कर तप करना ब्राह्मण का काम है। क्षत्रियो का मुख्य कर्तव्य राज्य करना ही है। राजा अधर्म करने वाले को दंड देता है। अत लोक धर्म पर चलते है, उसी से राजा को सद्गति प्राप्त होती है।

सुद्युम्न राजा के राज्य मे दो ऋषि, शंख और लिखित रहते थे। एक बार लिखित ने अपने आश्रम के फल अनुमति लिए बिना खा लिये। तब शंख ने उससे कहा, "तूने चोरी की है, उस पातक का दंड भुगत कर फिर यहां चला आ।" लिखित सुद्युम्न राजा के पास चला गया। सुद्युम्न राजा ने उसके दोनो हात कटवा डालें। लिखित अपने बडे भाई के यहा याने शख के यहा लौट आया- और क्षमा मागने लगा। तब शख ने कहा, "मै तुझ पर गुस्सा नहीं हू। किये पातको का प्रायश्चित भोगना आवश्यक, इसलिए मैने तुझे राजा के पास जाने के लिए कहा। अब तू इस नदी में स्नान कर। तदनुसार स्नान करते ही लिखित के हाथ पहले जैसे चगे हो गए। उस दिन से वह नदी बाहुदा (बाहु-हाथ, दा-देनेवाली) कहलाने लगी। उस पर लिखित ने पूछा, तो फिर तुम्ही ने मुझे दड क्यो नही दिया? शख ने बताया अपराधी को दड देना राजा का कर्तव्य है, इसलिये मैंने तुझे सुद्युम्न राजा के पास पहुचाया।

व्यास ऋषि, कहते है, वह सुद्युम्न राजा क्षत्रियोचित धर्माचरण से परमधाम पहुच गया। तू भी उसका अनुकरण करके धर्मानुकूल राज्य चला।

अनन्तर व्यास महर्षि पुन बोले, "देव-दैत्य भाई-भाई होने पर दैत्य अधर्म करने वाले, इसलिए देवो ने उनका नाश तो किया ही, पर जिन शालावृक नाम के अट्ठासी हजार (88,000) ब्राह्मणो ने उनका पक्ष लिया था उनका भी नाश किया। कौरव अधार्मिक थे। उनका नाश करने से तुझे पाप नही लगा है। इतना होने पर भी अगर तुझे पाप की शका हो तो उसमे सभी पापो का नाश हो जाएगा।" उसपर धर्मराज ने कहा "मुझे पूरा राजधर्म सुनने की इच्छा है।" व्यास ऋषि ने बताया उसके लिए तू भीष्म पितामह के पास जाकर उनसे प्रार्थना कर। धर्मराजने कहा, "मैने ही उनको मारा है, और अब मै उसके पास कैसे जाऊँ"? कहकर वे बहुत ही शोक करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "धर्मराज, धर्म की वृद्धि हो, अधर्म का नाश हो, और उसमे सबका कल्याण हो एतदर्थ तू अपना वशपरपरागत राज्य चला। अब अधिक आग्रह मत कर।" वह सुन कर सबके साथ धर्मराज हस्तिनापुर लौट आये। हस्तिनापुर पहुचने पर ब्राह्मण जब आशीर्वाद दे रहे थे तब चार्वाक नामका एक राक्षस धर्मराज से कहने लगा, "ये सभी ब्राह्मण कहते है कि तुझ जैसा निजी जाति का नाश करने वाला राजा हम नही चाहते है। धिक्कार है तुझे। अरे गुरु-हत्या करके जीवित रहने की अपेक्षा तू मर जाता तो अच्छा होता।" यह सुन कर धर्मराज सभी ब्राह्मणो से प्रार्थना करके बोले, "एक तो मै पहले से ही दुःखी हू। मेरा धिक्कार क्यो कर रहे है आप? यह दुष्ट राक्षस दुर्योधन का मित्र है। इसके कहने पर तुम ध्यान मत दो। तुम्हारा कल्याण हो।" इतना कहकर उन ब्राह्मणो ने अपने तप-तेज से उस चार्वाक राक्षस को नष्ट कर दिया।

उसके बाद राज्याभिषेक की सब सिद्धता हो जाने पर धौम्य ऋषि ने होमहवन किया और श्रीकृष्ण ने रत्नमय सुवर्ण सिंहासन पर द्रौपदी के साथ बैठे धर्मराज को अभिषेक किया। मगलवाद्य बजने लगे। सभी प्रजाजनो ने अपने-अपने उपहार धर्मराज को अर्पित किए, श्रीकृष्ण की स्तुति की और सबके आभार माने। इस तरह से ठाट-बाट के साथ समारोह सपन्न होकर राज्याभिषेक का कार्यक्रम विधिवत् पूर्ण हो गया। सभी धन्य-धन्य कहने लगे। धर्मराज के शासन में सभी सानन्द दिन बिताने लगे।

एक दिन धर्मराज श्रीकृष्ण के पास गये। तब उन्हे, श्रीकृष्ण को ध्यानस्थ बैठे देख कर बडा अचरज हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि भगवन्, सभी लोग तुम्हारा ध्यान करते है, पर तुम किसका ध्यान कर रहे थे। उस पर श्रीकृष्ण ने कहा, "मेरे एकनिष्ठ भक्त भीष्म शरशय्यापर मेरा ध्यान कर रह है, इस लिए मेरा पूरा ध्यान उन्हीं की ओर लगा हुआ था। सचमुच भीष्म पितामह जैसा परमज्ञानी फिर कभी नहीं दिखाई देगा। इसलिये अब तू उनके पास चला जा और अपनी सारी शकाकुशकाओ का निरसन करा ले। उसी मे तेरे मन को सतोष प्राप्त होगा।

तदनुसार सभी पाडव, श्रीकृष्ण आदि लोग भीष्म के पास चले गए। भीष्म पितामह को प्रणाम करने पर श्रीकृष्ण ने भीष्म से कहा, "आपका शरीर मन आदि समर्थ हैं न? आप जैसा सर्वज्ञ इस युग मे कोई भी नहीं है, कृपया धर्मराज के शका-सदेहो को निरस्त कर दीजिए। उस पर भीष्म पितामह बोले, "भगवन्, तुम्हारी कृपा से ही मैं यहा जीवित हू। अन्यथा

मेरा शरीर वेदनाओ से पीड़ित है। मन और बुद्धि में स्थिरता नहीं, जीभ लडखडा रही है। इस अवस्था मैं क्या उपदेश दे सकता हू। इसलिये, मुझे क्षमा हो। सभी ज्ञानी लोगो के गुरु आप ही है अत आप ही धर्मराज को समुचित उपदेश दीजिए।'' यह सुन कर श्रीकृष्ण सतुष्ट हो गए और उन्होने भीष्म पितामह को वर-प्रदान किया, "तुम्हें वेदनाए अब नही होगी, भृख प्यास नहीं सताएंगी मन बुद्धि में स्थिरता आ जाएगी और सब ज्ञान स्फुरित होगा।" श्रीकृष्ण के वर देने पर व्यास आदि ऋषियो ने भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की। उसी क्षण आकाशस्थ देवताओ ने पुष्पो की वर्षा की।

उसके अनुसार दूसरे दिन नित्य-नैमित्तिक उपासना पूरी करके सभी भीष्म के पास पहुचे। श्रीकृष्ण ने भीष्म से पूछा, "अब पीडाए तो नहीं हो रही है?" भीष्म ने बताया, "भगवन तुम्हारी कृपा से सब आनद है। ऐसा लग रहा है की मै फिर तरुण बन गया हू और उपदेश देने की सामर्थ्य भी आ गयी है। लेकिन एक बात पूछनी है। धर्मराज को आप ही स्वय उपदेश क्यो नहीं दे रहे हैं? श्रीकृष्ण ने कहा की मैं उपदेश दू तो लोगो पर कुछ विशेष प्रभाव नही पडेगा, लेकिन आप उपदेश दोगे तो सब लोग आपका नाम आदरपूर्वक लेते रहेंगे। आपको वरप्रदान इसी लिय किया है। आपके इस उपदेश को वेद-वाक्य के समान पवित्र मानेंगे।

तब भीष्म पितामह ने कहा, "भगवन् आपका कृपा-प्रसाद पाकर मैं अब उपदेश करता हू। धर्मराज प्रश्न करते रहें और मैं उसका उत्तर देता जाऊ।" श्रीकृष्ण ने कहा, " धर्मराज को आपके सम्मुख आने मे लज्जा तथा ग्लानि हो रही है और उसे डर लगा रहा है कि कही आप शाप तो नहीं देंगे। जिनकी पूजा होनी चाहिए उन्हीका वध बाणो से उसने किया, इस लिए वह आपके सामने उपस्थित होने में सकुचा रहा है। उसपर भीष्म पितामह ने धर्मराज स कहा, "इसमे डरने या लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। यह तो क्षत्रियो का धर्म ही है। युद्ध मे कोई भी विरोध मे खडा हो, साक्षात् गुरु भी क्यो न हो, क्षत्रिय को उसका वध कर ही देना चाहिए।" भीष्म के इस भाषण से धर्मराज ने धैर्य से उनके सामने जाकर उनकी वदना की।

भीष्म ने धर्मराज से कहा, "घबराने की कोई बात नही है, स्वस्थ चित्त से नीचे बैठ कर जा पूछना हो सो खुले दिल से पूछो।" धर्मराज ने सबको प्रणाम करके पहले राजधर्म के बारे मे पूछा। भीष्म पितामह न राज-धर्म का कथन सक्षेप मे किया और अन्य शकाओ के बारे में पूछा।

इस तरह से कुछ दिनो तक यह कार्यक्रम जारी रहा। धर्मराज के प्रश्न और भीष्म पितामह के दिये उत्तर अनेक है। शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व, दोनो पर्व इन्हीं प्रश्नोत्तरो मे परिपूर्ण है। उनमें मे शांति पर्व में राजधर्म, आपद्धर्म ओर मोक्षधर्म तीन प्रकरण है। उन सबका साराश यहा देना असभव है।

13 अनुशासनपर्व

अनुशासन पर्व में धर्मराज और भीष्म के बीच जो प्रश्नोत्तर हुए वे "दान-धर्म" नाम से विख्यात है। वे प्रश्नोत्तर बहुसख्य होने के कारण उनका साराश भी यहा देना असभव है। धर्मराज के सभी सशय जब निरस्त हो गय और धर्मराज को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा देने का समय आ गया तब भीष्म पितामह ने उससे कहा, "कि अब शोक करना छोड द। हस्तिनापुर पहुच कर न्याय-नीति से राज्य का दायित्व सभालो। सबको सुख-समाधान दो। यज्ञ-याग कर लो, और उत्तरायण के लगते ही मेरे पास आओ।" "ठीक है, जो आज्ञा" कहकर भीष्म पितामह को प्रणाम करके सब लोग धर्मराज के साथ हस्तिनापुर लौट आये। पचास दिन के बाद सूर्य उत्तर की तरफ झुका। उत्तरायण देख कर सब लोगो के साथ धर्मराज भीष्म पितामह के पास गये। सभी ने भीष्मजी की वंदना की।

पितामह ने कहा, "आप सब लोग आ गये। बहुत अच्छा हुआ। पूरे अट्ठावन दिन मे यहा पडा हू। माघ महिने की शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि आज है। अब उत्तरायण शुरू हो जाने से शरीर त्यागने मे कोई बाधा नही है।" इतना कहकर धृतराष्ट्र और धर्मराज को उन्होंने अतिम उपदेश किया। श्रीकृष्ण को वदन कर शरीर त्यागने का अनुमति मागी। सबसे "प्रस्थान" कह कर उन्होंने समाधि लगाना प्रारभ किया। समाधि लगाकर प्राणो को ब्रह्मरध्र मे ले जाते समय शरीर का जो-जो भाग छूटता गया उस-उस भाग के बाण धीरे धीरे निकल पडने लगे। अत मे ब्रह्म-रध्रका भेदन करके जीवात्मा बाहर निकल पडा, उस समय एक विशेष प्रकार का तेज, "आकाशमार्ग"से ऊपर उठता सबको दिखाई दिया।

भीष्म के शरीर को वस्त्र-प्रावरणो, पुष्प मालाओ एव सुगधित द्रव्यो से सजा कर चदन, कपूर आदि से बनाई चिता पर रख दिया। उसे अग्नि दी। सभी ने तीन उलटी परिक्रमाए लगाई और गगा के तटपर आकर भीष्म पितामह के नाम जल-तर्पण किया।

14 अश्वमेधिकपर्व

वैशपायन जनमेजय राजा को आगे बताते हैं :- भीष्म के नाम तर्पण करने के बाद गगा नदी के बाहर आकर धर्मराजा फिर से शोक करने लगे। तब धृतराष्ट्र, व्यास तथा श्रीकृष्ण ने उन्हे उपदेश दिया और अश्वमेध यज्ञ करने कहा। धर्मराज के

कहने पर कि यज्ञ करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है, व्यासजी ने बताया कि पहले मरुत्त राजा ने हिमालय पहाड पर यज्ञ करके जो धनराशि वहीं छोड दी है, भगवान् शंकर को प्रसन्न करके तुम उस मांग ले आवो और तुम्हारे यज्ञ के लिए वह धन पर्याप्त है। यह सुनकर धर्मराज संतुष्ट हुए।

यह देखकर कि धर्मराज को राज्य प्राप्त हुआ है और पूरा प्रदेश समृद्ध हुआ है, श्रीकृष्ण और अर्जुन को बडाही आनंद हुआ। वे दोनों, एक बार स्थान स्थान के तीर्थ क्षेत्रों को देखते हुए इंद्रप्रस्थ पहुंचे। वहां मयसभा में बडे आनन्द के साथ काल बिताते उनमें सुख दुख की तथा युद्ध के सबंध में बहुत सी बातें हुई। अनंतर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "मुझे अब द्वारकापुरी की याद आ रही है। मेरा यहा का कार्य अब समाप्त हुआ है। यहां से मेरे बिदा लेने की बात तू धर्मराज से कर।" अर्जुन ने कहा, "वह तो ठीक है, लेकिन तुमने पहले जो ज्ञान श्रीगीता के रूप मे मुझे कुरुक्षेत्र में सिखाया था, उसे मै भूल गया हूँ। द्वारका जाने से पहले वह ज्ञान मुझे फिर से सिखाओ।" श्रीकृष्ण ने कहा, "अब उस ज्ञानका उपदेश फिर कर सकने में मैं असमर्थ हूं, क्यों कि उस समय योगयुक्त होकर मैंने तुझे वह ज्ञान सिखाया था।" बाद में श्रीकृष्ण धर्मराज से बिदा लेकर और अश्वमेघ यज्ञ में आने का अभिवचन देकर सुभद्रा के साथ द्वारका चले गये।

इधर पाडवों ने व्यास महर्षि की सूचना के अनुसार धन लाने के लिए हिमालय की ओर प्रस्थान किया। वहा पहुंचने पर कुबेर तथा रुद्र की पूजा अर्चा करके वहा विविध प्रकार का धन प्राप्त किया। लाखो ऊँटों, हाथियों, घोडों और गाडियों पर वे सम्पत्ति लाद लाद कर लाते रहे। इस तरह से धीरे धीरे पांडव हस्तिनापुर की तरफ लौटने लगे। पांडव जिस समय सम्पत्ति लाने चले गये उस समय श्रीकृष्ण द्वारका से हस्तिनापुर आ गये। उनके साथ में सुभद्रा, बलराम, प्रद्युम्न, सात्यकि, कृतवर्मा आदि बहुत से यादव थे। श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर में रहते हुए परीक्षित का जन्म हुआ। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र का प्रभाव होने के कारण वह अर्भक प्रेतरूप ही था। श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य सामर्थ्य से उसे फिर से जीवित किया। उस समय श्रीकृष्ण बोले, "अगर मैने कदापि असत्य भाषण न किया हो, अगर मैंने युद्ध में पीठ न दिखाई हो, धर्म और ब्राह्मण अगर मुझे सदैव प्रिय रहे हो, अर्जुन के बारेमें मेरे हृदय में परायेपन की भावना न रही हो, कंस आदि का वध मैंने न्यायपूर्वक किया हो, याने वे सारी बातें सत्यपर आधारित हों, तो उसी सत्य के प्रभाव से यह बालक जीवित हो उठे।" इतना कहते ही वह अर्भक जीवित हो उठा और चलन वलन करने लगा। वह देखकर कुन्ती, सुभद्रा, उत्तरा (जो कि उस बालक की मा ही थी।), द्रौपदी आदि को जो आनंद हुआ उसका वर्णन हो ही नहीं सकता। पुत्र का नाम परीक्षित रखा गया। उसके जन्म के एक महीने के बाद पाडव यज्ञ के लिए वह अपार धनराशि लेकर हस्तिनापुर लौट आये।

बाद में शुभमुहुर्त देखकर व्यास महर्षि की सूचना के अनुसार धर्मराज ने यज्ञ दीक्षा ली और अश्व को विजयार्थ छोड दिया। उसकी रक्षा करने के लिए अर्जुन पीछे पीछे जा रहा था। यज्ञ का अश्व प्राग्ज्योतिष नगर को प्राप्त हुआ। वहां भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त के विरोध को अर्जुन ने नष्ट किया। वहा तीन दिन युद्ध हुआ। धर्मराज ने, प्रस्थान करते समय अर्जुन से कह रखा था कि जहा तक हो सके प्राणहानि न होने पाए। तद्नुसार अर्जुन समझौते से काम लेता था। जहां किसी ने विरोध किया उसी मे वह युद्ध करता था, लेकिन सोच सभलकर और जीत लेने पर यज्ञ मे उपस्थित रहने का आमंत्रण देता जाता था। बाद मे सिधु देश को घोडा पहुचा। वहा जयद्रथ का पुत्र सुरथ अर्जुन के आने का समाचार पाते ही आतंक से चल बसा। उसकी सेना का भी पराभव हो गया। तब जयद्रथ की पत्नी (धृतराष्ट्र की कन्या, दुर्योधन की भगिनी), दुःशला अपने छोटे पोते को लेकर अर्जुन के पास चली आई और उसने उसे अर्जुन के चरणों में रखा। अर्जुन ने उसकी सांत्वना की।

बाद मे घोडा मणिपुरनगर में पहुँचा। वहा ब्रभुवाहन राजा राज्य करता था। अर्जुन जब तीर्थयात्रा पर था। तब उसने वहा की चित्रागदा और नागकन्या उलूपी से विवाह किया था। अर्जुन से चित्रांगदा को जो पुत्र हुआ वही वह था बभ्रुवाहन। अर्जुन के आगमन का समाचार सुनते ही अर्जुन के आगत स्वागत की सिद्धता करके वह अगवानी के लिए चला गया लेकिन अपने पुत्र की वह नम्रता अर्जुन को पसद नहीं आई। अर्जुन ने उसकी निंदा की और कहा कि, "युद्ध में अपना सामर्थ्य बताओगे तभी मै तुझे सच्चा पुत्र मानूगा।" तब भी वह युद्ध करना नहीं चाहता था, लेकिन उलूपी ने उसे युद्ध करने विवश किया। उस युद्ध मे अर्जुन की मृत्यु होने पर उलूपी ने नागलोक में जाकर सजीवन मणि लेकर अर्जुन को जीवित किया। जीवित हो जाने पर अर्जुन ने उससे उसका कारण पूछा, तब उलूपी ने बताया कि भारतीय युद्ध में तुमने भीष्म पीतामह को अधर्म से मारा। तुमने शिखंडी को जब आगे किया तब भीष्म पितामह अपने रथ में पीठ फेर के बैठे रहे और तुमने शिखडी की आड में खडे होकर भीष्मजी पर तीर चलाए। उससे अष्ट वसु क्षुब्ध होकर उन्होंने तुम्हें शापित किया था। मेरे पिताने जब उनकी प्रार्थना की और उन्हें मनाया तब उन्होंने बताया कि अर्जुन अगर वभ्रुवाहन के हाथों मृत्यु पाएगा तो यह शाप असर नहीं करेगा। इसलिये मुझे यह सब करना पडा। यह सुन लेने के बाद अर्जुन उन सबको यज्ञ का आमंत्रण देकर आगे बढ़ा।

उसके पश्चात् घोडा मगध देश की राजधानी "राजगृह" में पहुचा। वहा जरासंघ के पोते, सहदेव के पुत्र मेघसंधि ने

घोडे को रोका। उसे पराभूत करके, अर्जुन दक्षिण दिशा की तरफ मुडकर आध्र, द्रविड, महिषक, कोल्लगिरि, गोकर्ण के राजाओं को जीत कर पश्चिम समुद्र के तट से होकर सौराष्ट्र देश, प्रभासतीर्थ होकर द्वारका पहुचा। वहा यादवों के पुत्र घोड़े को पकड रहे थे, पर उग्रसेन और वसुदेव ने उन्हें रोका। घोडा आगे चला और पचनद (पजाब) देश से होकर गांधार देश को पहुंचा। वहां शकुनि का पुत्र राज्य कर रहा था। उसे जीत लेने के बाद अर्जुन हस्तिनापुर की तरफ चल पडा।

धर्मराज ने भीमसेन को आदेश दिया कि यज्ञ में जो भी अतिथि अभ्यागत आ जाएगे, उन सबका अच्छा प्रबन्ध कर दिया जाय। उनके आदेशानुसार यज्ञ मडप खूब अच्छी तरह से सजाया गया। प्रतिदिन एक लाख ब्राह्मणो का भोजन होने पर नगाड़ा बजाना तय हुआ था। नगाडा दिनभर में कई बार बजाना पडता था।

उस यज्ञ के अतिम काल में वहा एक नेवला पहुचा। उसका आधा शरीर सोने का था। वह नेवला मनुष्य जैसा जोर से बोलने लगा, "कुरुक्षेत्र में रहनेवाले ब्राह्मण के एक सेर सतू की बराबरी भी वह यह यज्ञ नही कर सकता।" सुनकर वहा के ब्राह्मणों ने उससे उसका आशय पूछा। तब वह कहने लगा, "कुरुक्षेत्र मे उछवृत्ति का एक ब्राह्मण था। उसके एक स्त्री, एक पुत्र और पुत्रवधू थी। उन चारों को पर्याप्त धान्य शायद ही मिला करता था। एक बार ऐसे ही कई दिन अभुक्त रहने पर गरमी में उसे एक सेर सत्तू मिले। वैश्वदेव होने पर अतिथि वहाँ पहुँच गया। ब्राह्मण ने चार के लिए उस सत्तू को चार भागों में विभाजित किया था। उनमें से अपने हिस्से का एक भाग अतिथि को दे दिया। तब कहीं वह अतिथि तृप्त हो गया, और उसने अपना सच्चा रूप भी प्रकट किया। वह साक्षात् यमधर्म था। उसने उस ब्राह्मण से कहा कि तूने जो यह दान कर्म बडे आनद से किया, उससे तेरा नाम स्वर्ग लोक तक पहुच गया है। उसके इतना कहते ही स्वर्ग से ब्राह्मण पर पुष्पवृष्टि हुई। स्वर्ग से उसको ले जाने एक विमान आ पहुचा। उस विमान पर सवार होकर वह ब्राह्मण सपरिवार स्वर्ग में गया।

इतना कह लेने पर नेवला कुछ और बोला, "ब्राह्मण के पहुचने पर मै अपने बिल से बाहर आ गया। वहा जो जूठा पडा मिला उसमे मैं लोटा। उसी क्षण उस ब्राह्मण के पुण्य से मेरा आधा शरीर स्वर्ण का हो गया। शेष आधा शरीर भी स्वर्ण का हो इस आशा से मै इस यज्ञ में पहुचा। लेकिन निराशा ही हुई। मेरा बाकी आधा शरीर सोने का नही हो पाया है। इसलिए मेरा आशय यही है कि उस ब्राह्मण के एक सेर सत्तू की भी बराबरी इस यज्ञ को नही है। इतना कहकर नेवला वहासे चल दिया।

15 आश्रमवासिक पर्व

धर्मराज के राज्य करते पद्रह साल बीत चुकने पर धृतराष्ट्र अरण्य में रहने चला गया। पद्रह वर्षो मे धर्मराज ने उसका उचित सम्मान रखा। उसकी अनुमति के बिना वह कोई भी कार्य नही करता था। दुर्योधन के समय धृतराष्ट्र की जो व्यवस्था थी उससे भी सुदर व्यवस्था धर्मराज ने रखी। लेकिन भीमसेन धर्मराज के अनजाने धृतराष्ट्र को तीखे ताने कसता था। इसलिये पद्रह सालो के बाद भीष्म, दुर्योधन आदि के श्राद्ध करके, विविध प्रकार के दान देकर सभी प्रजाननो से बिदा लेकर धृतराष्ट्र ने अरण्यवास के लिए प्रस्थान किया। साथ में गाधारी, कुन्ती, विदुर और सजय भी चले। पाडवो ने कुन्ती को बहुत मनाया कि वह जगल न चली जाए लेकिन उसने नहीं माना। धृतराष्ट्र राजा उन सबके साथ कुरुक्षेत्र पहुचा। वहा केकय देश के राजा शतयूप का आश्रम था। उस राजा को साथ लेकर धृतराष्ट्र व्यास महर्षि के आश्रम को चले गए। व्यास महर्षि से दीक्षा पाने के उपरान्त फिर शतयूप के आश्रम पहुच कर धृतराष्ट्र तप करने लगे।

एक साल के बाद पाडव सभी स्त्रियों को साथ मे लेकर धृतराष्ट्र से मिलने गये। उनके साथ हस्तिनापुर के बहुत से प्रजानन थे। पाडवों के वहा पहुचने पर उन्हे विदुर दिखाई नहीं दिये। उनके सबध में पूछताछ वे कर ही रहे थे। कि किसी पिशाच के समान विदुर दूर से आते दिखाई दिये। धर्मराज उनसे मिलने जब जाने लगे तब विदुर दौडते हुए दूर जगल चले गए और एक पेड से सटकर खडे हो गए। धर्मराज के वहा जाने के बाद विदुर ने समाधि लगाई। उसके शरीर स निकला तेज धर्मराज के शरीर में प्रविष्ट हुआ। उससे धर्मराज को अनुभव हुआ कि अपना बल बढा है। अनन्तर धर्मराज पुन आश्रम लौट आये।

एक दिन व्यास महर्षि धृतराष्ट्र के निवास में पधार। गाधारी की प्रार्थना पर युद्ध मे जो मृत हुए थे उन सबसे सबकी भेंट गगा मे स्नान करने के बाद, व्यास महर्षि की कृपा से हो गई। एक रात रहने पर वे मृतात्मा गगा के जल मे लुप्त हो गये। अनन्तर व्यास महर्षि ने स्त्रियो से पूछा, "तुममें से किसी को अपने पति के साथ परलोक (पतिलोक) जाना हो तो इस गगा के जल में प्रवेश करो।" यह सुनकर सभी विधवा स्त्रियो ने गगा में प्रवेश कर अपने अपने पति के साथ स्वर्ग मे सानद प्रवेश किया। एक महिना वहा रहकर पाडव हस्तिनापुर लौट आए।

धृतराष्ट्र के जगल गए तीन साल होने के उपरान्त नारद ऋषि धर्मराज के पास आकर रहने लगे। तुम्हारे धृतराष्ट्र से मिलकर, हस्तिनापुर लौट आने पर धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र से चलकर हरिद्वार आ पहुचा। एक दिन स्नान करके आश्रम को लौटते समय चारो तरफ दावाग्नि भडक उठी थी। तब धृतराष्ट्र ने सजय से कहा, "तू दावाग्नि से निकल जा। हम बहुत कृश हो

गये है, भाग नहीं सकते। हम तीनों भी इस दावाग्नि में शरीर की आहुतियां देकर सद्‌गति को प्राप्त करेंगे।" इतना कहकर धृतराष्ट्र, गाधारी और कुन्ती पूर्व की ओर मुंह किये ध्यानस्थ बैठे। तब सजय उनकी परिक्रमा कर वहां से चल दिया। आश्रम पहुंच सभी ऋषियों को उसने वह बात बताई और वह हिमालय में चला गया।

16 मौसल पर्व

वैशपायन जनमेजय से कहने लगे- धर्मराज के पैतीस साल राज्य करने पर छत्तीसवें वर्ष कुछ ऋषि द्वारका गए थे। यादवों के पुत्रों ने उनका मजाक उडाया। श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को स्त्री का वेष देकर ऋषियों के पास जाकर उसने पूछा कि यह स्त्री गर्भवती है? बताइए, इसे पुत्र होगा या पुत्री? ऋषि उस छल कपट को समझ गये। उन्होंने कहा इसे एक लोहे का मूसल होगा, और उस मूसल से सभी यादवों का (श्रीकृष्ण और बलराम को छोड़कर) नाश होगा। ऋषियों के कहने के अनुसार दूसरे दिन उस सांब के पेट से मूसल पैदा हुआ। उसे देखकर सभी घबरा गये। उग्रसेन राजा ने उस मूसल को चूर्ण करके समुद्र में फिकवा देने की व्यवस्था की।

उसके बाद श्रीकृष्ण के कहने पर सभी यादव तीर्थयात्रा के लिए प्रभास तीर्थ पहुचे। वहां आपस में झगड़ा और मारपीट शुरु हुई। मूसल का चूर्ण समुद्र की लहरों से किनारे पर आ गया था। उससे उत्पन्न घास को लेकर यादव एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। वह घास वज्र के समान होने से उस लड़ाई झगडों में उससे सभी यादवों का नाश हो गया। वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण और स्त्रिया, बालबच्चे आदि कुछ ही लोग जीवित रहे। श्रीकृष्ण ने दारुक के हाथों लड़ झगड़कर नष्ट हुए बलराम के मुंह से बडा सफेद नाग निकल कर समुद्र मे चला गया। श्रीकृष्ण जब ध्यान लगा कर बैठे तब जरा नाम के किसी व्याध ने उनके पांव के तलुवे को लक्ष्य करके तीर चलाया, और हिरन समझकर पास पहुंचा। वहा चतुर्भुज मूर्ति को देखकर वह व्याध श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पडा। उसको सात्वना देकर श्रीकृष्ण निजधाम चले गए।

दारुक ने जब सारा वृत्तात पाडवों को बतलाया तब उसे सुनकर बड़े ही दुःख के साथ अर्जुन द्वारका चला आया। वहा वह वसुदेव से मिला। दूसरे दिन वसुदेव ने भी प्राणत्याग किया। उसका अग्निसस्कार कर देने पर श्रीकृष्ण, बलराम, आदि यादवों के शरीर जहा पडे थे उस प्रभास तीर्थ पर अर्जुन आ पहुचा। उसने सभी के शरीरों को अग्नि सस्कार किया। पुन द्वारका मे आकर सभी स्त्रियों, बालकों, वृद्धों को साथ मे लेकर वह चल पड़ा। श्रीकृष्ण के अवतार समाप्ति के सात दिनो के बाद समुद्र ने द्वारकापुरी को आत्मसात् किया।

द्वारका के लोगो के साथमे लेकर अर्जुन पचनद (पजाब) देश को पहुचा। वहा आभीर नाम के डाकुओं ने यादवों की बहुत सी स्त्रियो को ले भगाया। अर्जुन देखता ही रह गया। तूणीर में उसके पास एक भी तीर नहीं बचा। अस्त्रों के प्रयोगों को भूलता गया। तब बडे ही दुःख के साथ बचे खुचे लोगो को साथ मे लेकर अर्जुन कुरुक्षेत्र पहुचा। उसने सात्यकि के पुत्र को सरस्वती नदी के तट पर और वज्र नामक यादवपुत्र को इंद्रप्रस्थ के राज्य पर स्थापित किया, और स्वय व्यास महर्षि के दर्शन के लिए चला गया। घटित सारी बातें उसने व्यास महर्षि पर प्रकट की और उनसे उनका कारण पूछा। व्यास ऋषि ने कहा, " विधिलिखित है। बुद्धि, तेज, ज्ञान आदि सब काल के अनुसार रहते हैं। काल के प्रतिकूल जाते ही वे विनाश को पाते हैं। इस समय तुम्हारे लिए काल प्रतिकूल है। इसी लिए तुम्हें अस्त्रप्रयोगों का स्मरण नहीं रहा। अनुकूल काल के आने पर फिर से स्मृति आ जाएगी। अब तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम सद्‌गति को प्राप्त करो।" व्यास ऋषि का कथन सुन कर अर्जुन हस्तिनापुर पहुचा और उसने यादवों के विनाश की पूरी वार्ता धर्मराज को सुनाई।

17 महाप्रास्थानिक पर्व

वैशपायन ने आगे कहना आरभ किया- यादवों के विनाश की वार्ता सुनकर पाडवों ने स्वर्ग लोक पहुचने के लिए महाप्रस्थान करने का निश्चय किया। परीक्षित् को राज्य देकर और सुभद्रा पर उसकी रक्षा का भार सौप कर कृपाचार्यजी को गुरु नियुक्त कर, सभी प्रजाजनो की प्रार्थना करके, वल्कल परिधान कर लेने के बाद द्रौपदी को साथ में लेकर पाचों पाडव हस्तिनापुर के बाहर चल पडे। उनके साथ एक कुत्ता था। जाते जाते उन्हें अग्निदेव मिले। उनके कहने पर अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष्य पानी में छोड दिया। अनन्तर पृथ्वी की परिक्रमा करके पाण्डव उत्तर दिशा की ओर चल पडे।

हिमालय पर्वत, वालुकामय प्रदेश पार कर उन्हें मेरु पर्वत दीख पडा। वहां जाते समय पहले द्रौपदी गिर पडी। उसका कारण वह अर्जुन से विशेष प्रेम करती थी। बाद में सहदेव गिर पडा। उसका कारण वह अपने को बडा बुद्धिमान् समझता था। पश्चात् नकुल गिर पडा कारण उसे अपनी सुंदरता का बडा ही गर्व था। उपरान्त अर्जुन गिर पडा उसका कारण उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मै एक दिन में समूचे वीरो को मार डालूंगा" लेकिन उस प्रतिज्ञा की पूर्ति उससे नहीं हो पाई और

उसे अपने पौरुष पर बड़ा ही गर्व था। उसके बाद भीमसेन गिर पडा। उसके गिरने का कारण वह बहुत ही पेटू था और उसे अपनी शक्ति का गर्व था। सबके गिर पडने पर कुत्ता और धर्मराज दोनो के आगे बढने पर इंद्र रथ लेकर पहुंच गये और अकेले धर्मराज को रथ पर सवार होने कहने लगा। लेकिन धर्मराज उस स्वामिभक्त कुत्ते को छोडने को तैयार नहीं थे। वह देखकर कुत्ते के रूप मे यमधर्म अपने यथार्थ रूप को प्रकट करते हुए बोले, "हमने तेरी परीक्षा ली।" उसके बाद धर्मराज को विमान पर बिठाकर सदेह स्वर्ग चले गए।

18 स्वर्गारोहण पर्व

वैशम्पायन ने आगे कहा- स्वर्ग लोक पहुचकर धर्मराज ने दुर्योधन आदि कौरवों को बड़े ही ठाट बाट से बैठ पाया। लेकिन पांडवों को वहा न पाकर धर्मराज ने वहां रुकना स्वीकार नहीं किया। धर्मराज के बताने पर कि जहा मेरे कर्ण भीम आदि बंधु और द्रौपदी सगे सबंधी हो वहां मुझे भी ले चलो, एक देवदूत नरक के दर्शन कराने उन्हें ले गया। उस नरक में बहुत से प्राणी भाति भांति की यातनाओं को भुगत रहे थे। वहां से लौटने का विचार धर्मराज के मन में आते ही नरक में व्याकुल प्राणी कहने लगे, "धर्मराज, कुछ समय तक ऐसे ही खड़े रहो। तुम्हारे शरीर पर से आनेवाले वायुसे हमारी यातनाए दूर हो गईं। हमें बहुत ही सुख मिल रहा है।" उनके बोल सुनकर धर्मराज ने पूछा, "तुम कौन है? तब "मैं नकुल, मैं द्रौपदी, मैं कर्ण, मैं अर्जुन, मैं धृष्टद्युम्न" इस तरह शब्द सुनाई दिए। उनको सुनकर धर्मराज मन ही मन सोचने लगे, इन्होंने कुछ भी पातक नहीं किया तब इन्हें नरक यातना क्यों? और उस पापी दुर्योधन को स्वर्ग का सम्मान और सुख कैसे? सोचते सोचते वे कुपित भी हो गए। उन्होंने देव धर्म की निंदा की। देवदूतों को बिदा किया और खुद वहा रुकने से स्नेही संबधियों को सुख पहुंच रहा है, इस लिए वे वहीं खडे रहे। देवदूत के सारा समाचार देवों पर प्रकट करने पर इद्रादिक देव धर्मराज के पास आ गये, उसी क्षण नरक लुप्त हो गया। सुगधित वायु चलने लगी। अनतर इद्र ने धर्मराजा से कहा, "तुम्हे स्वर्ग लोक ही प्राप्त होने वाला है, लेकिन सभी राजाओं को नरक में जाना पड़ता है। जिनका पुण्य अधिक रहता है उन्हें पहले नरक और बाद में स्वर्ग मिलता है और जिनका पाप अधिक उन्हें पहले स्वर्ग और बाद में नरक मिलता है। तुमने अश्वत्थामा के मरने का समाचार आशिक झूठसच बताया इस लिए तुम्हें यह झूटा नरक देखना पडा। यह सब आभासमात्र है। यथार्थ में अर्जुन आदि स्वर्ग में स्थित हैं। इस आकाशगगा में अब स्नान करके उन अपने सगे सबधियों से मिलने प्रस्तुत हो जाओ। इतने में वहा साक्षात् यमधर्म पहुच गये। वे धर्मराज से बोले, "मैने तेरी तीन बार परीक्षा ली। पहली बार द्वैत वन मे यक्षप्रश्न के समय, दूसरी बार साथ में कुत्ते के समय, और यह तीसरी बार है तू तीनो बार अपने सत्व के प्रति जागरूक ही रहा। तू धन्य है। तेरे भाई नरक में कैसे जा सकते है? यह सब इंद्र से तुझे अपनी माया दिखाई है। अनन्तर धर्मराज ने आकाशगगा में स्नान किया, नर देह का चोला त्याग कर दिव्य देह धारण किया और अपने बधुओ के पास स्वर्ग पहुच कर आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे।

वैशम्पायन कहते हैं, "हे जनमेजय राजा, इस प्रकार कौरव पाडवों का समग्र चरित्र तुझको मैने सुनाया।"

महाभारत की कथा सुनकर जनमेजय राजा को भारी आश्चर्य हुआ। उसने सर्पसत्र पूरा किया। सर्पों के मुक्त हो जाने पर आस्तिक ऋषि को बडा आनद हुआ। राजा ने सभी ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदक्षिणा के साथ बिदा किया और वह तक्षशिला नगरी से हस्तिनापुर लौट आया।

इस तरह उस जनमेजय राजा के सर्पसत्र में व्यास महर्षि के आदेशानुरूप जो महाभारत वैशम्पायनजी ने सुनाया, इस इतिहास का दूसरा नाम "जय" भी है। वेदों की जिस तरह संहिता रहती है, उसी तरह महाभारत की यह लाखों श्लोकों की सहिता व्यास महर्षि ने सर्वजनहितार्थ निर्माण की। तीस लाख श्लोकों की सहिता स्वर्गलोक मे, पद्रह लाख श्लोकों की सहिता पितृलोक में, चौदह लाख श्लोकों की सहिता यक्षलोक में और एक लाख श्लोकों की सहिता मनुष्यलोक मे, इस तरह कुल मिलाकर साठ लाख (60,00,000) श्लोकों की रचना व्यास महर्षि ने की है। देवलोक याने स्वर्ग में नारद ने देवों को, पितृलोक में देवल ऋषि ने पितरों को, यक्षलोक में शुक्राचार्य ने यक्षों को और मनुष्य लोक में वैशम्पायनजी ने मनुष्यों को पहले पहल यह रचना सुनाई।

टिप्पणी : प्रस्तुत ग्रथ के पुराण-इतिहास विषयक प्रकरण में ग्रथों के विस्तार आदि बहिरग का परिचय प्रधानता से दिया है। समस्त पुराण वाङ्मय कथाओं का महासागर है। उनके अंतरग का परिचय कथाओं द्वारा देना उचित था किन्तु विस्तारभय के कारण पुराण कथाओं का परिचय हमने टाला है। इस पुराणेतिहासान्तर्गत कथा वाङ्मय का परिचय एकमात्र महाभारत की अद्‌भुत रम्य एवं रसोत्कट कथा के परिचय से यथोचित होने की सभावना मान कर, पर्वानुक्रम के अनुसार अतीव सक्षेप में दी है।
(लेखक सपादक)

19 "इतिहास विषयक अवान्तर वाङ्मय"

भारत के इतिहास विषयक वाङ्मय का मूलस्रोत अन्य विषयों के समान वेदों एवं पुराणों में मिलता है। तथापि रामायण और महाभारत को ऐतिहासिक वाङ्मय के आदि ग्रथ कहना उचित होगा। काव्यात्मक इतिहास वर्णन करने की यह आर्य परंपरा सस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में अविरत चल रही है। नवशिक्षित समाज में यह भ्रम फैला है कि संस्कृत वाङ्मय में इतिहास विषयक जानकारी देने वाले ग्रंथों का प्रमाण नहीं के बराबर है। परंतु तथ्य तो यह है कि प्राचीन भारत के केवल इतिहास का ही नहीं अपि तु सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृति का आकलन सस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से ही हो सकता है। "इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इत्यादि आदेश यही सूचित करते हैं। प्राचीन मनीषी इतिहास के अध्ययन को वेदाध्ययन के समान महत्त्व देते थे। छान्दोग्य उपनिषद में इतिहास पुराण ग्रंथों को "पंचम वेद" कहा है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भी इतिहास के अध्ययन का महत्त्व प्रतिपादन किया है। मुसलमानी शासन के प्रदीर्घ काल में इस राष्ट्र में सर्वंकष विध्वंस होता रहा, जिसमें अन्य सस्कृत ग्रंथों के साथ इतिहास विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का भी विध्वंस हुआ होगा। तथापि सम्प्रति उपलब्ध इतिहास विषयक ग्रंथो की सख्या उपेक्षणीय नहीं है। रामायण महाभारत के पश्चात् इतिहास विषयक जो महत्त्वपूर्ण काव्यात्मक ग्रंथ मिलते हैं, उनकी सक्षिप्त नामावली निम्न प्रकार है ·

इतिहास ग्रंथ	**लेखक**	**समय**
हर्षचरित	बाणभट्ट	ई 7 वीं शती
हम्मीर वंशकाव्य	नयचद्रसूरि	ई 10 वीं शती
राजतरंगिणी	कल्हण	ई 10 व 12 वीं शती
विक्रमाकदेवचरित	बिल्हण	ई 10 व 12 वीं शती
कुमारपालचरित	जयसिहसूरि	ई 10 व 12 वीं शती
नवसाहसाकचरित	पद्मगुप्त	
पृथीराज विजय	जयानक	
कीर्तिकौमुदी	सोमेश्वर	
रामचरित	सध्याकरनदी	
बल्लालचरित	आनद भट्ट	
प्रबन्धचिन्तामणि	मेरुतुग	
चतुर्विंशतिप्रबन्ध	राजशेखर	
रघुनाथाभ्युदय	गगाधर	
सालुवाभ्युदय	रघुनाथ डिंडिम	
कम्परायचरित	गगादेवी। इत्यादि	

इस प्रकार से ऐतिहासिक महत्त्व के विविध काव्यग्रंथ भारत के अन्यान्य प्रदेशों निर्माण हुए। उन ग्रंथों का निर्देश प्रस्तुत कोश में यथास्थान हुआ है। मुसलमानी शासनकाल में फारसी को राजभाषा का महत्त्व प्राप्त होने के कारण उस भाषा में इतिहास विषयक सामग्री अधिक मात्रा में मिलना स्वाभाविक है, परतु उस काल में भी संस्कृत वाङ्मय की स्रोतस्विनी खंडित नहीं हुई थी। उस काल के कुछ ग्रथों का ऐतिहासिक महत्त्व उपेक्षणीय नहीं है। इन इतिहास विषयक काव्यों के रचयिता प्राय. राजाश्रित विद्वान होते थे। भारत में दीर्घकाल तक मुसलमानों का आधिपत्य रहा। उस काल में मुसलमान शासनकर्ताओं के विषय में कुछ स्तुतिपर संस्कृत ग्रथ लिखे गये जिनमें तत्कालीन इतिहास का कुछ अंश व्यक्त हुआ है। मुसलमान सुलतानों एव बादशाहों के आश्रित इतिहास लेखकों ने अपनी भाषा में तत्कालीन ऐतिहासिक वृत्तान्त भरपूर प्रमाण में लिख रखा है। उस वृत्तान्त के पूरक ग्रंथों में कुछ उल्लेखनिय सस्कृत ग्रंथ निम्न प्रकार हैं।

असफलविलास ले पंडित राज जगन्नाथ। ई 17 वीं शती। विषय आसफखान नामक सरदार (जो जगन्नाथ पंडित का मित्र था) का गुणवर्णन।

जगदाभरण ले. पडितराज जगन्नाथ। विषय : दाराशिकोह का गुणवर्णन

सूक्तिसुन्दर · ले सुन्दरदेव। ई. 17 वीं शती। इस सुभाषित संग्रह में अकबर, मुजफ्फरशाह, निजामशाह, शाहजहां इत्यादि मुसलमान शासकों की स्तुति के श्लोक संगृहीत किए हैं।

सर्वदेशवृत्तान्तसंग्रह · ले. महेश ठक्कुर। दरभंगा निवासी। जहांगीर बादशाह का चरित।

बिरुदावली · ले. अज्ञात। विषय . जहांगीर बादशाह का चरित्र।

राष्ट्रोढवश   ले रुद्रकवि। 20 सर्ग। विषय बागुल राजवश का वृत्तान्त।

राजविनोद काव्य ले उदयराज कवि। मात सर्ग। विषय गुजरात के सुलतान बेगडा महमद का चरित्र।

17 वीं शती मे महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज के समर्थ नेतृत्व मे, स्वतत्र हिंदुराज्य का क्रातियुद्ध शुरु हुआ। महाराष्ट्र एव भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण राजकीय परिवर्तन का युग 17 वी शती से प्रारभ हुआ। इस कालखड के इतिहास के ज्ञान के लिए जिनका अध्ययन आवश्यक है ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ

पर्णालपर्वतग्रहणाख्यानम् - ले जयराम पिण्ड्य

शम्भुराजचरित - ले हरिकवि (सूरत निवासी)

राजारामचरित - ले केशव पंडित।

शिवकाव्य - ले पुरुषोत्तम कवि

अलकारमजूषा - ले देवशंकर पुरोहित (इसमे माधवराव और रघुनाथराव पेशवा के चरित्र का वर्णन अलकारो के उदाहरणार्थ कवि ने किया है।

तंजौर के भोसले राजवश के इतिहास पर आधारित काव्य ग्रथ

कोसलभोसलीयम् ले शेषाचलपति (आध्रपाणिनि)। इस द्व्यर्थी काव्य मे कोसलाधिपति प्रभु रामचद्र और तजौर नरेश एकोजी (शहाजी भोसले का पुत्र) के चरित्र वर्णित हैं।

भोसलवशावली - ले गगाधर

भोसलवशावली चम्पू - ले नैधृव वेंकटेश (तजौरनरेश प्रथम सरफोजी का चरित्र)

शृगारमजरी शाहजीयम् (नाटक) - ले पेरिय अय्या दीक्षित

कातिमतीपरिणय - ले चोक्कनाथ

शाहेन्द्रविलास - ले श्रीधर वेंकटेश

शाहविलासगीतम् - ले ढुढिराज

शाहराजीयम - ले लक्ष्मण

शाहराजसभा सरोवर्णिनी - ले लक्ष्मण

धर्मविजयचम्पू - ले भूमिनाथ (नल्ला) दीक्षित। विषय शहाजी राजा का चरित्र

सुमतीन्द्रजय घोषणा - ले सुमतिचन्द्र। विषय शहाजी राजा का स्तवन

शाहजिप्रशस्ति - ले भास्कर कवि

शरभराजविलास - ले जगन्नाथ (कावल्लवशीय)। विषय सरफोजी भोसले का चरित्र

गुणरत्नाकर - ले नरसिह कवि। विषय सरफोजी भोसले का अलकारनिष्ठ चरित्र

शरभोजिचरित - ले अनन्तनारायण

शरभोजिमहाराजजातक - ले अज्ञात

साहित्यमजूषा - ले सदाजि। ई 1825। विषय शिवाजी महाराज का चरित्र एव भोसले वश का इतिवृत्त। इसी परपरा के अतर्गत अग्रेजी शासन के प्रारभकाल में, रानी व्हिक्टोरिया, एडवर्ड, पचम जॉर्ज इन आग्ल प्रशासको के विषय भी कुछ काव्य लिखे गये

आग्रेजचन्द्रिका - ले विनायक भट्ट। ई 19 वीं शती।

राजाग्लमहोद्यानम् - ले रामस्वामी

आग्लसाम्राज्यमहाकाव्य . - ले ए आर राजवर्मा। त्रिवाकुर निवासी।

आग्लाधिराज्यस्वागत . - ले वेंकटनाथाचार्य। विशाखापटनम् के निवासी

गीतभारतम् - त्रैलोक्यमोहन गुह। सर्ग संख्या 21। विषय आग्लसाम्राज्य एव महारानी व्हिक्टोरिया

व्हिक्टोरियाचरित सग्रह - ले केरलवर्म वलियक्वैल

व्हिक्टोरियामाहात्म्य - ले राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर

विजयनीकाव्य - ले श्रीश्वर विद्यालकार भट्टाचार्य। सर्ग 12

दिल्लीमहोत्सवकाव्य - ले. श्रीश्वर विद्यालकार भट्टाचार्य सर्ग 6

एडवर्ड-राज्याभिषेक-दरबारम् - ले शिवराम पाण्डे। प्रयाग निवासी। इसी लेखक ने एडवर्ड शोकप्रकाशम् नामक अन्य काव्य एडवर्ड के निधन निमित्त ई 1910 में लिखा है

एडवर्डवंशम् . - ले. वेमूर्ति श्रीनिवास शास्त्री। विषय 1911 के दिल्ली दरबार का वर्णन

दिल्लीप्रभा - ले शतावधानी शिवराम शास्त्री

राजराजेश्वरस्य राजसूयशक्ति रत्नावली - ले ईश्वरचन्द्र शर्मा। कलकत्ता निवासी। ई 1909

कम्पनी-प्रताप-मण्डनम् - ले अज्ञात

रानी व्हिक्टोरिया तथा एडवर्ड बादशाह के विषय में लिखित काव्यो की अपेक्षा पचम जार्ज के विषय में लिखे गये काव्यों की संख्या अधिक है। इनमें उल्लेखनीय हैं

जॉर्जदेवचरितम् ले. पद्मनाभ शास्त्री श्रीरगपट्टन निवासी। (2) लक्ष्मणसूरी। जॉर्ज वशम् - ले. के एस अय्यास्वामी अय्यर।

जॉर्ज महाराजविजयम् - ले कोचा नरसिह चार्लु। दिल्लीसाम्राज्यम् - ले शिवराम पाडे।

जॉर्जाभिषेकदरबार - ले शिवराम पाडे (प्रयाग निवासी)। उत्तमजॉर्जजायसी - रत्नमालिका - ले एस श्रीनिवासाचार्य कुम्भकोण निवासी।

जॉर्जप्रशस्ति - ले भट्टनाथ स्वामी (विशाखापट्टनवासी)। (2) ले लालमणि शर्मा (मुरादाबादवासी)

यदुवृद्धसौहार्दम् ले ए गोपालचार्य। विषय आठवें एडवर्ड का स्त्रीनिमित्त राज्यत्याग। श्लोक 600। इन आग्ल प्रशासक विषयक ग्रथों का ऐतिहासिक महत्त्व आज विशेष नहीं है, किन्तु यथाकाल वह महत्त्व बढते जाएगा। ऐतिहासिक वाङ्मय मे भूतकालीन राजा महाराजाओ तथा उनके वशानुचरित पर आधारित साहित्य को जितना महत्त्व है उतना ही भूतकालीन साधुसत एव आचार्यों के चरित्र विषयक काव्यों को भी देना चाहिए। सस्कृत वाङ्मय में यह परपरा महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरित नामक श्रेष्ठ महाकाव्य से प्रवर्तित हुई। इस परम्परा में उल्लेखनीय काव्य

जगदगुरु श्री शकराचार्य के चरित्र पर आधारित ग्रथ बृहत्शकरविजय ले चित्सुखाचार्य । शकरविजय ले आनदगिरि (या अनन्तानदगिरि)। शकरविजय ले विद्याशंकरानंद। संक्षेपशकरविजय . ले माधवाचार्य (अर्थात् स्वामी विद्यारण्य)। शकराचार्यचरित ले गोविंदनाथ। शकराचार्यदिग्विजय ले वल्लीसहाय। शकरदिग्विजयसार ले सदानन्द।

शकराभ्युदय - ले राजचूडामणि दीक्षित। ई 17 वीं शती। गुरुपरम्पराप्रभाव . ले विजयराघवाचार्य (आप तिरुपति देवस्थान के शिलालेखाधिकारी थे)। शंकरगुरु-चरित-संग्रह - ले पंचपागेश शास्त्री। आप कुम्भकोण के शाकरमठ में अध्यापक थे।

माध्वसप्रदायी साधु पुरूषों के चरित्र पर आधारित काव्य ले सत्यनाथविलसितम् ले श्रीनिवास। सत्यनाथाभ्युदयम् ले शेषाचार्य। सत्यनाथमाहात्म्यरत्नाकर ले अज्ञात। इन तीनो ग्रथों में माध्वसप्रदायी श्री सत्यनाथतीर्थ का चरित्र वर्णित हुआ है। श्रीसत्यनाथतीर्थ सन् 1644 में समाधिस्थ हुए। माध्व संप्रदाय के अन्य आचार्यो के चरित्र विश्वप्रियगुणविलास ले सेतुमाधव। राघवेन्द्र विजय ले नारायण कवि। सत्यनिधिविलास ले श्रीनिवासकवि। सत्यबोधविजय ले कृष्णकवि। सेतुराज विजय ले अज्ञात।

श्रीरामानुजाचार्य के चरित्र पर आधारित ग्रथ रामानुजचरितकुलकम् ले रामानुजदास। रामानुजविजय ले अण्णैयाचार्य श्रीभाष्यकारचरित ले कौशिकवेकटेश। श्रीशैलकुलवैभव ले नृसिहसूरि। यतीन्द्रचम्पू ले बकुलाभरण। इन ग्रंथों के अतिरिक्त रामानुजदिव्यचरित, रामानुजीय और रामानुजचरित नामक ग्रथ उपलब्ध हैं जिनके लेखक अज्ञात हैं।

दिव्यसूरिचरित ले गरुडवाहन और प्रपन्नामृत ले अनन्ताचार्य। इन दो ग्रथों में दक्षिणभारत के आलवार नामक 12 वैष्णव सतों के चरित्र वर्णन किये है।

जैन साहित्य में सत्पुरुषविषयक चरित्रग्रथ - इन ग्रथो की सख्या भरपूर है, और उनका ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। सुकृतसकीर्तन ले ठक्कुर अरिसिह। ई 14 वी शती। विषय गुजरात के राजनीतिज्ञ अमात्य वस्तुपाल (ई. 13 वीं शती) का चरित्र। सर्ग 11। वसन्तविलास ले बालचंद्रसूरि। ई 14 वीं शती। विषय अमात्य वस्तुपाल का चरित्र। सर्ग 14 वस्तुपाल का अन्य नाम वसन्तपाल था। कुमारपाल भूपालचरित ले. जयसिहसूरि। विषय गुजरात वीर नरेश (ई 13 वीं शती) कुमारपाल का चरित्र। कुमारपालचरित ले. चरित्रसुदर गणि (अपरनाम चरित्रभूषण। ई. 15 वीं शती)।

वस्तुपालचरित ले जिनहर्षगणि। ई 15 वीं शती। हम्मीरमहाकाव्य ले. जयचन्द्रसूरि। ई 15 वीं शती। विषय चौहानवंशीय नरेश हम्मीर और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के बीच हुआ ऐतिहासिक युद्ध। सर्ग 14। श्लोक 1564।

जगडूचरित ले सर्वानन्द। गुरु धनप्रभसूरि। ई 15 वीं शती। 7 सर्गों के इस काव्य मे प्रसिद्ध जैन श्रावक जगडूशाह का चरित्र वर्णित है।

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान हेमचन्द्राचार्य ने प्रबन्ध नाम एक विशिष्ट साहित्य प्रकार का सूत्रपात जैन वाङ्मय क्षेत्र में किया। उसका अनुकरण करते हुए अनेक प्रबन्ध ग्रथ लिखे गये। इन जैन प्रबन्धो में तीर्थकारादिक प्राचीन धर्मपुरुषों के अतिरिक्त राजामहाराजा, सेठ और मुनियो के सबध में कथा कहानियो का सग्रह मिलता है, जिनमे धर्मतत्त्वोपदेश के साथ मध्यकालीन इतिहास की भरपूर सामग्री मिलती है। ऐसे प्रबन्धो मे उल्लेखनीय कुछ महत्वपूर्ण ग्रथ -

प्रबन्धावलि ले जिनभद्र। ई 14 वीं शती। इसमे 40 गद्य प्रबन्ध हैं जो अधिकाशत गुजरात, राजस्थान, मालवा और वाराणसी से सबधित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओ से सबधित हैं।

प्रभावकचरित ले मेरुतुगसूरि। रचना समय स 136। इसमे वीरसूरि, शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, सूराचार्य, अभयदेवाचार्य, वीरदेवगणि, देवसूरि और हेमचन्द्र सूरि ये आठ सत गुजरात के चालुक्यों के समय अणहिलपाटन मे विद्यमान थे। इन महापुरुषो के साथ भोज भीम (प्रथम) सिद्धराज और कुमारपाल जैसे राजाओ की प्रसंग कथाए दी गयी है। इस कृति में गुजरात से लेकर बगाल तक पूरे उत्तर भारत का पर्यवेक्षण किया है।

कल्पप्रदीप (या विविध तीर्थकल्प) ले जिनप्रभसूरि। इसका कुछ अश जैन महाराष्ट्री भाषा मे लिखा है। 60 कल्पो के इस ग्रंथ मे गुजरात, सौराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मालवा, पजाब, अवध, बिहार महाराष्ट्र, विदर्भ, कर्नाटक और आध्रप्रदेश के तीर्थों के वर्णनों के साथ भरपूर ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। स 1081 मे महमूद गजनी के गुजरात पर आक्रमण किया था। उसका उल्लेख तथा समग्र साहित्य इस ग्रंथ में मिलता है।

प्रबन्धकोश (या चतुर्विंशति प्रबन्ध) ले राजशेखर। गुरु तिलकसूरि। इस ग्रथ की रचना स 1405 में दिल्ली मे हुई। इसमें 10 जैन आचार्यों, 4 कवियों, 7 राजाओं तथा 3 राजमान्य पुरुषों के चरित्रो द्वारा इतिहासोपयोगी भरपूर सामग्री उपलब्ध होती है।

पुरातन प्रबन्धसग्रह ले अज्ञात। इसमे 66 से अधिक प्रबन्धों का सग्रह है। समय ई 15 वीं शती। मुनि जिनविजयजी द्वारा प्रकाशित।

प्रवचनपरीक्षा ले धर्मसागर उपाध्याय। इसमे चावडा, चालुक्य और बघेलो की वशावलिया दी गई हैं।

नाभीनन्दनोद्धार प्रबन्ध (या शत्रुजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध) ले कक्कसूरि। गुरु सिद्धसूरि। ई 15 वी शती। इसमें तुगलक राजवश तथा गुजरात के अतिम महाजन समराशाह के संबध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है।

मुगल शासन के कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की भरपूर जानकारी पद्मसुन्दरकृत पार्श्वनाथ काव्य, रायमल्लाभ्युदय, अकबरशाही शृगारदर्पण में तथा कर्मवशोत्कीर्तन काव्य, हीरसौभाग्य महाकाव्य शान्तिचद्रकृत कृपारसकोश, सिद्धिचद्रकृत भानुचद्रगणिचरित, हेमविजय गणिकृत विजयप्रशस्ति महाकाव्य, श्रीवल्लभ उपाध्यायकृत विजयदेवमाहात्म्य, मेघविजय गणिकृत विजयदेवमाहात्म्य विवरण, दिग्विजय काव्य एव देवानद महाकाव्य इत्यादि जैन काव्यग्रथों मे मुख्य वर्णनीय विषयो के साथ आनुषगिक रीति से प्राप्त होती है जिससे मूल बादशाह के व्यवहार का परिचय मिलता है।

वैदिक वाङ्मय मे "नाराशसी गाथा" अर्थात् प्रसिद्ध वीरों की प्रशसा के सूत्रों का उल्लेख प्रसिद्ध हैं। इन्हीं गाथाओं से वीर नरेश के पराक्रम की घटनाओं का वर्णन करने की परपरा का प्रारभ माना जाता है। इसी काव्यप्रणाली में आलकारिक शैली मे इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों की प्रशस्तिया निर्माण हुई जिनसे भारतीय इतिहास के सयोजन के लिए बहुत सी सामग्री प्राप्त होती है। समुद्रगुप्त के सबध में इलाहाबाद के स्तभपर उत्कीर्ण, हरिषेणकृत प्रशस्ति, मन्दसौर के सूर्यमदिर की वत्सभट्टिकृत प्रशस्ति, गिरनार शिलालेखों के रूप मे प्राप्त रुद्रदामन् की प्रशस्ति एव सिद्धसेन दिवाकरकृत गुणवचन द्वात्रिंशिका नामक चद्रगुप्त (द्वितीय) की प्रशस्ति इत्यादि प्रशस्तिस्वरूप काव्यों का भारत के इतिहास में अत्यत महत्त्व माना गया है। अनेक प्रशस्तियां स्थापत्य से सबद्ध हैं, जिनमें स्थापत्य निर्माता या दाता के वृतान्त के साथ तत्कालीन राजा से सबधित वृतान्त उपलब्ध होता है। स्थापत्य प्रशस्तियों के समान ग्रन्थों के प्रारभ में या अतिम पुष्पिकाओं मे अथवा अध्याय समाप्ति मे जो ग्रथ प्रशस्तिया उपलब्ध होती हैं उनमें महनीय ग्रथकारों के सबध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। प्रशस्तिस्वरूप काव्यों में उदयप्रभ सूरिकृत सुकृतकीर्तिकल्लेल्लिनी, जयसिहसूरिकृत वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति, नरचन्द्र, नरेन्द्रप्रभ, यशोवीर और अरिसिंह ठक्कुर द्वारा लिखित वस्तुपाल की प्रशस्तिया विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार मुनि जिनविजयजी द्वारा सपादित जैनपुस्तक प्रशस्तिसंग्रह, अमृतलाल मगनलाल शाह द्वारा सपादित प्रशस्तिसग्रह (भाग 2), के, भुजबली शास्त्री द्वारा संपादित प्रशस्तिसग्रह, परमानन्द शास्त्री कृत जैनग्रंथ प्रशस्तिसग्रह और कस्तूरचंद्र कासलीवाल द्वारा सपादित प्रशस्तिसग्रह ग्रथ तथा ग्रथकारों की प्रशस्तिया महत्त्वपूर्ण जानकारी की दृष्टि से ऐतिहासिक वाङ्मय में विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुनि दर्शनविजय, मुनि जिनविजय पचकल्याणविजयगणि इत्यादि विद्वानो ने जैनधर्म के सघों की गुरु-शिष्य परंपरा का

परिचय देने वाली "पट्टावलियों" एव "गुर्वावलियो" के सग्रह प्रकाशित किए हैं। इनमें संगृहीत पट्टावली तथा गुर्वावलि से श्वेतांबर तथा दिगंबर सम्प्रदाय के विद्वान आचार्यों की अखडीत परपरा का परिचय प्राप्त होता है। अत. इनका ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है।

ऐतिहासिक नगरों एव तीर्थक्षेत्रों का परिचय पुराणों एव महाकाव्यों में मिलता है। जैन वाङ्मय में इसी विषय पर तीर्थमाल्माएं लिखी गयीं, जिनमें तीर्थक्षेत्रों और उनकी पदयात्रा करने वाले महानुभावो का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार के ऐतिहासिक वाङ्मय में धनेश्वर सूरि (ई-13 वीं शती) कृत शत्रुजय माहात्म्य, मदनकीर्ति कृत शासन-चतुस्त्रिंशिका, जिनप्रभूसरिकृत विविधतीर्थकल्प, महेन्द्रसूरिकृत तीर्थमाला प्रकरण, एवं धर्मघोष कृत तीर्थमालास्तवन, शीलविजयकृत तीर्थमाला, और ज्ञानसागरकृत तीर्थावली इत्यादि उल्लेखनीय हैं। विजयधर्म सूरि ने प्राचीन तीर्थमाला सग्रह प्रकाशित कराया है। प्राचीन जैन आचार्यों में "विज्ञप्तिपत्र" लिखने की पद्धति थी। इनमें कुछ सस्कृत में लिखे गये हैं। इन पत्रो के रूप में विनयविजयकृत इन्दुदूत, विजयामृतसूरिकृत मयूरदूत, मेघविजय कृत ममस्यालेख तथा चेतोदूत जैसे मनोहर खंडाकाव्य मिले हैं। विज्ञप्ति पत्रों में सुन्दरसूरि द्वारा अपने गुरु देवसुन्दरसूरि को लिखा हुआ त्रिदशतरंगिणी, जयसागरगणि ने अपने गुरु जिनभद्रसूरि को लिखा हुआ विज्ञप्ति-त्रिवेणी, विनयाविजय का इन्दुदूत याने उन्होंने अपने गुरु विजयप्रभसूसिर को लिखा हुआ विज्ञप्तिपत्र है। विजयाविजय तथा अन्य विज्ञप्तिपत्र विजयानदसूरि तथा विजयदेव सूरि के प्रति भेजे थे। डॉ हीरानन्द शास्त्री के "एन्शन्ट विज्ञप्ति पत्राज्" नामक सग्रह में 24 विज्ञप्ति पत्रों का परिचय दिया है जिन मे 6 सस्कृत मे है।

प्राचीन काल में शिला, स्तम्भ, ताम्रपट काष्ठपट्टिया, कपड़ा आदि पर राजाओं की बिरुदावलिया, संग्रामविजय, वशपरिचय तथा राजनीतिक शासनपत्र, उत्कीर्ण करने की पद्धति थी। प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए इस प्रकार के "अभिलेख साहित्य" का महत्त्व निर्विवाद माना जाता है।

इस प्रकार के अभिलेखो मे कलिग-नरेश खारवेल का हाथीगुफा शिलालेख (ई पू प्रथम-द्वितीय शती) रविकीर्तिचरित, चालुक्य पुलकेशि द्वितीय का शिलालेख (ई 7 वी शती) कक्कुक का घटियाल प्रस्तलेख (ई 10 वीं शती) हथुडी के धवल राष्ट्रकूट का बीजापुरलेख (ई 10 वी शती) विजयकीर्ति मुनिकृत सिग्र कछवाहा का दुधकुण्ड लेख, (ई 11 वीं शती) जयमगल सूरि विरचित चायिग चाहमान का सुन्धाद्रिलेख, अमोघवर्ष का कोंन्नर शिलालेख, मल्लि-षेण प्रशस्ति, सुदह, मदनूर, कुलनुम्बरु और लक्ष्मेश्वर आदि से प्राप्त लेख सस्कृत भाषीय गद्य तथा पद्य काव्य के अच्छे उदाहरण माने जाते हैं। इस प्रकार के सैकड़ों अभिलेखो का सपादन, प्रकाशन, परीक्षण करने का कार्य जेम्स प्रिन्सेप, जनरल कनिंगहॅम, राजेन्द्रलाल मित्र, ई हुल्श, जे एफ फ्लीट, लुई राईस, गेरिनो, भगवानलाल इन्द्रजी, राखालदास बैनर्जी, काशीप्रसाद जायस्वाल, वेणीमाधव बरुआ, शशिकान्त जैन, डॉ हीरालाल जैन, पद्मभूषण डॉ वा वि मिराशी, विजय मूर्तिशास्त्री, पूरण चन्द्र नाहर, डॉ विद्याधर जोहरापूरकर, डॉ गुलाब चौधरी, इत्यादि विद्वानो द्वारा हुआ है। एपिग्राफिका इडिका, इडियन एण्टिक्वेरी, जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जैन शिलालखसग्रह, जैसी पत्रिकाए एव ग्रथो के विविध खडो मे इन अभिलेखों का प्रकाशन हो चुका है। सस्कृत भाषा के ऐतिहासिक वाङ्मय मे इस प्रकार के साहित्य का, अज्ञात जानकारी को जानने की दृष्टि से, अत्यत महत्त्व है।

प्रकरण - 5
न्याय-वैशेषिक दर्शन

1 "न्याय दर्शन"

भारतीय आस्तिक दर्शनों मे न्यायदर्शन का अग्रस्थान दिया जाता है -

गौतमस्य कणादस्य कपिलस्य पतजले । व्यासस्य जैमिनेश्चापि दर्शनानि षडेव हि।।

इस सुप्रसिद्ध श्लोक म षड्दर्शनों के प्रवर्तकों की गणना मे न्यायशास्त्र के सूत्रकार गौतम का निर्देश सर्वप्रथम किया है। न्यायशास्त्र का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन कहते है -

प्रदीप सर्वविद्यानाम् उपाय मर्वकर्मणाम्। आश्रय सर्वधर्माणा विद्योद्देशे प्रकीर्तिता।।

(यह न्यायविद्या अन्य विद्याओ को प्रकाशित करने वाला प्रदीप है। सारे कर्मों की युक्तायुक्तता जानने का उपाय हे और सभी धर्मों का आश्रय है)। "प्रमाणै अर्थपरीक्षण न्याय" यह न्यायशास्त्र का पथम मूलसूत्र है जिम के आधार पर, परीक्षा करते हुए, उसकी सत्यात्यता निर्धारित करना, इम शास्त्र का प्रयाजन हे। जा विचार न्याय के सिद्धान्तो के अनुसार सिद्ध नहीं होता वह अप्रामाणिक होने से सर्वथा अग्राह्य मानने की बुद्धिवादी विद्वानो की परपरा होने मे, इस शास्त्र का महत्त्व परपरागत अध्ययन की पद्धति मे विशेष माना जाता है। "प्रमाणैरर्थपरीक्षण न्याय" इस व्याख्या के अनुसार न्यायशास्त्र को प्रमाणशास्त्र प्रमाणविद्या, हेतुविद्या भी कहा गया है।

महर्षि गौतम इस शास्त्र के आद्य सूत्रकार है, तथापि इसका अस्तित्व उनसे प्राचीन काल मे भी था। छादोग्य उपनिषद में अनेक शास्त्रों की नामावलि में "वाकोवाक्यम्" नामक शास्त्र का उल्लेख मिलता है। श्री शकराचार्यजी ने "वाकोवाक्य" का अर्थ दिया है तर्कशास्त्र अर्थात् न्यायशास्त्र। इन नामो क अतिरिक्त इस शास्त्र का और एक नाम है, "आन्वीक्षिकी"। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे राजपुरुषो के लिए आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार विद्याओं का अध्ययन आवश्यक बताया है। इन चारो विद्याओं में आन्वीक्षिकी का विशेष महत्त्व बताते हुए अर्थशास्त्रकार कौटिल्य कहते हैं "बलाबले चैतासा हेतुभिरन्वीक्षमाणा आन्वीक्षिकी लोकस्य उपकरोति, व्यसने अभ्युदये च बुद्धिम् अवस्थापयति, प्रज्ञावैशारद्य च करोति"। अर्थात यह आन्वीक्षिकी विद्या, त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थवाणिज्यादि व्यवहार शास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति शास्त्र) इन तीन विद्याओं के बलाबल की परीक्षा करने वाली, सकट में और अभ्युदय काल में बुद्धि को स्थिर रखने वाली और बुद्धि को सतेज करने वाली होने के कारण, विशेष महत्त्व रखती है। कौटिल्य ने न्यायशास्त्र के अर्थ मे ही "आन्वीक्षिकी" शब्द का प्रयोग किया है।

न्यायशास्त्र के विकास मे खण्डन-मण्डन की परम्परा दिखाई देती है। गौतम के न्यायसूत्र से इम शास्त्र का प्रारंभ होता है। इम प्रथम ग्रथ मे ही बौद्ध सिद्धान्तो का खण्डन सूचित करने वाले कुछ सूत्र माने गये है। परतु न्यायसूत्र का बौद्धमत से प्राचीनत्व कुछ विद्वान मानते हैं। उनके मतानुसार, सबसे पूर्व गौतम के अध्यात्म-प्रधान न्यायसूत्र की रचना हुई है। उसके बाद अक्षपाद ने उसका नवीन सस्करण किया और बौद्ध युग मे उनमें कुछ प्रक्षेप और परिवर्धन होकर ही न्यायशास्त्र को वर्तमान स्वरुप प्राप्त हुआ है। न्यायसूत्रकार गौतम का समय ई पू छठी तथा चौथी शताब्दी माना जाने के कारण यह विचार रखा गया। इ पू दूसरी शती मे वात्स्यायन ने न्यायसूत्रो का विस्तृत भाष्य लिखा। इस भाष्य मे प्रतिपादित बौद्ध मत के प्रतिकूल विचारो का खण्डन बौद्धदार्शनिक दिङ्नागाचार्य ने अपने प्रमाण समुच्चय मे किया। वसुबन्धु और नागार्जुन ने भी बौद्धमत विरोधी विचारो का खडन करने का प्रयत्न किया। ई छठी शताब्दी मे उद्योतकराचार्य ने वात्स्यायन के न्यायभाष्य पर न्यायवार्तिक की रचना की। इस मे दिङ्नागादि बौद्ध नैयायिको ने आत्मतत्त्व के विरोध मे जो प्रबल तर्क उपस्थित किये थे, उनका प्रखर खडन उद्योतकराचार्य ने किया। बौद्ध और वैदिक न्यायशास्त्रियो के खण्डन-मण्डन में आत्मा और ईश्वर का अस्तित्व यह प्रमुख विवाद्य विषय था। उद्योतकर द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खडन करने का प्रयास धर्मकीर्ति आदि कुछ बौद्ध पडितों द्वारा हुआ। उनका खण्डन सुप्रसिद्ध भाष्यकार वाचस्पति मिश्र (9 वी शती) ने अपनी न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका में किया। 9 वीं शती में जयंत भट्ट ने न्यायसूत्र पर न्यायमजरी नामक ग्रथ लिखा, जिसमे चार्वाक, बौद्ध, मीमासक और वेदान्तवादी विद्वानों के न्यायविरोधी युक्तिवादों का खण्डन किया है। इसी शताब्दी मे भासर्वज्ञ ने "न्यायसार" नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा। दसवीं शती में उदयनाचार्य ने

"न्यायवार्तिकतात्पर्य-टीका-परिशुद्धि" लिखकर वाचस्पति मिश्र की तात्पर्य-टीका के विरोध में बौद्ध पंडितों द्वारा, प्रस्तुत युक्तियों का खण्डन किया। 9 वीं शती मे बौद्ध दार्शनिक कल्याणरक्षित ने अपनी ईश्वर-भगकारिका में ईश्वरास्तित्व विरोधी अनेक युक्तिवाद प्रस्तुत किये थे। उन सब का खडन उदयनाचार्य ने "कुसुमांजलि" ग्रंथ मे किया। अपने आत्मतत्वविवेक द्वारा उन्होंने, कल्याणरक्षित कृत अन्यापोहविचारकारिका, और श्रुतिपरीक्षा तथा धर्मोत्तराचार्य (ई 9 वी शती) कृत अपोहनाम-प्रकरण एव क्षणभगसिद्धि इन ग्रन्थो में प्रतिपादित नास्तिक विचारों का खंडन किया। इसी कारण उदयनाचार्य का आत्मतत्त्वविवेक ग्रथ "बौद्धधिक्कार" इस वैशिष्ट्यपूर्ण नाम से प्रसिद्ध है। उदयनाचार्य द्वारा बौद्धमतो का पूर्णतया निर्मूलन होने के कारण, न्यायशास्त्र के विकास मे सदियों से चली नैयायिक और बौद्धो की खडन-मण्डन की परंपरा कुण्ठित हुई।

खण्डन-मण्डनात्मक ग्रन्थ लेखन की परपरा अन्य क्षेत्रो में भी दिखाई देती है। प्राचीन काल मे दक्षिण भारत में शैव-वैष्णवों का मतविरोध प्रसिद्ध है। आधुनिक काल मे भी वह वाङ्मयीन क्षेत्र मे जारी है। ई 14 वी शती में हुक्केरी (कर्नाटक) के बसव नायक ने शिवतत्त्व-रत्नाकर नामक ग्रथ लिखा। सगीतगंगाधरकार नजराज (मैसूर निवासी) ने शैव-तत्त्वज्ञान विषयक 18 ग्रन्थ लिखे। त्यागराज मखी (राजशास्त्रिगल) ने शिवाद्वैत विषयक न्यायेन्दुशेखर की रचना की। इन ग्रथो में प्रतिपादित शैवमत के खडनार्थ "रामनाडनिवासी वेंकटेश ने विष्णुतत्त्वनिर्णय (अपर नाम त्रिंशत्श्लोकी) ग्रथ लिख कर वैष्णवमत का मडन किया। उसका खडन करने के हेतु अप्पय्य दीक्षित (18 वी शती) ने विमत-भजनम् ग्रथ लिखा, जिसमें उन्होने त्यागराजमखी के शिवाद्वैत मत का समर्थन किया। किसी रामशास्त्री ने नवकोटी नामक ग्रथ में शैवसिद्धान्त का मडन किया, उसका खडन अण्णगराचार्य शेष ने "दशकोटी" नामक ग्रथ द्वारा किया। किसी महादेव पडित ने प्रपचामृतसार नामक ग्रथ मे रामानुज एव माधव मत का खडन करते हुए अद्वैत मत का प्रतिपादन किया। कदाड अप्पकोंडाचार्य ने अद्वैतविरोधी तथा वैष्णव विशिष्टाद्वैतवादी साठ ग्रथ लिखे। चम्पकेश्वर ने शाकर और माध्व मत के विरोधी "वादार्थमाला" नामक ग्रथ की रचना की। वेदान्तदेशिक कृत शतदूषणी के खडनार्थ आन्दान श्रीनिवास ने "सहस्रकिरणी" की रचना की। प्रस्थानत्रयी के सुप्रसिद्ध भाष्यकार आचार्यों के भाष्य ग्रन्थो मे यह खण्डन-मण्डन की प्रणाली दिखाई देती है, जिसका अनुकरण उपरिनिर्दिष्ट शैव-वैष्णवो के ग्रथो मे हुआ है। इस प्रणाली का मूल न्यायशास्त्र के इतिहास में मिलता है। अस्तु!!

अक्षपाद गौतम (या गोतम) के न्यायसूत्र पर ई. 17 वीं शती में कुछ उल्लेखनीय टीका ग्रथ लिखे गये -

लेखक	टीकाग्रंथ
रामचन्द्र	न्यायरहस्यम्।
विश्वनाथ	न्यायसूत्रवृत्ति।
गोविन्द शर्मा	न्यायसंक्षेप।
जयराम	न्यायसिद्धान्तमाला।

न्यायदर्शन मे नव्यन्याय की प्रणाली का प्रारभ होने पर लिखी जाने के कारण इन टीकाओं का विशेष महत्त्व माना जाता है।

2 "नव्यन्याय"

ई 12 वी शताब्दी तक सूत्र-भाष्य पद्धति मे न्यायशास्त्र का अध्ययन करने की परपरा चलती रही। परतु 12 वीं शताब्दी के महान् नैयायिक गगेशोपाध्याय के तत्त्वचिन्तामणि नामक चतु:खडात्मक महनीय ग्रथ के कारण यह गतानुगतिक पद्धति समाप्त सी हो गयी। तत्त्वचिन्तामणि मे, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन न्यायशास्त्रोक्त चार प्रमाणो पर प्रत्येकश एक खड लिखा गया है। गौतम के न्यायसूत्र से लेकर आत्मा, पुनर्जन्म, मोक्ष जैसे आध्यात्मिक विषयो की विस्तारपूर्वक चर्चा करने की जो पद्धति न्यायशास्त्र मे रुढ हुई थी, वह गगेशोपाध्याय के ग्रंथ के कारण बद हुई। आध्यात्मिकशास्त्र से अब न्यायशास्त्र पृथक् सा हो गया और "नव्यन्याय" का उदय हुआ। तत्त्वचिन्तामणि का प्रचार बगाल, तमिलनाडू, महाराष्ट्र, काश्मीर जैसे दूरवर्ती प्रदेशो में भी हुआ। गगेश के पुत्र वर्धमान ने तत्त्वचिन्तामणि पर प्रकाश नामक टीका लिखी। 13 वीं शती में पक्षधर मिश्र ने तत्त्वचिन्तामणि पर आलोक नामक टीका लिखी। 14 वीं शती में नवद्वीप (बगाल) के श्रेष्ठ नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि ने तत्त्वचिन्तामणि पर दीधिति नामक वैशिष्ट्यपूर्ण टीका लिखी, जिसमें उन्होंने अपने निजी अभिनव सिद्धान्तों की स्थापना की है। यह टीका मुख्यत अनुमानखंड और शब्दखड पर ही है। रघुनाथ शिरोमणि के श्रेष्ठ शिष्य मथुरानाथ तर्कवागीश ने तत्त्वचिन्तामणि के चारो खडों पर और उसकी दीधिति टीका एव आलोक टीका पर गूढार्थप्रकाशिनी-रहस्य नामक टीका लिखी। ई 17 वीं शती में जगदीश भट्टाचार्य ने अनुमान खड की दीधिति पर "जागदीशी" नामक सविस्तर टीका लिखी। इसके अतिरिक्त तर्कामृत और शब्दशक्तिप्रकाशिका नामक दो श्रेष्ठ ग्रंथ जगदीश भट्टाचार्य ने लिखे हैं। नैयायिकों की इस महनीय परपरा में गदाधर भट्टाचार्य (ई 17 वीं शती) अंतिम श्रेष्ठ पडित माने जाते हैं। इनकी गादाधरी (दीधिति की टीका) तथा मूल गादाधरी (आत्मतत्त्वविवेक

एवं तत्त्वचिन्तामणि के कुछ अंश की टीका) उनकी वैशिष्ट्यपूर्ण क्लिष्ट शैली के कारण प्रसिद्ध है। **गदाधर भट्टाचार्य ने लिखे हुए न्यायशास्त्र** विषयक ग्रंथो की कुलसंख्या 52 है, जिनमे व्युत्पत्तिवाद और शक्तिवाद विशेष प्रसिद्ध हैं।

उपनिर्दिष्ट प्रौढ पांडित्यपूर्ण टीकात्मक ग्रंथों के कारण न्यायशास्त्र में जो दुर्बोधता निर्माण हुई थी, उससे मुक्त कुछ **सुबोध ग्रंथ** लिखे गये, जिनमें विश्वनाथ न्यायपंचानन कृत भाषापरिच्छेद, केशव मिश्र कृत तर्कभाषा, और अन्नंभट्ट कृत **तर्कसंग्रह सर्वत्र प्रचलित हैं**। तर्कसंग्रह पर रुद्रराम, नीलकण्ठ, महादेव पुणतामकर आदि की टीकाएं प्रसिद्ध है। केशवमिश्रकृत **तर्कभाषापर** 14 **टीकाएँ** लिखी गयी है, जिनमें नागेशकृत युक्तिमुक्तावली विश्वकर्मकृत न्यायप्रदीप जैसी कुछ लोकप्रिय हैं।

डॉ सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने अपने "हिस्ट्री ऑफ् इंडियन लॉजिक" नामक ग्रंथ मे अर्वाचीन काल के कुछ **प्रसिद्ध नैयायिको** के ग्रन्थो का परामर्श किया है, जिनमें 17-18 वी शताब्दी के लेखको मे हरिराम तर्कसिद्धान्त, कृष्णानन्द **वाचस्पति**, जगन्नाथ तर्कपंचानन, राधामोहन गोस्वामी, कृष्णकान्त, हरिराम, गंगाराम जडी (जगदीश कृत तर्कामृत के टीकाकार), कृष्णभट्ट आर्डे (गादाधारी के टीकाकार) रामनारायण, रामनाथ इत्यादि विद्वानो के नाम उल्लेखनीय है। 19 और 20 वीं शताब्दी में भी यह परंपरा शंकर, शिवनाथ, कृष्णनाथ, श्रीराम माधव, हरमोहन, प्रसन्नतर्करत्न, राखालदास न्यायरत्न, कैलाशचन्द्र शिरोमणि, सीतारामशास्त्री, धर्मदत्त, बच्चा झा, वामाचरण भट्टाचार्य, बालकृष्ण मिश्र, शंकर तर्करत्न, इत्यादि प्रख्यात नैयायिको ने अखंडित रखी है। गंगेशोपाध्याय से लेकर प्राचीन न्याय की परंपरा खंडित होकर नव्यन्याय का प्रारंभ हुआ, जिसका आधारभूत ग्रंथ तत्त्वचिन्तामणि करीब 300 पृष्ठों का है परन्तु उस पर लिखे गये भाष्यात्मक ग्रंथो की पृष्ठसंख्या दस लाख से अधिक मानी जाती है। ई पू चौथी शती से ई 17 वीं शती तक के प्रदीर्घ कालखंड मे न्यायशास्त्र पर लिखे गये प्रमुख ग्रंथों की संख्या 20 या 25 से अधिक नही परन्तु उनमें चर्चित विचारों मे जो सूक्ष्मता और गहनता है, वह सर्वथा आश्चर्यकारक है। भारतीय विचारों की व्यापकता रामायण-महाभारत और भागवत मे मिलती है। उनकी सूक्ष्मता और गहनता न्यायशास्त्र के प्रमुख ग्रंथों मे दीखती है। गंगेशोपाध्याय (ई 13 वी शती) से प्रवर्तित नव्यन्याय की परंपरा 16 वी शती तक मिथिला में प्रभावी थी। मिथिला के पंडित वहाँ के न्याय ग्रंथों को अपने क्षेत्र के बाहर नही जाने देते थे। 14 वी शती मे बंगाल के सुप्रसिद्ध नैयायिक वासुदेव सार्वभौम ने जयदेव (या पक्षधर) मिश्र के पास अध्ययन करते हुए तत्त्वचिन्तामणि और न्याय-कुसुमांजलि ये दो ग्रंथ कंठस्थ किये और काशी मे रह कर उनका लेखन किया। बाद में नवद्वीप में लौटकर न्यायशास्त्र के अध्ययन के लिए अपने निजी विद्यापीठ की स्थापना की। तब से न्यायशास्त्र की मैथिल शाखा खंडित होकर, नवद्वीप शाखा प्रचलित हुई। 16 वी शती में इस शाखा के अनेक प्रसिद्ध नैयायिको ने पांडित्यपूर्ण ग्रंथों की रचना की। यथा

रघुनाथ शिरोमणि (वासुदेव सार्वभौम के शिष्य) 16-17 वी शती।। ग्रंथ - तत्त्वचिंतामणिदीधिति, बौद्धधिक्कार, शिरोमणि, पदार्थतत्त्वनिरूपण, किरणावलि-प्रकाशदीपिका न्यायलीलावती, प्रकाशदीधिति, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति, खण्डनखण्डखाद्यदीधिति, आख्यातवाद नञ्वाद (कुल 9 ग्रंथ)।

हरिदास न्यायालंकार भट्टाचार्य (वासुदेव सार्वभौम के शिष्य) - 16-17 वीं शती। ग्रंथ - न्यायकुसुमांजलि-कारिका-व्याख्या तत्वचिन्तामणि प्रकाश, भाष्यालोकटिप्पणी।

जानकीनाथ शर्मा 16-17 वी शती। ग्रंथ - न्यायसिद्धान्तमंजरी।

कणादतर्कवागीश : 17 वी शती। ग्रन्थ - मणिव्याख्या, भाषारत्न, अपशब्दखंडन।

रामकृष्ण भट्टाचार्य चक्रवर्ती (रघुनाथ शिरोमणि के पुत्र) 17 वीं शती। ग्रन्थ - गुणशिरोमणि-प्रकाश, न्यायदीपिका।

मथुरानाथ तर्कवागीश : (रघुनाथ के पुत्र) 17 वी शती। इनके द्वारा लिखित कुल 10 ग्रन्थो मे आयुर्वेदभावना के अतिरिक्त अन्य सारे ग्रंथ न्यायशास्त्र विषयक है - तत्वचिन्तामणिरहस्य, तत्वचिन्तामणि-अलोकरहस्य, दीधितिरहस्य, सिद्धान्तरहस्त, किरणावलिप्रकाश-रहस्य, न्यायलीलावतीरहस्य, बौद्धधिक्काररहस्य और क्रियाविवेक आदि।

कृष्णदास सार्वभौम भट्टाचार्य : 17 वीं शती। ग्रंथ - तत्त्वचिन्तामणिदीधिति-प्रसारिणी, अनुमानालोकप्रसारिणी।

गुणानन्द विद्यावागीश : 17 वी शती। ग्रंथ - अनुमान-दीधिति-विवेक, आत्मतत्त्वविवेक-दीधितिटीका, गुणविवृत्तिविवेक, न्यायकुसुमांजलि-विवेक, न्यायलीलावती-प्रकाश-दीधिति-विवेक और शब्दालोकविवेक। कुल 6 ग्रंथ।

रामभद्रसार्वभौम : 17 वी शती। ग्रंथ - दीधितिटीका, न्यायरहस्य, गुणरहस्य, न्यायकुसुमांजलि-कारिका-व्याख्या, पदार्थविवेक-प्रकाश, षट्चक्रकर्म-दीपिका। (कुल 6 ग्रंथ।)

जगदीश तर्कालंकार 17 वीं शती। ग्रंथ- तत्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रकाशिका (जागदीशी नाम से प्रसिद्ध), तत्त्वचिन्तामणि-मयूख, न्यायादर्श (न्यायसारावलि) शब्दशक्तिप्रकाशिका, तर्कामृत, पदार्थ-तत्वनिर्णय, न्यायलीलावती-दीधिति-व्याख्या। (कुल 7 ग्रंथ।)

रुद्रन्यायवाचस्पति 17 वी शती। ग्रंथ - तत्त्वचिन्तामणि दीधिति-परीक्षा।

भवनानन्द सिद्धान्त वागीश : 17 वी शती। ग्रंथ - तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रकाशिका, प्रत्यगालोकसार-मंजरी, तत्त्वचिन्ताटीका और कारक-विवेचन (व्याकरण)।

हरिराम तर्कवागीश : 17 वीं शती। ग्रथ - तत्त्वचिन्तामणि-टीका-विचार, आचार्यमतरहस्य-विचार, रत्नकोष-विचार और स्वप्रकाश-रहस्य-विचार।

रामभद्र सिद्धान्तवागीश . 17 वीं शती। ग्रथ - सुबोधिनी (शब्दशक्तिप्रकाशिका-टीका)

गोविन्दन्यायवागीश : 17 वीं शती। न्यायसक्षेप, पदार्थखंडन-व्याख्या, समासवाद।

रघुदेव न्यायालंकार : 17 वीं शती। ग्रन्थ - गूढार्थदीपिका, नवीन-निर्माण, दीधिति-टीका, न्यायकुसुमाजलि-कारिका-व्याख्या, द्रव्यसारसंग्रह, पदार्थखडन-व्याख्या।

गदाधर भट्टाचार्य : 17 वीं शती। ग्रन्थ - तत्त्वचिन्तामणि दीधिति-प्रकाशिका, तत्त्वचितामणिव्याख्या, तत्त्वचितामणि आलोकटीका, मुक्तावली-टीका, रत्नकोषवाद-रहस्य, अनुमान-चिन्तामणि-दीधिति-टीका, आख्यात-वाद, कारकवाद, नञ्वाद, प्रामाण्यवाद-दीधितिटीका, शब्दप्रमाण्यवादरहस्य, बुद्धिवाद, युक्तिवाद, विधि-वाद, विषयतावाद, व्युत्पत्ति-वाद, शक्तिवाद और स्मृतिसंस्कारवाद। कुल 18 ग्रथ)।

विश्वनाथ सिद्धान्तपंचानन : 17 वीं शती। ग्रन्थ - अलकारपरिष्कार, नञ्वादटीका, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वालोक, न्यायतन्त्रबोधिनी, भाषापरिच्छेद और सुबर्थप्रकाश तथा पिंगलप्रकाश।

नृसिंह पंचानन : 17 वीं शती। ग्रन्थ - न्यायसिद्धान्तमजरी-भूषा।

श्रीकृष्ण न्यायालंकार :17 वीं शती। ग्रन्थ - भावदीपिका (न्यायसिद्धान्तमजरी-टीका)।

राजचूडामणि मखी · 17 वो शती। ग्रथ - तत्त्वचिन्तामणि-दर्पण।

धर्मराजाध्वरीण · 17 वीं शती। ग्रथ-तत्वचिन्तामणि-प्रकाशिका।

गोपीनाथ मौनी : 17 वी शती। ग्रथ - शब्दालोकरहस्य, उज्ज्वला (तर्कभाषाटीका), पदार्थविवक।

रामरुद्र तर्कवागीश · 17-18 वी शती। ग्रथ - तत्त्वचिन्तामणि दीधिति टीका, व्याप्तिवाद-व्याख्या, दिनकरीय-प्रकाशतरगिणी, सिद्धान्तमुक्तावली-टीका और कारकनिर्णय-टीका।

जयराम तर्कालंकार : 17-18 वी शती। ग्रथ - शक्तिवाद-टीका।

जयराम न्यायपंचानन . 17-18 वी शती। ग्रथ - तत्त्वाचिन्तामणि-दीपिका गूढार्थविद्योतन, तत्त्वचितामणि-आलोकविवेक, न्यायसिद्धान्तमाला, गुणदीधितिविवृत्ति, न्यायकुसुमाजलिकारिका व्याख्या, पदार्थमणिमाला और काव्यप्रकाश-तिलक (कुल 9 ग्रथ)।

गौरीकान्तसार्वभौम : 18 वी शती। ग्रथ - भावार्थदीपिका (तर्कभाषा की टीका), सद्युक्तिमुक्तावलि, आनन्दलहरीवटी और विदग्धमुखामण्डनवाटिका।

रुद्रराम · 18 वी शती। ग्रन्थ - वादपरिच्छेद, व्याख्या - व्यूह, चित्तरूप, अधिकरणचन्द्रिका और वैशेषिक-शास्त्रीय-पदार्थ-निरुपण।

कृष्णकान्त विद्यावागीश 18 वी शती। ग्रथ - न्यायरत्नावली, उपमानचिन्तामणि-टीका, शब्दशक्ति प्रकाशिका इत्यादि।

कृष्णभट्ट आर्डे : 18 वी शती। ग्रन्थ - गादाधरी-कर्णिका।

महादेव उत्तमकर : 18 वीं शती। ग्रन्थ - व्याप्तिरहस्य-टीका।

रघुनाथशास्त्री : 18 वी शती। ग्रथ - गादाधरी-पचवाद-टीका।

3 "न्यायशास्त्र का ज्ञेय"

"ऋते ज्ञानान् न मुक्ति" (ज्ञान बिना मुक्ति नहीं) यह भारतीय दार्शनिको का सर्वमान्य परम श्रेष्ठ सिद्धान्त है। परतु पारमार्थिक ज्ञान के ज्ञेय के विषय मे तथा ज्ञातव्य वस्तु के स्वरूप में सभी दार्शनिको में मार्मिक मतभेद हैं। न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितडा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, इन 16 पदार्थों के यथार्थज्ञान से नि श्रेयम की प्राप्ति होती है। शुद्धज्ञान की प्राप्ति के विविध साधनो का सूक्ष्म विचार यही न्यायशास्त्र का योगदान है और इसी कारण अन्य शास्त्रों ने न्यायशास्त्र द्वारा प्रस्तुत प्रमाणविचार एव हेत्वाभास विचार स्वीकृत किया हैं। वैदिक न्यायशास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण माने हैं, इसका कारण प्रमाण (याने यथार्थनुभव) के भी चार प्रकार होते हैं। न्यायशास्त्र के अनुसार प्रमेय में आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल दुःख और अपवर्ग (या मोक्ष) इन 12 आध्यात्मिक विषयो का अन्तर्भाव होता है। नैयायिकों के अनुसार आत्मा का स्वरूप विभु, नित्य और प्रतिशरीर भिन्न है।

अन्य पदार्थों में संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क आदि 14 पदार्थों का महत्त्व केवल शास्त्रार्थ या वाद-विवाद की दृष्टि से ही है। किसी पदार्थ के वास्तव स्वरूप के संबध में स्वमत-विरोधी व्यक्ति से "भवति न भवति" करते हुए दोषान्वेषण करने का मार्मिक मार्गदर्शन. इन 14 पदार्थों के विवेचन में नैयायिकों ने दिया है। अनुमान में पचावव्ययी वाक्य के द्वारा अनुमेय विषय की सिद्धि की जाती है। इन पांच अवयवों के नाम है प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, उपनय और निगमन। जैसे पर्वतशिखर पर अग्नि का अस्तित्व सिद्ध करते हुए -

प्रतिज्ञा . पर्वतोऽयं वह्निमान्। हेतु-धूमवत्वात्।

उदाहरण यथा महानस (रसोई घर)। इस प्रकार प्रतिज्ञा हेतु और उदाहरण (या दृष्टान्त) बताने पर पक्ष (पर्वत) पर लिंगोपसंहार और साध्योपसंहार करने वाले वाक्यों द्वारा समाधान किया जाता है। "वह्निव्याप्य-धूमवान च अयं पर्वत" (अग्नि से नित्य साहचर्य रखने वाला धूम से यह पर्वत युक्त है)" तस्मात् अयं पर्वत वह्निमान्। (इस कारण यह पर्वत वह्नियुक्त है (इस पर्वत पर आग लगी है।) इस प्रकार के उपसंहारात्मक वाक्यों को उपनयन और निगमन कहते हैं।

अनुमान का यह पचावयवित्व भारतीय तर्कपद्धति का वैशिष्ट्य है। पाश्चात्यों की तर्कपद्धति में अनुमान के तीन ही अवयव होते हैं। अनुमान के संबध में एक मार्मिक सूचना है कि, जब किसी पदार्थ के संबध में साधक और प्रमाण उपलब्ध नहीं होने के कारण संदेह निर्माण होता है तब ही पचावयवी वाक्यों के द्वारा साध्यसिद्धि करनी चाहिए। शशशृंग या वन्ध्यापुत्र का अस्तित्व अनुमान का विषय नहीं होता। अथवा रसोईघर में जहाँ अग्नि और धूम दोनों प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, वहाँ अग्नि का अस्तित्व, अनुमान का विषय नहीं होता। इस संबध में न्यायसूत्र के भाष्यकार उदयनाचार्य स्पष्ट कहते हैं कि, "न अनुपलब्धे न निर्णीते अर्थे न्यायः प्रवर्तते किन्तु संदिग्धे" अर्थात् अनुपलब्ध एवं निर्णयप्राप्त विषय में अनुमान का अवलंब नहीं होता। संदिग्ध विषय में ही अनुमान किया जाता है।

"हेत्वाभास"

पचावयवी अनुमान में दूसरे वाक्य याने हेतुवाक्य का विशेष महत्त्व होता है। इस हेतुवाक्य में पक्षसत्त्व, सपक्ष-सत्त्व विपक्ष-असत्त्व, असत्प्रतिपक्षत्व और अबाधित-विषयत्व इन पांच गुणों की आवश्यकता होती है। "पर्वतो वह्निमान्" यह प्रतिज्ञा सिद्ध करने के लिये बताया हुआ "वह्निमत्त्वात्" यह हेतुवाक्य इन पांचों गुणों से सम्पन्न है। कभी कभी विवाद के आवेश में वितंडवादी कुतार्किकों के हेतुवाक्य में हेत्वाभास होता है। हेत्वाभास का लक्षण है "हेतुवद् भासमाना ये हेतुलक्षणवर्जिता" अर्थात् जिन में हेतु का आभास होता है परंतु हेतु का लक्षण नहीं होता ऐसे सदोष वाक्य। हेत्वाभास के कारण अज्ञानी जनता का बुद्धिभेद होता है, अतः उनका यथार्थ ज्ञान प्रत्येक विवेकनिष्ठ व्यक्ति को होना अत्यावश्यक है। नैयायिकों ने हेत्वाभास का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उसके असिद्ध, विरुद्ध अनैकान्तिक, प्रकरणसम और कालात्ययापदिष्ट नामक पांच भेद बताये हैं। इन पांच भेदों के भी अवान्तर उपभेद होते हैं। विरुद्ध, प्रकरणसम और कालात्ययापदिष्ट इन तीनों के उपभेदों के जो उदाहरण न्यायशास्त्र में दिये हैं, उन्हें देखते हुए यह दिखाई देता है, कि वादविवाद के आवेश में किस प्रकार की गडबडी होती है। जैसे, पर्वतो वह्निमान्। धूमवत्त्वात्। इस प्रसिद्ध अनुमान वाक्य में "यो यो धूमवान् स स वह्निमान्" (जहां जहां धुआं होता है वहां वहां आग होती है।)। इस व्याप्ति को ध्यान में लेकर, उसी के आधारपर, किसी सरोवर पर बाहर कहीं से आया हुआ धुआं देखकर, "सरोवरोऽयं वह्निमान्। धूमवत्त्वात् इस प्रकार का तर्क किसी ने उपस्थित किया तो उसे ग्राह्य नहीं माना जाता। इसका कारण है कि, इस उदाहरण में दिया हुआ हेतु (धूमवत्त्वात्) सद्हेतु नहीं है। वह असद् हेतु अर्थात् हेत्वाभास है। इस हेतु में उपरनिर्दिष्ट असिद्धता (अर्थात स्वरूपासिद्धता) नामक दोष विद्यमान है।

न्यायशास्त्र में हेत्वाभास के स्पष्टीकरण के निमित्त उदाहरण दिये गये हैं 1) गगनारविन्द सुरभि। अरविन्दत्वात्। सरोजारविन्दवत् 2) पृथिव्यादयः चत्वार परमाणवः नित्याः । गन्धवत्वात्। 3) शब्दो नित्यो, द्रव्यत्वे सति अस्पर्शत्वात्। ४) स श्यामो। मत्रीतनयत्वात्। 5) शब्दो नित्य । प्रमेयत्वात् 6) शब्दो नित्य कृतकत्वात्। 7) भूमि नित्या। गन्धवत्वात्। 8) शब्दो अनित्य । नित्यधर्मानुपलब्ध । 9) परमाणु अनित्य । मूर्तत्वात्। घटवत् इत्यादि। इस प्रकार के हेत्वाभास के उदाहरणों में बताये गये हेतुवाक्यों में विद्यमान सदोषता का विवेचन अत्यंत मार्मिक एवं उद्बोधक है। अपने अपने प्रतिपक्षी के प्रतिपादन में संभाव्य सदोषता का यथार्थ आकलन होने के लिए प्रत्येक बुद्धिवादी को न्यायशास्त्रोक्त इन हेत्वाभासों का सम्यक् ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। कुछ शास्त्रकारों ने केवलव्यतिरेकी हेतु के लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव नामक तीन दोषों का निर्देश किया है। नैयायिकों के अनुसार उनका अन्तर्भाव पचविध हेत्वाभासों के अन्तर्गत होता है।

शास्त्रार्थ या वादविवाद में जिन दोषों के कारण वादी या प्रतिवादी का पराभव होता है उन्हें 1) छल 2) जाति और 3) निग्रहस्थान कहते हैं। वक्ता के वाक्य में जो मूलभूत अभिप्राय होता है, उस का जान बूझ कर विपर्यास कर, उसे दोषी

ठहराना "छल" (वाक्छल या शब्दच्छल) कहा गया है। जैसे "नवकम्बलोऽय देवदत्त ।" (देवदत्त के पास नया कबल है) ऐसे वक्ता द्वारा कहा जाने पर, (नव शब्द के नौ और नया दो अर्थ होते है इस कारण, नव शब्द पर श्लेष करते हुए, "न हि अस्य कम्बलद्वयम् अपि सम्भाव्यते, कुतो नव" (इस के पास दो कम्बल भी नही है, तो नव (याने नौ) कंबल कहा से हो सकते हैं) इस प्रकार वक्ता के अभिप्राय का विपर्यास कुतार्किक करते है।

वक्ता के द्वारा दिये हुए उदाहरण से किसी अलग ही विषय का साधर्म्य या वैधर्म्य बता कर, उसके मुख्य अभिप्राय का विपर्यास जहाँ होता है, उस विवाद को "जाति" कहते हैं। जाति के प्रकार -

साधर्म्यसम, वैधर्म्यसम, उत्कर्षसम, अपकर्षसम, वर्ण्यसम, अवर्ण्यसम, विकल्पसम, साध्यसम, प्राप्तिसम, अप्राप्तिसम, दृष्टान्त प्रतिदृष्टान्तसम, अनुत्पत्तिसम, सशयसम, प्रकरणसम, अहेतुसम, अर्थापत्तिसम, अविशेषसम, उपपत्तिसम, उपलब्धिसम, अनित्यसम, नित्यसम, और कार्यसम (कुल-24)।

"स्वव्याघातकम् उत्तरं जाति" अर्थात प्रति-पक्षी का दोष दिखाने के लिये दिये हुए उत्तर में "जाति"- नामक दोष उत्पन्न होता है। निग्रहस्थान का अर्थ है वाद मे पराजय होने का स्थान। जिस के कारण वक्ता का सभ्रम या अज्ञान व्यक्त होता है उस प्रकार के दोष को- "निग्रहस्थान" कहते है। विवाद मे 22 प्रकार के निग्रहस्थान होने की सभावना मानी गई है जिनके नाम हैं प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध प्रतिज्ञासन्यास, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल (याने पचावयवी वाक्यो का क्रमत्याग) न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण, अज्ञान अप्रतिभा, विक्षेप और मतानुज्ञा।

इस प्रकार न्यायशास्त्र मे प्रमाण, प्रमेय इत्यादि विषयो का प्रतिपादन हुआ है। सत्य-असत्य का निर्दोष निर्णय करने का ज्ञान इस शास्त्र के द्वारा तत्त्वजिज्ञासुओ को अतिप्राचीन काल से ही इस शास्त्र के द्वारा दिये जाने के कारण एक सुभाषितकारने इस शास्त्र की प्रशसा मे कहा है कि -

मोह रुणद्धि विमलीकुरुते च बुद्धि दत्ते च सस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।

शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यतया युनक्ति तर्कश्रमो न तनुते कमिहोपकारम्।।

भावार्थ. तर्कशास्त्र या न्यायशास्त्र का परिश्रमपूर्वक अध्ययन करने से बुद्धि का मोह नष्ट होकर वह निर्मल होती है। सस्कार शुद्ध शब्दो का व्यवहार करने की शक्ति प्राप्त होती हैं। अन्य शास्त्रो के अध्ययन करने की योग्यता प्राप्त होती है। और भी अनेक प्रकार के बौद्धिक गुण प्राप्त होते हैं।

4 "बौद्ध न्याय"

न्यायशास्त्र मे अवैदिक विद्वानो का भी योगदान उल्लेखनीय है। बौद्धो का न्यायविचार हीनयान के वैभाषिक एव सौत्रान्तिक सप्रदायो मे तथा महायान के योगाचार और माध्यमिक सप्रदायो मे विभाजित है। वैभाषिक न्याय मे पदार्थ के दो भेद (विषय और विषयी) माने है। विषयी के अन्तर्गत रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान नामक पाच स्कन्ध तथा बारा आयतन (छ ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके छ विषय मिला कर) तीन धातु (इन्द्रिय, विषय और विज्ञान), इन 20 तत्त्वों का अन्तर्भाव होता है। विषय के अन्तर्गत रूपधर्म, चित्तधर्म, चैत्तधर्म और रूप-चित्त-विप्रयुक्त धर्म इन चार हेतुप्रत्ययजन्य धर्मों का समावेश होता है। जगत् का स्वरूप त्रैधातुक सस्कृत असस्कृत धर्मो का समष्टिरूप, प्रत्यक्षवेद्य एव क्षणभगुर है। अर्हत् पद की प्राप्ति तथा निर्वाण, मानव जीवन का प्राप्तव्य है।

सौत्रान्तिक न्याय मे ज्ञान को प्रत्यक्ष और ज्ञेय को अतीन्द्रिय अर्थात् ज्ञानानुमेय माना है, जब कि वैभाषिक न्याय मे ज्ञान और ज्ञेय दोनो को प्रत्यक्ष मानते है।

योगाचार न्याय मे विज्ञान एकमात्र वस्तु मानी जाती है। विज्ञान के दो भेद है- (1) प्रवृत्ति-विज्ञान और (2) आलय-विज्ञान। ये दोनो विज्ञान स्वप्रकाश होते हुए क्षणिक है। जगत् को स्वतत्र सत्ता नही, वह विज्ञान का विवर्त है।

माध्यमिक न्याय के अनुसार ज्ञान और ज्ञेय दोनो कल्पित हैं। शून्य ही पारमार्थिक सत्य है। यह जगत् शून्य का ही विवर्त है।

इस प्रकार बौद्ध न्याय के चार भेद होते हुए भी उनमे कुछ तत्त्व समान है। जैसे दो प्रमाण- (1) प्रत्यक्ष और (2) अनुमान, दो प्रत्यक्ष- (1) सविकल्पक और (2) निर्विकल्पक।

व्याप्ति- जिन पदार्थो मे कार्यकारण सबध या तादात्म्य सबध होता है उन्ही में व्याप्यव्यापक भाव सर्वमान्य है।

न्याय के दो अवयव- उदाहरण और उपनय।

सत्ता :- स्थिर पदार्थ, की सत्ता सभी को अमान्य है। अर्थक्रियाकारित्व ही सत्ता का लक्षण माना है।

हेतु :- जिसमें पक्षसत्व, सपक्षसत्व और विपक्ष-असत्व है वही सद्‌हेतु अन्यथा असद्‌हेतु होता है।

हेत्वाभास :- विरुद्ध, असिद्ध और व्यभिचारी तीन ही माने हैं।

वाद, जल्प और वितडा इन तीन कथा-भेदों में, केवल वाद ही ग्राह्य है। जल्प और वितडा अग्राह्य है।

बौद्ध न्याय का विकास सस्कृत, पाली और मागधी भाषाओ मे हुआ है। आर्यदेव नागार्जुन, मैत्रेयनाथ, असग वसुबधु, दिङ्गनाग, धर्मकीर्ति, चद्रकीर्ति, शातरक्षित इत्यादि विद्वानो के ग्रथो मे बौद्ध न्याय का प्रतिपादन हुआ है।

5 ''जैनन्याय''

जैन न्याय में श्वेताबर और दिगबर इन दो प्रधान सम्प्रदायो के भेद है परतु दोनो ने अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को महत्त्व दिया है। जैन न्याय का यह प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी पदार्थ का एकान्त दृष्टि से विचार न करते हुए सर्वसमन्वयात्मक दृष्टि से विचार करना योग्य माना जाता है। प्रत्येक पदार्थ मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीन अवस्थाएं होती है। उसमे एक ही समय मे नित्यानित्यात्मकता तथा सात भिन्न भिन्न धर्म रहते है, जिनको जैन न्याय की परिभाषा मे ''सप्तभगी नय'' कहते है। इस नय अनुसार पदार्थ मे मिलने वाले सात धर्म - (1) नित्य, (2) अनित्य, (3) अवक्तव्य, (4) नित्यानित्य, (5) नित्यअवक्तव्य, (6) अनित्य अवक्तव्य और (7) नित्यानित्य अवक्तव्य। इन सात धर्मों के अनुसार पदार्थ का स्वरूप जानने के सप्तभगीनय के सात प्रकार हैं, जिसे ''स्याद्वाद'' कहते है। जैन दर्शन के सभी सिद्धान्तो मे स्याद्वाद का सिद्धान्त अत्यत महत्त्वपूर्ण है। कोई भी पदार्थ स्वरूपत सत् और पररूपत असत् होता है। वह मृत्तिका सुवर्ण इत्यादि उपादान कारण के रूप मे नित्य और घट- कटक आदि कार्य के रूप मे अनित्य होती है यह सार्वत्रिक अनुभव ''स्याद्वाद'' का आधार है। किसी भी पदार्थ के स्वरूप को उपपत्ति स्याद्वाद के बिना नही हो सकती। इसी कारण हरिभद्र सूरि अपने अनेकान्त-जयपताका मे कहते हैं कि सारे पदार्थ 'स्याद्वाद-मुद्रांकित'' है।

जैन न्याय मे प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रमाण माने है। पदार्थ का स्पष्ट रूप से ग्रहण जिसके कारण होता है वह प्रत्यक्ष और अस्पष्ट रूप मे ग्रहण करने वाला परोक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष के दो भेद- (1) साव्यावहारिक और (2) पारमार्थिक। पहले में मन इन्द्रियाँ आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता होती है किन्तु दूसरा प्रत्यक्ष केवल आत्मशक्ति से होता है।

परोक्ष के दो भेद (1) अनुमान (2) शब्द। कथा, छल, जाति निग्रहस्थान न्यायवाक्य, सद्हेतु, हेत्वाभास इन न्याय के विषयो को जैन न्याय मे भी स्वीकृत किया है। सिद्धसेन दिवाकर, समतभद्र हरिभद्रसूरि अकलकदेव माणिक्यनदी अभयदेवसूरि देवसूरि, हेमचद्र, यशोविजयगणि आदि जैन दर्शन के प्रख्यात नैयायिक है।

बौद्ध एव जैन नैयायिकों ने आस्तिको के वेदप्रामाण्य वाद का खडन करने का भरसक प्रयास किया और वैदिक नैयायिको ने इन नास्तिक (नास्तिको वेदनिंदक) विद्वानो का खडन करते हुए ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी खडन-मडन के सघर्ष के कारण प्राचीन भारत मे न्यायशास्त्र का विकास हुआ।

6 वैशेषिक दर्शन

वैशेषिकदर्शन का न्यायदर्शन से अत्यधिक मात्रा मे साम्य होने के कारण दोनो का निर्देश एक साथ होता है। इस दर्शन के प्रवर्तक का नाम कणाद है। कणाद का अर्थ ''कण खानेवाला'' होने से इस का नामनिर्देश उसी अर्थ के कणभक्ष, कणभुक् इन नामो से भी होता है। कणाद के वैशेषिक दर्शन का औलूक्य दर्शन भी अपर नाम है। इस कारण कणाद का वास्तव नाम कुछ लोगो के मतानुसार उलूक माना जाता है। कणाद कृत वैशेषिक सूत्रो का रचनाकाल ई द्वितीय से चतुर्थ शती के बीच माना जाता है। अत इस दर्शन को न्यायपूर्व मानते है। इस दर्शनग्रथ के दस अध्यायो मे 370 सूत्र है। प्रत्येक अध्याय के अन्तर्गत दो आह्निक नामक विभाग है। वैशेषिकसूत्र पर ''रावणभाष्य''नामक भाष्य का प्राचीन ग्रथो मे निर्देश मिलता है, किन्तु वह अभी अनुपलब्ध है। इस का प्रशस्तपादकृत भाष्य ''पदार्थधर्मसग्रह'' नाम से सुप्रसिद्ध है। प्रशस्तपाद भाष्य को मौलिक ग्रथ की मान्यता है, और इस पर उदयनाचार्यकृत किरणावली एव श्रीधराचार्यकृत न्यायकदली नामक दो टीकाए प्रसिद्ध है। इसके बाद वैशेषिक दर्शन के प्रतिपादक जितने भी ग्रथ लिखे गये, उन सभी मे न्याय और वैशेषिक का मिश्रण है। इन मे शिवादित्य की सप्तपदार्थी लौगाक्षिभास्कर की तर्ककौमुदी, वल्लभन्यायाचार्य की न्यायलीलावती एव विश्वनाथ पचानन कृत भाषापरिच्छेद विशेष प्रचलित हैं।

(वैशेषिक दर्शन विषयक ग्रन्थो और ग्रथकारो की समग्र सूची परिशिष्ट मे दी है)।

वैशेषिक परिभाषा

पदार्थ - अभिधेयत्व और ज्ञेयत्व इन धर्मों से युक्त ससार की सभी वस्तुए।

सप्त पदार्थ - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। समग्र सृष्टि के सभी पदार्थों के ये सात ही प्रकार होते हैं।

नव द्रव्य - पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इन मे पृथ्वी, आप, तेज और वायु के परमाणु नित्य

होते हैं, और इनसे निर्मित पदार्थ अनित्य होते हैं। पृथ्वी में गधादि पाचों गुण, आप (जल) में रसादि चार गुण, तेज में रूपादि तीन गुण, वायु में स्पर्श और शब्द दो गुण और आकाश में केवल शब्द गुण ही होता है, वह सर्वव्यापी और अपरिमित है। आकाश, काल और दिक् ये तीन अप्रत्यक्ष, निरवयव और सर्वव्यापी पदार्थ हैं। उपाधि के कारण इन में दिन रात पूर्व, पश्चिम आदि भेदों की प्रतीति होती है।

आत्मा - ज्ञेय, नित्य, शरीर से पृथक्, इन्द्रियों का अधिष्ठाता, विभु और मानसप्रत्यक्ष का विषय है। आत्मा के दो भेद- जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा-प्रति शरीर में पृथक् होता है। इस का ज्ञान, सुखदुःख के अनुभव से होता है। इच्छा, द्वेष, बुद्धि, प्रयत्न, धर्माधर्म सस्कार इत्यादि आत्मगुण हैं। परमात्मा - एक और जगत् का कर्ता है।

मन - अणुपरिमाण। प्रतिशरीर भिन्न। यह जीवात्मा के सुख-दु खादि अनुभव का तथा ऐन्द्रिय ज्ञान का साधन है। द्रव्यविचार में वैशेषिको ने सारा भर अणुवाद पर दिया है। द्रव्यो के परमाणु होते हैं, यह सिद्धान्त सर्वप्रथम कणाद ने प्रतिपादन किया। द्रव्य के सूक्ष्मतम अविभाज्य अश को परमाणु माना गया है। परमाणु नित्य, स्वतत्र, इन्द्रियगोचर होते हैं। उनकी "जाति" नही होती। दो परमाणुओ के सयोग से द्व्यणुक, तीन द्व्यणुको के सयोग त्र्यणुक, चार से त्र्यणुको के सयोग से चतुरणुक इस प्रकार अणुसयोग से सृष्टि का निर्माण होता है। पदार्थों के गुणो में, बाह्य कारणों से जो भी विकार उत्पन्न होते हैं, उनका कारण "पाक" होता है। पदार्थ के मूल गुणो का नाश हो कर, उनमे नये गुण की निर्मिति को "पाक" कहते हैं। इस उपपत्ति के कारण वैशेषिको को "पीलुपाकवादी" कहते हैं। पीलुपाक याने अणुओ का पाक। इस से विपरीत नैयायिकों की उपपत्ति में सपूर्ण वस्तु का पाक माना जाता है, अत उन्हे दार्शनिक परिवार में "पिठर-पाकवादी" कहते हैं।

(2) गुण- द्रव्याश्रित किन्तु स्वय गुणरहित पदार्थ को गुण कहते हैं। गुणसयोग और वियोग का कोई कारण नही होता। सूत्रकार ने गुणो की संख्या 17 बताई है किन्तु भाष्यकारों ने अधिक 7 गुणो का अस्तित्व सिद्ध कर उनकी संख्या 24 मानी है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, सस्कार, धर्म और अधर्म। इनमें सख्या, परिमाण इत्यादि सामान्य गुण हैं और बुद्धि, सुख, दु ख, विशिष्ट पदार्थो में होने के कारण विशेष गुण माने हैं। अन्य गुणो मे रूप के श्वेत, रक्त, पीत आदि 7 प्रकार, रस के मधुर अम्ल, लवण आदि 6 प्रकार हैं। गन्ध के सुगध और दुर्गन्ध दो प्रकार है। स्पर्श के शीत, उष्ण और कवोष्ण, तीन प्रकार है। परिमाण के अणु, महत् ह्रस्व दीर्घ- चार प्रकार है। सयोग के तीन प्रकार- एक गतिमूलक, उभयगतिमूलक और सयोगजसयोग। गुरुत्व गुण के कारण वस्तु का पतन होता है। यह गुण केवल पृथ्वी और जल मे होता है। स्नेहगुण केवल जल मे होता है। शब्द के दो प्रकार- ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक है। बुद्धि के दो प्रकार- स्मृति और अनुभव। सस्कार के तीन प्रकार- भावना (आत्मा का गुण), वेग और स्थितिस्थापकता है। पवित्रसस्कार के कारण आत्मा में धर्मगुण उत्पन्न होता है, जिससे कर्ता को सुख की अनुभूति होती है। अधर्म इसके विपरीत गुण का नाम है।

(3) कर्म - द्रव्याश्रित, गुणभिन्न और सयोगवियोग का कारण। कर्म के पाच प्रकार हैं- उत्क्षेपण (उपर फेंकना) अवक्षेपण (नीचे फेकना) आकुचन (सिकुडना) प्रसारण (फैलना) और गमन। आकाशादि विभु द्रव्यो मे कर्म नहीं होता।

(4) सामान्य - "नित्यम एकम् अनेकानुगतम्" - जो नित्य और एक होकर, अनेक पदार्थों मे जिस का अस्तित्व हाता है उसे जाति या सामान्य कहते हैं। जैसे गोत्व, मनुष्यत्व इत्यादि। सामान्य के तीन भेद है- (1) पर (2) अपर और (3) परापर। जैसे सत्ता या अस्तित्व पर सामान्य है जो सभी पदार्थों में होता है। घटत्व अपर सामान्य है जो केवल घट मे ही होता है, और द्रव्यत्व परापर सामान्य है, क्यो कि वह घट तथा अन्य द्रव्यो में होता है, किन्तु सत्ता के समान द्रव्यातिरिक्त अन्य पदार्थों मे नही होता।

विशेष : परमाणु तथा आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन जैसे नित्य और निरवयव द्रव्यों में विशेष नामक पदार्थ रहता है, जो सामान्य से विपरीत होता है। विशेष ही एक परमाणु का दूसरे परमाणु मे तथा एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ स भेद करता है। विशेष पदार्थ के कारण ही एक आत्मा का दूसरे से अभेद सिद्ध नही होता। आपातत समान दिखने वाली शेष वस्तुओं मे परस्परभिन्नता, उनमें विद्यमान विशेष के कारण ही सिद्ध होती है। इस विशेष पदार्थ की मान्यता, कणाददर्शन की अपूर्वता है। इसी कारण इस दर्शन को "वैशेषिक" दर्शन नाम मिला है।

समवाय : सबन्ध के दो प्रकार होते हैं। (1) सयोग और (2) समवाय। वस्त्र और ततु जैसे अवयवी और अवयवों मे, जल और शैत्य, जैसे गुणी और गुण मे, वायु और गति जैसे क्रियावान् और क्रिया में, गो और गोत्व जैसे व्यक्ति और जाति में एव विशेष और नित्य द्रव्य में जो अयुतसिद्धता-मूलक सबंध होता है, उसे "समवाय" नामक पदार्थ कहते हैं। समवाय-सबंध नित्य,और सयोग-सबध अनित्य होता है।

अभाव : यह दो प्रकार का होता है। (1) ससर्गाभाव - जैसे अग्नि में शैत्य का अभाव। (2) अन्योन्याभाव - जैसे अग्नि में जल का, घट में पट का अभाव। संसर्गाभाव के तीन प्रकार होते हैं। (1) प्रागभाव - जैसे उत्पत्ति के पूर्व मृत्तिका मे

घट का अभाव। (2) **प्रध्वंसाभाव** - जैसे फूटे हुए घट के टुकडों मे घट का अभाव। (३) **अत्यन्ताभाव** - जैसे आकाशपुष्प या वन्ध्यापुत्र का अभाव।

अभाव पदार्थ न मानने पर सभी पदार्थ नित्य रहेंगे। प्रागभाव न मानने पर सभी पदार्थ अनादि मानने पडेंगे। प्रध्वसाभाव न मानने पर सभी पदार्थ अविनाशी मानने पड़ेंगे। अत्यताभाव न मानने वध्यापुत्र और शशशृग की सत्ता माननी पडेगी, और **अन्योन्याभाव** न मानने पर, वस्तुओं में परस्पर अभिन्नता माननी होंगी। इस प्रकार की आपत्ति के कारण अभाव का पदार्थत्व **वैशेषिकों** ने माना है।

वैशेषिक मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति परमाणु-सयाग से हाती है और परमाणु सयोग ईश्वरेच्छा से होता है। सृष्टि का प्रलय भी ईश्वर की इच्छा से ही होता है।

वैशेषिक दर्शन में ज्ञान के दो प्रकार (1) विद्या और (2) अविद्या माने हैं। विद्या के चार भेद प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति और आर्ष (प्रातिभ) तथा अविद्या के चार भेद मशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और स्वप्न माने है। बौद्धो के समान वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानते है। अत विरोधी दार्शनिको ने उनका निर्देश "अर्धवैनाशिक" (अर्थात् अर्धबौद्ध) सज्ञा से किया है। न्याय दर्शन में समत, उपमान और शब्द प्रमाण का अन्तर्भाव व अनुमान मे करते है।

कणाद ऋषि ने की हुई, "यतोऽभ्युदयानि श्रेयससिद्धि स धर्म" (अर्थात् जिस कारण अभ्युदय और नि श्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि होती है उसे धर्म कहते हैं) यह धर्म की व्याख्या सर्वमान्य सी हुई है। धर्म के साधक कर्म दो प्रकार के होते हैं। 1) सामान्य (अहिंसा, सत्य, अस्तेय इत्यादि) और 2) विशेष (वर्णाश्रमानुसार विशिष्ट कर्म)। निष्काम कर्माचरण से तत्त्वज्ञान का उदय होता है और तत्त्वज्ञान से नि श्रेयस की प्राप्ति होती है। दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा आत्मा के विशेष गुणो का उच्छेद ही मुक्ति का स्वरूप इस दर्शन मे माना गया है।

वैशेषिकों के विचारो का खण्डन, जैन, बौद्ध तथा वेदान्तियों ने स्वमत-स्थापना के निमित्त किया है, परतु उनकी भौतिक जगत् की उपपत्ति लौकिक दृष्टि मे ग्राह्य मानी जाती है। "कणाद पाणिनीय च सर्वशास्त्रोपकारकम्" (अर्थात् कणाद का वैशेषिक और पाणिनि का व्याकरण शास्त्र अन्य सभी शास्त्रो के ज्ञान के लिए उपकारक है।) यह सुभाषित सस्कृतज्ञ विद्वानो मे सर्वमान्य हुआ है। शब्दार्थ के यथोचित निर्णय के लिए पाणिनीय व्याकरण जितना उपकारक है, उतना ही पदार्थो का स्वरूपनिर्णय करने मे वैशेषिक दर्शन उपकारक है। ऐतिहासिक दृष्ट्या ई 15 वी शती तक वैशेषिक और न्याय दर्शन का स्वतत्र रूप से विकास होता रहा। बाद मे दोनो दर्शनो का समिश्रण कर ग्रथ लिखे गये। दोनों की तत्त्वविवेचन की पद्धति समान होने के कारण, कुछ मतभेद होते हुए भी, दोनो का सबध (साख्य और योग के समान) निकटतर माना जाता है।

प्रकरण - 6
सांख्य योग दर्शन

1 "सांख्य दर्शन"

साग्ख्य शब्द सख्या शब्द से निष्पन्न होता है, जिसके दो अर्थ होते हैं। 1) गिनती और 2) विवेकज्ञान। महाभारत में-

"सख्या प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते। तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन साख्य प्रकीर्तितम्"।।

इस श्लोक में सख्यादर्शन के कारण अर्थात् सृष्टितत्त्वों की सख्यात्मक (या गणनात्मक) चर्चा होती है इस लिये साख्य इसे माना गया है। साख्यदर्शन मे 24 प्रकार के प्रकृति के मूलतत्त्व, 5 प्रकार की अविद्या, 28 प्रकार की अशक्ति, 17 प्रकार की अतुष्टि, इत्यादि सख्यात्मक पद्धति से तत्त्वो की चर्चा हुई है।

"सख्या" शब्द का दूसरा अर्थ है विवेकज्ञान। अचेतन प्रकृति और चेतन पुरुष तत्त्व में अभिन्नता मानना यही अविवेक है। इसी अविवेक या अज्ञान के कारण पुरुष (अर्थात जीव) जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। प्रकृति-पुरुष की पृथक्ता का ज्ञान ही विवेकज्ञान है। इसी से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस सिद्धान्त का आग्रह पूर्वक प्रतिपादन "साख्य" दर्शन नाम का कारण माना जाता है। साख्यकारिका के रचयिता ईश्वरकृष्ण ने तथा श्रीशकराचार्य ने इस दर्शन का निर्देश "तन्त्र" शब्द से किया है। परतु प्रसिद्ध तत्रशास्त्र या तत्रविद्या से इसका कोई संबध नहीं। यह एक स्वयपूर्ण और ऐतिहासिक दृष्टि से अतिप्राचीन शास्त्र है। अथर्ववेद, तथा कठ, प्रश्न, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी आदि उपनिषदो मे साख्य दर्शन की परिभाषा का दर्शन होता है। भारतीय परपरा में,

"ज्ञान च लोके यदिहास्ति किंचित्। साख्यागत तच्च मत महात्मन्"।।

(ससार म जो कुछ तत्त्वज्ञान विद्यमान है वह "साख्य" से आया है।"- इस महाभारत के वचनानुसार इसी दर्शन को अग्रस्थान दिया जाता है। महाभारत तथा कुछ स्मृति, ग्रन्थो मे कपिलप्रभृति 26 साख्याचार्यो के नाम मिलते हैं, उनमे सनत्, सनदन, सनातन सनत्कुमार, भृगु, शुक्र, काश्यप, पाराशर, गौतम, नारद, अगस्त्य, पुलस्त्य इत्यादि नाम अन्यान्य सदर्भों में भी प्रसिद्धिप्राप्त है। भारतीय परपरा के अनुसार महर्षि कपिल साख्यदर्शन के प्रवर्तक माने जाते है। श्रीमदभागवत में कपिल (कर्दम देवहूती के पुत्र) को भगवान विष्णु का पचमावतार कहा है। उपनिषद मे भी "कपिलऋषि" का उल्लेख मिलता है।

मॅक्समूलर, कालब्रुक, कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वान कपिल को ऐतिहासिक पुरुष मानने को तैयार नहीं है। उनका मतखडन गार्वे नामक पाश्चात्य पडित ने हा किया है। ऐतिहासिक चर्चा के अनुसार साख्य पद्धति के विचार का आरंभ ई पू 9 वीं शती मे माना जाता है। ईश्वरकृष्ण ने अपनी साख्यकारिका के अत मे इस शास्त्र की परपरा बतायी है

'पुरुषार्थज्ञानमिद गुह्य परमर्षिणा समाख्यातम्। स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।।

एतत् पवित्रमग्र्य मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ। आसुरिरपि पचशिखाय तेन च बहुधा कृत तत्रम्।।

शिष्यपरम्परयागतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभि । सक्षिप्तमार्यमतिना सम्यग् विज्ञाय सिद्धान्तम्।।"

अर्थात् - मोक्ष पुरुषार्थ विषयक यह गुह्य पवित्र ज्ञान "परमश्रेष्ठ ऋषि कपिल ने प्रथम प्रतिपादन किया। इस मे भूतमात्रो की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कथन किया है। (कपिल) मुनि ने आसुरि को, और आसुरि ने पचशिख को यह ज्ञान बडी कृपा से प्रदान किया। आसुरि के बाद जो शिष्यपरपरा निर्माण हुई, उसके द्वारा ईश्वरकृष्ण को इसका ज्ञान हुआ जिसने उसे आर्याओ मे सक्षिप्त रूप में ग्रथित किया। इस प्रकार कपिल ऋषि इस दर्शन के (अथवा भारतीय दार्शनिक परपरा के) "आदिविद्वान्" माने जाते है। तत्त्वसमास और साख्यसूत्र नामक कपिल की दो रचनाए साख्य दर्शनविषयक शास्त्रीय ग्रंथो में प्रथम ग्रथ माने जाते हैं। साख्यसूत्र के छह अध्याय और सूत्रसंख्या 537 है। इसके पचम और छठे अध्यायों में परमतखंडनपूर्वक स्वमत प्रतिपादन किया है। आसुरिकृत कोई ग्रथ उपलब्ध नहीं है किन्तु प्राचीन ग्रन्थो में इनके सिद्धान्तों के उल्लेख हुए हैं। पचशिख का षष्टितन्त्र ग्रथ प्रसिद्ध है। चीनी ग्रथो के अनुसार यह ग्रथ षष्टिसहस्र (साठ हजार) श्लोकात्मक माना जाता है।

ईश्वरकृष्णकृत "साख्यकारिका" इस दर्शन का सर्वमान्य प्रामाणिक ग्रथ है। साख्य दर्शन की चर्चा में इसी ग्रथ की आर्याएं

सर्वत्र उद्धृत की जाती हैं। ई. छठी शताब्दी मे इस ग्रथ का चीनी भाषा मे अनुवाद किसी परमार्थ ने किया। चीन में यह अनुवाद हिरण्यसप्तति या सुवर्णसप्तति" नाम से विदित है। जैन वाङ्मय मे इसे "कनकसप्तति" कहा है। उपलब्ध साख्यकारिकाओ की सख्या 69 होने के कारण एक कारिका लुप्त मानी जाती है। लोकमान्य तिलक ने अपने गीतारहस्य मे लुप्तकारिका के सबध मे चर्चा करते हुए गौडपादाचार्यकृत भाष्य के आधार पर 61 वी कारिका के बाद एक कारिका की रचना की। लोकमान्य तिलककृत कारिका

"कारणमीश्वरमेके ब्रुवते काल परे स्वभाव वा। प्रजा कथ निर्गुणतो, व्यक्त काल स्वभावश्च।।"

तत्त्वसमास, साख्यसूत्राणि और साख्यकारिका ये तीन ही साख्यदर्शन के आधारभूत ग्रथ माने जाते हैं। इन तीनो के विषय में विद्वानो मे विवाद प्रचलित है जैसे, क्या कपिल ही साख्यसूत्रो के रचयिता है? क्या साख्यसूत्रो की रचना ईश्वरकृष्ण की कारिकाओ के अनन्तर हुई? साख्यसूत्रो मे प्रक्षिप्त भाग कौन सा है? इस प्रकार के विवादो के सबध मे प. उदयवीरशास्त्री ने तौलनिक एव तलस्पर्शी अध्ययन करते हुए साख्यसूत्रविषयक परपरागत मत का समर्थन किया है। शास्त्रीजी के मतानुसार उपलब्ध साख्यसूत्रों मे 68 सूत्र प्रक्षिप्त है, क्योकि उन मे साख्यमत विरोधी विचार ग्रथित है।

ईश्वरकृष्ण की साख्यकारिका पर 1) माठरवृत्ति 2) गौडपाद भाष्य 3) युक्तिदीपिका (लेखक अज्ञात) 4) तत्त्वकौमुदी (ले. वाचस्पति मिश्र. इस टीका पर काशी के आधुनिक विद्वान हररामशास्त्री शुक्ल ने सुषमा नामक सविस्तर टीका लिखी है।), 5) जयमगला (ले. शकराचार्य ई. 14 वी शती), 6) चन्द्रिका (ले. नारायणतीर्थ, ई. 17 वी शती), 7) साख्यतत्त्वस्वरूप (ले. नरसिंह स्वामी) इत्यादि उत्तमोत्तम टीका ग्रथ लिखे गये है, जिन से उस ग्रथ की विचारसम्पन्नता समझ मे आती है। कुछ दार्शनिक ग्रथो में विन्ध्यवासी (या विन्ध्यवास) के साख्य विषयक सिद्धान्तो का उल्लेख आता है, परंतु इसकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। इसका मूलनाम रुद्रिल तथा गुरु का नाम वार्षगण्य कहा गया है।

ई. 17 वी शती मे वाराणसी मे विज्ञानभिक्षु नामक दार्शनिक विद्वान हुए। भिक्षु नाम होने पर भी वे बौद्ध नहीं थे। "कालार्कभक्षित" साख्यदर्शन के पुनरुज्जीवन के लिये इन्होंने साख्यप्रवचनभाष्य की रचना की। इनके अतिरिक्त योगवार्तिक (व्यासभाष्य पर), विज्ञानामृतभाष्य (ब्रह्मसूत्र पर) और योगसार तथा साख्यसार मे योग और साख्य दर्शनो के सिद्धान्तो का सक्षिप्त परिचय दिया है। विज्ञानभिक्षु साख्यदर्शन के लेखकों मे अंतिम आचार्य माने जाते हैं।

2 तात्त्विक चर्चा

अन्य सभी दर्शनो के समान आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति तथा सुखप्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण, साख्यदर्शन का भी प्रयोजन है। ससार के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों से आत्यंतिक तथा ऐकान्तिक मुक्तता प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले (मुमुक्षु) के लिए दृष्ट तथा आनुश्रविक (अर्थात् औषधोपचार रतिनत्य तथा यज्ञयाग) मार्गो की अपेक्षा, व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ (अर्थात् प्रकृति और पुरुष) इन सृष्टि के मूलभूत तत्त्वो के विज्ञान का मार्ग अधिक श्रेष्ठ होता है क्यो कि अन्य लौकिक तथा दैवी उपाय तात्कालिक तथा हिंसा, असूया आदि दोषो से युक्त होते है। साख्य मतानुसार अज्ञान के कारण पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति (या प्रकृतिजन्य देहादि पदार्थ) से अपना तादात्म्य मान कर दुःख भोगता है, अतः वह जब अपना प्रकृति से विभिन्नत्व ठीक समझता है, तभी वह दुःखमुक्त हो सकता है।

प्रत्येक भारतीय दर्शन के प्रारभ मे ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया तथा ज्ञानप्राप्ति के साधन के सबध मे तात्त्विक चर्चा होती है। तदनुसार साख्य दर्शन मे इस सबध मे चर्चा प्रस्तुत करते समय दृष्ट (प्रत्यक्ष) 2) अनुमान और 3) आप्तवचन तीन ही प्रमाण माने हैं। साख्यकारिका के टीकाकारो ने उपमान, अर्थापत्ति, ऐतिह्य जैसे अवान्तर प्रमाणो का इन तीन प्रमाणो मे अन्तर्भाव प्रतिपादन किया है। साख्यदर्शन के प्रमेय - (व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ) का यथार्थज्ञान इन तीन प्रमाणो के द्वारा ही होना सभव माना गया है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो प्रकार 1) निर्विकल्पक और 2) सविकल्पक। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष मे इंद्रियगोचर पदार्थ के रूप गुण इत्यादि का ज्ञान नही होता। सविकल्पक मे रूप, गुण सज्ञा इत्यादि का ज्ञान होता है।

अनुमान के दो प्रकार 1) वीत तथा 2) अवीत। इनमे वीत के दो प्रकार माने गये हैं। 1) पूर्ववत् और 2) सामान्यतो दृष्ट। धूमद्वारा वह्नि का अनुमान पूर्ववत् का उदाहरण है। यह पूर्वानुभूत साध्य-साधन सबध पर आश्रित होता है। रूप शब्द आदि विषयो के आकलन की क्रिया के कारण, उनके नेत्र, श्रोत्र आदि ग्राहक इन्द्रियो के अस्तित्व का अनुमान, सामान्यतो दृष्ट अनुमान का उदाहरण है। साख्यो के द्वितीय अनुमान प्रकार का अर्थात, "अवीत" अनुमान को न्याय दर्शन मे शेषवत् कहा है। शब्द का गुणत्व, उसमे द्रव्य, कर्म आदि अन्य छह पदार्थो की असिद्धता के कारण जाना जाता है। यह ज्ञान "शेषवत्" अनुमान से होता है। आप्तवचन मे रागद्वेषादि विरहित सत्पुरुष के वचन को तथा अपौरुषेय एव स्वतःप्रमाण वेदवचनों को प्रमाण माना गया है।

सत्कार्यवाद - भारतीय तत्त्वज्ञान मे "सत्कार्यवाद" और "असतकार्यवाद" इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्राय: सभी दार्शनिको द्वारा हुआ है। यह सृष्टिरूप कार्य व्यक्त स्वरूप मे उत्पन्न होने के पूर्व अस्तित्व में था या नहीं? इस तात्त्विक प्रश्न की चर्चा (मृत्तिका-घट दृष्टान्त के द्वारा) करते समय, बौद्ध, नैयायिक और वैशेषिक दार्शनिकों ने असत्कार्यवाद का पुरस्कार किया है और साख्य तथा वेदान्ती दार्शनिको ने "सत्कार्यवाद" का।

बौद्ध मतानुसार "असत्" तत्त्व से "सत्" तत्व की उत्पत्ति मानी गयी। वेदान्तमतानुसार एकमेवाद्वितीय सत् (ब्रह्म) तत्त्व से केवल आभासमय या मायामय ससार की उत्पत्ति हुई। साख्य मतानुसार एक ही सत् तत्त्व से अनेक सद्वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है। सत् तत्त्व से सृष्टि की उत्पत्ति मानने वाले सांख्य और वेदान्ती दोनो "सत्कार्यवादी" माने जाते हैं, किन्तु दोनों की विचारधारा में मौलिक भेद है। वेदान्ती ससार की कारणावस्था ब्रह्मरूप मानते हैं, किन्तु साख्यवादी इस अवस्था को त्रिगुणात्मक-प्रकृतिरूप मानते हैं। वेदान्ती "जगन्मिथ्या" मानते है तो साख्यवादी जगत् को सत्य मानते है। वेदान्ती एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही जगत् का आदिकारण मानते हैं तो साख्यशास्त्रज्ञ प्रकृति और पुरुष दो तत्त्वों को आदिकारण मानते हैं। इसी कारण साख्य 'द्वैती" भी कहे जाते है।

इस प्रकार सद्रूप त्रिगुणात्मक मूल प्रकृति से उत्पन्न सृष्टि के अवातर तत्त्वों का वर्गीकरण साख्य दर्शन में अत्यत मार्मिकता से किया है। ईश्वरकृष्ण ने यह वर्गीकरण एक कारिका में अन्यत सक्षेप मे बताया है

"मूलप्रकृतिरविकृति महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ।।"

अर्थात् मूल प्रकृति में सत्व, रज, तम गुणों की साम्यावस्था के कारण कोई विकृति नहीं होती। बाद मे उस साम्यावस्था मे क्षोभ उत्पन्न होने के कारण, 'महत्' आदि सात तत्त्वो (अर्थात् महत् याने बुद्धि), अहकार और पाच तन्मात्राए (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध) की उत्पत्ति होती है। ये सात तत्त्व मूलप्रकृति के कार्य तथा अवातर तत्त्वो के कारण भी होते हैं, अत इन्हे "प्रकृति-विकृति" (याने कारण तथा कार्य) कहा है। इनके अतिरिक्त 5 ज्ञानेन्द्रिया, 5 कर्मेन्द्रिया, '1 उभयेन्द्रिय (मन) और 5 महाभूत सोलह तत्त्वो की उत्पत्ति होती है। इनसे और किसी भी तत्त्व की निर्मिति नही होती। अत इन्हे "विकार" (अर्थात् केवल कार्यरूप) कहा है। पुरुष न तो प्रकृति है, न ही विकृति। इस प्रकार 1) प्रकृति 2) प्रकृति-विकृति 3) विकृति 4) न प्रकृति न विकृति, इन चार वर्गों मे व्यक्त अव्यक्त सृष्टि का वर्गीकरण साख्यदर्शनकारो ने किया है।

साख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति "त्रिगुणात्मका" मानी गई है। प्रकृतिस्वरूप तीन गुण (सत्व, रज और तम) प्रत्यक्ष नही हैं। ससार क पदार्थो को देख कर इनका अनुमान किया गया है। एक ही वस्तु -जैसी कोई स्त्री पति को सुख देती है, उसी को चाहने वाले मनुष्य को दु:ख देती है और उदासीन मनुष्य को न सुख न दुख देती है। यही अवस्था सर्वत्र होने के कारण सुख, दु:ख और मोह के कारणभूत तीन गुणों का सिद्धान्त साख्य दर्शन द्वारा स्थापित हुआ है। ये तीन गुण परस्परविरोधी होते हैं। इनमे से अकेला गुण कोई कार्य नहीं कर सकता। ये परस्पर सहयोगी होकर पुरुष का कार्य सम्पन्न करते हैं।

सत् तत्त्व से सृष्टिरूप सत्कार्य की उत्पत्ति का यह संक्षिप्त परिचयमात्र हुआ। इसका प्रतिपादन करने के लिए "सत्कार्यवाद" नामक जो सिद्धान्त साख्यदर्शन द्वारा अपनाया गया, उसका समर्थन पाच कारणो द्वारा किया गया है।

ईश्वरकृष्ण ने एक कारिका मे वे कारण बताए है

'असदकरणाद् उपादानग्रहणात् सर्वसभवाऽभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावात् च सत्कार्यम्।।"

1) असदकरणात् - उदाहरण - तिल स ही तेल निकलता है, बालू से नही। बालू में तेल नही होता अत उससे कितने भी प्रयत्न करने पर तेल कदापि नही निष्पन्न होता।

2) उपादानग्रहणात् - प्रत्येक कार्य के लिये विशिष्ट उपादान कारण का ही ग्रहण आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, घट निर्माण करने के लिए मिट्टी ही आवश्यक होती है, तन्तु नहीं।

3) सर्वसम्भवाऽभावात् - सभी कार्य सभी कारणों से नहीं उत्पन्न होते। बालू से तेल या तिल से घट नहीं निर्माण होता।।

4) शक्तस्य शक्यकरणात् - शक्तिसम्पन्न वस्तु से शक्य वस्तु की ही उत्पत्ति होती है। जैसे दूध से दही हो सकता है किन्तु तेल, घट या पट नही।

5) कारणभावात् - प्रत्येक कार्य, कारण का ही अन्य स्वरूप है। घटरूप कार्य, मिट्टि स्वरूप कारण का ही अन्य रूप है। दोनों का स्वभाव एक ही होता है।

साख्य और वेदान्त दोनो सत्कार्यवादी हैं। किन्तु साख्य का सत्कार्यवाद परिणामवादी और वेदान्त का विवर्तवादी कहा गया है। परिणामवाद के अनुसार दूध से दही जैसा वास्तविक विकार होता है वैसा ही प्रकृति से जगत् होता है। विवर्तवाद के अनुसार अधकार मे रज्जु पर सर्प, जिस प्रकार आभासमान होता है और प्रकाश आने पर उसका लय होता है, उसी प्रकार

सद्वस्तु (ब्रह्म) पर अविद्या के कारण जगत् केवल भासमान होता है। 'अहं ब्रह्मास्मि'' ज्ञान का प्रकाश आते ही वह आभास नष्ट हो जाता है।

पुरुष : इस तत्त्व का अस्तित्व जिन पाच कारणो मे माना जाता है उनका सकलन एक कारिका मे ईश्वरकृष्ण ने किया है

''सघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।''

1) जिस प्रकार सुसमृद्ध भवन या सुसज्जित शय्या दूसरे किसी उपभोक्ता के लिए ही होती है (स्वय अपने लिए नहीं), उसी प्रकार यह सघातमय जगत् भोग्य प्रकृति के अन्य किसी दूसरे के उपभोग के लिए ही है।

2-3) जिस प्रकार सुसज्ज रथ जड होने के कारण चल नही सकता, उसे चलाने के लिए अजड-चेतन सारथि की आवश्यकता होती ही है, उसी प्रकार जड शरीरो का चालक उनसे विपरीत स्वरूप का होना चाहिए।

4) ससार मे सभी पदार्थ भोग्य हैं। अत उनका कोई तो भोक्ता भी होना चाहिए। यह भोक्ता ही पुरुष है।

5) ससार मे सभी दु खी जीव दु खो से मुक्ति होने की इच्छा रखते हुए दीखते हैं। जिस मे यह मुक्त होने की प्रवृत्ति होती है, वही पुरुष है। साख्यदर्शन मे अव्यक्त तत्त्वो के अन्तर्गत मूलप्रकृति का एकत्व माना है, किन्तु उससे सर्वथा विपरीत पुरुष तत्त्व का अनेकत्व प्रतिपादन किया है।

जनन-मरण-करणाना प्रतिनियमाद् अयुगपत्प्रवृत्तेश्च। पुरुषबहुत्व सिद्ध त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव।।

इस कारिका मे पुरुष का बहुत्व सिद्ध करने वाले तीन कारण बतलाए गये है। 1) सभी पुरुषों का जन्म मरण एक साथ नही होता। सभी की इन्द्रियाँ समान शक्तियुक्त नही होती। अर्थात् एक पुरुष की दर्शनशक्ति या श्रवणशक्ति क्षीण या नष्ट होने पर सभी की नहीं होती।

2) सभी की कामो मे प्रवृत्ति एक साथ नही होती। कुछ विद्यार्थी जब पढते है तब दूसरे खेलते दिखाई देते है।

3) प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव मे भी अतर होता है। कोई उद्योगशील होते है तो दूसरे आलसी होते है। इस प्रकार का वैचित्र्य, पुरुष तत्त्व एक ही होता, तो नही दिखाई देता। अत ''पुरुषबहुत्व'' सिद्ध होता है।

साख्य मतानुयायियो में दो भेद - 1) सेश्वरवादी और 2) निरीश्वरवादी - दिखाई देते हैं। उपनिषदो महाभारत, भागवत आदि पुराणो मे प्रतिपादित साख्य सिद्धान्त मे ईश्वर का अस्तित्व माना हुआ दिखाई देता है।

''माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिन तु महेश्वरम्''

इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण उपनिषद्वचनो मे सेश्वरवादी साख्यमत के बीज स्पष्टतया दिखाई देते हैं। महाभारत मे साख्य और वेदान्त में विशेष भेद नही दिखाई देता। पतजलि के योगदर्शन को ''सेश्वर साख्य'' और कपिलोक्त दर्शन को ''निरीश्वर साख्य'' कहने की परिपाटी है। निरीश्वरवादी साख्यदार्शनिको ने ईश्वरास्तिक्य के प्रमाणो का खडन नही किया। उन्हे अपनी विवेचन प्रक्रिया मे पुरुष और प्रकृति इन दो तत्त्वो के आधार पर विश्वोत्पत्ति की समस्या सुलझाना सभव हुआ, तीसरे ईश्वरतत्त्व का अस्तित्व सिद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। साख्य निरीश्वरवादी है, किन्तु ''नास्तिक'' अर्थात् वेदनिंदक नहीं है।

साख्यमतानुसार पुरुष स्वभावत त्रिगुणातीत या मुक्त ही होता है, किन्तु प्रकृति के साथ वह अपना तादात्म्य, अविवेक के कारण मानता है, और प्रकृतिजन्य दु ख भोगता है। विवेक का उदय होने पर उसे ''अपवर्ग'' या ''कैवल्य'' की अवस्था प्राप्त होती है। यह विवेक, ''व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ का तत्त्वज्ञान होने पर ही उदित होता है। विवेक का उदय होते ही प्रकृति का बधन सदा के लिये छूट जाता है, और पुरुष यह अनुभव करने लगता है कि, ''मै सभी कर्तृत्व से अतीत तथा नि सग हू।'' यह अनुभूति ही जीवन्मुक्त अवस्था है। जीवन्मुक्त पुरुष को विदेहमुक्ति प्राप्त होती है। यही मानवजीवन का आत्यतिक उद्दिष्ट है।

ईश्वरकृष्ण ने ''प्रकृति'' का स्वरूप ''नर्तकी'' के समान वर्णन किया है। जिस प्रकार कलाकुशल नर्तकी रगमच पर दर्शकों के समक्ष अपनी कुशलता दिखा कर स्वयमेव नर्तन से निवृत्त होती है, उसी प्रकार प्रकृति, पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देने का व्यापार पूर्ण होने पर, सर्वथा निवृत्त हो जाती है। जिस पुरुष को उसका स्वरूप ज्ञात होता है, उसके समाने वह लज्जावती स्त्री के समान कभी नही उपस्थित होती। प्रकृति की निवृत्ति ही पुरुष की कैवल्यावस्था है।

3 ''योगदर्शन''

योग शब्द ''युज्'' तथा युजिर् (जोडना या मिलाना) धातु से निष्पन्न हुआ है। ऋग्वेद में योग शब्द आता है परतु वहा उसके अर्थ एकरूप नही माने जाते। ''योगक्षम'' यह सामासिक शब्द भी ऋग्वेद मे आता है जहाँ योग शब्द का अर्थ सायण ने ''अप्राप्तप्रापणम्'' अर्थात् जो पहले से प्राप्त न हो उसे प्राप्त करना, इस प्रकार बताया है। उपनिषदों, महाभारत भगवद्गीता, तथा पुराणो मे साख्य और योग का उल्लेख एक साथ हुआ है और उनका परस्पर सबध भी इन ग्रन्थों में समान ही रहा है। कठोनिषद् मे

"यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्। तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।।

इस श्लोक में योग का स्वरूप बताया है। ज्ञानेन्द्रियां, मन एव बुद्धि की अविचल स्थिति को ही इसमे योग कहा है।

इसी उपनिषद् में कहा है कि नचिकेता ने यमद्वारा प्रवर्तित "योगविधि" एवं विद्या को जान कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में "ध्यानयोग" शब्द का प्रयोग तथा आसन एव प्राणायाम का उल्लेख आता है। छान्दोग्य उपनिषद् में "आत्मनि सर्वेन्द्रियाणि प्रतिष्ठाप्य" इस वाक्य में सभी इन्द्रियों को आत्मा में प्रतिष्ठापित करने की ओर निर्देश हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे "तस्मादेकमेव व्रत चरेत् प्राण्याचण अपान्याच्च" इस मत्र में प्राणायाम की ओर सकेत किया है। मुण्डकोपनिषद् में "ओमिति ध्यायथ आत्मानम्" इस वचन मे समाधि की व्यवस्था दी है। इस प्रकार उपनिषदो में न केवल "योग" शब्द का प्रयोग हुआ है अपि तु योग की विधियों का भी स्वरूप बताया गया है।

पाणिनीय सूत्रों में, यम, नियम (जो योग के अंग हैं) तथा योग, योगिन् इन शब्दो की व्युत्पत्ति मिलती है। काशिका में योग शब्द की निष्पत्ति" युज् समाधौ (दिवादि गण) और "युजिर् योगे" (रुधादि गण) इन दोनो धातुओं से मानी है (द्वयोरपि ग्रहणम्)।

आपस्तंब धर्मसूत्र (ई पू चौथी या पाचवी शती) में योग को काम, क्रोध, लोभ आदि 15 दोषों का निर्मूलन करने वाला शान्ति प्राप्त करने का उपाय बताया है। वेदान्तसूत्रों में योग की साधनाओं की ओर सकेत हुआ है। महाभारत शाति पर्व में "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन" इस वचन मे (जिस प्रकार साख्य के प्रथम वक्ता कपिल थे, उसी प्रकार) हिरण्यगर्भ ऋषि को योग शास्त्र के प्रथम प्रवक्ता कहा है। पातजल योगसूत्र के भाष्य में कतिपय पूर्वमतों का निर्देश हुआ है, उनमें जैगीषव्य के मत को प्रमुखता दी है परतु जैगीषव्य का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। योगदर्शन का सर्वश्रेष्ठ तथा परम प्रमाणभूत ग्रंथ है, पतजलि का योगसूत्र। इसे योगदर्शन भी कहते हैं। योगसूत्र के बहुत से संस्करण व्यासभाष्य और तत्ववैशारदी (वाचस्पतिमिश्रकृत टीका) सहित प्रकाशित हुए हैं। काशी संस्कृत सीरीज में भोजराजकृत राजमार्तण्ड, भावगणेशकृत प्रदीपिका, नागोजी भट्टकृत वृत्ति, रामानन्दयतिकृत मणिप्रभा, अनन्तदेवकृत चन्द्रिका एव सदाशिवेन्द्र सरस्वती कृत योगसुधाकर इन छह टीकाओ के साथ पातजल योगसूत्रो का प्रकाशन हुआ है। यह सूत्रग्रथ समाधि (51 सूत्र) साधना (55 सूत्र) विभूति, (55 सूत्र) एव कैवल्य (34 सूत्र) नामक चार अध्यायों में विभाजित हैं। कुल सूत्र संख्या है 195। परपरा के अनुसार पतजलि शेष भगवान के अवतार माने जाते हैं। उनकी स्तुति करने वाले दो श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है

1) पातजलमहाभाष्य-चरक-प्रतिसंस्कृतै। मनोवाक्कायदोषाणा हन्त्रेऽहिपतये नम।।

2) योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन। योऽपाकरोत् त प्रवर मुनीना पतंजलि प्राजलिरानतोऽस्मि।।

प्रथम श्लोक चरक सहिता की टीका के आरभ मे आता है और दूसरा श्लोक विज्ञानभिक्षु के योगवार्तिक मे उल्लिखित है। इन श्लोको के कारण आधुनिक विद्वानों ने पतजलि एक या अनेक, यह विवाद खडा किया है। इस विचार मे प्रो बी. लुडविख, डॉ हावर एव प्रो दासगुप्त इत्यादि विद्वान दो या तीन पतजलि नही मानते किन्तु जैकोबी, कीथ, वुडस् इत्यादि विद्वान इस मत को नहीं मानते। योगसूत्र के काल के विषय में भी मतभेद हैं। भारतरत्न पा वा काणे, योगसूत्र का काल ई पू दूसरी शती से पूर्व नहीं मानते। डॉ राधाकृष्णन ई 200 ई के पश्चात् नहीं मानते। योगसूत्र के व्यासभाष्य की तिथि भी विवाद्य है, किन्तु इन दोनो की निर्मिति मे कई शतियों का अन्तर माना जाता है। महाभारत के शान्तिपर्व मे योग की विशेषता अन्यान्य प्रकार से बताई है; जैसे योग की विविध साधनाओ से काम, क्रोध, लोभ, भय एव निद्रा जैसे दोषों का निराकरण किया जा सकता है। हीन वर्ण के पुरुष या नारी भी योग मार्ग के द्वारा परमलक्ष्य की प्राप्ति कर सकते है। आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होने पर योगी अपने को सहस्रों शरीरों मे स्थानान्तरित कर सकता है।

आत्मना च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ। योगी कुर्याद् बल प्राप्य तैश्च सर्वैर्मही चरेत्।। (शान्ति 286/26)

साख्य के समान दूसरा ज्ञान नही और योग के समान कोई आध्यात्मिक शक्ति नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के

"न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु.। प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम्।।"

इस मत्र मे योग का फल बताया है कि योगसाधना से साधक का शरीर योगाग्निमय होता है और उसे रोग जरा एव मृत्यु का उपसर्ग नहीं होता।

भगवद्गीता, योगशास्त्र का प्रमाणभूत ग्रथ है। गीता के छठे अध्याय मे योगसिद्ध या योगारूढ पुरुष की श्रेष्ठ अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन.।।

अर्थात् योगयुक्त चित्त होने पर साधक सर्वभूतमात्र में आत्मा को और आत्मा में सारे भूतमात्र को देखता है। वह सर्वत्र समदर्शी होता है।

4 "सांख्य और योग"

योगदर्शन में सांख्य दर्शन के कुछ सिद्धान्तो का स्वीकार हुआ है, यथा-प्रधान का सिद्धान्त, तीन गुण एवं उनकी विशेषताएं, आत्मा का स्वरूप एव कैवल्य (अन्तिम मुक्ति में आत्मा की स्थिति)। साख्य और योग दोनो दर्शनो में आत्मा की अनेकता मानी है। साख्यदर्शन मे ईश्वर को स्थान नहीं है, किन्तु योग दर्शन में ईश्वर (पुरुष-विशेष) का लक्षण बताया है और उसका ध्यान करने से चित्तवृत्ति का निरोध अर्थात् समाधि-अवस्था प्राप्त करने की सूचना दी है- (ईश्वरप्रणिधानाद्वा)। परतु योगदर्शन में ईश्वर को विश्व का स्रष्टा नहीं कहा है। प्रणव (ओंकार) ही ईश्वर का वाचक नाम है जिसका जप (चित्तवृत्तिनिरोधार्थ) करना चाहिए। साख्य एव योग दोनो का अतिम प्राप्तव्य है कैवल्य। किन्तु साख्य, सम्यक्ज्ञान के अतिरिक्त कैवल्यप्राप्ति का अन्य उपाय नहीं कहता। साख्य का मार्ग केवल बौद्धिक या ज्ञानयोगात्मक है, किन्तु योगदर्शन में इस विषय में एक विशद अनुशासन की अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठ अगो की यथाक्रम व्यवस्था बतायी है। कैवल्य प्राप्ति के लिए पुरुष, प्रकृति एव दोनो की भिन्नता को भली भाती समझ कर, चित्तवृत्तियो के निरोध के लिए विविध प्रकार की साधना करने पर योग दर्शन का आग्रह है। चित्तवृत्तियो के निरोध के लिए पातजल योगदर्शन के समाधिपाद में नौ सूत्रों द्वारा उपाय बताये हैं जैसे -

1) अभ्यासवैराग्याभ्या तन्निरोध (1-14)।
2) ईश्वर-प्रणिधानाद् वा (1-27)।
3) तत्प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्वाभ्यास (1-36)
4) प्रच्छर्दन-विधारणाभ्या वा प्राणस्य (1-38)
5) विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनस स्थितिनिबन्धनी (1-39)।
6) विशोका वा ज्योतिष्मती (1-40)।
7) वीतरागविषय वा चित्तम् (1-41)।
8) स्वप्ननिद्राज्ञानालबं वा (1-42) और
9) यथाभिमतध्यानाद् वा (1-43)।

साधनपाद में भी तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, ध्यान, योगागानुष्ठान, प्रतिपक्षभावन, इत्यादि साधनाए तथा उसके फल बताये हैं।

5 संयम

योगदर्शन के विभूतिपाद में धारणा, ध्यान और समाप्ति इन तीनो की एकत्र साधना को "सयम" कहा है। जैसे - परिणामत्रय-सयम (3-17)। प्रत्यय-सयम (3-19)। कायरूपसयम (3-21)। कर्मसयम (3-23)। मैत्र्यादि सयम (3-24)। बलसयम (25)। सूर्यसयम- (27)। चद्रसयम (28)। ध्रुवसयम -(29)। नाभीचक्रसयम -(30)। कण्ठकूपसयम- (31)। कूर्मनाडीसयम - (32)। मूर्धज्योतिसयम- (33)। प्रातिभज्ञानसयम (35)। स्वार्थसयम- (36)। श्रोत्राकाशसयम- (42)। काथाकाशसंबध सयम-(43)। महाविदेहासयम (44)। स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसयम- (45)। इन्द्रियावस्थासयम -(48)। सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिसयम -(50)। क्षणक्रमसयम -(53)।

इन विविध प्रकार के सयमो में निपुणता आने पर साधक को जिन सिद्धियो की प्राप्ति होती है, उनका निर्देश यथास्थान किया है। इन सभी प्रकार के सयमो में निपुणता के कारण जो सिद्धिया प्राप्त होती है उनका स्वरूप ज्ञानमय बतलाया है, याने योगी को विविध प्रकार का अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति इन सयमसिद्धयो के रूप मे प्राप्त होती है जैसे - (1) परिणाम त्रयसंयमात्अतीत-अनागतज्ञानम्। (2) सस्कार-साक्षात्करणात पूर्वजातिज्ञानम्। (3) भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्। (4) चन्द्रे (सयमात्) ताराव्यूहज्ञानम्। (5) ध्रुवे (सयमात्) तद्गतिज्ञानम्। (6) नाभिचक्रे (सयमात्) कायव्यूहज्ञानम्। (7) हृदये (सयमात्) चित्तसंविद्। (8) स्वार्थसयमात् पुरुषज्ञानम्। (9) क्षणक्रमसयमात् विवेकज ज्ञानम्। (10) तज्जयात् (अर्थात् सयमजयात्) प्रज्ञालोक इत्यादि।

द्वितीयपाद मे ही "अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सनिधौ वैरत्याग (35)। सत्यप्रतिष्ठाया क्रियाफलाश्रयत्वम्-(36)। अस्तेयप्रतिष्ठाया सर्वरत्नोपस्थानम् -(37)। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया वीर्यलाभ-(38)। अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथतासबोध (39)। शौचात् स्वागजुगुप्सा परैरससर्ग-(40)। सत्त्वशुद्धि सौमनस्य एकाग्रता-इन्द्रियत्रय- आत्मदर्शन-योग्यत्वानि च - (41)। सतोषाद् अनुत्तम सुखलाभ (42)। कायेन्द्रियसिद्धि अशुद्धिक्षयात् तपस (43)। स्वाध्यायाद् इष्टदेवतासप्रयोग (44) और समाधिसिद्धि ईश्वरप्रणिधानाद्-(45)। इन सूत्रो द्वारा यमो और नियमो मे भी विविध प्रकार की सिद्धियों का लाभ बताया है। "समाधिसिद्धि ईश्वरप्रणिधानाद्" इस सूत्र में ईश्वरप्रणिधान से समाधिसिद्धि अर्थात् योग की अंतिम अवस्था की प्राप्ति होती है, यह उद्घोषित करते हुए पतंजलि

ने भक्तियोग की श्रेष्ठता की ओर निश्चित सकेत किया है। इन सयम साधनाओ के समान जन्म-औषधि-मत्र-तन्त्र से भी सिद्धियाँ योगसाधना से आनुषगिकता से प्राप्त होती है, परतु साधक ने इन मे फसना नही चाहिए क्यो कि आत्यतिक ध्येय (समाधिलाभ) के मार्ग मे सिद्धियां विघ्न स्वरूप होती है "ते समाधौ उपसर्गा - (3-38)। पातजल योगदर्शन के अतरग की सक्षिप्त कल्पना, उसके कुछ महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दो के परिचय से आ सकती है। अत यहाँ उनका सक्षेप मे परिचय देते हैं। स्वयं पतजलि ने ही अपने सूत्रों मे पारिभाषिक शब्दो का जो स्पष्टीकरण दिया है, उसी के आधार पर पारिभाषिक शब्दो के सामान्य अर्थ विशद करने के लिये अनन्तपडित कृत वृत्ति की सहायता हमने ली है।

योग : चित्तवृत्तियों का निरोध।

वृत्ति प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। ये चित्त के परिणामभेद है।

प्रमाण : प्रत्यक्ष अनुमान और आगम।

विपर्यय · मिथ्याज्ञान तथा सशय।

विकल्प · वस्तु के अभाव मे केवल शब्द मात्र के ज्ञान से उसकी कल्पना करना।

निद्रा : चित्त की भावशून्य अवस्था।

स्मृति अनुभूत विषय का अत करण मे चिरस्थायी संस्कार।

अभ्यास · चित्त को वृत्तिरहित अवस्था मे स्थिर रखने का प्रयत्न।

वैराग्य ऐहिक एवं पारलौकिक सुखोपभोगो के प्रति निरिच्छता।

परवैराग्य . तत्त्वज्ञान के कारण। (सत्त्व, रज, तम) गुणो के प्रति आत्यतिक निरिच्छता।

सप्रज्ञातसमाधि वितर्क, विचार, आनद और अस्मिता सहित स्वरूपज्ञान की अवस्था।

असंप्रज्ञात समाधि वितर्कादि विरहित स्वरूपज्ञान की अवस्था। इस अवस्था मे वितर्क, विचार, आदि रुद्ध होते हुए भी उनके संस्कार अवशिष्ट रहते है।

ईश्वर · विशिष्ट "पुरुष", जिसे अन्य पुरुषो (जीवो) के समान "क्लेश" (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश, इन पाच चित्तदोषो को योगशास्त्र मे क्लेश कहते हैं) कर्मविपाक (जाति, आयु और भोग) और वासना, इन से सपर्क नहीं रहता, जो सर्वज्ञ, कालातीत और ब्रह्मादि देवताओ का भी उपदेशक गुरु है।

जप ईश्वरवाचक प्रणव (ओंकार) के अर्थ का (याने ईश्वर की) चित्त में पुन पुन भावना करना। इससे चित्त एकाग्र होता है।

चित्तविक्षेप शारीरिक व्यथा, सुस्ती, सशय, प्रमाद, शरीर की जडता, विषयासक्ति, विपरीत ज्ञान, चित्त की अस्वस्थता, ये और अन्य दोष योग साधना मे चित्तविक्षेप रूप विघ्न डालते है। एकाग्रता की साधना से ही इन विक्षेपो को हटाया जा सकता है।

समापत्ति . वृत्तियो का क्षय होने के कारण चित्त स्फटिक मणि के समान अत्यत निर्मल होता है। ऐसे चित्त की ध्याता, ध्येय एवं ध्यान से सरूपता या तन्मयता। समापत्ति के चार भेद होते है 1) सवितर्का- जिसमे शब्द एवं अर्थ का ज्ञान और विकल्पकी प्रतीति होती है। (2) निर्वितर्का- इसमे शब्दअर्थ विरहित (शून्यवत्) विशुद्ध प्रतीति होती है।

3) सविचारा (4) निर्विचारा सवितर्का और निर्वितर्का समापत्ति स्थूलविषयक होती है। सविचारा और निर्विचारा सूक्ष्मविषया होती है। सूक्ष्मविषयत्व का अर्थ है मूलप्रकृति (प्रधान) मे विलय या पर्यवसान होना।

सबीज समाधि = उपरिनिर्दिष्ट समापत्तियो का ही नाम है सबीज समाधि। इसी को "सम्प्रज्ञात समाधि" भी कहते है। इस मे उत्कृष्ट निपुणता प्राप्त होने से ऋतम्भरा प्रज्ञा का लाभ होता है।

ऋतम्भरा प्रज्ञा - (ऋत सत्य बिभर्ति, कदाचिदपि न विपर्ययेण आच्छाद्यते, सा ऋतम्भरा प्रज्ञा।) अर्थात जिस से सत्य की ही प्रतीति होती है, विपरीत अथवा संशयग्रस्त प्रतीति कदापि नही होती, ऐसी श्रेष्ठ प्रज्ञा। श्रौतप्रज्ञा और अनुमानप्रज्ञा से यह ऋतम्भरा प्रज्ञा भिन्न होती है। वह सामान्यविषया होती है, यह विशेषविषया होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के कारण जो संस्कार होता है, वह समाधिलाभ के मार्ग मे बाधा डालने वाले अन्य सभी सस्कारो को नष्ट करता है।

निर्बीज समाधि - सप्रज्ञात या सबीज समाधि का निरोध होने पर जब सारी चित्तवृत्तिया अपने मूल कारण मे विलीन होती हैं तब केवल जो केवल सस्कार मात्र वृत्ति रहती है, उसका भी निषेध (नेति नेति) करने पर पुरुष (जीवात्मा) को जो शुद्धतम अवस्था प्राप्त होती है उसी का नाम है निर्बीज या असप्रज्ञात समाधि। योग साधनाओ का अतिम उद्दिष्ट यही अवस्था है।

6 "साधनपाद-परिभाषा"

क्रियायोग = तप, स्वाध्याय (ओंकार पूर्वक मत्रजप) और ईश्वरप्रणिधान (सारी क्रियाओ का ईश्वर के प्रति समर्पण) इन तीनो को मिला कर क्रियायोग कहते हैं। समाधि अवस्था की प्राप्ति के लिए क्रियायोग की त्रिविधा साधना आवश्यक है।

क्लेश = अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश इन पाच कारणो से दु ख होते हैं। इन दु खकारणो को "क्लेश" कहते हैं जिनका निवारण ध्यानयोग की साधना से होता है।

अविद्या = अनित्य में नित्यता की, अपवित्र मे पवित्रता की, दु ख मे सुख की और अनात्म वस्तु मे आत्मा की प्रतीति। (अर्थात् सर्वत्र विपरीत बुद्धि)। यह अविद्या ही अन्य चार क्लेशो की मूल है।

अस्मिता = द्रष्टा (चेतन पुरुष) और उसकी दर्शनशक्ति (या सात्त्विक बुद्धि) इन मे चैतन्य और जडता के कारण भिन्नता होते हुए भी, उनकी एकात्मता मानना। (लौकिक भाषा मे आज कल अस्मिता शब्द का प्रयोग अहकार या स्वाभिमान के अर्थ में सर्वत्र होता है।)

राग = पूर्वानुभृत सुखसंवेदना की स्मृति के कारण उस सुख के प्रति आसक्तता या आकर्षण।

द्वेष = पूर्वानुभृत दु खसवेदना की स्मृति के कारण उस के प्रति तिरस्कार की भावना।

अभिनिवेश = पूर्वजन्म में मृत्यु का अनुभव आने के कारण इस जन्म मे शरीरवियोग (अर्थात मृत्यु) न हो ऐसी तीव्र इच्छा। ऐसी इच्छा प्रत्येक प्राणी मात्र मे रहती है।

दृश्य = प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है, इन्द्रिया और पच महाभूत जिसका परिणाम है, भोग और अपवर्ग (मोक्ष) जिसका प्रयोजन है, ऐसे बुद्धितत्त्व को दृश्य कहते हैं।

द्रष्टा - चेतनास्वरूप पुरुषतत्त्व। अपने समीपवर्ती बुद्धितत्त्व मे प्रतिबिंबित शब्द, स्पर्श आदि विषयो से जो अनुकूल या प्रतिकूल अनुभूति आती है, उसकी सवेदना पुरुष पाता है। अर्थात् दृश्य है प्रकृति और द्रष्टा है पुरुष। प्रकृति और पुरुष साख्य शास्त्र के परिभाषिक शब्द है। उसी अर्थ मे दृश्य और द्रष्टा तथा स्व और स्वामी शब्द योगशास्त्र में प्रयुक्त होते हैं।

संयोग = स्व (दृश्य) शक्ति और स्वामिशक्ति (द्रष्टा की शक्ति) अथवा स्व और स्वामी, एक दूसरे से विभिन्न हैं। उनके स्वरूप का ज्ञान होने का कारण है उनका संयोग (स्वरूपसयोग)। इस सयोग का कारण है अविद्या।

गुणपर्व = विशेष, अविशेष, लिगमात्र और अलिग इन चारो को गुणपर्व कहते हैं। ये चारो शब्द पारिभाषिक है। उनके अर्थ -

विशेष = पचमहाभूत और इन्द्रिया।

अविशेष = पच तन्मात्रा (शब्दादि) और अन्त करण

लिंगमात्र = बुद्धि

अलिंग = अव्यक्त प्रकृति।

कैवल्य = दृश्य और द्रष्टा (प्रकृति-पुरुष) की विभिन्नता का ज्ञान स्थिर होने पर उनका सयोग भी समाप्त होता है। इस सयोग के अभाव में द्रष्टा की अवस्था को कैवल्य कहते हैं।

योगाङ्ग = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठ साधनाओ को प्रत्येकश योगाङ्ग कहते है। इन के अभ्यास से सब प्रकार की अशुद्धिया नष्ट हो कर जो बुद्धि में विशुद्धता आती है, उससे साधक को "विविकेख्याति" प्राप्त होती है।

विवेकख्याति = दृश्य और द्रष्टा (प्रकृति-पुरुष) की आत्यतिक विभिन्नता की अनुभूति।

यम = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाच सार्वभौम महाव्रतो को मिला कर "यम" कहते हैं।

नियम = शौच (शारीरिक और मानसिक शुद्धता) सतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान इन पाचो को मिला कर नियम कहते है। (यम-नियमो के पालन से योगमार्ग सुगम होता है। इनमे पूर्णता आने पर सिद्धिया भी मिलती है।

वितर्क = हिंसा, असत्य, परधन का अपहरण, व्यभिचार, और भोगसाधनो का सग्रह। इन के कारण योगसाधना में प्रगति नही हो सकती।

आसन = बैठने की विशिष्ट अवस्था जब स्थिर और सुखकर होती है तब उसे आसन कहते हैं।

प्राणायाम = आसन मे स्थिरता आने पर श्वास और उच्छ्वास का नियत्रण। इसमे रेचक, पूरक और कुभक क्रिया होती है। प्राणायाम से चित्त के रज और तम क्षीण हो कर वह सत्त्वमय होता है।

प्रत्याहार = ज्ञानेन्द्रियो का अपने निजी विषय से सबध तोडना। ऐसा होने पर इन्द्रियाँ चित्तस्वरूप की ओर अभिमुख हो कर साधक के अधीन होती हैं और साधक इन्द्रियो पर विजय पाता है।

7 "विभूतिपाद"

धारणा = शरीर के नाभिचक्र, नासिकाग्र, भ्रूमध्य आदि विशिष्ट स्थान पर चित्त को स्थिर करना।

ध्यान = जिस स्थान पर चित्त की धारणा हुई हो, उसी का अखडित भान रहना।

समाधि = ध्यानावस्था में जब "स्वरूपशून्यता" (अपनी निजी प्रतीति का अभाव) आता है, तब उस आत्यंतिक एकाग्र अवस्था को समाधि (सम्यक् आधीयते मन यत्र) कहते हैं।

संयम = एक ही विषय पर धारणा, ध्यान और समधि होना।

प्रज्ञालोक = सयम में निपुणता आने पर दृश्य और द्रष्टा की विभिन्नता का बुद्धि में प्रकाश होना।

अन्तरंग और बहिरंग = आठ योगागों के दो विभाग। यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार योगांग सबीज (सप्रज्ञात या सालबन) समाधि के "बहिरग" हैं और धारणा, ध्यान, तथा आत्यंतिक एकाग्रता उसी समाधि की साधना मे "अन्तरग" होते हैं। परंतु वे ही निर्बीज (असप्रज्ञात या निरालबन) समाधि के बहिरग होते हैं।

निरोध-परिणाम = चित्त की "व्युत्थान अवस्था" (अर्थात् क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्त अवस्था) और "निरोध अवस्था" (आत्यंतिक सात्विकता का परिणाम) में जो सस्कार होते हैं, उनके कारण इन दो अवस्थाओं का एक का दूसरे से जो सबध रहता है, उसे "निरोध-परिणाम" कहते हैं।

समाधि-परिणाम = "निरोधपरिणाम" की अवस्था मे व्युत्थान-सस्कार का क्षय और निरोध सस्कार का उदय यथाक्रम होता है। इस समाधि परिणाम में चित्त के विक्षेप धर्म का सर्वथा लय हो कर, एकाग्रतारूप धर्म का उदय होता है। यह अवस्था आने पर चित्त में विक्षेपधर्म (अर्थात् सर्वार्थता या चचलता) का उद्रेक नहीं होता। निरोध परिणाम से यह चित्त की उच्चतर अवस्था है।

एकाग्रता-परिणाम = चित्त की एकाग्रता में निपुणता आने पर शान्त (पूर्वानुभूत) और उदित (वर्तमान) वृत्तिविशेष समान से हो जाते है। उनमे कोई विशेषता नहीं रहती।

परिणाम : चित्त की एकाग्रता के कारण उसके पूर्वधर्म की निवृत्ति हो कर उसमें दूसरे धर्म का उदय होना। उपरि निर्दिष्ट त्रिविध चित्त परिणामो के समान, स्थूल सूक्ष्म भूतों तथा कर्मेन्द्रियों एव ज्ञानेन्द्रियों मे धर्म, लक्षण और अवस्था स्वरूप तीन परिणाम होते हैं और उनके सयम मे निपुणता आने पर योगी को भूत और भविष्य का ज्ञान होता है।

धर्मी = वस्तु के धर्म तीन प्रकार के होते हैं 1) शान्त (अपना कार्य समाप्त होने पर समाप्त) 2) उदित (वर्तमान व्यापार करने वाले) और 3) शक्तिरूप मे रहने वाले। इन त्रिविध धर्मों से जो युक्त होता है उसे "धर्मी" कहते है, जैसे सुवर्ण धर्म है, उससे बनने वाले विविध अलकार धर्मी होते है।

अपरान्त = शरीर का वियोग।

भोग = सत्त्व (प्रकृति का ही सुखरूप परिणाम) अचेतन है और पुरुष चेतन है। अत दोनो मे भिन्नता है। परतु पुरुष को बुद्धिसयोग के कारण जो सुखसवेदना होती है वही भोग है।

बन्ध = पुरुष और चित्त का शरीर मे सबंध। यह सबध कर्म के कारण होता है। यह सबध ही बन्ध है।

जय = वशीकरण।

महाविदेहा = देह की ममता या अहता से विमुक्त चित्तवृत्ति।

अर्थवत्त्व = त्रिगुणों की वह शक्ति जिससे भोग और अपवर्ग (मुक्ति) की प्राप्ति होती है।

कायसम्पत् = रूप, लावण्य, बल और कठोरता इत्यादि शारीरिक गुण।

विकरणभाव = इन्द्रियों का शरीरनिरपेक्ष व्यापार। इन्द्रियों की पचविध अवस्थाओं पर सयम करने में निपुणता आने पर यह सिद्धि प्राप्त होती है।

विशोका सिद्धि = अन्त करण के सभी भावों पर प्रभुता तथा सर्वज्ञता। अन्त करणजय से यह सिद्धि प्राप्त होती है।

मधुमती सिद्धि = प्रधान (मूलप्रकृति) को आत्मवश करना। इस सिद्धि की प्राप्ति होने पर योगी को देवता सहयोग देते है।

स्थानी = देव देवता।

कैवल्य = बुद्धि की क्रियानिवृत्ति और पुरुष की भोगनिवृत्ति। इसी को बुद्धि और पुरुष का "शुद्धिसाम्य" कहा है।

8 "कैवल्यपाद"

प्रकृत्यापूरण := पूर्वजन्म के गुणदोषों का उत्तर जन्म में संक्रमण।

निर्माणचित्तानि = योगी ने स्वयं निर्माण किए हुए अनेक शरीरों में निर्मित अनेक चित्त।

शुक्ल कर्म = शुभ फलदायक कर्म।

कृष्ण कर्म = अशुभ फलदायक कर्म।

भगवद्गीता आध्यात्मिक विषयों में सभी दृष्टि से परिपूर्ण उपनिषद् है। इसके प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में "योगशास्त्र" शब्द आता है। अर्थात् भगवद्गीता योगशास्त्र परक है। इसमें योग शब्द का प्रयोग 80 स्थानों पर हुआ है, जिनमें अधिकतर वह कर्मयोग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भगवद्गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और राजयोग का प्रतिपादन हुआ है। इनमें मुख्य प्रतिपाद्य योग के विषय में मतभेद है। लोकमान्य तिलकजी ने अपने प्रख्यात प्रबन्ध "गीतारहस्य" में गीता में कर्मयोग का ही प्राधान्य होने का प्रतिपादन किया है। म गाधी गीता को अनासक्ति योग परक मानते हैं। शंकराचार्य ज्ञानयोग परक कहते हैं और ज्ञानेश्वर जैसे विद्वान सत भक्तियोग पर बल देते हैं। गीता के छटे अध्याय में योगशास्त्र के क्रियात्मक अग का उपदेश हुआ है। इनके अतिरिक्त अध्यात्मयोग, साम्ययोग, विभूतियोग इत्यादि योगो का प्रतिपादन गीता मे मिलता है।

9 "बौद्ध जैन योग"

बौद्ध वाड्मय में भी एक पृथक् सा योगशास्त्र प्रतिपादन हुआ है जिसका स्वरूप पातजल योगपद्धति से मिलता जुलता है। गुह्यसमाज नामक बौद्ध ग्रथ में उस योग का विवरण हुआ है। बौद्ध योगाचार्य "षडग योग" मानते है। उनमे प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साथ अनुमति का अन्तर्भाव है। अनुमति का अर्थ है किसी भी ध्येय का अविच्छिन्न ध्यान जिससे प्रतिभा की उत्पत्ति होती है।

जैन वाड्मय में कलिकालसर्वज्ञ हेमचद्र सूरि का योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद सुप्रसिद्ध है। इसके 12 प्रकाशो में से चतुर्थ से 12 व प्रकाश तक योगविषयक प्रतिपादन आता है। चतुर्थ प्रकार मे बारह भावनाएँ, चार प्रकार के ध्यान, और आसनों के बारे में कहा गया है। पाचवें प्रकाश में प्राणायाम के प्रकारो और कालज्ञान का निरूपण है। छठे प्रकरण मे परकाय-प्रवेश पर प्रकाश डाला है। सातवें में ध्याता, ध्येय, धारणा और ध्यान के विषयो की चर्चा है। आठवें से ग्यारहवे प्रकाशो में क्रमश पदस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान ओर शुक्ल ध्यान का स्वरूप समझाया है। बारहवे प्रकाश मे योग की सिद्धि का वर्णन आता है। इस ग्रथ पर स्वय ग्रथकार ने वृत्ति लिखी है जिसका श्लोक परिमाण है बारह हजार। दूसरी प्रसिद्ध टीका है इन्द्रनन्दीकृत योगिरमा।

योगविषयक चर्चा मे मत्रयोग, लययोग और हठहोग की भी चर्चा होती है। मत्रो के जप मे साधक की अन्त स्थ शक्ति उद्बुद्ध होती है और वह अन्त मे महाभाव समाधि की अवस्था में जाता है, यह मत्रयोग का अभिप्राय है।

लययोग के अनुसार अन्नमय, प्राणमय, मनोमय इत्यादि जीव के पचकोशों का आवरण, बिन्दुध्यान की साधना के द्वारा शिथिल होकर, कुलकुण्डलिनी शक्ति के उत्थान के कारण वह सहस्रार चक्रस्थित शिवतत्त्व मे विलीन होता है। इसी को महालय समाधि कहते है।

10 "हठयोग"

हठयोग का प्रतिपादन घेरण्डसहिता (घेरण्डाचार्यकृत) और हठयोग-प्रदीपिका (आत्मारामकृत) इन दो ग्रथों मे सविस्तर हुआ है। मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ को हठयोग के प्रमुख आचार्य माना गया है। शैव सम्प्रदाय, नाथ सप्रदाय एव बौद्ध योगाचार सप्रदाय में हठयोग की साधना पर बल दिया गया है।

गोरक्षनात कृत सिद्धिसिद्धान्त-पद्धति में हठयोग का स्वरूप बताया है -

हकार कीर्तित सूर्य ठकारश्चन्द्र उच्यते। सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते।।

अर्थात् ह - सूर्यनाडी (दाहिनी नथुनी) और ठ - चद्रनाडी (बायी नथुनी) से बहने वाले श्वासवायु के ऐक्य को हठयोग कहते हैं। यह क्रिया अत्यत कष्टसाध्य है।

पातजल योग शास्त्र के समान हठयोग शास्त्र की भी विशिष्ट परिभाषा है। यहा हम घेरण्डसहिता के अनुसार कुछ महत्वपूर्ण परिभाषिक शब्दो का विवरण देते हैं, जिससे हठयोग का स्वरूप अशत स्पष्ट होगा।

शोधनकर्म = धौती, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक और कपालभाति। इन क्रियाओ को शोधनक्रिया या षट्क्रिया कहते हैं।

धौति = (चार प्रकार) अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन।

अन्तर्धौति = (चार प्रकार) वात्यसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत (या प्रक्षालन)

दन्तधौति = (4 प्रकार) दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र।

हृद्धौति = (3 प्रकार) दण्ड, वमन और वस्त्र।

बस्ति = दो प्रकार जल और शुक्ल।

कपालभाति = (3 प्रकार) वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम।

नेति, नौली और त्राटक के प्रकार नही हैं।

इन षट् क्रियाओं से घटशुद्धि (अर्थात् शरीर की निर्मलता) होती है और वह सब प्रकार के रोगों से तथा कफ, वात, पित्त के दोषों से मुक्त होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होता है।

आसनों के सबंध में कहा है कि उनसे शरीर में दृढता आती है। "आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः" सृष्टि में जितने भी जीवजन्तु हैं, उनकी शरीरावस्था के अनुसार आसन हो सकते हैं। उनमें 84 आसन करने योग्य है और उनमें भी अधोलिखित 32 आसन उत्तम माने जाते हैं .

सिद्ध पद्मं तथा भद्र मुक्तं वज्र च स्वस्तिकम्। सिंहं च गोमुख वीरं धनुरासनमेव च।।
मृतं गुप्तं तथा मत्स्य मत्स्येन्द्रासनमेव च। गोरक्ष पश्चिमोत्तानम् उत्कट संकट तथा।।
मयूर कुक्कुट कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्। उत्तानमण्डुकं वृक्ष मंडुकं गरूडं वृषम्।।
शलभ मकरम् उष्ट्र भुजंग योगमासनम्। द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च।।

इनमें सिद्ध, पद्म, भद्र, मुक्त, वज्र, स्वस्तिक, सिह, मृत, उग्र, गोरक्ष, मकर और भुजंग इन बारह आसनों के विशेष लाभ बताये हैं।

पद्म, भद्र, स्वस्तिक, सिंह और भुजग आसन व्याधिनाशक हैं। मकर और भुजग आसन देहाग्निवर्धक हैं। पद्म, स्वस्तिक और उग्र आसन मरुत्सिद्धिदायक हैं और सिद्ध, मुक्त, वज्र, उग्र तथा गोरक्ष आसन सिद्धिदायक हैं।

मुद्रा . (कुल प्रकार 25) महाभद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालधर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोलि, शक्तिचालिनी, तडागी, माण्डूकी, शाम्भवी, पार्थिवी-धारणा, आम्भसी-धारणा, आग्नेयी-धारणा, वायवी-धारणा, आकाशी-धारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातगिनी और भुजंगिनी।

सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के हेतु मुद्राओं की साधना आवश्यक मानी है।

(तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्। ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्ता मुद्राभ्यास समाचरेत्।।)

हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थापन अत्यत महत्त्वपूर्ण माना है। किंबहुना कुण्डलिनी का उत्थापन ही इस योग का उद्दिष्ट है। कुण्डलिनी के उत्थान से सर्व सिद्धियों की प्राप्ति और व्याधि तथा मृत्यु का विनाश होता है।

प्रत्याहार से धीरता की प्राप्ति होती है। चचल स्वभाव के कारण बाहर भटकने वाले मन को आत्माभिमुख करना यही प्रत्याहार है।

प्राणायाम से लाघव प्राप्त होता है। वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में प्राणायाम नहीं करना चाहिए तथा उसका प्रारभ नाडीशुद्धि होने पर ही करना चाहिए। नाडीशुद्धि के लिये समनु प्राणायाम आवश्यक होते हैं। समुन के तीन प्रकार होते हैं। निर्मनु, वातसार धौति का अपर नाम है। प्राणायाम मे कुम्भक क्रिया का विशेष महत्त्व होता है। कुम्भक के आठ प्रकार

सहित सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा। भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भका ।।

प्राणायाम की सिद्धता के तीन लक्षण होते हैं। प्रथम लक्षण शरीर पर पसीना आना। द्वितीय - मेरुकम्प और तृतीय लक्षण है भूमित्याग अर्थात् शरीर भूमि से ऊपर उठना। यह प्राणायाम की उत्तम सिद्धता का लक्षण है।

खेचरत्व, रोगनाश शक्तिबोधस्तथोन्मनी। आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।।

यह प्राणायम की फलश्रुति है।

इस शास्त्र में शरीरस्थ वायु के दस प्रकार, स्थान और क्रिया, भेद से माने जाते हैं।

हृदयस्थान मे प्राण। गुद्स्थान मे अपान। नाभिस्थान में समान। कठस्थान में उदान। व्यान सर्व शरीर में व्याप्त होता है। इन पाच वायुओं के अतिरिक्त, नाग = चैतन्यदायक, कूर्म = निमेषणकारक, कृकल = क्षुधातृषाकारक, देवदत्त = जृम्भा (जभई) कारक और धनजय = शब्दकारक होता है।

ध्यान का फल है आत्मसाक्षात्कार। ध्यान के तीन प्रकार 1) स्थूलध्यान हृदयस्थान में इष्ट देवता की मूर्ति का ध्यान। 2) ज्योतिर्मयध्यान इसके दो प्रकार होते हैं (अ) मूलधारचक्र के स्थान में प्रदीपकलिकाकृति ब्रह्मध्यान (आ) भ्रूमध्यस्थान में ज्वालावलीयुक्त प्रणवाकार का ध्यान। 3) सूक्ष्मध्यान शाम्भवी मुद्रा के साथ नेत्ररन्ध्र में राजमार्गस्थान पर विहार करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान। हठयोग शास्त्रकार सूक्ष्मध्यान का सर्वोत्कृष्ट महत्त्व बताते हैं।

राजयोग के समान हठयोग का भी अतिम अग है समाधि। "घटात् भिन्न मन कृत्वा ऐक्य कुर्यात् परात्मनि।" अर्थात् मन को शरीर से पृथक् कर परमात्मा में स्थिर रखना यह समाधि का एक अभ्यास है, तथा "सच्चिदानन्दरूपोऽहम्" यह धारणा रखना दूसरा अभ्यास है। हठयोग की षडग साधना की परिणति समाधि की साधना में होती है। घेरण्डसहिता के अनुसार शांभवी, खेचरी भ्रामरी और योनिमुद्रा की तथा स्थूलध्यान की साधना से समाधि सुख का लाभ साधक को होता है।

शाम्भवीमुद्रा में ध्यानयोग समाधि की साधना से दिव्य रूपदर्शन का आनंद मिलता है।

खेचरी मुद्रा में नादयोग समाधि की साधना से दिव्य शब्द- के श्रवण का आनद मिलता है।

योनिमुद्रा में लययोग समाधि की साधना से दिव्य स्पर्शानन्द का अनुभव आता है। इस प्रकार दिव्य शब्द स्पर्शादि के अनुभव को समाधि सुख कहा है। इनके अतिरिक्त भक्तियोगसमाधि (स्वकीये हृदये ध्यायेद् इष्टदेवस्वरूपकम्) और राजयोगसमाधि (मूर्च्छाकुम्भकेन भ्रुवोरन्तरे आत्मनि मनसो लय.) मिला कर समाधि के छह प्रकार माने जाते है। हठयोग की सपूर्ण साधना किसी अधिकारी मार्गदर्शक गुरु के आदेशानुसार ही करना आवश्यक है, अन्यथा विपरीत परिणाम हो सकते है।

11 "भक्तियोग"

राजयोग और हठयोग के समान भक्तियोग का प्रतिपादन योगशास्त्र के अन्तर्गत होता है। पाश्चात्य विद्वानो में कुछ विद्वानो ने भक्तितत्त्व का मूल ईसाई मत मे बताते हुए भारत मे उसका प्रचार ईसाई धर्म के कारण माना है। परन्तु उनका यह मत दुराग्रहमूलक एव निराधार होने के कारण भारतीय विद्वानो ने अनेक प्रमाणो से उसका खडन किया है। ऋग्वद के सभी सूक्त देवतास्तुति प्रधान है और उन सभी स्तुतियों मे देवता विषयक भक्तिभाव उत्कटता मे व्यक्त हुआ है। परतु सहिता और ब्राह्मणो में "भक्ति" शब्द का अभाव है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे

"यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ।।"

(भावार्थ - जिसके हृदय मे ईश्वर एव गुरु के प्रति परम भक्ति होती है, उसी महात्मा को उपनिषद् मे प्रतिपादित गूढार्थ स्वत प्रकाशित होते है।

वेदान्तर्गत भक्तितत्त्व का सविस्तर विवरण एव सार्वत्रिक प्रचार और प्रसार करने का कार्य भगवान् व्यासने अपने पुराणो द्वारा किया। शैव पुराणों मे शिवभक्ति और वैष्णव पुराणो मे विष्णुभक्ति का एकातिक और आत्यतिक महत्त्व अद्भुत आख्यानो उपाख्यानो एव सवादो द्वारा प्रतिपादन किया है।

श्रीमद्भागवत पुराण रामायण एव महाभारतान्तर्गत भगवद्गीता भक्तिमार्गो वैष्णवो के परम प्रमाण ग्रथ है। श्रीमद्भागवत तो भक्तिरस का अमृतोदधि है। अहिर्बुध्न्यसंहिता, ईश्वरसंहिता, कपिंजलसंहिता, जयाख्यसंहिता इत्यादि पाचरात्र मतानुकूल संहिताओं मे भक्तियोग का अनन्य महत्व प्रतिपादन किया है। सपूर्ण पाचरात्र वाङ्मय भक्ति का ही महत्त्व प्रतिपादन करता है। श्रीमद्भागवत मे

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसवनम्। अर्चन वदन दास्य सख्यम् आत्मनिवेदनम्।।

इस प्रसिद्ध श्लोक मे भक्ति की नौ विधाएँ बतायी है। उनमे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, परमात्मा के प्रति दृढ अविचल श्रद्धा निर्माण करते है। पादसेवन, अर्चन और वन्दन, सगुण उपासना की साधना के अग है और दास्य सख्य तथा आत्मनिवेदन भक्त के आतरिक भाव से सबधित अग हैं। अतिम आत्मनिवेदनात्मिका भक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। अपना सारसर्वस्व परमात्मा के प्रति समर्पण करते हुए केवल उसकी कृपा का ही अपना एकमात्र आधार मानना यही इस अतिम भक्ति का स्वरूप है।

इस भक्तियोग का एक प्रमाणभूत शास्त्रीय ग्रथ है 'नारदभक्तिसूत्र"। इसमे 84 सूत्रो मे भक्तियोग का यथोचित प्रतिपादन किया है। भक्ति का स्वरूपलक्षण, "सा तु अस्मिन् परमप्रेमस्वरूपा अमृतस्वरूपा च।" (अर्थात भक्ति परमात्मा के प्रति परप्रेममय होती है और वह मोक्ष स्वरूप भी है, याने भक्ति ही परम पुरुषार्थ है।) इन प्रारंभिक सूत्रो मे बता कर, सूत्रकार नारद अपना अभिप्राय "नारदस्तु तदर्पिताऽखिलाचारता, तद्विस्मरणे परमव्याकुलता चेति" (अर्थात् अपना सारा व्यवहार ईश्वरार्पण बुद्धि से करना और उस आराध्य देवता का विस्मरण होते ही हृदय मे अत्यत व्याकुलता निर्माण होना। इस सूत्र मे व्यक्त करते है। नारद भक्तिसूत्र मे भक्ति का विभाजन 11 प्रकार की आसक्तियो मे किया है।

1) **गुणमाहात्म्यासक्ति** : नारद, व्यास शुक, शौनक, शाण्डिल्य, भीष्म और अर्जुन इस आसक्ति के प्रतीक है।

2) **रूपासक्ति** . इसके उदाहरण है व्रज की गोपस्त्रियाँ।

3) **पूजासक्ति** : लक्ष्मी, पृथु, अबरीष और भरत इसके आदर्श है।

4) **स्मरणासक्ति** · ध्रुव, प्रह्लाद, सनक उसके आदर्श है।

5) **दास्यासक्ति** हनुमान, अक्रूर, विदुर इसके उदाहरण है।

6) **सख्यासक्ति** . अर्जुन, उद्धव, सजय और सुदामा इसके आदर्श हैं।

7) **कान्तासक्ति** : रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि भगवान् श्रीकृष्ण की अष्टनायिकाए इसकी आदर्श है।

8) **वात्सल्यासक्ति** · कश्यप-अदिति, दशरथ-कौसल्या, नद-यशोदा, वसुदेव-देवकी इसके आदर्श हैं।

9) **आत्मनिवेदनासक्ति** : अबरीष, बलि, विभीषण और शिबि इसके आदर्श है।

10) **तन्मयतासक्ति** : याज्ञवल्क्य, शुक, सनकादि इसके आदर्श हैं।

11) **परमविरहासक्ति** : व्रज के गोप गोपियाँ और उद्धव इसके आदर्श हैं।

इन 11 आसक्तियों में से किसी न किसी आसक्ति का उदाहरण पौराणिक भक्तों के समान ऐतिहासिक भक्तों के भी जीवन चरित्रों में मिलते हैं तथा उनके काव्यो में यह आसक्तिया सर्वत्र व्यजित होती हैं। इसी भक्ति रस के कारण संतों की वाणी अमृतमधुर हुई है। नास्तिक के भी हृदय में भगवद्भक्ति अंकुरित करने की शक्ति उनके कवित्व में इसी कारण समायी है।

भक्तियोग का तान्विक विवेचन शाण्डिल्यसूत्रो में भी हुआ है। रूपगोस्वामी का भक्तिरसामृतसिधु और उज्ज्वलनीलमणि, मधुसूदन-सरस्वती का भक्तिरसायन, वल्लभाचार्यकृत सुबोधिनी नामक श्रीमद्भागवत की टीका, नारायण भट्टकृत भक्तिचन्द्रिका इत्यादि ग्रथों मे, एव रामानुज, वल्लभ, मध्व, निंबार्क, चैतन्य इत्यादि वैष्णव आचार्यों ने अपने भाष्य ग्रथों में यथास्थान भक्तियोग का विवरण और सर्वश्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है। चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति को "पचम पुरुषार्थ" माना है तथा भक्ति का आविर्भाव परमात्मा की सवित् और ह्लादिनी शक्तिद्वारा होने के कारण, उसे भगवत्स्वरूपिणी माना है। सभी आचार्यों ने "मोक्षसाधनसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी" यह सिद्धान्त माना है।

भक्तिमार्गी आचार्यों नें भक्ति के दो प्रमुख भेद माने हैं। 1) गौणी और 2) परा। गौणी भक्ति याने भजन, पूजन, कीर्तन आदि साधनरूप है और पराभक्ति (ज्ञानोत्तर भक्ति) साध्यरूप है। गौणी भक्ति के दो भेद 1) वैधी (शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आराधना) और 2) रागानुगा (जिसमें भक्ति का रसास्वाद एव परम निर्विषय आनद का अनुभव आता है। साधनरूप गौणी भक्ति के पांच अग हैं। 1) उपासक 2) उपास्य 3) पूजाद्रव्य 4) पूजाविधि और 5) मत्रजप। भगवद्गीता मे

चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। (7-16)

इस श्लोक में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी सज्ञक भक्तों के चार भेद बताते हुए भक्ति के भी चार प्रकार सूचित किये हैं। उनमे से पहले तीन प्रकार को 1) सगुण भक्ति और अतिम प्रकार को निर्गुण भक्ति मानते हैं।

"प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम् अह स च मम प्रिय "

इस वचन से "वासुदेव सर्वम्"- ज्ञानयुक्त भक्ति की सर्वश्रेष्ठता गीता में उद्घोषित की है। ज्ञानी भक्त की भक्ति अहैतुकी, निष्काम होती है। भगवत्सेवा को ही परम पुरुषार्थ मान कर ज्ञानी भक्त की भक्तियोग साधना चलती है।

श्रीमद्भागवत मे भक्ति का व्यापक स्वरूप—

"काम क्रोध भय स्नेहम् ऐक्य सौहृदमेव च। नित्य हरौ विदधतो यान्ति तन्मयता हि ते ।।(10-29-15)

इस श्लोक मे प्रतिपादन किया है। इस वचन के अनुसार भक्तियोग याने ईश्वर से वृत्ति की तन्मयता द्वारा सबंध जोडना। वह सबध चाहे जैसा हो काम का हो, क्रोध का हो, भय का हो, स्नेह, नातेदारी या सौहार्द का हो। चाहे जिस भाव से भगवान् में नित्य निरन्तर अपनी वृत्तिया जोड दी जाये तो वे भगवान से जुडती हैं। वे भगवन्मय हो जाती हैं और उस जीव को भगवान् की प्राप्ति होती है। इसी व्यापक भक्ति सिद्धान्त के कारण हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कस, शिशुपाल जैसे असुरो के ईश्वरद्रोह को "विरोध भक्ति" और गोपियों के शृगारिक आसक्ति को मधुरा भक्ति माना जाता है।

12 "कर्मयोग"

भगवद्गीता मे प्रतिपादित योगशास्त्र के अन्तर्गत कर्मयोग का प्रतिपादन आता है। वस्तुत "कर्मयोग" की संकल्पना भगवद्गीता की ही देन है। गीता के तीसरे अध्याय का नाम है "कर्मयोग" जिसमें कर्म की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। तीसरे अध्याय के तीसरे श्लोक मे ज्ञानयोग और कर्मयोग नामक दो निष्ठाओं का निर्देश हुआ है। पांचवें अध्याय के द्वितीय श्लोक में, सन्यास और कर्मयोग की निःश्रेयस् प्राप्ति की दृष्टि से समानता होते हुए भी "कर्मयोगी विशिष्यते" इस वाक्य में कर्मयोग का विशेष महत्त्व भगवान घोषित करते है। इस कर्मयोग की परपरा विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु के द्वारा प्राचीनतम काल से दीर्घ काल तक चलती रही, परतु वह परम्परा उत्सन्न हो कर, कर्मयोग नष्ट सा हो गया। भगवद्गीता में उसी का पुनरुत्थान किया गया है। वैदिक कर्मकाण्ड और गीतोक्त कर्मयोग में बहुत अन्तर है। कर्मकाण्ड मुख्यतः यज्ञकर्म से संबंधित है। "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" यह सिद्धान्त वैदिक कर्मकाण्ड में माना जाता है। कर्मयोग में चित्तशुद्धि और लोकसंग्रह के हेतु नियत कर्म का महत्त्व माना जाता है। कर्मकाण्ड के अगभूत यज्ञरूप कर्म का फल स्वर्गप्राप्ति है तो "कर्मणैव हि संसिद्धिम् आस्थिता जनकादय" (जनकादिक राजर्षियों को कर्मयोग के आचरण से हि ससिद्धि अर्थात मुक्ति प्राप्त हुई) इस वचन के अनुसार कर्मयोग का फल मुक्ति बताया गया है। परतु "कर्मणा बध्यते जन्तु" यह शास्त्रोक्त सिद्धान्त सर्वमान्य होने के कारण, नियतकर्म के आचरण से मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है, यह प्रश्न उत्पन्न होता है। गीतोक्त कर्मयोग शास्त्र ने उसका उत्तर दिया है।

कर्म से जीव को बन्धन प्राप्त होने का एक कारण है, कर्तृत्व का अहकार और दूसरा कारण है कर्मफल की आसक्ति। कर्मबन्धन के इन दो कारणो को टाल कर, अर्थात् कर्तृत्व का अहकार छोड कर तथा किसी नियत कर्म के फल की आशा

न रखते हुए कर्म का आचरण करने से कर्मबंधन (जो पुनर्जन्म का कारण है) नहीं लगता। इस कौशल्य से कर्म करने से (योगः कर्मसु कौशलम्) चित्तशुद्धि होती है। उससे आत्मज्ञान का उदय हो कर कर्मयोगी को जीवन्मुक्त अवस्था की संसिद्धि प्राप्त होती है। ऐसी आत्मज्ञान पूर्ण जीवन्मुक्त अवस्था में, भगवान् कृष्ण के समान नियत या प्राप्त कर्मों का आचरण करने से "लोकसंग्रह" होता है। आत्मज्ञान (अर्थात् आत्मानुभव) होने पर वास्तविक किसी कर्माचरण की आवश्यकता न होने पर भी, "लोकसंग्रह" के निमित्त कर्मयोग का अनुष्ठान करना नितांत आवश्यकता है।

"लोकसंग्रह" शब्द का अर्थ, श्री शंकराचार्य के अनुसार "लोकस्य उन्मार्गप्रवृत्तिनिवारणम्" और मधुसूदन सरस्वती के अनुसार "स्वधर्मे स्थापनं च" अर्थात् अज्ञानी लोगों को अधार्मिक और अनैतिक कर्मों से परावृत्त करना और स्वधर्म की ओर प्रवृत्त करना, यह सर्वमान्य है। ज्ञानी पुरुष निरहंकार और निष्काम बुद्धि से या ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म नहीं करेंगे और सर्वथा कर्मत्याग या कर्मसंन्यास (जो तत्त्वतः असंभव है) करेंगे तो सामान्य जनता का जीवन दिशाहीन या आदर्शहीन हो कर, उसका नाश होगा। भगवद्गीतोक्त कर्मयोग के वैयक्तिक दृष्ट्या, सत्त्वशुद्धि (अथवा चित्तशुद्धि) तथा सामाजिक दृष्ट्या "लोकसंग्रह" इस प्रकार द्विविध लाभ होने से उसकी श्रेष्ठता मानी है। गीतोक्त कर्मयोग के संबंध अत्यंत मार्मिक एवं चिकित्सक विवेचन महान् देशभक्त एवं तत्त्वज्ञानी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महाराज ने अपने गीतारहस्य या कर्मयोगशास्त्र नामक प्रख्यात मराठी प्रबंध (पृष्ठसंख्या 864) में किया है। इस प्रबन्ध में कर्मयोग विषयक सभी विवाद्य विषयों का सप्रमाण परामर्श लिया गया है। इस ग्रंथ का पुणे के डॉ. आठल्येकर ने संस्कृत में अनुवाद किया है (अप्रकाशित)। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं तथा अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, चीनी आदि परकीय भाषाओं भी इस महान् ग्रंथ के अनुवाद हुए हैं।

13 "ज्ञानयोग"

भगवद्गीता में ज्ञानयोग शब्द का प्रयोग हुआ है परन्तु जिस प्रकार कर्मयोग और भक्तियोग नामक स्वतंत्र अध्याय वहां है, वैसा ज्ञानयोग नामक स्वतंत्र अध्याय नहीं है। ज्ञानयोग का संबंध वेदों के ज्ञानकाण्ड से जोड़ा जा सकता है। ज्ञानकाण्डी विद्वानों का प्रमुख सिद्धान्त है,

"ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" एवं "तत्त्वज्ञानाधिगमात् निःश्रेयसाधिगमः।"

अर्थात् कैवल्य या निःश्रेयस् की प्राप्ति ज्ञान से (तत्त्वज्ञान से) ही होती है। तत्त्वज्ञान शब्द का अर्थ है - वस्तु का जो यथार्थरूप हो, उसका उसी प्रकार से अनुभव करना। ज्ञानयोग (या ज्ञानमार्ग) में इस समस्त विश्व के आदि कारण के, यथार्थ ज्ञान (अर्थात् अनुभवात्मक ज्ञान) को ही निःश्रेयस् का एकमात्र साधन माना जाता है। साथ ही "सोऽहं" (वह विश्व का आदिकारण ही मैं (याने इस पंचकोशात्मक शरीर में प्रस्फुरित होने वाला चैतन्य) हूं) इस अनुभूति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का ज्ञान अध्यात्मविषयक उपनिषदादि ग्रंथों तथा दार्शनिक ग्रंथों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन की साधना से जिज्ञासु के हृदय में, ईश्वरकृपा से या गुरुकृपा से उत्पन्न होता है। ज्ञानयोग में "अधिकार" प्राप्त करने के लिए नित्यानित्य-वस्तु-विवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, यमनियमादि-व्रतपालन और तीव्र मुमुक्षा इन चार गुणों की नितान्त आवश्यकता मानी गयी है। इसी कारण संन्यासी अवस्था में ज्ञानयोग की साधना श्रेयस्कर मानी गयी है। (चित्तशुद्धि परक) कर्मयोग और (भगवत्कृपा परक) भक्तियोग द्वारा, ज्ञानयोग में कुशलता प्राप्त होती है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का भी अभ्यास (तत्त्वानुभूति परक) ज्ञानयोग में प्रगति पाने के लिए आवश्यक होता है। यह प्रगति सात भूमिकाओं या अवस्थाओं में यथाक्रम होता है।

भूमिकाएं :- 1) **शुभेच्छा** : आत्मकल्याण के हेतु कुछ करने की उत्कट इच्छा होना।

2) **विचारणा** : सद्ग्रंथों के श्रवण और चिन्तन से चित्त की चंचलता क्षीण होना।

3) **तनुमानसा** : सप्रज्ञात समाधि के दृढ अभ्यास से, अनाहतनाद, दिव्य प्रकाश दर्शन जैसे अनुभव का सात्त्विक आनंद मिलना।

4) **सत्त्वापत्ति** : लौकिक व्यवहार करते हुए भी अखण्डित आत्मानुसन्धान रहना।

5) **असंसक्ति** : इस भूमिका में स्थित साधक को "ब्रह्मविद्वर" कहते हैं। वह नित्य समाधिस्थ रहता है। केवल प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने के लिये ही वह देहधारण करता है। किसी भी प्रकार की आपत्ति से वह विचलित नहीं होता।

6) **पदार्थभावना** : नित्य आनन्दमय अवस्था में रहना। श्रीमद्भागवत में वर्णित जडभरत की यही अवस्था थी।

7) **तुर्यगा "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"** इस वचन के अनुसार "अहं ब्रह्मास्मि" यह अंतिम अद्वैतानुभूति की अवस्था। ज्ञानयोग का यही अंतिम उद्दिष्ट है।

1 "तांत्रिक वाङ्मय"

संस्कृत भाषा का तात्रिक वाङ्मय सर्वथा अपूर्व है। यह अत्यंत प्राचीन, वैचित्र्यपूर्ण तथा वैदिक वाङ्मय से भी अधिक विस्तृत एव व्यापक है। ॲव्हेलॉन के मतानुसार तंत्रग्रथों की संख्या एक लाख से अधिक थी। कुछ तांत्रिक ग्रंथ ई पू प्रथम शती के माने गये हैं। बहुसख्य तत्रग्रथ शिव-पार्वती संवादात्मक है। शिव पार्वती के विविध स्वरूपों के कारण शैव और शाक्त तत्रों में विविधता निर्माण हुई है। वैष्णव तत्रो में विष्णु के विविध अवतारों द्वारा और बौद्ध तत्रो में बुद्ध द्वारा तत्रज्ञान का प्रतिपादन हुआ है। सस्कृत वाङ्मय में तत्र शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया हुआ है। आपटे के सस्कृत-अंग्रेजी कोश मे इस शब्द के 31 विविध अर्थ दिये हैं। उसी प्रकार वामनाचार्य झळकीकर के न्यायकोश मे इसी एक शब्द के 15 पारिभाषिक अर्थ सोदाहरण दिये हैं। "तन्यते विस्तार्यते बहूनाम् उपकार येन सकृत् प्रवर्तितेन तत् तन्त्रम्" इस प्रकार तत्र शब्द की निरुक्ति माधवाचार्य के जैमिनीय न्यायमाला में दी है। तात्रिक वाङ्मय में अन्तर्भूत होने वाले प्राचीन महान ग्रथ शारदा लिपि में लिखे गये थे। उनमे वामकेश्वर तत्र नामक ग्रंथ में 64 प्रकार के तत्रो के नामो का निर्देश किया है। शाबरतंत्र नामक ग्रथ मे सस्कृत, हिंदी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओं में दैवतसिद्धि के मत्र दिये है। इन्हीं मत्रों को शाबरमत्र कहते हैं। शाबरमत्र में आदिनाथादिक बारह कापालिकों के एवं नागार्जुन, जडभरत, हरिश्चन्द्र, इत्यादि अनेक तत्रमार्ग प्रवर्तकों के नामों का निर्देश किया है।

कुल्लूकभट के अनुसार ईश्वरप्रणीत धर्मग्रन्थ दो प्रकार के होते हैं 1) वैदिक और 2) तात्रिक (द्विविधा हि ईश्वरप्रणीता मत्रग्रथा, वैदिका. तात्रिकाश्च।) जिन धर्मनिष्ठ लोगों की तंत्रमार्ग पर आत्यंतिक निष्ठा होती है, वे तंत्रग्रथों को ही "पंचम वेद" मानते हैं। बंगाल के शाक्त लोग तो वेदों से भी तत्रग्रन्थों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते है। भारतीय सभ्यता और सस्कृति निगमागममूलक मानी जाती है। देवीभागवत (1 5-61) मे "निगम्यते ज्ञायते अनेन इति निगम" तथा वाचस्पति मिश्र के तत्त्ववैशारदी (योगसूत्रो की टीका) मे "आगच्छन्ति बुद्धिम् आरोहन्ति यस्माद् अभ्युदय निःश्रेयसोपाया स आगम:" (1-7) इस प्रकार निगम और आगम शब्दो की नियुक्ति दी गई है। प्राचीन काल मे पारमार्थिक साधना की ये दो धाराये भारत में चली आ रही हैं। छांदोग्य (5-8) और बृहदारण्यक उपनिषद मे वर्णित पचाग्नि विद्या के प्रसगो से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक तथा आगमिक पूजा की पद्धति साथ साथ प्रचलित थी। परपरा के अनुसार आगमशास्त्र के प्रवर्तक आदिनाथ शकर अथवा आदिकर्ता नारायण माने जाते हैं। शारदातिलक के अनुसार

"आगत शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ। तदागम इति प्रोक्त शास्त्र परमपावनम्।।

इस श्लोक मे आगमशास्त्र की ईश्वरमूलकता अथवा अपौरुषेयता बतायी जाती है। तत्रशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रथकार भास्करराय तथा राघवभट्ट के मतानुसार श्रुति के अनुगत होने के कारण तत्रो का "परत प्रामाण्य" है। किन्तु श्रीकण्ठाचार्य आगमो को श्रुति के समान "स्वत प्रमाण" मानते हैं। कुलार्णव तत्र मे कौलागम को 'वेदात्मक शास्त्र' कहा है तो शारदातिलक के टीकाकार राघवभट्ट आगमो (अर्थात् तत्रों को) स्मृतिशास्त्र मानते हैं और उसका अन्तर्भाव वेद के उपासनाकाण्ड मे करते है। इस प्रकार परपरा के अनुसार आगम तत्रशास्त्र वेदतुल्य माना गया है। भेद केवल इतना ही है कि निगम (वेद) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों के लिए ग्राह्य माना है परतु आगम (तत्रविद्या) चारों वर्णो के लिये ग्राह्य है।

व्यापक दृष्टि से तत्रग्रथों के अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्र दो प्रकार के है 1) वेदानुकूल तथा 2) वेदबाह्य। तात्रिक वाङ्मय मे वेदबाह्य तत्रो का प्रमाण भरपूर है। इनके आचार और पूजा प्रकार वैदिक तंत्रो से विपरीत है। वेदानुकूल तत्रो के उपास्यभेद के कारण तीन प्रकार माने जाते है 1) वैष्णवागम (या पाचरात्र अथवा भागवत) 2) शैवागम और 3) शाक्तागम। रामानुज के मतानुसार पाचरात्र आगम विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक है। शैव आगम मे द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत इन तीनों मतों की उपलब्धि होती है और शक्तिपूजक शाक्तागम सर्वथा अद्वैत का प्रतिपादन करता है। रुद्रागम और भैरवागम का अन्तर्भाव शैवागम मे ही होता है। आगमो का चरम उद्देश्य मोक्ष होने पर भी, परवर्ती प्रवाह केवल मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि क्षुद्र तामसी उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रवाहित हुआ और साधु सतों द्वारा वर्जित माना गया। तत्रशास्त्र के सभी विभागों में 1) ज्ञान 2) योग 3) चर्या और 4) क्रिया नामक चार पाद होते हैं। आगमान्त शैव अथवा शुद्ध शैव सप्रदाय का प्रचार दक्षिण भारत मे विशेष है। ये सम्प्रदाय शैव आगमों पर आधारित हैं। शैवागमों की सख्या 28 है जिनमें पति (शिव), पशु (जीव) और पाश (मल, कर्म, माया) इन तीन पदार्थों पर तात्रिक दर्शन का विस्तार किया है। शारीरकसूत्र के पाशुपताधिकरण में "पत्युरसामजस्यात्" (2-2-35) इस सूत्र में शैवागम श्रुतिविरोधी होने के कारण वैदिको के लिये अप्रमाण कहे गये हैं। उसी प्रकार शाक्तागम (विशेषत वामाचार) भी अप्रमाण माना गया है। किन्तु शाक्तो का दक्षिणाचार पथ और वैष्णवागम वैदिकों के लिये प्रमाण माने गये है। शैवागम के कापालिक, कालमुख, पाशुपत और शैव नामक चार प्रकारों मे से अंतिम (शैव) आगम के काश्मीर और शैव सिद्धान्त नामक दो उपभेद माने गये हैं। काश्मीरी आगमों का उत्तर भारत में और अंशत: दक्षिण भारत में प्रचार है। शैवसिद्धान्त का प्रचार केवल दक्षिण भारत में ही है। इस सबध मे यह इतिहास कारण बताया जाता है कि गोदावरी के तटपर भद्रकाली के पीठ में शैवों का निवास था। वहा उनके चार मठ थे। राजेन्द्र चोल जब दिग्विजय के निमित्त संचार करते हुए वहा पहुंचे तब उन्होंने इन शैवों को अपने प्रदेश में वास्तव्य करने की प्रार्थना की। तदनुसार तोडैमंडल और चोलमडल में शैवों ने निवास किया। इसी स्थान से शैव सप्रदाय का दक्षिण भारत में प्रचार हुआ। शैवागम के ग्रथों की रचना इसी काल में मानी जाती है।

पंचाम्नाय : परंपरानुसार आगमों (या तंत्रों) की उत्पत्ति भगवान शिव के पाच मुखो मे मानी गयी है। पाच मुखों के **नाम है** · 1) **सद्योजात** 2) **वामदेव** 3) **अघोर** 4) **सत्पुर** और 5) **ईशान**। इन मुखो से निर्गत आगमों की कुल सख्या 28 **है। पंचाम्नाय के अन्तर्गत 28 आगमों के नाम और शैव तथा रौद्र आगमो में अन्तर्भूत 28 आगमो के नामों मे कुछ साम्य है।**

अट्ठाईस शैवागमों के दो विभाग हैं : 1) शैवागम - कामिक, योजक, चित्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, **अंशुमान और सुप्रभ (या सुप्रभेद)** (कुल 10)। 2) रौद्रिक आगम - विजय, निश्वास, स्वायभुव, आग्नेयक, भद्र, **रौरव, मकुट, विमल, चद्रहास, मुखबिंब, प्रोद्गीत**, ललित, सिद्ध, सतान, नारसिंह, (सर्वोक्त या सर्वोत्तर) परमेश्वर, किरण और पर (या वातुल) (कुल 18)।

64 भैरवागम : श्रीकंठी सहिता मे इस तत्र के "अष्टक" नामक आठ विभाग है। इन अष्टकों के नाम हैं 1) **भैरवाष्टक** 2) **यामलाष्टक**, 3) मताष्टक, 4) मगलाष्टक, भ) चक्राष्टक, 6) बहुरूपाष्टक, 7) वागीशाष्टक और 8) शिखाष्टक। इन आठ अष्टकों में प्रत्येकश. आठ तत्रों का अन्तर्भाव होता है। इस प्रकार भैरवागमों की सख्या 64 मानी गयी है। इनमे **भैरवाष्टक**, यामलाष्टक और मताष्टक के अतिम भाग अप्राप्य होने के कारण 64 सख्या पूर्ण नही होती।

64 तंत्र : आगमतत्त्वविलास में निम्नलिखित 64 तत्रों की नामावली प्रस्तुत की है - स्वतत्र, फेत्कारी, उत्तर, नील, वीर, कुमारी, काल, नारायणी, बाला, समयाचार, भैरव, भैरवी, त्रिपुरा, वामकेश्वर, कुक्कुटेश्वर, मातृका, सनत्कुमार, विशुद्धेश्वर, समोहन, गौतमीय, बृहद्गौतमीय, भूत-भैरव, चामुण्डा, पिंगला, वाराही, मुण्डमाला, योगिनी, मालिनीविजय, स्वच्छदभैरव, महा, शक्ति, चिंतामणि, उन्मत्तभैरव, त्रैलोक्यसार, विश्वसार, तत्रामृत, महाफेत्कारी, वायवीय तोडल, मालिनी, ललिता, त्रिशक्ति, राजराजेश्वरी, महामाहेश्वरोत्तर, गवाक्ष, गांधर्व, त्रैलोक्यमोहन, हसपारमेश्वर, कामधेनु, वर्णविलास, माया, मत्रराज, कुब्जिका, विज्ञानलतिका, लिंगागम, कालोत्तर, ब्रह्मयामल, आदियामल, रूद्रयामल, बृहद्यामल, सिद्धयामल और कल्पसूत्र।

भैरवागम के आठ अष्टकों मे अन्तर्भूत 64 आगमो के नाम इन 64 तत्रो से अलग है।

सूत्रपंचक : निश्वास-सहिता (ई 7 वी शती) नामक ग्रन्थ नेपाल मे प्राप्त हुआ। इस मे लौकिकसूत्र, मूलसूत्र, उत्तरसूत्र, नयनसूत्र और गुह्यसूत्र नामक पाच विभाग हैं। इनमें लौकिकसूत्र उपेक्षित है। उत्तरसूत्र मे 18 प्राचीन शिवसूत्रों का उल्लेख मिलता है।

शुभागमपंचक · वसिष्ठसहिता, सनकसहिता, सनदनसहिता, शुकसहिता और सनत्कुमारसहिता इन पाच आर्ष सहिताओं को "शुभागम" कहते हैं। इन सहिताओं का तात्रिको के समयाचार मे अन्तर्भाव होता है। समयाचार का ही अपरनाम है कौल मार्ग।

श्रीविद्यासंप्रदाय : तात्रिको के इस सप्रदाय मे कादि, हादि और कहादि नामक तीन तत्रभेद माने जाते हैं। कादि विभाग में प्रधान देवता काली है। इस मत मे त्रिपुरा उपनिषद् और भावनोपनिषद् विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते है। हादितमत मे त्रिपुरासुदरी प्रधान देवता है। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् मे इस मत का प्रतिपादन हुआ है। दुर्वासा मुनि हादि विद्या के उपासक माने जाते है।

कहादि-मत मे तारा अथवा नीलसरस्वती प्रधान देवता है। क और ह वर्ण महामत्र है, ककार से ब्रह्मरूपता और हकार से शिवरूपता की प्राप्ति इस मत में मानी जाती है। बगाल मे विरचित तांत्रिक ग्रथों की सख्या अधिक है। श्यामारहस्य, ताराहस्य, छिन्नमस्तामत्ररहस्य, महानिर्वाणतत्र, कुलार्णवतत्र, बृहत्कालीनतत्र, चामुडातत्र, बगलातत्र इत्यादि बगाली आचार्यों के महत्त्वपूर्ण ग्रथों में अन्य तात्रिकों के अनैतिक वामाचार को टाल कर तत्राचार का शुद्धीकरण करने का प्रयास हुआ है।

तात्रिक ग्रथो में उपनिषद, सूत्र, मूलतत्र, सारग्रथ, विधिविधानसग्रह, स्वतत्रप्रबध, विवरण इत्यादि विविध प्रकार होते हैं। परशुराम कल्पसूत्र जैसे ग्रथों को तांत्रिक कर्मकाण्ड मे वैदिक कल्पसूत्रो जैसी मान्यता दी जाती है।

तांत्रिक उपनिषद् ग्रंथ : शैव, शाक्त और वैष्णव सप्रदायों मे मान्यता प्राप्त तात्रिक उपनिषदो की सख्या काफी बडी है। प्रस्तुत कोश में अनेक तंत्रिक उपनिषदो का यथास्थान सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन उपनिषदो की रचनाशैली आपातत वैदिक उपनिषदों के समान है। परतु भाषा की दृष्टि से वे उत्तरकालीन प्रतीत होते है। तात्रिक साधको की दृष्टि मे इन उपनिषदो को महत्त्वपूर्ण स्थान है। तत्रव्याकरण, शैवव्याकरण इत्यादि ग्रथों में तात्रिक-व्युत्पत्ति का मार्गदर्शन किया है। इस पद्धति मे वर्णमाला के अक्षरो के गूढ अर्थों का विवेचन अधिक मात्रा में होता है।

यामलग्रंथ : तांत्रिक आगम ग्रंथों के बाद रुद्र, स्कन्द, विष्णु, यम, वायु, कुबेर और इन्द्र इन देवताओ के नामों से सबधित यामल ग्रथों की रचना हुई। जयद्रथयामल नामक 24 हजार श्लोको का ग्रथ ब्रह्मयामल का परिशिष्ट माना जाता है और पिंगलमत यामल, जयद्रथ यामल का परिशिष्ट है। यामल ग्रंथों के निर्माताओं ने तात्रिक साधना मे जातिभेद को स्थान नही दिया।

सारग्रंथ : इन ग्रथों में तात्रिक विधि-विधानों का सविस्तर प्रतिपादन मिलता है। इस प्रकार के तात्रिक ग्रथो की रचना भारत के सभी प्रदेशों में मध्ययुगीन कालखड में हुई। तंत्रमार्ग की लोकप्रियता सारग्रथो की बहुसख्या से अनुमानित होती है। शंकराचार्यकृत प्रपचसार और लक्ष्मण देशिककृत शारदातिलक इत्यादि सारग्रथों को तात्रिक वाङ्मय में विशेष मान्यता है। वाराहीतत्र

मे आगमों का स्वरूपलक्षण सात प्रकार का कहा है। तदनुसार, सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षटकर्मसाधन 1) शांति, 2) वशीकरण, 3) स्तम्भन, 4) विद्वेषण, 5) उच्चाटन और 6) मारण) और 7) चतुर्विध ध्यान, इन सात विषयों का आगमों में प्रतिपादन होता है।

2 तंत्रशास्त्र और वेद

जिस प्रकार व्याकरणादि को "शास्ति इति शास्त्रम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार शास्त्र माना जाता है, उसी प्रकार आगमो को भी शास्त्र माना जाता है। व्याकरण साधु शब्दप्रयोग का, न्याय प्रमाणप्रमेयादि का, पूर्वमीमासा शास्त्र कर्तव्यपदार्थों का और उत्तर मीमांसा शास्त्र आत्मस्वरूप की प्राप्ति का शासन करते हैं। उसी प्रकार आगम भी पूर्व और उत्तर मीमासा का कार्य संपादन करने के कारण "शास्त्र" कहा जाता है। पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा का अपर नाम है पूर्वतत्र और उत्तरतत्र। इसी कारण पूर्वमीमासा विषयक वाड्मय मे तन्त्रवार्तिक, तन्त्ररहस्य, तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली, तत्रसार, तंत्रशिखामणि इत्यादि तंत्र-शब्दयुक्त ग्रन्थनाम मिलते हैं। जैमिनि के द्वादशाध्यायी मीमासाग्रन्थ मे 11 वें अध्याय का नाम ही तत्राध्याय है। अंतर केवल इतना ही है कि तत्रशास्त्रविषयक, वाराहीतत्र, योगिनीतत्र, इत्यादि ग्रन्थों के नामो में तत्र शब्द अत में मिलता है जब कि मीमासाशास्त्र के ग्रन्थों मे वह आरभ में आता है। इसका कारण यह हो सकता है कि जिस प्रकार आधुनिक समय में विज्ञान (साइस) के प्राधान्य के कारण भाषाविज्ञान, आयुर्विज्ञान, नाडीविज्ञान, भौतिकविज्ञान इत्यादि विज्ञान शब्दयुक्त शास्त्रों के नाम रूढ हो रहे हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में 'तत्र' की प्रधानता के कारण, तत्र शब्द सहित ग्रन्थों के नाम दिये गये। मीमासक अपने कर्मकाण्ड में याग, होम, दान, भक्षण इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार तत्रशास्त्रकार भी याग, होम, महायाग अन्तर्याग, बहिर्याग, यागशाला, देवता, कर्म, प्रयोग, अधिकार इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसमे कर्ता और अनुकर्ता कौन है यह कहना असभव है। तत्र और मीमासा दोनों शास्त्रो की प्राचीनता इस प्रकार के शब्दसाम्य से सिद्ध होती है। वैदिक कर्मों के समान तान्त्रिक कर्मों मे भी अर्थज्ञान सहित मत्रोच्चारण आवश्यक माना गया है। तांत्रिक कर्मों में वैदिक और तात्रिक दोनों मत्रो का उच्चारण होता है। अगस्त्य ऋषि ने तत्रसिद्ध मत्रों के अर्थ का विवरण इसी कारण किया है। वेदमत्रों के प्रत्येक अक्षर में अद्भुत शक्ति होती है यह सिद्धान्त याज्ञिक मीमासको के समान तात्रिकों को भी समत है। वेदों में जिस प्रकार ज्ञान कर्म और उपासना नामक तीन काड होते हैं, उसी प्रकार तत्रों में भी ज्ञान, चर्या और उपासना नामक तीन विभाग होते है। याज्ञिक और तात्रिक इन दोनों परम्परा मे कर्म का प्रारभ करते समय गुरुपरम्परा का अनुस्मरण आवश्यक माना गया है। उसी प्रकार चित्तवृत्ति को दृढ करने के लिए कर्मानुष्ठान करते समय अपने शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों पर श्रीचक्र के भागों का एव उनकी अधिष्ठात्री देवताओ का भावना से विन्यास तत्रसाधक करते हैं। वैदिकों के यागों मे भी "तस्यैव विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमान श्रद्धा पत्नी, शरीरमिध्मम्" इत्यादि मत्रो के अनुसार यज्ञीय पदार्थो की भावना की जाती है। आगम (तंत्र) और निगम (वेद) मार्गों की समानता का यह द्योतक है। "अष्टाचक्रा नवद्वारा देवना पूरयोध्या। तस्या हिरण्मय कोश. स्वर्गो लोको ज्योतिषावृत" यह एक ही मत्र वैदिकों के चयनयाग मे और तात्रिको की साधना में उच्चारित होता है, यद्यपि उसका आशय भिन्न माना जाता है। दक्षिण भारत मे श्रौतयागों का अनुष्ठान करनेवाले प्राय सभी वैदिक विद्वान, तात्रिक पद्धति से श्रीचक्र की उपासना करते है। इस प्रकार वैदिक और तात्रिक मार्गों में प्राचीन काल से अभेद सा माना हुआ दिखाई देता है।

3 उपनिषद और शक्तिसाधना

वेदों में तात्रिक शक्तिरूपों के कुछ नाम पाये जाते हैं जैसे यजुर्वेद के "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च" इस मत्र में श्री एवं लक्ष्मी का नाम आता है। इनका सबध सूर्य की शक्ति तथा सौन्दर्य से माना गया है। मुण्डकोपनिषद के "काली कराली च मनोजवा च। सुलोहिता या च" (4/1) इस मत्र में अग्नि की विविध वर्णों की लपटों में जिह्वा के आरोपण क्रम मे 'काली' नाम आता है किन्तु लौकिक और तांत्रिक व्यवहार में काली इत्यादि सज्ञाओं से मानवाकृति उपास्य देवताविशेष का निर्देश होता है। सामवेद के इन्द्रपरक मत्रो में सूर्य की चर्चा है। तदनुसार शक्तिरूप सूर्य का परिचय मिलता है। सूर्य के प्रकाश में बैठना तथा स्वय को सूर्यशक्ति मे सम्पन्न होते हुये अनुभव करना वैदिकी शक्तिसाधना मानी जाती है। सामवेद में गोपवान् ऋषि की चर्चा है जिसने शरीरस्थ अग्निशक्ति (जो रस-धातुओं का परिपाक करती है) के योगक्षेम की प्रार्थना की है। वाग्देवी का निर्देश पचतत्त्वों से निर्मित आकाश में किया गया है। इस वाग्देवी (अर्थात वाणी) के कारण ही एक, दूसरे के अभिमुख होता है। पितरों की आराधना करने वाले "श्राद्ध" करते हैं। श्रद्धा की शक्ति अर्थात् "श्रद्धादेवी" मानव में रहती है। इसी श्रद्धादेवी या शक्ति के कारण मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' यह सिद्धान्त भगवद्गीता में कहा गया है। इसी प्रकार सामवेद में ज्वालादेवी, अदिति, सरस्वती, गायत्री, तथा गगादेवी की चर्चा की गई है। अथर्ववेद में पशुधन का दायित्व, नारीशक्ति को बताया है। व्यष्टि जीवन में नारी भरण पोषण करने भार्यारूप स्त्री है। समष्टिजीवन में वही शक्ति पृथ्वी या धरा

है, जिसका निर्देश विश्वभरा वसुधानी इत्यादि महनीय शब्दों से किया गया है। अथर्ववेद मे पृथ्वी देवता की उत्पत्ति अश्विनीकुमारों से बताते हुए उसकी स्तुति में विष्णु को उसकी विशालता पर घूमने वाला एव इन्द्र को उसका रक्षक कहा है। अथर्ववेद में इसी पृथ्वी देवता को 'कृष्णा' कहा है। तांत्रिक ग्रथो मे यही कृष्णा 'कालिका' नाम से निर्दिष्ट है। इसी वेद में मंत्रशक्ति से मुर्दे के धुयें से होने वाली, पशु एव मनुष्य का रोगनिवृत्ति की चर्चा मिलती है। मत्रशक्तिशास्त्र का मूल इस प्रकार अथर्ववेद में मिलता है। वैदिक शाक्त साधनाएं विशिष्ट वस्तुओं के माध्यम से की जाती हैं। कृत्या नामक मारणशक्ति एव अशुमती नामक प्रजननशक्ति का उल्लेख अथर्ववेद मे मिलता है। सम्यक क्षात्रशक्ति का स्रोत जलमयी अग्निदेवता को माना है। इन तत्त्वशक्तियों के अतिरिक्त कालशक्ति, अग्निशक्ति, सूर्यशक्ति, रात्रिशक्ति इत्यादि शक्तिओं का निर्देश वेदमत्रों मे मिलता है। लोकतत्र में होने वाली 'छायापुरुष' साधना का मूल ऋग्वेद के सरण्यू आख्यान में माना जाता है। सरण्यू सूर्य की धर्मपत्नी का नाम है जिसे छाया और अमृता भी कहा है। यम छाया का ही पुत्र है। लौकिक तत्रसाधना में स्वप्नेश्वरी (दु स्वप्न को सुस्वप्न में परिवर्तित करने वाली देवता) का आराधना होती है। इस देवता का मूल ऋग्वेद की उषा देवता में माना जाता है। वेदो में निर्दिष्ट इन्द्र की स्त्रीरूप शक्ति इन्द्राणी को शरीरस्था कुण्डलिनीशक्ति माना जाता है। उपनिषदो में तांत्रिको की शक्तिसाधना का बीज अनेकत्र मिलता है। केनोपनिषद् मे हैमवती उमादेवी के स्वरूप मे सर्वान्तर्यामिनी महाशक्ति का निर्देश किया है। इस शक्ति के अभाव मे इन्द्र, वायु आदि देवता निस्सत्व हो जाते है। गणपत्युनिषद् मे मानव देह के मूलाधार मे स्थित शक्ति का निर्देश गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि आदि देवतावाचक नामों से किया है। बृहदारण्यक मे प्राणिमात्र की वाकशक्ति को ही ब्रह्म कहा है, (वाग् वै ब्रह्म)। रुद्रहृदयोपनिषद् मे व्यक्त को उमा, शरीरस्थ चैतन्य को शिव और अव्यक्त परब्रह्म को महेश्वर कहा है। योगकुण्डली उपनिषद में सरस्वती अर्थात् वाक्शक्ति के चालन से (याने मत्रजप से) कुण्डलिनी शक्ति के चालन की चर्चा मिलती है। बृहदारण्यक में पराशक्ति को कामकला एव शृंगारकला कहा है। गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् मे परशक्ति को ही कृष्णात्मिका (अर्थात् आकर्षणमयी) रुक्मिणी कहा है। अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा एव नक्षत्रों को बृहदारण्यक मे 'अष्टवसु' कहा है। इन वसुओं को व्यवहार के लिए एक क्रम मे प्रस्तुत करने वाली शक्ति को देव्युपनिषद् में 'सगमनी शक्ति' कहा है। इसी का नाम दुर्गा शक्ति भी है। अथर्ववेद के सीतोपनिषद् में मूलप्रकृति का निर्देश सीताशक्ति शब्द से किया है। इसी को इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एव साक्षात्शक्ति नाम व्यवहार की दृष्टि से दिये गये है। अथर्वशिरस् उपनिषद् में साधना की दृष्टि से निर्गुण शक्ति के शुक्ल, रक्त और कृष्ण वर्ण माने गये हैं। उपनिषदों में परा शक्ति का परिचय गुणात्म एव व्यावहारिक रूप में है, जब कि पुराणो में सगुणसाकार रूप में मिलता है।

4 तंत्र और पुराण

पुराणो मे दृश्य जगत् को त्रिगुणमयी कारणशक्ति (सत्त्व) महालक्ष्मी (रजस्) सरस्वती एव (तमस्) महाकाली के स्वरूप मे वर्णित है। प्रत्येक पुराण मे देवताविशेष के अनुसार एक शक्ति की मुख्यता प्रतिपादन की है। आनुषंगिकता से अन्य शक्तियों की भी चर्चा आती है। विभिन्न देवताओं के नामों से अंकित पुराणो मे देवताविशेष का महत्त्व उनकी शक्तिओ के कारण है। देवी भागवत मे शिवा, कालिका, भुवनेश्वरी, कुमारी आदि स्वरूपों मे सर्वगता शक्ति का निर्देश करते हुए उनकी साधना, योग और याग द्वारा बतायी है। शरीरस्थित कुण्डलिनी ही भुवनेश्वरी है, उसी को लौकिक वस्तुओ की प्राप्ति के लिये अंबिका कहा गया है। अंबिकास्वरूप भुवनेश्वरी की आराधना यज्ञ द्वारा विहित मानी है। दुर्गति से रक्षा होने के लिए दुर्गादेवी का स्थान तथा हिमालय मे पार्वती देवी का स्थान बताया गया है। पार्वती के शरीर से कौशिकी होने की चर्चा मार्कण्डेय पुराण एव देवी भागवत में की है। पार्वती का एक स्वरूप है शताक्षी एव शाकंभरी। इसी देवी ने प्राणियो के दु ख से खिन्न होकर नेत्रों से जल वर्षण कर शाकादि को उत्पन्न किया था। देवीभागवत के सप्तमस्कन्ध (अ 38) में शक्ति के प्रभेद सविस्तर वर्णित हैं। नवम स्कन्ध (अ 6) मे गगा, सरस्वती, लक्ष्मी और विशेष रूप से राधा एव गायत्री का महत्त्व वर्णन किया है। इसी स्कन्ध में स्वाहा स्वधा, दक्षिणा, षष्ठी मगलचंडी, जरत्कारू मनसा एव सुरभि नामक शक्तियो का भी वर्णन है। श्रीमद्भागवत (10 स्कध) मे विन्ध्यवासिनी देवी का वर्णन आता है, जो कस के हाथ से छूट कर विविध स्थानो पर, दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, नारायणी, ईशानी, शारदा इत्यादि नामो से स्थित हुई है। इसी दशम स्कन्ध (अध्याय 22) मे चीरहरण के प्रसग मे कात्यायनी पूजा के व्रत का वर्णन आता है। कात्यायनी की पूजा तांत्रिक पद्धति से बतायी गई है। रुक्मिणीविवाह के प्रकरण में भवानी की पूजा तांत्रिक पद्धति से वर्णित है। पचमस्कन्ध (अ 9) मे तामसी साधको द्वारा सतति प्राप्ति के लिये भद्रकाली को नरबलि अर्पण करने का उल्लेख मिलता है। वहा भद्रकली की आराधना के सारे उल्लेख तांत्रिक पद्धति के उदाहरण हैं। कालिका पुराण (अ 59) में मदिरापात्र, रक्तवस्त्रा नारी, सिंहशव, लाल कमल, व्याघ्र एव वारण (हाथी) का सगम, ऋतुमती भार्या का सगम करने पर चण्डी का ध्यान इत्यादि तांत्रिक साधना से सबंधित निर्देश मिलते हैं।

बौद्ध सप्रदाय मे ई प्रथम शती से तांत्रिक साधनाओ का प्रसार हुआ। ई. 7 वीं शती से अनेक बौद्ध तत्रो का विस्तार

हुआ जिनमें सरहपा का बुद्ध कपालतंत्र, लुईपा का योगिनीसचर्या तंत्र, कंबल और पद्मव्रज का वज्रतंत्र, कृष्णाचार्य का सपुटतिलक तंत्र, ललितवज्र का कृष्णयमारि तंत्र, गभीरवज्र का महामाया तंत्र और पितो का कालचक्रतंत्र उल्लेखनीय हैं। बौद्ध तांत्रिको का तारासम्प्रदाय ई छठी या सातवीं शती का माना जाता है।

5 तंत्रशास्त्र और बौद्धधर्म

वेदनिष्ठ शिव, विष्णु देवी इत्यादि देवतोपासकों मे जिस प्रकार तांत्रिक उपासना पद्धति का प्रचार हुआ उसी प्रकार बौद्धों के महायान सम्प्रदाय में और विशेष कर तिब्बती बौद्ध सम्प्रदाय में तंत्रमार्ग का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। तत्त्वत बौद्ध धर्म पचशील-प्रवण और अष्टागिक मार्गनिष्ठ है, परतु यथावसार शैव, वैष्णवो के प्रभाव के कारण बौद्धों में भी तंत्रसाधना का प्रचार हुआ। बौद्धों के तांत्रिक वाड्मय मे क्रियातंत्र, चर्यातंत्र और योगतंत्र इन तीन प्रकार के ग्रथ हैं।क्रियातंत्र में धार्मिक विधि, चर्यातंत्र मे आचारविधि और योगतंत्र मे अन्यान्य यागविधि बताये गये हैं। उनमें क्रियातंत्र विषयक ग्रथो में कुछ वैदिक धर्मविधियो का भी प्रधानता से पुरस्कार किया गया है। बौद्धों के आदिकर्मप्रदीप नामक क्रियातन्त्र विषयक सूत्रग्रथ मे प्राय वैदिकों के गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित धर्मविधि बताये है। महायान सम्प्रदाय के मुमुक्षु साधक के लिये परिमार्जन, प्रक्षालन, प्रात सायंप्रार्थना, पितृतर्पण, भिक्षादान, पूज्यपूजन इत्यादि कर्मो मे उपयुक्त मंत्र, इस आदिकर्म प्रदीप मे बताये हैं। क्रियातंत्रविषयक ग्रंथो में यज्ञान्तर्गत दान, कुछ गूढार्थक मंत्र और बोधिसत्वों के साथ शैवपथीय देवतों की प्रार्थना उल्लखित है। योगनिष्ठ बौद्ध साधको के लिये योगतंत्रविषयक ग्रथ निर्माण हुए। इनमे परमज्ञान की प्राप्ति के लिये सन्यास तथा ध्यान साधना के साथ मंत्र तंत्र, मूर्छना जैसे ऐन्द्रजलिक प्रयोग भी बताये गये हैं। इन ग्रथो का प्रतिपादन प्राय शैवतंत्रों के अनुसार दिखाई देता है। योगिनी, डाकिनी इत्यादि देवता भी इस बौद्ध योगतंत्र मे महत्त्वपूर्ण मानी गयी है।

नेपाली बौद्धो के नवविध धर्माचार मे तथागतगुह्यक अथवा गुह्यक समाज नामक तंत्रग्रथ महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके प्रारभ मे नाना प्रकार के ध्यान बताये गये हैं। परतु आगे चल कर घोडा, हाथी, कुत्ता इत्यादि पशुओ के मास भक्षण और चाण्डालकन्याओं मे मैथुन इस प्रकार के कर्म बताये है। महाकालतंत्र नामक ग्रथ बुद्धप्रणीत कहा गया है। इस ग्रथ मे शाक्यमुनि और देवता के सवाद द्वारा गुप्तधन, वांछित स्त्री, राजाधिकार इत्यादि की प्राप्ति के तथा वशीकरण मारण इत्यादि के उपाय साधनरूप मे बताये है। सवरोदयतंत्र बुद्ध, वज्रपाणिसवादरूप है। इसमे शिवलिंग का और शैव देवता का पूजन तंत्रसाधना के लिए बताया है। कालचक्रतंत्र के प्रवक्ता के रूप मे आदिबुद्ध का निर्देश है। परतु उसी ग्रथ मे मक्का क्षेत्र और मुस्लिम सम्प्रदाय का भी निर्देश मिलता है। नागार्जुन प्रणीत पंचक्रम नामक बौद्धतंत्र के ग्रथ मे परमोच्च योगप्राप्ति की पचमावस्था प्राप्त करने के लिये महायानी देवताओ का पूजन, गूढमंत्रों का उच्चारण, चक्र, मडल आदि का पूजन बताया गया है। इस प्रकार की तंत्रोपासना से योगी को सकल भेदातीत अद्वैतावस्था प्राप्त होती है ऐसा ग्रथ का अभिप्राय है। बौद्धो के तंत्रविषयक ग्रन्थो की सस्कृत भाषा अशुद्धप्राय होने के कारण सस्कृतज्ञों को प्रसन्न नही करती।

प्रमुख बौद्ध तंत्रो की नामावली (कुलसंख्या 72) - प्रमोदमहायुग, परमार्थसेवा, पिंडीक्रम, सपुटोद्भव, हेवज्र, बुद्धकपाल, सवर (या सवरोदय), वाराही, (या वाराहीकल्प), योगाबर, डाकिनीजाल, शुक्लयमारि, कृष्णयमारि, पीतयमारि, रक्तयमारि, श्यामयमारि, क्रियासग्रह, क्रियाकद, क्रियासागर, क्रियाकल्पद्रुम, क्रियार्णव, अभिधानोतर, क्रियासमुच्चय, साधनमाला, साधनसमुच्चय, साधनसग्रह साधनरत्न, साधनपरीक्षा, साधनकल्पलता, तत्त्वज्ञान, ज्ञानसिद्धि, उड्यान, नागार्जुन, योगपीठ, पीठावतार, कालवीर (या चडरोषण), वज्रवीर, वज्रसत्त्व, मरीचि, तारा, वज्रधातु, विमलप्रभा, मणिकर्णिका, त्रैलोक्यविजय, सपुट, मर्मकालिका, करुकुल्ला, भूतडामर, कालचक्र, योगिनी, योगिनीसंचार, योगिनीजाल, योगाबरपीठ, उड्डामर, वसुधरासाधन, नैरात्म, डाकार्णव, क्रियासार, यमातक, मजुश्री, तंत्रसमुच्चय, क्रियावसत, हयग्रीव, मर्कार्ण, नामसगीति, अमृतकर्णिकानाम सगीति, गूढोत्पादनाम सगीति, मायाजाल, ज्ञानोदय, वसततिलक, निष्पन्नयोगाबर, और महाकाल। इन बौद्धो तंत्रो मे से बहुसंख्य तंत्रो के ग्रथो के चीनी एव तिब्बती भाषाओ मे अनुवाद हो चुके हैं।

6 तांत्रिक संप्रदाय

जैनतंत्र :

जैन परपरा के अनुसार जैन तंत्रो का प्रारंभ तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय से माना जाता है। विद्यानुप्रवाद नामक जैन ग्रथ में मंत्रो तथा विद्याओ की चर्चा मिलती है। आचार्य भद्रबाहु को आद्य जैन तांत्रिक इसी लिये मानते हैं कि उन्होंने स्मरणमंत्र से पार्श्वनाथ का आवाहन किया था। ई 3 री शताब्दी से 11 वी शताब्दी तक मानवदेव सूरि (लघुशांतिमंत्र), वादिवेताल-शांतिसूरि (बृहत् शांतिमंत्र) सिद्धसेनदिवाकर, मानतुगसूरि (भक्तामरस्तोत्र), हरिभद्रसूरि, शीलगुणसूरि, वीरमणि, शांतिसूरि, और सुराचार्य इन जैन तंत्राचार्यों ने मंत्रविद्या का प्रचार जैन समाज मे किया।

नाथसप्रदाय प्रधानत. तांत्रिक ही है। तंत्रराज ग्रथ के अनुसार कौलतंत्रों के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रादि नौ सिद्ध नाथ ही थे।

तांत्रिक देवता गण :

तंत्रमार्ग मे साधक द्वारा उपास्य देवता से संबध जोडना, उसका आवाहन करना, उसकी सहायता मिलाना इत्यादि विषयों का गभीर विचार हुआ है। साधक को सत्य, ज्ञान और आनद की ओर प्रगति करने मे देवता का साहाय्य मिलता है। देवता याने परमेश्वर अथवा परमेश्वरी की विशिष्ट शक्ति होती है। मत्रसाधना द्वारा साधक का देवता से सबध स्थापित होता है। प्रत्येक देवता का विशिष्ट रूप, वर्ण, ध्यान, परिवार, वाहन, तत्रशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानो ने निर्धारित किया है। मत्र-तत्रादि साधनाओ से दिव्य दृष्टि का उन्मीलन होने पर साधक को देवतास्वरूप का साक्षात्कार होता है। मूर्तिविज्ञान, मत्रविज्ञान जैसे शास्त्रो द्वारा तांत्रिको ने देवताओ के नाम, रूप एव गुण इत्यादि का प्रतिपादन अपने ग्रथों मे किया है। तांत्रिक साधनाओ में उपास्य देवताओ की आराधना अन्यान्य रूपो मे होती है। अत तत्र मार्ग में देवताओ का वैविध्य और वैचित्र्य निर्माण हुआ। प्रत्येक तत्रमार्ग के विविध देवताओ के नाम और स्वरूप की कल्पना निम्न लिखित सूची से आ सकती है। भारत मे यत्र तत्र इन तांत्रिक देवताओ की प्रतिमाए उपलब्ध होती हैं और अनेक क्षेत्रो में उन की तत्रानुसार आराधना होती है।

वैष्णव तांत्रिक देवता लक्ष्मीवासुदेव, लक्ष्मीनारायण, हरिहर, नृसिह, राम, कृष्ण, दधिवामन, हयग्रीव और गोपालकृष्ण। शारदातिलक और तत्रसार नामक ग्रथो मे वैष्णव तांत्रिको की देवताओ का सविस्तर वर्णन मिलता है।

तांत्रिक शिवस्वरूप: शैवतत्र मे आदिनाथ महाकाल के क्षेत्रपाल, भैरव, बटुभैरव नामक स्वरूप, उपास्य माने जाते है। मुख्य पूजा से पहले क्षेत्रपाल की पूजा शैवतत्र में आवश्यक मानी है शिवस्वरूपी भैरव आठ प्रकार के होते हैं। भैरव की पूजा, काली देवता के साथ कुछ तांत्रिक करते है। गाणपत्य तत्र मे महागणपति, वीरगणपति, शक्ति-गणपति, विद्यागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्ट-गणपति, लक्ष्मीविनायक, हेरब, वक्रतुड, एकदत, महोदर, गजानन, लबोदर, विकट और विघ्नराज नामक गणपति के स्वरूप उपास्य माने जाते है। मेरुतत्रप्रकाश मे इन के विविध स्वरूप वर्णन किये हं।

सौर तांत्रिक देवता: चद्र, मार्तण्डभैरव और अग्नि इन तीन देवताओ को सूर्य से सबंधित माना गया है। चद्र नीलजटाधारी, मार्तण्ड अर्धांगिनी सहित, अग्नि अष्टभुज तथा त्रिनेत्र, और चतुर्भुज एव सूर्य रक्तकमलासन पर विराजमान होता है।

शाक्त तांत्रिक देवता· मुडमाला तत्र में दशमहाविद्या नामक देवताओ के नाम बताये है -

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी। भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातगी कमलात्मिका। एता दश महाविद्या सिद्धविद्या प्रकीर्तिता ।।

अन्य स्थान पर विद्या-देवताओ की सख्या 27 बतायी है। नित्याषोडशिकार्णव नामक ग्रथ मे 'नित्या' नामक 16 देवताओ के नाम बताये है महात्रिपुरसदरी कामेश्वरी, भगमालिनी, क्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुदरी, नीलपताका, विजया, सर्वमगला, ज्वालामालिनिका और चित्रा। शाक्ततत्र में दक्षिणाकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, कामकलाकाली, धनकाली, सिद्धकाली, चण्डीकाली इत्यादी काली मा के भिन्न स्वरूप माने जाते हैं। प्राणतोषिणी तत्र मे कुमारी देवता को 'सर्वविद्यास्वरूपा' कहा है। इस कारण शाक्ततत्र में कुमारीपूजा का विशेष महत्त्व माना गया है।

जैन तांत्रिक देवता· सरस्वती, अंबिका, कुबेरा, पद्मावती, सिद्धार्थिका, इद्राणी, विधिप्रभा, अक्षुप्ता और चक्रेश्वरी। ये देवताए, तीर्थंकरो की सेविकाए मानी जाती हैं। पार्श्वनाथ की पद्मावती और महावीर की सिद्धार्थिका सेविका है। दिगबर संप्रदाय मे ज्वालामालिनी और महाज्वाला नामक देवताओ का विशेष महत्त्व माना गया है।

तांत्रिक उपासको में मान्यताप्राप्त देवी के 12 रूप है और उनके 12 तीर्थक्षेत्र अत्यत पवित्र माने जाते हैं।

1)	कामाक्षी	- काचीपुर मे	2)	भ्रामरी	- मलयगिरि मे
3)	कन्याकुमारी	- तामिलनाडु मे	4)	अम्बा	- गुजरात में
5)	महालक्ष्मी	- कोल्हापुर (महाराष्ट्र)	6)	कालिका	- उज्जयिनी में
7)	ललिता	- प्रयाग में	8)	विन्ध्यवासिनी	- विन्ध्याचल में।
9)	विशालाक्षी	- वाराणसी मे	10)	मगलचडी	- गया मे
11)	सुन्दरी	- बगाल में।	12)	गुह्यकेश्वरी	- नेपाल में।

बारह विद्येश्वर : मनु, चद्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, और कोधभट्टारक (अथवा दुर्वासा)। तत्रमार्ग मे इन बारह विद्येश्वरो में ही बीज और मत्रों का प्राधान्य माना जाता है। इन में से केवल मन्मथ (या कामराज) और लोपामुद्रा का सम्प्रदाय जीवित है।

7 तंत्रशास्त्र के प्रमुख ग्रंथकार

तंत्रशास्त्र का विस्तार और उसके अनेक प्रकार होने से सभी प्रकार के तंत्रों पर लिखे गये प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथों की सख्या भी अपार है। प्रस्तुत कोश में म. म गोपीनाथ कविराज द्वारा सपादित तांत्रिक साहित्य की बृहत्सूची से उद्धृत अनेक ग्रंथों का यथास्थान संक्षिप्त परिचय दिया है। अनेक ग्रथो के लेखकों के नाम उपलब्ध नहीं तथापि कुछ महनीय लेखकों का कार्य चिरस्मरणीय है। तांत्रिक सप्रदायों में मान्यता प्राप्त 30 तत्राचार्यों की नामावली यहा उद्धृत की है

ग्रंथकार	ग्रंथ
गौडपादाचार्य	- 1) सुभगोदयस्तुति, 2) श्रीविद्यारत्नसूत्र।
लक्ष्मणदेशिक	- प्रपचसार, सौदर्यलहरी इ.।
पृथ्वीधराचार्य	- भुवनेश्वरीरहस्य।
चरणस्वामी	- श्रीविद्यार्थदीपिका, प्रपचसारसग्रह इ ।
राघवभट्ट	- शारदतिलक पर टीका।
पुण्यानंद	- कामकलाविलास
अमृतानदनाथ	- सौभाग्यसुभगोदय
सुदराचार्य	- ललितार्चनचद्रिका।
विद्यानदनाथ	- शिवार्चनचंद्रिका, क्रमरत्नावली इ ।
सर्वानदनाथ	- सर्वोल्लासतत्र।
ब्रह्मानद	- शाक्तानदतरंगिणी, ताराहस्य।
पूर्णानद	- श्रीतत्त्वचितामणि, श्यामारहस्य।
गोरक्ष	- महार्थमजरी, परास्तोत्र, पादुकोदय इ ।
सुभगानंद	- षोडशनित्या।
प्रकाशानद	- तत्रसार।
महीधर	- पचमहोदधि।
गौडीय शकर	- ताराहस्यवृत्ति, शिवार्चनमाहात्म्य।
भास्करराय	- सौभाग्यभास्कर, सौभाग्यचन्द्रोदय इ
प्रेमनिधि पत	- दीपप्रकाश और अनेक टीकात्मक ग्रथ।
उमानद	- हृदयामृत, नित्योत्सव निबध।
रामेश्वर	- सौभाग्योदय।
शकरानद	- सुदरीमहोदय।
अप्पय्य दीक्षित	- सौभाग्यकल्पद्रुम।
देवनाथ ठाकुर	- सत्यकौमुदी, मत्रकौमुदी, तत्रकौमुदी इ
काशीनाथ तर्कालकार (शिवानद)	- श्यामासपर्याविधि, तंत्रराजटीका, तत्रसिद्धात कौमुदी। मत्रराजसमुच्चय इ ।
गीर्वाणेन्द्र	- प्रपचसारसग्रह
रघुनाथ तर्कवागीश	- आगम-तर्कविलास
यदुनाथ चक्रवर्ती	- पचरत्नाकर, आगमकल्पलता।
नरसिह ठाकुर	- ताराभक्तिसुधार्णव।
गोविद न्यायवागीश	- मत्रार्थदीपिका।

(भारतीय सस्कृति कोशखंड 4 से उद्धृत)

उपास्य देवता और तांत्रिक वाङ्मय

तात्रिक वाङ्मय में काली, तारा, श्रीविद्या (षोडशी या त्रिपुरसुंदरी) भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातंगी, और कमला इन दस देवताओ को दश महाविद्या कहते हैं। महाकालसहिता के अनुसार विभिन्न देवताएं विभिन्न युगों में फलप्रदान करती हैं किन्तु चारो युगों में फलप्रदान का सामर्थ्य एक मात्र दश महाविद्याओं में है। तात्रिक वाङ्मय की रूपरेखा देवताविषयक ग्रंथों के स्वरूप से संक्षेपत आ सकती है। देवताविषयक ग्रंथों में (1) सिद्धान्त पर और (2) प्रयोगपर ग्रंथ होते है।

काली-विषयक वाङ्मय :- 1) महाकाल संहिता, 2) कालज्ञान, 3) कालीकुलक्रमार्चन (विमलबोधकृत), 4) भद्रकालीचिन्तामणि, 5) व्योमकेशसंहिता, 6) कालीयामल, 7) कालीकल्प, 8) कालीसपर्याक्रमकल्पवल्ली, 9) श्यामारहस्य (पूर्णानंदकृत), 10) कालीविलासतंत्र, 11) कालीकुलसर्वस्व, 12) कालीतंत्र, 13) कालीपरा, 14) कालिकार्णव, 15) विश्वसारतंत्र, 16) कामेश्वरी तंत्र, 17) कुलचूडामणि, 18) कौलावली, 19) कालीकुल, 20) कुलमूलावतार, 21) श्यामासपर्या (काशीनाथ भट्टाचार्यकृत), 21) कुलमुक्तिकल्लोलिनी (आद्यानंद या नवमीसिंह कृत), 22) कालीतत्त्व (राघवभट्टकृत), 23) कौलिकार्चनदीपिका, 24) कुमारीतंत्र, 25) कुलार्णव, 26) कुब्जिकातंत्र, 27) कालिकोपनिषद् इत्यादि प्रमुख ग्रंथों के अतिरिक्त कर्पूरस्तव, कालीभुजगप्रयात, इत्यादि कालीस्तोत्र भी प्रसिद्ध हैं।

तारा-विषयक ग्रंथ :- 1) तारातंत्र (या तारिणी तंत्र), 2) तारासूक्त, 3) तोडलतंत्र, 4) तारार्णव, 5) नीलतंत्र, 6) महानीलतंत्र, 7) नीलसरस्वतीतंत्र, 8) चीनाचार, 9) तंत्ररत्न, 10) ताराशाबरतंत्र, 11) एकजटीतंत्र, 12) एकजटाकल्प 13) एकवीरातंत्र 14) तारिणीनिर्णय, 15) महाचीनाचारक्रम, 16) तारोपनिषद्, 17) ताराप्रदीप (लक्ष्मीभट्टकृत), 18) ताराभक्तिसुधार्णव (नरसिंह ठक्कुर कृत), 19) तारारहस्य (शंकरकृत), 20) ताराभक्तितरंगिणी (प्रकाशानंदकृत, विमलानंदकृत और काशीनाथकृत) 21) ताराकल्पलतापद्धति (नित्यानंदकृत), 22) तारिणीपारिजात (विद्वदुपाध्यायकृत), 23) महोग्रताराकल्प इत्यादि ग्रंथों के अतिरिक्त तारासहस्रनाम और ताराकर्पूरस्तोत्र आदि स्तोत्र उल्लेखनीय है।

श्रीविद्या-विषयक ग्रंथ :- श्रीविद्या के कादि, हादि और कहादि नामक तीन भेद प्रसिद्ध है। कादियों की देवी काली, हादियों की त्रिपुरसुंदरी और कहादियों की तारा (अथवा नीलसरस्वती) है। तीनों संप्रदायों के अपने अपने मान्य ग्रंथ है -

1) त्रिपुरोपनिषद्, 2) भावनोपनिषद्, 3) कौलोपनिषद्, 4) तंत्रराज (इस पर सुभगानंदनाथ, प्रेमनिधिपन्त, इत्यादि विद्वानों की अनेक टीकाएं हैं), 5) योगिनीहृदय, 6) परमानंदतंत्र, 7) सौभाग्यकल्पद्रुम (माधवानंदनाथकृत), 8) वामकेश्वरतंत्र, 9) ज्ञानार्णव, 10) श्रीक्रमसंहिता, 11) दक्षिणामूर्तिसंहिता, 12) स्वच्छन्दतन्त्र, 13) ललितार्चनचंद्रिका, (सच्चिदानंदनाथकृत), 14) सौभाग्यरत्नाकर (विद्यानंदनाथकृत), 15) सौभाग्यसुभगोदय (अमृतानंदनाथकृत), 16) शक्तिसंगमतंत्र 17) त्रिपुरारहस्य, 18) श्रीक्रमोत्तम (मल्लिकार्जुनकृत), 19) सुभगार्चापारिजात, 20) सुभगार्चारत्न, 21) आज्ञावतार 22) संकेतपादुका 23) चंद्रपीठ 24) सुंदरीमहोदय (शंकरनंदकृत) 25) हृदयामृत (उमानंदकृत) 26) लक्ष्मीतंत्र 27) त्रिपुरासारसमुच्चय (लालभट्टकृत), 28) श्रीतत्त्वचिन्तामणि और शाक्तक्रम (पूर्णानंदपरमहंसकृत), 29) कामकलाविलास (पुण्यानंदकृत), 30) सौभाग्यचंद्रोदय, 31) वरिवस्यारहस्य, 32) वरिवस्याप्रकाश और 33) शांभवानंदकल्पलता (ये चारों ग्रंथ भास्करराय-विरचित हैं) 34) त्रिपुरासार, 35) संकेतपद्धति, 36) सौभाग्यसुधोदय, 37) परापूजाक्रम 38) सुभगोदयस्तुति और 39) श्रीविद्यारत्नसूत्र [दोनों गौडपादाचार्य (श्रीशंकराचार्य के परमगुरु) विरचित]। श्रीशंकराचार्य स्वयं तांत्रिक उपासक थे इस का यह प्रमाण है कि विभिन्न तांत्रिक संप्रदाय अपनी अपनी गुरुपरंपरा में श्रीशंकराचार्य का निर्देश करते हैं।

भुवनेश्वरी विषयक ग्रंथ :- 1) भुवनेश्वरीरहस्य, (पृथ्वीधराचार्य कृत), 2) भुवनेश्वरीतन्त्र, 3) भुवनेश्वरीपारिजात, इ.।

भैरवीविषयक ग्रंथ:- 1) भैरवीतन्त्र, 2) भैरवीरहस्य, 3) भैरवीसपर्याविधि, 4) भैरवीयामल।

छिन्नमस्ताविषयक ग्रंथ:- शक्तिसंगमतंत्र का छिन्नाखंड।

धूमावतीविषयक ग्रंथ:- प्राणतोषिणीतंत्र।

बगलाविषयक ग्रंथ:- 1) शाखायनतंत्र (या षड्विद्यागम), 2) बगलाक्रम कल्पवल्ली, 3) रसार्णवतंत्र।

मातंगीविषयक ग्रंथ.- (मातङ्गी के अपरनाम है उच्छिष्टचाण्डालिनी और महापिशाचिनी) 1) मातंगीक्रम (कुलमणिकृत) 2) मातंगीपद्धति (रामभट्टकृत), यह ग्रंथ सिद्धसिद्धान्तबिन्दु का एक अध्याय मात्र है। 3) सुमुखीपूजापद्धति (शंकरकृत)।

कमलाविषयक ग्रंथ:- 1) तंत्रसार, 2) शारदातिलक, 3) शाक्तप्रमोद इ.। दशमहाविद्याओं के अतिरिक्त गणपति, गायत्री, गोपालकृष्ण, दत्तात्रेय, नरसिंह, भैरव, राधाकृष्ण, रामचंद्र, हनुमान परशुराम हयग्रीव इत्यादि देवताविषयक तंत्रों के विविध प्रकार के ग्रंथ तांत्रिक वाङ्मय में मिलते हैं।

9 तांत्रिक परिभाषा

प्रत्येक शास्त्र में विशिष्ट अर्थों का चयन एवं प्रकाशन करने के लिए शास्त्रकार पारिभाषिक शब्द निर्माण करते है। शास्त्र ग्रंथों में उन पारिभाषिक शब्दों का विवरण या विवेचन दिया जाता है। शास्त्राध्ययन करने वाले जिज्ञासु को पारिभाषिक शब्दों में निहित अर्थ का सम्यक् आकलन हुए बिना उस शास्त्र का सम्यक् आकलन नहीं होता और उस शास्त्र मे उसकी प्रगति भी नहीं होती। तंत्रशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली बहुत विस्तृत है। यहां स्थालीपुलाकन्याय से कुछ ही शब्द दिये हैं। जिनका समग्र विवरण मूल ग्रंथों से ही देखना उचित होगा। तंत्रशास्त्र का ठीक आकलन होने के लिए इन शब्दों के अतिरिक्त अनेक पारिभाषिक शब्दों का परिचय मूल ग्रंथों में देखना होगा।

गुरु : सिद्धि का मूल है देवता, देवता का मूल मत्र, मत्र का मूल दीक्षा और दीक्षा का मूल गुरु। अर्थात गुरु ही सिद्धि का मूल है।

शिष्य : शुद्धचित्त, इन्द्रियजयी और पुरुषार्थी शिष्य ही तांत्रिक साधना का योग्य अधिकारी होता है। तंत्र साधना मे गुरु-शिष्य सबंध का अपार महत्त्व माना जाता है।

मंत्र : प्रत्येक मत्र में प्रणव, बीज, और देवता यह तीन तत्त्व होते हैं। दीक्षामंत्र अत्यत प्रभावी होता है। सौरमंत्र पुल्लिंगी, सौम्यमंत्र स्त्रीलिंगी और पौराणिक मत्र नपुसक लिगी माने जाते हैं। स्त्रीमत्रों का ही अपर नाम है "विद्या"। नित्यातत्र मे एकाक्षरी मत्र को पिंड, द्वयक्षरी को कर्तरी, त्र्यक्षरी से नवाक्षरी तक बीज और 20 से अधिक अक्षरों वाले मत्र को माला कहते हैं।

बीज : प्रत्येक देवता का अपना एक बीज होता है; जैसे काली का क्रीं, माया का ह्रीं, अग्नि का र और योनि का ऐ। बीज के अतिरिक्त प्रत्येक देवता का मूलमत्र होता है।

मंत्रचैतन्य : मत्र, मत्रार्थ और मत्रदेवता इन तीनो का एकीकरण।

देवता : परमेश्वर या परमेश्वरी की विशिष्ट शक्ति।

भावत्रय : पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव अर्थात् तांत्रिक साधक की तीन अधम, मध्यम और उत्तम अवस्थाए। आत्यतिक ससारासक्ति को अधम पशुभाव और सत्कर्मप्रवृत्ति को उत्तम पशुभाव कहते हैं।

आचारसप्तक : वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धांताचार और कौलाचार। उक्त अनुक्रम से इनकी श्रेष्ठता मानी गयी है। कौलाचार सर्वश्रेष्ठ माना गया है। (कौलात् परतरं न हि) शैवाचार में पशुहिंसा, दक्षिणाचार में विजया (भग) सेवन, वामाचार मे रज:स्वला रज और कुलस्त्री का पूजन और कौलाचार में 'भूतपिशाचवत्' अनियत आचार विहित माना गया है।

दीक्षा तत्र साधना में अधिकारी गुरु द्वारा अनुकूल शिष्य को मत्रदीक्षा आवश्यक मानी गयी है। समय दीक्षा और निर्वाण दीक्षा नामक दो प्रकार की दीक्षा, सामान्य विशेष भेद से होती है। निर्वाण दीक्षा के दो भेद 1) सबीज 2) निर्बीज। सबीज दीक्षा का अपरनाम है "पुत्रक दीक्षा" अथवा "आचार्य दीक्षा"। आगम ग्रंथों मे कला, एकतत्त्व, त्रितत्त्व, पंचतत्त्व, नवतत्त्व, छत्तीस तत्त्व पद, मत्र, वर्ण, भुवन और केवलभुवन नामक 11 प्रकार की दीक्षाएँ बताई हैं।

अभिषेक . दीक्षा प्राप्त शिष्य पर गुरुद्वारा जलसिचन। इस अभिषेक के शक्तिपूर्ण, क्रमदीक्षा, साम्राज्य, महासाम्राज्य, योगदीक्षा, पूर्णदीक्षा, महापूर्णदीक्षा नामक आठ प्रकार माने गये है।

साधना : तांत्रिक साधना मे उष:काल मे गुरु और देवता का ध्यान, मानसपूजा, मत्रजप, स्नानविधि, नित्यार्चन, विजया (भग) ग्रहण, भूतशुद्धि, न्यास, पात्रस्थापना, यत्रराजस्थापना, श्रीपात्रस्थापना, इष्टदैवतपूजा, प्राणप्रतिष्ठा इन विधियों का पालन यथाक्रम होता है।

कुल · श्रीकुल और कालीकुल नामक साधकों के दो कुल होते हैं। श्रीकुल मे सुदरी, भैरवी, बाला, बगला, कमला, धूमावती, मातगी और स्वप्नावती इन आठ देवताओ का अतर्भाव होता है और कालीकुल में काला, तारा, रक्तकाली, भुवनेश्वरी, महिषमर्दिनी, त्रिपुरा दुर्गा और प्रत्यगिरा इन आठ देवताओ का अन्तर्भाव होता है।।

षोडशोचार पूजा : तांत्रिक साधक देवता की प्राणप्रतिष्ठा होने पर जिन उपचारों से पूजा करता है, वे हैं आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पुनराचमन, मधुपर्क, स्नान, वसन, आभरण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और वदन। हिंदुसमाज की उपासना मे इन षोडशोपचारो का प्रयोग रूढ हुआ है।

पंच मकार : मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। इन्हीं को "पचतत्त्व" भी कहते हैं। वामाचार में इन पच मकारों का उपयोग आवश्यक माना है। दक्षिणाचार में पच मकार का उपयोग नहीं होता। इन पाच मकारादि शब्दो के अर्थ, तत्रशास्त्र का एक विवाद्य विषय है। इन शब्दो का लौकिक अर्थग्रहण करने वाले पशुभावी साधकों ने तत्रमार्ग को समाज मे निंदापात्र किया है।

चक्रपूजा : वीरभाव के साधक स्त्री-पुरुष सामूहिक रीत्या मडल में बैठ कर विधिपूर्वक सुरापान करते हैं तब वह चक्रपूजा कहलाती है। राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र, भैरवचक्र और ब्रह्मचक्र नामक छह प्रकार के चक्र होते हैं।

बिन्दु : शिवाश और शक्त्यश की सृष्टि-निर्मिति के पूर्व साम्यावस्था। सृष्टि का आरभ होते समय मूल बिंदु इच्छा, ज्ञान और क्रिया स्वरूप मे विभक्त होता है। मूल बिंदु को परा वाक् और अग्रिम तीन बिंदुओं को पश्यती, मध्यमा, वैखरी कहते हैं।

ब्रह्मपुर : मानव शरीर।

नाडी : शरीर में विद्यमान शक्तिस्रोत। मनुष्य देह में साढे तीन करोड नाडियों में 14 प्रमुख हैं जिनमें इडा, पिंगला और सुषुम्णा प्रमुख हैं। तीनों में रक्तवर्ण सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है। उसके अतर्गत चित्रा ब्रह्मनाडी मानी जाती है।

षट्चक्र : मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। सहस्रारचक्र शरीर के ऊर्ध्वतम स्थान में होता है। (योगशास्त्र में भी इन चक्रों का महत्त्व प्रतिपादन किया है।)

ग्रंथी : मणिपुर, अनाहत और आज्ञा चक्रों के अपर नाम यथाक्रम - ब्रह्मग्रंथी, विष्णुग्रंथी और रुद्रग्रथी हैं। (वेदान्त शास्त्र में इन्हीं को पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा कहते हैं।)

सामरस्य : जीव और शिव की निजी शक्ति से मिलन की उच्चतम साधनावस्था। इस अवस्था में जीव शिवसमान और जीव की भक्ति, शक्तिसमान होती है। तांत्रिक साधक का यही प्राप्तव्य है।

दीर्घ काल तक तंत्रमार्ग के विषय में जनता में अनादर की भावना रही। भक्तिमार्गी साहित्य में याज्ञिक और तांत्रिक दोनो की उपहासगर्भ निंदा हुई है। इसका कारण था तंत्र वाङ्मय की गूढार्थकता और अपने को तात्रिक कहने वालों की मद्य, मास मैथुन इत्यादि के प्रति आसक्ति तथा अनैतिक व्यवहार। तंत्रमार्ग की यह बदनामी हटाने का प्रयास महार्णव तत्र में हुआ है। उस तत्र में मद्य मांसादि पच मकार के संबंध में सुधार सूचित किया है। मद्यपान में अतिरेक करने वाले को देवीभक्त नहीं मानना चाहिए। कलियुग में मैथुन निजी धर्मपत्नी के साथ ही करना चाहिए। मद्य के स्थान पर दूध, शक्कर और मधु का मिश्रण लेना चाहिए, इस प्रकार के सुधार महार्णवतत्र में बताये गये हैं। तंत्रमार्ग के विषय में विपरीत धारणा समाज मे प्रसृत होने के कारण तांत्रिक वाङ्मय की दीर्घकाल तक उपेक्षा होती रही। हिंदुओं के धार्मिक वाङ्मय का व्यापक एव गभीर अध्ययन करने वाले एच.एच. विल्सन, जॉन, जॉर्ज वुडरॉफ और उनके सहयोगी प्रमथनाथ मुखोपाध्याय, मोनियर विल्यम, एन मैकनिकल्, डब्ल्यु.जे. विल्किन्स, ऑर्थर ॲव्हलॉन, आर.डब्ल्यु फ्रेजर इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों ने और तत्रतत्त्व के लेखक शिवचद्र विद्यार्णव ने तांत्रिक वाङ्मय का आलोडन किया और उसके सबध में प्रसृत लोकभ्रम का निवारण, अपने ग्रन्थों द्वारा करने का प्रयास किया। पद्मभूषण गोपीनाथ कविराजजी ने तात्रिक साहित्य विषयक 7 सौ पृष्ठों की बृहत्सूची प्रदीर्घ प्रस्तावना के साथ प्रकाशित कर तंत्र शास्त्र के जिज्ञासुओं पर महान उपकार किया। उस सूची में निर्दिष्ट महत्त्वपूर्ण मुद्रित ग्रन्थो का उल्लेख प्रस्तुत सस्कृत वाङ्मय कोश में यथास्थान हुआ है। पीताबरापीठ (वनखण्डेश्वर, दतिया, मध्यप्रदेश) के श्री स्वामीजी महाराज ने तात्रिक साधनाओं में सारी आयु व्यतीत कर आगम (तत्र) और निगम (वेद) के समन्वय का महान् प्रयास किया। तंत्रमार्ग की प्रतिष्ठा प्रस्थापित करने में श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर स्वामीजी का योगदान विशेष उल्लेखनीय है।

प्रकरण - 8
मीमांसा और वेदान्त दर्शन

1 ''मीमांसा दर्शन''

''मीमांसा'' शब्द अतिप्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, अथर्ववेद, शांखायन ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद आदि प्राचीन ग्रन्थों में, ''मीमांसन्ते मीमांसमान, मीमासित तथा मीमासा'' इत्यादि शब्दों का, किसी सदेहात्मक विषय में विचार विमर्श करना, इस अर्थ में प्रयोग हुआ है। पाणिनि (3/1/5-6) ने ''सन्'' प्रत्यय के साथ सात धातुओं के निर्माण की बात कही है, जिनमें एक है ''मीमांसते'' जो मान् धातु से बना है, जिसका अर्थ काशिका में ''जानने की इच्छा'' कहा गया है। कात्यायन के वार्तिकों में प्रसज्यप्रतिषेध, पर्युदास, शास्त्रातिदेश जैसे मीमांसाशास्त्र के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। पातजल महाभाष्य में काशकृत्स्नि द्वारा व्याख्यायित मीमासा का उल्लेख आता है। पश्चात्कालीन विद्वानों ने मीमासाशास्त्र को चतुर्दश या अष्टादश विद्यास्थानों में अत्यत महत्त्वपूर्ण कहा है (''चतुर्दशसु विद्यासु मीमासैव गरीयसी'') क्यों कि वह वैदिक वचनों के अर्थ के विषय में उत्पन्न सन्देहो, भ्रामक धारणाओं एव अबोधकता को दूर करता है, तथा अन्य विद्यास्थानों को अपने अर्थ स्पष्ट करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है।

श्रुति में प्रतिपादित कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में से कर्मकाण्ड का विषय है यज्ञ-यागादि विधि तथा अनुष्ठानों का (अर्थात् वैदिक आचारधर्म का) प्रतिपादन। कुमारिलभट्ट ने यही मीमासा शास्त्र का प्रयोजन बताया है- ''धर्माख्य विषयं वक्तु मीमासाया प्रयोजनम्''। इस प्रयोजन के अनुसार श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त धर्मशास्त्र के साथ,मीमासा का अति निकट सबंध है। धर्मशास्त्र के लेखकों ने मीमासा शास्त्र के ''नियम'' एवं ''परिसख्या'' सिद्धान्त का तथा होलाकाधिकरणन्याय का बहुधा प्रयोग किया है।

कर्मकाण्ड वेदों का पूर्वखड और ज्ञानखण्ड उत्तरखड होने के कारण, मीमासादर्शन को ''पूर्वमीमांसा'' और वेदान्त दर्शन को उत्तरमीमासा तथा ''न्यायशास्त्र'' भी कहा गया है। मीमासाविषयक अनेक ग्रथों के (न्यायकणिका, न्यायरत्नाकर,. न्यायमाला इ) ''न्याय शब्द पूर्वक नाम, इसका प्रमाण है। मीमासा शास्त्र के ग्रथों में अर्धजरतीय न्याय, अर्धकुक्कुटीपाकन्याय, पकप्रक्षालनन्याय, माषमुद्गन्याय, गो-बलीवर्दन्याय, ब्रह्मणपरिव्राजकन्याय, अधपरपरान्याय, आकाशमुष्टिहननन्याय, अगागिन्याय, नष्टाश्व-दग्धरथन्याय, छत्रिन्याय, निषादस्थपतिन्याय, कैमुतिकन्याय, पिष्टेषणन्याय, काकदन्तपरीक्षान्याय, स्थालीपुलाकन्याय, इत्यादि अनेक लौकिक एवं वैदिक न्यायों का प्रयोग हुआ है। विशेषत कुमारिलभट्ट ने अपने तत्रवार्तिक में इन न्यायों का प्रभूत मात्रा में उपयोग किया है। इस शास्त्र को ''न्यायशास्त्र'' मानने का यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण हो सकता है।

इस शास्त्र के कुछ ग्रथों के नामों में ''तत्र'' शब्द का भी प्रयोग हुआ है, जैसे कुमारिलभट्टकृत तत्रवार्तिक एवं चिन्नस्वामी (20 वीं शती) कृत तत्रसिद्धान्त-रत्नावलि इत्यादि। अतः यह ''तत्रशास्त्र'' शब्द से भी निर्देशित होता है। इनके अतिरिक्त, धर्ममीमांसा अनीश्वर-मीमांसा, विचारशास्त्र, अध्वरमीमांसा, वाक्यशास्त्र इत्यादि शब्दों से भी मीमासा दर्शन निर्दिष्ट होता है परंतु पूर्वमीमासा-दर्शन या मीमासा-शास्त्र इन शब्दों का ही प्रयोग सर्वत्र रूढ है।

जैमिनिकृत मीमांसासूत्र इस दर्शन का प्रमुखतम ग्रथ है। जैमिनि का समय ई.पू. 3 शती माना जाता है। उन्होंने अपने ग्रथ में बादरायण, बादरि, ऐतिशायन, कार्ष्णाजिनि लावुकायन, कामुकायन, आत्रेय और आलेखन नामक आठ पूर्वाचार्यों का निर्देश किया है। जैमिनि के सूत्र ग्रंथ में दो भाग माने जाते हैं। 1) द्वादशलक्षणी और 2) सकर्षण काण्ड (या देवताकाण्ड)। द्वादशलक्षणी के 12 अध्यायों में क्रमश. धर्मजिज्ञासा, कर्मभेद, शेषत्व, प्रयोज्य-प्रयोजकभाव, कर्मक्रम, अधिकार, सामान्यविशेष, अतिदेश, ऊह, बाध और तत्र-आवाप इन बारह विषयों का विवेचन किया है। मीमासा के अध्येता इस द्वादशलक्षणी का ही प्रधानतया अध्ययन करते है। संकर्षणकांड आरंभ से ही उपेक्षित रहा है तथा इसके प्रणेता के विषय में भी मतभेद है। कुछ विद्वान काशकृत्स्न को इसके प्रणेता मानते हैं। इस काण्ड में देवताओं पर विचार विमर्श हुआ है किन्तु धर्मशास्त्र पर इसका कोई प्रभाव नहीं है। कुछ विद्वान इसे ''द्वादशलक्षणी'' का परिशिष्ट मानते हैं।

जैमिनि के सूत्रों की संख्या 2644 तथा अधिकरणों की संख्या 909 है। इन सूत्रों पर उपवर्ष (ई. 1-2 शती) और भवदास ने वृत्तियां लिखी थीं। ई. 2 री शतीं में शबराचार्यने भाष्य लिखा जो ''शाबरभाष्य'' नाम से प्रख्यात है। शबर के

पूर्व मूल सूत्रग्रन्थ पर कुछ टीकात्मक ग्रंथ लिखे गये थे ऐसा शाबरभाष्य के अवलोकन से प्रतीत होता है। शाबरभाष्य पर इ. 7 वीं शती में कुमारिलभट्ट ने तीन महत्त्वपूर्ण वृत्तिग्रंथों की रचना की 1) श्लोकवार्तिक 2) तंत्रवार्तिक तथा 3) टुप्टीका। कुमारिलभट्ट के प्रसिद्ध शिष्य मण्डनमिश्र ने विधिविवेक, भावनाविवेक, विभ्रमविवेक और मीमांसानुक्रमणी नामक ग्रंथ लिखे। कुमारिलभट्ट के वैशिष्ट्यपूर्ण प्रतिपादन के कारण उनके मतप्रणाली को "भाट्टमत" कहते है। इस मत के अनुयायियों में तर्करत्न, न्यायरत्नमाला, न्यायरत्नाकर तथा शास्त्रदीपिका इन चार ग्रंथों के लेखक पार्थसारथिमिश्र, न्यायरत्नमालाकार माधवाचार्य और भाट्टकौस्तुभ, भाट्टदीपिका एवं भाट्टरहस्य के लेखक खंडदेव मिश्र विशेष प्रसिद्ध हैं।

कुमारिलभट्ट के समकालीन प्रभाकर मिश्र ने शाबरभाष्य पर दो टीकाएँ लिखी हैं 1) बृहती एवं 2) लघ्वी। प्रभाकर की विचारपरंपरा को प्राभाकर संप्रदाय तथा गुरुमत कहते है। प्रभाकर के शिष्य शालीकनाथ मिश्र ने "बृहती" पर ऋजुविमला और "लघ्वी" पर दीपशिखा नामक टीकाओं द्वारा प्राभाकर मत का समर्थन किया है। उन्होंने अपने प्रकरणपंजिका नामक स्वतंत्र ग्रंथ में मीमांसाशास्त्र का प्रयोजन, प्रमाणविचार, ज्ञान तथा आत्मा के संबंध में सविस्तर विवेचन किया है। इसी गुरुमत के अनुयायी भवनाथ (या भवदेव) ने अपने नयविवेक (या न्यायविवेक) नामक ग्रंथ में शालीकनाथ के तीनों ग्रंथों का सारांश दिया है। प्राभाकर संप्रदाय के लेखकों में न्यायरत्नाकर (जैमिनिसूत्रों की व्याख्या) तथा अमृतबिन्दु के लेखक चन्द्र (जो गुरुमताचार्य उपाधि से विभूषित थे), प्रभाकर विजय के लेखक नन्दीश्वर (ई 14 वीं शती केरल के निवासी), नयतत्त्वसंग्रह के लेखक भट्टविष्णु (ई 14 वीं शती) भवनाथ मिश्रकृत न्यायविवेक पर अर्थदीपिका टीका के लेखक वरदराज (ई 16 वीं शती) इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं। रामानुजाचार्यकृत तंत्ररहस्य ग्रंथ स्वल्पकाय होते हुए भी "प्रभाकरमत-प्रवेशिका" माना जाता है।

"मुरारेस्तृतीय: पन्था" यह लोकोक्ति मीमांसादर्शन के अन्तर्गत मुरारिमिश्र के तृतीय संप्रदाय का निर्देश करती है। गंगेश उपाध्याय एवं उनके पुत्र वर्धमान उपाध्याय (ई 13 वीं शती) के ग्रंथों में (कुसुमांजलि तथा उसकी व्याख्या) मुरारि की तीसरी परंपरा का उल्लेख हुआ है। इसी संप्रदाय का वाङ्मय लुप्तप्राय होने के कारण यह परंपरा आज विशेष महत्त्व नहीं रखती। मुरारिकृत त्रिपादनीतिनय और एकादशाध्यायाधिकरण, प्रकाशित हुए हैं। प्रथम ग्रंथ में जैमिनिसूत्रों के चार पादों की एवं द्वितीय में एकादश अध्याय के कुछ अंशों की व्याख्या है। आधुनिक काल में डा गंगानाथ झा (जिन्होंने शाबरभाष्य, तंत्रवार्तिक और श्लोकवार्तिक का अंग्रेजी में अनुवाद किया) कृत मीमांसानुक्रमणिका (ले मंडनमिश्र) की मीमांसामंडन नामक व्याख्या, वामनशास्त्री किंजवडेकरकृत पश्वालंभनमीमांसा, पं गोपीनाथ कविराज कृत मीमांसाविषयक हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, कर्नल जी एस जेकब द्वारा संपादित शाबरभाष्य का सूचीपत्र तथा लौकिक न्यायांजलि (3 खंडों में), म म वेंकटसुब्बाशास्त्री का भट्टकल्पतरु, म म चिन्नस्वामी शास्त्री द्वारा लिखित मीमांसान्यायप्रकाश-टीका, तंत्रसिद्धान्त रत्नावली और यज्ञतत्त्वप्रकाश, केवलानंद सरस्वती (महाराष्ट्र में वाई क्षेत्र के निवासी) कृत मीमांसाकोश, भीमाचार्य झलकीकरकृत न्यायकोश इत्यादि ग्रंथों ने मीमांसा दर्शनविषयक संस्कृतवाङ्मय की परंपरा अक्षुण्ण रखी है।

2 "मीमांसा दर्शन की रूपरेखा"

"अथातो धर्मजिज्ञासा—" यह मीमांसा दर्शन का प्रथम सूत्र है। अर्थात् धर्म ही इस का मुख्य प्रतिपाद्य है जिस का निर्देश कर्म, यज्ञ, होम, आदि अनेक शब्दों से होता है। जैमिनिसूत्रों के बारह अध्यायों में कुल 56 पाद (प्रत्येक अध्याय में 4 पाद। केवल अध्याय 3 और 6 में आठ आठ पाद हैं।) और लगभग एक हजार अधिकरणों में इस मुख्य विषय का प्रतिपादन हुआ है। इनके निरूपण के प्रसंग में सैंकडों "न्याय" और सिद्धान्त स्थापित हुए हैं जिनका उपयोग प्राय सभी शास्त्रों (विशेषत धर्म शास्त्र) ने किया है। अधिकरण में अनेक सूत्र आते हैं जिनमें एक प्रधान सूत्र और अन्य गुणसूत्र होते है। विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त और प्रयोजन तथा संगति नामक छह अवयव अधिकरण के अंतर्गत होते है।

मीमांसासूत्रों के "द्वादशलक्षणी" नामक प्रथम खंड के प्रथम अध्याय में धर्म का विवेचन हुआ है। "चोदना-लक्षणोऽर्थो धर्म:" (अर्थात्-वेदों के आज्ञार्थी वचनों द्वारा विहित इष्ट कर्म) यह इस शास्त्र के अनुसार धर्म का लक्षण है। यहां पर विधि, अर्थवाद, मन्त्र, और नामधेय इन वेदों के चारों भागों को प्रमाण माना जाता है। इसी तरह वेद के द्वारा निषिद्ध कर्म के अनुष्ठान से अधर्म होता है। यज्ञ-याग धर्म है और ब्रह्महत्या इत्यादि अधर्म है। इष्टसाधनता, वेदबोधितता और अनर्थ से असंबद्धता जहाँ हो, वही कर्म, मीमांसकों के मतानुसार, "धर्म" कहने योग्य है। वैदिक धर्म का ज्ञान मुख्य रूप से विधि, अर्थवाद, मन्त्र, स्मृति, आचार, नामधेय, वाक्यशेष, और सामर्थ्य या शिष्टाचार इन आठ प्रमाणों से होता है।

मीमांसाशास्त्र में "भावना" एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द प्रचलित है जिस का अर्थ है, होने वाले कर्म की उत्पत्ति के अनुकूल, प्रयोजक में रहने वाला विशेष व्यापार। यह व्यापार,वेद अपौरुषेय होने के कारण "यजेत" इत्यादि शब्दों में ही रहता है। इस लिए इसे "शाब्दी भावना" कहते हैं। शाब्दी भावना को तीन अंशों की अपेक्षा होती है — (1) साध्य, (2)

साधन और (3) इतिकर्तव्यता। पुरुष में स्वर्ग की इच्छा से उत्पन्न यागविषयक जो प्रयत्न है, वही है "आर्थी भावना"। आख्यातत्त्व द्वारा इस का अभिधान किया जाता है क्यों कि "यजेत" इस आख्यात के सुनने पर "याग में यत्न करें" ऐसी प्रतीति होती है। यही प्रयत्न आख्यात का वाच्य है। "अर्थ" शब्द का अर्थ है फल। फल से संबंधित होने के कारण इस द्वितीय भावना को "आर्थी भावना" कहा गया है। आर्थी भावना से संबंधित फल, यज्ञ-याग आदि कारणों से साक्षात् तत्काल नहीं प्राप्त हो सकता। अत यज्ञादि साधन और स्वर्गादि साध्य के मध्य में "अपूर्व" नामक पृथक् तत्त्व की सत्ता मीमांसकों द्वारा मानी गयी है। "अपूर्व" का यह सिद्धात श्री शकराचार्य ने भी मान्य किया है। वे उसे कर्म की सूक्ष्म उत्तरावस्था तथा फल की पूर्वावस्था कहते हैं। यह "अपूर्व" चार प्रकार का है— (1) परमापूर्व, (2) समुदायापूर्व, (3) उत्पत्त्यपूर्व और (4) अंगापूर्व। यह अपूर्व (परमापूर्व), फल के उदय होने तक यजमान की आत्मा में अवस्थित रहता है और फल उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है।

शास्त्र में याग, होम, दान, आदि कर्मों का विधान विविध आख्यातो (क्रियापदों) द्वारा होता है जिनके अभिप्राय में विभिन्नता होती है। इस विभिन्नता को ठीक जानने के लिए मीमांसको ने छह प्रमाण स्वीकृत किये हैं — (1) शब्दान्तर, (2) अभ्यास, (3) संख्या, (4) सज्ञा, (5) गुण और (6) प्रकरणान्तर। ये सब प्रमाण मात्र कर्मस्वरूप का बोध कराने वाली "उत्पत्ति विधि" के सहाय्यक हैं। इसी उत्पत्ति विधि का निरूपण मीमासा सूत्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय में हुआ है। तृतीय अध्याय में "विनियोग विधि" का निरूपण है। विनियोग का अर्थ है अगत्वबोधन। अंगत्व का बोधन करने के लिये श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, और समाख्या ये छह सहाय्यक प्रमाण होते हैं। इनमें श्रुति तीन प्रकार की है .— (1) विभक्तिरूप, (2) समानाभिधानरूप और (3) एकपदरूप। लिग दो प्रकार का है — (1) सामान्य सबध प्रमाणान्तर सापेक्ष और (2) निरपेक्ष। प्रकरण दो प्रकार का है — (1) महाप्रकरण और (2) अवान्तर प्रकरण। स्थान दो प्रकार का है — (1) पाठ (इसके भी दो प्रकार हैं — (1) यथासख्य और (2) सनिधि।) और (2) अनुष्ठान। समाख्या (अर्थात् यौगिक शब्द) के दो प्रकार हैं — (1) लौकिक और (2) वैदिक।

ये अगत्व बोधक छह प्रमाण क्रमश एक दूसरे से दुर्बल होते हैं। अर्थात् श्रुति सबसे प्रबल और समाख्या सबसे दुर्बल प्रमाण है। इसी क्रम से इन मे पारस्परिक विरोध होता है तब पर-प्रमाण से पूर्व-प्रमाण का बोध ग्राह्य होता है। सामान्य रूप से ये सभी बोधक अग दो प्रकार के है — (1) सन्निपत्योपकारक और (2) आरादुपकारक। उनमें प्रथम की अपेक्षा द्वितीय दुर्बल होता है। इसी अध्याय में "शेष" का विचार हुआ है। मत्र, पुरुषार्थ के शेष होते हैं। पुरुषार्थ कर्ता के और कर्ता कुछ कर्मों का शेष होता है। यज्ञ का अधिकारी वेदाध्यायी पुरुष ही होता है अन्य नहीं, यह सिद्धान्त इस अध्याय में प्रतिपादित किया है।

चतुर्थ अध्याय में "प्रयोग" निरूपण करते हुए प्रयोज्य और प्रयोजक का स्पष्टीकरण किया गया है। यज्ञ के लिये जो भी कर्तव्य आज्ञापित होता है, वह "क्रत्वर्थ" और अन्य कर्तव्य "पुरुषार्थ" होता है। अर्थकर्म, प्रतिपत्तिकर्म आदि कर्मों में देश, काल, कर्ता, का निरूपण करने वाले श्रुतिवाक्य, "अर्थवाद" नहीं अपि तु "नियम" होते हैं। जिन व्रतों का कोई विशिष्ट फल बताया नहीं होता, उनका फल स्वर्गप्राप्ति समझना चाहिए।

क्रमनिरूपण पचम अध्याय का विषय है। इस क्रम का संबध प्रयोगविधि से है। अनुष्ठान को शीघ्रता के साथ बताना प्रयोगविधि का कार्य है। यह क्रम विशिष्ट प्रकार का अनुक्रम है। इस आनन्तर्य अनुक्रम के बोध के लिये मीमांसकों ने छह सहायक कारण या प्रमाण बताये हैं — (1) श्रुति, (2) अर्थ, (3) पाठ, (4) स्थान, (5) मुख्य और (6) प्रवृत्ति। इनमें भी (श्रुति, लिग, आदि अंगत्व बोधक प्रमाणों की तरह) "पारदौर्बल्य" (अर्थात् उत्तरोत्तर प्रमाण की दुर्बलता) यथाक्रम मानी जाती है। छठे अध्याय में "अधिकारविधि" का विवेचन हुआ है। "दर्शपूर्णमासाभ्या स्वर्गकामो यजेत" आदि वाक्य अधिकारविधि के उदाहरण हैं जिनमें स्वर्गकाम आदि का अधिकारी के रूप में उपादान किया गया है। अंगहीन (अंध बधिर पगु इ) मनुष्यों का कर्मानुष्ठान में अधिकार नहीं है। मीमासको के मतानुसार देवता शरीरधारी नहीं होते, अत उनका भी कर्म में अधिकार नहीं है। यज्ञ कर्मों में व्रीहि इत्यादि विहित द्रव्य के अभाव में नीवार इत्यादि द्रव्यों को "प्रतिनिधि" के रूप में अपनाया जाता है। षष्ठ अध्याय तक "उपदेश" से संबंधित विषयों का निरूपण किया गया है। इन के बाद के छह अध्यायों में "अतिदेश" से संबधित विषयों का विचार हुआ है। सप्तम और अष्टम अध्याय में अतिदेश के सामान्य और विशेष रूप का निरूपण है। अतिदेश का अर्थ है, एक स्थान में सुने हुए अंगों को, दूसरे स्थान पर पहुंचाने वाला शास्त्र। अतिदेश के मुख्यत तीन प्रकार होते हैं .—

(1) वचनातिदेश, (2) नामातिदेश और (3) चोदना-लिंगातिदेश। इनमें भी प्रथम अतिदेश अन्य दोनों की अपेक्षा प्रबल होता है। नवम अध्याय में "ऊह" का विवेचन किया है। अतिदेश के अनुसार प्रकृति-याग में विहित विधि या पदार्थ,

सादृश्य के कारण विकृति-याग में भी ग्राह्य माने जाते हैं, तब उनको उसी कार्य के अनुसार बनाना "ऊह" का कार्य है। ऊह" के तीन प्रकार :—

(1) मंत्रोह, (2) समोह और (3) संस्कारोह। प्रकृति याग में प्रोक्षण आदि सस्कार व्रीही पर बताये हो तो उन के स्थान पर प्रयुक्त नीवार आदि पर प्रोक्षण होते हैं। यह सस्कार ऊह का उदाहरण है। प्रकृति के अतिदेश से विकृति में जिन अंगों की प्राप्ति का संभव हो, उनकी किसी कारण विकृति में निवृत्ति होती है। इसी को दशम अध्याय में "बाध" कहा है जैसे किसी याग में व्रीही के स्थान पर सोने के तुकडे विहित हों, तब अतिदेश से प्राप्त अवघात या कंडन का कोई प्रयोजन न होने से उसे बाध आता है। यह बाध तीन कारणो से होता है — (1) अर्थलोप, (2) प्रत्याख्यान और (3) प्रतिषेध इन तीन कारणों से होने वाला बाध दो प्रकार का होता है — (1) प्राप्त बाध और (2) अप्राप्त बाध।

इसी बाध की चर्चा में अभ्युच्चय, पर्युदास, और नञर्थ के सबध में भी मार्मिक चर्चा हुई है।

ग्यारहवें अध्याय में तंत्र और आवाप का विचार है। अनेको के उद्देश्य से, अंगो का एक ही बार अनुष्ठान "तत्र" कहलाता है, और कहीं कहीं विशेषताओं के कारण अनुष्ठान की आवृत्ति भी होती है, तब उसे "आवाप" कहते हैं। अदृश्य परिणाम वाले कृत्य एक ही बार किये जाते हैं और जिनके परिणाम दृश्य होते है, ऐसे कृत्यो की परिणाम दीखते तक आवृत्ति करना आवश्यक माना गया है। प्रसंगविचार 12 वें अध्याय का विषय है। भोजन गुरु के लिए बनवाया जाने पर, उसी समय दूसरे किसी शिष्ट का आगमन हुआ, तो उसके स्वागत का पृथग् आयोजन नहीं करना पड़ता।, इस प्रकार दूसरे से उपकार का लाभ हो जाने के कारण प्रयुक्त अंग का अनुष्ठान न करना "प्रसग" कहा गया है।

3 "मीमांसा दर्शन के कुछ मौलिक सिद्धान्त"

1) वेद नित्य, स्वयभू एवं अपौरुषेय और अमोघ हैं।

2) शब्द और अर्थ का .सबंध नित्य है, वह किसी व्यक्ति के द्वारा उत्पन्न नहीं है।

3) आत्माएं अनेक, नित्य एवं शरीर से भिन्न हैं। वे ज्ञान एव मन से भी भिन्न हैं। आत्मा का निवास शरीर में होता है।

4) यज्ञ में हवि प्रधान है, और देवता गौण।

5) फल की प्राप्ति यज्ञ से ही होती है, ईश्वर या देवताओं से नहीं।

6) सीमित बुद्धि वाले लोग वेदवचनों को भली भाति न जानने के कारण भ्रामक बाते करते हैं।

7) अखिल विश्व की न तो वास्तविक सृष्टि होती है और न विनाश।

8) यज्ञसंपादन सबंधी कर्म एव फल के बीच दोनों को जोडने वाली "अपूर्व" नामक शक्ति होती है। यज्ञ का प्रत्येक कृत्य एक "अपूर्व" की उत्पत्ति करता है; जो सपूर्ण कृत्य के अपूर्व का छोटा रूप होता है।

9) प्रत्येक अनुभव सप्रमाण होता है, अत वह भ्रामक या मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

10) महाभारत एव पुराण मनुष्यकृत हैं, अत उनकी स्वर्गविषयक धारणा अविचारणीय है। स्वर्गसबधी वैदिक निरूपण केवल अर्थवाद (प्रशसापर वचन) है।

11) निरतिशय सुख ही स्वर्ग है और उसे सभी खोजते हैं।

12) अभिलषित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए वेद में जो उपाय घोषित है, वह इह या परलोक में अवश्य फलदायक होगा।

13) निरतिशय सुख (स्वर्ग) व्यक्ति के पास तब तक नहीं आता जब तक वह जीवित रहता है। अत स्वर्ग का उपभोग दूसरे जीवन में ही होता है।

14) आत्मज्ञान के विषय में उपनिषदों की उक्तिया केवल अर्थवाद हैं क्यों कि वे कर्ता को यही ज्ञान देती है कि वह आत्मवान् है और आत्मा कि कुछ विशेषताएं हैं।

15) निषिद्ध और काम्य कर्मों को सर्वथा छोड़ कर, नित्य एव नैमित्तिक कर्म निष्काम बुद्धि से करना, यही मोक्ष (अर्थात् जन्म मरण से छुटकारा) पाने का साधन है।

16) कर्मों के फल उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो उन्हें चाहते हैं।

17) प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद होते हैं .- (1) निर्विकल्प और (2) सविकल्पक।

18) वेदों में दो प्रकार के वाक्य होते हैं. - (1) सिद्धार्थक (जैसे- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) और (2) विधायक। वेद का तात्पर्य विधायक वाक्यों में ही है। सिद्धार्थक वाक्य अन्ततो गत्वा विधि वाक्यों से सबधित होने के कारण ही चरितार्थ होते हैं।

19) वेदमन्त्रों में जिन ऋषियो के नाम पाये जाते हैं वे उन मन्त्रों के "द्रष्टा" होते हैं, कर्ता नहीं।

20) स्वत. प्रामाण्यवाद- (1) ज्ञान की प्रामाणिकता या यथार्थता कहीं बाहर से नहीं आती अपितु वह ज्ञान की उत्पादक सामग्री के संग में, स्वतः (अपने आप) उत्पन्न होती है।

21) ज्ञान उत्पन्न होते ही उसके प्रामाण्य का ज्ञान भी उसी समय होता है। उस की सिद्धि के लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

22) ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः होता है किन्तु उसका अप्रामाण्य "परत" होता है।

23) पदार्थों की संख्याः- प्रभाकर के मतानुसार आठ - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या। कुमारिल के मतानुसार एक भाव और चार प्रकार के अभाव मिलाकर पांच पदार्थ। मुरारिमिश्र के मतानुसार .- ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ भूत पदार्थ है, परंतु लौकिक व्यवहार की उपपत्ति के लिए अन्य चार पदार्थ भी हैं (1) धर्मिविशेष (नियत आश्रय) (2) धर्मविशेष (नियत आधेय), (3) आधारविशेष और (4) प्रदेशविशेष।

24) यह संसार, भोगायतन (शरीर), भोगसाधन (इन्द्रियां) और भोगविषय (शब्दादि) इन तीन वस्तुओ से युक्त तथा अनादि और अनन्त है।

25) कर्मों के फलोन्मुख होने पर, अणुसंयोग से व्यक्ति उत्पन्न होते हैं और कर्म फल की समाप्ति होने पर उनका नाश होता है।

26) कार्य की उत्पत्ति के लिए उपादन कारण के अतिरिक्त "शक्ति" की भी आवश्यकता होती है। शक्तिहीन उपादन कारण से कार्योत्पत्ति नहीं होती।

27) आत्मा-कर्ता, भोक्ता, व्यापक और प्रतिशरीर में भिन्न होता है। वह परिणामशील होने पर भी नित्य पदार्थ है।

28) आत्मा में चित् तथा अचित् दो अश होते हैं। चिदश से वह ज्ञान का अनुभव पाता है, और अचित् अंश से वह परिणाम को प्राप्त करता है।

29) आत्मा चैतन्यस्वरूप नहीं अपि तु चैतन्यविशिष्ट है।

30) अनुकूल परिस्थिति में आत्मा में चैतन्य का उदय होता है, स्वप्नावस्था में शरीर का विषय से सबध न होने से आत्मा में चैतन्य नहीं रहता।

31) कुमारिल भट्ट आत्मा को ज्ञान का कर्ता तथा ज्ञान का विषय दोनो मानते हैं, परतु प्रभाकर आत्मा को प्रत्येक ज्ञान का केवल कर्ता मानते हैं, क्यों कि एक ही वस्तु एकसाथ कर्ता तथा कर्म नहीं हो सकती।

32) चोदना लक्षणोऽर्थो धर्म - विधि का प्रतिपादन करने वाले वेदवाक्यों के द्वारा विहित अर्थ ही धर्म का स्वरूप है।

33) भूत, भविष्य, वर्तमान, सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट पदार्थों को बतलाने में जितना सामर्थ्य "चोदना" में (अर्थात् विधि प्रतिपादक वेदवाक्यों में) है उतना इन्द्रियों या अन्य प्रमाणो में नहीं है।

34) नित्य कर्मों के अनुष्ठान से दुरितक्षय (पापो का नाश) होता है। उनके न करने से "प्रत्यवाय दोष" उत्पन्न होता है।

35) देवता शब्दमय या मंत्रात्मक होते हैं। मन्त्रों के अतिरिक्त देवताओ का अस्तित्व नहीं होता।

36) प्राचीन मीमांसा ग्रथों के आधार पर ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं मानी जाती। उत्तरकालीन मीमांसकों ने ईश्वर को कर्मफल के दाता के रूप में स्वीकार किया है।

37) जब लौकिक या दृष्ट प्रयोजन मिलता है तब अलौकिक या अदृष्ट की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

38) वेदमंत्रों के अर्थज्ञान के सहित किये हुए कर्म ही फलदायक हो सकते हैं, अन्य नहीं।

39) किसी भी ग्रंथ के तत्त्वज्ञान या तात्पयार्य का निर्णय-उपक्रम, उपसहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, और उपपत्ति इन सात प्रमाणों के आधार पर करना चाहिये।

४०) किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन, विषय, संशय, पूर्व पक्ष, उत्तर पक्ष और प्रयोजन (या निर्णय) इन पाच अगों द्वारा होना चाहिए।

4 "वेदान्त दर्शन"

प्राचीन भारतीय परपरा के अनुसार वेद का विभाजन कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड नामक दो काण्डो में किया जाता है। कर्म काण्ड के अन्तर्गत यज्ञयागादि विधि तथा अनुष्ठान का विचार होता है। ज्ञानकाण्ड में ईश्वर, जीव, जगत् के सबंध में विवेचन होता है। इन दोनों काण्डो में सारा प्रतिपादन वेदवचनो के अनुसार ही होता है। इन का तर्क भी वेदानुकूल ही होता है। वेदप्रामाण्य के अनुसार तत्त्वप्रतिपादन करते समय जहां आपातत विरोधी वेदवचन मिलते हैं, उनके विरोध का प्रशमन करने के प्रयत्नों में "मीमांसा" का उद्भव हुआ। यह मीमांसा दो प्रकार की मानी गयी (1) कर्ममीमासा एवं (2) ज्ञानमीमासा। कर्ममीमांसा को पूर्वमीमासा और ज्ञानमीमांसा को उत्तरमीमांसा कहने की परिपाटी है। उत्तर-मीमांसा ही वेदान्त दर्शन कहा जाता है। वैदिकज्ञान काण्ड में अन्तर्भूत न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग और पूर्व-उत्तर मीमासा इन आस्तिक षड् दर्शनों में दार्शनिकों के तत्त्वचिन्तन का परमोच्च शिखर माना गया है वेदान्त दर्शन। नास्तिक (वेद का प्रामाण्य न मानने वाले चार्वाक, जैन और बौद्ध) और आस्तिक (वेदों का प्रामाण्य मानने वाले) दर्शनों के वैचारिक विकास के अनुक्रम का प्रतिपादन करते हुए कुछ प्राचीन

विद्वानो ने प्रारभ में नास्तिक और उसके बाद आस्तिक दर्शनो **की जो सोपान परंपरा मानी है, उसके अनुसार ठीक चिन्तन करने** पर जिज्ञासु वेदान्त के अद्वैत विचार तक पहुचता है। इस दर्शन परंपरा मे **स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम इस क्रम से** वैचारिक प्रगति दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में दार्शनिकों के आत्मविषयक विचार देखिए। अत्यत स्थूल बुद्धि का मनुष्य "आत्मा वै जायते पुत्र" इस वचन के अनुसार पुत्र को ही आत्मा मानता है। उसके उपर चार्वाकवादी "स वा एष पुरुषो अन्नरसमय" इस वचन के अनुसार निजी स्थूल शरीर को ही आत्मा मानता है। इसके आगे लोकायत मतवादी इन्द्रियों को, प्राणात्मवादी शरीरसचारी प्राण को मनवादी मन को, योगाचारवादी (या विज्ञानवादी) बुद्धि को, प्राभाकर मीमासक ज्ञान को, कुमारिल मतानुयायी अज्ञानस्थित चैतन्य को, माध्यमिक बौद्ध शून्य को और अत में वेदान्तवादी नित्य-शुद्ध बुद्ध-मुक्त-स्वभावी अन्तर्यामी चैतन्य को आत्मा मानते हैं। इस एकमात्र उदाहरण से दार्शनिकों की विचारधारा स्थूलतम से सूक्ष्मतम की ओर किस प्रकार बढ़ती थी और उसकी परिसमाप्ति वेदान्त दर्शन में किस प्रकार हुई यह कल्पना आ सकती है। इस अनुक्रम से यह भी सिद्ध होता है कि अन्यान्य दर्शनों में आपाततः भासमान अन्यान्य विरोध, अंतिम सिद्धान्त का आकलन होने की दृष्टि से आवश्यक भेद के स्वरूप का है। अंतिम सिद्धान्त के आकलन के लिए वह पूरक सा है। वेदान्त दर्शन का मूल उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रो और भगवतद्गीता इस प्रस्थानत्रयी मे निर्विवाद है। भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजी ने इस दर्शन को व्यवस्थित रूप में स्थापित करने का कार्य अपने ग्रथो द्वारा किया, इस तथ्य को सभी मानते है, तथापि शंकराचार्य से प्राचीन वेदान्तवादी विद्वानो के नाम श्रीव्यासकृत ब्रह्मसूत्रो में मिलते है जैसे -

आत्रेयः- स्वामिन फलश्रुते इति आत्रेय (ब्र सू 3-4-55)।

आश्मरथ्यः- "अभिव्यक्ते इति आश्मरथ्य" (ब्र सू 1 2-39)

कार्ष्णाजिनिः- "चरणादिति चेत् न उपलक्षणार्थ कार्ष्णाजिनि (ब्र सू 3-1-9)।

काशकृत्स्न.- "अवस्थिते इति काशकृत्स्न"। (ब्र सू 1 4 22)।

इनके अतिरिक्त औडुलोमि, जैमिनि, बादरि काश्यप इत्यादि पूर्वाचार्यो के नामो का निर्देश ब्रह्मसूत्रो मे मिलता है।

वेदान्त दर्शन मे श्रीशंकर, रामानुज, मध्व, आदि आचार्यों के भाष्यग्रथ अग्रगण्य माने जाते हैं, परतु इन भाष्यकारो ने अपने पूर्ववर्ती कुछ आचार्यों के विचारो का परामर्श लिया है। उनमे ज्ञानकर्म-समुच्चयवादी भर्तृप्रपच, शब्दाद्वैतवादी भर्तृहरि (वाक्यपदीयकार) बौधायन, ब्रह्मनदी, टक, भारुचि, द्राविडाचार्य, सुन्दरपाण्ड्य, ब्रह्मदत्त आदि नाम उल्लेखनीय है। वेदान्त दर्शन की प्रस्थानत्रयी मे, व्यासकृत ब्रह्मसूत्रो का विशेष महत्त्व माना जाता है। इसका कारण इस ग्रथ मे शास्त्रीय पद्धति के अनुसार अन्य मतो का परामर्श लेते हुए ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रथ मे चार अध्याय और प्रत्येक अध्याय में चार पाद है। अध्यायो के नाम 1) समन्वयाध्याय 2) अविरोधाध्याय, 3) साधनाध्याय और 4) फलाध्याय। इसके सूत्र इतने स्वल्पाक्षर हैं कि किसी भाष्य की सहायता के बिना उनका अर्थ या अभिप्राय समझना अत्यत कठिन है। मूल सूत्रकार का सैद्धान्तिक मन्तव्य निर्धारित करने की आकाक्षा से कुछ महनीय आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य लिखे, जो वेदान्त दर्शन विषयक वाङ्मय मे नितान्त महत्त्वपूर्ण माने जाते है -

"ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार"

	नाम	समय	भाष्यग्रथ	सिद्धान्त
1)	शंकराचार्य	- 8-9 वी शती	- शारीरकभाष्य	निर्विशेषाद्वैत
2)	भास्कर	- 10 वी शती	- भास्करभाष्य	- भेदाभेद
3)	रामानुजाचार्य	- 12 वी शती	श्रीभाष्य	- विशिष्टाद्वैत
4)	मध्वाचार्य	13 वी शती	- पूर्णप्रज्ञभाष्य	- द्वैत
5)	निंबार्काचार्य	- 13 वी शती	वेदान्तपारिजात	द्वैताद्वैत।
6)	श्रीकण्ठ	- 13 वीं शती	- शैवभाष्य	- शैवविशिष्टाद्वैत
7)	श्रीपति	14 वी शती	- श्रीकरभाष्य	- वीरशैवविशिष्टाद्वैत
8)	वल्लभाचार्य	- 15-16 वीं शती	अणुभाष्य	- शुद्धाद्वैत।
9)	विज्ञानभिक्षु	- 16 वीं शती	- विज्ञानामृत	- अविभागाद्वैत।
10)	बलदेव	- 18 वीं शती	- गोविंदभाष्य	- अचिंत्य भेदाभेद।

इन श्रेष्ठ विद्वानो ने ब्रह्मसूत्रो का अर्थनिर्धारण करने के प्रयत्नो में जो विविध सिद्धान्तो का प्रतिपादन अपनी पाण्डित्यपूर्ण शैली मे किया है, उसके कारण मूल सूत्रकार का मन्तव्य निर्धारित करना कठिन हो गया है। भाष्यकारो में श्रीशंकर, रामानुज, मध्व, और निंबार्क के द्वारा सम्प्रदायो की स्थापना हुई है। इन सम्प्रदायो के अनुयायी विद्वान अपने ही सप्रदायप्रवर्तक के सिद्धान्त ब्रह्मसूत्रो का मन्तव्य मानते हैं। इन भाष्यकारो ने भगवद्गीता और उपनिषदो के भाष्य लिख कर, उनमे भी अपने सिद्धान्तो पर बल दिया है। इस मतभेद में सूत्रों और अधिकरणो की सख्या के विषय में तथा शब्दो के अर्थ के विषय में भी मतभेद व्यक्त हुए हैं।

5 "शांकरमत"

वेदान्त मत के प्रमुख सिद्धान्त हैं (1) जीव और ब्रह्म के अद्वैत ज्ञान से ही मोक्ष लाभ होता है। (2) यथार्थज्ञान प्राप्ति के साधन (या प्रमाण) छह हैं - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आप्तवाक्य, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। (3) ब्रह्मविचार का आरंभ करने से पहले जिज्ञासु को "साधन चतुष्टय" से सम्पन्न होना नितान्त आवश्यक है। साधन चतुष्टय - (1) नित्यानित्यवस्तुविवेक, (2) ऐहिक एव पारलौकिक विषयभोगो के प्रति प्रखर वैराग्य, (3) साधन षट्क अर्थात शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा ये छह प्रकार की साधनाएं, और (4) मुमुक्षुत्वो इन सभी साधनों को मिला कर "साधनचतुष्टय" कहते हैं। जो इस मे पूर्णत्व पाता है वही वेदान्त के पारमार्थिक ज्ञान का "अधिकारी" होता है। अधिकारी जिज्ञासु को भी वेदान्त सिद्धान्तो का ज्ञान तभी हो सकता है जब वह, "शाब्दे परे च निष्णातः" (अर्थात् वेदान्त ग्रन्थो के अध्ययन मे प्रवीण एव आध्यात्मिक अनुभव से सम्पन्न) श्रेष्ठ योग्यता के गुरु के चरणों में "दीप्तशिरा जलराशिमिव-अर्थात् आग से जला हुआ या अत्यंत तृषार्त मनुष्य जलाशय की ओर जिस व्याकुलता से जाता है, उस व्याकुलता मे शरण जाकर श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा ज्ञान ग्रहण करता है।

अध्यारोप जिस प्रकार अंधेरे में रज्जु पर सर्प का या प्रकाश मे शुक्तिका पर चादी का आभास होता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मवस्तु पर अज्ञान के कारण जगद्रूपी अवस्तु का आभास होता है। वेदान्तियो के रज्जु-सर्प दृष्टान्त में और शुक्तिका-रजत-दृष्टान्त मे, रज्जु एव शुक्तिका "वस्तु" है और उन पर भासमान होने वाले सर्प एव चादी "अवस्तु" है। वेदान्त दर्शन में सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म का निर्देश "वस्तु"शब्द से और अज्ञान तथा अज्ञानजन्य जगत् का "अवस्तु" शब्द से होता है। अज्ञान सत् नही और असत् भी नहीं। वह सत् इसलिये नहीं कि सत्य ज्ञान का उदय होने पर वह नष्ट होना है, और असत् इसलिए नही कि, रज्जु-शुक्तिका पर सर्प-रजत का आभास अज्ञान के ही कारण होता है। सत्य वस्तु पर असत्य या मिथ्या अवस्तु (जगत) के आभास का वही प्रमुख कारण है। इस प्रकार अज्ञान, सत् एव असत् दोनो प्रकार का न होने के कारण वह "अनिर्वचनीय" (जिसका यथार्थ स्वरूप बताना असभव है।) माना गया है। वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली में अज्ञान की अनर्विचनीयता का सिद्धान्त एक सुन्दर दृष्टान्त द्वारा विशद किया है

'अज्ञान ज्ञातुमिच्छेद् यो मानेनात्यन्तमूढधी । स तु नून तम पश्येद् दीपेनोत्तमतेजसा।।

अर्थात्- जो मूढ बुद्धि पुरुष, किसी प्रमाण के आधार पर अज्ञान को जानने की इच्छा रखता है, वह तेजस्वी दीपक के सहारे अधकार को भी देख सकेगा। इसी अनिर्वचनीय अज्ञान को श्री शकराचार्य "माया" कहते हैं।

वेदसहिता मे माया का निर्देश एकवचनी एव बहुवचनी दोनो प्रकार से हुआ है। अत वेदवाक्य का निरपवाद प्रामाण्य मानने वाले वेदान्तशास्त्री, अज्ञान को वृक्ष के समान व्यष्टिरूप और वन के समान समष्टिरूप मानते है। प्रत्येक जीव मे पृथक् प्रतीत होने वाला अज्ञान व्यष्टिरूप है, और समस्त जीवमात्र मे प्रतीत होने वाला सामूहिक अज्ञान समष्टिरूप है। यह अज्ञान ज्ञानविरोधी, त्रिगुणात्मक, भावरूप, अनिर्वचनीय किन्तु स्वानुभवगम्य है। उसमे दो प्रकार की शक्ति होती है। 1) आवरण शक्ति और 2) विक्षेप शक्ति। जिस प्रकार अल्पमात्र मेघ अतिविशाल सूर्यमण्डल को आच्छादित करता है, उसी प्रकार अज्ञान (अथवा माया) अपनी आवरणशक्ति से आत्मस्वरूप को आच्छादित करता है। वस्तुत मेघ सूर्य को आच्छादित नही करता, वह द्रष्टा की दृष्टि को आच्छादित करता है। उसी प्रकार, तुच्छ अज्ञान सर्वव्यापी परमात्मा को आच्छादित नही करता, अपि तु अपनी आवरण शक्ति से वह मानव की बुद्धि को आच्छादित करता है। अत मेघावरण के कारण नेत्रो को जैसा सूर्यदर्शन नही होता, वैसा ही माया की आवरण शक्ति के कारण बुद्धि को परब्रह्म का आकलन नही होता।

विक्षेपशक्ति : अज्ञान की आवरण शक्ति के कारण रज्जु आच्छादित होती है, और फिर उसी स्थान पर सर्प जिस शक्ति के कारण उद्भासित होता है, उसे विक्षेप शक्ति कहते हैं। अज्ञान की इसी शक्ति के कारण ब्रह्म पर सूक्ष्मतम शरीर से लेकर ब्रह्माण्ड तक का सारा प्रपच उद्भासित होता है। वेदान्त का यह माया विषयक सिद्धान्त दार्शनिक क्षेत्र मे विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

परब्रह्म ही ससार का आदि कारण है, यह वेदान्त का सिद्धान्त है। परतु कारण, उपादान और निमित्त स्वरूप दो प्रकार का होता है। घट का "उपादान कारण" मृतिका और कुम्भकार आदि अन्य, निमित्त कारण होता है। ब्रह्म को इस प्रपंच का उपादान कारण मानने मे आपत्ति आती है। उपादान कारण के गुण उसके कार्य में प्रकट होते हैं। (कारणगुणा कार्यगुणान् आरभन्ते) इस सर्वमान्य तत्त्व के अनुसार चेतनत्व, नित्यत्व इत्यादि ब्रह्म के निजी गुण इस प्रपच मे मिलने चाहिये, जैसे मृत्तिका के गुण घट में, या ततु के गुण पट में मिलते हैं। परंतु प्रपच का स्वरूप चेतन और नित्य ब्रह्म के विपरीत (अचेतन और अनित्य) दिखाई देता है। अत ब्रह्म इस प्रपच का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

तैतिरीय उपनिषद् में कहा है कि, "तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्" (याने सृष्टि निर्माण करने पश्चात् ब्रह्म उसी कार्य में प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिवचन से ब्रह्म का अपने जगत्स्वरूप कार्य मे प्रवेश कहा गया है। उपनिषद् का यह वचन प्रत्यक्ष अनुभव के विपरीत भी है। निमित्त कारण (चक्र, दण्ड, तुरी, वेमा आदि) का अपने कार्य, (घट, पट) में प्रवेश कभी किसी ने देखा

नहीं। अत ब्रह्म, जगत् का निमित्त कारण भी नहीं माना जा सकता। वेदान्त मत के विरोधी, इस प्रकार के युक्तिवादों से वेदान्त दर्शन के ब्रह्मकारणवाद का खडन करते हैं। परतु इस प्रकार विरोधी युक्तिवादों का खण्डन, वेदान्त दर्शन में एक सर्व परिचित एवं समुचित दृष्टान्त से किया गया है। वेदान्ती कहते हैं, जिस प्रकार लूता (मकडी) अपने द्वारा निर्मित ततुजाल का उपादान कारण एव निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार ब्रह्म इस सृष्टि का उभयरुप (उपादान और निमित्त) कारण है। लूता की चैतन्य शक्ति उसके जाल का निमित्त कारण, और उसका शरीर, उपादान कारण होता है। ठीक उसी प्रकार अज्ञानाच्छादित ब्रह्म अपनी चैतन्यप्रधानता की दृष्टि से सृष्टि का निमित्त कारण और अज्ञान प्रधानता की दृष्टि से, उपादान कारण होता है। विभिन्नता में अभिन्नता सिद्ध करने में वेदान्त के अद्वैत वाद की विशेषता है। मूल शुद्ध चैतन्य और मायायुक्त चैतन्य (इसी को ईश्वर या प्राज्ञ कहते हैं।) इनमें आपातत विभिन्नता होते हुए भी वेदान्तियों ने "तप्ताय पिण्ड" (आग के कारण, आग के समान लाललाल दीखने वाला लोहे का गोल) का दृष्टान्त देकर अभिन्नता प्रतिपादन की है। अग्निकुण्ड में पड़ा हुआ लोहपिंड, अग्नि के समान लाल और उष्ण होते हुए भी लोह के भारादि गुणधर्मों के कारण, वह लोहे का गोला ही माना जाता है। परंतु उसमें अग्नि के दाहकत्व आदि गुणधर्म प्रत्यक्ष दीखने के कारण, वह अग्निगोल भी माना जाता है। प्रस्तुत तप्त लोहपिंड के दृष्टान्त से विभिन्नता में अभिन्नता स्पष्ट होती है। मायारूप उपाधि के कारण ईश्वर और मूल शुद्ध चैतन्य में द्वैत (विभिन्नता) की प्रतीति होते हुए भी, मूल स्वरूप में उनमे अद्वैत (एकता) ही है, यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

वेदान्त शास्त्र के अनुसार "अधिकारी" पुरुष को, गुरुद्वारा "तत् त्वम् असि" इस "महावाक्य" का अध्यारोप और अपवाद की पद्धति के अनुसार, यथोचित उपदेश होने पर उसके मनन और निदिध्यासन के कारण यथावसर, "अह ब्रह्म अस्मि" "मै (वह सर्व व्यापी और सर्वान्तर्यामी) ब्रह्म हू" इस प्रकार की चित्तवृत्ति का उदय होता है। इस चित्तवृत्ति के कारण उसका आत्मविषयक या ब्रह्मविषयक अज्ञान नष्ट हो जाता है। परतु अज्ञान का नाश होने पर भी, अज्ञान के कार्य का (इस जड प्रपंच का) अनुभव उसे होगा या नहीं, यह प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रश्न का उत्तर "कारणे नष्टे कार्यम् अपि नश्यति" इस सिद्धान्त वाक्य से दिया जाता है और उसका स्पष्टीकरण, "तन्तुदाहे पटदाह" अर्थात् तन्तु जलने पर वस्त्र जल जाता है। ततुरूप कारण नष्ट होने पर वस्त्ररूप कार्य का पुनश्च नाश करने की आवश्यकता नहीं रहती। "तत्त्वमसि" इस महावाक्य के उपदेश से "अहं ब्रह्माऽस्मि" यह चित्तवृत्ति उदित होने पर ब्रह्मविषयक (या आत्मविषयक) अज्ञान नष्ट होते ही उस अज्ञान या माया का कार्य तत्क्षण नष्ट होता है।

अद्वैतसिद्धि : "तत्त्वमसि" महावाक्य के उपदेश से उत्पन्न "अह ब्रह्मास्मि" स्वरूप अखडाकार चित्तवृत्ति अज्ञान एव तज्जन्य प्रपंच का लय करती है। इस वेदान्त सिद्धान्त से एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सारे प्रपच का लय होने पर भी अज्ञान और प्रपच दोनो का लय करने वाली "अह ब्रह्मास्मि" यह चित्तवृत्ति तो रहती ही होगी।

इस आशका का उत्तर वेदान्तियों द्वारा दिया गया है। वे कहते हैं-

यह चित्त वृत्ति भी अज्ञान का ही कार्य होने के कारण "तन्तुदाहे पटदाह" इस दृष्टान्त के अनुसार, अज्ञान नष्ट होते ही विलीन हो जाती है। आगे चल कर प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि अज्ञान, प्रपच और चित्तवृत्ति मे प्रतिबिब चैतन्याभास तो पृथक् रहता ही होगा? और वह अगर पृथक् रहता होगा तो शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त असिद्ध रह जाता है।

इस आशंका का प्रशमन करने के लिये वेदान्तियों द्वारा सर्व परिचित दृष्टान्त दिया जाता है। "दर्पणाभावे मुखप्रतिबिम्बस्य मुखमात्रत्वम्" अर्थात् जिस प्रकार दर्पण (आईना) के अभाव में उसमे दिखाई देने वाला मुख का प्रतिबिम्ब मुख के रूप मे ही अवशिष्ट रहता है किंबहुना वह प्रतिबिम्ब मुखरूप ही हो जाता है, उसी प्रकार 'अह ब्रह्माऽस्मि' चित्तवृत्ति में उदभूत चैतन्य का प्रतिबिब, "तन्तुदाहे पटदाह" न्याय के अनुसार विलीन होते समय मूल स्वरूप मे अवशिष्ट रहता है अथवा चैतन्य स्वरूप ही हो जाता है यह बात स्पष्ट है।

यही सिद्धान्त "दीपप्रभा आदित्यप्रभाऽवभासने असमर्था सती तया अभिभूयते" इस दूसरे दृष्टान्त मे अधिक विशद किया जाता है। अर्थात् दीपप्रभा और सूर्यप्रभा दोनों स्वतत्र होने पर भी सूर्यप्रभा का उदय होने पर, दीपप्रभा अपनी मदता के कारण सूर्यप्रभा में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार "अह ब्रह्माऽस्मि" चित्तवृत्ति में प्रतिबिबित चैतन्य की मदप्रभा परब्रह्म की महाप्रभा में विलीन हो जाती है।

अधिकारी शिष्य को "तत्वमसि" महावाक्य का उपदेश गुरुमुख से मिलने पर उसकी चित्तवृत्ति मे "अह ब्रह्माऽस्मि" भाव जाग्रत होता है, अथवा उसकी चित्तवृत्ति "अह ब्रह्मास्मि"- भावमय होती है। यह चित्तवृत्ति तत्क्षण अपना कार्य अर्थात् जीव के अज्ञानावरण का नाश करती है। जिस क्षण वह अज्ञान नष्ट होता है उसी क्षण अज्ञान-कार्यस्वरूप चित्तवृत्ति भी चैतन्य में विलीन होती है। यह सिद्धान्त वेदान्त शास्त्र मे कतकचूर्ण (फिटकरी का चूर्ण) के दृष्टान्त स विशद किया जाता है। कतकचूर्ण मलिन जल में पड़ने पर उसकी मलिनता नष्ट करने का निजी कार्य पूर्ण होते ही जल मे विलीन हो जाता है। इसी प्रकार

"अहं ब्रह्माऽस्मि" चित्तवृत्ति जीव का चैतन्य विषयक अज्ञान नष्ट करते ही चैतन्य में विलीन हो जाती है।

वेदान्त शास्त्र की रचना वेद संहिता के अन्तिम भाग पर अर्थात् उपनिषदों पर आधारित है। संस्कृतवाङ्मय में उपनिषदों की कुलसंख्या दो सौ से अधिक है (देखिए परिशिष्ट)। वेदान्तदर्शन के प्रमाणभूत उपनिषदों में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरिय, छांदोग्य, ऐतरेय और बृहदारण्यक इन दस प्रधान उपनिषदों के अतिरिक्त श्वेताश्वतर, पूर्व-उत्तर-नृसिंहतापिनी और श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद तथा ब्रह्मसूत्र इतने ही ग्रथ माने गये हैं। परंतु उपनिषदों में परस्परविरोधी वचन मिलते हैं। उनका समन्वय वेदान्तशास्त्र में किया गया है। प्रस्तुत ब्रह्मविषयक विवेचन में "यन्मनसा न मनुते" और "मनसा एव अनुद्रष्टव्यम्" (अर्थात् जिस का मन के द्वारा मनन नहीं हो सकता और जिसका मन से ही साक्षात्कार हो सकता है) इस प्रकार के विरुद्ध वचन मिलते हैं। इन वचनों का समन्वय, वृत्तिव्याप्यत्व का अंगीकार और फलव्याप्यत्व का प्रतिषेध करते हुए वेदान्तियों ने किया है। विद्यारण्यजी ने अपनी पंचदशी (जो वेदान्त शास्त्र का परम प्रमाणभूत प्रकरण ग्रथ है) में एक लौकिक दृष्टान्त द्वारा इन विरोधी वचनों की समस्या सुलझाई है।

"चक्षुर्दीपावपेक्षेते घटादेर्दर्शने यथा। न दीपदर्शने, किन्तु चक्षुरेकमपेक्ष्यते।।"

इसका आशय है कि अंधेरे में घट देखने के लिये आँख और दीप दोनों की आवश्यकता होती है, परंतु केवल दीप को देखने के लिये आँख की ही आवश्यकता होती है। इस प्रकार चैतन्यविषयक अज्ञान का अधकार नष्ट करके चैतन्य का साक्षात्कार पाने के लिये "अहं ब्रह्माऽस्मि" चित्त वृत्ति और उस चित्त-वृत्ति में प्रतिबिंबित चिदाभास इन दोनों की आवश्यकता होती है। इसी कारण अज्ञानरूप अंधकार नष्ट करने के अभिप्राय से "मनसा एव इदम् आप्तव्यम्" या "मनसा ` व अनुद्रष्टव्यम्" इत्यादि श्रुतिवचन योग्य हैं। इसके विरोधी "यन्मनसा न मनुते" या "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इ ादि वचन भी योग्य हैं। प्रकाशमान दीप को देखने के लिये दूसरे दीप की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं प्रकाशमान हाने के कारण उसे देखने के लिये केवल आँख पर्याप्त है। घट पटादि जड वस्तु का ज्ञान और परब्रह्म जैसे सच्चिदानन्दस्वरूप वस्तु का ज्ञान, इनमें का भेद प्रस्तुत "दीप-घट" दृष्टान्त के द्वारा विशद किया है और साथ ही विरोधी वचनो का विरोध परिहार करने की पद्धति भी बतायी है।

समाधिविचार : ज्ञेय पदार्थ में चित्त की ज्ञानावस्था में जो निश्चल अवस्था होती है वही वेदान्त मतानुसार समाधि है। चित्त की इस समाधिस्थ अवस्था के दो भेद होते हैं। 1) सविकल्प और 2) निर्विकल्प। सविकल्प समाधि में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान इस त्रिपुटी का भेदज्ञान रहते हुए भी "अह ब्रह्माऽस्मि" स्वरूप अखण्डाकारित चित्त वृत्ति रहती है। वास्तविक भेदज्ञान के साथ जीवब्रह्म के अद्वैत का भान रहना यह कल्पना विचित्र सी लगती है परंतु उसकी सभाव्यता "मृन्मयगवाभिमाने मृद्भाववत्" इस लौकिक दृष्टान्त से विशद की है। मिट्टी के हाथी, घोड़े, उट आदि विभिन्न प्रतिमाओं का ज्ञान होते हुए भी इनके नामरूपादि भेद मिथ्या हैं, और मिट्टी ही सत्य है, यह ज्ञान हो सकता है। उसी प्रकार सविकल्प ममाधि की अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान इस त्रिपुटी की भिन्नता का ज्ञान होते हुए भी, ब्रह्म की सर्वव्यापकता का अनुभव होता है। "विभिन्नता में अभिन्नता" यह केवल कल्पना-विलास नहीं। वह एक अनुभूति का विषय है, यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

निर्विकल्प समाधि की कल्पना विशद करने के लिए "जलाकाराकारितलवणस्य जलमात्रावभास" यह दृष्टान्त दिया जाता है। नमक पानी में विलीन होने पर पानी और नमक दोनों का पृथक् ज्ञान नहीं होता। नमक पानी में ही होने पर भी केवल पानी ही दीखता है। उसी प्रकार निर्विकल्प समाधि की अवस्था चित्तवृत्ति को प्राप्त होने पर ज्ञाता, ज्ञेय आदि भेदभाव लुप्त हो जाते हैं। पानी में विलीन नमक के समान चित्तवृत्ति इस अवरस्था में ब्रह्म से एकरूप होती है। इसी "जललवण दृष्टान्त" के आधार से निर्विकल्प समाधि और तत्सदृश सुषुप्ति अवस्था में भेद दिखाया जाता है। सुषुति (गाढनिद्रा) और निर्विकल्प समाधि इन दोनों अवस्थाओं में चित्तवृत्ति का भान नहीं रहता। परतु केवल उसी एकमात्र कारण से दोनों अवस्थाओं में तुल्यता नहीं मानी जाती। लवणयुक्त जल और लवणहीन जल दिखने मे समान होने हुए भी उनमें भेद होता है। इन दो जलों में जितनी भिन्नता होती है उतनी ही सुषुप्ति और निविकल्प समाधि में भी होती है। निर्विकल्प समाधि में चित्तवृत्ति भासमान नही होती, परतु उसका अभाव नहीं होता। सुषुप्ति अवस्था में चित्तवृत्ति भासमान न होने के कारण उसका अभाव ही होता है।

"निर्विकल्प समाधि" वेदान्त के अनुसार साधकों का परम प्राप्तव्य है, परतु उसके मार्ग में "अधिकारी" साधक को भी, लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद इन चार विघ्नों से सामना करना पडता है। इन विघ्नों को परास्त करने पर ही साधक निर्विकल्प समाधि का दिव्य अनुभव पा सकता है। इस अवस्था में चित्त को, "निवातस्थ दीप" के समान अविचलता आने के कारण, साधक अखंड चैतन्य का अनुभव पाता है, ऐसा गौडपादाचार्य कहते हैं।

जीवन्मुक्तावस्था : उपरिनिर्दिष्ट निर्विकल्प समाधि के सतत अभ्यास से साधक को "जीवन्मुक्त" अवस्था प्राप्त होती है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।"

इस मुण्डकोपनिषद् के मंत्र में जीवन्मुक्त अवस्था का वर्णन किया है। निर्विकल्प समाधि में ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार होने पर अखिलबन्धरहित ब्रह्मनिष्ठ पुरुष लौकिक व्यवहार किस प्रकार करता है या उनका किस प्रकार अनुभव पाता है? सामान्य अज्ञानी पुरुष और श्रीशंकराचार्यादि जीवन्मुक्त इनके लौकिक व्यवहार में जो भेद होता है, उसका स्वरूप "यथा इन्द्रजालम् इति ज्ञानवान् तद् इन्द्रजालं पश्यन् अपि परमार्थम् इदम् इति न पश्यति" इस इन्द्रजाल दृष्टान्त से स्पष्ट किया है। ठीक समझ के साथ जादूगर का खेल देखने वाले सुशिक्षित मनुष्य के समक्ष, जादूगर ने कितनी भी चमत्कृति दिखाई तो भी यह सारी हाथचालाकी है, तथ्य नहीं यह बात जान कर वह ठीक समझता है उससे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार जिसका अज्ञानपटल अद्वैत प्रबोध से नष्ट होता है, उस जीवन्मुक्त के लिए संसार के सारे लौकिक व्यवहार इन्द्रजालवत् मिथ्या या तुच्छ होते हैं। वेदान्त, "प्रस्थानत्रयी" (उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता) रूप आप्तवचन की मीमांसाद्वारा निष्पन्न हुआ शास्त्र है, परंतु उसके सिद्धान्त आप्तवचनों की केवल शाब्दिक मीमांसा से ही प्रकट नहीं होते। उस शास्त्र के प्रवर्तक यह प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि वे स्वानुभूति द्वारा भी ज्ञात हो सकते हैं। रसायनादि भौतिक शास्त्रों के सिद्धान्तों का प्रामाण्य प्रयोग द्वारा भी सिद्ध होता है, उसी प्रकार वेदान्त शास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अवगत होने पर यम, (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) नियम, (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान), धारणा, ध्यान और समाधि इन योगशास्त्रोक्त अष्टांग योगसाधना की सतत साधना से, उनका साक्षात्कार किया जाता है। ऐसे अनुभवसंपन्न वेदान्ती भारत में प्राचीन काल हुए और आज विद्यमान है जिन्होंने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", "तत् त्वमसि", "अहं ब्रह्मास्मि" इन महावाक्यों का आशय स्वानुभव द्वारा जाना है।

श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैत वेदान्त की स्थूल रूपरेखा यथाशक्ति सुबोध पद्धति से यहां बतायी है। शंकराचार्यजी ने अपने प्रस्थानत्रयी के भाष्यों में आध्यात्मिक एवं तात्त्विक चर्चा में अन्तर्भूत होने वाले प्रायः सभी विषयों पर अधिकार वाणी से प्रतिपादन किया है। उनके प्रतिपादन का भारत के धार्मिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। अद्वैत वेदान्त की गंभीर चर्चा करने वाले सैकड़ों संस्कृत ग्रंथ प्राचीन काल में लिखे गये और आज भी लिखे जा रहे हैं। श्री शंकराचार्यजी के ग्रन्थों के अतिरिक्त, वाचस्पति मिश्र का भामतीभाष्य, चित्सुखाचार्यकृत चित्सुखी, श्रीहर्षकविकृत खंडनखंडखाद्य, मधुसूदन सरस्वतीकृत अद्वैतसिद्धि, विद्यारण्यकृत पंचदशी इत्यादि ग्रंथों की योग्यता दार्शनिक वाङ्मय में निरुपम है। इनके अतिरिक्त सदानंदकृत वेदान्तसार, धर्मराजकृत वेदान्तपरिभाषा, शंकराचार्यकृत उपदेशसाहस्री, अपरोक्षानुभूति और स्वामी सत्यबोधाश्रमकृत वेदान्तप्रबोध आदि सुबोध एवं संक्षिप्त ग्रंथ शांकरवेदान्त का अध्ययन करने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

6 "विशिष्टाद्वैत मत"

ई. 11 वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र श्रीभाष्य के द्वारा विशिष्टाद्वैत मत का पुरस्कार किया। इस भाष्य में बोधायन, टंक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दी, भारुचि, इत्यादि स्वमतानुकूल प्राचीन आचार्यों का उल्लेख रामानुजाचार्य ने किया है जिससे उनके विशिष्टाद्वैत मत की प्राचीन परंपरा की कल्पना आती है। वेदान्तसार, वेदान्तदीप, गद्यत्रय, गीताभाष्य इत्यादि रामानुजाचार्य के ग्रंथ, रामानुजी वैष्णव संप्रदायी विद्वानों में मान्यता प्राप्त हैं। इस परंपरा में श्रुतिप्रकाशिका, श्रुतिदीपिका, वेदार्थसंग्रह, तात्पर्यदीपिका उपनिषद्व्याख्या इत्यादि अनेक ग्रंथों के लेखक सुदर्शन सूरि (12 वीं शती), तत्त्वटीका, अधिकरणसारावली, न्यायसिद्धांजन, गीतातात्पर्यचन्द्रिका, इत्यादि ग्रंथों के निर्माता वेंकटनाथ (13 वीं शती), 14 वीं शती में आत्रेय, रामानुज, 15 वीं शती में वरवरमुनि, 16 वीं शती में श्रीनिवासाचार्य, रंगरामानुजाचार्य इत्यादि आचार्यों की परंपरा अविस्मरणीय है।

रामानुजाचार्य ने अपने सिद्धान्त द्वारा शंकराचार्य के अद्वैत मत से विरोध व्यक्त किया। शांकरमतानुसार -

1) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" और 2) कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञान से ही मोक्षप्राप्ति, ये सिद्धान्त प्रतिपादन हुए है। इनके कारण वैष्णव संप्रदाय के प्रचार में जो रुकावट निर्माण हुई थी, उसे हटा कर वैष्णव मत का पुरस्कार करने के हेतु विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना रामानुजाचार्य ने की। इस मत के अनुसार मायावाद का खंडन करते हुए यह प्रतिपादन किया गया कि, चित्, अचित् और ईश्वर इन तीन तत्त्वों में भिन्नता होते हुए भी, चित् और अचित् दोनों ईश्वर के शरीर होने के कारण "चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर" एक ही है। ईश्वरशरीरस्थ सूक्ष्म चित्-अचित् से स्थूल चित् अचित् की निर्मिति होती है, इत्यादि विचार प्रस्थापित किये गये--

"विशिष्टाद्वैत" शब्द का एक अभिप्राय यह है कि, चित् अचित्-रूपी शरीर से विशिष्ट परमात्मा की एकता। दूसरा अभिप्राय है कि सूक्ष्मशरीर विशिष्ट परमात्मा कारण और स्थूल शरीर विशिष्ट परमात्मा कार्य, इन (कारण तथा कार्य) में एकत्व होने के कारण विशिष्टों का अद्वैत है। ईश्वर विषयक प्रेमभक्ति को महत्त्व देने की दृष्टि से श्रीरामानुजाचार्य ने अपना यह सिद्धान्त प्रचारित किया।

रामानुजमत के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और समाप्ति करने वाला ईश्वर निर्दोष, सनातन, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, आनंदस्वरूप, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है। वह चतुर्विध पुरुषार्थ का दाता होने के कारण आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी

भक्तजन उसके चरणो में शरण आते हैं। ईश्वर का विग्रह दिव्य अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त होता है, और लक्ष्मी, भू तथा लीला उसकी पत्नियाँ हैं। वह पाँच स्वरूपों में प्रकट होता है -

1) परस्वरूप इस स्वरूप मे ईश्वर को नारायण, परब्रह्म या परवासुदेव कहते है और यह वैकुण्ठ मे शेषरूप पर्यंक पर धर्मादि अष्टपादयुक्त रत्नसिंहासन पर, शख, चक्रादि दिव्यायुधो सहित विराजमान है। श्री, भूमी और लीला उसकी सेवा करती हैं। अनत, गरुड, विश्वक्सेन इत्यादि मुक्त पुण्यात्मा उसके सहवास का आनद पाते है।

2) व्यूहस्वरूप : सृष्टि की उत्पत्ति आदि कार्य के निमित्त परस्वरूपी ईश्वर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामक चार स्वरूप धारण करता है। वासुदेव षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न है और संकर्षण ज्ञानबलसपन्न, प्रद्युम्न ऐश्वर्य-वीर्यसम्पन्न तथा अनिरुद्ध शक्ति-तेज-सम्पन्न है। इस प्रकार प्रस्तुत चतुर्व्यूह स्वरूप मे ईश्वरी दिव्य गुण विभाजित है।

3) विभवस्वरूप : इसमे मत्स्य, कूर्म, वराह आदि ईश्वरी अवतारों की गणना होती है।

4) अन्तर्यामीस्वरूप : समस्त प्राणिमात्र के अतरग में विद्यमान इसी स्वरूप का साक्षात्कार योगी पाते है।

5) मूर्तिस्वरूप : नगर, ग्राम, गृह आदि स्थानों मे उपासक लोग जिस धातु-पाषाण आदि की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करते हैं, उस में अप्राकृत शरीर से ईश्वर का निवास होता है।

परमात्मा (ईश्वर) और जीवात्मा (चित्) दोनो में प्रत्यक्त्व, चेतनत्व कर्तृत्व इत्यादि गुणधर्म होते हैं। जीवात्मा (चित्) स्वयप्रकाशी, नित्य, अणुपरिमाण, अगोचर, अगम्य, निरवयव, निर्विकार, आनदी, अज्ञानी किंतु ईश्वराधीन है। जीवात्मा असंख्य होते हैं और उनके विविध वर्ग होते हैं - 1) बद्ध 2) मुक्त, 3) नित्य। बद्ध जीवात्माओ में जो बुद्धिप्रधान होते है वे 1) बुभुक्षु (सुखोपभोगो मे मग्न) और 2 मुमुक्षु दो प्रकार के होते है। कुछ बुभुक्षु अलौकिक भोग प्राप्ति के हेतु यज्ञ दान, तप आदि कर्म करते हैं, तो अन्य कोई बुभुक्षु ईश्वर की उपासना करते है।

मुमुक्षु जीवात्माओ मे कुछ "केवली" होने की इच्छा रखते है तो कुछ मोक्ष की इच्छा रखते हैं। इन मोक्षार्थी जीवो मे कुछ वैदिक कर्मकाण्ड, ज्ञानयोग, कर्मयोग द्वारा, अपना अधिकार बढाते हुए अत में सर्वांगीण भक्तियोग के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करते हैं। प्रपत्ति या अनन्य शरणागति स्वरूप भक्ति का अधिकार मानवमात्र को होता है। भक्तियोग की साधना मे पूर्णता आने के लिये निष्काम कर्मयोग और ज्ञानयोग (जीव के प्रकृति से पृथक्त्व और ईश्वराशत्व का ज्ञान प्राप्त करना) का सहाय आवश्यक है। भक्तियोग, ज्ञानयोग से श्रेष्ठ है। यमनियमादि योगसाधना सहित ईश्वर का अखड ध्यान करना, इसी को भक्तियोग कहते हैं। भक्तियोग की साधना में सात अग माने जाते है 1) पवित्र आहारादि से शरीरशुद्धि 2) विमोक या ब्रह्मचर्यपालन 3) अभ्यास (यथाशक्ति पचमहायज्ञों का अनुष्ठान 4) कल्याण (सत्य, आर्जव, दया, दान, अहिंसा इत्यादि व्रतपालन) 5) विश्वनिर्माता का निरतर चिन्तन 6) अनवसाद, (दैन्यत्याग) ७) अनुध्दर्ष (सुख दु ख मे समभाव) इन सात साधनो से युक्त भक्ति योग की साधना से ईश्वर साक्षात्कार की सभावना हाती है। जिस साधक से यह साधना नहीं हो सकती उसके लिये षड्विधा प्रपत्ति और आचार्याभियान योग का विधान रामानुजदर्शन मे किया है।

षड्विधा प्रपत्ति :

आनुकूल्यस्य सकल्प प्रातिकूल्यस्य सर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वास गोप्तृत्ववरण तथा।। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति ।।

आचार्यभियान योग का अर्थ है आचार्य या गुरु को शरण जाना और उन्हीं के उपदेश के अनुसार सारे कर्म करना। इस योग में शिष्य के मोक्ष का दायित्व आचार्य अपने पर लेते हैं।

रामानुज मत के अनुसार अपरोक्ष ज्ञान के बिना मुक्ति नही मिलती परतु यह ज्ञान ईश्वर की ध्रुवास्मृति या अखड स्मृति के बिना उदित नहीं होता। वैदिक कर्मो का अनुष्ठान इसमें सहाय्यक होता है। अत शकराचार्य जहा केवल ज्ञान को ही उपादेय मानते हैं वहाँ रामानुजाचार्य कर्म-ज्ञानसमुच्चय को उपादेय मानते हैं। कर्म के साथ भक्ति के उदय होने में तत्त्वज्ञान को वे सहकारी कारण मानते है। इस प्रकार मुक्ति का प्रधान कारण भक्ति ही माना गया है। भक्ति का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप प्रपत्ति अर्थात् अनन्यशरणागति है। इस शरणागति के लिये कर्मों का अनुष्ठान आवश्यक है या नही इस विषय में रामानुज मतानुयायी आचार्यों में तीव्र मतभेद हैं। **टैकलै** नामक मत के लोकाचार्य प्रपत्ति के लिए कर्मानुष्ठान को आवश्यक नहीं मानते। निःसहाय "मार्जारकिशोर" (बिल्ली का बच्चा) को उसकी माता एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचाती है, उसी प्रकार भगवान् अपने प्रपन्न शरणागत भक्तों को परमोच्च अवस्था तक पहुचा ही देते हैं। दूसरे **वडकलै** मत के आचार्य वेदान्तदेशिक "कपिकिशोर" (बदरी का बच्चा) का दृष्टान्त देते हुए भक्ति साधना में कर्मानुष्ठान की आवश्यकता प्रतिपादन करते हैं।

13 वीं शती मे श्रीकण्ठाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य द्वारा "शैव विशिष्टाद्वैत" मत का प्रतिपादन किया। इस भाष्य पर अप्पय दीक्षित ने शिवार्क-मणिदीपिका नामक महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है। इनका सिद्धान्त रामानुज सिद्धान्त के समान ही है।

अन्तर इतना ही है कि यहाँ ईश्वर शिवस्वरूप माने गये हैं, तथा सगुण ब्रह्म ही परमार्थभूत है और चित् अचित् उसके प्रकार हैं। शिव, महादेव, उग्र आदि सज्ञाएं इस सगुण परब्रह्म की ही है।

7 "द्वैतवादी माध्वमत"

ई. 13 वीं शती में कर्नाटक के उडुपी क्षेत्र के पास पाजक नामक गाँव में मध्यगेह भट्ट (या नारायणाचार्य) और वेदवती (या वेदवेदी) को एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होंने वासुदेव रखा था। शास्त्राध्ययन सपूर्ण होने पर वासुदेव ने उडुपी के विद्वान अच्युतप्रेक्ष, (जो अद्वैतावादी थे) से संन्यास दीक्षा ली। सन्यास आश्रम में उन्हे पूर्णप्रज्ञतीर्थ तथा आनदतीर्थ नाम दिये गये परंतु वे सर्वत्र मध्वाचार्य नाम से ही प्रख्यात हुए। मध्वाचार्य के शिष्य परिवार में पद्मनाभतीर्थ, नरहरितीर्थ, माधवतीर्थ, अक्षोभ्यतीर्थ और त्रिविक्रमतीर्थ नामक पांच विद्वान शिष्य थे। मध्वाचार्य के द्वारा उत्तरादिमठ नामक प्रमुख मठ उडुपी में स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त स्वादिमठ, सुब्रह्मण्यमठ इत्यादि अन्य मठों की स्थापना शिष्यों द्वारा हुई।

मध्वाचार्य को संप्रदाय में वायुदेवता का अवतार माना जाता है। वे द्वैतवादी या भेदवादी थे। उनके मतानुसार स्वतत्र और अस्वतत्र इन दो प्रमुख तत्त्वों में भगवान विष्णु स्वतत्र एव सकलसद्गुण सम्पन्न हैं। अन्य सभी अस्वतत्र हैं। भेद पाच प्रकार के होते हैं। 1) जीव ईश्वर भेद 2) जड ईश्वर 3) जीव अजीव भेद 4) जीव जडभेद और 5) जड अजड भेद। परमात्मा और जीव में मोक्षावस्था में भी अभेद सभव नहीं, जो भी अभेद प्रतीत होता है वह भ्रममात्र है। सच्चिदानद स्वरूप परमात्मा इस सृष्टि का निमित्त कारण है और वह चराचर वस्तुमात्र में निवासी है। दुःख का उसे स्पर्श भी नहीं होता। लक्ष्मी, श्रीवत्स और अचिंत्य शक्ति परमात्मा के वैभव हैं। मुक्त जीवात्मा को भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। मोक्ष प्राप्ति के लिये जीव को परमात्मा की सेवा, अकन (विष्णुचिह्नों का तप्तमुद्राओ से अंकन) नामकरण और भजन इन तीन प्रकारों से करनी चाहिए। इस प्रकार का अपना द्वैतवादी मत प्रतिपादन करने के लिए मध्वाचार्य ने विपुल ग्रथ सपदा निर्माण की

1) गीताभाष्य, 2) गीतातात्पर्य, 3) सूत्रभाष्य, 4) अणुभाष्य, 5) महाभारत-तात्पर्यनिर्णय, 6) भागवत-तात्पर्य, 7) नखस्तुति, 8) यमकभारत, 9) द्वादशस्तोत्र, 10) तत्रसार, 11) सदाचारस्मृति, 12) यतिप्रणवकल्प 13) जयतीनिर्णय 14) ऋग्भाष्य, 15) प्रणयलक्षण, 16) कथालक्षण, 17) तत्त्वसस्थान, 18) तत्वविवेक, 19) मायावादखडन, 20) उपाधिखडन, 21) प्रपच-मिथ्यात्वानुमानखंडन, 22) तत्त्वोद्योत, 23) विष्णुतत्त्वनिणर्य, 24) दशोपनिषद्भाष्य, 25) अनुव्याख्यान, 26) सन्यास विवरण, 27) कृष्णामृतमहार्णव, और 28) कर्मनिर्णय। इन ग्रथो द्वारा स्वमत प्रतिपादन और शाकर अद्वैत के मायावाद का खडन मध्वाचार्य ने किया है। इन की शिष्यपरम्परा में भी उद्भट विद्वान हुए जिन में जयतीर्थ (14 वीं शती), व्यासतीर्थ (15 वीं शती), रघूत्तमतीर्थ (16 वीं शती) वनमाली मिश्र (18 वीं शती) सत्यनाथ यति (17 वी शती) वेणीदत्त, पूर्णानन्दचक्रवर्ती आदि विद्वानों ने माध्व मत का प्रतिपादन अपने टीकात्मक वाङ्मय से किया।

जयतीर्थ ने मध्वाचार्य के सूत्रभाष्य पर, तत्वप्रकाशिका और तत्त्वोद्योत, तत्त्वविवेक, तत्त्वसख्यान, प्रमाणलक्षण तथा गीताभाष्य के उपर अन्य सुबोध टीकाए लिखीं। इनकी प्रमाणपद्धति (जिस पर आठ टीकाए लिखी गयीं) और वादावली द्वैतवादी वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।

व्यासतीर्थ के ग्रंथ :- न्यायामृत, तर्कताण्डव, तात्पर्यचन्द्रिका (जयतीर्थ की तत्त्वप्रकाशिका की टीका) मन्दारमजरी, भेदोज्जीवन और मायावादखंडन-टीका। इनके न्यायामृतपर 10 विख्यात टीकाए लिखी गयीं। प्रसिद्ध अद्वैती विद्वान मधुसूदन सरस्वती ने अपनी अद्वैतसिद्धि में व्यासतीर्थ के न्यायामृत का खडन किया है। बाद में द्वैतवादी रामाचार्य ने अपनी तरगिणी टीका में और विजयीन्द्रतीर्थ ने अपने कण्टकोद्धार टीका में अद्वैतसिद्धि के युक्तिवादों का खडन किया है।

रघूत्तमतीर्थ के ग्रंथ:- इन्होंने मध्वाचार्य के विष्णुतत्त्वनिर्णय पर और जयतीर्थ की तत्त्वप्रकाशिका पर भावबोध नामक व्याख्याएं लिखीं, जिसके कारण ये भावबोधाचार्य या भावबोधकार नाम से प्रसिद्ध हुए। ब्रह्मप्रकाशिका मध्वाचार्य के बृहदारण्यक-भाष्य की टीका है।

वेदेशभिक्षु, रघूत्तमतीर्थ के शिष्य थे। इन्होंने तत्त्वोद्योत-पचिका (ऐतरेय, छान्दोग्य, केन उपनिषदो पर मध्वाचार्य के भाष्यो की टीका) तथा प्रमाणपद्धति (मध्वकृत) पर भी इनकी टीका है।

वनमाली मिश्र के ग्रंथ:- माध्वमुखालकार, वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली (ब्रह्मसूत्रों की टीका)।

सत्यनाथ यति:- इन्होंने अप्पय्य दीक्षित के ग्रथ के खडन में अभिनवगदा, अभिनवतर्कताण्डव, तथा अभिनवचंद्रिका (तात्पर्यदीपिका की टीका) इत्यादि द्वैतमतवादी ग्रथो की रचना की। इन ग्रथों के अतिरिक्त वेणीदत्तकृत भेदजयश्री तथा वेदान्तसिद्धान्तकण्टक, पूर्णानन्द चक्रवर्तीकृत तत्त्वमुक्तावली (या मायावाद-शतदूषणी) इत्यादी द्वैतवादी ग्रथ उल्लेखनीय हैं।

माध्वमतानुसार तत्त्वविचार

दश पदार्थः- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव।

द्रव्य के 20 प्रकारः- परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, प्रकृति, गुणजय,महत्तत्त्व, अहकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और प्रतिबिम्ब।

गुणः- वैशेषिक दर्शन के 24 गुणों के अतिरिक्त, शम, दम, कृपा, तितिक्षा, और सौन्दर्य आदि।

कर्म के तीन प्रकारः- विहित, निषिद्ध, और उदासीन।

सामान्य के दो प्रकारः- नित्यानित्य तथा जाति-उपाधि भेद के कारण होते हैं।

विशेषः- यह जगत् के समस्त पदार्थों में रहता है, अत एव अनन्त है। भेद व्यवहार के निर्वाहक पदार्थ को विशेष कहते है। परमात्मा में भी विशेष का स्वीकार होता है।

विशिष्टः- विशेषण से युक्त पदार्थ

शक्ति के चार प्रकारः- (1) अचिन्त्य, (2) आधेय, (3) सहज और (4) पद। इन में अचिन्त्य शक्ति "अघटित-घटना-पटीयसी" होती है और वह भगवान् विष्णु में निवास करती है। दूसरे के द्वारा स्थापित शक्ति को आधेय शक्ति कहते है। सहजशक्ति कार्यमात्र के अनुकूल एव सर्वपदार्थनिष्ठा होती है। पद-पदार्थ में वाचक-वाच्य सबंध को पदशक्ति कहते है। इसके दो प्रकार होते हैं (1) मुख्या और (2) परममुख्या।

परमात्मा अर्थात साक्षात् विष्णु अनन्त गुणपरिपूर्ण हैं। वे उत्पत्ति, स्थिति, सहार, नियमन, ज्ञान, आवरण बन्ध और मोक्ष इन आठो के कर्ता एवं जड प्रकृति से अत्यन्त विलक्षण हैं। ज्ञान, आनंद, आदि कल्याण गुण ही परमात्मा के शरीर हैं। अतः शरीर होने पर भी वे नित्य तथा सर्वस्वतत्र हैं। इनके मत्स्य-कूर्मादि अवतार स्वयं परिपूर्ण हैं। वे परमात्मा से अभिन्न हैं।

लक्ष्मीः- परमात्मा की शक्ति एव दिव्यविग्रहवती और नानारूप धारिणी उनकी भार्या है। वह परमात्मा से गुणों में न्यून है किन्तु देश और काल की दृष्टि से उनके समान व्यापक है।

जीव के तीन प्रकारः- मुक्तियोग्य, नित्यससारी और तमोयोग्य।

मुक्तियोग्य जीव के पाँच प्रकारः- देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य।

तमोयोग्य जीव के चार प्रकारः- दैत्य, राक्षस, पिशाच और अधम मनुष्य।

नित्यससारी जीव, सुख और दु ख का अनुभव लेता हुआ अपने कर्म के अनुसार ऊच-नीच गति को प्राप्त करता है। वह कभी मुक्ति नहीं पाता। ससार में प्रत्येक जीव अपना व्यक्तित्व पृथक् बनाए रहता है। वह अन्य जीवों से तथा सर्वज्ञ परमात्मा से तो सुतरां भिन्न होता है। जीवों की अन्योन्य- भिन्नता मुक्तावस्था में भी रहती है। मुक्त जीवो के ज्ञानादि गुणों के समान उनके आनंद में भी भेद होता है। यह सिद्धान्त माध्वसिद्धान्त की विशेषता है।

अव्याकृत आकाशः- नित्य एक तथा व्यापक होने से यह कार्यरूप तथा अनित्य भूताकाश से सर्वथा भिन्न है। इसके अभाव मे समस्त जगत् एक निबिड पिंड बन जाता है। लक्ष्मी इसकी अभिमानिनी देवता है।

प्रकृतिः- साक्षात् या परम्परा से उत्पन्न विश्व का उपादान कारण है। मुक्तजीवो के लीलामय विग्रह, शुद्ध सत्त्व से निर्मित होते हैं। श्री सत्त्वाभिमानिनी, भू-रजोभिमानिनी एव दुर्गा तमोभिमानिनी देवता है। माध्वमतानुसार जो पचभेद माने गये हैं उनके परिज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। यह परिज्ञान द्विविध उपासना से संभव है.-

(1) सतत शास्त्राभ्यास और (2) ध्यान। मुक्ति के चार परिणाम·- कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अर्चिरादिमार्ग और भोग।

भोगरूपा मुक्ति के चार प्रकारः- सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्यता। सायुज्यमुक्ति में जीव परमात्मा में प्रवेश कर उन्हीं के शरीर से आनद का भोग करता है। यही सर्वश्रेष्ठ मुक्ति है।

8 "द्वैताद्वैतवादी निंबार्कमत"

ब्रह्मसूत्र में उल्लिखित आचार्यों में आश्मरथ्य और औडुलोमि भेदाभेदवादी थे। शाकर मत का उदय होने से पूर्व भर्तृप्रपंच ने भेदाभेद मत का पुरस्कार किया था। उनके ग्रंथ में बादरायणा पूर्वकालीन भेदाभेदवादी आचार्यों का नामनिर्देश किया है। शंकराचार्य के बाद यादवाचार्य और भास्कराचार्य नामक आचार्यों ने भेदाभेद मत का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करने का प्रयास किया। उनके प्रखर युक्तिवादो का खडन रामानुजाचार्य ने वेदार्थसग्रह में, उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमांजलि में और वाचस्पति मिश्र ने अपने भामती प्रस्थान में किया। इन उत्तर-पक्षी ग्रंथों से भास्कराचार्य के प्रतिपादन की प्रबलता ध्यान में आ सकती है। भेदाभेदवाद

या द्वैताद्वैतवाद) का सिद्धान्त प्रस्थानत्रयी के आधार पर प्रतिपादन करने का कार्य ई. 12 वीं शती में निंबाकाचार्य ने किया। इनका वास्तविक नाम था नियमानन्द परंतु कहा जाता है रात्रि के समय निंब वृक्ष पर अर्क (सूर्य) का साक्षात् दर्शन होने के कारण इनका नाम निंबादित्य या निंबार्क पडा। इनके प्रधान ग्रथ हैं

(1) वेदान्तपरिजातसौरभ (ब्रह्मसूत्र का संक्षिप्त भाष्य) (2) दशश्लोकी (अद्वैतमत प्रतिपादक दस श्लोकों का सग्रह, जिस पर हरिदास व्यास आचार्य की महत्त्वपूर्ण टीका है। (3) श्रीकृष्णस्तवराज (पच्चीस श्लोकों का स्वमत प्रतिपादक काव्य। इस पर श्रुत्यन्तसुरद्रुम, श्रुतिसिद्धान्त-मजरी तथा श्रुत्यन्तकल्पवल्ली नामक विस्तृत व्याख्याए प्रकाशित हुई है। इनके अतिरिक्त निंबार्कतत्त्वप्रकाश, वेदान्ततत्त्वबोध, वेदान्त-सिद्धान्त-प्रदीप, माध्वमुखमर्दन इत्यादि ग्रथ भी उल्लेखनीय है।

निंबार्काचार्य के प्रमुख शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने अपने गुरु के वेदान्त-पारिजात-सौरभ पर वेदान्तकौस्तुभ नामक भाष्य लिखा। ई. 15 वीं शती में केशवभट्ट काश्मीरी ने (1) कौस्तुभप्रभा (वेदान्तकौस्तुभभाष्य की व्याख्या) (2) तत्त्वप्रकाशिका (गीता की व्याख्या और भागवत दशम स्कध की वेदस्तुति की टीका) (3) क्रमदीपिका (विषय पूजापद्धति का विवरण) इत्यादि ग्रन्थों द्वारा द्वैताद्वैत मत का पुरस्कार किया। निबार्क सप्रदाय मे हरिव्यास देवाचार्य के शिष्योत्तम पुरुषोत्तमाचार्य का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके ग्रथों मे (1) वेदान्तरत्नमजूषा (दशश्लोकी की व्याख्या) तथा (2) श्रुत्यन्तसुरद्रुम (श्रीकृष्णस्तवराज की टीका) नामक दो ग्रथ पाण्डित्य पूर्णता के कारण प्रसिद्ध है। कृपाचार्य के शिष्य देवाचार्य ने ब्रह्मसूत्र की चतु:सूत्री पर सिद्धान्तजाह्नवी नामक उत्कृष्ट भाष्य लिखा है जिसमे उन्होंने पुरुषोत्तमाचार्य की वेदान्त-रत्नमजूषा का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। सिद्धान्त जाह्नवी पर सुन्दरभट्ट ने सिद्धान्तसेतु नामक टीका लिखी है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त अनन्तराम कृत वेदान्त-तत्त्वबोध पुरुषोत्तमदास वैष्णव कृत-श्रुत्यन्तकल्पवल्ली (श्रीकृष्णस्तवराज की टीका), मुकुन्दमाधव (वगनिवासी) कृत परपक्षगिरिवज्र (जिसमे अद्वैत मत के खडन का सशक्त प्रयास हुआ है।) इत्यादि ग्रथ भेदाभेदवादी वाङ्मय मे प्रसिद्ध है। निम्बार्क प्रणीत द्वैताद्वैत (या भेदाभेद) वादी, तत्त्वज्ञान-परपरा के अनुसार 'हसमत' माना जाता है। हसस्वरूप नारायण-सनत्कुमार नारदमुनि और निबार्क यह इस दर्शन की गुरुपरम्परा मानी गयी है। सप्रदाय के अनुसार निबार्क भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र के अवतार माने जाते है।

इस दर्शन मे प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा-तीन तत्त्व माने जाते है। जीवात्मा और परमात्मा का सबध भेदाभेदरूप या द्वैताद्वैत-रूप होता है, अर्थात् अवस्थाभेद के कारण जीवात्मा परमात्मा से भिन्न तथा अभिन्न होता है।

जीवात्मा.- अणुप्रमाण, ज्ञानस्वरूप, शरीर से सयोग और वियोग होने योग्य, प्रत्येक देह मे विभिन्न, ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता और अनत होते हैं। परमात्मा या ईश्वर स्वतत्र है।

जीव के बद्ध और मुक्त दो प्रकार होते है। बद्ध जीव के बुभुक्षु और मुमुक्षु दो भेद होते है, उसी प्रकार मुक्त जीव के भी दो प्रकार. (1) नित्यमुक्त (जैसे विश्वक्सेन, गरुड, श्रीकृष्ण की मुरलि इत्यादि) और (2) सचित कर्मों का भोग समाप्त होने पर मुक्त।

बद्ध जीवात्मा देव, मनुष्य या तिर्यक् योनि मे जन्म ले कर शरीर के प्रति अहता-ममता रखता है। मुक्तात्मा मे कुछ ईश्वर से सादृश्य प्राप्त करते है तो अन्य कुछ ज्ञानमय स्वरूप मे ही रहते है।

प्रकृति.- चेतनाहीन, जडस्वरूप मूलतत्त्व को प्रकृति कहते है। इसके तीन भेद माने जाते है (1) प्राकृत, (2) अप्राकृत और (3) काल। प्राकृत मे महत तत्त्व मे पच महाभूत और उनके समस्त विकारों का अन्तर्भाव होता है। अप्राकृत के अन्तर्गत परमात्मा का स्थान, शरीर उनके अलकार आदि जडप्रकृति से सबध न रखने वाले दिव्य पदार्थों की गणना होती है।

कालतत्त्व प्राकृत और अप्राकृत तत्वो मे भिन्न है, जो नित्य, विभु, जगन्नियता और परमात्मा के अधीन है। ये तीनो प्रकृतिस्वरूप जडतत्व जीवात्मा के समान नित्य होते है।

परमात्मा .- ईश्वर, नारायण, भगवान्, कृष्ण, पुरुषोत्तम, वैश्वानर इत्यादि पुराणोक्त नामो से इस तत्त्व का निर्देश होता है। यह स्वभावत अविद्या अस्मिता, रागद्वेष, और अभिनिवेश इन दोषो से अलिप्त, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, कल्याणगुण-निधान, चतुर्व्यूहयुक्त, विश्व के उत्पत्ति स्थिति-लय का एकमात्र कारण और जीवो के कर्मफलो का प्रदाता है। यह सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापी है। परमात्मा स्वय आनदमय एव जीवो के आनद का कारण है। वासुदेव, सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इसी परमात्मा के अग हैं। केवल अनन्य शरणागतो को परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त होता है। मुक्त दशा मे परमात्मा से एकरूप होने पर भी जीवात्मा की भिन्नता, प्रस्तुत भेदा-भेदवादी मत मे मानी जाती है।

निम्बार्क-मतानुसार प्रपत्ति या अनन्यशरणागति ही एकमात्र मुक्ति का साधन है। प्रपत्ति के कारण जीव भगवान् के अनुग्रह का पात्र होता है। इस अनुग्रह के कारण भगवान् की रागात्मिका या प्रेममय भक्ति का उदय होता है जिस के प्रकाश से जीव समस्त क्लेशो से मुक्त होता है।

निम्बार्क मतानुयायी वैष्णव सप्रदाय का प्रचार वृन्दावन और बगाल मे अधिक मात्रा मे हुआ है। इस सप्रदाय मे श्रीकृष्ण

ही परमात्मा माने गये हैं। श्रीकृष्ण की कृपा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, तथा उज्ज्वल इन पांच भावों से युक्त भक्ति द्वारा होती है। श्रीराधा श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। राधा-कृष्ण में अविनाभाव संबंध है। क्रीडा के निमित्त एक ही ब्रह्म उन दो रूपों में प्रकट हुआ है।

9 तत्त्वसमन्वय

भारतीय दर्शनों में जीव, जगत्, ईश्वर, परमात्मा आदि के विषय में गहन तात्त्विक विवेचन अत्यत मार्मिकता से हुआ है। इस विवेचन में प्राचीन अनेक सूत्रकारों, भाष्यकारों, टीकाकारों ने अपनी तलस्पर्शिनी प्रज्ञा एवं क्रान्तदर्शिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इस विश्व का गूढ रहस्य तत्त्वजिज्ञासुओं के लिए अपने अपने दर्शनों द्वारा उद्घाटित करने का जो प्रयास उन्होंने किया, उसमें एक विशेष बात ध्यान में आती है कि तत्त्वो की संख्या के विषय में अन्याय दर्शनों में एकमत नहीं है। इस मत-वैविध्य के कारण सामान्य जिज्ञासु के सन्देह का निरास नहीं होता और उसकी जिज्ञासा कायम रहती है या उसकी श्रद्धा विचलित सी होती है। उपनिषदों के वाक्यों में जहा परस्पर विरोध सा प्रतीत हुआ वहा उनका समन्वय दार्शनिक भाष्यकारों ने मार्मिक उपपत्ति एवं समुचित उपलब्धि के द्वारा करते हुए जिज्ञासुओं का समाधान किया है, परतु अन्यान्य दार्शनिकों के तत्त्वकथन में जो मतभेद निर्माण हुआ, उसका समाधान हुए बिना तत्त्वजिज्ञासु की जिज्ञासा शांत नहीं हो सकती।

श्रीमद्भागवत (स्कन्ध-11 अध्याय-22) में वही जिज्ञासा उध्ववजी ने भगवान् के समक्ष व्यक्त की है और उस मार्मिक जिज्ञासा का प्रशमन समस्त दार्शनिको के दार्शनिक भगवान् श्रीकृष्ण ने यथोचित युक्तिवाद से किया है। प्रस्तुत प्रकरण में उक्त समस्या का उपसहार करने हेतु श्रीमद्भागवत के उसी अध्याय का साराश उद्धृत करना हम उचित समझते हैं। उद्धव और श्रीकृष्ण के उस सवाद में इस मतभेद का समुचित समन्वय होने के कारण जिज्ञासुओं का यथोचित समाधान होगा यह आशा है।

उद्धव जी कहते है, "है प्रभो। विश्वेश्वर।" आपने (19 वें अध्याय में) तत्त्वों की संख्या, नौ, ग्यारह, पांच और तीन अर्थात् कुल मिला कर अट्ठाईस बतायी है। किन्तु कुछ लोग छब्बीस, कोई पच्चीस, कोई सत्रह, कोई सोलह, कोई तेरह, कोई ग्यारह, कोई नौ, कोई सात, कोई छह, कोई चार, इस प्रकार ऋषिमुनि भिन्न भिन्न संख्याए बताते हैं। वे इतनी भिन्न सख्याए किस अभिप्राय से बतलाते हैं?

उद्धवजी की इस मार्मिक जिज्ञासा का प्रशमन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं -

"उद्धवजी। इस विषय में वेदज्ञ ब्राह्मणो ने जो कुछ कहा है, वह सभी ठीक है, क्योंकि सभी तत्त्व सब में अन्तर्भूत हैं" जैसा तुम कहते हो वह ठीक नहीं है, जो मै कहता हू वही यथार्थ है "इस प्रकार जगत् के कारण के सबध मे विवाद होता है। इस का कारण वे अपनी अपनी मनोवृत्ति पर ही आग्रह कर बैठते हैं। वस्तुत तत्त्वों का एक-दूसरे में अनुप्रवेश है, इस लिये, वक्ता तत्त्वो की जितनी सख्या बतलाना चाहता है, उसके अनुसार कारण को कार्य में अथवा कार्य को कारण में मिला कर अपनी इच्छित सख्या सिद्ध कर लेता है। ऐसा देखा जाता है कि एक ही तत्त्व में बहुत से दूसरे तत्त्वों का अन्तर्भाव हो गया है। इसका कोई बन्धन नहीं है कि किसका किस में अन्तर्भाव हो। इसी लिये वादी-प्रतिवादियों में से जिस की वाणी ने, जिस कार्य को जिस कारण में, अथवा जिस कारण को जिस कार्य में अन्तर्भूत करके तत्त्वों की जितनी सख्या स्वीकार की है, वह हम निश्चय ही स्वीकार करते है क्यो कि उनका वह उपपादन युक्तिसंगत ही है।

उद्धवजी। जिन लोगो ने छब्बीस सख्या स्वीकार की है, वे ऐसा कहते हैं कि प्रकृति के कार्य-कारण रूप चौतीस तत्त्व, पच्चीसवा पुरुष और छब्बीसवा ईश्वर मानना चाहिए। पुरुष (या जीव) अनादि काल से अविद्याग्रस्त होने के कारण अपने आप को नहीं जान सकता। उसे आत्मज्ञान कराने के लिये किसी अन्य सर्वज्ञ की आवश्यकता होती है इसलिये छब्बीसवे ईश्वर तत्त्व को मानना आवश्यक है।

पच्चीस तत्त्व मानने वाले कहते हैं कि इस शरीर में जीव और ईश्वर का अणुमात्र भी अतर या भेद नहीं है, इसलिये उनमे भेद की कल्पना व्यर्थ है। रही ज्ञान की बात। वह तो सत्त्वात्मिकी प्रकृति का गुण है, आत्मा का नहीं। इस प्रसंग में सत्त्वगुण ही ज्ञान है, रजोगुण ही कर्म है और तमोगुण ही अज्ञान कहा गया है। और गुणो मे क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल स्वरूप ईश्वर है और सूत्र अर्थात् महत्तत्त्व ही स्वभाव है। इस लिये पच्चीस और छब्बीस तत्त्वो की दोनो ही सख्या युक्तिसंगत है।

तत्त्वों की संख्या अट्ठाईस मानने वाले, सत्त्व, रज, और तम-तीन गुणों को मूल प्रकृति से अलग मानते हैं। (उनकी उत्पत्ति और प्रलय को देखते हुए वैसा मानना भी चाहिये) इन तीनों के अतिरिक्त, पुरुष, प्रकृति, महत्, अहकार, और पचभूत- ये नौ तत्त्व, पाच ज्ञानेन्द्रिया, पाच कर्मेन्द्रियां, मन (जो उभयेन्द्रिय है) और शब्दस्पर्शादि पांच (ज्ञानेन्द्रियों के) विषय सब मिला कर अट्ठाईस तत्त्व होते हैं। इनमें कर्मेन्द्रियो के पांच कर्म (चलना, बोलना आदि) नहीं मिलाए जाते क्यों कि वे कर्मेन्द्रिय स्वरूप ही माने जाते हैं।

जो लोक तत्त्वों की सख्या सत्रह बतलाते हैं वे इस प्रकार तत्त्वों की गणना करते हैं- पांच भूत, पांच तन्मात्राए, पाच

ज्ञानेन्द्रिया, एक मन और एक आत्मा। जो लोग तत्त्वो की सख्या सोलह बतलाते हैं, वे आत्मा में मन का समावेश कर लेते हैं। जो लोग तेरह तत्त्व मानते हैं, वे आकाशादि पाच भूत, श्रोत्रादि पाच ज्ञानेन्द्रिया, एक मन, एक जीवात्मा और एक परमात्मा मानते हैं। ग्यारह तत्त्व मानने वाले पाच भूत, पाच ज्ञानेन्द्रिया और एक आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। नौ तत्त्व मानने वाले, पाच भूत, और मन, बुद्धि, अहंकार - ये आठ प्रकृतिया और नवा पुरुष - इन्ही को मानते हैं।

जो लोग तत्त्वों की संख्या सात स्वीकार करते हैं, उनके विचार मे पाच भूत, छठा जीव, और सातवा परमात्मा- (जो साक्षी जीव और साक्ष्य जगत् दोनों का अधिष्ठान है) ये ही तत्त्व हैं। देह, इन्द्रिय और प्राण आदि की उत्पत्ति पचभूतो से ही हुई है, इस लिये वे उन्हें अलग नहीं गिनते।

जो लोग केवल छह तत्त्व स्वीकार करते हैं, वे पाच भूत और परमपुरुष परमात्मा को ही मानते है। वह परमात्मा अपने बनाये हुए पचभूतों से युक्त होकर देह आदि की सृष्टि करता है और उनमें जीव रूप से प्रवेश करता है। (इस मत के अनुसार जीव का परमात्मा में और शरीर आदि का पचभूतो में समावेश होता है।

जो लोग चार ही तत्त्व स्वीकार करते हैं, वे आत्मा से तेज, जल, और पृथ्वी की उत्पत्ति और जगत् मे जितने पदार्थ हैं सब इन्हीं से उत्पन्न मानते हैं।

सृष्टि के मूल तत्त्वो के सबध में दार्शनिको ने जो मतभेद व्यक्त किये हैं, उसी प्रकार के मतभेद श्रीमद्भागवत के निर्माता के समय में भी थे। भागवतकार ने उद्धव-कृष्ण सवाद के द्वारा उन मतभेदो का समाधान साक्षात् श्रीकृष्ण के उद्‌गारो से जिस पद्धति से किया उसी पद्धति से अन्यान्य दर्शनो के तत्त्वविषयक मतभेदो का समाधान होना असभव नही। "बुद्धे फलम् अनाग्रहः" इस सुभाषित के अनुसार साम्प्रदायिकता के आग्रह या दुराग्रह का त्याग करने वाले अपना और दूसरो का समाधान कर सकते हैं। समाधान की यह पद्धति भगवान् श्रीकृष्ण ने बताई है।

10 शैवदर्शन - एव संप्रदाय

वेदो के रुद्रदेवता विषयक सूक्तो में एव मैत्रायणी सहिता, श्वेताश्वतर उपनिषद्, अथर्वशिरस् उपनिषद, स्कदपुराण, लिगपुराण आदि शैव पुराणो में रुद्र तथा शिवस्वरूप में परमात्मा की स्तुति हुई है। वैदिक सूक्तों में जिस रुद्र का वर्णन हुआ है उस देवता के वास्तव स्वरूप के विषय में आधुनिक यूरोपीय एव भारतीय विद्वानों ने शोधपत्रिकाओ द्वारा यत्र तत्र चर्चा की है, जिस में वैदिक रुद्र याने हिमागिरी, अग्नि, सूर्य, व्याधतारा अथवा मनस्तत्त्व इत्यादि प्रकार के मत प्रतिपादित हुए हैं। वैदिक और पौराणिक वाङ्मय में रुद्र के वर्णन मे गिरिश (पर्वत पर शयन करने वाला) गिरीश (पर्वतो का ईश), नीलकठ, वृषभवाहन, कपर्दी (अर्थात जटाजूटधारी), भव, शर्व, भूतेश, पशुपति, पिनाकी, कृत्तिवासा, कपालभृत्, शूली, वामदेव, महादेव, त्रिलोचन, त्र्यंबक, पचमुख, चतुर्मुख, त्रिमुख, श्मशानवासी, भस्मधारी, चद्रशेखर, नीललोहित, इत्यादि विविध-प्रकार के विशेषणो का प्रयोग हुआ है। शैव सम्प्रदायो में जिस शिवस्वरूपी परमात्मा की उपासना होती है, उसका माहात्म्य जिन पौराणिक कथाओ में वर्णन किया है उनमे इन्हीं रुद्र विषयक विशेषणो का प्रयोग सर्वत्र होने के कारण वेदिक रुद्र तथा पुराणोक्त शिव में एकता के संबध मे सदेह नहीं होता।

भगवान् शिव की उपासना मूर्तिस्वरूप की अपेक्षा लिगस्वरूप में ही सर्वत्र होती है। शिवलिग की वास्तवता के विषय में भी आधुनिक विद्वानो ने काफी चर्चा की है। पुराणो एव महाभारत मे "शिवलिग" याने उमा-महेश्वर के जननेन्द्रिय (योनि और शिश्न) होने के प्रमाण कथाओ एव वचनो मे मिलते है। पेरिस की धर्मपरिषद मे गुस्ताव ओपर्ट नामक जर्मन पडित ने शैवो का शिवलिग पुरुष के जननेद्रिय का और वैष्णवों का शालिग्राम स्त्री के जननेन्द्रिय का प्रतीक, अपने निबध मे प्रतिपादन में कहा था। उसी परिषद में स्वामी विवेकानदजी ने अनेक प्रमाण दे कर शिवलिग यज्ञीय यूपस्तभ का प्रतीक सिद्ध किया था। शिवलिग को बौद्ध "स्तूप" की प्रतिमा माननेवाले भी युक्तिवाद रखे जाते हैं।

भारत के सभी प्रदेशो में शैवसप्रदाय तथा शिव की उपासना अति प्राचीन काल से विद्यमान है। इन शैव सप्रदायो के पाशुपत और आगमिक नामक दो वर्ग होते हैं। पाशुपत वर्ग मे नकुलीश, कापालिक, कालमुख, नाथ, एव रसेश्वर इत्यादि प्राचीन पंथो का अतर्भाव होता है, और आगमिक वर्ग में काश्मीर, कर्नाटक और तामीलनाडु के शैव सप्रदायो का अन्तर्भाव होता है।

(अ) पाशुपत दर्शन

वायु पुराण के पूर्वभाग मे "पशुपति" अर्थात् जीव और जगत् स्वरूप "पशु" के अधिपति के मत का उल्लेख 11 से 15 वें अध्यायो में मिलता है। इस मत के सस्थापक लकुली नामक योगी थे। अत इस दर्शन को लकुलीश या नकुलीश दर्शन कहते हैं। गुणरत्न ने नैयायिको को शैव और वैशेषिकों को "पाशुपत" कहा है। न्यायवार्तिक के रचयिता उद्योतकर ने "पाशुपताचार्य" की उपाधि से अपना परिचय दिया है। माधवाचार्य के सर्वदर्शन सग्रह मे, राजशेखरसूरि के षड्दर्शन-समुच्चय में भी सर्वज्ञ की गणि-कारिका में इस मत का परिचय दिया गया है। महेश्वररचित पाशुपतसूत्र (कौण्डिन्यकृत पचार्थी भाष्य

सहित) इस दर्शन का मूलग्रंथ माना जाता है। 15 वीं शताब्दी में अद्वैतानन्द ने अपने ब्रह्मविद्याभरण नामक ग्रथ में पाशुपतमत का स्वतंत्र प्रतिपादन किया है।

पाशुपत मतानुसार पदार्थ पांच प्रकार के होते हैं :— (1) कार्य, (2) कारण, (3) योग, (4) विधि और (5) दुःखान्त। कार्य तीन प्रकार का होता है :- (1) विद्या, (2) कला और (3) पशु। जीव और जड दोनों का अन्तर्भाव कार्य में होता है क्यों कि दोनों परतंत्र होने से परमेश्वर के अधीन हैं।

विद्या— दो प्रकार की होती है — (1) बोध (चित्त) और अबोध (अर्थात जीवत्व की प्राप्ति कराने वाले धर्माधर्म)।

कला के दो प्रकार— (1) कार्यरूपा (पचभूत और उनके गुण)। (2) कारणरूपा (दस इन्द्रिया, मन, बुद्धि और अहंकार)

पशु (अर्थात् जीव) के दो प्रकार - (1) सांजन (शरीरेन्द्रिय से संबद्ध) और निरंजन (शरीरेन्द्रिय विरहित)।

(2) कारण — जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करने वाले महेश्वर। यह ज्ञानशक्ति, प्रभुशक्ति और अनुग्रहशक्ति के आश्रय होते हैं।

(3) योग — चित्त के द्वारा आत्मा तथा ईश्वर का संयोग। इसके दो प्रकार - (1) क्रियात्मक (जप, ध्यान आदि) और (2) क्रियोपरम (भक्ति)।

(4) विधि- इस के दो प्रकार - (1) व्रत और (2) द्वार। व्रत के पांच प्रकार- भस्मस्नान, जप, प्रदक्षिणा आदि। द्वार के- क्राथन, स्पन्दन, मन्थन आदि प्रकार होते हैं। इन विधियों से महेश्वर की आराधना होती है।

(5) दु:खान्त (अर्थात् मोक्ष) के दो प्रकार- (1) अनात्मक (जिसमें दु:खों की आत्यंतिक निवृत्ति होती है। (2) सात्मक जिसमें दृक्शक्ति और क्रियाशक्ति की सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

पाशुपत वर्ग के कापालिक और कालमुख सप्रदायों में शवभस्मस्नान, कपालपात्रभोजन, सुराकुंभ स्थापन जैसे विधि अदृश्य सिद्धिप्रद माने गये हैं। रसेश्वर दर्शन में पारद (पारा) को शिवजी का वीर्य एव रसेश्वर माना है। गन्धक को पार्वती का रज माना है। इन दोनों के मिलने से जो भस्म सिद्ध होता है उससे मनुष्य का शरीर योगाभ्यास के पात्र होता है जिससे आत्मदर्शन होता है। इन सप्रदायों का समाज में विशेष प्रचार नहीं है। कापालिक परंपरा में आदिनाथ, अनाथ, काल, अतिकालक, कराल, विकराल, महाकाल, काल, भैरवनाथ, बाहुक, भूतनाथ, वीरनाथ और श्रीकठ नामक बारह श्रेष्ठ कापालिक माने जाते हैं। तंत्रशास्त्र की निर्मिति इन्हीं के द्वारा मानी जाती है।

शैवों के नाथ संप्रदाय परंपरा के अनुसार "आदिनाथ" अर्थात् साक्षात् शिवजी आदिगुरु माने जाते हैं। शिवजी ने पार्वती जी को जो गूढ आध्यात्म का उपदेश दिया, उसका ग्रहण मत्स्येन्द्रनाथ ने किया। ऐतिहासिक दृष्टि से मत्स्येंद्रनाथ ही इस सप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी परम्परा में गोरक्ष, जालदर, कानीफ, चर्पट, भरत और रेवण नामक नौ "नाथ" हुए। सांप्रदायिक धारणा के अनुसार श्रीमद्भागवत के 11 वें स्कन्ध में उल्लेखित कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र द्रुमिल, चमस, और करभाजन, इन नौ सिद्धों के अवतार नवनाथ माने जाते हैं। सभी नाथों की कथाए अदभुतता से परिपूर्ण हैं। इनके सप्रदाय में हठयोगप्रदीपिका, गोरखबोध, जैसे ग्रंथ प्रमाण हैं और मंत्रतंत्रों एवं सिद्धियों के प्रगति विशेष आग्रह है। नाथ पंथ में जातिभेद नहीं माना जाता।

आगमिक वर्गीय शैव संप्रदायों में तमिलनाडु के नायन्मार नामक सत्पुरुषों द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय का अन्तर्भाव होता है। नायन्मारों की कुल सख्या 63 है जिनमें अप्पर, सुन्दर, माणिक्क, वासगर (या वाचकर), ज्ञानसंबंधर विशेष प्रख्यात हैं। "तेवारम्" नामक प्राचीन तामिलभाषीय काव्यसंग्रह में इन चार नायन्मारों के शिवभक्तिपूर्ण काव्यों का संकलन किया है। "तेवारम्" के प्रति साप्रदायिकों में नितात प्रामाण्य एव श्रद्धा है। दक्षिण भारत के अनेक शिवमंदिरों में एवं उनके गोपुरों पर नायन्मार सतों की मूर्तियां होती हैं, जिन की लोग पूजा करते हैं। ई. 12 वीं शताब्दी में मेयकण्डदेव नामक शैवाचार्य ने तामिलनाडु के इस शैवमत को दार्शनिक प्रतिष्ठा, अपने शिवज्ञानबोध नामक ग्रंथद्वारा प्राप्त करा दी। इस सप्रदाय के सभी प्रमाणभूत ग्रंथ तामिलभाषी हैं। शैवसिद्धान्तों पर आधारित यह एक भक्तिनिष्ठ तंत्रमार्ग है।

(आ) वीरशैव मत

साम्प्रदायिक परंपरा के अनुसार कलियुग में वीरशैव मत की स्थापना, रेवणसिद्ध, मल्लसिद्ध, एकोराम, पंडिताराध्य और विश्वाराध्य इन पांच आचार्यों द्वारा हुई। इन पांच आचार्यों में रेवणसिद्धाचार्य 14 सौ वर्ष जीवित थे और उन्होंने श्रीशंकराचार्य जी को "चन्द्रमौलीश्वर" नामक शिवलिंग नित्य उपासना के हेतु दिया था। इन आचार्यों द्वारा स्थापित शैव मठ भारत में अन्यान्य स्थानों में विद्यमान हैं, जहां मठ, मठपति, स्थावर, गणगाचार्य और देशिक नाम के पांच उपाचार्य कार्यभार सम्हालते हैं। केदारनाथ, श्रीशैल, उज्जयिनी, वाराणसी और बलेहल्ळी इन पांच क्षेत्रों में वीरशेव सप्रदाय के प्रमुख पीठ विद्यमान हैं।

वीरशैव संप्रदाय में 63 "पुरातन" (प्राचीन साधुपुरुष) और 770 "नूतन पुरातन" (सुधारवादी सत्पुरुष) पूज्य माने जाते

है। इस सम्प्रदाय का स्वरूप एकेश्वरवादी है जिसमे ब्रह्मा, विष्णु रुद्र (त्रैमूर्ति) के अतिरिक्त **महाशिव को परमेश्वर** माना जाता है। वीरशैव दर्शन के अनुसार सृष्टि का स्वरूप द्विविध है- (1) प्राकृत (ब्रह्मनिर्मित) और (2) अप्राकृत (शिवनिर्मिति)। भगवान् शिवद्वारा जिन का निर्माण हुआ वे नन्दी, भृगी, रेणुक, दारुक आदि मायातीत होने के कारण अप्राकृत है। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से युक्त चैतन्य ही शिवतत्त्व है जो चिदचिद्विशिष्ट अद्वैतस्वरूप है। वीरशैव सम्प्रदाय के इस प्रकार के तत्त्वज्ञान को "सगुणब्रह्मवाद"- कहा जा सकता है।

पदार्थत्रय- पशु, पाश और पति-तीन पदार्थ हैं। नित्यमुक्त, आधिकारिक,बद्ध और केवल जड इस प्रकार के पशु (जीवमात्र) के उच्चनीच अवस्था के अनुसार भेद होते हैं।

त्रिविध दीक्षा- साधक को दीक्षा देने का अधिकारी उसका गुरु होता है। वीरशैव सम्प्रदाय मे 21 प्रकार की दीक्षाए सम्मत हैं जिनमें वेधदीक्षा, मत्रदीक्षा और क्रियादीक्षा प्रमुख मानी जाती है।

चतुर्विध शैव- उपासना की उत्कटता के अनुसार शैवो के चार प्रकार माने जाते हैं- **(1) सामान्य शैव-** जो स्वयभू, आर्ष, दैव और मानुष शिवलिगो का यदृच्छया दर्शन होने पर पूजन करता है।

(2) मिश्र शैव- शिवपचायतन (शिव, अबिका, शालिग्राम, गणपति और सूर्य) की नित्य पूजा करने वाला।

(3) शुद्ध शैव- मत्र, तत्र, मुद्रा, न्यास, आवाहन, विसर्जन को ठीक जानते हुए, दीक्षा ग्रहण कर, परहितार्थ प्रतिष्ठित शिवलिगो की पूजा करने वाला।

(4) वीर शैव - दीर्घव्रत और उपवास न करते हुए कवल शिवलिग की आराधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने वाला। वीर शैव के तीन प्रकार - (1) सामान्य- जो जगम गुरु और शिवलिग के अतिरिक्त अन्य देवता की पूजा नही करता। (2) विशेष- अष्टावर्ण (गुरु, लिग, जगम, विभूति, रूद्राक्ष, चरणतीर्थ, प्रसाद और मत्र) मे सम्पन्न, और कर्मयज्ञादि पचयज्ञ करने वाला। (3) निराभारी वीरशैव - वर्ण-आश्रम का त्याग और सर्वत्र सचार करते हुए उपदेश देने वाला योगी।

विशेष वीरशैव के पचयज्ञ- (1) कर्मयज्ञ (नित्यशिवार्चन), (2) तपोयज्ञ (शरीरशोषण), (3) जपयज्ञ (शिवपचाक्षर, प्रणव और रुद्रसूक्त का जप), (4) ध्यानयज्ञ और (5) ज्ञानयज्ञ - (शैवागम का श्रवण-मनन)।

वीरशैव सम्प्रदाय में शिवलिग का नितान्त महत्त्व माना गया है। अत इस सम्प्रदाय को लिगायत सपदाय कहते है। लिगायत लोग गुरुद्वारा प्राप्त शिवलिग शरीरपर धारण करते है और लिगपूजन बिना वे जल-अन्नादि ग्रहण नही करते।

ई-11 वी शताब्दी मे बसवेश्वर द्वारा कर्नाटक मे वीरशैव सप्रदाय का विशेष प्रचार हुआ। बसवेश्वर इस सम्प्रदाय के महान सुधारक एव प्रचारक थे। इन का कार्यक्षेत्र कर्नाटक मे ही होने के कारण कन्नड भाषा म सप्रदायनिष्ठ वाङ्मय प्रभूत मात्रा मे निर्माण हुआ। स्वय बसवेश्वर, हरीश्वर (या हरिहर), राघवाक, केरेयपद्मरस, पालकुरिके सोम, भीमकवि, जैसे लेखको का साहित्य सप्रदाय मे मान्यताप्राप्त है। इस के अतिरिक्त सस्कृत में शैवागम नामक 28 ग्रथ, शिवगीता, श्रुतिसारभाष्य, सामनाथभाष्य, रेणुकभाष्य, शिवाद्वैतमजरी, सिद्धान्तशिखामणि, वीरशैवचिन्तामणि, वीरमाहेश्वराचारसग्रह, वीरशैवाचारकौस्तुभ, इत्यादि ग्रथो का विशेष महत्त्व है। भगवान व्यास ने ब्रह्मसूत्र मे शिवलिग का ही महत्त्व वर्णन किया है। यह विचार नीलकण्ठभाष्य तथा एकोरेणुकभाष्य में प्रतिपादन किया है। इस सप्रदाय के अनुसार चारो वेदो की उत्पत्ति शकरजी के नि श्वसितो से होने के कारण वेद तथा उपनिषद, शैवपुराण वाङ्मय और वेदानुकूल स्मृतिग्रथ प्रमाण माने जाते है।

(इ) काश्मीरी शैवमत

शैवमत की एक परपरा काश्मीर मे प्रचलित हुई जिसके प्रवर्तको मे दुर्वासा, त्र्यबकादित्य, सगमादित्य, सोमानन्द इत्यादि नाम उल्लिखित है। इस शैव दर्शन का उदयकाल तृतीय शती माना जाता है। सोमानन्द का समय ई 9 वीं शती माना जाता है। इन के समसामयिक वसुगुप्त, तथा कल्लट का कार्य भी प्रस्तुत दर्शन की परपरा मे महत्त्व रखता है। सोमानद के शिष्य उत्पलदेव (ई 9 वीं शती), उनके शिष्य लक्ष्मणगुप्त और उनके शिष्य अभिनवगुप्ताचार्य (ई 10-11 वी शती) एक अलौकिक विद्वान् थे। ई 11 वीं शती मे अभिनवगुप्ताचार्य के शिष्य क्षेमराज ने इस मत की स्थापना मे सहयोग दिया।

काश्मीरी शैवमत का निर्देश प्रत्यभिज्ञादर्शन, स्पन्दशास्त्र, षडर्धशास्त्र, षडर्थक्रमविज्ञान, त्रिकदर्शन इत्यादि नामो से होता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन- अज्ञान की निवृत्ति के अनन्तर, जीव को गुरुवचन से ज्यों ही यह ज्ञान होता है कि "मै शिव हू" त्यो ही उसे तुरत आत्मस्वरूप (शिवत्व) का साक्षात्कार हो जाता है। "प्रत्यभिज्ञा" इस पारिभाषिक शब्द का आशय "सोऽय देवदत्त" याने कुछ समय पूर्व जिस देवदत्त को देखा था, वही यह देवदत्त है, इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। इसी प्रकार की प्रत्यभिज्ञा जीव के अत करण में शिव के प्रति श्रवणादि साधन एव गुरु का उपदेश के कारण उत्पन्न होती है। प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक ग्रन्थो में सोमानन्द के शिष्य उत्पलदेवकृत ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाकारिका (जिसे सूत्र कहते हैं), अभिनव-गुप्ताचार्यकृत

लघ्वी और बृहती नामक दो व्याख्याए (जो विमर्शिनी नाम से विदित हैं) विशेष प्रसिद्ध हैं। अभिनवगुप्तकृत व्याख्याए स्वय उत्पलदेव कृत वृत्ति तथा विवृत्ति टीकाओ पर लिखी गयी हैं। उनमे वृत्ति अधूरी प्राप्त है और विवृत्ति अप्राप्त है। अत "सूत्र" और विमर्शिनी व्याख्याए ही इस सिद्धान्त के आधारभूत ग्रन्थ हैं। अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमराज (ई-11 वीं शती) कृत शिवसूत्र विमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञाहृदय एवं स्पन्दसन्देह और भास्करकण्ठ (ई 18 वी शती) कृत ईश्वरप्रत्यभिज्ञाटीका (या भास्करी), भी प्रत्यभिज्ञादर्शन के आकलन के लिये उपादेय हैं।

स्पन्दशास्त्र - सोमानन्द के कनिष्ठ समसामायिक वसुगुप्त द्वारा काश्मीरी स्पन्द सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना मानी जाती है। स्पन्दकारिका नामक 71 कारिकाओं की रचना वसुगुप्त द्वारा ही मानी जाती है। शिवसूत्र के प्रणयन का श्रेय भी वसुगुप्त को ही दिया जाता है। सम्प्रदायानुसार माना जाता है की, भगवान् श्रीकण्ठ ने स्वप्न मे वसुगुप्त को आदेश दिया था कि महादेव गिरि के एक विशाल शिलाखड पर उट्टकित शिवसूत्रो का उद्धार और प्रचार करो। इन सूत्रों की सख्या 77 है। वसुगुप्त की स्पन्दकारिका पर राजानक रामकण्ठ ने विवृत्ति नामक टीका लिखी है। शिवसूत्र पर क्षेमराज नें विमर्शिनी-टीका लिखी है। स्पन्दकारिका शिवसूत्रो का सग्रह उपस्थित करती है- इस तथ्य का प्रतिपादन क्षेमराज ने शिवसूत्र-विमार्शिनी मे किया है। स्पन्दशास्त्र के अनुसार, परमेश्वर की स्वातंत्र्यशक्ति ही किंचित् चलनात्मक होने के कारण "स्पन्द" कही जाती है। स्पन्दकारिका पर भट्टकल्लट (ई 9 वी शती) की स्पन्दसर्वस्व वृति, उत्पलवैष्णव (10 वी शती) कृत स्पन्दप्रदीपिका, क्षेमराज (11 वी शती) कृत स्पन्दसन्देह और स्पन्दनिर्णयवृत्ति, उल्लेखनीय टीकाए है।

त्रिकदर्शन- काश्मीरी शैव दर्शन को प्रस्तुत सज्ञा प्राप्त होने का कारण है - सिद्धातंत्र, नामकतत्र, तथा मालिनीतंत्र इन तीन तत्रों का आधार। इस मत में पर, अपर और परापर रूप तीन "त्रिक" माने जाते हैं। (1) शिव, शक्ति तथा उनका सघट्ट "पर त्रिक", (2) शिव, शक्ति तथा नर "अपर त्रिक" और (3) परा, अपरा, परापरा- ये तीन अधिष्ठात्री देवियां "परापर त्रिक" नाम से प्रख्यात हैं। इन तीनो त्रिको के आधार पर प्रतिष्ठित होना "त्रिकदर्शन" संज्ञा का कारण है।

षडर्धशास्त्र- काश्मीरी शैव दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त के अनुसार लिपि के प्रथम छह स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ- उसी उन्मेषक्रम का प्रतिनिधित्व करते है, जिस क्रम से "अनुत्तर, आनद, इच्छा, ईशना, उन्मेष तथा ऊर्मि" इन शक्तियो का परम शिव तत्त्व से उल्लासन होता है। इन मे से आनदशक्ति, ईशानशक्ति तथा ऊर्मिशक्ति क्रमश अनुत्तर, इच्छा तथा उन्मेष पर आधारित होती हैं और उन्ही की किंचित् विकासोन्मुख अवस्थाएं हैं। अनुत्तर, इच्छा तथा उन्मेष क्रमश चित्, इच्छा और ज्ञान कहलाती है। षडर्धशासन इसी तत्त्व की और सकेत करता है।

काश्मीरीय साधको मे शैवो के समान कौलमार्ग साधको का सप्रदाय प्रचलित है। अभिनवागुप्ताचार्य कौलमार्गी थे। कौलज्ञाननिर्णय में पचमकार और पच पवित्र की चर्चा आती है। पच मकार मे मद्य, मास, मदिरा-मत्स्य और मैथुन इन पाचो की गणना होती है और पच पवित्र में विषय, धारामृत, शुक्र, रक्त और मज्जा इन का अन्तर्भाव होता है। कौलमार्ग मे गुप्तता पर विशेष आग्रह होने के कारण, इन लौकिक शब्दो के गूढ अर्थ अलग प्रकार के होते हैं जैसे मैथुन का अर्थ शिव और शक्ति का समरसीकरण होता है। कौलमार्गीयो मे भक्ष्याभक्ष्य का कोई विधि निषेध तथा जातिभेद नही होता। कुण्डलिनीशक्ति का उद्‌बोधन इस मार्ग का उद्दिष्ट माना गया है। प्रत्येक जीव, कुण्डलिनी और प्राणशक्ति के साथ माता के उदर में प्रविष्ट होता है। जन्म होने पर भी सामान्यत जीव जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था मे जीवन व्यतीत करता है। इन अवस्थाओ मे कुण्डलिनी निश्चेष्ट रहती है। उसका उद्‌बोधन कौल साधना से किया जाता है। इस साधना मे पशु वीर एव दिव्य नामक साधको की अवस्थाए मानी जाती हैं। सामान्य ससारासक्त साधक पशु अवस्था में होता है। वह जब अधिक उत्साह से साधनमार्ग मे प्रवृत्त होता है, तब वह 'वीर" कहलाता है। वह जब आत्मानंद की उच्चतम अवस्था मे जाता है उसे "दिव्य" साधक कहते हैं। कौलज्ञाननिर्णय में कौलसद्भाव, पदोत्रिक, महत्कौल, सिद्धामृतकौल, मत्स्योदर कौल इत्यादि शाखाओ का निर्देश किया है। सप्रदाय के अनुसार यह मार्ग यज्ञयागादि मार्ग से अधिक श्रेयस्कर माना जाता है। कौल साधको के नित्य आचार मे त्रिकालिक पूजा, नित्यजप, तर्पण, होम, ब्राह्मणभोजन इस पाच विधियों पर विशेष आग्रह होता है। कौलमार्गी, स्त्रियो के प्रति अत्यत आदर रखते है।

कौल शब्द "कुल" शब्दसे निष्पन्न होता है। कुल शब्द के अन्यान्य अर्थ माने जाते हैं- (1) मूलाधारचक्र (2) जीव, प्रकृति, दिक्, काल, पृथ्वी, आप, तेज, वायु आकाश इन नौ तत्त्वो की "कुल" सज्ञा है। (3) श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण (इसी को योनि भी कहते हैं)। सौभाग्यभास्कर ग्रथ में कौलमार्ग शब्द का स्पष्टीकरण "कुल = शक्ति, अकुल - शिव। कुल से अकुल का अर्थात् शक्ति से शिव का सबध ही कौल है। कौलमत के अनुसार शिवशक्ति मे कोई भेद नही है। उन का सबध अग्नि-धूम या वृक्ष-छाया के समान नित्य होता है।

इतिहास के अनुसार 12 वीं शताब्दी में बल्लालसेन ने बगाल में कौलपथ का प्रचार किया। 13 वी शती म मुसलमानी आक्रमको के अत्याचारों से कौल पथ की हानि हुई। उन के ग्रथो का विध्वस हुआ। 15 वीं शताब्दी मे देवीवरबधु नामक

सत्पुरुष ने कामरूप में कामाख्या देवी की आराधना की और पथ में कुछ व्यवस्था निर्माण की। कामाख्या आज भी कौलमार्गियों का मुख्य स्थान है।

कौलाचार का विरोधी मार्ग समयाचार कहलाता है। श्रीशकराचार्य समयाचार मार्गी थे। इस मार्ग में श्रीविद्या की उपासना तथा अंतरंग योग साधना को विशेष महत्त्व होता है। श्रीशकराचार्य का सौंदर्यलहरी स्तोत्र, कवित्व तथा तांत्रिकत्व की दृष्टि से एक अपूर्व ग्रंथ होने के कारण इस मार्ग में उस स्तोत्र का विशेष महत्त्व माना जाता है। सौंदर्यलहरी पर 35 टीकाएं उपलब्ध हैं जिनमें नरसिंह, कैवल्याश्रम, अच्युतानन्द, कामेश्वरसूरि, लक्ष्मीधर की टीकाए विशिष्ट महत्त्व रखती हैं।

11 शुद्धाद्वैतवादी - वल्लभमत

सन् 1479 में वैशाख वद्य एकादशी को लक्ष्मणभट्ट और एल्लमा गारू के पुत्र वल्लभ का जन्म हुआ। किशोरावस्था में ही यह बालक सर्वशास्त्रपारंगत हुआ। उसी अवस्था में उसे "बालसरस्वती" "वाक्पति" इत्यादि महनीय उपाधियाँ विद्वत्सभा द्वारा प्राप्त हुई। विजयनगर की राजसभा में वल्लभाचार्य ने शाकरमत का खडन किया। बाद में वे मथुरा में निवासार्थ रहे थे, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वप्न-साक्षात्कावर में अपनी उपासना का प्रचार करने का आदेश उन्हें दिया। उसी निमित्त उन्होनें जो सम्प्रदाय प्रवर्तित किया वह "पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय" नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। वल्लभाचार्य ने कुल सोलह ग्रथो की रचना की जिनमें (1) ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य, (2) तत्वदीप-निबध (श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तो का प्रतिपादक ग्रथ), (3) सुबोधिनी (श्रीमद्भागवत के 1, 2, 3 और 10 स्कन्धों पर टीका), (4) भागवतसूक्ष्मटीका, (5) पूर्वमीमासाभाष्य और सिद्धान्त-मुक्तावली। इन ग्रन्थों द्वारा वल्लभाचार्य का प्रगाढ पांडित्य व्यक्त हुआ है। वल्लभाचार्य के सुपुत्र विठ्ठलनाथ ने इसी विचार धारा का प्रचार अपने निबधप्रकाश, विद्वन्मण्डन, शृगाररसमडन इन ग्रन्थो के अतिरिक्त अपने पिताजी के ग्रथो पर टीकाए लिख कर किया। कृष्णचंद्र ने अणुभाष्य पर भावप्रकाशिका नामक उत्कृष्ट व्याख्या लिखी। उनके उपनिषद्दीपिका, सुबोधिनी-प्रकाश, आवरण, प्रस्थान-रत्नाकर, सुवर्णसूक्त, अमृततरगिणी (गीता की टीका) षोडशग्रथविवृत्ति आदि पांडित्यपूर्ण ग्रथ पुष्टिमार्गी (अर्थात् शुद्धाद्वैती) सम्प्रदाय में मान्यताप्राप्त हैं। कृष्णचद्र के शिष्य पुरुषोत्तम ने अणुभाष्य पर भाष्यप्रकाशिका नामक टीका लिखी है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त गिरिधराचार्यकृत शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, हरिहराचार्यकृत ब्रह्मवाद और भक्तिरसास्वाद, व्रजनाथकृत मरीचिका, बालकृष्णभट्ट (या लालूभट्ट) कृत प्रमेयरत्नालंकार, विज्ञानभिक्षुकृत विज्ञानामृत, इत्यादि ग्रथ शुद्धाद्वैती वेदान्त की परपरा में सर्वमान्य हैं। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गी वैष्णव सम्प्रदाय मे वेदान्त के शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को मान्यता है।

शुद्धाद्वैत - तत्त्वविचार

वल्लभाचार्य के दार्शनिक विचार में ब्रह्म, माया से अलिप्त अत नितान्त शुद्ध है। इसी कारण इस मत को "शुद्ध-अद्वैत" कहा गया है। ब्रह्म सर्वधर्मविशिष्ट होने से उसमें विरुद्ध धर्मों की स्थिति भी नित्य एव स्वाभाविक है। यह संसार ब्रह्म की लीलाओ का विलासमात्र है, मायाकल्पित नहीं। ब्रह्म के तीन प्रकार (1) परब्रह्म, (2) अक्षरब्रह्म और (3) जगत्। कार्यकारण में अभेद होने से कार्यरूप जगत् और कारणरूप ब्रह्म में भेद नहीं है। जिस प्रकार लपेटा हुआ कपडा फैलाने पर वही रहता है, उसी प्रकार आविर्भाव दशा में जगत् तथा तिरोभावरूप में ब्रह्म एक ही है। जगत् की सृष्टि एव सहार, परब्रह्म की लीलामात्र है। इसमें कर्ता का कोई प्रयास तथा उद्देश्य नहीं है। जगत् की उत्पत्ति और उपसहार के समान अनुग्रह या "पुष्टि" भी परमात्मा की नित्यलीला का एक विलास है। शरणागत भक्तो को साधननिरपेक्ष मुक्तिप्रदान करने के लिए ही भगवान् यथाकाल अवतार ग्रहण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं जिन्होंने अपने अविर्भाव काल में अजामिल, अघासुर, व्रजवधू, बकी, कंस, शिशुपाल आदि अनेकों को मुक्ति दी जो साधननिरपेक्ष थी।

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् एव आनदघन ब्रह्म स्वेच्छा से अपने गुणो को तिरोहित कर, अग्नि से स्फुलिग के समान जीवरूप ग्रहण करता है। यह जीव ज्ञाता, ज्ञानस्वरूप अणुरूप तथा नित्य है। जीव तथा जगत् परब्रह्म के परिणाम स्वरूप हैं, परंतु परिणाम होने से ब्रह्म में किसी प्रकार का विकार नहीं होता।

जिस प्रकार कटक-कुण्डलादि अलकार सुवर्ण से अभिन्न होते हैं उसी प्रकार चिदश जीव, ब्रह्म से अभिन्न है। जीव के प्रमुख तीन प्रकार हैं :- (1) शुद्ध (2) मुक्त और (3) ससारी। ससारी जीव के दो प्रकार :- दैव और आसुर। दैव जीव के दो प्रकार - मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय। मुक्तजीवो में कतिपत जीवन्मुक्त और कतिपय मुक्त होते है। मुक्त अवस्था में आनन्द अश को प्रकटित कर जीव सच्चिदानंद ब्रह्मस्वरूप होता है।

जगत् के विषय में वल्लभाचार्य "अविकृत परिणाम वाद" का स्वीकार करते हैं। ब्रह्म से जगत् का परिणाम होता है, परंत दूध से दही का परिणाम होने पर, जिस प्रकार दूध में विकार उत्पन्न होता है, उस प्रकार ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। सोने से अनेक अलंकार बनने पर मूल सुवर्ण में कोई विकार नहीं होता।

वल्लभमतानुसार अविद्या के पांच पर्व होते हैं - स्वरूपाज्ञान, देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास तथा अन्त करणाध्यास। इसी अविद्या के द्वारा कल्पित ममतारूप पदार्थ को वल्लभाचार्य "ससार" कहते हैं, जो ईश्वरेच्छा के विलास से सदंशत. प्रादुर्भूत जगद्रूप पदार्थ से सर्वथा भिन्न है। संसार का कारण अविद्या है जिसका विलय विद्या (या तत्त्वज्ञान) के कारण होता है। अविद्या का लय होने पर संसार का भी नाश होता है परतु जगत् परब्रह्म का ही आधिभौतिकस्वरूप होने के कारण, उस का विनाश नहीं होता। वह ब्रह्म तथा जीव के समान ही नित्य पदार्थ है।

वल्लभमत के अनुसार परमात्मा के तीन प्रकार होने के कारण, उस की प्राप्ति के भी उपाय (या मार्ग) तीन माने जाते हैं - (1) कर्ममार्ग (आधिभौतिक स्वरूप की प्राप्ति के लिए) (2) ज्ञानमार्ग (आध्यात्मिक = अक्षरब्रह्म की प्राप्ति के लिये) और (३) पुष्टिमार्ग या भक्तिमार्ग, आधिदैविक = परब्रह्म की उपलब्धि के लिये)

"पुष्टि" का अर्थ है भगवान् का अनुग्रह। यह अर्थ "पोषणं तदनुग्रह" इस भागवतवचन से लिया गया है। इस पुष्टि के विविध प्रकार माने गये हैं - (1) महापुष्टि-ऐसा अनुग्रह जिस के कारण संकट निवारण होकर ईश्वरप्राप्ति होती है। (2) असाधारणपुष्टि- (या विशिष्ट पुष्टि) जिस अनुग्रह के कारण ईश्वरभक्ति उदित होकर ईश्वरप्राप्ति होती है। (3) पुष्टिपुष्टि- असाधारण पुष्टि से उत्पन्न भक्ति की अवस्था। इस के चार प्रकार- (1) प्रवाहपुष्टिभक्ति (2) मर्यादापुष्टि भक्ति, (3) पुष्टिपुष्टि भक्ति और (4) शुद्धपुष्टिभक्ति। इन चारो पुष्टिभक्तियों में (1) प्रेम (2) आसक्ति और (3) व्यसन अवस्थाओ की अनुभूति होती है। व्यसन अवस्था पुष्टिभक्ति की सर्वोच्च अवस्था है, जिस से मोक्षपदवी की प्राप्ति होती है जिस के अन्तरग में व्यसन-अवस्था दृढतम होती है, वह भक्त चतुर्विद्या मुक्ति का तिरस्कार करते हुए अखड भगवत्सेवा में रममाण होता है। उसे श्रीकृष्णस्वरूप परब्रह्म से दिव्य क्रीडा करने का परमानंद प्राप्त होता है। शुद्धपुष्टिभक्ति तथा अन्य भक्ति भी परमात्मा के अनुग्रह से ही मनुष्य के अन्त करण मे उदित होती है।

वल्लभमत का पुष्टि सिद्धान्त श्रीमद्भागवत के आध्यात्मिक तत्त्वो पर आधारित है। इस सम्प्रदाय में उपनिषद, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र के साथ श्रीमद्भागवत की गणना होती है जिसे वल्लभाचार्य अत्यत श्रद्धा से "समाधिभाषा व्यासस्य-" कहते हैं।

12 अचिन्त्य-भेदाभेद वादी-चैन्यमत

ई 15-16 वी शतीं में चैतन्य महाप्रभु का अविर्भाव वंगदेश में हुआ। आपके द्वारा कृष्णभक्तिनिष्ठ वैष्णव सम्प्रदाय का उदय उस प्रदेश में हुआ। श्री रूपगोस्वामी, सनातन गोस्वामी, श्री जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, कृष्णदास कविराज, बलदेव विद्याभूषण (या गोविन्ददास), इत्यादि महानीय विद्वान भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु का विचार, अनेक भाष्य एव प्रकरण ग्रन्थो द्वारा प्रतिष्ठापित किया। इस सम्प्रदाय की काव्यादि साहित्यिक रचनाए भी सिद्धान्तनिष्ठ हैं। चैतन्यमतानुयायी वाङ्मय में - श्री रूपगोस्वामी-कृत दानकेलिकौमुदी, ललितमाधव, तथा विदग्धमाधव इन कृष्ण-भक्तिपरक नाटकों के अतिरिक्त, लघुमाधवामृत, उज्ज्वलनीलमणि, भक्तिरसामृतसिन्धु इन ग्रन्थो में भक्तिरस का साहित्यशास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है। श्री रूपगोस्वामी के ज्येष्ठ भ्राता सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृत, वैष्णवतोषिणी (श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध की टीका), तथा भक्तिविलास में चैतन्यमय के सिद्धान्त तथा आचार का वर्णन किया है। सनातन गोस्वामी ने दुर्गसंगमनी (श्री रूपगोस्वामीकृत भक्तिरसामृतसिन्धु की व्याख्या), क्रमसन्दर्भ (भागवत की व्याख्या), भागवतसन्दर्भ (या षट्सदर्भ), ग्रंथ लिखे। भागवतसंदर्भ पर सर्वसंवादिनी नामक टीका है। "अचिन्त्यभेदाभेदवाद" का यह श्रेष्ठ सिद्धान्तग्रथ माना जाता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती (17 वीं शती) ने श्रीमद्भागवत पर सारार्थदर्शिनी नामक टीका के अतिरिक्त, श्रीरूपगोस्वामी के उज्ज्वलनीलमणि पर आनंदचन्द्रिका टीका, तथा कविकर्णपूर के अलकारकौस्तुभ पर टीका लिखी है।

बलदेव विद्याभूषण ने भगवान् के स्वप्न साक्षात्कार मे प्राप्त आदेश के अनुसार ब्रह्मसूत्र पर चैतन्य मतानुसारी भाष्य लिखा। बलदेवजी का दीक्षानाम गोविन्दादास होने के कारण, तथा उनके आराध्य देव श्रीगोविन्दजी के आदेश के अनुसार इस भाष्य की रचना होने के कारण, यह ग्रंथ "गोविन्दभाष्य" कहलाता है। चैतन्यमत को वेदान्तसम्प्रदायो की महनीय श्रेणी में प्रतिष्ठापित करने का श्रेय इसी गोविन्दभाष्य को दिया जाता है। इतिहास दृष्ट्या यह मत माध्वमत से संबद्ध है परंतु सिद्धान्त दृष्ट्या उसके द्वैतवाद से भिन्न है।

चैतन्य मतानुसार भगवान् श्रीकृष्ण ही अनन्तशक्ति सम्पन्न परमतत्त्व हैं। शक्ति और शक्तिमान् में भेद और अभेद दोनों सिद्ध नहीं होते। इनका संबध तर्कद्वारा अचिन्त्य है। इस प्रकार के प्रतिपादन के कारण इस मत को अचिन्त्य भेदाभेदवादी मत कहा जाता है। परमात्मा की शक्ति अनन्त एवं अचिन्त्य होने के कारण, उस परमतत्त्व में एकत्व और पृथक्त्व, अंशित्व और अशत्व, दोनों का सहास्तित्व होना अयुक्त नहीं मानना चाहिए। परमात्मा श्रीकृष्ण एकत्र तथा सर्वत्र सर्वरूप है। उसकी अचिन्त्य शक्ति के कारण वह विभु और व्यापक है। श्री, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, और वैराग्य इन दिव्य षड्गुणों की पूर्णरूप एकता श्रीकृष्ण स्वरूप में हुई है।

चैतन्य सप्रदाय के दार्शनिक मतानुसार ईश्वर स्वतत्र, विभु, चैतन्यघन, सर्वकर्ता, सर्वज्ञ, मुक्तिदाता एव विज्ञानस्वरूप है। वही इस सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण है। अपनी अचिन्त्य शक्ति के कारण ईश्वर जगद्रूप से परिणत होकर भी स्वरूपतः अविकृत रहता है।

जीवतत्त्व :- चिन्मय, अणुप्रमाण, अनादि है परतु वह मायामोहित और ईश्वरपराङ्मुख है। ईश्वर की कृपा से ही वह बधमुक्त हो कर, पृथग्रूप से ब्रह्मानद का अनुभव पाता है।

प्रकृति :- नित्य और परमात्मा की वशवर्तिनी शक्ति है।

काल :- एक परिवर्तनशील जड द्रव्य है जो सृष्टिप्रलय का निमित्त कारण है।

कर्म :- ईश्वर की शक्ति का ही एक रूप है जो अनादि किन्तु नश्वर और जड है।

इस मत के अनुसार श्रीकृष्णस्वरूप परमात्मा ही उपास्य है जिसके अन्यान्य रूप बताये गये हैं -

1) **स्वयंरूप :-** अन्य किसी आश्रयादि की अपेक्षा न रखने वाला रूप। यह रूप अनादि एव कारणो का कारण है।

2) **तदेकात्मरूप :-** स्वयरूप से अभिन्न किन्तु आकृति, अग, सन्निवेश, चरित्र आदि मे भिन्नवत् प्रतीत होता है। भगवान् जब अपने स्वयरूप से अल्पमात्र शक्ति को प्रकाशित करते हैं, तब वह स्वाश रूप कहलाता है। मत्स्यादि लीलावतार स्वाशरूपी है। जिन महापुरुषो में ज्ञान, शक्ति आदि दिव्य कलाओ से परमात्मा आविष्ट सा प्रतीत होता है, वे परमात्मा के "आवेशरूप" कहलाते हैं, जैसे शेष, नारद, सनकादि। परमात्मा अचिन्त्य-शक्ति-सम्पन्न है। उन शक्तियो मे अतरग शक्ति, तटस्थ शक्ति और बहिरंग शक्ति प्रमुख है।

1) **अंतरंग शक्ति** को ही चिच्छक्ति, या स्वरूपशक्ति कहते हैं। यह भगवद्रूपिणी होती है, और अपने सत् अश मे "सन्धिनी", चित् अश मे "सवित्", और आनद अश में "ह्लादिनी-" होती है। सन्धिनी शक्ति से परमात्मा समस्त देश, काल और द्रव्यादि में व्याप्त होते हैं। सवित् शक्ति से वे ज्ञान प्रदान करते है, और ह्लादिनी शक्ति से स्वानन्द प्रदान करते है।

2) **तटस्थ शक्ति :-** जीवो के अविर्भाव का कारण है। इसी को जीव शक्ति कहते है। यह शक्ति परिच्छिन्न स्वभाव एव अणुत्वविशिष्ट होती है।

3) **बहिरंगशक्ति (योगमायाशक्ति) :-** इसी के कारण जगत् का आविर्भाव होता है, और जीवो मे अविद्या रहती है। अविद्या के प्रभाव से वह परमात्मा को भूल जाता है। परमात्मा और जीव का सबध अग्नि-स्फुलिंग सबध के समान है। इस सबध को जानना ही मुक्ति है। यह जगत् परमात्मा की बहिरग शक्ति का विलास होने के कारण सत्य है। वह आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म और नाश इन विकल्पों से युक्त होते हुए भी अक्षय तथा नित्य है। सृष्टि-प्रलय होने पर यह जगत् कारणस्वरूप परमात्मा मे विद्यमान होता है, केवल उसकी अभिव्यक्ति नही होती, जैसी रात मे कोटरस्थित पक्षियो की नही होती।

चैतन्य मतानुसार भक्ति का नितान्त महत्त्व माना गया है। भक्ति "पचम पुरुषार्थ" है जो अन्य चार पुरुषार्थो से श्रेष्ठ है। वह परमात्मा की सविद् और ह्लादिनी शक्ति से युक्त होने के कारण साक्षात् भगवद्रूपिणी है।

ऐश्वर्य और माधुर्य दो परमात्मा के रूप हैं। इनमें ऐश्वर्यरूप की प्रतीति ज्ञान से होती है और नराकृति माधुर्यरूप की प्राप्ति, शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य एव माधुर्य इन पचविध भक्तियो के द्वारा की जाती है। माधुर्य भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। इस के तीन प्रकार माने जाते हैं - (1) साधारणी, (2) समजसा और (3) समर्था। कुब्जा की भक्ति साधारणी, रुक्मिणी, जाबवती आदि भार्याओ की समजसा और व्रजगोपिकाओ की सर्वोत्कृष्ट भक्ति थी समर्था। सर्वोत्कृष्ट भक्त केवल समर्था (माधुर्य) भक्ति की ही अपेक्षा रखता है। दार्शनिको की मुक्ति वह नही चाहता।

चैतन्य सप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु ने स्वमतप्रतिपादन के लिए प्रस्थानत्रयी अथवा श्रीमद्भागवत पर भाष्यादि ग्रथ नही लिखे। वे अपनी समर्था भक्ति मे इतने मग्न, एव भावोन्मत्त थे कि, उत्कृष्ट पाडित्य होते हुए भी, इस प्रकार की अभिनिवेशयुक्त ग्रथरचना करना उनके लिए असभव था। यह कार्य उनके अनुयायी वर्गद्वारा हुआ। बलदेव विद्याभूषण कृत ब्रह्मसूत्र का "गोविन्दभाष्य" चैतन्यमत का सर्वश्रेष्ठ प्रमाणग्रथ माना गया है। बगाली, ओडिया, असामिया और हिंदी की भक्ति प्रधान कविता चैतन्यमतानुसार भक्ति रस से विशेष प्रभावित है।

प्रस्थानत्रयी तथा श्रीमद्भागवत पर आधारित शकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ और चैतन्य आदि प्रमुख आचार्यो ने वेदान्त दर्शन में विविध प्रकार का तात्विक मतप्रतिपादन किया, उसमें जो विभिन्नता प्रकट हुई, उसका संक्षेपत स्वरूप इस प्रकार है -

(अ) प्रमाण-

1) माध्वमत- प्रत्यक्ष, अनुमान और श्रुति।

2) रामानुज- प्रत्यक्ष, अनुमान और श्रुति।

3) वल्लभ- प्रत्यक्ष, अनुमान, श्रुति और श्रीमद्भागवत।

4) शकर- प्रत्यक्ष, अनुमान, श्रुति और अनुभव।

(आ) प्रमेय-

1) मध्व- परमात्मनिर्मित जगत्

2) रामानुज- परमात्मशरीर-भूत (दृश्य और अदृश्य) जगत्।

3) वल्लभ- परमात्मतत्त्व का परिणामभूत जगत्।

4) शकर- मायामय जगत्

(इ) प्रमाता-

1) मध्व- अणुरूप श्रीहरि का सेवक

2) रामानुज- चेतनावान् अणुरूप

3) वल्लभ- ज्ञान एवं भक्ति का आश्रयभूत श्रीकृष्णसेवक।

4) शंकर- अन्त.करणयुक्त चैतन्य।

(ई) अज्ञान-

1) मध्व- परमात्मा की निमिर्ति पर स्वत्व की भावना।

2) रामानुज- विषयों के प्रति ममत्वबुद्धि।

3) वल्लभ- अपने आपको स्वतत्र एव सुखदुःख का भोक्ता मानना।

4) शंकर- अपने आपको देहादिस्वरूप मानना।

(उ) ज्ञान-

1) मध्व- मै श्रीहरि का सेवक हूँ यह प्रतीति।

2) रामानुज- ईश्वर नित्य एव असख्य मंगलगुणयुक्त है यह प्रतीति।

3) वल्लभ- मै श्रीकृष्ण का सेवक हूँ यह प्रतीति।

4) शंकर- "अहं ब्रह्माऽस्मि-" यह प्रतीति।

(ऊ) दुःख-

1) मध्व- नानाविध योनियों में जन्म पाना।

2) रामानुज- नानाविध मानसिक पीड़ाए।

3) वल्लभ- नानाविध योनियो में जन्म पाना।

4) शकर- असत्य को ही सत्य मान कर भोगों का अनुभव।

(ऋ) मोक्ष-

1) मध्व- मरणोत्तर उत्तम लोक की प्राप्ति और दिव्यसुखों की अनुभूति।

2) रामानुज- परमात्मा की कृपा से पुनरपि दु खानुभव न होना।

3) वल्लभ- गोलोक की प्राप्ति और भक्ति सुख में भेद की विस्मृति।

4) शकर- जीव-ब्रह्म का अद्वैत।

वेदान्त दर्शन के इन महनीय आचार्यो के द्वारा विशिष्ट आचारपद्धति तथा विचारप्रणाली को स्थिरपद करने के लिए स्वतंत्र सप्रदायो के समान इन वेदानुकूल भक्तिप्रधान सप्रदायो का महत्त्व है। आज का समस्त हिंदु समाज इन सभी सप्रदायों की आचारपद्धति तथा विचारप्रणाली से प्रभावित है। ऐतिहासिको के मध्ययुग में इसी वैष्णवी विचारधारा का सर्वत्र प्रचार करने वाले स्वनामधन्य सतो की महती परपरा निर्माण हुई। उनके ग्रथ प्रादेशिक भाषीय साहित्य के रत्नालंकार हैं। वैष्णव संतों में दक्षिणभारत (तामिलनाडु) के आलवार सतों का महान योगदान है। आलवार शब्द का अर्थ है परमात्मा की भक्ति में निमग्न सत्पुरुष। आलवारों में पोइगई, भूतचार, पेई, तिरुमलिसे, नम्म, मधुरकवि, कुलशेखर, आंडाल, पेरी तोडरडिप्पोडी, तिरुप्पाण और तिरुमई नामक 12 आलवार सत तामिलनाडु में आविर्भूत हुए। प्रादेशिक परपरा के अनुसार उनका समय ईसा पूर्व 20 से 28 वीं शती तक माना जाता है। आधुनिक इतिहासज्ञ ई 4 थी से 8 वी शती में उनका कार्यकाल मानते है। इनमें आडाल महिला थी और कुछ आलवार तो शूद्रवर्णीय भी थे, परतु सारा समाज उन्हे पूजनीय मानता रहा है। "प्रबन्धम्" नामक तामिल ग्रथ में इन सभी आलवारो के सुविचारपरिप्लुत एव भावविभोर काव्यो का सग्रह हुआ है। तामिलनाडु के वैष्णव संप्रदाय में प्रबन्धम् ग्रथ को भगवद्गीता के समान प्रमाणभूत माना जाता है। आलवारों की वैष्णव विचारप्रणाली में जातिभेद, वर्णभेद इत्यादि माने नही जाते। रामानुजी वैष्णव सप्रदाय के "प्रपत्तिवाद" (ईश्वर के प्रति सपूर्ण शरणागति) का मूल आलवार संतो की विचारधारा में मिलता है। स्वय रामानुजाचार्य सभी आलवारों को गुरु मान कर उन्ही का विष्णुभक्ति प्रचार का कार्य आगे चलाते रहे। दक्षिण के श्रीरगम् आदि प्रमुख देवालयों में आलवारो की मूर्तियों की पूजा होती है। इन आलवार संतो में नम्मआलवार की विशेष ख्याति है। वे बाल्यावस्था में अध हो गए थे। परमात्मा की कृपा से दृष्टि लाभ होने पर उन्होने विष्णुभक्तिपर काव्यो की रचना आरंभ की। उनके शिष्य मधुर कवि ने वे सारी भक्ति रचनाए ताडपत्र पर लिखकर सरक्षित की। नम्मालवार के देहात के बाद पाड्य् राजा की पंडितसभा में वह काव्यसंग्रह मधुकरकवि ने प्रकाशित किया। "तिरुवोयमोली" नाम से यह एक सहस्र कविताओ का सग्रह प्रख्यात है। इस सग्रह में वेदों का रहस्य समाया हुआ माना जाता है और उसे "द्राविड वेद" कहते हैं।

विष्णुस्वामी, निंबार्क, मध्वाचार्य और रामानुजाचार्य के द्वारा सस्थापित सम्प्रदायों के अनुक्रम, रुद्रसंप्रदाय, सनकादि संप्रदाय, ब्रह्मसंप्रदाय और श्रीसम्प्रदाय कहते हैं। महाराष्ट्र मे सत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम और रामदास के द्वारा चार प्रकार के वैष्णव संप्रदाय प्रचलित हुए। श्रीज्ञानेश्वर का प्रकाश सप्रदाय, एकनाथ का आनंद सम्प्रदाय, तुकाराम का चैतन्य संप्रदाय और रामदास का स्वरूप संप्रदाय कहा जाता है। इन चार वैष्णव सप्रदायों को "वारकरी" चतुष्टय कहते हैं। 11 वीं शती में चक्रधर स्वामी द्वारा "महानुभाव" नामक वैष्णव सप्रदाय महाराष्ट्र के विदर्भ प्रदेश में प्रवृत्त हुआ। इस संप्रदाय मे हस, दत्तात्रेय, श्रीकृष्ण, प्रशान्त और पंथ सस्थापक श्रीचक्रधर की उपासना 'पचकृष्ण' नाम से होती है। इस द्वैतवादी सप्रदाय का प्रमाणभूत वाङ्मय 12 वीं शताब्दी की मराठी भाषा में उपलब्ध है। 15 वी शती मे नागेन्द्रमुनि जैसे कार्यकर्ताओ ने महानुभावी वैष्णव मत का प्रचार पंजाब, काश्मीर, अफगानिस्तान जैसे दूरवर्ती प्रदेशो में किया। वहा भी साम्प्रदाय के लोग मराठी को ही अपनी धर्मभाषा मानते हैं। वारकरी सप्रदाय का प्रारभ 12 वीं शताब्दी में सत ज्ञानेश्वर से माना जाता है। ज्ञानेश्वर के ज्येष्ठ भ्राता निवृत्तिनाथ ही उनके गुरुदेव थे। निवृत्तिनाथ को नाथ सप्रदाय के सिद्ध योगी गहनीनाथ द्वारा अनुग्रह प्राप्त हुआ था। निवृत्तिनाथ की ही प्रेरणा से ज्ञानेश्वर ने अपनी 16 वर्ष की आयु में श्रीमद्भागवद्गीता पर भाष्य निर्माण किया जो "ज्ञानेश्वरी" नामक मराठी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना गया है। वारकरी सप्रदाय मे ज्ञानेश्वरी, एकनाथी भागवत (श्रीमद्भागवत के 11 वें स्कन्ध की पद्यात्मक सविस्तर टीका) और सत तुकाराम का "गाथा" नामक भक्तिकाव्यसग्रह, परम प्रमाण माने जाते हैं। समर्थ रामदास का सम्प्रदाय रामोपासक है। उनके दासबोध ग्रथ में ज्ञान, वैराग्य, उपासना और सामर्थ्य (या प्रवृत्ति मार्ग) का प्रतिपादन किया है। समर्थ रामदास ने अपने कार्यकाल में 11 हनुमानजी के मदिर तथा 11 सौ मठो की स्थापना करते हुए, समाज में ऐसी सतर्क सघशक्ति का निर्माण करने का प्रयास किया जो छत्रपति शिवाजी महाराज के स्वराज्य सस्थापना के महान क्रातिकार्य में सहायक हुआ। समर्थ रामदास से शिवाजी महाराज ने अनुग्रह प्राप्त किया था। सत नामदेव, ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। ज्ञानेश्वर ने 22 वर्ष की आयु में समाधि लेने के बाद, नामदेव महाराज ने वारकरी पथ की विचार प्रणाली का प्रचार कीर्तनो द्वारा सर्वत्र किया। इस प्रकार का वैष्णवी भक्ति मार्ग का प्रचार करने वाले महाराष्ट्र के वारकरी सतो में जनाबाई, बहिणाबाई, नरहरि सोनार, सावता माली, गोरा कुभार (कुम्हार), चोखा महार, रोहीदास चांभार (चम्हार), भानुदास, एकनाथ, तुकाराम, निलोबाराय, हैबतराव इत्यादि अनेक सत्पुरुषो के नाम महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। आधुनिक काल (20 वी शती) में विदर्भ के महान् दार्शनिक मत प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबराव महाराज ने इसी वारकरी सप्रदाय पर आधारित "मधुराद्वैत" सप्रदाय की स्थापना की। श्री गुलाबराव महाराज का आध्यात्मिक साहित्य सस्कृत मराठी और हिंदी भाषा में है। उनके ग्रंथो की कुल सख्या 125 से अधिक है। श्री तुकडोजी महाराज (जो "राष्ट्रसत" उपाधि से अपने वैशिष्ट्यपूर्ण कार्य के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हुए) ने अपने गुरुदेव सेवा में मडल द्वारा इसी सतपरापरा का सदेश अपने ओजस्वी एव प्रासादिक हिंदी-मराठी भजनो द्वारा सर्वत्र देते हुए ग्रामोद्धार एव स्वावलबन का विचार महाराष्ट्र की सामान्य जनता में प्रचारित किया। उनका ग्रामगीता नामक 41 अध्यायो का पद्य ग्रथ महाराष्ट्र मे अल्पावधि में अत्यत लोकप्रिय हुआ है। देशकालोचित समाज सुधारक विचारो के कारण यह ग्रामगीता सत साहित्य में अपूर्व है। इस, ग्रामगीता के हिंदी और श्री भा वर्णेकर कृत सस्कृत अनुवाद प्रकाशित हुए है।

वैष्णव संप्रदायो मे 14 वी शताब्दी के सत रामानद का योगदान अत्यत महत्त्वपूर्ण है। रामानद ने प्रारभ में रामानुजीय विशिष्टाद्वैत संप्रदाय की दीक्षा राघवानद से ग्रहण की थी। बाद में उन्होंने अपना स्वतत्र सप्रदाय स्थापन किया। इस अभिनव सप्रदाय में कबीरदास, सेना नाई, धन्ना जाट, रैदास चम्हार, जैसे अन्यान्य जातिपाति के 12 प्रमुख शिष्य रामानद के अनुयायी थे। वैष्णव सप्रदायो में जातीय श्रेष्ठ-कनिष्ठता का विकृत भाव पनपा था। श्रीरामानद ने भगवद्भक्ति करने वाले सभी मानव समान है, वे सहभोजन भी कर सकते है, इत्यादि समानता का विचार दृढमूल किया। भगवद्भक्ति एव सद्धर्म के प्रचार के लिए लौकिक जनवाणी को महत्त्व देने का कार्य भी रामानदजी ने शुरू किया। राधाकृष्ण की उपासना के समान, सीताराम की युगुलोपासना भी रामानद ने प्रसारित की। रामानद के प्रभाव से उत्तर भारत में सत सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, इत्यादि विभूतियों के द्वारा कृष्णभक्ति तथा रामभक्ति का सर्वत्र प्रचार हुआ जिसका प्रभाव आज भी विद्यमान है।

श्रीमद्भागवत के समान वाल्मीकीरामायण का भी योगदान भक्तिमार्गी विचारधारा के सार्वत्रिक प्रचार में सर्वमान्य है। उत्तर भारत में सत तुलसीदासजी के रामचरित मानस के प्रभाव से अन्य प्रादेशिक भाषाओ भी रामचरित्र विषयक हृद्य ग्रंथ श्रेष्ठ कवियो द्वारा लिखे गये जिनमे तामिल भाषीय कबरामायण, तेलगुभाषीय रगनाथ रामायण और भास्कर रामायण, कन्नड भाषीय पम्परामायण, बगलाभाषीय कृत्तिवासा कृत रामायण, मलयालम् भाषीय एज्युतच्चनकृत अध्यात्मरामायण असमिया में माधवकन्दली कृत रामायण, उडिया भाषीय सरलादास कृत विलकारामायण और बलरामदासकृत रामायण, मराठी में एकनाथ कृत भावार्थ रामायण, जैसे श्रेष्ठ ग्रथो के कारण रामोपासनापरक वैष्णव सप्रदाय का प्रचुर मात्रा में प्रचार हुआ। इन रामायणों के रचयिता वैष्णव सतों में पूज्य माने जाते हैं।

गुजरात में वैष्णव विचार धारा का प्रचार रामानुज तथा वल्लभाचार्य के संप्रदाय के द्वारा शुरु हुआ। मीराबाई के कृष्णभक्तिमय गीतों की संख्या 250 से अधिक नहीं है। तथापि उन गीतों ने राजस्थान और गुजरात में कृष्णभक्ति का प्रचार अत्यधिक मात्रा में किया। 15 वीं शती में संत नरसी मेहता का उदय गुजरात में हुआ। नरसी मेहता की कविता में कृष्णभक्ति का परमोच्च स्वरूप तथा उच्च कोटि के तात्त्विक विचार व्यक्त हुए, जिनका प्रभाव गुजरात में विशेष पडा और उनके पश्चात् मालन, वस्तों, प्रेमानंद, सामलभट, दयाराम आदि भक्तिमार्गी कवियों द्वारा वैष्णव मत का भरपूर पोषण हुआ। इन सभी वैष्णव कवियों के कवित्व का प्रभाव गुजराती साहित्य में दिखाई देता है। इसी प्रकार कर्नाटक में मध्वसंप्रदाय की वैष्णवी विचारधारा का प्रसार महान् संत कवि एवं कर्नाटकी संगीत के पितामह "भक्त पुरंदरदास" (ई 15-16 वीं शती) के भक्तिकाव्यों द्वारा हुआ। पुरंदरदास का काव्यसंग्रह, उन के गुरु व्यासरायतीर्थ ने "पुरंदरोपनिषद्" नाम से सम्मानित किया है।

प्रकरण - 9
जैन-बौद्ध वाङ्मय
1 जैन वाङ्मय

भारत के प्राचीन धर्ममतो में जैन (अर्थात् जिनद्वारा प्रस्थापित) धर्ममत, महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बॅरिस्टर जैनी, रावजी नेमिचद शाह जैसे आधुनिक जैन विद्वानो ने वेद तथा श्रीमतद्भागवत मे उल्लेखित ऋषभ एव जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का एकत्व प्रतिपादन कर, जैन धर्ममत को वेद के समकालीन माना है। अन्य मतानुसार महावीर पूर्व (तेईसवे) तीर्थंकर पार्श्वदेव को जैन धर्ममत का प्रतिष्ठापक माना गया है। अतिम (24 वे) तीर्थंकर भगवान महावीर का उदय निश्चित ही भगवान बुद्ध से पहले हुआ था। प्राचीन जैन धर्म को व्यवस्थित स्वरूप देने का श्रेय उन्ही को दिया जाता है। वास्तव मे वे जैन धर्म के सस्थापक नहीं थे। महावीर पूर्वकालीन जैन धर्म का स्वरूप निश्चित क्या था, यह अन्वेषण का विषय है। कुछ ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर इस धर्म का प्रचार प्राचीन काल मे सपूर्ण भारत मे और भारतबाह्य देशो मे भी हुआ था, यह तथ्य सिद्ध हुआ है। भगवान महावीर के पश्चात् उनके शिष्य सुधर्मा ने महावीर का कार्य व्यवस्थित सम्हाला। विद्यमान जैन धर्म के प्रतिष्ठापको या संरक्षकों में सुधर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

प्राचीन काल में इस धर्ममत का विशेष प्रसार मगध (अर्थात् बिहार) प्रदेश में था। ई पू 310 में (चद्रगुप्त मौर्य के काल में) मगध देश में घोर अकाल पड़ने के कारण, अनेक जैन धर्मी लोगों ने भद्रबाहु के नेतृत्व में देशत्याग किया। जो लोग मगध में ही रहे उनके नेता थे स्थूलभद्र, जिन्होंने स्व-साम्प्रदायिकों का एक सम्मलन आयोजित कर, अपने लुप्तप्राय धर्मग्रथो का सुव्यवस्थित संकलन तथा सस्करण करने का महान प्रयास किया। अकाल के समाप्त होने पर वापस लौटे हुए भद्रबाहु तथा उनके अनुयायी विद्वानों ने स्थूलभद्र के उस महान् शोधकार्य को मान्यता नहीं दी। परिणाम यह हुआ की धर्ममत में दो सप्रदाय निर्माण हुए- (1) भद्रबाहु का दिगबर और (2) स्थूलभद्र का श्वेताम्बर। ये दोनो सप्रदाय आज भी भारत भर सर्वत्र विद्यमान हैं। आगे चल कर श्वेताबर सप्रदाय मे स्थानकवासी (या ढुढिया) नामक उपपथ स्थापित हुआ। इस उपपथ ने दीक्षाप्राप्त यति जनो के अतिरिक्त अन्य सभी जैन स्त्री-पुरुषो को धर्मग्रन्थो का स्वाध्याय करने का स्वातत्र्य प्रदान किया। इन तीन पथो के अतिरिक्त, पीताबरी, मदिरपथी, साधुपथी, सारावोगी, रूपनामी समातनधर्मी इत्यादि विविध उपपथ जैन समाज मे विद्यमान है।

ई दसवी शती मे जैन समाज में हुए उद्योतन नामक महान् भट्टारक के शिष्यो द्वारा 84 "गच्छ" (अर्थात् गुरुपरपराए) जैन समाज में प्रचलित हुईं। गुच्छ के प्रमुख आचार्य को "सूरि" और शिष्य को "गणि" कहते है। तपागच्छ, चद्रगच्छ, नागेन्द्रगच्छ, खरतरगच्छ, चैत्रगच्छ, वृद्धगच्छ, राजगच्छ, सरस्वतीगच्छ, धर्मघोषगच्छ, विमलगच्छ, हर्षपुरीय, इत्यादि गच्छनाम प्रसिद्ध हैं। सभी जैन सप्रदाय, जिन 24 तीर्थंकरो को पूज्य मानते हैं, उनकी नामावलि - ऋषभ, अजित, सभव, अभिनदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चद्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयान्, वासुपूज्य, विमल, अनत, धर्म, शाति, कुथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान (महावीर) इस क्रम से प्रसिद्ध है। इन नामो का निर्देश "देव" या "नाथ" शब्दसहित होता है। इन में "मल्लि" यह नाम स्त्रीवाचक या पुरूषवाचक है, इस विषय में मतभेद है। जैन परपरा के अनुसार "तीर्थंकर" अनेक माने गये हैं, किन्तु उनके उपदेश में अनेकता नहीं मानी गई। तत्तत् काल मे जो भी अतिम तीर्थंकर हो गए उन्ही का उपदेश और शासन, जैन समाज में आचार तथा विचार के लिये मान्य रहा है। इस दृष्टि से भगवान् महावीर अतिम तीर्थंकर होने से, उन्हीं का उपदेश आज अतिम उपदेश है, और वही सर्वत्र प्रमाणभूत माना जाता है।

सर्वप्रथम भगवान महावीर ने जो उपदेश दिया उसका सकलन द्वादश अगो मे हुआ। उन का यह उपदेश भगवान पार्श्वनाथ के उपदेश के सामन ही था। उस उपदेश के आशय को शब्दबद्ध करने का कार्य गणधर के द्वारा हुआ। इन द्वादशागो के नाम हैं - 1) आचारग, 2) सूत्रकृताग, 3) स्थानाग, 4) समवायाग, 5) व्याख्याप्रज्ञप्ति, 6) ज्ञाताधर्मकथा, 7) उपासकदशा, 8) अतकृतदशा, 9) अनुत्तरौपपातिकदशा, 10) प्रश्नव्याकरण, 11) विपाकसूत्र और 12) दृष्टिवाद। इस अतिम अग दृष्टिवाद के प्रामाण्य के विषय मे श्वेताबर-दिगबरो मे मतभेद है। इन अगो के प्रथम सकलन का कार्य स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र (पटना) में किया। अत इस संकलन को "पाटलिपुत्र-वाचना" कहते हैं। भगवान् महावीर के पश्चात् 609 वें वर्ष में आर्य स्कदिल की अध्यक्षता में सकलन का द्वितीय कार्य मथुरा में हुआ। इसे "माथुरी-वाचना" कहते है। तीसरा सकलन कार्य ई पाचवी शती

में काठियावाड के वलभी नगरी में हुआ, जिसके प्रमुख थे आचार्य देवर्धिगणि। इसे "वलभी-वाचना" कहते हैं। जैनागमों के संकलन का कार्य इस अंतिम "वलभीवाचना" में संपूर्ण हुआ। श्वेतांम्बरसम्प्रदाय में वल्भीवाचना के आगम को ही प्रमाण माना जाता है। दिगंबर संप्रदायी, कालप्रभाव के कारण मूल आगमों को लुप्त या नष्ट मानते हैं। श्वेतांबर उन्हें नष्ट नहीं मानते।

द्वादशागों के अतिरिक्त अन्य जैनागमों को "अंगबाह्य" कहते हैं। ऐसे अंगबाह्य आगम पांच वर्गों में विभक्त हैः- 1) उपांग, 2) मूलसूत्र, 3) छेदसूत्र, 4) चूलिकासूत्र, और 5) प्रकीर्णक।

अंगबाह्य आगम

अग-आगमों की रचना भगवान महावीर के गणधरों (अर्थात प्रधान शिष्यों) ने की है, जब कि उपयुक्त अंगबाह्य आगमों का निर्माण भिन्न भिन्न समय में अन्य स्थविरो द्वारा हुआ है। दिगम्बर (या अचेलक) परपरा में, आगमों को 1) अंगप्रविष्ट (अर्थात् आचारागादि बारह अग) और 2) अगबाह्य, नामक दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है। उनके अगबाह्य आगमों में, निम्नोक्त चौदह ग्रथों का समावेश होता है - सामायिक, चतुर्विंशातिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्पिक, महाकल्पिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निशीथिका।

अचेलकों को की मान्यता है कि अंगप्रविष्ट और अगबाह्य नामो से निर्दिष्ट दोनों प्रकार के आगम विच्छिन्न हो गये हैं। सचेलक (श्वेतांबर) केवल बारहवें अंग (दृष्टिवाद) का ही विच्छेद मानते हैं। श्वेतांबरीय अगबाह्य आगमो के प्रथम वर्ग "उपांग" में निम्न लिखित बारह ग्रंथ समाविष्ट हैंः- औपपातिक, राजप्रश्नीय जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिक, (या कल्पिका), कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा। इनमें प्रज्ञापना के संबंध मे जो जानकारी प्राप्त है, तदनुसार उस उपाग की रचना श्यामार्य (अपरनाम-कालकाचार्य) द्वारा ईसापूर्व द्वितीय-तृतीय शताब्दी के बीच मानी जाती है।

मूलसूत्र

अगबाह्य दूसरा आगम है मूलसूत्र। इन मे, 1) उत्तराध्ययन (ई पू 2-3 शती), 2) आवश्यक, 3) दशवैकालिक (ई पू चौथी शती में, आचार्य शयमभवकृत) और 4) पिण्डनिर्युक्ति (अथवा ओघनिर्युक्ति- जिस की रचना आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) ने ई पू छठी शती में की) इन चार ग्रथों का अन्तर्भाव होता है।

छेदसूत्र

अगबाह्य तीसरा आगम है "छेदसूत्र" जिसमे, 1) दशाश्रुतस्कन्द, 2) बृहकल्प और व्यवहार, इन तीनो की रचना आर्य भद्रबाहु द्वारा ई पू.चतुर्थ शती में हुई 4) निशीथ - (यह वस्तुत "आचाराग" की पंचम चूलिका ही है) इसके प्रणेता आर्यभद्रबाहु अथवा विशाखगणि महत्तर हैं। 5) महानिशीथ- इसका सकलन आचार्य हरिभद्र द्वारा हुआ है और 6) जीतकल्प जिसके लेखक हैं आचार्य जिनभद्र, समय ई. 8 वीं शती, इन ग्रथो का अन्तर्भाव होता है। पचकल्पनामक छेदसूत्र अनुपलब्ध है। कुछ विद्वान जीतकल्प और पचकल्प में अभेद मानते है।

चूलिकासूत्र में 1) नदीसूत्र (देवर्धिगणि अथवा देववाचक कृत) और 2) अनुयोगद्वार सूत्र (आर्य रक्षित कृत) का अन्तर्भाव होता है।

प्रकीर्णक

प्रकीर्णको में निम्नलिखित ग्रथ विशेषरूप से मान्य हैं - चतु शरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्तपरीक्षा, तन्दुलवैचारिक, सस्तारक, गच्छाचार, गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव और मरणसमाधि। इनमें से चतु शरण तथा भक्तपरीक्षा के रचयिता हैं वीरभद्रगणि (ई 12 वीं शती)। अन्य प्रकीर्णको के रचयिता के नाम आदि के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार सपूर्ण जैनागमों की संख्या 11 अंग, 12 उपाग, 6 छेदसूत्र, 4 मूलसूत्र, 10 प्रकीर्णक और 2 चूलिकासूत्र मिलाकर- 45 होती है। इन आगमो में जैन धर्म विषयक उपदेश, विधि, निषेध, तत्त्वज्ञान इत्यादि का सर्वंकष ज्ञान प्रतिपादित किया है। इन 45 आगमो सहित उन पर लिखे गये निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका ग्रंथों को मिलाकर समग्र आगम ग्रंथों को "पंचागी आगम" कहा जाता है।

इन धर्मग्रंथों की भाषा "आर्ष" अथवा "अर्धमागधी" नामक प्राकृत है। भगवान् महावीर का उपदेश इसी भाषा में माना जाता है। इन ग्रथो के गद्य और पद्य भागों की भाषा में अतर दिखाई देता है। अत्यत प्राचीन अर्धमागधी का स्वरूप आचारांग सूत्र (आयारंगसुत्त) सूत्रकृताग (सूयगदाग) और उत्तराध्ययन सूत्र, (उत्तरज्झयणसुत्त) इन तीन आगम ग्रंथों में दिखाई देता है। धर्मग्रथों के अतिरिक्त अन्य जैन वाङ्मय की भाषा भी अर्धमागधी अथवा "जैन महाराष्ट्री" ही है, किन्तु उस का स्वरूप धर्मग्रंथों की भाषा से सर्वथा भिन्न है। जिनदास गणिकृत चूर्णी नामक लघु टीका ग्रथों की भाषा संस्कृत-प्राकृत मिश्रित है। अभयदेव, मलयगिरि, और शीलांक जैसे विद्वानों ने आगमो पर टीकाएँ लिखने के लिए संस्कृत भाषा का अवलंब किया है।

जैन दर्शन का प्रारभ ई प्रथम शती से माना जाता है। कर्नाटक के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य कुंदकुद (जैन प्रस्थात्रयी या नाटकत्रयी के निर्माता) के शिष्योत्तम उमास्वामी ने जैनमत के तात्त्विक विचारों का व्यवस्थित प्रतिपादन अपने "तत्त्वार्थसूत्री' नामक

प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ में ग्रथित किया। बाद में समंतभद्र, सिद्धसेन, (इन दोनों ने जैन दर्शन के "स्याद्वाद" की स्थापना की), अकलंकदेव, सिद्धसेन दिवाकर, विद्यानद, वादिराजसूरि, हरिभद्रसूरि, हेमचद्र, मल्लिषेण, गुणरत्न, यशोविजय, ज्ञानचंद्र इत्यादि स्वनामधन्य जैनाचार्यों ने, संस्कृत भाषा में अपने दर्शन के अंगोपागों का प्रतिपादन किया। इसके अतिरिक्त महाकाव्य, खंडकाव्य, चम्पू, स्तोत्र, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्यशास्त्र, योगविद्या इत्यादि विषयों पर प्रतिभाशाली जैन विद्वानों ने पर्याप्तमात्रा में संस्कृत ग्रन्थों की रचना की है। जैनाचार्यों का न्याय, व्याकरण ज्योतिष, विषयक सस्कृत वाङ्मय सर्वत्र प्रमाणभूत माना जाता है। वाङ्मय निर्मिति में संस्कृतभाषा का उपयोग, प्रथम दिगबर और बाद में श्वेताम्बर जैनाचार्यों ने किया, जिससे उस काल में संस्कृत भाषा के सार्वत्रिक महत्त्व का प्रमाण उपलब्ध होता है।

आज सर्वत्र सुशिक्षित समाज में अंग्रेजी भाषा का जो महत्त्व है, वही उस युग में सस्कृत भाषा को था यह तथ्य जैन तथा बौद्ध आचार्यों की सस्कृत वाङ्मयनिर्मिति से सिद्ध होता है। आधुनिक काल में सर्वत्र हिंदी भाषा में जैन वाङ्मय का प्रसार हो रहा है। हिंदी आज दिगंबर सप्रदाय की "धर्मभाषा" सी हुई है

व्याख्याग्रंथ

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्रमाणभूत तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के गूढार्थ का उद्घाटन करने के लिए उन पर विवरणात्मक लेखन करने की परंपरा थी। दुर्बोध ग्रंथों का रहस्य समझने में इस प्रकार के ग्रथों की आवश्यकता जिज्ञासु को प्रतीत होती है। जैन धर्म विषयक आगमों" का विवरण करने वाले अनेक व्याख्या, ग्रथ, यथावसर निर्माण हुए। ये आगमिक व्याख्याग्रंथ पांच प्रकारों में विभक्त किये जाते है 1) निर्युक्तियाँ, 2) भाष्य, 3) चूर्णियाँ, 4) सस्कृत टीकाएं और लोक भाषा में विरचित टीकाएं।

निर्युक्ति : निर्युक्तियाँ और भाष्य जैनागमों की पद्यबद्ध टीकाए होती हैं। इन दोनों प्रकार के विवरणात्मक ग्रंथों की भाषा प्राकृत है। निर्युक्तियों में मूल ग्रंथ के प्रत्येक पद का व्याख्यान न किया जाकर विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का ही व्याख्यान किया गया है। उपलब्ध निर्युक्तियों में आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) कृत दस निर्युक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियों में "निक्षेपपद्धति' से शब्दार्थ का व्याख्यान होता है। किसी भी वाक्य में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शब्दों के संभावित विविध अर्थों का निरूपण करने के बाद, उनमें से अप्रस्तुत अनेक अर्थों का निषेध करके, प्रस्तुत एकमात्र अर्थ की स्थापना करना, इस शैली को 'निक्षेपपद्धति' कहते हैं। इस प्रकार से निर्धारित अर्थ का मूल वाक्य के शब्दों के साथ संबंध स्थापित करना, यही 'निर्युक्ति' का प्रयोजन होता है।

भाष्य : निर्युक्तियों की भाँति "भाष्य" भी पद्यबद्ध प्राकृत भाषा में लिखे गये हैं। कुछ भाष्य केवल मूलसूत्रों पर और कुछ भाष्य सूत्रों की निर्युक्तियों पर भी लिखे गये हैं। भाष्यकारों में जिनभद्रगणि और सघदास गणि ये दो आचार्य विशेष प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने व्याख्येय आगम ग्रंथों के शब्दों में छिपे हुए विविध अर्थ अभिव्यक्त करने का कार्य किया। इन प्राचीन भाष्य ग्रंथों में तत्कालीन भारत की सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, एव धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाली भरपूर सामग्री का दर्शन होता है। जैनों के आगमिक वाङ्मय में इस विशाल भाष्य वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

चूर्णि : जैन आगमों की, संस्कृत मिश्रित प्राकृत व्याख्या "चूर्णि" कहलाती है। इस प्रकार की कुछ चूर्णियाँ आगमेतर वाङ्मय पर भी लिखी गई हैं। चूर्णिकारों में जिनदासगणि, सिद्धसेनसूरि (प्रसिद्ध सिद्धसेन दिवाकर से भिन्न), प्रलंबसूरि और अगस्त्यसिंह इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं।

निर्युक्तियों, भाष्यों और चूर्णियों की रचना के बाद जैन आचार्यों ने संस्कृत में टीकाओं का लेखन प्रारंभ किया। प्रत्येक आगम पर कम से कम एक सस्कृत टीका लिखी ही गई। सस्कृत टीकाकारों में हरिभद्र सूरि, शीलांकसूरि, वादिवेताल, शान्तिसूरि, अभयदेव सूरि, मलयगिरि, मलधारी हेमचद्र, आदि विद्वानों के नाम ससमरणीय हैं। इन टीकाकारों ने प्राचीन भाष्य आदि के विषयों का विस्तृत विवेचन किया तथा नये नये हेतुओं द्वारा उन्हें पुष्ट किया। अपनी टीकाओं के लिए आचार्यों ने, टीका, वृत्ति, विवृत्ति, विवरण, विवेचन, व्याख्या, वार्तिक, दीपिका, अवचूरि, अवचूर्णि, पंजिका, टिप्पन, टिप्पनक, पर्याय, स्तबक, पीठिका अक्षरार्थ इत्यादि विविध नामों का प्रयोग किया है। जिनरत्नकोश जैसे ग्रथ में 75 से अधिक विद्वानों की नामावलि मिलती है, जिन्होंने आगमों पर सस्कृत टीकाए लिखी हैं।

जैनवाङ्मयान्तर्गत संस्कृत टीका ग्रंथों की संख्या काफी बड़ी है। उनमें से कुछ विशेष उल्लेखनीय टीकाकारों एवं टीकाओं की सूची :—

टीकाकार	टीकाग्रंथ
1) हरिभद्र	1) नन्दीवृत्ति, 2) अनुयोगद्वार टीका, 3) दशवैकालिकवृत्ति (नामान्तर शिष्यबोधिनी या बृहद्वृत्ति) 4) प्रज्ञापनाप्रदेश व्याख्या, 5) आवश्यकवृत्ति इत्यादि। कहा जाता है कि आचार्य हरिभद्र ने अपने गुरु के आदेशानुसार 1444 ग्रंथों की रचना की थी। जैन साहित्य का बृहद्

इतिहास (भाग-3 ले. डॉ. मोहनलाल मेहता) में पृ. 362 पर हरिभद्र के 73 टीकाग्रन्थों की सूची दी है।

2) कोट्याचार्य	विशेषावश्यकभाष्य विवरण।
3) गन्धहस्ति (सिद्धसेन)	1) शस्त्रपरिज्ञाविवरण 2) तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति
4) शीलांक (तत्वादित्य)	1) आचारग विवरण 2) सूत्रकृतांगविवरण।
5) शांतिसूरि (वादिवेताल)	उत्तराध्ययनटीका।
6) द्रोणसूरि	ओघनिर्युक्तिवृत्ति।
7) अभयदेव	1) स्थानागवृत्ति, 2) समवायागवृत्ति, 3) व्याख्याप्रज्ञाप्तिवृत्ति, 4) ज्ञानाधर्म कथा विवरण, 5) उपासक दशांगवृत्ति, 6) अन्तकृद्दशावृत्ति 7) प्रश्नव्याकरणवृत्ति और 8) विपाकवृत्ति।
8) मलयगिरि	इनके उपलब्ध ग्रथों की सख्या 20 एव अनुपलब्धों की 6 मानी जाती है जिनमें 1) नंदीवृत्ति, 2) प्रज्ञापनावृत्ति, 3) सूर्यप्रज्ञाप्ति विवरण 4) ज्योतिष्करणकवृत्ति 5) जीवाभिगमविवरण, 6) राजप्रश्नीयविवरण, 7) पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति, 8) बृहत्कल्पपीठिकावृत्ति, इत्यादि टीकाग्रंथ उल्लेखनीय हैं।
9) मलधारी हेमचद्र	1) आवश्यकवृत्ति प्रदेशव्याख्या, 2) विशेषावश्यकभाष्य-बृहद्वृत्ति।
10) नेमिचद्र	उत्तराध्ययनवृत्ति।
11) श्रीचंद्रसूरि	1) निशीथचूर्णिदुर्ग पदव्याख्या, 2) निरयावालिकावृत्ति, 3) जीतकल्पचूर्णि-विषमपदव्याख्या।
12) क्षेमकीर्ति	बृहत्कल्पवृत्ति (मलयगिरिकृत अपूर्ण वृत्ति को इसमें पूर्ण किया है)।
13) माणिक्यशेखर	आवश्यक निर्युक्ति दीपिका
14) अजितदेवसूरि	आचारागदीपिका।
15) विजयाविमलगणि	गच्छाचारवृत्ति।
16) वानर्षि	गच्छाचारटीका।
17) विजयविमल	तन्दुलवैचारिकवृत्ति।
18) भावविजयगणि	उत्तराध्ययन व्याख्या।
19) समयसुदरसूरि	दशवैकालिक दीपिका।
20) ज्ञानविमलसूरि	प्रश्नव्याकरण सुखबोधिकावृत्ति।
21) लक्ष्मीवल्लभगणि	उत्तराध्ययन दीपिका।
22) दानशेखरसूरि	भगवती विशेषपदव्याख्या।
23) विनयविजय उपाध्याय	कल्पसूत्रबोधिका।
24) समयसुन्दरगणि	कल्पसूत्रकल्पकता।
25) शान्तिसागरगणि	कल्पसूत्र-कल्पकौमुदी।
26) पृथ्वीचद्र	कल्पसूत्र टिप्पणक।
27) विजयराजेद्रसूरि	कल्पसूत्रार्थबोधिनी।

आगम ग्रथोंपर लिखी हुई सस्कृत टीकाओं की सख्या यहाँ निर्दिष्ट टीकाओं से बहुत अधिक है। सारी टीकाओं का निर्देश प्रस्तुत सक्षिप्त प्रकरण में देना असभव है। इन संस्कृत टीकाओ के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में हस्तिमल, उपाध्याय आत्माराम, उपाध्याय अमरमुनि, आदि विद्वानो ने, तथा गुजराती में मुनिधर्मसिंह, पार्श्वचद्रगणि आदि विद्वानों ने व्याख्या ग्रंथ लिखे हैं।

2 जैन दर्शनिक वाङ्मय

जैन धर्म का दार्शनिक वाङ्मय विपुल है। इस दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण विषय है कर्मवाद, जिस के पाच सिद्धान्त माने जाते हैं।

1) प्रत्येक कर्म का कोई फल अवश्य होता ही है।

2) कर्म करने वाले प्राणी को उसका फल भोगना ही पड़ता है। इस जन्म में भोग न हुआ तो उसके लिए पुर्नजन्म लेना पड़ता है।

3) कर्मफल के इस भोगबन्धन से मुक्त होना जीव के ही अधीन है। मुक्तिदाता अन्य कोई नहीं होता।

4) ससार में व्यक्ति व्यक्ति के सुख-दु.ख में जो वैषम्य दिखाई देता है, उसका मूल कारण कर्म ही है। पुण्य कर्म का फल सुख और पाप का फल दु.ख होता है।

5) कर्मबन्ध तथा कर्मभोग का अधिष्ठाता प्राणी स्वयं है। इसके अतिरिक्त जितने भी हेतु दीखते हैं, वे सब सहकारी अथवा निमित्तभूत हैं।

जैन सिद्धान्तानुसार यह विश्व षड् द्रव्यों से निर्मित है, जो अनादि अनन्त और स्वयमेव विद्यमान हैं। उनमें से एक द्रव्य अजीव है। "जीव" के विपरीत यह द्रव्य अस्थिर और अनन्त परिवर्तनशील है। प्राणी के शरीर में "जीव" तत्त्व के साथ "अजीव" तत्त्व घनिष्ठ संबंध से रहता है। उसके अनुसार सर्व प्रकार की क्रिया होने के कारण, प्राणी प्रतिक्षण "अजीव" तत्त्व के सूक्ष्म परमाणुओं को आकर्षित करता रहता है। कर्म स्वयमेव क्रियाशील है, उसे कार्य करने के लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। भारतीय दार्शनिकों में चार्वाकों के अतिरिक्त सभी दार्शनिकों ने "कर्मवाद" को अपनाया है। इस सिद्धान्त का प्रभाव सपूर्ण भारतीय साहित्य, कला, धर्ममत इत्यादि पर स्पष्ट दिखाई देता है।

जैन दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित कर्मवाद में कर्म की आठ मूलप्रकृतियाँ मानी गई हैं -

1) ज्ञानावरण, 2) दर्शनावरण, 3) वेदनीय, 4) मोहनीय, 5) आयु, 6) नाम गोत्र और 7) अन्तराय। इन मूल कर्मप्रकृतियों के अवान्तर भेद कुल मिलाकर 158 माने गये हैं। कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य सबध है। पुनर्जन्म न मानने पर विचार मे तर्कदृष्ट्या 1) कृतप्रणाश (अर्थात् कृत कर्म का अहेतुक विनाश) और 2) अकृताभ्यागम (अर्थात् अकृत कर्म का भोग) दोष उत्पन्न होते हैं। इन दोषो से मुक्त होने के लिए सभी कर्मवादियों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता दी है। जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगबर संप्रदायों में इस कर्मवाद का प्रतिपादन विविध ग्रन्थों में हुआ है। दिगम्बर सप्रदाय में जिस "कर्मप्राभृत" एव "कषायप्राभृत" को आगमरूप मान्यता प्राप्त है, उनमें कर्मविषय के प्रतिपादन को विशेष प्राधान्य है। "कर्मप्राभृत" अथवा "महाकर्मप्रकृति-प्राभृत" इस सज्ञा का कारण, यही माना जाता है। इसमें छ खण्ड होने के कारण इसे "षट्खण्डागम" अथवा "षट्खण्ड सिद्धान्त" कहते हैं। दिगम्बरो के इस "आगम" का उद्गमस्थान पूर्वोक्त "दृष्टिवाद" नामक जैनागम का बारहवा 'अग" (जो अब लुप्त है) माना गया है। इसके रचियता थे धरसेन आचार्य के शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलि।

कर्मप्रामृत (षट्खडागम) पर कुन्दकुन्दाचार्य (अपरनाम पद्मनन्दिमुनि) श्यामकुण्ड, तुम्बुलूर बप्पदेव जैसे महान् आचार्यों की प्राकृत टीकाओं के अतिरिक्त, समन्तभद्र कृत सस्कृत टीका (48 हजार श्लोक) एव वीरसेन (ई 8 वी शती) और जयसेन (जितसेन) कृत धवला तथा "जयधवला" नामक प्राकृत-संस्कृत मिश्रित टीकाए प्रसिद्ध हैं। कर्मवाद पर दिगम्बरीय साहित्य में अमितगतिकृत तथा श्रीपालसुत डड्ढकृत "पचसग्रह" नामक सस्कृत ग्रथ उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त नेमिचद्रकृत गोम्मटसार (ई 11 वीं शती) पर अभयचद्र की नेमिचद्रकृत लब्धिसार पर केशववर्णी की सस्कृत टीकाएँ उल्लेखनीय हैं। शिवशर्मसूरिकृत कर्मप्रकृति (475 गाथाए) कर्मसिद्धान्त विषयक एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। इस पर मलयगिरिकृत वृत्ति (8 हजार श्लोक) और यशोविजयकृत टीका (13 हजार श्लोक तथा चद्रर्षिमहत्तर कृत पंचसंग्रह पर स्वय लेखक की (9 हजार श्लोक) और मलयगिरि की (18 हजार श्लोक) टीका इत्यादि भी उल्लेखनीय हैं।

जैनागमों और उनकी व्याख्याओं के अतिरिक्त उनके साराशरूप आगमिक प्रकरणों की रचना प्राकृत पद्यों में हुई। प्राचीन काल के विशाल आगम वाङ्मय में प्रतिपादित अनेक गहन विषयों को सुबोध एव सक्षिप्त करने का प्रयत्न कुन्दकुन्दाचार्य, शान्तिसूरि, अभयदेवसूरि, रत्नशेखरसूरि, हरिभद्रसूरि, श्रीचद्रसूरि, नेमिचद्रसूरि, अमृतचद्रसूरि, मुनिचद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, देवसूरि आदि अनेक विद्वानों ने अपने प्राकृत ग्रन्थों द्वारा किया है। इन प्राकृत प्रकरणग्रन्थों में से बहुसख्य ग्रन्थों पर सस्कृत टीकाए जैन विद्वानो द्वारा लिखी गई है।

प्रकरण ग्रथों का दूसरा प्रकार आचारधर्मविषयक है। इस प्रकार के प्रकरणो मे उपदेशमाला, उपदेशप्रकरण, उपदेशरसायन, उपदेशचितामणि, उपदेशकन्दली, हितोपदेशमाला, शीलोपदेशमाला, उपदेशरत्नाकर, उपदेशसप्ततिका, धर्मकरण्डक, आत्मानुशासन इत्यादि ग्रथ उल्लेखनीय है।

3 जैन-योगदर्शन

जैन धर्म के सभी परमपूज्य तीर्थंकर योगसिद्ध महापुरुष थे, अत जैन साधको में योगमार्ग के प्रति विशेष आस्था सदैव रही और अनेक जैन विद्वानो ने योगविषयक ग्रथो की रचना भी की है। यशोविजयगणि ने पातजल योगदर्शन के 27 सूत्रों पर व्याख्या लिखी, जिस में साख्यदर्शन और जैन दर्शन मे भेद तथा साम्य का सम्यक् परिचय देने का प्रयास किया है। योग विषयक महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथ -

1) योगबिन्दु . ले हरिभद्र सूरि। श्लोक-527। इस ग्रथ पर सद्योगचिन्तामणि नामक महत्त्वपूर्ण वृत्ति (श्लोक-3720) हरिभद्रसूरि की रचना मानी जाती है। इसके अतिरिक्त हरिभद्रसूरि ने जोगसयग (योगशतक) और जोगविहाण वीसिया (योग विधान विंशिका) नामक अपने दो प्राकृत ग्रथो पर, सस्कृत मे विस्तृत वृत्ति लिखी है। यशोविजयगणि ने भी जोगविहाणवीसिया पर सस्कृत मे विवरण लिखा है।

2) योगदृष्टिसमुच्चय:- ले हरिभद्र। श्लोक-२२६। इस पर स्वयं ग्रंथकार कृत 1175 श्लोक परिमाण (59 वृत्ति और साधुराजगणि कृत 450 श्लोक परिमाण (अप्रकाशित) टीका है। भानुविजयगणि की योगदृष्टिसमुच्चय पीठिका प्रकाशित है।

3) ब्रह्मसिद्धिसमुच्चय:- ले हरिभद्र सूरि। श्लोकसंख्या 423 से अधिक।

4) परमात्मप्रकाश:- ले-पद्मनन्दी। श्लोक-1300।

5) योगसार:- मूल प्राकृत नाम है जोगसार। ले योगीन्दु। इस पर इन्द्रनन्दी तथा एक अज्ञात लेखक की टीकाए सस्कृत मे हैं।

6) योगशास्त्र (अथवा अध्यात्मोपनिषद्) : ले हेमचन्द्र सूरि (उपाधि-कलिकालसर्वज्ञ)। 12 प्रकाशो मे पूर्ण। श्लोक संख्या-1019। इस पर इन्द्रनन्दी कृत (ई 13 वी शती) योगिरमा, अमरप्रभसूसिरकृत वृत्ति, और इन्द्रसौभाग्यगणि कृत वार्तिक है।

7) योगप्रदीप (नामान्तर-योगार्णव, ज्ञानार्णव:- ले शुभचद्र। समय- ई 13 वीं शती। सर्गसंख्या-12। श्लोक-2077। इस पर श्रृतसागरकृत तत्त्वत्रयप्रकाशिनी तथा अन्य दो टीकाए हैं।

8) योगप्रदीप:- ले अज्ञात। श्लोक-143।

9) ध्यानविचार:- गद्यात्मक रचना। ले-अज्ञात। इसमे ध्यान के प्रमुख 24 प्रकार और अनेक अनेकविध उप प्रकारो का निरूपण किया है।

10) ध्यानदीपिका:- ले सकलचद्र। ई 16 वी शती।

११) ध्यानमाला:- ले नेमिदास।

12) ध्यानसार:- ले यशकीर्ति।

13) ध्यानस्तव:- ले भास्कर नन्दी।

14) ध्यानस्वरूप:- ले भावविजय। ई १८ वी शती।

15) द्वादशानुप्रेक्षा:- 1) सोमदेव, 2) कल्याणकीर्ति, 3) अज्ञातकर्तृक।

16) साम्यशतक·- ले विजयदेवसूरि। श्लोक-107।

17) योगतरंगिणी:- ले अज्ञात। इसपर जिनदत्त सूरि की टीका है।

18) योगदीपिका:- ले आशाधर।

19) योगभेद-द्वात्रिंशिका:- ले परमानन्द।

20) योगमार्ग:- ले सोमदेव।

21) योगरत्नाकर:- ले जयकीर्ति।

22) योगविवरण.- ले यादव सूरि

23) योगसंग्रहसार:- ले जिनचद्र।

24) योगसंग्रहसार-प्रक्रिया:- अथवा अध्यात्मपद्धति। ले नन्दीगुरु।

25) योगसार:- ले गुरुदास

26) योगांग:- ले शान्तरस। श्लोक- 4500।

27) योगाभृत:- ले वीरसेन देव।

28) अध्यात्मकल्पद्रुम:- ले "सहस्रावधानी" मुनिसुदर सूरि। 16 अधिकारो में विभक्त। इस पर धनविजयगणिकृत अधिरोहिणी, रत्नसूरिकृत अध्यात्मकल्पलता एव उपाध्याय विद्यासागर कृत टीकाएं मिलती हैं।

29) अध्यात्मरास·- ले रगविलास।

30) अध्यात्मसार:- ले यशोविजयगणि। सात प्रबन्धों में विभाजित। श्लोक-1300।

31) अध्यात्मोपनिषद्:- ले यशोविजयगणि। चार विभागों में विभाजित। श्लोक-203।

32) अध्यात्मबिन्दु:- ले उपाध्याय हर्षवर्धन।

33) अध्यात्मकमलमार्तण्ड:- ले राजमल्ल। श्लोक-200।

34) अध्यात्मतरंगिणी:- ले सोमदेव। प्रस्तुत ग्रंथावलि में प्राय संस्कृत भाषीय ग्रंथो का प्रधानता से निर्देश किया गया है। इनके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में भी योग विषयक अनेक ग्रथ जैन विचारधारा के अनुसार लिखे गये हैं।

आध्यात्मिक साधकों के जीवन में योगसाधना के समान ही नित्य और नैमित्तिक आचार, व्रत इत्यादि बातों का महत्त्व

होता है। जैन धर्म में इस प्रकार के नैष्ठिक एव शुचिशील जीवन को अत्यत महत्व होने के कारण, इस विषय का विवरण करने वाले अनेक ग्रंथ निर्माण हुए जिन में प्राकृत ग्रथों की संख्या अधिक है। उनमें से कुछ ग्रथो पर संस्कृत टीकाएँ लिखी गई। संस्कृत ग्रथों में उमास्वाती कृत प्रशमरति (श्लोक-313), श्रावकप्रज्ञप्ति, समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डक श्रावकाचार (श्लोक-150), अमितगतिकृत उपासकाचार, माघनन्दी कृत श्रावकाचार, जिनेश्वरकृत श्रावकधर्म विधि, रत्नशेखर सूरि कृत आचारप्रदीप (श्लोक-4065), इत्यादि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

तंत्रमार्ग के प्रभाव से भारत का एक भी धर्म सप्रदाय अछूता नहीं रह सका। तांत्रिक वाङ्मय विषयक प्रकरण में इस सबध में विस्तारपूर्वक जानकारी दी है। जैन वाङ्मय में सकलचन्द्रगणि कृत प्रतिष्ठाकल्प, वसुनन्दकृत प्रतिष्ठासारसग्रह (700 श्लोक), आशाधर कृत जिनयज्ञकल्प, जिनप्रभसूरि कृत सूरिमन्त्रबृहत्कल्पविवरण, सिहतिलक सूरिकृत वर्धमानविद्याकल्प और मंत्राराजरहस्य, मल्लिषेणकृत विद्यानुशासन, सुकुमारसेनकृत विद्यानुवाद, मल्लिषेणकृत भैरवपद्मावतीकल्प, वालिनीकल्प, सरस्वती-मत्रकल्प, कामचाडालिनीकल्प, चन्द्रकृत अद्‌भुतकदम्बावती कल्प, जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प इत्यादि मत्र तत्र विषयक ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ ग्रथो में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है तथा उन पर लिखी हुई टीकाए मुख्यत संस्कृत भाषा में हैं।

4 "जैन-काव्य"

जैन वाङ्मय का वर्गीकरण आगमिक, अन्वागमिक और आगमेतर नामक तीन भागो में किया जाता है। आगमिक वाङ्मय में आचारात्र आदि 45 आगमों तथा उनपर लिखे निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकाओ का अन्तर्भाव होता है। अन्वागमिक वाङ्मय में कसायपाहुड, षट्‌खण्डागम तथा कुन्दकुन्दाचार्य आदि विद्वानो के महनीय ग्रथ, तथा अन्य दार्शनिक ग्रथो का अन्तर्भाव होता है। आगमेतर वाङ्मय में "धर्मकथानुयोग" के अन्तर्गत पूज्य अर्हन्त तथा कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि महापुरुषो की जीवनियो मे सबंधित काव्यात्मक साहित्य का अन्तर्भाव होता है। यह आगमेतर साहित्य आगमिक साहित्य से सर्वथा स्वतत्र नहीं है। उसने प्राचीन आगमो से ही बीजसूत्रों को लिया है और बाहरी उपादानों तथा नवीन शैलियों द्वारा उन्हें पल्लवित कर, एक स्वतत्र रूप धारण किया है।

ई चौथी पाचवी शताब्दी से जैन काव्यों की रचना का प्रारभ माना जाता है। इन काव्यो मे पौराणिक, ऐतिहासिक और शास्त्रीय महाकाव्यो, खण्डकाव्यो, गद्यकाव्यों, नाटक, चम्पू, कथा आदि विविध ललित काव्यप्रकारो का अन्तर्भाव होता है। प्राचीन जैन वाङ्मय प्रधानतया प्राकृत तथा सस्कृत भाषा मे लिखा गया है। प्रस्तुत प्रकरण में केवल सस्कृत वाङ्मय का सक्षिप्त परिचय देते हुए यथावसर श्रेष्ठ प्राकृत ग्रथो का भी निर्देश किया है।

"धर्मकथानुयोग" के अन्तर्गत काव्यात्मक रचनाकारों का प्रधान उद्देश्य यही था, को उन द्वारा जैन धर्म के आचार और विचार आदि को रमणीय एव रोचक शैली मे प्रस्तुत कर, सामान्य जनता मे धार्मिक चेतना एव भक्तिभावना उद्दीपित हो। इस धार्मिक भावना को प्रकट करने मे उन्होंने जैनधर्म के जटिल सिद्धान्तो और मुनिधर्म सबधी नियामो को उतना अधिक महत्त्व नही दिया, जितना कि ज्ञातदर्शन-चरित्र के सामान्य विवेचन के साथ, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दान, शील, तप, स्वाध्याय आदि आचरणीय धर्मो को प्रतिपादित किया है। सामान्य गृहस्थाश्रमी जैन बाधवो के लिए व्रत, पर्व, तीर्थादि-माहात्म्य, तथा विशिष्ट पुरुषो का चरित्रवर्णन करते हुए कथात्मक ग्रथरचना की ओर भी उन्होंने विशेष ध्यान दिया। ये सभी काव्यग्रन्थ मुख्यत धार्मिक या धर्मपरक हैं। इन मे से कई काव्यो में ब्राह्मण, बौद्ध, चार्वाक आदि दर्शनो के सिद्धान्तो का खण्डन और जैन दर्शन मण्डन है। ये काव्य रस की दृष्टि से अधिकाश शान्तरस प्रधान है। इन में शृगार, वीर, रौद्र, आदि अन्य रस गौण होते हैं। अनेक जैन पौराणिक महाकाव्यो की कथावस्तु जैन परपरा मे प्रसिद्ध शलाका-पुरुषो के जीवन चरितो को लेकर निबद्ध की गई है। इन शलाकापुरुषो की सख्या जिनसेन और हेमचद्र ने 63 दी है। समवायागम में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण और 9 बलदेव को ही "उत्तम पुरुष" मान कर कुलसख्या 54 दी है। पर उनमे 9 प्रतिनारायणो को जोड कर 63 संख्या बनती है। भद्रेश्वर ने अपनी कथावलि में 9 नारदो की सख्या जोडकर शलाकापुरुषो की सख्या 72 दी है। शलाकापुरुष शब्द का अर्थ, शलाका अर्थात सम्यक्त्व से युक्त महापुरुष। हेमचद्राचार्य का त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित एक महान सस्कृत आकर ग्रंथ है। उसमें अनेक पौराणिक महाकाव्यो के बीज हैं।

उल्लेखनीय पौराणिक काव्यों की सूचि .-

महापुराण- (आदि पुराण और उत्तरपुराण सहित पर्वसख्या-76) आदिपुराण के लेखक-जिनसेन और **गुणभद्र। उत्तर पुराण के** लेखक गुणभद्र और लोकसेन।

पुराणसारसंग्रह :- ले दामनन्दी। इस में आदिनाथ, चद्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और **महावीर इन तीर्थंकरों के चरित्र संकलित हैं।**

त्रिषष्टिशलाकापुराण (अपरनाम-महापुराण):- ले आशाधर। अध्याय-24। श्लोक-480।

आदिपुराण (अपरनाम-ऋषभनाथचरित) और उत्तरपुराण- ले भट्टारक सकलकीर्ति।

कर्णामृतपुराणः- ले. केशवसेन और प्रभाचद्र।

पार्श्वनाथ काव्य और रायमल्लाभ्युदय :- ले. उपाध्याय पद्मसुंदर (ये अकबर के दरबार में सभासद थे)

चतुर्विंशति-जिनेन्द्र संक्षिप्त-चरितानिः- ले अमरचंद्रसूरि (अध्याय -24। श्लोक-1802।

महापुरुषचरित : ले. मेरुतुग। इसमें ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थंकारों के चरित्र हैं।

लघुत्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित : ले मेघविजय उपाध्याय। हेमचन्द्राचार्य कृत ग्रंथ का यह संक्षेप है। पर्व 10। श्लोक 5000।

लघुमहापुराण (अपरनाम - लघुत्रिषष्टिलक्षण-महापुराण : ले चद्रमुनि।

त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र : ले. विमलसूरि। 2) ले वज्रसेन।

इन पुराणात्मक संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत में तीर्थंकरों के जीवनचरित सबधी स्वतत्र महाकाव्य भी लिखे गये हैं। उनमें निम्ननिर्दिष्ट काव्य उल्लेखनीय हैं।

परमानन्द महाकाव्य (अपरनाम जिनेन्द्रचरित) : ले अमरचन्द्रसुरि। इसकी रचना वीसलदेव (ई 13 वीं शती) के मत्री पद्म के अनुरोध पर की गई, अत इसका नाम "पद्मानन्द" रखा गया। इसमें ऋषभ, भरत और बाहुबलि के चरित्र वर्णित हैं।

आदिनाथ चरित : ले विनयचन्द्र। अन्य एक विनयचन्द्र द्वारा लिखित मल्लिनाथचरित, मुनिसुव्रतनाथचरित तथा पार्श्वचरित उपलब्ध हैं।

आदिनाथ पुराण (अपरनाम ऋषभनाथ चरित्र) : ले सकलकीर्ति।

अजितनाथपुराण : ले अरुणमणि। यह मौलिक रचना न होकर आदिपुराण, हरिवशपुराण आदि ग्रन्थों में उद्धृत अशों का सकलन है।

संभवनाथचरित्र : ले मेरूतुगसूरि। (मेरुतुग नामके तीन सूरि माने जाते हैं।)

पद्मप्रभचरित्र : ले. सिद्धसेन सूरि।

चन्द्रप्रभचरित : ले वीरनन्दी (ई 11 वीं शती) 2) ले असग कवि। 3) ले देवेन्द्र। श्लोक 5325)। 4) ले. सर्वानन्द सूरि। सर्ग 13। श्लोक 7141) ई 14 वीं शती। 5) ले भट्टारक शुभचन्द्र, सर्ग 12) 6) ले पंडिताचार्य। 7) ले शिवाभिराम। 8) ले. दामोदर।

श्रेयांसनाथचरित : ले मानतुगसूरि। सर्ग 13। 2) ले भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति।

वासुपूज्यचरित : ले वर्धमानसूरि। ई 14 वीं शती। सर्ग 4। श्लोक 5494।

विमलनाथचरित (गद्यकाव्य) : ले ज्ञानसागर। ई. 17 वीं शती।

विमलपुराण : ले कृष्णदास। सर्ग 10। श्लोक 2364।

अनन्तनाथपुराण : ले वासवसेन।

धर्मनाथचरित : ले. नेमिचन्द्र।

धर्मशर्माभ्युदय : ले हरिचन्द्र।

शान्तिनाथपुराण : ले असग कवि। सर्ग 16। श्लोक 2500।

लघुशान्तिपुराण : ले. असंग कवि। सर्ग 12।

शान्तिनाथचरित : ले. माणिक्यचन्द्र सूरि। सर्ग 8 श्लोक, 5574। इन्होंने गम्मटकृत काव्यप्रकाश पर सकेत नामक टीका लिखी है।

शान्तिनाथ महाकाव्य : ले मुनिभद्रसूरि।

शान्तिनाथचरित : ले अजितप्रभसूरि। सर्ग 6। श्लोक 4855। 3) ले भावचन्द्रसूरि। 4) मुनिभद्रसूरि सर्ग 19। 5) ले ज्ञानसागर। 6) ले. उदयसागर। 7) वत्सराज 8) ले हर्षभूषणगणि। 9) ले कनकप्रभ। 10) रत्नशेखरसूरि। 11) ले शान्तिकीर्ति, 12) ले. गुणसेन। 13) ले. ब्रह्मदेव। 14) ले ब्रह्मजय सागर और 15) ले श्रीभूषण।

शान्तिनाथराज्याभिषेक : ले. धर्मचन्द्रगणि।

शान्तिनाथविवाह : ले आनन्दप्रमोद।

शान्तिनाथचरित : ले मेघविजय गणि। इसमें लेखक ने, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित के पादों की पूर्ति करते हुए शान्तिनाथ का चरित्र प्रस्तुत किया है।

मल्लिनाथचरित : ले. विनयचन्द्रसूरि। सर्ग 8 श्लोक 4355। इस काव्य में श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार मल्लिनाथ को स्त्री माना है। 2) ले. भट्टारक सकलकीर्ति (सर्ग 7, श्लोक 874) 3) शुभवर्धनगणि, 4) विजयसूरि। 5) भट्टारक प्रभाचंद्र।

मुनिसुव्रतचरित : ले. मुनिरत्न सूरि। सर्ग 23। श्लोक 6806) 2) ले पद्मप्रभसूरि। श्लोक 5555। 3) ले **विनयचंद्रसूरि।** सर्ग 8, श्लोक 4552। 4) ले अर्हद्दास। 5) ले कृष्णदास (सर्ग 23) 6) ले केशवसेन। 7) ले भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति। 8) **ले हरिषेण।**

नेमिनाथचरित:- ले सूराचार्य। यह काव्य द्विसन्धानात्मक है, जिसका एक अर्थ प्रथम तीर्थंकर ऋषभ परक और दूसरा 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ परक होता है।

नेमिनिर्वाणकाव्य - ले वाग्भट (12 वीं शती) सर्ग-15।

नेमिचरित्रमहाकाव्य:- ले रामन। ई 14 वीं शती।

नेमिनाथचरित्र:- ले दामोदर। ई 14 वीं शती। 2) ले उदयप्रभ।

नेमिचरितकाव्य:- ले विक्रम। इसमें मेघदूत के पादों की समस्यापूर्ति कवि ने की है।

नेमिनाथ-महाकाव्य:- ले कीर्तिराज उपाध्याय। सर्ग-12। श्लोक-703।

नेमिनाथचरित (गद्यकाव्य):- ले गुणविजय गणि। ग्रंथ 13 विभागो में विभाजित है।

नेमिनिर्वाणकाव्य:- ले ब्रह्मनेमिदत्त। ई 17 वीं शती। सर्ग-16।

पार्श्वाभ्युदय:- ले जिनसेन (प्रथम)। ई 9 वीं शती। मेघदूत की पंक्तियों की समस्यापूर्ति करते हुए पार्श्वनाथ का चरित्र इसमें वर्णित है।

पार्श्वनाथ-चरित (अपरनाम-पार्श्वनाथ जिनेश्वर चरित):- ले वादिराज सूरि। ई 11 वी शती। सर्ग-12। 2) ले माणिक्यचद्रसूरि। सर्ग-10। श्लोक-6770। 3) ले विनयचद्रसूरि। ई 14 वीं शती। श्लोक-4985। 4) ले सर्वानन्दसूरि। श्लोक-8000। 5) ले भावदेव सूरि। ई 16 वीं शती। सर्ग-8। श्लोक-6074। 6) ले सकलकीर्ति। ई 15 वीं शती। सर्ग-23। 7) ले पद्मसुंदर। ई 15 वीं शती। सर्ग-7। 8) ले. हेमविजय। 9) ले वादिचद्र। ई 17 वीं शती। 10) ले वीरगणि (गद्यग्रथ)।

महावीर चरित:- (अपरनाम-वर्धमानचरित या सन्मतिचरित):- ले असग कवि। ई 11 वी शती।

वर्धमानचरित:- (अपरनाम महावीरपुराण या वर्धमानपुराण) - ले सकलकीर्ति।

अममस्वामिचरित:- ले मुनिरत्नसूरि। ई 13 वीं शती। सर्ग-20। श्लोक-10 हजार। इसमे भावी तीर्थंकर अममस्वामी का चरित्र वर्णन किया है। जैन धर्म में जिन 24 तीर्थंकरो को मान्यता प्राप्त है, उनके जीवनचरित्र इस प्रकार विविध पौराणिक काव्यों में लिखे गये। इन महापुरुषों के चरित्रो पर आधारित महाकाव्य, भारवि, माघ बाण, भट्टि आदि के महाकाव्यो के अनुकरणपर रचे गये हैं, जिनका अन्तर्भाव रीतिबद्ध श्रेणी में या शास्त्रकाव्य तथा बह्वर्थक महाकाव्यो मे होता है। इनमे कवियो ने अन्य महाकवियो के समान अल्प कथावस्तु का चित्रण करते हुए अपना पाण्डित्य एव प्रतिभावैभव प्रकट करने की चेष्टा की है। इनमे से कुछ महत्त्वपूर्ण काव्यो का उल्लेख पौराणिक महाकाव्यो की उपरिलिखित नामावलि में हुआ है। विशेषत उल्लेखनीय हैं कुछ अनेकार्थक या "सधान-काव्य" जिनकी रचना (सस्कृतभाषीय शब्दो की अनेकार्थकता के कारण) सस्कृत मे ही हो सकती है। इस प्रकार के जटिल काव्यो की रचना ई 5 वीं 6 ठी सदी से होने लगी। जैन सधानकाव्यो मे सबसे प्राचीन और उत्तम माना हुआ "द्विसंधान" काव्य धनजय ने (ई 8 वीं शती) में लिखा, जिसका नाम है राघव-पाण्डवीय। इसमे रामायण और महाभारत की कथा 18 सर्गो मे एक साथ बडी कुशलता से ग्रथित की है। इस विचित्र परपरा मे श्रुतकीर्ति त्रैविद्य का राघवपाण्डवीय, माधव भट्ट का राघवपाण्डवीय, सन्ध्याकरनन्दी का रामचरित, हरिदत्त सूरि का राघवनैषधीय चिदम्बरकविकृत राघवपाण्डवयादवीय आदि सधानकाव्यो का अन्तर्भाव होता है।

जैन वाङ्मय की दृष्टि से इस प्रकार के काव्यो में अत्यत महत्त्वपूर्ण काव्य है मेघविजयगणिकृत "सप्तसंधानकाव्य", जिस के प्रत्येक श्लेषमय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाच तीर्थंकरो एव राम तथा कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित्र व्यक्त होते हैं। इस काव्य में 9 सर्ग हैं। सोमप्रभाचार्य ने "शतार्थिक" काव्य के रूप मे एक ही पद्य की रचना की और उसपर अपनी टीका लिखकर 106-अर्थ निकाले है जिनमे 24 तीर्थंकरो के साथ ब्रह्म, विष्णु, महेश तथा कुछ ऐतिहासिक नृपतियो के भी चरित्र व्यक्त होते हैं। 10 वी शताब्दी से त्रिविक्रमभट्ट कृत नलचम्पू के प्रभाव से सस्कृत में गद्य-पद्यात्मक काव्य रचना होने लगी, जिसे साहित्यशास्त्रियो ने "चम्पू" नाम दिया। जैन सस्कृत वाङ्मय की परम्परा में सोमदेव सूरिकृत यशस्तिलकचम्पू (जिसमे जैन पुराणो में वर्णित यशोधर नृपति की कथा, आठ आश्वासों में वर्णित है, हरिचन्द्रकृत जीवन्धर-चम्पू और अर्हद्दासकृत पुरुदेवचम्पू ये तीन ग्रथ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

दूतकाव्य

विश्व साहित्य में सस्कृत साहित्य के दूतकाव्य अपूर्व माने जाते हैं। कालिदास ने अपने मेघदूत द्वारा इस काव्य प्रकार को प्रवर्तित किया। पाश्चात्य साहित्य पर भी इस का प्रभाव पडा। प्राचीन जैन कवियो ने इस पद्धति के अनुसार कुछ दूतकाव्यों

की रचना की, जिनमें जिनसेन (ई.8 वीं शती) का पार्श्वाभ्युदय, विक्रम का नेमिदूत (ई 13 वीं शती), मेरुतुग का जैनमेघदूत (ई 14-15 वीं शती), चरित्रसुंदरगणि का शीलदूत (ई 15 वीं शती), वादिचंद्र का पवनदूत (ई.17 वीं शती), विनयविजयगणिका इन्दुदूत (ई.18 वीं शती), मेघविजय का मेघदूत-समस्यालेख (ई.18 वीं शती), विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत और अज्ञातकर्तृक चेतोदूत इत्यादि दूतकाव्य उल्लेखनीय हैं। इन दूतकाव्यों में विप्रलभ के अलावा शान्तरस को प्रधान स्थान दिया गया है। साहित्यिक सरसता से अपने धर्म-सिद्धान्तों एव धर्मनियमों को इन दूतकाव्यों द्वारा प्रचारित करने का प्रयास हुआ है।

जयदेवकृत राग-ताल निबद्ध गीतगोविंदम् के प्रभाव से अभिनव चारुकीर्ति पंडितचार्य (श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) मठ के भट्टारक ई 14-15 वीं शती) ने गीतवीतराग प्रबन्ध की रचना की, जिसमें 25 प्रबधों में तीर्थंकर ऋषभदेव के पूर्वजन्मों की कथा वर्णन करते हुए स्तुति की है। संस्कृत वाड्मय मे प्रभुरामचद्र की कथा पर आधारित विविध प्रकार के साहित्य की सख्या बहुत बड़ी है। उपरिनिर्दिष्ट तीर्थंकर-विषयक साहित्य के साथ ही जैन साहित्यिको ने रामकथा पर आधारित पौराणिक काव्यो की रचना की। ई-7 वीं शती में रचित विमलसूरि का "पऊमचरिय" नामक प्राकृत काव्य रामकथा विषयक जैन काव्यो का उपजीव्य ग्रथ है। जैनपुराण साहित्य में यह सब से प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। इसमें वर्णित रामकथा का स्वरूप वाल्मीकीय रामकथा से अनेक प्रकारों से भिन्न है। वाल्मीकीय और जैनीय रामायण के सारे प्रमुख पात्र नामत एक ही हैं, परतु उनके व्यक्तित्व का चित्रण सर्वथा निराला है। यहाँ के उपाख्यान भी स्वतत्र हैं। विमलसूरि ने रामकथा का निरुपण जैन धर्म के अनुकूल करते हुये, जैन धर्म का यथोचित प्रतिपादन किया है। सस्कृत में रचित रामचरित्रों में रविषेण कृत पद्मचरित या पद्मपुराण, देवविनय कृत गद्यात्मक जैनरामायण तथा जिनदास (ई 16 वीं शती) सोमसेन, धर्मकीर्ति, चन्द्रकीर्ति भट्टारक, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, इन लेखकों के पद्मपुराण (या रामपुराण) नामक ग्रथ एव शुभवर्धनगणि कृत पद्ममहाकाव्य, पद्मनाभकृत रामचरित्र, प्रभाचद्र (या श्रीचद्र) कृत पद्मपुराणपंजिका, इत्यादि ग्रथ विशेष उल्लेखनीय हैं। सीताचरित्रपरक ग्रन्थो मे शान्तिसूरि, ब्रह्मनेमिदत्त और अमरदास के काव्य उल्लेखनीय हैं।

महाभारत की कथा पर आधारित जिनसेन (ई 8 वीं शती) कृत हरिवशपुराण काव्यगुणो से परिपूर्ण एक विश्वकोशात्मक कथाग्रथ है। इसमें 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र केन्द्रबिन्दु है, जिसका विस्तार, वसुदेव, कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, साब, जरासघ, कौरव, पाण्डव इत्यादि पुरुषो का, जैन मान्यतानुसार चरित्रवर्णन करते हुए, किया गया है। इस ग्रथ का स्वरूप "जैन-महाभारत" संज्ञा के योग्य है। ग्रन्थ की प्रत्येक पुष्पिका मे "अरिष्टनेमिपुराणसग्रह" नाम से इस पुराण का निर्देश हुआ है।

पाण्डवचरित नामक 18 सर्गों के महाकाव्य में देवप्रभसूरि (ई 14 वीं शती) ने जैन परपरा के अनुसार, षष्ठागोपनिषद तथा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर आधारित पाण्डवचरित्र का वर्णन किया है। साथ में तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र भी निवेदित हुआ है। इसी प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति के हरिवश पुराण में कौरव-पाण्डव और श्रीकृष्ण के चरित्रो के साथ 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र वर्णन किया गया है। इस काव्य में कुल सर्गसख्या है 40 परतु उनमें से प्रथम 14 सर्गों की रचना सकलकीर्ति की है, और शेष सर्गों की रचना, उन के शिष्य ब्रह्मजिनदास ने की है। सकलकीर्ति द्वारा रचित 28 सस्कृत ग्रथो मे से कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रथो का निर्देश प्रस्तुत प्रकरण मे यथास्थान हुआ है। भट्टारक शुभचन्द्र का पाण्डवचरित, "जैनमहाभारत" नाम से विदित है। इसमे 25 पर्व हैं और प्रत्येक पर्व का प्रारम्भ तीर्थंकर की स्तुति से होता है। प्रथम पर्व में ऋषभादि 24 तीर्थंकरों की स्तुति है।

पाण्डव चरित्र विषयक अन्य ग्रंथ:-

पाण्डवपुराण (सर्ग-18)- ले भट्टारक वादिचन्द्र।

पाण्डवपुराण- ले श्रीभूषण। ई 18 वीं शती।

पाण्डवचरित्र (सर्ग-18):- ले देवविजयगणि। ई 18 वीं शती।

पाण्डवचरित्र (हरिवंशपुराण) .- ले शुभवर्धनगणि।

पाण्डवपुराण:- ले रामचद्र।

हरिवंशपुराण:- ले श्रीभूषण। ई 18 वीं शती। 2) ले श्रुतकीर्ति, 3) ले जयसागर, 4) ले जयानन्द। ५) ले मंगरस।

इस प्रकार रामायण और महाभारत की लोकप्रियता के कारण जैन साहित्यको ने उन सरस कथाओ पर आधारित काव्यों की रचना पर्याप्त मात्रा में की है, परतु उन कथाओं में जैन परंपरा तथा जैन विचारधारा का अश मिला कर पृथगात्मता निर्माण करने का प्रयास किया है।

5) जैन स्तोत्रकाव्य

संस्कृत साहित्य में स्तोत्रात्मक काव्यों की परम्परा वेदों से ही प्रारंभ होती है। वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि, उषा, पृथ्वी,

इत्यादि देवताओं के स्तोत्र सुप्रसिद्ध हैं। समस्त पुराण वाङ्मय में शताबधि स्तोत्र सर्वत्र बिखरे हुए हैं। उनके अतिरिक्त मातृचेट का अध्यर्धशतक, शैववाङ्मय में पुष्पदन्त का शिवमहिम्न स्तोत्र, बाणभट्ट का चण्डीशतक मुरारि का सूर्यशतक, और शंकरादि आचार्यों के भावपूर्ण स्तोत्र संस्कृत साहित्य में अविस्मरणीय हैं। जैन धर्म मे ज्ञान, दर्शन और चरित्र पर विशेष आग्रह है। उपास्य तीर्थंकर एवं पंच परमेष्ठियों (अर्थात् अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव साधु) के स्तोत्र गान से जीव को इस "त्रिरत्न" का बोध होता है यह सिद्धान्त माना गया है। अत सस्कृतभाषा मे जैन मतानुकूल भक्तिपूर्ण स्तोत्र बहुमुखी धारा में प्रवाहित हुए। इन में कुछ तार्किक शैली में, कुछ आलकारिक शैली में, कुछ समस्यापूर्ति के रूप में रचित है। जैन समाज में सबसे प्रिय दो स्तोत्र माने गये है - 1) मानतुगाचार्य (ई 7 वीं शती) कृत भक्तामरस्तोत्र और 2) कुमुदचद्रकृत कल्याणमंदिरस्तोत्र। प्रथम स्तोत्र में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की 44 (या 48) पद्यो में एव द्वितीय मे पार्श्वनाथ की 44 पद्यो में स्तुति की गई है। हेमचन्द्राचार्य कृत वीतरागस्तोत्र और महादेवस्तोत्र में,

"भवबीजाकुरजनना रागाद्या क्षयमुपगता यस्य। ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।"

"त वन्दे साधुवद्य सकलगुणनिधि ध्वस्तदोषद्विषन्त। बुद्ध वा वर्धमान शतदलनिलय केशव वा शिव वा।।"

इत्यादि वचनो द्वारा सर्वमतों की एकात्मता की उदार भावना उत्कृष्ट रीति से अभिव्यक्त हुई है।

जैन स्तोत्र वाङ्मय में 24 तीर्थंकरो के गुणवर्णनपर स्तोत्र प्रमुख है। इन मे सबसे अधिक सख्या है पार्श्वनाथ से सबधित स्तोत्रों की। इस के बाद ऋषभदेव और महावीर पर लिखे स्तोत्रो की सख्या आती है। शेष तीर्थकरो मे सबधित स्तोत्र और भी कम है।

"कुछ उल्लेखनीय जैन स्तोत्रकार और स्तोत्र"

1) समन्तभद्र- अ) स्वयंभूस्तोत्र आ) देवागमस्तोत्र। इ) युक्त्यनुशासन, ई) जिनशतकालकार।
2) आचार्य सिद्धसेन- द्वात्रिंशिका स्तोत्र।
3) आचार्य हेमचद्र- 1) अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका। 2) *अन्ययोगद्वात्रिंशिका*।
4) प्रज्ञाचक्षु श्रीपाल- सर्वनियतिस्तुति।
5) रामचन्द्रसूरि- द्वात्रिंशिकास्तोत्र।
6) जयतिलकसूरि- चतुर्हारावलिचित्रस्तव।
7) विवेकसागर- वीतरागस्तव (श्लिष्टस्तोत्र)। इसके 30 अर्थ श्लेषद्वारा निकाले जात हैं।
8) नयचद्रसूरि- स्तभपार्श्वस्तव। 18 अर्थों का (श्लिष्टस्तोत्र)।
9) समयसुन्दर- ऋषभभक्तामरस्तोत्र।
10) लक्ष्मीविमल- शान्तिभक्तामर।।
11) रत्नसिहसूरि- नेमिभक्तामर।।
12) धर्मवर्धनगणि- वीरभक्तामर।
13) धर्मसिहसूरि- सरस्वतीभक्तामर।।

इनके अतिरिक्त जिनभक्तामर, आत्मभक्तामर, श्रीवल्लभभक्तामर एव कालीभक्तामर इत्यादि भक्तामर- शब्दान्त स्तोत्रो मे मानतुग कृत सुप्रसिद्ध भक्तामरस्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए स्तुतिपद्यो की रचना की गई हे। इसी प्रकार कुमुदचद्रकृत कल्याणमदिर स्तोत्र की समस्यापूर्ति में भावप्रभसूरिकृत जैनधर्मवरस्तोत्र, तथा अज्ञातकर्तृक पार्श्वनाथस्तोत्र, वीरस्तुति, विजयानदसूरी ईश्वरस्तवन, इत्यादि स्तोत्र उल्लेखनीय है।

14) देवनन्दी पूज्यपाद (ई 6 शती) - सिद्धभक्ति और सिद्धप्रियस्तोत्र।
15) पात्रकेशरी- (ई 6 शती) - जिनेन्द्रगुणसस्तुति।
16) मानतुगाचार्य (ई 7 वी शती) भक्तामरस्तोत्र (या आदिनाथ स्तोत्र)
17) बप्पभट्टि- (ई 8 वी शती) - सरस्वतीस्तोत्र, शान्तिस्तोत्र, चतुर्विशतिजिनस्तुति, वीरस्तव।
18) धनजय (ई 8 वी शती) जिनसहस्रनाम।
19) जिनसेन (ई 9 वी शती) जिनसहस्रनाम।
20) विद्यानन्द — श्रीपुरपार्श्वनाथ।
21) कुमुदचन्द्र (सिद्धसेन ई 11 वी शती) कल्याणमन्दिर।
22) शोभनमुनि- (ई 11 वीं शती) चतुर्विंशतिजिनस्तुति।
23) वादिराजसूरि - ज्ञानलोचनस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र।

24) भूपालकवि (ई. 11 वीं शती) जिनचतुर्विंशतिका।
25) आचार्यहेमचन्द्र (ई. 12 वीं शती) (क) वीतरागस्तोत्र (ख) महादेवस्तोत्र (ग) महावीरस्तोत्र।
26) जिनवल्लभसूरि (ई. 12 वीं शती) भवादिवारण, 2) अजितशान्तिस्तव इत्यादि।
27) आशाधर (ई. 13 वीं शती) सिद्धगुणस्तोत्र।
28) जिनप्रभसूरि (ई. 13 वीं शती) सिद्धान्तागमस्तव, अजितशान्तिस्तवन इत्यादि।
29) महामात्यवस्तुपाल (ई. 13 वीं शती) अंबिकास्तवन।
30) पद्मनन्दिभट्टारक - रावणपार्श्वनाथस्तोत्र, शान्तिजिनस्तोत्र, वीतरागस्तोत्र।
31) मुनिसुन्दर - स्तोत्ररत्नकोश।
32) भानुचन्द्रगणि - सूर्यसहस्रनामस्तोत्र।

इस नामावली से जैन स्तोत्रों के बहिरंग स्वरूप की कल्पना आ सकती है। जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह, इत्यादि संग्रहात्मक ग्रन्थो में अनेक जैनस्तोत्र प्रकाशित हुए हैं।

कृष्णमिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से रूपकात्मक या प्रतीकात्मक नाटकों की प्रणाली जैसे संस्कृत नाट्यक्षेत्र में निर्माण हुई उसी पद्धति के अनुसार जैनविद्वान पद्मसुन्दर (अकबर के समकालीन) ने ज्ञानचन्द्रोदय, तथा वादिचन्द्र ने ज्ञानसूर्योदय, मेघविजयगणि ने युक्तिप्रबोध, जैसे नाटक लिखकर, उन के द्वारा जैनमत का प्रतिपादन किया है। साहित्य के विविध प्रकारों द्वारा जैन विचारधारा का प्रतिपादन करने के प्रयत्नों में दृश्यकाव्य या नाटक का भी उपयोग प्रतिभाशाली जैन साहित्यिकों ने किया है। यशश्चन्द्र के मुद्रित कुमुदचन्द्र नाटक में पांच अंकों में जैन न्याय ग्रंथों में बहुचर्चित स्त्रीमुक्ति का विषय छेड़ा गया है। धर्मशर्माभ्युदय, शर्मामृत जैसे छायानाटकों तथा मोहराजपराजय का भी इस प्रकार के जैन नाटकों में निर्देश करना उचित होगा।

6 बौद्ध वाङ्मय

बौद्ध धर्म विषयक वाङ्मय को ही बौद्ध वाङ्मय कहा जा सकता है। जैसे वैदिक धर्म विषयक वाङ्मय के विभिन्न प्रकार वैदिक संस्कृत भाषा में निर्माण हुए, उसी प्रकार बौद्ध धर्म से संबंधित विविध प्रकार का वाङ्मय निर्माण हुआ और उसे "बौद्ध वाङमय" संज्ञा आलोचकों ने दी। प्रारंभ में यह वाङ्मय पाली भाषा में विकसित हुआ। बौद्धों के "त्रिपिटक" पाली भाषा में ही निर्माण हुए और श्रीलका, ब्रह्मदेश इत्यादि भारत के बाहर वाले देशों में भी उन्हें मान्यता प्राप्त हुई। बौद्ध मत के हीनयान और महायान नामक दो प्रमुख संप्रदाय निर्माण हुए। महायान संप्रदाय में संस्कृत भाषा का उपयोग होने लगा। ईसा की दूसरी और तीसरी सदी में सस्कृत भाषा का महत्त्व सर्वत्र अधिक मात्रा में बढ़ने लगा। संस्कृत भाषा के वर्धिष्णु प्रभाव के कारण महायानी बौद्ध विद्वानों ने भी संस्कृत में ग्रथरचना का आरंभ किया। उनके बहुत से ग्रंथ "संकरात्मक संस्कृत भाषा" में निर्माण हुए। बौद्ध संप्रदाय के ग्रथों में ई. 2 री शती का महावस्तु नामक हीनयान सप्रदाय का प्रसिद्ध विनयग्रंथ है, जिस में बोधिसत्व की दशभूमि का तथा भगवान बुद्ध के चरित्र का प्रतिपादन, संस्कारात्मक मिश्र सस्कृत में हुआ है। शुद्ध सस्कृत भाषा में बौद्ध धर्मविषयक साहित्य निर्मित करने वालों में अश्वघोष प्रभृति महायान कवियों एवं दार्शनिकों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध 'सकर सस्कृत' (नामान्तर गाथा संस्कृत, बौद्ध संस्कृत या मिश्र संस्कृत) भाषा में बौद्ध वाङ्मय निर्माण हुआ। मध्य भारतीय आर्य भाषाओं के उपर, सस्कृत के आरोपण तथा सस्कृत की विशेषताओं के समावेश से इस बौद्ध संकर-संस्कृत भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। इसके मूल में प्राकृत प्रयोग का परित्याग तथा संस्कृत स्वीकार का प्रयास दिखाई देता है। एजर्टन जैसे भाषा वैज्ञानिक इस भाषा का पृथक् अस्तित्व मानते हैं, तो लुई रेनो आदि विद्वान इसे संस्कृत ही मानते हैं। ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृति का समन्वय इस भाषा के मिश्र स्वरूप में प्रकट होता है। इस मिश्र संस्कृत भाषा में उपलब्ध कतिपय रचनाओं का प्रारभ काल ईसा की प्रथम शती से भी पूर्व माना जाता है। मिश्र संस्कृत की कृतियाँ प्राय. गद्यपद्यमयी हैं जिन में गद्य भाग बहुधा संस्कृत में एवं पद्य भाग (गाथा) तत्कालीन मध्यभारतीय भाषाओं में रचित है। गद्यसंस्कृत में बौद्ध सप्रदाय के परम्परागत पारिभाषिक शब्द विद्यमान हैं। शुद्ध संस्कृत में इन शब्दों का परिभाषिक अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ। इन मिश्र संस्कृत में रचित ग्रंथों में महावस्तु, ललितविस्तार, सद्धर्मपुण्डरीक, जातकमाला, अवदानशतक, दिव्यावदान आदि ग्रथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कालिदासादि संस्कृत कवियों की परम्परा में शृंगारिकता को प्रधानता दी गई है। बौद्ध संस्कृत काव्यों में शान्त रस को अग्रस्थान दिया गया है। अश्वघोष के दोनों महाकाव्यों में संभोग एवं विप्रलंभ शृंगार का दर्शन होता है परंतु वह शृंगार, काव्य में शांतरस के प्रवाह में प्रवाहित होता है। शांतरस और करुणा, त्याग, दया जैसे उदात्त भावों का प्राधान्य बौद्ध काव्यों की अनोखी विशेषता है। महायान संप्रदाय का ललितविस्तर नामक ग्रंथ (जिसमें भगवान् बुद्ध की लीलाओ का वर्णन किया है।)

प्रारंभिक बौद्ध संस्कृत वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अश्वघोषकृत बुद्धचरित, सौन्दरनद महाकाव्य और सारीपुत्त प्रकरण नामक नाट्यग्रंथ का बौद्ध धर्म के प्रचार कार्य में विशेष योगदान है। सौन्दरनद में बुद्ध का भाई नद बौद्धधर्मी होने की कथा वर्णित है और सारीपुत्त प्रकरण में सारीपुत्त ओर मोद्गलायन के बौद्धधर्म स्वीकार की घटना चित्रित है। बुद्धचरित और सौदरनंद महाकाव्य के कारण प्राचीन संस्कृत महाकवियों में अश्वघोष को अग्रपूजा का मान दिया जाता है। परतु इन तीन काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त 1) महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र, 2) सूत्रालंकार और 3) वज्रसूची (नामान्तर वज्रच्छेदिका या वज्रसूचिकोपानिषद) जैसे दार्शनिक ग्रंथ, गण्डीस्तोत्रगाथा नामक गीतिकाव्य, सारिपुत्रप्रकरण नामक नाट्यग्रथ और राष्ट्रपाल, उर्वशीवियोग तथा रूपकावेश (दो भाग) इन ग्रथों का कर्ता, अश्वघोष को ही माना गया है। महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र मूल सस्कृत में सप्रति अनुपलब्ध है किन्तु परमार्थकृत चीनी रूपान्तर के रूप में सुरक्षित है। इस रूपान्तर पर आधृत, इसके दो अग्रेजी अनुवाद हो चुके हैं। सूत्रालकार या सूत्रालंकारशास्त्र गद्यपद्यात्मक कथाकाव्य है। यह भी कुमारजीवकृत चीनी अनुवाद (ई 5 वीं शती) के रूप में सुरक्षित है। इसमें रामायण एव महाभारत के उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं।

वज्रसूची (या वज्रसूचिकोपनिषद्) :- इस ग्रथ में वैदिक धर्म की वर्णव्यवस्था एव जातिभेद का प्रखर खडन किया है। कुछ विद्वान धर्मकीर्ति को इसके रचियता मानते हैं। किन्तु लोकमान्य तिलक, राहुल साकृत्यायन जैसे विद्वान् अश्वघोष को ही इसके रचितया मानते हैं। गण्डीस्तोमगाथा में स्रग्धरा छदोबद्ध 29 श्लोकों मे बुद्ध एव सघ की स्तुति की है। (गण्डी याने एक प्रकार का सुडौल काष्ठखड, जिसके द्वारा पीट कर शब्द उत्पन्न किया जाता है)।

ई प्रथम शती में काश्मीर की राजधानी में बौद्धों की सगीति का चतुर्थ अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष थे वसुमित्र और उपाध्यक्ष थे महाकवि अश्वघोष। संगीति द्वारा त्रिपिटकों पर महाविभाषा नामक व्याख्या लिखी गई और बौद्धदर्शन के प्रतिपादनार्थ सस्कृत भाषा का स्वीकार हुआ। ई 11 वीं शती में दीपकर श्रीज्ञान नामक बौद्ध आचार्य तिब्बत मे निमत्रित हुए। उन्होंने तिब्बती भाषा में सैकडों सस्कृत ग्रथों के अनुवाद करवाये। "कजूर" नामक स्थान मे बुद्धवचनात्मक ग्रथो का और "तजूर" में दर्शन, काव्य, वैद्यक, ज्योतिष, तत्र इत्यादि विषयों के ग्रथो का सग्रह, बुस्तोन नामक तिब्बती विद्वान ने किया है। इन तिब्बती अनुवादों के कारण सस्कृत के अनेक नष्ट ग्रथों का पता चलाता है।

महायानी ग्रंथों में अष्टसाहिस्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक, ललितविस्तर लकावतारसूत्र, सुवर्णप्रभास, गडव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज और दशभूमीश्वर इन नौ ग्रथों का महत्व विशेष माना गया है। नेपाली बौद्धो में इनको "नवधर्म" कहते हैं।

सद्धर्मपुण्डरीक की रचना ई प्रथम शताब्दी मे मानी जाती है। इस ग्रथ मे 27 अध्याय हैं और उनमे भगवान् तथागत एव बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की महिमा का वर्णन है।

प्रज्ञापारमिता ग्रथ में शून्यता एव प्रज्ञा इन महायानो के मुख्य सिद्धान्तो का विवेचन मिलता है। नेपाली परपरानुसार इस ग्रंथ की श्लोक सख्या सवालाख थी। विद्यमान ग्रथ में आठ हजार श्लोक होने के कारण, उसे "अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता" नाम दिया गया है।

लकावतारसूत्र में भगवान् बुद्ध ने लकाधीश रावण को जो उपदेश दिया उसमे, "विज्ञान" ही एकमात्र सत्य है। विज्ञान के अतिरिक्त वस्तुओं की कोई सत्ता नहीं, यह सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। बौद्धो के सूत्रग्रथो में समाधिराज सूत्र में योगाचार का और सुवर्णप्रभासूत्र में भगवान् बुद्ध के धर्मकार्य का प्रतिपादन किया है। वैभाषिक सप्रदाय के ग्रथो में अभिधर्मज्ञान, प्रस्थानशास्त्र, अभिधर्मकोश, वसुबधुकृत समयप्रदीपिका उल्लेखनीय हैं।

योगाचार सप्रदाय में मध्यान्तविभाग (मैत्रेय कृत) तथा आर्य असगकृत महायानसूत्रालकार, महायानसपरिग्रह, दिङ्नागकृत प्रमाणसमुच्चय, न्यायप्रवेश, धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक और न्यायबिंदु, नागार्जुनकृत माध्यमिक शास्त्र, शातरक्षितकृत तत्त्वसग्रह, महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रथ हैं। इनके अतिरिक्त दशभूमिविभाषाशास्त्र नामक ग्रंथ महायान दर्शन का विश्वकोष माना जाता है।

स्तोत्र एवं सूत्र

प्रारंभिक बौद्धकाव्य प्रधानतया ज्ञाननिष्ठ किन्तु भावहीन था। यथावसार महायान सप्रदाय ने भगवान् बुद्ध को आराध्य देवता के रूप में स्वीकार किया। "बुद्ध सरण गच्छामि" इस शरणागति वचन का अनुपालन बुद्ध की अर्चना से होने लगा। सामान्यत. ई पू द्वितीय शती मे (जब कृष्णोपासक सप्रदाय का विकास हो रहा था) बुद्धभक्ति तथा बुद्धोपासना का भी विकास होने लगा। कालान्तर में बौद्ध धर्म, शैव तथा तात्रिक सप्रदायो से अधिक प्रभावित हुआ। एव भागवत शैव और तात्रिक सप्रदायों तथा भगवद्गीतोक्त भक्तियोग के प्रभाव के कारण महायान बौद्ध सप्रदाय में भक्तियोग या भक्तिमार्ग का प्रसार होता गया। इस भक्ति के केंद्रबिंदु भगवान् बुद्ध एक ऐतिहासिक विभूति थे। बौद्धधर्म मूलत ज्ञानवादी तथा कर्मप्रधान होते हुए भी, उत्तरकालीन बुद्धानुयायियों ने "बुद्धं शरण गच्छामि" इस वचन के अनुसार उस महनीय ऐतिहासिक विभूति की अनन्य भाव से शरणागति स्वीकार की, जिसके कारण बौद्धवाङ्मय में भक्तिभावपूर्ण स्तोत्र काव्य का विकास हुआ। बौद्ध उपासकों के भक्तिपूर्ण स्तोत्रकाव्यों

से मूलत निरीश्वरवादी बौद्धधर्म की ईश्वरवादी धर्म में परिणति दिखाई देती है। बौद्धों के बुद्धेश्वरवाद या बुद्धभक्तिमार्ग का प्रचार भारत की अपेक्षा चीन, तिब्बत, जापान आदि देशों में अधिक हुआ। महावस्तु, ललितविस्तर, अश्वघोष का बुद्धचरित महाकाव्य तथा मातृचेट आदि महनीय लेखकों के साहित्य में अभिव्यक्त बुद्धभक्ति का विस्तार बौद्ध स्तोत्रकाव्यों में पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है। वे स्तोत्रकार तथा उनके स्तोत्रकाव्य अवश्य उल्लेखनीय हैं जैसे :—

स्तोत्रकार	स्तोत्रकाव्य
नागार्जुन (शून्यवाद के प्रधान प्रतिष्ठापक)	1) चतु:स्तव 2) निरौपम्यस्तव, 3) अचिन्त्यस्तव।
हर्षवर्धन (ई. 7 वीं शती)	1) सुप्रभातस्तोत्र (श्लोक 24) 2) अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र।
वज्रदत्त (ई 9 वीं शती)	लोकेश्वरशतक (फ्रेंच में अनुवादित)
अमृतानंद	नेपालीय देवताकल्याण पचविंशतिका।
सर्वज्ञ मिश्र (काश्मीरवासी) (ई 8 वीं शती)	आर्यतारा-स्रग्धरास्तोत्र। (तारा अवलोकितेश्वर की स्त्री-रुप प्रतिमूर्ति हैं।) श्लोकसंख्या 73, तारादेवी से सबंधित स्तोत्रों की कुल संख्या 96 बताई जाती है उनमें से 62 स्तोत्रों के तिब्बती अनुवाद हो चुके हैं।
चन्द्रगोमी	तारासाधकशतक
रामचन्द्र कविभारती (13 वीं शती)	भक्तिशतक

नागार्जुन :- शून्यवादी स्तोत्रकारों में नागार्जुन का व्यक्तित्व अत्यत प्रभावी था। उन्होंने बौद्ध संस्कृत साहित्य में भरपूर योगदान दिया है किन्तु इन की रचनाएँ भारत के बाहर चीन, मगोलिया, तिब्बत आदि देशों मे अनुवादरूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। नागार्जुन का चरित्र एव व्यक्तित्व एक विवाद्य विषय हुआ है। इनके द्वारा रचित ग्रथों के नाम हैं माध्यमिककारिका, दशभूमिविभाषाशास्त्र, महाप्रज्ञापारमितासूत्रकारिका, उपायकौशल्य, प्रमाणविध्वसन, विग्रहव्यावर्तिनी, चतु:स्तव, युक्तिषष्टिका, शून्यतासप्तति, प्रतीत्यमुत्पादहृदय, महायानविंशक और सुत्तलेख। इन 12 रचनाओं में 'चतु:स्तव' ही एक मात्र स्तोत्र काव्य है, अन्य सभी माध्यमिकों के शून्यवाद से सबधित महत्वपूर्ण दार्शनिक रचनाएं हैं। माध्यमिककारिका (श्लोकसख्या 400) पर नागार्जुन ने स्वय "अकुतोभया" नामक टीका लिखी थी, जिसका तिब्बती अनुवाद सुरक्षित है।

आर्यदेव : आप नागार्जुन के प्रधान शिष्य एव उत्तराधिकारी थे। किंवदन्ती के अनुसार अपना एक नेत्र किसी वृक्षदेवता को समर्पण करने के कारण इन्हें 'काणदेव' कहते हैं तथा भगवान् शिव को एक नेत्र समर्पण करने कारण इन्हें 'नीलनेत्र' कहते थे। कुमारजीव (ई 5 वीं शती) (जो संस्कृत ग्रथों के चीनी अनुवादक के नाते वाङ्मयीन क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं) ने इन के जीवनचरित का चीनी अनुवाद किया है। आर्यदेव की इन रचनाओं में चतु:शतक, माध्यमिक हस्तवालप्रकरण, स्खलितप्रमथन, युक्तिहेतुसिद्धि और ज्ञानसारसमुच्चय ये चार शास्त्रीय रचनाए शून्यवादविषयक हैं और चर्यमेलापनप्रदीप, चितावरणविशोधन, चतु:पीठतत्रराज, चतु:पीठसाधन, ज्ञानडाकिनीसाधन और एकद्रुमपजिका ये छ रचनाए तत्रशास्त्र से संबद्ध हैं।

भावविवेक :- इनकी 4 कृतियाँ प्रसिद्ध हैं 1) माध्यमिककारिका व्याख्या, 2) मध्यमहृदयकारिका, 3) मध्यमार्थसग्रह और 4) हस्तरत्न इनके चीनी और तिब्बती भाषाओं में अनुवादमात्र में विद्यमान हैं।

चन्द्रकीर्ति :- (ई छठवीं शती) रचनाएँ 1) माध्यमिकावतार, 2) प्रसन्नपदा (नागार्जुन की माध्यमिककारिका की व्याख्या) 3) चतु:शतकटीका (आर्यदेवकृत चतु:शतक की टीका)।

शान्तिदेव :- रचनाएं . 1) शिक्षासमुच्चय (कारिकासख्या 27)। इस पर लेखक ने व्याख्या भी लिखी है। 2) सूत्रसमुच्चय और 3) बोधिचर्यावतार जिस के 9 परिच्छेद हैं और जिस पर 11 टीकाए लिखी गई। इन टीकाओं के केवल तिब्बती अनुवाद उपलब्ध हैं। बोधिचर्यावतार में शातिदेव की आत्यतिक भावुकता का परिचय मिलता है।

शान्तरक्षित :- ई 8 वीं शती। तिब्बत में 'सम्मेविहार'' नामक सर्व प्रथम बौद्धविहार की स्थापना करने का श्रेय इन्ही को दिया जाता है। इनकी एकमात्र रचना, तत्त्वसंग्रह है, जिस पर उनके शिष्य कमलशील ने टीका लिखी है।

अश्वघोष के परवर्ती बौद्ध साहित्यिकों में आर्यदेव, नागार्जुन और कुमारलात प्रमुख माने जाते हैं। कुमारलात का समय ई द्वितीय शती तथा निवासस्थान तक्षशिला माना जाता है। ये सौत्रान्तिक संप्रदायी थे। इनके कल्पनामंडतिका-दृष्टान्त-पङ्क्ति (नामान्तर कल्पनामंडतिका या कल्पनालकृतिका) नामक ग्रन्थ में कविकल्पना से मंडित दृष्टान्तों एव कथाओं का सग्रह मिलता है। इस ग्रंथ का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है। डॉ. लूडर्स ने प्रस्तुत ग्रथ का अनुवाद किया। प्राचीन काल में चीनी भाषामें इसका अनुवाद हो चुका है। डॉ. लूडर्सने प्रस्तुत ग्रंथ को प्रकाश में लाया।

कनिष्क के समय में मातृचेट नामक बौद्ध कवि ने 70 श्लोकों का एक बुद्ध स्तोत्र लिखा। कहते हैं कि मातृचेट ने

अपना शरीर क्षुधार्त व्याघ्री को समर्पण करने पर प्रवाहित निजी रक्त से इस स्तोत्र को लिखा। मातृचेट को महाराजा कनिष्क ने अपनी सभा में निमंत्रित करने पर उन्होंने वार्धक्य के कारण अपनी असमर्थता एक काव्यात्मक पत्रद्वारा निवेदित की। 185 श्लोकों का यह संस्कृत पत्रकाव्य मूल रुप में अप्राप्य है किन्तु इसका तिबती अनुवाद सुरक्षित है। तिब्बत के तंजूर नामक ग्रंथालय में मातृचेट के नाम से, वर्णनार्हवर्णन, सम्यक्बुद्धलक्षणस्तोत्र, त्रिरत्नमंगलस्तोत्र, एकोत्तरीस्तोत्र, सुगतपचत्रिरत्नस्तोत्र, त्रिरत्नस्तोत्र, मिश्रकस्तोत्र, चतुर्विपर्ययकथा, कलियुगपरिकथा, आर्यतारादेवीस्तोत्र, सर्वार्थसाधनास्तोत्ररत्न एव मतिचित्रनीति नामक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त चतु:शतक और अर्ध्यशतक (श्लोकसख्या 153) इन दो उत्कृष्ट स्तोत्रों के कारण बौद्ध जगत् में मातृचेट एक श्रेष्ठ स्तोत्रकार माने जाते हैं। अर्ध्यशतक के तिब्बती अनुवाद का पुनश्च सस्कृत रूपातर किया गया, जिसका नाम है "शतपचाशिका स्तोत्र"। गत शत वर्षों में एम् ए स्टील, ए ग्रेन वेंडल, ए वान ले काग, सिल्वाँ लेवी, राहुल सांकृत्यायन जैसे श्रेष्ठ गवेषकों ने मातृचेट की रचनाओं को प्रकाश में लाया। इनकी मूल सस्कृत रचनाए अप्राप्य है, किन्तु तिब्बती चीनी आदि बाह्य भाषाओं में उनके अनुवाद सुरक्षित हैं।

आर्यशूर :- यह एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न बौद्ध पडित थे जिन्होंने बोधिसत्त्व (अर्थात् भावी बुद्ध) की काव्यमय जन्मकथाओं को अपनी जातकमाला (या बोधिसत्त्वावदानमाला) में ग्रथित किया। इस ग्रंथ में 34 जातकों का संग्रह है। इनमें से कतिपय जातक पालि जातकों पर आधृत हैं। आर्यशूर की भाषाशैली अश्वघोष के समान परिष्कृत होने के कारण अश्वघोष और आर्यशूर को अभिन्न मानते हैं। इस ग्रथ के तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद हो चुके हैं। चीनी अनुवाद का समय ई 90 से 12 वीं शती के बीच का माना जाता है।

बुद्धघोषरचित पद्यचूडामणि नामक दस सर्गो का बुद्धचरित्रात्मक ग्रथ सन् 1921 में कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा प्रकाशित हुआ है। वैभाषिक आर्यचन्द्रकृत 'मैत्रेयव्याकरण' नामक ग्रथ के तिब्बती, चीन आदि भाषाओं में अनुवाद सुरक्षित हैं। इसके चीनी अनुवाद से जर्मन तथा तोखारियन भाषा मे अनुवाद हुए हैं। प्रस्तुत ग्रथ मे भावी बुद्ध मैत्रेय के जन्म, स्वरूप और स्वर्गीय जीवन का वर्णन किया है।

सद्धर्मपुण्डरीक (नामान्तर वैपुल्यसूत्रराज) :- ई प्रथम शताब्दी में रचित महायान सप्रदाय का एक महनीय सूत्र ग्रथ है। बौद्ध साहित्य मे सुत्त शब्द का अर्थ सुत अथवा सूक्त है। "अल्पाक्षरमसंदिग्ध सारवद् विश्वतोमुखम्" इस सुप्रसिद्ध कारिका में 'सूत्र' शब्द का जो पारिभाषिक अर्थ है, वह बौद्ध साहित्य में नहीं माना जाता। यह ग्रथ परिवर्त नामक 27 विभागों में विभाजित है। एशिया तथा यूरोप की प्राय सभी श्रेष्ठ भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। डॉ राममोहन दास के हिन्दी अनुवाद तथा विशद भूमिका सहित राष्ट्रभाषा परिषद् (बिहार) द्वारा इसका प्रकाशन हुआ है। इसमें बुद्धभक्ति, उनकी मूर्ति तथा स्तूप की पूजा आदि की अपेक्षा योगिक क्रियाओं पर कम बल दिया जाता है। समीक्षकों की मान्यता है कि यह ग्रंथ भागवत संप्रदाय, वेदान्त दर्शन एव भगवद्गीता से पूर्ण प्रभावित है। इसमें बुद्ध का वही रूप परिलक्षित होता है, जो भागवत सप्रदाय में श्रीकृष्ण का। शान्त, अद्भुत एव भक्ति रस का इसमें पूर्ण परिपाक हुआ है।

प्रज्ञापारमितासूत्र :- इस ग्रथ में महायान सप्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त पक्ष प्रकाशित हुआ है। इसके शतसाहस्रिका, पचविंशतिसाहस्रिका, अष्टादशसाहस्रिका एवं दशसाहस्रिका, सार्धद्विसाहस्रिका तथा सप्तशतिका नामक विविध सस्करण उपलब्ध होते हैं। इनमें अष्टसाहस्रिका (27 परिवर्तों में विभक्त) सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती है और अन्य संस्करण इसी के विकसित एवं संक्षिप्त रूप माने जाते हैं। प्रज्ञापारमिता का वाच्य अर्थ है (प्रज्ञा = ज्ञान और पारमिता = पूर्णता अर्थात् शून्यता विषयक परिपूर्णज्ञान)। इन सूत्रों (अर्थात् सूक्तों) में षट् पारमिताओं (दान, शील, धैर्य, वीर्य, ध्यान एव प्रज्ञा) की विवेचना हुई है।

दशभूमीश्वरसूत्र :- बौद्ध परिभाषा में विविध "अवतसकसूत्र" उपलब्ध होते हैं जिनमें गण्डव्यूह (महायान) सूत्र तथा दशभूमीश्वर (या दशभूमिक) सूत्र का अन्तर्भाव होता है। इसका वर्ण्य विषय है उन दश भूमियों की विवेचना, जिनके द्वारा सम्यक् संबोधि प्राप्त की जाती है। इसी के समान बोधिसत्व भूमियो का प्रतिपादन करनेवाला एक अन्य ग्रन्थ है जिसका नाम है "दशभूमिक्लेशच्छेदिकासूत्र"। इसका चीनी अनुवाद ई प्रथम शती मे हुआ।

अवतसक सूत्र के समान 'रत्नकूट' नामक सूत्र समुच्चयात्मक ग्रथ महायान सप्रदाय में निर्माण हुए। इस सूत्रसमुच्चय में बृहत्सुखावतीव्यूह, अक्षोभ्यव्यूह, मजुश्रीबुद्ध-क्षेत्र- गुणव्यूह, काश्यपपरिवर्त, अक्षयमतिपरिपृच्छा, उग्रपरिपृच्छा, राष्ट्रपालपरिपृच्छा आदि अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं। कारण्डकव्यूह सूत्र में पौराणिक पद्धति के अनुसार बुद्ध अवलोकितेश्वर की भक्ति का प्रतिपादन तथा मत्र तत्र का दर्शन मिलता है। "ॐ मणिपद्मे हुम्" इस प्रख्यात षडक्षरी बौद्ध मत्र का प्रथम उल्लेख इसी ग्रंथ में मिलता है।

लकावतारसूत्र (या सद्धर्मलकावतार सूत्र) मे दश परिवार्तों में राक्षसराज रावण एव तथागत के संवाद में शून्यवाद के प्रतिकूल विज्ञानवाद का प्रतिपादन किया है। इसमें मासाहार के निषेध की चर्चा सर्वप्रथम हुई है। इस ग्रंथ में इस बात पर

विशेष बल दिया है कि, समस्त गोचर पदार्थ अयथार्थ, प्रतिभासात्मक या विकल्पात्मक हैं। चित् मात्र ही सत्य है, जो निराभास एवं निर्विकल्प है।

सुवर्णप्रभासूत्र एक पद्रह परिवर्तों का महायान ग्रथ है। इसके धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तपरक दो भाग हैं। जापान में इस ग्रथ की महती ख्याती है। जापान के अधिपति शोकोतु ने इसकी प्रतिष्ठापना के निमित्त भव्य बौद्ध मंदिर निर्माण करवाया। राष्ट्रपालपरिपृच्छा (या राष्ट्रपालसूत्र) मे आचारभ्रष्ट बौद्ध भिक्षुओं के शिथिल एवं दांभिक चरित्र का सविस्तर प्रकाशन हुआ है। रत्नकूट के अन्तर्गत उग्रपरिपृच्छा, उदयनवत्सराज-परिपृच्छा, उपालिपरिपृच्छा, चन्द्रोत्तरादारिका-परिपृच्छा, विमलश्रद्धा-दारिका-परिपृच्छा, सुमतिदारिका-परिपृच्छा, अक्षयमतिपरिपृच्छा आदि अनेक परिपृच्छासूत्र उल्लेखनिय हैं।

7 धारणीसूत्र

'धारणी' शब्द का उल्लेख प्रथमत· ललितविस्तर तथा सद्धर्मपुण्डरीक मे हुआ है। यह शब्द रक्षायत्र (ताबीज अथवा मंत्रसूत्र) के अर्थ मे यत्र तत्र व्यवहृत हुआ है। नेपाल में 'पंचरक्षा' नामक पच धारिणियों का सग्रह अधिक प्रचलित है। वहां न्यायालयों मे पचरक्षा की सौगन्ध खाने की प्रथा है। इन पच धारिणियों में सम्मोहन एवं वशीकरण की अतुलनीय शक्ति मानी जाती हैं। इनके नाम है 1) महाप्रतिसरा 2) महासहस्रप्रमर्दिनी, 3) महामयूरी, 4) महाशितवती और 5) महामत्रानुसारिणी। धारणीसूत्रों के अन्तर्गत गणपतिधारणी, नीलकठधारणी, महाप्रत्यगिराधारणी जैसे ग्रथ भारत तथा भारतबाह्य देशों मे प्रसिद्ध हैं। भगवान् बुद्ध ने जिस पचशील-प्रधान और आर्यसत्यवादी अष्टागिक मार्गी धर्ममत का प्रतिपादन किया, उसमें आगे चलकर विविध सप्रदाय निर्माण हुए। इन सप्रदायों को 'निकाय' कहते हैं। सम्राट अशोक के समय तक भारत के विभिन्न भागों मे 18 निकाय प्रवर्तित हुए थे। इन निकायों के ग्रथों में विचार और आचार में भेद दिखाई देते हैं। प्रमुख निकायों की नामावलि इस प्रकार है

1) **स्थविरवादी** (नामान्तर थेरवादी या वैभाषिक) - बुद्धनिर्वाण के 300 वर्षों बाद कात्यायनीपुत्र ने ज्ञानप्रस्थानशास्त्र नामक ग्रथ मे इस अतिप्राचीन निकाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वसुबधु कृत अभिधर्मकोश में भी इस मत की विचार प्रणाली का प्रतिपादन मिलता है।

2) **महीशासक**

3) **सर्वास्तिवादी** : महाराजा कनिष्क इसके आश्रयदाता थे। पजाब तथा उत्तर में इसका प्रचार हुआ। इस निकाय ने धर्मग्रथों की निर्मिति के लिए पाली भाषा को त्याग कर सस्कृत को अपनाया।

4) **हैमावत।**

5) **वात्सीपुत्रीय** : इस निकाय का प्रचार मध्यभारत के अवती प्रदेश में हुआ था। महाराजा हर्ष की भगिनी राज्यश्री ने इस सप्रदाय को प्रश्रय दिया था।

6) **धर्मगुप्तिक** · चीन तथा मध्य एशिया में इसका विशेष प्रचार हुआ

7) **काश्यपीय**

8) **सौत्रांतिक** : (नामान्तर-सक्रातिवादी)

9) **महासांघिक** : इस सप्रदाय का प्रमाण ग्रंथ है महावस्तु। पाटलीपुत्र (पटना) और वैशाली में इस सप्रदाय के केन्द्र थे।

10) **बहुश्रुतीय** : महासाघिक पथ की उपशाखा।

11) **चैत्यक** : महासाघिक पथ की इस उपशाखा के सस्थापक थे महादेव। यह पथ बुद्ध और बोधिसत्व को देवस्वरूप मानता है।

12) **माध्यमिक** : (नामान्तर शून्यवादी) - इस सप्रदाय के मतप्रतिपादन के हेतु नागार्जुन ने अनेक ग्रंथ लिखे।

13) **योगाचार** . (विज्ञानवादी) - इस संप्रदाय के प्रवर्तक थे मैत्रेय। इसका प्रमाण ग्रथ है लकावतारसूत्र। बोधिप्राप्ति के लिए योगसाधना का विशेष महत्त्व योगाचार में माना गया है। इसी सप्रदाय में मत्रयान, वज्रयान और सहजयान इत्यादि तात्रिक उपसप्रदाय निर्माण हुए। मैत्रेय कृत मध्यान्तविभाग, अभिसमयालकार, सूत्रालंकार, महायान उत्तरतत्र, एव धर्मधर्मताविभंग इस सप्रदाय के महत्त्वपूर्ण ग्रथ हैं। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति और धर्मपाल इस पथ के प्रमुख पंडित थे।

इन सप्रदायों के अतिरिक्त नेपाल में चार बौद्ध संप्रदाय प्रचलित हैं 1) स्वाभाविक 2) ऐश्वरिक 3) कार्मिक और 4) यात्रिक। ईसा की प्रथम शती से बौद्ध समाज में शैव मत के प्रभाव के कारण तान्त्रिक साधना का प्रचार होने लगा। सुखावतीव्यूह, अमितायुषसूत्र, मजुश्रीकल्प तथागतगुह्यकतंत्र आदि ग्रंथों में बौद्धों की तान्त्रिक साधना का परिचय मिलता है। बौद्धों के विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान (अर्थात् चित् मन, बुद्धि) के कारण, सांसारिक पदार्थों की असत्यता की प्रतीति होती है, अत उस 'विज्ञान' को सत्य मानना चाहिए इस मत के प्रतिष्ठापक थे मैत्रेय (या मैत्रेयनाथ) जिन्होंने अनेक ग्रथों का निर्माण

किया था किन्तु उनमें से 1) महायानसूत्रालकार 2) धर्मधर्मताविभग, 3) महायानउतरतत्र, 4) मध्यान्तविभग और 5) अभिसमयालकारिका ये पाच ग्रथ तिब्बती और चीनी अनुवाद के रूप मे विद्यमान है। योगाचारसप्रदाय के श्रेष्ठ आचार्य आर्यअसंग (ई. 4 थी शती) ने 1) महायानसपरिग्रह, 2) महायानसूत्रालकार, 3) प्रकरणआर्यवाचा, 4) योगाचारभूमिशास्त्र (अथवा सप्तदशभूमिशास्त्र) नामक पाडित्यपूर्ण ग्रंथ निर्माण कर, योगाचार मत की प्रतिष्ठापना की थी। सप्तदशभूमिशास्त्र का लघु अश बोधिसत्त्वभूमि नाम से संस्कृत मे उपलब्ध है। शेष ग्रथ चीनी तिब्बती अनुवादो के रूप मे सुरक्षित है।

ई. चौथी शती के महापडित वसुबंधु (आर्यअसग के अनुज) सर्वास्तिवाद के प्रतिष्ठापक थे। इनके अभिधर्मकोष के कारण तिब्बत, चीन, जपान आदि देशों में बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित हुआ। वसुबधु ने 1) सद्धर्मपुण्डरीक-टीका 2) महापरिनिर्वाण-टीका, 3) वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिता-टीका और 4) विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि नामक चार ग्रथ महायान सप्रदाय के लिए लिखे और हीनयान संप्रदाय के लिए 1) परमार्थसप्तति, 2) तर्कशास्त्र, 3) वादविधि और 4) अभिधर्मकोश (कारिकासख्या 6 सौ) नामक चार ग्रथ लिखे। इनमे अभिधर्मकोष सारे बौद्ध सप्रदायो में मान्यता प्राप्त ग्रथ है। इस पर स्थिरमति का तत्त्वार्थभाष्य, दिङ्नाग की मर्मप्रदीपवृत्ति, यशोमित्र की स्फुटार्थी, पुण्यवर्मन् की लक्षणानुसारिणी, शान्तस्थविरदेव की औपयिकी तथा गुणमति एव वसुमित्र आदि की टीकाए उल्लेखनीय हैं। स्वयं वसुबधु ने भी अभिधर्मकोशभाष्य नामक टीका ग्रथ की रचना की थी, जिसका सपादन प्रो प्रल्हाद प्रधान द्वारा जायसवाल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पटना से हुआ है। वसुबन्धु के ग्रथ भी चीनी, तिब्बती और जापानी अनुवादों के रूप में सुरक्षित हैं।

वसुबन्धु के समकालीन सघभद्र उनके प्रतिस्पर्धी थे। इन्होने अपने अभिधर्मन्यायानुसार (प्रकरणसख्या-आठ) तथा अभिधर्मसमयदीपिका में वसुबन्धु के मतो का खण्डन कर वैभाषिकमत का पुनरुद्धार करने का प्रयास किया है। वसुबन्धु के शिष्योतम स्थिरमति ने काश्यप परिवर्तटीका, सुत्रालकारवृतिभाष्य, त्रिंशिकाभाष्य, पचस्कन्धप्रकरणभाष्य, अभिधर्मकोशभाष्यवृत्ति, मूलमाध्यमिककारिकावृति, मध्यान्तविभागसूत्रभाष्यटीका, इन सात टीकात्मक ग्रथो द्वारा अपने गुरु के सिद्धान्तो को विशद करने का प्रयास किया है।

वसुबन्धु के दूसर शिष्योत्तम दिङ्नागाचार्य का नाम बौद्ध वाङ्मय मे प्रसिद्ध है। शान्तरक्षित, धर्मकीर्ति, कमलशील, और शकरस्वामी सदृश विद्वान् इनकी शिष्यपरपरा मे थे। इनके ग्रथो की कुल सख्या लगभग एक सौ मानी जाती है जिनमे 1) प्रमाणसमुच्चय 2) प्रमाणसमुच्चयवृत्ति 3) न्यायप्रवेश, 4) हेतुचक्रडमरु, 5) प्रमाणशास्त्रन्यायप्रवेश, 6) आलबनपरीक्षा, 7) आलबनपरीक्षावृत्ति, 8) त्रिकालपरीक्षा और 9) मर्मप्रदीपवृत्ति नामक दार्शनिक ग्रथ सुप्रसिद्ध है। इन ग्रथो के द्वारा बौद्धन्याय को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया। दिङ्नागाचार्य के ग्रथ चीनी और तिब्बती अनुवादो के रूप मे सुरक्षित है। दिङ्नाग के शिष्य शकरस्वामी के हेतुविद्यान्यायप्रवेश, और 'न्यायप्रवेशतर्कशास्त्र' नामक दो ग्रथ उल्लेखनीय हैं। धर्मपाल, नालदा महाविहार के कुलपति थे। शून्यवाद के व्याख्याता धर्मकीर्ति शीलभद्र (ह्वेनसाग के गुरु) इनके शिष्य थे।

इनके द्वारा लिखित 1) आलबनप्रत्ययधानशास्त्र 2) विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिव्याख्या और 3) शतशास्त्रव्याख्या ये तीन ग्रथ टीकास्वरूप हैं। धर्मकीर्ति ने बौद्धन्यायविषयक प्रमाणवार्तिक, प्रमाणविनिश्चय, न्यायबिदु, सम्बन्धपरीक्षा, हेतुबिन्दु, वादन्याय और सन्तानान्तरसिद्धि नामक सात ग्रथों की रचना की जिनमे प्रमाणवार्तिक (श्लोकसख्या 15 सौ) सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इस ग्रथ पर अनेक टीकाएँ सस्कृत तथा तिब्बती भाषा मे लिखी गई हैं जिनमे से मनोरथनन्दीकृत टीका प्रकाश मे आ सकी है। चान्द्रव्याकरण के प्रणेता चन्द्रगोमी (ई 5-6 शती) ने स्तुतिकाव्य तथा नाटको की भी रचना की है। राजतरगिणी मे इन्हे व्याकरण महाभाष्य का पुनरुद्धारक माना गया है। चान्द्रव्याकरण के अतिरिक्त इन्होने 1) शिष्यलेखधर्मकाव्य, 2) आर्यसाधनशतक 3) आर्यातारन्तरबलिविधि और लोकानन्द नामक नाटक की रचना की है।

उपरिनिर्दिष्ट दार्शनिक आचार्यों एव कवियो के अतिरिक्त धर्मजात (भावनान्यथात्ववादप्रवर्तक) भदन्तघोष (लक्षणान्यथात्ववादप्रवर्तक), वसुमित्र (अवस्थान्यथात्ववाद के प्रवर्तक) सौत्रान्तिक बुद्धदेव (अन्यथात्ववाद के प्रवर्तक) श्रीलाभ (सौत्रान्तिकविभाषा प्रवर्तक), यशोमित्र (स्फुटार्था व्याख्याकार) आदि आचार्यों के नाम बौद्धवाङ्मय की समीक्षा मे उल्लेखनीय है।

बौद्धो के काव्य ग्रंथों मे बुद्ध, बोधिसत्त्व (भावी बुद्ध) तथा उनके अन्य विविध रूपो की कथाओं का ही निर्देश होता है। बुद्धोक्त धर्म, कर्म एव दर्शन का सगम इन काव्यों मे सर्वत्र दिखाई देता है। इसी कारण शास्त्र और काव्य का सुदर साहचर्य इनमें परिलक्षित होता है। बौद्ध दर्शन के मूलाधार विषयो (चित्त, चेतसिक निर्वाण, शील, समाधि एव प्रज्ञा) अथवा उसके मूलभूत सिद्धान्तों (चार आर्यसत्यो प्रतीत्यसमुत्पाद, अनात्मवाद, एव अनित्यवाद आदि) की सहज समीक्षा, व्यक्तित्व निर्माण परक बौद्धकाव्यों में बहुधा हुई है। दार्शनिक जगत् मे बौद्ध काव्यकारो का योगदान निश्चय ही स्तुत्य है। इन समस्त बौद्ध कृतियों में जातिवाद, शास्त्रवाद, दैववाद, अतिवाद आदि का प्रबल विरोध लक्षित होता है। भगवान बुद्ध ने परम्परागत समाज जीवन को नवीन ढाचे में ढालने का प्रयास किया था और यही इन बौद्ध सस्कृत कृतियो मे प्रतिफलित भी हुआ है।

8 दार्शनिक विचार

बौद्धमत के जिन दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति सद्धर्मपुण्डरीक, प्रज्ञापारमितासूत्र, गण्डव्यूहसूत्र, दशभूमिकसूत्र, रत्नकूट, समाधिराजसूत्र, सुखावतीव्यूह, सुवर्णप्रभासूत्र तथा लकावतारसूत्र इन महायानी सस्कृत ग्रंथों में हुई है, उन का सक्षेपत स्वरूप निम्नप्रकार कहा जा सकता है -

(1) प्रतीत्यसमुत्पाद:- 'प्रतीत्य' अर्थात् किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर, 'समुत्पाद' याने अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इसे "कारणवाद" भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार बाह्य और मानस ससार की जितनी भी घटनाए होती हैं, उनका कुछ ना कुछ कारण अवश्य होता है। अत वस्तुए अनित्य हैं। उनकी उत्पत्ति अन्य पदार्थों से होती है। उनका पूर्ण विनाश नहीं होता और उनका कुछ कार्य या परिणाम अवश्य रह जाता है। प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त मध्यममार्गी है। इसमें न तो पूर्ण नित्यवाद और न पूर्ण विनाशवाद का अगीकार है। प्रतीत्य समुत्पाद के द्वारा कर्मवाद की प्रतिष्ठा होती है, जिस के अनुसार मनुष्य का वर्तमान जीवन, पूर्व जीवन के कर्मों का ही परिणाम है और वर्तमान जीवन का भावी जीवन के साथ सबध लगा हुआ है। कर्मवाद यह बतलाता है कि वर्तमान जीवन में जो भी कर्म हम करेगे उन का फल भावी जीवन में हमें प्राप्त होगा।

क्षणिकवाद :- ससार की सभी वस्तुए किसी कारण से उत्पन्न होती हैं अतः कारण के नष्ट होने पर उस वस्तु का भी नाश होता है। क्षणिक वाद इस से भी आगे जा कर कहता है कि किसी भी वस्तु का अस्तित्व कुछ काल तक भी नहीं रहता। वह केवल एक क्षण के लिए ही रहता है।

अनात्मवाद .- एक शरीर के नष्ट हो जाने पर अन्य शरीर में प्रविष्ट होने वाला 'आत्मा' नामक चिरस्थायी अदृष्ट पदार्थ का अस्तित्व बौद्ध दर्शन को मान्य नहीं है।

ईश्वर :- यह ससार दु खमय है, अत इस प्रकार के अपूर्ण ससार का निर्माता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर नहीं हो सकता। जिस प्रकार बीज से अकुर और अकुर से वृक्ष परिणत होता है, उसी प्रकार ससार का निर्माण स्वत होता है। उस के लिए किसी 'ईश्वर' नामक सर्वशक्तिमान् तत्त्व के अस्तिव को मानने की आवश्यकता नहीं है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर का अस्तित्व मानने पर मनुष्य की स्वतत्रता समाप्त होती है। वह आत्मोद्धार के लिए उदासीन हो जाएगा।

बौद्ध दर्शन के वैभाषिक, माध्यमिक, सौत्रान्तिक एव योगाचार नामक चार सप्रदाय सर्वमान्य हैं। **1) वैभाषिक सिद्धान्त** के अनुसार ससार के बाह्य एव आभ्यन्तर सभी पदार्थों को सत्य माना गया है तथा उनका ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा होता है। अत इसे "सर्वास्तिवाद" कहते है। इस सप्रदाय का सर्वमान्य ग्रथ है कात्यायनीपुत्र कृत "अभिधर्मज्ञान-प्रस्थानशास्त्र और वसुबधुकृत अभिधर्मकोश।

(2) माध्यमिक·- इस मत के अनुसार सारा ससार शून्य है। इस के बाह्य एवं आन्तर सभी विषय असत् हैं। इस मत का प्रतिपादन नागार्जुन ने अपने "माध्यमिकशास्त्र" नाम ग्रथ मे किया है।

(3) सौत्रान्तिक .- इस मत के अनुसार बाह्य एव आभ्यन्तर दोनों ही पदार्थ सत्य हैं। परतु बाह्य पदार्थ को प्रत्यक्षरूप में सत्य न मान कर अनुमान के द्वारा माना जाता है। इसी कारण इसे "बाह्यानुमेयवाद" कहते हैं। इस मत के चार प्रसिद्ध आचार्य है, कुमारलाल, श्रीलाल, वसुमित्र तथा यशोमित्र।

(4) योगाचार :- इस मत के अनुसार बाह्य पदार्थ असत्य हैं। बाह्य दृश्य वस्तु तो चित् की प्रतीति मात्र है। विज्ञान या चित् ही एकमात्र सत्य मानने के कारण इसे 'विज्ञानवाद' कहते हैं। इस सप्रदाय के प्रवर्तक हैं मैत्रेय जिन्होने मध्यान्तविभाग, अभिसमयालकार, सूत्रालकार, महायान उत्तरतत्र, एव धर्मधर्मताविभाग नामक ग्रन्थो द्वारा इस मत को प्रतिष्ठित किया। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति एव धर्मपाल इसी मत के प्रतिष्ठापक आचार्य थे।

आर्य सत्य :- भगवान् बुद्ध ने चार सत्यो का प्रतिपादन किया है - 1) सर्वं दु खम्। 2) दु खसमुदय, 3) दु खनिरोध और 4) दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद्। अर्थात् (1) जीवन जरा-मरणपूर्ण अर्थात् दु खपूर्ण है (2) उस दु ख का कारण होता है शरीर-धारण। (3) दु ख से वास्तविक मुक्त होना सभव है और (4) उस दु खमुक्ति के कुछ उपाय हैं जिन्हें 'अष्टागिकमार्ग' कहते हैं। अष्टागिक मार्ग के अवलबन से दु खनिरोध या निर्वाण की प्राप्ति अवश्य होने की सभावना के कारण, यही श्रेष्ठ आचारधर्म बौद्धमत के अनुसार माना गया है।

अष्टांगिक मार्ग ·- 1) सम्यक् दृष्टि = वस्तु के यथार्थस्वरूप पर ध्यान देना। 2) सम्यक्सकल्प = दृढनिश्चय पर अटल रहना। 3) सभ्यक्वाक् = यथार्थ भाषण। 4) सम्यक् कर्मान्त = अहिंसा, अस्तेय तथा इन्द्रिय सयम। 5) सम्यक् आजीव = न्यायपूर्ण उपजीविका चलाना। 6) सम्यक् व्यायाम = सत्कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना। 7) सम्यक् स्मृति = लोभ आदि चित्त विकारो को दूर करना। 8) सम्यक् समाधि = चित्त को राग द्वेषादि विकारों से मुक्त एवं एकाग्र करना। इस प्रकार सामान्यत

दार्शनिक विचार प्रवाह तथा आचारधर्म से युक्त बौद्ध धर्म में अवान्तर मतभेदो के कारण दो प्रधान सप्रदाय यथावसर उत्पन्न हुए -

1) हीनयान और 2) महायान। हीनयान मे बौद्धधर्म का प्राचीन रूप सुरक्षित रखने पर आग्रह है। महायान उदारमतवादी संप्रदाय है। इसी मत का प्रचार चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में हुआ। बौद्धो का सस्कृत वाड्मय महायानी पडितों द्वारा ही निर्माण हुआ है। उनके काव्यों में उपरि निर्दिष्ट चार आर्यसत्यो एव अष्टागिक मार्ग का सर्वत्र यथास्थान प्रतिपादन हुआ है।

अष्टशील :- प्रत्येक मास की अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा और अमावस्या इन तिथियो को उपोषण और अष्टशीलो का पालन, आचार धर्म में आवश्यक माना गया है।

पंचशील :- अहिंसा, अस्तेय, अव्यभिचार, असत्यत्याग, और मद्यत्याग इन गुणो को पचशील कहते हैं। बौद्ध धर्म का इस पर विशेष आग्रह है।

त्रिशरण :- बुद्ध, धर्म और सघ को शरण जाना। 'बुद्ध सरण गच्छामि- इत्यादि 'त्रिशरण' के मत्रो का त्रिवार उच्चारण किया जाता है।

9 जातक तथा अवदान साहित्य

बौद्ध धर्म में नीतितत्त्व पर अधिक बल होने कारण, नैतिक आचार का परिचय समाज को देने के लिये कथा माध्यम का उपयोग किया गया। कथाओ से मनोरजन के साथ नीति का बोध सरलता से दिया जाता है। इस कथा-माध्यम का उपयोग वेदों, ब्राह्मणो, उपनिषदों और विशेषत पुराणो में प्रचुर मात्रा में हुआ है। बौद्ध वाड्मय में इस प्रकार की नीतिपरक कथाओ को जातक और अवदान सज्ञा दी गई है। अवदान साहित्य मे जातको का भी अन्तर्भाव होता है। जातक का सर्वमान्य अर्थ है, बोधिसत्व की जन्मकथा। भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मो से सबधित घटनाओ द्वारा नीतितत्त्व का बोध देने का प्रयत्न जातक कथाओ में सर्वत्र दिखाई देता है। इस प्रकार की कथाए पालि-साहित्य में प्रचुर मात्रा मे विद्यमान हैं। इन्हीं पालि जातकों तथा श्रुतिपरपरागत जातको का सकलन कर, आर्यशूर ने जातकमाला (या बोधिसत्त्वावदानमाला) नामक प्रसिद्ध ग्रथ की रचना की। कुमारलात कृत 'कल्पनामण्डितिका' का भी स्वरूप इसी प्रकार का है। भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मो से सबधित नीति कथाओ की सख्या पाच सौ तक होती है। पुनर्जन्म और कर्मफल सिद्धान्त के अनुसार, शाक्यमुनि के रूप में जन्म लेने पूर्व, भगवान बुद्ध के राजा, सौदागर सज्जन, वानर, हाथी, इत्यादि अनेक योनियो मे उत्पन्न हुए और उन जन्मो में उन्होने क्षमा, वीर्य, दया, धैर्य, दान, सत्य, अहिंसा शाति आदि सद्‌गुणो का पालन किया ऐसा इन जातक कथाओं में बताया गया है। नीतिशिक्षात्मक कथाओ का दूसरा प्रकार है, अवदान कथा। जातक कथाएँ बुद्ध के विगत जीवन से सबधित होती हैं, जब कि अवदान कथाओ मे प्रधान पात्र स्वय बुद्ध ही होते हैं। तीसरा प्रकार है 'व्याकरण', जिसमें भविष्य की कथा वर्तमान कर्मों की व्याख्या करती है। 'बौद्धसस्कृत' मे विरचित जातको तथा अवदानो द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार सामान्य जनता मे भरपूर मात्रा में हुआ। अवदान साहित्य अशत सर्वास्तिवादी तथा अशत महायानी है। इस साहित्य में उल्लेखनीय ग्रथो में 1) यदीश्वर या नदीश्वर कृत अवदानशतक (ई-1-2 शती) 2) कर्मशतक 3) दसगुलम्, 4) दिव्यावदान, 5) कल्पद्रुमावदानमाला, 6) रत्नावदानमाला, 7) अशोकावदानमाला, 8) द्वाविशत्यवदान, 9) भद्रकल्पावदान, 10) व्रतावदानमाला, 11) विचित्रकर्णिकावदान और 12) अवदानकल्पलता- इस की रचना, औचित्यविचारचर्चा के लेखक सुप्रसिद्ध सस्कृत साहित्यिक क्षेमेन्द्र ने 11 वी शती मे की। क्षेमेन्द्र एक वैष्णव कवि थे। जातक एव अवदान साहित्य अत्यत प्राचीन होने के कारण तथा उनमे तत्कालीन समाजजीवन के अग-प्रत्यगो का वास्तव चित्रण होने के कारण, प्राचीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति के जिज्ञासुओ के लिए यह एक अद्‌भुत भडार है। प्राचीन शासनव्यवस्था, वाणिज्य, व्यापार, आचारविचार, रीति-रिवाज, सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, विदेशो से सबध इत्यादि विविध विषयों का ज्ञान नीतितत्त्वो के साथ इस साहित्य में प्राप्त होता है। एशिया और यूरोप के साहित्य को भी इन नीतिकथाओ ने प्रभावित किया है। बौद्ध सस्कृत वाड्मय का परिशीलन करते हुए यह बात विशेष कर ध्यान मे आती है कि यह सारा वाडमय बौद्धों के मूलभूत पालि वाडमय से अनुप्राणित और विदग्ध सस्कृत वाड्मय से प्रभावित है। इस वाड्मय के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मूल सस्कृत रूप मे आज अप्राप्य है किन्तु चीनी, तिब्बती, जापानी इत्यादि भाषा मे अनुवादरूप में सुरक्षित हैं और इस का व्यापक तथा गभीर अध्ययन विदेश के विद्वानो ने अधिक मात्रा किया है।

प्रकरण - 10
"काव्य शास्त्र"
1 "काव्य दर्शन"

संस्कृत भाषा के आद्य ग्रंथ ऋग्वेद में पर्याप्त मात्रा में काव्यात्मकता प्रतीत होती है। अनेक सूक्तों में रमणीय उपमा दृष्टान्त भी मिलते हैं। कुछ सूक्तों में वीररस तथा कहीं कहीं नाट्य गुण भी मिलते हैं। वेदों के षडगों में से व्याकरण और निरुक्त में शब्दों एव उनके अर्थों का विचार मार्मिकता से हुआ है। निरुक्तकार ने ऋग्वेद की उपमाओं का विश्लेषणात्मक विचार किया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में शिलालि और कृशाश्व के नटसूत्रों का निर्देश हुआ है। (4-3-110/111) इसका अर्थ पाणिनि के पूर्वकालीन शास्त्रीय वाङ्मय मे नाट्यशास्त्र की रचना का श्रीगणेश हो चुका था किन्तु अलकार शास्त्र या साहित्य शास्त्र का निर्देश अष्टाध्यायी में नहीं मिलता। व्याकरण भाष्यकार पतजलि ने "आख्यायिका" नामक साहित्यप्रकार का उल्लेख किया है और वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी नामक तीन आख्यायिकाओं का निर्देश भी किया है। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे काव्यात्मक इतिहास पुराणग्रथों का प्रचार समाज में अतिप्राचीन काल में हुआ था, किन्तु इन सारे काव्यात्मक ग्रन्थों की रमणीयता की दृष्टि से आलोचना साहित्यिक दृष्टि से करने वाला प्राचीन ग्रथ भरत कृत नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त दूसरा नहीं मिलता। नाट्यशास्त्र के विवेचन में कुछ प्राचीन ग्रथों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते है, किन्तु वे ग्रथ अप्राप्य हैं।

आधुनिक विद्वानों ने नाट्यशास्त्र की रचना ई दूसरी या तीसरी शती मानी है। अर्थात् इसके पूर्व कुछ सदियों से सस्कृत के काव्यशास्त्र की निर्मिति हो चुकी थी। नाट्यशास्त्र के 6, 7, 17, 20 और 32 क्रमाक के अध्यायो में काव्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन मिलता है, जो नाट्यशास्त्र का अगभूत हैं। नाट्यशास्त्र में रसों का विवेचन सविस्तर हुआ है। विभाव, अनुभाव, व्याभिचारि भाव, स्थायी भाव, इत्यादि रसशास्त्रीय पारिभाषिक सज्ञाओं का प्रथम उल्लेख नाट्यशास्त्र मे ही मिलता है। नाट्यशास्त्रान्तर्गत रसविवेचन ही भारतीय रस सिद्धान्त का मूल स्रोत है।

काव्यप्रयोजन

मम्मटाचार्य के काव्यप्रकाश में

"काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्य परिनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।"

इस सुप्रसिद्ध कारिका में काव्यनिर्मिति की प्रेरणा देनेवाले 6 प्रयोजन या हेतु बताए हैं 1) कीर्तिलाभ, 2) धनलाभ, 3) व्यवहारज्ञान, 4) अशुभ निवारण, 5) कान्ता के समान उपदेश और 6) तत्काल परम आनद। काव्यनिर्मिति के यह छ प्रयोजन सर्वमान्य हैं। इनमे अतिम प्रयोजन (सद्य परनिर्वृति) काव्य के समान, सगीतादि अन्य सभी ललित कलाओं का परम श्रेष्ठ प्रयोजन माना गया है। इन प्रयोजनो के साथ ही नैसर्मिक प्रतिभा, बहुश्रुतता और अन्यान्य शास्त्रविद्या, कला, आचारपद्धति आदि का ज्ञान भी सभी साहित्यशास्त्रकारों ने काव्यनिर्मिति के लिए आवश्यक माना है। विशेषत जन्मसिद्ध प्रतिभा (जिसका लाभ पूर्वजन्य के संस्कार तथा देवता या सिद्ध पुरुष की कृपा से मनुष्य को होता है।) उत्तम काव्य की निर्मिति के लिए अत्यंत आवश्यक होती है। जन्मसिद्ध प्रतिभा शक्ति के अभाव में केवल शास्त्राभ्यास आदि परिश्रमों से निर्मित काव्य की गणना मध्यम या अधम काव्य की श्रेणी में की जाती है।

साहित्य शास्त्र में शब्द और उसकी अभिधा, लक्षणा और व्यजना नामक तीन शक्तियाँ तथा उनके कारण ज्ञात होने वाले वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यग्यार्थ की गंभीरता से चर्चा हुई है। शब्द की अभिधा शक्ति के कारण, उसके मुख्य अर्थ (वाच्यार्थ) का बोध होता है। वाच्यार्थ के तीन प्रकार होते हैं .

1) रूढ अर्थ · जो लौकिक सकेत के कारण शब्द में रहता है।

2) यौगिक अर्थ शब्द के प्रकृति प्रत्यय आदि अवयवों का पृथक बोध होने से व्युत्पत्तिद्वारा इस अर्थ का बोध होता है जैसे दिनकर, सुधांशु, आदि यौगिक शब्दों से सूर्य, चंद्र आदि अर्थो का बोध होता है।

3) योगरूढ अर्थ . वारिज, जलज आदि शब्दों का यौगिक अर्थ है पानी में उत्पन्न होनेवाला शख, शुक्ति, मत्स्य, शैवल आदि

कोई भी पदार्थ। परंतु उनका योगरूढ अर्थ होता है, कमल। इस प्रकार के त्रिविध वाच्यार्थो के कारण उनके वाचक शब्द के भी रूढ, यौगिक तथा योगारूढ नामक तीन प्रकार माने जाते है।

लक्षणा : साहित्य शास्त्र में, "कर्मणि कुशल" और "गंगाया घोष" इत्यादि उदाहरण, लक्षणाशक्ति का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए सर्वत्र दिये गये है। कर्मणि कुशल उदाहरण में "कुशल" शब्द का वाच्यार्थ है कुश (दर्भ) को काटने में चतुर। इस वाच्यार्थ को प्रस्तुत वाक्य का उचित अर्थ समझने मे बाधा आती है। अत यह शब्द केवल चतुर अर्थ मे लिया जाता है। इस प्रकार वाच्यार्थ से अन्य अर्थ का बोध, शब्द की लक्षणाशक्ति के कारण होता है। उसी प्रकार, "गगाया घोष" उदाहरण में गगा शब्द का लाक्षणिक अर्थ गगातीर होता है गगाप्रवाह नही। "कर्मणि कुशल" यह रुढि लक्षणा का और "गगाया घोष" यह प्रयोजन लक्षणा का उदाहरण है। मीमासा शास्त्र मे, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा नामक लक्षणा के तीन प्रकार कहे गये है। काव्य मे तथा वक्तृत्व में लाक्षणिक शब्दो के प्रयोग से मनोरम वैचित्र्य उत्पन्न होता है।

व्यंजना : साहित्यशास्त्र में "गतोऽस्तमर्क" यह वाक्य व्यग्यार्थ के उदाहरणार्थ दिया गया है। "सूर्य का अस्त हुआ" इस वाच्यार्थ के द्वारा, ब्राह्मण, किसान, अभिसारिका, चोर, बाल-बालिकाएं आदि अनेक प्रकार के, श्रोता-वक्ताओ को उनकी वृत्ति या अवस्था के अनुसार प्रस्तुत वाक्य से भिन्न भिन्न प्रकार के अर्थो की प्रतीति होती है। ये भिन्न भिन्न अर्थ अभिधामूलक वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न होते हैं। ऐसे अर्थ को शब्द का व्यग्यार्थ कहते हैं। इस व्यग्यार्थ की प्रतीति शब्द की जिस शक्ति के कारण होती है उसे "व्यजना" कहा है। प्रकरणगत तात्पर्यार्थ की प्रतीति तात्पर्य नामक चौथी वृत्ति से मानी गयी है।

2 "अलंकारशास्त्र या साहित्यशास्त्र"

अलकार शब्द का मुख्य अर्थ है भूषण या आभरण (अलकारस्तु आभरणम्" अमरकोश)। कवि सप्रदाय में "काव्यशोभाकरो धर्म" या "शब्दार्थभूषणम् अनुप्रासोपमादि" इस अर्थ मे अलकारशब्द का प्रयोग रूढ हुआ है।

वामन ने अपने काव्यालकारसूत्र में अलकार शब्द के दो अर्थ बताए हैं। 1) सौन्दर्यम् अलकार और 2) अलक्रियते अनेन। अर्थात् काव्य में सौन्दर्य-रमणीयता, जिसके कारण उत्पन्न होते हैं अथवा काव्यगत शब्द और अर्थ मे वैचित्र्य जिसके कारण उत्पन्न होता है अथवा काव्यगत शब्द और अर्थ जिसके कारण सुशोभित होते हैं, उसे अलकार कहना चाहिये। रुद्रदामन् के शिलालेख के अनुसार द्वितीय शताब्दी ई स मे साहित्यिक गद्य और पद्य को अलकृत करना आवश्यक माना जाता था।। वात्स्यायन के कामशास्त्र मे 64 कलाओ मे "क्रियाकल्प" नामक कला का निर्देश हुआ है, जो अलकार शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

"अलंकार"

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र मे नाट्य मे प्रयुक्त 36 लक्षणो का निर्देश हुआ है। इनमे से कुछ लक्षणो को दण्डी आदि प्राचीन आलकारिकों ने अलकार के रूप मे स्वीकृत किया है। "भूषण" (अथवा विभूषण) नामक प्रथम लक्षण में काव्य के अलकारों और गुणों का समावेश हुआ है। भारत नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक और यमक ये चार नाटक के अलकार माने गये है। अलकारशास्त्र के विशषज्ञों को "आलकारिक" कहा करते थे। प्राचीन काल मे अलकारशास्त्र के अन्तर्गत केवल काव्यगत शब्दालकारो और अर्थालकारों का ही नही, अपि तु उनके साथ काव्य के गुण, रीति, रस और दोषो का भी विवेचन होता था। प्रस्तुत शास्त्र के इतिहास मे यह दिखाई देता है कि ई 9 वी शती से अलकार शास्त्र का निर्देश, "साहित्य शास्त्र" के नाम से होने लगा। शब्द और अर्थ का परस्पर अनुरूप सौन्दर्यशालित्व यही 'साहित्य' शब्द का पारिभाषिक अर्थ माना जाता है।

साहित्य शास्त्र में काव्य का प्रयोजन, लक्षण, शब्द एव अर्थ की (अभिधा, लक्षणा, और व्यजना नामक) शक्तियाँ, उन शक्तियो के कारण निर्मित वाच्य, लक्ष्य, व्यग और तात्पर्य अर्थ, इन अर्थों के विविध प्रकार, शब्दगुण, रीति, काव्यात्मा रस और उसके शृगार वीर, करुण आदि नौ प्रकार, स्थायी भाव, व्याभिचारि भाव, आलबन विभाव, उद्दीपन विभाव, रसाभास, काव्यगत शब्ददोष, अर्थदोष, रसदोष, अलकारदोष, नित्यदोष, अनित्यदोष, अनुप्रास यमक आदि शब्दालकार एव उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि अर्थालकार और उनके विविध प्रकार, इन विषयो का अन्तर्भाव होता है। मम्मटाचार्य के सुप्रसिद्ध काव्यप्रकाश में 10 उल्लास और 212 सूत्रप्राय कारिकाओ में इन सभी विषयों का समावेश किया है। हेमचन्द्रसूरि कृत काव्यानुशासन में 8 अध्यायों और 208 सूत्रों मे इन विषयो का प्रतिपादन हुआ है। हेमचद्र और विश्वनाथ (साहित्यदर्पणकार) ने नाट्यशास्त्र का भी अन्तर्भाव साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत किया है। सस्कृत साहित्यशास्त्र मे ध्वनिसिद्धान्त या रससिद्धान्त की प्रतिष्ठापना होने के पूर्व अलकार को ही काव्य के रमणीयत्व का प्रमुख कारण माना जाता था। भामह, उद्भट, रुद्रट और दडी अलंकार सप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते है। इस सप्रदाय के अनुसार वक्रोक्ति अलकार ही काव्य का प्राण है।

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति अनयाऽर्थो विभाव्यते। यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलकारोऽनया विना।।" (**भामहकृत काव्यालकार 2-85**)

अर्थात् कविता में वक्रोक्ति ही सब कुछ है। वक्रोक्ति के कारण ही काव्यगत अर्थ **विशेष रूप से प्रकाशित होता है।**

कवि ने वक्रोक्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए क्यों कि वक्रोक्ति के बिना कोई भी अलंकार प्रकट नहीं होता। सभी आलंकारिकों ने अर्थालकारों को विशेष महत्त्व दिया है। अलकारो की सख्या में यथाक्रम वृद्धि होती गयी। भरत के नाट्यशास्त्र में अनुप्रास उपमा, रूपक और दीपक इन चार ही अलंकारों का नाट्यालकारों के नाते निर्देश है। बाद में अलंकारों की संख्या बढती गयी। दण्डी ने अपने काव्यादर्श में 35 अर्थालकारों की चर्चा की। रुद्रट ने 68 अलंकारों का विवेचन करते हुए अलंकारों के वर्गीकरण के आधारभूत औपम्य, वास्तव, अतिशय तथा श्लेष आदि निमित्त प्रतिपादन किये हैं। विद्याधर ने अपने एकावली ग्रथ में औपम्य, तर्क, विरोध इत्यादि विभाजक तत्त्वों की चर्चा की है। बाद में भिन्न भिन्न अलंकारों के विविध प्रकारों का विवेचन यथोचित उदाहरणों सहित आलंकारिकों ने किया है।

अलंकारों की सख्या एव उनके लक्षणों में शास्त्रकारों का मतभेद सर्वत्र दिखाई देता है। जैसे मम्मट ने काव्यप्रकाश में 61 अलकार बताए हैं किन्तु हेमचंद्र ने 29 अर्थालकार बताए हैं। ससृष्टि अलकार का अन्तर्भाव सकर में किया है। दीपक के लक्षण में तुल्योगिता का समावेश किया है। परिवृत्ति के लक्षण मे, मम्मटोक्त पर्याय और परिवृत्ति दोनों का अन्तर्भाव किया है। रस, भाव, इत्यादि से सबद्ध रसवत्, प्रेयस्, उर्जस्वी, समाहित जैसे अलकारों का वर्णन हेमचद्र ने नहीं किया। अनन्वय और उपमेयोपमा को उपमा में ही अन्तर्भूत किया है, तथा प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना जैसे अलंकारों को निदर्शना में अन्तर्भूत किया है। मम्मट के स्वभावोक्ति और अप्रस्तुतप्रशसा को हेमचद्र ने क्रमश जाति और अन्योक्ति नाम दिये हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अनन्वय, भ्रातिमान्, स्मरण, तद्गुण, निदर्शना इत्यादि अलकारों में भेद होते हुए भी उनका आधार उपमेय और उपमान का साम्य या साधर्म्य है। उसी प्रकार विरोध के आधार पर विरोधाभास, विषम, प्रतीप, प्रत्यनीक अतद्गुण, विभावना इत्यादि अलकारों की रचना हुई है। अलंकार सप्रदाय में समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, आक्षेप जैसे अन्यार्थसूचक अलकारों में प्रतीयमान या व्यग्य अर्थ के विविध प्रकारों का अन्तर्भाव किया है जिसका प्रतिवाद ध्वन्यालोककार आनदवर्धनाचार्य ने किया है। अलंकार सप्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह ने काव्यान्तर्गत रसों का अन्तर्भाव रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वी जैसे अलंकारों में किया है।

3 "वक्रोक्ति संप्रदाय"

अलकारवादी साहित्यिकों में वक्रोक्ति अर्थात्, चातुर्य पूर्ण रीति से कथन (वैदग्ध्यभगी-भणिति) को ही काव्य की आत्मा मानने वाला एक सप्रदाय कुतक द्वारा प्रचलित हुआ। अपने वक्रोक्तिजीवित नामक ग्रथ द्वारा कुतक ने इस सिद्धान्त की स्थापना की। भामह ने अतिशयोक्ति को काव्य की आत्मा कहते हुए (अतिशयोक्तिरेव प्राणत्वेन अवतिष्ठते) उसे "वक्रोक्ति" सज्ञा दी है। दण्डी ने 1) स्वभावोक्तिमूलक और 2) वक्रोक्तिमूलक दो प्रकार का वाङ्मय माना है। उन्होंने वक्रोक्ति में श्लेष द्वारा सौन्दर्य की निष्पत्ति मानी है। उन्होंने वक्रोक्ति सिद्धान्त को व्यवस्थित स्वरूप देते हुए उसे काव्य का जीवित कहा है। वक्रोक्ति के सिद्धान्त के अनुसार पाच प्रकार माने जाते हैं 1) वर्णवक्रता, 2) पदवक्रता, 3) वाक्यवक्रता, 4) अर्थवक्रता और 5) प्रबधवक्रता। इनके अतिरिक्त उपचारवक्रता भी मानी गयी है जिसमें ध्वनि के अनेक भेदों का अन्तर्भाव किया गया है। किंबहुना ध्वनि के सभी प्रकारों का समावेश कुन्तक ने वक्रोक्ति में ही किया है। कुन्तक के बाद वक्रोक्तिजीवित का सिद्धान्त नहीं पनपा। उत्तरकालीन प्राय सभी आलकारिकों ने वक्रोक्ति को एक अलकार मात्र माना है।

सस्कृत साहित्यशास्त्रकारों ने अपने लक्षणग्रथ लिखते समय संस्कृत और प्राकृत काव्यों में भेद नही माना। इसी कारण अनेक साहित्य शास्त्रीय ग्रथों में उदाहरण के रूप में सस्कृत पद्यों के समान प्राकृत (महाराष्ट्रीय) पद्यों के भी अनेक उदाहरण दिये हैं। वाग्भटालंकार के लेखक वाग्भट तथा रसगंगाधरकार पडितराज जगन्नाथ जैसे कुछ मनीषियो ने सभी स्वरचित पद्यों के ही उदाहरण दिये हैं। कुछ ग्रथकारों ने यत्र तत्र स्वरचित श्लोकों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों के टीकाकारों की संख्या बहुत बड़ी है। इन टीकाकारों ने मूल उदाहरणों का विश्लेषण करते हुए अन्य श्लोकों के भी उदाहरण यत्र तत्र जोड दिए हैं।

4 रीति संप्रदाय

काव्य का सौन्दर्य बढ़ाने वाले तत्त्वों में अलकारों से पृथक् तत्त्व का प्रतिपादन, सर्वप्रथम वामन ने अपने काव्यालकार-सूत्र में किया। "काव्यशोभाया कर्तारो धर्माः गुणा। तदतिशयहेतव तु अलंकारा" इन सूत्रों द्वारा वामन ने गुण और अलंकारों का भेद स्पष्ट किया है। काव्य में जिन के द्वारा शोभा आती है उन्हें "गुण" कहना चाहिए और काव्यशोभा की अभिवृद्धि जिनके कारण होती है, उन्हें अलंकार कहना चाहिए। गुण, मनुष्य के शौर्य धैर्यादि के समान होते हैं और अलंकार कटक-कुण्डल-हार आदि के समान होते है। मनुष्य के शौर्य-धैर्यादि और कटककुण्डलादि में जितना भेद है, उतना ही काव्य के गुण और अलंकारों में भी है।

वामन के मतानुसार काव्यगुण 10 होते हैं · श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारत्व, ओज, कांति और समाधि। इन दस गुणों के शब्दगुण और अर्थगुण नामक दो प्रकार के माने गये हैं। मम्मटाचार्य ने इन दस गुणों का प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीन गुणों में अन्तर्भाव किया है। वे दस काव्यगुण नहीं मानते।

इन दस गुणों पर आधारित वैदर्भी, गौडी और पाचाली नामक तीन रीतियो का सिद्धान्त वामन ने प्रतिपादित किया। अल्प समासयुक्त सर्वगुणमयी "वैदर्भी," दीर्घसमासयुक्त आजोगुणप्रचुर गौडी तथा मध्यमसमासयुक्त माधुर्य-मौकुमार्यगुणयुक्त पाचाली रीति वामन ने प्रतिपादन की है। यह रीति ही उनके मतानुसार काव्य की आत्मा होती है। कालिदास के काव्य मे वैदर्भी, भवभूति के नाटकों में गौडी और बाणभट्ट की कादम्बरी मे पाचाली रीति स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। इन तीन रीतियों के अतिरिक्त रुद्रट ने लाटी और भोज ने आवंती एव मागधी नामक रीतियों का प्रतिपादन किया। मम्मट ने रीतिवाद का खडन करते हुए, उपनागरिका, परुषा और ग्राम्या नामक तीन प्रवृत्तियो का प्रतिपादन किया है। उपरिनिर्दिष्ट छ रीतियो के नाम विदर्भ, गौड, पंचाल, लाट, अवती और मगध इन प्रदेशा के नामा स जुडे होन क कारण, उन प्रदेशों मे उनक नाम की रीति का सबध जोडा जाता है। परतु उसमें कोई तथ्य नही है। रीतियों के नाम प्रादेशिक है, किन्तु व साहित्यशास्त्र के पारिभाषिक अर्थ मे ग्रहण करने चाहिए।

5 "काव्यदोष"

'वाक्य रसात्मक काव्यम्" यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त स्थापित हाते ही, "रसापकर्षक" या रसहानिकारक कारणो का विवेचन आवश्यक हो गया। इन रसापकर्षक कारणों को ही साहित्य शास्त्रज्ञो ने "काव्यदाष", कहा है। "रसापकर्षका दाषा" यह दोषो का लक्षण भी सर्वमान्य हुआ है। दोषविवेचन मे शब्ददोष, अर्थदोष, अलकारदोष, नित्यदोष अनित्यदोष, इत्यादि प्रकारा से दोषो का वर्गीकरण किया गया और उन के उदाहरण सस्कृत साहित्य क कालिदासादि श्रेष्ठ महाकविया के काव्यो से उद्धृत किये गये हैं। काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण जैसे ग्रथों मे किया हुआ काव्यदोषो का विवेचन अत्यत मार्मिक एव सर्वकष है। साहित्यशास्त्रज्ञो की अपेक्षा है कि, काव्य में लेशमात्र दोष नही रहना चाहिए। जिस प्रकार एकमात्र कुष्ठव्रण से सारा सुदर शरीर दुर्भग हो जाता है, उसी प्रकार लेशमात्र दोष स सुन्दर काव्य भी निंदास्पद हो जाता है। काव्यरचना मे रुचि रखने वाले प्रत्येक प्रतिभासपन्न साहित्यिक को सस्कृत साहित्यशास्त्र के विविध सिद्धान्तों का और विशेषत काव्यदोषो का सम्यक् आकलन करना अत्यत आवश्यक है। (साहित्य शास्त्र विषयक ग्रथो की जानकारी के लिए साहित्य विषयक परिशिष्ट देखिए।)

6 रससिद्धान्त

साहित्यशास्त्र में रससिद्धान्त का विवेचन सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र म हुआ है। "विभाव अनुभाव-व्यभिचारि-सयोगाद् रसनिष्पत्ति" इस नाट्यशास्त्रोक्त सूत्र के आधार पर साहित्य शास्त्रीय ग्रथा म रससिद्धान्त का चर्चा हुई है। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि (या सचारी) भावो के सयोग स, (जैसे किसी मिष्टान्न या मधुर पेय मे अन्यान्य सुस्वादु पदार्थों के सयाग स, स्वतत्ररस (या स्वाद) निष्पन्न हाता है।) काव्य-नाटकादि साहित्य क द्वारा सहृदय पाठक के अन्त करण मे, रसनिष्पत्ति होती है। रससूत्र मे प्रयुक्त "निष्पत्ति" शब्द का अर्थ निर्धारित करन म मतभद निर्माण हुए। इस रस सिद्धान्त का विवेचन करत हुए कुछ महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग साहित्यशास्त्र म हुआ है। जैस

1) स्थायी भाव . मनुष्य क अन्त करण में निसर्गत रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय नामक आठ भाव स्वयभू होते है। इनके अतिरिक्त निर्वेद , वात्सल्य, भक्ति इत्यादि अन्य स्थायी भाव भी माने गये हैं। इन स्थायी भावो की अभिव्यक्ति या उद्दीपित अवस्था को रस कहते है।

विभाव - वासनारूपतया स्थितान् रत्यादीन् स्थायिन विभावयन्ति, रसास्वादाकुरयोग्यता नयन्ति इति विभावा । अर्थात् जिन के कारण अन्त करण म वासना या प्राक्तन सस्कार के रूप से अवस्थित रति हास, शोक, क्रोध आदि स्थायी भाव आस्वाद के योग्य अकुरित होते है, वे विभाव कहलाते है। विभाव के दो प्रकार माने जाते है (1) आलबन और (2) उद्दीपन। काव्य एव नाटक के नायक-नायिका आलबन विभाव और उनके सबध क अवसर पर वर्णित नदीतीर, कुजवन आदि स्थल, शरद्, वसत आदि समय, गुरुजनो का असान्निध्य, जैसी परिस्थिति का उद्दीपन विभाव कहा जाता है। शाकुन्तल नाटक में दुष्यन्त-शकुन्तला आलबन विभाव है और कण्वाश्रम, मालिनी तीर, कुसुमावचय आदि उद्दीपन विभाव है, जिनके कारण सहृदय दर्शक या पाठक क अन्त करण मे रति स्थायी भाव का उद्दीपन होता है।

अनुभाव- "अनुभावयन्ति रत्यादीन् -इति अनुभावा" अर्थात् हृदयस्थ स्थायी भाव का अनुभव देन वाले, स्वेद, स्तम्भ, रोमाच, अश्रुपात इत्यादि शरीरगत लक्षणो का अनुभव कहते है।

व्यभिचारीभाव : "विशेषेण अभित काव्ये स्थायि-न चारयन्ति इति व्यभिचारिण -" अर्थात् स्थायी भाव का परिपोष करत हुए, उसे काव्य मे सर्वत्र सचारित करने वाले अस्थिर एव अनिश्चित भावो को व्यभिचारी या सचारी भाव कहते हैं। शास्त्रकारो ने 33 प्रकार के व्यभिचारी भाव निर्धारित किये है वैराग्य, ग्लानि, शका, मत्सर, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिता, मूर्च्छा, स्मृति, धैर्य, लज्जा, चापल्य, हर्ष, आवेग, जडता, गर्व, खेद, उत्सुकता निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, जागृति, क्रोध, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

उपरिनिर्दिष्ट (रति-हास आदि) स्थायी भावों का उद्दीपन, काव्यगत विभाव, अनुभाव, व्याभिचारि भावों के संयोग से होकर शृंगार (विप्रलंभ एवं शृंगार) हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शांत, वात्सल्य और भक्ति नामक रसों की निष्पत्ति सहृदय काव्यास्वादक के हृदय में होती है। अभिनवगुप्ताचार्य ने अपने ध्वन्यालोकलोचन नामक टीका ग्रंथ में रसनिष्पत्ति के सबंध में, भट्ट लोल्लट, भट्टनायक और भट्ट शंकुक, इन आचार्यों के मतों का परिचय देते हुए अपने मत का प्रतिपादन किया है। मम्मटाचार्य ने अपने काव्यप्रकाश में इस चर्चा का सक्षेप देते हुए, अभिनवगुप्ताचार्य के अभिव्यक्तिवाद का समर्थन किया है।

भट्ट लोल्लट के मतानुसार विभाव, अनुभाव और व्याभिचारि भावों का पात्रगत स्थायी भाव से संयोग होकर (राम-सीता आदि पात्रगत) स्थायी भाव उद्बुद्ध और परिपुष्ट होते हैं। यह परिपुष्ट स्थायी भाव ही रस कहलाता है। रस वस्तुतः राम-सीता दुष्यन्त-शकुन्तला आदि अनुकार्य पात्रों में होता है, किन्तु नटों के कौशल्यपूर्ण अनुसंधान के कारण उसकी प्रतीति नट में ही होती है।

शंकुक के मतानुसार विभाव-अनुभाव आदि लिंगों या साधनों द्वारा नटगत स्थायी भाव का दर्शक को अनुमान होता है। नट को, अनुकार्य रामादि से अभिन्न मानते हुए उस अनुमित स्थायी भाव का आस्वाद सहृदय द्वारा लिया जाता है। "चित्र-तुरग न्याय" (अर्थात् मिट्टी या लकडी के घोडे को बालक सच्चा घोडा मानता है) से कौशल्यपूर्ण अभिनय के कारण, नट में रामादि पात्रगत स्थायी का आभास होता है। यही मिथ्या ज्ञान रूप आभास, रस कहलाया जाता है। इस मत के अनुसार रस पात्रों में नहीं, अपि तु नटों में होता है।

अभिनवगुप्त के मतानुसार, विभावादि का अनुभव पाते हुए, विभावनीय और अनुभावनीय चित्तवृत्ति में उद्बोधित वासनारूप स्थायी की चर्वणा ही रस है। इस मत के अनुसार रस का आधार, पात्र या नट दोनों नहीं अपि तु नाट्य काव्यादि के सहृदय आस्वादको का अन्तःकरण होता है।

भट्टनायक के मतानुसार रस की "निष्पत्ति", याने उसकी उत्पत्ति, अनुमिति या प्रतीति नहीं, अपि तु "भोज्य-भोजक संबध" के कारण, रसिक द्वारा होने वाली भुक्ति है। भरत के रससूत्र में प्रयुक्त "निष्पत्ति" शब्द का अर्थ न्याय, सांख्य, वेदान्त जैसे पारमार्थिक दर्शनों के अनुसार निर्धारित करने के प्रयत्न से, साहित्यशास्त्रियो में इस प्रकार मतभेद उत्पन्न हुए। विद्वत्समाज में सामान्यत अभिनव-गुप्ताचार्य का मत ग्राह्य माना जाता है। भट्नायक ने रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया में विभावादि सामग्री के "साधारणीकरण" की अवस्था प्रतिपादन की है। तदनुसार साहित्यिक कलाकृति का आस्वाद लेते समय, विभावादि का विशिष्ट व्यक्ति, देश, काल आदि से सबध छूट कर, वे सार्वदेशिक और सार्वकालिक स्वरूप ग्रहण करते हैं, जिसके कारण काव्यनाट्यादि कलाकृति और उसके आस्वादक में भोज्य-भोजक भाव सबंध निर्माण होता है, और उन्हें रस की निर्विघ्न प्रतीति होती है। भट्नायक की यह साधारणीकरण की प्रक्रिया अभिनव गुप्ताचार्य ने भी ग्राह्य मानी है।

काव्यनाट्यादि द्वारा यथोचित मात्रा में रसनिष्पत्ति होने के लिये, कवि तथा कलाकारों को अत्यंत सतर्क रहना पडता है। इस सतर्कता में कुछ त्रुटि रहने पर रसनिष्पत्ति में विघ्न निर्माण होते हैं। किसी कलाकृति में कवि द्वारा औचित्य का पालन नहीं हुआ, या दर्शकों द्वारा कलाकृति का योग्य आकलन नहीं हुआ तो रसनिष्पत्ति नहीं होती। "अनौचित्य" रसभंग का प्रमुख कारण माना जाता है। (अनौचित्यादृते नान्यत् रसभगस्य कारणम्) यह औचित्यवादियों का मत सर्वमान्य है। नाट्यप्रयोग में रसविघ्न तथा अन्य विघ्नों का निवारण करने हेतु भरत ने "पूर्वरंग" का विधान किया है। काव्य -नाटकों का आस्वादक अपने निजी सुख दु:ख के कारण व्यस्तचित्त होगा, तो उसे ठीक रसास्वाद मिलना सभव नहीं होता। रसिक दर्शकों को निजी सुख दु:खों से मुक्त करने के हेतु नाट्यप्रयोग में गीत एवं नृत्य का विधान भरत ने किया है।

भरताचार्य ने नाट्य की दृष्टि से शृगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स और रौद्र आठ ही रस माने हैं। उद्भट ने नौवा शात रस माना है। इनके अतिरिक्त भक्ति का रसत्व मधुसूदन सरस्वती, रूपगोस्वामी जैसे वैष्णव विद्वानों ने एक ही रस वास्तव मानते हुए, अन्य रसों को गौणत्व दिया है, जैसे भोज ने अहकार ही एक मात्र रस कहा है। अन्य रसों को उन्होंने भाव माना है। भवभूति "एको रस· करुण एव" कहते हैं, अन्य रसों को जलाशय के आवर्त, तरंग, बुदबुदों के समान विवर्त मात्र मानते है। अग्निपुराणने शृंगार को, मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को, नारायण ने अद्भुत को ही प्रमुख रस माना है।

"शृगाराद् हि भवेत् हासो रौद्राच्च करुणो रसः। वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्ति· बीभत्साच्च भयानकः।।

इस कारिका में शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स को 'जनक' और हास्य, करुण, अदभुत तथा भयानक को उनके 'जन्य' रस माना है। आधुनिक काव्यों में भक्ति ने देशभक्ति का स्वरूप ग्रहण किया है और कुछ विद्वान देशभक्ति रस को देवभक्ति से पृथगात्म मानते है।

साहित्य शास्त्रकारों ने सभी रसों को सुखकारक या आनंददायक माना है। किन्तु शोक स्थायी भाव के उद्दीपन से प्रतीत होनेवाला करुण रस इस विषय में विवाद का विषय हुआ है। जिन्होंने करुण को दु:खरूप माना है, उनका खंडन करते हुए कहा गया है, कि -

"करुणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्। सचेतसामनुभव. प्रमाणं तत्र केवलम्।।"

अर्थात् करुण जैसे शोक स्थायी भाव पर अधिष्ठित रस की प्रतीति से परम सुख होता है, इस का एकमात्र प्रमाण है सहृदयों का अनुभव। अगर करुण रस की प्रतीति से सुख के अलावा दु:ख ही होता, तो उसकी ओर सहृदयों की प्रवृत्ति नहीं होती। संसार में दु:खदायक विषयों की ओर कोई भी प्रवृत्त नहीं होता।

नाट्यदर्पणकार रामचंद्र गुणचंद्र ने रसों के दो प्रकार माने हैं। 1) सुखात्मक और 2) दु:खात्मक। शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शांत रस सुखात्मक हैं और करुण, भयानक, बीभत्स तथा रौद्र रस दु:खदायक माने है। काव्य-नाटकों मे केवल दु:खात्मक रस नहीं होते, श्रेष्ठ साहित्यिक सुखात्मक और दु:खात्मक दोनो रसो का सम्मिश्रण अपनी कलाकृति मे करते हैं। सुखात्मक रसों की पृष्ठभूमि पर, दु:खात्मक रस भी आनंददायी होत है। इसी कारण दु:खदायक करुण रस सुखप्रद होता है।

ब्रह्मानंदसहोदर

श्रुति के "रसो वै स:" इस वचन में सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा को रस रूप कहा है। यद्यपि विषयानंद, ब्रह्मानन्द और रसानंद इन तीन प्रकारों से आनंद का त्रिविध निर्देश होता है तथापि उनमें विषयानंद लौकिक होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जैसे प्राकृतिक विषयों की अनुकूल संवेदना से विषयानंद की अनुभूति मनुष्यमात्र को होती है। इस अनुभूति के लिये "सहृदयता" की आवश्यकता नहीं होती। रसानंद की प्रतीति काव्य-नाट्यादि कलाकृतियो के तन्मयतापूर्वक आस्वाद से सहृदय को ही होती है और ब्रह्मानंद की अनुभूति ध्यानयोग मे सिद्धता प्राप्त होने पर निर्विकल्प समाधि की अवस्था मे योगी को ही होती है। रसानंद का अधिकारी "सहृदय" होता है, तो ब्रह्मानंद का योगी होता है। ब्रह्मानंद का महारस कुछ और ही है। उसकी तुलना में काव्य-नाट्यादि, के आस्वाद से प्रतीत होनेवाला रसानंद गौण होने के कारण उसे "ब्रह्मास्वाद का सहोदर" या "ब्रह्मानंदसचिव" कहा है। ब्रह्मानंद या महारस की अनुभूति के लिये, अन्त:करणस्थ समस्त वासनाओ का उच्छेद होना आवश्यक होता है, किन्तु शृंगारादि नवरसों की प्रतीति के लिए, वासनागत राजसिकता और तामसिकता का क्षय किन्तु सात्विकता का परिपोष आवश्यक होता है। संपूर्ण वासनाहीन अवस्था से सात्त्विक वासनायुक्त अवस्था गौण होने के कारण भी, रसानंद को ब्रह्मानंद का सचिव या सहोदर (भ्राता) कहना उचित ही है।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे, नाटकोचित आठ रसो का प्रतिपादन किया है, किन्तु वे इन विविध रसों का मूलाधार एक "महारस" मानते है। शृंगारादि विविध रस इस महारस के अंश मात्र है। महारस का एक अवर्णनीय स्थायी भाव होता है। रजोगुण और तमोगुण से निर्मुक्त चित्त की शुद्ध सत्वात्मक अवस्था ही यह स्थायी भाव है। चित्त के इस शांत और आनन्दमयी अवस्था का निर्देश, अलंकारकौस्तुभकार कर्णपूर ने "आस्वादांकुर" शब्द मे किया है यह आस्वादांकुर विभावादि रूप उपाधियो के संयोग से, शृंगारादि रसों की अवस्था मे पल्लवित और पुष्पित होता है। संसार में एकता मे अनेकता की प्रतीति उपाधियो के कारण ही होती है। वस्तुत: एकमेवाद्वितीय आनंद मे शृंगारवीरादि अनेकविध आनंदो की प्रतीति विभावादि उपाधियो के कारण ही होती है।

(आगामी नाट्य वाड्मय विषयक प्रकरण मे नाट्यशास्त्र की चर्चा मे नाट्यदृष्ट्या रस का विवेचन किया है।)

प्रकरण - 11
"नाट्यवाङ्मय"

1 नाटको का प्रारंभ

संस्कृत साहित्यशास्त्रकारों ने काव्य के दो प्रकार माने है। 1) श्राव्य और 2) दृश्य। नाट्यवाङ्मय का अन्तर्भाव दृश्य अथवा दृश्य श्राव्यकाव्य में होता है। भारतीय परपरा के अनुसार नाट्यो का उदगम् अन्य सभी विद्याओं के समान, वेदो से माना जाता है। ऋग्वेद मे कुछ नाट्यानुकूल मनोरम सवाद मिलते हैं, जैसे 1) सरमापणि, 2) यम-यमी, 3) विश्वामित्र-नदी 4) अग्नि-देव और 5) पुरुरवा ऊर्वशी। इन सवादों का गायन या पठन अभिनय सहित होने पर नाट्यदर्शन का अनुभव हो सकता है। दशम मडल के 119 वे सूक्त मे सोमयाग से प्रमत्त इन्द्रदेव का भाषण "स्वगत" या आकाशभाषित" सा प्रतीत होता है। आठवे मडल के 33 वें सूक्त म, प्लायोगी नामक स्त्रीवेषधारी पुरुष को इन्द्र द्वारा दिए हुए आदेशो मे नाटकीयता का प्रत्यय आता है।

यजुर्वेद के रुद्राध्याय मे और अथर्ववेद के खिलसूक्त (नवम काड 134 वा सूक्त) मे कुमारी और ब्रह्मचारी के सवाद मे नाट्यात्मकता पर्याप्त मात्रा मे दिखाई देती है।

वैदिको की यज्ञविधि में नाटको का मूल देखने वाले विद्वान, सोमयाग का सामक्रय और महाव्रत यज्ञ मे चलने वाले नट-नटी के नृत्य गीत तथा वाद्यो की ओर सकेत करते है। उपनिषदो के कुछ सवादो पर आधारित छोटे छोटे संस्कृत नाट्यप्रवेश कर्नाटक के एक विद्वान डॉ पाडुरगी ने हाल ही मे प्रकाशित किए हैं।

वेदोत्तरकालीन वाल्मीकि रामायण (1-18-18) मे और महाभारत (वन पर्व 15-14, शातिपर्व 69, 51, 60) मे पौराणिक एव ऐतिहासिक उपाख्यान के अर्थ मे "नाटक" शब्द का प्रयोग हुआ है। उन आख्यान-उपाख्यानो का साभिनय गायन, नाटक का आभास कर सकता है। हरिवंश के विष्णुपर्व मे एक उल्लेख आता है, जिस मे प्रद्युम्न, साब और गद इन तीन यदुपुत्रो द्वारा प्रयुक्त रभा-नलकूबर की कथा के नाट्यप्रयोग का उल्लेख आता है। हरिवंश मे दूसरा उल्लेख मिलता है कि वज्रणाभ दैत्य का दमन करने के लिए श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रो का नियुक्त किया था। अपने प्रयाण के समय उन्होने एक रामायणीय घटना पर आधारित नाट्यप्रयोग किया था।

नाटको के अस्तित्व का प्राचीन निर्देश पाणिनि (ई पू 6 शती) की अष्टाध्यायी मे "पाराशर्यशिलालिभ्या भिक्षुनटसूत्रयो" और "कर्मन्दकृशाश्वादिनि" इन सूत्रो में मिलता है। तदनुसार शिलालि और कृशाश्व के नटसूत्र नामक ग्रन्थो के अस्तित्व का अनुमान किया जाता है। इन नटसूत्रो मे भरतनाट्यशास्त्र के समान नाटको मे सबंधित नियम रहे होंगे। ऐसे नियम लक्ष्यभूत नाट्यवाङ्मय के अभाव मे होना असंभव है। लक्ष्य ग्रथो के अभाव म लक्षण ग्रथ कभी भी नही हो सकते। काशिकावृत्ति के अनुसार, नाट्यग्रथो की प्राचीन काल मे आम्नाय जैसी प्रतिष्ठा थी। भरतनाट्यशास्त्र, नटो को शैलालिक कहता है, तो पाणिनि उन्हें शैलालिन् कहते है।

पतजलि के महाभाष्य मे "य तावद् एते शोभनिका नाम एते प्रत्यक्ष कस घातयन्ति, प्रत्यक्ष बलि बन्धयन्ति" इस प्रकार के वाक्य आते है जिनसे तत्कालीन नाट्यप्रयोग का अनुमान हो सकता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र (ई पू 4 थी शती) म गुप्तचरो मे नट-नर्तको का उल्लेख किया है। नाट्यशाला और कलाकारो का प्रशिक्षण भी वहा निर्दिष्ट है।

प्राचीन बौद्ध और जैन वाङ्मय मे भी नाटकों के धार्मिक महत्त्व का परिचय मिलता है। बौद्ध सूत्रो मे भिक्षुओ के लिए, विसुकदस्सन, नच्च, पेक्खा आदि अज्ञात स्वरूप वाले दृश्य देखने का निषेध किया गया है। परतु कालान्तर मे यह भाव बदल गया होगा, क्यों कि आज उपलब्ध प्राचीनतम नाटक (सारिपुत्त प्रकरण) अश्वघोष कृत बौद्ध वाङ्मय के अन्तर्गत है। ललितविस्तर मे भगवान बुद्ध को नाट्यकला का भी ज्ञाता बताया गया है। बुद्ध के समकालीन बिंबिसारने एक नाटक का अभिनय कराया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। अवदानशतक के अनुसार नाट्यकला बहुत प्राचीन है। सद्धर्मपुण्डरीक पर बौद्ध नाटकों का ही प्रभाव लक्षित होता है।

जैनों ने भी नाट्य, सदृश्य विहारो के निषेध के साथ साथ गीत, वाद्य और नृत्य के अभिनय को मान्यता दी है। अपने धर्म के प्रचार के लिए जैनियो ने भी नाटकों का आश्रय लिया है।

इन विविध प्रमाणों से अतिप्राचीन काल से भारत में नाट्यवाङ्मय तथा नाट्यकला का विकास और विस्तार हुआ था, यह तथ्य सिद्ध होता है। इस विषय के अगों एव उपागो की शास्त्रीय चर्चा भी ससार के इस प्राचीनतम राष्ट्र में अतिप्राचीन काल से शुरु हुई दिखाई देती है।

भरत का नाट्यशास्त्र

भरताचार्य कृत नाट्यशास्त्र यह ग्रथ भारतीय नाट्यशास्त्रीय वाङ्मय मे अग्रगण्य और परम प्रमाणभूत याने "पचम वेद" माना गया है। भरत के आविर्भाव का काल निश्चित नहीं है। युरोपीय विद्वानो मे हेमन के मतानुसार भरत इसा पूर्वकालीन हैं। रेनॉड के मतानुसार ईसा की प्रथम शती, पिशल के मतानुसार ईसा की छठी या सातवीं शती, श्री प्रभाकर भाडारकर के मतानुसार ई 4 थी शती और हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार ईसापूर्व दूसरी शती मे नाट्यशास्त्रकार भरत का आविर्भाव माना गया है। इस प्राचीन नाट्यशास्त्रकार ने अपने पूर्ववर्ती, शिलाली, कृशाश्व, धूर्तिल, शाण्डिल्य, स्वाति, नारद, पुष्कर आदि शास्त्रकारों का नामोल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अभिनवभारती (भरतनाट्यशास्त्र की टीका) मे सदाशिव, पद्म और कोहल का उल्लेख आता है। धनिक के दशरूपक में द्रुहिण और व्यास के नाम मिलते है और शारदातनयकृत भावप्रकार मे आजनेय का निर्देश हुआ है। ये सारे नाम पुराणों, सूत्रग्रंथों और वैदिक सहिताओं मे यत्र तत्र मिलते है।

भरत के नाट्यशास्त्र मे सगीत, नृत्य, शिल्प, छन्द शास्त्र, विविध भाषा प्रयोग, रगभूमि की रचना, नट, श्रोतागण, इत्यादि नाट्यकलाविषयक विविध विषयों का विवेचन हुआ है। मातृगुप्त, भट्टनायक, शकुक (9 वीं शती) और अभिनवगुप्त (ई 10 वीं शती) इन विद्वानों ने नाट्यशास्त्र पर टीकाए लिखी हैं। अग्निपुराण (अ 337-341) मे नाट्यविषयक जो भी जानकारी दी गई है, उसका आधार भरतनाट्यशास्त्र ही माना जाता है।

नाट्य की कथारूप उपपत्ति

भरतमुनि ने नाट्य के उदगम की उपपत्ति कथारूप में बताई है। तदनुसार त्रेतायुग मे कामक्रोधादि विकारो से त्रस्त इन्द्रादि देवता ब्रह्माजी के पास जाकर स्त्री-शूद्रादि अज्ञ लोगों का मनोरजन करने वाले दृश्य और श्राव्य क्रीडासाधन की याचना करने लगे। ब्रह्माजी ने उनकी बात मानकर, चतुवर्ग और इतिहास से सम्मिलित "पचम वेद" अर्थात् नाट्यवेद निर्माण किया है।

"जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथवर्णादपि।।"

इस वचन के अनुसार, ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद स नृत्यादि अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर ब्रह्माजी ने उन देवताओ की अपेक्षा पूरी की। ब्रह्मा के आदेश से विश्वकर्मा ने रगशाला बनाई। अपने सौ पुत्रो की सहायता से, शिवजी से ताण्डव, पार्वती से लास्य और विष्णु भगवान् से नाट्यवृत्तियाँ प्राप्त कर, इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर, भरतमुनि ने प्रथम नाट्यप्रयोग किया जिसमे देवताओं की विजय और असुरों की पराजय दिखाई गई थी। अपने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्यप्रयोग की यह अद्भुत उपपत्ति भरत मुनि ने दी है। इसी अध्याय में नाट्य की व्याख्या बताई है।

"योऽय स्वभावो लोकस्य सुखदु:खसमन्वित। सोऽङ्गाद्यभिनयोपेत नाट्यमित्यभिधीयते।। (नाट्यशास्त्र 1-119)

अर्थात् इस ससार में व्यक्त हुआ, मानवों का सुखदु:खात्मक स्वभाव, जब अगादि अभिनयों द्वारा प्रदर्शित होता है, तब उसे नाट्य कहते हैं।

पाश्चात्य विचार

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय नाटक की उत्पत्ति के विषय मे विविध प्रकार की उपपत्तियाँ देने का प्रयास किया है। श्री वेबर और विंडिश का मत है कि भारत में नाटकों का प्रादुर्भाव यूनानी नाटक से हुआ है। भारत में रहे हुए यूनानी शासकों ने अपनी राजसभाओं मे यूनानी नाटकों का अभिनय कराया होगा। उनके प्रभाव से भारतीय साहित्यिको ने सस्कृत भाषा मे नाटक रचना की होगी। ई पू प्रथम शताब्दी में यूनानी शासक भारतीय जीवन में सम्मिलित होने लगे थे। बादशाह सिकन्दर नाटकों में विशेष रुचि रखता था। उसके विजित देशों में सर्वत्र यूनानी नाटकों का अभिनय हुआ होगा। उस प्राचीन काल में उज्जयिनी और अलेक्ज़ेंड्रिया में व्यापार होता था। सस्कृत नाटक मे "यवनिका" (या जवनिका) शब्द का प्रयोग मिलता है। यह शब्द यूनानी प्रभाव का द्योतक है, क्यों कि यह यवन (अर्थात यूनानी) शब्द से व्युत्पन्न हुआ है।

भारतीय और यूनानी नाटक में वस्तुसाम्य पाया जाता है। दोनो में राजा का एक युवती से प्रेम, उसमें अनेक विघ्न और अंत में सुखदायक मिलन, अभिज्ञान, प्रयोग, डाकुओं द्वारा नायिका का अपहरण, समुद्र मे जहाज टूटने से नायिका का विपत्तिग्रस्त होना आदि बातें दोनों देशों के नाटको में पाई जाती हैं।

श्री पिशेल ने "सूत्रधार" जैसे शब्दों के आधार पर सस्कृत नाटक की उत्पत्ति का स्रोत, कठपुतली के नाच को माना है।

डॉ कीथ, मेक्समूलर, हर्टेल, ओल्डेनबर्ग जैसे विद्वान, ऋग्वेद के सवाद सूक्तों में सस्कृत नाटको का मूल देखते हैं। उनके मतानुसार इन सवादात्मक सूक्तों की सख्या अनिश्चित होते हुए भी पर्याप्त है। याज्ञिक परपरा में इन सवादो का कोई उपयोग ज्ञात नहीं है। ओल्डेनबर्ग का मत है कि इन सूक्तो के मत्र किन्ही गद्यमय आख्यानो के अग है, जिनमें उत्कट भावो को पद्यों में ग्रथित किया गया था। इस मत का प्रतिपादन करने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण के शुन शेप आख्यान और शतपथ ब्राह्मण के पुरुरवा-ऊर्वशी आख्यान के उदाहरण दिये जाते हैं। प्रो कीथ और हिलेब्राड जैसे विद्वानों ने सस्कृत नाटक की उत्पत्ति की कल्पना वैदिक यज्ञों की कुछ विधियों मे मानी है। इसके उदाहरण मे, सामयाग मे सोमक्रय और महाव्रत मे श्वेतवर्ण वैश्य और कृष्ण वर्ण शूद्र का झगडा (जिसमें वैश्य विजयी होकर श्वेतवर्ण गोल चर्मखड को प्राप्त करता है) निर्दिष्ट किया जाता है।

पातजल महाभाष्य मे उल्लिखित कसवध और बलिबन्ध को धार्मिक नाटक मानकर डा कीथ सस्कृत नाटकों की उत्पत्ति और विकास, धार्मिक कृत्यो और भावनाओ मे निहित मानते हैं। उनके विचार मे कसवध मे, वनस्पतियो की श्रीवृद्धि की कामना के निमित्त क्रियाकलापो का ही परिष्कृत रूपकात्मक वर्णन है।

नाटको में विदूषक की सत्ता भी, नाटको की धार्मिक क्रियाओ मे उत्पत्ति की द्योतक मानी गई है। "विदूषक' पद का अर्थ है दूषण, गालियाँ देनेवाला व्यक्ति। सस्कृत नाटकों मे, विदूषक का रानी की दासियो से कई बार गरमागरम उत्तर प्रत्युत्तर होता है जिसमे उसे मार भी खानी पडती है। इस घटना का मूल डा कीथ, महाव्रत के ब्राह्मण-गणिका सवाद तथा सोमयाग के सोमक्रय मे पीटे जानेवाले शूद्र से जोडते है। विदूषक ब्राह्मण होता है, अत उसका मूल महाव्रत के ब्राह्मण-गणिका सवाद के गालीप्रदान मे हो सकता है।

नाटक के प्रारभ मे, इन्द्रध्वज का नमस्कार प्रमुख कृत्य है। भरतनाट्यशास्त्र मे उल्लखित मृत्युलोक में प्रदर्शित सर्वप्रथम नाटक का प्रयोग भी "इन्द्रध्वजमह" (मह - उत्सव) के अवसर पर किया गया था। इन्द्रध्वजप्रणाम का यह प्रमुख कृत्य भी नाटक की धार्मिक उत्पत्ति का एक प्रबल प्रमाण माना जाता है। प हरप्रसाद शास्त्री नाटक की उत्पत्ति इन्द्रध्वज प्रमाणाम की विधि में ही मानते है।

कृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर, कृष्ण के जन्म और कस के वध का अभिनय कृष्ण की रासलीला और कृष्ण यात्राए, भारतीय नाटक पर कृष्णोपासना का प्रभाव सूचित करती हैं। नाटको मे शौरसेनी गद्य की प्रधानता भी श्रीकृष्ण की लीलाभूमि (शूरसेन प्रदेश) का प्रभाव सूचित करती है। श्री बेलवलकर जैसे कुछ विद्वान् नाटक का उदगम वैदिक कर्मकाण्ड के साथ किये जाने वाले विनोदों मे मानते है।

प्रो हिलेब्राड और कानो का मत है कि नाटक की उत्पत्ति धार्मिक क्रियाकलापो से मानना अयोग्य है। इन को नाटक के विकास मे सहायक माना जा सकता है। नाटक का मूल लौकिक ही है। लोगो मे अनुकरण की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। उस अनुकरण की कला मे निपुण कुशीलव, सूत, भड जैसे कलाकारो ने रामायण, महाभारत आदि वीरकाव्यो की सहायता से नाटकों का विकास किया है। ये अनुकरण कुशल लोग गाने, बजाने, नाचने मे तथा इन्द्रजाल मूक अभिनय और तत्सदृश कलाओ मे भी निपुण थे। प्रो ल्यूडर्स के विचार मे सस्कृत नाटक के विकास मे "छाया नाटक" एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहा है। महाभाष्य मे वर्णित "शोभनिक" (अथवा शोभिक) मूक अभिनेताओ या छायामूर्तियो की चेष्टाओं के व्याख्याता थे। प्रो ल्यूडर्स यह भी जानते हैं कि वीरकाव्यो की कथाओ को छायाचित्रों द्वारा हृदयगम कराया जाता था। प्राचीन नटो की कला से मिलकर छायाचित्रो का प्रदर्शन नाटक के रूप मे परिणत हो गया।

प्रो लेवी का विचार है कि भारतीय नाटक पहले प्राकृत भाषा मे अस्तित्व मे आए। सस्कृत चिरकाल तक धार्मिक भाषा मानी जाती रही। उसका साहित्य मे प्रयोग बहुत बाद मे हुआ। तब ही नाटकों मे क्रमश सस्कृत का प्रयोग आरभ हुआ। उनके विचार में नाटको में प्राकृत भाषाप्रयोग का यथार्थता से कोई सबध नही क्यों कि भारतीयों में यथार्थकला के सृजन की प्रवृत्ति का अभाव रहा है। अपने इस मत की पुष्टि मे उन्होंने नाट्यशास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्दों को उद्धृत किया है, जिनका रुप विचित्र सा है और जिनमे मूर्धन्य वर्णों की बहुलता, उनके प्राकृत मूल को सूचित करती है।

पाश्चात्य विद्वानो ने इस प्रकार, सस्कृत नाट्य के उदगम तथा विकास के विषय मे जो विविध उपपत्तियाँ स्थापित करने का प्रयास किया है, प्राय सभी के युक्तिवादो एव प्रमाणों का खंडन हो चुका है। तथापि इस विषय में हुई बहुमुखी चर्चा निश्चित ही महत्त्वपूर्ण है।

2 नाट्यशास्त्रीय प्रमुख ग्रंथ

पाणिनि की अष्टाध्यायी में उल्लिखित नटसूत्र अभी तक प्राप्त नहीं हुए। अत भरत का "नाट्यशास्त्र" नामक आकर ग्रंथ ही इस विषय का आद्य और सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना गया है। 36 अध्यायों के इस ग्रंथ का स्वरूप एक सास्कृतिक ज्ञानकोश

के समान है। अत इसमें तत्कालीन नाट्यकला एव सगीत आदि आनुषगिक कला विषयक भरपूर जानकारी **प्राप्त होती है। विषयों की विविधता के कारण प. बलदेव उपाध्याय,** डा गो के भट जेसे विद्वान नाट्यशास्त्र को एककर्तृक **नहीं मानते। भरत मुनि ने दी हुई नाट्यमंडप अथवा प्रेक्षागृह** विषयक जानकारी, उस प्राचीन काल की **शिल्पकला की परिचायक है। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार नाट्यगृहों की** कल्पना भारतीयों ने ग्रीक सभ्यता से ली होगी, क्यों कि प्राचीन भारत में **नाट्यप्रयोग प्रायः राजसभा में अथवा मंदिरों में होते थे।** भरत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नाट्यगृह विषयक विवेचन से पाश्चात्य विद्वानो के **मत का अनायास ही खंडन होता है।**

नाट्यशास्त्र में विकृष्ट (लंब चतुष्कोणी) चतुरस्र **(चतुष्कोणी)** और त्र्यस्र (त्रिकोणी) नाट्यगृह का वर्णन दिया है। इनके भी प्रत्येकश· जेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकार बताए हैं। नाट्यगृह के चार स्तंभो को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सज्ञाएं थीं। प्रेक्षागृह में रंगपीठ, रंगशीर्ष और मत्तवारणी नामक विभाग कलाकारों के उपयोग के लिए रखे जाते थे। पर्दा रहता था। रगभूमि पर दो पर्दे लगा कर, उनसे तीन विभाग करने की प्रथा थी। सगीत चूडामणि, मानसार इत्यादि ग्रथो में भी नाट्यगृहों का वर्णन मिलता है परतु उनका प्रमाण नाट्यशास्त्र के प्रमाण से भिन्न था।

दशरूपक : भरत नाट्यशास्त्र के बाद लिखे हुए नाट्यविषयक ग्रथो में दशरूपक एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। रूपक अर्थात् दृश्यकाव्य को ही प्रतिपाद्य विषय मानकर, भरतकृत नाट्यशास्त्र के आधारपर इस ग्रथ की रचना विष्णुपुत्र धनजय ने की है। धनंजय, मालव देश के परमारवंशीय राजा मुंज के समकालीन (ई 10 वीं शती) थे। दशरूपक पर विष्णुपुत्र धनिक ने "अवलोक" नामक टीका लिखी है। अर्थात् धनजय और धनिक सहोदर थे।

प्रतापरुद्रीय : दशरूपक के आधार पर विद्यानाथ ने प्रतापरुद्रीय अथवा पतापरुद्रयशोभूषण नामक ग्रथ लिखा है। इस सपूर्ण ग्रंथ का विषय है साहित्यशास्त्र, परतु उसके पाचवे भाग में, ग्रथकार ो एक पचाकी नाटक उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया है, जिसमें अपने आश्रयदाता, वरगळ के काकतीय वश के राजा प्रतापरुद्र (ई 13-14 वी शती) की भूरि भूरि प्रशसा की है।

साहित्यदर्पण : मम्मटाचार्य के काव्यप्रकाश के समान कविराज विश्वनाथ का यह ग्रथ साहित्यशास्त्र के विविध अगोपागो का विवेचन करता है। परंतु काव्यप्रकाश के समान इसमें नाट्य विषयक चर्चा की उपेक्षा नही हुई हैं। साहित्यदर्पण के तीसरे और छठें परिच्छेद में, नाट्यशास्त्र की सोदाहरण चर्चा विश्वनाथ ने की है। यह सारा प्रतिपादन, नाट्यशास्त्र और मुख्यत दशरूपक पर आधारित है। विश्वनाथ के पितामह का नाम था नारायण और पिता चद्रशेखर "साधिविग्रहिक महापात्र", उपाधि मे विभूषित थे। जगन्मोहन शर्मा के मतानुसार विश्वनाथ ने पूर्व बगाल मे (आधुनिक बागला देश में) सन् 1500 मे ब्रह्मपुत्रा के किनारे रहते हुए साहित्यदर्पण की रचना की। बरो नामक पाश्चात्य विद्वान ने विश्वनाथ का समय 12 वीं शती माना है। म म भारतरत्न पाडुरंग वामन काणे ने विश्वनाथ का आविर्भाव काल 14 वी शती सिद्ध किया है। काव्यप्रकाशदर्पण नामक काव्यप्रकाश की टीका, विश्वनाथ ने लिखी है, जिसमें अनेक सस्कृत शब्दों के अर्थ उडिया भाषा मे बताये गए हैं। विश्वनाथ के उत्कलदेशी होने का यह प्रबल प्रमाण हो सकता है।

इनके अतिरिक्त सागरनदी (11 वीं शती) कृत नाटकलक्षण-रत्नकोश, हेमचद्र का काव्यानुशासन, रामचद्र-गुणचद्र (हेमचद्र के शिष्य) का नाट्यदर्पण (जिस में धनजय के मतों का खडन किया है।) रुय्यक (रुचक) कृत नाटकमीमासा, भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृगारप्रकाश और शारदातनयकृत भावप्रकाश ग्रथ नाट्यशास्त्रीय वाड्मय मे उल्लेखनीय हैं। श्री रूपगोस्वामी (16 वीं शती), कामराज दीक्षित (17 वी शती) नरसिह सूरि (18 वीं शती) और कुरविराम ने भी नाट्यविषयक चर्चा अपने अपने ग्रथों में की है।

नाट्य शास्त्र विषयक विविध ग्रथों में 1) प्रतिपाद्य विषय एक ही होने के कारण और 2) उनका मूलस्रोत प्राय एक ही होने के कारण, विषय के विवेचन मे समानता है। कही कहीं किंचित् मतभेद मिलता है। जैसे रूपक के दस प्रकार भरत, धनजय, विद्यानाथ, विश्वनाथ, शिंगभूपाल और शारदातनय मानते हैं। परतु नाटिका और सदृक को मिला कर भोज और हेमचंद्र बारह प्रकार मानते हैं। किन्तु नाटिका और त्रोटक के सहित सागरनदी बारह भेद मानते हैं तो नाटिका और प्रकरणिका के साथ बारह प्रकार, रामचद्र-गुणचद्र ने माने हैं। इस प्रकार के नाममात्र मतभेद के अतिरिक्त सस्कृत नाट्यशास्त्र में सर्वत्र समानता ही मिलती है।

3 नाट्यशास्त्र का अंतरंग

नाट्य के अर्थ में "रूपक" शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है। सस्कृत नाट्यवाड्मय मे रूपक और उपरूपक नामक दो प्रमुख भेद मिलते हैं। रूपक नाट्यात्मक और -उपरूपक नृत्यात्मक होते हैं। रूपक रसप्रधान, चतुर्विध अभिनयात्मक और वाक्यार्थाभिनयनिष्ठ होता है, तो उसके विपरीत नृत्य, भावाश्रय और पदार्थभिनयात्मक होता है। जो काललयाश्रय तथा अभिनयशून्य अंगविक्षेपात्मक होता है, उसे "नृत्त" कहा गया है।

रूपक के दस प्रकार : नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग उत्सृष्टिकांक, वीथी और प्रहसन इन दस रूपकों में सर्वांगपरिपूर्णता के कारण "नाटक" नामक रूपकप्रकार प्रमुख माना गया है। शास्त्रकारों ने परमानंदरूप रसास्वाद, दशविध रूपकों का प्रयोजन या फल माना है। वस्तु (कथा), नायक और रस इन तीन कारणों से रूपक में दस भेद निर्माण होते हैं, तदनुसार दसों रूपकों का स्वरूपभेद संक्षेपतः बताया जा सकता है जैसे

1) **नाटक :** कथा, प्रख्यात। नायक . दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य एवं। धीरोदात्त गुणसंपन्न। नायिका : नायक के अनुरूप दिव्य अथवा अदिव्य। प्रधान रस . शृंगार अथवा वीर। अंकसंख्या . 5 से 10 तक। दस से अधिक अक वाले नाटक को विश्वनाथ ने "महानाटक" संज्ञा दी है।

2) **प्रकरण :** कथा · कल्पित। नायक · अमात्य, ब्राह्मण, अथवा वणिक् (व्यापारी) धीरप्रशान्त गुणयुक्त। (रामचंद्र-गुणचंद्र के मतानुसार धीरोदत्त) "नायिका कुलस्त्री अथवा वेश्या। विदूषक और विट आवश्यक। अंकसख्या 10।

3) **भाण :** एक धूर्त पात्र चाहिए। उक्तिप्रयुक्ति। भारती वृत्ति। अंक . 1। प्रधानरस · वीर, शृगार, हास्य। वृत्ति कैशिकी।

4) **प्रहसन :** 1) शुद्ध, उत्तम पात्रयुक्त। 2) सकीर्ण . अधम पात्रयुक्त 3) विकृत अकसंख्या . 2।

5) **डिम :** प्रख्यात वस्तु। शृगार और हास्य रस वर्ज्य। नायक संख्या 16। अक सख्या 4। वृत्ति सात्वती और आरभटी। अंगीरस . रौद्र

6) **व्यायोग :** नायक दिव्य प्रख्यात राजर्षि। अक 1। युद्धदर्शन। रस : रौद्र और वीर। नायक संख्या . शारदातनय के मतानुसार 3 से 10 तक।

7) **समवकार :** देवदैत्य कथा। अक 3। प्रत्येक अंक में 4 नायक। कुल-नायकसंख्या . 12। प्रतिनायक : असुर। भरत के मतानुसार समवकार में त्रि-विद्रव, त्रि-कष्ट और त्रि-शृंगार चाहिए।

8) **उत्सृष्टिकांक :** वस्तु प्रख्यात। अप्रख्यात दिव्य पुरुषों का अभाव। युद्ध का अभाव। वृत्ति भारती अक 1।

9) **वीथी :** अक 1। पात्र . एक या दो। प्रधानरस . शृगार। अन्य सभी रस चाहिए।

10**ईहामृग :** वस्तु प्रख्यात। पात्र दिव्य उद्धत। स्त्रीनिमित्तक युद्ध। अंक 4। रस शृगार।

अंकों की संख्या के अनुसार दस रूपकों के छ भेद होते हैं जैसे -

एक अक = भाण, व्यायोग, वीथी और उत्सृष्टिकाक।
दो अक = प्रहसन।
तीन अंक = समवकार।
चार अक = डिम, ईहामृग।
पाँच से सात अक = नाटक।
आठ से दस अक = प्रकरण।

नायक सख्या की दृष्टि से अनेक नायक वाले रूपक तीन होते हैं।

डिम 16 नायक। समवकार 4 नायक। व्यायोग 3 से 10 तक।

उपरूपक

उपरूपक के 14 प्रकार धनजय मानते हैं तो विश्वनाथ के अनुसार उसके 18 प्रकार होते हैं।

1) **नाटिका :** यह नाटक का उपरूपक माना जाता है। अक 4। रस शृगार। नायक धीरललित। नायिका . दो होती हैं। 1) ज्येष्ठा और 2) कनिष्ठा। नायक प्रख्यात राजा। वृत्ति कैशिकी। इसमें नृत्यगीत की आवश्यकता होती है।

2) **त्रोटक :** विश्वनाथ के मतानुसार इसमें 5, 7 या 9 अक होते हैं। प्रत्येक अक में विदूषक का प्रवेश आवश्यक है। देवता और मानवों की मिश्रकथा होती है। कालिदास का विक्रमोर्वशीय त्रोटक का उदाहरण है।।

3) **गोष्ठी :** इसमें पुरुष पात्र 10 और स्त्री पात्र 6 होते हैं। वृत्ति कैशिकी।

4) **सट्टक :** नाटिका के समान। वृत्ति कौशिकी एवं भारती। प्राकृतभाषाप्रधान इसमें सात्त्विक रस का महत्त्व होता है।

5) **नाट्यरासक :** नायक · उदात्त। नायिका वासकसज्जा। अंक 1। रस हास्य, शृगार। सगीतप्रचुर। 10 प्रकार के लास्यांग प्रयुक्त होते हैं।।

6) **प्रस्थानक :** इसमें नायक - नायिका दास-दासी होते हैं। वृत्ति कैशिकी। संगीतप्रचुर।

7) **उल्लाप्य :** शारदातनय के मतानुसार इसमें 4 नायिका और नायक होते हैं। अंक . 1। कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती ये चारों वृत्तियाँ आवश्यक। रस शृंगार, हास। संगीतप्रचुर।

8) **प्रेक्षणक :** विश्वनाथ के मतानुसार इसमें नायक नहीं होता। सागरनंदी के मतानुसार विविध भाषाएं होती हैं। उन में शौरसेनी प्रमुख। अक 1, चारों वृत्तियाँ आवश्यक।

9) **रासक :** प्रख्यात नायक और नायिका। पात्रसंख्या- पांच। नायक मूढ होता है। अंक 1। वृत्तियाँ कैशिकी और भारती।

10) संलापक : नायक पाखंडी। संग्राम छल, भ्रम के दृश्य आवश्यक। अंक 3 या 4। रस-शृंगार और करुण। वृत्तियां कैशिकी और भारती।

11) श्रीगदित : कथावस्तु और नायक प्रख्यात चाहिए। भाषा संस्कृत। अर्थात् भारती वृत्ति। अंक 1।

12) शिल्पक : नायक ब्राह्मण। उपनायक हीन। अंक ४। वृत्तियाँ 4। आठो रसो का उद्रेक। श्मशानादि के वर्णन आवश्यक।

13) विलासिका · नायक अधम प्रकृति। अंक 1। शृंगारप्रचुर। दस लास्याग आवश्यक।

14) दुर्मल्लिका : इसमें 4 अंको में क्रमश विट, विदूषक, पीठमर्द और अंत मे नायक इस प्रकार क्रीडा दिखाई जाती है। कथावस्तु उत्पाद्य (अर्थात् काल्पनिक) जिसमे नायक नीच प्रकृति का होता है। वृत्ति कैशिकी।

15) प्रकरणिका · यह प्रकरण नामक प्रमुख रूपक का उपरूपक माना जाता है। कथावस्तु उत्पाद्य। नायक नायिका - वणिक् वर्ग के होते हैं। अन्य स्वरूप नाटिका से समान होते है।

16) हल्लीश . अंक 1 (शारदातनय के मतानुसार अंकसंख्या 2) धीर ललित अवस्था वाले पाँच छ दक्षिण पुरुष और स्त्रीपात्र आठ चाहिए। नायक उदात्त प्रकृति वाला।

17) भाणिका यह भाण का उपरूपक माना गया है। अंक 1। नायिका उदात्त, नायक नीच प्रकृति। वृत्तियाँ भारती और कैशिकी।

भरत ने इन दस रूपको एवं सत्रह उपरूपको का प्रयोजन, हितोपदेश और क्रीडा-सुख कहा है। (हितोपदेशजननं वृतिक्रीडा-सुखादिकृत्) नाट्यशास्त्र 1-193) अभिनवगुप्त के मतानुसार इस रूपक वाङ्मय का कार्य गुडमिश्रित कटु औषधि के समान होता है, जिससे श्रान्त लोगो का चित्तविक्षेप या मनोरंजन होता है। (गुडच्छन्न-कटुकोषधकल्प चित्तविक्षेपमात्रफलम्।)

रसों के अनुसार रूपकों का वर्गीकरण

(1) शृंगार प्रधान - नाटक, प्रकरण, (वीररस गौण) वीथी और ईहामृग। वीररसप्रधान-समवकार, व्यायोग और डिम (रौद्रसहित)। हास्यरसप्रधान - प्रहसन। करुणप्रधान- उत्सृष्टिकाक।

नाटक मे जब शृंगाररस प्रधान होता है, तब वीर गौण, और जब वीररस प्रधान होता है, तब शृंगार गौण होता है।

ईसा पूर्व काल मे प्राचीन भारत मे छायानाटक नामक नाट्यप्रकार प्रचलित था। महाभारत और थेरीगाथा मे छायानाटक के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत मे रूपोपजीवनम् शब्द आता है, जिसके स्पष्टीकरण मे टीकाकार नीलकण्ठ ने "छायानाटक" का वर्णन दिया है। तदनुसार दीपक और पर्दो के बीच मे स्थापित काष्ठ-मूर्तियो के अवयवो को सूत्र से चलित कर पर्दे पर छाया के रूप में पौराणिक घटनाओ के दृश्य दिखाए जाते थे। एक मत ऐसा है कि, भारत से ही यह नाट्य कला जावा, बाली, सुमात्रा, आदि पूर्व एशिया के प्रदेशो मे प्रसृत हुई। यह कला आज भी उन देशो में जीवित है, जब कि भारत मे उसका लोप हो चुका है। सुभट कवि कृत दूतांगद नामक छायानाटक का प्रयोग सन् 1243 मे चालुक्य राजा त्रिभुवनपाल के निमंत्रणानुसार, कुमारपालदेव के सम्मानार्थ अनहिलवाड पट्टण (गुजरात) मे हुआ था ऐसा उल्लेख मिलता है।

4 वस्तुशोधन

बहुसंख्य संस्कृत रूपको की वस्तु या कथा प्राय रामायण महाभारत और गुणाढ्य की बृहत्कथा से ली गई है। दशरूपककार ने मूल कथा को रूपकोचित करने के लिए "वस्तुशोधन" के कुछ नियम बताए हैं। तदनुसार मूल कथा मे नायक का व्यक्तित्व और रसयोजना इनकी ओर ध्यान देते हुए, मूल कथा मे जो अनुचित या रस के विरुद्ध भाग होगा, उसका त्याग करना चाहिये, अथवा किसी अन्य रीति से उसकी योजना करनी चाहिए। जो मूल कथाश नीरस और अनुचित होगा उसे अर्थोपक्षेपका के द्वारा सूचित करना चाहिये। परंतु जो कथाश मधुर, उदात्त और रसभावयुक्त हो, उसे रंगमंच पर अवश्य दिखाया जाना चाहिये।

यत् तत्रानुचितं किंचिद् नायकस्य रसस्य वा। विरुद्धं तत् परित्याज्यम् अन्यथा वा प्रकल्पयेत्।। (द रू 3-24)

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तर । दृश्यस्तु मधुरोदात्त-रसभाव-निरंतर ।। (द रू 1-57)

अर्थोपक्षेपक

नीरस और नाट्यप्रयोग की दृष्टि से अनुचित कथाभाग को जिन पाच प्रकारो मे सूचित किया जाता है, उन्हे "अर्थोपक्षेपक" कहते हैं। उसके पाच प्रकारो के नाम हैं - (1) विष्कम्भ (या विष्कम्भक), (2) चूलिका, (3) अंकास्य (या अंकमुख) (4) अंकावतार और (5) प्रवेशक। प्राय सभी नाटको मे इन मे से कुछ प्रकार दिखाई देते है।

अनौचित्य टालने की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी गई है कि नायक अगर दिव्य प्रकृति राजा हो तो उसका प्रेम-प्रसंग साधारण स्त्री (अर्थात् गणिका) के साथ चित्रित नहीं करना चाहिये। उसी प्रकार शृंगार रस के वर्णन में नायिका "अन्योढा" (याने दूसरे मे विवाहित स्त्री) नही होनी चाहिये। सभी रूपको की (विशेषत नाटक और प्रकरण की) कथा के दो विभाग करने चाहिये जिस मे नीरस अंश सूच्य होगा और बाकी सरस अंश दृश्य पंचसंधियो मे विभाजित होना चाहिए।

नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक की कथावस्तु का विभाजन पांच संधियो में करना इष्ट माना है। इन पांच संधियों के क्रमशः नाम हैं:- (1) मुख (2) प्रतिमुख (3) गर्भ (4) अवमर्श और (5) निर्वहण। इन पांच सन्धियों की निर्मिति, पांच अर्थप्रकृतियों और पांच कार्यावस्थाओं के यथाक्रम समन्वय से होती है।

पांच अर्थप्रकृतियां :- (1) बीज (2) बिन्दु (3) पताका, (4) प्रकरी और (5) कार्य

पांच कार्यावस्थाएं :- (1) आरंभ (2) यत्न (3) प्रप्त्याशा (4) नियताप्ति और (5) फलागम।

पांच सन्धियों के कुल मिलाकर 64 अंग होते हैं जिनका नाटक रचना में छ प्रकारों से प्रयोजन होता है।

इष्टस्यार्थस्य रचना, गौप्यगुप्ति प्रकाशनम्। राग प्रयोगस्याश्चर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षय.।। (द रु 1-55)।

इस कारिका में वे छ. प्रयोजन बताये गये हैं। शाकुन्तल, उत्तररामचरित, वेणीसंहार इत्यादि श्रेष्ठ नाटकों को टीकाकारों ने, उन नाटकों के कथाविकास की चर्चा में इन सन्धियों के 64 अंगो का यथास्थान निर्देश किया है। नाटक, प्रकरण के अतिरिक्त गौण रूपकप्रकारों में पाचों सन्धिस्थान नहीं होते।

अंक

रूपकों का सर्वश्रेष्ठ घटकावयव होता है अंक। इसमें नायक का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से दिखाया जाता है और बिन्दु नामक अर्थप्रकृति व्यापक स्वरूप में पायी जाती है। वह नाना प्रकार के नाटकीय प्रयोजन के संपादन का तथा रस का आश्रय होता है।

(प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दुव्याप्तिपुरस्कृत। अको नानाप्रकारार्थ-संविधानरसाश्रय·।। (द रू 3-30) अक का मुख्य उद्देश्य होता है दृश्य वस्तु का चित्रण। अक में वस्तु की योजना ऐसी हो कि जिसमें, केवल एक दिन की ही घटना हो और वह भी "एकार्थ" याने एक ही प्रयोजन से सबद्ध हो। उसमें नायक तीन या चार पात्रो के साथ रहे और नायक सहित सारे पात्रों के निर्गमन के साथ अंक की समाप्ति हो।

एकाहचरितैकार्थम् इत्थमासन्ननायकम्। पात्रैस्त्रिचतुरै. कुर्यात् तेषामन्तेऽस्य निर्गम।। (द रू 3-36)

वस्तुशोधन की दृष्टि से किसी भी अक में दीर्घ प्रवास, वध, युद्ध, राज्यक्रान्ति, नगरी को घेरा डालना, भोजन, स्नान, सभोग, उबटन लगाना, वस्त्रधारण करना इत्यादि प्रकार के दृश्य किसी भी अक में मच पर नहीं बताना चाहिये। विष्कम्भक, चूलिका इत्यादि अर्थोपक्षेपको में उनकी सूचना की जा सकती है। रूपक के विविध प्रकारो में, अकों की सख्या शास्त्रकारों ने निर्धारित की है, जिसका निर्देश प्रस्तुत अध्याय में रूपक प्रकारों के विभाजन के समय प्रारभ में किया गया है।

पूर्वरंग

नाटक का प्रारंभ "पूर्वरग" के विधान से होता है। पूर्वरग का अर्थ है नाट्यशाला में प्रयोग के प्रारभ में करने योग्य मंगलाचरण, देवतास्तवन आदि धार्मिक विधि। इस पूर्वरग का विधान सूत्रधार द्वारा किया जाता है। रगदेवता की पूजा करनेवाले को ही सूत्रधार कहते हैं। (रगदैवतपूजाकृत सूत्रधार इतीरितः।) सूत्रधार के लौट जाने पर, उसी तरह के वैष्णव वेश में आकर जो दूसरा नट कथावस्तु के काव्यार्थ की स्थापना करता है उसे "स्थापक" (काव्यार्थस्थापनात् स्थापक) कहते हैं। यह स्थापक, प्रयोग की कथावस्तु के अनुरूप दिव्य, अदिव्य (मर्त्य) अथवा दिव्यादिव्य रूप में मच पर आकर, काव्यार्थ की स्थापना करते समय, रूपक की कथावस्तु, उसके बीज (अर्थप्रकृति) मुख या प्रमुख पात्र की सूचना देता है। (सूचयेद् वस्तु बीज वा मुखं पात्रमथापि वा (द.रू 3-3)। इस प्रकार वस्तुबीजादि की स्थापना और मधुर श्लोकगायन से रंगप्रसादन करना यही स्थापक के प्रवेश का प्रयोजन माना गया है।

नाट्य प्रयोग के प्रारभ में सभाव्य विघ्नो का परिहार, देवताओं की कृपा का सपादन और काव्यार्थसूचक के निमित्त, आशीर्वचनयुक्त "नान्दी" गाई जाती है। अनेक नाटकों में सूत्रधार ही नान्दीगायन या मगलाचरण करता है। तो कई नाटको में नान्दीगायन पर्दे में होने के बाद सूत्रधार प्रवेश करता है।

इस के बाद सामाजिकों का ध्यान, प्रयोग की और आकृष्ट करने के लिए "प्ररोचना" (उन्मुखीकरण तत्र प्रशंसात प्ररोचना) अर्थात् नाटक की प्रशसा, नट द्वारा की जाती है। प्रस्तावना (या जिसे आमुख भी कहते है) के कथोद्घात, प्रवृत्तक और प्रयोगातिशय नामक तीन अग होते हैं। सूत्रधार इस प्रस्तावना में नटी, विदूषक या पारिपार्श्वक के साथ वार्तालाप करते हुए विचित्र उक्ति द्वारा प्रस्तुत वस्तु की और संकेत करता है। इस आमुख का स्वरूप, वीथी अथवा प्रहसन नामक रूपक के समान होता है। विधी में एक दो पात्रों द्वारा शृंगारिक भाषण होता है और प्रहसन में एक विट आकाशभाषित द्वारा हास्यरसयुक्त भाषण करता है। इसी कारण प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख ये चार प्रकार के "काव्यार्थसूचक" माने जाते हैं।

5 नाट्यपात्र

नाट्यशास्त्र में विविध पात्रों के प्रकार तथा उनके गुणावगुण का विवेचन किया गया है। उन में **मुख्य पुरुष पात्र को नायक और स्त्री पात्र को नायिका कहते हैं।** दशरूपक में नायक की विनम्रता, मधुरता, त्याग, प्रिय भाषण **इत्यादि 22 गुणों का उदाहरणों सहित परिचय दिया है। ये सारे गुण इतने स्पृहणीय और प्रशसनीय हैं कि उन से सम्पन्न पुरुष अथवा स्त्री मानव का आदर्श माने जा सकते हैं।**

कथाचित्रण तथा रसोद्रेक की दृष्टि से नायक के चार प्रकार माने जाते हैं। शास्त्रोक्त सामान्य 22 गुणो के अतिरिक्त, जब नायक सात्त्विक (अर्थात् क्रोध, शोक आदि विकारों से अभिभूत न होने वाला), अत्यत गभीर,क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला अचचल मन वाला, अहकार व स्वाभिमान को व्यक्त न करनेवाला, और दृढव्रत अर्थात् ध्येयनिष्ठ हो, तब उसे "धीरोदात्त" नायक कहते हैं। श्रीरामचद्र "धीरोदात्त" नायक के परमश्रेष्ठ आदर्श है। रामायण की कथाओ पर आधारित सभी उत्कृष्ट नाटको में संस्कृत नाट्यशास्त्र का यह परम आदर्श व्यक्तित्व प्रतिभासपन्न नाटककारो ने चित्रित किया है।

इसके विपरीत जब नायक दर्प (घमण्ड) और ईर्ष्या (मत्सर) से भरा हुआ, माया और कपट से युक्त, अहकारी, चचल, क्रोधी और आत्मश्लाघी होता है तब उसे "धीरोध्दत" कहते है। रावण धीरोद्धत नायक का उदाहरण है।

जो सर्वथा निश्चिन्त, गीत-नृत्यादि ललित कलाओ में आसक्त, कोमल स्वभावी और सुखासीन रहता है, उसे "धीरललित' नायक कहते हैं। ऐसे नायक का सारा लौकिक व्यवहार, उसके मन्त्री आदि सहायक करते हैं। वत्सराज उदयन इसका उदाहरण है।

नायक के सामान्य गुणो से युक्त ब्राह्मण, वैश्य, या मन्त्रिपुत्र को "धीरशान्त" नायक कहा है। मालतीमाधव प्रकरण का माधव और मृच्छकटिक प्रकरण का चारुदत्त धीरशान्त कोटी के नायक हैं।

वीर-शृगार प्रधान नाटको में धीरोदात्त, रौद्र-वीर-भयानक की प्रधानता में धीरोद्धत, और शृगार-हास्य की प्रधानता होने पर धीरललित नायक का रूपको में प्राधान्य होता है। शृंगार प्रधान प्रकरणो में धीरशान्त नायक का महत्त्व होता है।

मध्यपात्र

रूपकों में भूत और भावी वृत्तान्त का कथन अथवा शेष घटनाओ की सूचना देने के लिए अको के अतिरिक्त विष्कम्भक और प्रवेशक अंको के बीच बीच में प्रयुक्त होते हैं। उन में कथा से सबधित पात्रों के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष पात्र होते हैं, जिन्हें "मध्यपात्र" कहते हैं। विष्कम्भक के मध्यपात्र सामान्य श्रेणी के और प्रवेशक के नीच श्रेणी के होने है। नायक के परिच्छद (अर्थात् परिवार) में पीठमर्द (अथवा "पताकानायक") विट, विदूषक और प्रतिनायक रहते हैं। प्रतिनायक मुख्य नायक का द्रोह करता है। उसी को खलनायक कहते हैं। यह खलनायक धीरोद्धत,, पापी और व्यसनी होता है। इनके अतिरिक्त नायक के राजा होने पर उसके मत्री, न्यायाधीश, सेनापति, पुरोहित, प्रतिहारी, वैतालिक (स्तुतिपाठक) इत्यादि पुरुष पात्र आवश्यकता के अनुसार रूपको में रहते हैं। प्रणयप्रधान नाटको में नायक के "नर्मसचिव" अथवा मित्र का दायित्व विदूषक निभाता है।

"वामनो दन्तुर कुब्जो द्विजन्मा विकृताननः। खलति पिंगलाक्षश्च सविधेयो विदूषक। (ना शा 24-106)

विदूषक के समान नायक के प्रियाराधन मे सहाय करनेवाला "विट", कर्मकुशल, वादपटु, मधुरभाषी और व्यवस्थित वेशधारी होता है।

इनके अतिरिक्त विदूषक के समान विनोदकारी, परतु दुष्ट प्रवृत्ति वाला "शकार" मृच्छकटिक में आता है। विद्वानो का अनुमान है कि शकार एक शक जातीय व्यक्ति होता था। श-कारयुक्त भाषा बोलनेवाले शक लोग, अपनी बहनो को राजाओ के अन्त पुर में प्रविष्ट कर, अधिकारपद प्राप्त करते होगे। ऐसे लोगो के कारण प्रणयप्रधान प्रकरणो मे "शकार" का पात्र आया होगा। राजा के अन्त पुर मे रहने वाले वर्षवर (हिजडा), कचुकी, वामन (बौना), किरात, कुब्ज इस ढग के नीच पात्र नाटको में आवश्यक माने हैं।

नाटको में वर्णित रामादि पात्र, धीरोदात्त, धीरललित आदि अवस्था के प्रतिपादक होते है। कवि अपने पात्रो का वर्णन ठीक उसी तरह नहीं करते जैसा पुराणेतिहास में होता है। कवि तो लौकिक आधार पर ही उनका चित्रण करते हैं। अपनी कल्पना के अनुसार अपने पात्रो में धीरोदात्तादि अवस्थाओ को चित्रित करते है। ये पात्र अपनी अभिनयात्मक अवस्थानुकृति द्वारा सामाजिको में रति, हास, शोक, इत्यादि स्थायी भावो को विभावित करते है। याने सामाजिको के रत्यादि स्थायी भाव की प्रतीति में कारणीभूत होते हैं। इसी लिए रसशास्त्र की परिभाषा में उन्हे "आलबन विभाव" कहते हैं। पात्रो के कारण विभावित हुए रत्यादि स्थायी भाव ही रसिक सामाजिको द्वारा आस्वादित होते हैं।

जिस प्रकार मिट्टी से बने हुए हाथी घोडे आदि खिलौनो से खेलते हुए बच्चे उन्हे सच्चे प्राणी समझ कर उनसे आनद प्राप्त करते है, उसी तरह काव्य के सहृदय श्रोता या नाटक के प्रेक्षकगण भी राम सीता आदि पात्रो मे उत्साह, रति आदि भाव देख कर स्वय उसका अनुभव करते हैं।

नायकव्यापार

नायकव्यापार का अर्थ है नायक का वह स्वभाव, जो उसे किसी विशेष कार्य में प्रवृत्त करता है। इसे ही शास्त्रीय परिभाषा मे कहते हैं "वृत्ति"। ये वृत्तिया, (1) कैशिकी (2) सात्वती, (3) आरभटी और (4) भारती नामक चार प्रकार की होती हैं। नायक जब गीत, नृत्य, विलास आदि शृगारमय चेष्टाओं में रममाण होता है, तब उसके कोमल व्यापार को **कैशिकी वृत्ति** कहते हैं। इसका फल है काम पुरुषार्थ। कैशिकी वृत्ति के चार अग हैं - (1) नर्म (2) नर्मस्फिंज, (3) नर्मस्फोट तथा (4) नर्मगर्भ। इन सभी नर्म प्रकारों में नायक की नायिका के साथ जो शृगारलीला होती है उनका अन्तर्भाव होता है। इस शृगारमय व्यापार मे हास्य का समावेश रहता है। नाटक में हास्ययुक्त शृगार रस की अभिव्यक्ति करना यही कैशिकी वृत्ति का प्रयोजन होता है। धीरललित नायक के चरित्रचित्रण में इसी वृत्ति का प्राधान्य रहता है।

जहा नायक का व्यापार, शोकरहित और सत्त्व शौर्य, दया, कोमलता जैसे उदात्त भावो से परिपूर्ण होता है, वहां उसे "**सात्वती वृत्ति**" कहते हैं। इस गभीर वृत्ति में (1) संलापक, (2) उत्थापक, (3) साघात्य और (4) परिवर्तक नामक चार अग होते हैं। धीरोदात्त प्रकृति के नायक का, प्रतिनायक के साथ जब सघर्ष होता है, तब सात्वती वृत्ति के अंगों का प्रयोग नाटक में होता है।

जहा माया (अर्थात् अवास्तव वस्तु को मन्त्रबल से प्रकाशित करना), इन्द्रजाल (वही कार्य तान्त्रिक प्रयोगों से करना) सग्राम, क्रोध, उद्भ्रात आदि चेष्टाए पायी जाती हैं, वहा "**आरभटी**" नामक वृत्ति होती है। इसके भी (1) सक्षिप्तिका (2) सफेट (3) वस्तूत्थापन और (४) अवपात नामक चार अंग माने हैं। धीरोद्धत प्रकृति के नायक के चरित्रचित्रण में आरभटी वृत्ति दिखाई देती है।

इन तीनो वृत्तियो को "अर्थवृत्तिया" माना गया है, क्यो कि इनमें अर्थरूप रस का संनिवेश होता है। चौथी **भारती** नामक वृत्ति "शब्दवृत्ति" होने के कारण सभाषणात्मक रहती है। इस वृत्ति का नाटक के "पूर्वरग" में पुरुष पात्रो द्वारा प्रयोग होता है। नाटक के प्रारभ में प्ररोचना, आमुख, वीथी और प्रहसन ये चार प्रसग भारती वृत्ति के अग माने जाते हैं।

वृत्ति का सबध नायक के रसपरक व्यापार से होता है, अत शास्त्रकारो ने नियम बताया है कि -

"शृगारे कैशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुन.। रसे रौद्रे च बीभत्से, वृत्ति· सर्वत्र भारती।। (द.रू 2-62)

अर्थात् शृगारप्रधान रूपक में कैशिकी, वीरप्रधान में सात्वती, रौद्र एव बीभत्स प्रधान दृश्यो में आरभटी वृत्ति का चित्रण होना चाहिये। भारती, शब्दप्रधान वृत्ति होने के कारण उसका प्रयोग सभी रसो में आवश्यक माना गया है। शृगार, रौद्र वीर, और बीभत्स ये चार अनुकार्यगत रस होते है। अभिनय कुशल नट अपनी भूमिका से तन्मय होकर उनका आविर्भाव करते हैं, तब सामाजिको के अत करण में उन प्रधान रसो के "सहकारी" हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक इन चार रसों का यथाक्रम उद्रेक होता है। इसी लिए कहा है कि -

शृगाराद् हि भवेद् हास, रौद्राच्च करुणो रस·। वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्ति, बीभत्साच्च भयानक।

नाट्यप्रवृत्तियां

नायक की वृत्तियो के समान नाटकीय पात्रो की "प्रवृत्तिया" होती हैं। ये प्रवृत्तिया दो प्रकार की होती हैं- (1) भाषाप्रवृत्ति और (2) आमन्त्रण प्रवृत्ति। प्रवृत्तियो का सामान्य लक्षण है —

"देश-भाषाक्रियावेशलक्षणा स्यु प्रवृत्तय। (द.रू. 2-63)

अर्थात् देश तथा काल के अनुसार पात्रों की भिन्न भिन्न भाषा, भिन्न भिन्न वेष और भिन्न भिन्न क्रियाओ को "प्रवृत्ति' कहते हैं। इनका ज्ञान नाटककार ने लौकिक जीवन से प्राप्त करना चाहिये और उनका यथोचित उपयोग अपनी नाटकरचना में करना चाहिये।

प्राचीन नाटकों में कुलीन सुसस्कृत पुरुषों की और तपस्वियों की भाषा संस्कृत ही होती है। स्त्रीपात्रों में महारानी, मंत्रिपुत्री तथा वेश्याओं के भाषणो में भी संस्कृत पाठ्य का उपयोग प्रशस्त माना गया है। स्त्रीपात्रों का पाठ्य, प्राय· शौरसेनी प्राकृत होता था। प्राचीन प्राकृत भाषाओं के 21 प्रकार थे जिनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, आवतिका, प्राच्या, दाक्षिणात्या, बाल्हिका इत्यादि प्रमुख भाषाएं थी। पाली भाषा का उपयोग नाटकों में नहीं किया गया। सभी प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री प्रमुख मानी गयी है। वररुचि ने अपने प्राकृत प्रकाश में, तथा अन्य भी वैयाकरणों ने, महाराष्ट्री एक प्रधान प्राकृत होने के कारण उसी का व्याकरण लिखा है, और अन्य प्राकृत भाषाओं के कुछ विशेष मात्र बताए हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र में अन्तःपुर के पात्रों के लिए मागधी, चेट, राजपुत्र और वणिग् जनों के लिए अर्धमागधी, विदूषक के लिए प्राच्या; सैनिक और नागरिक पात्रों के लिए दाक्षिणात्या; शबर, शक आदि पात्रो के लिए वाल्हिका, शकार के लिए

शकारी, गोपालों के लिए आभीरी तथा अन्य गौण पात्रों के लिए आवंतिका, पैशाची, शाबरी इत्यादि प्राकृत भाषाओं का विधान किया है। दशरूपक में प्राकृत भाषाओं के सबंध में एक मार्मिक नियम बताया है कि —

"यद्देशं नीचपात्रं यत्, तद्देशं तस्य भाषितम्।।" कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः।।" (द रू 2-66)।।

अर्थात् जो पात्र जिस देश का रहनेवाला हो, उसी देष की बोली के अनुसार उसकी पाठ्य भाषा नाटक में योजित की जाय। वैसे कभी उत्तम या नीच पात्रों की भाषा में किसी कारण से अदल बदल भी हो सकना है, याने उत्तम पात्र प्राकृत का और नीच पात्र संस्कृत का यथावसर प्रयोग करें।

आमन्त्रणप्रवृत्ति :— आमन्त्रण प्रवृत्ति के नियमानुसार उत्तम पात्रों द्वारा विद्वान, देवर्षि, तथा तपस्वी पात्र, "भगवन्" शब्द से सबोधित किए जाने चाहिये। विप्र, अमात्य, गुरुजनों या बडे भाई को वे "आर्य" शब्द से संबोधित करें। नटी और सूत्रधार आपस में एक दूसरे को "आर्य" और "आर्ये" इन शब्दों से संबोधित करें। सारथी अपने रथी को आयुष्मान् कहे तथा पूज्य लोग, शिष्य या छोटे भाई आदि को "आयुष्मान्", वत्स, या "तात" कहें। शिष्य, पुत्र छोटे भाई आदि पूज्यों को "तात" या "सुगृहीतनामा" कह सकते हैं। पारिपार्श्वक सूत्रधार को "भाव" कहे, तथा सूत्रधार पारिपार्श्वक को "मार्ष" अथवा "मारिष" कहे। उत्तम सेवक राजा को देव या स्वामी कहें और अधम भृत्य उसे "भट्टा" (भर्त) कहे। ज्येष्ठ, मध्यम या अधम पात्र स्त्रियों को ठीक उसी तरह संबोधित करें, जैसे उनके पति को करते हैं सखियां एक दूसरी को "हला" कहें। नोकरानी "हंजे" कहे। वेश्या को अज्जुका, कुट्टिनी तथा पूज्य वृद्धा स्त्री को "अम्ब" कहें। विदूषक, रानी व सेविका दोनों को "भवति" शब्द से संबोधित करें।

नाट्यशास्त्रोक्त इन भाषा-प्रवृत्ति और आमन्त्रण-प्रवृत्ति के नियमों का अनुपालन सभी नाटककारों ने निरपवाद किया है। संस्कृत के आधुनिक नाटककार (जिनकी सख्या काफी बड़ी है) प्राय भाषाप्रवृत्ति के नियमों का पालन नहीं करते। वे केवल संस्कृत भाषा का ही सभी पात्रों के भाषणो में उपयोग करते हैं। वास्तविक वर्तमान सस्कृत नाटकों में वर्तमानकालीन प्राकृत भाषाओ का प्रयोग करना नाट्यशास्त्र की दृष्टि से उचित होगा।

अर्थसहाय

नाटक का नायक राजा हो तो उसका सहायक मंत्री अवश्य होना चाहिये। उसके अतिरिक्त ऋत्विज, पुरोहित, तपस्वी, ब्रह्मज्ञानी आदि "धर्मसहायक", मित्र, राजकुमार, आटविक, सामन्त और सैनिक इत्यादि "दण्डसहायक" होते हैं। नायक की कार्यसिद्धि में सहायक होने वाले, वर्षवर (नपुसक व्यक्ति), किरात, गूगे, बौने इत्यादि पात्र अन्त पुर में होते हैं और म्लेच्छ, आभीर, शकार जैसे पात्र अन्यत्र सहायक होते हैं।

7 नायिका

सस्कृत नाटकों में नायक "उत्तम प्रकृति" का ही होता है और तद्नुसार नायिका भी "उत्तम प्रकृति" की ही होना आवश्यक माना गया है। इस नायिका के स्वीया, अन्या और साधारणी (अर्थात गणिका) सज्ञक तीन प्रकार होते हैं।

स्वीया नायिका शीलसम्पन्न, लज्जावती, पतिव्रता, अकुटिल और पति के व्यवहारो में सहायता देने में बडी निपुण होती है। इन सामान्य गुणों से युक्त स्वीया नायिका के वयोभेद के अनुसार मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा ये तीन भेद होते है। जिस नाटक में धीरललित नायक प्रमुख होता है, उसमें इन तीन प्रकार की, या प्रगल्ला और मुग्धा इन दो प्रकार की, नायिकाओं के प्रेमसंबंध में शृगाररस का विकास किया जाता है। उपर्युक्त तीन प्रकार की नायिकाओ में मुग्धा के भेद नहीं होते। परंतु मध्या और प्रगल्भा के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा इस प्रकार दो भेद होते हैं। सब मिला कर प्राय नागिका के 12 भेद नाट्यशास्त्रकार मानते हैं।

नायिका का दूसरा भेद है "**परकीया**"। वह कन्यका (अविवाहित) और विवाहित इस तरह दो प्रकार की हो सकती है परतु शृगारप्रधान रूपकों में आलंबन विभाग के रूप में अन्योढा अर्थात विवाहित परस्त्री को कहीं भी स्थान नहीं देना चाहिये- "नान्योढाङ्गिरसे क्वचित्" (द रू 2-20)। इस प्रकार को पेमसंबंध भारतीय सस्कृति में सर्वथा अनैतिक माना गया है। नैतिकता का उल्लंघन जहा होता है, वहां सहृदय सामाजिकों को आनद तो होता ही नहीं, प्रत्युत उद्वेग होता है। नाटक में नीतिबाह्य शृगांर रंगमंच पर दिखाया जा सकता है, परतु वह शिष्ट और सहृदय सामाजिकों के अन्त.करण में रति स्थायीभाव का उद्रेक नहीं कर सकता।

साधारणी स्त्री गणिका होती है, जो कलाचतुर, प्रगल्भा तथा धूर्त होती है। वेश्या कभी मुग्ध नहीं हो सकती। यह वेश्या प्रहसन में अनुरागिणी नहीं होती। अन्य रूपकों में उसे नायक के प्रति अनुरक्त रूप में ही चित्रित किया जाता है। जिन रूपकों में, नायक दिव्य प्रकृति अथवा धीरोदात्त नृपति होता है, वहा गणिका का समावेश नहीं किया जाता।

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा आदि अवस्थाओं के अतिरिक्त नायक के सबंध में नायिका की मानसिक अवस्थाएं आठ प्रकार की बताई गई है। वे हैं :- (1) स्वाधीनपतिका, (2) वासकसज्जा, (3) विरहोत्कंठिता, (4) खंडिता, (5) कलहान्तरिता,

(6) विप्रलब्धा, (7) प्रोषितप्रिया और (8) अभिसारिका। इनमें खडिता, कलहान्तरिता और विप्रलब्धा ये तीन अवस्थाएं नायक के बहुपत्नीकत्व या व्याभिचारित्व के कारण नायिका में उत्पन्न होती हैं।

नायिका के परिवार में दासी, सखी, रजकी, धाय की बेटी, पडोसिन, सन्यासिनी, शिल्पिनी, इत्यादि प्रकार की स्त्रिया होती हैं। प्राय नायक के परिवार में जिन गुणों से युक्त पुरुषपात्र होते हैं, उनी गुणो के ये गौण स्त्रीपात्र होते हैं।

नायिका के विविध प्रकारो के विवेचन के साथ दशरूपककार ने उत्तम स्त्रियों में व्यक्त होने वाले 20 स्वाभाविक (सत्त्वज) अलकार बताए हैं। इनमें भाव, हाव और हेला ये तीन "शरीरज" होते हैं। शोभा, कान्ति, दीप्ति माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात "अयत्नज" अर्थात् जिन्हें प्रकट करने के लिए स्त्रियो को कोई विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। इनके अतिरिक्ति लीला, विलास, विभ्रम आदि दस 'स्वभावज' होते हैं। इन अलंकारो को नाट्यप्रयोग में कौशल्यपूर्ण अभिनय द्वारा व्यक्त किया जाता है। शृगार रस के उद्दीपन मे इन नाटकीय अलकारों की स्त्री पात्रो के लिए आवश्यकता होती है।

8 नाट्यरस

रस सिद्धान्त की चर्चा साहित्यशास्त्र विषयक प्रमुख ग्रथो में की गई है। नाट्यशास्त्र में भी नाट्यप्रयोग की दृष्टि से रस चर्चा मिलती है। दृश्य काव्य अथवा रूपक के दस भेद, वस्तु और नायक की विभिन्नता के कारण होते हैं वैसे ही वे रसों की विभिन्नता के कारण भी होते हैं जैसे नाटक, प्रकरण, वीथी और ईहामृग में शृंगार की प्रधानता होती है। समवकार, व्यायोग और डिम मे हास्य की और उत्कृष्टिकाक में करुण की प्रधानता होती है। "अभिनय" याने अन्तःकरणस्थ राग-द्वेषादि भावो की वाणी, शारीरिक चेष्टा, मुखमुद्रा और वेषभूषा इत्यादि के द्वारा व्यक्त करना और सामाजिकों को उनके द्वारा रसानुभूति कराना यही अभिनय का कार्य है। "अभिनयति=हृद्‌गतान् भावान् प्रकाशयति" इति अभिनय "यही "अभिनय" शब्द की लौकिक व्युत्पत्ति बताई जाती है। नाट्यशास्त्रानुसार अभिनय के चार प्रकार होते हैं -

(1) आंगिक अभिनय - शरीर, मुख, हाथ, वक्ष-स्थल, भ्रुकुटी, इत्यादि अगों की चेष्टाओं द्वारा किसी भाव या अर्थ को व्यक्त करना ही "आगिक" अभिनय कहा गया है। इस में मुखज चेष्टाओं का अभिनय छ प्रकार का, मस्तक की हलचल नौ प्रकार की, दृष्टि का अभिनय आठ प्रकार का, भ्रुकुटी के विन्यास छ प्रकार के, गर्दन हिलाने के चार प्रकार और हस्तक्षेप के बारह प्रकार भरताचार्य ने बताए हैं। इन के अतिरिक्त अन्य अगों के भी विविध अभिनयो का भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णन किया है।

(2) वाचिक अभिनय- वाक्यो का उच्चारण करते समय, आरोह-अवरोह, तार, मंद्र, मध्यम इत्यादि उच्चारण की विचित्रता से भावो को अभिव्यक्त करना, वाचिक अभिनय का स्वरूप होता है। वाचिक अभिनय के 63 प्रकार भरताचार्य ने बताए हैं। वाचिक अभिनय द्वारा सहृदय अधे श्रोता को भी पात्र की मानसिक अवस्था का ज्ञान हो सकता है।

(3) आहार्य अभिनय- याने भूमिका के अनुरूप, पात्रो की वेशभूषा। वस्तुत यह नेपथ्य का अग है परतु शास्त्रकारो इस की गणना अभिनय मे की है।

(4) सात्त्विक अभिनय- सामाजिको को रति, हास, क्रोध इत्यादि स्थायी भावो की अनुभूति कराने वाली विक्षेप, कटाक्ष आदि शारीरिक चेष्टाओ को अनुभाव कहते हैं। "अनु पश्चात् भवन्ति इति अनुभावा." इस व्युत्पत्ति के अनुसार, स्थायी भाव के उद्‌बुद्ध होने के बाद उत्पन्न होने वाले भावों को अनुभाव कहते हैं। विभावो को स्थायी भावो के उद्दीपन का कारण, अनुभावों को कार्य और व्यभिचारी भावो को सहकारी कारण रसशास्त्र में माना गया है। पात्रो के द्वारा व्यक्त होने वाले, अनुकार्य राम-दुष्यन्तादि के, रति-शोक इत्यादि स्थायी भावों की सूचना कराने वाले (भावसंसूचनात्मक) भावों को धनजय ने 'अनुभाव' कहा है। इन अनुभावो में स्तम्भ, प्रलय (अचेतनता), रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य (मुख का रग फीका पड़ जाना) कम्प, अश्रु और वैस्वर्य (आवाज में परिवर्तन) इन आठ भावो को "सात्त्विक" (याने सत्व अर्थात मानसिक स्थिति से उत्पन्न होने वाले) भाव कहते है। इन अष्ट सात्त्विक भावो का प्रदर्शन सात्त्विक अभिनय के द्वारा होता है।

रूपकों में नटवर्ग का यही प्रधान उद्देश्य है कि उनके उपयुक्त चतुर्विध अभिनयों द्वारा, सामाजिकों में रसोद्रेक करना। रस की निष्पत्ति के विषय में, "विभावानुभाव-व्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः" (विभव, अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग से रसनिष्पत्ति होती है) यह भरत मुनि का सूत्र, रससिद्धान्त की चर्चा करनेवाले सभी साहित्याचार्यो ने परमप्रमाण माना है। शाकुन्तल नाटक के उदाहरण से इस सूत्र के पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया जा सकता है। जैसे :- दुष्यन्त और शकुन्तला रति स्थायी भाव के "आलंबन विभाव" हैं। कण्व ऋषि के आश्रम का एकान्त, तथा मालिनी नदी का तीर आदि दृश्य दोनों के अन्तःकरण में अंकुरित रति को उद्दीपित करते हैं अत. उन्हे "उद्दीपन विभाव" कहते हैं।

रति स्थायी भाव के उद्दीपन के कारण उन पात्रों के शरीर में जो रोमांचादि चिन्ह उत्पन्न होते हैं और उनकी जो चेष्टाएं, होती है उन्हें "अनुभाव" कहते है, क्यों कि ये चिन्ह और चेष्टाए, रतिभावानुभूति के पश्चात् उत्पन्न होती है या उस भाव का अनुभव सामाजिकों को कराती है।

दुष्यन्त शकुन्तला में रति स्थायी भाव का उद्रेक होने पर, उन दोनो के मन में चिन्ता, निराशा, हर्ष, इत्यादि प्रकार के अस्थायी भाव, समुद्र में तरगों के समान, उत्पन्न होते हैं तथा अल्पकाल में विलीन होते हैं। इन्हे सचारी या "व्याभिचारी भाव" कहते हैं। स्थायी भाव समुद्र जैसा है तो संचारी भाव तरगो के समान होते हैं। शास्त्रकारो ने नौ स्थायी भाव (साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वात्सल्य और उज्ज्वल नीलमणिकार रूप गोस्वामी ने भक्ति नामक दसवा स्थायी भाव माना है। आठ सात्त्विक भाव और तैंतीस व्यभिचारी या संचारी भावों का परिगणन किया है। परतु नाट्यशास्त्रकार, रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय और शोक इन आठ ही स्थायी भावो की परिणति क्रमश शृगार, वीर, बीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्भुत, भयानक और करुण इन आठ रसों में (विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सयोग के कारण) मानते है। इन आठ रसो मे शृगार, वीर, बीभत्स और रौद्र ये चार प्रमुख रस होते है और इनसे क्रमश हास्य, अद्भुत, भयानक और करुण नामक चार गौण रस उत्पन्न होते हैं। इन शृगारादि चार प्रमुख और हास्यादि चार गौण रसो के युग्मों से क्रमश अन्तकरण की, विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप की स्थिति होती है। इस की तालिका निम्न प्रकार होगी -

रस		चित्तवृत्ति			
शृगार-हास्य	-	विकास	बीभत्स-भयानक	-	क्षोभ
वीर-अद्भुत	-	विस्तर	रौद्र-करुण	-	विक्षेप

रस और तज्जन्य चित्तवृत्ति या मानसिक अवस्था का यह विवेचन अत्यत मार्मिक है। इसी विवेचन के आधार पर साहित्य और मानवी जीवन का दृढ संबध माना जा सकता है।

इस रस विवेचन में शान्तरस के बारे मे नाट्यशास्त्रकारों ने यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि, लौकिक जीवन मे शम, स्थायी भाव (जिसका स्वरूप है ससार के प्रति घृणा और शाश्वत परम तत्त्व के प्रति उन्मुखता) का अस्तित्व माना जा सकता है। परतु नाट्यप्रयोग में उस स्थायी भाव का परिपोष होना असभव होने के कारण, नाट्य में शान्त नामक नौवे रस का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। नाटक में आठ ही रस होते हैं। "अष्टौ नाट्ये रसा स्मृता "।

रूपकों में शान्त रस का निषेध करने वालो के द्वारा तीन कारण बताए जाते हैं- (1) "नास्त्येव शान्तो रस आचार्येण अप्रतिपादनात्।" अर्थात् भरताचार्य ने शातरस का पृथक् प्रतिपादन न करने के कारण शातरस नहीं है।

(2) "वास्तव्य शान्ताभाव रागद्वेषयो उच्छेतुम् अशक्यादत्वात्।"

अर्थात राग-और द्वेष इन प्रबल भावो का समूल उच्छेद होना असभव होने के कारण, वास्तव मे शान्तरस हो ही नही सकता।

(3) "समस्त-व्यापार-प्रविलयरूपस्य शमस्य अभिनयायोगात्, नाटकादौ अभिनयात्मनि निषिध्यते"- अर्थात् सारे व्यापारो का विलय यही शम का स्वरूप होने से, उसका अभिनय करना असभव है। अभिनय तो नाटक की आत्मा है, अत उसमे "शम" का निषेध ही करना चाहिये।

रसानिष्पत्ति का अर्थ

"विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद् रस-निष्पत्ति " इस भरत के नाट्यसूत्र के विषय में आचार्यों ने अत्यत मार्मिक चिकित्सा की है।

भट्ट लोल्लट के मतानुसार उत्पाद्य-उत्पादक भाव से विभावादि के सयोग से "रसोत्पत्ति" होती है।

शकुक के मतानुसार अनुमाप्य-अनुमापक भाव से "रसानुमिति" होती है।

भट्टनायक के मतानुसार भोज्यभोजक भाव से "रसभुक्ति" होती है।

इस प्रकार रस की (1) उत्पत्ति, (2) अनुमिति, (3) भुक्ति और (4) अभिव्यक्ति ये चार अर्थ, मूल "निष्पत्ति' शब्द से निकाले गए हैं। इन के अतिरिक्त दशरूपककार धनंजय ने भाव-भावक सबध का प्रतिपादन करते हुए, "भावनावाद" का सिद्धान्त स्थापित करने का प्रयत्न किया है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से यह एक रसविषयक पृथक् उपपत्ति देने का प्रयत्न है।

9 कुछ प्रमुख नाटककार

सस्कृत नाटक के उद्गम एव विकास का परामर्श लेने वाले प्राय सभी विद्वानो ने वैदिक वाङ्मय से लेकर अन्यान्य ग्रंथों में प्राचीन नाटकों के अस्तित्व के प्रमाण दिए हैं, परतु उम प्राचीन काल के नाटककारो और उनके नाटकों का नामनिर्देश करना असभव है। उसी प्रकार भरत से पूर्वकालीन कुछ नाट्यशास्त्रकारो के नाम तो मिलते हैं, परतु उनके ग्रथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए। अत सस्कृत नाट्यवाङ्मय के विविध प्रकारों का विचार करते समय, उपलब्ध नाट्यवाड्मय की ही चर्चा की जाती है।

आद्य नाटक- विंटरनिटझ और स्टेनकनो इन पाश्चात्य विद्वानो ने अश्वघोष को सस्कृत का प्रथम नाटककार माना है। लासेन ने अनेक युक्तिवादों से शूरसेन प्रदेश को भारतीय नाट्य की जन्मभूमि मानी है। इस प्रदेश में ईसा की दूसरी शताब्दी के प्रारंभ

मे शकों का आधिपत्य था। मथुरा के शक नृपति कनिष्क (ई 2 शती का मध्यकाल) की सभा में अश्वघोष थे। अश्वघोष ने बुद्धिचरित महाकाव्य और शारिपुत्र-प्रकरण (अथवा शारद्वतीपुत्र-प्रकरण) नामक नाटक की रचना की है। तुरफान में उपलब्ध हस्तलेखों में तीन बौद्ध नाटक मिले। उनमें से एक का अंतिम भाग सुरक्षित है। उसके अनुसार नाटक का उपर्युक्त नाम मिला। उसमें नौ अंक हैं और सुवर्णाक्षी के पुत्र अश्वघोष उसके रचयिता हैं। प्रस्तुत शारद्वतीपुत्र प्रकारण में शारिपुत्र और मौद्‌गलायन के बौद्धधर्म में दीक्षित होने की घटनाओं का वर्णन है। यह प्रकरण नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार लिखा है और उसमें नौ अंक हैं। शारिपुत्र धीरोदात्त नायक हैं। नायिका के विषय में और मूल कथावस्तु के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

शारिपुत्र-प्रकरण के हस्तलेख में अन्य दो नाटकों के अंश भी मिलते हैं। यद्यपि इनके कर्तृत्व के ज्ञान के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता, तथापि साहचर्य और शारिपुत्र-प्रकरण की सदृशता के कारण, इन्हें अश्वघोष की कृतियाँ मानना उचित समझा जाता है। इनमें से एक नाटक लाक्षणिक है, जिसमें बुद्धि, कीर्ति और धृति, पात्रों के रूप में मंच पर आती हैं। आगे चलकर बुद्ध भी रंगमंच पर आते हैं। इस लाक्षणिक नाटक के कारण प्रबोधचंद्रोदयकार कृष्णमिश्र की एतद्‌विषयक मौलिकता समाप्त होती है। संस्कृत का यही आद्य लाक्षणिक नाटक है।

दूसरे नाटक में मगधवती नामक गणिका, कौमुधगन्ध नामक विदूषक, सोमदत्त नामक नायक, एक दुष्ट, राजकुमार धनजय, चेटी, शारिपुत्र और मोद्‌गलायन इस प्रकार के पात्रों की रोचक कथा मिलती है। इस नाटक का उत्तरकालीन नाटकों से सादृश्य है। इस नाटक का लक्ष्य भी धार्मिक ही रहा होगा परतु वह खडित अवस्था में प्राप्त होने के कारण उसके प्रमाण नहीं मिलते।

अवदानशतक (जिसका अनुवाद ई. तीसरी शताब्दी में चीनी भाषा में हो चुका था) के अनुसार कुछ दाक्षिणात्य नटों ने शांभावती नगरी से राजा की सभा मे एक बौद्ध नाटक का प्रयोग किया था। उसी प्रकार बिंबिसार की सभा में एक दाक्षिणात्य नट ने, ज्ञानप्राप्ति के पूर्वकाल का बुद्धचरित्र नाट्यरूप में प्रदर्शित किया था। इस प्रकार संस्कृत के प्राचीनतम उपलब्ध नाटक बौद्ध धर्म से सबंधित थे, यह विशेष बात मानने योग्य है।

भास : कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावना में भास का उल्लेख (सौमिल्लक और कविपुत्र के साथ) सर्वप्रथम एक श्रेष्ठ और मान्यताप्राप्त नाटककार के रूप में किया है। भास का समय प गणपतिशास्त्री ने बुद्ध पूर्व माना है, कीथ 300 ई के समीप मानते हैं और कुछ विद्वान ईसा पूर्व पहली शताब्दी का पूर्वार्ध मानते हैं। भासकृत प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक मे (1-18) अश्वघोष के बुद्धचरित का उल्लेख मिलने के कारण, उसका समय अश्वघोष के निश्चित ही बाद का है।

कृष्णचरित नामक ग्रंथ के अनुसार भास ने 20 नाटक लिखे थे, परतु अभी तक उनमें से 13 ही ज्ञात हुए है। इन नाटकों को तीन श्रेणियों मे बांटा जा सकता है।

(अ) महाभारत पर आश्रित रूपक - 1) ऊरूभग 2) मध्यमव्यायोग 3) पचरात्र, 4) बालचरित 5) दूतवाक्य 6) दूतघटोत्कच और कर्णभार

(आ) रामायण पर आश्रित - 8) अभिषेक और 9) प्रतिमा

(इ) कथासाहित्य पर आश्रित (अथवा कविकल्पित) - 10) अविमारक 11) प्रतिज्ञायौगन्धरायण 12) स्वप्नवासवदत्त और 13) चारुदत्त।

भास का प्रभाव उत्तरकालीन अनेक कवियों की कृतियों में स्पष्ट दीखता है। शूद्रक के मृच्छकटिक और भास के चारुदत्त (चार अकी) में वस्तु, भाषा, वर्णन और अनुक्रम तक समानता पायी जाती है। भवभूति के उत्तरराम चरित के दूसरे अक में, आत्रेयी के कथन पर स्वप्न-नाटक के ब्रह्मचारी वर्णन की गहरी छाप है। उत्तररामचरित के विद्याधर का वर्णन अभिषेक नाटक के वर्णन से मेल खाता है। भट्टनारायण के वेणीसहार के पात्रों की विविधता और उदण्डता, पचरात्र के पात्रों के समान ही है। प्रतिमा और स्वप्न नाटकों के कई उत्तम रोचक और आकर्षक तत्त्व, कालिदास के शाकुन्तल में पाए जाते हैं। प्रतिमा के वल्कलधारण की शोभा का वर्णन और जलसिचन, शाकुन्तल नाटक में पाए जाते हैं। जैसे दुर्वासा का शाप और मारीच के आश्रम में मिलन का चण्डभार्गव का शाप और नारद के आश्रम में मिलन, इन प्रसंगों में साम्य है। स्वप्न वासवदत्त नाटक में वीणा की प्राप्ति का प्रभाव, शकुन्तला की अगूठी की प्राप्ति के प्रसग में दिखाई देता है।

शूद्रक : प्रख्यात मृच्छकटिक प्रकरण के रचियता शूद्रक थे, जिनका परिचय उसी प्रकरण की प्रस्तावना में संक्षेपत दिया है। परन्तु उस परिचय में उनके अग्निप्रवेश का उल्लेख होने से संदेह होता है कि कोई नाटककार अपने मरण का उल्लेख कैसे लिख सकता है। इसी कारण अनेक पाश्चात्य विद्वान मृच्छकटिक के कर्तृत्व में सदेह प्रकट करते हैं। डा पिशेल के मतानुसार मृच्छकटिक के रचियता दण्डी हैं। "त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्चत्रिषु लोकेषु विश्रुता·" इसी सुभाषित में दण्डी के तीन प्रबन्धों का उल्लेख किया है। उनमें दशकुमारचरित और काव्यादर्श तो सर्वविदित हैं। तीसरा प्रबन्ध मृच्छकटिक ही हो सकता है। डा

सिल्वाँ लेवी के मतानुसार, किसी अज्ञात कवि ने मृच्छकटिक की रचना कर, उसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। डा कीथ शूद्रक को काल्पनिक पुरुष मानते है। उनके मतानुसार वास्तविक मृच्छकटिक का लेखक कोई दूसरा ही पुरुष होना चाहिये। भासरचित "दरिद्रचारुदत्त" के आधार पर किसी अज्ञात कवि ने कुछ परिवर्तन और नवीन कल्पनाओं का समावेश कर, प्रस्तुत नाटक खडा किया है।

शूद्रक के नाम पर यह एकमात्र प्रकरण उपलब्ध है और यह सपूर्ण नाट्यवाड्मय मे अपने ढंग की अकेली और अनोखी कलाकृति है। इसमे चोरी, जुआरी एव चापलूसी है, राजा नीच जाति की रखेली को प्रश्रय देता है। शकार जैसे दुर्जन से डरने वाले उच्च पदस्थ अधिकारी, है, न्याय केवल राजा की इच्छा पर आश्रित रहता है, निर्धन ब्राह्मण सार्थवाह पर नितान्त प्रेम करनेवाली तरुण गणिका है।

मृच्छकटिक मे रगमच का शास्त्रीय तत्र ठीक सम्हाला है परतु रुढि एव परपरा को विशेष महत्त्व नहीं दिया है। कथावस्तु का वैचित्र्य, पात्रों की विविधता, घटनाओं का गतिमान सक्रमण, मामाजिक और राजनीतिक क्राति और उच्च कोटि का हास्य विनोद इन कारणों से मृच्छकटिक को विश्व के नाटको में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

कालिदास : कालिदासकृत मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और शाकुतल ये तीन नाटक उपलब्ध हैं। इन तीन नाटकों के अनुक्रम के विषय में, विद्वानों में एकवाक्यता नहीं है। प्राय बहुसख्य विद्वान उपरिनिर्दिष्ट रचनाक्रम मानने के पक्ष मे है। परतु केपलर ने मालविकाग्निमित्र को कालिदास की अतिम रचना माना है। इस नाटक को कालिदास की रचना न मानने वाले भी विद्वान हैं। परतु उनके तर्कों का खण्डन वेबर, ह्यूम, केपलर और लेव्ही जैसे विद्वानों ने किया है। विक्रमोर्वशीय की कथा प्राचीन ग्रथों में अन्याय रूप में मिलती है। कालिदास ने अपनी कथा मत्स्यपुराण से ली होगी, यह तर्क किया जाता है। इसी कारण इसे "त्रोटक" नामक उपरूपक कहा गया है। वास्तव में इसका स्वरूप "नाटक" सा ही है।

शाकुन्तल : सपूर्ण सस्कृत नाट्यवाड्मय मे इस नाटक को विद्वान रसिको ने अग्रपूजा का मान दिया है। इसका अनुवाद मात्र पढ़ कर जर्मनी का महाकवि गटे हर्ष विभोर होकर नाचने लगा था। शकुन्तला की मूलकथा महाभारत और पद्मपुराण में मिलती है। मूल नीरस कथा मे महाकवि कालिदास ने अपनी प्रतिभा से अपूर्व सरसता निर्माण कर, उसे सारे ससार मे लोकप्रिय कर डाला। कवि ने शकुन्तला का व्यक्तित्व तीन रूपो में चित्रित किया है। प्रारभ मे वह तपोवन की निसर्गरम्य पवित्र वातावरण में मुग्धा मुनिकन्या के रूप मे कामवश होती हुई दीखती है। दूसरी अवस्था मे पतिद्वारा तिरस्कृत होते ही, उसे नीच और अनार्य जैसे दूषणो से सभा मे फटकारती है। और तीसरी अवस्था मे स्वर्गीय आश्रम मे अपने पुत्र के साथ राजा पर क्षमापूर्ण प्रेम करती हुई, उनके साथ इह लोक की ओर प्रयाण करती हुई दिखाई देती है। कोमल भावनाओं का आविष्कार और प्रकृतिसौंदर्य का हृदयगम चित्रण कालिदास के नाटको मे स्थान स्थान पर प्रतीत होता है।

विशाखदत्त . मुद्राराक्षस के रचियता विशाखदत्त का निर्देश विशाखदेव, भास्करदत्त और पृथु (विल्सन के मतानुसार, चाहमान राजा पृथ्वीराज) इन नामों से होता है। इस नाटक का सात अकी सविधानक, ई पूर्व 4 थी शताब्दी मे चद्रगुप्त और चाणक्य ने, नद वश का नाश कर जो राज्यक्राति की, उस ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। इस नाटक मे वर्णित विविध आख्यायिकाए सर्वत्र प्रसिद्ध थी। कुछ प्राचीन विद्वानो के मतानुसार विशाखदत्त ने अपनी कथावस्तु बृहत्कथा से ली और उसमें प्रसिद्ध आख्यायिकाओ का कौशल्य से उपयोग करने का प्रयत्न किया। कुटिल राजनीति का व्यवस्थित चित्रण करनेवाला मुद्राराक्षस जैसा दूसरा नाटक सस्कृत साहित्य मे नहीं है। विशुद्ध राजनीतिक नाटक होने के कारण इसमें माधुर्य एव लालित्य का सर्वथा अभाव है। चन्दनदास की पत्नी एकमात्र स्त्रीपात्र है। किन्तु कथा के विकास मे उसका कुछ भी महत्त्व नही है। सस्कृत मे यह एकमात्र नाटककार है जिसने रसपरिपाक की अपेक्षा घटना वैचित्र्य पर ही बल दया है। मुद्राराक्षस वीररसप्रधान होने पर भी उसमे युद्ध के दृश्य नही है। यहा शस्त्रो का द्वन्द्व न होकर कुटिल बुद्धि का अद्भुत सघर्ष आदि से अत तक चित्रित किया हुआ है। इस नाटक मे चद्रगुप्त और चाणक्य इन दोनो के नायकत्व के सबध मे विद्वानो ने मतभेद व्यक्त किये है। सस्कृत नाटकों की परिपाटी के अनुसार भरतवाक्य का पाठ नायक द्वारा ही किया जाता है परतु मुद्राराक्षस मे भरतवाक्य राक्षस द्वारा कहा गया है।

हर्ष · जिसके आविर्भाव काल के विषय मे विवाद नहीं है ऐसा हर्ष (अथवा हर्षवर्धन शिलादित्य) यह एकमात्र प्राचीन नाटककार है। हर्ष के नाम पर रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानद ये तीन नाटक प्रसिद्ध हैं, परतु इनके कर्तृत्व का श्रेय उसे देने में विद्वानों ने मतभेद व्यक्त किया है। काव्यप्रकाश के उपोद्धात मे (1, 2) मम्मट ने "श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्" यह वाक्य डाला है। इसके कारण हर्ष के लेखकत्व के संबध में विवाद खडे हुए। साथ ही कुछ स्थलों में "धावक के स्थान पर "बाण" शब्द का प्रयोग हुआ है। इस कारण हाल और बूल्हर ने तीनों नाटको का कर्तृत्व हर्षचरितकार बाणभट्ट को दिया है। काव्हेल का मत है कि, रत्नावली नाटिका की रचना बाण ने और नागानद की रचना धावक ने की। पिशेल का मत है

कि तीनों रूपकों की रचना एक ही लेखक ने की है और वह लेखक हर्ष का समकालीन कोई उत्तम साहित्यिक होगा, या तो धावक ही होगा। रत्नावली में सिंहल राजकन्या रत्नावली और वत्सराज उदयन के प्रेमविवाह की अद्भुतरम्य कथा चार अकों में चित्रित की है। तीनों रूपकों में यह श्रीहर्ष की प्रथम कृति मानी जाती है। अद्भुतरम्य कथावस्तु का संपूर्ण विकास इस प्रख्यात नाटिका में हुआ है।

प्रियदर्शिका नाटिका में भी उदयन के प्रेमविवाह की कथा चित्रित की है। इसमें नायिका प्रियदर्शिका (जो आरण्यिका नाम से उदयन के अन्त पुर में अज्ञात अवस्था में रहती है।) अंग राजा (वासवदत्ता महारानी का चाचा) की कन्या होती है।

नागानन्द यह पाँच अकों का बौद्ध नाटक है। अश्वघोष के बौद्ध नाटक अपूर्ण अवस्था में मिलते हैं। नागानन्द में भूतदया के सिद्धान्त का पालन, बौद्ध मतानुयायी नायक जीमूतवाहन ने किया है। नायिका मलयवती, अपने प्रियकर की सजीवता के लिए गौरी की आराधना करती है। इस प्रकार इस नाटक में बौद्ध और शैव जीवनपद्धति का समन्वय मिलता है। इस नाटक का सविधान बृहत्कथा या विद्याधरजातक से लिया हुआ है। वेतालपचविंशति में भी यह कथा मिलती है।

भट्टनारायण : महाभारत में वस्त्रहरण के समय द्रौपदी की वेणी खींची गई थी। उस अपमान का पूरा बदला लेकर, दुर्योधन का वध कर, भीमसेन ने उसके रक्त से रगे हुए हाथो से वेणी का "सहार" अर्थात् बधन किया। इस प्रक्षोभक घटना पर आधारित वेणीसहार नाटक की रचना भट्टनारायण ने की और उसके द्वारा सस्कृत नाट्यवाङ्मय में अपना नाम अजरामर किया। महाभारत के वीरों के एक दूसरे के प्रति रागद्वेषादि भाव किस प्रकार के थे, इसका उत्कृष्ट परिचय वेणीसहार के सात अकों में दिया है।

भट्टनारायण मूलत कान्यकुब्ज (कनौज) के निवासी थे। सातवीं शताब्दी में बगाल के पालवशीय राजा आदिशूर अथवा आदीश्वर ने इन्हें कान्यकुब्ज से बगाल मे लाया था। वेणीसहार के बागला भाषीय अनुवादक शौरींद्रमोहन टैगोर ने, अपने भट्टनारायण के वशज होने का अभिमान से उल्लेख किया है।

प्रस्तुत नाटक मे दुर्योधन का प्राधान्य देखकर, उसे नायक मानने वाले विद्वान अत मे उसका वध देख कर, वेणीसहार को सस्कृत का शोकान्त नाटक मानते हैं। परतु भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार "नाधिकारिवध क्वापि" (दशरूपक 3-36) अधिकृतनायकवध प्रवेशकादिनाऽपि न सूचयेत्" (धनिकटीका) इस प्रकार का निश्चित नियम होने के कारण, नाटककार ने जिसका वध सूचित किया है ऐसा दुर्योधन वेणीसंहार का नायक नहीं माना जा सकता।

सपूर्ण नाटक में भीमसेन का व्यक्तित्व सामाजिकों को अधिक आकृष्ट करता है। अपने रक्तरजित हाथों से द्रौपदी की वेणी गूथने का प्रमुख कार्य भीमसेन ने ही पूर्ण किया है। अत उसे वेणीसहार का नायक कुछ विद्वानों ने माना है। परम्परा की दृष्टि से धीरोदात्त प्रकृति के युधिष्ठिर को इस नाटक का नायक माना जाता है। सस्कृत नाटक में "भरतवाक्य" का गायन या कथन करने वाला व्यक्ति नायक ही होता है और इस नाटक में यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा सपादित किया है। विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे, युधिष्ठिर को ही वेणीसहार का नायक माना है। परंतु भट्टनारायण ने युधिष्ठिर के व्यक्तित्व का नायकोचित चित्रण नही किया। प्रथम और पचम अक मे युधिष्ठिर का उल्लेख नेपथ्य से होता है। केवल अंतिम अक में ही वे सामने आते है। इस तरह वेणीसहार एक शास्त्रशुद्ध नाट्यकृति होते हुए भी, उसका नायक एक विवाद का विषय हुआ है।

भवभूति : सस्कृत नाटकों के रसिक अभ्यासक भवभूति को कालिदास के समान श्रेष्ठ नाटककार मानते हैं। कुछ रसिकों के मतानुसार भवभूति का उत्तररामचरित, कालिदास के शाकुन्तल से भी अधिक सरस एव भावोत्कट है। भवभूति का वास्तव नाम श्रीकठ था। इन्होंने अपने महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित ये तीनों नाटक, कालप्रियनाथ के यात्रोत्सव निमित्त उक्त क्रमानुसार लिखे थे।

मालतीमाधव एक प्रकरण होते हुए भी उसमें नाट्यशास्त्र की दृष्टि से आवश्यक माना गया "विदूषक" भवभूति ने चित्रित नहीं किया। महावीरचरित में सीतास्वयंवर से लेकर रावणवध के पश्चात् अयोध्या प्रत्यागमन तक की रामकथा प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रीति से चित्रित की है। ऐसा माना जाता है कि इस नाटक के पंचम अंक के 46 वें श्लोक तक की रचना भवभूति ने की और उसका शेष भाग किसी सुब्रह्मण्य नामक कवि ने लिखा।

महावीरचरित की कथा से संबंध रखते हुए उत्तररामचरित की रचना भवभूति ने की है। इस प्रकार दोनों नाटकों के प्रत्येकश. सात सात अकों में संपूर्ण रामचरित्र भवभूति ने नाट्यप्रयोगोचित किया है। उत्तरकालीन रामनाटकों के अनेक लेखकों पर भवभूति के इन दो नाटकों का काफी प्रभाव पड़ा है।

मालतीमाधव की कथा भवभूति ने अपनी प्रतिभा से उत्पन्न की है। इसमें वास्तवता और अद्भुतता का संगम कवि ने किया है। अघोरघंट की शिष्या कपालकुण्डला द्वारा, मालती का बलिदान के लिए अपहरण होने की वार्ता सुनने पर माधव की शोकाकुल अवस्था का चित्रण भवभूति ने, विक्रमोर्वशीय में कालिदास द्वारा चित्रित पुरुरवा की अवस्था के समान किया है।

कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा, भवभूति के आश्रयदाता थे। इनके द्वारा लिखित रामकथाविषयक रामाभ्युदय नामक नाटक का, आनंदवर्धन ने ध्वन्यालोक में धनिक ने दशरूपक (1, 42) में और विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (6, 142) में उल्लेख किया है। परंतु वह अभी तक अप्राप्य रहा है।

अनंतहर्ष : भासकृत स्वप्नवासवदत्त नाटक के कथाभाग मे, कुछ अधिक अश जोड कर अनहंगर्ष ने "तापसवत्सराज" नामक नाटक लिखा है। वासवदत्ता के निधन की वार्ता सुनकर वत्सराज उदयन विरक्त होता है। उधर पद्मावती वत्सराज का चित्र देख कर प्रेमविव्हल और अंत में विरक्त हो जाती है। वासवदत्ता भी पतिवियोग से हताश होकर अग्निप्रवेश करने प्रयाग जाती है। वहीं पर उदयन भी उसी हेतु जाता है। अचानक दोनों की भेट होकर नाटक सुखान्त होता है। अनगहर्ष ने अपने नाटक में हर्ष की रत्नावली नाटिका का अनुसरण किया है।

मायुराज : दशरूपक की अवलोक टीका (2, 54) में मायुराजकृत "उदात्तराघव" नाटक का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत में यह नाटक भासकृत माना जाता था। मायुराज "करचूली" या कलचूरी वंशीय थे। अपने उदात्तराघव में रामचन्द्र की धीरोदात्तता को बाधा देनेवाला वालिवध का प्रसग, मायुराज ने बड़ी कुशलता से टाला है। कांचनमृग को मारने के लिये प्रथम लक्ष्मण जाते हैं और उनकी सुरक्षा के लिए राम जाते हैं, ऐसा दृश्य दिखाया है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से ऐसे औचित्यपूर्ण परिवर्तन प्रशंसनीय माने गये हैं।

मुरारि : अपने अनर्घराघव नामक सात अंकी नाटक में मुरारि ने अपना परिचय दिया है। वे महाकवि एव "बालवाल्मीकि" इन उपाधियों से अपना उल्लेख करते हैं। अनर्घराघवकार ने भवभूति का और प्रसन्नराघवकार जयदेव ने मुरारिका अनुसरण किया है। अनर्घराघव में विश्वामित्र के यज्ञ से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक का रामचरित्र चित्रित हुआ है। नाटककार "गुरूकुलक्लिष्ट" होने के कारण, उनकी रचना में भी क्लिष्टता का दर्शन होता है।

राजशेखर : कर्पूरमजरी, बालरामायण, विद्धशालभजिका और बालभारत (अथवा प्रचडपाडव) इन चार रूपकों के अतिरिक्त काव्यमीमासा नामक साहित्यशास्त्रीय ग्रथ और अनेक सुभाषित राजशेखर ने लिखे हैं।

बालरामायण (1, 12) में अपने छ ग्रन्थों का राजशेखर ने निर्देश किया है। अपना कर्पूरमजरी नामक प्राकृत सट्टक, पत्नी अवंतिसुंदरी (चाहमान वशीय) की सूचना के अनुसार राजशेखर ने लिखा। इसमें अपना निर्देश बालकवि, कविराज और निर्भयराज का अध्यापक इन विशेषणों से दिया है। बालरामायण का प्रयोग अपने छात्र "निर्भय" अर्थात् प्रतिहार महेन्द्रपाल की प्रार्थना से किया था। विद्धशालभंजिका के प्रथम अक में, नायक विद्याधरमल्ल, नायिका मृगांकावली की मूर्ति को माला अर्पण करता है। इस कारण नाटक का अपरनाम मृगांकावली हुआ है। इसकी रचना त्रिपुरी के कलचूरीवशीय राजा केयूरवर्ष के आदेशानुसार राजशेखर ने की है। इस उल्लेख के कारण, राजशेखर महेंद्रपाल के पश्चात त्रिपुरी निवास के लिए गए होंगे यह अनुमान किया जाता है। विद्धदशालभजिका और कर्पूरमजरी की कथाए कविनिर्मित हैं। बालभारत के केवल दो अक उपलब्ध हैं, जिनमें द्रौपदीस्वयंवर और द्यूतप्रसंग का चित्रण किया गया है। राजशेखर का भुवनकोष नामक भूगोलवर्णनात्मक ग्रथ अनुपलब्ध है। बालरामायण में 741 पद्य हैं। जिनमें 200 गद्य शार्दूलवीक्रीडित और 86 पद्य स्रग्धरा जैसे प्रदीर्घ वृत्तों में लिखे हैं। अतिम अक में 105 पद्यों में रामचन्द्र के लका से अयोध्या तक के विमानप्रवास का वर्णन है। इस प्रकार के कारणों से बालरामायण महानाटक की अपेक्षा लघुकाव्य सा हुआ है।

क्षेमीश्वर : अपने आश्रयदाता महीपालदेव के आदेशानुसार क्षेमीश्वरने चण्डकौशिक नामक पाँच अकों का नाटक लिखा। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत हरिश्चन्द्र की कथा पर यह नाटक आधारित है। चण्डकौशिक की तजौर में उपलब्ध पाण्डुलिपि में कवि का नाम "क्षेमेंद्र" लिखा है। अत. बृहत्कथाकार क्षेमेन्द्र और चण्डकौशिककार इनकी एकता होने के विषय में बर्नेल और पिशेल ने चर्चा की है। क्षेमीश्वर का दूसरा नाटक नैषधानद, नलकथा पर आधारित है।

जयदेव · प्रसन्नराघव नामक नाटक में सीता स्वयवर से अयोध्याप्रत्यागमन तक का कथाभाग इन्होंने चित्रित किया है। अर्थात् भवभूति, मुरारि आदि पूर्ववर्ती रामनाटकों की कृतियों का अनुकरण, प्रसन्नराघवकार ने किया है। जयदेव का चद्रालोक नामक साहित्यशास्त्रीय ग्रथ, अप्पय्य दीक्षित ने अपने कुवलयानद में समाविष्ट किया है।

संस्कृत नाट्यवाङ्मय में विशेष रूप से योगदान करने वाले उपरिनिर्दिष्ट प्रमुख लेखकों के अतिरिक्त, हनुमान् कविकृत हनुमन्नाटक (कुछ विद्वान मधुसूदन मिश्र को इस नाटक के लेखक अथवा संशोधनकार मानते हैं) 14 अकों का "महानाटक", सुभटकवि कृत दूतांगद नामक छायानाटक इत्यादि नाटक उल्लेखनीय हैं।

छायानाटक के प्रयोग प्राचीन काल में प्रचलित थे। दूतांगद के अतिरिक्त भूभट्टकृत अगद, रामदेवकृत सुभद्रापरिणय, रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय ये तीन नाटक, शंकरलाल कृत सावित्रीचरित, कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य कृत आनंदलतिका, वैद्यनाथ वाचस्पतिकृत चित्रयज्ञ (दक्षयज्ञविषयक) इत्यादि छायानाटक उल्लेखनीय हैं।

10 लाक्षणिक या प्रतीक नाटक

12 वीं शती के एक संन्यासी कृष्णमिश्र दण्डी ने "प्रबोधचन्द्रोदय" नामक छः अंकों का शांतरसप्रधान तत्त्वोद्बोधक नाटक निर्माण कर, संस्कृत नाट्यवाङ्मय में एक नयी प्रणाली का प्रवर्तन किया। अद्वैतवाद के प्रतिपादन के उद्देश्य से इस नाटक में श्रद्धा, भक्ति, विद्या, ज्ञान, मोह, विवेक, दम्भ, बुद्धि इत्यादि अमूर्त भावों को पात्रों के रूप में मंच पर लाया गया है। कृष्णमिश्र का यह अनोखा नाट्यप्रकार आगे चल कर लोकप्रिय हुआ सा दीखता है।

इस प्रकार के लाक्षणिक नाटकों में परमानंद दास कवि कर्णपूर (16 वीं शती) का चैतन्यचंद्रोदय, भूदेव शुक्ल (16 वीं शती) कृत धर्मविजय, कृष्णदत्त मैथिल (17 वीं शती) कृत पुरंजनचरित्र, शुक्लेश्वरनाथकृत प्रबोधोदय, श्रीनिवास अतिरात्र याजी का भावनापुरुषोत्तम, आनंदरायमखीकृत (वस्तुत: वेदकविकृत) विद्यापरिणयन और जीवनंदन, कवितार्किकसिंह कृत संकल्पसूर्योदय, गोकुलनाथ शर्मा का अमृतोदय, नृसिंह कवि का अनुमितिपरिणय, रंगीलाल (19 वीं शती) का आनंदचंद्रोदय, नृसिंहदैवज्ञ का चित्सूर्यालोक नल्ला दीक्षित का चित्तवृत्तिकल्याण और जीवनमुक्तिकल्याण, ब्रह्मसूर्यकृत ज्योति प्रभाकल्याण, रविदासकृत मिथ्याज्ञानविडम्बन, यश पालकृत मोहपराजय, कृष्णकविकृत मुक्ताचरित, गोविंदपुत्र सुंदरदेव कृत मुक्तिपरिणय, घट्टशेषार्यकृत प्रसन्नसपिण्डीकरणनिरास., जातवेद्सकृत पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय, जयंतभट्टकृत सन्मतनाटक, वैकुण्ठपुरीकृत शांतिचरित (बौद्धधर्मविषयक) नाटक, वैद्यनाथकृत सत्संगविजय, अनंतरामकृत स्वानुभूतिनाटक, पूर्णगुरुपुत्र रामानुजकविकृत विवेकविजय, वरदाचार्य (नामान्तर अम्मलाचार्य) कृत वेदान्तविलास (अथवा यतिराजविजय ही नहीं अपि तु जागतिक नाट्य वाङ्मय का यह रामानुजमतप्रतिपादक नाटक है), पद्मराज पंडितकृत महिसूरू-शातीश्वर-प्रतिष्ठा (जैनधर्मीय नाटक), वादिचंद्रसूरिकृत ज्ञानसूर्योदय; यशश्चंद्रकृत कुसुमचंद्र, कृष्णानंद सरस्वतीकृत अन्तर्व्याकरणनाट्य (इसके श्लोक क्लिष्ट हैं जिनमें व्याकरण शास्त्र परक और नीतिपरक अर्थ मिलते हैं।) इत्यादि।

लाक्षणिक नाटक संस्कृत नाट्यवाङ्मय का, एक वैशिष्ट्यपूर्ण अनोखा अंग कहा जा सकता है।

11 रामायणीय नाटक

वाल्मीकि का रामायण भारत की सभी भाषाओं के असंख्य साहित्यिकों के लिए उपजीव्य ग्रंथ रहा है। संस्कृत नाटककारों में, रामायणीय नाटकों को लिखने की परंपरा भास से प्रारंभ होती है और भवभूति के उत्कृष्ट नाटकों के प्रभाव से बढ़ती हुई दिखाई देती है। कुछ श्रेष्ठ नाटककारों का जो परिचय उपर दिया गया है, उनमें कुछ रामचरित्र विषयक नाटकों का उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त उल्लेखनीय नाटकों का संक्षेपत निर्देश मात्र इस प्रकरण में देना संभव है।

नाटककार	नाटक	विशेष
भट्टसुकुमार (अथवा भूषण)	रघुवीरचरित	पांच अंकी
नृत्यगोपाल कविरत्न	रामावदान,	पांच अंकी
-"-	दर्पशातन	परशुरामविषयक कथांश पर आधारित
सुंदर मिश्र	अभिरामनाटक	सात अंकी
महादेव (सूर्यपुत्र)	अद्भुतदर्पण	दशांकी, अंगदशिष्टाई से अयोध्या
-"-	(नामान्तर मायारूपक अथवा माया नाटिका)	प्रत्यागमन तक का लंका में हुआ कथा भाग, इस नाटक में राम-लक्ष्मण मायावी दर्पण मे देखते हैं। रामनाटक में कहीं भी न मिलने वाला विदूषक इस नाटक में हास्य रस की झलक दिखाता है।
महादेवशास्त्री	उन्मत्तराघव	सात अंकी
रामभद्र दीक्षित (कुंभकोण निवासी)	जानकीपरिणय	सात अंकी, सीता स्वयंवर से अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा।
मधुसूदन (दरभंगा निवासी)	जानकीपरिणय	चार अंकी
भट्टनारायण (वेणी संहार के लेखक से भिन्न व्यक्ति)	जानकीपरिणय	×
सीताराम	जानकीपरिणय	×
हस्तिमल्लसेन (जैन धर्मी)	मैथिलीपरिणय और अंजनापवनंजय	×
सुब्रह्मण्य (कृष्णसूरिपुत्र)	सीताविवाह	पांच अंकी

भगवंतराय	राघवाभ्युदय	×
गंगाधरसूनु	राघवाभ्युदय	सात अंकी
रामचद्र (हेमचंद्र का शिष्य)	राघवाभ्युदय और रघुविलास	×
यज्ञनारायण	रघुनाथविलास	पाच अकी
बालकृष्ण	मुदितराघव	×
वेंकटेश्वर (धर्मराजपुत्र)	राघवानंद (अथवा राघवाभ्युदय)	सप्ताकी
मणिक (नेपाली कवि, 14 वीं शती)	अभिनवराघवानद	×
राजचूडामणि दीक्षित (रत्नखेट)	राघवानद	×
शक्तिभद्र	आश्चर्यचूडामणि	सप्तांकी
वीरराघव	रामराज्याभिषेक	सप्ताकी
श्रीनिवास (वरदगुरुपुत्र)	सीतादिव्यचरित	सप्ताकी
तातार्य (वैष्णवगुरु)	सीतानद	सप्ताकी
रामवारियर	सीताराघव	''
श्रीनारायणशास्त्री (कुभकोण निवासी)	मैथिलीय	(इस लेखक ने अनेक नाटकों की रचना की है)
अतिरात्रयज्वा (अप्पय दीक्षित के पौत्र, 17 वी शती)	कुशकुमुद्वतीय	पचाकी
वेंकटकृष्ण दीक्षित (17 वीं शती)	कुशलवविजय	तजौर के शहाजी राजा के आदेश से लिखा
छबिलाल	कुशलवोदय	×
श्रीधर भास्कर वर्णेकर	श्रीरामसगीतिका	नृत्यनाट्य। 1983 में कालिदास पुरस्कार प्राप्त।

इस प्रकार रामचरित्र विषयक कुछ सस्कृत नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में कथानक की समानता के कारण कुछ वर्णनों, भाषणों और भाषा शैली के अतिरिक्त वैविध्य या वैचित्र्य मिलना असभव है। नाटकों की यह नामावली सस्कृत साहित्यिकों की रामभक्ति का एक प्रमाण है। नाटकों के नामकरण में भी प्राय समानता है। रामचरित्र विषयक इतने विविध नाटक निर्माण होने के बाद भी भास और भवभूति का यश अबाधित रहा है।

12 श्रीकृष्णचरित्र

रामचरित्र के समान कृष्णचरित्र भी अनेक साहित्यिकों का प्रिय विषय रहा है। कृष्णचरित्र विषयक कुछ नाटकों का निर्देश यहाँ दिया है।

नाटककार	**नाटक**	**विशेष**
रामानन्दराय (16 वीं शती)	जगन्नाथ वल्लभ	उडीसा के नृपति प्रताप रुद्र की आज्ञा से लिखित)
मधुसूदन सरस्वती	कृष्णकुतूहल	×
कवीश्वर	माधवानल	×
आनदधर	माधवानल	×
रामचद्र	यादवाभ्युदय	×
अनतदेव (आपदेव के पुत्र)	कृष्णभक्तिचंद्रिका	×
कृष्णराय	जांबवतीकल्याण	×
रामकृष्ण (गुजरात निवासी)	गोपालकेलिचद्रिका	छाया नाटक
नारायणतीर्थ	कृष्णलीलातरगिणी	इसमें गीतगोविंद के पद्य उद्धृत है
वैद्यनाथ	कृष्णलीला	×
गोविंद कविभूषण	समृद्धमाधव	गीतगोविंद का रूपातर
शकरदेव	विदग्धमाधव	×
रूपगोस्वामी- (चैतन्य देव के प्रथम शिष्य)	विदग्धमाधव (2) ललितमाधव (दशाकी)	सप्तांकी (इसी नाम के अन्य नाटक भी मिलते हैं जिनके रचियता के नामों का पता नहीं चलता)
शेषचितामणि	रुक्मिणीहरण	×

राजचूडामणि दीक्षित	रुक्मिणीकल्याण	×
सरस्वतीनिवास	रुक्मिणी	×
कवितार्किक सिंह	रुक्मिणीपरिणय	×
रामवर्मा	रुक्मिणीपरिणय	पचांकी। राजशेखर के कर्पूरमजरी सट्टक का अनुकरण
सुंदरराज (केरलीय) वरदराजपुत्र	वैदर्भीवासुदेव	पंचाकी
शंकर बालकृष्ण दीक्षित	प्रद्युम्नविजय	सप्ताकी
वल्लीसहाय	रोचनानंद	प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध और रोचना के विवाह की कथा पर आधारित
कुमारतातय्या	पारिजात	सत्यभामाविषयक
गोपालदास	पारिजात	,,
उमापति	पारिजातहरण	,,
शेषकृष्ण	1) सत्यभामापरिणय 2) सत्यभामाविलास 3) मुरारिविजय और 4) कंसवध	×
दामोदर	कसवध	×
सामराज दीक्षित (17 वीं शती)	श्रीदामचरित	(बुंदेल राजपुत्र आनंदराय के आदेशानुसार लिखित)
श्रीनिवासाचार्य	सुदर्शनविजय	पौंड्रक के विनाश की कथा
श्रीधर भास्कर वर्णेकर	श्रीकृष्णसगीतिका	नृत्यनाट्य

श्रीरामायण पर आधारित बहुसंख्य नाटकों में प्राय सीतास्वयवर से अयोध्या प्रत्यागमन तक रामचरित्र चित्रित किया गया है परंतु कृष्णचरित्र विषयक नाटकों में बाललीला, कसवध, राधाप्रणय, रुक्मिणीस्वयवर, सत्यभामास्वयवर इस प्रकार के स्फुट विषयों पर लिखे हुए नाटक मिलते हैं। समग्र कृष्ण चरित्र पर आधारित नाटक नहीं मिलते।

13 महाभारतीय नाटक

रामायण के समान महाभारत के आख्यान पर आधारित नाटकों की संख्या भी काफी बड़ी है। उनमें से कुछ उल्लेखनीय नाटक

नाटककार	नाटक	विशेष
क्षेमेंद्र (काश्मीरी)	चित्रभारत	लेखक ने अपने औचित्यविचारचर्चा और कविकंठाभरण ग्रंथ में उल्लेख किया है
हस्तिमल्लसेन (जैन आचार्य)	1) अर्जुनराजनाटक 2) भारतराजनाटक 3) मेघेश्वर	× × ×
महेश्वर	सभानाटक	सभापर्व पर आधारित
जयरणमल्ल (नेपाली राजा)	सभापर्वनाटक (अथवा पांडवविजय)	×
शीतलचंद्र विद्याभूषण	घोषयात्रा	दशांकी
सुकुमार पिल्ले	लक्ष्मणा-स्वयंवर	(दुर्योधन की कन्या और कृष्ण के पुत्र सांब का विवाह)
लक्ष्मण माणिक्य (16 वीं शती)	विख्यातविजय	छः अंकी कर्णवध विषयक
युवराज प्रल्हाद (13 वीं शती)	पार्थपराक्रम	×
कृष्णसूरि	द्रौपदीपरिणय	×
नल्लकवि (मखींद्र पुत्र)	सुभद्रापरिणय	×
सुधींद्रयति	सुभद्रापरिणय	×
गुरुराम	सुभद्राधनंजय	×

विजयींद्रयति	सुभद्राधनंजय	×
कुलशेखरवर्मा (केरल नृपति)	सुभद्राधनजय और तपतिसंवरण	×
सुमतिजितामित्रदेव (भट्टग्राम नृपति)	अश्वमेघ	(युधिष्ठिर के अश्वमेघ की कथा पर आधारित)

इस प्रकार महाभारत आधारित नाटकों में अन्य विषयों की अपेक्षा सुभद्राविवाह का आख्यान अधिक प्रिय दिखाई देता है। भट्टनारायण के वेणीसंहार जैसी लोकप्रियता और विद्वन्मान्यता, महाभारत कथा पर आधारित अन्य किसी भी नाटक को नहीं मिल सकी।

अन्य पुराणों की कथाओं पर आधारित नाटकों में शिव-पार्वती विवाह की कथा पर आधारित नाटकों की संख्या अधिक दिखाई देती है। इस विषय पर लिखे हुए कुछ उल्लेखनीय नाटक -

शिवकथा विषयक नाटक

नाटककार	नाटक	विशेष
शकर मिश्र (वैशेषिक सूत्र के टीकाकार)	गौरी दिगबर	×
रामचद्र सुमुनुवंशर्माण (17 वीं शती)	गीतदिगबर	चार अकी। यह नाटक खाटमडू के राजा प्रतापमल्ल के तुलापुरुषदान निमित्त लिखा गया।)
जगज्ज्योतिर्मल्ल (नेपाल नरेश- 17 वीं शती)	हरगौरीविवाह	×
बाण (वामनभट्ट बाण, 15 वीं शती)	पार्वतीपरिणय	कालिदास के कुमारसभव का अनुसरण
वेंकटराघवाचार्य	मन्मथविजय	×
जगन्नाथ (तंजौर निवासी)	रतिमन्मथ	×
वेंकटाचार्य	प्रद्युम्नानंदीय	अष्टाकी
रुद्रशर्मा त्रिपाठी	चण्डीविलास अथवा चण्डीचरित	×
जीवानंद ज्योतिर्विद्	मगल	नौ अकी, विषय शिवपत्नी कथा।
वैद्यनाथ व्यास	गणेशपरिणय	सप्ताकी
घनश्याम चोंडाजीपंत (आर्यक)	कुमारविजय	पचाकी
वीरराघव	वल्लीपरिणय	स्कदकथा पर आधारित
भास्करयज्वा	वल्लीपरिणय	स्कदकथा पर आधारित

अन्य पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटकों में विशेष उल्लेखनीय नाटक :

नाटककार	नाटक	विशेष
वीरराघव (श्रीशैलसूरिपुत्र)	इदिरापरिणय	लक्ष्मीस्वयवर विषयक
चतुष्कवीन्द्रदास श्रीनिवास	लक्ष्मीस्वयंवर	×
विरूपाक्ष	नारायणीविलास	×
श्रीनिवासाचार्य	उषापरिणय	×
चयनीचन्द्रशेखररायगुरु	मथुरानिरुद्ध	अष्टाकी
केशवनाथ	गोदापरिणय	वरदराज-गोदा-विवाह विषयक
रामानुजाचार्य (शरणाबपुत्र)	वासलक्ष्मीकल्याण	×
वीरराघवशरणांब	(1) कनकवल्लीपरिणय	×
	(2) वर्धिकन्यापरिणय	×
नारायण (लक्ष्मीधरपुत्र)	कमलाकठीरव	कामाक्षी-वल्लभ यात्रा के निमित्त लिखित

कुछ साहित्यिकों ने चन्द्रमा की कथा पर आधारित नाटक लिखे हैं :

नाटककार	नाटक	विशेष
नारायण कवि	चन्द्रकला	×

नृसिंहकवि (शिवरामसुधीमणि का पुत्र)	चन्द्रकलापरिणय	पंचांकी
गंगाधर	चन्द्रविलास	×
रामचंद्र (तंजौर वासी)	कलानंद और ऐन्दवानन्द	अष्टांकी
श्रीनिवासकवि (वरददेशिक पुत्र)	अंबुजवल्लीकल्याण	पंचांकी
परित्तियूर रामस्वामी कृष्णशास्त्री	कौमुदीसोम	×
गुरुराम	रत्नेश्वरप्रसादन	पंचांकी
श्रीनिवास	(1) सौम्यसोम	चार अंकी
	(2) हस्तिगिरिमाहात्म्य	×
मणिक (नेपाली कवि)	भैरवानन्द	इसकी नायिका मदनावती एक शापित देवांगना थी, उसका भैरव देवता से विवाह इसका विषय है।
कृष्णदास (केरलीय)	कलावती-कामरूप	इसमें काशीनरेश कामरूप का कलावती से विवाह विषय है।
हरिहर	भर्तृहरिनिर्वेद	विषय-राजा भर्तृहरि और भानुमती की अद्‌भुत कथा।

वसुमती और चित्रसेन के विवाह की कथा पर आधारित नाटक अप्पय्य दीक्षित, जगन्नाथ और एक अज्ञात कवि ने लिखे हैं।

नाटककार	**नाटक**	**विशेष**
रामचद्र (12 वीं शती)	सत्यहरिश्चंद्र	×
क्षेमीश्वर	हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रिका	×
सिद्धिवरसिंह (17 वीं शती में नेपाल के नृपति)	हरिश्चन्द्रनृत्य	×

हरिश्चन्द्र की सुप्रसिद्ध कथा पर आधारित ये उपरिनिर्दिष्ट तीन नाटक उल्लेखनीय हैं। कुवलयाश्व और मदालसा के आख्यान पर आधारित निम्नलिखित नाटक उल्लेखनीय हैं :

नाटककार	**नाटक**	**विशेष**
लक्ष्मणमाणिक्य (भुलुया का राजपुत्र)	कुवलयाश्व	×
कृष्णदत्त मैथिल (पुरंजनचरित और सान्द्रकुतूहल नाटकों के रचयिता)	कुवलयाश्वीय	सात अंकी
रामभट्ट	मदालसा	×
गोकुलनाथ	मदालसापरिणय	×
जगज्ज्योतिर्मल्ल (भटगाव के राजा 17 वीं शती)	कुवलयाश्व	×
रामचद्र (17 वीं शती, नेपालवासी)	ललितकुवलयाश्व	×

नलचरित्र विषयक नाटक

रत्नखेट दीक्षित	भैमीपरिणय	×
परवस्तु वेंकट रगनाथाचार्य	मंजुलनैषध, नलभूमिपालरूपक	×
नीलकंठ दीक्षित (अप्पय्य दीक्षित का भतीजा)	नलचरित्र	×
जीवविबुद्ध	नलानंद	सप्तांकी
रामचंद्र	नलविलास	×
नारायण	कलिविधूनम और शूरमयूर	दशांकी

यथाति और शर्मिष्ठा की पौराणिक कथा ने भी अनेक नाटकों को जन्म दिया है :

रुद्रदेव	ययातिचरित्र	सप्तांकी

वल्लीसहाय	**ययातितरुणानद**	×
ययाति देवयानीचरित		×
भट्ट श्रीनारायणशास्त्री (कुंभकोणंनिवासी)	**शर्मिष्ठाविजय**	चार अकी

इसी लेखक के कालिविधूनन (दशाकी), शूरमयूर (सप्ताकी) और जैत्रजैवातृक (सप्ताकी) ये तीन नाटक प्रसिद्ध हैं।

अभी तक जिन विविध प्रकार के पौराणिक नाटकों का परिचय दिया है उनमें से बहुताश नाटकों का विषय स्वयवर या विवाह ही है। रस की, और उसमे भी शृगार रस की प्रधानता, नाटकों में श्लाघनीय मानी जाने के कारण, नायक नायिका संबंध में संभाव्य रति स्थायी भाव के विभाव अनुभाव और व्यभिचारभाव का संयोग करने में प्राय सभी सस्कृत नाटककारों में अपनी प्रतिभा का विनियोग किया है। इसी एकमात्र उद्दिष्ट से रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों तथा बृहत्कथा में उपलब्ध विवाह एव स्वयवर विषयक आख्यान और उपाख्यान नाटककारों ने खोज खोज कर निकाले और उनके आधार पर अपनी प्रतिभा को पल्लवित किया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कल्पित विवाह विषयक कथाए, शृगार रस की निष्पत्ति के लिए नाट्यरूप में चित्रित की गई हैं -

नाटककार	नाटक	विशेष
अप्पानाथ (तजौरवासी, 18 वीं शती)	कातिमतीपरिणय	पचाकी
अप्पाशास्त्री	लवलीपरिणय	×
श्रीनिवासदास	मरकतवल्लीपरिणय	×
	कल्याणीपरिणय	×
	सौगन्धिका परिणय	×
	सेवतिकापरिणय	×
शठकोपयति (16 वीं शती मे अहोबिल मठ के आचार्य)	वासंतिकापरिणय	×
वेंकटेश्वर	नीलापरिणय	×

14 ऐतिहासिक नाटक

प्राचीन लेखको को आज के समान इतिहास विषयक सामग्री उपलब्ध नहीं थी। अग्रेजी राज की स्थापना के पश्चात् जितने इतिहास विषयक प्रबध और चरित्र निर्माण हुए, उसके शताश भी प्राचीन साहित्यिकों को उपलब्ध नहीं थे। भारत के विविध प्रदेशों में हुई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ का भी ज्ञान अच्छे अच्छे विद्वानों को नहीं था। 19 वीं शताब्दी तक भारत में ऐतिहासिक ज्ञान की दृष्टि से तमोयुग रहा ऐसा कहने में अत्युक्ति नहीं होगी और विद्वानो का अनादर भी नहीं होगा। इसी अभाव के कारण 90 प्रतिशत नाटक और अन्य साहित्य, पौराणिक आख्यान, उपाख्यानो पर आधारित रहा। इस परिस्थिति में भी कुछ ऐतिहासिक नाटक लिखने का कार्य जिन साहित्यिकों ने किया उन्हें सर्वथा अभिनन्दनीय मानना योग्य होगा। ऐतिहासिक नाटको में विशेष उल्लेखनीय नाटक, **प्रतापरुद्रकल्याण** वरगळ (आन्ध्र) के सुप्रसिद्ध काकतीय वश के राजा प्रतापरुद्र (ई 13 वीं शती) के सम्मानार्थ यह पचाकी नाटक लिखा गया। इसके लेखक विद्यानाथ प्रतापरुद्र के आश्रित कवि थे।

गंगादास प्रतापविलास - विजयनगर के राजा मल्लिकार्जुन के मित्र चपकपुर (चापनेर) के राजा गगादास भूवल्लभ प्रतापदेव के आश्रित कवि गगाधर ने "गगादास-प्रताप विलास" नामक वीररसपूर्ण नाटक लिखा। इस नाटक का विषय है गगादास राजा का गुजरात के यवन राजा महमद (दूसरा) (1443-52) से हुआ युद्ध। कवि स्वय गुजराती थे।

नन्दिघोषविजय (अथवा कमलाविलास- भगवान विष्णु की कथा से सबधित प्रस्तुत नाटक में लेखक शिवनारायणदास ने अपने आश्रयदाता गजपतिराज नरसिहदेव (17 वीं शती का मध्य) का ऐतिहासिक पात्र प्रविष्ट किया है।

शृंगारमंजरी शाहराज - तंजौर के नृपति शहाजी भोसले (17 वीं शती का उत्तरार्ध) के आश्रित पेरिअप्पा कवि ने अपने आश्रयदाता के सम्मानार्थ प्रस्तुत शृगारप्रधान नाटक लिखा है।

भोजराज सत्चरित - वेदान्त वागीश भट्टाचार्य ने अपने आश्रयदाता, (जो हरिद्वार से मथुरा तक के वृन्दावती या वृन्दावनी नामक प्रदेश के राजा थे) सूरिजान-पुत्र भोजराज के सम्मानार्थ यह दो अको का नाटक लिखा है।

अद्‌भुतार्णव - नवद्वीप के राजा ईश्वर की राजसभा का वर्णन प्रस्तुत द्वादशाकी नाटक में कवि भूषण ने किया है।

अंग्रेजी साम्राज्य हिंदुस्थान में प्रस्थापित होने के बाद कुछ नाटक सस्कृत साहित्यिको ने लिखे, जिन में परकीय आधिपत्य का प्रभाव दिखाई देता है। इन नाटकों का अंतर्भाव भी ऐतिहासिक नाटकों में हो सकता है :-

कंपनी-प्रतापमण्डन - लेखक बिंदुमाधव

जयसिंहाश्वमेधीय - सातवे एडवर्ड के राज्यारोहणनिमित्त मुडुम्ब नरसिहाचार्य स्वामी ने यह नाटक लिखा।

दिल्लीसाम्राज्य - पचम जार्ज के दिल्ली दरबार के निमित्त लक्ष्मण सूरी ने इसकी रचना की।

ऐतिहासिक नाटको का अभाव दूर करने का प्रयास 19 वीं शती से प्रारंभ हुआ जैसे सिद्धान्तवागीश के मिवारप्रताप, शिवाजीचरित, वंगीयप्रताप ये तीन नाटक।

जीवन्यायतीर्थ के शंकराचार्यवैभव, विवेकानन्दचरित, स्वातंत्र्यसधिक्षण (प्रहसन) और स्वाधीनभारतविजय।

मूलशकर माणिकलाल याज्ञिक के प्रतापविजय, संयोगितास्वयवर, और छत्रपतिसाम्राज्य (शिवाजी चरित्र विषयक) भारतविजय, शंकरविजय, वीर पृथ्वीराज, और गान्धीविजय।

डॉ वेंकटराम राघवन के प्रतापरुद्रविजय, विजयाङ्का, विकट-नितम्बा और अनारकली)

श्रीमती लीलाराव दयाल के मीराचरित, तुकारामचरित, और ज्ञानेश्वरचरित।

डा यतीन्द्रविमल चौधरी के भारतविवेक, भारतराजेन्द्र, सुभाष सुभाष, देशबधु देशप्रिय, रक्षकश्रीगौरक्ष, भारत- हृदयारविन्द, शक्तिसारद, मुक्तिसारद, अमरमीर, भारतलक्ष्मी और विमलयतीन्द्र। डा रमा चौधरी (डा यतीन्द्र विमल चौधरी की धर्मपत्नी) के शकरशकर, रामचरितमानस, भारतपथिक, भारताचार्य, अग्निवीणा, भारततात, (म गाधीविषयक) और भारतवीर (शिवाजी विषयेक)।

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य के गीतगौराग और सिद्धार्थ चरित। श्रीराम भिकाजी वेलणकर के रानी दुर्गावती, स्वातत्र्यलक्ष्मी, छत्रपति शिवराज और लोकमान्यस्मृति।

डा श्रीधर भास्कर वर्णेकर के विवेकानन्दविजय और शिवराज्याभिषेक।

इन के अतिरिक्त सहस्रबुद्धे कृत अब्दुलमर्दन और प्रतीकार, रगाचार्यकृत शिवाजीविजय और हर्षबाणभट्टीय, सत्यव्रतकृत महर्षि (दयानंद) चरितामृत, नीर्पाजे भीमभट्टकृत काश्मीरसन्धानसमुद्यम और हैदराबादविजय, के. रामरावकृत पौरव-दिग्विजय, डा गजानन बालकृष्ण पळसुलेकृत धन्योऽह धन्योऽहम् (वीरसावरकर विषयक), योगेन्द्रमोहनकृत सयुक्ता - पृथ्वीराज, विश्वनाथ केशव छत्रेकृत प्रतापशक्ति, सिद्धार्थप्रव्रजन, डा बलदेवसिह वर्माकृत हर्षदर्शन, विनायक बोकीलकृत शिववैभव और रमामाधव, रमाकान्त मिश्रकृत जवाहरलाल नेहरू विजय, हजारीलाल शर्मा कृत हकीकतराय, पद्मशास्त्री कृत बंगलादेश विजय और डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत काँग्रेसपराभव, इत्यादि आधुनिक लेखको के ऐतिहासिक नाटकों की नामावली से, संस्कृत साहित्य क्षेत्र में दीर्घ काल तक जिन ऐतिहासिक विषयो के नाटको का अभाव या, वह प्राय समाप्त हो गया है, यह हम कह सकते हैं। भारत के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास में जिन महानुभावो के नाम अजरामर हुए हैं ऐसे अधिकाश श्रेष्ठ पुरुषो के चरित्रो पर आधारित ऐतिहासिक स्वरूप के नाटक अर्वाचीन कालखड में लिखे गए और प्राय उन सभी के प्रयोग भी यथावसर प्रस्तुत हो चुके हैं।

अर्वाचीन नाटककारो ने और भी एक विषेष कार्य किया है, और वह है भारत की अन्यान्य प्रादेशिक भाषाओ में लोकप्रिय हुए श्रेष्ठ नाटको के संस्कृत अनुवाद। अनेक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी नाटको के भी अनुवाद विद्वान लेखको ने किए हैं और उनके भी यथावसर प्रयोग प्रस्तुत हो चुके हैं।

15 नाटकोंका नाट्यशास्त्रीय वर्गीकरण

अभी तक संस्कृत नाट्य वाङ्मय का विषयानुसार वर्गीकरण करते हुए संक्षिप्त परिचय दिया गया। प्राचीन शास्त्रकारों ने जिन दशविध रूपकों एवं अठारह प्रकार के उपरूपकों में नाट्य वाङ्मय का वर्गीकरण किया, उनमें से कुछ प्रमुख रूपको का उल्लेख करना आवश्यक है। उपर्युक्त वर्गीकरण में नाटक, प्रकरण, नाटिका इस प्रकार के अनेक रूपकों का परिचय हो चुका है। अत आगे अवशिष्ट रूपकप्रकारों में विशिष्ट रूपकों का निर्देश किया जा रहा है।

ईहामृग - कृष्ण मित्र कृत वीरविजय और कृष्ण अवधूत घटिकाशतक द्वारा विरचित सर्वविनोद।

डिम :- रामविरचित मन्मथोन्मथन और वेंकटवरदकृत कृष्णविजय।

प्रहसन :- शंखधरकृत लटकमेलक- यह अतिप्राचीन प्रहसन माना जाता है। ज्योतिरीश्वर (16 वीं शती) कृत धूर्तसमागम, बाणीनाथ के पुत्र कवितार्किककृत कौतुकरत्नाकर, सामराजकृत धूर्तनर्तक, महेश्वरकृत धूर्तविडंबन, वत्सराज-कृत हास्यचूडामणि, जगदीश्वर

कृत हास्यार्णव, कविपंडित कृत हृदयगोविंद, भारद्वाजकृत कालेयकुतूहल, गोपीनाथ चक्रवर्ती कृत कौतुकसर्वस्व, सुदरदेवकृत- विनोदरंग, शिव ज्योतिविद्‌कृत मुंडितप्रहसन, कृष्णदत्तमैथिल कृत साद्रकुतूहल, अरुणगिरिनाथकृत सोमवल्ली-योगानद और कविसार्वभौमकृत डिंडिम इत्यादि विविध प्रहसनों में वेश्या और धूर्त लोगों का व्यभिचारमय जीवन चित्रित करते हुए हास्य रस निर्माण करने का प्रयत्न लेखकों ने किया है। संस्कृत वाङ्मय का आस्वाद लेने वाला बहुसख्याक वर्ग गभीर प्रकृति का और उच्च, उदात्त अभिरुचि रखने वाला होने कारण, प्रहसन वाङ्मय और उनके प्रयोग समाज में लोकप्रिय नहीं हुए। आधुनिक नाटककारों ने हास्य रसात्मक रूपक निर्माण करने की ओर अपनी प्रवृत्ति दिखाई है।

उत्सृष्टिकांक (अथवा अंक)

प्राचीन लेखको ने रूपक के इस प्रकार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार के रूपको में भास्कर कवि-कृत उन्मत्तराघव, लोकनाथ भट्ट का कृष्णाभ्युदय, हरिमोहन प्रामाणिक कृत कमलाकरुणविलास, महेश पडितकृत स्वर्णमुक्तासवाद, राजवर्मबालकविकृत गैर्वाणीविजय, वरदराजपुत्र स्नुषाविजय व सुंदरराजकृत वैदर्भी-वासुदेव इन कृतियो की प्रधानता से गणना होती है।

व्यायोग - इस रूपक प्रकार में भासकृत मध्यमव्यायोग सुप्रसिद्ध है। अन्य सुप्रसिद्ध व्यायोगो में काकतीय प्रतापपरुद्र (13-14 वीं शती) के आश्रित कवि विश्वनाथ का सौगंधिकाहरण (महाभारत के भीम-हनुमान युद्धप्रसंग पर आधारित), नारायणपुत्र काचनाचार्य का धनंजयविजय, मोक्षादित्य का भीमविक्रम, रामचन्द्र का निर्भयभीम इत्यादि महाभारत के आख्यानो से सबधित व्यायोग उल्लेखनीय हैं। कृष्णचरित्र से संबधित व्यायोगों में रामचद्र बल्लाळकृत कृष्णविजय, पर्वतेश्वर पुत्र धर्मसूरिकृत नरकासुरविजय और रामकथा से संबंधित भागवत लक्ष्मणशास्त्री कृत रामविजय उल्लेखनीय हैं। गरुडाख्यान विषयक दो आयोग प्रसिद्ध हैं (1) वाराणसी के कवि गोविंद (यज्ञेश्वर के पुत्र) का विनतानद और एक अज्ञात कवि का प्रचडगरूड।

भाण :- यह रूपक का प्राचीन प्रकार है, परंतु उपलब्ध भाणवाङ्मय अर्वाचीन है और वह भी प्राय· दाक्षिणात्य साहित्यिकों ने लिखा हुआ है। विशेष उल्लेखनीय भाण -

लेखक		**भाण**
वामन भट्टबाण (14-15 वीं शती)	—	शृगारभूषण
रामभद्र दीक्षित (18 वीं शती तजौर निवासी)	—	शृंगारतिलक अथवा अय्याभाण
अम्मलाचार्य (वैष्णवाचार्य)	—	(1) वसततिलका अथवा अम्मातिलकभाण और (2) चौलभाण
नल्लकवि	—	शृगारसर्वस्व
युवराज (केरलवासी)	—	रससदन
वरदाचार्य	—	अनगसजीवन
वरदाचार्य (अथवा वरदार्य)	—	अनग-ब्रह्मविद्याविलास
लक्ष्मीनरसिंह	—	अनगसर्वस्व
जगन्नाथ (श्रीनिवासपुत्र)	—	अनंगविजय
गोविंद (पिता- भट्टरगाचार्य)	—	गोपलीलार्णव
हरिदास	—	हरिविलास
व्यकप्पा	—	कामविलास
वेंकटकवि (कांचीवासी)	—	कदर्पदर्पण
श्रीकठ (अभिनव कालिदास का पुत्र)	—	कदर्पदर्पण
धनगुरुवर्य (वरदगुरुपुत्र)	—	कदर्पविजय
रामचद्र दीक्षित	—	केरलाभरण
गुरुराम	—	मदनगोपाल- विलास
श्रीकठ (अन्यनाम- नजुंद्र) (पिता शामैयार्य)	—	मदन महोत्सव
घनश्याम	—	मदनसंजीवन
पुरवनम्	—	मालमगल (महिषमगल)
रगाचार्य	—	पंचबाणविजय
त्रिविक्रम	—	पंचायुधप्रपच
चोकनाथ	—	रसविलास

वेंकट (पिता-वेदान्तदेशिक)	—	रसिकजनरसोल्लास.
शंकरनारायण	—	रसिकामृत.
श्रीनिवास	—	रसिकरंजन.
श्रीनिवास वेदान्ताचार्य	—	रसोल्लास.
रंगनाथ महादेशिक	—	संपतकुमारविलास. (अथवा-माधवभूषण)
श्रीनिवास (वरदाचार्य पुत्र)	—	शारदानदन
रामचंद्र	—	सरसकविकुलानंद.
विंजिमूर राघवाचार्य	—	शृंगारदीपक
गीर्वाणेन्द्र (पिता-नीलकंठ दीक्षित)	—	शृगारकोश
काश्यप (अभिनव कालिदास)	—	शृंगार कोश.
गोपालराय	—	शृगारमंजरी (श्रीरंगराज)
वैद्यनाथ (पिता-कृष्णकवि)	—	शृंगार पावन
अविनाशीश्वर	—	शृंगारसर्वस्व
राजचूडामणि दीक्षित	—	शृंगारसर्वस्व.
नृसिंह (मदुरानिवासी)	—	शृगारस्तबक.
रामवर्म युवराज	—	शृंगार सुधाकर
कोरड रामचंद्र	—	शृंगारसुधार्णव
रामभद्र	—	शृगारतरंगिणी
वेंकटाचार्य (सुरपुरवासी)	—	शृंगारतरगिणी

इनके अतिरिक्त कुछ अप्रसिद्ध लेखकों के भाण - चंद्ररेखाविलास, कुसुमकल्याणविलास, मदनभूषण, पचबाणविलास, शृंगारचन्द्रिका और शृगारजीवन।

भाणों की इस नामावली में निर्दिष्ट नामों से इनके अंतरग का शृंगारिक तथा कामप्रधान स्वरूप ध्यान में आ सकता है। अनेक भाणों से संकलित की गई कथावस्तु में कुक्कुटयुद्ध, अजयुद्ध, मल्लयुद्ध, सपेरों एव जादुगरों के खेल, उन्मत्त हाथी के कारण भगदड़, वेश्याओं की बस्तियों का कामुक वातावरण, व्यभिचारी युवक वर्ग, इस प्रकार के दृश्य चित्रित किए हैं। सामान्य रसिकों के मनोरंजन में ऐसे दृश्य सहायक होने के कारण भाण रूपक लिखने में अच्छे ख्यातनाम साहित्यिकों ने भी रुचि दिखाई है।

मिश्रभाण :- इस रूपक प्रकार का निर्देश, शाङ्गर्देव कृत सगीतरत्नाकर (13 वीं शती) की, काशीपति कविराज कृत टीका में किया हुआ है। इसी कविराज ने मुकुदानंद नामक मिश्रभाण लिखा है। रामसुकविशेखर (अथवा लिंगमगुंटराम) का शृंगाररसोदय भी मिश्र भाण है। मुकुंदानद में नायक भुजंगशेखर कृष्णरूपी होकर गोपियों से क्रीडा करता है। इस प्रकार एक ही पात्र की दो भूमिका के कारण इस रूपक को "मिश्रभाण" सज्ञा दी गई होगी।

कुछ नाट्यशास्त्रियों ने "भाणिका" नामक एक रूपक प्रकार माना है। रूपगोस्वामी की दानकेलिकौमुदी भाणिका मानी जाती है। साहित्यदर्पण में निर्दिष्ट श्रीगदित नामक उपरूपक प्रकार के अतर्गत माधवकृत सुभद्राहरण की गणना की जाती है।

16 संस्कृत नाट्य का सर्वाधिक प्रभाव

प्राचीन काल में भारत ने बाहर के देशों में अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक योगदान दिया है। रामायण, महाभारत और बौद्ध कथाओं तथा पचतंत्र की राजनीतिक कथाओं का बाह्य देशों में मध्ययुग में प्रचार हुआ था। पूर्व और मध्य एशिया के अनेक राष्ट्रों में इन के अनुवाद योजनापूर्वक करवाए गए। जावा में 11 वीं शताब्दी से पहले ही नाट्यकला का विकास हुआ था। विशेषतः छायानाटकों के प्रयोग उस देश में विविध प्रकारों से प्रदर्शित होते हैं। उनमें "व्यग पूर्वा" नामक छायानाटकों के संविधानक, रामायण, महाभारत और उस देश के मनिकमय नामक ग्रथों के आख्यानों पर आधारित होते है। जावानी नाटकों में भारतीय नाटकों का "सूत्रधार" "दलंग" नाम से पहचाना जाता है। "दलंग" शब्द का अर्थ है सूत्र हिलाने वाला।

मलाया, ब्रह्मदेश, सयाम और कांबोडिया में, रामचरित्र परक नाटकों के प्रयोग आज भी लोकप्रिय हैं। इन सभी पौरस्त्य देशों में छायानाटक विशेष प्रचलित हैं। संस्कृत वाङ्मय में एकमात्र "दूतांगद" छाया नाटक प्रसिद्ध है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह प्रयोग प्रकार उन देशों के संपर्क के कारण भारत में प्रचलित हुआ परतु वह यहा सर्वत्र लोकप्रिय नहीं हो सका। चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार के कारण वहां की नाट्यसृष्टि में भी अहिंसादिक बौद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले धार्मिक नाट्यग्रंथ निर्माण हुए।

मुसलमानी शासन के प्रदीर्घ काल में भारत की नाट्यकला केवल दक्षिण में जीवित सी थी। सर विल्यम जोन्स को भारतीय नाटक का परिचय संस्कृत नाटकों का वाचन करने से हो सका। प्रत्यक्ष प्रयोग वे देख नहीं सके। नाट्यग्रंथों के वाचन से नाटक याने ड्रामा यह अर्थ उनकी समझ में आ सका।

उर्दू नाटकों का प्रारंभ मुगल सल्तनत् समाप्त होने के बाद होता है। उस भाषा के रसिको ने अपने निजी विषयों के अतिरिक्त, नलदमयंती, वीर अभिमन्यु, रुक्मिणीविवाह, गंगावतरण, राजा भर्तृहरि, रामायण-महाभारत के आख्यान आदि संस्कृत विषयों पर नाटक निर्माण किये और उनमें से कुछ लोकप्रिय हुए।

महाराष्ट्र में 1841 से नाट्य संस्था का उद्‌गम सांगली राज्य के अधिपति श्रीमंत आप्पासाहेब पटवर्धन और उनके आश्रित लेखक श्री विष्णुदासजी भावे के प्रयत्नों से हुआ। इससे पहले मराठी में नाटक नहीं थे। श्री विष्णुदास भावेजी का पहला नाटक था सीतास्वयवर। उनके अन्य सभी नाटक पौराणिक आख्यानों पर आश्रित है। प्रारंभिक मराठी नाटको की निम्न लिखित नामावली से सस्कृत साहित्य के प्रभाव की कल्पना आ सकती है —

मराठी नाटक :- सुभद्राहरण, वत्सलाहरण, सीताहरण, कीचकवध, दु शासनवध, वृत्रासुरवध, रावणवध, दक्षप्रजापतियज्ञ, कच-देवयानी, सुरत-सुधन्वा, बाणासुरवध, रासक्रीडा, नरनारायणचरित्र, कौरव पाण्डव युद्ध, किरातार्जुन युद्ध, इन्द्रजितवध, हरिश्चन्द्र इत्यादि। इन संस्कृत आख्यानोपजीवी नाटकों के अतिरिक्त शाकुन्तल, उत्तररामचरित प्रसन्नराघव इत्यादि उत्कृष्ट संस्कृत नाटकों के अनुवादो ने मराठी नाट्यवाङ्मय का पोषण किया है।

हिंदी में वाराणसी के बाबू हरिश्चन्द्र से जो नाट्य वाङ्मय की परम्परा निर्माण हुई उसमें, सस्कृत-आख्यानोपजीवी नाटको की संख्या पर्याप्त मात्रा में बडी है। भारत के सभी प्रादेशिक भाषाओं के साहित्येतिहास अब प्रकाशित हो चुके हैं। उन सभी भाषाओं के नाट्य वाड्मय के प्रारंभिक काल में संस्कृत आख्यानो एव नाट्य ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

17 अर्वाचीन संस्कृत नाटक

प्रादेशिक भाषाओं में नाटक वाङ्मय की निर्मिति का प्रारभ 19 वीं शती में हुआ। सस्कृत की नाट्य वाङ्मय परम्परा अति प्राचीन काल से अखिल भारत में अखड चालू रही। नाट्य ग्रथों की निर्मिति (और उन नाट्यो के प्रयोग) सस्कृत जगत् में कभी बद नहीं रही। कराल काल के प्रभाव से अभी तक कितने नाटकों का विलय हुआ यह कहना असंभव है। फिर भी आज जितना नाट्य वाङ्मय उपलब्ध है उसमें निर्मिति का कार्य सतत दिखाई देता है। पाश्चात्य विद्वानो ने सस्कृत वाङ्मय का परामर्श लेने वाले अपने ग्रंथों में 16 वीं शताब्दी के बाद की सस्कृत साहित्य की निर्मिति की ओर ध्यान न देते हुए, उस वाङ्मय प्रवाह को खडित मान कर, सस्कृत को "मृत" कहने का दुस्साहस किया। परतु उस 16 वीं शताब्दी के बाद जो विपुल वाङ्मय सभी विषयो में सस्कृत के विद्वानों ने निर्माण किया, उसमें नाट्य ग्रथो का प्रमाण भरपूर है। प्रस्तुत सस्कृत वाङ्मय कोश में अनेक आधुनिक नाटको एव नाटकलेखको का परिचय यथाक्रम दिया है। इन आधुनिक नाटकों में कालिदास, भवभूति वाङ्मय के अध्ययन के कारण, उस नवीन पद्धति का अनुसरण तथा पाश्चात्य नाट्यवाङ्मय के अध्ययन के कारण, उस नवीन पद्धति का भी अनुकरण अनेक लेखकों ने किया है। इस आधुनिक कालखड में पचास से अधिक प्रतिभासपन्न नाटककार और उनके द्वारा लिखित सवासौ से अधिक उत्कृष्ट नाट्य ग्रथो का प्रणयन हुआ है। मध्यम और निकृष्ट श्रेणी की रचनाओं को ध्यान में लेते हुए यह संख्या काफी बडी होती है। प्रादेशिक भाषाओ के अर्वाचीन नाट्यवाङ्मय में, देशकाल परिस्थिति के प्रभाव के कारण, जितनी विविधता निर्माण हुई, उतनी आधुनिक सस्कृत नाट्य वाङ्मय में भी दिखाई देती है। दुर्भाग्य यही है की आज की विशिष्ट परिस्थिति में, अनेक कारणों से सस्कृत भाषा और सस्कृत विद्या का मौलिक अध्ययन करने वालो की सख्या में सर्वत्र ऱ्हास होने के कारण, सस्कृत साहित्यिकों के इस कर्तृत्व की ओर शिक्षित वर्ग का भी ध्यान नहीं है।

प्रकरण-12
"ललित वाङ्मय"

1 प्रास्ताविक

रामायण, महाभारत और पुराण वाङ्मय के आख्यान-उपाख्यानों की रोचकता तथा रसात्मकता की अपूर्वता से प्रतिभासम्पन्न विद्वान साहित्यिक अतिप्राचीन काल से प्रभावित होते रहे। इस प्राचीन इतिहास-पुराणात्मक वाङ्मय का दृढ परिशीलन तथा व्याकरण, छन्दःशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, कामशास्त्र, अध्यात्मविद्या का महान अध्ययन, कथा-आख्यायिकाओं का पठन-श्रवण तथा लौकिक जीवन का सूक्ष्म अवलोकन इत्यादि के संस्कार से जिन की प्रतिभा पल्लवित हुई ऐसे लेखको ने रस-रीति-अलकार निष्ठ रमणीय पद्धति की रचना करने की प्रथा शुरू की। इस प्रकार की मधुर रचना का प्रारभ किस काल में हुआ यह एक विवाद्य प्रश्न है। वास्तव में वेदों की "नारांशसी" गाथाओं तथा कुछ कथाओ एव आख्यानों में रोचक या चित्ताकर्षक वाङ्मय का मूल स्रोत दिखाई देता है। पुराणों के अनेक आख्यानों, उपाख्यानो में उस रोचकता या रमणीयता का विकास हुआ। रामायण और महाभारत प्रमुखतया इतिहासात्मक होते हुए भी उनके वर्णनों एव सवादो में यह वाङ्मयीन रमणीयता का अश इत्नी मात्रा में विकसित हुआ है कि रामायण को आदिकाव्य माना गया और महाभारत को समस्त कविवरो का उपजीव्य आख्यान माना गया। वास्तव में समग्र पुराण वाङ्मय और रामायण, महाभारत तथा (पुराणान्तर्गत) श्रीमद्भागवत सस्कृत भाषा के प्रसन्न, मधुर एवं ओजस्वी, रसात्मक, अलकारप्रचुर वाङ्मय के उपजीव्य ग्रथ है। इस प्रकार के शब्द एवं अर्थ की विचित्रता तथा व्यजकता से ओतप्रोत वाङ्मय को ही "ललित वाङ्मय" सज्ञा दी है। इस ललित वाङ्मय के गद्य, पद्य, महाकाव्य, खडकाव्य, चम्पू, दूतकाव्य, स्तोत्रकाव्य, नाटकादि रूपक प्रकार, कथा, आख्यायिका इत्यादि अवातर भेद माने गये हैं। इस ललित वाङ्मय को ही "साहित्य" सज्ञा दी गयी है।

साहित्य शब्द "सहित" से बना है। इसमें शब्द और अर्थ का सहितत्व अथवा सहभाव अपेक्षित है। दर्शन, शास्त्र, विज्ञान जैसे विषयो के अतिरिक्त, रागात्मक, रसात्मक, तथा कल्पनात्मक रमणीय रचना को ही "साहित्य" कहते हैं। इस प्रकार के लक्ष्य ग्रन्थो का विवेचन करने वाले, भरत भामह, दण्डी, आनदवर्धन आदि मनीषियो के ग्रथ "साहित्यशास्त्र" के अन्तर्गत आते हैं और इस प्रकार की शास्त्रानुकूल रचना करने वाले कवि, नाटककार, चम्पूकार आदि लेखक "साहित्यिक" या "साहित्याचार्य" माने जाते हैं। अग्रजी में लिटरेचर" और उर्दू में "अदब" शब्द साहित्य के अर्थ को द्योतित करते हैं। सस्कृत भाषा में "साहित्य" शब्द के अर्थ में सामान्यत काव्य शब्द का प्रयोग होता है। आचार्य भामह ने (ई.6 श) "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्--" इस अपनी काव्यव्याख्या में साहित्य और काव्य शब्द की समानार्थकता सूचित की है। पंडितराज जगन्नाथ की "रमणीयार्थप्रतिवादक शब्द. काव्यम्" "इस काव्य व्याख्या में भी शब्द और अर्थ की रमणीयता का सहितत्व (साहित्य) अध्याहत है। मम्मट (ई. 12 वीं शती) की "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन क्वापि" इस सुप्रसिद्ध काव्यव्याख्या में, आचार्य हेमचंद्र की "अदोषौ सगुणौ सालकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्" इस व्याख्या में और वाग्भट (ई 12 वीं शती) की शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्राय· सालंकारौ काव्यम्" इस व्याख्या में निर्दोष, गुणयुक्त तथा अलंकारनिष्ठ शब्द और अर्थ के सहितत्व को ही काव्य कहा है, जिस का स्पष्ट अर्थ यही होता है कि साहित्य और काव्य दोनों शब्द प्राय· समानार्थक हैं।

साहित्यशास्त्रियों ने काव्य का वर्गीकरण अनेक प्रकारों से किया है। उसमें रचना की दृष्टि से "श्राव्य" और दृश्य"-नामक दो प्रकार प्रमुख माने जाते हैं। श्राव्य काव्य के तीन भेद होते है - गद्य, पद्य और मिश्र। गद्य काव्य छन्दों के बन्धनों से मुक्त होता है। फिर भी उसके अपने कुछ आवश्यक नियम होते हैं। गद्य काव्य के "कथा" (कल्पितवृत्तान्त) और "आख्यायिका" (ऐतिहासिक वृत्तान्त) नामक दो प्रमुख भेद होते हैं। कथा का उदाहरण है बाणभट्ट की कादम्बरी और आख्यायिका" का, उसी महाकवि की दूसरी रचना हर्षचरित।

पद्य याने छन्दोबद्ध रचना। इस के दो भेद होते हैं - (1) प्रबन्ध काव्य और (2) मुक्तक काव्य। "पूर्वापरार्थघटनै प्रबन्धः" इस लक्षण के अनुसार पूर्वापर सबंध निर्वाहपूर्वक कथात्मक रचना को "प्रबन्ध" काव्य कहते है। मुक्तक काव्य के पद्य स्वतःपूर्ण होते हैं। स्फुट सुभाषितों एवं स्तोत्रों का स्वरूप मुक्तकात्मक होता है। प्रबन्धकाव्य के दो प्रकार माने जाते हैं -

1) महाकाव्य और (2) कथाकाव्य। महाकाव्य का सविस्तर लक्षण विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में बताया है :-

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर । सद्वंश क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्त-गुणान्वित ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा। शृगारवीरशान्तानाम् एकोऽङ्गी रस इष्यते।।
अंगानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धय.। इतिहासोद्भव वृत्तम् अन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गा: स्यु. तेष्वेकं च फल भवेत्। आदौ नमस्क्रियाशीर्व। वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिद्निन्दा खलादीनां सता च गुणकीर्तनम्। एकवृत्तमयै पद्यै अवसानेऽन्यवृत्तकै ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह। नानावृत्तमय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत्। सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्तवासरा ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागरा.। सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ।।
रणप्रयाणोपयम-मन्त्रपुत्रोदयास्तथा। वर्णनीया यथायोग साङ्गपोपाङ्गा अमी इह।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा: नामास्य स्यादुपादेयकथाया सर्गनाम तु।।
(साहित्यदर्पण - 4-315-25)

साहित्यदर्पण का यह महाकाव्य-लक्षण सर्वमान्य हो चुका है। यह लक्षण कालिदास, भारवि, माघ इत्यादि प्राचीन महाकवियो के प्रख्यात महाकाव्यों को लक्ष्य रख कर लिखा गया है। इस लक्षण-श्लोकावली के अनुसार महाकाव्य का स्वरूप निम्न प्रकार होना चाहिए -

(1) उसका विभाजन सर्गो में होना चाहिए। (2) उसका नायक धीरोदात्त गुणयुक्त कुलीन क्षत्रिय या देवता या एक वंश के अनेक राजा हो। (3) शृंगार, वीर या शान्त अङ्गी रस और अन्य सभी रस अङ्गभूत हो। (4) नाटक के पाचो सन्धियों में कथानक का विभाजन हो। (5) उस का वृत्तान्त ऐतिहासिक या किसी सत्पुरुषों के चरित्र से संबधित हो। (6) प्रारंभ में नमन, आशीर्वाद, दुर्जननिंदा, सुजनस्तुति हो। (7) उसमें चतुर्विध पुरुषार्थ का प्रतिपादन हो। (8) सर्ग में एक ही वृत्त हो किन्तु अन्त में भिन्न वृत्त में श्लोकरचना हो। सर्गों की सख्या 8 मे अधिक हो और उनका विस्तार समुचित हो। किसी एक सर्ग में नाना प्रकार के वृत्तों में श्लोकरचना हो। सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना हो। (9) निसर्गसौंदर्य तथा नगर, आश्रम, मृगया, युद्ध, शृगारचेष्टा आदि के वर्णन यथास्थान अवश्य हो। (10) महाकाव्य का नाम कविनाम, नायकनाम इत्यादि से संबंधित हो। सर्ग का नाम, उसमें वर्णित घटना के अनुरूप हो। इसी प्रकार का महाकाव्य का लक्षण दण्डी ने अपने काव्यादर्श में कर रखा है जो प्रस्तुत लक्षण से मिलता जुलता एव संक्षिप्त है।

संस्कृत वाङ्मय में कालिदासकृत रघुवश, कुमारसभव, भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, और श्रीहर्षकृत नैषधचरित, ये "पच महाकाव्य" सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। इनमें उत्कृष्ट कवित्व और श्रेष्ठ पाण्डित्य, दोनो गुणो का प्रकर्ष दिखाई देता है, अत इन्हींका अध्ययन प्राय सर्वत्र होता आ रहा है।

2 महाकाव्य

इन सुप्रसिद्ध पच महाकाव्यों के अतिरिक्त महाकाव्य लक्षणानुसार लिखे गये महाकाव्यो की सख्या बहुत बडी है। इस विभाग के अन्यान्य प्रकरणों में सदर्भानुसार उनका उल्लेख हुआ है। अत यहां उनकी सूची देने की आवश्यकता नहीं है। महाकाव्यो की परपरा प्राय पाणिनि कृत पातालविजय या जाम्बवतीजय महाकाव्य से मानी जाती है। वैयाकरण पाणिनि और महाकवि पाणिनि को डॉ भाडारकर, पीटरसन, आदि विद्वान विभिन्न मानते हैं, किन्तु डॉ ओफ्रेक्ट तथा डॉ पिशेल दोनो में अभेद मानते हैं। पंतजलि ने अपने व्याकरण-महाभाष्य में वररुचि-(वार्तिककार कात्यायन का नामान्तर) कृत काव्य (वाररुच काव्यम्) का तथा वासवदत्ता, सुमनोहरा, भैमरथी नामक गद्य आख्यायिकों का (जो अनुपलब्ध है) उल्लेख किया हैं। पिंगलमुनि के छन्द:सूत्रों में जिन लौकिक छन्दों का विवरण हुआ है, उनके नामों की काव्यात्मकता एव शृगारात्मकता की ओर सकेत करते हुए डॉ. याकोबी ने सस्कृत काव्यो में उनका प्रयोग विक्रमपूर्व शताब्दियो में माना है। इन प्रमाणो के आधार पर सस्कृत भाषा के सरस एवं सालकृत ललितवाङ्मय का अथवा काव्यो का उदय विक्रमपूर्व शताब्दियों में माना जाता है। महाकाव्यो की यह परंपरा आज की 20 वीं शताब्दी तक अखडित रूप से चल रही है। वह कभी भी खडित नहीं हुई। पाश्चात्य समीक्षाशास्त्रियों ने महाकाव्य के दो रूप स्वीकृत किए हैं -

1) संकलनात्मक महाकाव्य (एपिक ऑफ ग्रोथ) और 2) अलकृत महाकाव्य (एपिक ऑफ आर्ट) रामायण और महाभारत को उन्होंने संकलनात्मक महाकाव्य माना है जिन्हें (उनके मतानुसार) ममय समय पर विद्वानो ने परिवर्धित किया है। अर्थात वे इन महाकाव्यों को एककर्तृक नहीं मानते। अलंकृत महाकाव्यों का प्रादुर्भाव रामायण- महाभारत के पश्चात् ही हुआ

और इन पर उनका प्रभाव दिखाई देता है। संस्कृत के ललित वाङ्मय में, अलंकृत महाकाव्यों का ही प्रवाह अखंडित चल रहा है और इस प्रकार के काव्यों की सख्या भरपूर है। अलंकृत काव्यों में बहुसंख्य काव्य पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। ऐतिहासिक काव्यों की संख्या उनसे कम है। तीसरे शास्त्रीय महाकाव्य हैं जिनमें काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों के नियमों का शत-प्रतिशत पालन करने का प्रयास होता है और इस प्रयास के कारण उसमें कथावस्तु को गौणत्व और अलंकार तथा पाण्डित्यप्रदर्शन को प्राधान्य मिलता है। भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालनवध, श्रीहर्षकृत नैषधीय, वस्तुपालकृत नरनारायणानन्द आदि इस प्रकार के उदाहरण हैं। महाकाव्यों में पाण्डित्यप्रदर्शन करने की एक स्पर्धा सी संस्कृत साहित्यिकों में चलती रही।

इस स्पर्धा में सुबन्धु ने वासवदत्ता नामक "प्रत्यक्षर-श्लेषमय· प्रबन्ध "लिख कर जो पांडित्यपूर्ण कवित्व का आदर्श प्रस्थापित किया, उसका अनुसरण करते हुए अपने काव्यग्रन्थों में विविध प्रकार की क्लिष्टता निर्माण करने वाले साहित्यिकों की एक पृथक् परपरा प्रचलित हुई। 12 वीं शताब्दी में कविराज ने राघव-पाण्डवीय नामक द्व्यर्थी काव्य (जिस में रामायण और भारत की कथा श्लेष के आधार पर एकत्र रची हुई है।), लिख कर "संधान" (या अनेकार्थक) काव्य की प्रथा शुरू की। एक अर्थ के अनेक पर्यायवाची शब्द और एक शब्द के अनेक वस्तुवाचक अर्थ, संस्कृत भाषा के कोष में भरपूर मात्रा में मिलते हैं। संस्कृत शब्दों की इस विशेषता का स्वच्छंद उपयोग करने की शक्ति जिन कवियों में रही उन्होंने इस प्रकार के "संधान" काव्यों की रचना की।

इस परपरा में उल्लेखनीय काव्य -

नाभेय नेमिद्विसंधान काव्य :- ले-सुराचार्य। ई 12 वीं शती। इसमें नेमिनाथ और ऋषभदेव की कथाए एकत्रित की हैं। इस प्रकार का अज्ञातकर्तृक और भी एक काव्य उपलब्ध है।

कुमारविहार प्रशस्तिकाव्य :- ले हेमचद्र के शिष्य वर्धमान गणि। इस काव्य में कुमारपाल, हेमचंद्राचार्य और वाग्भट मंत्री के सबध में विविध अर्थ निकलते हैं। इस काव्य के 87 वे पद्य के 116 अर्थ निकाले गये हैं।

शतार्थिक काव्य :- ले सोमप्रभाचार्य (वर्धमानगणि के समकालिक)। यह काव्य याने एक मात्र पद्य है, जिससे "स्वयं कवि ने अपनी टीका में 106 अर्थ निकाले हैं, जिनमें 24 तीर्थंकर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तथा चालुक्य नृपति जयसिंह, कुमारपाल, अजयपाल आदि के संबध में अर्थ निकलते हैं।

अष्टलक्षी :- ले समयसुन्दर। ई 16 वीं शती।

चतु:सन्धान काव्य:- ले मनोहर और शोभन।

सप्तसन्धानकाव्य :- ले जगन्नाथ।

चतुर्विंशतिसंधान: :- ले जगन्नाथ। इसके एक ही श्लोक से 24 तीर्थंकरो का अर्थबोध होता है।

सप्तसंन्धान काव्य :- ले. मेघविजय गणि। ई 18 वीं शती। सर्ग-9। प्रत्येक श्लेषमय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन तीर्थंकरो एव राम और कृष्ण इन सात महापुरुषो के चरित्र का अर्थ निकलता है।

यादवराघवीयम् :- ले वेंकटध्वरी (विश्वगुणादर्शचम्पूकार) ई.17 वीं शती।

राघव-यादव-पाण्डवीयम् (त्रिसंधान काव्य) : ले चिदम्बर कवि। ई 17 वीं शती। इस काव्य पर कवि के पिता अनन्तनारायण ने टीका लिखी है।

पंचकल्याणचम्पू : ले. चिदम्बर कवि। इसमें राम, कृष्ण, विष्णु, शिव और सुब्रह्मण्य इन पाच देवताओं के विवाहोत्सवों का वर्णन मिलता है।

भागवतचम्पू : चिदम्बर कवि।

यादव-राघव-पाण्डवीयम् : ले अनन्ताचार्य। उदयेन्द्रपुर (कर्नाटक) के निवासी।

राघवनैषधीयम् : ले जयशकरपुत्र हरदत्त। ई 18 वीं शती। सर्ग 2। कवि ने स्वयं टीका लिखी है।

यादव-राघवीयम् : ले नरहरि।

नैषधपारिजातम् : ले कृष्ण (अय्या) दीक्षित। विषय · नलकथा और भागवत की पारिजातहरण कथा।

कोसल-भोसलीयम् : ले शेषाचलकवि। सर्ग 6। प्रस्तुत काव्य में तजौर नरेश शहाजि (एकोजी का पुत्र) और प्रभु रामचद्र का चरित्र मिलता है।

अबोधाकरम् : ले तंजौर के तुकोजी भोसले का मंत्री घनश्याम। इसमें नल, कृष्ण और हरिश्चन्द्र के चरित्र मिलते हैं। इसी घनश्याम कवि ने कलिदूषणम् नामक संधान काव्य लिखा है जिसमें सस्कृत और प्राकृत भाषा में अर्थ मिलते हैं। घनश्याम ने प्रचण्डराहूदय नामक लाक्षणिक नाटक भी लिखा है।

कंकणबन्धरामायण : ले कृष्णमूर्ति। ई 19 वीं शती। इस एक अनुष्ठभ्श्लोकात्मक रामायण में 64 अर्थ मिलते हैं। यह श्लोक ककणाकृति या मंडलाकार लिखा जाता है, और सव्य तथा अपसव्य दिशा से पढ़ा जाता है। इसी प्रकारका कंकणबन्ध रामायण चारला भाष्यकार नामक कवि ने (ई 20 वीं शती) लिखा है। निवासस्थान काकरपर्ती (कृष्णा ज़िला आध्र प्रदेश)।

जैन स्तोत्र साहित्य में इसी अनेकार्थक पद्धति से रचित कुछ स्तोत्र उपलब्ध हैं।

नवखंड पार्श्वस्तव : ले ज्ञानसूरि। **विविधार्थमय सर्वज्ञस्तोत्र** : ले सोमतिलकसूरि। **नवग्रहगर्भितपार्श्वस्तवन** : ले राजशेखरसूरि। **पंचतीर्थीस्तुति** : ले मेघविजय। **द्व्यर्थकर्ण पार्श्वस्तव** : ले समयसुन्दर। इत्यादि। (प्राचीन साहित्योद्धार ग्रन्थावली (अहमदाबाद) द्वारा प्रकाशित अनेकार्थ साहित्य सग्रह नामक ग्रथ में इस प्रकार के कुछ जैन काव्यों का सकलन किया गया है। ये सारे सन्धानकाव्य, व्याख्या के बिना दुर्बोध होते हैं। अत. इन काव्यों के लेखकों या उनकी परपरा के अन्य विद्वानों को उन पर टीकाएं लिखनी पडी।

इस प्रकार के "व्याख्यागम्य" काव्यो का और एक प्रकार चौथी या पाचवी शताब्दी में प्रारंभ हुआ। इन काव्यों के रचयिताओं ने अलकार तथा व्याकरण शास्त्र का बोध अपने शिष्यो तथा पाठकों को देने के हेतु ग्रथनिर्मिती की। भट्टिकाव्य इस प्रकार का प्रथम काव्य है जिसकी रचना ई 4-5 वीं शती में हुई। इस महाकाव्य के प्रकीर्ण, प्रसन्न, अलंकार और तिङन्त नामक चार भाग हैं। इनमे पाणिनीय सूत्रों के क्रमानुसार व्याकरण शास्त्र के सारे उदाहरण उपलब्ध होते हैं। दसवें सर्ग में अलकारो के सारे उदाहरण उपलब्ध होते हैं। अपने इस काव्य की शास्त्रनिष्ठता का अभिमान व्यक्त करते हुए भट्टि (या भर्तृहरि) कहते है।

"व्याख्यागम्यमिद काव्यम् उत्सव सुधियामलम्। हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया।। (11-34)

अर्थात् यह मेरा काव्य व्याख्या की सहायता से ही समझने योग्य है, अत बुद्धिमान् पाठकों को इसमें भरपूर आनंद मिलेगा। मेरी विद्वत्प्रियता के कारण बुद्धिहीन पाठक इसमे नष्ट होगे। भट्टिकाव्य की इस विशिष्ट प्रणाली में निर्माण हुए कुछ उल्लेखनीय काव्य -

दशाननवधम् : ले योगीन्द्रनाथ तर्कचूडामणि।

रावणार्जुनीयम् . ले भूम (अथवा भौमिक) कवि। ई 7 वीं शती। सर्ग 27, विषय कार्तवीर्य का चरित्र। इसमें अष्टाध्यायी के उदाहरण मिलते हैं।

पाण्डवचरितम् : ले दिवाकर। सर्ग 14। यह काव्य व्याकरणशास्त्रनिष्ठ है।

धातुकाव्यम् और सुभद्राहरणम् . ले नारायण। पिता-ब्रह्मदत्त। दोनों काव्य व्याकरणनिष्ठ है।

वासुदेवविजयम् · ले वासुदेव

श्रीचिह्नकाव्य · ले कृष्णलीलाशुक। सर्गसख्या 12। इसके अतिम चार सर्ग कवि के शिष्य दुर्गाप्रसाद ने लिखे हैं, जिनमें त्रिविक्रमकृत व्याकरण के उदाहरण उद्धृत हैं। कृष्णलीलाशुक द्वारा लिखित भाग में वररुचि के प्राकृत उदाहरणों का प्रयोग हुआ है।

रघुनाथभूपालीयम् : ले कृष्ण पडित । तजौरनरेश रघुनाथनायक के सभापडित। सर्ग 8। इसमें कवि ने अलकारों के उदाहरणों द्वारा अपने आश्रयदाता का चरित्र वर्णन किया है। इसकी टीका विजयेन्द्र तीर्थ के शिष्य सुधीन्द्रतीर्थ ने रघुनाथनायक के आदेशानुसार लिखी।

रामवर्मयशोभूषणम् . ले सदाशिव मखी। पिता-कोकनाथ (या चोकनाथ)। विषय-त्रिवकुर नरेश रामवर्मा का चरित्र। यह अलकारशास्त्रनिष्ठ काव्य है।

षठगोप-गुणालंकार-परिचर्या : ले श्रीरग नगर के भट्ट कुल में उत्पन्न अज्ञातनामा। ई 17 वीं शती। विषय षठगोप नम्मालवार साधु की अलकारनिष्ठ स्तुति।

अलंकारमजूषा : ले देवशकर। ई 18 वी। विषय माधवराव पेशवा (प्रथम) और रघुनाथराव पेशवा का अलकारनिष्ठ गुणवर्णन।

अर्थचित्रमणिमाला : ले म म गणपतिशास्त्री। विषय त्रिवाकुरनरेश विशाखराम वर्मा की स्तुति।

लोकमान्यालंकार . ले गजानन रामचद्र करमरकर। इन्दौर के निवासी। लोकमान्य तिलकजी का अलकारनिष्ठ गुणवर्णन।

अलंकारमणिहार : ले ब्रह्मतत्र परकालस्वामी जो पूर्वाश्रम में कृष्णम्माचार्य नामक मैसूर में वकील थे। विषय वेंकटेश्वरस्तुति। इसी परपरा मे विविध छन्दों के लक्षणसहित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रामदेवकृत वृत्तरत्नावली, गगादासकृत छन्दोमंजरी, वसत त्र्यबक शेवडे कृत वृत्तमजरी इत्यादि काव्य लिखे गये, जिनका विषय विशिष्ट देवता की स्तुति है।

3 "कथाकाव्य"

प्रबन्ध का दूसरा प्रकार है कथाकाव्य जिसमें रसात्मक एव अलकारप्रचुर शैली में रोमाचक तत्वों के समावेश के साथ कथावर्णन होता है। यह छदोबद्ध रचना होने से गद्यात्मक आख्यायिका एव कथा से भिन्न है परतु गद्य पद्य का भेद छोड़

दिया जाय तो तत्त्वतः उनमें भेद नहीं। कथा के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण विषय, शैली, पात्र, एवं भाषा के आधार पर किया गया है। विषय की दृष्टि से कथाएं चार प्रकार की होती हैं :-

धर्मकथा, अर्थकथा, कामकथा, और मिश्रकथा। इनमें से धर्मकथा के चार भेद किए जाते हैं। आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदनी और निर्वेदनी। मिश्रकथा में मनोरंजन और कौतुकवर्धक सभी प्रकार के कथानक रहते हैं। पात्रों के आधार पर दिव्य, मानुष्य और मिश्र कथाएं कही गई हैं। भाषा की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत और मिश्र रूप में कथाएं लिखी गयी हैं। शैली की दृष्टि से सकलकथा, खंडकथा उल्लाघकथा, परिहासकथा और संकीर्ण कथा के भेद से पाच प्रकार की कथाएं मानी गयी हैं। इनमें सकलकथा और खंडकथा प्रमुख हैं। सकलकथा का कथानक विस्तृत होता है और उसमें अवान्तर कथाओं की योजना होती है। प्रद्युम्नसूरिकृत समरादित्यचरित, जिनेश्वरसूरिकृत निर्वाणलीलावती आदि सकलकथा के उदाहरण हैं। इन भेदों के अतिरिक्त कथानक की दृष्टि से प्राचीन कथासाहित्य का स्वरूप बहुतही वैविध्यपूर्ण है। इनमें नीतिकथा, लोककथा, पुरातनकथा, दैवतकथा, दृष्टान्तकथा, परीकथा, कल्पितकथा आदि अनेकविध प्रकार मिलते हैं। प्राचीन इतिहास एवं पुराण वाङ्मय में कथाओं का भंडार भरा हुआ है। उन सभी कथाओं में उपरि निर्दिष्ट कथाप्रकार बिखरे हुए हैं।

कथा का लक्षण अमरकोश में "प्रबन्धकल्पना कथा" इस प्रकार किया है। इस लक्षण का विवरण करते हुए सारसुन्दरीकार कहते हैं, "प्रबन्धेन कल्पना अर्थात् प्रबन्धस्य अभिधेयस्य कल्पना स्वय रचना" अर्थात् जिस रचना में वक्तव्य विषय की रचना लेखक द्वारा अपनी कल्पना के अनुसार होती है, ऐसी रचना को कथा" कहते है। भरत के मतानुसार कथा "बहुनृता स्तोक सत्या" (बहुत अशमें असत्य और अल्प अंश में सत्य) होती है।

भारतीय कथा साहित्य का मूलस्रोत वैदिक वाङ्मय में मिलता है। वैदिक कथाओं का सग्रह सर्वप्रथम शौनक ने अपने बृहद्देवता ग्रथ में किया। इस सग्रह में 48 कथाएं मिलती हैं। जिनको शौनक ने ऐतिहासिकता का महत्त्व दिया है। रामायण, महाभारत, पुराणवाङ्मय, त्रिपिटक, जैनपुराण एवं चूर्णियाँ इत्यादि में उपलब्ध बहुत सारी कथाओं का स्वरूप धार्मिक दृष्ट्या महत्त्वपूर्ण है। इन धर्मकथाओं का प्रवचन और श्रवण पुण्यदायक माना जाता है। नीतितत्त्वप्रधान कथाओं का संग्रह जैन कथाकोश, बौद्धजातक, पचतत्र, कथासारित्सागर जैसे ग्रन्थों में हुआ है। नीतिपरक कथासंग्रहों की दृष्टि से जैन और बौद्ध वाङ्मय विशेष समृद्ध हैं। बौद्ध जातक कथाओं की सख्या 550 है। बौद्धों का "अवदान" साहित्य भी इसी प्रकार का है। पंचतत्र, हितोपदेश और कथासरित्सागर में सामान्य जनजीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित व्यवहारिक नीतितत्त्वों का प्रतिपादन हुआ है। इन सभी नीतिकथाओं का प्रभाव सारे ससार के कथावाङ्मयपर अतिप्राचीन काल में पड़ा है।

नीतिकथाओं का उद्गम वैदिक ब्राह्मण वाङ्मय में हुआ। इन कथाओं में प्राणिकथाओं या जन्तुकथाओं का प्रवेश, महाभारत की नीतिकथाओं के द्वारा हुआ। जिन धर्मसप्रदायों में कर्मकाण्ड की अपेक्षा नीतिनिष्ठ जीवन को ही धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्त्व दिया गया ऐसे जैनो बौद्ध, वैष्णव और शैव संप्रदायों में सभी प्रकार की नैतिक कथाओं, तीर्थकथाओं और व्रतकथाओं को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। इन संप्रदायों ने अपने उदात्त धर्मविचारों का प्रचार, सुबोध कथाओं के माध्यम से किया। भारतीय कथाओं का प्रचार ई. छठी शताब्दी से पूर्व, चीन में हुआ था। चीन के विश्वकोश में अनेक भारतीय कथाओं के अनुवाद मिलते हैं। इताली का प्रख्यात कवि पेत्रार्क के डिकॅमेरान नामक कथासग्रह में अनेक प्राचीन भारतीय कथाएं मिलती हैं। इसापनीति, अलिफलैला (अरबी कथासग्रह) तथा बाइबल की भी अनेक कथाओं का मूल भारतीय कथाओं में माना जाता है। इन कथाओं का समाज में कथन करने वाले आख्यानविद् सूत, मागध, कथावकाश, इत्यादि नाम के उत्तम गुणी वक्ताओं का उल्लेख प्राचीन वाङ्मय में मिलता है।

संस्कृत वाङ्मय में उल्लेखनीय कथासंग्रह

बृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्र। गुणाढ्य की बृहत्कथा (मूल-पैशाची भाषीय ग्रंथ) का सस्कृत संस्करण।

कथासरित्सागर : ले सोमदेव। बृहत्कथा का संस्कृत रूपातर।

पंचतंत्र : ले. विष्णुशर्मा। इसके पांच तत्र नामक प्रकरणों में 87 कथाओं का सग्रह है। साथ में प्राचीन ग्रंथों के अनेक नीतिपर सुभाषित श्लोक उद्धृत किये हैं।

हितोपदेश :ले. नारायण तथा उनके आश्रयदाता राजा धवलचन्द्र। इसमें मित्रलाभ सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि नामक चार भागों में पंचतंत्र की कथाएं समाविष्ट की हैं। इसमें 679 नीतिविषयक पद्य हैं जो महाभारत, चाणक्य नीतिशास्त्र आदि ग्रंथों से संगृहित किये हैं।

वेतालपंचविंशति : 1) ले. शिवदास। 2) ले. जम्भलदत्त।

पंचाख्यानक : ले पूर्णभद्र सूरि। पचतत्र का संशोधित सस्करण।

तन्त्रोपाख्यान : ले. वसुभाग।

सिंहासन-द्वात्रिंशिका : ले. क्षेमशंकर मुनि।

शुकसप्तति : ले चिन्तामणि भट्ट (ई. 12 वीं शती के पूर्व) शुकद्वासप्ततिका (या रसमंजरी) ले. रत्नसुन्दरसूरि। ई 17 वीं शती।

कथारत्नाकर : ले. हैमविजयमणि। 256 कथाओं का सग्रह।

बृहत्कथाकोश : ले हरिषेणाचार्य। 157 कथाओं का सग्रह। ई 10 वीं शती।

प्रबन्धचिन्तामणि : ले मेरुतुगाचार्य। ई 14 वीं शती।

प्रबन्धकोश (चतुर्विंशति प्रबंध) : ले राजशेखर। ई 14 वीं शती।

विविधतीर्थकल्प : ले जिनप्रभसूरि।

भोजप्रबन्ध : ले बल्लालसेन। ई 16 वीं शती।

उपमितिभवप्रपंच कथा : ले. सिद्धर्षि। ई 10 वीं शती।

प्रबोधचिन्तामणि : ले जयशेखरसूरि। ई. 15 वीं शती।

मदनपराजय : ले नागदेव। ई 14 वीं शती।

कालकाचार्यकथा : इस नाम के ग्रंथ, महेन्द्र, देवेन्द्र, प्रभाचन्द्र, विनयचंद्र, शुभशीलगणि, जिनचद्र आदि अनेक जैन विद्वानों ने लिखे है।

उत्तमचरित्र कथानक

चम्पकश्रेष्ठिकथानक : ले जिनकीर्तिसूरि। ई 15 वीं शती।

पालगोपाल कथानक :

सम्यक्त्वकौमुदी : ले. अज्ञात

कथाकोश : ले अज्ञात

पंचशतीप्रबोधसंबंध : ले शुभशीलगणि। ई 15 वीं शती। 500 से अधिक कथाओं का सग्रह।

अंतरकथासंग्रह : या विनोदकथा सग्रह। ले राजशेखर। एक सौ कथाओं का सग्रह।

कथामहोदधि : ले सोमचद्र।

कथारत्नाकर : ले हेमविजय। इ 15 वीं शती। इसमें 258 कथाएं हैं।

उपदेशमाला प्रकरण : ले धर्मदास गणि। इसमें 542 गाथाओ में दृष्टान्त स्वरूप 310 कथानकों का सग्रह है।

धर्मोपदेशमालाविवरण : ले जयसिह सूरि। ई 10 वीं सदी। इसमे 156 कथाए समाविष्ट हैं।

कथानककोश (कथाकोश) : ले. जिनेश्वर सूरि। ई 16 वीं शती। शुभशीलगणि ने प्रभावकथा, पुण्यधननृपकथा, पुण्यसारकथा, शुकराजकथा, जावडकथा आदि अनेक प्रबन्ध लिखे हैं।

पंचशतीप्रबोधसंबंध : ले शुभशील गणि। ई 16 वीं शती। इस कथाकोश में 4 अधिकारों में ऐतिहासिक धार्मिक एव लौकिक विषयों से सबधित 625 कथाओं का संग्रह हुआ है।

कथासमास : ले जिनभद्र मुनि। ई 13 वीं शती।

कथार्णव : ले पद्मंदिर गणि। ई 16 वीं शती। श्लोक 7590।

कथारत्नाकर : (या कथारत्नसागर) ले नरचन्द्र सूरि। ई 13 वीं शती।

पुण्याश्रय-कथाकोश : ले रामचंद्र मुमुक्षु। ई 12 वीं शती। इसमें कुल मिला कर 56 कथाए है जो रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेनकृत हरिवशपुराण, हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश और गुणभद्रकृत महापुराण से ली गई हैं।

धर्माभ्युदय (या संघपतिचरित्र) ले उदयप्रभसूरि। सर्ग 15। श्लोक 5200।

धर्मकल्पद्रुम : ले उदयधर्म। ई 15 वीं शती के बाद। श्लोक 4814। 9 पल्लवों में विभक्त।

दानप्रकाश : ले कनककुशलगणि। ई. 17 वीं शती। 8 प्रकाशों में विविध प्रकार के दानों की कथाएं संगृहित हैं। प्रस्तुत लेखक ने शुक्ल पंचमी कथा, सुरप्रियमुनिकथा, रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा अक्षयतृतीया कथा, मृगसुन्दरी कथा इत्यादि कथाप्रबन्ध लिखे हैं।

उपदेशप्रासाद : ले विजयलक्ष्मी। गुरु विजयसौभाग्य सूरि। ई. 19 वीं शती। सूरत में स्वर्गवास हुआ। इस प्रबंध में कुल मिलाकर 348 कथाएं दी गई हैं।

जैन पौराणिक साहित्य में तथा विविध कथाकोशों में जो अनेक प्रकार के कथानक आये हैं, उनमें से अनेकों पर आधारित स्वतंत्र कथाप्रबन्धों की रचनाएं हुई हैं। ऐसी रचनाओं में समरादित्यकथा, यशोधरकथा, श्रीपालकथा, रत्नचूडकथा, इत्यादि पुरुषचरित्र प्रधान कथाप्रबंध एवं तरंगवतीकथा, कुवलयमाला कथाप्रबंध इत्यादि स्त्रीप्रधान तथा शत्रुंजयमाहात्म्य, सुदर्शनचरित, ज्ञानपंचमी कथा, भक्तामर कथा इत्यादि तीर्थक्षेत्र, पवित्रतिथि, स्तोत्र आदि विषयक कथाएं सुप्रसिद्ध हैं। पार्श्वनाथ विद्यालय शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग 6) के प्रकरण 3 में (पृ. 231-390 में जैन कथासाहित्य का यथोचित प्रदीर्घ परिचय दिया है।) संस्कृत गद्य साहित्य में सुबन्धु की वासवदत्ता, बाणभट्ट की कादम्बरी धनपाल की तिलकमजरी और वादीभसिंह का गद्यचिन्तामणि, अपने कल्पगुणों के कारण उत्कृष्ट गद्यकाव्य माने गये हैं। वस्तुतः कथा की रोचकता की दृष्टि से उनका अन्तर्भाव प्रबन्धकथाओं में ही करना उचित लगता है।

4 चम्पूवाङ्मय

कथाप्रबन्धों में उपरिनिर्दिष्ट पद्य एवं गद्यप्रधान ग्रन्थों के साथ गद्यपद्य मिश्रित शैली में लिखे गए काव्यात्मक प्रबन्धों की प्रणाली संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में 10 वीं शताब्दी में त्रिविक्रम भट्ट कृत नलचम्पू से प्रारंभ हुई। इस प्रकार के पद्यमिश्रित गद्यसाहित्य की निर्मिति कन्नड भाषा में 8-9 वीं शताब्दी में प्रारंभ हो गई थी। पम्प, पोन्न, रन्न आदि कन्नड साहित्यिक चम्पूकाव्य के प्रारंभिक रचयिता माने जाते हैं; परंतु इन कन्नड लेखकों के पूर्व (ई. 7 वीं शती में) हुए दण्डीने अपने काव्यादर्श में, "गद्य-पद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते" (का द-1/31) इस प्रकार व्याख्या की है जिसे आगे चल कर हेमचन्द्र और विश्वनाथ ने प्रमाण मानी है। हेमचंद्र ने चम्पू का "सांक" और "सोच्छ्वास" होना आवश्यक माना है। क्यों कि कुछ चम्पू ग्रन्थों का विभाजन अंकों में और कुछ का विभाजन उच्छ्वासों में किया गया था। साथ ही उसमें उक्ति-प्रत्युक्ति, शून्यता तथा विष्कम्भक होना भी आवश्यक माना गया है। चम्पू का गद्य और पद्य अलंकारनिष्ठ होता है। गद्य में समासबाहुल्य और पद्य में छन्दों का वैविध्य प्रशस्त माना गया है। चम्पूकाव्यों के पूर्व ही संस्कृत में गद्य-पद्य मिश्रित लेखन पद्धति का प्रारंभ वैदिक वाङ्मय से ही होता है। कृष्ण यजुर्वेद की तीनों ही शाखाओं में गद्य-पद्य रचना है। अथर्व वेद का छठा अंश गद्यमय है। पुराणों में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। विष्णुपुराण का चतुर्थ अंश तथा श्रीमद्भागवतपुराण का पंचम स्कन्ध गद्यमय है, जिसमें प्रदीर्घ समासों का प्राचुर्य है। तथापि गद्यपद्यमय चम्पूकाव्य का प्रवर्तकत्व त्रिविक्रमभट्ट को ही दिया जाता है। इनके नलचम्पू को "नलदमयन्तीकथा" भी कहते हैं। डॉ छबिनाथ त्रिपाठी ने अपने "चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन-" नामक शोध प्रबन्ध में इस काव्य प्रकार का मार्मिक समीक्षण किया है। तदनुसार चम्पूकाव्य का विकास दसवीं शताब्दी से सतत होता रहा। इनमें रामायण, महाभारत, भागवत, शिवपुराण, जैन पुराणवाङ्मय जैसे प्राचीन उपजीव्य ग्रंथों पर आधारित ही चम्पूग्रंन्थ अनेक हैं। इनके अतिरिक्त चरित्रयात्रा, क्षेत्रदेवता और उनके महोत्सव, तथा काल्पनिक कथाओं पर आश्रित चम्पूग्रन्थ मिलते हैं।

कुछ उल्लेखनीय चम्पू :-

नलचम्पू :- ले-त्रिविक्रम भट्ट (ई-10 वीं शती)।

मदालसाचम्पू :- ले-त्रिविक्रम भट्ट (ई-10 वीं शती)। मार्कंडेय पुराण की कथा पर आधारित।

यशस्तिलकचम्पू :- ले- सोमदेवसूरि। ई-10 वीं शती। गुणभद्र कृत उत्तरपुराण की कथा पर आधारित।

जीवन्धरचम्पू :- ले- हरिश्चन्द्र। ई-10 वीं शती। उत्तर पुराण की कथा पर आधारित।

रामायणचम्पू :- ले-भोजराज-ई-11 वीं शती। इस चम्पू का किष्किन्धाकाण्ड के आगे का युद्धकाण्ड तक भाग लक्ष्मणसूरि, राजचूडामणि दीक्षित (ई-17 वीं शती) घनश्याम कवि, आदि लेखकों ने पूर्ण किया।

भारतचम्पू :- ले-अनन्तभट्ट। ई-15 वीं शती।

भागवतचम्पू :- ले- अभिनव कालिदास। ई-11 वीं शती। विषय-कृष्णकथा।

आनन्दवृन्दावनचम्पू :- ले- कविकर्णपूर। ई-16 वीं शती।

गोपालचम्पू :- ले- जीव गोस्वामी। ई-17 वीं शती।

आनन्दकन्दचम्पू :- ले- मित्रमिश्र। ई-17 वीं शती। वीरमित्रोदय नामक धर्मशास्त्र विषयक प्रसिद्ध प्रबन्ध के लेखक।

पारिजातहरणचम्पू :- ले-श्रीकृष्णशेष । प्रसिद्ध वैयाकरण। ई-16 वीं शती।

नृसिंहचम्पू :- ले- सूर्यकवि। ई-16 वीं शती। लीलावती (गणितग्रंथ) के एक टीकाकार।

नीलकण्ठविजयचम्पू :- ले-नीलकण्ठ दीक्षित। ई-17 वीं शती।

वरदाम्बिकापरिणयचम्पू :- लेखिका- तिरुमलाम्बा। विजयनगर के अधिपति अच्युतराय की पटरानी। ई-16 वीं शती। विषय-अच्युतराय और वरदाम्बिका का विवाह।

आनन्दरंगविजय-चम्पू :- ले- श्रीनिवास कवि। ई-18 वीं शती विषय- पांडिचेरी के व्यापारी आनंदरंग पिल्लै का चरित्र तथा तत्कालीन ऐतिहासिक घटना।

आचार्यदिग्विजय चम्पू :- ले- वल्लीसहाय। ई-16 वीं शती। विषय - श्रीशंकराचार्य का दिग्विजय।

जगद्गुरुविजय चम्पू :- ले- श्रीकण्ठशास्त्री।

शंकरचम्पू ले- लक्ष्मीपति।

शंकराचार्यचम्पूकाव्य :- ले- बालगोदावरी।

रामानुजचम्पू- ले- रामानुजार्य। ई-16 वीं शती।

यतिराजविजयचम्पू- ले- अहोबलसूरि। ई-16 वीं शती। विषय रामानुजाचार्य का चरित्र।

विरूपाक्षमहोत्सवचम्पू :- ले- अहोबलसूरि। ई-16 वीं शती।

वीरभद्रदेवचम्पू :- ले- पद्मनाभ। ई-16 वीं शती। विषय ल रीवानरेश वीरभद्र का चरित्र।

विश्वगुणादर्शचम्पू :- ले- वेंकटाधारी। ई-17 वीं शती। विषय - दोषदर्शी कृशानु और गुणग्राही विश्वावसु इन दो गगनचारी गधर्वों के सवाद में 17 वीं शताब्दी के लोगो का तथा तीर्थस्थलों का गुणदोष वर्णन। वेंकटाध्वरी ने हस्तिगिरिचम्पू (अथवा वरदाभ्युदयचम्पू) उत्तररामचरित चम्पू और श्रीनिवासविलास चम्पू नामकअन्य चम्पूग्रथ लिखे हैं।

यात्राप्रबन्धचम्पू :- ले- समरपुगव दीक्षित। ई-16-17 वीं शती।

आनन्दकन्दचम्पू :- ले- समरपुंगव दीक्षित। इसमें कुछ शैव सतो के चरित्र वर्णन किये हैं।

मन्दारमरन्दचम्पू :- ले- कृष्णकवि। ई-16 वीं शती। विषय - छन्दों के लक्षण और उदाहरण।

विद्वन्मोदतरंगिणी चम्पू :- ले- चिरजीव भट्टाचार्य। ई-16 वीं शती। विषय- दार्शनिक मतों की आलोचना।

माधवचम्पू- ले चिरजीव भट्टाचार्य। विषय- श्रीकृष्ण का काल्पनिक विवाह।

चित्रचम्पू :- ले- बाणेश्वर विद्यालकार। ई-18 वीं शती। विवादार्णवसेतु नामक सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय ग्रथ के बंगाली लेखक। विषय वैष्णव तत्त्वों का प्रकाशन।

तत्त्वगुणादर्शचम्पू .- ले- अण्णैयाचार्य। विषय जय-विजय के सवाद द्वारा शैव और वैष्णव मतों के गुणदोषों का विवेचन।

गंगागुणादर्श चम्पू :- ले- दत्तात्रेय वासुदेव निगुडकर। ई- 19-20 वीं शती। विषय- हाहा-हूहू सवाद द्वारा गंगानदी का गुण-दोष वर्णन।

वैकुण्ठविजयचम्पू :- ले- राघवाचार्य। विषय तीर्थस्थलों एव मदिरो का वर्णन।

काशिकातिलकचम्पू :- ले- रामभट्ट-पुत्र नीलकण्ठ। विषय- शैवक्षेत्रो का वर्णन।

विबुधानन्दप्रबन्धचम्पू :- ले- वेंकटकवि। विषय- प्रवासवर्णन।

श्रुतकीर्तिविलास चम्पू :- ले- सूर्यनारायण। विषय-प्रवासवर्णन।

केरलाभरणचम्पू :- ले- केशवपुत्र रामचद्र। ई-20 वीं शती। विषय- प्रवास वर्णन। 17 वीं शताब्दी में केरल में नारायण भट्टपाद अथवा भट्टात्रि नामक प्रकाड लेखक हुए। इन्होंने रामायण, महाभारत और अन्य पुराण ग्रथों की विविध कथाओं पर आधारित 20 चम्पू लिखे, जिनके नाम हैं - पाचालीस्वंयवरचम्पू, राजसूय, द्रौपदीपरिणय, सुभद्राहरण, दूतवाक्य, किरात, भारतयुद्ध, स्वर्गारोहण, मत्स्यावतार, मृगमोक्ष, गजेन्द्रमोक्ष, स्यमन्तक, कुचेलवृत्त, अहल्यामोक्ष, निरनुनासिक, दक्ष, त्याग, पार्वतीस्वयंवर, अष्टमी, गोष्ठीनगर, कैलासवर्णन, शूर्पणखाप्रलाप, नलायनीचरित्र और रामकथा।

(रामकथाविषयक अनेक चम्पू काव्यो में उल्लेखनीय अर्वाचीन ग्रथ)।

चम्पूराघव :- ले- आसुरी अनन्ताचार्य। (1) चम्पूरामायण- लेखिका सुंदरवल्ली। रामायणचम्पू -ले सतीश रामशास्त्री (2) रामानुज। रामचम्पू- ले-बदला मूडी रामस्वामी। एम कृष्णम्माचारियर ने अपने हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर में रामायण विषयक कुछ अप्रकाशित रामायण चम्पू ग्रन्थो का नामावली दी है। (परिच्छेद- 541) वे हैं -

अमोघराघव-चम्पू :- ले- विश्वेश्वरपुत्र दिवाकर।

कुशलव-चम्पू :- ले- वेंकटय्या सुधी। रामकथासुधोदय- ले- देवराज देशिक। रामभिषेक- देवराज देशिक।

सीताविजय :- ले- घण्टावतार। रामचन्द्र चम्पू ले- विश्वनाथ (2) रामचंद्र। उत्तरकाण्ड- राघव। उत्तरचम्पू -ले- ब्रह्मपण्डित, (2) राघवभट्ट (3) भगवन्त। अभिनव रामायण- ले- रामानुज। काकुत्स्थविजय- ले- वल्लीसहाय। सीताचम्पू- गुण्डुस्वामी शास्त्री।

मारुतिविजय :- ले- रघुनाथ। आजनेयविजय। ले- नृसिह।

उत्तरचम्पूरामायण :- ले- वेंकटकृष्ण इत्यादि।

17 वीं शताब्दी के बाद लिखे गये श्रीकृष्ण चरित्र विषयक चम्पू -

राधामाधवविलासचम्पू :- ले- जयराम पिण्ड्ये

भागवतचम्पू :- ले- सोमशेखर (या राजशेखर)।

आनन्दवृन्दावनचम्पू :- ले- परमानन्ददास। बालकृष्णचम्पू। ले- जीवनजी शर्मा। मन्दारमन्दचम्पू- श्रीकृष्ण। रुक्मिणीपरिणय-ले- अम्मल और वेंकटाचार्य। रुक्मिणीवल्लभपरिणय.- ले- नरसिंह तात। इनके अतिरिक्त 25 से अधिक कृष्णचरित्र विषयक चम्पू अमुद्रित हैं।

वैष्णव आख्यानों पर आधारित चम्पूकाव्य : नृसिंह ले- केशवभट्ट, (2) दैवज्ञ दुर्ग और (3) संकर्षण। वराहचम्पू- ले- श्रीनिवास। गजेन्द्रचम्पू ले- पंतविठ्ठल इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कुछ चम्पूग्रंथ ऐतिहासक दृष्टि से भी महत्त्व रखते हैं, जिनमें जयराम पिण्ड्ये कृत राधामाधवविलासचम्पू (इसके उत्तरार्ध में छत्रपति शिवाजी महाराज के पिता शहाजी की राजसभा के वैभव का वर्णन किया है।) शंकर दीक्षित कृत शंकरचेतोविलासचम्पू (इसमें काशीनरेश चेतसिंह का चरित्र वार्णित है)

राजराजवर्मकृत - विशाखतुला-प्रबन्धचम्पू, गणपतिशास्त्री कृत विशाखसेतुयात्रा वर्णन चम्पू। रामस्वामीशास्त्री कृत विशाखकीर्ति-विलासचम्पू इन तीन ग्रंथों में त्रिवांकुरनरेश विशाख महाराज का चरित्र वर्णित है। भूमिनाथ मल्लदीक्षित कृत धर्मविजयचम्पू में तंजौरनरेश शहाजी (व्यंकोजी भोसले के पुत्र) का चरित्र और वेंकटेश कविकृत भोसलवंशावली चम्पू में तंजौर के भोसला राजवंश का चरित्र दर्शन किया है।

मैसूर नरेश के चरित्र विषयक उल्लेखनीय चम्पू :- महीशूराभिवृद्धिप्रबन्धचम्पू ले- वेंकटराम शास्त्री। महीशूरदेशाभ्युदयचम्पू ले- सीताराम शास्त्री। कृष्ण-राजेन्द्र, यशोविलास- ले- एस नरसिंहाचार्य। कृष्णराजकलोदय ले- यदुगिरि अनन्ताचार्य। श्रीकृष्णनृपोदयचम्पू ले-कुक्के सुब्रह्मण्य शर्मा।

तीर्थक्षेत्र माहात्म्य विषयक चम्पू -

भद्राचलचम्पू :- ले- राघव। विषय- वेंकटगिरी तथा भगवान् श्रीनिवास। धर्मराजकृत वेंकटशचम्पू तथा श्रीनिवासकविकृत श्रीनिवासचम्पू भी इस विषय पर लिखे हैं।

मार्गसहायचम्पू .- ले- नवनीतकवि। विषय- विरंचिपुर का मार्गसहायमंदिर। व्याघ्रालयेशाष्टमी-महोत्सवचम्पू विषय- त्रिवांकुर का मंदिर। सम्पत्कुमारविजयचम्पू ले- रंगनाथ। विषय- मेलकोटे (कर्णाटक) के देवतामहोत्सव। पद्मनाभचरितचम्पू ले- कृष्ण। विषय- तिरुअनतरपुरम् के भगवान् पद्मनाभ की कथा। हस्तिगिरिचम्पू ले- वेंकटाध्वरी। विषय- कांचीवरम् के देवराज का माहात्म्य।

चम्पूकाव्यों की इस नामावली से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि भारत के अन्य प्रदेशों के लेखकों की अपेक्षा दक्षिण भारत के विद्वानों ने चम्पूकाव्यों की रचना में अधिक योगदान दिया है। ज्ञात चम्पू काव्यों की संपूर्ण संख्या अढ़ाई सौ के आसपास मानी जाती है।

5 "गीतिकाव्य"

गीतगोविन्दकार जयदेव कवि को गीतिकाव्यों के युगप्रवर्तकत्व का संमान संस्कृत साहित्य के सभी समालोचक देते है। उनके गीतिकाव्यों की सरसमधुरता के कारण सुभाषितकार हरिहर, जयदेव की रचना का तो कालिदास से भी अधिक सरस मानते हैं .-

"आकर्ण्य जयदेवस्य गोविन्दानन्दिनीर्गिरः। बालिशा कालिदासाय स्पृहयन्तु वयं तु न।। (सुभाषितावली-17)

(जयदेव की वाणी कृष्णप्रेमपूर्ण है। उसे सुनने पर, कालिदास के काव्य पर बालिश लोग ही आस्था रखेंगे। हम तो नहीं रखते)। इस काव्य में मात्रिक वृत्तों के साथ संगीत के मात्रिक पदों का मनोहर समन्वय किया है। इस प्रकार की "मधुर-कोमल-कान्त पदावली" से ओतप्रोत राग-तालनुकूल पदरचना, जयदेव के पहले किसी ने की होगी, परंतु जयदेव की रचना इतनी उत्कृष्ट हुई कि वे इस प्रकार की काव्यरचना के युगप्रवर्तक हो गये। 12 सर्गों के इस प्रबन्धात्मक काव्य में श्रीमद्‌भागवत की रासलीला के अनुसार रासलीला तथा राधाकृष्ण की विप्रलंभ-संभोगात्मक शृंगार लीला का वर्णन हुआ है। इस के पाश्चात्य समीक्षकों में विलियम जोन्स ने इसे पैस्टोरल ड्रामा (पशुचारण नाट्य) कहा है। पिशेल मेलो ड्रामा (अत्युक्तिपूर्ण कृत्रिम नाट्य) कहते हैं, तो सिल्वाँ लेवी गीत और नाट्यकी समन्वित रचना मानते हैं। इस प्रकार इस गीतिकाव्य का स्वरूप विवाद्य सा हुआ है।

तमिळ साहित्य में पेरियपुराणम् नामक एक प्राचीन "गेयचरित्रम्" प्रसिद्ध है। वह 63 नायन्मारों (शैवसंतों) की चरित्रगाथा पर आधारित है। इस गेयचरित्रम् का स्वरूप संगीत नाटक सा होता है, परंतु उसमें अंक, दृश्य इत्यादि विभाग नहीं होते। कुछ हेर फेर कर के गेयचरित्रम् को नाटकवत् किया जा सकता है। जयदेव के गीतगोविन्दम् की यही अवस्था है। रंगमंच पर गीतगोविंद के नाट्यवत् अभिनयपूर्ण प्रयोग होते हैं। दक्षिण भारत में "गेयनाटकम्" के संगीतमय प्रयोग भी लोकप्रिय है। इस में नाटक के अभिनय से संगीत को ही अधिक प्रधानता होती है। सुप्रसिद्ध आधुनिक "वाग्गेयकार" त्यागराज के गेय नाटक दक्षिण भारतीय समाज में अत्यंत लोकप्रिय हैं। तमिळनाडु में "भागवतमेलानाटकम्" नामक एक नृत्यप्रकार प्रचलित है, परंतु उसका प्रारंभ ई. 17 वीं शती से माना जाता है। जयदेव का गीतगोविंद 12 वीं शताब्दी की रचना है। संभव है कि गीतगोविंद के सार्वत्रिक प्रचार एवं प्रभाव के कारण दक्षिण में भगवद्‌भक्ति परक भागवतमेलानाटकम् का उदय हुआ।

गीतगोविंद का प्रेरणा स्थान कृष्णलीला है, जिसका उत्कट और उदात्त रसमय स्वरूप श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में दिखाई देता है। इस स्कन्ध में वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, महिषीगीत, भ्रमरगीत, जैसे अप्रतिम गीतकाव्य हैं। इनका रसमाधुर्य अलौकिक है। जयदेव जैसे कृष्णभक्त को श्रीमद्भागवत के इन गीतकाव्यों से तथा "रासपंचाध्यायी" जैसे विप्रलंभ शृंगार रसमय काव्य से प्रेरणा मिलने के कारण उनकी कृष्णभक्ति गीतगोविंद के स्वरूप में मुखरित हुई। इस दृष्टि से श्रीमद्भागवत के विविध 'गीत' ही गीतिकाव्य के मूलस्रोत मानना उचित होगा। परंतु गीतगोविंद की "राग-ताल योजना" तथा उसकी अपूर्व मधुरिमा का अनुकरण करने वाले कवियों की प्रदीर्घ परंपरा संस्कृत साहित्यिकों में हुई, इस कारण गीतिकाव्य के प्रवर्तकत्व का बहुमान उन्हींको दिया जाता है।

कुछ उल्लेखनीय गीतिकाव्य :-

गीतराघवम् :- ले. प्रभाकर, (2) हरिशंकर, (3) रामकवि,

गीतगंगाधरम् :- ले. कल्याणकवि, (2) नंजराजशेखर, (3) चंद्रशेखर सरस्वती। गीतशंकरम-ले-मृत्युजय अनंत नारायण।

गीतदिगम्बरम् :- ले- रामचंद्रप्रसुत वंशमणि।

गीतगौरीपति :- ले-भानुदास। संगीतमाधवम्-ले-गोविंददास।

संगीतरघुनन्दनम् :- ले-प्रियदास, (2) विश्वनाथ।

संगीतराघवम् :- ले-चिन्ना बोम्मभूपाल।

संगीतसुंदरम् :- ले-सदाशिव दीक्षित।

गीतवीतरागप्रबन्ध :- ले. अभिनवचारुकीर्ति।

गीतशतकम् :- ले- सुन्दराचार्य।

शिवगीतमालिका :- ले-चण्डशिखामणि।

गानामृततरंगिणी :- ले-टी.नरसिंह अय्यंगार। (या कल्किसिंह)।

शंकरसंगीतम् :- ले-जयनारायण।

शिवगीतमालिका :- ले-चन्द्रशेखर सरस्वती (आप कांची कामकोटी शांकर पीठ के 63 वें आचार्य थे)।

शाहजिविलासगीतम् :- ले-ढुण्ढिराज।

कृष्णलीलातरंगिणी :- ले-नारायणतीर्थ (2) बेल्लंकोण्ड रामराय।

कृष्णभावनामृतम् :- ले-विश्वनाथ। कृष्णामृत तरंगिका-ले-वेंकटेश। **तीर्थभारतम् :-** ले-श्रीधर भास्कर वर्णेकर। श्रीरामसंगीतिका - ले-श्री भा.वर्णेकर। **श्रीकृष्णसंगीतिका-** ले श्री.भा वर्णेकर, (प्रस्तुत कोश के संपादक) गीतिकाव्यों के आधुनिक लेखकों में पदुकोट्टा के प्राध्यापक सुब्रह्मण्यसूरि ने रामावतारम्, विश्वामित्रयागम्, सीताकल्याणम्, रुक्मिणीकल्याणम् विभूतिमाहात्म्यम्, हल्लीश-मंजरी, दोलागीतानि इत्यादि गीतिकाव्य लिखे हैं। महाराष्ट्र के राम जोशी ने संस्कृत-मराठी संवादात्मक द्वैभाषिक गीतकाव्य लिखे हैं। जयपुर के भट्टश्री मथुरानाथशास्त्री (मंजुनाथ) ने अपने साहित्यवैभवम्, में रेलशकटि (रेलगाडी), वायुयान, अब्धियान (जहाज) ट्रामवे जैसे लौकिक विषयों पर विविध प्रकार के गीतिकाव्य लिखे हैं। कोचीन के वारवूर कृष्ण मेनन ने गाथाकादम्बरी नामक कादम्बरी का गेय रूपांतर रचा है। वेंकटरमणार्य ने अपने कमलाविजयम् नाटक में श्री, स्त्री, सुधी, कन्या, पंक्ति, शशिवदना, विद्युल्लेखा, कुमारललिता इत्यादि अभिनव गेयकाव्यों के लक्षणों की चर्चा की है। गुजरात में गरबा नृत्य की प्रथा लोकप्रिय है। उस नृत्य के योग्य संस्कृतगीतों का सग्रह चादोद के सस्कृतभाषा प्रचार मडल ने प्रसिद्ध किया है। आधुनिक संस्कृत कवियों में गीति काव्य रचना की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है। सस्कृत की मासिक पत्रिकाओं में आज कल वृत्तबद्ध काव्यों की अपेक्षा गीतिकाव्य अधिक प्रकाशित होते हैं।

6 "दूतकाव्य"

महाकवि कालिदास की प्रत्येक काव्यकृति की यह अपूर्वता है कि वह स्वसदृश काव्य तथा नाट्य प्रणाली की प्रवर्तक हुई है। कालिदास की प्रत्येक काव्यकृति तथा नाट्यकृति को आदर्श मानते हुए अनेक कवियों ने अपनी प्रतिभा शक्ति का विनियोग किया और तदनुसार महाकाव्यों तथा नाटकों की रचना की। उनमें कालिदास का मेघदूत यह खण्डकाव्य भी एक युगप्रवर्तक कलाकृति हुई जिसके प्रभाव के कारण संस्कृत साहित्य क्षेत्र में दूतकाव्यों की पृथक् परंपरा प्रचलित हुई।

वस्तुत दूतकाव्यों की परंपरा का मूल ऋग्वेद के दशम मण्डलस्थ-108 वें सूक्त में मिलता है; जिसमें सरमा नामक देव-शुनी को पणियों पास दूतकर्म के लिये भेजा गया है। रामायणकार आदिकवि वाल्मीकि ने हनुमान् का दूतकर्म अत्यंत

प्रभावपूर्ण पद्धति से चित्रित किया है। महाभारत के नलोपाख्यान में वर्णित हंस का दूतकर्म सर्वत्र सुविदित है। इस प्रकार दूतद्वारा प्रिय व्यक्ति की ओर काव्यात्मक संदेश भेजने की कविपरंपरा कालिदास को अज्ञात नहीं थी। मेघदूत की रचना करते समय रामायण के हनुमद्दूत का चित्र कालिदास के मन में था इस का प्रमाण "इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा" इस पंक्ति में स्पष्ट मिलता है। परंतु कालिदास का मेघरूपी दूत "धूमज्योतिसलिलमरुतां सन्निपातः" याने एक अचेतन पदार्थ था। इस प्रकार के अचेतन दूतों के माध्यम से काव्यात्मक सन्देश (या सन्देशकाव्य) लिखने की प्रवृत्ति पर भामह ने अपने काव्यालंकार में प्रतिकूल अभिप्राय व्यक्त किया है :-

"अयुक्तिमद् यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः। तथा भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः ।।2-42।।

अवाचो युक्तिवाचश्च दूरदेशविचारिणः। कथं दूत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते।।43।।

यदि चोत्कण्ठया यत् तदुन्मत्त इव भाषते। तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते।।44।।

अर्थात् मेघ, वायु, चंद्र, भ्रमर, आदि पक्षी वाणीहीन होने के कारण संदेशवाहक दूतकर्म कैसे कर सकेंगे? उन का दूतकर्म युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। अत्यंत उत्कण्ठा के कारण उन्मत्त होकर नायक उनके द्वारा संदेश भेजते होगे तो वह ठीक नहीं है। इस प्रकार के दूत अच्छे बुद्धिमान् लोगों द्वारा भेजे गए, काव्यक्षेत्र में दिखाई देते हैं। इस प्रकार का साहित्य-शास्त्रकार भामह का प्रतिकूल अभिप्राय होने पर भी संस्कृत साहित्यिकों ने उस की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। संदेशकाव्यों की परंपरा अव्याहत चालू ही रही।

कुछ समालोचकों ने दूतकाव्यों का अन्तर्भाव प्रबन्धात्मक गीतिकाव्यों में तथा मुक्त गीतिकाव्य के रसात्मक प्रकार में किया है। रसरहित गीति साहित्य के अर्न्तगत स्तोत्र, शतक आदि काव्यप्रकारों का अन्तर्भाव वे करते हैं।

उत्तम दूतकाव्य नायक-नायिका के वियोग की पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। ऐसी विरहावस्थामें दूरस्थ नायिका की स्मृति से व्याकुल नायक मेघ, चंद्रमा, हंस पक्षी आदि के द्वारा अपनी व्यथा प्रेयसी के प्रति काव्यरूप में भेजता है। साथ ही वह अपने कल्पित संदेशवाहक को प्रिया के निवासस्थान का मार्ग कथन करते हुए नदी, पर्वत, कानन, नगर, ग्राम, तीर्थक्षेत्र आदि रमणीय स्थानों का चित्रण करता है, जिसमें उसकी विरहव्यथा या विप्रलंभ शृंगार की व्यञ्जना अत्यंत हृदयावर्जक हुई है। दूतकाव्यों का विषय इतना ही सीमित होने के कारण वह लघुत्तर होता है। इसी कारण साहित्यशास्त्री उसे "खण्डकाव्य" कहते हैं। इस प्रकार की काव्य परंपरा में मेघदूत की साथ ही घटखर्परकाव्य (ले-घटखर्पर) को भी महत्त्व दिया जाता है। मेघदूत और घटखर्परकाव्य के पौर्वापर्य के संबंध में मतभेद है। अभिनवगुप्ताचार्य ने घटखर्पर काव्य पर टीका लिखी है। उसीमें वे उसे कालिदास की ही रचना मानते हैं। मेघदूत का स्पष्ट प्रभाव या अनुकरण, रामचंद्रकृत घनवृत्त, कृष्णमूर्तिकृत यक्षोल्लास, रामशास्त्रीकृत मेघप्रतिसन्देश, परमेश्वर झा कृत यक्षसमागम जैसे काव्यों में दिखाई देता है। जिनसेनाचार्य कृत पार्श्वाभ्युदय काव्य में प्रत्येक पद्य मेघदूत के क्रम से एक चरण या दो चरणों की समस्या के रूप में ले कर पूरा किया है। विक्रमकविकृत नेमिदूत में मेघदूत के अन्तिम चरणों की समस्यापूर्ति की गई है। मेरुतुंग आचार्य के काव्य का नाम जैनमेघदूत हे परंतु इसमें मेघदूत की समस्यापूर्ति नहीं है। चरित्रसुंदरगणिकृत शीलदूत में कालिदास के मेघदूत का अनुकरण और उसके चौथे चरण की समस्यापूर्ति प्रत्येक श्लोक में की गयी है। मेघविजय कृत मेघदूतसमस्यालेख में मेघद्वारा गुरु के पास सन्देश भेजा गया है।

कालिदास के मेघदूत में प्रधान रस वियोग शृंगार, उद्दीपनविभाव के रूप में आकाश मार्ग से दृग्गोचर सृष्टिके सौंदर्य का रसानुकूल चित्रण हुआ है। परंतु उसका अनुकरण करने वाले अन्य काव्यों में सन्देशवाहक की कल्पना के अतिरिक्त रस, भाव में तथा छन्द में भी वैचित्र्य आया है। जैन संप्रदायी कवियों के दूतकाव्यों में शृंगारिकता के स्थान पर आध्यात्मिक उदात्तता का भाव प्रतीत होता है। वैष्णव कवियों की रचनाओं में कवीन्द्र भट्टाचार्य कृत उध्दवदूत, रूपगोस्वामी कृत उद्धवसन्देश, श्रीकृष्णसार्वभौम कृत पादाङ्कदूत, लंबोदरवैद्यकृत गोपीदूत, त्रिलोचन कृत दूत तुलसी जैसे काव्यों में कृष्णभक्ति का मनोज्ञ उद्रेक दिखाई देता है।

मेघदूत के सन्देशवाहक दूत कल्पना का प्रभाव जर्मन कवि शीलर पर हुआ था। उसने अपने "मारिया स्टुअर्ट" नामक काव्य में कारागृह में पडी हुई नायिका का सन्देश मेघ द्वारा प्रियतम की ओर भेजा है। विश्वसाहित्य में बाइबल और पंचतंत्र के अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में अभी तक हुए हैं। मेघदूत के अनुवादों की भी संख्या उतनी ही बडी है। इसका पहला अनुवाद 13 वीं शती में तिब्बती भाषा में हुआ। सन 1847 में मैक्समूल्लर ने जर्मन भाषा में किया हुआ अनुवाद उत्कृष्ट माना जाता है। अंग्रेजी अनुवादों में अमेरिकन पंडित रायडर का अनुवाद उत्कृष्ट माना जाता है। 19 वीं शताब्दी में बोन आर गील्ड मिस्टर ने लातिन भाषा में उत्तम अनुवाद किये। मराठी भाषा में भारत के भूतपूर्व विद्वान अर्थमंत्री डॉ. चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख का समवृत्त अनुवाद सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

दूतकाव्य की विशेष अभिरुचि बंगाली साहित्यिकों में दिखाई देती है। डॉ. जतीन्द्रबिमल चौधरी ने सन 1953 में

"वंगीय-दूतकाव्येतिहासः" नामक प्रबन्ध लिखा जिसमें बंगाल के पचीस दूतकाव्यों का सविस्तर परिचय दिया है।

कुछ उल्लेखनीय दूतकाव्य :-

पवनदूत :- ले-धोयी कवि, ई-12 वीं शती। **सिद्धदूत**- ले-अवधूत रामयोगी, ई-13 वीं शती।

मनोदूत :- ले-विष्णुदास कवि, ई-15 वीं शती।

मनोदूत :- ले- रामशर्मा, ई-15 वीं शती। उद्धवदूत. ले-कवीन्द्र भट्टाचार्य, ई-16 वीं शती।

17 वीं शती के दूतकाव्य :- उद्धवसन्देश-ले-रूप गोस्वामी। पिकदूत .- ले-रुद्र न्यायवाचस्पति। पवनदूत ले-वादिराज। पादांकदूत-ले-श्रीकृष्ण सार्वभौम।

गोपीदूत :- ले- लम्बोदर वैद्य। तुलसीदूत ले-त्रिलोचन।

हंससन्देश :- ले-वेदान्त देशिक कवीन्द्राचार्य। **भ्रमरदूत**- ले-रुद्रवाचस्पति। **कोकिलसन्देश** :- ले- वेंकटाचार्य। **यक्षोल्लास** :- ले-कृष्णमूर्ति।

हंसदूत :- रघुनाथदास। **पवनदूत** :- ले-सिद्धनाथ विद्यावागीश।

वातदूत :- कृष्णानन्द (या कृष्णनन) न्यायपंचानन।

अनिलदूत - रामदयाल तर्करत्न। **पादपदूत** - गोपेन्द्रनाथ गोस्वामी। **कोकिलसन्देश** :- वेंकटाचार्य।

18 वीं शती के कुछ दूतकाव्य :- चन्द्रदूत ले-कृष्णचंद्र तर्कालंकार।

तुलसीदूत :- ले-त्रिलोचन। तुलसीदूतः ले-वैद्यनाथ द्विज।

कोकिलदूत :- ले- हरिदास। काकदूत-ले-रामगोपाल। पिकदूत-ले-अंबिकाचरण देवशर्मा।

19 वीं शती के दूतकाव्य :- **मेघदूत** :- ले-त्रैलौक्यमोहन। **भक्तिदूत** :- ले-कालीप्रसाद।

उद्धवदूत :- ले-माधव।

20 वीं शती के दूतकाव्य।

शुकसन्देश :- ले-रंगनाथ ताताचार्य।

सन्देश :- ले- रंगनाथ ताताचार्य। **कीरसन्देश** -ले-लक्ष्मी-कान्तय्या (हैद्राबाद निवासी)। **कीरदूत** :- ले-रामगोपाल। **भृंगसंदेश** :- लेखिका-त्रिवेणी। **भ्रमरसन्देश** : ले-य. महालिंगशास्त्री। **मधुकरदूतः** चक्रवर्ती राजगोपाल मैसूर निवासी।) **कोकिलसन्देश** :- ले-1) नृसिंह (2) वरदाचार्य, (3) वेंकटचार्य, (4) उद्दण्डकवि- इनके काव्य में वासुदेव कविकृत भृंगसंदेश का प्रतिसन्देश है। **पिकसन्देश** :- ले-1) रंगाचार्य, 2) कोचा नरसिंहाचार्य। **कोकिलदूत**- ले-प्रमथनाथ तर्कभूषण। **कोकिल-सन्देश**- 1)अण्णंगराचार्य 2) गुणवर्धन, 3) नरसिंह। **हंससन्देश** :- ले- 1) वेंकटेश 2) सरस्वती। **गरुडसन्देश** :- कोचा नरसिंहाचार्य। **चकोरसन्देश** :- ले-1) वासुदेव, 2) वेंकट, 3) पेरुसूरि। **मयूरसन्देश** :- 1) रंगाचार्य, 2) श्रीनिवासाचार्य। **सुरभिसन्देश** :-ले-विजयराघवाचार्य। **सुभगसन्देश** :- ले-1) लक्ष्मणसूरि 2) नारायण कवि। **पान्थदूतः** ले-भोलानाथ। **मनोदूत** : ले- 1) व्रजनाथ, 2) विष्णुदास, 3) रामकृष्ण। **कोकसन्देश**-ले-विष्णुत्रात।

हास्यप्रधानदूतकाव्य :- **मुद्गरदूत** ले-रामावतार शर्मा। **बल्लवदूत** :- ले- बटुकनाथ शर्मा। **काकदूत** :- ले- 1) सहस्रबुद्धे, 2) राजगोपाल अय्यंगार। **अलकामिलन** :- ले-द्विजेन्द्रलाल शर्मा पुरकायस्थ। इनके अतिरिक्त मारुतसंदेश मधुरोष्ठसंदेश, रत्नाङ्गददूत, चातकसन्देश, पद्मदूत इत्यादि अनेक दूतकाव्य प्रकाशित हुए हैं। सुप्रसिद्ध आधुनिक विद्वान वसिष्ठ गणपति मुनि ने भृंगदूत नामक काव्य लिखा, परंतु उसमें कालिदासीय दूतकाव्य के माधुर्य की प्रतीति न आने के कारण उन्होंने वह नदी में फेंक दिया।

7 स्तोत्रकाव्य

मम्मटाचार्य ने अपने काव्यप्रकाश में प्रारभ में काव्य के छह प्रयोजन तथा फल बताए हैं। उनमें "शिवेतरक्षति" याने अमंगल का नाश भी एक प्रयोजन बताया है। इसके उदाहरण में सूर्यशतककार मयूर एवं गीतगोविंदकार जयदेव आदि कवियों की काव्यरचना की कथाए बताई जाती हैं। सूर्यशतक की रचना के कारण मयूर कवि का श्वेतकुष्ठ नष्ट हुआ। गीतगोविंद के गायन से जयदेव की मृत पत्नी का उज्जीवन हुआ। गंगातट पर गगालहरी के गायन से पण्डितराज जगन्नाथ का उद्धार हुआ। नारायणीय स्तोत्र के गायन से नारायणभट्ट वातरोग से मुक्त हुए, इस प्रकार की स्तोत्र काव्य विषयक अनेक कथाए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

स्तोत्रकाव्य का स्थायी भाव है उपास्य दैवत, गुरु तथा वंद्य महापुरुष के प्रति उत्कट भक्ति या परमप्रीति। इस अतिसात्त्विक भाव का उद्रेक, ऋग्वेद के इन्द्रवरुणादि देवताविषयक सूक्तों में सर्वप्रथम मिलता है। समग्र ऋग्वेद को आद्य स्तोत्रसंग्रह कहने

में अत्युक्ति नहीं होगी। ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त में स्तुत्य देवता के प्रति मंत्रद्रष्टा ऋषि के हृदय के सात्त्विक भाव व्यक्त हुए हैं। उपास्य देवता के दिव्य गुणों तथा कर्मों का वर्णन किया हुआ है। "त्वं हि न. पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋ. 8-98-11)

सखा पिता पितृतमः पितृणां। कर्तेमु लोकमुशते वयो धा।। (ऋ. 4-98-17)

इस प्रकार के कुछ मंत्रों में उपास्य देवता से माता, पिता, सखा, बंधु जैसा नाता भी जोड़ा गया है। साथ ही पापक्षालन, पुण्यलाभ, विजय, अभ्युदय के लिए देवता से प्रार्थना अथवा याचना भी की गयी हैं। इसी प्रकार के मंत्र या सूक्त यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी स्थान स्थान पर मिलते हैं। स्तोत्रवाङ्मय में जिस भक्तिभाव का नितान्त महत्त्व है, उसकी महिमा सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद के,

"यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः" (श्वेता. 6-23)

("जिस के हृदय में देवता के प्रति तथा गुरु के प्रति भी पराभक्ति होती है, उसी महात्मा को उपनिषद् के गूढ अर्थों कि प्रतीति आती है।) इस मंत्र में प्रतिवादन किया है। इसी भक्तियोग का प्रतिपादन श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तथा समग्र पुराण वाङ्मय में किया हुआ है। श्रीमद्‌भागवत जैसे उत्कृष्ट पुराण में अनेक मधुर स्तोत्रों का भरपूर संग्रह मिलता है। अन्य सभी पुराणों में सर्वत्र स्तोत्र काव्य बिखरे हुए हैं। शंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, रामानंद, चैतन्य आदि सभी वैष्णव, शैव, जैन, बौद्ध इत्यादि अन्यान्य सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपनी अपनी धारणा के अनुसार अनन्य भक्तिभाव का महत्त्व प्रतिपादन किया है, और उनके सभी श्रेष्ठ अनुयायी साहित्यिकों ने अपनी अपनी काव्यशक्ति के अनुसार भक्तिभावपूर्ण स्तोत्रकाव्यों की रचना, संस्कृत प्राकृत तथा अर्वाचीन प्रादेशिक भाषाओं में भरपूर मात्रा में की है। संसार की सभी भाषाओं में स्तोत्रमय काव्यों का जितना अधिक प्रमाण है उतना अन्य प्रकार के काव्यों का नहीं होगा।

संस्कृत स्तोत्रसाहित्य अत्यंत विशाल एवं सार्वत्रिक है। इसमें उपास्य देवता, पवित्र नदियां, तीर्थक्षेत्र, संत-महात्मा इत्यादि विभूतियों के प्रति भक्ति एवं लौकिक विषयबहुल तुच्छ जीवन के प्रति विरक्ति उत्कट स्वरूप में व्यंजित हुई है। साथ ही अलंकारों का वैचित्र्य भी भरपूर मात्रा में दिखाई देता है। तांत्रिक वाङ्मय में अन्तर्भूत स्तोत्रों एवं कवचों पर जनता की नितांत श्रद्धा होने के कारण उनके पारायण होते हैं।

रामायण का आदित्यहृदय, महाभारत का विष्णुसहस्रनाम, मार्कण्डेयपुराण का दुर्गास्तोत्र जैसे अनेक पौराणिक आख्यानों के अंगभूत स्तोत्रों का स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशन हुआ है। महाकाव्यों में भी पौराणिक पद्धति से रचे हुए, परंतु अधिक अलंकारमय स्तोत्रों का प्रमाण भरपूर मात्रा में मिलता है। इनके अतिरिक्त 'सहस्रक'' तथा "शतक" पद्धति के स्तोत्रमय खण्डकाव्यों का भी प्रमाण सस्कृत साहित्य में भरपूर है।

कुछ उल्लेखनीय सहस्रक :

लक्ष्मीसहस्रम् : ले वेंकटाध्वरि। **शिवदयासहस्रम्** : ले नृसिंह। **शिवपादकमलरेणुसहस्रम्** : ले. सुन्दरेश्वर। **लक्ष्मीसहस्रम् और रंगनाथसहस्रम्** लेखिका त्रिवेणी। (प्रतिवादिभयंकर वेंकटाचार्य की धर्मपत्नी। ई. 10 वीं शती) **नारायणीयम्** : ले नारायणभट्ट। **उमासहस्रम्** ले वसिष्ठ गणपतिमुनि (ई 20 वीं शती) **क्षमापनसहस्र** : ले. त्रिवाकुरनरेश केरलवर्मा (ई. 19-20 वीं शती)। महाभारत के अतर्गत विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र एक उत्कृष्ट भगवत्स्तोत्र माना गया है, उसके अनुसार विविध देवताओं के सहस्रनाम तांत्रिक स्तोत्रकारों ने लिखे हैं; जैसे उच्छिष्टगणेश सहस्रनाम, कादिसहस्रनामकला, गकारादिगणपतिसहस्रनाम स्तोत्र, गणेशसहस्रनाम, गायत्रीसहस्रनाम, जिनसहस्रनाम ले. जिनसेन। ज्वालासहस्रनाम, तारासहस्रनाम, त्रिपुरासहस्रनामस्तोत्र, दक्षिणकालिककारादिसहस्रनाम, दक्षिणामूर्तिसहस्रनाम, दुर्गा-दकारासहस्रनाम, प्रचण्डचण्डिकासहस्रनाम, बटुकभैरवसहस्रनाम, बालभैरवसहस्रनाम, भद्रकालीसहस्रनाम, भवानीसहस्रनाम, भुवनेश्वरीसहस्रनाम, मंत्राधारीभवानीसहस्रनाम, महागणपतिसहस्रनाम, योगेशसहस्रनाम, रकारादिरामसहस्रनाम, रामसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, वाराही सहस्रनाम, शिवसहस्रनाम, सूर्यसहस्रनामस्तोत्र, ले.- भानुचंद्र मणि। सहस्रनामकमाला-कला (ले. तीर्थस्वामी। इन्होंने 40 सहस्रनामों के गूढार्थकनामों की कला नामक व्याख्या लिखी है।

आंध्र के अर्वाचीन सत्पुरुष बेल्लंकोण्ड रामराय ने विवर्णादिविष्णु-सहस्रनामावली, हकारादि-हयग्रीव-नामावली और परमात्मसहस्रनामावली की रचना की और स्वयं उनकी व्याख्याए भी लिखीं। नटराजसहस्रम् नामक अतिप्राचीन स्तोत्र की टीका आनंदताडव दीक्षित और सोमशेखर दीक्षित ने लिखी है।

सहस्रनामस्तोत्रों के समान अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रों का प्रमाण भी भरपूर है। इस प्रकार के स्तोत्रों का विनियोग तंत्रमार्ग के साधकों एवं सकाम उपासकों द्वारा यत्र तत्र यथावसर होता है।

सहस्रश्लोकात्मक स्तोत्रों के समान शतकस्वरूप स्तोत्रों की रचना भी अनेक कवियों ने की है।

अध्यर्धशतक : ले. मातृचेट। यह एक प्राचीन **बौद्धस्तोत्र है। जिनशतकालंकार** : ले. समन्तभद्र। **सूर्यशतक** : मयूरकवि। **देवीशतक** : ले. आनंदवर्धनाचार्य। गीतिशतक : ले. सुंदरार्य। **अंबाशतक** : ले. सदाक्षर, ई. 17 वीं शती। अंबुजवल्ली शतक : ले. वरदादेशिक, ई. 17 वीं शती। इन्होंने वराहशतक भी लिखा है। देव्यार्याशतक ले. रमणापति। रसवतीशतक : ले. धरणीधर। रामशतक : ले. सोमेश्वर। ईश्वरशतक ले. अवतार। मीनाक्षीशतक . हनुमत्शतक, मालिनीशतक और लक्ष्मीनृसिंहशतक इन चारों स्तोत्रों के लेखक हैं परिथियुर कृष्णकवि। सुदर्शनशतक : ले. कूरनारायण। कालिकाशतक और आत्मनिवेदनशतक : दोनों के लेखक है बटुकनाथ शर्मा। कोमलाम्बाकुचशतक ले. सुंदराचार्य, ई 20 वीं शती। शारदाशतक, विज्ञप्तिशतक, महाभैरवशतक, हेटिराजशतक, योगिभोगिसंवादशतक : इन पांच शतकों के लेखक है श्रीनिवासशास्त्री, तजौरनिवासी, ई 19 वीं शती। नृसिंहशतक और नखशतक दोनों के लेखक हैं तिरुवेंकट तातादेशिक। पद्मनाभशतक ले त्रिवांकुरनरेश रामवर्मकुलशेखर, ई. 19 वीं शती। गुरुवायुरेशशतक, व्याघ्रालयेशशतक और द्रोणाद्रिशतक तीनों के लेखक- त्रिवाकुरनरेश केरलवर्मा, ई 19-20 वीं शती। गणेशशतक . ले अंबिकादत्त व्यास। रामवल्लभराजशतक · ले बेल्लंकोण्ड रामराय। कृष्णशतक ले वाक्तोलनारायण मेनन। सूर्यशतक और मारुतिशतक : ले. रामावतारशर्मा। शूलपाणिशतक ले. कस्तूरी श्रीनिवासशास्त्री। राधाप्रियशतक · ले राधाकृष्ण तिवारी (सोलापुर निवासी)। कटाक्षशतक ले. गणपतिशास्त्री। वीरांजनेयशतक ले. श्रीशैलदीक्षित। रक्षाबन्धनशतक · ले विमलकुमार जैन (कलकत्तानिवासी)। युगदेवताशतक ले श्रीधर भास्कर वर्णेकर। विषय श्रीरामकृष्ण परमहंस) बाललीलाशतक (अपरनाम वात्सल्यरसायनम्) ले. श्रीधर भास्कर वर्णेकर।

उपरनिर्दिष्ट शतकात्मक स्तोत्र काव्यों की रचना आधुनिक कालखण्ड में हुई है। इनके अतिरिक्त दशक, अष्टक षट्पदी जैसे लघुस्तोत्रों की संख्या अगण्य है जिनमें कुछ स्तोत्र सर्वत्र छपे हैं। शंकराचार्यकृत शिवमानसपूजास्तोत्र के अनुसार अन्यान्य देवताओं के भी मानसपूजास्तोत्र लिखे गये हैं।

कुछ सुप्रसिद्ध प्राचीन स्तोत्र

शिवमहिम्नःस्तोत्र · ले. पुष्पदन्त नामक गन्धर्व। मद्रास की कितनी ही हस्तिलिखित प्रतियों में कुमारिलभट्टाचार्य ही इनके कर्ता लिखे गये हैं।

सुभगोदयस्तुति . ले गौडपादाचार्य (शंकराचार्य के दादागुरु)। ललितास्तवरत्न और त्रिपुरसुन्दरी महिम्-स्तोत्र दोनों के रचयिता दुर्वास माने जाते हैं।

सौन्दर्यलहरी . ले. शकराचार्य।

शिवस्तोत्रावली · ले उत्पलदेव। इसमें शिवपरक 21 स्तोत्रों का सग्रह है।

अर्धनारीश्वरस्तोत्र ले राजतरगिणीकार कल्हणकवि। दीनाक्रन्दनस्तोत्र . ले. लोष्टककवि।

स्तुतिकुसुमांजलि जगद्धरकृत। 38 शिवस्तोत्रों का संग्रह। इसकी श्लोकसख्या 1415 है। (मालतीमाधव और वेणीसंहार के टीकाकार जगद्धर इनसे भिन्न हैं)।

आनदमदाकिनी : ले. मधुसूदन सरस्वती।

कृष्णकर्णामृत : ले. लीलाशुक।

रामचार्यस्तव ले. रामभद्रदीक्षित। तंजौर नरेश शहाजी (प्रथम ई. 17-19 वीं शती) के सभाकवि। इन्होंने रामभक्ति परक रामबाणस्तव, विश्वगर्भस्तव (या जानकीजानिस्तोत्र) वर्णमालास्तोत्र और रामाष्टप्रास इन पाच स्तोत्र काव्यों में प्रभुरामचद्र की स्तुति की है।

वरदराजस्तव · ले. अप्पय्य दीक्षित।

गगालहरी या पीयूषलहरी . ले पंडितराज जगन्नाथ। इनकी करुणालहरी, अमृतलहरी (यमुनास्तुति), लक्ष्मीलहरी, सुधालहरी (सूर्यस्तुति) ये अवांतर 4 लहरियां भी स्तोत्रकाव्यों में प्रसिद्ध हैं।

जैन स्तोत्र

जैन धर्म के प्राचीनतम स्तोत्र प्राकृत भाषा में मिलते हैं। बाद में सस्कृत भाषा में दार्शनिक तथा आलंकारिक शैली में अनेक स्तोत्र लिखे गये। दार्शनिक स्तोत्रों में उल्लेखनीय स्तोत्र है .

समन्तभद्रकृत स्वयभूस्तोत्र, देवागमस्तोत्र, युत्तयनुशासन और जिनशतकालंकार। आचार्य सिद्धसेनकृत द्वात्रिंशिकाएं। आचार्य हेमचंद्र कृत अयोगव्यवच्छेद-द्वात्रिंशिका और अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका। इसी प्रकार के दार्शनिक स्तोत्र वेदान्ती आचार्यों ने भी लिखे हैं। व्याख्याओं की सहायता से ये स्तोत्र दार्शनिक प्रकरणग्रन्थों के समान उद्बोधक होते हैं।

आलंकारिक जैन स्तोत्र

सर्वजिनपतिस्तुति : ले. श्रीपाल (प्रज्ञाचक्षु)। चतुर्हारावलि चित्रस्तव · ले. जयतिलकसूरि। वीतरागस्तव · ले. विवेकसागर। इस श्लेषमय स्तोत्र से तीस अर्थ निकलते हैं। स्तंभपार्श्वस्तव · ले. नयनचन्द्रसूरि। इसमें 14 अर्थ मिलते हैं।

पादपूर्तिप्रधानस्तोत्र : ऋषभ-भक्तामर : ले. समयसुन्दर। शान्तिभक्तामर : ले. लक्ष्मीविमल। नेमिभक्तामर (या प्राणप्रियकाव्य) : ले. रत्नसिंहसूरि। वीरभक्तामर : ले धर्मवर्धनगणि। सरस्वतीभक्तामर . ले. धर्मसिंहसूरि। एवं जिनभक्तामर, आत्मभक्तामर, श्रीवल्लभभक्तामर तथा कालूभक्तामर इत्यादि स्तोत्रों में सुप्रसिद्ध मानतुंगाचार्य कृत **भक्तामरस्तोत्र** के चतुर्थ पाद की पूर्ति करते हुए, कवियों ने अपने भक्तिमय भाव व्यक्त किये हैं। भक्तामरस्तोत्र में 44 या 48 पद्यों में प्रथम तीर्थंकर की स्तुति मानतुंगाचार्य ने की है। भक्तामरस्तोत्र पर कनन कुशलगणिकृत टीका महत्त्वपूर्ण है। जैनस्तोत्रों में कुमुदचन्द्रकृत **कल्याणमंदिरस्तोत्र** भी विशेष लोकप्रिय है। इसके 44 पद्यों में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति की है। समस्यापूर्ति के लिए इस स्तोत्र का आधार लेते हुए भावप्रभसूरि ने जैनधर्मपर स्तोत्र लिखा। पार्श्वनाथस्तोत्र, विजयनन्दसूरीश्वरस्तवन, वीरस्तुति आदि स्तोत्रों के लेखक अज्ञात हैं। इनके अतिरिक्त जैन स्तोत्रों में देवनन्दीपूज्यपाद (छठी शती) कृत सिद्धभक्ति आदि बारह भक्तियां और सिद्धप्रियस्तोत्र पात्रकेशरी (छठी शती) कृत जिनेन्द्रगुणस्तुति (या पात्रकेशरीस्तोत्र)। बप्पभट्टिकृत (8 वीं शती) सरस्वतीस्तोत्र, शान्तिस्तोत्र चतुर्विंशति जिनस्तुति और वीरस्तव धनंजयकृत विषापहारस्तोत्र, विद्यानंदकृत श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र, शोभनमुनिकृत (11 वीं शती) चतुर्विंशतिजिनस्तुति, वादिराजसूरिकृत ज्ञानलोचनस्तोत्र एवं एकीभावस्तोत्र, भूपालकविकृत जिनचतुर्विंशतिका, आचार्य हेमचंद्र (12 वीं शती) कृत वीतरागस्तोत्र, महादेवस्तोत्र और महावीरस्तोत्र, जिनवल्लभसूरिकृत (12 वीं शती) भवादिवारण, अजितशान्तिस्तव आदि अनेकस्तोत्र प्रसिद्ध हैं।

आशाधर (ई. 13 वीं शती) कृत सिद्धगुणस्तोत्र, जिनप्रभसूरिकृत सिद्धान्तागमस्तव, अजितशान्तिस्तवन, महामात्य वस्तुपाल (ई 13 वीं शती) कृत अम्बिकास्तवन, पद्मनन्दिभट्टारककृत रावणपार्श्वनाथस्तोत्र, शान्तिजिनस्तोत्र, वीतरागस्तोत्र, शुभचन्द्रभट्टारककृत शारदास्तवन, मुनिसुंदर (14 वीं शती) कृत स्तोत्ररत्नकोश आदि अनेक स्तोत्र मिलते हैं। इन विविध स्तोत्रों के संग्रह के रूप में अनेक सस्करण प्रकाशित हुए हैं जैसे जैनस्तोत्रसंदोह, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसंग्रह, स्तोत्ररत्नाकर, जिनरत्नकोश आदि '

बौद्ध स्तोत्र

बौद्ध साहित्यिकों में अध्यर्धशतक (150 श्लोकों का स्तोत्र) के रचयिता मातृचेट स्तोत्रसाहित्य के अग्रदूत माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त शून्यवादी नागार्जुनकृत चतु:स्तव, वज्रदत्तकृत लोकेश्वरशतक, सर्वज्ञमित्र (8 वीं शती) कृत आर्यातारास्रग्धरास्तोत्र, रामचन्द्रकविभारतीकृत (13 वीं शती) भक्तिशतक, इत्यादि बौद्धस्तोत्र उल्लेखनीय हैं। बौद्धसाहित्य में अन्य संप्रदायी साहित्य की अपेक्षा स्तोत्रकाव्य अत्यल्प हैं।

शकर रामानुजादि वेदान्ती आचार्योंने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिख कर अपना प्रौढ पांडित्य व्यक्त किया; उसी प्रकार सगुण परमात्मा के प्रति अपनी भक्तिभावना व्यक्त करने वाले मधुर स्तोत्र भी लिखे हैं और वे उनके मठों में गाये जाते हैं। स्तोत्र कवियों में जगद्गुरु शंकराचार्य अग्रगण्य माने जाते हैं। उनकी साहित्यिक निपुणता तथा भावप्रवणता उनके सभी स्तोत्रों में प्रतिपद अभिव्यक्त होती है।

आचार्यों का स्तोत्रसाहित्य

शंकराचार्यकृत : सौन्दर्यलहरी, देव्यपराधक्षमापन, शिवापराधक्षमापन, आत्मषट्क, षट्पदी, दशश्लोकी, हस्तामलक, चर्पटमंजरी, (भज गोविंदम्), आनदलहरी (इस पर 30 टीकाएं लिखी गई हैं, जिनमें एक स्वयं आचार्यजी ने लिखी है), दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, हरिमीडे, शिवभुजगप्रयात, अद्वैतपचरत्न, धन्याष्टक। शंकराचार्यजी के नाम पर 2 सौ से अधिक स्तोत्र मिलते हैं। उपरनिर्दिष्ट स्तोत्रों के अतिरिक्त प्राय सभी स्तोत्र उत्तरकालीन शांकरपीठाधिपतियों द्वारा विरचित माने जाते हैं।

मध्वाचार्यकृतस्तोत्र : द्वादशस्तोत्र, नखस्तुति और कृष्णामृतमहार्णव।

रामानुजाचार्यकृतस्तोत्र : विष्णुविग्रहासनस्तोत्र।

वल्लभाचार्यकृत : पुरुषोत्तमसहस्रनाम, त्रिविधनामावली, यमुनाष्टक, मधुराष्टक, परिवृढाष्टक, नंदकुमाराष्टक, श्रीकृष्णाष्टक, गोपीजनवल्लभाष्टक, इ ।

चैतन्यमहाप्रभुकृत श्लोकाष्टक, मधुसूदनसरस्वतीकृत आनंदमंदाकिनी। उपासकों में बुधकौशिक विरचित श्रीरामरक्षास्तोत्र, रावणकृत शिवताण्डवस्तोत्र, देवीपुष्पांजलि, शिवमहिम्नस्तोत्र, षट्पदी, चर्पटपंजरिका, शिवमानसपूजा इत्यादि स्तोत्र विशेष प्रिय हैं।

स्तोत्र काव्य मुख्यतः स्तुतिपरक एवं प्रार्थनापरक होता है। देवतास्तुति के समान महापुरुषों के स्तुतिपरक अनेक स्तोत्र काव्य आधुनिक काल में लिखे गये हैं। जैसे :-

कवीन्द्रचन्द्रोदय-विषय कवीन्द्राचार्य की अनेक विद्वानों द्वारा की हुई स्तुति।

कालिदासप्रतिभा - दक्षिण भारत के 28 कवियों द्वारा विरचित कालिदासस्तुतिपरक विविध काव्यो का सग्रह।

कालिदासरहस्यम्- ले श्रीधर भास्कर वर्णेकर

कवितासंग्रह - ले केशव गोपाल ताम्हण। विषय- श्री शंकराचार्य, वासुदेवानद सरस्वती, लोकमान्य तिलक आदि महापुरुषों की स्तुति।

देशिकेन्द्रस्तवांजलि - ले महालिंगशास्त्री। विषय- कांची कामकोटीपीठाधीश्वर चद्रशेखर सरस्वतीजी की स्तुति। श्रीमन्नरसिंहसरस्वती-मानसपूजा- ले गोपाल। मोहनाभिनन्दम्- ले. गणेशरामशर्मा। विषय- महात्मा गाधी की स्तुति। सस्कृत मासिक पत्रिकाओं में इस प्रकार के स्तुतिकाव्यों की भरमार मिलती है।

तीर्थभारतम्- ले श्रीधर भास्कर वर्णेकर। विषय- सपूर्ण भारत के विविध सुप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र, तत्रस्थ देवता एवं बुद्ध, शंकर, महावीर, इत्यादि प्राचीन और विवेकानंद, दयानद, म गांधी इत्यादि अनेक महापुरुषों का स्तवन। तीर्थभारतम् के सभी स्तुति पद्य संगीत प्रधान हैं और कवि ने उनके रागो का निर्देश चलनस्वरों के साथ प्रत्येक भक्तिगीत के साथ में किया है।

8 सुभाषितसंग्रह

सुभाषित, सूक्त, सूक्ति, सदुक्ति, सुवचन इत्यादि समानार्थ शब्दों द्वारा एक विशिष्ट काव्यप्रकार की ओर संकेत किया जाता है। लौकिक व्यवहार में न्याय, आभाणक, मुहावरे, प्रॉव्हर्ब इत्यादि द्वारा विचारो की वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार साहित्यकारों की रचनाओं में पद्य या गद्य वाक्यो में जब चित्ताकर्षक विचार रखे जाते हैं, तब उसे सुभाषित कहा जाता है। ऐसे सुभाषितों का व्याख्यानों एव लेखों में उपयोग करने से उनमें रोचकता बढती है। अत कई वक्ता या लेखक ऐसे सुभाषितो का संग्रह स्वेच्छा से करते हैं। "कर्तव्यो हि सुभाषितस्य_ मनुजैरावश्यक सग्रह" इस प्रसिद्ध सुभाषित में भी सुभाषितो को कण्ठस्थ करने का सदेश दिया है। इस लिये कि सुभाषितों के यथोचित प्रयोग से, वक्ता या लेखक सब प्रकार के लोगो को वश कर सकता है "अज्ञान् ज्ञानवतोऽप्यनेन हि वशीकर्तु समर्थो भवेत्")

साहित्यशास्त्रियो ने महाकाव्य, खडकाव्य, मुक्तक, चम्पू, नाटक इत्यादि साहित्य प्रकारो के तथा उनके अवातर उपभेदो के लक्षण बताए हैं, परतु "सुभाषित" का लक्षण किसी शास्त्रकार ने नहीं किया।" नूनं सुभाषित-रसोऽन्यरसातिशायी" इस वचन में "सुभाषितरस" का निर्देश किया है और यह रस अन्य रसों से श्रेष्ठ भी कहा है। सुभाषितो के जो अन्यान्य प्राचीन और अर्वाचीन सग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें देवतास्तुति, राजस्तुति, अन्योक्ति, नवरस, नायक- नायिका का सौंदर्य वर्णन, ऋतुवर्णन, मूर्खनिंदा, पंडितप्रशंसा, सत्काव्यस्तुति, कुकाव्यनिंदा, सामान्य नीति, राजनीति, इत्यादि विविध विषयों पर पुराण, रामायण, भारत, पंच महाकाव्य प्रसिद्ध स्मृतिग्रंथ, नाटक, मुक्तककाव्य इत्यादि ग्रन्थो से चुने हुए श्लोको का और वैचित्र्यपूर्ण गद्यवचनो का सग्रह मिलता है। इन पद्यों या गद्यों को आप्तवचन सा प्रामाण्य तत्वत नहीं है,परतु अनेक विद्वान ऐसे सुभाषितो को आप्त वाक्यवत् उद्धृत भी करते हैं।

प्रतिभाशाली वक्ता या लेखक के द्वारा ऐसे "सुभाषित" विषय प्रतिपादन के आवेश में या वर्णन के ओघ में, उनमें सूचित उत्कट अनुभव के कारण, अनायास व्यक्त होते हैं। व्यवहार में तो कभी कभी छोटे बच्चे के भी मुख से "सुभाषित" निकल आते हैं और वे प्रौढो ने ग्रहण करने योग्य होते हैं। इसी लिए कहा है कि "बालादपि सुभाषित ग्राह्यम्। सारे ही वेदवचनों को आप्तवचन का प्रामाण्य है, तथापि उन में भी अनेक ऐसे वाक्य हैं जिनका सुभाषितों की पद्धति से उपयोग होता है, जैसे :- "नायमात्मा बलहीनेन लभ्य । अहमिन्द्रो न पराजिग्ये। स्वर्गकामो यजेत। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। यानि अस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि" इत्यादि। पुराणों और रामायण, महाभारत, के सुभाषितो के स्वतंत्र सग्रह अब प्रकाशित हो चुके हैं। सुप्रसिद्ध सुभाषित सग्रहों में भर्तृहरि (7 वीं शती) के नीतिशतक, वैराग्यशतक और शृंगारशतक में कुछ सुभाषित पूर्वकालीन ग्रथों से संकलित हुए हैं। संभव है कि कुछ पद्य अन्य अज्ञात कवियों के काव्यों से सकलित और कुछ स्वयं भर्तृहरिविरचित होंगे। सुभाषित संग्रहात्मक ग्रंथों का एक विशेष गुण है कि उनमें अनेक अज्ञात कवियों के इधर उधर बिखरे हुए मनोहर स्फुट पद्य सुरक्षित रहे, साथ ही कुछ कवियों के नाम भी। भोजराज के सभाकवियों का चित्रण, नाम तथा पद्य, सूक्तिग्रन्थों के कारण ही उपलब्ध होता है। उसी प्रकार,

"भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकै क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक ।।"

इस अज्ञात-कर्तृक एकमात्र सुभाषित के कारण उपलब्ध भासनाटकों का ज्ञान हुआ अन्यथा वे सारे (13) नाटक अज्ञातकर्तृक नाटकों की नामावली में जमा हो जाते।

प्राचीन सुभाषित संग्रह :-

सुभाषित - सं. विद्याधर। ई. 12 वीं शती। बंगाल में मालदा जिले के निवासी। श्लोक- 1739।

सदुक्तिकर्णामृत - सं. श्रीधरदास। ई. 13 वीं शती। श्लोक- 2380।

सूक्तिमुक्तावली- सं. जल्हण। ये देवगिरी (महाराष्ट्र) के यादवंशीय राजा कृष्ण (ई. 13 वीं शती) के हस्तिवाहिनी पति थे। इन्होंके नाम भानुकवि ने यह संग्रह बनाया है।

प्रसन्नसाहित्यरत्नाकर- सं. नन्दन पंडित ई 15 वीं शती।

शार्ङ्गधरपद्धति- सं. शार्ङ्गधर। ई 14 वीं शती। श्लोक 4616।

सुभाषितावली- सं. वल्लभदेव। काश्मीरनिवासी। ई 15 वीं शती। श्लोक- 3528।

पद्यावली- सं. रूपगोस्वामी। इसमें कृष्ण परक 386 श्लोकों का संग्रह है।

सूक्तिरत्नहार- सं. कलिंगराय। ई. 14 वीं शती। **सूक्तिरत्नाकर**- सं. सिद्धचन्द्रमणि। ई 13 वीं शती। **प्रस्तावरत्नाकर**- स हरिदास ई. 16 वीं शती।

सुभाषितहारावली. सं. हरिदास। **सूक्तिसुन्दर**- सं. सुंदरदेव ई. 17 वीं शती। **पद्यतरंगिणी**- सं. व्रजनाथ। **पद्यवेणी**- सं. वेणीदत्त ई. 17 वीं शती। **पद्यरचना**- सं. लक्ष्मणभट्ट अकोलकर, ई. 17 वीं शती। श्लोक- 756। **पद्यामृततरंगिणी**- सं. हरिभास्कर, ई. 17 वीं शती। श्लोक 301।

श्लोकसंग्रह- सं. मणिराम दीक्षित। 17 वीं शती श्लोक 16,06।

शृंगारालाप- स. रामयाज्ञिक। ई. 16 वीं शती। इस में शृंगारमय 1 सहस्र से अधिक श्लोकों का संग्रह है।

सूक्तिमालिका- सं. नारोजी पंडित। ई. 16 वीं शती। श्लोक-- एक सहस्र से अधिक, जिनमें 238 श्लोक दशावतार वर्णन परक हैं।

विद्याधरसहस्रक- सं. विद्याधर मिश्र। मिथिलानिवासी। **पद्यमुक्तावली**- सं घाशीराम (2) गोविंदभट्ट।

सुभाषित सुधानिधि- सं सायणाचार्य। ई 14 वीं शती। श्लोक 11181।

पुरुषार्थ-सुधानिधि- सं. सायणाचार्य। इसमें महाभारत, पुराणों उपपुराणों के सुभाषितों का संकलन तथा आख्यानो का संक्षेप एकत्रित किया है। अध्यायसंख्या- धर्मस्कन्ध- 45, अर्थस्कन्ध 23, कामस्कन्ध-14, मोक्षस्कन्ध- 191, **पद्यावली**- स. मुकुंदकवि, (2) विद्याभूषण, (3) रूपगोस्वामी।

प्रसतावचिन्तामणि- स. चंद्रचूड। **प्रस्तावतरंगिणी**- सं श्रीपाल। **प्रस्तावमुक्तावली**- स केशवभट्टी।

प्रस्तावसारसंग्रह- सं. रामशर्मा। **प्रस्तावसार**- स. साहित्यसेन।

सुभाषितकौस्तुभ- सं. वेंकटाध्वरी। **सुभाषितावली**- सं सकलकीर्ति। **सुभाषितरत्न कोश**- सं. कृष्णभट्ट। **सुभाषितरत्नावली**- स. उमामहेश्वरभट्ट।

सारसंग्रह- सं. शम्भुदास। **सारसंग्रहसुधार्णव**- सं. भट्टगोविंदजित्।

सुभाषितनीति- स. वेंकटनाथ। सुभाषितपदावली। स श्री निवासाचार्य। **सुभाषितमंजरी**- स चक्रवर्ती वेंकटाचार्य। **सुभाषितसर्वस्व**- सं गोपीनाथ। **सूक्तिवारिधि**- सं. पेदुभट्ट।

सूक्तिमुक्तावली- सं विश्वनाथ। **सूक्तावली**- सं लक्ष्मण। **सुभाषितसुरद्रुम**- सं (1) केलाडी बसवप्पानायक (2) खंडेराय बसवयतीन्द्र।

सुभाषितरत्नाकर- सं. (1) मुनिवेदाचार्य, (2) कृष्ण (3) उमापति, (4) के.ए. भाटवडेकर।

सुभाषितरंगसार- सं. जगन्नाथ। **सभ्यालंकरण**- सं गोविंदजित्। **बुधभूषण**- छत्रपति संभाजी (शिवाजी महाराज के पुत्र)

सभ्यभूषणमंजरी- सं. गौतम। **पद्यतरंगिणी**- सं. व्रजनाथ।

जैन संस्कृत साहित्य के सुभाषित संग्रह प्राय धार्मिक तथा नैतिक सदाचार एवं लोकव्यवहार विषयक हैं। इन में उल्लेखनीय ग्रंथ हैं :- अमितगतिकृत सुभाषित रत्नसन्दोह। अर्हद्दासकृत भव्यजन- कण्ठाभरण। सोमप्रभकृत सूक्तिमुक्तावली काव्य। नरेन्द्रप्रभकृत विवेकपादप तथा विवेककलिका। मल्लिषेणकृत सज्जनचित्तवल्लभ। सोमप्रभकृत शृंगार-वैराग्यतरंगिणी। राजशेखरकृत उद्देश्यतरंगिणी। हरिसेनकृत कर्पूरप्रकर। दर्शन विजयकृत अन्योक्तिशतक। हंसविजयगणिकृत अन्योक्तिमुक्तावली। धनराजकृत धनदशतकत्रय (विषय-शृंगार, नीति, वैराग्य) तेजसिंहकृत दृष्टान्तशतक।

ये सारे सुभाषित ग्रंथ एककर्तृक हैं, अर्थात् इनमें अन्यान्य कवियों के काव्यों का संग्रह नहीं है। श्रीशंकराचार्यकृत विवेकचूडामणि का स्वरूप अध्यात्मपरक सुभाषितसंग्रह के समान ही है। जगन्नाथपंडितराजकृत भामिनीविलास में उनके शृंगार, करुण, शान्त रसमय तथा अन्योक्तिपरक सुभाषितों का संग्रह मिलता है। विठ्ठलपंत (विठोबा अण्णादप्तरदार) कृत सुश्लोकलाघव में महाराष्ट्र के अनेक ऐतिहासिक संतों की प्रशंसा वैशिष्यपूर्ण शैली में की है। श्लोक संख्या 500 से अधिक। श्री. ग जो. जोशी कृत काव्यकुसुमगुच्छ, श्री. अर्जुनवाडकर कृत कण्टकांजलि, महालिंगशास्त्रीकृत व्याजोक्तिरत्नावली, और द्राविडार्यासुभाषित

सप्तप्ति। डॉ. चिन्तामणराव देशमुखकृत गान्धीसूक्तिमुक्तावली (गांधीजी की अंग्रेजी सदुक्तियों का पद्यानुवाद), डॉ. कुर्तकोटी शंकराचार्यकृत समत्वगीत, और श्रीधर भास्कर वर्णेकर कृत मन्दोर्मिमाला इत्यादि एककर्तृक सुभाषितों के विविध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। आधुनिक काल में काशीनाथ पांडुरंग परब द्वारा संपादित सुभाषितरत्नभाण्डागार यह ग्रंथ अंतिम सुभाषितसंग्रह माना जाता है। इस में 7 प्रकरणों में दस हजार से अधिक विविध विषयों पर प्राचीन कवियों द्वारा रचित श्लोकों का संग्रह हुआ है। पूर्वकालीन प्रायः सभी सुभाषितसंग्रहों का इसके संपादन में सहाय लिया गया है। अब तक इसकी 8 आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

सुभाषित वाङ्मय में अब आवश्यकता है, 17 वीं शती के बाद हुए कवियों के सुभाषितों का संग्रह करने की। प्राचीन सुभाषित संग्रहों ने प्राचीन अज्ञात कवियों की स्मृति, उनके श्लोकों के रूप में जीवित रखे। आधुनिक कालखंड में प्रादेशिक भाषाओं का विशेष महत्त्व और प्रादेशिक साहित्य का बोलबाला होने के कारण आधुनिक संस्कृत साहित्य उपेक्षित रहा है। ऐसी अवस्था में अर्वाचीन संस्कृत सुभाषितों का बृहत्संग्रह संपादित होना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

9 कोशवाङ्मय

सुभाषितसंग्रहों के समान संस्कृति वाङ्मय के क्षेत्र में शब्दकोश, हस्तलिखित संग्रहकोश, संस्कृत शब्द और उनके अन्यभाषीय पर्याय कोश, अन्यान्यशास्त्रों के परिभाषिक शब्दकोश, महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की अकारादिवर्णानुक्रमणिका इत्यादि विविध प्रकार का कोश वाङ्मय प्राचीन काल से आधुनिक काल तक यथावसर निर्माण होता रहा। चिकित्सात्मक एवं शोधात्मक कार्य करने वाले विद्वानों का कार्य, ऐसे कोशों से सुगम होता है। यह निर्विवाद है कि संस्कृत कोशवाङ्मय का प्रारंभ "निघंटु"से हुवा। निघण्टु की रचना वैदिक मंत्रों के स्पष्टीकरण के लिए की गई। निघंटु में वेदोक्त केवल दुर्बोध एवं आर्ष शब्दों का संग्रह मिलता है। यास्काचार्य का निरुक्त (जो वेदांग माना जाता है) प्रस्तुत निघण्टु का ही भाष्य है। इसी प्रकार कविजनों को काव्यरचना में उपयोगी कोशों की रचना मुरारि, मयूर, वामन, श्रीहर्ष, बिल्हण इत्यादि साहित्यिकों ने की। श्रीहर्षकृत श्लेषार्थपदसंग्रह उत्तरकालीन श्लेषप्रिय कवियों को अवश्य सहायक हुआ होगा।

मध्य एशिया में काशगर में एक आठ पृष्ठों का कोश प्राप्त हुआ है। इसका लेखक कोई बौद्ध पंडित माना जाता है जिसका काल और नाम विदित नहीं; परंतु यही अज्ञातकर्तृक एव अज्ञातनामा अपूर्ण ग्रंथ आधुनिक ऐतिहासिकों के मतानुसार संसार का प्रथम कोश माना जाता है। अन्यान्य टीका ग्रंथों में कात्यायन कृत नाममाला, वाचस्पतिकृत शब्दार्णव, विक्रमादित्यकृत संसारावर्त, व्याडिकृत उत्पलिनी इत्यादि प्राचीन कोशों के नाम मिलते हैं, परंतु सपूर्ण भारत में अत्यंत लोकप्रिय कोश है अमरसिंहकृत नामलिंगानुशासन, जो "अमरकोश" नाम से सुप्रसिद्ध है। अनुष्टुप् छंद में लिखे हुए प्रस्तुत कोश के तीन काण्डों में दस हजार शब्दों का संग्रह मिलता है। नाम के साथ ही उसके लिंग का परिचय इस कोश की विशेषता है। ई छठी शताब्दी के पूर्व ही इस कोश का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका था। आज तक इस पर पचास से अधिक टीकाएं लिखी गयीं, जिन में क्षीरस्वामीकृत (ई 11 वीं शती) अमरकोशोद्घाटन और भानुजी भट्ट (ई 17 वीं शती) कृत "रामाश्रमी" टीका सर्वमान्य है। अमरकोश के प्रभाव से अनेक पद्यात्मक शब्दकोशों की निर्मिती प्रायः 7 वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी तक होती रही। कुछ प्रमुख कोश .—

हारावली (या त्रिकाण्डकोश) - ले पुरुषोत्तम देव। ई 7 वीं शती।

धनंजयनिघण्टु (या नाममाला) ले धनंजय। 9 वीं शती। **अनेकार्थनाममाला** - ले धनंजय।

अभिधानरत्नमाला - ले हलायुध। ई 10 वीं शती। **वैजयन्ती** - ले. यादवप्रकाश। 11 वीं शती।

शब्दकल्पद्रुम - ले केशवस्वामी। 12 वीं शती। **विश्वप्रकाश** - ले महेश्वर। 12 वीं शती।

नानार्थरत्नमाला - ले. अभयपाल। 12 वीं शती। **अभिधानचिन्तामणि** - ले. हेमचंद्र। 12 वीं शती।

(हेमचंद्र ने अनेकार्थसंग्रह, देशीनाममाला और निघण्टुशेष नामक अन्य तीन कोश लिखे हैं।)

नानार्थरत्नमाला - ले. इरुगपद दण्डाधिनाथ। 14 वीं शती। **नानार्थशब्दकोश** - ले मेदिनीकर - 14 वीं शती।

शब्दचन्द्रिका और शब्दरत्नाकर - ले. वामनभट्ट। 15 वीं शती। **सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव** - ले पद्मसुंदर। 16 वीं शती।

कल्पद्रुम - ले. केशव देवज्ञ। 17 वीं शती। **नामसंग्रहमाला** - ले अप्पय्य दीक्षित। 17 वीं शती।

ये और इस प्रकार के अन्य प्राचीन शब्दार्थ-कोशों में पर्याय शब्द भी संस्कृत भाषीय ही होते हैं। उन में एक वस्तुवाचक समानार्थ अनेक शब्दों का एवं एक एक शब्द के अनेक अर्थों का संग्रह मिलता है। अन्यान्य कोशकारों ने शब्दों की व्यवस्था अन्यान्य पद्धति से की है, जैसे किसी कोश में लिंगानुसार, किसी में शब्द की अक्षरसंख्या के अनुसार, किसी में अक्षरक्रमानुसार तो किसी में पर्यायी शब्दों की संख्या के अनुसार शब्दव्यवस्था की गयी है। इन कोशों के अतिरिक्त एकाक्षरकोश, द्विरूपकोश,

त्रिरूपकोश, इत्यादि अज्ञातकर्तृक कोश लिखे गये हैं। **महाव्युत्पत्तिकोश** (ले. अज्ञात) में बौद्ध धर्म में प्रचलित विशिष्ट सज्ञाओं का स्पष्टीकरण मिलता है। 16 वीं शताब्दी में **पारसी-प्रकाश** नामक फारसी शब्दों के संस्कृत पर्यायों का कोश लिखा गया। इस के पहले कर्णपूर ने संस्कृत- पारसिक प्रकाश की रचना की थी। शाहजहां के समकालीन वेदांगराय ने ज्योतिष विषयक शब्दों का कोश **फारसीप्रकाश** नाम से लिखा।

शिवाजी महाराज ने अपने सभापण्डित रघुनाथ हणमंते द्वारा **राजव्यवहारकोश** की रचना करवायी। इस पद्यात्मक कोश में तत्कालीन मुसलमानी राज्यों में प्रचलित फारसी राजकीय शब्दों के संस्कृत पर्याय दिये हैं। भाषाशुद्धि के कार्य में प्रथम प्रयास यही रहा। इस राज्यव्यवहार कोश का यही विशेष महत्त्व है। संस्कृत भाषा के प्रचार का ऱ्हास आधुनिक काल में होने लगा, तब से संस्कृत के अन्य भाषीय पर्याय देने वाले अकारादिवर्णानुसार सूचीप्राय कोशों की रचना का प्रारभ हुआ। इस प्रकार के कुछ उल्लेखनीय कोश :-

डिक्शनरी ऑफ बेंगाली ॲण्ड संस्कृत - ले. ग्रेब्ज हाघून। 1833 में लंदन में मुद्रित।

संस्कृत - इंग्लिश डिक्शनरी - ले बेन फे। 1866 में लंदन में मुद्रित।

संस्कृत ॲण्ड इंग्लिश डिक्शनरी - ले रामजसन। 1870 में लंदन में मुद्रित।

प्रॅक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी - ले. आनंद-राम बरुआ। कलकत्ता - ई. 1877।

संस्कृत - इंग्लिश डिक्शनरी - ले केपलर। ट्रान्सबर्ग - 1891।

संस्कृत- इंग्लिश डिक्शनरी - ले मोनियर विल्यम्स।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी - 1899। इस कोश की सुधारित आवृत्तियां 1956 में दिल्ली से और 1957 में लखनऊ से प्रकाशित हुईं।

सरस्वतीकोश - ले. जीवराम उपाध्याय। मुरादाबाद - 1912

स्टूडण्टस् इंग्लिशसंस्कृत डिक्शनरी - ले. वामन शिवराम आपटे। मुबई - १९१५।

प्रॅक्टिकल संस्कृत - इंग्लिश-डिक्शनरी - ले वामन शिवराम आपटे। मुबई - 1924। इसी महत्त्वपूर्ण कोश की सुधारित आवृत्ति प्रकाशित करने का कार्य पुणे की प्रसाद प्रकाशन संस्था ने किया। सन 1957 में प्रथम खण्ड और 58 में द्वितीय खंड का प्रकाशन हुआ।

संस्कृत- हिंदीकोश - ले द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी। लखनऊ-1917।

संस्कृत- हिंदीकोश - ले विश्वंभरनाथ शर्मा। मुरादाबाद- 1924।

प्रॅक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी - ले मैक्डोनेल। लंदन- 1924।

पद्मचंद्रकोश - ले गणेशदत्त शास्त्री। लाहोर- 1925

संस्कृत - गुजराती शब्दादर्श - ले गिरिजाशकर मेहता। अहमदाबाद-1924।

सार्थ- वेदार्थनिघण्टु- ले शिवरामशास्त्री शित्रे यह वैदिक-मराठी कोश है।

आदर्श हिन्दी- संस्कृत कोश- ले रामस्वरूप शास्त्री। वाराणसी-1936।

आधुनिक- संस्कृत- हिंदीकोश- ले. ऋषीश्वरभट्ट। आग्रा-1955।

संस्कृत शब्दार्थ- कौस्तुभ- ले द्वारकाप्रसादशर्मा और तारिणीश झा। प्रयाग-1957।

व्यवहारकोश- ले सदाशिव नारायण कुलकर्णी। नागपूर-1951। इस कोश की विशेषता यह है की इसमें लौकिक व्यवहार में उपयुक्त राजकीय, यांत्रिक, औद्योगिक शब्दों के संस्कृत पर्याय हिंदी, मराठी और अग्रजी शब्दों के साथ दिये गये हैं। कोशकार ने अनेक व्यवहारोपयुक्त अग्रेजी शब्दों के संस्कृतपर्याय व्युत्पत्ति की प्रक्रिया के अनुसार, स्वयं निर्माण किये हैं, जो प्राचीन कोशों में नहीं मिलते। आधुनिक नानाविध शास्त्रों के विकास के कारण यूरोपीय भाषाओं में अगणित पारिभाषिक शब्दों को निर्मिति हुई। संस्कृत या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में उनके पर्याय न होने के कारण जो समस्या भारतीय भाषाक्षेत्र में निर्माण हुई थी, उसे निवारण करने का कार्य, सुप्रसिद्ध कोशकार डॉ. रघुवीर ने किया। अपने आंग्लभारतीय कोश में, संस्कृत भाषा की व्युत्पत्तिप्रक्रिया के अनुसार नए पारिभाषिक शब्दों की निर्मिति उन्होंने की। इस के लिए उन्होंने स्वयं अनेक भाषाओं का अध्ययन किया था। डॉ. रघुवीर ने (1) अर्थशास्त्र शब्दकोश (2) आंग्ल-भारतीय पक्षिनामावली, (3) आंग्लभारतीय प्रशासन शब्दकोश, (4) खनिज अभिज्ञान, (5) तर्कशास्त्र पारिभाषिक शब्दावली (6) वाणिज्य शब्दकोश, (7) सांख्यिकी शब्दकोश इत्यादि शब्दकोशों के द्वारा संस्कृत भाषा की शब्दसंपदा में सहस्त्रावधि नवीन शब्दों का योगदान दिया है। शासनकर्ताओं की अनास्था के कारण डॉ. रघुवीर के शब्दकोश, प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी नहीं हो सके।

इन शब्दकोशों के अतिरिक्त विविध शास्त्रीय कोश अर्वाचीन काल में मिर्नाण हुए जैसे -

कोश	-	कर्ता
धातुरूपचन्द्रिका	-	व्ही व्ही उपाध्याय
धातुरत्नाकर (आठ भागो में)	-	श्रीधरशास्त्री पाठक
अष्टाध्यायी शब्दानुक्रमणिका	-	श्रीधरशास्त्री पाठक
महाभाष्य शब्दानुक्रमणिका	-	--"--
संस्कृतधातुरूपकोश	-	कृ भा वीरकर
सस्कृत शब्दरूपकोश	-	--"--
तिङन्तार्णवतरणिकोश	-	--"--
प्रत्ययकोश	-	गुडेराव हरकरे (हैदराबाद निवासी)।
न्यायकोश	-	भीमाचार्य झलकीकर।

मीमांसाकोश (चार भाग) - केवलानद सरस्वती

निघण्टुमणिमाला (या वैदिककोश) - मधुसूदन विद्यावाचस्पति।

गोज्ञानकोश - प. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर। उसमें गोमाता विषयक वैदिक मत्रों का सकलन किया है।

ऐतेरय ब्राह्मण-आरण्यक कोश - केवलानद सरस्वती।

कौषीतकी ब्राह्मण- आरण्यक कोश -

वैदिक कोष - (ब्राह्मण-वाक्यो का संग्रह) - हसराज।

सामवेदपादनाम् अकारादिवर्णानुक्रमणिका- स्वामी- विश्वेश्वरानद और स्वामी नित्यानंद।

धर्मकोश - (व्यवहारकाण्ड)-3 भागो में तर्कतीर्थ- लक्ष्मणशास्त्री जोशी।

धर्मकोश - (उपनिषत्कांड) (चार भागो मे)- तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी।

स्मृतितत्त्वम् रघुनंदन भट्टाचार्य। इसमें 28 स्मृतियो का सग्रह है।

स्मृतीना समुच्चय - 27 स्मृतियों का सग्रह।

पुराणविषय अनुक्रमणिका यशपाल टडन।

पुराणशब्दानुक्रमणिका - (3 भागों में। डी आर दीक्षित)।

महाभारतशब्दानुक्रमणिका -

गणितीय कोश - डॉ व्रजमोहन।

भरतकोश- नाट्यसगीत विषयक पारिभाषिक शब्द कोश।

भारतीय राजनीति कोष (कालिदास खंड) ले- वेंकटशशास्त्री जोशी।

वैदिकपदानुक्रमकोष (सात भागो में) ले विश्वबन्धुशास्त्री।

सर्वतंत्रसिद्धान्त- पदार्थ-लक्षणसग्रह-

वैदिकशब्दार्थ पारिजात-

कौटिलीय अर्थशास्त्र पदसूची/ 3 भागो में-

पुरातन जैनवाक्यसूची -

बृहत्स्तोत्ररत्नाकर-500 स्तोत्रो का संग्रह। जैनस्तोत्र रत्नाकर-

कहावत रत्नाकर-सस्कृत हिंदी और अग्रेजी कहावतो का संग्रह।

शब्दकोश निर्मिति के क्षेत्र में पुणे के डेक्कन कॉलेज द्वारा एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम सन 1942 से डॉ. सुमंत मंगेश कत्रे के नेतृत्व में चलता रहा है। इस महान् कोश में ई-पू 14 वीं शती से ई-18 वीं शती तक सस्कृत भाषा में निर्मित सर्वांगीण वाङ्मय प्रकार के दो हजार ग्रंथों से पांच लक्ष शब्दो का सग्रह, उनकी व्युत्पत्ति, यथाकाल हुआ अर्थान्तर तथा विविध ग्रन्थों में उनके प्रयोग इत्यादि अनेक प्रकार की जानकारी के साथ, किया जा रहा है। इस कार्य में यूरोप तथा जापान के अनेक विद्वान विना वेतन सहकार्य देते है। कोशनिर्मिति की दिशा में आधुनिक काल में जो विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, इस प्रकार का कार्य प्राचीन काल में नहीं हो सका। वह कार्य याने प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथसग्रहों की सूचियां बनाना। जर्मन पंडित मैक्समूलर ने कहा है कि सारे ससार में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ हस्तलिखित ग्रंथों में विपुल ज्ञानभंडार भरा हुआ

है। अपने "इंडिया, व्हाट इट कॅन टीच अस" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के द्वारा उन्होंने भारत के हस्तलिखित ग्रन्थभांडारों की ओर विद्वानों का चित्त आकृष्ट किया। उस प्रकार की प्रेरणा के कारण कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीरूप कोश निर्माण करना प्रारंभ किया। मैक्समूलर का ध्यान भारत के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथभांडारों पर जब केन्द्रित हुआ, उसके पहले की मध्ययुगीन बर्बर प्रशासकों के विध्वंसक आक्रमणों में, अगणित ग्रंथों का नाश हो चुका था। सन् 1784 में कलकत्ते में रायल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हो कर संस्कृत पांडुलिपियों का संचयन प्रारंभ हुआ। इस सोसाइटी के द्वारा सर विल्यम् जोन्स और उनकी सुविद्य पत्नी ने सन 1807 में, संस्कृत ग्रंथ संग्रह की प्रथम सूची प्रकाशित की। सर विल्यम जोन्स संस्कृत के महान् जिज्ञासु थे। उनके संस्कृत अध्ययन की कहानी बडी मनोरंजक एवं स्फूर्तिप्रद है। सन 1807 में हेनरी टॉमस कोलब्रूक को एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल नामक संस्था का अध्यक्षपद प्राप्त हुआ। उनके द्वारा संगृहीत सारे हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथ, लंदन के इंडिया ऑफिस में सुरक्षित रखे गये। इस कार्य के लिए उन्होंने अपने निजी धन का भी व्यय किया। इसी सोसाइटी द्वारा सन 1817 से 1834 तक पं हरिप्रसाद शास्त्री के नेतृत्व में ग्रन्थसूची के प्रथम सात भाग सिद्ध हुए। अग्रिम भागों का संपादन श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती और चन्द्रसेन गुप्त द्वारा सन 1945 तक हुआ।

डॉ. बूल्हर ने (सन 1837-1898) पैरीस, लंदन, ऑक्सफोर्ड आदि स्थानों पर संस्कृत ग्रंथों की जानकारी प्राप्त की। मैक्समूलर की प्रेरणा से वे भारत में आये। मुंबई मे शिक्षा विभाग में उच्चाधिकार पर वे नियुक्त हुए। बॉम्बे सस्कृत सीरीज नामक ग्रन्थमाला का प्रकाशन उन्होंने शासकीय सहायता से शुरू किया। यह ग्रन्थमाला संस्कृत पंडितों के लिए उपकारक हुई। सन 1866 में मुबई, मद्रास और बगाल के प्रशासकों द्वारा शोधकार्य को प्रोत्साहन दिया गया। डॉ बूल्हर, मुंबई राज्य की शोधसंस्था के अध्यक्ष हुए। उन्होंने 2300 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों का संशोधन एवं सपादन करवाया। गुजरात, काठियावाड और सिध इन प्रदेशों में डॉ बूल्हर के नेतृत्व में हस्तलिखित संस्कृत ग्रथों का सकलन और सशोधन हुआ। सन 1871-83 के बीच मुबई से उन ग्रथों का सूचीपत्र प्रकाशित हुआ। सन 1875 में संस्कृत ग्रथों के शोधकार्य के संबंध में डॉ बूल्हर का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिवृत्त प्रकाशित हुआ। राजस्थान और मध्यभारत के संस्थानों से अनेक पाडुलिपिया मंगवा कर उनका प्रकाशन सन 1887 में डॉ बूल्हर ने करवाया। उन्हीं से प्रेरणा पा कर कुछ विद्वान इस अपूर्व कार्य में प्रवृत्त हुए। श्रीराजेन्द्रलाल मिश्र ने "नोटिसेस ऑफ संस्कृत मॅन्युस्क्रिप्ट्स्" नामक 9 खण्डों का प्रकाशन किया। हरप्रसाद शास्त्री ने अग्रिम दो खंड प्रकाशित किए।

विंटरनिटस् ने बोडलियन लाइब्रेरी के संग्रह की सूची करने का कार्य शुरू किया। डॉ. कीथ ने डॉ स्टीन की "इंडियन इन्स्टिट्यूट" (ऑक्सफोर्ड) में सुरक्षित संग्रह की सूची तैयार की जो 1903 में ऑक्सफोर्ड के क्लेरेन्डन प्रेस द्वारा मुद्रित हुई। बोडलियन लाइब्रेरी के पालि ग्रंथों की सूची करने का कार्य फ्रेंकफर्टर ने सन 1882 में पूर्ण किया। डॉ वेबर (ई 1825-1901) ने बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय के सस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की बृहत्सूची तैयार की और डॉ बूल्हर द्वारा बर्लीन पुस्तकालय में प्राप्त हुए 500 जैन हस्तलिखित ग्रथों का सूक्ष्म अध्ययन कर जैन वाङ्मय पर प्रकाश डाला। सन 1869 में केंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज के ग्रंथसग्रह की बृहत्सूची ऑफ्रेट ने तैयार की। सन 1870 में जेम्स डी अलीज् ने कोलम्बो मे भारतीय संस्कृत ग्रंथों की सूची प्रकाशित की। उसी वर्ष एन.सी.बर्नेल ने लदन के इडिया ऑफिस के सस्कृत ग्रन्थो की सूची का प्रकाशन किया। सन 1880 में क्लासीफाईड इंडेक्स टू दि सस्कृत मॅन्युस्क्रिप्टस् इन दि पॅलेस अॅट् तजौर" यह खंड बर्नेल ने लदन में प्रकाशित किया। ज्यूलियस एगलिंग ने सन 1887 और 1896 में लदन में दो सूचिया प्रकाशित की। 1935 में कीथ और टॉमस की सूची और ओल्डेनबर्ग की सूची का प्रकाशन लंदन से हुआ। लंदन के इंडिया ऑफिस मे आज भी इस प्रकार का कार्य चालू है। सन 1883 में जोसिल बडाल और राइस डेव्हिड्स ने केंब्रिज विश्वविद्यालय के सस्कृत और पाली ग्रन्थो की सूची प्रकाशित की। सन 1874 में मध्य भारत के सस्कृत ग्रंथों की सूची डॉ एफ. कीलहॉर्न ने प्रकाशित की। उन्होंने सन 1877-73 में सरकार द्वारा खरीदे गये हस्तलिखित ग्रंथों की सूची तैयार की।

मुंबई राज्य के हस्तलिखितों की सूची श्री काशिनाथ कुंटे ने सन 1880-81 मे तैयार की, उसका प्रकाशन 1881 में कीलहॉर्न ने करवाया। पीटर्सन ने की बृहत्सूची 1883 और 1898 में छः खंडों में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त उन्होंने अल्वर नरेश के संग्रह की सूची भी सिद्ध की। पीटर्सन के बाद यह कार्य डॉ. रामकृष्ण गोपाल भांडारकर ने सम्हाला। इस संबंध में उनका प्रतिवृत्त सन 1897 में मुंबई से प्रकाशित हुआ। डॉ. भांडारकर ने 1917 से 1929 तक की अवधि में ओरिएंटल लाइब्रेरी (पुणे) के हस्तलिखितों की सात सूचियां प्रकाशित की। श्री हरि दामोदर वेलणकर ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह की सूचिया तैयार की, जो सन 1926, 28 तथा 30 में प्रकाशित हुई।

सन 1880 में तंजोर के सरस्वती महल के हस्तलिखितों की सूची बर्नेल ने की। बाद में यह कार्य पी.पी.एस शास्त्री ने सम्हाला। उन्होंने तैयार की हुई बृहत्सूची 19 खंडों में प्रकाशित हुई। तंजौर के सरस्वतीमहल में आज 25 हजार हस्तलिखित ग्रंथ सुरक्षित हैं। दक्षिण भारत में ग्रंथसूची का कार्य गुस्ताव ओपर्ट ने शुरू किया। उनके सपादित दो खंड सन 1880 और

1885 में प्रकाशित हुए। मैसूर और कूर्ग राज्य में ग्रन्थसूची का संपादन कार्य लेविज राईस ने किया। 1884 में उनकी सूची बंगलोर में प्रकाशित हुई। मद्रास सरकार की ओरिएंटल मॅन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी की ओर से सन 1893 में प्रथम सूची का प्रकाशन हुआ। यह कार्य बाद में शेषगिरी शास्त्री ए. शंकरन् आदि विद्वानों के संचालकत्व में चालू रहा। अभी तक इस लाइब्रेरी द्वारा 30 से अधिक सूचीखंड प्रकाशित हुए।

अड्यार (मद्रास के अन्तर्गत) थिओसोफिकल् सोसाइटी का जागतिक केंद्रस्थान है। इस जागतिक संस्था का अपना एक विशाल हस्तलिखित ग्रंथसंग्रह है। सन् 1920 और 28 में "ए केटलॉग ऑफ दि सस्कृत मॅन्युस्क्रिप्टस्" नाम के दो खण्ड प्रकाशित हुए। 1942 में डॉ कुन्हन् राजा और के माधवकृष्ण शर्मा ने वैदिक भाग की सूची प्रकाशित की और 1947 में व्ही. कृष्णम्माचार्य ने व्याकरण भागों की सूची तैयार की। दक्षिण भारत की कुछ सूचियों का प्रकाशन 1905 में हल्डन ने किया। सन 1895 से 1906 तक कलकत्ता संस्कृत लाईब्रेरी के हस्तलिखित सग्रह ही सूची प हृषीकेश शास्त्री और शिवचन्द्र गुंई ने तैयार की। कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 1930 में असमीज मॅन्यूक्रिप्ट नामक दो सूचीखण्ड प्रकाशित हुए जिन में सस्कृत ग्रंथों का उल्लेख भरपूर मात्रा में हुआ है। रायबहादुर हीरालाल शास्त्री ने पुराने "मध्यप्रदेश और बेरार" के हस्तलिखितों का प्रतिवृत्त तैयार किया था, जिसका प्रकाशन सन 1926 में नागपूर में हुआ। वाराणसी के सरस्वती भवन में सवालाख से अधिक पाण्डुलिपियों का महान् सग्रह है। सन 1953 से 58 तक उनमें से 1600 ग्रन्थों की सूची आठ खडों में प्रकाशित हुई। इलाहाबाद की *गंगानाथ झा शोधसंस्था द्वारा भी अनेक सूचीखंडों का प्रकाशन हुआ है।* जम्मू-काश्मीर के रघुनाथ मंदिर के ग्रन्थालय के हस्तलिखितों की सूची डॉ स्टीन द्वारा तैयार हुई। सन 1894 में वह मुंबई में प्रकाशित हुई। काश्मीर नरेश के पुस्तकालय की सूची तैयार करने का काम प रामचंद्र काक और हरभट्ट शास्त्री ने किया। सन 1927 में उसका प्रकाशन पुणे में हुआ। राजस्थान और मध्यभारत के ग्रंथसंग्रहों का प्रतिवृत्त डॉ भांडारकर ने तैयार किया। 1907 में वह मुंबई में प्रकाशित हुआ। बडोदा की सेंट्रल लाईब्रेरी की सूची जी के गोडे और के एस रामस्वामी शास्त्री ने तैयार की। सन 1925 में गायकवाड ओरिएंटल सीरीज् की ओर से उसका प्रकाशन हुआ। डॉ काशीप्रसाद जायसवाल और ए. बेनर्जी ने मिथिला के संग्रह की सूची तैयार की, जिसका प्रकाशन सन 1927 से 40 तक की अवधि में, चार खंडों में बिहार-उडीसा-रीसर्च सोसायटी ने किया। उज्जयिनी की ओरिएंटल मॅन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी द्वारा सन 1936 और 1941 में सूची का प्रकाशन हुआ। पाटण (गुजरात) के जैन ग्रंथों की सूची का सपादन सी डी दलाल ने प्रांरभ किया और एल बी गान्धी ने वह संपूर्ण किया। गायकवाड ओरिएटल सीरीज् ने अपनी प्रथम सूची का प्रकाशन 1937 में बडोदा में किया। 1942 में द्वितीय सूची प्रकाशित हुई। जैसलपीर राज्य के ग्रंथालय की सूची भी गायकवाड ओरिएंटल सीरीज द्वारा ही प्रकाशित हुआ। तिरूअनन्तपुर (त्रिवेंद्रम) के सरकारी पुस्तकालय की सूची आठ भागों में प्रकाशित हो चुकी है।

"कैटेलोगस कैटेलागोरम्"

19 वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में जिनकी विविध पाण्डुलिपियों की सूचियाँ प्रकाशित हुई उनमें उल्लिखित सभी ग्रंथों की सर्वंकष बृहत्तम सूची का सपादन करने का अपूर्व कार्य डॉ.आफ्रेट ने प्रारभ किया। सन 1891, 1896 और 1903 में इस के प्रथम तीन खड, कैटेलोगस कैटेलोगोर में नाम से लिपझिग (जर्मनी) में प्रकाशित हुए।

सन् 1935 ५ से ऑफ्रेट की सूची की सुधारित और संवर्धित आवृत्ति सपादित करने का कार्य, डॉ कुन्हन राजा और डॉ वे राघवन् इन प्रसिद्ध विद्वानो के नेतृत्व में मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रारभ हुआ। इस "न्यू केटलोगस केटेलोगोरम्" का प्रथम् खंड (जिस में केवल अकारादि नामक ग्रथो की ही प्रविष्टिया है) मद्रास युनिव्हर्सिटी सस्कृत सीरिज द्वारा सन 1949 में प्रकाशित हुआ।

हस्तलिखित ग्रंथों की सूची करने का यह कार्य सस्कृत वाङ्मय के इतिहास में सर्वथा अपूर्व है प्राचीन राजा महाराजाओं ने और मठाधिपतियों ने अपनी पद्धति के अनुसार अपने अपने स्थानों पर हस्तलिखित ग्रथो का सचयन किया। मुसलमानी शासन के प्रदीर्घ आपात काल में उनमें से अनेक स्थानों का विध्वस राज्यकर्ताओं की असहिष्णुता एव असंस्कृतता के कारण हुआ। फिर भी जो संग्रह सुरक्षित रहे, उन सभी में संचित वाङ्मयराशि के सूचीकोश करना एक राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य होना आवश्यक था। अभी तक कुछ महत्त्वपूर्ण कोशों तथा उनके स्वनामधन्य सपादकों तथा सस्थाओं का निर्देश मात्र इस प्रकरण में हुआ है। इन के अतिरिक्त जिन महानुभावों ने इस क्षेत्र में कार्य किया, उनमें एस जैकोबी व्ही फासबोल, जॉन. सी. नेसफील्ड, फ्रेड्रिक लेवीज, इत्यादि पाश्चात्य पंडितों का तथा उन्हीं की पद्धति से इस कार्य को चलाने वाले भारतीय विद्वानों में म.म गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पं देवीप्रसाद, डॉ श्याम सुंदरदास, डॉ. पितांबरदत्त, डॉ प्रबोधचंद्र, मुनि जिनविजय, रामशास्त्री, बागची, आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री, डॉ धर्मेन्द्र, पं. राधाकृष्ण, एच आर रगस्वामी अंय्यगार, के भुजबलीशास्त्री, पद्मभूषण डॉ. रा. ना. दांडेकर, इत्यादि अनेक कार्यकर्तोओं के नामों का कृतज्ञता से निर्देश करना आवश्यक है।

प्रकरण-13

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय

गत शताब्दी से मैक्समूलर, विंटरनिट्झ, कीथ, मेक्डोनेल इत्यादि यूरोपीय पंडितों ने संस्कृत वाङमय का समालोचन एवं विवेचन करने वाले अनेक समीक्षात्मक इतिहासग्रंथ निर्माण किये। इस प्रकार संस्कृत वाङमय का परामर्श लेने वाले वाङ्मयेतिहासात्मक ग्रंथ इस के पूर्व निर्माण नहीं हुए थे। इन यूरोपीय समीक्षकों ने प्राय· 16 वीं शताब्दी तक निर्माण हुए विशिष्ट ग्रंथो का समालोचन करते हुए संस्कृत वाङमय का परिचय दिया और उसका मूल्यमापन करने का प्रयत्न किया। कुछ समीक्षकों ने यूरोपीय वाङ्मय के साथ संस्कृत वाङमय की तुलना प्रस्तुत करते हुए, अपने अनुकूल प्रतिकूल अभिप्राय प्रकट किए। परतु इन समीक्षको ने प्राय. 16 वीं शती तक निर्मित ग्रंथकारों का ही परामर्श लिया। पंडितराज जगन्नाथ को संस्कृत वाङमय का अतिम प्रतिनिधि मानते हुए यह सारा विवेचन अथवा समीक्षण का कार्य इन विद्वानो ने किया।

यूरोपीय पंडितों का आदर्श सामने रखते हुए भारतीय विद्वानों ने भी इसी प्रकार के ग्रंथ बहुत बडी मात्रा में अग्रजी एवं हिंदी-प्रभृति प्रादेशिक भाषाओं में निर्माण हिए। परतु इन भारतीय समीक्षाकारों ने प्रायः यूरोपीय विद्वानों का अनुकरण मात्र किया। जगन्नाथ पंडित के पश्चात् संस्कृत वाङ्मय का प्रवाह कुंठित हुआ, सस्कृत भाषा मृतवत् होने के कारण सस्कृत पंडितो की वाङ्मय निर्माण करने की क्षमता नष्टप्राय हुई, इस प्रकार का प्रचार सर्वत्र हुआ। इस प्रचार की वास्तवता या अवास्तवता का परीक्षण किये बिना भारतीय विद्वानोंने भी संस्कृत वाङ्मय का परामर्श लिया गया।

जगन्नाथोत्तर काल में निर्मित साहित्य की ओर सस्कृतज्ञों का ध्यान आकर्षित न होने के कुछ कारण हैं जिनमें प्रमुख कारण यह है कि संस्कृत के विद्वान व्यास, वाल्मीकि, कालिदास बाणभट्ट जैसे प्राचीन साहित्यिकों की लोकोत्तर कलाकृतियों में ही निरतर रममाण रहे। उन स्वनामधन्य महासारस्वतों के अतिरिक्त अन्य साहित्यिकों एव शास्त्री-पंडितों द्वारा निर्मित वाङ्मय का अवगाहन या आलोडन करने की इच्छा उनमें कभी अकुरित नहीं हुई।

दूसरा उल्लेखनीय कारण यह भी कहा जा सकता है कि नवनिर्मित सस्कृत ग्रथों का मुद्रण एव प्रकाशन करने में किसी का सहकार्य न मिलने से नवनिर्मित साहित्य का प्रचार अत्यल्प मात्रा में हुआ। भारत के अन्यान्य प्रदेशों में रहने वाले सस्कृत लेखकों का परस्पर संपर्क न होने के कारण बहुत सारा प्रकाशित वाङ्मय भी अज्ञात सा रहा। अ भा प्राच्यविद्या परिषद् जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागों ने भी अर्वाचीन सस्कृत साहित्य का समुचित सकलन करने में यथोचित तत्परता नहीं बताई। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अर्वाचीन सस्कृत साहित्य का परामर्श लेने की प्रवृत्ति विद्वानो में अकुरित हुई। डॉ. कृष्णम्माचारियर का "हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर", डॉ श्रीधर भास्कर वर्णेकर का "अर्वाचीन संस्कृत साहित्य" 1963 में प्रकाशित (मराठी में), डॉ. हीरालाल शुक्ल का "आधुनिक संस्कृत साहित्य", 1971 में प्रकाशित (हिंदी में), डॉ. उषा सत्यव्रत का ट्वेंटिएथ सेंचुरी सस्कृत प्लेज् (1972 में प्रकाशित) इन ग्रंथों के कारण तथा उसके पूर्व सन 1956-57 में डॉ. वेंकटराम राघवन् द्वारा लिखित आधुनिक संस्कृत वाङ्मय विषयक कुछ अंग्रेजी स्फुट लेखो के कारण अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ।

17 वीं से 20 वीं शती तक का कालखंड संस्कृत वाङ्मय के इतिहास की दृष्टि से अर्वाचीन काल खंड माना जाता है। इस अवधि में पंडितराज जगन्नाथ के समकालीन 104 ग्रंथों के लेखक अप्पय्या दीक्षित, 60 ग्रथों के लेखक रत्नखेट नीलकण्ठ दीक्षित, 64 ग्रंथों के लेखक घनश्याम कवि, 143 ग्रंथों के लेखक बेल्लंकोंड रामराय, 108 ग्रथों के लेखक राधा मंडलम् नारायण शास्त्री, 93 नाटकों के लेखक म म. लक्ष्मणसूरी, 135 ग्रंथों के लेखक पं मधुसूदनजी ओझा, तथा भट् मथुरानाथ शास्त्री, महालिंग शास्त्री, क्षितीशचंद्र चट्टोपाध्याय, श्रीपादशास्त्री हसूरकर, काव्यकंठ वासिष्ठ गणपतिमुनि, ब्रह्मश्री कपाली शास्त्री, अखिलानंद शर्मा, स्वामी भगवदाचार्य, पं. दृषीकेश भट्टाचार्य, आप्पाशास्त्री राशिवडेकर, विधुशेखर भट्टाचार्य, प्रज्ञाचक्षु गुलाबराव महाराज, वासुदेवानंद सरस्वती, पंडिता क्षमादेवी राव. डॉ. राघवन, डॉ रामजी उपाध्याय, डॉ वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य इत्यादि अर्वाचीन संस्कृत साहित्यिकों कार्य अत्यंत श्लाघनीय है।

परम्परा का रक्षण

मध्ययुगीन संस्कृत साहित्यिको में से सुबन्धु, कविराज, सन्ध्याकरनन्दी, धनजय जैसे लेखकों ने जिस प्रकार द्व्यर्थी, त्र्यर्थी महाकाव्य निर्माण कर भाषाप्रभुत्व का एक अद्भुत निदर्शन स्थापित किया, उसी आदर्श के अनुसार अर्वाचीन साहित्यिकों में यादव-राघवीयम् के लेखक वेंकटाध्वरी (17 वीं शती) राघव-यादव पाण्डवीय एव पचकल्याणचम्पू के लेखक चिदम्बरकवि (17 वीं शती) राघव-नैषधीय के लेखक हरदत्त (18 वीं शती) और कोसलभोसलीय के लेखक शेषाचलपति (18 वीं शती), सात अर्थों वाले सप्तसधान काव्य के लेखक मेघविजयगणी इत्यादि विद्वानों ने श्लेषप्रचुर काव्यरचना की विशिष्ट परम्परा अर्वाचीन कालखड में अक्षुण्ण रखी। 19 वीं शती के कृष्णमूर्ति और चार्ला भाष्यकार शास्त्री ने "कंकणबंधरामायण" नामक एक मात्र अनुष्टुप् छंदोबद्ध श्लोक की, रचना की जिसके यथाक्रम 64 ओर 128 अर्थ निकलते हैं और उन अर्थों द्वारा सपूर्ण रामकथा का निवेदन होता है। इन श्लोको के सारे अर्थ उन्होने ही स्वय टीका द्वारा विशद किये हैं।

सस्कृत साहित्य के प्रतिकूल काल मे काव्य नाटकादि की रचना इन सारे साहित्यिको ने किस उद्देश्य से की, इस प्रश्न का उत्तर अनेक लेखकों ने अपने शब्दो में दिया है। (यशोलाभ, अर्थप्राप्ति, व्यवहारज्ञान की प्राप्ति, अमंगल का निवारण, तत्काल परमानद की प्राप्ति और कान्तासमित उपदेश इन परपरागत प्रयोजनों के अतिरिक्त, सस्कृत भाषा की सेवा, अन्यभाषीय साहित्य का संस्कृतज्ञो को परिचय, छात्रो का हित इत्यादि नवीन प्रयोजनो से, इन अर्वाचीन लेखकों ने सस्कृत में साहित्यनिर्मिति की। अनेक साहित्यिको के अन्त करण में कालिदास, भवभूति जैसे प्राचीन महाकवियो का अनुकरण करने की तीव्र प्रेरणा होने के कारण वे सस्कृत साहित्यनिर्मिति में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार के साहित्यियो ने स्वय अपना निर्देश उन प्राचीन महाकवियों के महनीय नामों की उपधि धारण करते हुए किया है। अथवा उनके सहृदय पाठको ने उन्हें उस प्रकार की उपाधिया दी। जैसे - "अभिनव-कालिदास" - यशोभूषणकार माधव ओर सक्षेपशकरविजयकार गोपालस्वामी शास्त्री। नूतन-कालिदास = विक्रमराघव कवि। कलियुग-कालिदास = शृगारकोशभाण के लेखक। केरल-कालिदास = केरलवर्ममहाराज। अभिनव-भवभूति = श्रीनिवास दीक्षित (रत्नखेट), अभिनव-रामानुज - श्रीनिवासगुणाकार महाकाव्य के लेखक मायावादि-मतगज = कठीरवाचार्य। नवीन-पतजलि - पेरुसूरि। अभिनवभर्तृहरि - प तेजोभानु शृगारादि शतकमय के लेखक, अभिनव-पडितराज = पुल्य उमामहेश्वरशास्त्री, अभिनव भोज = तंजौर नरेश शहाजी (एकोजी का पुत्र) भोसले, अभिनव-जयदेव -शाहविलासगीत के रचयिता दुण्ढिकवि, आन्ध्र पाणिनि - कोसलभोसलीयकर्ता शेषाचलपति।

इन व्यक्तिनामो के अतिरिक्त ग्रन्थो के भी नाम देखिए - अभिनवकादम्बरी (लेखक- म्हैसूर के राजकवि अहोबिल नरसिह), अभिनवभारतम् (ले नरसप्पा), अभिनवभारतचम्पू (ले श्रीकण्ठकवि), अभिनव गीतगोविंद, अभिनवरामायण, अभिनवभागवत, अभिनववासवदत्ता, अभिनवहितोपदेश इत्यादि। इन ग्रन्थनामो से भी यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आर्वाचीन सस्कृत लेखको में प्राचीन साहित्यिकों तथा उनकी प्रख्यात वाङ्मय कृतियो का अनुकरण करने की तीव्र आकाक्षा थी। इन आकाक्षा से प्रेरित होकर ही अनेक ग्रंथों की रचना अर्वाचीन काल में हुई। कालिदास के रघुवश का अनुकरण करने की प्रेरणा से, गुरुवश (ले लक्ष्मणशास्त्री, (18 वीं शती), भटवश (ले युवराजकवि) इत्यादि वशानुचरितात्मक काव्यग्रथो की रचना हुई। इस प्रवृत्ति की विकृति, जार्जवश (ले अप्पाशास्त्री अय्यर) और एडवर्डवश (ले उर्वीदत्तशास्त्री, लखनऊ निवासी) जैसे काव्यो में दिखाई देती है।

माघकृत शिशुपालवध का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हुए वशीधर शर्मा ने दुर्योधनवध नामक महाकाव्य लिखा। वत्सकुलोत्पन्न वामन कवि ने बाणभट्ट का यश हरण करने की आकाक्षा से वीरनारायणचरित्र नामक गद्य प्रबन्ध का निर्माण किया। (वह प्रयत्न सर्वथा निष्फल रहा, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।) व्याकरणशास्त्र के द्वारा साधित शब्दों का उपयोग कर काव्यरचना का एक अनोखा आदर्श भट्टी ने स्थापित किया। उस आदर्श को लेकर भागवतव्यजन (ले दुण्ढिराज काले, 19 वीं शती), मोहभग, (ले डॉ रसिक बिहारी जोशी, 1976)। जैसे काव्य भी अर्वाचीन कालखड में निर्माण हुए।

17 वीं शताब्दी से 20 वीं शताब्दी तक सस्कृत वाङ्मय का अर्वाचीन कालखड माना जाता है परंतु इस अर्वाचीन कालखड के भी दो खड स्पष्टतया दिखाई देते है। पहला कालखड 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के साथ समाप्त होता है और दूसरा कालखंड अग्रेजी शासन की प्रस्थापना के बाद पाश्चात्य वाङ्मय का परिचय यहा के विद्वानो को होने के कारण, 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अद्ययावत् माना जाता है। इस प्रथम कालखड में निर्मित प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में संत साहित्य और कुछ लोकसाहित्य के अतिरिक्त अन्य सारा साहित्य, तत्कालीन सस्कृत साहित्य से किसी प्रकार अलग सा नहीं था। इस काल के सस्कृत के साहित्यिक जिस प्रकार रामायण, महाभारत और भागवतादि पुराणग्रथो को उपजीव्य मानकर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करते थे, उसी प्रकार हिंदी, मराठी, बागला प्रभृति प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक भी उन्हीं परम्परागत या गतानुगतिक विषयों को लेकर काव्यरचना करते रहे। परंतु उसमें भी सस्कृत लेखकों के चम्पू, नाटक, खडकाव्य इत्यादि वाङ्मय प्रकार

प्रचलित नहीं हुए थे। अर्वाचीन संस्कृत साहित्यिकों ने परंपरागत विषयों पर आधारित रामायणसारसंग्रह (ले अप्पय्य दीक्षित), रामायणकाव्य (ले. मधुरवाणी), रामयमकार्णव (ले. व्यंकटेश), रामविलासकाव्य (ले. रामचद्र तर्कवागीश), राघवीय (ले. रामपाणिवाद), सीतास्वयंवर (ले. काशीनाथ) इत्यादि रामचरित्रविषयक अनेक काव्यग्रथों की निर्मिति की अथवा पारिजातहरण, रुक्मिणीहरण, कंसवध (ले. राजचूडामणि) माधवमहोत्सव (ले. सूर्यनारायण), विक्रमभारत (ले. श्रीधर विद्यालकार), पाडवविजय (ले. हेमचंद्राचार्य) इत्यादि कृष्णचरित्र से संबधित काव्यों की भी रचना की। उसी प्रकार इन पौराणिक विषयो पर आधारित नाटक, प्रकरण भाण, चम्पू जैसे अन्य प्रकारों के ग्रथ भी सस्कृत साहित्यिकों ने पर्याप्त मात्रा में निर्माण किये। अर्वाचीन प्रादेशिक भाषीय साहित्य का यह एक वैशिष्ट्य माना जा सकता है। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक प्रादेशिक भाषीय साहित्यों में नाट्य वाङ्मय की निर्मिती नहीं हुई थी। असमिया बांगला जैसी कुछ भाषाओं में नाट्य वाङ्मय की परंपरा दिखाई देती है, परतु उसका स्वरूप संस्कृतनिष्ठ ही है।

वीरचरितों पर आधारित महाकाव्यों की निर्मिति करने की परंपरा सस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अतिप्राचीन काल से निरतर चलती रही। उस परंपरा को भी अर्वाचीन संस्कृत साहित्यिकों ने अक्षुण्ण रखी है। छत्रपति शिवाजी महाराज के वीरचरित्र एव पुण्यचारित्र्य ने अनेक प्रतिभाशाली लेखकों को प्रेरणा दी, जिस के फलस्वरूप कवीन्द्र परमानन्दकृत शिवभारतम् (17 वीं शती), कालिदास विद्याविनोदकृत शिवचरितम् (19 वीं शती) आधुनिक बाणभट्ट अंबिकादत्त व्यास कृत शिवराजविजय (गद्यकाव्य), व्ही. व्ही सोवनीकृत शिवावतारप्रबन्ध, डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर विरचित 68 सर्गों का शिवराज्योदय (प्रस्तुत महाकाव्य को सन 1974 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ) डॉ. त्रिपाठीकृत क्षत्रपतिचरित इत्यादि विविध महाकाव्य आधुनिक काल में निर्माण हुए। इसी परंपरा में रुद्रकविकृत जहांगीरचरित (17 वीं शती) रामव्याकृत गझनवीमहंमदचरित (19 वीं शती), पाडुरगकवि कृत विजयपुरकथा (19 वीं शती), और छज्जूरामकृत सुलतानचरित जैसे मुस्लिम राजाओं के चरित्र पर आधारित कुछ काव्य भी निर्माण हुए।

अंग्रेजों के प्रशासन काल में, व्हिक्टोरियाचरितसंग्रह (ले. व्रजेन्द्रनाथ शास्त्री, सन 1887), व्हिक्टोरियामाहात्म्य (ले राजा शौरीन्द्रमोहन टागोर, सन 1897) प्रीतिकुसुमाजलि (ले काशी के कालीपथ पंडित- 1897 (विजयिनीकाव्य) ले. श्रीश्वर विद्यालंकार भट्टाचार्य- 1902) आंग्लसाम्राज्य (ले. राजवर्मा), आग्लजर्मनीयुद्धविवरण (ले तिरुमल बुक्कपट्टन श्रीनिवासाचार्य- 1924), समरशान्तिमहोत्सव (ले. पी व्ही रामचद्र आचार्य- 1924), यदुवृद्ध (एडवर्ड) सौहार्द (ले गोपाल अयगार- 1937), इत्यादि काव्य महारानी व्हिक्टोरिया, सप्तम एडवर्ड, पचमजार्ज जैसे आंग्ल नृपतियों के संबध में निर्माण हुए।

महाकाव्यों के समान स्तोत्रकाव्य, शतककाव्य, दूतकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पू इत्यादि ललित वाङ्मय के विविध प्राचीन प्रकार संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन सेवकों ने अखंडित चालू रखे। इनके विषय भी प्राय गतानुगतिक स्वरूप के ही दिखाई देते हैं। इन लेखकों ने प्राचीन वाङ्मय परपरा अक्षुण्ण रखी इसलिए उनकी विशेष प्रशंसा करने की अथवा उन्होने गतानुगतिक रूढ विषयों से बाह्य विषयों का परामर्श नहीं लिया, इस कारण उनकी निन्दा करने की भी आवश्यकता नहीं है। संस्कृत साहित्य के प्रतिकूल कालखंड में भी सुर-भारती का प्रवाह इन महानुभावों ने अखंडित रखा यही इनका कार्य है। इस काल में निर्मित हिंदी, मराठी, बंगाली, प्रभृति प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिकों के विषय में भी इसी प्रकार का अभिप्राय दिया जा सकता है।

भारत के साहित्य क्षेत्र में सन 1857 की राज्यक्रांति के बाद कुछ विशेष प्रकार का परिवर्तन प्रारभ हुआ। अंग्रेजी राजसत्ता की प्रेरणा से स्थापित आधुनिक विश्वविद्यालयों मे शिक्षा दीक्षा पाये हुए नवशिक्षित साहित्यिकों ने, पाश्चात्य साहित्य का वैशिष्ट अपने निजी भाषा के साहित्य में लाने का प्रयत्न शुरु किया। इस प्रक्रिया के कारण महाकाव्यों तथा अन्य काव्य प्रकारों में पौराणिक विषयों के अतिरिक्त विषयों का अन्तर्भाव होने लगा। राजस्तुति परक काव्यों में मुसलमान एव अग्रेज राजाओं के संबंध में लिखे गए कुछ काव्यों का निर्देश उपर हुआ है। उन विषयों के अतिरिक्त अश्वघोष के बुद्धिचरित की परम्परा मे जिनका अन्तर्भाव हो सकेगा ऐसे महापुरुष विषयक महाकाव्य आधुनिक काल में निर्माण हुए, जिनमें निम्नलिखित काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं -

1) यशोधरामहाकाव्य 20 सर्ग, लेखक ओगटी परीक्षित शर्मा। (सन 1976)
2) क्रिस्तुभागवतम् · 33 सर्ग, लेखक पी सी देवासिया (सन 1976 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त)
3) येशुसौरभ ले. सोमवर्मराजा।
4) श्रीमदाद्यशंकर-जन्मकालकाव्य लेखक शिवदास बालिंगे (सन 1954)
5) श्रीगुरुगोविंदसिहचरित लेखक डॉ. सत्यव्रत। (सन 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त)।
6) श्रीनारायणविजय . लेखक के बलराम पणिक्क। विषय-केरल के आधुनिक संत नारायण गुरु, 21 सर्ग (सन 1971)
7) त्यागराजचरित ले. सुंदरेशशर्मा (सन 1979)
8) दीक्षितेन्द्रचरित ले डॉ. व्ही. राघवन्
9) विश्वभानु ले नारायण पिल्ले, विषय-स्वामी विवेकानदचरित्र। 21 सर्ग (सन 1980)

10) भारतपारिजात : ले. स्वामी भगवदाचार्य। विषय-महात्मा गांधी का चरित्र। 27 सर्ग (सन 1980)

इस प्रणाली में जवाहरलाल नेहरु, सुभाषचंद्र बोस, राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, लोकमान्य तिलक, इत्यादि आधुनिक राष्ट्रनेताओं के चरित्रों पर आधारित महाकाव्यों का अन्तर्भाव हो सकता है।

कालिदास के मेघदूत से प्रवर्तित दूतकाव्य की परंपरा को अक्षुण्ण रखनेवाले आधुनिक दूतकाव्यों की संख्या काफी बड़ी है। आधुनिक दूतकाव्यों में हसदूत, पवनदूत, चद्रदूत, हनुमद्दूत, गोपीदूत, तुलसीदूत, पिकदूत, काकदूत, भ्रमरदूत, पान्थदूत तथा कोकिलसंदेश, कीरसदेश, हससदेश, गरुडसंदेश, मयूरसदेश, मानससदेश इत्यादि काव्यों का निर्देश मात्र करना पर्याप्त है।

दूतकाव्य के समान शतक, स्तोत्र इत्यादि खण्डकाव्यों की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए, उसमें विषयों की नवीनता निर्माण करने का प्रयास दिखाई देता है। बल्लवदूत (ले घटकनाथ शर्मा) मुद्गरदूत (ले. रामावतार शर्मा) पलांडुशतक (ले श्रीकृष्णराम शर्मा), होलिक शतक (ले. विश्वेश्वर) सम्मार्जनीशतक (ले अनन्ताचार), कलिविडम्बन (ले. नीलकण्ठ दीक्षित), कलियुगाचार्यस्तोत्र, चहागीता, कॉफी-शतकम् इत्यादि काव्यों के नामों से ही पता चल सकता है कि आधुनिक सस्कृत साहित्यिक हास्य रस की निष्पत्ति करने में कितना रस लेने लगे हैं। हास्य रस के साथ ही राष्ट्रभक्ति का परिषोण करनेवाले, भारतीमनोरथ (ले एम के. ताताचार्य) भारतीशतक (ले महादेव पाण्डेय) भारतीगीता (ले व्ही आर लक्ष्मी अम्मल) भारतीस्तव (ले कपाली शास्त्री) इत्यादि अनेक स्तोत्रात्मक खंडकाव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य की विशेषता दिखाते हैं। राष्ट्रभक्ति का आवेश आधुनिक महाकाव्यों तथा नाटकों में भी यथास्थान भरपूर मात्रा में दिखाई देता है। कई महाकाव्यों के सर्ग इस राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत हैं जिसका अभाव प्राचीन महाकाव्यों में था।

जयदेव के गीतगोविंद के प्रभाव से एक अभिनवकाव्य सप्रदाय 12 वीं शती से सस्कृत साहित्य क्षेत्र में प्रवर्तित हुआ। गीतराघव (ले. प्रभाकर) गीतगिरीश (ले रामकवि) गीतगौरीपति (ले. चद्रशेखर सरस्वती), गीतरघुनन्दन (ले प्रियदास) शाहाजिगीतविलास (ले ढुंढिराज), कृष्णलीलातरगिणी, (ले नारायणतीर्थ), तीर्थभारतम्, श्रीरामसंगीतिका और श्रीकृष्णसगीतिका (ले श्री भा वर्णेकर) इत्यादि अनेक गीतिकाव्य आधुनिक काल में निर्माण हुए जिन्होंने गीतगोविंद की परपरा सतत प्रवाहित रखी। अनेक आधुनिक नाटकों में श्लोकों के स्थान पर गीतिकाव्यों का प्रयोग शुरु हुआ है। कोचीन के कवि वारवूर कृष्ण मेनन ने बाणभट्ट की कादम्बरी का गेय कविता में रूपातर किया। जयपुर के साहित्याचार्य भट् मथुरानाथशास्त्री (मजुनाथ) ने अपने साहित्य वैभव में हिंदी और उर्दू भाषा के गझल, ठुमरी, दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया इत्यादि गेय छदों में भरपूर काव्य रचना की। इन गेय काव्यों के विषय भी रेडिओ, हवाई जहाज, मोटरगाडी जैसे आधुनिक हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के समान विशिष्ट शास्त्रीय विषयों पर गद्य प्रबन्धों की रचना अर्वाचीन सस्कृत लेखकों ने की है। आधुनिक पद्धति के निबंध वाङ्मय में विशेषतया उल्लेखनीय ग्रथ हैं -

निबंध	लेखक	विषय
कविकाव्यविचार	राजगोपाल चक्रवर्ती	साहित्यशास्त्र
हौत्रध्वान्तीदिवाकर	कृष्णशास्त्री धुले	धर्मशास्त्र
बालविवाहहानिप्रकाश	रामस्वरुप	,,
परिणयमीमांसा	नरेश शास्त्री	,,
उद्धारचंद्रिका	काशीचद्र	,,
मानवधर्मसार	डॉ भगवानदास	,,
ख्रिस्तधर्मकौमुदी-समालोचना	वज्रलाल मुखोपाध्याय	,,
सत्यार्थप्रकाश	दयानद सरस्वती	,,
शाकरभाष्यगाभीर्य निर्णयखडन	गौरीनाथ शास्त्री	तत्त्वज्ञान
भाष्यगाभीर्यनिर्णयमडन	वेंकटराघव शास्त्री	,,
नूतनगीतावैचित्र्यविलास	गीतादास	,,
पाश्चात्यशास्त्रसार	आप्पाशास्त्री राशिवडेकर	,,
क्षेत्रतत्त्वदीपिका	इलातुर रामस्वामी	भूमिती
सनातनभौतिकविज्ञान	वेंकटरमणय्या	विज्ञान
नेत्रचिकित्सा	डॉ बालकृष्ण शिवगम मुजे	शारीर विज्ञान
प्रत्यक्षशारीर	गणनाथ सेन	,,

सिद्धान्तनिदान	"	"
रसजलनिधि	पी. एम. बेरीयर	"
आयुर्वेदीयपदार्थविज्ञान	डॉ. चिं. ग. काशीकर	"
शारीरदर्शन	हिर्लेकर शास्त्री	"
भाषातन्त्र	शयम शास्त्री	भाषाविज्ञान
भाषाशास्त्रसंग्रह	एस टी जी. वरदाचारियर	"
गीर्वाणभाषाभ्युदय	श्रीनिवास राघवन	" इ.इ.

उपन्यास

निबंध के समान गद्य उपन्यास का आधुनिक वाङ्मय प्रकार भी संस्कृतज्ञों ने अपनाया और अनेक उपन्यासों का योगदान संस्कृत साहित्य में दिया। वास्तविक यह वाङ्मय प्रकार आख्यायिका और कथा के रुप में प्राचीन काल से भारत में प्रचलित था। पातंजल महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भेमरथी इन आख्यायिकाओं का उल्लेख आता है। वासवदत्ता का अध्ययन करने वालों के लिए "वासवदत्तिक" सज्ञा रूढ थी। इनके अतिरिक्त वररुचिकृत चारुमति, श्रीपालिकृत तरंगवती, रामिल-सौमिलकृत शूद्रककथा इत्यादि आख्यायिकाएँ ईसापूर्व काल में प्रसिद्ध थीं। हरिश्चंद्र की मालती, भोज की शृंगारमंजरी, कुलशेखर की आश्चर्यमंजरी, रुद्रट की त्रैलोक्यसुंदरी, अपराजित की मृगाकलेखा इत्यादि अवान्तर आख्यायिकाओं का भी निर्देश सस्कृत साहित्यिकों ने आदरपूर्व किया है। प्राचीन ललित गद्य लेखकों में बाणभट्ट, दण्डी और सुबन्धु इन तीन साहित्यिकों ने जो लोकोत्तर प्रतिभासामर्थ्य और संस्कृत भाषा का वैभव व्यक्त किया वह विश्वविख्यात है। इनकी परंपरा भूषणभट्ट (बाणभट्ट का पुत्र एवं कादम्बरी के उत्तरार्ध का लेखक), चक्रपाणि दीक्षित (दशकुमारचरित के उत्तरार्ध का लेखक) आनंदधर (10 वीं शती, माधवानल कथा का लेखक) धनपाल (11 वीं शती, तिलकमंजरी का लेखक) सोड्ढल (11 वीं शती, उदयसुंदरी का लेखक) वादीभसिंह (12 वीं शती, गद्यचिन्तामणि का लेखक), विद्याचक्रवर्ती (13 वीं शती गद्यकर्णामृत का लेखक) अगस्ति (14 वीं शती कृष्णचरित्र का लेखक) वामन (अभिनव बाणभट्ट, 15 वीं शती) वीरनारायणचरित का लेखक और देवविजयगणि (16 वीं शती, रामचरित का लेखक) इत्यादि महान् गद्य कवियों ने अखण्डित चालू रखी। बाणभट्ट की कादम्बरी के अदभुत प्रभाव के कारण आधुनिक कालखंड में ढुंढिराजकृत अभिनवकादम्बरी (18 वीं शती) मणिरामकृत कादम्बर्यर्थसार, काशीनाथकृत संक्षिप्तकादम्बरी, व्ही. आर. कृष्णम्माचार्यकृत कादम्बरीसंग्रह तथा हर्षचरितसार, डा. वा वि. मिराशी कृत हर्षचरितसार, अहोबिल नरसिहकृत अभिनवकादम्बरी (अर्थात् त्रिमूर्तिकल्याण) इत्यादि कादम्बरीनिष्ठ ग्रंथ प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त इस परंपरा में श्रीशैल दीक्षित कृत श्रीकृष्णाभ्युदय, कृष्णम्माचार्यकृत सुशीला और मंदारवती, नारायणशास्त्री खिस्तेकृत दिव्यदृष्टि, चक्रवर्ती राजगोपालकृत शैवलिनी और कुमुदिनी, जग्गू बकुलभूषणकृत जयन्तिका, हरिदास सिद्धान्तवागीशकृत सरला और रामजी उपाध्याय कृत द्वा सुपर्णा इत्यादि उपन्यासात्मक ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। अंबिकादत्त व्यास कृत शिवराजविजय का उल्लेख शिवाजी विषयक काव्यों में उपर आया है।

उपन्यासों के समान लघुकथाओं की निर्मिति आधुनिक संस्कृत वाङ्मय की विशेषता कही जा सकती है। प्राय सभी संस्कृत मासिक पत्रिकाओं में आधुनिक पद्धति की कथाएँ निरंतर प्रकाशित होती आ रही हैं।

आधुनिक संस्कृत नाटकों का सक्षेपतः परिचय नाट्यवाङ्मय विषयक प्रकरण में आया है। अत इस प्रकरण में उसका पृथक् निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। डॉ. रामजी उपाध्याय के आधुनिक सस्कृत नाटक नामक ग्रंथ में प्राय सभी आधुनिक नाटकों एवं नाटककारों का यथोचित परामर्श लिया गया है।

अनुवाद

19 वीं शताब्दी तक संस्कृत ग्रन्थों के ही अनुवाद अन्य भाषाओं में करने की प्रथा थी। पूर्वकालीन साहित्यिक अन्य भाषीय ग्रंथों को सस्कृत भाषा में अनुवादित करने के सबध में उदासीन या पराङ्मुख थे। परतु 19 वीं शती के उत्तरार्ध से अनुवादित साहित्य पर्याप्त मात्रा में संस्कृत भाषा में निर्माण होने लगा। इस अनुवादित संस्कृत वाङ्मय का यह वैशिष्ट्य है कि, इस में भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं तथा अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा के उत्तमोत्तम ग्रंथों के अनुवाद, संस्कृत की अखिल भारतीयता के कारण, अनायास निर्माण हुए। इन अनुवादों में तुलसीरामायण, ज्ञानेश्वरी, तिरुक्कुरळ, धम्मपद, गाथासप्तशती, मिलिंदप्रश्न, कथाशतक, कामायनी, श्रीरामकृष्णकथामृत, मनोबोध, उमरखय्याम की रुबाइयां, अरेबियन नाइटस्, बाईबल इत्यादि सुप्रसिद्ध ग्रंथों के संस्कृत अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। शेक्सपीयर, टैगोर, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, विनोबाजी भावे, योगी अरविंद, अरस्तू, जर्मन कवि गटे इत्यादि श्रेष्ठ लेखकों के ग्रंथ अंशतः अनुवादित हो चुके हैं। मराठी के प्राय सभी लोकप्रिय नाटकों के सस्कृत अनुवाद और प्रयोग हो चुके हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान का गद्य और पद्यात्मक अनुवाद भी हुआ है।

पत्र-पत्रिकाएँ

19 वीं शताब्दी में भारत के विविध प्रान्तों के नेताओ ने लोकजागृति के हेतु अग्रेजी तथा हिंदी, बागला प्रभृति प्रादेशिक भाषाओं में वृत्तपत्र तथा मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित करना प्रारभ किया। लोकजागृति के इस वाङ्मयीन कार्य में संस्कृत पण्डितवर्ग भी अग्रेसर हुआ। सन 1866 में वाराणसी के राजकीय सस्कृत विद्यालय से "काशीविद्यासुधानिधि" नामक प्रथम संस्कृत पत्रिका प्रकाशित हुई।। सन 1876 में इसका प्रकाशन स्थगित होने के बाद 1887 से 1977 तक यह "पंडितपत्रिका" प्रकाशित होती रही। वाराणसी से 1876 मे पूर्णमासिकी अथवा प्रत्यग्रनन्दिनी नामक पत्रिका सत्यव्रत सामश्रमी के सपादकत्व में प्रकाशित होने लगी। इस प्रकार सस्कृत के नियतकालिक साहित्य का उद्गम काशी (या वाराणसी) जैसे सस्कृत विद्या के महान् केंद्र से हुआ। 1871 से 1914 तक लाहौर से ऋषीकेश भट्टाचार्य के सपादकत्व में विद्योदय का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पजाब विश्वविद्यालय के अधिकारी डा वुलनर का इस कार्य में प्रोत्साहन था। लाहौर का त्याग कर प ऋषीकेश भट्टाचार्य कलकत्ता में निवासार्थ गए। तब से विद्योदय का प्रकाशन कलकत्ते से होने लगा।

डॉ रामगोपाल मिश्र ने सागर विश्वविद्यालय से पीएच डी उपाधि के लिए "सस्कृत पत्रकारिता का इतिहास" नामक शोध प्रबन्ध लिखा है। (पृष्ठसंख्या 235) प्राप्तिस्थान विवेक प्रकाशन, सी 11/17 मॉडेल टाऊन, दिल्ली-9। इसमें 19 वीं और 20 वीं शताब्दी में उदित एव अस्तगत प्राय सभी नियतकालिक पत्रिकाओं का सविस्तर परामर्श लिया गया है। आधुनिक सस्कृत वाङ्मय का परामर्श लेने वाले कुछ शोधप्राय निबधों एव प्रबन्धो में भी नियतकालिक साहित्य का पर्याप्त विवेचन हुआ है। श्रीराम गोपाल मिश्र की सूची के अनुसार 19 वीं शताब्दी में 54 और 20 वीं शताब्दी में 166 पत्र-पत्रिकाएँ सस्कृत वाङ्मय क्षेत्र में निर्माण हुईं। आज करीब 40 पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। मैसूर से सुधर्मा नामक दैनिक पत्रिका 1970 से अव्याहत चल रही है। संस्कृत में दैनिक पत्रक प्रकाशित करने का साहस त्रिवेंद्रम की जयन्ती और पुणे की सस्कृति के सपादकों ने भी किया था। सस्कृत पत्रपत्रिकाओं के सपादन का कार्य विशिष्ट उद्देश्य से चला था। कांचीवरम् के प्रतिवादिभयकर मठ के अधिपति अनन्ताचार्य ने अपनी मजुभाषिणी नामक मासिक पत्रिका अपने मठ का मतप्रचार करने के उद्देश्य से चलाई थी। मद्रास के आर कृष्णम्माचार्य की सहृदया का उद्देश्य पौरस्य एव पाश्चात्य विद्याओं का समन्वय करना था। अयोध्यावासी कालीप्रसाद त्रिपाठी ने अपना सस्कृतम् साप्ताहिक "अस्यामेव शताब्द्यां संस्कृतं राष्ट्रभाषा भवतु" इस ध्येय से प्रेरित होकर प्रतिकूल परिस्थिति में चलाया।

सस्कृत केवल धार्मिक व्यवहार की ही भाषा नहीं। उस भाषा में अद्ययावत् लौकिक व्यवहार करने की भी क्षमता है। यह सिद्ध करने की महत्त्वाकांक्षा सभी पत्रपत्रिकाओं के सपादन के पीछे रही और प्राय सभी पत्रपत्रिकाओं ने सस्कृत भाषा की वह शक्ति अच्छी प्रकार से सिद्ध की। सस्कृत एक अखिल भारतीय भाषा होने के कारण, इन नियतकालिकों का क्षेत्र सपूर्ण भारतवर्ष रहा। भारत के सभी प्रदेशों के प्रमुख शहरों से सस्कृत पत्रपत्रिकाओ का प्रकाशन हुआ यह उल्लेखनीय है। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि आधुनिक सस्कृत साहित्य का बहुत सारा उत्कृष्ट अश इन पत्रिकाओं में यथावसार प्रकाशित होता गया। गोल्डस्मिथ के हरमिट् काव्य का अनुवाद (एकान्तवासी योगी) पडित जगन्नाथप्रसाद के ससारचक्र नामक हिन्दी उपन्यास का अनुवाद, वासिष्ठचरितम् इत्यादि ग्रथ काचीवरम् की मजुभाषिणी में क्रमश. प्रकाशित हुए। सद्‌हृदया में शेक्सपीयर के काव्यों के अनुवाद एव सुशीला नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। प अबिकादत्त व्यास का सुप्रसिद्ध शिवराजविजय, आप्पाशास्त्री राशिवडेकर की सस्कृतचन्द्रिका में प्रकाशित हुआ। वाराणसी की सस्कृतभारती में रवीन्द्रनाथ टैगोर की सुप्रसिद्ध गीताजली का संस्कृत अनुवाद प्रकाशित हुआ। प वसन्त गाडगीळ की शारदापत्रिका और जयपुर की भारती में श्री भा वर्णेकर का 68 सर्गों का महाकाव्य शिवराज्योदय प्रकाशित हुआ। प्रा, अशोक अकलूजकर की आप्पाशास्त्री साहित्यसमीक्षा, डॉ ग बा. पळसुलेकृत विवेकानदचरित इत्यादि पचास से अधिक पुस्तके क्रमश तथा ग्रंथरूप में वसत गाडगीळ की शारदा में प्रकाशित हुईं। सभी श्रेष्ठ नियतकालिकों में यथावसर प्रकाशित कथा, उपन्यास, खडकाव्य, नाटक आदि का यथोचित सकलन करना और उन्हें स्वतंत्र ग्रथरूप में या कोशरूप में प्रकाशित करना एक आवश्यक कार्य है। इस प्रकार संकलन अभी नहीं हो सका तो अर्वाचीन सस्कृत साहित्य का बहुत सारा सरक्षणीय अंश काल के कराल गाल में ग्रस्त हो जाएगा।

आधुनिक नियतकालिक वाङ्मय के कारण सस्कृत गद्य मे महान परिवर्तन हुआ है। प्राचीन लेखकों की श्लिष्ट एवं दीर्घ समासादि के कारण क्लिष्ट लेखन शैली समाप्त होकर सरल सुबोध लेखन शैली प्रचलित हुई है। पुराने मुद्रित ग्रंथों में संधियुक्त मुद्रण के अतिरेक से दुर्वाचनीयता दोष निर्माण हुआ है। (जिस के कारण सस्कृत एक दुर्बोध भाषा मानी गई थी) वह नियतकालिक साहित्यद्वारा हटाया गया। आधुनिक युग के राजकीय, सामाजिक, आर्थिक व्यवहारो में एवं यांत्रिक जीवन में आवश्यक आशय व्यक्त करने के लिए प्राचीन सस्कृत साहित्यमें न मिलने वाले अनेक नवीन सस्कृत शब्दों का प्रचार इन "नियतकालिकाओं" के द्वारा सर्वत्र हो रहा है। कुछ पत्रिकाओ में प्रादेशिक भाषाओं में विशिष्ट अर्थ में रूढ हुए संस्कृत शब्द

उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, परंतु ऐसे कुछ दोष क्षम्य माने जा सकते हैं। संस्कृत नियतकालिकों का इस प्रतिकूल काल में भी जो अव्याहत प्रकाशन होता आया और आज भी हो रहा है उससे इस भाषा पर लादा गया मृतत्व का आक्षेप अनायास खंडित होता है।

कतिपय उल्लेखनीय पत्रपत्रिकाओं की नामावली प्रांतशः परिशिष्ट में दी है।

संस्कृत नियतकालिकों की यह नामावली परिशिष्ट (घ) में निर्दिष्ट डॉ. रामगोपाल मिश्र के संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास नामक शोध प्रबंध पर आधारित है। उस नामावली के अतिरिक्त भी कुछ और नाम भी जोड़े गये हैं। इस सूची के अनुसार कलकत्ता से 17, वाराणसी से 32, बंबई से 11, मद्रास से 11, और दिल्ली से 5, पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। असम और सिंध से इस कार्य में योगदान नहीं हुआ। संस्कृत वाङ्मय की निधि में आधुनिक काल में अनुवादित ग्रन्थों एवं नियतकालिकों के द्वारा उल्लेखनीय योगदान हुआ है। संस्कृत वाङ्मयेतिहास के प्राचीन कालखंड में जिन महान् ग्रंथकारों ने अपना वैशिष्ट्यपूर्ण योगदान पर्याप्त मात्रा में दिया उन में बहुत सारे प्रतिभासंपन्न एवं पांडित्यसम्पन्न महानुभावों के नाम सर्वविदित हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि आर्वाचीन कालखंड में जिन्होंनि इस सनातन वाङ्मय निधि की श्रीवृद्धि भरपूर मात्रा में की, ऐसे ग्रन्थकारों के नाम उनके प्रदेश में भी प्रख्यात नहीं हो सकें। ऐसे अप्रसिद्ध परंतु श्रेष्ठ ग्रंथकारों में पंडितराज जगन्नाथ के समकालीन, अप्पय्य दीक्षित (104 ग्रंथों के निर्माता) तंजौर के नृपति रघुनाथनायक, उनकी धर्मपत्नी रामभद्राम्बा, और मंत्री गोविंद दीक्षित, रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित (अभिनव भवभूति।) तंजौर के तुकोजी महाराज का मंत्री घनश्यान कवि, केरल निवासी नारायण भट्टपाद (भट्टात्रि), राजस्थान के समीक्षाचक्रवर्ती मधुसुदनजी ओझा, (135 ग्रंथों के लेखक), कर्नाटक के वासिष्ठगणपति मुनि और उनके शिष्य ब्रह्मश्री कपालीशास्त्री, महाराष्ट्र के वासुदेवानंद सरस्वती, प्रज्ञाचुक्ष गुलाबराव महाराज, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, बंगाल के प. हृषीकेश भट्टाचार्य, गणनाथ सेन, वाराणसी के गागाभट्ट काशीकर, इत्यादि अनेक स्वनामधन्य महानुभावों ने संस्कृत के शास्त्रीय एवं लालित्यपूर्ण वाङ्मय की परंपरा अखंडित रखी है।

संस्कृत वाङ्मय कोश
ग्रंथकार खण्ड

अंबालाल पुराणी (प्रा.) - अरविन्दाश्रम के सस्कृत पण्डित। कृति-योगिराज अरविन्द के तत्त्वज्ञान का सूत्ररूप सग्रह 'पूर्णयोग सूत्राणि'।

अंबिकादत्त व्यास (पं.) - ई 19 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध गद्य-लेखक, कवि एवं नाटककार। पिता-दुर्गादत्त शास्त्री (गौड)। समय 1858 से 1900 ई। इनके पूर्वज भानपुर ग्राम (जयपुर राज्य) के निवासी थे किन्तु इनके पिता वाराणसी जाकर वहीं बस गए। व्यासजी, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय पटना में अध्यापक थे, और उक्त पद पर जीवन पर्यन्त रहे। इनके द्वारा प्रणीत ग्रथो की संख्या 75 है। इन्होंने हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में समान अधिकार के साथ रचनाएं की हैं। व्यासजी ने छत्रपति शिवाजी के जीवन पर 'शिवराज-विजयम्' नामक गद्यकाव्य की रचना की है, जो 'कादंबरी' की शैली में रचित है। इनका 'सामवतम्' नामक नाटक, 19 वीं शती का श्रेष्ठ नाटक माना जाता है। पडित जितेन्द्रियाचार्य द्वारा संशोधित 'शिवराजविजयम्' की, 6 आवृत्तिया प्रकाशित हो चुकी हैं। कवि अम्बिकादत्त अपनी असाधारण विद्वत्ता तथा प्रतिभा के कारण समकालीन विद्वन्मण्डली में 'भारतभास्कर', 'साहित्याचार्य' 'व्यास' आदि उपाधियों से भूषित थे। इन्हें 19 वीं सदी का बाणभट्ट माना जाता है। श्री व्यास जीवनपर्यन्त साहित्याराधना में लीन रहे। उनकी प्रमुख काव्य-कृतिया —

1) गणेशशतकम्, 2) शिवविवाह (खण्डकाव्य), 3) सहस्रनामरामायणम् (इसमें एक हजार श्लोक हैं। यह 1898 ई में पटना में रचा गया)। 4) पुष्पवर्षा (काव्य), 5) उपदेशलता (काव्य), 6) साहित्यनलिनी, 7) रत्नाष्टकम् (कथा)- यह हास्यरस से पूर्ण कथासंग्रह है। 8) कथाकुसुमम् (कथासग्रह), 9) शिवराजविजय (उपन्यास)। (1870 में लिखा गया, किन्तु इसका प्रथम संस्करण 1901 ई में प्रकाशित हुआ), 10) समस्यापूर्तय, काव्यकादम्बिनी (ग्वालियर में प्रकाशित) 11) सामवतम् (यह नाटक, पटना में लिखा गया। इसकी प्रेरणा महाराज लक्ष्मीश्वरसिह से प्राप्त हुई थी। यह स्कन्दपुराण की कथा पर आधारित है तथा इसमें छह अक हैं), 12) ललिता नाटिका, 13) मूर्तिपूजा, 14) गुप्ताशुद्धिदर्शनम्, 15) क्षेत्र-कौशलम्, 16) प्रस्तारदीपिका और 17) सांख्यसागरसुधा।

अकबरी कालिदास - ई 16-17 वीं सदी। मूल नाम गोविंद भट्ट। अकबर के शासनकाल में जिन संस्कृत पडितों को उदार राजाश्रय मिला, उन्हीं में से एक हैं। वहीं 'अकबरी कालिदास' यह उपाधि मिली। महाराजा रामचद्र का भी आश्रय इन्हें प्राप्त था। अपनी प्रशस्ति में उन्होंने स्वय लिखा है —

अनाराध्य कालीमनास्वाद्य गौरीम्-
ऋते मन्त्रतन्त्राद्विना शब्द-चौर्यात्।
प्रबधं प्रगल्भं प्रकर्तुं विरिंचि-
प्रपचे मदन्य. कवि· कोऽस्ति धन्य।
(पद्यवेणी- 786)

अर्थ काली की आराधना, गौरी का आस्वादन, मत्रतंत्र एव शब्दचौर्य के बगैर प्रगल्भ प्रबध निर्माण करना तथा प्रवचन करना, इस कामों में ब्रह्मा की सृष्टि में मुझे छोड़ कर और कौन कवि है?

अकलंकदेव - ई 8 वीं सदी (दिगंबरपंथीय जैन तर्काचार्य। कवि-उपाधि प्राप्त। अनेक बौद्ध पंडितों के साथ वादविवाद कर दक्षिण भारत में जैन दर्शन का बौद्ध मत के प्रभाव से रक्षण किया। गृध्रपिच्छविरचित तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवार्तिक ग्रथ की रचना द्वारा, जैन सिद्धान्त पर किये जाने वाले विविध आक्षेपों का इन्होंने निराकरण किया। संमतभद्रकृत आप्तमीमासा-ग्रथ पर अष्टशती नामक स्वल्पाक्षर टिप्पण प्रस्तुत किया। प्रमाणसग्रह, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय एवं लघीयस्त्रय ये चार प्रकरण ग्रथ लिख कर जैन प्रमाणशास्त्र की व्यवस्थित पुनर्रचना की। ज्ञानकोश-स्वरूप के ग्रंथ लिखने की जो प्रथा वाचस्पतिमित्र, उदयन, शांतरक्षित आदि दर्शनकारों ने प्रारम्भ की, उसकी प्रेरणा अकलंकदेव के ग्रंथ से ही मिली। रामस्वामी अय्यगार के अनुसार कांची के हिमशीतल राजा की सभा में इन्होंने बौद्धो का पराभव किया। परिणामत· बौद्ध दक्षिण से चले गये।

पाडव-पुराण मे एक दतकथा है-हिमशीतल राजा के दरबार में बौद्ध दार्शनिक के साथ अकलकदेव का वादविवाद हुआ जिसमें बौद्ध दार्शनिक की हार हुई। वादविवाद के प्रारभ में अकलदेव को सदेह हुआ कि बौद्ध पंडित के निकट जो पात्र है, उसमें कोई मायावी पुतली है, जो अपने स्वामी को जिताने में सहायक हो रही है। अकलंदेव ने तुरत उस पात्र को ठोकर मारकर उलट दिया। परिणामतः बौद्ध दार्शनिक की वादविवाद में पराजय हुई। इस घटना के पश्चात् दक्षिण में बौद्धो का प्रभाव प्राय समाप्त हो गया।

दर्शनशास्त्री होने पर भी अकलंकदेव का हृदय भक्त का था। अपने अकलंकस्तोत्र में वे कहते हैं .

त्रैलोक्य सकल त्रिकालविषय सालोकमालोकितं
साक्षाद्येन यथा निजे करतले रेखात्रयं साङ्गुलि।
रागद्वेष-भयामयान्तक-जरा-लोलत्व-लाभोदयो
नाल यत्पदलङ्घनाय स महादेवो मया वंद्यते।।

अर्थ- जिसने त्रिकाल विषय, सकल त्रैलोक्य, को हाथ की अंगुलियां और उन पर जो रेखाएं है, उनके समान साक्षात् देखा है एवं राग, द्वेष, भय, रोग, मृत्यु, जरा, चंचलता, लोभ ये विकार जिसके पद का उल्लंघन करने में असमर्थ हैं, उस महादेव (महावीर) को मैं वंदन करता हूं।

अकालजलद - महाराष्ट्रीय कविचूडामणि राजशेखर के प्रपितामह। समय ई. 8-9 वीं शती। उनकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं होती, पर 'शार्ङ्गधरपद्धति' प्रभृति सूक्ति-संग्रहों में इनका 'भेकैः कोटरशायिभिः' — श्लोक मिलता है। उसी प्रकार राजशेखर के नाटकों में इनका उल्लेख प्राप्त होता है तथा उन्हीं की 'सूक्ति-मुक्तावली' में इनकी निम्न प्रकार प्रशस्ति की गई है-

अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका।
नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न तु हीयते।।

अक्षपाद - समय-सन् 150 के आसपास। न्यायसूत्र के कर्ता। षोडषपदार्थवादी। माधवाचार्य ने सर्वदर्शन में न्यायशास्त्र को अक्षपाददर्शन ही कहा है।

पद्मपुराण एवं अन्य कुछ पुराणों में कहा गया है कि न्यायशास्त्र गौतम (अथवा गौतम) की रचना है। न्यायसूत्र वृत्ति के कर्ता विश्वनाथ ने इस सूत्र को गौतमसूत्र कहा है। संभवतः अक्षपाद और गौतम दोनों ने इसे लिखा हो।

गौतम मिथिला के तो अक्षपाद काठियावाड के प्रभास क्षेत्र के थे। ब्रह्मांडपुराण के अनुसार अक्षपाद के पिता सोमशर्मा एवं कणाद थे। गौतम और अक्षपाद एक ही है ऐसा माना जाता है। एक दंतकथा बताई जाती है- विचारमग्न गौतम कुएँ में गिरे। कठिनाई से उन्हें बाहर निकाला जा सका। पुन. ऐसी स्थिति नहीं हो, इसलिये उनके पैरों में ही आखें निर्माण की गईं।

अखंडानन्द सरस्वती - श्रीमत् शकराचार्य के अद्वैत-सिद्धांत पर 'तत्त्वदीपन' नामक ग्रंथ के रचयिता।

अखिलानन्द शर्मा - आर्य समाजी विद्वान्। रचना- 'दयानन्द दिग्विजय' (21 सर्गों का महाकाव्य)। रचना का उद्देश जन-जागृति। समय- 20 वीं शती का पूर्वार्ध।

अगाल - मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तक गच्छ और कुन्दकुन्दान्वय के विद्वान श्रुतकीर्ति त्रैविद्यदेव के शिष्य। पिता-शान्तीश। माता-पोचम्बिका। जन्म-इंगेलेश्वर ग्राम (दक्षिण) में। राज-परिवार द्वारा सम्मानित। समय- 11 वीं शती का अंतिम चरण और 12 वीं शती का प्रारंभ। रचना चन्द्रप्रभपुराण (वि.सं. 1146) जिसमें 16 आश्वास हैं।

अच्युत नायक - समय 1572-1614 ई.। रघुनाथ नायक (1614-1633 ई.) तथा विजय राघव नायक (1633-1673 ई.) के राजगुरु रहे। इनके ग्रंथों के संरक्षण हेतु जो ग्रन्थालय तंजौर में बनाया गया वही आज सरस्वती महल के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। रचना- पारिजातहरण नामक 5 अंकों का नाटक।

अच्युत शर्मा- 'भागीरथीचंपू' के रचयिता। पिता-नारायण। माता-अन्नपूर्णा। इनके चंपू-काव्य का प्रकाशन, गोपाल नारायण कंपनी से हो चुका है।

अजयपाल - ई. 11 वीं शती। 'नानार्थसंग्रह' नामक कोश के कर्ता।

अजितदेव सूरि- चन्द्रगच्छीय महेश्वर सूरि के शिष्य। समय ई. 16 वीं शती। ग्रंथ आचारांगदीपिका नामक (शीलांकाचार्यकृत आचारांगविवरण के आधार पर विरचित टीका)।

अजितनाथ न्यायरत्न (म.म.)- बंगाली। 'बक-दूत' के रचयिता।

'अजितप्रभसूरि- ई. 13 वीं शती। पौर्णमिक गच्छीय जैनाचार्य। गुरुपरम्परा-चन्द्रसूरि, देवसूरि, तिलकप्रभ, वीरप्रभ, और अजितप्रभ। ग्रंथ- (1) शान्तिनाथचरित (5000 श्लोक) और (2) भावनासार।

अजितसेन (अजितसेनाचार्य) - ई 13 वीं शती। दक्षिणदेशान्तर्गत तुलुव प्रदेश के निवासी। सेनगण पोरारिगच्छ के मुनि। अलंकार-शास्त्र के वेत्ता। 1245 ई में रानी विठ्ठलाम्बा के पुत्र कामराय वंगनरेन्द्र प्रथम के लिए ग्रंथ-निर्माण का कार्य किया। ग्रंथ-शृंगारमंजरी और अलंकारचिन्तामणि (पांच परिच्छेद) तथा चिंतामणि-प्रकाशिका नामक टीका।

अण्णार्य (अण्णयाचार्य)- तत्त्वगुणादर्श' नामक चम्पू-काव्य के प्रणेता। समय 1675 ई. से 1725 ई. के आस-पास। पिता श्रीशैलवंशीय श्रीदास ताताचार्य। पितामह अण्णयाचार्य, जो श्रीशैल-परिवार के थे। अण्णार्य का यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। इस काव्य में अण्णार्य ने शैव व वैष्णव सिद्धांतों की अभिव्यंजना की है।

अणे, माधव श्रीहरि -लोकनायक बापूजी अणे के नाम से समूचे भारत में विशेषतः महाराष्ट्र में प्रसिद्ध। जन्मदिन दि 29 अगस्त 1880। जन्मस्थान- महाराष्ट्र के यवतमाल जिले का वणी नामक गांव। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के तेलगनावासी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर भी आपने ऋग्वेद का अध्ययन किया था। चंद्रपुर तथा नागपुर में शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात्, यवतमाल में वकालत एवं सार्वजनिक कार्य का प्रारंभ। लोकमान्य तिलक के अग्रगण्य अनुयायी के नाते, होमरूल-आंदोलन का प्रसार विशेष उत्साह से किया। फिर वकालत का त्याग कर, देशबंधु चित्तरंजन दास के स्वराज्य-पक्ष का प्रचारकार्य विदर्भ में किया। मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, पं. मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं के साथ आपने विविध प्रकार के राष्ट्रीय कार्यों में विदर्भ के नेता के नाते सहकार्य किया। महात्मा गांधी ने जब नमक-सत्याग्रह का आंदोलन शुरू किया, तब श्री. अणे ने जंगल-सत्याग्रह का स्वतंत्र आंदोलन विदर्भ में छेडा। इस सत्याग्रह में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक

डॉ. हेगडेवारजी, श्री अणे के सहकारी सत्याग्रही रहे। सन 1941 में आप वाइसराय की शासन-परिषद के सदस्य चुने गए थे, पर आगाखाँ-पैलेस में गांधीजी के उपवास के समय आपने वह उच्च पद छोड़ दिया। सन् 1943 में आप श्रीलंका में भारत सरकार के एजंट नियुक्त किए गए। स्वतत्रता के पश्चात् देश की विधान-निर्मात्री-सभा के भी आप सदस्य रहे। बाद में लोकसभा के भी सदस्य रहे। महाराष्ट्र में विदर्भ के पृथक् राज्य का आंदोलन भी आपने खड़ा किया था। सन 1951 में आप दीर्घ काल तक पुणे में अस्वस्थ रहे। शरीर की उस अत्यंत विकल अवस्था में, शरीर प्लैस्तर में पडा होते हुए भी, अन्तःकरण की शांति के लिए आपने अपने पूज्य गुरुदेव श्री लोकमान्य तिलक का संस्कृत पद्यात्मक चरित्र लिखने का सकल्प किया और पांच-छह वर्षों में अपना 'तिलक-यशोर्णव' नामक पद्यमय तिलक चरित्र पूर्ण किया। सन् 1960 में आपका देहात होने के पश्चात् सन् 1962 में इस ग्रंथ को साहित्य अकादमी का पुरस्कार दिया गया। पद्मविभूषण उपाधि भारत सरकार की ओर से विभूषित। राष्ट्रीय आंदोलनों में अग्रसर रहते हुए भी संस्कृत पांडित्य का रक्षण करते हुए संस्कृत में महत्त्वपूर्ण ग्रथ का निर्माण करना, बापूजी अणे की विशेषता थी। विदर्भ प्रदेश के प्राय सभी राजकीय, धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षणिक कार्यों को आपका सपूर्ण सहकार्य मिलता रहा। बापूजी अणे का अवातर मराठी-अंग्रेजी लेखन, 'अक्षरमाधव' नामक ग्रथ में सकलित किया गया है।

अतिरात्रयाजी - 'त्रिपुर-विजयचम्पू' नामक काव्य के रचयिता। 'नीलकंठ-विजयचपू' के रचयिता नीलकंठ दीक्षित के सहोदर भ्राता। समय 17 वीं शती का मध्य। इनका चपू-काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

अत्रि - ऋग्वेद के पांचवे मडल के 37, 43 एवं 76-77 वें सूक्त इनके नाम से हैं। इस मडल के अन्य सूक्त इनके गोत्रज ऋषियों के दृष्ट हैं। जन्मकथा इस भांति है-

प्रजापति ने साध्यदेवों सहित त्रिसंवत्सर नामक एक सत्र आरंभ किया। उसमें वाग्देवी प्रकट हुई। उसे देख प्रजापति और वरुण का मन विचलित हुआ। दोनों का वीर्य-पतन हुआ। वायु ने उसे अग्नि में डाला। उस अग्निज्वाला से भृग, और अंगारों से अगिरा ऋषि का जन्म हुआ। इन दो सुंदर बच्चों को देख कर वाग्देवी ने प्रजापति से कहा- "इन दोनों के समान तीसरा पुत्र आप मुझें दे।" प्रजापति ने स्वीकार किया, और प्रतिसूर्य ही जिसे कहा जाय, ऐसा पुत्र निर्माण किया। वही थे अत्रि (बृहद् देवता-9,101)।

दूसरी कथा- स्वायंभुव मन्वंतर में ब्रह्मा के नेत्र से इनका जन्म हुआ। ब्रह्मा के दस मानसपुत्रों में से एक। कर्दम प्रजापति की अनसूया नामक कन्या इनकी पत्नी थी। इन्होंने चतूरात्र नामक याग प्रारंभ किया (तै.सं.7.1.8)। किसी कारण कारावास भी भोगना पड़ा। अग्नि से अश्विनी की कृपा से बच पाये (ऋ. 1 118.7)।

सूर्यग्रहण संबंधी ज्ञान प्रथमत. इन्हें ही हुआ। इसी कारण ग्रस्त सूर्य को अत्रि ही वापस लाते हैं, यह धारणा बनी (ऋ.5 40.5 9)। अत्रिकुल के पुरुष, कवि थे और योद्धा भी। अत्रि का पर्जन्यसूक्त ओजस्वी है - ऋ.83। एक स्थान पर उन्होंने कहा है-

> विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां
> ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थे।
> अपव्रतान् प्रवसे वावृधानान्
> ब्रह्मद्विषः सूर्याद् यावयस्व।। (ऋ.5.42 9)

अर्थ - जो लोग स्तोत्र गाकर पेट भरते हैं पर कौड़ी का भी दानधर्म नहीं करते, देवताओं को संतुष्ट नहीं करते, उनका धन क्षण भर भी टिकने न दो। उसी भांति सन्मार्ग से भ्रष्ट, भरपूर बालबच्चे होने से मस्त, धर्म का (ज्ञान का) द्वेष करने वाले जो दुष्ट होंगे, उन्हे सूर्यप्रकाश से अंधकार में गाड दो।

अत्रि सप्तर्षियों में से एक हैं। वे अत्यंत कर्मनिष्ठ एवं तेजस्वी थे। उन्हें उन्नीसवें द्वापरयुग का व्यास कहा जाता है। अनसूया से दत्त, दुर्वास, सोम और अर्यमा नामक चार पुत्र एव अमला नामक एक कन्या उन्हें हुई। दाशरथी राम जब वनवास में थे, तब इनके आश्रम में भी गये थे। इस दपती ने उनका स्वागत किया। वहा से अगला मार्ग (राम-लक्ष्मण को) अत्रि ने ही दिखाया (वा.रा. 2-117-119)।

अत्रिसहिता एवं अत्रिस्मृति नामक दो ग्रंथ इनके नाम पर हैं। मनु ने अत्यत गौरव के साथ इनका मत स्वीकार किया है (3 16)। अत्रिसंहिता में 9 अध्याय हैं। योग, जप, कर्म-विपाक, प्रायश्चित आदि का विचार उनमें किया गया है। वे सूत्रकार भी हैं।

अधीरकुमार सरकार- ई 20 वीं शती। 'पाशुपत' नामक (एकांकी) तथा 'कचदेवयानी' नामक नाटक के प्रणेता। प. बंगाल में मेदिनीपुर के निवासी।

अनन्तकीर्ति- अनन्तकीर्ति नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। ये हैं- 'प्रामाण्यभंग' के रचयिता और 'सिद्धिप्रकरण' तथा सर्वज्ञसिद्धि के कर्ता (ई.8-9 वीं शती)। ये रचनाएं बृहत् वादिराज द्वारा उल्लिखित हैं। विद्यानंद नामक विद्वान इनके समकालीन थे।

अनंतदेव- ई. 13 वीं सदी। भास्कराचार्य के वंश के एक ज्योतिषी। 'ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त' के बीसवें अध्याय और बृहज्जातक पर इन्होंने टीकाएं लिखी हैं।

अनन्तदेव - ई. 16 वीं शती का उत्तरार्ध। गुरु-रामतीर्थ। कृतियां- (1) मनोनुरंजन अथवा हरिभक्ति (नाटक) और (2) श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका, जो विष्णुभक्ति एवं शृंगार-रसप्रधान रचना है।

अनंतदेव- ई. 17 वीं शती। पैठन (महाराष्ट्र) के एकनाथ महाराज के बाद चौथे पुरुष। पिता का नाम आपदेव। आपदेव ने 'मीमांसान्यायप्रकाश' नामक ग्रंथ लिखा है। मीमांसाशास्त्र का अध्ययन इस परिवार में परंपरा से चल रहा था। इनके आश्रयदाता, अलमोडा एवं नैनीताल के चन्द्रवंशीय शासक बाजबहादुर थे (17 वीं सदी)। उन्हींकी प्रेरणा से अनंतदेव ने 'राजधर्मकौस्तुभ' नामक ग्रंथ लिखा- ''बाजबहादुरचद्र-भूपतेस्तस्यभूरियशसे प्रतन्यते। राजधर्मविषयेऽत्र कौस्तुभेऽनेकपद्धतियुतोऽर्थ-दीधिति।।'' इन्होंने राज-धर्म के पूर्वस्वीकृत सिद्धान्तों का समावेश करते हुए, अपने इस ग्रंथ की रचना की है। अनन्तदेव की अन्य रचनाएं हैं- सैनिक शास्त्र तथा त्रिवर्णिक-धर्म। इनका रचना-काल 1662 ई. के आसपास है।

भारत के सर्वोच्च न्यायलय ने इनके 'स्मृतिकौस्तुभ' नामक ग्रंथ को प्रमाणभूत माना है। दत्तक विधान पर इसमें उल्लेख है। संस्कारकौस्तुभ, अग्निहोत्र-प्रयोग आदि ग्रथ भी इन्होंने लिखे हैं। ये कृष्णभक्तिचद्रिका नामक नाटक के भी प्रणेता हैं।

अनन्तनारायण- बृहदम्बा तथा मृत्युजय के पुत्र। रचना-'सराफोजीचरितम्'। 'पंचरत्नकवि' की उपाधि प्राप्त। ई 19 वीं शती।

अनन्तनारायण- ई 18 वीं शती। ये पाण्ड्य-प्रदेशीय थे। इन्हें केरलनरेश मानविक्रम तथा त्रिचूरनरेश रामवर्मा द्वारा सम्मानित किया गया था। इनका 'शृगारसर्वस्व' नामक भाण प्रसिद्ध है।

अनंतभट्ट- 'भारतचपू' तथा 'भागवतचपू' के रचियता। समय अज्ञात। कहा जाता है कि भागवतचंपू' के प्रणेता अभिनव कालिदास की प्रतिस्पर्धा के कारण ही इन्होंने उक्त दो चंपू-काव्यों का प्रणयन किया था। इस दृष्टि से इनका समय 11 वीं शती है। 'भारतचंपू' पर मानवदेव की टीका प्रसिद्ध है, जिसका समय 16 वीं शती है। प रामचंद्र मिश्र की हिन्दी टीका के साथ 'भारतचंपू' का प्रकाशन, चौखंबा विद्याभवन से 1957 ई. में हो चुका है।

अनन्तवीर्य (बृहद् अनन्तवीर्य)- अनन्तवीर्य नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें से हुम्मवंशी पचवस्तिवर्ती प्रांगण के पाषाण-लेख में (ई.1077) अकलंक-सूत्र के वृत्तिकर्ता के रूप में इनका नामोल्लेख है। ये द्रविडसंघ के आचार्य-ग्रथकार रहे हैं। ये वादिराज के दादागुरु और श्रीपाल के सधर्मा थे। समय ई. 10-11 वीं शती। रविभद्र के शिष्य। रचनाएं सिद्धिविनिश्चय-टीका और प्रमाण-संग्रह-भाष्य या प्रमाणसंग्रहालंकार (दार्शनिक ग्रंथ)। मणिप्रवाल की तरह इनकी गद्य-पद्यमय शैली चंपूकाव्य जैसी है। अकलंक के सिद्धिविनिश्चिय की टीका करते समय इन्होंने प्रकरणगत अर्थ को स्वरचित श्लोकों में व्यक्त किया है।

अनंतवीर्य- समय लगभग 11 वीं सदी। जैनधर्मी दिगंबरपंथी आचार्य। इन्होंने परीक्षामुख नामक ग्रंथ पर प्रमेयरत्नमाला एवं अकलक के ग्रथ पर न्यायविनिश्चयवृत्ति नामक टीकाएं लिखी हैं।

अनन्ताचार्य- 'प्रपन्नामृतम्' काव्य के रचयिता। इसमें दक्षिण भारत के अलवार-संप्रदाय के कतिपय साधुओ का चरित्र ग्रंथित है।

अनन्ताचार्य- मैसूर राज्य के उदयेन्द्रपुर-निवासी। इन्होंने 'यादव-राघवपाण्डवीयम्' नामक काव्य की रचना की। भगवान कृष्ण, राम, तथा पांडवचरित्र विषयक तीन अर्थों की सभग और अभग श्लेषद्वारा अभिव्यक्ति यह इस काव्य की अनोखी विशेषता है।

अनंताचार्य (अनंत) - समय - ई. 18 वीं शती। काण्ववंशीय ब्राह्मण पडित। काण्वसहिता (शुक्ल यजुर्वेद) का भाष्य (भावार्थदीपिका) इनकी प्रमुख रचना है। इनके अन्य ग्रंथ हैं- (1) शतपथब्राह्मण भाष्य। इसके 13 वें अर्थात् अष्टाध्यायीकाण्ड के भाष्य का एक लेख मद्रास में है। (2) कण्वकण्ठाभरण। इसके हस्तलेख भी मद्रास में हैं। (3) पदार्थ-प्रकाश नामक याजुष प्रातिशाख्य-भाष्य और (4) भाषिक-सूत्र-भाष्य।

इन कृतियों में से काण्व-संहिता के उत्तरार्ध पर विरचित भाष्य-ग्रंथ में अनन्ताचार्य का मातृ-पितृनाम, निवास-स्थान इत्यादि विषयक कुछ जानकारी प्राप्त होती है। तदनुसार पिता नागदेव या नागेश भट्ट। माता-भागीरथी और वे काशी में रहते थे। अनंताचार्यजी स्वय को प्रथम शास्त्रीय कहते हैं। काण्व-संहिता के केवल उत्तरार्ध पर भाष्य-रचना करने का कारण यह बतलाया गया है कि केवल पूर्वार्ध पर ही सायणाचार्यजी का भाष्य उपलब्ध है, उत्तरार्ध पर नहीं। किन्तु हाल की में सपूर्ण काण्वसंहिता पर सायणाचार्यजी की भाष्यरचना उपलब्ध होने का दावा कुछ अभ्यासको ने किया और तदनुसार ग्रथ प्रकाशित भी हुआ है। इससे यह बात स्पष्ट है कि अनन्ताचार्यजी को काण्वसहिता का सायणाचार्यविरचित समग्र भाष्य उपलब्ध नहीं था।

अनन्ताचार्यजी की भाष्य-रचना पर महीधराचार्यजी (माध्यन्दिनसंहिता के भाष्यकार) का प्रभाव है।

श्रौत अर्थ के अतिरिक्त कई मन्त्रों में अनन्ताचार्यजी ने पौराणिक अर्थ दिखाया है। इन्होंने ब्राह्मण-ग्रंथ का गहरा अध्ययन किया था। संभवत वे माध्व-संप्रदाय के थे।

अनन्ताचार्य- समय- 1874-1942 ई.। श्री रामानुज सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित, महान दार्शनिक तथा धर्मप्रचारक थे। वे कांचीवरस्थ प्रतिवदि-भयंकर मठ के अधिपति थे। इन्होंने अपने मत के प्रचारार्थ 'मजुभाषिणी' नामक पत्रिका का अनेक वर्षो तक सम्पादन और भारत-भ्रमण किया। 'संसारचरितम्' और 'वाल्मीकि-भावप्रदीप', इनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इनकी अन्य रचनाएं हैं- वासिष्ठचरितम् तथा एकांतवासी योगी(अंग्रेजी काव्य (हरमिट्) का अनुवाद)।

अनंतार्य- ई. 16 वीं सदी। कर्नाटक में मेलकोटे में निवास। इन्होंने ज्ञानयाथार्थ्यवाद, प्रतिज्ञावादार्थ, ब्रह्मलक्षणनिरूपण आदि ग्रंथों की रचना की है।

अनन्तालवार- इन्होंने रामशास्त्री के शतकोटि का खण्डन करने हेतु न्यायभास्कर की रचना की। इसका खडन राजशास्त्रीगल ने अपने 'न्यायेन्दुशेखर' में करते हुए शैवाद्वैत-मत की स्थापना की।

अनादि मिश्र- ई 18 वीं शती। भारद्वाज गौत्रीय। खडपारा (उत्कल) के राजा नारायण मंगपारा द्वारा सम्मानित। आप अध्यापन भी करते थे। पिता-शतंजीव (मुदितमाधव गीतिकाव्य के कर्ता)। पितामह-मुकुन्द। इनके एक पूर्वज दिवाकर कविचन्द्र राय ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'प्रभावती' नाटक सुविख्यात है। कृतिया-मणिमाला (नाटिका), राससंगोष्ठी (सगीत) और केलिकल्लोलिनी (काव्य)।

अनुभूतिस्वरूपाचार्य- एक प्रकाण्ड वैयाकरण। इन्होंने 'सारस्वतप्रक्रिया', 'आख्यातप्रक्रिया' और 'धातुपाठ' नामक ग्रथो का प्रणयन किया। कहते हैं- इन्हें साक्षात् देवी सरस्वती से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त हुआ था। अपने व्याकरण-ग्रथों का प्रसार करने हेतु वे विव्दन्मण्डली में भाषण देते थे तथा अपना नया व्याकरण प्रस्तुत करते थे।

एक समय भाषण करते समय वे गलत प्रयोग कर बैठे। तब विद्वन्मण्डली ने परिहास के साथ उस प्रयोग का आधार बताने के लिये कहा। आचार्य प्रमाद कर चुके थे। अत आधार बताने में स्वयं को असमर्थ पाकर, 'कल बताऊंगा' ऐसा आश्वासन दिया। बाद में सरस्वती-मन्दिर में जाकर उन्होंने देवी की प्रार्थना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने उनका मार्गदर्शन किया। दूसरे दिन विद्वन्मण्डली में उन्होंने अपना उत्तर बताया। उनके बताए समाधान से सब प्रसन्न हुए।

अन्नंभट्ट- ई 17 वीं सदी का उत्तरार्ध। 'तर्कसग्रह' नामक एक अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ के रचयिता। जन्म-तेलंगणा के गरिकपाद ग्राम में। पिता-तिरुमलाचार्य, जिनकी उपाधि अद्वैतविद्याचार्य की थी। अन्नभट्ट ने काशी में जाकर विद्याध्ययन किया था। इन्होंने अनेक दार्शनिक ग्रथो की टीकाए लिखी हैं, पर इनकी प्रसिद्धि 'तर्कसग्रह' के कारण ही है जिसकी 'दीपिका' नामक टीका भी इन्होंने लिखी है। इनके अन्य टीका-ग्रंथो के नाम हैं- राणकोज्जीवनी (न्यायसुधा की विशद टीका), ब्रह्मसूत्रव्याख्या, अष्टाध्यायी-टीका, उद्योतन (कैयटप्रदीप पर व्याख्यान ग्रंथ) और सिद्धान्त, जो न्यायशास्त्रीय ग्रथ अर्थात् जयदेव विरचित 'मण्यालोक' की टीका है।

इनके 'तर्कसंग्रह' पर 25 टीकाएं तथा 'दीपिका' पर 10 व्याख्यान प्राप्त होते हैं। इनमें गोवर्धन मिश्र कृत 'न्यायबोधिनी', श्रीकृष्ण धूर्जटि दीक्षित-रचित 'सिध्दांतचंद्रोदय', चंद्रजसिंहकृत 'पदकृत्य' तथा नीलकंठ दीक्षित रचित 'नीलकंठी' प्रभृति टीकाएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

अन्नदाचरण ठाकुर तर्कचूडामणि- जन्म सन् 1862 में सोमपारा ग्राम (बगाल), जिला नोआखाली में हुआ था। कलकत्ता और वाराणसी में इन्होंने अध्ययन किया। काशी के विद्वत्-समाज ने इन्हें तर्कचूडामणि की उपाधि प्रदान की। ये मीमासा, साख्य और योग के ज्ञाता थे। कुछ काल के लिये ये बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। आपने 'सुप्रभातम्' नामक एक पत्रिका का भी कुशल संपादन किया। आप अनेक सरस लघुगीतों के प्रणेता थे। आपकी उल्लेखनीय रचनाए इस प्रकार हैं - प्रणति, प्रार्थना, आशा, शिशुहास्य, वनविहंग, निद्रा, तदतीतं, कल्पना आदि लघुगीत, रामाभ्युदयम् और महाप्रस्थानम् (दोनों महाकाव्य), ऋतुचित्र और काव्यचन्द्रिका (काव्यशास्त्र से सबधित रचनाए) किमेष भेद. (सामाजिक रचना), तत्त्वसुधा नामक साख्यकारिका की टीका, न्यायसुधा और वैशेषिकसुधा।

अत्रैयाचार्य- आपने अपने 'रामानुजविजयम्' नामक काव्य में रामानुजाचार्य का चरित्र ग्रथित किया है।

अपराजित सूरि- अपरनाम श्री विजय या विजयाचार्य। यापनीय सघ के जैन आचार्य। चन्द्रनन्दि महाकर्म प्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेव सूरि के शिष्य। समय ई 9 वीं शताब्दी। रचनाए-शिवार्य की भगवती-आराधना पर विजयोदया नामक बृहत् टीका तथा दशवैकालिक सूत्र पर टीका।

अप्पय दीक्षित- ई 17-18 वीं शती। द्रविड ब्राह्मण। पिता-नारायण दीक्षित। बारह वर्ष की आयु में पिता के पास अध्ययन पूर्ण। पिता व पितामह अद्वैती होने से आपने अद्वैत मत का प्रसार किया, और श्रीशंकाराचार्य की अद्वैत-परपरा के सर्वश्रेष्ठ आचार्य बने। शैव होने पर भी अप्पय अनाग्रही थे।

मुरारौ च पुरारौ च न भेद पारमार्थिक ।
तथापि मामकी भक्तिश्चन्द्रचूडे प्रधावति।।

अर्थ- विष्णु व शिव में परमार्थत भेद नहीं, पर मेरी भक्ति चंद्रशेखर-शिव के प्रति ही है।

शैव-सिद्धान्त की स्थापना हेतु आपने शिवार्क-मणिदीपिका, शिवतत्त्वविवेक, शिवकर्णामृत आदि ग्रंथों का प्रणयन किया। शांकरसिद्धान्त में वाचसपति मिश्र, रामानुजमत में सुदर्शन एवं माध्वमत में जयतीर्थ का जो स्थान है, वही स्थान श्रीकठ संप्रदाय में, 'शिवार्क-मणिदीपिका' की रचना के कारण अप्पय दीक्षित का माना जाता है।

कुवलयानद, चित्रमीमांसा आदि साहित्यिक ग्रंथों के कर्ता अप्पय दीक्षित, कट्टर शिवभक्त थे। एक समय वे अनवधान से विष्णु-मंदिर में गए। वहां विष्णु-मूर्ति के सम्मुख ही उन्होंने शिवाराधना शुरू की। शिवभक्ति में वे इतने तल्लीन हो गए कि विष्णुमूर्ति शिवलिंग में परिवर्तित हो गई। दर्शनार्थी लोगों ने यह चमत्कार देखा तथा उन्हें बताया। तब उन्हें सत्य प्रतीत हुआ। फिर उन्होंने विष्णुस्तुति प्रारंभ की तथा उसमें लीन हो

गए। तब थोड़े ही समय में मंदिर में फिर विष्णुमूर्ति विराजमान हुई दिखाई दी। दर्शनार्थी लोग यह देख बड़े आश्चर्यचकित हुए तथा अप्पय दीक्षित के प्रति उनके मन में आदर की वृद्धि हुई।

प्रसिद्ध वैयाकरण, दार्शनिक एवं काव्यशास्त्री अप्पय दीक्षित, संस्कृत के सर्वतंत्रस्वतंत्र विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने विविध विषयों पर 104 ग्रंथों का प्रणयन किया है। ये दक्षिण भारत के निवासी तथा तंजौर के राजा शाहजी भोसले के सभा-पंडित थे। इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है- (1) अद्वैत वेदात विषयक 6 ग्रंथ, (2) भक्तिविषयक 26 ग्रंथ, (3) रामानुज-मत-विषयक 5 ग्रंथ, (4) मध्वसिद्धातानुसारी 2 ग्रथ, (5) व्याकरणसंबंधी ग्रथ-नक्षत्रवादावली, (6) पूर्वमीमासाशास्त्रसंबंधी 2 ग्रथ, (7) अलकार-शास्त्र विषयक 3 ग्रथ-वृत्तिवार्तिक, चित्रमीमांसा तथा कुवलयानंद। इनमें से प्रथम दो ग्रंथ अधूरे रह गए। तीसरा ग्रंथ 'कुवलयानंद', अप्पय दीक्षित की अलकारविषयक अत्यंत लोकप्रिय रचना है। इसमें शताधिक अलकारों का निरूपण है। इन ग्रंथो के अतिरिक्त इनके नाम से प्राकृतमणिदीप और वसुमतीचित्रसेनीय नामक दो नाटक भी हैं।

अप्पय के गुणो पर लुब्ध होकर, चद्रगिरि (आध्र) के राजा वेंकटपति रायलु ने उनके परिवार एव विद्यार्थियों के लिये अग्रहार दिया था। दक्षिण की अनेक राजसभाओ में भी उन्हें बिदागी एवं मानसम्मान प्राप्त होता रहा। आपने कावेरी के किनारे अनेक यज्ञ किये। काशी मे वास्तव्य किया। वहीं पर पडितराज जगन्नाथ से भेंट हुई। जगन्नाथ पडित ने इनकी 'चित्रमीमासा' का खडन किया है। दार्शनिक दृष्टि से वे निर्गुणब्रह्मवादी थे पर उस ब्रह्म की उपलब्धि के लिये साधन के रूप में उन्होने सगुणोपासना स्वीकार की। अप्पय दीक्षित के समय के बारे में विद्वानों में मतभेद है।

अप्पय्याचार्य- मृत्यु- ई 1901 मे। रचना-'अनुभवामृतम्' जिसमें साख्य, योग तथा वेदान्त का समन्वय किया गया है।

अप्पा तुलसी (काशीनाथ)- रचनाएं- सगीतसुधाकर, अभिनवतालमजरी और रागकल्पद्रुमाकुर (ई. 1914)। तीनों ग्रंथ सगीतशास्त्र परक हैं।

अप्पा दीक्षित - (अपर नाम अप्पा शास्त्री अथवा पेरिय अप्पाशास्त्री)। तजौर के निकट किलयूर अग्रहार के निवासी। कवितार्किक-सार्वभौम की उपाधि से मण्डित। तंजौरनरेश शाहजी (1684-1711 ई) से समाश्रयप्राप्त कवि। पिता-चिदम्बरेश्वर दीक्षित, जिन्होंने कामदेव नामक विद्वान् को शास्त्रार्थ में जीतने के कारण, तंजौर नरेश से स्वर्ण-शिबिका और एरकरण का अग्रहार पाया था। गुरु-कृष्णानन्द देशिक, पिल्लेशास्त्री और उदयमूर्ति। रचनाएं - शृंगारमंजरी-शाहराजीय, मदनभूषण (भाण), गौरीमायूर (चम्पू) और आचार-नवनीत।

अभयचन्द्र (सिद्धांतचक्रवर्ती)- मूलसंघ देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कुन्दकुन्दान्वय की इंगेलेश्वर शाखा के श्रीसमुदाय में हुए माघनदि भट्टारक के शिष्य। बालचंद्र पण्डितदेव के श्रुतगुरु। समय-ई. 14 वीं शती। कर्नाटकवासी। ग्रंथ-गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की मन्दप्रबोधिका टीका तथा कर्मप्रकृति (गद्य)। इस पर अभयचन्द्र के शिष्य केशव ने टीका लिखी है।

अभयदेव - ई 13 वीं शती के एक जैन कवि। इन्होंने 19 सर्गों में 'जयंतविजय' नामक महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में मगध-नरेश जयंत की विजय-गाथा, 2,000 श्लोकों में वर्णित है।

अभयदेव सूरि- धारनिवासी सेठ धनदेव के पुत्र। प्रारम्भ में चैत्यवासी, पर बाद में सुविहित मार्गी वर्धमान सूरि के प्रशिष्य और जिनेश्वर सूरि के शिष्य। पाटन में स्वर्गवास (वि.सं 1135)। समय-वि की 11-12 वीं शती। ग्रंथ- (1) स्थानागवृत्ति (वि स 1120) द्रोणाचार्य के सहयोग से, 14,250 श्लोक प्रमाण। (2) समवायांगवृत्ति (वि.सं 1120) अनहिलपाटन में समाप्त, 3,575 श्लोक प्रमाण। (3) व्याख्याप्रज्ञावृत्ति (वि स 1128) 18,616 श्लोक प्रमाण। (4) ज्ञाताधर्मकथाविविरण (वि सं 1120)- 3800 श्लोक प्रमाण। (5) उपासकदशागवृत्ति, (6) अतकृद्दशावृत्ति, (7) अनुत्तरोपपातिकदशावृत्ति, (8) प्रश्नव्याकरणवृत्ति, (9) विपाकवृत्ति और (10) औपपातिकवृत्ति। ये सभी वृत्तिया शब्दार्थप्रधान हैं। कहीं-कहीं प्राकृत उध्दरण भी हैं। सास्कृतिक सामग्री से सभी ओतप्रोत हैं।

अभयपण्डित- ई 17 वी शती। गुरु-सोमसेन। जैनपंथी। ग्रथ- 'रविव्रतकक्ष'।

अभिनंद- 'रामचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता। समय ई 9 वीं शताब्दी का मध्य। पिता-शतानंद, वे भी कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता का नाम श्रीहारवर्ष लिखा है। 'रामचरित' महाकाव्य में किष्किधाकाड से लेकर युद्धकाड तक की कथा 36 सर्गों मे वर्णित की गई है। यह ग्रथ अधूरा है। इसकी पूर्ति के लिये दो परिशिष्ट (4-4 सर्गों के) है। इनमें से प्रथम परिशिष्ट के रचयिता स्वय अभिनद हैं। द्वितीय परिशिष्ट किसी 'कायस्थकुलतिलक' भीम कवि की रचना है। अन्य कृतिया-भीमपराक्रम (नाटक) और योगवासिष्ठ-सक्षेप।

अभिनंदन - 'गौड अभिनंद' के नाम से विख्यात काश्मीरी पंडित। समय- ई 10 वीं शती। इन्होंने 'कादबरीसार' नामक 10 सर्गों का एक महाकाव्य लिखा है। पिता-प्रसिद्ध नैयायिक जयत भट्ट। 'कादंबरीसार' में अनुष्टुप् छंद में 'कादंबरी' की कथा सगुंफित की गई है। क्षेमेन्द्र ने इनके अनुष्टुप् छंद की प्रशसा की है। 'कादंबरीसार' का प्रकाशन, काव्यमाला संख्या 11 में मुंबई से हो चुका है। अभिनंद द्वारा प्रणीत एक और ग्रंथ है- 'योगवासिष्ठसार'।

अभिनव कालिदास- उत्तरी पेन्नार के किनारे स्थित विद्यानगर

के राजा राजशेखर के राजकवि। समय 11 वीं शताब्दी। इनके द्वारा रचित दो चंपू-काव्य उपलब्ध होते हैं- (1) भागवतचंपू तथा (2) अभिनवभारतचपू। भागवतचपू का प्रकाशन गोपाल नारायण कपनी, बुक-सेलर्स, कालबादेवी, मुबई, से 1929 ई में हुआ है। द्वितीय ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है। इनकी कविता में उत्तान श्रृगार का बाहुल्य है तथा इनके श्रृंगार-वर्णन पर राज-दरबार की विलासिता का पूर्ण प्रभाव है।

अभिनवगुप्त - भरत कृत नाट्यशास्त्र के प्रणयन के पश्चात् शताब्दियो तक इस विषय पर जो चिन्तन हुआ, वह लेखबद्ध रूप में प्राय अनुपलब्ध है। कवि तथा नाटककार व्यवहार में नाट्यसिद्धान्तों का अनुसरण करते रहे तथा प्रसगवश किसी शास्त्रीय विषय पर अभिमत भी प्रकट करते रहे। इस चिन्तन-परम्परा का परिचय, आचार्य अभिनवगुप्त की 'अभिनवभारती' नामक नाट्यशास्त्र की टीका से मिलता है। अपने विषयगत मौलिक विवेचन के कारण, उनके द्वारा व्याख्यात तथा निर्णीत सिद्धान्तो को प्रमाणभूत समझा जाता है। नाट्य तथा काव्यशास्त्र के परवर्ती चितक इनके ऋणी हैं। आचार्य अभिनवगुप्त का समय 950 ई से 1030 ई है।

इनका वश शिव-भक्ति के लिए प्रसिद्ध था। वे शैव-प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्ध तथा मान्य आचार्य थे। उनका सारा चितन इसी दर्शन से प्रभावित है। वे नाट्यशास्त्र के 36 अध्यायो की सगति, शैव दर्शन के 36 तत्त्वो से बिठलाते हैं। उनकी अधिकाश रचनाए उक्त दर्शन की विविध शाखाओं पर हैं। साहित्यशास्त्र के क्षेत्र मे ध्वन्यालोकलोचन तथा अभिनवभारती नामक दो टीका-ग्रथो के आधार पर ही वे आचार्य-पद पर अभिषिक्त हुए। वे प्राचीन परम्परा को उसके मूलभुत प्रमाणित रूप में जानते थे, जब कि परवर्ती आचार्य इन परपराओं का अधिकाश अभिनवगुप्त के उद्धरणो से जानत है। नाट्य के प्राणभूत तत्त्व 'रस' के पारपारिक विवेचन की समीक्षा के उपरान्त अभिनवगुप्त ने ही इसके तात्त्विक स्वरूप को स्पष्टतापूर्वक उद्घाटित तथा प्रतिष्ठित किया।

आचार्य अभिनव गुप्त के कथन से ज्ञात हाता है कि इनके पूर्वज अतर्वेद (दोआब) के निवासी थे, किंतु बाद मे काश्मीर में जाकर बस गए। पिता-नृसिह गुप्त। पितामह-वाराह गुप्त। पिता का अन्य नाम 'चुखल', और माता का विमला या विमलकला। ब्राह्मण-कुल। आपने अपने 13 गुरुओ का विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें प्रसिद्ध है- नृसिहगुप्त (इनके पिता), व्योमनाथ, भूतिराजतनय, इन्दुराज, भृतिराज और भट्टतौत। आप परम शिवभक्त तथा आजीवन ब्रह्मचारी थे।

इन्होंने अनेक विषयो पर 41 ग्रथो का प्रणयन किया है। उनमें से प्रकाशित 11 ग्रथो के नाम हैं- 1 बोधपचदशिका। (शिवभक्तिविषयक 15 श्लोक), 2 परात्रिंशिका-विवरण (तत्रशास्त्र का ग्रथ), 3 मालिनीविजयवार्तिक (मालिनीविजयतंत्र नामक ग्रथ का वार्तिक), 4 तत्रालोक (तत्रशास्त्र का आकर ग्रथ) 5-6 तत्रसार, तंत्रवटधानिका, 7-8. ध्वन्यालोकलोचन व अभिनव-भारती (ध्वन्यालोक' व भरत-नाट्य-शास्त्र की टीकाए), 9. भगवद्गीतार्थसग्रह (गीता की व्याख्या), 10 परमार्थसार (105 श्लोको का शैवागम-ग्रथ) और 11. प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (उत्पलाचार्यकृत ईश्वरप्रत्यभिज्ञासूत्र की टीका। यह ग्रथ 4 हजार श्लोकों का है)। जयरथ ने 'तंत्रालोक' पर 'विवेक' नामक टीका की रचना की है।

अभिनवगुप्त के प्रकाशित उक्त 11 व शेष 39 अप्रकाशित ग्रथो को 3 वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है- दार्शनिक, साहित्यिक और तात्रिक। इनकी लेखन-साधना की अवधि, 980 ई से लेकर 1020 ई तक सिद्ध होती है। आप उच्चकोटि के कवि, महान् दार्शनिक एव साहित्य-समीक्षक हैं। इन्होने रस को काव्य में प्रमुख स्थान देकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की है। इनका रसविषयक सिद्धान्त, 'अभिव्यक्तिवाद' कहा जाता है जो मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधारित है। इन्होंने व्यग-रस को काव्य की आत्मा माना है। अभिनवगुप्त, काश्मीरीय प्रत्यभिज्ञार्शन के महान् आचार्य हैं। अपने 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' नामक ग्रथ मे, इन्होने अपन वश का वर्णन किया है। शकराचार्य से उनका वादविवाद हुआ, तथा आचार्य द्वारा हराये गए गुप्तजी उनके शिष्य हुए ऐसो भी एक कथा प्रचलित है पर उनका शिष्यत्व ऊपरी दिखावा मात्र था। हृदय मे वे आचार्य से बडे अप्रसन्न थे, तथा अपनी हार का बदला लेना चाहते थे। तब जारणमारणादि उपाय से उन्होंने शकराचार्य को भगदर से पीडित किया, आचार्य बडे त्रस्त हुए। रोग ने हटने का नाम नही लिया। सब शिष्यगण भी दु खित हुए। अन्त मे इन्द्र द्वारा प्रेरित अश्विनीकुमार प्रकट हुए, तथा उन्होंने इस रोग का भेद बतलाया। आचार्य के शिष्यो ने देववैद्यो द्वारा बताए हुए मात्रिक उपाय से रोग हटाया। रोग के दूर होते ही अभिनवगुप्त की तत्काल मृत्यु हो गई।

अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य- देशीगण के जैन आचार्य। बेलुगुलपुर के निवासी। नैयायिक और तार्किक। इगुलेश्वर बलि के आचार्य। श्रवणबेलगोल पट्ट पर आसीन। जन्म-दक्षिण भारत के सिहपुर मे। गगवश के राजपुत्र देवराज द्वारा सम्मानित (शक स 1416 ई सन् 1564)। रचनाए 1 गीतवीतराग (24 प्रबध)। 2 प्रमयरत्नमालालकार (नव्यन्याय शैली में लिखी प्रमेयरत्नमाला की टीका)।

अभिनव रामानुजाचार्य- कार्वेट-निवासी वादिभास्कर-वशीय। पिता-वेकटराय। इनके द्वारा रचित महाकाव्य 'श्रीनिवास-गुणाकार-काव्यम्' मे 17 सर्ग हैं। प्रथम आठ सर्गों की टीका कवि ने स्वय लिखी तथा शेष सर्गो की इनके बन्धु वरदराज ने।

अमरकीर्ति - ऐन्द्रवंश के एक प्रसिद्ध विद्वान। त्रैविद्य उपाधिप्राप्त। समय- 13-14 वीं शती। ग्रंथ- धनंजय कवि की नाममाला का भाष्य। इस भाष्य में यशः कीर्ति, अमरसिंह, हलायुध, इन्द्रनंदी, सोमदेव, हेमचन्द्र, आशाधर आदि कवि उल्लिखित हैं।

अमरचन्द्र-सूरि (कविसार्वभौम)- जन्मत ब्राह्मण, पर बाद में जैनधर्म के श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। आपने वायडगच्छ के जिनदत्त सूरि के शिष्य कविराज अरिसिंह से सारस्वत-मंत्र की प्राप्ति की, जिसकी साधना पद्मश्रावक के भवन के एकान्त भाग में की थी। इनके पाण्डित्य से आकृष्ट होकर, वाघेलावशी गुर्जरेश्वर बीसलदेव (ई. 14 वीं शती) ने इन्हें अपनी राजसभा में निमन्त्रित किया था। उन्होंने वहा 108 समस्याओं की पूर्ति करते हुए राजसभा को विस्मित कर दिया। इनके आशुकवित्व से वस्तुपाल भी प्रभावित थे। इन्होंने यगियाबाडा में मूर्ति-प्रतिष्ठापित की। समय-13 वीं शती।

ग्रंथ- 1 चतुर्विशति जिनेन्द्र-सक्षिप्तचरितानि (24 अध्याय और 1802 पद्य), 2 पद्मानन्द महाकाव्य (जितेन्द्रचरित - 18 सर्ग और 6381 पद्य), 3 बालभारत (18 पर्व, 44 सर्ग, 6950 श्लोक), 4 काव्यकल्पलता या कवि-शिक्षा, 5 काव्य-कल्पलतावृत्ति, 6 सुकृत सकीर्तन, 7 काव्यकल्पलता मजरी, 8. स्यादिशब्दसमुच्चय, 9. काव्यकल्पलतापरिमल, 10 काव्यकलाप, 11 छन्दोरत्नावली, 12. अलकार-प्रबोध और 13. सूक्तावली।

अमरदत्त- ई. 10 वीं शती के पूर्व। बगाल निवासी। 'अमरमाला' नामक कोश के कर्ता।

अमरदेवसूरि - चन्द्रगच्छ के एक विद्वान। इस गच्छ में वर्धमान सूरि की शिष्य परंपरा में पद्मेन्दु के शिष्य। समय ई 13 वीं शताब्दी। आप का सफल महाकाव्य, लोककथा पर आधारित एव सुप्रसिद्ध पंच महाकाव्यों के संदर्भो से प्रभावित है।

अमरमाणिक्य- ई. 16 वीं शती नोआखाली के राजा लक्ष्मणमाणिक्य के पुत्र। वैकुण्ठविजय (नाटक) के प्रणेता।

अमरुक (अमरु) - 'अमरु-शतक' नामक प्रसिद्ध शृगारिक मुक्तक काव्य के रचयिता। इसमें एक सौ से अधिक स्फुट पद्य हैं। इनके जीवन-वृत्त के विषय में अधिकृत जानकारी प्राप्त नहीं होती। अन्य ग्रथों में उद्धृत इनके पद्यों के आधार पर इनका समय 750 ई. के पूर्व निश्चित होता है।

अमरुक से संबंधित निम्न दो प्रशस्तियां प्राप्त होती हैं।

भ्राम्यन्तु मारवग्रामे विमूढा रसमीप्सवः।
अमरुद्देश एवासौ सर्वतः सुलभो रस॰।।
अमरुक-कवित्व-डमरुक नादेन विनिहता न संचरति।
श्रृंगारभणितिरन्या धन्यानां श्रवणविवरेषु।।
(सूक्ति-मुक्तावली 4-101)

एक किंवदंती के अनुसार अमरुक जाति के स्वर्णकार थे। ये मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं। अपने सुप्रसिद्ध मुक्तक काव्य में इन्होंने तत्कालीन विलासी जीवन (दांपत्य एवं प्रणय-व्यापार) का सरस चित्र खींचा है, जिसे परवर्ती साहित्याचार्यों ने अपने लक्षणों के अनुरूप देखकर, लक्ष्य के रूप में उद्धृत किया है।

शांकरदिग्विजय में कहा गया है कि शंकराचार्य ने जिस मृत राजा की देह में प्रवेश किया था, उसका नाम अमरु था। कहा जाता है कि अमरु की देह में प्रवेश करने के बाद, वात्स्यायन-सूत्र के आधार पर शंकराचार्य ने कामशास्त्र की विविध अवस्थाओं और प्रसगों पर सौ श्लोक लिखे। अमरुशतक संस्कृत प्रणय-काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है। दीर्घ और नादमधुर छंद इसकी विशेषता है।

अमरु के अनुसार प्रणय ही सर्वंकश देवता है। एक मुग्धा का शब्दचित्र प्रस्तुत है :-

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिल॰ काल॰ किमारभ्यते
मान धत्स्व, धृतिं बधान, ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना
नीचै॰ शस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरःश्रोष्यति।।

अर्थ- हे मुग्धे, तू अपना समय मुग्धावस्था (भोलेपन) में ही क्यों व्यतीत कर रही है? अरी प्रेमिके, जरा रूठ, धैर्य रख और प्रियतम से सरलता को दूर रख। सखी के इस उपदेश पर, प्रेयसी मुद्रा पर भय दिखाते हुए सखी से बोली- अरी जरा धीरे बता हृदय में बसा मेरा प्राणेश्वर सन लेगा।

अमरसिंह- अमरकोश नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत शब्दकोश के कर्ता। परपरा के अनुसार इन्हें विक्रम के नवरत्नों में स्थान प्राप्त था। विल्सन इनका काल ईसा पूर्व पहली सदी का मानते हैं, जबकि अन्य संशोधक ईसा की तीसरी या पांचवी सदी।

अमितगति (प्रथम) - अमितगति नामक दो ग्रंथकार हुए हैं। अमितगति (प्रथम) नेमिषेण के गुरु तथा देवसेन के शिष्य थे। समय-नवम शताब्दी का मध्यभाग। ग्रंथ-योगसार-प्राभृत।

अमितगति (द्वितीय)- ई. 11 वीं सदी। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के माथुर-सघ के एक ग्रंथकार। परमार-वंश के वाक्पतिराज मुंज के दरबारी विद्वान। इनके ग्रंथों में प्रमुख हैं- सुभाषितरत्नसंदोह, धर्मपरीक्षा और श्रावकाचार (उपासकाचार), पंचसंग्रह, आराधना, भावनाद्वात्रिंशतिका, चंद्रप्रज्ञप्ति, सार्द्धद्वीप-प्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि।

अमृतचन्द्र सूरि- ई. 9 वीं शती। कालिदास के टीकाकार मल्लिनाथ के समान ही कुन्दकुन्द के टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि हैं। जन्मतः क्षत्रिय या ब्राह्मण ('ठक्कुर' शब्द का प्रयोग मिलता है)। समय 10-11 वीं शती। रचनाएं- पुरुषार्थ- सिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार और समयसार-कलश। टीकाग्रंथ- समयसार-टीका,

प्रवचनसार-टीका और पंचास्तिकाय-टीका।

अम्मल (अमलानंद)- 'रुक्मिणी-परिणय-चपू' नामक काव्य के रचयिता। समय- ई 14 वीं शती का अंतिम चरण। अम्मल को अमलानद से अभिन्न माना गया है, जो प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य थे। इन्होंने 'वेदांत-कल्पतरु' (भामती-टीका की व्याख्या), 'शास्त्र-दर्पण' तथा पचपादिका की 'व्याख्या' नामक ग्रंथों का भी प्रणयन किया है। देवगिरि के यादवो के राज्य में निवास था।

अम्माल आचार्य - समय- ई 17 वीं सदी का अतिम चरण। कानेई के वैष्णव आचार्य। पिता-घटित सुदर्शनाचार्य। रामानुज के दर्शन एव दिग्विजय पर यतिराजविजय अथवा वेदातविलास नामक नाटक की रचना। अन्य कृतिया हैं चोलभाण व वसततिलकाभाण।

अमियनाथ चक्रवर्ती- मृत्यु सन् 1970 में। एम ए तथा काव्यतीर्थ। हुगली में सस्कृत-परिषद के सस्थापक। पिता-दुर्गानाथ। पुत्री-डॉ वाणी भट्टाचार्य। कृतिया-हरिनामामृत, सम्भवामि युगे युगे, धर्मराज्य, श्रीकृष्ण-चैनन्य और मेघनाद-वध।

अय्यपार्य- मूल संघान्वयी पुष्पसेन के शिष्य। पिता-करुणाकर। माता- अर्काम्बा। गोत्र- काश्यप। मंत्रचिकित्सा-शास्त्र के विशेषज्ञ। कार्यक्षेत्र-वरंगल (तैलग देश की राजधानी)। समय- ई 14 वीं शती, राजा रुद्रदेव के काल में। ग्रंथ- जिनेन्द्र-कल्याणाभ्युदय।

अरुणगिरिनाथ (द्वितीय)- कुमारडिण्डिम तथा डिण्डिम चतुर्थ के नाम से भी ज्ञात। पिता-राजनाथ (द्वितीय)। आश्रयदाता- (1) विजयनगर के राजा वीरनरसिंह (1505 से 1509 ई.) तथा (2) कृष्णदेव राय (1509 से 1530 ई)। पारेन्द्र अग्रहार के निवासी। 'कविराज' तथा 'डिण्डिम', 'कविसार्वभौम' की उपाधियों से समलकृत। अनेक भाषाओ पर अधिकार। कृतिया- वीरभद्रविजय (सस्कृत- डिम) और कृष्णराजविजयम् (तेलगु)।

अरुणदत्त- ई 12 वीं शती के लगभग। पिता-मृगाकदत्त। बंगाल के निवासी। कृतिया- सर्वांग-सुन्दरा (वाग्भट के 'अष्टागहृदय' पर भाष्य) और सुश्रुत पर भाष्य।

अरुणमणि (लालमणि)- काष्ठासघ, माथुरगच्छ, पुष्करगण के गृहस्थ-विद्वान। श्रुतकीर्ति के प्रशिष्य और बुधराघव के शिष्य। पिता-कान्हणसिंह। ग्रथनाम- 'अजितनाथ-पुराण'।

अर्जुन मिश्र- महाभारत के टीकाकार। 'पुराणसर्वस्व' ग्रथ के रचयिता। बगाल के निवासी।

अलमेलम्मा- मद्रास निवासी। ई 1922 में इस विदुषी ने 'बुद्धचरितम्' की रचना की।

अर्हद्दास (अर्हत)- ई 13 वीं शती (अतिम चरण)। आशाधर के शिष्य। मालव प्रदेश कार्यक्षेत्र रहा। ग्रंथ-मुनिसुव्रतकाव्य (10 सर्ग) उत्तरपुराण पर आधारित, पुरुदेव-चम्पू (10 स्तबक) और भव्यजनकण्ठाभरण (242 पद्य)। 'पुरुदेव चम्पू में इन्होंने जैन सत पुरुदेव का जीवन-वृत्तांत दिया है।

अवतार काश्यप- ऋग्वेद के नौवें मडल के 53 से 60 सूक्त इनके नाम पर हैं। सोमपान से योद्धा में वीरश्री उत्पन्न होती है, यह इन सूक्तो में प्रतिपादित है।

अश्वघोष- एक बौद्ध महाकवि। इनके जीवन-सबधी अधिक विवरण प्राप्त नहीं होते। इनके 'सौंदरनद' नामक महाकाव्य के अतिम वाक्य से विदित होता है कि इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी तथा निवास-स्थान का नाम साकेत था। 'महाकवि' के अतिरिक्त, ये 'भदन्त', 'आचार्य', 'महावादी' आदि उपाधियों से भी विभूषित थे। उपाधियों की पुष्टि होती है।

इनके ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये जाति के ब्राह्मण रहे होगे। इनकी रचनाओ का प्रधान उद्देश्य है बौद्ध धर्म के विचारो को काव्य के परिवेश में प्रस्तुत कर, उनका जनसाधारण के बीच प्रचार करना। अश्वघोष का व्यक्तित्व बहुमुखी है। इन्होंने समान अधिकार के साथ काव्य एव धर्मदर्शन विषयक ग्रथो का प्रणयन किया है। इनके नाम पर प्रचलित ग्रथो का परिचय इस प्रकार है -

(1) वज्रसूची— इसमें वर्ण-व्यवस्था की आलोचना कर सार्वभौम समानता के सिद्धात को अपनाया गया है। कतिपय विद्वान इसे अश्वघोष की कृति मानने में सदेह प्रकट करते हैं।

(2) महायान— श्रद्धोत्पाद शास्त्र- यह दार्शनिक ग्रथ है। इसमें विज्ञानवाद एव शून्यवाद का विवेचन किया गया है।

(3) सूत्रालकार या कल्पनामडितिका— सूत्रालंकार की मूल प्रति प्राप्त नहीं होती। इसका केवल चीनी अनुवाद मिलता है जो कुमारजीव नामक बौद्ध विद्वान् ने पचम शती के प्रारभ में किया था। इस ग्रथ में धार्मिक एव नैतिक भावों से पूर्ण काल्पनिक कथाओ का सग्रह है।

(4) बुद्धचरित— यह एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें भगवान बुद्ध का चरित्र, 28 सर्गों में वर्णित है। रघुवश और बुद्धचरित में यत्र तत्र साम्य है।

(5) सौंदरनद— यह भी महाकाव्य है। इसमें भगवान बुद्ध के अनुज नद का चरित्र वर्णित है।

(6) शारिपुत्र-प्रकरण— यह एक नाटक है जो खडित रूप मे प्राप्त होता है। इसमें मौद्गल्यायन एवं शारिपुत्र को बुद्ध द्वारा दीक्षित किये जाने का वर्णन है।

इनकी समस्त रचनाओं में बौद्धधर्म के सिद्धातों की झलक दिखाई देती है। बुद्ध के प्रति अटूट श्रद्धा तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता, इनके व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता है। इनका व्यक्तित्व एक यशस्वी महाकाव्यकार का है। इनकी कविता में श्रृगार, करुण, एवं शातरस की वेगवती धारा अबाध

गति से प्रवाहित होती है।

अश्वघोष, सम्राट् कनिष्क के समसामयिक थे। अतः इनका स्थिति-काल ई. प्रथम शती है। बौद्ध धर्म के ग्रंथों में ऐसे अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार ये कनिष्क के समकालीन सिद्ध होते हैं। चीनी परंपरा के अनुसार अश्वघोष बौद्धों की चतुर्थ संगीति या महासभा में विद्यमान थे। यह सभा काश्मीर के कुंडलवन में कनिष्क द्वारा बुलाई गई थी।

अश्वसूक्ति काण्वायन - एक वैदिक सूक्तद्रष्टा। इंद्र को सोम अर्पण न करनेवाली विमुक्त जमातों का उल्लेख इनके सूक्तों में है। ये सामद्रष्टा भी थे।

अष्टावधानी सोमनाथ- रचना-स्वररागसुधारसम् या नाट्यचूडामणि। संभवत ये ही तेलगु कवि नाचन सोमन हैं, जिन्हें बुक्कराव प्रथम (विजयनगर) ने दान दिया था। समय- ई 14 वीं शती।

असंग (आर्य वसुबंधु असंग) - प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक वसुबधु के ज्येष्ठ भ्राता। पुरुषपुर (पेशावर) निवासी कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण-कुल में जन्म। समय तृतीय शताब्दी के अंत व चतुर्थ शताब्दी के मध्य में। समुद्रगुप्त के समय में विद्यामान। गुरु- मैत्रेयनाथ। बौद्धों के योगाचार-संप्रदाय के विख्यात आचार्य। इनके ग्रंथ चीनी भाषा में अनूदित हैं (उनके सस्कृत रूपो का पता नहीं चलता) इनके ग्रथों का विवरण इस प्रकार है - (1) महायान सपरिग्रह- इसमें अत्यत संक्षेप में महायान सिद्धातों का विवेचन है। चीनी भाषा में इसके 3 अनुवाद प्राप्त होते हैं। (2) प्रकरण आर्यवाचा यह ग्रथ 11 परिच्छेदो में विभक्त है। इसका प्रतिपाद्य है योगाचार का व्यावहारिक एव नैतिक पक्ष। ह्वेनसाग कृत चीनी अनुवाद उपलब्ध है। (3) योगाचारभूमिशास्त्र अथवा सप्तदश भूमिशास्त्र- यह ग्रंथ अत्यंत विशालकाय है। इसमें योगाचार के साधन-मार्ग का विवेचन है। सपूर्ण ग्रथ अपने मूल रूप में (संस्कृत में) हस्तलेखों में प्राप्त है। राहुलजी ने इसका मूल हस्तलेख प्राप्त किया था। इसका छोटा अश (सस्कृत में) प्रकाशित भी हो चुका है। (4) महायानसूत्रालंकार। ये अपनी रचनाओ के कारण अनेक गुरु से भी सुप्रसिद्ध हुए।

असंग- ई 10 वीं शती। जन्तम ब्राह्मण, बाद में जैन मत का स्वीकार किया। पिता-पटुमति। माता-वैरेत्ति। गुरु-नागनन्दी। पुत्र-जिनाप। दक्षिण भारतीय। चोल राजा श्रीनाथ के समकालीन। रचनाएं- वर्द्धमानचरित, शान्तिनाथचरित (2500 पद्य), लघु शान्तिनाथपुराण (12 सर्ग, उत्तरपुराण की कथावस्तु पर आधारित)।

असहाय- मनुस्मृति के एक टीकाकार। मेधातिथि के साथ इनका नाम लिया जाता है। गौतमधर्मसूत्र और नारदसूत्र पर भी इन्होंने टीकाएं लिखी हैं।

अहोबल- ये भास्कर-वंशोत्पन्न थे। पिता का नाम नृसिंह था। इन्होंने रुद्राध्याय का विस्तृत व्याख्यान किया है। भाष्य (व्याख्यान) श्लोक-रूप में है। इस टीका का अन्य नाम 'कल्पलता' है। अहोबलाचार्यजी ने गद्यरूप काव्य भी लिखा हो ऐसा तर्क है।

अहोबल- ई. 17 वीं सदी। संगीतपारिजात नामक ग्रथ के कर्ता। द्रविड ब्राह्मण। पिता- श्रीकृष्ण पंडित। पिता के पास संगीतशास्त्र का अध्ययन। धनवड रियासत के आश्रय में रह कर हिन्दुस्थानी संगीत का अभ्यास किया। इनके ग्रंथ में, श्रुति और स्वर भिन्न नहीं, एक हैं, यह प्रतिपादित किया गया है। विशिष्ट स्वर की ध्वनि के लिये वीणा की तार विशिष्ट लंबाई की चाहिये. इस खोज का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है।

अहोबल-नृसिंह- मैसूर नरेश वोडियार, द्वितीय (1732-1760 ई) तथा चामराज वोडियार (1760-1776 ई) द्वारा सम्मानित। 'नलविलास' नामक छ अकी नाटक के प्रणेता।

अहोबल-सूरि- 'यतिराजविजय चंपू' के रचयिता। पिता-वेंकटाचार्य, माता- लक्ष्मीअंबा। गुरु-राजगोपाल मुनि। समय ई 14 वीं शती का उत्तरार्ध। 'यतिराजविजय- चपू' में रामानुजाचार्य के जीवन की घटनाएं वर्णित हैं। इन्होंने 'विरूपाक्ष-वसंतोत्सव' नामक एक अन्य चपू की भी रचना की है। इसमें 9 दिनो तक चलने वाले विरूपाक्ष महादेव के वसंतोत्सव का वर्णन है। यह काव्य मद्रास से प्रकाशित हो चुका है।

आंगिरस- अथर्ववेद के प्रवर्तक। द्विरात्रयाग का प्रारंभ इन्हीं के द्वारा माना जाता है।

आग्रायण- यास्काचार्य ने अपने निरुक्त में जिन प्राचीन आचार्यो का निर्देश किया है, उनमें आग्रायण एकतम है। निरुक्त में आग्रायण का मत चार बार उद्धृत किया गया है।

आंजनेय- सगीतविद्या के प्राचीन ज्ञाता। नारद, शार्ङ्गदेव, शारदातनय आदि ने इनके मतों को उद्धृत किया है। इन्होंने 'हनुमद्-भरतम्' नामक ग्रथ की रचना की है।

आत्मानन्द- ई 13 वीं शती। ऋग्वेदान्तर्गत 'अस्यवामीय सूक्त' के भाष्यकार। केवल एक छोटे-से सूक्त पर भाष्य-रचना करते हुए ग्रंथकार ने लगभग सत्तर ग्रंथों का प्रमाण दिया है। इस भाष्य के अंत में आत्मानन्द लिखते हैं-

"अधियज्ञ-विषयं स्कन्दादिभाष्यम्। निरुक्तमधिदैवत-विषयम्।
इद तु भाष्य-मध्यात्मविषयम्। न च भिन्नविषयाणां विरोधः।"

अर्थात् स्कदादि आचार्यों का भाष्य यज्ञीय विचारों तथा निरुक्त दैवत विचारों से निगडित है, किन्तु यह भाष्य आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लिखा गया है। विषय भिन्न होने के कारण निर्दिष्ट भाष्यों का अन्यान्य विरोध होने की कोई संभावना नहीं। आध्यात्मिक दृष्टि से मंत्रों का व्याख्यान करने की परपरा इस देश में बहुत पुरातन है। इस परंपरा का पालन रावणाचार्य ने भी किया, यह उल्लेखनीय है। आत्मानन्दाचार्य, शंकरमतानुयायी अद्वैतवादी थे।

आत्रेय- तैत्तिरीय संहिता के पदपाठकार। भट्ट भास्कराचार्य ने अपने तैत्तिरीय संहिता के भाष्य में आत्रेयजी का निर्देश 'पदपाठकार', इस विशेषण से किया है। सभी सहिताओं के पद-पाठ एक ही समय में हुए होंगे, ऐसा विद्वानों का तर्क है।

आदित्यदर्शन- कठमन्त्रपाठ के (सम्भवत चारायणीय मन्त्र-पाठ के) भाष्यकार। पिता का नाम वेद और गुरु का नाम माधवरात।

आदेन्त- महाभाष्यप्रदीप-स्फूर्ति के लेखक। पिता- अतिरात्र-आप्तोर्यामयाजी वेंकट।

आनंदगिरि- ई 12 वीं सदी। इन्होंने शंकराचार्य के सभी भाष्यों पर टीकाएं लिखी हैं। शाकरदिग्विजय-ग्रथ इन्हीं का माना जाता है। ग्रंथ की पुष्पिका में लेखक का नाम अनतानदगिरि है। आगे चल कर शकराचार्य की गद्दी पर आसीन हुए। अद्वैतवेदान्त के इतिहास में इनका नाम अजरामर है।

आनन्द झा- ई. 20 वीं शती। न्यायाचार्य। लखनऊ वि वि में व्याख्याता। 'पुन संगम' नामक रूपक के प्रणेता।

आनन्दतीर्थ- समय 1283-1317 ई। आनन्दतीर्थ का ही दूसरा नाम मध्वाचार्य था। इन्होंने ऋक्सहिता के चालीस सूक्तो पर भाष्य-रचना की। ये मध्व (द्वैत) सप्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य थे।

संहिता-मंत्रों का भगवत्परक अर्थ दिखलाने के लिए इन्होंने भाष्यरचना की। मध्व-सप्रदाय में जयतीर्थ और राघवेन्द्र नामक दो महापुरुष हुए। उन्होंने मध्वभाष्य का विस्तृत व्याख्यान किया। जयतीर्थजी के विवरण का फिर से विवरण नरसिंहाचार्यजी ने किया। नरसिंहाचार्यजी के समान नारायणाचार्य ने भी जयतीर्थ की व्याख्या का विवरण किया है। इस प्रकार आनन्दतीर्थजी का भाष्यग्रंथ अनेक व्याख्याकर्ताओं का प्रेरणा-स्थान रहा है। आनन्दतीर्थजी का भाष्य सर्वथा भक्तिसप्रदाय का पुरस्कारक है। इन्होंने 'भागवततात्पर्य-निर्णय' नामक ग्रथ की भी रचना की है।

आनन्दनारायण- ई 18 वीं शती। ये 'पचरत्न कवि' के नाम प्रसिद्ध थे। इन्होने राम-कथा पर आधारित 'राघवचरितम्' नामक 12 सर्गों का महाकाव्य लिखा। कवि ने अपने आश्रयदाता सरफोजी भोसले के नाम से यह काव्य प्रसिद्ध करने का प्रयास किया, इस लिये सरफोजी ही इसके कवि हैं, यह ग्रह रूढ हुआ। इस प्रकार का काव्य-लेखन करने की क्षमता विद्वान् राजा सरफोजी में थी, यह वस्तुस्थिति भी इस ग्रह (धारणा) को कारणीभूत हुई होगी।

आनन्दबोध- ई १६ वीं शती। पिता- जातवेद भट्टोपाध्याय। आनन्दबोध भट्टोपाध्याय ने सपूर्ण काण्व-सहिता पर भाष्य-रचना की। अध्यायों की परिसमाप्ति पर इस भाष्य का नाम 'काण्ववेदमन्त्र-भाष्यसग्रह' ऐसा लिखा है।

आनन्दराय मखी- ई 17 वीं शती (उत्तरार्ध)। मृत्यु लगभग 1735 ई में। तजौर के मराठा राजा शाहजी प्रथम, सरफोजी प्रथम तथा तुकोजी के धर्माधिकारी एव सेनाधिकारी। पिता- नृसिंहराय, एकोजी तथा शाहजी के मंत्री थे। पितामह गंगाधर-एकोजी के मत्री थे। कृतिया- आश्वलायन-गृह्यसूत्र-वृत्ति, विद्यापरिणयन (नाटक), और जीवानन्दन (नाटक)।

आनन्दवर्धन- काश्मीर के निवासी। समय 9 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। प्रसिद्ध काव्यशास्त्री व ध्वनि-संप्रदाय के प्रवर्तक। काव्यशास्त्र के विलक्षण प्रतिभासपन्न व्यक्ति। ध्वन्यालोक जैसे असाधारण ग्रथ के प्रणेता। 'राजतरगिणी' में इन्हें काश्मीर नरेश अवतिवर्मा का सभा-पडित बताया गया है-

मुक्ताकण शिवस्वामी कविरानन्दवर्धन ।
प्रथा रत्नाकराश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मण ।। (5-4)।

-मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनदवर्धन एव रत्नाकर अवंतिवर्मा के साम्राज्य में प्रसिद्ध हुए।

अवतिवर्मा का समय 855 से 884 ई तक माना जाता है। आनदवर्धन द्वारा रचित 5 ग्रथ- विषमबाणलीला, अर्जुनचरित, देवीशतक, तत्त्वालोक और ध्वन्यालोक। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि-सिद्धात का विवेचन किया गया है, और अन्य सभी काव्यशास्त्रीय मतो का अतर्भाव उसी मे कर दिया गया है। देवीशतक नामक ग्रथ (श्लोक 110) मे, इन्होंने अपने पिता का नाम 'नोण' दिया है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन मे भी इनके पिता का यही नाम आया है। आनन्दवर्धन ने प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति के ग्रथ 'प्रमाण-विनिश्चय' पर 'धर्मोत्तमा' नामक टीका भी लिखी है। हरिविजय नामक प्राकृत काव्य के भी ये प्रणेता हैं।

आपस्तंब- भृगुकुलोत्पन एक सूत्रकार ब्रह्मर्षि। कश्यप ऋषि ने दिति से जब पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया, तब आपस्तब उसके आचार्य थे। पत्नी का नाम अक्षसूत्रा एव पुत्र का कर्कि था। तैत्तिरीय शाखा (कृष्णयजुर्वेद की 15 अध्वर्यु शाखाओ मे से एक) की एक उपशाखा के सूत्रकार। याज्ञवल्क्य-स्मृति मे स्मृतिकार के रूप मे इनका उल्लेख है।

सर्वश्री केतकर, काणे एव डॉ बूल्हर के अनुसार, आपस्तब आध्र के रहे होगे। ग्रथरचना- 1 आपस्तब श्रौतसूत्र, 2 आ गृह्यसूत्र, 3 आ ब्राह्मण, 4. आ मंत्रसहिता, 5 सहिता, 6 आ सूत्र, 7 आ स्मृति, 8 आ उपनिषद्, 9 आ. अध्यात्मपटल, 10 आ अन्त्येष्टिप्रयोग, 11 आ अपरसूत्र, 12 आ प्रयोग, 13 आ शुल्बसूत्र और 14 आ धर्मसूत्र।

आपस्तब-धर्मसूत्र का रचनाकाल ई पूर्व 6 से 3 शती है। इनके माता-पिता के नाम का पता नही चलता। निवास-स्थान के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ बूलर प्रभृति के अनुसार ये दाक्षिणात्य थे, किंतु एक मत्र में यमुनातीरवर्ती साल्वदेशीय स्त्रियों के उल्लेख के कारण, इनका निवास-स्थान मध्यदेश माना जाता है। इनके 'आपस्तब-धर्मसूत्र' पर हरदत्त

ने 'उज्ज्वला' नामक टीका लिखी है। इनका यह सूत्र-ग्रंथ (हरदत्त की टीका के साथ) कुंभकोणम् से प्रकाशित हो चुका है।

आपिशलि- पाणिनि के पूर्ववर्ती एक वैयाकरण। युधिष्ठिर मीमांसकजी के अनुसार इनका समय 3000 वि पू है। इनके मत का उल्लेख 'अष्टाध्यायी', 'महाभाष्य', 'न्यास' एवं 'महाभाष्यप्रदीप' प्रभृति ग्रंथों में प्राप्त होता है। 'महाभाष्य' से पता चलता है कि कात्यायन व पतंजलि के समय में ही इनके व्याकरण को प्रचार व लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। प्राचीन वैयाकरणों में सर्वाधिक सूत्र इनके ही प्राप्त होते हैं। इससे विदित होता है कि इनका व्याकरण, पाणिनीय व्याकरण के समान ही प्रौढ व विस्तृत रहा होगा। इनके सूत्र अनेकानेक व्याकरण-ग्रंथों में बिखरे हुए हैं। इन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त 'धातुपाठ', 'गणपाठ', 'उणादिसूत्र' एवं 'शिक्षा' नामक चार अन्य ग्रथो का भी प्रणयन किया है। इनके 'धातुपाठ' के उध्दरण 'महाभाष्य', 'काशिका', 'न्यास' तथा 'पदमजरी' में उपलब्ध होते हैं तथा 'गणपाठ' का उल्लेख भर्तृहरि कृत 'महाभाष्य-दीपिका' में किया गया है। 'उणादि-सूत्र' के वचन उपलब्ध नहीं होते। 'शिक्षा' नामक ग्रथ 'पाणिनीय-शिक्षा' से मिलता-जुलता है। इसका सपादन प युधिष्ठिर मीमासक ने किया है। भानुजी दीक्षित के उद्धरण से ज्ञात होता है कि इन्होंने एक कोशग्रंथ की भी रचना की थी। इनके 'अक्षरतंत्र' में सामगान विषयक स्तोभ वर्णित हैं। इनका प्रकाशन सत्यव्रत सामाश्रमी द्वारा कलकत्ता से हो चुका है।

इनके कतिपय उपलब्ध सूत्र इस प्रकार हैं- 'उभस्योभयो द्विवचनटापो ' (तंत्रप्रदीप, 2-3-8)- 'विभक्त्यन्त पदम्' आदि।

न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि ने उनके धातुपाठ का निर्देश किया है कि- आपिशलि अस् धातु का 'स' मात्र स्वीकार करते हैं, पाणिनि के समान अस् भुवि ऐसा उनका पाठ नही है। अस्ति आदि में गुण (अट्) और आसीत् आदि मे वृद्धि (आट्) का आगम मान कर आपिशलि रूप-सिद्धि मानते हैं।

आप्पाराव के.व्ही.एन्.- सस्कृत-कॉलेज कोव्वूर (गोदावरी) से एम ए हुए। रचना- 'गगालहरी'। यह प्रकाशित हो चुकी है।

आर. कृष्णमाचार्य- समय 1869-1924 ई.। 'सहृदया' नामक मद्रास की मासिक पत्रिका में आर कृष्णमाचार्य की अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उनकी प्रकाशित कृतियां हैं- 'सुशीला' (भारतीय नारी का चित्रण करने वाला सरस गद्यकाव्य), मेघसन्देशविमर्श (अनसन्धानप्रधान समीक्षा), पातिव्रतम्, पाणिग्रहणम्, 'वररुचि', 'वासन्तिकस्वप्नः' और 'यथाभिमत' (शेक्सपीयर के नाटक का अनुवाद)।

आर्यदेव- बौद्ध-दर्शन के माध्यमिक मत के शास्त्रकार आचार्यों में इनका नाम महत्त्वपूर्ण है। समय 200 से 300 ई के बीच। चंद्रकीर्ति नामक विद्वान के अनुसार ये सिंहल द्वीप के नृपति के पुत्र हैं। इन्होंने अपने अपार वैभव का त्याग कर नागार्जुन का शिष्यत्व स्वीकार किया था। शून्यवाद के आचार्यों में इनका स्थान है। बुस्तोन नामक विद्वान के अनुसार इनकी रचनाओं की सख्या 10 हैं:-

1 चतु शतक- इसमें 16 अध्याय व 400 कारिकाएं हैं। इसका चीनी अनुवाद हवेनसाग ने किया था। इसका कुछ अंश संस्कृत में भी प्राप्त होता है। इसमें शून्यवाद का प्रतिपादन है।

2 चित्तविशुद्धि-प्रकरण- इसमें ब्राह्मणों के कर्मकांड का खडन व तांत्रिक बातों का समावेश किया गया है। इसमें वार एव राशियों के नाम प्राप्त होने से विद्वानों ने इस ग्रंथ के किसी अन्य आर्यदेव की कृति माना है।

3. हस्तलाघव-प्रकरण- इसका नाम 'मुष्टि-प्रकरण' भी है। इसका अनुवाद चीनी व तिब्बती भाषा में प्राप्त होता है और उन्हीं के आधार पर इसका संस्कृत में अनुवाद प्रकाशित किया गया है। यह ग्रथ 6 कारिकाओं का है जिनमें प्रथम 5 कारिकाए जगत् के मायिक रूप का विवरण प्रस्तुत करती हैं। अंतिम (6 वीं) कारिका में परमार्थ का विवेचन है। इस पर दिङ्नाग ने टीका लिखी है।

4 शेष ग्रंथों के नाम हैं- स्खलितप्रमथनयुक्ति, हेतुसिद्धि, ज्ञानसार-समुच्चय, चर्यमेलापन-प्रदीप, चतु पीठ-तंत्रराज, चतुःपीठ-साधन, ज्ञान-डाकिनी-साधन एव एकद्रुमपजिका। 'चतु शतक' इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है।

आर्यदेव-देव, काणदेव तथा नालनेत्र नामों से भी ये जाने जाते थे।

आर्यचन्द्र- एक बौद्ध कवि। कुमारलात व मातृचेट के समकालीन। सम्भवत सौत्रान्तिक सप्रदायी। रचना- **मैत्रेय-**व्याकरण।

आर्यभट्ट (प्रथम)- ज्योतिष-शास्त्र के एक महान् आचार्य। कुसुमपुर (पटना) के निवासी। भारतीय ज्योतिष का क्रमबद्ध इतिहास आर्यभट्ट (प्रथम) से ही प्रारभ होता है। इनके विश्वविख्यात ग्रथ का नाम 'आर्यभटीय' है जिसकी रचना इन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर की है। जन्मकाल- 476 ई.। इन्होंने 'तत्र' नामक एक अन्य ग्रथ की भी रचना की है। इनके ये दोनों ही ग्रथ आज उपलब्ध हैं। इन्होंने सूर्य तथा तारों को स्थिर मानते हुए, पृथ्वी के घूमने से रात और दिन होने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्यभटीय' की रचना, पटना में हुई थी। इस ग्रथ में आर्यभट्ट ने चद्रग्रहण व सूर्यग्रहण के वैज्ञानिक कारणों का विवेचन किया है। 'आर्यभटीय' का अंग्रेजी अनुवाद डॉ. केर्न ने 1874 ई लाइडेन (हॉलैंड) में प्रकाशित किया था। इसका हिन्दी अनुवाद उदयनारायणसिंह ने सन् 1903 में किया था। संस्कृत में 'आर्यभटीय' की 4 टीकाएं प्राप्त होती हैं। सूर्यदेव यज्वा की टीका सर्वोत्तम मानी जाती है जिसका नाम है 'आर्यभट्ट-प्रकाश'। मूल ग्रंथ के चार पाद हैं- गातिकापाद,

गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। श्लोक-सख्या 121 है। द. भारत में इस ग्रथ का प्रचार विशेष रूप से हुआ। इसके आधार पर बना पचाग दक्षिण के वैष्णवपथी लोगों को मान्य है।

आर्यभट्ट (द्वितीय) - ई 8 वीं शती। ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य और गणिती। भास्कराचार्य के पूर्ववर्ती। ज्योतिष-शास्त्र विषयक एक अत्यत प्रौढ ग्रथ 'महाआर्य सिद्धात' के प्रणेता। भास्कराचार्य के 'सिद्धात-शिरोमणि' में इनके मत का उल्लेख मिलता है।

आर्यशूर- 'जातकमाला' या 'बोधिसत्त्वावदानमाला' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता। समय- ई तृतीय-चतुर्थ शती। आर्यशूर ने बौद्ध जातको को लोकप्रिय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अश्वघोष की भांति बौद्धधर्म के सिद्धातो को साहित्यिक रूप देने में आर्यशूर का भी बड़ा योगदान है। 'जातकमाला' की ख्याति बाहरी बौद्ध-देशो में भी थी। इसका चीनी रूपातर (केवल 14 जातको का) 690 से 1127 ई के मध्य हुआ था। इत्सिग के यात्रा-विवरण से ज्ञात हुआ कि 7 वीं शताब्दी मे इसका बहुत प्रचार हो चुका था। अजंता की दीवारो पर 'जातकमाला' के कई जातको के चित्र (दृश्य) अकित हैं। इन चित्रों का समय 5 वी शताब्दी है। 'जातकमाला' के 20 जातकों का हिन्दी अनुवाद, सूर्यनारायण चौधरी ने किया है। आर्यशूर की दूसरी रचना का नाम है- 'पारमिता-समास' जिसमे 6 पारमिताओ का वर्णन किया है। 'जातकमाला' की भाति इसकी भी शैली सरल व सुबोध है। अन्य रचनाए- सुभाषितरत्नकरडक-कथा, प्रातिमोक्षसूत्रपद्धति, सुपथनिर्देशपरिकथा और बोधिसत्वजातक-धर्मगडी।

आर्यशूर की काव्यशैली, काव्य के उपकरणो पर उनके अधिकार को दिखाई हुई, अत्युक्ति से रहित व सयत है। उनका गद्य व पद्य समान रूप से सावधानी के साथ लिखा गया है और परिष्कृत है।

आशाधरभट्ट (प्रथम) - काव्यशास्त्र के एक जैन आचार्य। जन्मस्थान-अजमेर। ई. 13 वीं शती। माण्डलगढ (मेवाड) के मूल निवासी। बाद में मेवाड पर शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों से त्रस्त होकर धारा नगरी में आ बसे। जाति-वर्धरवाल। पिता-सल्लक्षण। माता-श्रीरानी। पत्नी-सरस्वती। पुत्रनाम-छाहड। मालवनरेश अर्जुन वर्मदेव के सन्धिविग्रह मंत्री। गुरु-महावीर पण्डित। 'नयविश्वचक्षु', 'कलिकालिदास', 'प्रज्ञापुज' आदि नामो से उल्लिखित। शिष्यनाम- मदनकीर्ति, विशालकीर्ति व देवचन्द्र। धारानगरी से दस मील दूर नलमच्छपुर में सरस्वती की साधना करते रहे। नेमिनाथ मदिर ही उनका विद्यापीठ रहा है। ये व्याघ्रेरवालवंशीय थे, और आगे चल कर जैन हो गए थे।

रचनाएं- आशाधर द्वारा लिखित बीस ग्रथ मिलते हैं, जिनमें मुख्य ग्रंथ चार हैं- 1. अध्यात्म-रहस्य अपरनाम योगोद्दीपन (72 पद्य), 2 धर्मामृत- इसके दो खण्ड हैं- अनगारधर्मामृत जो मुनिधर्म की व्याख्या करता है और सागारधर्मामृत जो गृहस्थ-धर्म को स्पष्ट करता है, 3 जिनयज्ञकल्प- यह ग्रथ प्रतिष्ठाविधि का सम्यक् प्रतिपादन करता है और 4 त्रिषष्टिस्मृतिचद्रिका- 63 शलाका- पुरुषों का सक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त मूलाराधना-टीका, इष्टोपदेशटीका, भूपालचतुर्विंपूर्तिटीका, आराधनासार टीका, प्रमेयरत्नाकर, काव्यालकार-टीका, सहस्त्र-नामस्तवन टीका, भरतेश्वराभ्युदय (चपू) आदि ग्रथ भी उल्लेखनीय हैं।

इन्होने अपने एक ग्रथ 'त्रिषष्टिस्मृतिचद्रिका' का रचना-काल 1236 दिया है। इनका पता डॉ पीटरसन ने 1883 ई मे लगाया था। सस्कृत अलकार-शास्त्र के इतिहास मे दो आशाधर नामधारी आचार्यो का विवरण प्राप्त होने से नाम-सादृश्य के कारण, डॉ हरिचद शास्त्री जैसे विद्वानो ने दोनो को एक ही लेखक मान लिया था पर वस्तुत दोनो ही भिन्न हैं। द्वितीय आशाधर भट्ट का पता डॉ बूलर ने 1871 ई में लगाया था।

आशाधरभट्ट (द्वितीय)- काव्यशास्त्र के एक आचार्य। समय ई 17 वी शताब्दी का अतिम चरण। पिता-रामजी भट्ट। गुरु-धरणीधर। इन्होने अपनी 'अलकार-दीपिका' में अपना परिचय इस प्रकार दिया है- 'शिवयोस्तनय नत्वा गुरु च धरणीधरम्। आशाधरेण कविना रामजीभट्टसूनुना।।' इन्होंने अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' की टीका लिखी है। अत ये उनके परवर्ती सिद्ध होते हैं। इनके अलकारविषयक 3 ग्रथ प्रसिद्ध हैं- कोविदानद, त्रिवेणिका व अलकार-दीपिका। कोविदानद अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण त्रिवेणिका' में प्राप्त होता है। डॉ भाडारकर ने 'कोविदानद' के एक हस्तलेख की सूचना दी है जिसमें निम्न श्लोक है-

प्राचा वाचा विचारेण शब्द-व्यापारनिर्णयम्।
करोमि कोविदानद लक्ष्यलक्षणसयुतम्।।

शब्दवृत्ति के इस अपने प्रौढ ग्रथ पर आशाधर भट्ट ने स्वय ही 'कादबिनी' नामक टीका भी लिखी है।

'त्रिवणिका' का प्रकाशन 'सरस्वती-भवन-टेक्स्ट' ग्रथमाला, काशी से हो चुका है। अलकार-शास्त्र-विषयक इन 3 ग्रथों के और 2 टीकाओं के अतिरिक्त आशाधर भट्ट ने 'प्रभापटल' व अद्वैतविवेक' नामक दो दर्शन-ग्रथो की भी रचना की है।

ये आशाधर भट्ट (प्रथम) से सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। इनका पता डॉ बूलर ने 1871 ई में लगाया था।

आशानन्द- समय 1745-1787 ई। आप महाराजा अनूपसिंह के प्रपौत्र महाराजा गजसिह के राज्यकाल में बीकानेर में निवास करते थे। आपने राजा के आश्रय में रहकर 'आनन्दलहरी' को प्रणीत किया था।

आश्मरथ्य- व्यासकृत ब्रह्मसूत्रो में इनका उल्लेख है। इनके अनुसार परमात्मा एव विज्ञानात्मा में परस्पर भेदाभेद संबध है।

शकराचार्य एवं वाचस्पति मिश्र ने इन्हें विशिष्टाद्वैतवादी कहा है।

आसुरि - सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल के साक्षात् शिष्य। डॉ ए. बी. कीथ के अनुसार ये ऐतिहासिक पुरुष नहीं। इसके विपरीत म.म. डॉ. गोपीनाथ कविराज एवं 'साख्य फिलॉसफी' नामक ग्रंथ के प्रणेता डॉ. गोर्बे ने इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति माना है। 725 ई के आसपास हुए हरिभद्र सूरि नामक एक जैन विद्वान ने, अपने ग्रंथ 'षड्दर्शनसमुच्चय' में, 'आसुरि' नाम से एक श्लोक उद्धृत किया है - महाभारत (शातिपर्व) भागवत में भी कपिल द्वारा विलुप्त 'साख्य-दर्शन' का ज्ञान, अपने शिष्य 'आसुरि' को देने का वर्णन है। उक्त तथ्यों के प्रकाश में 'आसुरि'को काल्पनिक व्यक्ति मानना उचित नहीं है। इनकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं होती।

इंदुलेखा- एक कवयित्री। इनका केवल एक श्लोक वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में प्राप्त होता है-

> एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकातरालोकन,
> केचित् पावकयोगिता निजगदु क्षीणेऽह्नि चंडार्चिष·।
> मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि प्रत्यक्षतीव्रातपं,
> मन्येऽह पुनरध्वनीनरमणीचेतोऽधिशेते रवि·।।

इसमें सूर्यास्त के संबध में सुदर कल्पना है- 'किसी का कहना है कि सूर्यदेव सध्याकाल में समुद्र में प्रवेश कर जाते हैं। पर किसी के अनुसार वे लोकांतर में चले जाते हैं पर मुझे ये सारी बातें मिथ्या प्रतीत होती हैं। इन घटनाओं का कोई प्रमाण नहीं है। प्रवासी व्यक्तियो की नारियों का चित्त विरहजन्य बाधा के कारण अधिक सतप्त रहता है। ज्ञात होता है कि सूर्यदेव इसी कोमल चित्त में रात्रि के समय शयन करने के लिये प्रवेश करते है, जिससे उनमें अत्यधिक गर्मी उत्पन्न हो जाती है। इस श्लेक के अतिरिक्त इस कवयित्री के सबध में कुछ भी जानकारी नहीं है।

इंद्र (इन्द्रदत्त)- कथासरित्सागर के चौथे तरंग के अनुसार पाणिनि के पूर्व भी व्याकरणकारो का एक सम्प्रदाय था। व्याडि, वररुचि एव इद्रदत्त उस सम्प्रदाय के प्रमुख थे। इद्र का व्याकरण-ग्रंथ उपलब्ध नहीं परन्तु अभिनव शाकटायन के 'शब्दानुशासन' में उसके उद्धरण हैं।

इन्द्र (प्रा.) - कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक। रचना- भगवद्(बुद्ध)गीता (पाली धम्मपद का सस्कृत अनुवाद)।

इन्द्रनन्दि- दक्षिणवासी प्रतिष्ठाचार्य और मन्त्रविद्। वासवनन्दि के प्रशिष्य और बप्पनन्दि के शिष्य। समय दशम शताब्दी। रचना- 'ज्वालमालिनीकल्प' (मंत्रशास्त्र)। इस ग्रंथ के 10 परिच्छेद और 372 पद्य हैं।

इन्द्रभूति- एक प्रसिद्ध बौद्ध (वज्रयानी) ग्रंथकार। उड्डियान के राजा। पद्मसंभव के पिता। इनके तेईस ग्रंथों के अनुवाद तंजूर नामक तिब्बत के ग्रंथालय में मिलते हैं। 'कुरूकुल्लासाधन' एवं 'ज्ञानसिद्धि' ये दो ग्रंथ संस्कृत में उपलब्ध हैं।

इन्दुमित्र (इन्दु) - 'अनुन्यास' नामक काशिका-व्याख्या के रचयिता। इस व्याख्या के उद्धरण अनेक व्याकरण-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इनमें और तन्त्रप्रदीपकार मैत्रेयरक्षित में शाश्वत विरोध था। श्रीमान् शर्मा ने अनुन्याससार नामक टीका रची है। इन्हीं शर्मा ने सीरदेव की 'परिभाषावृत्ति' पर विजयाटीका की रचना की है।

इम्मादि प्रौढ देवराय- विजयनगर नरेश (ई स. 1422-1448)। रचना-रतिरत्न-प्रदीपिका। विषय- कामशास्त्र।

इरिम्बिठि काण्व- ऋग्वेद के 8 वें मंडल के 16-18 सूक्तों के द्रष्टा।

इ.सु. सुन्दरार्य- ई. 20 वीं शती। जन्म-तिरुचिरापल्ली। मद्रास के राजकवि। इन्हें म.म पण्डितराज कृष्णमूर्ति शास्त्री द्वारा 'अभिनव-जयदेव', तथा संस्कृत साहित्य परिषद् द्वारा 'अभिनव-कालिदास' की उपाधियां प्राप्त हुई थीं।

ये तिरुचिरापल्ली की सं सा. परिषद् के मंत्री रहे। ये अभिनेता तथा निर्देशक भी थे। कई प्राचीन संस्कृत नाटकों का निर्देशन इन्होंने किया।

कृतिया- समुद्रस्य स्वावस्थावर्णन (काव्य), स्तोत्रमुक्तावली, गानमंजरी, उमापरिणय तथा मार्कण्डेयविजय (नाटक) तथा तमिल में तीन उपन्यास।

ईशानचन्द्र सेन- बंगाली। 'राजसूय-सत्कीर्ति-रत्नावली' नामक काव्य के रचयिता।

ईश्वरकृष्ण- सांख्य-दर्शन के एक आचार्य और 'सांख्यकारिका' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता। शंकराचार्यजी ने अपने 'शारीरकभाष्य' में 'साख्यकारिका' के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। अत इनका शंकर से पूर्ववर्ती होना निश्चित है। विद्वानों ने इनका आविर्भाव-काल चतुर्थ शतक माना है, किंतु ये इससे भी अधिक प्राचीन हैं। 'अनुयोगद्वार-सूत्र' नामक जैन-ग्रंथ में 'कणगसत्तरी' नाम आया है जिसे विद्वानों ने 'सांख्यकारिका' के चीनी नाम 'सुवर्णसप्तति' से अभिन्न मान कर, इनका समय प्रथम शताब्दी के आस-पास निश्चित किया है। 'अनुयोगद्वार सूत्र' का समय 100 ई है। अत ईश्वरकृष्ण का उससे पूर्ववर्ती होना निश्चित है।

'साख्यकारिका' पर अनेक टीकाओं व व्याख्या-ग्रंथों की रचना हुई है। इनमें से वाचस्पति मिश्रकृत 'साख्यतत्त्व-कौमुदी' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टीका है। काशी के हरेराम शास्त्री शुक्ल ने इस कौमुदी पर सुषमा नामक टीका लिखी है। डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र के हिंदी अनुवाद के साथ सांख्यतत्त्वकौमुदी प्रकाशित हो चुकी है।

ईश्वर शर्मा- ई 18 वीं शती का मध्य। बिम्बली ग्राम (केरल) के निवासी। 'शृंगार-सुन्दर' नामक भाण के रचयिता।

ईश्वरानन्द सरस्वती- रामचन्द्र सरस्वती के शिष्य। इन्होंने 'बृहत् महाभाष्य प्रदीप विवरण' की रचना की जिसकी तीन प्रतियां उपलब्ध हैं। इन्होंने अपने गुरु का नाम सत्यानन्द लिखा है।

औफ्रेक्ट के अनुसार सत्यानन्द ही रामचन्द्र सरस्वती हैं। समय- ई. 1678-1710।

ईश्वरोपाध्याय- ई. 8 वीं शती। आन्ध्रवासी। न्याय, मीमांसा, व्याकरण तथा धर्मशास्त्र में पारगत। शांकर-मत के अनुयायी। इन्होंने ज्योतिष्मती एवं इलेश्वरविजय नामक ग्रंथों की रचना की है।

उद्गीथ - ई 18 वीं शती। स्कंदस्वामी, नारायण और उद्गीथ इन तीन आचार्यों ने मिलकर ऋग्भाष्य-रचना की। अर्थात् शैली में समानता न होना इन भाष्यों में स्वाभाविक है। उद्गीथाचार्य ने याज्ञिक पद्धति के अनुसार पूरे विस्तार से भाष्यरचना की है। परवर्ती भाष्यकारों ने उद्गीथाचार्यजी का निर्देश किया है। निरुक्त-भाष्य के एक रचयिता स्कद-महेश्वर, संभवत. उद्गीथाचार्य के शिष्य थे। उद्गीथ-भाष्य में ग्रथकार के नाम आदि का कुछ संकेत मिलता है। तदनुसार वे कर्नाटक की वनवासी नगरी के निवासी थे।

उग्रादित्य- आयुर्वेद के विशेषज्ञ। गुरु-श्रीनन्दि। ग्रंथ-निर्माण का स्थान- रामगिरि जो त्रिकलिग के वेंगी मे स्थित है। त्रिकलिग जनपद, मन्दाज के उत्तर पीलकट नामक स्थान से लेकर उत्तर गंजाम और पश्चिम में बेल्लारी कर्नल, बिदर तथा चान्दा तक विस्तृत है। 'रामगिरि', नागपुर का समीपवर्ती रामटेक भी हो सकता है। नृपतुग अमोघवर्ष (प्रथम) के समय औषधि में मास-सेवन का निराकरण करने के लिए उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक बृहद्काय ग्रथ का निर्माण किया था। समय-ई 9 वीं शताब्दी। ग्रथ के 25 परिच्छेदो और दो परिशिष्टों में स्वास्थ्य-सरक्षण, गर्भोत्पत्ति, अन्नपानविधि, वात-पित्त-कफ, रसायन आदि का विस्तृत वर्णन है।

उत्प्रेक्षावल्लभ- मूल नाम गोकुलनाथ। ई 6 वीं शती। इन्होने 'भिक्षाटन' नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें शकर के शृंगार-विलास का वर्णन है।

उत्पलदेव- ई 9 वीं शती। त्रिकदर्शन के एक आचार्य। इनकी 'शिव-स्तोत्रावलि' प्रसिद्ध है। इसमें 21 श्लोक हैं-

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते
कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृत भवद्वपुर्
भेदवृत्ति यदि मे न रोचते।।

अर्थ- हे भगवन् तुम्हारे कठ के कोने में जो विष है, वह भी मुझे अमृत समान है। पर तुम्हारे शरीर से अलग अमृत भी मिला तो वह मुझे अच्छा नहीं लगेला। यह श्लोक सुप्रसिद्ध काव्यप्रकाश में उद्धृत है।

उदय कवि- 'मयूर-सदेश' नामक सदेश-काव्य के प्रणेता। समय- ई. 14 वीं शताब्दी। इन्होंने 'ध्वन्यालोकलोचन' पर 'कौमुदी' नामक टीका भी लिखी थी जो प्रथम उद्योग तक ही प्राप्त होती है। इसके अत में जो श्लोक है, उससे पता चलता है कि इस ग्रथ के रचयिता उदय नामक राजा (क्षमाभृत्) थे।

उदयप्रभदेव- ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। समय- ई. 13 वीं शती। इन्होंने 'आरम्भसिद्धि' या 'व्यवहारचर्या' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रथ में उन्होने प्रत्येक कार्य के लिये शुभाशुभ मुहूर्तों का विवेचन किया है। इस पर रत्नेश्वर सूरि के शिष्य हेमहसगणि ने वि स 1514 में टीका लिखी थी। उदयप्रभदेव का यह ग्रंथ व्यावहारिक दृष्टि से 'मुहूर्तचिंतामणि' के समान उपयोगी है।

उदयानाचार्य- रचना- 'वशलता'। इस महाकाव्य मे पौराणिक तथा ऐतिहासिक राजवशो का वर्णन है।

उदयनाचार्य- एक सुप्रसिद्ध मैथिल नैयायिक। इनका जन्म दरभगा से 20 मील उत्तर कमला नदी के निकटस्थ मगरौनी नामक ग्राम में एक सभ्रात ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। 'लक्षणावली' नामक अपनी कृति का रचना-काल इन्होने 906 शकाब्द दिया है। इनके अन्य ग्रथ है- न्यायवार्तिक-तात्पर्य-टीका-परिशुद्धि, न्यायकुसुमार्जाल तथा आत्मतत्त्व-विवेक । इन ग्रथो की रचना इन्होंने बौद्ध दार्शनिको द्वारा उठाये गए प्रश्नो के उत्तर-स्वरूप की थी। इन्होने 'प्रशस्तपाद-भाष्य' (वैशेषिकदर्शन का ग्रथ) पर 'किरणावली' नामक व्याख्या लिखी है। इसमें भी इन्होंने बौद्ध-दर्शन का खडन किया है। 'न्याय-कुसुमाजलि' भारतीय दर्शन की श्रेष्ठ कृतियो मे मानी जाती है और उदयनाचार्य की यह सर्व श्रेष्ठ रचना है।

ईश्वर के अस्तित्व के लिये बौद्धो से विवाद के समय, अनुमान-प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर पाने पर, एक ब्राह्मण और एक श्रमण को लेकर वे एक पहाडी पर चले गये। दोनो को वहा से नीचे धकेल दिया। गिरते हुए ब्राह्मण चिल्लाया- 'मुझे ईश्वर का अस्तित्व मान्य है', तो श्रमण चिल्लाया 'उसे मान्य नही'। ब्राह्मण बच गया, श्रमण की मृत्यु हो गई परतु उदयनाचार्य पर हत्या का आरोप लगा। इस पर उदयन पुरी के जगन्नाथ मदिर मे जाकर भगवान् के दर्शन की प्रार्थना करने लगे। उस समय मान्यता थी कि भगवान् पुण्यवान् लोगो को ही दर्शन देते हैं। तीसरे दिन भगवान् ने स्वप्न मे आकर कहा- काशी जाकर स्वय को जला कर प्रायश्चित्त करो, उसके बाद ही मेरा दर्शन हो सकेगा। उसके अनुसार उदयनाचार्य ने अग्नि को देह अर्पित किया पर मरते समय उन्होने कहा-

ऐश्वर्यमदमत्त सन् मामवज्ञाय वर्तसे।
प्रवृत्ते बौद्धसपाते मदधीना तव स्थिति ।।

अर्थ - भगवन्, ऐश्वर्य के मद में आप मेरा धिक्कार कर रहे हैं, पर बौद्धो का प्रभाव बढने पर तो आपका अस्तित्व मेरे अधीन ही था।

उदयराज- प्रयागदत्त के पुत्र। रामदास के शिष्य। रचना-राजविनोद काव्यम्। सात सर्गों के इस काव्य में गुजरात के सुलतान

बेगड़ा महंमद का स्तुतिपूर्ण वर्णन है।

उद्दंड कवि- समय- 16 वीं शताब्दी का प्रारंभ। पिता-रंगनाथ। माता- रंगांबा। बधुल गोत्रीय ब्राह्मण-कुल में जन्म। 'कोकिल-संदेश' नामक काव्य के प्रणेता। इसके अतिरिक्त 'मल्लिका-मारुत' नामक (10 अंकों के) एक प्रकरण के भी रचयिता। कालीकट के राजा जमूरिन के सभा-कवि।

उद्भट- नाम से ये काश्मीरी ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। इनका समय ई. 8 वीं शती का अंतिम चरण व 9 वीं शती का प्रथम चरण माना जाता है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर-नरेश जयापीड के सभा-पंडित थे और उन्हें प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन के रूप में प्राप्त होते थे-

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतन ।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तु सभापति ।।
(4-495)

जयापीड का शासनकाल 779 ई. से 813 ई तक माना जाता है। अभी तक उद्भट के 3 ग्रथों का विवरण प्राप्त होता है- भामह-विवरण,कुमारसंभव (काव्य) व काव्यालकार-सारसंग्रह। उनमें भामह-विवरण, भामहकृत 'काव्यालकार' की टीका है, जो सप्रति अनुपलब्ध है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ इटाली से प्रकाशित हो गया है पर भारत में अभी तक नहीं आ सका है। इस ग्रथ का उल्लेख प्रतिहारेंदुराज ने अपनी 'लघुविवृति' मे किया है। अभिनवगुप्त, रुय्यक तथा हेमचद्र भी अपने ग्रथो मे इसका सकेत करते हैं। इनके दूसरे ग्रंथ- कुमारसभव का उल्लेख प्रतिहारेंदुराज की 'विवृति' में है। इनमें महाकवि कालिदास के 'कुमारसभव' के आधार पर उक्त घटना का वर्णन है। 'कुमारसंभव' के कई श्लोक उद्भट ने अपने तीसरे ग्रथ 'काव्यालकार सारसग्रह' मे उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किये हैं। प्रतिहारेंदुराज व राजानक तिलक, उद्भट के दो टीकाकार हैं, जिन्होंने क्रमश. 'लघुविवृति' तथा 'उद्भट-विवेक' नामक टीकाओ का प्रणयन किया है। उद्भट भामह की भांति अलंकारवादी आचार्य हैं।

'अभिनव भारती' के छठे अध्याय में इनका उल्लेख है- 'निर्देशे चैतत्क्रमव्यत्यासनादित्यौद्भट्‌ा '। अभिनवभारती में 'नैतदिति भट्टलोल्लट ' उल्लेख के कारण, इन्हें लोल्लट का पूर्ववर्ती माना जाता है। अत ये सातवीं शती के अन्तिम अथवा आठवीं शती के आरंभिक के भाग के माने जा सकते हैं।

उद्भट ने 'उद्भटालंकार' नामक एक और ग्रथ की रचना की है और भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' पर टीका लिखी है।

इनके समय जयापीड की राजसभा में मनोरथ, शंखदत्त, चटक, संधिमान् तथा वामन मंत्री थे। सद्‌गुरु-सन्तान-परिमल ग्रंथ (कामकोटिपीठ के 38 वें आचार्य के समय की रचना) में भी यह दर्शित है। राजा जयापीड, कल्लट नाम धारण कर, अन्यान्य राज्यो का भ्रमण करते हुए गौड देश में आया। वहां पौण्डरवर्धन गांव के कार्तिकेय-मन्दिर में उसने भरत नाट्य देखा। वह इतना प्रभावित हुआ कि कमला नामक नर्तिका को अपने साथ ले गया तथा उसे अपनी रानी बनाया। संभवत इसी राजा के आदेश से उद्भट ने अपनी साहित्य-शास्त्रीय कृति 'काव्यालंकार-सारसंग्रह' की रचना की है।

उद्योतकर - समय- ई षष्ठ शताब्दी। शैव आचार्य। बौद्ध पंडित धर्मकीर्ति के समकालिक। 'वात्स्यायनभाष्य' पर 'न्यायवार्तिक' नामक टीका-ग्रथ के रचयिता। इन्होंने अपने 'न्यायवार्तिक' ग्रथ का प्रणयन, दिङ्नाग प्रभृति बौद्ध नैयायिको के तर्कों का खंडन करने हेतु किया था। अपने इस ग्रथ में बौद्ध-मत का पांडित्यपूर्ण निरास कर, ब्राह्मण-न्याय की निर्दुष्टता प्रमाणित की है। सुबधु कृत 'वासवदत्ता' में इनकी महत्ता इस प्रकार प्रतिपादित की गई है- 'न्यायसंगतिमिव उद्योतकरस्वरूपाम्'। स्वय उद्योतकर ने अपने ग्रंथ का उद्देश्य निम्न श्लोक में प्रकट किया है-

"यदक्षपाद प्रवरो मुनीना शमाय शास्त्र जगतो जगाद।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतो , करिष्यते तस्य मया प्रबध ।।"

ये भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण तथा पाशुपत-सप्रदाय के अनुयायी थे- ('इति श्रीपरमर्षिभारद्वाज-पाशुपताचार्य श्रीमदुद्योतकरकृतौ न्यायवार्तिके पंचमोऽध्याय'।) आप पाशुपताचार्य के नाम से भी जाने जाते थे। आपने दिङ्नाग के आक्रमण से क्षीणप्रभ हुए न्याय-विद्या के प्रकाश को पुनरपि उद्योतित कराते हुए, अपने शुभनाम की सार्थकता सिद्ध की। इनका यह ग्रथ अत्यत प्रौढ व पाडित्यपूर्ण है। कतिपय विद्वान काश्मीर को इनका निवास-स्थान मानते हैं, तो अन्य कुछ विद्वान मिथिला को।

उपनिषद्-ब्राह्मण (संन्यासी)- काचीवरम्-निवासी। इन्होंने 100 उपनिषदों तथा भगवद्‌गीता पर भाष्य-रचना की है।

उपाध्याय पद्मसुन्दर- नागौर-निवासी। जैन तपागच्छ के विद्वान्। गुरु-पद्ममेरु और प्रगुरु आनन्दमेरु। अकबर द्वारा सम्मानित। स्वर्गवास वि सं 1639। ग्रंथ- (1) रायमल्लाभ्युदय (चोबीस तीर्थंकरों का चरित्र) - सेठ चौधरी रायमल्ल की अभ्यर्थना और प्रेरणा से रचित, (2) भविष्यरतचरित, (3) पार्श्वनाथराय प्रमाणसुदर, (4) सुदरप्रकाशशब्दार्णव, (5) शृंगारदर्पण, (6) जम्बूचरित, और (7) हायनसुदर।

उपाध्याय मेघविजय- व्याकरण, न्याय, साहित्य, अध्यात्मविद्या, योग तथा ज्योतिर्ज्ञान के निष्णात पण्डित। समय- ई 17 वीं शती। गुरुपरम्परा- हीरविजय, कनकविजय-शीलाविजय-सिद्धिविजय-कमलविजय-कृपाविजय-मेघविजय। तपागच्छीय जैन विद्वान्। विजयप्रभसूरि द्वारा 'उपाध्याय' की पदवी से विभूषित। राजस्थान और गुजरात प्रमुख कार्यक्षेत्र। प्रमुख ग्रंथ- 1 अर्हद्‌गीता (36 अध्याय, 772 श्लोक), 2 युक्तिप्रबोध (इसमें बनारसीदास के मत का खण्डन किया गया

है), 3. चन्द्रप्रभाहेमकौमुदी व्याकरण (8000 श्लोक), 4 लघुत्रिषष्टिचरित्र (5000 श्लोक), 5 श्रीशान्तिनाथचरित्र (6 सर्ग), नैषधीय काव्य की समस्यापूर्ति, 6 मेघदूत-समस्या-पादपूर्ति (130 श्लोक), 7. देवानदाभ्युदय महाकाव्य (माघकाव्य समस्यारूप), 8. शंखेश्वर प्रभुस्तवन, 9. श्रीविजयसेनसूरि-दिग्विजय काव्य-तपागच्छ पट्टावली, 10 मातृकाप्रसाद, 11 सप्तसधान महाकाव्य (ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, कृष्ण एवं रामचन्द्र का श्लेषपूर्ण वर्णन), 12 हस्तसजीवनी (525 श्लोकों में हस्तरेखाविज्ञान, स्वोपज्ञवृत्तिसहित), 13 वर्षप्रबोध, अपरनाम मेघमहोदय (13 अधिकार और 3500 श्लोक), 14. रमलशास्त्र, 15 सीमंधरस्वामि-स्तवन, 16 पर्वलेखा, 17. भक्तामर टीका, 18. ब्रह्मबोध, 19 मध्यमव्याकरण (3500 श्लोक), 20 यावच्चकुमार-स्वाध्याय, 21 लघुव्याकरण, 22 पार्श्वनाथनामावली, 23 उदयदीपिका, 24 रावणपार्श्वनाथोपक्रम, 25 पचतीर्थस्तुति (ऋषभनाथ, शातिनाथ, सभवनाथ, नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ का एकसाथ वर्णन), 26 भूविश्वेत्यादिकाव्य-विवरणम्, 27 विंशति-यत्रविधि, 28 पचमीकथा, 29 धर्ममजूषा, 30 अर्जुनपताका और 31 विजयपताका।

उपेन्द्रनाथ सेन- ई. 20 वीं शती। कलकत्ता-निवासी। कृतिया-पल्ली-छवि, मकरन्दिका, कुन्दमाला (उपन्यास) तथा आयुर्वेद-सग्रह।

उंबेक- कुमारिल भट्ट के शिष्य। भवभूति एव उबेक दोनो एक ही व्यक्ति क नाम माने जाते हैं। कुमारिल के 'श्लोकवार्तिक' की एक कारिका पर उन्होंने टीका लिखी है। चित्सुखाचार्य-विरचित चित्सुखी के अनुसार उबेक एव भवभूति अलग-अलग व्यक्ति हैं। इनके द्वारा श्लोकवार्तिक पर लिखी तात्पर्य-टीका एव मडन मिश्र-रचित भावनाविवेक पर लिखी टीका उपलब्ध है

उभयकुशल- ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। फल-ज्योतिष के मर्मज्ञ। समय- ई 17 वी श्नी। ये मुहूर्त व जातक दोनो ही अगों के पण्डित थे। 'विवाहपटल' व 'चमत्कार-चितामणि' इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं, और दोनों ही ग्रथो का सबध फल-ज्योतिष से है।

उमापति- मिथिला-निवासी। 'पारिजातक-हरण'- नाटक के रचयिता।

उमापति (उमापतिधर)- ई 12 वी शती। बगाल के राजा लक्ष्मणसेन की कवि-सभा के पचरत्नो में से एक। सभवत मत्री। बल्लालसेन के पिता विजयसेन के, देवपारा-शिलालेख के लेखक। वेंकट कविसार्वभौम के मतानुसार 'कृष्णचरित'-काव्य के लेखक।

उमापति शर्मा द्विवेद 'कविपति'- जन्म सन् 1894 में। जन्मग्राम-उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले का पकडी नामक ग्राम। आपने कई ग्रथों की रचना की है, जिनमें 'शिवस्तुति' व 'वीरविंशतिका' विशेष प्रसिद्ध हैं। द्वितीय ग्रंथ में हनुमान्जी की स्तुति है। 'पारिजात-हरण' आपका सर्वाधिक प्रौढ महाकाव्य है जिसका प्रकाशन 1958 ई में हुआ है।

उमापति शिवार्य- चिदम्बरम् के निवासी। समय- ई 12 वीं शती से पूर्व। रचना- औमापत्यम् (सगीतविषयक ग्रंथ)।

उमास्वाति (उमास्वामी)- इनका जन्म-स्थान मगध है। श्रुतपरम्परा के जैनाचार्य। अपर नाम गृद्धपिच्छाचार्य। दक्षिण भारतीय कुन्दकुन्दान्वय के अनुयायी। समय- ई प्रथम शताब्दी का अन्तिम भाग। इनके द्वारा प्रणीत ग्रथ है तत्त्वार्थ अथवा तत्त्वार्थसूत्र। रचना का हेतु- सिद्धय्य नामक श्वेताम्बरीय विद्वान द्वारा लिखित सूत्र 'दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्षमार्ग' के प्रारभ मे सम्यक् पद का योग। 'आत्मा का हित क्या है'- इस प्रश्न के उत्तर में तत्त्वार्थ-सूत्र की रचना की गई है। श्रुतसागर द्वारा सूरि-तत्त्वार्थवृत्ति के प्रारभ में प्रश्नकर्ता के रूप में द्वैपायक नामका उल्लेख है।

उमास्वाति ने विक्रम संवत् के प्रारंभ में 'तत्त्वार्थसूत्र' का प्रणयन किया था। अपने इस ग्रंथ पर इन्होंने स्वयं ही भाष्य लिखा है। इसका महत्त्व दोनों ही जैन-संप्रदायो (श्वेतांबर व दिगबर) में समान है। दिगबर जैनी इन्हें उमास्वामी कहते हैं।

उमेश गुप्त - ई 19 वीं शती। 'वैद्यक-शब्द-सिन्धु' के कर्ता। बगाली।

उवट- समय ई 12 वीं शती के आसपास। शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन सहिता के प्रसिद्ध भाष्यकार। उवटाचार्य ने यजुर्वेद सहिता-भाष्य के अन्त में अपने काल आदि का संकेत दिया है। तदनुसार भोज राजा के समय अवन्तीपुर में रहते हुए उवटाचार्य ने भाष्य-रचना की, यह बात स्पष्ट है। इनके पिता का नाम वज्रट था। उवटाचार्य के अन्य ग्रथ हैं- (1) 'ऋक्-प्रातिशाख्य-भाष्य, (2) यजु प्रातिशाख्य-भाष्य और (3) ऋक्सर्वानुक्रमणी-भाष्य। तीसरे ग्रथ के लेखक यही उवटाचार्यजी हैं या अन्य, इस विषय में एकमत नहीं है। उसी तरह उवटाचार्यजी के ऋग्भाष्य-रचना के विषय में भी मतभेद है। यह बाद तो नि सदिग्ध है कि उवटाचार्य का भाष्य शत्रुघ्न, महीधर आदि माध्यदिन वेद-भाष्यकारों का आधार-भाष्य रहा। उवटाचार्यजी का भाष्य सक्षिप्त और मार्मिक है। महीधराचार्य ने, उसी का अपनी शैली के अनुसार विवरण किया है। उवटाचार्य ज्ञान-कर्म-समुच्चयवाद के समर्थक थे। इससे भाष्यकार की स्वतत्र भूमिका और प्रतिभा का परिचय मिलता है। उवट-भाष्य का नया संस्करण आवश्यक है, क्यों कि उपलब्ध सस्करणो में कई स्थानो पर महीधराचार्य का भाष्य ही उवटाचार्य के नाम पर दिया गया है।

ऋद्धिनाथ झा- ई 20 वीं शती। जन्म-शारदापुर (मिथिला) में। कुलनाम-सकराढि। राजकुमार के शिक्षक। राजमाता को पुराण सुनाते थे। साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त। महाकवि

महेश्वरलता महाविद्यालय के प्राचार्य। तत्पूर्व लोहना विद्यापीठ में प्रधान अध्यापक। पिता- मे.म.हर्षनाथ शर्मा ('उषाहरण' के लेखक)। राजसभापण्डित। मैथिली में भी अनेक नाटकों का सर्जन।

कृतियां-शशिकला-परिणय (पांच अंकी नाटक) और पूर्णकाम (एकांकी रूपक)।

ऋषिपुत्र- ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। इनके बारे में कोई प्रमाणिक विवरण प्राप्त नहीं होता। इन्हें जैन धर्मानुयायी ज्योतिषी माना जाता है। 'कैटलोगस् कैटागोरम' (आफ्रेट कृत) में इन्हें प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री आचार्य गर्ग का पुत्र कहा गया है।

ऋषिपुत्र का लिखा हुआ 'निमित्तशास्त्र' नामक ग्रंथ संप्रति उपलब्ध है। तथा इनके द्वारा रचित एक संहिता के उद्धरण, 'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त होते हैं। ज्योतिष-शास्त्र के प्रकांड पंडित वराहमिहिर के ये पूर्ववर्ती ज्ञात होते हैं। वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' के 26 वें अध्याय में इनका प्रभाव स्वीकार किया है।

एम. अहमद (प्रा.)- विल्सन महाविद्यालय (मुंबई) में फारसी के प्राध्यापक। अनुवाद- कृति 'दु खोत्तर' सखम्' (मूल अरबी कथासंग्रह अल्फरजबादष्पिद्द) और फारसी में देहिस्तानी से अनूदित जामे उहलीकायान्।

ओक, महादेव पांडुरंग- पुणे के निवासी। आपने सत ज्ञानेश्वर प्रणीत ज्ञानेश्वरी (भावार्थ-दीपिका के प्रथम ६ अध्यायो) का संस्कृत-अनुवाद किया जो मुद्रित भी हो चुका है। अन्य रचनाए- कुरुक्षेत्रम् (15 सर्गों का) महाकाव्य और अभंग-रसवाहिनी।

औपमन्यव- यास्काचार्यद्वारा निर्दिष्ट निरुक्तकारों में एकतम। आचार्य औपमन्यव का मत निरुक्तकार ने बारह बार उपस्थित किया है। बृहद्देवता में भी औपमन्यव आचार्य का एक बार निर्देश है।

और्णवाभ- निरुक्तकार यास्काचार्य ने आचार्य और्णवाभ का पाच बार निर्देश किया है। बृहद्देवता में भी और्णवाभ आचार्य का एक बार निर्देश मिलता है। प्रसिद्ध ऋग्भाष्य-रचियता आचार्य वेंकटमाधव भी अपने प्रथम ऋग्भाष्य में और्णवाभ का निर्देश करते हैं।

औदुम्बरायण- यास्काचार्य ने जिन बारह निरूक्तकारों का निर्देश किया है, उनमें औदुम्बरायण एक हैं। निरुक्त 1-1 में यह नाम उल्लिखित है।

औदुंबराचार्य- वैष्णवों के निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निंबार्क के शिष्य। निवासस्थान- कुरुक्षेत्र के पास। मुख्य ग्रंथ- (1) औदुंबर-संहिता और (2) श्री. निंबार्क-विक्रांति।

औरभट्ट- 'व्याकरणप्रदीपिका' नामक अष्टाध्यायी-वृत्ति के लेखक। समय -ई 18 वीं शती।

कंठमणि शास्त्री- जन्म- 1898 ई। श्री. शास्त्री का जन्म दतिया (मध्यप्रदेश) में हुआ, किन्तु उनका कर्मक्षेत्र कांकरौली रहा है। उनके पिता श्री बालकृष्ण शास्त्री थे । आप कांकरौली महाराजा के निजी पण्डित और उनके ही विद्या-विभाग, सरस्वती-भण्डार, पुस्तकालय तथा चित्रशाला के अध्यक्ष थे। आपको महोपदेशक, शुद्धाद्वैतभूषण एव कविरत्न की उपाधिया तथा स्वर्णपदक पुरस्कारस्वरूप प्राप्त हैं। आपके प्रसिद्ध काव्य हैं- 1. चाय-चतुर्दशी, 2. उपालम्भाष्टक, 3 'पक्वान्नप्रशस्ति', 4 काव्य-मणिमाला और 5 कविता-कुसुमाकर। "सुरभारती" पत्रिका में भी आपकी स्फुट रचनाए प्रकाशित हुई हैं। आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ हैं- 1 ईशावास्योपनिषत् (सटीक), 2 केनोपनिषत् (सटीक), 3 विष्णुसूक्तम् (सटीक), 4 श्रीनाथ-भावोच्चय (सटीक), 5. रसिकरजनम् (आर्यासप्तशती) तथा 6 सम्प्रदाय-प्रदीप।

कंदाड अप्पकोण्डाचार्य- आपने अद्वैत-विरोधी तथा विशिष्टाद्वैत (वैष्णव) वादी 60 ग्रथ लिखे। (डॉ राघवन द्वारा उल्लिखित)।

कक्षीवान्- ऋग्वेद के सूक्तद्रष्टा। दीर्घतमा और उशिज के पुत्र। उनकी जन्मकथा इस प्रकार बतायी जाती है- दीर्घतमा एक बार नदी में गिर पड़े और बहते-बहते अगदेश के किनारे जा लगे। उन्होंने वहा के राजा से भेंट की। राजा को सतान नहीं थी। अत· दीर्घतमा से पुत्रप्राप्ति की आशा से राजा ने उशिज नामक अपनी दासी को उनके पास भेजा। उनसे जो पुत्र हुआ, वही कक्षीवान् हैं। वे स्वय को पज्रकुल का मानते थे। वे क्षुतिरथ प्रियरथ और सिन्धुतट पर राज्य करनेवाले भाव्य राजा के पुरोहित थे। वे स्वय बडे दानी थे। उन्होंने दान की महत्ता इस प्रकार बतायी है-

> नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो
> य पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
> सस्मा आपो धृतमर्षन्ति सिन्धव-
> स्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा।

अर्थात् जो कोई दान-धर्म से ईश्वर को सतुष्ट करता है, वह स्वर्ग के शिखर पर पहुंचकर वहीं निवास करता है। देव-मडल में उसका प्रवेश होता है। स्वर्ग तथा पृथ्वी की नदिया उसकी ओर ही घृत का प्रवाह बहा कर ले जाती हैं। उसी के लिये यह उर्वरा भूमि समृद्धि से भर जाती है। कक्षीवान् के सूक्तों में इन्द्र व अश्विनों के सामर्थ्य और परोपकार की अनेक कथाओ के बीज है।

कणाद- वैशैषिक दर्शन के प्रवर्तक। उनके कणाद, कणभक्ष, कणभुक्, उलूक, काश्यप, पाशुपत आदि विविध नाम हैं। इनके आधार पर ये काश्यपगोत्री उलूक मुनि के पुत्र सिद्ध होते हैं। एक जनश्रुति के अनुसार वे सड़क पर गिरे हुए या खेतो में बिखरे हुए अनाज के कणों का भोजन करते थे। इसलिये वे 'कणाद' कहलाये। सूत्रालंकार में उन्हें "उलूक"

कहा गया है, क्योंकि वे रात्रि में आहार की खोज में भटकते थे। "वायुपुराण' के अनुसार कणाद का जन्म प्रभास क्षेत्र में हुआ था और वे अवतार तथा प्रभासनिवासी आचार्य सोमशमन के शिष्य थे। उदयनाचार्य ने अपने "किरणावली" ग्रन्थ मे उन्हें कश्यप-पुत्र माना है। पाशुपत-सूत्र में कणाद को पाशुपत कहा गया है। एक जनुश्रुति के अनुसार भगवान शिव से साक्षात्कार होने पर उनकी कृपा और आदेश से कणाद ने वैशेषिक दर्शन की रचना की। रचनाकाल बुद्ध से आठ सदी पूर्व माना जाता है। इसमें 10 अध्याय हैं, और हर अध्याय में दो आह्निक हैं। वैशेषिक दर्शन में पदार्थ के सामान्य और विशेष गुणों की चर्चा एवं परमाणुवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

कणाद तर्कवागीश- ई 17 वीं शती। रचनाए- मणिव्याख्या, भाषारत्नम् और अपशब्दखण्डनम्।

कन्हैयालाल- वल्लभ-सम्प्रदास की मान्यता के अनुसार, भागवत की महापुराणता के पक्ष मे गगाधर भट्ट द्वारा लिखित- "दुर्जन-मुख-चपेटिका" पर, आपने "प्रहस्तिका" नामक व्याख्या लिखी। मूल "चपेटिका" तो लघु है, किंतु आपने अपनी व्याख्या- "प्रहस्तिका" में विषय का बडे विस्तार के साथ प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत व्याख्या की पुष्पिका से आप गगाधर भट्ट के पुत्र निर्दिष्ट किये गये हैं।

कपालीशास्त्री ति.वि.- ब्रह्मश्री उपाधि से विभूषित। पाण्डेचरी अरविंदाश्रम के निवासी। रचना- (1) ऋग्वेद का सिद्धाजन नामक भाष्य, (2) वासिष्ठगणपतिमुनिचरितम् और मातृभूस्तवन तथा भारतीस्तव आदि अनेक राष्ट्रवादी मुक्तक काव्य।

कपिल (महर्षि)- साख्यदर्शन के आद्याचार्य। जन्मस्थान- सिद्धपुर। कर्दम व देवहूति के पुत्र। भागवत पुराण में इन्हें विष्णु का 5 वा अवतार कहा गया है। इनके बारे में महाभारत, भागवत आदि ग्रथो मे परस्पर-विरोधी कथन प्राप्त होते हैं। स्वय महाभारत मे ही प्रथम कथन के अनुसार ये ब्रह्मा के पुत्र हैं, तो द्वितीय वर्णन में अग्नि के अवतार कहे गए हैं (महाभारत, शातिपर्व, अध्याय 218)। अत कई देशी-विदेशी आधुनिक विद्वानो ने इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति न मान कर काल्पनिक ही माना है। पर प्राचीन परपरा में आस्था रखने वाले विद्वान, इन्हें एक ऐतिहासिक व्यक्ति एव साख्यदर्शन का आदि प्रवर्तक मानते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण, स्वय को सिद्धो में कपिल मुनि बताते हैं। "सिद्धान्तो कपिलो मुनि" (गीता 10-26)। ब्रह्मसूत्र के "शाकरभाष्य" में शकर ने इन्हें साख्य-दर्शन का आद्य उपदेष्टा और राजा सगर के 60 सहस्र पुत्रों को भस्म करने वाले कपिल मुनि से भिन्न स्वीकार किया है। [ब्रह्मसूत्र, शाकरभाष्य (2-1-1)]। इन विवरणो के अस्तित्व में कपिल की वास्तविकता के प्रति संदेह नहीं किया जा सकता। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान गार्बे ने अपने ग्रथ "सांख्य फिलॉसफी" में मैक्समूलर व कोलब्रुक के निष्कर्षो का खडन करते हुए कपिल को ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध किया हैं। महर्षि कपिल रचित दो ग्रंथ प्रसिद्ध है। "तत्त्वसमास" और "साख्यसूत्र"। कपिल के शिष्य का नाम आसुरि था जो साख्यदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य है। कपिल के प्रशिष्य पंचशिख हैं और वे भी साख्यदर्शन के आचार्य हैं। तर्कों और तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि कपिल बुद्ध से पहले तथा कम-से-कम कुछ उपनिषद लिखे जाने के पूर्व ही ख्याति प्राप्त कर चुके थे। बुद्ध के जन्मस्थान "कपिलवस्तु" का नामकरण भी, वहा कपिल मुनि के वास्तव्य के कारण हुआ माना जाता है। कपिल के सांख्य-शास्त्र में कर्म की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया गया है। श्वेताश्वर-उपनिषद् में साख्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कपिल ने सर्वप्रथम प्रकृति और पुरुष के भेद-ज्ञान के द्वारा विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कपिल निरीश्वरवादी थे। कपिल के नाम पर सांख्यसूत्र और तत्त्वसमास के अलावा व्यास-प्रभाकर, कपिल-गीता, कपिल-पंचरात्र, कपिल-सहिता, कपिल-स्तोत्र व कपिल-स्मृति नामक ग्रथ प्रसिद्ध हैं।

कपिलदेव द्विवेदी : ई 20 वीं शती। काशी हिन्दू वि वि. के धर्मशास्त्र विभाग के अध्यक्ष। राधाप्रसाद शास्त्री के पुत्र। पजाब में एम्.ए., शास्त्री, एम ओ एल., एलएल बी आदि उपाधिया प्राप्त की। भारत सरकार के न्यायविभाग के विशेष कार्याधिकारी। तत्पश्चात् उ प्र. शासन के विदेश-कार्याधिकारी। सस्कृत-परिषद् के सस्थापक एव प्रवर्तक। "परिवर्तन" नामक नाटक के रचयिता।

कमलभाव . मूलसघ कुन्दकुन्दान्वय देशीगण और पुस्तकगच्छ के आचार्य माघनन्दि के शिष्य। समय ई 13 वीं शती। ग्रथ-शान्तीश्वरपुराण। मल्लिकार्जुन ने इस ग्रथ से कुछ पद्य उद्धृत किये हैं।

कमलशील · काल ई 8 वीं शती। शातरक्षित के शिष्य तथा बौद्ध न्याय के पडित, नालदा में तत्रशास्त्र के अध्यापक। बाद में तिब्बत के राजा के निमत्रण पर तिब्बत चले गये। चीनी धर्मोपदेशक महायान होशग को वाद-विवाद में परास्त किया। न्यायबिंदु पूर्वपक्ष और तत्वसग्रहपंजिका नामक दो ग्रन्थों के लेखक।

कमलाकर भट्ट (प्रथम) - ई 17 वीं शताब्दी के एक धर्मशास्त्रकार। पिता-रामकृष्ण भट्ट। इनका ग्रंथ-लेखन-काल, 1610 से 1640 ई तक माना जाता है। इनके ग्रंथों से जैसा स्पष्ट है, ये न्याय, व्याकरण, मीमासा, वेदांत, साहित्य शास्त्र, वेद और धर्मशास्त्र के प्रकांड पडित थे। इनके द्वार प्रणीत ग्रथो की सख्या 22 है, जिनमें अधिकांश धर्मशास्त्र विषयक हैं। इनके निर्णयसिधु, दानकमलाकर, शांतिरत्न, विवादतांडव, गोत्रप्रवरदर्पण, कर्मविपाकरत्न आदि ग्रंथों में निर्णयसिंधु, विवाद-ताडव तथा शूद्रकमलाकर अति प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

"शूद्रकमलाकर" में शूद्रों के धार्मिक कर्तव्यों का तथा "विवादतांडव" में पैतृक सम्पत्ति के वितरण, दावे, प्रमाण, दण्ड के प्रकार आदि का विवेचन है। "निर्णयसिन्धु" तो न्यायालयों में आज भी प्रमाण ग्रथ के रूप में माना जाता है।

कमलाकर भट्ट (द्वितीय) - ज्योतिषशास्त्र के एक आचार्य। इन्होंने "सिद्धान्ततत्त्वविवेक" नामक अत्यत महत्त्वपूर्ण ज्योतिष शास्त्रीय ग्रंथ की रचना स 1580 में की है। इन्हें गोल और गणित दोनों का मर्मज्ञ बतलाया जाता है। ये प्रसिद्ध ज्योतिषी दिवाकर के भ्राता थे और इन्होंने अपने इन भ्राता से ही इस विषय का ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने भास्कराचार्य के सिद्धान्त का अनेक स्थलों पर खडन किया है और सौरपक्ष की श्रेष्ठता स्वीकार कर ब्रह्मपक्ष को अमान्य सिद्ध किया है।

करमरकर, गजानन रामचन्द्र - इन्दौर के महाराज होलकर महाविद्यालय के प्राध्यापक। रचना-लोकमान्यालकार। इसमें लोकमान्य तिलकजी का स्तवन है तथा अलकारों के छात्रोपयुक्त उदाहरण भी हैं।

करवीर्य - आयुर्वेद के आचार्य। सुश्रुत के समकालीन और धन्वतरि के शिष्य। इन्होंने एक शल्यतत्र विकसित किया था किंतु वह उपलब्ध नहीं।

कर्णजयानन्द - मिथिलानरेश माधवसिह (1776-1808 ई) के समकालीन। "रुक्मागद" नामक कीर्तनिया परम्परा के नाटक के रचयिता।

कर्णप्पार्य - कर्नाटकवासी। गुरु कल्याणकीर्ति। गोपन राजा के पुत्र लक्ष्मीधर के आश्रित कवि। समय ई 12 वीं शती। ग्रथ-नेमिनाथ पुराण, वीरेशचरित और मालती-माधव। अनेक श्रेष्ठ कवियों द्वारा इनकी प्रशंसा हुई है।

कर्णपूर - जन्म 1517 ई। अलकार शास्त्र के आचार्य एवं वेष्णव कवि। पिता-शिवानन्द सेन। बगाल के काचनपाडा के निवासी। महाप्रभु चैतन्य के शिष्य। इनके पिता ने उनकी आज्ञानुसार अपने पुत्र का नाम परमानन्ददास रखा। फिर महाप्रभु इन्हें पुरीदास कहने लगे। सात वर्ष की आयु में पुरीदास द्वारा रचित एक श्लोक के प्रथम दो पदो की प्रमुखता को ध्यान में रख कर, महाप्रभु ने उन्हें "कर्णपूर" कहना प्रारभ किया।

कृतिया-चैतन्यचन्द्रोदय (महानाटक) चैतन्यचरितामृत (महाकाव्य), गंगास्तव, वृत्तमाला, पारिजातहरण, आनन्दवृन्दावन (चम्पू), अलकारकौस्तुभ (टीका ग्रथ), कृष्णलीलोद्देशदीपिका, गौरगणोद्देशदीपिका, वर्णप्रकाशकोष, आर्याशतक (अप्राप्त) और चमत्कारचन्द्रिका (अप्राप्त)। "अलंकारकौस्तुभ" पर 3 टीकाए मिलती हैं।

कर्णश्रुत वासिष्ठ - वैदिक सूक्तद्रष्टा। इन्होंने सोम के स्तवन में 58 ऋचाओं वाले सूक्त की रचना की है जिसमें उपमा आदि अलंकारों का विपुल उपयोग किया गया है। सोम ने किस प्रकार निगुत नामक आर्यशत्रुओं को गहरी निद्रा में सुला कर उनका संहार किया इसका निरूपण भी प्रस्तुत किया गया है।

कल्य लक्ष्मीनरसिंह - ई 18 वीं शती। कौशिकगोत्री। पिता-अहोबल सुधी। उपास्य दैवत आध्र मे कुर्नूल जिले के अहोबल पर्वत पर प्रतिष्ठापित लक्ष्मीनरसिह। कृतिया-जनकजानन्दन नामक पांच अकी नाटक, कवि कौमुदी तथा विश्वदेशिकविजय। पिता की कृतिया-साहित्यमकरन्द तथा अलकारचिन्तामणि।

कल्याणकीर्ति - मूलसघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य। कार्कल के मठाधीश। पट्टस्थान-पनसोगे (मैसूर) शिष्य- देवचद्र। समय ई 15 वीं शती। ग्रंथ-जिनयज्ञकलोदय, ज्ञानचन्द्राभ्युदय, जिनस्तुति, तत्त्वभेदाष्टक, सिद्धराशि, फणिकुमार-चरित और यशोधरचरित (1850 श्लोक)।

कल्याणमल्ल - ई 17 वीं शती। बग्द्वान निवासी श्रेष्ठी। भरत मल्लिक के आश्रयदाता। कृति-मालती (मेघदूत पर टीका)।

कल्याणमल्ल - रचना-अनगरग। (कामशास्त्रविषयक ग्रथ) अवध नरेश लदाखान लोधी (अहमदखान का बेटा) को प्रसन्न करने हेतु रचित।

कल्याणरक्षित - काल ई 9 वी शती। एक बौद्ध दार्शनिक। धर्मोत्तराचार्य के गुरु। आपने पांच ग्रथों की रचना की। 1 सर्वज्ञसिद्धिकारिका, 2 बाह्यार्थसिद्धिकारिका, 3 श्रुतिपरीक्षा, 4 अन्यापोहविचारकारिका और 5 ईश्वरभगकारिका। इन सभी ग्रथों के केवल तिब्बती अनुवाद ही उपलब्ध हैं।

कल्याणवर्मा - भारतीय ज्योतिष के एक प्रसिद्ध आचार्य। समय 578 ई. किन्तु आधुनिक युग के प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री प सुधाकर द्विवेदी के अनुसार 500 ई। इन्होंने "सारावली" नामक जातकशास्त्र की रचना की है जिसमें 42 अध्याय हैं। यह ग्रथ वराहमिहिर रचित "बृहज्जातक" से भी आकार मे बडा है। लेखक ने स्वीकार किया है कि इस ग्रथ की रचना वराहमिहिर, यवन ज्योतिष व नरेन्द्रकृत "होराशास्त्र" के आधार पर हुई है और उनके मतो का सार सकलन किया गया है। भट्टोत्पल नामक ज्योतिष शास्त्री ने, अपनी बृहज्जातक टीका में, इनके श्लोको को उदधृत किया है। इनकी "सारावली" में ढाई हजार से भी अधिक श्लोक हैं। "सारावली" का प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस से हो चुका है।

कल्हण - "राजतरगिणी" नामक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य के रचयिता। काश्मीर के निवासी। आढ्यवशीय ब्राह्मण कुल में जन्म। इन्होने अपने मबध में जो कुछ अकित किया है, वही उनके जीवनवृत्त का आधार है। "राज तरगिणी" की प्रत्येक तरग की समाप्ति में "इति काश्मीरिक महामात्य श्रीचम्पकप्रभुसूनो कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्या" यह वाक्य अकित है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम चम्पक था और वे काश्मीर नरेश हर्ष के महामात्य थे। काश्मीर नरेश हर्ष का शासन काल 1089 से 1101 ई तक था। चंपक के नाम का कल्हण ने अत्यत आदर के साथ

उल्लेख किया है। इससे उनके कल्हण के पिता होने में किसी भी प्रकार का सदेह नही रह पाता।

कल्हण ने चपक के अनुज कनक का भी उल्लेख किया है जो हर्ष के कृपापात्रों में से थे। उन्होंने परिहारपुर को कनक का निवास स्थान कहा है और यह भी उल्लेख किया है कि जब राजा हर्ष बुद्ध प्रतिमाओ का विध्वस कर रहे थे तब कनक ने अपने जन्मस्थान की बुद्धप्रतिमा की रक्षा की थी। (राजतरगिणी 7/1097)। कल्हण के इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनका जन्मस्थान परिहारपुर था और ये स्वय बौद्धधर्म का आदर करते थे। कल्हण शैव थे। इस तथ्य की पुष्टि "राजतरगिणी" की प्रत्येक तरग मे अर्धनारीश्वर शिव की वदना मे होती है। कल्हण का वास्तविक नाम कल्याण था और वे अलकदत्त नामक किसी व्यक्ति के आश्रय मे रहते थे। इन्होने सुस्सल के पुत्र राजा जयसिह के राज्यकाल में (1127 से 1159 ई) "राजतरगिणी" का प्रणयन किया था। इस महाकाव्य का लेखन दो वर्षों मे (1148 से 1150 ई) हुआ था। शैवमतानुयायी होते हुए भी कल्हण बौद्ध धर्म के अहिंसा तत्त्व के पूर्ण प्रशसक थे। इन्होने बौद्धो की उदारता, अहिंसा व भावनाओ की पवित्रता की अत्यधिक प्रशसा की है। राजा के गुणों की ये बोधिसत्व मे तुलना करते है। (राज 1/34, 1/138)। "श्रीकण्ठचरित" मे कल्हण की प्रशस्ति प्राप्त होती है। (25/78, 25/79 व 25/80)।

कल्हण की एकमात्र रचना "राजतरगिणी" ही प्राप्त होती है। इसमे उन्होने अत्यत प्राचीन काल से लेकर 12 वी शताब्दी तक काश्मीर का इतिहास अकित किया है और ऐतिहासिक शुद्धता एव रचनात्मक साहित्यिक कृति, दोनो आवश्यकताओ की पूर्ति की है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यो का विवरण, कई स्रोतो मे ग्रहण कर, उसे पूर्ण बनाया है। कल्हण का व्यक्तित्व, एक निष्पक्ष व प्रौढ ऐतिहासिक का है। राजतरगिणी के प्रारभ में उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि "वही गुणवान कवि प्रशसा का अधिकारी है, जिसकी वाणी, अतीत का चित्रण करने में घृणा या प्रेम की भावनाओ से मुक्त और निश्चित होती है। ("श्लाघ्य स एव गुणवान् रागद्वेष बहिष्कृता। भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती" -11 1/7)। कल्हण ने इतिहास के वर्णन मे इस आदर्श का पूर्णत पालन किया है। कवि के रूप में उनका व्यक्तित्व अत्यत प्रखर है। उन्होंने स्वय को इतिहासवेत्ता न मान कर, एक कवि के रूप में ही प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं अमृत का पान करने से केवल पीने वाला ही अमर होता है, किन्तु सुकवि की वाणी, कवि एव वर्णित पात्रों, दोनों के ही शरीर को अमर कर देती है। (राज 1/3)। इनके उत्कृष्ट कवित्व ने ही काश्मीर के इतिहास को प्रकाशित किया है।

कविचन्द्र - ई 17 वीं शती। कुलनाम-दत्त। दीर्घाङ्क ग्राम (बगाल) के निवासी। व्यवसाय से वैद्य। पिता-कवि कर्णपूर। माता-कौसल्या। कृतिया "काव्यचन्द्रिका" और "चिकित्सा रत्नावली"।

कविचन्द्र द्विज - असम नरेश महाराज शिवसिह (1714-1744) के आश्रित कवि। कृतिया-धर्मपुराण का अनुवाद (ई 1735 मे) और कामकुमार हरण, नाटक (ई. 1724-31 के बीच)।

कविचूडामणि चक्रवर्ती - भागवत की केवल वेदस्तुति पर "अन्वयबोधिनी" नामक सफल सार्थक टीका के प्रणेता। अपनी इस टीका के अत मे आपने केवल इतना ही परिचय दिया है कि वे ब्राह्मण वर्ण तथा वृदावन निकुज के वासी थे। इनके समय का ठीक पता नहीं चलता। किन्तु इनकी टीका अन्वयबोधिनी बहुत पुरानी मानी जाती है। अष्टटीका भागवत मे वह प्रकाशित भी हो चुकी है।

कवितार्किक - ई 16-17 वीं शती। नोआखाली में भुलुया के राजा लक्ष्मण-माणिक्य के पुरोहित। पिता वाणीनाथ।

रचनाए-कौतुकरत्नाकर (प्रहसन) और जामविजयम् (काव्य)। "जामविजयम्" मे कच्छ के जामवश का वर्णन है। यह काव्य 7 सर्गों का है।

कवितार्किकसिंह - वेदान्ताचार्य। पिता- वेंकटाचार्य। गोत्र-कौशिक। रचना-आचार्यविनयचम्पू, इसमे वेदातदेशिक (14 वीं शती) का चरित्र निवेदित किया है।

कवि परमेष्ठी - नामान्तर कवि परमेश्वर। पम्प, नयसेन, अग्गल, कमलभव, गुणवर्म द्वितीय, पार्श्वपण्डित, गुणभद्र, जिनसेन आदि कन्नड एव सस्कृत कवियों द्वारा उल्लिखित। ग्रथ-वागर्थसग्रह।

कवि मदन - ई 17 वीं शताब्दी। "घटखर्पर" नामक काव्य का समस्या के रूप में उपयोग करते हुए काव्य रचना की जिसका नाम है "कृष्णलीला"।

कविराज - कीर्तिनारायण और चन्द्रमुखी का पुत्र। वनवासी के कदम्ब राजाओं का राजकवि। पिता वहीं पर सेनापति। राजा का नाम कामदेव। समय 12 वीं शती का उत्तरार्ध। वक्रोक्ति-निपुणता के लिए प्रसिद्ध है। रचनाएँ पारिजातहरणम् 10 सर्गों का काव्य। इन्द्रोद्यान से श्रीकृष्ण द्वारा पारिजात का हरण इस काव्य की कथा वस्तु है। श्लिष्ट शब्दावली के अभाव मे यह काव्य मधुरता से पूर्ण है। सभवतः कवि की प्रथम रचना है। दूसरे काव्य राघवपाण्डवीयम् में रामायण तथा भारत की कथा श्लेषमय रचना द्वारा वर्णित है।

कविराज - इन्होंने छत्रपति शिवाजी द्वारा मिर्जा राजा जयसिंह को फारसी में लिखे गए महत्त्वपूर्ण पत्र का संस्कृत में अनुवाद किया है जिसकी श्लोक संख्या 60 है।

कवि राम - ई 17 वीं शती। "दिग्विजयप्रकाश" के रचयिता।

कवि वाचस्पति - ई. 11 वीं शती। बगाल निवासी। राजा

हरिवर्मदेव के मत्री भवदेव के मित्र। "भवदेवकुलप्रशस्ति" नामक काव्य के रचयिता।

कवीन्द्र परमानन्द नेवासेकर - रचना "शिवभारतम्"। छत्रपति शिवाजी महाराज का जीवन चरित्र अन्यान्य भाषाओं में उपलब्ध है, तथापि इस चरित्र ग्रंथ की ऐतिहासिक प्रामाण्य की दृष्टि से, विशेष योग्यता है। कवि की विद्वत्ता को पहचान कर महाराज ने उन्हें चरित्र लेखन का आदेश दिया था। कवीन्द्र परमानन्द शिवाजी महाराज के साथ आगरा गए थे। अंतिम अवस्था में आपने सन्यास ग्रहण किया था। महाराष्ट्र में लोहगड के पास कवीन्द्र की समाधि विद्यमान है।

कवीन्द्र परमानन्द - 20 वीं शती। लक्ष्मणगढ के ऋषिकुल में निवास। रचना-कर्णार्जुनीयम्।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती - इनकी स्तुतियों का सग्रह कवीन्द्रचन्द्रोदय नाम से प्रकाशित है। समय 17 वीं शती। रचनाए हंससदेशम् और कवीन्द्रकल्पद्रुम·।

कवीश्वर जग्गु श्रीवकुलभूषण - जग्गु अलवार अय्यगार नाम से प्रसिद्ध। पिता-तिरुनारायण। मेलकोटे (कर्नाटक) नगर के निवासी। रचना-बाणभट्ट की शैली का अनुसरण करते हुए रचित कथा जयन्तिका। अन्य रचनाए-स्थमन्तक व अद्भुताशुकम् (दोनों नाटक) तथा करुणारसतरगिणी व हयग्रीवस्तुति (दोनों स्तोत्र)।

कश्यप - एक वैदिक सूक्तद्रष्टा। अग्नि के शिष्य और विभाडक के गुरु। मरीचि के पुत्र। माता का नाम है कर्दमकन्या कला। ये ताक्ष्य व अरिष्टनेमि नामों से भी जाने जाते हैं। इनकी गणना सप्तर्षियों और प्रजापतियों में की जाती है। वायुपुराण में इनके कुल की महिमा बताई गई है। दिति व अदिति कश्यप की भार्याए थीं। दिति से दैत्यों और अदिति से आदित्यों अर्थात् देवों की उत्पत्ति हुई। भागवत के अनुसार कश्यप की अरिष्टि नामक अन्य चार भार्याए बतायी गयी हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, नाग, जलचर आदि सब कश्यप की संतति हैं।

इनके सम्बन्ध में एक कथा यह भी बताई जाती है-परशुराम ने समूची पृथ्वी को नि क्षत्रिय बना कर, सरस्वती के तट पर रामतीर्थ में अश्वमेघ यज्ञ किया। कश्यप ही उस यज्ञ के अध्वर्यु थे। यज्ञ की समाप्ति पर दक्षिणा के रूप में परशुराम ने विजित पृथ्वी (मध्यप्रदेश) कश्यप को दे दी। कश्यप ने वह पृथ्वी ब्राह्मणों को सौंप दी और स्वय वनवास स्वीकार किया।

इसी प्रकार एक और कथा बतायी जाती है जब कश्यप ऋषि ने अर्बुद (अरावली) पर्वत पर महान तप किया तब अन्य ऋषियों ने उन्हें गगा लाने के लिये कहा। कश्यप ने शिव की उपासना कर उनसे गंगा प्राप्त की। जिस स्थान पर उन्हें गंगा मिली वह स्थान कश्यपतीर्थ नामसे विख्यात हुआ। गंगा को काश्यपी भी कहा जाता है। विष्णु भगवान के वाहन गरुड को इन्होंने नारायण-माहात्म्य बताया।

कश्यप के नाम पर कश्यपसहिता (वैद्यकीय) कश्यपोत्तर संहिता, कश्यपस्मृति व कश्यपसिद्धान्त ये चार ग्रंथ बताएं जाते है। बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में कश्यप मत का प्रतिपादन इस प्रकार किया है .

"क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्।।"

अर्थात् द्रव्य देकर जिस स्त्री को खरीदा गया, वह पत्नी नहीं हो सकती। उसे दैव-पितृकार्य में कोई अधिकार नहीं होता। वह केवल दासी होती है।

कश्यप कुल में छह ऋषि हुए हैं कश्यप, अवत्सार, नैध्रुव, रैभ्य, असित व देवल। कश्यप का गोत्र काश्यप है। शांडिल्य गोत्र से इनका मेल नहीं बैठता। जिन ब्राह्मणों को अपने गोत्र का ज्ञान नहीं उनका गोत्र काश्यप ही माना जाता है।

कस्तूरी रंगनाथ - ई 19 वीं शती का प्रारम्भ। कुलनाम-वाधूल। पिता-वीरराघव कवि। माता-कनकवल्ली। गुरु श्रीवत्सवशोद्‌भव वेंकटकृष्णमार्य। अनेक शास्त्रों में पारगत। बाल-किंगृहपुरी के निवासी। "रघुवीर विजय" नामक समवकार (एक प्रकार का रूपक) के प्रणेता।

कस्तूरी श्रीनिवास शास्त्री - समय ई स 1833 से 1917) गोदावरी जिले के (आन्ध्र) कूचिमंचीवरी अग्रहार गाव के निवासी। रचनाए-शूलपाणिशतकम्, स्तोत्रकदम्ब, द्वादशमजरी, शिवानन्दलहरी, शिवपादस्तुति·, नृसिहस्तोत्रम् व समुद्राष्टकम्।

कात्यायन (वैयाकरण) - "अष्टाध्यायी" पर वार्तिक लिखने वाले प्रसिद्ध वैयाकरण जिन्हें "वार्तिककार कात्यायन" के नाम से ख्याति प्राप्त है। श्री युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार •महाभाष्य 3/2/118) मे इनका स्थितिकाल वि पू 2700 वर्ष है। सस्कृत व्याकरण के मुनित्रय मे पाणिनि, कात्यायन एव पतजलि का नाम आता है। पाणिनीय व्याकरण को पूर्ण बनाने के लिये ही कात्यायन ने अपने वार्तिकों की रचना की थी जिनमें अष्टाध्यायी के सूत्रो की भाति ही प्रौढता व मौलिकता के दर्शन होते है। इनके वार्तिक, पाणिनीय व्याकरण के महत्त्वपूर्ण अग हैं जिनके बिना वह अपूर्ण लगता है।

प्राचीन वाङ्मय में कात्यायन के लिये कई नाम आते हैं। कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित् तथा वररुचि, और कई कात्यायनों का उल्लेख प्राप्त होता है-कात्यायन कौशिक, आंगिरस, भार्गव एव कात्यायन द्वामुष्यायण। "स्कंदपुराण" के अनुसार इनके पितामह का नाम याज्ञवल्क्य, पिता का नाम-कात्यायन और इनका पूरा नाम वररुचि कात्यायन है। कात्यायन बहुमुखी प्रतिभा से सपन्न व्यक्ति थे। इन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र व अन्य अनेक विषयों पर स्फुट रूप से लिखा है। इनके ग्रथो का विवरण इस प्रकार है।

स्वर्गारोहण (काव्य) इसका उल्लेख "महाभाष्य" (4/3/110) में "वाररुच" काव्य के रूप में प्राप्त होता है

तथा समुद्रगुप्त के "कृष्णचरित" में भी इसका निर्देश है। इसके अनेक पद्य "शारङ्गधर पद्धति", "सदुक्तिकर्णामृत" व "सूक्तिमुक्तावली" में प्राप्त होते हैं। इन्होंने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भी लिखा था जो सप्रति अनुपलब्ध है, किन्तु इसका विवरण "अभिनवभारती" व "श्रृंगारप्रकाश" में है।

इनके अन्य ग्रथों के नाम हैं-"भ्राज", "सज्ञक श्लोक" तथा "उभयसारिकाभाण"। कात्यायन के नाम पर कुल 26 ग्रंथ प्राप्त होते हैं।

कात्यायन (स्मृतिकार) - "कात्यायनस्मृति" के रचयिता भारतरत्न पी वी काणे के अनुसार इनका समय ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दी है। इनका धर्मशास्त्र विषयक कोई भी ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। विविध धर्मशास्त्रीय ग्रथों में इनके लगभग 900 श्लोक उद्धृत हैं। दस निबध ग्रथों में इनके व्यवहार संबधी उद्धृत श्लोको की सख्या 900 मानी जाती है। एकमात्र "स्मृतिचद्रिका" में ही इनके 600 श्लोकों का उल्लेख है। जीवानद सग्रह में कात्यायनकृत 500 श्लोकों का एक ग्रंथ प्राप्त होता है। यही ग्रथ "कर्मप्रदीप" या "कात्यायनस्मृति" के नाम से विख्यात है। इस ग्रथ के अनेक उदाहरण मिताक्षरा व अपरार्क ने भी दिये हैं। कात्यायनस्मृति लेखक कौन है, यह भी विवादास्पद विषय हुआ है।

कात्थक्य - यह नाम निरुक्त मे सात बार और बृहद्देवता मे एक बार निर्दिष्ट है। इस निर्देश के आधार पर, कात्थक्य आचार्य, न केवल गण्यमान्य निरुक्तकार अपि तु बडे याज्ञिक भी होंगे ऐसा विद्वानो का तर्क है।

कामंदक - प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्र के एक प्रणेता एव राज्यशास्त्र विषयक ग्रथ "कामदकनीति" के रचयिता। इनके समय निरूपण के सबध में विद्वानों में मतैक्य नहीं। डा अनत सदाशिव आल्तेकर के अनुसार, "कामदकनीति" का रचनाकाल 500 ई के आसपास है। इस ग्रथ मे भारतीय राज्यशास्त्र के कतिपय लेखको के नाम उल्लिखित है जिनसे इनके लेखन काल पर प्रकाश पडता है। मनु, बृहस्पति, इन्द्र, उशना, मय, विशालाक्ष, बाहुदतीपुत्र, पराशर व कौटिल्य के उद्धरण, "कामदकनीति" में यत्र तत्र प्राप्त होते है। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रथ की रचना कौटिल्य के बाद ही हुई होगी। कामदक ने अपने ग्रथ मे स्वीकार किया है कि इस ग्रथ के लेखन में कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" की विषयवस्तु का आश्रय ग्रहण किया गया है। "कामदकनीति" की रचना 19 सर्गों में हुई है। इस ग्रथ में 1163 श्लोक हैं। ग्रथारभ में विद्याओ का वर्गीकरण करते हुए उनके 4 विभाग किये गए है। आन्वाक्षीकी, त्रयी, वार्ता व दडनीति। इसमे बताया गया है कि नय (न्याय) व अनय का सम्यक् बोध करानेवाली विद्या को दडनीति कहत हैं। इसमे वर्णित विषयो की सूची इस प्रकार है - राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति का सिद्धान्त, राजा की उपयोगिता, राज्याधिकारविधि, राजा का आचरण, राजा के कर्तव्य राज्य की सुरक्षा, मत्रिमंडल, मत्रिमंडल की सदस्यसंख्या, कार्यप्रणाली, मत्र का महत्त्व, मंत्र के अग, मत्र के भेद, मत्रणा-स्थान, राजकर्मचारियों की आवश्यकता, राजकर्मचारियों के आचार व नियम, दूत का महत्त्व, योग्यता, प्रकार व कर्तव्य, चर व उसकी उपयोगिता, कोश का महत्त्व, आय के साधन, राष्ट्र का स्वरूप व तत्त्व, सैन्य, बल, सेना आदि के अग। कामदककृत विविध राज मडलों के निर्माण का वर्णन भारतीय राज्यशास्त्र के इतिहास में, अभूतपूर्व देन के रूप में स्वीकृत है।

कामाक्षी - तजौर जिले के गणपति अग्रहार की निवासी। पचपागेशाचार्य की कन्या। कालिदास के अनुकरण पर रचना "रामचरितम्" जिसमे कालिदास के शब्द तथा वाक्यों का प्रचुर प्रयोग है। पति- विद्वान् मुथुकृष्ण। कडलोर में सस्कृत की प्राध्यापिका। समय 19 वीं शती। समस्त लेखन कार्य वैधव्यावस्था मे हुआ। सभी कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं।

कालनाथ- ई 12 वी शती। यजुर्मन्जरी के लेखक। यजुर्मन्जरी, यजुर्विधानान्तर्गत लगभग 250 मत्रो का भाष्य है। कालनाथाचार्य ने अपने ग्रथ में अपना परिचय दिया है। तदनुसार वे महाराज देवराजा के सभापण्डित और पंचनद के निवासी थे। सभवत यह स्थान राजस्थान समीपवर्ती होगा ऐसा विद्वानो का तर्क है। यजुर्मंजरी, उवटभाष्य की छायामात्र प्रतीत होती है।

कालहस्ती- "वसुचरित्रचपू" नामक काव्य के रचियता। ये अप्पय दीक्षित के शिष्य कहे जाते हैं। समय 17 वी शती। "वसुचरित्रचपू" अभी तक अप्रकाशित है। उसका विवरण तजौर कैटलाग सख्या 4/46 में प्राप्त होता है।

कालिदास- महाकवि कालिदास सस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि व नाटककार तथा भारतीय साहित्य और प्राचीन भारतीय अतरात्मा के प्रतिनिधि हैं। भारतीय सौंदर्य-दर्शन की सभी विभूतिया इनके साहित्य मे समाहित हो गई हैं। ऐसे सुप्रसिद्ध कवि का जीवनचरित्र अद्यापि अनुमान का विषय बना हुआ है। महाकवि ने अपने ग्रथो मे स्थान-स्थान पर जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे उनकी प्रकृति का पता चलता है। अपने "रघुवश"-महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे कवि ने अपनी विनम्र प्रकृति का परिचय दिया है। अपनी प्रतिभा को हीन बताते हुए महाकवि, रघु जैसे तेजस्वी कुल के वर्णन में स्वय को असमर्थ पाते हैं और छोटी नाव द्वारा सागर को पार करने की तरह अपनी मूर्खता प्रदर्शित करते है (1/2-4)। कवि, विद्वानों की महत्ता स्वीकार करते हुए, उनकी स्वीकृति पर ही अपनी रचना को सफल मानता है (शाकुतल 1/2)। कवि होने पर भी उनमें आलोचक की प्रतिभा विद्यमान है। वे प्रत्येक प्राचीन वस्तु को इसलिये स्तुत्य नहीं मानते कि वह पुरानी है और न नये

पदार्थ को केवल नवीनता के कारण बुरा मानते है (मालविकाग्निमित्र 1/2)।

अनेक व्यक्तियों ने कालिदास की प्रशस्तियां की है, तथा अनेक ग्रंथों में उनकी प्रशंसा के पद्य प्राप्त होते हैं। उदा - राजशेखर, दंडी, बाण (हर्षचरित 1/16), तिलक-मंजरी (25), आर्या-सप्तशती (35), सोड्ढल, कृष्णभट्ट, सोमेश्वर, श्रीकृष्ण कवि, भोज व सुभाषितरत्नभांडागार (2/19, 2/21)। इनके सुप्रसिद्ध काव्य "मेघदूत" के तिब्बती तथा सिंहली भाषा में प्राचीन काल में ही अनुवाद हो चुके हैं। कालिदास उपमा-सम्राट् माने जाते हैं- (उपमा कालिदासस्य") और कविकुलगुरु तथा कविताकामिनी के विलास जैसे दुर्लभ उपाधियों से भूषित हैं।

कालिदास के जीवन व जन्म-तिथि के बारे में विद्वानों का एकमत नहीं इसके कई कारण बताये गए हैं। स्वयं कवि का अपने विषय में कुछ भी न लिखना, इनके नाम पर कई प्रकार की किंवदंतियों का प्रचलित होना तथा कृत्रिम नामों का जुड जाना और कालांतर में सस्कृत-साहित्य में "कालिदास" नाम की उपाधि हो जाना। किंवदंतियों के अनुसार ये अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में वज्रमूर्ख थे, तथा आगे चलकर देवी काली की कृपा से ये महान् पडित बने। किंवदंतियां इन्हें विक्रम की सभा का रत्न व भोज की राजसभा का कवि भी बतलाती है।

इनके बारे में लंका में भी एक जनश्रुति प्रचलित है। तदनुसार लंका के राजा कुमारदास की कृति "जानकीहरण" की प्रशंसा करने पर ये राजा द्वारा लंका बुलाए गए थे। इसी प्रकार इन्हें "सेतुबंध" महाकाव्य के प्रणेता प्रवरसेन का मित्र कहा जाता है एवं मातृचेट से ये अभिन्न माने जाते हैं। इनके जन्म-स्थान के बारे में भी यही बात है। कोई इन्हें बंगाली, कोई काश्मीरी, कोई मालव-निवासी, कोई मैथिल, एवं कोई बक्सर के पास का रहने वाला बतलाता है। कालिदास की कृतियों में उज्जैन के प्रति अधिक आत्मीयता प्रदर्शित की गई है। अतः अधिकांश विद्वान इन्हें मालव-निवासी मानने के पक्ष में हैं। इधर विद्वानों का झुकाव इस तथ्य की और अधिक है कि इनकी जन्मभूमि काश्मीर व कर्मभूमी मालवा थी। पद्मभूषण म.म.डॉ.मिराशी विदर्भ प्रदेश से भी इनका संबंध जोडते हैं।

कालिदास के स्थिति-काल को लेकर भारतीय व पाश्चात्य पंडितों में अत्यधिक वाद-विवाद हुआ है। इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ई. छठी शताब्दी तक माना जाता रहा है। परंपरागत अनुश्रुति के अनुसार महाकवि कालिदास, सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। इनके ग्रंथो में भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। कहा जाता है कि कालिदास के "शांकुतल" का अभिनय विक्रम की "अभिरूप-भूयिष्ठा" परिषद में ही हुआ था। "विक्रमोर्वशीय" नाटक में भी "विक्रम" का नाम उल्लिखित है। "अनुत्सेक· खलु विक्रमालंकार" इस वाक्य से भी ज्ञात होता है कि कालिदास का, विक्रम से सबध रहा होगा। अभिनंदकृत "रामचरित-महाकाव्य" के "ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शंकारातिना" इस कथन से भी विक्रम के साथ महाकवि के सबंध की पुष्टि होती है। इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास शकाराति अर्थात् शक आक्रान्ताओं को परास्त करने वाले विक्रम की सभा में रहे होंगे।

कालिदास के समय-निरूपण के बारे में तीन मत प्रधान हैं- (क) कालिदास का आविर्भाव षष्ठ शतक में हुआ था, (ख) इनकी स्थिति गुप्तकाल में थी और (ग) विक्रम सवत् के आरंभ में ये विद्यमान थे। प्रथम मत के पोषक फर्ग्युसन प्रभृति विद्वान हैं। इनके मतानुसार मालवराज यशोधर्मा के समय में कालिदास विद्यमान थे। इन्होंने छठी शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त कर, उसकी स्मृति में 600 वर्ष पूर्व की तिथि देकर मालव-सवत् चलाया था। यही संवत् आगे चलकर विक्रम-सवत् के नाम से प्रचलित हुआ। इन विद्वानों ने "रघुवंश" में वर्णित हूणों की विजय के आधार पर कालिदास का समय छठी शताब्दी माना है-

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्।।(4/66)

पर यह मत अमान्य हो गया है क्यों कि कुमारगुप्त की प्रशस्ति के रचियता वत्सभट्टि (473 ई) की रचना में कालिदासकृत "ऋतुसहार" के कई पद्यों का प्रतिबिंब दिखाई देता है।

द्वितीय मत के अनुसार कालिदास गुप्त-काल में हुए थे। इसमें भी दो मत हैं- एक के अनुसार वे कुमारगुप्त के राजकवि थे, और द्वितीय मतानुसार इन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना जाता है। प्रो के. बी. पाठक ने इन्हें स्कंदगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन कवि माना है। इनके अनुसार वल्लभदेवकृत निम्न श्लोक ही इस मत का आधार है-

"विनीताध्वश्रमास्तस्य सिंधुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिन स्कंधांल्लग्नकुकुमकेसरान्।।"

पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें शको को पराजित कर भारत से बाहर खदेड़ने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना है। "रघुवंश" के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु-विजय, समुद्रगुप्त की दिग्विजय से साम्य रखती है तथा इदुमती के स्वयंवर में प्रयुक्त उपमा के वर्णन में चन्द्रगुप्त के नाम की ध्वनि निकलती है। पर यह मत भी नहीं टिक पाता क्यों कि द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे और इनसे भी पहले प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले एक विक्रम का पता लग चुका है। अतः कालिदास की स्थिति गुप्तकाल में नहीं मानी जा सकती।

तृतीय मत के अनुसार कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शती

के माने जाते हैं। वे विक्रमादित्य के नवरत्नो में प्रमुख माने गए हैं। हाल की "गाथासप्तशती" में विक्रम नामक दानशील राजा का उल्लेख प्राप्त होता है (5/64)। स्मिथ के अनुसार इसका रचना-काल 70 ई के आसपास है। विद्वानों ने विक्रम का समय ईसा से एक सौ वर्ष पूर्व माना है। इन्हीं विक्रमादित्य को "शकारि" की उपाधि प्राप्त हुई थी। ईसा के 150 वर्ष पूर्व, शकों के भारत पर आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है। अत इससे "शकारि" उपाधि की सगति में भी कोई बाधा नही पडती। भारतीय विद्वानो ने इस विक्रम को ऐतिहासिक व्यक्ति मान कर उनकी राजसभा में कालिदास की उपस्थिति स्वीकार की है। अभिनद ने अपने "रामचरित" मे इस बात का उल्लेख किया है कि कालिदास की कृतियो को शकारि द्वारा ख्यातिप्राप्त हुई थी।

कालिदास के आश्रयदाता विक्रम का नाम महेंद्रादित्य था। कवि ने अपने नाटक "विक्रमार्वशीय" मे अपने आश्रयदाता के इस नाम का सकेत किया है। बौद्धकवि अश्वघोष ने, जिनका समय विक्रम का प्रथम शतक है, कालिदास के अनेक पद्यो का अनुकरण किया है। इससे कालिदास का समय, विक्रम सवत् का प्रथम शतक सिद्ध होता है। कालिदास को उत्तरकालीन मानने वाले विद्वान, कालिदासद्वारा अश्वघोष का अनुकरण मानते हैं।

कालिदास की 7 कृतिया प्रसिद्ध है जिनमे 4 काव्य तथा 3 नाटक हैं। ऋतुसहार, कुमारसभव, मेघदूत, रघुवश, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय व अभिज्ञान-शाकुतल। इन कृतियो द्वारा कालिदास भारतीय सस्कृति के रसात्मक व्याख्याता सिद्ध होते है। भारतीय सस्कृति के 3 महान विषयो- तप, तपोवन व तपस्या, का इन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। शाकुतल, रघुवंश व कुमारसभव मे इन तीनो का उदात्त रूप अकित है। कालिदास के काव्य म भारतीय सौंदर्य-तत्त्व का उत्कृष्ट रूप चित्रण हुआ है। मनुष्य एव प्रकृति दोनो का मधुर सपर्क व अद्भुत एकरसता दिखा कर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होने वाली हृदय सवेदना को पहचाना है। इनके अधिकाश प्रकृति-वर्णन, स्वाभाविकता से पूर्ण व रसमय हैं। कवि ने प्रकृति को भावो का आलबन बना कर उसके द्वारा रसानुभूति कराई है। कुमारसभव व शाकुतल में पशुओ पर प्रकृति के मादक एव करुण प्रभाव का निदर्शन हुआ है। कुमारसभव तो मानो कवि की सौंदर्य-चेतना की रमणीय रगशाला ही है। इसमे कवि ने हिमालय को जड सृष्टि का रूप न देकर, "देवतात्मा" कहा है जहा पर सभी देवता आकर निवास करते हैं।

कालिदास भारतीय सास्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के कवि है। इनकी कलात्मक कविता में प्रेम, सौंदर्य व मानवता को उन्नत करनेवाले भावो की अभिव्यक्ति हुई है। रघुवश के द्वितीय सर्ग मे सुदक्षिणा व दिलीप के उदात्त स्वरूप के चित्रण में मानवचरित्र के अत सौंदर्य की अभिव्यक्ति हुई है। रघुवंश के इदुमती-स्वयवर में दीप-शिखा की अपूर्व उपमा के कारण कवि, "दीपशिखा-कालिदास" के नाम से विख्यात हो गये है।

कालिदास ने जहा नागरिक जीवन की समृद्धि व विलासिता का चित्रण किया है वही तपोनिष्ठ साधको के पवित्र वास-स्थानो का भी स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। कवि का मन जितना उज्जयिनी, अलका व अयोध्या के वर्णन में रमा है, उससे कम आसक्ति पार्वती की तपनिष्ठा व कण्व ऋषि के आश्रम-वर्णन मे नही दिखाई पडती।

कालिदास रसनिष्ठ कलाकार हैं। वे प्रधानत श्रृंगार रस की और आकर्षित है किन्तु अज-विलाप, रति-विलाप व यक्ष के अश्रु-सिक्त सदेश-कथन में करुणा का श्रोत उमड़ पडता है। अज-विलाप व रति-विलाप मे अतीत की प्रणय-क्रीडा की मधुर स्मृति के चित्र रह-रह कर पाठको के हृदय की तारो का झकृत कर देते हैं।

एक सफल नाटककार होने के कारण कालिदास ने अपने दोनो प्रबधकाव्यो मे नाटकीय सवादो का अत्यत कुशलता के साथ नियोजन किया है। दिलीप-सिह-सवाद, रघु-इन्द्र-सवाद, व पार्वती-ब्रह्मचारी-सवाद, उत्कृष्ट सवाद-कला का निदर्शन करते है।

कालिदास ने अपने ग्रथो मे स्थान-स्थान पर समस्त भारतीय विद्या के प्रौढ अनुशीलन का परिचय दिया है। इनकी राजनैतिक व दार्शनिक एव सामाजिक मान्यताए ठोस आधार पर अधिष्ठित है। इन्होने जीवन के शाश्वत एव सार्वभौमिक तत्त्वों का रसात्मक चित्र प्रस्तुत कर वास्तविक अर्थ मे "विश्वकवि" की उपाधि प्राप्त की है।

कालिदास विषयक कथाएँ

कालिदास का कोई अधिकृत चरित्र उपलब्ध नहीं है। प्राचीन साहित्यिको मे कालिदास-विषयक जो भी कुछ कथाएं प्रचलित है, व ही उस महाकवि का चरित्र है। बल्लालकवि कृत "भोज-प्रबध" मे कालिदास-विषयक विविध दत्तकथाएं सकलित की गई है जिनसे उनके व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं का परिचय हो सकता है। उनमे से कुछ कथाए सक्षेप में यहा दी जा रही हैं -

कालिदास कथा- १ (विवाह) ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न कालिदास के माता-पिता उसे बाल्यकाल मे ही छोड़ कर चले गए। एक ग्वाले ने उसे पाल-पोस कर बडा किया। वह अठारह वर्ष की आयु तक अनपढ एव जडबुद्धि ही था।

स्थानीय राजा की कन्या सुन्दर, सुविद्य तथा कलाभिज्ञ थी। उसके विवाह के लिये उसके पिता ने कई वर देखे पर उस कन्या को एक भी पसन्द न आया। तब राजा ने ऊब कर वरसशोधन का कार्य अपने प्रधान को सौंपा। किसी कारणवश

राजकन्या से असंतुष्ट प्रधान ने उसे नीचा दिखाने के लिये, कालिदास को ही वर बनाना चाहा। तदनुसार दरबार में कालिदास अच्छे वस्त्र पहने हुआ तथा पण्डित-मण्डली ने घिरा हुआ प्रविष्ट हुआ। कन्या ने यह जानकर कि वह महापण्डित अपने शिष्यों के साथ उपस्थित है, उसका सुदर रूप देखा तथा शिष्यों से बातचीत कर, उसकी परीक्षा ली। मौनी पण्डित को, जिसके रूप में कालिदास उपस्थित था, बडा विद्वान् जान कर, उसने अपने विवाह के लिये चुना।

परन्तु विवाह के पश्चात् शीघ्र ही भंडाफोड होकर यह सत्य उसने जाना कि कालिदास निरा मूर्ख है। विवाह होने से वह कुछ कर भी न पाई। अन्त में राजकन्या ने उसे काली की उपासना कर, विद्या प्राप्त करने को कहा। कालिदास भी उग्र तपस्या में जुट गया तथा देवी को प्रसन्न न होते देख अपना शीष देवी को अर्पण करने को सिद्ध हुआ। यह देख देवी प्रसन्न हुई। उसने उसके सिर पर वरद-हस्त रखा। तब से वह विद्वान् तथा प्रतिभासपनन कवि हुआ और हुआ "कालिदास" के नाम से प्रसिद्ध।

कालिदास कथा-2 (काव्य-रचना की प्रेरणा) कालीदेवी से कृपा-प्रसाद पाकर कालिदास जब घर लौटा, तब उसकी पत्नी ने उसे पूछा- "अस्ति कश्चिद् वाग्-विशेष" (आपकी वाणी मे कुछ बदल हुआ)। प्रश्न सुन कर, जिसकी वाणी देवी के प्रसाद से पुनीत हुई थी उस कालिदास ने, धारावाहिक रूप से उस प्रश्न-वाक्य का एक-एक शब्द लेकर, उससे प्रारम्भ कर, दो महाकाव्य तथा एक खण्डकाव्य की रचना करते हुए अपनी पत्नी को सुनाया। "अस्ति" शब्द से कुमारसम्भव प्रारम्भ हुआ। "कश्चित्" शब्द से मेघदूत प्रारम्भ हुआ, तथा वाग्विशेष के "वाक्" से रघुवश- महाकाव्य प्रसृत हुआ। इस अद्भुत काव्यस्रोत तथा प्रवाह से राजपुत्री स्तिमित हो गई। परन्तु जिसकी प्रेरणा से उसे यह सिद्धि प्राप्त हुई थी उस अपनी पत्नी को, वह माता तथा गुरु मानने लगा। इस नए रिश्ते से उसकी पत्नी बडी असतुष्ट हुई तथा क्रोध से उसने शाप दिया कि उसकी मृत्यु किसी स्त्री के ही हाथो होगी। इस प्रकार अभिशप्त होकर कालिदास का जीवनप्रवाह नए रूप से प्रसृत हुआ तथा उसका अधिकतर समय वेश्याओ के सहवास में बीतने लगा।

कालिदास कथा-3 (वेश्यासक्ति) कालिदास की वेश्या -लपटता के कारण राजा भोज की सभा के सभी पंडित उनसे घृणा करने लगे। राजा भी इससे बडे चिन्तित हुए। एक समय सभा में बैठे राजा के मन में विचार आया- "यह प्रज्ञावान् कवि वेश्यागमन जैसा प्रमाद करता है, यह सर्वथा अनुचित है"। कालिदास ने राजा का मानस जानकर कहा- अनंग कामदेव की चचलता से देवता भी प्रभावित हैं, फिर मनुष्यों की क्या कथा। देखिये न, इस दहनशील कामविकार से त्रिपुरारि भगवान् शकर का भी पौरुष आधा रह गया (अर्धनारी-नटेश्वर)। राजा ने इस पर प्रसन्न होकर महाकवि को लक्ष सुवर्ण-मुद्राओं से पुरस्कृत किया।

कालिदास कथा-4 (देशत्याग) कालिदास कविमण्डल में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी उनका वेश्यागमन ध्यान में रखते हुए राजा भोज मन में खिन्न थे। राजा का अभिप्राय जानकर कालिदास भी अपने प्रति अवज्ञा का अनुभव करते हुए राजसभा में उपस्थित नहीं हुए। तब भोज ने उन्हें बुलवाया तथा बडे आदर से बैठाया। यह देख अन्य पण्डितों को ईर्ष्या हुई। उन्होंने आपस में चर्चा कर अन्त पुर की एक दासी को धन दान से संतुष्ट कर, उसके द्वारा कालिदास के रानी लीलावती के साथ अवैध सम्बन्ध की झूठी वार्ता राजा तक पहुंचा दी। राजा ने सत्य जानने के लिए स्वयं अस्वस्थ होने का बहाना कर रानी से पथ्य-भोजन मगवाया। रानी ने मूंग दाल की खिचडी राजा के सम्मुख रखी। बिना छिलके की मूंगदाल देख कर राजा ने कालिदास से पूछा- "मुद्गदाली गदव्याल्नी कवीन्द्र वितुषा कथम्"। कालिदास ने त्वरित उत्तर दिया- "अन्धोवल्लभसंयोगाज्जाता विगतकंचुकी" (अन्नरूप वल्लभ से मिलने के कारण यह विगतकचुकी हुई है)। यह सुनकर रानी लीलावती मुस्कुराई। इससे राजा को अवैध संबंध के प्रति विश्वास हो गया तथा उसने कालिदास को अपना देश छोड जाने का आदेश दिया। कालिदास के चले जाने पर जब रानी को कारण ज्ञात हुआ, तो उसने तीन प्रकार से दिव्य कर अपनी शुद्धता राजा के सम्मुख सिद्ध की। तब पश्चाताप से दग्ध राजा कालिदास के लिये विलाप करने लगे। फिर उन्होंने अपनी सभा में समस्या रखकर उसकी पूर्ति के लिये कविवृन्द को सात दिन का समय दिया। कविमण्डल ने पूर्ति करने में अपने को असमर्थ पाकर नगरी छोड कर अन्यत्र जाना निश्चित किया। कालिदास ने यह जान कर उनके सम्मुख समस्या-पूर्ति कर दी। तब एक कवि ने राजा के पास वह समस्यापूर्ति रख उसे स्वयं की रचना बताया। किन्तु राजा ने कालिदास की ही रचना जान कर उन्हें खोज निकाला तथा स्वय जाकर उन्हें वे सम्मानपूर्वक अपने साथ वापस ले आए। कालिदास के पुनरागमन से राज-सभा काव्यगोष्ठी से पुन चमक उठी।

कालिदास कथा-5 (एकशिलानगरी में) एक बार श्रीशैल से कोई ब्रह्मचारी राजसभा में आया। उसकी अल्प आयु देख कर राजा प्रभावित हुए। उनकी क्या सेवा की जावे यह पूछा। ब्रह्मचारी ने कहा- "राजन्, हम वाराणसी जा रहे हैं। रास्ते में मनोविनोद के लिये काव्यगोष्ठी के लिये आपके पण्डितवृद सपत्नीक हमारे साथ प्रस्थित हों"। राजा ने तदनुसार आदेश दिया। राजसभा के सभी पण्डित ब्रह्मचारी के साथ गए। अकेले कालिदास नहीं गए। उन्हे कारण पूछने पर उन्होंने

कहा- "राजन्, काशीतीर्थ को वे लोग ही जाते है, जो भगवान् शंकर से दूरवर्ती हों। जिसके हृदय में ही उमापति का निवास हो उसके लिये वही बडा तीर्थ है।"

पण्डितों के काशी क्षेत्र की ओर प्रयाण करने के बाद राजा ने कालिदास से पूछा- "तुमने आज कोई वार्ता सुनी।" कालिदास ने "हां" कहते हुए कहा- "मेरु-मन्दार की गुफाओं में, हिमालय पर, महेन्द्राचल पर, कैलास के शिलातल पर, मलय पर्वत के अन्यान्य भागों पर तथा सह्याद्रि पर भी चारणगण आपका ही यशोगान करते हैं ऐसा मैने सुना है"। यह उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए तथा कालिदास को विशेष धन देकर पुरस्कृत किया। फिर भी ब्रह्मचारी के साथ कालिदास के न जाने से भोज ने सोचा कि यह कवि वेश्यालंपट होने से ही मेरी आज्ञा का उल्लधन कर, नहीं गया। इस विचार से उन्होंने आत्मग्लानि का अनुभव किया तथा कालिदास की अवज्ञा की। तब कालिदास तुरन्त धारा नगरी से प्रस्थान कर एकशिला नगरी के राजा बल्लाल की सभा में पहुंचे। वहां अपना परिचय देकर, उन्होंने राजा का यशोगान किया। उससे प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें आश्रय दिया। एक बार राजा ने उन्हें एकशिला नगरी का वर्णन करने के लिये कहा। कालिदास ने एक श्लोक प्रस्तुत किया, जिसका भाव था-

"एकशिला नगरी में विचरण करनेवाले युवक स्वय को पगपग पर बिना किसी अपराध के शृंखला-बद्ध पाते हैं क्यो कि वे हरिणी के समान नेत्रों वाली वहां की सुन्दरियो के कटाक्षों से अपने को पीडित पाते हैं। यह सुनकर बल्लाल नृप बडे प्रसन्न हुए।

कालिदास कथा-6 (प्रत्यागमन) कालिदास के परदेशगमन से भोज बडे दुखी थे। राजा की खिन्नता तथा कृशता देख मंत्रियों ने सोचा कि कालिदास की वापसी से ही राजा प्रसन्न होंगे। सबकी मन्त्रणा से एक अमात्य बल्लाल-राज्य में कालिदास के पास पहुंचा तथा उन्हें एक पत्र दिया। उसमें था-

"हे कोकिल, आम्रवृक्ष पर चिरनिवास कर अन्य वृक्ष का आश्रय लेते तुम लज्जित नहीं होते। तुम्हारी वाणी तो आम्रवृक्ष पर ही शोभा देती है, न कि खैर या पलाश जैसे झाडों पर।"

कालिदास ने पत्र पढा तथा राजा की अवस्था सुनी। फिर बल्लालनृपति से बिदा लेकर वे तुरत मालव देश वापिस आए। राजा भोज ने अपने परिवार के साथ उनका स्वागत किया।

कालिदास कथा-7 (भोजो दिवं गतः) एकबार भोज ने कालिदास से कहा- "मेरी मृत्यु का वर्णन करो"। तब कालिदास क्रुद्ध हो गए। उन्होंने राजा की निन्दा की और उनकी वेश्या विलासवती के साथ वे एकशिला नगरी को चले गए। कालिदास के विरह से उद्विग्न तथा त्रस्त राजा भी उन्हें खोजने के लिये, कापालिक का वेश धारण कर, निकल पडे। घूमते-घूमते वे एकशिला नगरी में प्रविष्ट हुए। कालिदास ने कापालिक को देखकर विनय से पूछा- "हे योगिराज, आपका निवास कहा है।" योगी ने बताया- "हम धारानगरी में रहते हैं"।

तब कालिदास ने भोज की कुशल पूछी। योगी ने बताया- "भोजो दिवं गत"। यह सुनते ही कालिदास भूमि पर गिर पडे तथा विलाप करने लगे। उनके मुख से श्लोक प्रस्फुटित हुआ-

"अद्य धारा निराधारा।
निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिता खण्डिता सर्वे।
भोजराजे दिवं गते।।"

श्लोक सुन योगी सज्ञाहीन होकर गिर पडा। उसे होश में लाने के प्रयास में कालिदास ने उन्हें पहचान लिया कि वह भोज ही है। होश मे आने पर उनसे कहा "आपने मेरी वचना की"। फिर उक्त श्लोक को उन्होंने निम्न रूप दिया-

"अद्य धारा सदाधारा।
सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिता सर्वे।
भोजराजे भुव गते।।"

प्रसन्न हुए भोज ने उन्हें आलिगन दिया और उन्हें साथ लेकर धारानगरी को प्रस्थित हुए।

कालिदास कथा-8 (कुन्तलेश्वर दौत्य) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की कन्या प्रभावती का विवाह वाकाटक राजा द्वितीय रुद्रसेन से हुआ था। राजा की मृत्यु के पश्चात् रानी प्रभावती ने अपने अल्पवयीन पुत्र को गद्दी पर बैठाया, तथा वह स्वय कारोबार देखने लगी। उसके शासन का हाल जानने के लिये चन्द्रगुप्त ने कालिदास को विदर्भ भेजा। जब कालिदास वहा की राजसभा में उपस्थित हुए तो उन्हें उचित स्थान पर नहीं बैठाया गया। तब वे भूमि पर बैठ गए। सभासदो के हंसने पर उन्होंने भूमि का महत्त्व वर्णन किया- 'मेरु पर्वत तथा सप्त सागर इस भूमि पर ही स्थित हैं, तथा इसे शेष नाग ने अपने सिर पर धारण किया है। इस लिये मेरे समान लोगों के बैठने के लिये यही योग्य स्थान है।" तब कालिदास का उचित सम्मान हुआ। लौटकर चन्द्रगुप्त को उन्होंने बताया- "हे राजन, कुन्तलेश्वर (प्रवरसेन द्वितीय) अपने शासन का सारा भार आपके ऊपर डाल कर, स्वयं विलास में मग्न हैं।" कालिदास द्वारा यह जान कर चन्द्रगुप्त ने कहा कि प्रवरसेन ऐसा ही करें। यह ठीक है।

"पिबतु मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणाम्।
मयि विनिहितभार कुन्तलामधीश।।"

कालिदास कथा-9 (लीलापुरुष) एक बार राजा भोज के सिर में दर्द प्रारभ हुआ। उपचारों से कम होने के बदले, वह अधिकाधिक बढता गया। राजवैद्यों के उपचार निरर्थक

हुए देख आयुर्वेद पर से भोज का विश्वास अत्यंत शिथिल हुआ। तब अश्विनीकुमार ब्राह्मण-वेश धारण कर, आयुर्वेद में विश्वास की पुनः स्थापना करने के लिये स्वर्ग से उपस्थित हुए। उन्होंने शल्य-चिकित्सा द्वारा सिरदर्द का मूल कारण नष्ट कर राजा को स्वस्थ तथा आश्वस्त किया। प्रसन्न होकर राजा ने पथ्य पूछा। उन्होंने बताया-

"मनुष्यों के लिये पथ्य उष्ण जल से स्नान, दुग्धपान तथा कुलीन स्त्रियों से संगत और--।" "मनुष्य" का निर्देश सुनकर राजा ने पूछा- "फिर, आप कौन हैं।" और उनका हाथ पकड लिया। तब अन्तर्हित होते हुए वे बोले- "शेष भाग कालिदास बतायेंगे। महाकवि ने तुरंत बताया "स्निग्धमुष्णं च भोजनम्"

आश्चर्य से चकित होकर राजा ने यह वृत्त सबको सुनाया। तब सभी विस्मित हुए और कालिदास को "लीलापुरुष" मानने लगे।

कालिदास कथा-10 (दीनसहायक) राजा भोज की सभा में कालिदास अपने पाण्डित्य तथा प्रतिभा का ही प्रदर्शन नहीं करते थे अपि तु दरिद्री, जडबुद्धि ब्राह्मणों को पुरस्कार भी दिलाते थे। एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण सभा में उपस्थित हुआ तथा पाण्डित्यप्रदर्शन के लिये पास कुछ भी न होने से, केवल पुरुष सूक्त की प्रथम पंक्ति का उच्चार कर मौन खडा रहा-

"सहस्त्रशीर्षा पुरुष सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात्"

यह सुन सारे सभ्य तथा राजा हंसने लगे। तब ब्राह्मण की दीन मुद्रा देखकर, कालिदास बोले- "चलितश्चकितश्छन्नस्तव सैन्ये प्रधावति" (हे राजन्, इस ब्राह्मण ने बडी खूबी से सक्षेप में आपकी स्तुति की है। जब आपकी सेना कूच करती है, तब हजार सिर वाला शेषनाग विचलित होता है, इन्द्र चकित होता है। तथा सौ पैरो वाला सूर्य सेना के सचलन से उडने वाली धूलि से आच्छन्न हो जाता है। अपने मौन का वैशिष्ट्यपूर्ण समर्थन देखकर दरिद्र ब्राह्मण कालिदास के पैरों पर गिर पडा। राजा ने भी उसे उचित द्रव्य प्रदान कर बिदा किया।

कालिदास कथा - (11). (शृंगार-प्रवणता) - भोज राजा की सभा मे कालिदास को नीचा दिखाने के लिये एक बार विरोधी सभ्यों ने उपनिषद्वाक्य ही समस्यारूप में प्रस्तुत किया, यह सोच कर कि कालिदास की रचना शृगारप्रचुर होती है, जब कि इसकी पूर्ति में शृगार नहीं आ सकता। अत वे समस्यापूर्ति में हार जाएगे। समस्या थी

अणोरणीयान्महतो महीयान्" (यह ब्रह्मवर्णन कठोपनिषत् में है)।

किंतु इसकी पूर्ति भी कालिदास ने शृगार रस मे ही इस प्रकार कर दिखाई

यज्ञोपवीतं परम पवित्रम्।
करे गृहीत्वा शपथ करोमि।
योगे वियोगे दिवसोऽङ्गनाया
अणोरणीयान् महतो महीयान्।।"

आशय "मैं यज्ञोपवीत हाथ में लेकर शपथपूर्वक कहता हू कि अङ्गना के सहवास में दिन छोटे से छोटा उसके वियोग में बडे से बडा होता है।"

यह पूर्ति सुन, विरोधी सभ्य भी कालिदास का आदर करने लगे।

कालिदास कथा - (12) (प्रत्युत्पन्न बुद्धि) - एक बार धनंजय कवि भोज की सभा में आए तथा राजा के सम्मुख अपना श्लोक सुनाने को प्रस्तुत हुए। इतने में कालिदास ने उनसे बातचीत करते हुए उनका लिखा श्लोक पढा। आशय यह था - "माघ काव्य में 100 अपशब्द हैं, भारत में 300, तथा कालिदास के काव्य में अगणित अपशब्द हैं। अकेला धनंजय ही ऐसा कवि है जिसके काव्य में अपशब्द नहीं है। धनंजय के परोक्ष, कालिदास ने अपशब्द के बदले "आपशब्द" कर दिया। इससे धनंजय के श्लोक पढने पर सारी सभा हंसने लगी। "आपशब्द" का अर्थ जलवाचक शब्द होता है। धनंजय कवि सभा में लज्जित हुये तथा यह कालिदास की ही करतूत है जान गए।

कालिदास कथा - (13) (असहाय के सहायक) - एक दरिद्र मन्दबुद्धि विप्र, मुट्ठी भर चांवल की पोटली लिये, राजदर्शन के लिये धारा नगरी में आया। जब वह एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था तब कुछ शरारती लोगों ने उसकी पोटली से चांवल निकाल लिये, तथा उसमें थोडे कोयले रख दिये, विप्र को इस का पता नहीं चला। जब विप्र सभा में पहुच कर राजा के सम्मुख पोटली खोलने लगा तब कोयेले देख कर दग रह गया। लज्जा से वह अधोवदन हो गया। राजा भी बडे क्रुद्ध हुए। इस समय कालिदास उस विप्र की सहायता को प्रस्तुत हो कहने लगे - "राजन्, क्रोध न करे। विप्र का आशय समझने की कृपा करें। उसका आशय है -

अर्जुन ने खाण्डव वन जलाया, पर उसमें विद्यमान सारी दिव्य औषधिया जल गई। हनुमान ने लका जलाई पर वह जलने पर सोने की हो गई। भगवान शकर ने कामदेव को जलाया। यह उनकी कृति बडी अयोग्य थी। परन्तु लोगों को सताप देने वाले दारिद्र्य जलाने हेतु यह विप्र आपके पास आया है।"

विप्र की कृति का यह अद्भुत अर्थ जान कर सारे सभ्य आश्चर्य से चकित हुए तथा कालिदास की सराहना करने लगे। धन पाकर विप्र भी प्रसन्न हुआ।

कालिदास विद्याविनोद - "शिवाजीचरितम्" काव्य के लेखक। प्रस्तुत काव्य कलकत्ता सस्कृत-साहित्य-पत्रिका के 11 वे अंक में कवि द्वारा प्रकाशित किया गया है।

कालीचरण वैद्य - ई. 19-20 शती। बंगाल के निवासी। कृति-चिकित्सासारसग्रह।

कालीपद तर्काचार्य (म. म.) - समय 1888-1972 ई। प्रखर वक्ता और सशक्त लेखक। छद्मनाम काश्यप कवि। जन्म फरीदपुर जिले के कोटलिपारा उनशिया ग्राम में। कान्यकुब्ज मिश्र। मधुसूदन सरस्वती तथा हरिदास सिद्धान्तवागीश के वंशज। पिता-सर्वभूषण हरिदास शर्मा। उच्च शिक्षा भाटपाडा में, म म. पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम के पास। 1931 में कलकत्ते के राजकीय सस्कृत महाविद्यालय में न्याय के प्राध्यापक। "तर्काचार्य", विद्यावारिधि", "तर्कालंकार" (शृगेरी मठ के शंकराचार्य द्वारा), "महाकवि" (हावडा सस्कृत पण्डित समाज द्वारा) की उपाधियों से विभूषित। 1941 में महामहोपाध्याय बने। 1961 में राष्ट्रपति द्वारा पाण्डित्य प्रशस्तिपत्र प्राप्त। 1972 में बर्दवान वि वि मे डी लिट् उपाधि से सम्मानित। 1954 में सेवानिवृत्त। अभिनय में रुचि। सस्कृत नाट्य प्रयोगों मे इनकी चारुदत्त, चाणक्य, चन्दनदास, भीम, युधिष्ठिर, राम, कण्व, दुष्यन्त, विराट व दुर्योधन की भूमिकाए सुविख्यात है।

कृतियां - (नाटक) - नलदमयन्तीय, माणवक-गौरव, प्रशान्त-रत्नाकर, स्यमन्तकोद्धार-व्यायोग।। महाकाव्य-सत्यानुभव, योगिभक्तचरित।। काव्य-आशुतोषावदान, आलोक-तिमिर-वैर। गद्य-मनोमयी। समालोचना-काव्यचिन्ता। दर्शन-न्यायपरिभाषा, जातिबाधक विचार, ईश्वरसमीक्षा, न्यायवैशेषिकतत्त्व-भेद। इनके अतिरिक्त आठ दर्शन ग्रथों की आलोचना। पद्यानुवाद-रवीन्द्रप्रतिच्छाया, गीताजलिच्छाया। बगाली ग्रथ-नवगीताच्छाया, चण्डीछाया तथा विविध पद्य और निबध। प्रणवपारिजात तथा सस्कृत-साहित्य-परिषत्-पत्रिका के आप सचालक-सपादक थे। "काश्यपकवि" उपनाम से कतिपय साहित्यिक निबध।

कालीप्रसाद त्रिपाठी - अयोध्या से 1930 से प्रकाशित "सस्कृतम्" नामक साप्ताहिक का आमरण सपादन किया।

काष्र्णाजिनि - व्यास व जैमिनी से पूर्वकाल के वेदान्ती आचार्य। पुनर्जन्म के विषय में इनका मत है कि अनुशयभृत कर्मों के द्वारा प्राणियों का नयी योनियो में जन्म होता है। अनुशय का अर्थ है भोगे हुए कर्मों के अतिरिक्त शेष कर्म। इनके नाम पर एक स्मृति ग्रथ भी है। मिताक्षरा, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका व श्राद्धविषयक ग्रथों में इनकी स्मृतियो का उल्लेख है।

काशकृत्स्न - एक प्राचीन वैयाकरण। प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय 3100 वर्ष वि पू है। इनके व्याकरण, मीमासा व वेदान्त सबधी ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। पातजल "महाभाष्य" में इनके "शब्दानुशासन" नामक ग्रथ का उल्लेख है - "पाणिनिना प्रोक्त पाणिनीयम् आपिशलम् काशकृत्स्नम् इति।" महाभाष्य के प्रथम आह्निक में इनके ग्रथों का विवरण इस प्रकार है-काशकृत्स्न शब्दकलाप, धातुपाठ। सप्रति "काशकृत्स्न व्याकरण" के लगभग 140 सूत्र उपलब्ध हुए हैं।

काशिराज, प्रभुनारायण सिंह - शासनकाल 1889-1925 ई। वेदान्त में प्रवीण। सूक्तिसुधा नामक संस्कृत पत्रिका में रचनाए प्रकाशित। "पार्थपाथेय" नामक उपरूपक के प्रणेता।

काशीकर चिं. ग. - पुणे निवासी। रचना - आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञानम्। इसमें आयुर्वेद की पार्श्वभूमि विशद की गई है। आप पुणे विश्वविद्यालय द्वारा डी लिट् (डाक्टर ऑफ् लिटरेचर) इस उच्च उपाधि से विभूषित विद्वान हैं। वैदिक वाङ्मय के आप विशेषज्ञ माने गए हैं।

काशीनाथ उपाध्याय - ई 18 वीं शताब्दी के धर्मशास्त्रियों में इनका नाम अत्यंत महत्त्व का है। इन्होंने "धर्मसिंधुसार" या "धर्माब्धिसार" नामक बृहद् ग्रंथ की रचना की है। ग्रंथ का रचना काल 1790 ई। उपाध्यायजी का स्वर्गवास 1805 ई में हुआ था। इनका जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के अतर्गत गोलवली नामक ग्राम में हुआ था। ये कऱ्हाडे ब्राह्मण थे। इनके द्वारा प्रणीत अन्य ग्रथो के नाम हैं - "प्रायश्चित्तशेखर" व "विठ्ठल-ऋङ्मत्रभाष्य"। धर्मसिंधुसार 3 परिच्छेदों में विभक्त है व तृतीय परिच्छेद के भी दो भाग किये गये हैं। इस ग्रथ की रचना "निर्णयसागर" के आधार पर की गई है।

काशिनाथ शर्मा द्विवेदी ("सुधीसुधानिधि") - रुक्मिणीहरण महाकाव्य के प्रणेता। यह महाकाव्य 20 वीं शती के प्रसिद्ध महाकाव्यों मे गिना जाता है। इसका प्रकाशन 1966 ई में हुआ है। द्विवेदीजी वाराणसी के निवासी हैं।

काशीपति - मैसूरनरेश कृष्णराज द्वितीय के प्रधान मत्री नंजराज (1739-59 ई) का इन्हें समाश्रय प्राप्त था। कौण्डिन्यवशी। आप न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड पडित और सगीत के भी मर्मज्ञ थे। कृतिया-मुकुन्दानन्द (मिश्र भाण) तथा श्रवणानन्दिनी व्याख्या (नदराज लिखित "सगीतगगाधर" की टीका।

काश्मीरक सदानंद यति - ई 17 वीं शताब्दी के एक आचार्य। अद्वैतब्रह्मसिद्धि नामक ग्रथ के रचयिता। यह ग्रन्थ अद्वैत दर्शन का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है जिसमें एकजीवत्व ही वेदान्त का प्रमुख सिद्धान्त है, इस विचार का विवेचन किया गया है।

काश्यप - पाणिनि के पूर्व के एक वैयाकरण। समय 3000 वर्ष वि पू (प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार)। इनके मत के 2 उद्धरण "अष्टाध्यायी" में प्राप्त होते हैं। "तृषिमृषिकृषे काश्यपस्य" 1/2/25 और "नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवा नाम्" 8/4/67। "वाजयसनेयप्रातिशाख्य" में भी शाकटायन के साथ इनका उल्लेख है। "लोप काश्यपशाकटायनौ" 4/5/। इनका व्याकरण ग्रथ सप्रति अप्राप्य है। इनके अन्य ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है

(1) कल्प - कात्यायन (वार्तिककार) के अनुसार अष्टाध्यायी (4/3/103) में "काश्यपकल्प" का उल्लेख है, (2) छद शास्त्र - पिंगल के "छंद शास्त्र" में (7/9) काश्यप

का मत दिया गया है कि इन्होंने तद्विषयक ग्रंथ की रचना की थी, (3) आयुर्वेदसंहिता-नेपाल :- के राजगुरु पं. हेमराज शर्मा ने "आयुर्वेद संहिता" का प्रकाशन सं. 1955 में कराया है। (4) पुराण :- "सरस्वती कंठाभरण" की टीका में "काश्यपीय पुराणसंहिता" का उल्लेख है (3/229)। "वायुपुराण" से पता चलता है कि इसके प्रवक्ता का नाम "अकृतव्रण काश्यप" था। काश्यपीय सूत्र-"न्यायवार्तिक" में (1/2/23) उद्योतकर ने कणादसूत्रों को "काश्यपीय सूत्र" के नाम से उद्धृत किया है।

काश्यप भट्टभास्कर मिश्र - सामवेद के आर्षेय ब्राह्मण पर इन्होंने "सामवेदार्षेयदीप" नामक भाष्य लिखा था। काश्यप भट्ट सायणचार्य के समकालीन होंगे ऐसा प्रतीत होता है।

किबे, गंगाधर दत्तात्रेय - मद्रकन्या-परिणयचंपू, शिवचरित्रचंपू तथा महानाटक- सुधानिधि नामक तीन ग्रंथों के प्रणेता। समय ई. 17 वीं शती का अंतिम चरण। ये उदय परिवार के दत्तात्रेय के पुत्र थे। "मद्रकन्यापरिणयचंपू" अभी तक अप्रकाशित है।

कीर्तिवर्मा - चालुक्यवंशीय (सोलंकी) महाराज त्रैलोक्यमल्ल (सन् 1044-1068) के पुत्र। माता केतनदेवी जिसने शताधिक जैनमंदिरों का निर्माण कराया। कर्नाटक कार्यक्षेत्र। समय ई 11 वीं शती। ग्रंथ- गोवैद्य (पशुचिकित्सा ग्रंथ)। गुरुनाम- देवचन्द्र। आप योद्धा भी थे।

किशोरीप्रसाद - रासपंचाध्यायी श्रीमद्भागवत का हृदय है। उस पर टीका लिखने का कार्य अनेक विद्वानों ने किया है। उनमें "विशुद्ध-रसदीपिका" के प्रणेता किशोरीप्रसाद का अपना विशेष स्थान है। "श्रीमद्भागवत के टीकाकार" नामक ग्रथ में किशोरीप्रसाद को विष्णुस्वामी संप्रदाय का अनुयायी बताया गया है। किंतु आचार्य बलदेव उपाध्याय के मतानुसार ये राधावल्लभी संप्रदाय के वैष्णव संत थे। इस संप्रदाय की राधा- भावना का प्रभाव किशोरीप्रसाद की "विशुद्ध-रस-दीपिका" नामक पंचाध्यायी की टीका पर बहुत अधिक है। इस टीका में भक्तिमंजूषा, भक्तिभावप्रदीप, कृष्णयामल एवं राघवेन्द्र सरस्वती प्रणीत पद्य उद्धृत हैं। यह किशोरीप्रसादजी के भक्तिशास्त्रीय पांडित्य का प्रमाण है।

कीथ ए. बी. - इनका पूरा नाम आर्थर बेरिडोल कीथ था। ये प्रसिद्ध संस्कृत प्रेमी आंग्ल विद्वान थे। इनका जन्म 1879 ई में ब्रिटेन के नेडाबार नामक प्रांत में, और शिक्षा एडिनबरा व आक्सफोर्ड में हुई। ये एडिनबरा विश्वविद्यालय में सस्कृत एवं भाषाविज्ञान के अध्यापक 30 वर्षों तक रहे। इनका निधन 1944 ई. में हुआ। इन्होंने संस्कृत साहित्य के संबंध में मौलिक अनुसंधान किया है। इनका "संस्कृत साहित्य का इतिहास' अपने विषय का सर्वोच्च एवं प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इन्होंने संस्कृत साहित्य व दर्शन के अतिरिक्त राजनीतिशास्त्र पर भी कई प्रामाणिक ग्रंथों की रचना की है जिनमें अधिकांश संबंध का भारत से है। ये मेक्डोनल के शिष्य थे। इनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ इस प्रकार है :

ऋग्वेद के ऐतरेय एवं कौषीतकी ब्राह्मण का दस खण्ड में अनुवाद (1920 ई), शांखायन आरण्यक का अंग्रेजी अनुवाद (1922 ई.), कृष्णयजुर्वेद का दो भागों में अंग्रेजी अनुवाद (1924 ई.), हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर (192[illegible] ई), वैदिक इंडेक्स (मेक्डोनल के सहयोग से), रिलीजन एण्ड फिलॉसाफी आफ् वेद एण्ड उपनिषदस्, बुद्धिस्ट फिलासाफी इन इंडिया एण्ड सीलोन और "संस्कृत ड्रामा" नामक ग्रंथ।

कीलहार्न - डा फ्रान्झ कीलहार्न मूलतया जर्मन नागरिक थे। कालखण्ड ई. स 1840-1908। सस्कृत भाषा व व्याकरण के प्रति विशेष रुचि। ई स 1866 में पुणे के कालेज में संस्कृत व प्राच्य भाषा के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति। "परिभाषेन्दुशेखर" का अंग्रेजी में अनुवाद कर इन्होंने पतंजलि के महाभाष्य की आवृत्ति का प्रकाशन किया। प्राचीन भारतीय शिलालेखो, ताम्रपटों आदि का अध्ययन कर इन्होंने गुप्तकाल के बाद के राजवंशों का कालक्रम निर्धारण किया तथा कलचुरि सवत् के आरम्भकाल की खोज की। तत्कालीन सरकार ने "एपिग्राफिका इंडिका" नामक त्रैमासिक इन्ही की प्रेरणा से शुरु किया था।

कुण्डिन - ई. 5 वीं शती। तैत्तिरीय सहिता के भाष्यकार। तैत्तिरीय सहिता से सबधित काण्डानुक्रमणी ग्रथ में लिखा है कि तैत्तिरीय सहिता के पदकार और वृत्तिकार कुण्डिन हैं। बौधायन गृह्यसूत्र में भी "कौण्डिन्याय वृत्तिकाराय" (कौण्डिन्य वृत्तिकार) ऐसा उल्लेख है।

कुन्तक (कुंतल) - समय ई स 925-1025। साहित्य शास्त्रीय "वक्रोक्तिजीवित" नामक सुप्रसिद्ध ग्रथ के प्रणेता। इसमें वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मान कर उसके भेदोपभेद का विस्तारपूर्वक विवेचन है। कुंतक ने अपने ग्रंथ में "ध्वन्यालोक" की आलोचना की है और ध्वनि के कई भेदों को वक्रोक्ति में अंतर्भूत किया है। महिमभट्ट ने इनके एक श्लोक में अनेक दोष दर्शाए हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये आनंदवर्धन और महिमभट्ट के मध्य में हुए होंगे। कुंतक और अभिनवगुप्त एक दूसरे को उद्धृत नहीं करते। अतः ये दोनों समसामयिक माने जाते हैं। इस प्रकार कुंतक का समय दशम शतक का अंतिम चरण निश्चित होता है। काव्यमीमासा के क्षेत्र में आनंदवर्धन के पश्चात् कुतक एक ख्यातिप्राप्त साहित्यशास्त्रज्ञ हैं। इन्होंने वक्रोक्तिजीवित और अपूर्वालंकार नामक दो ग्रंथों का प्रणयन किया है। कुंतक का "वक्रोक्तिजीवित" ग्रथ वक्रोक्ति सप्रदाय का प्रस्थान ग्रथ एवं भारतीय काव्य शास्त्र की अमूल्य निधि है। इसमें ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने वाले विचार का प्रत्याख्यान करते हुए वह शक्ति वक्रोक्ति को

ही प्रदान की गई है। इसमें वक्रोक्ति, अलकार के रूप में प्रस्तुत न होकर, एक व्यापक काव्यसिद्धान्त के रूप में उपन्यस्त की गई है। इस ग्रंथ में वक्रोक्ति के 6 विभाग किये गये हैं। वर्णवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदोत्तरार्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता व प्रबंधवक्रता। उपचारवक्रता नामक भेद के अंतर्गत कुतक ने समस्त ध्वनि प्रपंच का (उसके अधिकाश भेदों का) अतर्भाव कर दिया है। वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मान कर कुतक ने अपूर्व मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और युगविधायक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना की है। "अपूर्वालंकार" में काव्य विषयक विशिष्ट भूमिका स्पष्ट की गई है।

कुंदकुंदाचार्य- जैन-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य। जन्म द्रविड देश मे। दिगबर सप्रदायी। समय-प्रथम शताब्दी माना जाता है। इन्होंने "कुदकुद" नामक ग्रथ का प्रणयन किया जिसका द्राविड नाम "कोण्डकुण्ड" है। इनके अन्य 4 ग्रथ भी प्रसिद्ध हैं जिन्हें जैन-आगम का सर्वस्व माना जाता है। ग्रंथो के नाम हैं- नियमसार, पचास्तिकायसार, समयसार, और प्रवचनसार। अतिम 3 ग्रथ जैनियो मे "नाटकत्रयी" के नाम से विख्यात हैं।

कुम्भ (महाराणा)- समय- 1433-1468 ई। पिता-मोकल। पत्नियां-कुभलदेवी व अपूर्वदेवी। महाराणा कुम्भा मेदपाट (मेवाड) में चित्तौड के राजा थे। इनके ग्रथो का उल्लेख चित्तौड के कीर्तिस्तम्भ के शिलालेख में किया गया है। महाराणा कुम्भा के प्रसिद्ध ग्रथ हैं- 1 सगीतराज या सगीतमीमासा, 2 बाणरचित चण्डीशतक पर वृत्ति, 3 जयदेवरचित गोतगोविन्द की रसिकप्रिया टीका, 4 वाद्यप्रबन्ध, 5 रस-रत्नकोष, 6 नृत्यरत्नकोश एव 7 पाठ्यगीत, 8 सगीतक्रमदीपिका, 9 एक लिगाश्रय और 10 कुम्भस्वामिमदार।

कुक्के सुब्रह्मण्य शर्मा- रचना- श्रीकृष्णनृपोदयप्रबन्धचम्पू (मैसूर नरेश का चरित्र)। अन्य रचना-शरावती-जलपातवर्णन-चम्पू।

कुचिमार- कामशास्त्र के औपनिषद खण्ड के रचनाकार। इनके ग्रथ में भिन्न प्रकार की औषधियों का प्रयोग बताया है। इस प्राचीन रचना का नाम है- कुचिमारतन्त्र। वर्तमान उपलब्ध रचना (जो अधूरी है) ई 10 वी शती की होगी ऐसा अनुमान है।

कुमारदास- "जानकीहरण" नामक महाकाव्य के प्रणेता। इनके संबध मे ये तथ्य प्राप्त हैं (क) इनकी जन्मभूमि सिहलद्वीप थी, (ख) ये सिहल के राजा नहीं थे, (ग) सिहल के इतिहास में यदि किसी राजा का नाम कवि के नाम से मिलता जुलता था, तो वह कुमार धातुसेन का था। परन्तु वे कुमारदास से पृथक् व्यक्ति थे, (घ) कवि के पिता का नाम मानित व दो मामाओ का नाम मेघ और अग्रबोधि था। उन्हीं की सहायता से इन्होने अपने महाकाव्य की रचना की थी और (ड) कुमारदास का समय ई 7 वीं शती माना गया है।

"जानकीहरण" 20 सर्गों का महाकाव्य है जिसमें राम-जन्म से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की कथा दी गई है। कुमारदास की प्रशस्ति मे सोड्ढल व राजशेखर ने निम्न उद्गार व्यक्त किये हैं-

> बभूवुरन्येऽपि कुमारदासभासादयो हन्त कविन्दवस्ते।
> यदीयगोभि कृतिना द्रवति चेतासि चद्रोपल-निर्मितानि।।
> -सोड्ढल
>
> जानकीहरण कर्तुं रघुवशे स्थिते सति।
> कवि कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षम ।।
> -राजशेखर, सूक्तिमुक्तावलि (4-86)

कुमारदास कालिदासोत्तर (चमत्कारप्रधान महाकाव्यों के) युग की उपलब्धि हैं जिनकी कविता कलात्मक काव्य की उचाई को सस्पर्श करती है।

कुमारलात- समय- ई 2 री शती। नागार्जुन के समकालीन। बौद्ध-दर्शन के अतर्गत सौत्रातिक मत के प्रतिष्ठापक आचार्य। तक्षशिला-निवासी किंतु अलौकिक विद्वत्ता एव प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण कबध के अधिपति द्वारा अपनी राजसभा मे सादर आमत्रित। उन्हीं के आश्रय मे ग्रथ-रचना सपन्न। बौद्ध-परपरा के अनुसार ये 4 प्रकाशमान सूर्यो में हैं, जिनमें अश्वघोष, देव व नागार्जुन आते हैं। इनके ग्रथ का नाम है- "कल्पनामण्डतिका-दृष्टात जो तुरफान मे डॉ लूडर्स को हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुआ था। इस ग्रथ में आख्यायिकाओं के माध्यम से बौद्ध-धर्म की शिक्षा दी गई है। इस ग्रंथ का महत्त्व, साहित्यिक व सास्कृतिक दोनो ही दृष्टियो से है। प्रत्येक कथा क प्रारम्भ में कुमारलात ने बौद्धधर्म की किसी मान्य शिक्षा को उद्धृत किया है और उसके प्रमाण में आख्यायिका प्रस्तुत की है।

कुमारताताचार्य- पिता-वेंकटाचार्य। तजौरनरेश रघुनाथ नायक का पुरोहित। रचना- पारिजातनाटकम्।

कुमारिल भट्ट- ई 7 वीं शती के प्रख्यात दार्शनिक। मीमासादर्शन के तीन आधारभूत ग्रथो- (श्लोकवार्तिक, तत्रवार्तिक और टुप्टीका) के रचियता। बौद्ध दर्शन का खडन कर कर्ममार्ग का प्रवर्तन तथा वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन करने वाले इस दार्शनिक ने मीमासा-शास्त्र मे भाट्ट-सम्प्रदाय की स्थापना की। विद्यारण्यकृत शाकरदिग्विजय मे इन्हें स्कन्द का अवतार माना गया है। इनके विषय में यह कथा बतायी जाती है- सुधन्वा राजा के दरबार में इन्होंने बौद्ध व जैन पडितो को परास्त किया और राजा की आज्ञा से यह कह कर कि "यदि वेद सच्चे होंगे तो मुझे चोट नहीं पहुचेगी", पर्वत की चोटी से कूद पडे किन्तु उन्हें कोई खरोच तक नहीं आयी। बाद मे राजा ने एक नाव में सर्प रख कर प्रश्न किया- इसमें क्या हैं। बौद्ध जैन पडितो ने कहा- इसके भीतर सर्प है। किन्तु कुमारिल भट्ट ने कहा- इसमें शेषशायी की मूर्ति है और वही सच निकला। इस कारण राजा ने बौद्ध

व जैन पंडितों का तिरस्कार किया।

जैन ग्रंथों के अनुसार कुमारिल भट्ट, महानदी के तट पर स्थित जयमंगल नाम गावं के यज्ञेश्वर भट्ट के पुत्र थे। माता का नाम चन्द्रगुणा था। जन्मदिवस-वैशाख पोर्णिमा, रविवार, युधिष्ठिर संवत् 2110। इन्हें जैनियों ने साक्षात् यम की उपमा दी है। इन्होंने सर्वप्रथम जैमिनिसूत्र-भाष्य व जैन भंजन नामक ग्रंथों की रचना की थी। कुमारिल भट्ट प्रखर कर्मकाण्डी थे। बौद्ध मत का खण्डन करने हेतु बौद्धों से ही उनके मत का ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया। इस काम में बौद्धों के सम्मुख उन्हें वेदमाता की निन्दा भी करनी पड़ी पर पूरा बौद्ध मत जान कर, उन्होंने उसका खण्डन किया, तथा कर्मकाण्ड की स्थापना की। एक अन्य कथा के अनुसार एक बार बौद्धो ने उन्हें अपने मत की पुष्टि के लिये पहाड पर से कूदने को कहा। वे सहर्ष तैयार हुए तथा "यदि वेद प्रमाण हैं, तो मुझे कुछ नहीं होगा"-- ऐसा कह कर कूद गए। वे जीवित तो रहे, पर "यदि" के प्रयोग से, प्रमाण्यशंका प्रकट होने से उनका पैर चौट खा गया।

वेदमाता की अनिच्छा से की हुई निन्दा तथा "यदि" कहकर प्रकट हुई प्रामाण्यशंका के अपराधो के लिये उन्होंने "तुषाग्निसाधन" कर प्रायश्चित किया।

जब वे तुषाग्नि पर बैठे थे, उनके पास विवाद करने तथा ज्ञानमार्ग की महत्ता स्थापित करने शकराचार्य आए। उन्होंने "तुषाग्निसाधन" न करने की हार्दिक प्रार्थना कुमारिल भट्ट से की। वे नहीं माने। वादविवाद के लिये उन्होंने आचार्य को अपने प्रधान शिष्य मंडनमिश्र के पास भेजा। तुषाग्निसाधन से भट्ट की मृत्यु बडी कष्टदायक रही पर उन्होंने कृतनिश्चय होकर वह प्रायश्चित्त लिया।

कुमुदचन्द्र- कतिपय विद्वानों के मत में सिद्धसेन दिवाकर का अपरनाम परन्तु यह मान्यता तथ्यसगत नहीं मानी जाती। गुजरात-निवासी। गुजरात के जयसिह सिद्धराज की सभा में वादी सीरदेव के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ था। समय- ई 12 वीं शती। रचना-कल्याणमदिर-स्तोत्र। यह स्तवन भावपूर्ण और सरस है।

कुमुदेन्दु- मूलसंघ-नन्दिसंघ बलात्कार गण के विद्वान्। माघनन्दि सैद्धान्तिक के गुरु। कर्नाटक के सस्कृत कवि। समय- ई 13 वीं शती। पिता-पद्मनन्दी व्रती। माता-कामाम्बिका। पितृव्य-अर्हनन्दी व्रती। ये मन्त्रशास्त्र के भी विद्वान थे। ग्रथ - कुमुदेन्दु-रामायण।

कुलकर्णी, दिगम्बर महादेव- संस्कृताध्यापक न्यू इंग्लिश स्कूल, सातारा। रचना-धारायशोधारा। इस लघुकाव्य में कुलकर्णी ने मालव-प्रदेश तथा उसके इतिहास का वर्णन किया है।

कुलकर्णी, सदाशिव नारायण- नागपुर की संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा के संस्थापक। रचना-व्यवहारकोश। संस्कृत भवितव्यम् साप्ताहिक में आपके अनेक निबंध प्रकाशित हुए।

कुलभद्र- कार्यक्षेत्र-राजस्थान। समय- 13-14 वीं शती। रचना-सारसमुच्चय (330 पद्य)। यह धर्म और नीतिप्रधान सूक्तिकाव्य है।

कुल्लूकभट्ट- समय- ई 12 वीं शती। मनुस्मृति की टीका मन्वर्थमुक्तावली के रचयिता। बगाल के नदनगाव में वारेन्द्र ब्राह्मण-कुल में जन्म। पिता का नाम-भट्ट दिवाकर था। इनके धर्मशास्त्र विषयक अन्य ग्रन्थ हैं- स्मृतिसागर, श्राद्धसागर, विवादसागर व आशौचसागर। श्राद्धसागर में पूर्वमीमासा विषयक चर्चा के साथ ही श्राद्ध सम्बन्धी जानकारी दी गयी है।

कृपाराम तर्कवागीश- मैथिल पण्डित। वॉरेन् हेस्टिंग्ज द्वारा नियुक्त ग्रथ लेखन समिति के सदस्य। रचना-नव्यधर्मप्रदीपिका।

कृष्णकवि- ई 17 वीं शती। पिता-नारायण भट्टपाद। कृष्णकवि ने किसी राजा का चरित्र-ग्रथन धनाशा से अपने "ताराशशाङ्कम्" नामक काव्य में किया है। यह काव्य प्रकाशित हो चुका है।

कृष्णकवि- रचना- रघुनाथभूपालीयम्। तंजौर के राजा रघुनाथ नायक के आश्रित। आपने आश्रयदाता का स्तवन तथा अलकारों का निदर्शन इस रचना में किया है। राजा के आदेश पर विजयेन्द्रतीर्थ के शिष्य सुधीन्द्रयति की टीका लिखी।

कृष्ण कौर- रचना श्र्यंककाव्यम्। 16 सर्ग। विषय-सिक्खों का इतिहास।

कृष्णकान्त विद्यावागीश (म.म.)- ई 19 वीं शती। नवद्वीप (बंगाल) के निवासी। कृतियां-गोपाल-लीलामृत, चैतन्यचन्द्रामृत तथा कामिनी-काम-कौतुकम् नामक तीन काव्य, न्याय-रत्नावली, उपमान-चिंतामणि और जगदीश की "शब्द-शक्ति-प्रकाशिका" पर टीकाएं।

कृष्ण गांगेय- पिता-रामेश्वर। रचना- सात्राजितीपरिणयचम्पू।

कृष्णचंद्र- एक पुष्टिमार्गीय आचार्य। इन्होंने ब्रह्म-सूत्र पर, "भाव-प्रकाशिका" नामक महत्त्वपूर्ण वृत्ति लिखी है। यह वृत्ति, मात्रा में वल्लभाचार्य जी के "अणु-भाष्य" से बढ कर है। ये प्रसिद्ध पुष्टिमतीय आचार्य पुरुषोत्तमजी के गुरु थे।

कृष्णजिष्णु- समय- ई 15 वीं शती। भट्टारक रत्नभूषण आम्नाय के अनुयायी। पिता-हर्षदेव। माता-वीरिका। ग्रंथ-विमलपुराण (2364)। अनुज- मगलदास की सहायता से इस ग्रथ की रचना हुई।

कृष्णदत्त मैथिल- ई 18 वीं शती। बिहार में दरभंगा के निकट उझानग्राम के निवासी। पिता-भवेश। माता-भगवती। भाई-पुरन्दर, कुलपति तथा श्रीमालिका। परम्परा से शैव या शाक्त पण्डित। सम्प्रति वंशज ऋद्धिनाथ झा, दरभंगा के निकट लोहना में सस्कृति विद्यापीठ के प्राचार्य। नागपुर के देवाजीपंत से समाश्रय प्राप्त। कृतिया- पुरजनविजयम्, तथा कुवलयाश्वीयम् (नाटक), गीतगोपीपति व राधा-रहस्य (काव्य), सान्द्रकुतूहल

(प्रहसन) और गीतगोविंद पर गंगा नामक व्याख्या, जो राधाकृष्ण के साथ गीतगोविंद का प्रत्येक गीत शिव-पार्वती-परक बताती है। रचनाएं संस्कृत-प्राकृत-मिश्रित हैं।

कृष्णदास कविराज- चैतन्य-मत के मूर्धन्य वैष्णव आचार्य। षट्-गोस्वामियो के समान ही अपने निर्मल आचरण एव भक्ति-ग्रंथो के प्रणयन द्वारा भक्ति की प्रभा चतुर्दिक् छिटकाने वाले भक्तों में कृष्णदास कविराज की ख्याति सब से अधिक है। वे बगाल के बर्दवान जिले के निवासी थे। आपका जन्म 1496 ई में हुआ था। पिता-भगीरथ। माता- सुनदा देवी। माता-पिता बचपन में ही परलोकवासी हुए। जाति के कायस्थ। श्यामदास नामक अपने भाई के नास्तिक विचारों से ये बडे व्यथित रहा करते थे। बचपन में ही ग्रथ-रचना में सलग्न हुए। इनके प्रमुख संस्कृत ग्रथो के नाम हैं- गोविंद-लीलामृत, कृष्णकर्णामृत की टीका, प्रेम-रत्नावलि, वैष्णवाष्टक, कृष्णलीलास्तव, रागमाला आदि।

आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है- "चैतन्यचरितामृत"। यह ग्रथ बंग-भाषा में है पर उसमे ब्रज भाषा का भी पर्याप्त मिश्रण है। इस 3 खडो वाले ग्रथ में चैतन्य महाप्रभु के जीवन चरित्र का विस्तृत वर्णन है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का ग्रथ रामचरित मानस हिन्दी भाषी जनता के लिये सकल शास्त्रो का सार तथा निःस्यंद है, उसी प्रकार कृष्णदास कविराज का चैतन्य-चरितामृत बगाल की वैष्णव जनता के लिये पूज्य है।

सुगम भाषा मे दुर्गम तत्त्वों का विशदीकरण इस ग्रथ-रत्न की विशेषता है। भक्तो के आग्रह पर 79 वर्ष की आयु में कविराज ने इस ग्रथ की रचना प्रारभ की और 7 वर्षों में ग्रंथ पूरा किया।

कृष्णदास कविराज के समकालीन नित्यानददास के विख्यात ग्रथ प्रेमविलास में कविराज अवमान की विचित्र घटना उल्लिखित है। तदनुसार कविराज ने जब सुना कि उनके ग्रथ की एकमात्र हस्तलिखित प्रति को डाकू लूट मे ले गए तो तत्क्षण इनकी मृत्यु हो गई। यह घटना 1598 ई की है। इस प्रकार वे पूरे 102 वर्ष जीवित रहे।

कृष्णदास सार्वभौम भट्टाचार्य- ई 17 वीं शती। तत्त्वचिन्तामणि, दीधितिप्रसारिणी तथा अनुमानालोकप्रसारिणी नामक तीन रचनाएं इनके नाम पर प्राप्त हैं।

कृष्णदेवराय- विजयनगर के राजा। शासनकाल 1509 से 1530 ई तक। तुलवराजवश मे जन्म। पिता का नाम नरस। कृतिया- तेलगु और संस्कृत में कतिपय रचनाएं। संस्कृत रूपक-उषापरिणय, जाम्बवती-कल्याण रसमजरी (गद्यप्रबध) तेलगु ग्रथ मदालसाचरित, सत्यावधूसान्त्वन, सकलकथासग्रह और ज्ञान-चिन्तामणि।

कृष्णदैवज्ञ- समय 17 वीं शती। रचना- करणकौस्तुभ। यह पंचागशुद्धि के प्रयास हेतु छत्रपति शिवाजी महाराज के आदेश से रचित ज्योति शास्त्र विषयक ग्रथ है। विद्वानों द्वारा समादृत।

कृष्णनाथ न्यायपंचानन- ई. 19 वीं शती। बगाली। कृतियां- शाकुन्तल व रत्नावली (नाटकों) पर संस्कृत टीकाएं।

कृष्णनाथ न्यायपंचानन- ई 20 वीं शती। बंगाली। जन्मग्राम-पूर्वस्थली (बंगाल) कृति- "वातदूतम्" (दूतकाव्य)।

कृष्णपन्त- ई 19-20 वीं शती। पिता-वैद्यनाथ। पितामह-विश्वनाथ, गुरु- रंगाप्पा बालाजी। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शती के प्रारम्भ में प्रणीत रचनाएं- कामकंदल (नाटक), रत्नावली (गद्य) तथा कालिका (मन्दाक्रान्ता) शतक।

कृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे- काठमांडू (नेपाल) के निवासी। 20 वीं शती के एक श्रेष्ठ संस्कृत कवि। विद्यावारिधि एवं कविरत्न इन उपाधियो से विभूषित। आपके द्वारा लिखित 4 महाकाव्य हैं। (1) श्रीकृष्णचरितामृतम् (दो विभागों में प्रकाशित), (2) नाचिकेतसम्, (3) वृत्रवधम् और (4) ययातिचरितम्। इन 4 महाकाव्यों के अतिरिक्त मनोयान और श्रीरामविलाप नामक दो खड-काव्य तथा पूर्णाहुति और महामोह नामक दो नाटक भी शर्माजी ने लिखे हैं। श्रीकृष्णगद्यसग्रह और श्रीकृष्णपद्यसग्रह की भी रचना आपने की है। आपके द्वारा निर्मित सत्सूक्तिकुसुमाजलि, सत्पुरुषो के स्तुतिपर काव्यों का सग्रह है। सपातिसंदेश एक सदेशकाव्य है। (कुल ग्रथ 12)।

कृष्णम्माचार्य आर. व्ही.- पचम जार्ज के राज्याभिषेक पर रचित काव्य चक्रवर्तिचत्वारिंशत्। अन्य रचनाएं- (1) कादम्बरीसार, (2) हर्षचरितसार, (3) वेमभूपालचरितम्, (4) महाकविसुभाषितानि, (5) साहित्यरत्नमंजूषा, (6) सुभाषितशतकम्, (7) प्रस्तुताकुरविमर्श (8) विलुप्तकौतुकम्, (9) वृत्तवार्तिकटीका, (10) चित्रमीमासाटीका, (11) वाणीविलाप, (12) अकलापिविलाप, (13) अन्यापदेश, (14) वायसवैशसम्, (15) श्रीदेशिक-त्रिंशत्, (16) धर्मराजविज्ञप्ति, (17) भारतगीता (स्वदेशस्तुतिपरक) आदि। ये सभी काव्य मुद्रित हो चुके हैं।

कृष्णम्माचार्य- पिता- रंगनाथाचार्य। तिरुपति के निवासी। रचना- (1) मन्दारवती, आधुनिक शैली में 18 प्रकरणों का उपन्यास। (2) विलापतरंगिणी। (3) रसार्णवतरंग-भाण।

कृष्ण मिश्र - समय- ई. 11 वीं शती। बंगाल के निवासी। आपका "प्रबोधचद्रोदयम्" नामक नाटक अत्यंत वैशिष्ट्यपूर्ण है। यह नाटक प्रयोगक्षम नहीं है। फिर भी उच्च धार्मिक विचार और गभीर तत्त्वज्ञान का काव्यमय आविष्कार करने में इस नाटक ने जो सफलता प्राप्त की, वही अपने-आप में बहुत-कुछ है। इस नाटक के पात्र मानवी नहीं, वे भावरूप एव प्रतीकात्मक हैं। आध्यात्मिक भावनाओं को रूपकों द्वारा दृश्य करते हुए, इस नाटक में उनका परस्पर संबंध भली भाति दर्शाया गया है। इस नाटक का उद्देश्य है विष्णुभक्ति की महिमा स्थापित करना। इनकी इस नाट्य-शैली का अनुकरण,

अद्यावधि चालू है।

कृष्ण मिश्र 'हस' क्षेणी के संन्यासी तथा शांकराद्वैतमत के प्रचारक थे। इनका एक शिष्य दर्शनशास्त्र के अध्ययन में अनुत्सुक था। उसे मार्ग पर लाने के लिये इन्होंने "प्रबोध चन्द्रोदय" की रचना की थी। इस नाटक का कथानक भागवत से लिया गया है। नाटक की प्रस्तुति में राजा कीर्तिवर्मा अपने सेनापति गोपाल की सहायता से कर्णदेव को हराता है इसका उल्लेख कर, कृष्णमिश्र इस आनन्दोत्सव में प्रस्तुत नाटक के प्रयुक्त होने की घटना का निर्देश करते है। कीर्तिवर्मा का काल, ई. 1049 से 1100 है। अत कृष्ण मिश्र का काल ई 11 वीं शती निश्चित होता है।

कृष्णमूर्ति- ई 17 वीं शती का उत्तरार्ध। वसिष्ठ गोत्रीय। पिता-सर्वशास्त्री। कृतिया- मदनाभ्युदय (भाण) और यक्षोल्लास (काव्य)। इन्होंने स्वय का निर्देश अभिनव कालिदास के रूप में किया है।

कृष्णमूर्ति- ई 19 वीं शती। रचना- कङ्कणबन्ध-रामायणम्। यह रामायण केवल एक श्लोक का है। इस एक श्लोक के 64 अर्थ निकलते हैं। उसमें पूरी राम-कथा समाविष्ट है।

कृष्णराम व्यास- आयुर्वेदाचार्य। जयपुर-निवासी श्री कुन्दनराम के ज्येष्ठ पुत्र। जन्म 1871 ई। जयपुर के सभा-पडित। इनकी प्रसिद्ध कृतिया हैं- 1 कच्छवश-महाकाव्यम्, 2 जयपुरविलासकाव्यम्, 3 सारशतकम्, 4 मुक्तकमुक्तावली, 5 जयपुरमेलकुतुकम्, 6 आर्यालिकारशतकम्, 7 गोपालगीतम्, 8 गल्पसमाधानम्, 9 होलीमहोत्सव, 10 माधवपाणिग्रहणोत्सव, 11 काशीनाथस्तव, 12 गोविन्दभट्टभगम्, 13 छन्दश्छटामर्दनम्, 14 स्मरशतकम्, 15 पलाण्डुराजशतकम् व 16 चन्द्रचरितमण्डनम्।

प्रथम दो काव्यो में जयपुर के अनेक राजाओ का चरित्र ग्रथित किया गया है। "सारशतकम्", श्रीहर्ष के "नैषध" काव्य का सक्षेप है।

कृष्णलाल 'नादान' (डा.) - दिल्लीनिवासी। दिल्ली वि वि में संस्कृत विभाग में उपाचार्य। सन् 1956 में "भारती" पत्रिका की प्रतियोगिता में "शिजारव" शीर्षक पद्य-रचना पर प्रथम पुरस्कार प्राप्त। कृतिया- शिंजारव (काव्य) व प्रतिकार (एकांकी)। 'संस्कृत शोधप्रक्रिया एव वैदिक अध्ययन' नामक आपका हिन्दी प्रबध सन 1978 मे प्रकाशित।

कृष्णलीलाशुक - पिता-दामोदर। माता-नीली। "ईशानदेव तन्त्रपद्धति" के लेखक ईशानदेव के शिष्य। श्वेतारण्य (दक्षिण कैलास) के मृत्युजय के भक्त। मुक्तिस्थल निवासी। श्रीकृष्ण के परम उपासक। समय- ई. 11 वीं शती। वृंदावन में मृत्यु। काव्य के साथ व्याकरण व दर्शन-शास्त्र में भी नैपुण्य प्राप्त। कृष्णलीलाशुक की अन्य रचनाएं हैं- सरस्वतीकण्ठाभरण की टीका, पुरुषकार (तत्वज्ञानपरक), त्रिभुवनसुभग, गणपतिस्तुति, कर्कोटकस्तुति, रामचंद्रस्तुति, अपव-स्तुति, कृष्णस्तुति, विश्वार्धिकस्तुति, कृष्णचरितम्, अभिनवकौस्तुभमाला, क्रमदीपिका, शाकरहृदयांगन, वृन्दावनस्तुति (रासवर्णन), कालवध (मार्कण्डेय कथा), गोविन्दाभिषेकम् (श्रीचिह्नकाव्यम्) और कृष्णकर्णामृतम् जिससे आप विख्यात हुए।

कृष्णशास्त्री - ई 19 वीं शती। पूर्ण नाम-ब्रह्मश्री परितियकृष्ण शास्त्री। जन्म कलमगवडी ग्राम (तामिळनाडू) में। केरलनरेश रामवर्मा का आश्रय प्राप्त। काव्य, दर्शन, व्याकरण व धर्मशास्त्र में निपुण। गुरु-विद्यानाथ दीक्षित। आपने 16 वर्ष की अवस्था में ही "कौमुदी-सौम" नामक नाटक की रचना की।

कृष्ण सार्वभौम- अपरनाम कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य। समय- ई 18 वीं शती। निवासस्थान-पश्चिम बगाल का शातिपुर। इन्होंने नवद्वीप के राजा रघुराम राय की आज्ञा से "पदाङ्कदूत" की रचना की थी। इस तथ्य का निर्देश इन्होंने अपने इस दूतकाव्य के अत में किया है। इस काव्य में कृष्णसार्वभौम ने श्रीकृष्ण के एक पदाङ्क को दूत बना कर किसी गोपी द्वारा कृष्ण के पास संदेश भिजवाया है।

अपने पिता दुर्गादास चक्रवर्ती की भाति ये भी कृष्ण-भक्त थे। इन्हें सामंत चिंतामणि, रामजीवन तथा उनके पुत्र राजा रघुराम राय (1715-1728 ई.) इन तीनो से समाश्रय प्राप्त था। अन्य कृतिया- 1 आनंदलतिका (नाटक), 2 कृष्ण-पदामृत (स्तोत्र) और 3 मुकुदपद- माधुरी (सटीक कारिकाए)।

कृष्णसुधी- पं. जगन्नाथ के वशज। उत्तरमेरु (कांची के पास) में वास्तव्य। रचना- काव्यकलानिधि। यह एक साहित्यशास्त्रीय रचना है जिसमें उदाहरणो के माध्यम से आश्रयदाता कौल्लमनरेश रामवर्मा का गुणगान किया गया है।

कृष्णानंद- समय- ई 14 वीं शती। "सहृदयानद" नामक महाकाव्य के प्रणेता। 15 सर्गों में रचित इस काव्य में, राजा नल का चरित्र वर्णित है। ये जगन्नाथपुरी के निवासी थे। इनका एक पद्य विश्वनाथ कविराज द्वारा रचित "साहित्य-दर्पण" में उद्धृत है। यह महाकाव्य (हिन्दी अनुवाद सहित) चौखंबा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित हो चुका है।

कृष्णानंद व्यास (पं.) - जन्म- 1790 ई.। दिल्ली-निवासी एक संगीतज्ञ। इन्होंने 1842 ई में "रागकल्पद्रुम" नामक सगीतविषयक ग्रथ की रचना की। इस ग्रंथ में धृपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि विषयो की मौलिक जानकारी प्रस्तुत की गई है।

मेवाड की महारानी द्वारा इन्हें 'राग-सागर" की उपाधि से विभूषित किया गया था। कुछ काल तक ये मेवाड के राजकवि भी रहे थे। इनकी अन्य प्रसिद्ध कृति है- सुदर्शनचपू।

के. आर. नैयर अलवाये - ई 20 वीं शती। "अलब्ध-कर्मीय" नामक प्रहसन के प्रणेता।

केतकर, व्यंकटेश बापूजी- जन्म ई. 1797। रचनाए - **ज्योतिर्गणितम्**, सौरार्य-ब्रह्मपक्षीयतिथिगणितम्, केतकीभाष्यम्, केतकीग्रहगणितम्, वैजयन्ती, भूमण्डलीय-सूर्यग्रहगणितम्। मराठी में भी ज्योतिःशास्त्र विषयक लेखन किया है।

केदारभट्ट- सम्भवतः ई 12 वीं शती। बंगाल के निवासी। "वृत्तरत्नाकर" के कर्ता। पिता- पब्बेक (संभवत "वासनामन्जरी" के प्रणेता) इनके वृत्तरत्नाकर ग्रंथ पर 20 से अधिक टीकाए लिखी गई हैं।

केरलवर्मा- त्रावणकोरनरेश (19-20 वीं शती) इन्होंने प्रभूत तथा उत्कृष्ट साहित्यनिर्मिति की है। केरल-कालिदास की उपाधिप्राप्त। रचनाए- गुरुवायुरेशशतकम्, व्याघ्रालयेशशतकम्, द्रोणाद्रिशतकम्, विशाखराजमहाकाव्यम्, क्षमापनसहस्रम् और शृंगारमंजरीभाण।

केवलानन्द- सरस्वती- समय- ई स. 1877-1955। महाराष्ट्र के वाई नामक ग्राम में स्थित प्राज्ञ पाठशाला के संस्थापक। इनका पूर्वनाम नारायण सदाशिव मराठे था। प्रज्ञानंद सरस्वती स्वामी इनके गुरु थे। संस्कृत भाषा और प्राचीन धर्मग्रन्थों के गहरे अध्ययन के बाद आपने अध्यापन-क्षेत्र में प्रवेश किया और राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत धर्मप्रचारक तैयार करने के उद्देश्य से नयी शिक्षा-पद्धति तैयार की। धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्रों में कालानुरूप परिवर्तन एव सुधार के वे पक्षपाती थे। आपने अनेक ग्रन्थों का संपादन किया जिनमें से कुछ इस प्रकार है- 1. मीमासाकोश (खण्ड 7), 2 अद्वैतसिद्धि का मराठी अनुवाद, 3 ऐतरेयविषयसूची, 4 कौषीतकीब्राह्मण की सूची, 5 तैत्तिरीय मंत्र-सूची, 6 सत्याषाढसूत्र-विषयसूची, 7 अद्वैतवेदान्तकोश, 8. ऐतरेय ब्राह्मण आरण्यक कोश तथा, 9 धर्मकोश (6 खण्ड) के सपादक। तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी आपके प्रमुख शिष्यों में सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं।

केशव - पिता- श्रीनिवास। रचना- सत्यध्यानविजयम्। 5 सर्गात्मक। इनके छोटे भाई ने इस पर टीका लिखी है।

केशव- एक ज्योतिष-शास्त्रज्ञ। इन्होंने "विवाहवृंदावन" और "करणकंठीरव" नामक दो ग्रंथो का प्रणयन किया है। इनमें से केवल प्रथम ग्रंथ ही उपलब्ध है। समय- 14 वीं शती।

केशव काश्मीरी- समय- ई. 13-14 शती। निंबार्क-सप्रदाय के एक प्रसिद्ध दिग्विजयी आचार्य। कहा जाता है कि इन्होंने 3 बार दिग्विजय कर "दिग्विजयी" की उपाधि प्राप्त की थी। काश्मीर में अधिक काल तक निवास करने के कारण "काश्मीरी" उपनाम से विख्यात थे। ये अलाउद्दीन खिलजी (शासन-काल 1296-1320 ई) के समकालीन माने जाते हैं। इनका अपर नाम "केशवभट्ट" है। कहते है कि मथुरा के किसी मुसलमान सुबेदार के आदेशानुसार, एक फकीर ने लाल दरवाजे पर एक मंत्र टाग दिया। जो भी हिन्दु उधर से निकलता, मंत्र के प्रभाव से उसकी शिखा कट जाती और वह मुसलमान बन जाता। इस बात की सूचना पाकर काश्मीरीजी उस स्थान पर अपने शिष्यों सहित पहुंचे, और अपने प्रभाव से उस मंत्र को निष्प्रभ कर डाला। केशव काश्मीरी मथुरा में ध्रुव-टीले पर निवास करते थे। इनके अंतर्धान का स्थान मथुरा का नारद-टीला है, जहां इनकी समाधि बनी हुई है। इनका जन्मोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता है। काश्मीरीजी के विषय में निम्न श्लोक प्रसिद्ध है-

वागीशा यस्य वदने हृत्-कजे श्रीहरि स्वयम्।
यस्यादेशकरा देवा मत्रराजप्रसादत ।।

नाभादासजी ने इनके द्वारा किया गया चमत्कार तथा संपन्न दिग्विजय को व्यक्त करने वाला निम्न छप्पय लिखा है-

कासमीर की छाप पात तापन जगमडन,
दृढ हरि-भक्ति-कुठार आनमत विटप विहडन।
मथुरा मध्य मलेच्छ दल करि वर बट जीते,
काजी अजित अनेक देखि परचे भय भीते।
विदित बात ससार सब, संत साखि नाहिन दुरी।
श्री "केशवभट" नरमुकुट-मणि, जिनकी प्रभुता निस्तरी।।
(छप्पय 75)

श्री केशव काश्मीरी के ग्रथ निंबार्क-सप्रदाय की अतुल सपत्ति हैं। इनके द्वारा प्रणीत ग्रथ हैं- (1) तत्त्व-प्रकाशिका (गीता का निंबार्कमतानुयायी भाष्य), (2) कौस्तुभ-प्रभा (श्रीनिवासाचार्य के "वेदात-कौस्तुभ" का पांडित्यचूर्ण भाष्य), (3) प्रकाशिका- (दशोपनिषद् पर भाष्य, जिसमें केवल "मुण्डक" का भाष्य प्रकाशित हो चुका है) (4) भागवत-टीका, (जिनकी केवल "वेद-स्तुति' का भाष्य उपलब्ध तथा प्रकाशित है और (5) क्रमदीपका (सतिलक) जो पूजा-पद्धति का विवरणात्मक ग्रथ है।

केशवदैवज्ञ- ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। 'ग्रहलाघवकार" गणेश दैवज्ञ के पिता। पश्चिमी समुद्र-तटवर्ती नदिग्राम के निवासी। आविर्भाव-काल सन् 1456 ई। पिता कमलाकर, गुरु- वैजनाथ। इनके द्वारा रचित ग्रथो के नाम हैं, ग्रहकौतुक, वर्षग्रहसिद्धि, तिथिसिद्धि, जातक-पद्धति, जातक-पद्धतिविवृत्ति, ताजिक-पद्धति, सिद्धान्तवासनापाठ, मुहूर्ततत्त्व, कायस्थादिधर्मपद्धति, कुडाष्टकलक्षण और गणित-दीपिका। ये ग्रह-गणित व फलितज्योतिष दोनों के ही मर्मज्ञ थे।

केशवपण्डित- रचना- "राजारामचरितम्"। इसमें राजाराम महाराज (छत्रपति शिवाजी के सुपुत्र) और मरहठा वीरों द्वारा, औरगजेब से अपने साम्राज्य के रक्षण हेतु किये गए महान् सघर्ष का वर्णन है।

केशवभट्ट- 'नृसिहचपू' या 'प्रह्लादचंपू' नामक काव्य के रचयिता। गोलाक्षी परिवार के केशवभट्ट इनके पितामह थे। पिता- अनतभट्ट। इनका जन्म गोदावरी जिले के (आंध्र) पुण्यस्तंब नामक नगर में हुआ था। "नृसिहचंपू" (प्रह्लादचंपू)

का रचना-काल 1684 ई है। इसका प्रकाशन कृष्णाजी गणपत प्रेस, मुंबई से, 1909 ई. में हो चुका है।

केशव मिश्र - काव्यशास्त्र के एक आचार्य। इन्होंने "अलंकार-शेखर" नामक ग्रंथ की रचना की है। समय - 16 वीं शताब्दी का अंतिम चरण। ग्रंथ-रचना, कागडा नरेश माणिक्यचन्द्र के आग्रह पर की। "अलकार-शेखर" में 8 रत्न या अध्याय है व कारिका, वृत्ति और उदाहरण इसके 3 विभाग हैं। अध्यायों का विभाजन 22 मरीचियों में हुआ है। स्वयं लेखक ने कारिका व वृत्ति की रचना की है। उदाहरण अन्य ग्रंथों से लिये हैं। ग्रंथ में वर्णित विषय हैं - (1) काव्य-लक्षण, (2) रीति, (3) शब्द-शक्ति, (4) आठ प्रकार के पददोष, (5) अठारह प्रकार के शब्द-दोष, (6) आठ प्रकार के अर्थ-दोष, (7) पाच प्रकार के शब्द-गुण, (8) अलंकार व (9) रूपक। ग्रंथकार के अनुसार कारिकाओ की रचना, "भगवान् शौद्धोदनि" के अलंकार-ग्रथ के आधार पर हुई है।

केशव मिश्र - समय- ई 13 वीं शती। न्यायदर्शन के लोकप्रिय लेखकों में केशव मिश्र का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्ध रचना "तर्कभाषा" है। सस्कृत में तर्कभाषा के 3 लेखक हैं, और तीनों भिन्न-भिन्न दर्शन के अनुयायी हैं। केशव मिश्र के शिष्य बगाल के गोवर्धन मिश्र ने प्रस्तुत "तर्कभाषा" पर "तर्कभाषाप्रकाश" नामक व्याख्या लिखी है। गोवर्धन ने अपनी व्याख्या में अपने गुरु का परिचय भी दिया है। केशव मिश्र के पिता का नाम बलभद्र और दो ज्येष्ठ भ्राताओं के नाम विश्वनाथ व पद्मनाभ थे। अपने बडे भाई से तर्कशास्त्र का अध्ययन करके ही केशव मिश्र ने अपने ग्रथ का प्रणयन किया था। ये मिथिला के निवासी थे।

केशिवराज- समय ई 11 वीं शती। सुधार्णव के कर्ता मल्लिकार्जुन के पुत्र। होयसालवशी राजा नरसिह के कटकोपाध्याय सुमनोबाण के दौहित्र और जन्नकवि के भाजे। कर्नाटकवासी। ग्रंथ-चोलपालकचरित, सुभद्राहरण, प्रबोधचन्द्र, किरात और शब्दमणिदर्पण।

कैकिणी, व्यंकटराव मंजुनाथ (डॉ.) - मुम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर व कवि। शैक्षणिक पात्रता- बी.ए. एम.बी बी.एस ,एफ आर सी एस , साहित्यभूषण। डाक्टरनी ने अपने पूर्वज साधु (जो कारवार जिले के कैकिणी ग्रामवासी थे) शिवकैवल्य का चरित्र 6 उल्लासों में "शिवकैवल्यचरितम्" नामक काव्य मे ग्रथित किया है।

कैयटभट्ट- समय- ई 11 वीं शताब्दी। एक कश्मीरी वैयाकरण जिन्होंने पतंजलि के महाभाष्य पर "प्रदीप" नामक समीक्षा-ग्रंथ लिखा। इस "प्रदीप" पर 15 टीकाएं लिखी गई हैं।

इनके बारे में कहा जाता है कि इन्हें पाणिनीय व्याकरण कंठस्थ था। "प्रदीप" में अनेक स्थानों पर "स्फोटवाद" का विवेचन किया गया है। महाभाष्य की प्राचीन टीकाओं में भर्तृहरि के पश्चात् "प्रदीप" का ही क्रम आता है। "देवीशतक" के टीकाकार कैयट से, प्रदीपकार कैयट भिन्न हैं। पिता-जैयट उपाध्याय। गुरु-महेश्वर। शिष्य- उद्योतकर।

कोक्कोक- समय ई 12 वीं शती। पारिभद्र के पात्र। तेजो के पुत्र। रचना-रतिरहस्यम्। नयचन्द्र और कुम्भकर्ण द्वारा उल्लेख।

कोगण्टि सीतारामाचार्य - ई 20 वीं शती। अध्यात्म-शास्त्र तथा तन्त्र में निष्णात। साहित्यसमिति, गुण्टुर के सदस्य। प्रतिज्ञा-कौत्स, आमुख, एकलव्य तथा पद्मावती-चरण चारण-चक्रवर्ती नामक चार एकांकियों के प्रणेता।

कोचा नरसिंहाचार्य- तिरुपति के श्रीनिवासाचार्य के पुत्र। रचनाए- पिकसन्देशम् तथा गरुडसन्देशम् नामक दूतकाव्य।

कौच्चुण्णि भूपालक- अपर नाम ताम्पूरान्। जन्म 1858 ई में, कोटिलिंगपुर (कोचीन) के राजवंश में। मूल नाम-रामवर्मा। चाचा गोदावर्मा से काव्यशास्त्र की शिक्षा पाई। सगीत तथा इन्द्रजाल में विशेष रुचि। कोचीन के राजा द्वारा "कविसार्वभौम" की उपाधि प्राप्त। गुरु-कृष्णशास्त्री।

कृतियां- अनंगजीवन तथा विटराजविजय-भाण, विद्वयुवराज-चरित, श्रीरामवर्मकाव्य, विप्रसन्देश, बाणयुद्धचंपू और देवदेवेश्वर-शतक। गोदावर्मा का अधूरा रामचरित भी इन्होंने पूर्ण किया।

कोरड रामचन्द्र- आन्ध्र-निवासी। रचना (1) "स्वोदयकाव्यम्" आत्मचरित्रपरकग्रथ (यह रचना अप्रकाशित है) (2) घनवृत्तम् (प्रकाशित)।

कोलब्रुक- ई स 1765 से 1837। एक ब्रिटिश प्राच्यविद्या पडित। पूरा नाम-हेनरी टामस् कोलबुक। कलकत्ता में मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहते इन्होंने वेद, सस्कृत-व्याकरण, जैन आचार, हिन्दू विधि, भारतीय दर्शन, ज्योतिष आदि का गहरा अध्ययन कर अनेक लेख लिखे। यूरोपीय जनता को प्रथम बार हिन्दुओ के पवित्र ग्रथो और दर्शनों का परिचय कराया। इनके पास अनेक सस्कृत हस्तलिखितों का सग्रह था जो ईस्ट इडिया कम्पनी को 1818 में दानस्वरूप दिया गया।

को. ला. व्यासराजशास्त्री - "विद्यासागर" की उपाधि से विभूषित। समय ई 20 वी शती। कृतियां- महात्मविजय, विद्युन्माला, चामुण्डा, शार्दूलसम्पात, निपुणिका तथा अन्य 19 लघु नाटक।

कौषीतकी - ऋग्वेद के कौषीतकी ब्राह्मण के कर्ता। इनके नाम पर आरण्यक उपनिषद, सांख्यायन श्रौत व गृह्यसूत्र आदि ग्रथ पाये जाते हैं। इनके मतानुसार प्राण ही ब्रह्म है। मन उसका भाष्यकार, वाणी उसकी सेवक, आख-सरक्षण और कान- श्रवणेन्द्रिय है। यज्ञोपवीत धारण, आचमन व उगते सूर्य की उपासना- यह त्रिविध उपासना भी इन्होंने बतायी है।

कोहल - स्वय भरत मुनि ने कोहल को यह सम्मान दिया है कि "शेष नाट्यशास्त्रीय विवेचन कौहल ही करेंगे"- "शेषमुत्तरतंत्रेण कोहल कथयिष्यति"। संभवत. कोहल ने सगीत, नृत्य और अभिनय के सम्बन्ध में भी शास्त्ररचना की होगी।

अभिनवगुप्त ने अपनी टीका में अनेक स्थलो पर कोहलाचार्य को उद्धृत किया है। नान्दी-विवेचन के प्रसग में उद्धरण है- "इत्येषा- कोहलप्रदर्शिता नान्दी उपपन्ना भवति।। नाट्य के रस, भाव आदि। अंगों की गणना के समय अभिनवगुप्त ने इन्हें कोहलाभिमत कहा है, भरताभिमत नहीं ("अनेन तु श्लोकेन कोहलमतेन एकादशागत्वमुच्यते। न तु भरते"।) नाट्यशास्त्र तथा अभिनवभारती में कुल मिला कर 8 स्थलो पर कोहल के नाम का उल्लेख है। भावप्रकाशन तथा नाट्यदर्पण में रूपकों की संख्या के प्रसग में तथा अन्यत्र इनका उल्लेख है। शिगभूपाल ने भी कोहलाचार्य का उल्लेख किया है। दामोदरगुप्त ने "कुट्टनीमत" नामक कृति में भरत के साथ ही कोहल का उल्लेख किया है। बालरामायण में कोहल को नाट्याचार्य के रूप में प्रस्तावना में ही उद्धृत किया गया है। रामकृष्ण कवि के मत से, कोहल तीसरी शती ई पूर्व मे हुए थे।

"भरत इव नाट्याचार्य कोहलादय इव नटा" इस अभिनवभारती के उल्लेख से प्रतीत होता है कि कोहल भरत की परम्परा के आचार्यों तथा प्रयोक्ताओं में परिगणित हुए हैं। सगीतरत्नाकर मे कोहल के सगीत सबधी अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। पार्श्वदेव के सगीतसमयसार में कोहल तथा दत्तिल को सगीतशास्त्र के आचार्य के रूप में स्मरण किया है। कोहलप्रोक्त ग्रथ का 13 वां अध्याय मद्रास के शासकीय हस्तलिखित ग्रथागार मे विद्यमान है जिसका नाम "कोहलरहस्य" है। यह ग्रथ खण्डित है। इसमें कोहल का उल्लेख, भरतपुत्र के रूप मे हुआ है। "कोहलमतम्" नामक एक ग्रथ भी मिला है ऐसा श्री शुक्ल कहते हैं। इसमें पुष्पाजलि का मात्र स्वरूप मिलता है। इन्होंने ही "कोहलीयम्" नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है जो तालपत्र पर लिखित है तथा लन्दन की इडिया आफिस लायब्रेरी मे सग्रहित है। ये सभी ग्रन्थ अपूर्ण तथा अप्रकाशित हैं। कोहल के उत्तराधिकारी होने एव अभिनवगुप्त के मतों को लेकर निष्कर्ष निकालते हुए श्री शुक्ल ने लिखा है कि नाट्यशास्त्र की रचना के समय भरत अत्यत वृद्ध थे जिससे ग्रन्थ में ही "मुनिना भरतेन य प्रयोगो" आदि उल्लेखों में भरत को मुनि कहा गया। लेखन के अन्त समय तक कोहल प्रसिद्ध प्राप्त नाट्याचार्य हो गए थे तथा अवशिष्ट विषयो पर लिखने की क्षमता भी उनहीं की थी। अत स्वय भरत ने यह भविष्यवाणी की कि अवशिष्ट भाग कोहल ही पूर्ण करेगा।

डॉ राघवन् ने भरत के बाद कोहल को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य निरूपित करते हुए कहा है कि नाट्यशास्त्र में भरत के पूर्वतन्त्र के साथ कोहल के उत्तरतन्त्र के विषय भी उपपादन तथा उपबृहण के रूप में समाविष्ट हैं। संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के द्वारा उद्धृत ग्रन्थ संगीतमेरु किसी अन्य आचार्य की रचना है तथा कोहल के नाम से उसका प्रचार किया गया है ऐसा डा राघवन का मत है।

कौत्सव्य - अथर्व परिशिष्ट की कुल 78 संख्या में कौत्सव का निरुक्त-निघण्टु 48 वा है। इस आथर्वण निरुक्त-निघण्टु में कुछ ऐसे पद आते है जो उपलब्ध अर्थवशाखा में नहीं मिलते, अथर्ववेद की किसी अज्ञात शाखा से उनका संबंध होगा ऐसा विद्वानों का तर्क है।

कौशिक - कुछ ऋचाओं के द्रष्टा, एक गोत्र ऋषि तथा कौडिण्य के शिष्य। पाणिनि के अनुसार एक शाखा के प्रवर्तक। इनके नाम पर ये ग्रन्थ हैं 1. कौशिकसूत्र, 2. कौशिकस्मृति, 3 कौशिकशिक्षा व 4 कौशिकपुराण। कुशिक विश्वामित्र के पूर्वज तथा भरत के पुरोहित थे। कुशिक कुल ही कौशिक के नाम से जाना जाता है। विश्वामित्र के पिता गाधी भी कौशिक नाम से जाने जाते थे।

कौशिक भट्टभास्कर - ई 11 वीं शती। यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता के भाष्यकार। सायणाचार्य, देवराज यज्वा, श्रीकण्ठाचार्य, विश्वेश्वरभट्ट मान्धाता आदि भाष्यकार, भट्ट भास्कराचार्य का प्रमाण रूप से निर्देश करते हैं। भट्टभास्करप्रणीत "तैत्तिरीयभाष्य" में चतुर्थ काण्ड मुद्रित नहीं फिर भी चतुर्थकाण्ड के अन्तर्गत रुद्राध्याय पर भट्टभास्कराचार्यजी का भाष्य उपलब्ध है। सहिता भाष्यकार और रुद्रभाष्यकार कौशिक अभिन्न हैं या भिन्न, इस विषय में मतभेद है। एक एक शब्द के अनेक अर्थ देने के कारण भट्ट भास्कराचार्यजी का विशेष निर्देश होता है।

कौशिक रामानुजाचार्य - श्रीरगपट्टणम् निवासी। रचना-अथर्वशिखाविलास । इसमें वैष्णवमत का प्रतिपादन किया गया है।

क्रमदीश्वर - सक्षिप्तसारव्याकरण के रचयिता। इसकी स्वोपज्ञ टीका (रसवती) का जुमरनन्दी ने परिष्कार किया था। इस लिये वह जौमर के नाम से ज्ञात है।

क्रोष्टुकि - निरुक्तकार के रूप में यास्कप्रणीत निरुक्त में आचार्य क्रोष्टुकि का एक बार निर्देश है। बृहद्देवता में भी इनका एक बार निर्देश मिलता है।

क्षमाकल्याण - ई 18 वीं शती। रचना "यशोधरचरितम्" (जैन राजा यशोधर का चरित्र)।

क्षमादेवी राव - प्रसिद्ध कवयित्री। जन्म 4 जुलाई 1890 को पुणे में। पिता शकर पाडुरग पण्डित। बचपन में ही पितृवियोग। काका के यहां विद्यार्जन। पति बंबई के डा. राघवेन्द्र राव। अनेक भाषाओं तथा क्रीडाओं में नैपुण्य। अग्रेजी और मराठी में लेखन। सन 1930 से, म. गांधी के सत्याग्रह

आन्दोलन के प्रभाव से संस्कृत में भी लेखन प्रारंभ। रचनाएं-सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता। (राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाएं इनमें वर्णित है। विचित्रपरिषद्यात्रा, शंकरजीवनाख्यानीयम्, रामदासचरितम्, तुकारामचरितम्, मीरालहरी, श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, कथामुक्तावली, कटुविपाक (नाटक), महास्मशानम् (नाटक), कथापंचकम्, ग्रामज्योति (दोनों पद्यात्मक कथा) और मायाजालम् (आख्यायिका)।

स्वय क्षमाजी द्वारा किये गए अंग्रेजी अनुवादसहित प्रकाशित 5 काव्य हैं : रामदासचरितम्, तुकारामचरितम्, ज्ञानेश्वरचरितम्, मीरालहरी और शंकरजीवनाख्यानम् (इसमे इनके पिताजी का चरित्र चित्रित है)।

क्षारपाणि - आत्रेय पुनर्वसु के छठवें शिष्य तथा आयुर्वेदाचार्य। इन्होंने कायचिकित्सा पर ग्रंथ लिखा जो "क्षारपाणितंत्र" के नाम से विख्यात है। यह आज उपलब्ध नहीं किन्तु अन्य ग्रंथकारों ने इसके श्लोक उदधृत किये हैं।

क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय (डॉ.) - जन्म सन 1896 में, जोडासांको (कलकत्ता) में। शास्त्री तथा विद्यावाचस्पति। सन् 1949 में डी.लिट्.। आशुतोष महाविद्यालय में दो तीन वर्षों तक अध्यापन। फिर 35 वर्षों तक कलकत्ता वि वि में तुलनामूलक भाषाशास्त्र विभाग में अध्यापन। वेद तथा व्याकरण के विशेषज्ञ। आप होमियोपेथी के ज्ञाता थे और रोगियों की नि.शुल्क चिकित्सा करते थे। पिता- शरच्चन्द्र। माता- गिरिबालादेवी। कृतियां "अन्धैरन्धस्य यष्टि. प्रदीयते (एकांकी) और षष्ठीतंत्र नामक गद्य उपन्यास। सुरभारती, मजूषा तथा कलकत्ता ओरिएटल जर्नल का सम्पादन। संस्कृत साहित्य परिषद् की पत्रिका का सात वर्षों तक सम्पादन। बगला तथा अंग्रेजी में अनेक अनुसन्धानात्मक ग्रथ लिखे हैं। इनके द्वारा सपादित पत्रिकाओं में "मंजूषा" का विशेष स्थान है। इनके अधिकांश निबंध इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए। व्याकरण शास्त्र की इनकी ज्ञानगरिमा, "मंजूषा" से ही प्रकट हुई। इनका जीवन वृत्तान्त "मंजूषा" के अंतिम अंक में प्रकाशित हुआ है। इनकी शैली व्यंगप्रधान थी। आपने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कथाओं-कविताओं के समान ही अन्य कवियों की रचनाओं के भी संस्कृत अनुवाद किये और उन्हें पत्र पत्रिकाओं में छपवाया।

क्षीरसागर वा. का. - ई. 20 वीं शती। "नाट्ये च दक्षा वयम्" नामक प्रहसन के प्रणेता।

क्षीरस्वामी - समय ई. 1080 से 1130 ई। पिता भट्ट ईश्वरस्वामी। संभवतः काश्मीरवासी। कठशाखा के अध्येता। क्षीरस्वामी ने पाणिनीय धातुपाठ के औदीच्य पाठ पर "क्षीरतरंगिणी" नामक वृत्तिग्रंथ लिखा। इसका रोमन लिपि में प्रथम प्रकाशन करने का श्रेय जर्मन पण्डित लिबिश को है। दूसरा सुधारित संस्करण पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने देवनागरी में प्रकाशित किया। क्षीरस्वामी ने "क्षीरतरंगिणी" के अतिरिक्त पांच ग्रंथ और लिखे। वे हैं .- 1 अमरकोशोद्घाटनम्, 2 निपाताव्ययोपसर्गवृत्ति, 3. गणवृत्ति, 4 अमृततरंगिणी (अथवा कर्मयोगामृततरंगिणी) और 5. निघण्टुटीका। वेदभाष्यकार देवयज्वाचार्य ने प्रमाणरूप में अनेक बार क्षीरस्वामी का निर्देश किया है। ये तत्रशास्त्र के ज्ञाता तथा आयुर्वेद के पंडित थे। वनौषधिवर्ग पर इन्होंने टीका लिखी है।

क्षुर - ई 12 वीं शती। सायणाचार्य अपने तैत्तिरीय भाष्य में भट्ट भास्कराचार्य के साथ आचार्य क्षुर का पाच बार उल्लेख करते हैं। क्षुर-भाष्य अनुपलब्ध है।

क्षेमकीर्ति - ई 14 वीं शती। गुरुनाम-विजयचन्द्र सूरि जो जगच्चन्द्र सूरि के शिष्य थे। गुरुभ्राता वज्रसेन और पद्मचन्द्र। समय ई 13 वीं शती। ग्रथ-बृहत्कल्पवृत्ति (मलयगिरिकृत बृहत्कल्प की अपूर्ण वृत्ति को पूर्ण करने का श्रेय)। पीठिकाभाष्य की 606 गाथाओं से आगे के संपूर्ण भाष्य (लघुभाष्य) की वृत्ति के कर्ता।

क्षेमीश्वर - समय 10 वीं शती। "नैषधानद" व "चण्डकौशिक" नामक दो नाटकों के प्रणेता। राजशेखर के समसामयिक कवि। कन्नोजनरेश महीपाल के आश्रय में रह कर "चण्डकौशिक" नाटक की रचना की। इनके नाटकों की साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है।

क्षेमेन्द्र - सिधु के पौत्र, प्रकाशेन्द्र के पुत्र, "दशावतारचरित" नामक महाकाव्य के प्रणेता। इन्होंने काव्यशास्त्र एव काव्य-सृजन दोनों ही क्षेत्रों में समान अधिकार से अपनी लेखनी चलाई है। ये काश्मीर के निवासी थे। लोगों को चरित्रवान बनाने के हेतु इन्होंने रामायण व महाभारत का सक्षिप्त वर्णन अपनी "रामायणमजरी" व "महाभारतमंजरी" में किया है। इनका रचनाकाल 1037 ई है। इन्होने राजा शालिवाहन (हाल) के सभापण्डित गुणाढ्य के पैशाची भाषा मे लिखित अलौकिक ग्रथ का "बृहत्कथामजरी" के नाम से सस्कृत पद्य में अनुवाद किया है। इनकी दूसरी कथा कृति "बोधिसत्त्वावदानकल्पलता" है। (1052 ई)। इसमें भगवान् बुद्ध के प्राचीन जीवन संबद्ध कथाएं पद्य में वर्णित हैं। "दशावतार-चरित" में इन्होंने स्वयं को "व्यासदास" लिखा है। (10-14)। प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त इनके गुरु थे जिनका उल्लेख "बृहत्कथामंजरी" में है (19-37) ये काश्मीर के दो नृपों- अनत (1018 से 1063 ई) व कलश (1063 से 1089 ई)- के शासनकाल में विद्यमान थे। अत इनका समय 11 वीं शताब्दी है। इन्होंने "औचित्यविचारचर्चा", "कविकंठाभरण" व "तिलक" नामक 3 काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं। इन्हें साहित्यशास्त्र के औचित्यसंप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इनके नाम पर 33 ग्रंथ प्रचलित हैं जिनमें 18 प्रकाशित व 15 अप्रकाशित हैं। प्रकाशित ग्रथों के नाम इस प्रकार हैं रामायणमंजरी, महाभारतमंजरी, बृहत्कथामजरी, दशावतारचरित (1066 ई.),

बौद्धावदान-कल्पलता, चारुचर्याशतक, देशोपदेश, दर्प दलन, चतुर्वर्गसंग्रह, कलाविलासनर्ममाला, कविकठाभरण, औचित्यविचारचर्चा, सुवृत्ततिलक, लोकप्रकाशककोष, नीतिकल्पतरु और व्यासाष्टक। अप्रकाशित रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं - नृपाली (इसका निर्देश राजतरगिणी व कठाभरण में है), शशिवश (महाकाव्य), पद्यकादबरी, चित्रभारत नाटक, लावण्यमजरी, कनकजानकी, मुक्तावली, अमृततरग, (महाकाव्य), पवन-पचाशिका, विनयवल्ली, मुनिमतमीमासा, नीतिलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला और कविकर्णिका। क्षेमेन्द्र की 3 सदिग्ध रचनाए भी है हस्तिप्रकाश, स्पदनिर्णय और स्पदसदोह।

अपनी उक्त 33 कृतियों में इन्होंने अनेकानेक विषयों का विवेचन किया है। व्यग व हास्योत्पादक रचना के तो ये सस्कृत के यशस्वी प्रयोक्ता हैं। "औचित्यविचारचर्चा" में औचित्य ही काव्य का प्राण है यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इसका एक श्लोक इस प्रकार है

उचित प्राहुराचार्य. सदृश किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते।।

अर्थात् जो जिसके अनुरूप है वही उचित है, ऐसा आचार्य का कथन है। इस उचित का जो भाव है वही औचित्य कहलाता है।

अपने दीक्षागुरु भागवताचार्य सोमपाद की शिक्षा के कारण शैवमण्डल मे परिवृत्त होने पर भी क्षेमेन्द्र परम भागवत थे।

खंडदेव मिश्र - मीमासा दर्शन के भाट्टमत के अनुयायी। जन्म काशी मे। पिता-रुद्रदेव। निधन काल-विक्रम सवत् 1722। रसगगाधरकार पडित जगन्नाथ के पिता पेरुभट्ट के गुरु। इन्होंने मीमासा दर्शन के भाट्ट-मत के इतिहास मे "नव्यमत" की स्थापना कर, नवयुग का शुभारभ किया। जीवन के अतिम दिनो मे इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया था। सन्यासी होने पर इनका नाम "श्रीधरेन्द्र यतीन्द्र" हुआ था। इन्होंने 3 उच्चस्तरीय ग्रथो की रचना की है व है मीमासाकौस्तुभ (भाट्टकौस्तुभ), भाट्टदीपिका व भाट्टरहस्य। भाट्टकौस्तुभ, मीमासा सूत्रों पर रचित विशद टीका ग्रथ है। भाट्टदीपिका इनका सर्वोत्तम ग्रथ है। इस पर 3 टीकाए प्राप्त होती हैं। इस प्रकार आप मीमासादर्शन के प्रौढ लेखक है।

खरनाद - आयुर्वेद के एक प्राचीन आचार्य। उनका गोत्र भरद्वाज था। पाणिनीय गणपाठ तथा तदुत्तरकालीन चाद्रव्याकरण मे इनका उल्लेख है। वैद्यकशास्त्र पर इनकी सहिता, चरक के टीकाकार भट्ट हरिश्चन्द्र के पूर्वकाल में रची गयी। अनेक टीकाग्रथों मे इस सहिता के वचन उद्धृत किये गये है।

खरवण्डीकर दे. खं. (डॉ) - ई 20 वी शती। अहमदनगर निवासी। कृतिया सुवचनसन्दोह (गीत सकलन) तथा च्यवनभार्गवीय नाटिका।

खांडेकर राघव पण्डित - खानदेश (महाराष्ट्र) के निवासी। रचनाए-खेटकृति, पचागार्क और पद्धति चन्द्रिका। ये तीनों ग्रथ ज्योतिषविषयक है।

खासनीस, अनन्त विष्णु - इन्होंने मूल भावार्थदीपिका (भगवद्गीता की श्रेष्ठ मराठी टीका ज्ञानेश्वरी) का सस्कृत में अनुवाद किया। इसके 6-6 अध्यायों के दो खण्ड, "गीर्वाणज्ञानेश्वरी" के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। श्री खासनीस जत सस्थान (महाराष्ट्र) के न्यायाधीश थे।

खिस्ते, नारायणशास्त्री (म. म.) - जन्म काशी में 1892 ई मे। पिता भैरवपन्त। बचपन में ही शास्त्राध्ययन। 18 वर्ष की आयु मे ही दक्षाध्वरध्वसम (खण्डकाव्य) का लेखन जो "साहित्यसरोवर" (हिन्दी मासिक) में क्रमश प्रकाशित हुआ। सरस्वती भवन ग्रथालय काशी के अधिकारी। 'गवर्नमेंट सस्कृत सीरीज माला" मे 20 ग्रथ प्रकाशित किये। पदभार ग्रहण के समय ग्रथालय मे 13,999 ग्रथ थे, इनकी व्यवहार चतुरता तथा दीर्घ परिश्रम से वह सख्या 60,999 तक पहुची। इनके शिष्य वर्ग में अमेरिकन डा नार्मन ब्राउन, डॉ फ्रेंकलिन एजरटन, डॉ पोलमेन तथा कुछ जर्मन तथा अग्रेज सस्कृत पण्डित भी थे। शासकीय सस्कृत महाविद्यालय (काशी) में अनेक वर्षो तक अध्यापन-कार्य किया। रचनाए-दक्षाध्वरध्वसम्, विद्वच्चरित्पचकम् (चम्पूकाव्य), अभिज्ञान शाकुन्तलम् की लक्ष्मीटीका, स्वप्नवासवदत्तम् की टीका और दरिद्राणा हृदयम् तथा दिव्यदृष्टि नामक दो उपन्यास। सन् 1944 में आप "अमरभारती" नामक पत्रिका के सपादक बने। इस पत्रिका म आपकी अनेक रचनाए प्रकाशित हुई। म म गगाधर शास्त्री आपके गुरु थे।

खेता - समय ई 15-16 वीं शती। रचना सम्यक्त्वकौमुदी। 3999 श्लोक। आध्यात्मिक ग्रथ। यह ग्रथ जहागीर बादशाह के राज्यकाल मे लिखा गया

खोत, स्कन्द शंकर - ई 20 वीं शती। नागपुर निवासी। कबड्डी की क्रीडा मे अत्यत निपुण। वाई की प्राज्ञ पाठशाला मे सस्कृत का अध्ययन। कृतिया-माल्याभविष्यम्, हा हन्त शारदे, लालावैद्य, ध्रुवावतार और अरघट्टघट। ये सभी छात्रोपयोगी लघु नाटिकाए हैं और उत्सवों के अवसर पर नागपुर तथा मुबई मे मचित हो चुकी हैं। नागपुर में कृषि विभाग से सेवानिवृत्त हुए।

गंगादास (गंगदास) - ई 16 वीं शती। पिता- गोपालदास। व्यवसाय से वैद्य। बगाल के निवासी। कृतिया छन्दोमजरी, कविशिक्षा, अच्युतचरित, दिनेशचरित और छन्दोगोविन्द।

गगादास - "वृत्तिमुक्तावली" के कर्ता। "छन्दोमजरी" कार गगादास के भिन्न।

गंगादेवी - ई 14 वीं शती। "मधुराविजय" (या "वीरकपराय चरित") नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचयित्री। विजयनगर के राजा कपण्णा की महिषी एव महाराज बुक्क की पुत्रवधू। ई स 1361 व 1371 मे कंपण्णा ने मदुरई पर आक्रमण

किया था। तब रानी गंगादेवी अपने पति के साथ गई थी। इन्होंने अपने पराक्रमी पति की विजय यात्राओं का वर्णन उक्त महाकाव्य में किया है। यह काव्य अधूरा है और 8 सर्गों तक ही प्राप्त होता है।

गंगाधर- इस नाम के चार लेखक हुए-

(1) बिल्हण के "विक्रमांकदेवचरित" के अनुसार, ये कर्ण के दरबार में कवि थे। इनके अनेक श्लोक श्रीधर कवि ने अपने "सदुक्तिकर्णामृत" में उद्धृत किये हैं।

(2) माध्यंदिन शाखा के एक स्मार्त पंडित। इन्होंने कात्यायनसूत्र पर टीका तथा "आधानपद्धति" आदि ग्रंथ लिखे हैं।

(3) 15 वीं शताब्दी के एक ज्योतिषी, जो श्रीशैल के पश्चिम में संगेर नामक ग्राम में रहते थे। "चांद्रमान" नामक तांत्रिक ग्रंथ के लेखक।

(4) मुहूर्तमार्तंडकार नारायण के पुत्र। गोत्र-कौशिक, शाखा-वाजसनेयी। निवास-घृष्णेश्वर (महाराष्ट्र) के उत्तर में टापर नामक ग्राम। आपने "ग्रहलाघव" पर "मनोरमा" नामक टीका लिखी है।

(5) वृत्तद्युमणिकार

गंगाधर- तजावर के राजा व्यकोजी के अमात्य। रचना-भोसल-वशावलि। राजपुत्र शाहजी की प्रशस्ति।

गंगाधर कविराज- समय- सन् 1798-1885। मुर्शिदाबाद (बंगाल) के निवासी। व्यवसाय-वैद्यक। कृतिया :- दुर्गवध (काव्य), लोकालोकपुरुषीय (काव्य), हर्षोदय (चित्रकाव्य) और छन्दोनुशासन। (व्याकरण विषयक) :- धातुपाठ, गणपाठ (मुग्धबोध), शब्द-व्युत्पत्तिसग्रह, पाणिनीय अष्टाध्यायी की वृत्ति और कात्यायन-वार्तिक-व्याख्या। (टीकाए) - अमरुशतक-टीका, पदांकदूत-विवृति और कौमारव्याकरण टीका। (काव्यशास्त्रीय) - प्राच्यप्रभा (अग्निपुराण पर आधारित अलकार-विषयक ग्रथ), छन्द.पाठ व छन्द सार। (नाटिका) - तारावती- स्वयवर। (वैद्यक विषयक) - जल्पकल्पतरु, पंचनिदानव्याख्या, नाडीपरीक्षा, राजवल्लभकृत "द्रव्यगुण" की व्याख्या, आयुर्वेद-संग्रह, आयुर्वेद-परिभाषा, भैषज्य-रसायन और मृत्युंजय-संहिता।

गंगाधरभट्ट- वल्लभ-संप्रदाय के मूर्धन्य विद्वान। भागवत की महापुराण के पक्ष में लघु-कलेवर-ग्रंथकारों में से एक। रचना का नाम- "दुर्जन-मुख-चपेटिका"। इनकी "चपेटिका" पर पंडित कन्हैयालाल द्वारा "प्रहस्तिका" नामक विस्तृत व्याख्या लिखी गई जो प्रकाशित भी है।

गंगाधर शास्त्री- वाराणसी-निवासी। समय- ई.19 वीं शती। कृतियां हैं- "हंसाष्टकम्" तथा "अलि-विलास-संल्लापम्" ये दोनों दार्शनिक स्तोत्र हैं।

गंगाधरेन्द्र-सरस्वती- रचनाएं- स्वाराज्यसिद्धिः (मुद्रित), वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमंजरी और सिद्धान्तचन्द्रिकोदय।

गंगानन्द कवीन्द्र- समय ई. 16 वीं शती का आरंभ। मैथिल पडित। अपने काव्यों की रचना इन्होंने बीकानेर में रह कर की थी। कवीन्द्र की रचनाएं हैं- 1. वर्णभूषणम् (काव्य-शास्त्र का ग्रंथ), 2. काव्यडाकिनी (इसमें काव्य दोषों का विवेचन किया गया है), 3. भृंगदूतम् (दूतकाव्य) एवं 4 मन्दारमंजरी (रूपक)।

गंगाप्रसाद उपाध्याय- इनका जन्म उत्तर प्रदेश के नरदइ ग्राम में दि. 6 सितंबर 1881 ई. को हुआ था। इन्होंने प्रयाग से अंग्रेजी और दर्शन में एम. ए. किया था। आप कई विषयों व भाषाओं के पडित तथा अंग्रेजी व हिन्दी में अनेक ग्रथो के लेखक थे। इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं- फिलॉसाफी ऑफ दयानंद, ऐतरेय व शतपथ ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद, मीमासा-सूत्र व शाबर-भाष्य का हिन्दी अनुवाद आदि। आप आर्य समाजी थे। आपका आर्योदय नामक संस्कृत काव्य भारतीय संस्कृति का काव्यात्मक इतिहास माना जाता है।

गंगाराम दास- बगाली। "शरीर-निश्चयाधिकार" नामक आयुर्वेद विषयक ग्रंथ के लेखक।

गंगासहाय (पं)- समय- 1811-1889 ई.। बूदी के महाराव रामसिंह के समय में सेखावाटी से आये हुए गगासहाय दर्शन व प्राच्य विद्या के विद्वान थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमे से प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं : परमेश्वर-शतक (काव्य) व न्याय-प्रदीप।

गंगासहाय- भागवत की आधुनिक टीकाओं में मान्यताप्राप्त टीका "अन्वितार्थ-प्रकाशिका" के प्रणेता। इन्होंने टीका के उपोद्घात में अपना पूरा परिचय निबद्ध किया है। तदनुसार ये पाटण नामक स्थान के निवासी थे। यह स्थान, पांडुवंशीय तौमर अनगपाल के वंशज मुकुंदसिंह के शासन में था। माता-लक्ष्मी, जो बचपन में ही चल बसीं। पिता-पडित रामधन। इन्हींसे आपने सकल शास्त्रो एवं भागवत का अध्ययन किया। अनेक राजदरबारो से इनका समय-समय पर संबंध रहा। बूंदी-नरेश रामसिंह के यहा आप अनेक वर्षों तर अमात्य-पद पर कार्यरत रहे, वृद्धावस्था प्राप्त होते ही इन्होंने अमात्य-पद छोड दिया और भागवत के अनुशीलन में संलग्न हुए। इन्होंने प्राचीन टीकाओं का अध्ययन किया किंतु अन्वयमुखेन सरलार्थ-दीपिका व्याख्या न मिलने पर, इन्होंने स्वान्त सुखाय "अन्वितार्थ प्रकाशिका" का प्रणयन किया। उस समय (1955 विक्रमी- 1898 ई.) आपकी आयु 60 वर्ष से अधिक थी। भागवत में प्रयुक्त प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी प्रकार के छदों का लक्षणपूर्वक निर्देश संभवत: गगासहाय ने ही पहली बार किया है।

गंगेश उपाध्याय (गंगेरी उपाध्याय)- समय ई. 13 वीं शती। प्रसिद्ध मैथिल नैयायिक आचार्य गंगेश उपाध्याय, न्याय-दर्शन के अंतर्गत नव्यन्याय नामक शाखा के प्रवर्तक हैं। इन्होंने "तत्त्व-चिंतामणि" नामक युगप्रवर्तक ग्रंथ की रचना कर

न्याय-दर्शन में युगांतर का आरंभ किया था और उसकी धारा ही पलट दी थी। "तत्व-चिंतामणी" का प्रणयन 1200 ई. के आसपास इन्होंने किया। प्रस्तुत ग्रंथ की पृष्ठसंख्या 300 है, जब कि उस पर लिखे गये टीकाग्रंथों की पृष्ठ-संख्या 10 लाख से भी अधिक है। गंगेश के पुत्र वर्धमान उपाध्याय भी अपने पिता के समान बहुत बडे नैयायिक थे। इन्होंने भी "तत्व-चिंतामणि" पर "प्रकाश" नामक टीका लिखी है। गौतम के केवल एक सूत्र- "प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दा· प्रमाणानि" पर रचित "तत्व-चिंतामणि"- ग्रथ में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान व शब्द-इन 4 प्रमाणों का विवेचन गगेशजी ने किया है। गगेशजी की लेखन-शैली अत्यत प्रौढ व शास्त्र-शुद्ध होने के कारण ज्योतिष को छोड प्राय· सभी उत्तरकालीन शास्त्रीय ग्रथो पर उनकी शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

गजपति वीरश्री नारायणदेव- पिता- पद्मनाभ। पार्ला कीमेडी (उडीसा) में, ई 1700 में राज्याधिपति। पुरुषोत्तम के पास सगीत-शिक्षा। रचना- "सगीत-नारायण" जिसमें अपनी अन्य रचना "अलंकारचद्र" का उल्लेख इन्होंने किया है। अनेक कवियों तथा उनकी रचनाओ का इसमें उल्लेख है।

गणधरकीर्ति- गुजरात-निवासी। पुष्पदन्त के प्रशिष्य और कुवलयचन्द्र के शिष्य। रचना- सोमदेवाचार्य के ध्यानविधि पर "अध्यात्मतरगणी" नामक विस्तृत टीका। वाटग्राम में गुजरात के चालुक्यवंशी राजा जयसिह (या सिद्धराज जयसिह) के काल में यह टीका लिखी गई। समय ई 12 वीं शती।

गणनाथ सेन- ई 20 वीं शती। बगाली विद्वान्। कृतिया- छन्दोविवेक, प्रत्यक्षशारीर व सिद्धान्त-निदान।

गणपतिमुनि (वासिष्ठ)- ई स. 1878-1936। जन्म-आन्ध्र के विशाखापट्टणम् जिले के कवलरायी ग्राम में, अय्यल सोमयाजी के परिवार में। पिता-नरसिंहशास्त्री। माता-नरसाबा। आयु के 6 वर्ष तक ये रोगग्रस्त थे और इन्हें वाणी भी प्राप्त नहीं हुई थी किन्तु बाद की आयु में अल्प काल में ही इन्होंने सस्कृत गणित, ज्योतिष, पचमहाकाव्य आदि का अध्ययन पूर्ण कर लिया। इसी अवधि मे सहस्रावधि संस्कृत श्लोकों की रचना की। अपनी माता की जन्मपत्रिका देखकर मृत्यु दिन का भविष्य कथन किया, जो सही निकला। छात्रावस्था में ही इनका विवाह हो गया किन्तु गृहस्थी में उनका मन नहीं रमा। 14 वर्षों की अवस्था में धार्तराष्ट्रसभव नामक खंडकाव्य की रचना की। 18 वर्ष की आयु में पेरमा नामक अग्रहार में जाकर तप करने लगे। बाद में बंगाल के नवद्वीप में एक साहित्य-परिषद् के अवसर पर शीघ्रकवित्व की प्रवीणता से "काव्य-कठ" की उपाधि प्राप्त की। इनके कुछ प्रमुख ग्रथ .- उमासहस्रम्, इन्द्राणी-सप्तशती, शिवशतक, भृंगदूत, विश्वप्रमाण-चर्चा, विवाहधर्मसूत्रम्, ईशोपनिषद्भाष्यम् तथा आयुर्वेद व ज्योतिष पर 5-6 ग्रंथों के अलावा महाभारत-विमर्श: नामक प्रकरण-ग्रथ। रमण महर्षि और योगी अरविंद के शिष्य तथा मित्र।

गणपतिशास्त्री (म.म.)- इन्होंने अपने "श्रीमूलचरितम्" काव्य में त्रावणकोर-राजवंश का चरित्र वर्णन किया है। अन्य काव्य "अर्थचिन्तामणिमाला" में त्रावणकोर के राजा विशाखराम का स्तवन है। आप त्रिवेन्द्रम में दीर्घकाल तक संस्कृताध्यापक रहे। तदनन्तर "क्यूरेटर" के पद पर नियुक्ति हुई। इस कार्यकाल में "भासनाटक-चक्र" प्रकाशित कर बहुत ख्याति प्राप्त की।

गणपतिशास्त्री- ई. 19-20 वीं शती। तजौर जिले के निवासी। रचनाए-कटाक्षशतकम्, ध्रुवचरितम्, रसिकभूषणम्, गुरुराजसप्तति. तटाटाका-परिणयम् और अन्यापदेशशतकम्।

गणेश दैवज्ञ- ज्योतिष-शास्त्र के एक श्रेष्ठ महाराष्ट्रीय आचार्य। पिता-केशव। माता-लक्ष्मी। सन् 1517 ई. में जन्म। इन्होंने 13 वर्ष की आयु में ही "ग्रह-लाघव" नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की थी। इनके द्वारा प्रणीत अन्य ग्रथ हैं- लघुतिथि-चितामणि, बृहत्तिथि- चिंतामणि, सिद्धान्त-शिरामणि-टीका, लीलावती-टीका, विवाह-वृदावन-टीका, मुहूर्त-तत्त्व-टीका, श्राद्धादि-निर्णय, छदोर्णव-टीका, सुधीर-रंजनी-यंत्र, कृष्ण-जन्माष्टमी-निर्णय और होलिका-निर्णय।

गणेश दैवज्ञ कथा:- यह प्रसिद्ध ज्योतिषी "ग्रहलाघव" के लेखक हैं। इनके पिता-केशव जाने माने ज्योतिषशास्त्र विशारद थे। एक बार केशव द्वारा बताया गया समय गलत निकला तब सब ने उनका उपहास किया। इस से अपमानित होकर वह गणेश मदिर में गए तथा वहा उन्होंने तपश्चर्या आरम्भ की। गणेश ने प्रसन्न होकर उन्हें दृष्टात दिया कि वृद्धावस्था के कारण वह ग्रहशोध तथा गणित ठीक से कर न पाएगें उस समय गणेश स्वयं उनके पुत्ररूप में जन्म ग्रहण करनेका आश्वासन दिया। यही पुत्र आगे चलकर गणेश दैवज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुए। ग्रहवेध तथा गणित दोनों कार्यों में वह प्रवीण थे। इनके पैर में आंख निकलने से वह समाज में आदर के भाजन हुए।

गणेशराम शर्मा (पं)- जन्म 27 मार्च, 1908 ई.। जन्मस्थान डूगरपूर, किन्तु इनका कार्यक्षेत्र झालावाड रहा है, अत· इनकी गणना पूर्वी राजस्थान के कवियों में होती है। पिता-श्री केदारलाल शर्मा। भारतधर्ममहामण्डल द्वारा आपको "विद्याभूषण" की उपाधि से सम्मानित किया गया था। "ज्योतिषोपाध्याय', "साहित्य-रत्न" आदि उपाधिया भी आपको प्राप्त थीं। आप झालावाड के राजेन्द्र कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक रहे हैं। साहित्य सम्मेलन दिल्ली द्वारा आपको स्वर्णपदक भेंट किया गया। आपकी प्रमुख कृतियां है

1 आशी·कुसुमांजली, 2 श्रीलाक्ष्मणिप्रशस्तिः, 3 श्रीमोहनाभ्युदय (गाधीजी पर), 4. महिषमर्दिनी- स्तुति·, 5. देवीस्तुति., 6 सस्कृतकथाकुंज, 7 लक्ष्मणाभ्युदय (इसमें डूंगरपुर के राजा लक्ष्मणसिंह का चरित्र ग्रंथित है।

संस्कृत गद्य में भी आप समयोपयोगी ग्रन्थ लिखते रहे है। श्रीमहारावल-रजत-जयन्तीग्रंथ का आपने संपादन किया। भारती, मधुरवाणी, संस्कृतरत्नाकार, संस्कृतसाकेत, संस्कृतचन्द्रिका, दिव्यज्योतिः, सरस्वती, सौरभ, भारतवाणी इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख, कविता, कथा प्रकाशित हुए हैं।

गदाधर चक्रवर्ती भट्टाचार्य- समय- ई 17 वीं शती। पिता-प्रसिद्ध नैयायिक। गुरु-हरिराम तर्कालंकार। नवद्वीप (बंगाल) के प्रसिद्ध नव्य नैयायिकों में इनका स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। समय-17 वीं शताब्दी। इन्होंने रघुनाथ शिरोमणि के सुप्रसिद्ध ग्रंथ "दीधिति" पर विशद व्याख्या-ग्रंथ की रचना की है जो इनके नाम पर "गादाधरी" की अभिधा से विख्यात है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 52 बतलायी जाती है। इन्होंने उदयनाचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ "आत्मतत्त्व-विवेक" व गंगेश उपाध्याय के "तत्त्व-चितामणि" पर टीकाए लिखी हैं जो "मूलगादाधरी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। "तत्त्व-चिंतामणि" के कुछ ही भागो पर टीका लिखी गई हैं। "शक्तिवाद" व "व्युत्पत्तिवाद", इनके न्याय-विषयक अत्यत महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रथ हैं

इनके कुछ अन्य ग्रंथों के नाम हैं- मुक्तावली टीका, रत्नकोषवादरहस्य, आख्यातवाद, कारकवाद, शब्द-प्रामाण्यवाद रहस्य, बुद्धिवाद, युक्तिवाद, विधिवाद और विषयतावाद इ।

गागाभट्ट काशीकर- ई 17 वी शताब्दी के महान् मीमांसक व धर्मशास्त्री। पैठण-निवासी दिनकर भट्ट के पुत्र। ये बाद में काशी गये। इनका वास्तविक नाम विश्वेश्वर था किन्तु पिताजी प्यार से गागा कहा करते। वही नाम रूढ हो गया। प्रमुख ग्रथ- 1 मीमासा-कुसुमाजलि (पूर्वमीमासावृत्ति), 2. भाट्टचितामणि। 3 राकागम (जयदेव के चद्रालोक पर टीका), 4 दिनकरोद्योत- (धर्मशास्त्र पर लिखे इस ग्रथ का प्रारंभ पिता-दिनकर भट्ट ने किया था), निरूढपशुबधप्रयोग, 5 पिंडपितृयज्ञप्रयोग, 6 सुज्ञान-दुर्गोदय (सोलह सस्कारो का विवेचन), 7 शिवार्कोदय (शिवाजी के आदेश पर पूर्वमीमासा पर लिखा गया), 8. समयनय (यह ग्रथ संभाजी राजा के लिये लिखा गया), 9. आपस्तबपद्धति, 10. अशौचदीपिका, 11 तुलादानप्रयोग, 12 प्रयोगसार और शिवराज्याभिषेकप्रयोग।

गागाभट्ट ने शिवाजी महाराज का व्रतबध करा, वैदिक पद्धति से उनका राज्याभिषेक किया। शिवाजी सिसोदिया-वंश के क्षत्रिय थे, यह अन्वेषण उन्होंने किया। ई. 16 व 17 वीं शताब्दी के मुस्लिम बादशाहो के दरबारों में भी उनके परिवार को सम्मान प्राप्त था। राज्याभिषेक के बाद शिवाजी ने विपुल धन-सम्पदा देकर उनका गौरव किया था।

गागाभट्ट को शिव-राज्याभिषेक-विधि के हेतु आमंत्रित किया जाने पर उन्होंने "शिवराज्याभिषेक-प्रयोग" की रचना की थी जो पुणे के इतिहास-अन्वेषक वा सी. बेन्द्रे द्वारा 42 पृष्ठों की प्रस्तुति सहित प्रकाशित है। मूल हस्तलिखित प्रति बीकानेर राज्य के संग्रह से प्राप्त हुई थी। डॉ. श्री भा वर्णेकर ने इसका मराठी अनुवाद किया, जो मुंबई विश्वविद्यालय के "कॉरोनेशन व्हॉल्यूम" में मूल ग्रंथसहित 1974 में प्रकाशिर हुआ।

गाडगीळ वसंत अनंत- पुणे निवासी। शारदा नामक पाक्षिक पत्रिका के संपादक एवं शारदागौरव ग्रंथमाला के संचालक। इस ग्रंथमाला में 50 से अधिक संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन श्री गाडगील ने किया है।

गाथी- ऋग्वेद के 19 से 22 वें सूक्तों के द्रष्टा। इनमें से दो सूक्तों में अश्विन की स्तुति की गई है। सर्वानुक्रमणि के अनुसार गाथी कुशिक के पुत्र और विश्वामित्र के पिता थे।

गार्ग्य (गार्ग्याचार्य)- पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरण। पं युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय ई पू. 4 थी शताब्दी है। पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में इनका उल्लेख 3 स्थानों पर है- (1) 7-3-99। (2) 8-3-20। (3) 8-4-67।

इनके मतो के उद्धरण "ऋक्प्रातिशाख्य" व "वाजसनेय-प्रातिशाख्य" में प्राप्त होते हैं। इससे इनके व्याकरणविषयक ग्रंथ की प्रौढता का परिचय प्राप्त होता है। इनका नाम गर्ग था और ये प्रसिद्ध वैयाकरण भारद्वाज के पुत्र थे। यास्ककृत "निरुक्त" में भी एक गार्ग्य नामक व्यक्ति का उल्लेख है तथा "सामवेद" के पदपाठ को भी गार्ग्य-रचित कहा गया है। मीमांसाकजी के अनुसार "निरुक्त" में उद्धृत मत वाले गार्ग्य व वैयाकरण गार्ग्य अभिन्न हैं- "तत्र नामानि सर्वाण्याख्यातजानीति शाकटायनो निरुक्तसमयश्च न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके"। (निरुक्त 1-12)।

प्राचीन वाङ्मय में गार्ग्य रचित कई ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे हैं - निरुक्त, सामवेद का पदपाठ, शालाक्य-तंत्र, भूवर्णन, तंत्रशास्त्र, लोकायतशास्त्र, देवर्षिचरित और सामतत्र। इनमें से सभी ग्रथ वैयाकरण गार्ग्य के ही हैं या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है।

गार्ग्य आंगिरस-कुल के गोत्रकार व मंत्रकार ऋषि हैं। ये कुल मूलत क्षत्रिय थे। बाद में इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। गार्ग्य के सम्बन्ध में धर्म-शास्त्रकार होने का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि इनका सम्पूर्ण ग्रन्थ कहीं भी उपलब्ध नहीं है तथापि अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, मिताक्षरा आदि ग्रंथों में इनके ग्रन्थ के अनेक उध्दरण लिये गये हैं।

गालव- एक प्राक्पाणिनि वैयाकरण। पं युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय ई. पू 4 थी शताब्दी है। आचार्य गालव का पाणिनि न 4 स्थानों पर उल्लेख किया है- (अष्टाध्यायी 6-3-61, 8-4-67, 7-1-74 और 7-3-99)। अन्यत्र भी इनकी चर्चा की गई है, जैसे- "महाभारत" के शांतिपर्व (342-103,104) में गालव, "क्रमपाठ" व "शिक्षापाठ" के प्रवक्ता के रूप में वर्णित हैं। इन्होंने व्याकरण

के अतिरिक्त अन्यान्य ग्रंथों की भी रचना की थी। दैवतग्रंथ, शालाक्यतंत्र, कामसूत्र, भूवर्णन आदि। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण के अनुसार गालव धन्वंतरि के शिष्य थे। इनके पिता का नाम गल्नु या गलव माना जाता है। भगवद्दत्तजी के अनुसार ये शाकल्य के शिष्य थे।

यास्कप्रणीत "निरुक्त" में उल्लिखित निरुक्तकारो में गालव एकतम हैं। गालवाचार्य का निरुक्त में एकबार और बृहद्देवता में चार बार उल्लेख मिलता है। गालव के नाम से एक ब्राह्मण-ग्रंथ" भी प्रसिद्ध है। "महाभारत" के शान्तिपर्व में गालव नाम का जो उल्लेख है, उससे एक और निष्कर्ष समत हो सकता है कि उनका गोत्र बाभ्रव्य था।

गिरिधरलाल गोस्वामी- काशी में निवास। काशीवाले गोसाई और गिरिधरजी महाराज के नामों से प्रसिद्ध। सपूर्ण भागवत पर "बालप्रबोधिनी" नामक टीका के लेखक। वल्लभाचार्य की टीका "सुबोधिनी" की रचना अंशत होने से साप्रदायिक मतानुसार तदितर स्कधों का तात्पर्य अनिर्णित रह गया था। इसी अभाव की पूर्ति, गिरिधरलालजी ने "बालप्रबोधिनी" के प्रणयन द्वारा की।

इनका दूसरा ग्रथ है "शुद्धाद्वैतमार्तण्ड"। इसमें इनके जन्मकाल का उल्लेख 1847 सवत् (1780 ई) दिया गया है। इन्होंने सुबोधिनी का ही नहीं प्रत्युत प्रौढ दार्शनिक ग्रथो का भी अनुसधान एवं मनन किया था। पडित होने के अतिरिक्त ये बडे सिद्ध पुरुष थे। काशी का प्रख्यात गोपाल मंदिर, इनका साधना-स्थल था। इस मदिर के ये स्वामी थे।

कहते हैं कि गिरिधरलालजी के आशीर्वाद से श्रेष्ठ हिंदी साहित्यिक भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म हुआ था। अत उनके उपकृत होने के कारण भारतेन्दु के पिता अपनी कविताओ में अपना उपनाम "गिरिधर" रखते थे।

ये गोपेश्वरजी के शिष्य थे। इन्होंने आचार्य वल्लभ के "अणु-भाष्य" को अपनी पाडित्यपूर्ण टीका से मडित किया। ये व्याकरण के मर्मज्ञ विद्वान होने के कारण पाठ-भेद के प्रवीण समीक्षक थे। अत. इन्होंने अणुभाष्य के अनेक पाठो का विवेचन कर, उसका विशुद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया। इनका विख्यात ग्रथ "शुद्धाद्वैत-मार्तण्ड", शुद्धाद्वैत के सिद्धातो के प्रतिपादन में उपकारक है।

गिरिधारीलाल शर्मा तेलंग भट्ट (पं.)- जन्म- सन् 1895 ई.। आपका जन्म अलवर में हुआ था। पिता- रणछोडजी तेलंग। ये व्याकरण, साहित्य व वेदान्त के विद्वान हैं। आप "कविकिंकर" के नाम से लिखते हैं। सन् 1915 से 1935 तक ये अलवर व झालावाड के नरेशों के आश्रय में रहे। वृद्धावस्था के कारण अनेक रोगों से आक्रांत होकर झालावाड में निवास करने लगे। इनकी प्रकाशित रचनाए हैं- 1 ऋतुशतकम्, 2 अलवरवर्णनम्, 3. मुद्रामाहात्म्यम्, 4 वेदना-वेदनगीति, 5 सूक्तिमुक्तावलि, 6 शृगारलहरी और 7 "भारती", "सस्कृतरत्नाकार" आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाए।

गिरिधरलाल व्यास शास्त्री- जन्म- 2 अप्रैल 1894 ई. को उदयपूर (मेवाड़) में हुआ। पिता-गोवर्धन शर्मा। सस्कृत-साहित्य की सेवा के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा 100/- रु प्रतिमाह अनुदान प्राप्त। इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं- 1 अभिनव-काव्यप्रकाश (प्रथम व द्वितीय भाग), 2 काव्य-सुधाकर (चन्द्रालोकवृत्तिरूप), 3 स्वजीवनवृत्तम् (काव्यम्), 4. मेदपाटेतिहास (काव्यम्)।

सपादन- 1 वीरभूमि - सस्कृत-पद्य-रचना, 2. योगसूत्रम्, 3 परमार्थविचार, 4 चतुरचिन्तामणि· (भाग्यत्रयी), 5 महिम्नस्तोत्रम्, 6 चन्द्रशेखर·।

गीर्वाणेन्द्र दीक्षित- ई 17 वीं शती। नीलकण्ठ दीक्षित के तृतीय पुत्र। शिक्षा पिता से पायी। कृतिया- अन्यापदेश-शतक (काव्य) और शृगारकोश (भाण)।

गुणनन्दी- ई 10 वीं शती। जैनेन्द्र व्याकरण पर शब्दार्णव नामक व्याख्या आपने लिखी है। जैनेन्द्र धातुपाठ का संशोधन भी आपने किया है। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित जैनेन्द्र महावृत्ति के अन्त में गुणनन्दी द्वारा सशोधित धातुपाठ छपा है।

गुणभद्र (प्रथम)- जन्मस्थान- दक्षिण अर्काट जिले का तिरुमरुड्कुण्डम् नगर। सेनसघ के आचार्य। गुरु-जिनसेन द्वितीय। दादागुरु-वीरसेन। साधनाभूमि-कर्नाटक और महाराष्ट्र। स्थितिकाल-राष्ट्रकूट अकालवर्ष के समकालीन। ई नवमशती का अन्तिम भाग। रचनाए- आदिपुराण (जिनसेन द्वितीय द्वारा अधूरे छोडे आदिपुराण के 43 वें पर्व के चतुर्थ पद्य से समाप्ति पर्यन्त 1620 पद्य-) शक स 820, उत्तरपुराण (महापुराण का उत्तर भाग), आत्मानुशासन और जिनदत्तचरित काव्य।

गुणभद्र (द्वितीय)- ई 13 वीं शती। "उत्तर पुराण" के रचयिता गुणभद्र से भिन्न। माणिक्य सेन के प्रशिष्य और नेमिसेन के शिष्य। कवि ने बिलासपूर के जैन मदिर में रहकर लम्बकचुकवश के महामना साहू शुभचन्द्र के पुत्र बल्हण के आग्रह से धन्यकुमार-चरितकाव्य (सात सर्ग) की रचना की। यह रचना महोबे के चन्देल नरेश परमादि देव के शासन-काल में हुई।

गुणभूषण- समय- ई 14 वी शती। मूल सघ के विद्वान विनयचन्द्र के प्रशिष्य और त्रैलोक्यकीर्ति के शिष्य। स्याद्वाद-चूडामणि के नाम से ख्यातिप्राप्त। रचना गुणभूषण-श्रावकाचार (तीन उद्देश्य) यह ग्रथ वसुनन्दि- श्रावकाचार से प्रभावित है।

गुणविष्णु- ई 13 वीं शती। गुणविष्णु कृत छान्दोग्यमत्र-भाष्य,, सामवेद की कौथुम शाखा के मत्रो पर लिखा है। इनमें अधिकाश मत्र साममत्र ब्राह्मण के ही हैं और अन्य मन्त्र कुछ लुप्त साम मन्त्र पाठ से लिए हुए हो सकते हैं। गुणविष्णु

बंगाल अथवा मिथिला के निवासी होंगे। वे महाराज बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन के काल में राजपण्डित थे। सायणाचार्य ने गुणविष्णु आचार्य से सहायता ली ऐसा विद्वानों का तर्क है। गुणविष्णु आचार्य ने पारस्कर गृह्यसूत्र और मंत्र-ब्राह्मण पर भी भाष्य रचना की हैं।

गुणानन्द विद्यावागीश- 17 वीं शती। रचनाए- अनुमानदीधितिविवेक., आत्मतत्वविवेक-दीधिति-टीका, गुणविवृत्ति-विवेक, न्यायकुसुमाजलिविवेक, न्यायलीलावतीप्रकाश, दीधितिविवेक. और शब्दलोक-विवेक ।

गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य- जन्म-सन् 1882 में। स्मृति-पण्डित काशीराम (वाचस्पति) के पुत्र। कृतियां- श्रीराम (महाकाव्य) व माथुर (खण्डकाव्य)। नाभाग-चरित (नाटक), भामिनीविलास और मदालसा-कुवलयाश्व तथा वरूथिनीचपू।

ढाका और वाराणसी में सस्कृत के प्राध्यापक रहे।

गुरुराम- ई 16 वीं शती। उत्तर अर्काट जिले के निवासी। पिता-स्वयंभू दीक्षित। माता-राजनाथ की कन्या। रचनाएं- हरिश्चन्द्रचरित (चम्पू), रत्नेश्वर-प्रसादन (नाटक), सुभद्रा-धनजय (नाटक), मदन-गोपाल-विलास (भाण) और विभागरत्नमालिका।

गुलाबराव महाराज- समय 1881-1915 ई जन्म- अमरावती (विदर्भ) जिले के लोनीटाकली नामक ग्राम मे शकाब्द 1803 में हुआ। पिता-गोंदुजी मोहोड और माता-अलोकाबाई। मूल क्षत्रिय, परतु वे स्वत. को शूद्र कहते थे। जब वे 7-8 वर्ष के बालक थे तब उनकी आंखो की ज्योति सदा के लिये चली गयी।

उनके साथ सौतेली माता का व्यवहार अच्छा न होने से वे प्राय. घर के बाहर ही रहा करते। अधत्व के कारण व पाठशाला नही जा सकते थे। वे एकपाठी थे। अत जो-कुछ श्रवण करते, वह उन्हें तुरन्त मुखोद्गत हो जाता था। गाव में कभी-कभी एकाध मुल्ला-मौलवी आ जाता तो वे उसके निकट जाकर उससे कुराण की आयतें श्रवण करते।

एक बार गुलाबराव महाराज अपने पडोसी के यहा खेलने गये थे। उसी समय पडोस के सीताराम भुयार की मा अपनी पोती के साथ वहा पहुची। उसने विनोद में 12 वर्ष के गुलाब से कहा- "एक मुक्के में नारियल फोड दो, तो अपनी पोती में तुम्हें दूगी" उन्होंने ने वह प्रण पूर्ण कर दिखाया। अंध गुलाब का विवाह उसी कन्या मनकर्णिका के साथ हुआ।

महाराज ने सभी शास्त्रों का ज्ञान श्रवण से ही प्राप्त किया था। वेद-वेदान्त से लेकर संगीत, वैद्यक, साहित्यशास्त्र, थियॉसफी, पाश्चात्य दर्शन, आधुनिक विज्ञान, इतिहास आदि विषयों पर उन्होंने अधिकार-वाणी से विचार व्यक्त किये हैं। महाराज ने सूत्रग्रन्थ से लेकर आकर ग्रन्थों तक विविध प्रकार की रचनाएं मराठी, हिन्दी और संस्कृत भाषा में की हैं। उनकी संख्या 125 है। सभी ग्रंथ नागपुर में प्रकाशित। उनकी संस्कृत रचनाओं की नामावलि इस प्रकार है।

1. अन्तर्विज्ञानसंहिता, 2. ईश्वरदर्शन, 3 समसूत्री, 4 दुर्गातत्त्वम्, 5. काव्यसूत्र-संहिता, 6 शिशुबोध-व्याकरण, 7 न्यायसूत्राणि, 8 एकादशी-निर्णय, 9. पुराणमीमांसा, 10 नारदीय-भक्त्यधिकरण-न्यायमाला, 11 भक्तिसूत्र, 12. श्रीधरोच्छिष्टपुष्टि, 13 उच्छिष्टपुष्टिलेख, 14. ऋग्वेद-टिप्पणी, 15 बालवासिष्ठ, 16. शास्त्रसमन्वय, 17 आगमदीपिका, 18 युक्तितत्त्वानुशासन, 19 तत्त्वबोध, 20 षड्दर्शनलेश-संग्रह, 21 भक्तितत्त्वविवेक., 22 प्रियप्रेमोन्माद, 23 गोविंदानन्दसुधा, 24 मानसायुर्वेद, 27 संप्रदायकुसुममधु, 28. सच्चित्रिर्णय, 29 कान्तकान्तावाक्यपुष्पम् और 30 मात्रामृतपानम्।

गुलाबराव महाराज मधुराद्वैत सप्रदाय के प्रवर्तक थे। महाराज कहते थे कि मुझे सत ज्ञानेश्वर ने गोदी में लेकर कृपा-दृष्टि से निहारा, और मेरी योग्यता आदि न देखते हुए मुझ पर अपनी करुणा की वर्षा कर अपने नाम का मन्त्र मुझे (सन 1901) दिया। इस साक्षात्कार के पश्चात् महाराज को ज्ञानसिद्धि प्राप्त हुई।

महाराज की पत्नी मनकर्णिका पतिपरायण तो थी ही, साथ ही श्रेष्ठ शिष्या भी थी। एक बार महाराज ने अपनी पत्नी को कसौटी पर परखने का निश्चय किया। उन्हें चार मास का इकलौता पुत्र था। पुत्र-मोहवश पत्नी का चित्त परमार्थ-मार्ग से विचलित तो नही होता यह परखने के लिये, एक दिन रात्रि को (दिसबर 1905) उन्होंने पत्नी से कहा कि वह अपने हाथ से सतान को विष खिला दे। उस कसौटी पर मनकर्णिका खरी उतरी। महाराज को परम सतोष हुआ। बाद में मनकर्णिका को ज्ञात हुआ कि पति ने पुत्र को पिलाने झुठ-मुठ का विष दिया था।

दि 20 सितबर 1915 को, आयु के 34 वें वर्ष मे, महाराज ने अपनी इहलीला समाप्त की।

गुह त्रैलोक्यमोहन - रचना- गीतभारतम्। विषय-आङ्ग्ल साम्राज्य तथा सम्राज्ञी व्हिक्टोरिया का यशोगान।

गुहदेव - ई 8 वी या 9 वीं शती। यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता के एक भाष्यकार। सगुण ब्रह्म ही उपनिषदो का प्रतिपाद्य है, यह इनका सिद्धांत है। शास्त्रोक्त कर्म के बिना ईश्वर प्राप्ति सभव नहीं- यह मत भी इन्होंने प्रतिपादित किया है। इनका भाष्य-ग्रंथ उपलब्ध नहीं, किंतु देवराज यज्वा ने अपने निघटु-भाष्य की भूमिका में और रामानुजाचार्य ने अपने वेदार्थ-सग्रह मे गुहदेव का निर्देश किया है।

गोकुलचन्द्र- आपने अष्टाध्यायी-संक्षिप्त वृत्ति की रचना की है।

गोकुलनाथ - पिता- महाकवि विद्यानिधि पीताम्बर। गृहस्थाश्रम के प्रारम्भिक दिन श्रीनगर के राजा फतेहशाह (1684-1716) के समाश्रय मे रहे। बाद में मिथिला-निवासी। मिथिला के राजा राघवसिंह (1703-1709) के प्रीत्यर्थ "मासमीमांसा" नामक ग्रथ की रचना की। काशी में 90 वर्ष की अवस्था में मृत्यु।

गौतम - एक वैदिक ऋषि। पिता-रहुगण। शतपथ के अनुसार ये राजा जनक और ऋषि याज्ञवल्क्य के समकालीन थे (शतपथ ब्राह्मण 11.4.3.20)। अथर्ववेद में भी इनका दो बार उल्लेख आता है। (4.29.6 18.3.16)।

इन्हें वामदेव और नोधा नामक दो पुत्र थे। ऋग्वेद का रक्षोघ्न अग्नि का सूक्त, (ऋ 4.4) गौतम से उनके पुत्र वामदेव को प्राप्त हुआ था (ऋ 4.4.11)।

सत्कृत्य और भक्ति के सयोग से अगिरस द्वारा प्रथम अग्नि निर्माण किया ऐसा इसने उल्लेख किया है (द्र ऋ 83.4)। इन्होंने गौतम और भद्र नामक प्रसिद्ध सामों की रचना की। ये एक स्तोम के कर्ता हैं। इनकी गणना सप्तर्षियो में होती है।

प्रत्येक मगलकार्य में, गौतम के निम्न मत्र का पठन किया जाता है -

> स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा
> स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा ।
> स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि
> स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।। (ऋ 1.89.6)

अर्थ-ज्ञानसंपन्न इंद्र, सर्वज्ञ पूषा, जिसके रथ की गति अप्रतिहत है ऐसे ताक्ष्र्य तथा बृहस्पति हमारा मगल करे।

इनके विषय में प्रचलित दो आख्यायिकाओ मे से एक इस प्रकार है

सरस्वती नदी के किनारे विदेघमाधव अपने पुरोहित गौतम के साथ रहते थे। एक दिन विदेघमाधव के मुख से वैश्वानर-अग्नि पृथ्वी पर गिर पडा। वह अग्नि सभी वस्तुओ को भस्म करता हुआ पूर्व दिशा की और बढता गया। विदेघमाधव और गौतम ने उसका पीछा किया। वैश्वानर-अग्नि की गति सदानीरा नदी के तट पर पहुचते ही रुक गई। विदेघमाधव ने अग्नि से पूछा "अब में कहा रहू? अग्नि ने उत्तर दिया- "इस सदानीरा नदी की पूर्व दिशा में तुम रहो"। विदेघमाधव वही रहने लगे। तब से उस क्षेत्र का नाम विदेह हुआ। (श ब्रा 1.4.1.10)। इस आख्यायिका का महत्त्व ऐतिहासिक है। इससे सूचित होता है, कि विदेघमाधव व गौतम द्वारा यज्ञप्रधान आर्य-सस्कृति का विस्तार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ऋग्वेद में गौतम के अनेक सूक्त हैं (1.74-93, 9.31, 9.67 आदि)।

गोदावर्मा (गोदवर्मा) - जन्त- 1800 ई। नम्पूतिरि ब्राह्मण। व्याकरण, ज्योतिष, हस्तिशास्त्र व धर्मशास्त्र में प्रवीण। केरल के युवराज, परतु विरक्त प्रवृत्ति।

कृतिया- महेन्द्रविजय (महाकाव्य) जो वाल्युद्भव के नाम से भी ज्ञात है। त्रिपुरदहन (लघु काव्य), रससदन (भाण), रामचरित (महाकाव्य), जिसके 13 सर्गों की रचना के बाद इनकी मृत्यु होने से, उनके वशज रामवर्मा ने उसे 40 सर्गों में पूर्ण किया। दशावतार दण्डक (स्तोत्र) तथा अन्य नौ स्तोत्रग्रन्थ और सुधानदलहरी। सभी ग्रंथ मुद्रित हो चुके है।

गोपाल - राजधर्म के निबंधकार। इन्होंने "राजनीति-कामधेनु" नामक निबध ग्रथ का प्रणयन किया था, जो संप्रति अनुपलब्ध है। इनका समय 1000 ई के आसपास है। राजनीति-निबंधकारों में गोपाल सर्वप्रथम निबंधकार के रूप मे आते हैं। चंडेश्वरकृत "राजनीति-रत्नाकर" व "निबध-रत्नाकर" में गोपाल की चर्चा की गई है।

गोपाल चक्रवर्ती - ई 17 वीं शती। कुलनाम- वंद्यघटीय। पिता-दुर्गादास। कृतिया- अमरकोश तथा चण्डीशतक पर टीकाएं।

गोपाल शास्त्री- ई 19-20 वीं शती। विशाखापट्टनम् के निवासी। "सीतारामाभ्युदय" नामक काव्य के प्रणेता।

गोपाल शास्त्री - ई 20 वीं शती। काशी के निवासी। व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य व न्यायतीर्थ। सन् 1921 से 1947 तक काशी-विद्यापीठ में दर्शन के आचार्य। भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम में कारावास। वृद्धावस्था में ज्योतिर्मठस्थ बदरीनाथ वेद-वेदाग महाविद्यालय के प्रधानाचार्य। "पण्डितराज", "दर्शनकेसरी" तथा "महामहाध्यापक" - उपाधियों से अलंकृत। कृतिया- नारीजागरण, गोमहिमाभिनय तथा पाणिनीय नामक नाटक।

गोपालसेन कविराज - ई 17 वीं शती। सेनभूम (बंगाल) के निवासी। "योगामृत" ग्रथ के कर्ता।

गोपीनाथ कविभूषण - करणवशीय वासुदेव पात्र के पुत्र। पिता-वासुदेव, खिमिन्डी के गजपति जगन्नाथ नारायण के राजवैद्य। समय- ई 1766 से 1806। रचनाएं- कविचिन्तामणि और रामचन्द्र-विहार (काव्य)।

गोपीनाथ चक्रवर्ती- "कौतुकसर्वस्व" (प्रहसन) के प्रणेता। समय 18 वीं शती उत्तरार्ध।

गोपीनाथ दाधीच - जन्म सन् 1810 के लगभग। जयपुर नरेश सवाई माधवसिह (सन् 1880-1922) का समाश्रय प्राप्त। आचार्य जीवनाथ ओझा से व्याकरण, न्याय, साहित्य, वेदान्त की शिक्षा। बाद मे जयपुर के संस्कृत विद्यालय में अध्यापक। कृतिया- माधव-स्वातंत्र्य (नाटक), वृत्त-चिन्तामणि, शिवपदमाला, स्वानुभवाष्टक, राम-सौभाग्य-शतक, स्वजीवन-चरित, आनन्द-रघुनन्दन, यशवन्त-प्रताप-प्रशस्ति, नीति-दृष्टांत-पंचाशिका आदि 23 सस्कृत ग्रथ। सत्य-विजय तथा समय-परिवर्तन नामक दो हिन्दी नाटक।

गोपीनाथ मौनी- ई 17 वीं शती। रचनाए- शब्दालोकरहस्यम्, उज्ज्वला (तर्कभाषा-टीका) और पदार्थ-विवेक-टीका।

गोपेन्द्र तिम्म भूपाल- शाल्व-वंशीय विजयनगर के राजा। ई 15 वीं शती। रचना-वामन के काव्यालकारसूत्र की टीका एवं तालदीपिका।

गोपेन्द्रनाथ गोस्वामी - ई. 20 वीं शती। बंगाली। "पादप-दूत" के रचयिता।

गोपेश्वर- सं. 1836-1897। इन्होंने पुष्टिमार्गीय पुरूषोत्तमजी के "भाष्य-प्रकाश" पर "रश्मि" नामक व्याख्या लिखी है।

गोयीचन्द्र- जौमर-व्याकरण-परिशिष्ट के रचनाकार। जौमर-व्याकरण के खिल पाठ की वृत्ति लिखी। इस गोयीचन्द्र कृत वृत्ति की 6 व्याख्याकारों ने व्याख्या रची है।

गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) - इनके अविर्भाव-काल के संबंध में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इनका समय ई. 11-12 शताब्दी में मानते है। इनके जन्म तथा वर्ण के संबंध में मतमतान्तर हैं। डॉ. मोहनसिंह इन्हें विधवा की अवैध सन्तान बताते हैं। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में इन्हें "ईश्वरी सन्तान" कहा गया है, जिसका अर्थ है अनौरस सन्तान। मतिरत्नाकर के अनुसार ये शूद्र हैं। डा द्विवेदी इनका जन्म ब्राह्मण-कुल में बताते हैं। डा रा चि ढेरे के मतानुसार इनका जन्म दक्षिण में बसे हुए काश्मीरी ब्राह्मण पण्डित के कुल में हुआ है। गोरक्षनाथ अत्यंत विरक्त पुरुष थे। ज्ञानेश्वर महाराज उन्हें "विषयविध्वंसकवीर" विशेषण से सम्बोधित करते हैं।

इनके प्रमुख शिष्य थे- महाराष्ट्र के अमरनाथ और गहिनीनाथ, उज्जयिनी के राजा भर्तृहरि, बंगाल के राजा गोपीचन्द्र और विमला देवी।

इनके सस्कृत ग्रन्थ - अमनस्क, अमरौघ, प्रबोध, गोरक्षपद्धति, गोरक्षसहिता, योगमार्तण्ड, गोरक्षकल्प, अवधूतगीता, गोरक्षगीता आदि।

गोरक्षनाथ ने ईश्वरोपासना में देश, काल, धर्म, वंश, जाति के बन्धनो को त्याज्य माना, और वह बात अपने आचरण से सिद्ध कर दिखाई। इनके शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। बाबा रतन हाजी इनका प्रमुख मुसलमान अनुयायी था। आज भी नाथ सम्प्रदाय की रावल शाखा में मुसलमान बहुसख्यांक हैं। स्त्रियां तथा अन्त्यज भी इनके अनुयायी थे। इनकी शिष्या विमलादेवी तथा मयनावती नामक दो महिलाए थीं। बंगाल के हडिपा नामक अंत्यज भी, जो आगे चल कर जालन्दरनाथ नाम से विख्यात हुए, इनके अनुयायी थे।

अखिल भारतीय स्तर पर मत-प्रसारार्थ, गोरखनाथ द्वारा लोकभाषा विशेषत. हिन्दी को अपनाया गया। आगे चल कर अन्य साधुसन्तों ने उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर लोकभाषा को ही अपने विचार-प्रसार का माध्यम बनाया, यह विशेष लक्षणीय बात है। गोरखनाथ वर्णाश्रम के कट्टर विरोधक थे। वे शब्द-प्रामाण्य के स्थान पर आत्मानुभूतिप्रामाण्य को महत्त्व देते थे।

गोलोकनाथ बंद्योपाध्याय- ई. 19 वीं शती। जियाराखी (बंगाल) के निवासी। कृतियां- देव्यागमन तथा हीरकजुबिली-काव्य।

गोवर्धन - (1) ई 16 वीं शती। नैयायिक। इन्होंने केशवमिश्र के तर्कभाषा नामक ग्रन्थ पर तर्कभाषाप्रकाश नामक टीका लिखी है।

(2) बंगाल में भी इसी नाम के एक व्यक्ति हुए जिन्होंने "पुराणसर्वस्व" नामक ग्रन्थ लिखा है।

(3) द्रौपदीवस्त्रहरणम् के लेखक

(4) मधुकेलिवल्ली के लेखक

गोवर्धनाचार्य - "आर्या-सप्तशती" नामक श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य के रचयिता। पिता-नीलांबर सोमयाजी। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि। समय- 1075-1125 ई। इन्होंने अपने आश्रयदाता का उल्लेख अपने ग्रन्थ में इस प्रकार किया है।

सकलकला कल्पयितुं प्रभु प्रबंधस्य कुमुदबधोश्च।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राकाप्रदोषश्च।।39।।

अपने काव्य की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं -

मृसणपदरीतिगतय सज्जनहृदयाभिसारिका. सुरसा।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा गोवर्धनस्यार्या।।51।।

आर्यावृत्त में रचित 756 श्लोकों की "आर्यासप्तशती" मे कहीं कहीं श्रृंगार का चित्रण पराकाष्ठा पर पहुंच गया है, जिसकी आलोचकों ने निंदा की है। अन्योक्ति का प्रयोग प्राय नीतिविषयक कथनों में ही किया जाता रहा है पर इन्होंने श्रृंगारात्मक संदर्भो में भी इसका प्रयोग ऐसी कुशलता के साथ किया है कि कलाप्रियता व शब्दवैचित्र्य उनका साथ नहीं छोडते।

"गीतगोविंद" के रचयिता कवि जयदेव इनकी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं -

"श्रृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन। स्पर्धी कोऽपि न विश्रुत."।।

अर्थ - श्रृंगारप्रधान कविता करने में आचार्य गोवर्धन के साथ प्रतिद्वन्द्विता कर सकने वाला दूसरा कोई सुना नहीं।

इनके दो शिष्यों के नाम है - उदयन और बलभद्र।

गोविंद - (1) समय - 13 वीं शती। रचना-रागताल-पारिजात-प्रकाश। इस ग्रंथ में शार्ङ्गदेव का उल्लेख मिलता है।

(2) समय - ई 15 वीं शती। जाति-अग्रवाल। गोत्र-गर्ग। पिता- साहु। माता- पद्मश्री। ग्रंथ- पुरुषार्थानुशासन। ग्रंथस्थ प्रशस्ति के अनुसार यह ग्रंथ कायस्थ लक्ष्मण की प्रेरणा से निर्मित हुआ।

(3) श्रीनिवासपुत्र। रचना कृष्णचन्द्रोदय।

गोविन्दकान्त विद्याभूषण - ई. 19-20 शती। गौड बारेन्द्र। पिता - श्रीकान्त। शालिखा ग्राम (बंगाल) के निवासी। "लघुभारत" के कर्ता।

गोविन्द खन्ना न्यायवागीश - ई. 17 वीं शती। रचनाए - न्यायसंक्षेप, पदार्थखण्डन-व्याख्या और समासवाद।

गोविन्ददास - ई 16 वीं शती का मध्य। बंगाली वैष्णव कवि। "कर्णामृत" तथा "संगीतमाधव" नामक कृष्णभक्तिपर गीतकाव्य के रचयिता।

गोविन्ददास - ई 17 वीं शती। सत्काव्यरत्नाकर, काव्यदीपिका तथा चिकित्सामृत टीका के कर्ता।

गोविन्द दीक्षित - ई स. 1554-1626। कर्नाटकी ब्राह्मण। कावेरी नदी के किनारे स्थित पट्टीश्वरम् ग्राम के मूलनिवासी। अय्यन नाम से भी पहिचाने जाते थे। पत्नी का नाम नागम्बा था। दोनों का एक पुतला पट्टीश्वरम् के मन्दिर में आज भी देखने को मिलता है। तंजौर के राजा अच्युतराय नायक तथा राजा रघुनाथराय नायक के प्रधान थे। इन्होने "हरिवशसारचरितम्" नामक ग्रन्थ तीन खण्डों में लिखा है। इनके द्वारा रचित पद "संगीतसुधानिधि" नामक ग्रन्थ मे सकलित किये गये है। वेदान्त, धर्म, शिल्प, सगीत आदि शास्त्रों पर भी इन्होने ग्रन्थरचना की है। अपने "साहित्यसुधा" नामक काव्य में इन्होंने राजा अच्युत व राजा रघुनाथ का चरित्र वर्णन किया है। इन्होंने एक अभिनव वीणा का आविष्कार किया जिसमे चौदह पर्दे होते हैं। यह "तंजौर" के नाम से विख्यात है। औदार्य, नीति-निपुणता, धार्मिकता, विद्वत्ता आदि गुणो से विभूषित होने के कारण राजा प्रजा दोनों पर इनका प्रभाव था।

गोविन्दपाद - अद्वैत सप्रदाय के एक प्रमुख आचार्य, गौडपादाचार्य के शिष्य और शकराचार्य के गुरु। ये नर्मदा तट पर निवास करते थे। "रसहृदयतन्त्र" नामक एक ग्रन्थ की रचना की है।

गोविन्दभट्ट - (1) बीकानेर के निवासी। इन्होंने वहा के राजा के यश का वर्णन अपने काव्य "रामचन्द्रयश प्रबन्ध" मे किया है।

(2) पद्यमुक्तावली नामक सुभाषितसग्रह के लेखक।

गोविन्द भट्टाचार्य - ई. 17 वीं शती। रुद्र वाचस्पति के पुत्र। "पद्यमुक्तावली" के रचयिता।

गोविन्दराज - ई 11 वीं शती। पिता- भट्टमाधव। पितामह-नारायण। इन्होंने मनुस्मृति पर टीका लिखी। इनका स्मृतिमजरी नामक धर्मशास्त्रविषयक ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है।

गोविन्द राय - ई 19 वीं शती। "स्वास्थ्य-तत्त्व" नामक आयुर्वेदविषयक ग्रथ के रचयिता।

गोविन्द सामन्तराय - ई 18 वीं शती। बाकी। (उत्कल) के निवासी। पिता-रामचद्र। पितामह-विश्वनाथ। तीनों को "सामन्तराय" उपाधि थी। "समृद्धमाधव" नामक सात अकी नाटक के रचयिता। "कविभूषण" की उपाधि से भी विभूषित।

गोविन्दानन्द - 1) इन्होने शंकराचार्य के शारीरभाष्य पर "रत्नप्रभा" नामक टीका लिखी है।

2) ई सं. 1500-1554। मूलत द्रविड। पश्चात् बांकुरा के निवासी। पिता-गणपति भट्ट। "कविकंकणाचार्य" नाम से विभूषित। इनके धर्मशास्त्र विषयक दानकौमुदी, शुद्धि कौमुदी, श्राद्धकौमुदी तथा वर्षकृत्य-कौमुदी नामक प्रमुख चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनके अर्थकौमुदी और तत्त्वार्थकौमुदी नामक दो टीका ग्रथ भी हैं। अर्थकौमुदी, शुद्धिदीपिका की तथा तत्वार्थकौमुदी, शूलपाणि के प्रायश्चित्तविवेक की, टीका है। अमरकोश की टीका भी आपने लिखी है।

गोषूक्ति काण्वायन - ऋग्वेद के 8 वे मडल के 13 वें और 14 वे सूक्त के रचयिता जिनमे इन्द्र की इस प्रकार प्रशसा की गयी है -

इन्द्र ने बल नामक असुर का वध किया, चारो और सचार करने वाली अधार्मिक टोलियो का विनाश किया, नमूची राक्षस का शिरश्छेद किया, तथा गुफा मे छिपा कर रखी गई गायो का आगिरा ऋषि के लिय उद्धार किया। एक ऋचा इस प्रकार है -

> इन्द्रेण रोचना दिवो दळ्हानि दृंहितानि च।
> स्थिराणि न पराणुदे।।

आकाश मे जो तेजस्वी और लक्ष्यवेधी नक्षत्र खचाखच उभरे हुए दिखाई देते हैं, वे अपने अपने स्थान पर इन्द्र द्वारा दृढता से स्थिर किये गये हैं। उन्हें कोई भी शक्ति हिला नही सकती।

गौडापादाचार्य - ई 6 वी शती। श्रीशकराचार्य के गुरु गोविन्दाचार्य के ये गुरु थे। ये महाराष्ट्र के सागली जिले के भूपाल नामक ग्राम के मूल निवासी थे। पिता-विष्णुदेव, माता-गुणवती। इनका व्यावहारिक नाम शुकदत्त था।

गौडापादाचार्य बचपन में ही तपश्चर्या करने के लिये घर से निकल पडे। तपश्चर्या काल मे उन्हें दृष्टान्त हुआ, जिसके अनुसार वे गुरु की खोज में वगदेश मे जिष्णुदेव नामक सिद्धपुरुष के पास गये। गुरु ने उन्हें दीक्षा दी और अत्यत दूर से पैदल चल कर आये हुए अपने शिष्य का, 'गौडपाद' अर्थात् पैदल चल कर गौड देश आया हुआ ऐसा अन्वर्थक नाम रखा। इनकी गुरु परपरा "व्यास शुक गौडपादं महान्तम्" इस प्रकार बताते हैं परन्तु "शुक" से किसी निश्चित व्यक्ति का बोध नही होता।

अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्राचीन आचार्यो मे गौडपादाचार्य का नाम अग्रणी है। उन्होंने माडूक्योपनिषद् पर कारिकाये लिखी है जिनमें अद्वैत वेदान्त का सपूर्ण तत्त्वज्ञान सक्षेप में ग्रथित किया है। एक कारिका इस प्रकार है -

> अजातस्यैव भावस्य जातिमिच्छान्ति वादिन ।
> अजातो ह्यमृतो भावो मर्त्यता कथमेष्यति।।
> न भवत्यमृत मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा।
> प्रकृतेरन्यथाभावो न कथचिद् भविष्यति।।

अर्थ - द्वैतवादी, जो अजन्मा है उससे आत्मा के जन्म

की कामना करते हैं। (आत्मा जन्म ग्रहण करता है ऐसा मानते हैं)। जो वस्तु अजात और अमर है, वह मर्त्य कैसे होगी। अमर वस्तु कभी मर्त्य नहीं होती तथा मर्त्य कभी अमर नहीं होती। प्रकृति के विपरीत कदापि कुछ नहीं होता।

अनुगीताभाष्य, उत्तरगीताभाष्य, चिदानन्दकेलिविलास, (देवीमाहात्म्य टीका), सांख्यकारिकाभाष्य आदि ग्रन्थ भी गौडपादाचार्य द्वारा रचित बताये जाते हैं।

गौतम - न्यायशास्त्र के प्रामाणभूत आद्यग्रंथ "न्यायसूत्र" के रचयिता महर्षि गौतम हैं। समय- विक्रम पूर्व चतुर्थ शतक। न्यायशास्त्र के निर्माण का श्रेय इन्ही को दिया जाता है, यद्यपि इस संबध में मतविभिन्नता भी कम नहीं है। "पद्मपुराण" (उत्तरखंड अध्याय-263), "स्कदपुराण" (कालिका खंड, अध्याय 17), "नैषधचरित" (सर्ग 17), "गाधर्वतंत्र" व "विश्वनाथवृत्ति" प्रभृति ग्रंथों में गौतम को ही न्यायशास्त्र का प्रवर्तक कहा गया है। किन्तु कतिपय ग्रंथों में अक्षपाद को न्यायशास्त्र का रचयिता बतलाया गया है। ऐसे ग्रथो मे "न्यायभाष्य", "न्यायवार्तिक-तात्पर्य-टीका" व "न्यायमजरी" के नामों का समावेश है। एक तीसरा मत कविवर भास का है, जो मेधातिथि को न्यायशास्त्र के रचयिता मानते है। प्राचीन विद्वान गौतम को ही अक्षपाद मानते हैं पर आधुनिक विद्वानों ने इस सबध में अनेक विवादास्पद विचार व्यक्त किये हैं जिनसे यह प्रश्न अधिक उलझ गया है। डॉ सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ "हिस्ट्री ऑफ् इडियन फिलॉसाफी भाग-2" में गौतम को काल्पनिक व्यक्ति मान कर, अक्षपाद को न्यायसूत्र का प्रणेता स्वीकार किया है पर अन्य विद्वान दासगुप्तजी से सहमत नहीं है। "महाभारत" में गौतम व मेधातिथि को अभिन्न माना गया है।

"मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थित."

(शांति पर्व, अध्याय 265-45)।

यहा एक सज्ञा वशबोधक तथा दूसरी नामबोधक है। इस समस्या का समाधान न्यायशास्त्र के विकास की दो धाराओं के आधार पर किया गया है, जिसके अनुसार प्राचीन न्याय की दो पद्धतियां थी। (1) अध्यात्मप्रधान और (2) तर्कप्रधान। इनमें प्रथम धारा के प्रवर्तक गौतम और द्वितीय के प्रतिष्ठापक अक्षपाद माने गये हैं। इस प्रकार प्राचीन न्याय का निर्माण महर्षि गौतम एवं अक्षपाद इन दोनों महापुरुषों के सम्मिलित प्रयत्न का फल माना गया है।

गौरधर - ई. 13 वीं शती। सुप्रसिद्ध "स्तुतिकुसुमाजलि" के कर्ता जगद्धर के पितामह। आपने यजुर्वेद पर "वेदविलास" नामक ऋजुभाष्य की रचना की है।

गौरनाथ - समय 15 वीं शती (पूर्वार्ध)। रचना - सगीतसुधा।

गौरमुखाचार्य - वैष्णवों के निंबार्क संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निंबार्क के शिष्य। निवासस्थान - नैमिषारण्य। "निंबार्कसहस्रनाम" ग्रंथ के प्रणेता।

गौरीकान्त सार्वभौम - ई 18 वीं शती। वग प्रदेश वासी नैयायिक। इन्होंने भावार्थदीपिका, तर्कभाषा-टीका, सद्युक्ति-मुक्तावलि, आनन्दलहरीतरी, विदग्धमुखण्डन-टीका तथा विवादार्णवभंजन आदि ग्रथों की रचना की है।

गौरीकान्त द्विज कविसूर्य - असम नरेश कमलेश्वरसिह (1785-1810) द्वारा सम्मानित शैव पडित। पिता-गोविन्द। "विघ्नेभजन्मोदय" नामक नाटक के रचयिता।

गौरीप्रसाद झाला - मुबई के सेन्ट झेवियर महाविद्यालय मे संस्कृताध्यपक। रचना-सुषमा (स्फुट काव्य सग्रह)

गृत्समद - पिता का नाम अगिरस कुल के शनहोत्र। ये शनक के दत्तकपुत्र थे। गृत्स का अर्थ है प्राण तथा मद का अर्थ है अपान। प्राणापान का समन्वय अर्थात् गृत्समद। गृत्समद तथा उनके कुल के लोग, ऋग्वेद के दूसरे मडल के रचियता हैं।

आचार्य विनोबा भावे के कथनानुसार गृत्समद बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न वैदिक ऋषि थे। वे ज्ञानी, भक्त कवि, गणितज्ञ, विज्ञानवेत्ता, कृषिसशोधक तथा कुशल बुनकर थे। समुद्र की भाप से पर्यन्यवृष्टि होती है, यह उन्होने सर्वप्रथम बताया। यह उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचायक है। ये निदर्भवासी थे। इस प्रदेश में इन्होने कपास की खेती प्रारभ की थी। उनके सूक्तो मे कताई-बुनाई के दृष्टात प्रमुखता से पाये जाते हैं। निम्नलिखित ऋचा इसका उदाहरण है-

साध्वपासि सनता न उक्षिते

उषासानक्ता वय्येव रण्विते।। (ऋ 2 3 6)

अर्थ- यह यौवनाढ्य रात्रि पक्षियो के समान रमणीय है तथा सलग्न है। यह कालरूप धागे से निरतर वस्त्र बुनती है। गृत्समद गणित की गुणाकार प्रक्रिया के आविष्कारक थे। निम्न ऋचा में मानो दो-एक-दो, दो-दूना चार, दो-त्रिक-छह, आदि इस प्रकार दे कर गिनती कही गयी है।

आ द्वाभ्या हरिभ्यामिन्द्र याह्या

चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमान ।

आष्टाभिर्दशभि सोमपेय

मय सुत सुमख मा मृधस्क ।। (ऋ 2 18 4)

अर्थ- हे इद्र, तुम्हें हम आमंत्रित करते है। इसलिये तुम (रथ को) दो अश्व जोत कर, चार जोत कर, छह जोत कर आओ, या इच्छा हो तो आठ या दस जोत कर आओ। हे परमपवित्र देवता, यहा सोमरस छना है उसे अस्वीकार मत करो।

इनके सूक्तो में अनेक ओजपूर्ण ऋचायें है जो उनके विजिगीषु प्रयोगशील तथा जीवनविषयक उदात्त दृष्टिकोण को प्रकट करती हैं। उदा.

"प्राये प्राये जिगीवास. स्याम"

अर्थ- "जीवन के सभी क्षेत्रों में हम विजयी हो"

पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि।।

माह राजन्नन्यकृतेन भोजम्।। (ऋ. 2 28 9)

हे वरुण ऐसा करो कि मैं अपने द्वारा किये गए ऋणो से मुक्त हो सकूं तथा मुझ पर ऐसा अवसर न आए कि मैं दूसरों के परिश्रम पर जीवननिर्वाह करू।

ऊपर गृत्समद का वैदिक चरित्र दिया गया है। उनका पौराणिक चरित्र कुछ भिन्न है। वाचक्रवी ऋषि की कन्या मुकुंदा, रुक्मागद नामक राजपुत्र पर अत्यत मोहित थी। एक बार उसने राजपुत्र से काम-पूर्ति की याचना की। परतु राजपुत्र ने वह अस्वीकार की। तब मुकुदा ने उसे शाप दिया कि उसे महारोग होगा। रुक्मागद की प्राप्ति के लिये मुकुदा की व्याकुलता का इन्द्र ने लाभ उठाया। उसने रुक्मागद का रूप धारण कर मुकुदा से समागम किया। इस सबध से गृत्समद का जन्म हुआ।

एक दिन गृत्समद श्राद्ध-कर्म के लिये मगधराज के यहा अनेक ऋषियों के साथ उपस्थित हुए थे। वहा अत्रि के साथ गृत्समद का वाद-विवाद छिड गया। अत्रि ने उन्हे ऋषिसमुदाय के समक्ष जारज-पुत्र कहकर तिरस्कृत किया। गृत्समद इस अपमान से क्षुब्ध हो अपने आश्रम मे लौट आए और अपनी मा से अपने जन्मदाता के विषय में पूछा। मा ने शाप के भय से सब-कुछ सच-सच बतला दिया। वे अत्यत दुखित हुए। इसके बाद उन्होने गणेश की कठोर उपासना की। गणेशजी उन पर प्रसन्न हुए। गणेशजी ने उनके द्वारा मागा गया ब्राह्मण्य का वरदान उन्हें दिया। इस कारण गृत्समद को गाणपत्य सप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है।

घटकर्पर- परम्परानुसार विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक। "घटकर्पर" नामक यमकबद्ध काव्य के रचयिता। अपने काव्य के अतिम श्लोक में कवि आत्मस्तुति के साथ कहता है "यदि यमक-काव्य-रचना में मुझे कोई जीतेगा, तो उसके घर, मैं घटकर्पर से पानी भरूगा। में यह शपथपूर्वक कहता हू कि मेरी रचना मेरे ही नाम से ज्ञात है।

सभवत. श्लोक मे प्रयुक्त "घटकर्पर" शब्द के कारण कवि का यही नाम पड गया।

केवल 22 श्लोको के इनके "घटकर्पर' (विरह-काव्य) पर सात से अधिक विद्वानों की टीकाए हैं और इस काव्य का जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ है।

घनश्याम (कवि-आर्यक)- तजौर के राजा तुकोजी भोसले (1729-1733 ई) के मत्री। दो पत्नियां- कमला तथा सुदरी विदुषी थीं। दोनों ने मिल कर "विद्धशालभजिका" की "चमत्कार-तरंगिणी" टीका लिखी। शाकबरी परमहस के ये दौहित्र थे। ये घटकर्पर के टीकाकार है। इन्होंने बारह वर्ष की आयु में भोजचंपू के "युद्धकाण्ड" का प्रणयन किया। सौ से अधिक रचनाए, जिनमे 64 रचनाएं संस्कृत, 20 प्राकृत तथा शेष अन्य भाषाओ मे हैं। तंजौर के सरस्वती-भवन में, इनके अधिकाश ग्रथ प्राप्य। सर्वज्ञ, कण्ठीरव, सुरनीर, वश्यवाक् इन उपाधियो तथा "आर्यक" नाम से प्रसिद्ध थे।

प्रमुख रचनाए- कुमारविजय (नाटक), मदनसंजीवन (भाण), नवग्रहचरित, डमरुक, प्रचण्ड-राहूदय, अनुभूति-चिन्तामणि (नाटिका), प्रचण्डानुरजन (प्रहसन), आनन्दसुन्दरी (सट्टक) और भवभूति के नाटक-महावीर चरित के 2 अनुपलब्ध अक।

अप्राप्य ग्रथ- गणेश-चरित, त्रिमठी नाटक, एक डिम और एक व्यायोग जो चमत्कार-तरंगिणी में उल्लिखित है।

काव्य- भगवत्पादचरित, षण्मतिमण्डन, और अन्यापदेशशतक। प्रसगलीलार्णव, वेंकटचरित और स्थलमाहात्म्यपचक (अप्राप्य)

टीकाए- उत्तर-रामचरित, भारतचम्पू, विद्धशालभंजिका, नीलकठविजय चम्पू, अभिज्ञानशाकुन्तल तथा दशकुमारचरित पर।

अप्राप्य टीकाए- महावीरचरित, विक्रमोर्वशीय, वेणीसहार, चण्डकौशिक, प्रबोध-चन्द्रोदय, कादम्बरी, वासवदत्ता, भोजचम्पू तथा गाथासप्तशती पर।

इनके अतिरिक्त, "अबोधाकर" नामक त्र्यर्थी श्लेषकाव्य, जिसका प्रत्येक श्लोक हरिश्चन्द्र, नल तथा कृष्णपरक है। "कलिदूषण" नामक काव्य, सस्कृत तथा प्राकृत दोनो में सिद्ध। आप "डमरुक" नाट्य-विधा के प्रणेता हैं।

घनश्याम त्रिवेदी- सस्कृत एव समाजशास्त्र में उपाधिप्राप्त। एल एल बी होने के बाद साहित्यशास्त्री हुए। नाट्यकला में विशेष अभिरुचि। सवा सौ से अधिक सस्कृत-नाटको में अभिनय तथा दिग्दर्शन किया। अहमदाबाद की गुजरात सस्कृत परिषद् के प्रमुख कार्यकर्ता के नाते सस्कृत की सेवा में रत। नूतन नाट्य प्रस्थानम् नामक आपका लघुनाटकसग्रह, जिसमें सत्यवादी हरिश्चद्र, राजयोगी भर्तृहरि, मेना गुर्जरी, महासती तोललम् इत्यादि आठ सुबोध नाटको का सग्रह है, बृहद् गुजरात सस्कृत परिषद, अहमदाबाद द्वारा सन 1977 में प्रकाशित हुआ है।

घुले, कृष्णशास्त्री (म.म.)- समय- 19-20 वी शती। विद्वान पण्डितो का कुल। पूर्वजो ने ग्रथ-निर्मिति कर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। दक्षिण में पेशवाओ के आश्रित (अनन्तशास्त्री घुले-दुर्बोधपदचन्द्रिका। राजारामभट्ट-सप्तशती-दशोद्धार। रामकृष्णभट्ट-नामस्मरण-मीमासा, मलमास-टीका, अष्टावक्र-टीका, भागवत-विरोध परिहार, इस प्रकार घुले वश की ग्रथसेवा है। ई 1886 के लगभग बुदेलखण्ड में जागीर। सदाशिवभट्ट का काशी में वास्तव्य था। तदुपरान्त नागपुर में आगमन। इसी परिवार में सीताराम शास्त्री (भाऊशास्त्री) को म.म की उपाधि। धर्मशास्त्र तथा व्याकरण में पारगत। इन्हीं के पुत्र कृष्णशास्त्री। जन्म- 31-5-1873। पुरानी तथा नई पद्धति से शिक्षा प्राप्त। सस्कृत के साथ हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली, गुजराती, फ्रेन्च,

उर्दू-साहित्य का भी गहन ज्ञान। छात्रावस्था में ही पतितोद्धार-मीमांसा नामक प्रबंध लेखन (विषय-पतित हिन्दुओं का उद्धार)। हौत्रध्वान्त-दिवाकर. तथा सापिण्डयभास्करः नामक दो शास्त्रीय प्रबन्ध। वाचकस्तव नामक काव्य विद्यार्थी दशा में, तथा "हरहरीयम्" श्लेषगर्भ काव्य प्रौढावस्था में। उसकी पाण्डित्य तथा प्रतिभापूर्ण टीका स्वलिखित। लोकमान्य तिलकजी से वैदिक संशोधन की स्फूर्ति। ऋग्वेद के मराठी अनुवाद में लिखित टिप्पणियों से उनका अधिकार ज्ञात होता है। वेदविषयक मराठी लेख उनके शिष्य साहित्याचार्य बालशास्त्री हरदास (नागपुर) द्वारा ई 1949 में प्रकाशित। अनपत्य मृत्यु से घुले वश की विद्वत्-परपरा खण्डित। "हरहरीयम्- "काव्य सन् 1953 में नागपुर की सस्कृत-भवितव्यम् पत्रिका में क्रमश प्रकाशित।

चण्डिकाप्रसाद शुक्ल (डॉ.) - ई 20 वीं शती। एम ए डी लिट्। प्रयाग वि वि के प्रवाचक "वीरवदान्य" तथा "तापसधनजय" नामक नाटको के प्रणेता।

चण्डीदास मुखोपाध्याय - ई 13 वी शती के लगभग। बगाली ब्राह्मण। गगातटवर्ती केतुग्राम (उद्धारणपुर के पास) के निवासी। कृति-काव्यप्रकाश-दीपिका।

चण्डेश्वर - मिथिला-नरेश हरिसिह देव के मत्री। पिता-वीरेश्वर। पितामह-देवादित्य। समय 14 वी शताब्दी का प्रथम चरण। चण्डेश्वर ने "निबध-रत्नाकर" नामक विशाल ग्रथ की रचना की है। इनकी अन्य कृतिया है राजनीति-रत्नाकर, शिव-वाक्यावली एव देव-वाक्यावली। इन्होने राजनीति-रत्नाकर के विषयों का चयन करते समय धर्मशास्त्रो, रामायण, महाभारत तथा नीतिग्रथों के वचनो को भी उद्धृत किया है। राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति, राजा की आवश्यकता व उसकी योग्यता, राजा के भेद, उत्तराधिकार-विधि, अमात्य की आवश्यकता, मत्रणा, पुरोहित, सभा, दुर्ग, कोष, शक्ति, बल, बल-भेद, सेना के पदाधिकारी, मित्र, अनुजीवी, दूत, चर, प्रतिहार, षाड्गुण्य मत्र आदि विषयों पर इन्होंने अपने विद्वत्तापूर्ण विचार व्यक्त किये है यथा -

"प्रजारक्षको राजेत्यर्थ । राजशब्दोऽपि नात्र क्षत्रिय-जातिपर ।
अमात्य विना राज्यकार्यं न निर्वहति । बहुभि सह न मत्रयेत् ।"

चन्द्रकान्त तर्कालंकार (म.म.) - सन् 1836-1908। बगाली विद्वान्। कृतिया-सतीपरिणय (काव्य), चन्द्रवंश (महाकाव्य), कातन्त्रछन्द.प्रक्रिया (व्याकरण), कौमुदी-सुधाकर (प्रकरण) और अलकार-सूत्र (साहित्यशास्त्र)।

दर्शन, धर्म व काव्य की सर्वोच्च शिक्षा पाकर कलकत्ते के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक। "महामहोपाध्याय" तथा "तर्कालकार" की उपाधियों से अलकृत। कई ग्रथों का मुद्रणव्यय स्वय वहन किया। फिर धनाभाव से चिंतित। तब सेरपुर के हरचन्द्र चतुर्धरीण द्वारा आपके सभी ग्रंथ प्रकाशित हुए।

चंद्रकीर्ति (बौद्धपंथी) - जन्म दक्षिण में स्थित समन्त नामक स्थान में। बाल्यकाल से ही आप प्रतिभासम्पन्न थे। बौद्ध मत स्वीकार करने के बाद, शीघ्र ही सपूर्ण पिटकों का अध्ययन सपन्न किया। आचार्य कमलबुद्धि द्वारा नागार्जुन की कृतियों का ज्ञान प्राप्त किया। आचार्य चन्द्रगोमिन् के प्रतिद्वन्दी माने जाते हैं। प्रासगिक मत के समर्थक। ई 7 वीं शती में माध्यमिक सप्रदाय के प्रतिनिधि माने जाते थे। दक्षिण भारतीय बुद्धिपालित नामक विद्वान् के शिष्य कमलबुद्धि के शिष्य। महायान दर्शन के प्रकाड पडित माने जाते हैं। इन्हें नालदा महाविहार मे अध्यापक का पद प्राप्त हुआ था। इनके द्वारा रचित 3 ग्रथ प्रसिद्ध हैं

(1) माध्यमिकावतार - इसका मूल रूप प्राप्त नहीं होता, किन्तु तिब्बती भाषा मे इसका अनुवाद प्राप्त है। इसमें चद्रकीर्ति ने शून्यवाद का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। (2) प्रसन्नपदा - यह मौलिक ग्रथ न होकर, नागार्जुनरचित "माध्यमिककारिका" की टीका है। (3) चतु.शतक-टीका- यह आर्यदेवरचित चतु.शतक नामक ग्रथ की टीका है।

चन्द्रकीर्ति (जैन पंथी) - काष्ठासघ, नन्दीतरगच्छ, विद्यागण के भट्टारक श्रीभूषण के पट्टधर शिष्य। मतप्रचारार्थ दक्षिण यात्रा की। "वादिविजेता" इस उपाधि से भूषित। 17 वीं शती। रचनाए पार्श्वनाथपुराण (15 सर्ग, 2715 श्लोक), 2 ऋषभदेवपुराण (25 सर्ग), 3 कथाकोश, 4 पाण्डवपुराण, 5 नन्दीश्वरपूजा आदि

चन्द्रगोमिन् - बगाली क्षत्रिय कुल में जन्म। गुरु-स्थिरमति। चन्द्रकीर्ति के प्रतिपक्षी तथा समकालीन। बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न। बौद्धसाहित्य में दार्शनिक, वैयाकरण तथा कवि के रूप मे ख्यात। स्तुतिकाव्य तथा नाट्यरचनाकार। ईत्सिंग ने (673 ई.) इनका एक पवित्र धार्मिक व्यक्ति तथा बोधिसत्त्वरूप मे उल्लेख किया है। साथ ही इन्हे युवराज विश्वन्तर से सम्बद्ध सगीत नाटककार बताया है। राजतरंगिणिकार ने इन्हे महाभाष्य का पुनरुद्धारक माना है। इन्होने व्याकरण मे नये सप्रदाय की स्थापना की, जिसे चान्द्रव्याकरण कहते हैं। बौद्ध योगाचारसप्रदाय के श्रेष्ठ विद्वान, वसुबन्धु के प्रशिष्य तथा स्थिरमति के शिष्य माने जाते हैं। तारादेवी के अनन्य भक्त।

रचनाए - शिष्यलेखधर्म काव्य, आर्यसाधनशतक, आर्य तारान्तर-बलिविधि (तारासाधकशतक) लोकानन्द (नाटक) और चान्द्रव्याकरण।

इन्होंने दक्षिण भारत तथा लंका की यात्रा की थी। सस्कृत में बौद्ध धर्मविषयक छोटे बडे 60 ग्रथों का प्रणयन किया। इन ग्रथों का तिब्बती भोट भाषा में अनुवाद हुआ है। "ब" तथा "व" का समान उच्चारण मानना, इनके बंगाली होने की पुष्टि करता है।

चन्द्रधर शर्मा - जन्म 11 जनवरी, 1920 ई को। पिता-कृष्णदत्त

शास्त्री। इन्होंने एम.ए.डी.लिट्., एलएल.बी. की उपाधियां प्राप्त की। ये साहित्याचार्य व साहित्यरत्न भी थे। अध्यापन आपका प्रमुख कार्य है। आप हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के दर्शन विभाग के अध्यक्ष रहे हैं। आपके ग्रंथ हैं 1 श्रद्धाभरणम् (खण्डकाव्य)। इस पर उत्तरप्रदेश राज्य द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया है। 2 स्तोत्रत्रयी, 3 16 वीं शताब्दी के अप्रकाशित सुर्जनचरितमहाकाव्यम् का हिन्दी अनुवाद तथा संस्कृत टिप्पणी सहित प्रथम बार संपादन व प्रकाशन आपने कराया।

चन्द्रभूषण शर्मा - रचना-जीवितवृत्तांत (संस्कृत विद्यालय वाराणसी के विद्वान आचार्य प. बेचनराम का चरित्र)।

चन्द्रमोहन घोष - ई. 20 वीं शती। कृति-छन्द सारसंग्रह।

चन्द्रशेखर - उत्कल निवासी। उत्कलनरेश गणपति वीरकेसरी देव (1736-1773 ई.) का समाश्रय प्राप्त। पिता-गोपीनाथ। पिता तथा पुत्र दोनों राजगुरु। दोनों धर्माचार्य तथा यज्ञसम्पादन प्रेमी। पिता ने सप्तसोम तथा वाजपेय यज्ञ किये। पुत्र ने चयनयज्ञ किया। इसी कारण "चयनीचन्द्रशेखर" की उपाधि से समलंकृत। न्यायशास्त्र के पण्डित। "मधुरानिरुद्ध" नामक आठ अंकों के नाटक के रचयिता।

चन्द्रर्षिमहत्तर - विद्वानों ने ऋषि शब्दान्त नाम के कारण, समय विक्रम की नवीं दसवी शताब्दी माना है। ग्रंथ- पचसंग्रह (मूल ग्रंथ प्राकृत में)। लगभग 1000 गाथाएं। योग, उपयोग, गुणस्थान, कर्मबन्ध, बन्धहेतु, उदय, सत्ता, बधनादि आठ करण आदि विषयों का विवेचन। ग्रंथकार की स्वोपज्ञवृत्ति संस्कृत मे 9000 श्लोक प्रमाण। स्वोपज्ञवृत्ति के अन्त मे आचार्य ने अपने को पार्श्वर्षि का पादसेवक अर्थात् शिष्य बताया है। "पार्श्वर्षि पादसेवात कृत शास्त्रमिद मया"।

चंद्रशेखर - रसवादी आचार्य (महापात्र) कविराज विश्वनाथ के पिता। उत्कल के प्रतिष्ठित पडितकुल मे जन्म। आप विद्वान्, कवि व संधिविग्रहिक थे। इन्होंने "पुष्पमाला" व "भाषार्णव" नामक ग्रंथों का प्रणयन किया था। इन ग्रंथो का उल्लेख, इनके पुत्र विश्वनाथ द्वारा प्रणीत "साहित्यदर्पण" नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ मे है।

चन्द्रशेखर (पं) (गौडमित्र) - ई. 17 वी शती का पूर्वार्ध। वैद्य। पिता- जनमित्र। "सुर्जनचरित" नामक एकमात्र प्रसिद्ध महाकाव्य के प्रणेता। कवि ने इस काव्य की रचना अपने आश्रयदाता बूंदी के राजा राव सुर्जन के आदेश पर की थी। इस काव्य के 20 सर्ग है जिनमें कवि के आश्रयदाता राव सुर्जन का चरित्र ग्रथित है।

चंद्रशेखर भट्ट - ई. 16 वीं शती। कृति-वृत्तमौक्तिकम् (छन्दशास्त्र विषयक)। बगाल के निवासी।

चन्द्रशेखर शास्त्री - म 1884-1934 ई.। इनका जन्म बिहार के आरा जिले मे निमेज गाव मे हुआ। पिता शकरदयाल ओझा। परिवार के सदस्यो की शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारण ये अध्ययनार्थ पैदल ही काशी पहुचे और अनेक सकटों का सामना करते हुए साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण हुए। जयपुर के राजकुमार के शिक्षक बनकर जयपुर गये। देश के विभिन्न भागों की उपदेशक के रूप मे यात्रा करने पर अनेक कटु अनुभव आये। फलस्वरूप आजीवन नौकरी या परवशता मे दूर रहने का सकल्प किया। स्वतत्र लेखन ही आजीविका का एकमात्र साधन रहा। 1913 मे "शारदा" पत्रिका के सम्पादन कार्य का प्रारभ किया। "दरिद्रकथा" उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति का द्योतक थी। नि शुल्क शिक्षा के कट्टर समर्थक होने के कारण शिक्षा से कभी कमाई नही की। ये धार्मिक प्रवृत्ति के थे, तथा संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ सतत प्रयास करते रहे।

चन्द्रशेखर सरस्वती - 18 वी शती। काची-कामकोटी के शाकरपीठ के 63 वे आचार्य। रचना - (1) गीतगगाधरम् (2) शिवगीतमालिका।

चंद्रसेन - ज्योतिषशास्त्र के एक आचार्य। समय ई. 7 वी शताब्दी। कर्नाटक प्रान्त के निवासी। "केवलज्ञानहोरा" नामक ग्रंथ के प्रणेता। इन्होने अपने इस ग्रंथ मे बीच-बीच मे कन्नड भाषा का भी प्रयोग किया है। यह अपने विषय का विशालकाय ग्रंथ है। इसमे 4 हजार के लगभग श्लोक हैं। विषय सूचि के अनुसार यह रचना होरा विषयक न होकर सहिता विषयक रचना सिद्ध होती है। ग्रंथ के प्रारभ में चद्रसेन ने स्वय अपनी प्रशसा की है।

चक्र कवि - समय ई. 17 वीं सदी का अंतिम चरण। "द्रौपदीपरिणय-चम्पू", "रुक्मिणीपरिणय" "जानकीपरिणय", "पार्वतीपरिणय" व "चित्ररत्नाकर" नामक ग्रंथो के प्रणेता। पिता अबा लोकनाथ। माता- अबा। पाड्य व चेर नरेश के सभाकवि। "द्रौपदीपरिणय-चपू" के प्रत्येक अध्याय मे इन्होंने अपना परिचय दिया है। "द्रौपदीपरिणय चम्पू", "जानकीपरिणय" और "चित्ररत्नाकर" प्रकाशित हो चुके हैं।

चक्रपाणि दत्त . 1- चक्रपाणि का समय 11 वी शताब्दी है। पिता का नाम नारायण जो गौडाधिपति नयपाल (1038-1055 ई.) की पाकशाला के अधिकारी थे। आयुर्वेदशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ "चक्रदत्त" के प्रणेता। वीरभूम (बगाल) के निवासी। इन्होने वैद्यक ग्रंथो के अतिरिक्त शिशुपाल वध, कादबरी, दशकुमारचरित व न्यायसूत्र की टीकाएं लिखी है। इनके चिकित्साशास्त्र विषयक ग्रंथो के नाम है वैद्यककोष, आयुर्वेद-दीपिका। (चरकसंहिता की टीका), भानुमती (सुश्रुत की टीका) द्रव्य-गुण-सग्रह, चिकित्सासार-सग्रह। व्यग्य-दरिद्रशुभकरणम् एव चक्रदत्त (चिकित्सासग्रह)।

2- रचना - प्रक्रियाप्रदीप (प्रक्रियाकौमुदी की व्याख्या)। इस लेखक ने प्रौढमनोरमा का खण्डन भी एक ग्रंथद्वारा किया है। वह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

चक्रवर्ती राजगोपाल - समय 1882-1934 ई.।

मैसूर विश्वविद्याय में संस्कृत विभागाध्यक्ष। रचनाएं .-काव्य. मधुकर दूत, वियोगिविलाप तथा गंगातरंग। आधुनिक शैली के उपन्यास -शैवालिनी व कुमुदिनी। दीर्घ कथाएँ विलासकुमारी व सङ्गरम्। प्रवासवर्णन-तीर्थाटनम्। साहित्यशास्त्रीय प्रबंध- "कविकाव्यविचार."। "तीर्थाटनम्" के 4 अध्याय है, जिनमे भारत प्रवास मे प्राप्त विविध अनुभवों का वर्णन है। सभी कृतिया प्रकाशित हो चुकी है।

चतुर कल्लीनाथ - पिता-लक्ष्मीधर। विजयनगर के इम्मादि देवराय (मल्लिकार्जुन) के आश्रित। ई 15 वी शती का उत्तरार्ध। रचना-शार्ङ्गदेव के संगीतरत्नाकर नामक प्रसिद्ध ग्रथ की विद्वमान्य टीका।

चतुर दामोदर - चतुर कल्लीनाथ के वशज। पिता- लक्ष्मीधर। सम्राट् जहागीर की सभा के सदस्य। ई स 1605 से 1627। रचना-सगीतदर्पण।

चतुर्भुज - ई 15 वी शती। रामकेलि ग्राम (बगाल) के निवासी। पैतृक ग्राम-करज। कवि नित्यानद के पौत्र। "हरिचरित" (काव्य) के प्रणेता।

चतुर्भुज - रचना - साहित्यशास्त्रीय- प्रबन्धरसकल्पद्रुम । इसमे 65 प्रस्ताव तथा एक सहस्र श्लोक है। कवि ने अपने परम मित्र आशकखान के पुत्र शाइस्तेखान की कृपा प्राप्त करने इसकी रचना की। शाईस्तेखान, श्रेष्ठ दर्जे के संस्कृत कवि थे। उनके 6 श्लोक इस प्रबन्ध-रसकल्पद्रुम मे उद्धृत है।

चतुर्वेदस्वामी - ई 16 वी शती। ऋग्वेद भाष्य के प्रणेता। भगवद्गीता पर परमार्थ नामक टीका। सामभाष्य के लेखक देवज्ञ सूर्यपण्डित, इन चतुर्वेदाचार्य अथवा चतुर्वेदस्वामी के शिष्य थे।

सूर्यपण्डित का समय ई 16 वी शती निश्चित है, अर्थात् चतुर्वेदस्वामी का भी वही समय समझना चाहिये। चतुर्वेदाचार्य का ऋग्वेदभाष्य उपलब्ध नही है।

चन्नवीर - ई 16 वी शती। काशकृत्स्न के धातुपाठ पर इनकी टीका कन्नड भाषा में है। लेखक का पूरा नाम काशीकाण्ड चन्नवीर कवि था। गोत्र-अत्रि। शाखा-तैत्तिरीय। निवास- सह्याद्रि मण्डलवर्ती कुण्टिकापुर। सारस्वत व्याकरण, पुरुषसूक्त और नमक-चमक की कन्नड टीकाएं इनकी अन्य रचनाएं है। चन्नवीर की कन्नड टीका में काशकृत्स्न व्याकरण के 137 सूत्र उपलब्ध होते हैं। इसलिए संस्कृत व्याकरण के इतिहास मे इनका महत्त्व माना गया है।

चरक - आयुर्वेद शास्त्र के विद्वान। इन्होंने आयुर्वेद पर ग्रथ लिखा जो "चरकसंहिता" नाम से विख्यात है। चरक के जन्म के सम्बन्ध मे भावप्रकाश में कथा इस प्रकार है -

जब भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार ग्रहण कर वेदो का उद्धार किया, तब शेष भगवान् को सामवेद के साथ अथर्ववेदान्तर्गत आयुर्वेद की प्राप्ति हुई। एक बार शेष भगवान् पृथ्वी पर गुप्तचर बनकर भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने असख्य व्याधिग्रस्त लोगों को देखा। उन्हें अत्यंत पीडा हुई। लोगों के रोगोपशम के लिये क्या उपाय किये जायें, इस विचार से वे अत्यंत अस्वस्थ हुए। आगे उन्होंने इस कार्य के लिये पृथ्वी पर एक मुनि के यहाँ जन्म ग्रहण किया। चर के रूप में वे भूतल पर आये थे, इसलिये वे "चरक" नाम से विख्यात हुए। अग्निवेश चरक के गुरु थे।

चरण वैद्य (अथर्वशाखा) - कौशिकसूत्र (6-37) की केशव कृत व्याख्या के अथर्व-परिशिष्ट में (22-2), वायुपुराण में (61-69) तथा ब्रह्माण्डपुराण मे चरण वैद्य का निर्देश मिलता है।

चरित्रसुन्दरगणी - ई 15 वीं शती। रचना- "शीलदूतम्"। मेघदूतपंक्तियों का समस्यापूर्तिरूप तत्त्वोपदेश इस खंड काव्य का विषय है।

चाणक्य - ई 4 थीं शती। इनका जन्मनाम विष्णुगुप्त था। शायद चणक के पुत्र होने के कारण इन्हे चाणक्य नाम प्राप्त हुआ और कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण ये कौटिल्य कहलाए। बुन्देलखण्ड के नागोद के समीप नाचना नामक ग्राम है जिसे डा हरिहर द्विवेदी चाणक्य का मूल स्थान बतलाते हैं। आर्य चाणक्य नाम ही सर्वाधिक प्रचलित है। ये ब्राह्मण थे। तक्षशिला मे इनका विद्याध्ययन हुआ। बाद मे इसी विद्यापीठ मे इनकी आचार्यपद पर नियुक्ति हुई। यही से उनकी विद्वता की कीर्ति सपूर्ण भारतवर्ष में फैली। चाणक्य के समय भारतवर्ष गणराज्यो मे विघटित था। कोई भी केन्द्रीय सत्ता नही थी। इस प्रकार की परिस्थिति मे भारत की अखण्डता की सुरक्षा के लिये चाणक्य ने देश में सबल तथा सक्षम केन्द्रीय सत्ता की आवश्यकता अनुभव की। इसके लिये उन्होने मगध के तेजस्वी युवक चद्रगुप्त के नेतृत्व में क्रान्ति की योजना बनायी।

विशाखदत्त ने अपने मुद्राराक्षस नामक प्रसिद्ध नाटक में चाणक्य का चरित्र चित्रण करने का सफल प्रयास किया है। वही उनका प्रसिद्ध चरित्र माना जाता है। इतिहास तज्ञों के मतानुसार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मगध मे शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता स्थापित कर भारत की अखण्डता की रक्षा की। चाणक्य का यह महान् कार्य भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरो से लिखा गया।

चाणक्य का दूसरा महान् कार्य राजनीतिविषयक एक अतुलनीय ग्रथ "अर्थशास्त्र" की रचना। यह ग्रन्थ भारतीय राजनीति का आदर्श है। संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय में यह अतुलनीय है। इस ग्रथ के पन्द्रह प्रकरणों में राज्यव्यवहार सबधी 180 विषयों की चर्चा की गयी है।

मगध साम्राज्य के महामन्त्री बनने के पश्चात् भी चाणक्य

एक साधारणसी पर्णकुटी में ही ऋषि के समान निवास किया करते थे, राजप्रासाद में नहीं।

अवंती क्षेत्र में क्षिप्रा तथा चामला नदियों के सगम पर स्थित शंखोद्धार स्थान पर 82 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई।

चामुण्डराय - मूल नाम गोम्मट अथवा गोम्मटराय। ई 10 वीं शती। माता-कालिकादेवी। पिता-गगवश के राज्याधिकारी। महाराज मानसिंह तथा राजमल्ल द्वितीय के प्रधानमत्री। ब्रह्मक्षत्रिय वंश। गुरु-अजितसेन तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। कन्नड और संस्कृत के विद्वान। प्रसिद्ध योद्धा और सेनापति। कर्नाटक में श्रवण बेलगोल के विन्ध्यगिरि पर्वत पर भगवान् बाहुबलि की 57 फीट ऊची विशाल काय मूर्ति का निर्माण (ई 981 में) एव चन्द्रगिरि पर एक जैन मदिर का भी निर्माण कराया। पुत्र-जिनदेव। ग्रथ- चरित्रसार (चार प्रकरण)

चारलु भाष्यकार शास्त्री - समय 20 शती का पूर्वार्ध। रचना कंकणबन्ध रामायण। यह रामायण एक ही श्लोक का है, और उस श्लोक के 128 अर्थ निकलते हैं। आश्चर्यकारक तथा क्लिष्ट रचना का यह नमूना है। कवि आध्र में कृष्णा जिले के काकरपारती ग्राम-निवासी थे।

चारायण - पाणिनि पूर्वकालीन एक वैयाकरण। प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार, इनका समय ई पू 4 थी शती। ये वेद व्याख्याता, वैयाकरण व साहित्य शास्त्री थे। "लोगाक्षिगृह्यसूत्र" के व्याख्याता देवपाल (5-1) की टीका मे चारायण (अपरनाम चारायणि) का एक सूत्र व्याख्यासहित उद्धृत है। इनका उल्लेख "महाभाष्य" (1-1-73) में पाणिनि व रोढि के साथ किया गया है। वात्स्यायन-कामसूत्र व कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र (5-5) में भी किसी चारायण आचार्य के मत का उल्लेख है। चारायण को "कृष्ण यजुर्वेद" की "चारायणीय शाखा" का रचयिता भी माना जाता है, जिसका "चाराणीय मत्रार्षाध्याय" नामक अश उपलब्ध है। इनके अन्य ग्रथ हैं- चारायणीयशिक्षा व चारायणीय महिता। इन्होंने साहित्य-शास्त्र सबधी किसी ग्रथ की भी रचना की थी, जिसका उल्लेख मागरनदी कृत "नाटक-लक्षण-रत्नकोश" में है।

चारुचन्द्र रायचौधुरी - ई 19-20 शती। बगाली। एकवीरोपाख्यान (गद्य) के लेखक।

चार्वाक - ई पूर्व. 23 वीं शताब्दी। युधिष्ठिर शक 661 प्रभवनाम सवत्सर में वैशाख पौर्णिमा को दोपहर में जन्म तथा युधिष्ठिर शक 727 मे पुष्करतीर्थ के समीप यज्ञगिरि नामक पर्वत पर इनकी मृत्यु मानी जाती है। पिता-इदुकात। माता-स्रग्विणी। ई 8 वीं शताब्दी से साहित्य में चार्वाक का नाम अनेक बार आया है। प्रबोधचंद्रोदय नाटक में उल्लेख है कि लोकायतदर्शन के सस्थापक बृहस्पति के चार्वाक शिष्य थे। माधवाचार्य अपने सर्वदर्शनसग्रह में चार्वाक का उल्लेख, "नास्तिकशिरोमणि" विशेषण से करते हैं। उसी ग्रथ में चार्वाक दर्शन का परिचय मिलता है।

महाभारत में एक सन्यासी चार्वाक का उल्लेख आता है। (शाति 37,38, शल्य 65)। भारतीय युद्ध की समाप्ति पर जब युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ की तैयारी कर रहे थे, तब चार्वाक ने वहा उपस्थित होकर उनसे पूछा "रक्तपात कर और बांधवों की हत्या कर तुमने यह जो विजय पायी है, उसे सच्ची विजय कहा जायेगा क्या?" इस प्रश्न से वहा एकत्रित ब्राह्मणवृंद कहने लगा "यह दुर्योधन का मित्र चार्वाक, मनुष्य न होकर यतिवेषधारी राक्षस है"। उस पर कृष्ण ने कहा "यह श्रेष्ठ तपस्वी है, परतु ब्राह्मणों का अपमान करने के कारण इसे शाप मिला है कि इसकी मृत्यु ब्राह्मणो द्वारा ही होगी।" तदनुसार आगे चलकर, चार्वाक की मृत्यु ब्रह्मतेज से दग्ध होकर ही हुई।

महाभारत के शल्य पर्व में चार्वाक का उल्लेख इस प्रकार है

जब दुर्योधन ने देखा कि उसका विनाशकाल सन्निकट है, तब उसे अपने परिव्राजक मित्र चार्वाक का स्मरण होता है। उसके मन में विश्वास होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् चार्वाक ही उसका वीरोचित अत्यसस्कार करेगा।

प्रा आठवले इनका आविर्भावकाल, ई. 2 री शती से 7 वी शती के बीच मानते हैं।

चिन्तानरसिंह - गोदावरी (आन्ध्र) जिले के येनुगुमहल के निवासी। गणित, ज्योतिष आदि के जानकार पण्डित। बहुत काल तक विजयनगर के राजा के आश्रित। जीवन के उत्तरार्ध में सन्यास लिया। रचना - चित्सूर्योदय नाटक।

चिन्तामणि - ई 16 वीं शती (उत्तरार्ध)। सभवत शेषवशीय तथा नृसिह के पुत्र। पिता- गोदावरी परिसर छोड काशी में जा बसे थे। चितामणि न वहा तण्डनवशीय राजा गोविन्दचन्द्र के आश्रय मे "गोविन्दार्णव" नामक धर्मशास्त्रीय ग्रथ की रचना की। महाभाष्य कैयटप्रकाश के प्रणयन द्वारा इन्होंने काशी में वैयाकरण परम्परा की स्थापना की, जिसमें आगे चलकर भट्टोजी तथा नागोजी आदि विद्वान् हुए। भाई शेषकृष्ण को काशिराज गोवर्धनधारी का आश्रयप्राप्त था।

अन्य कृतिया- 1) रसमजरीपरिमल, 2) रुक्मिणीहरण (नाटक), जिसका गुजराती अनुवाद मुबई से 1873 ई में प्रकाशित हो चुका है। चितामणिकृत "महाभाष्य-कैयटप्रकाश", बीकानेर के अनूप स पुस्तकालय मे विद्यमान है।

चिन्तामणि ज्योतिर्विद् - गोविन्दपुत्र। शिवपुर निवासी। रचना = प्रस्तार-चिन्तामणि (ई 1630)।

चिन्तामणि दीक्षित - सातारा (महाराष्ट्र) के निवासी। रचनाए-सूर्यसिद्धान्तसारिणी और गोलानन्द ।

चिट्टिगुडुर वरदाचारियर- चिट्टिगुडर (आन्ध्र) की नरसिह सस्कृत कलाशाला के सस्थापक। रचनाए- वामनशतकम्,

दाशरथिशतकम्, कृष्णशतकम्, भास्करशतकम्, सुभाषितशतकम्, (तेलुगुशतककाव्यों के अनुवाद) और सुषुप्तिवृत्तम्।

चित्सुखाचार्य- समय 1220-1284 ई। अद्वैत वेदान्त के महनीय आचार्य। गुरु-ज्ञानोत्तम। तत्संबधी अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। आप अपनी मौलिक प्रमेय-बहुला कृति "तत्त्वदीपिका" (प्रख्यात नाम चित्सुखी) से विख्यात हैं जो अद्वैत वेदांत का प्रमाण-ग्रंथ है, परन्तु इनकी व्याख्याये भी कम महत्त्व की नहीं। इनमें शारीरक भाष्य की भावप्रकाशिका, ब्रह्मसिद्धि पर अभिप्रायप्रकाशिका तथा नैष्कर्म्यसिद्धि पर भावतत्त्व-प्रकाशिका पर्याप्त रूप से विख्यात हैं। इन्होंने विष्णुपुराण तथा भागवत पर भी व्याख्यायें लिखी थीं। जीव गोस्वामी द्वारा निर्दिष्ट भागवत के व्याख्याकारों का कालक्रम अज्ञात है फिर भी चित्सुखाचार्य ही भागवत के सर्वाधिक प्राचीन व्याख्यानुसार प्रतीत होते हैं।

श्रीधर स्वामी ने विष्णु पुराण के अपने व्याख्याग्रंथ "आत्मप्रकाश" के आरभ में चित्सुख-रचित व्याख्या का सकेत किया है किन्तु यह टीका उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार भागवत के व्याख्या-ग्रथ का निर्देश ही इतर टीकाग्रथो में मिलता है। समग्र ग्रथ उपलब्ध नहीं है। जीव गोस्वामी ने अपनी भागवत-व्याख्याओ में चित्सुख द्वारा निर्दिष्ट पाठ का सम्मान के साथ सकेत किया है। यदि यह टीका उपलब्ध हो तो भागवत के अर्थ-परमार्थ जानने के अतिरिक्त उसके मूल पाठ की भी समस्या का विशेष समाधान हो सकता है।

चित्सुख का समय-निर्धारण, शिलालेखों के आधार पर किया गया है। दक्षिण के दो शिलालेखों में चित्सुख का नाम मिलता है। 1220 ई के शिलालेख में चित्सुख सोमयाजी का तथा 1284 ई के शिलालेख में चित्सुख भट्टारक उपनाम नरसिह मुनि का उल्लेख है। ये दोनों ग्रथकार, प्रसिद्ध अद्वैत वेदाती चित्सुख से अभिन्न माने जाते हैं। अत· उनका समय, इन शिलालेखों के समकालीन (1220 ई 1284 ई.) माना जाता है।

चित्सुख के कुछ अन्य छोटे-बडे ग्रंथ हैं - पंचपादिका विवरण की व्याख्या "भावद्योतिनी", "न्यायमकरदटीका", "प्रमाणरत्नमाला व्याख्या", "खडनखडद्य-व्याख्यान", "अधिकरणसंगति", "अधिकरणमंजरी" और बृहत्शंकरविजय·।

चित्रसेन- ई. 17 वीं शती। बरद्वान-निवासी। जैन धर्मगुरु। रचना-चित्रचम्पू।

चित्रभानु- इस कवि के तीन काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं- (1) पाण्डवाभ्युदयम् (2) भारतोद्योतः तथा (3) तरुणभारतम्।

चिदम्बर- पिता-अनन्त नारायण। चिदम्बर का विलक्षण भाषा-प्रभुत्व लक्षणीय है। रचना- राघव-यादव-पाण्डवीयम् (सन्धानकाव्य)। इस पर पिता की टीका। अन्य रचनाएं- (1) पंचकल्याणचम्पू। इस पंचार्थश्लिष्ट काव्य में पांच देवताओं के विवाह का वर्णन श्लेषालंकार से वर्णित है। इस पर स्वय कवि की टीका है और (2) भागवत-चम्पू।

चिद्विलासयति- रचना- शंकरविजयविलासः। यह संवादात्मक काव्य है। संवादक हैं- विज्ञानकाड और तपोधन।

चिरंजीव भट्टाचार्य- समय-15 वीं शती। वास्तवनाम- रामदेव अथवा वामदेव किन्तु चिरंजीव नाम से विख्यात। शतावधानी राघवेन्द्र भट्टाचार्य के पुत्र। ढाका के नायब दीवान यशवन्तसिंह का समाश्रय प्राप्त था। मूलत· राधापुर (बंगाल) के निवासी। गोत्र-काश्यप।

कृतियां- कल्पलता, शिवस्तोत्र, शृंगार-तटिनी, माधवचम्पू और विद्वन्मोदतरंगिणी (इसमें इन्होंने अपने वंश का वर्णन किया है। दो ग्रंथ, क्रमश· कलकत्ता तथा मुंबई से प्रकाशित)।

चिरंजीव शर्मा- समय- ई 18 वीं शती। बंगाल के निवासी। कृतियां- काव्यविलास और वृत्तरत्नावली।

चूडानाथ भट्टाचार्य- ई 20 वीं शती। शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, काठमाण्डू (नेपाल) के प्राचार्य। "परिणाम" नामक सात अंकी नाटक के प्रणेता।

चैतन्य (गौरांग महाप्रभु) कृष्णचैतन्य- समय-1485-1536 ई.। गौडीय वैष्णव मत अथवा चैतन्य-मत के प्रवर्तक। वगदेशीय नदिया (नवद्वीप) के एक पवित्र ब्राह्मण-कुल में जन्म (1485 ई.)। बाल्यकाल का नाम विश्वंभर मिश्र। नवद्वीप के प्रख्यात पडित गंगादास से विद्याध्ययन। समस्त शास्त्रो में, विशेषत तर्कशास्त्र में, अत्यधिक विचक्षणता प्राप्त। अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। अपनी पाठशाला खोलकर छात्रों को ज्ञानदान का कार्य किया। पिता जगन्नाथ ने उनका नाम विश्वंभर रखा था। माता शचिदेवी उन्हें निमाई के नाम से पुकारती थीं क्यों कि उनका जन्म नीम-वृक्ष के तले हुआ था। पास-पडोस के लोग उनका गौरवर्ण देखकर उन्हें गौरहरि कहते थे।

गौराग प्रभु के नाना महान् ज्योतिषी थे। गौराग के जन्म के पश्चात् उसके शरीर के शुभचिन्ह देखकर उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि एक महापुरुष अवतरित हुआ है।

अपने पिता के श्राद्ध हेतु 1507 ई. में गया धाम गये। वहां ईश्वरपुरी से वैष्णव-दीक्षा ली। फिर पुरीजी के गुरुभाई केशव भारती से 1508 ई. में संन्यासदीक्षा ग्रहण की। आप तभी से कृष्णचैतन्य के नाम से विख्यात हुए और वृद्धा माता तथा तरुण पत्नी के स्नेह-ममत्व को भुलाकर, राधाकृष्ण की भक्ति के प्रचार में जुट गए।

चैतन्य महाप्रभु ने अखिल भारत के विख्यात तीर्थों की यात्रा करते हुए भक्ति का प्रचार किया। सन् 1510-11 ई. में उत्तर भारत की यात्रा करते समय इनका ध्यान वृंदावन के उद्धार की ओर गया। अतः इन्होंने अपने सहपाठी लोकनाथ

गोस्वामी को इस कार्य हेतु वृंदावन भेजा। ये स्वय भी काशी, प्रयाग होते हुए वृदावन पहुचे और कुछ महीनो तक वहा निवास किया। किन्तु इनकी लीला-स्थली बनी जगन्नाथपुरी, जहा रथ-यात्रा के अवसर पर बगाल के भक्तो की अपार भीड़ जुटती थी।

इनसे सबधित काशी की दो घटनाए चैतन्य चरितामृत में उल्लिखित हैं- (1) बगाल के नवाब हुसेनशाह के प्रधान अमात्य सनातन को भक्ति का उपदेश और (2) स्वामी प्रकाशानद सरस्वती की शास्त्रार्थ में पराजय। प्रकाशानद महान् अद्वैत वेदाती थे, किन्तु महाप्रभु के उपदेश से कृष्णभक्त बने और प्रबोधानद के नाम से विख्यात हुए।

महाप्रभु चैतन्य, श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं। भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने लिखा है- "जसुमतिसुत सोई सचीसुत गौर भये"। सप्रदाय मे भी अनतसहिता, शिवपुराण, विश्वसारतत्र, नृसिंहपुराण तथा मार्कंडेयपुराण के तत्तत् वचनो के अनुसार इन्हें अवतार माना जाता है। जीव गोस्वामी ने भी भागवत की टीका "क्रमसदर्भ" के आरभ में ही इनके अवतार की सूचना, भागवत के प्रख्यात श्लोक (12-32) के द्वारा दिये जाने का उल्लेख किया है। साथ ही अगले पद्यों में इस श्लोक का अर्थ विशेष देते हुए उन्होने उनका निर्गलितार्थ निम्न प्रकार दिया है-

अन्त कृष्ण बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादिवैभवम्।
कलौ सकीर्तनाद्यै स्म कृष्णचैतन्यमाश्रिता ।।

चैतन्य के जीवन-काल में ही बहुत से लोगो को उनके अवतार होने मे विश्वास हो गया था परन्तु उनकी मूर्ति की पूजा सप्रदाय में कब आरभ हुई इसका निर्णय कठिन है। इस बारे में वशीदास और नरहरि सरकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय माना जाता है। "वशी-शिक्षा" के अनुसार वशीदास ने चैतन्य की मूर्ति-पूजा का प्रचार किया। इन्होने चैतन्य की धर्मपत्नी श्रीविष्णुप्रिया देवी के लिये चैतन्य की काष्ठ-मूर्ति बनाई और नरहरि सरकार ने चैतन्य के विषय मे बहुत से पदो की रचना की तथा चैतन्य-पूजा के विधिविधानो को व्यवस्थित किया। परन्तु चैतन्यमत का शास्त्रीय रूप, विधि-विधानों की व्यवस्था, भक्तिशास्त्र के सिद्धान्तो का निर्णय बंगाल में न होकर, सुदूर वृदावन में जिन विद्वान गोस्वामियो के द्वारा किया गया, वे छह गोस्वामी (षट् गोस्वामी के नाम से) प्रसिद्ध हैं।

चैतन्य महाप्रभु का कोई भी ग्रंथ प्राप्त नहीं होता। केवल 8 पद्यों का एक ललित संग्रह ही उपलब्ध है। ये 8 पद्य, चैतन्य द्वारा समय-समय पर भक्तों से कहे गये थे। निम्न पद में चैतन्य के उपदेश का सार है-

जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव सेवन,
इहा इते धर्म नाई सुनो सनातन।

सनातन गोस्वामी को काशी में दो मास तक उपदेश देने के पश्चात् चैतन्य ने उक्त पद को ही सब का सार बतलाया था। डॉ राजवश सहाय "हीरा" के संस्कृत साहित्य कोश के अनुसार चैतन्य के शिष्यो ने "दशमूलश्लोक" को इनकी रचना माना है।

चोक्कनाथ- ई 17 वीं शती। गदाचार्य तिप्पाध्वरीन्द्र के पचम पुत्र। गुरु-स्वामी शास्त्री व सीताराम शास्त्री। बधुद्वय-कुप्पाध्वरी और तिरुमल शास्त्री। पिता के अग्रहार शाहजीपुरम् के निवासी। तजौर के राजा शाहजी भोसले से समाश्रय प्राप्त। दक्षिण कर्नाटक के बसव-भूपाल की राजसभा में भी कुछ समय तक आश्रय। कृतिया- (दो नाटक) सेवान्तिका-परिणय तथा कान्तिमती-शाहराजीय, और रसविलास (भाण)।

छज्जूराम शास्त्री- जन्म-शेखपुर लावला (कर्नाल जनपद, कुरुक्षेत्र) में, सन् 1895 में। पिता-मोक्षराम। आशुकवि। "कविरत्न" की उपाधि से अलंकृत। षड्दर्शन-विषयक पांडित्य के कारण, 25 वर्ष की अवस्था में शंकराचार्य द्वारा "विद्यासागर" की उपाधि प्राप्त। यमुनातटवर्ती गौरिशकर मन्दिर विद्यालय में अध्यापक।

रचना- "सुलतानचरितम्" (महाकाव्य)। अनुप्रासयुक्त। कल्पना नैषध के समान। प महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कवि की बडी प्रशसा की है। अन्य रचनाए- (1) दुर्गाभ्युदय (नाटक), (2) छज्जुराम-शतकत्रयम्, (3) साहित्यबिन्दु, (4) मूलचन्द्रिका, (न्यायमुक्तावली की टीका), (5) सरला नामक न्यायदर्शन की वृत्ति, (6) सारबोधिनी (सदानन्द कृत वेदान्तसार की टीका)। सभी प्रकाशित।

अप्रकाशित रचनाए- (1) निरुक्त-पचाध्याय की परीक्षा-टीका, (2) व्याकरण महाभाक्य के दो आह्निको की परीक्षा-टीका, (3) कुरूक्षेत्र-माहात्म्य टीका और, (4) प्रत्यक्षज्योतिषम्। "साहित्यबिन्दु" के सम्बन्ध मे किसी टीकाकार ने कहा है कि साहित्य-सर्वज्ञ प छज्जूरामजी के आने से पडितराज जगन्नाथ और विश्वनाथ निरर्थक हुए।

छत्रसेन- गुरु- समन्तभद्र। रचनाए- मेरुपूजा, पार्श्वनाथपूजा, अनन्तनाथ-स्तोत्र आदि। समय-ई 18 वीं शती।

छत्रे, विश्वनाथ- पिता-केशव। जन्म-नासिक (पचवटी) में दि 27 अक्तूबर 1906। माध्यमिक शिक्षा के बाद रेल-विभाग मे कर्मचारी। सगीत-कला मे कुछ नैपुण्य प्राप्त किया। हरिकीर्तन और प्रवचन के कार्यक्रम सेवाकाल में करते थे। 36 वर्षों की सेवा के बाद अवकाश प्राप्त होने पर सस्कृत साहित्य रचना मे उत्तरायुष्य सफल किया। निवास स्थान- कल्याण (जिला-ठाणे महाराष्ट्र)। ग्रंथ- **श्रीसुभाषचरितम्**, काव्यत्रिवेणी (इसमें ऋतुचक्रम्, गगातरगम् और गोदागौरवम् इन तीन खण्ड काव्यो का अन्तर्भाव है)। **सिद्धार्थप्रव्रजनं** (नाटक), अपूर्व शातिसग्राम· (गाधीजी की दाण्डीयात्रा पर

रचित एकांकिका), संगीत-शिक्षणम् (तीन अंकी नाटक), रणरागिणी लक्ष्मीः (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के संबंध में एकांकिका), वधूपरीक्षणम् (एकांकिका)

श्री छत्रे का बहुत-सा साहित्य अमृतलता, विश्वसंस्कृतम् गुरुकुलपत्रिका, पुरुषार्थ, एकता इत्यादि प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में सतत प्रकाशित होता रहा। श्री. छत्रे ने मराठी में संस्कृत साहित्य से संबंधित कुछ छात्रोपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं। मुंबई-आकाशवाणी से आपके जवाहरस्वर्गारोहणम्, नाट्यरूप-मेघदूतम, कीचकहननम्, नन्दिनीवरप्रदानम्, सिद्धार्थ-प्रव्रजनम्, श्रीकृष्णदानम्, संन्यासि-सतानम्, लुण्टाको महर्षिः परिवर्तितः, येशुजन्म इत्यादि नभोनाटक यथावसर ध्वनिक्षेपित हुए थे। समर्थ रामदास का मनोबोध, मोरोपंत की केकावली और ग्रे कवि की एलिजी जैसे प्रसिद्ध काव्यो के संस्कृत अनुवाद श्री छत्रे ने किए हैं। इसके अतिरिक्त मराठी में आपकी 25 पुस्तकें प्रकाशित हुई। अनेक सस्थाओं द्वारा आपका सम्मान हुआ। रेल-विभाग के कर्मचारी-वर्ग में श्री छत्रे सस्कृत साहित्य के एकमात्र उपासक रहे।

जगज्जीवन (पं.) - जन्म 1704 ई। मारवाड-शासक अजितसिंह के समकालीन। अजितसिंह ही इनकी रचना के प्रतिपाद्य विषय हैं। आपके द्वारा रचित "अजितोदय-काव्यम्", 23 सर्गो का महाकाव्य है।

जगज्ज्योतिर्मल्ल- नेपाल नरेश। पिता-त्रिभुवनमल्ल। कार्यकाल-ई 1617-1633। सगीतज्ञ। कृतिया- पद्मश्रीज्ञान लिखित "नागर-सर्वस्व" पर टीका, सगीत-सारसग्रह, स्वरोदय-दीपिका, गीत-पचाशिका, सगीत-भास्कर और श्लोक-सग्रह।

जगदीश तर्कपंचानन - समय ई. 16 वीं शती का उत्तरार्ध। काव्यप्रकाश की "रहस्य-प्रकाश" नामक टीका के कर्ता।

जगदीश भट्टाचार्य (तर्कालंकार) - ई 17 वीं शती। मथुरानाथ तर्कवागीश के पश्चात् हुए एक श्रेष्ठ नैयायिक। इन्होंने श्री रघुनाथ शिरोमणि के टीका-ग्रंथ दीधिति पर "जागदीशी" नामक विस्तृत टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त तर्कामृत व शब्दशक्तिप्रकाशिका नामक दो ग्रथो की रचना भी आपने की। इनमें से शब्दशक्ति-प्रकाशिका को जगदीश भट्टाचार्य का सर्वस्व माना जाता है। इसमें साहित्यिको की व्यजना नामक शब्द-शक्ति का खडन किया गया है। शब्द-शक्तिविषयक यह अत्यत प्रामाणिक ग्रथ है। नवद्वीप (बगाल) के प्रसिद्ध नैयायिकों मे भट्टाचार्यजी का स्थान अत्यत महत्त्वपूर्ण है। इनके कुछ अन्य ग्रथों के नाम हैं . तत्त्वचितामणिमयूख, न्यायादर्श और पदार्थतत्त्वनिर्णय।

जगदीश्वर भट्टाचार्य -महामहोपाध्याय। तर्कालंकार। ई. 18 वीं शती। "हास्यार्णव नामक प्रहसन के प्रणेता।

जगदेकमल्ल चालुक्य - कल्याण के चालुक्यवंशीय राजा (ई स. 1138 से 1150)। तीसरे सोमेश्वर पश्चिम चालुक्य के सुपुत्र। रचना- "संगीतचूडामणि"।

जगद्धर - भवभूतिकृत "मालती-माधव" प्रकरण के टीकाकार। पिता-महामहोपाध्याय पण्डितराज महाकविराज धर्माधिकारी श्री रत्नधर पण्डित। माता- दमयन्ती। रत्नधर के पूर्वज थे विद्याधर, रामेश्वर। ये सभी मीमासक विद्वान थे।

समय 15 वीं शती। अन्य कृतिया- सरस्वती-कंठाभरण की टीका, सगीत-सर्वस्व तथा शिव-स्तोत्र।

जगन्नाथ - इस मैथिल कवि ने अपने 20 सर्गयुक्त महाकाव्य "ताराचन्द्रोदयम्" में ताराचन्द्र नामक एक साधारण राजा का चरित्र लिखा है।

जगन्नाथ - भट्टारक नरेन्द्र-कीर्ति के शिष्य। खण्डेलवाल-वश। गोत्र-लोगाणी। पिता-सोमराज श्रेष्ठी। भाई- वादिराज। तक्षक (वर्तमान नाम टोडा) नगर-निवासी। राजा जयसिह द्वारा सम्मानित। समय 17 वीं शती का अन्त और 18 वी शती का प्रारम्भ। रचनाए- (1) चतुर्विंशति सन्धान (स्वोपज्ञ टीका सहित), (2) सुखनिधान, (3) ज्ञानलोचनस्तोत्र, (4) शृंगारसमुद्रकाव्य, (5) श्वेताम्बरपराजय, (6) नेमिनरेन्द्र स्तोत्र, (7) सुपेष्ट-चरित्र और (8) कर्मस्वरूपवर्णन। ये प्राकृत व सस्कृत दोनों के विद्वान थे।

जगन्नाथ- फतेहशाह (1684-1716 ई) के समाश्रित। बगाल के निवासी। वंश-तीरभक्ति। पिता-पीताम्बर। अनेक रचनाओं में से केवल "अतन्द्र-चन्द्र प्रकरण" उपलब्ध है।

जगन्नाथ - [1] तजौर के महाराज सरफोजी भोसले(1711-1728 ई) के मत्री श्रीनिवास के पुत्र। काकलवशीय। चाचा-रघुनाथ, न्यायशास्त्र के पण्डित। स्वय राजतन्त्र में नियुक्त। सम्भवत. पिता के पश्चात् राजमत्री पद पर विराजमान।

कृतिया- अनगविजय (भाण), शृगारतरगिणी (भाण) तथा शरभराज- विलासकाव्य (इसमें गीवार्ण विद्यारसिक तथा "सरस्वती महल" नामक सस्कृत ग्रथालय के सस्थापक सरफोजी राजे भोसले का चरित्र वर्णित है। रचना का काल 1722 ई)।

[।।] सरफोजी भोसले के मन्त्री बालकृष्ण का पुत्र। रचना- (1) रतिमन्मथम्। (2) वसुमतीपरिणयम्।

जगन्नाथ - तजौर के महाराजा प्रतापसिह (1739-1763 ई) के समाश्रित। विश्वामित्र गोत्री। पिता- बालकृष्ण राजमत्री थे। गुरु- कामेश्वर। प्रतापसिह से अनुज्ञा लेकर काशीयात्रा। लौटते समय पुणे के पेशवा बालाजी बाजीराव से सम्पर्क प्राप्त हुआ। वहीं "वसुमतीपरिणय" नामक नाटक की रचना, जिसका प्रथम अभिनय पेशवा ने स्वय देखा था।

कृतियां- वसुमतीपरिणय तथा रतिमन्मथ (नाटक), अश्वधाटी तथा भास्कर-विलास (काव्य) और हृदयामृत तथा नित्योत्सव-निबन्ध (तांत्रिक ग्रथ)।

जगन्नाथ - जन्म- सन् 1758 में, गुजरात के न्हानी बोइऊ ग्राम मे। आशुकवि। भावनगर के राजा बख्तसिंह के राजकवि। बडोदा-नरेश के द्वारा भी सम्मानित। मूर्तिकला, सगीत, चित्रकला तथा नृत्य में प्रवीण। आपकी अनेक कृतियो में प्रसिद्ध हैं- नागरमहोदय, श्रीगोविन्दरावविजय, रमा-रमणाधिसरोजवर्णन (विष्णुस्तुति)। वृद्धवशवर्णन, 1912 मे भावनगर से प्रकाशित) तथा सौभाग्यमहोदय (नाटक)।

जगन्नाथ - समय- 18 वी शताब्दी। जयपुरनिवासी गणितज्ञ। "सिद्धान्त-सम्राट्" तथा "सिद्धान्त-कौस्तुभ" नामक दो ज्योतिर्गणित विषयक ग्रथो के रचयिता।

जगन्नाथ - अरविन्दाश्रम के शिष्य। माताजी की फ्रान्सीसी भाषा मे रचित नीतिकथाओं का सस्कृत अनुवाद (मूल पुस्तक "बेलजिस्त्वार" कथामजरी के नाम से प्रकाशित) अन्य रचनाए- श्रीमातु सूक्तिसुधा। (माताजी की फ्रान्सीसी सुभाषितो का प्रासादिक अनुवाद) और अग्निमत्रमाला- वेदो के अग्निविषयक मत्रो पर अरविदमतानुसार भाष्य।

जगन्नाथ तर्कपंचानन - समय - ई 18 वीं शताब्दी। वगप्रदेश-वासी। विलियम जोन्य को सूचना पर हिंदू न्यायविधान पर "विवादभगार्णव"- ग्रथ लिखा। अग्रेज न्यायाधीशो को न्यायदान के कार्य मे इस ग्रथ का बहुत उपयोग हुआ।

जगन्नाथ दत्त - ई 19-20 शती। बगाल के निवासी। कृति- चिकित्सारत्न।

जगन्नाथ पंडितराज - आन्ध्र प्रदेश के मुगुज नामक ग्राम मे जन्म। समय- 1590 से 1665 ई। एक महान् काव्यशास्त्री व कवि। इनका युगप्रवर्तक ग्रथ "रसगगाधर" है, जो भारतीय आलोचना-शास्त्र की अतिम प्रौढ रचना मानी जाती है। पडितराज तेलग ब्राह्मण तथा मुगलबादशाह शाहजहा के सभा-पडित थे। इन्हे शाहजहा ने ही "पडितराज" की उपाधि से विभूषित किया था। इनके पिता का नाम पेरूभट्ट (या पेरमभट्ट) और माता का नाम लक्ष्मी था।

इसी प्रकार पडितराजकृत "भामिनीविलास" से ज्ञात होता है (4-45) कि इन्होने अपनी युवावस्था दिल्लीश्वर शाहजहा के आश्रय मे व्यतीत की थी। ये 4 राजपुरुषो के आश्रय मे रहे। वे हैं- जहागीर, जगत्सिह, शाहजहा व प्राण-नारायण। पडितराज ने प्रारभ के कुछ वर्ष जहागीर के आश्रय में बिताये। 1627 ई के बाद ये उदयपुर नरेश जगत्सिह के यहां चले गए। कुछ दिन वहा रहे और उनकी प्रशसा में "जगदाभरण" की रचना की। 1628 ई में जगत्सिह गद्दी पर बैठे। शाहजहा भी 1628 ई में ही गद्दी पर बैठे थे। कुछ दिनो बाद शाहजहा ने उन्हे अपने यहा बुला लिया। किन्तु कुछ विद्वानो के मतानुसार इन्हे जगत्सिह के यहा से आसफखा ने (काश्मीर के सूबेदार के मामा) अपने पास बुलाया और ये उसी के आश्रय मे रहे तथा शाहजहा ने आसफखां की प्रेरणा से इन्हें अपने यहां बुलाया और "पडितराज" की उपाधि देकर इन्हें सम्मानित किया। शाहजहां की मृत्यु के बाद ये एकाध वर्ष के लिये प्राण-नारायण के पास गए होगे और फिर वहा से आकर अपनी वृद्धावस्था मथुरा में बिताई होगी।

पडितराज की रचनाए- रसगंगाधर, **चित्रमीमांसाखण्डन**, गगालहरी, (या पीयूषलहरी), अमृतलहरी, करुणालहरी (या विष्णुलहरी), लक्ष्मीलहरी, सुधालहरी, आसफ-विलास (शाहजहा के मामा आसफखा का चरित्र- आख्यायिका के माध्यम से। यह ग्रथ अपूर्ण है), प्राणाभरण (कामरूप नरेश प्राण-नारायण की प्रशस्ति), जगदाभरण (उदयपूर के राजा जगत्सिंह का वर्णन), भामिनीविलास (फुटकल पद्यो का का संग्रह), मनोरमाकुचमर्दन (व्याकरण विषयक टीका-ग्रथ, भट्टोजी दीक्षित के मनोरमा-ग्रथ का खंडन), यमुनावर्णनचपू, अश्वधाटी पण्डितराज शतक (अनुपलब्ध) आदि।

बादशाह शाहजहां की लावण्यवती मानसकन्या लवंगी और जगन्नाथ पण्डित की प्रणय-कथा बहुत प्रसिद्ध है।

जगन्नाथ मिश्र - ई 18 वीं शती। बगाल के निवासी। कृति-छन्द पीयूष।

जगन्नाथशास्त्री - समय 1897 ई। प्रतापगढ के राजपण्डित। इन्होंने हरिभूषणकाव्य, उत्सवप्रतान, काव्य-कुसुम इत्यादि कृतियो की रचना की। अनेक सस्कृत पत्र-पत्रिकाओ में भी आपकी रचनाए प्रकाशित हुई हैं।

जगन्मोहन - चौहानवशीय राजा बैजल के आदेश पर इन्होंने "देशावलिविवृति" की रचना की। इसमें समकालीन 56 राजाओं का चरित्र-वर्णन तथा ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख होने से, तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश पडता है।

जग्गू शिंगरार्य- जन्म- सन् 1902 मे। मृत्यु-सन् 1960 में। यदुशैलपुर (मेलकोटे) के निवासी। कृतिया-युवचरित (नाटक), पुरुषकार-वैभवस्तोत्र, अन्योक्तिमाला, ऋतुवर्णन, ग्रन्थिज्वर- चरित, वेदान्तविचारमाला और शिबिवैभव (नाटक)। इनमें से शिबिवैभव को छोड अन्य सभी रचनाए अप्रकाशित हैं।

जग्गू श्रीबकुलभूषण - जन्म 1902 में। पूर्ण नाम- जग्गू अलवारैय्यगार। पिता-श्रीनारायणार्य। पितामह- महाकवि जग्गू श्रीशिगरार्य। कुलनाम-बालधन्वी, गोत्र कौशिक। इनके चाचा मैसूर महाराज के राजपण्डित थे। आप यदुगिरि (मैसूर) की सस्कृत महापाठशाला में साहित्य के अध्यापक रहे। 17 वें वर्ष से सस्कृत रचना प्रारभ।

कृतिया- (नाटक)- अद्भुतांशुक, मजुलमजीर, प्रतिज्ञाकौटिल्य, सयुक्ता, प्रसन्नकाश्यप, स्यमतक, बलिविजय, अमूल्यमाल्य, अप्रतिमप्रतिम, मणिहरण, प्रतिज्ञाशान्तनव, नवजीमूत, यौवराज्य, वीरसौभद्र, अनगदा (महाकाव्य) अद्भुतदूत (प्रकाशित) तथा अप्रकाशित काव्य- करुणरस- तरंगिणी, शृंगारलीलामृत और

पथिकोक्तिमाला। (गद्य)- यदुवंशचरित (प्रकाशित) और उपाख्यान-रत्नमंजूषा (अप्रकाशित)। (चम्पू) भारत-संग्रह (प्रकाशित) व यतिराज (अप्रकाशित)। इनके अतिरिक्त चार दण्डक स्तोत्र। कुल 30 रचनाएं।

जटाधर - ई. 15 वीं शती। फेणी नदी के तट पर स्थित चाटीग्राम के निवासी। कृति-अभिधानतन्त्र।

जटासिंह नन्दि - जिनसेन, उद्योतनसूरि, चामुण्डराय आदि आचार्यों द्वारा उल्लिखित। कर्नाटकवासी। कोप्पल में समाधिमरण। लहराती हुई लम्बी जटाओं के कारण जटिल या जटाचार्य कहलाये थे। समय- ई 7 वीं शताब्दी का अन्तिम पाद। रचना- वराङ्गचरित नामक पौराणिक महाकाव्य (31 सर्ग और 1805 श्लोक)। जैन पुराणकथा पर महाकाव्य आधारित है।

जनार्दन - ई 13 वीं शती। बंगाल-निवासी। रचना- रघुवंश।

जन्न - समय- 12-13 वीं शती। कर्नाटकनिवासी। वश कम्मे। पिता-शकर। माता- गगादेवी। गुरु- नागवर्म। इनके पिता शंकर, हयशालवंशीय राजा नरसिह के सेनापति थे। जन्नकवि, सूक्तिसुधार्णव ग्रथ के कर्ता मल्लिकार्जुन के साले और शब्दमणिदर्पण के कर्ता केशिराज के मामा थे। चोलकुल नरसिह देव के सभाकवि। दुर्ग में जैन मंदिर के निर्माता। रचना- यशोधरचरित्र और अनन्तनाथ-पुराण।

जमदग्नि - पिता- भृगुकुल के ऋचीक ऋषि (पद्मपुराण के अनुसार भृगु)। माता-सत्यवती। पत्नी-रेणुका। रुमण्वान, सुषेण, वसुमान्, विश्वावसु तथा परशुराम नामक पुत्र। भिन्न-भिन्न पुराणो मे इनका चरित्र भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित है।

ऋग्वेद के नवम मण्डल के 62 तथा 65 एव दसवे मण्डल के 110 वें सूक्त की रचना इन्होंने की है।

जमदग्नि नाम के अनुरूप क्रोधी थे। एक बार पत्नी को सरोवर से स्नान कर लोटने में देरी हुई, तो इन्होंने पुत्रों को अपनी माता का वध करने की आज्ञा की परन्तु उस का आज्ञा पालन केवल परशुराम ने किया। इस लिये जमदग्नि ने शेष चार पुत्रो का वध कर डाला। जमदग्नि परशुराम पर अत्यन्त प्रसन्न हुये थे। अत· उन्होंने उसे वर मांगने के लिये कहा। तब परशुराम ने अपनी मातासमेत चारो भाइयों को जीवित करने की प्रार्थना की। जमदग्नि ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपनी पत्नी और चारों पुत्रो को पुनर्जीवित किया।

जयंतभट्ट - "न्याय-मजरी" नामक प्रसिद्ध न्यायशास्त्रीय टीका-ग्रंथ के प्रणेता। समय-नवम शतक का उत्तरार्ध। भट्टोजी ने अपने इस ग्रथ में "गौतम-सूत्र" के कतिपय प्रसिद्ध सूत्रो पर प्रमेयबहुला वृत्ति प्रस्तुत की है। इसमें चार्वाक, बौद्ध, मीमासा, वेदान्त-मतावलंबियों के मतो का खंडन किया है। "न्याय-मंजरी" में वाचस्पति मिश्र व ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन का उल्लेख होने के कारण इनका समय नवम शतक का उत्तरार्ध सिद्ध होता है। आपकी यह कृति न्यायशास्त्र पर एक स्वतंत्र ग्रथ के रूप में प्रतिष्ठित है।

जयन्त- 16 वीं शती। तत्त्वचन्द्रिका नामक प्रक्रिया कौमुदी की टीका के लेखक।

जयकान्त - रचनाएं हैं- (1) "ध्रुवचरितम्" (2) "प्रह्लाद चरितम्" (3) "अजामिलोपाख्यानम्"। (4) गोवर्धन कृष्ण चरितम्।

जयकीर्ति - कर्नाटकवासी। समय- ई 10 वीं शती। ग्रथ- छन्दोऽनुशासन"। इनमें वैदिक छन्दो को छोडकर आठ अध्यायो में विविध लौकिक छदो का विवरण किया है। असग कवि ने इनका उल्लेख किया है।

जयतीर्थ - समय- लगभग 1365-1388। इनके जीवन की सामान्य घटनाओ का ज्ञान, उनके "दिग्विजय-ग्रथ" से भली-भाति प्राप्त होता है। तदनुसार उनका पूर्वाश्रम का नाम धोडोपत रघुनाथ था। महाराष्ट्र में पढरपुर से लगभग 12 मील की दूरी पर स्थित एक गाव में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता जमीनदार थे। इनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा अच्छी हुई थी। 20 वर्ष की आयु मे ही इनके जीवन मे आध्यात्मिक मोड आया। एक बार घोडे पर सवार होकर ये कहीं जा रहे थे। प्यास जोरो से लगी थी। अत समीपस्थ पर्वत की तलहटी से बहने वाली नदी मे, घोडे पर सवारी कसे ही ये भीतर चले गए और घोडे की पीठ पर बैठे-बैठे ही मुह नवाकर इन्होंने अपनी प्यास बुझाई। नदी के दूसरे किनारे से एक महात्मा इन्हें देख रहे थे। महात्मा के बुलाने पर ये उनके पास गए। उन्होने कुछ प्रश्न पुछे। फलत· इनको अपने पूर्व जन्म की घटनाए स्मरण हो आईं। महात्मा थे माध्व-मत की गुरु-परपरा मे 5 वे गुरु अक्षोभ्यतीर्थ। उन्होने दीक्षा देकर इन्हे अपना शिष्य बनाया और नाम रखा जयतीर्थ। प्रसिद्ध अद्वैती विद्वान विद्याचरण स्वामी के ये समकालीन थे। इन्होने अपने ग्रथो मे श्रीहर्ष, आनदबोध एव चित्सुख के मतो को उद्धृत कर, उनका खडन किया है।

जयतीर्थ ने मध्वाचार्य के ग्रथो पर नितात प्रौढ एव प्रमेय-संपन्न टीकाएं लिखी हैं, उनके सिद्धातो को अपने व्याख्यानों द्वारा विशद, बोधगम्य तथा हृदयाकर्षक बनाया और नवीन ग्रंथों का निर्माण कर मध्व-मत को शास्त्रीय मान्यता के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया। जयतीर्थ द्वारा प्रणीत ग्रथो की संख्या 20 है जिनमें प्रमुख हैं- तत्त्व-प्रकाशिका, न्यायसुधा, गीताभाष्य-प्रमेय-टीका, गीता-तात्पर्य-न्यायदीपिका, वादावलि और प्रमाण-पद्धति। प्रमाण-पद्धति पर 8 टीकाए प्राप्त हुई हैं। मध्व तथा व्यासराय के साथ जयतीर्थ द्वैत-संप्रदाय के "मुनित्रय" में समाविष्ट होते हैं। जयतीर्थ की ऋक्भाष्य-टीका पर नरसिहाचार्य की विवृत्ति तथा बारायणाचार्य की भाष्यटीकाविवृत्ति प्रसिद्ध है।

जयतीर्थ ने कई स्थलों पर सायणाचार्य का खण्डन किया

है, ऐसा माना जाता है। यदि वह सच हो, तो जयतीर्थ का समय 14 वीं शती के बाद मानना उचित होगा।

जयदेव - छन्द शास्त्र के रचयिता। अभिनवगुप्त द्वारा उल्लिखित। समय ई की प्रारम्भ की शतिया। यह रचना सूत्ररूप होने से इनका समय सूत्रकाल में ईसा पूर्व 2 री या 3 री शती हो सकता है।

जयदेव (पीयूषवर्ष) - "चद्रालोक" नामक लोकप्रिय काव्यशास्त्रीय ग्रथ के प्रणेता। "गीत-गोविद" के रचयिता जयदेव से सर्वथा भिन्न। इन्होंने "प्रसन्न-राघव" नाटक की भी रचना की है। तत्कालीन समाज मे ये "पीयूषवर्ष" के नाम से विख्यात थे- "चंद्रालौकममु स्वय वितनुते पीयूषवर्ष कृती"- (चद्रालोक 1-2)। पिता- महादेव। माता- सुमित्रा। - "प्रसन्न राघव नाटक (हिन्दी अनुवाद सहित) चौखबा से प्रकाशित हो चुका है।

ये सभवत 13 वीं शताब्दी के मध्य चरण में रहे होगे। "प्रसन्नराघव" के कुछ श्लोक "शार्ङ्गधरपद्धति" में उद्धृत हैं जिसका रचना-काल 1363 ई है। आचार्य जयदेव ने मम्मट के काव्यलक्षण का खडन किया है, अत वे उनके परवर्ती हैं। इन्होंने "विचित्र" एव विकल्प" नामक अलकारो के लक्षण रुय्यक के ही शब्दो मे दिये हैं। अत ये रुय्यक के भी पश्चाद्वर्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रकार इनका समय रुय्यक (1200 ई) एव शार्ङ्गधर (1350 ई) का मध्यवर्ती निश्चित होता है। कुछ विद्वान इन्हें तथा मैथिल नैयायिक पक्षधरमिश्र अभिन्न सिद्ध करना चाहते हैं। पर अब यह प्राय निश्चित हो गया है कि ये दोनो भिन्न व्यक्ति थे। पक्षधर मिश्र का समय 1464 ई है।

कौण्डिण्य गात्रीय आचार्य जयदेव हरि मिश्र के शिष्य थे। एक तर्कशास्त्रज्ञ के रूप में इन्होंने गगेश उपाध्याय के "तत्त्वचितामणि" पर "आलोक" नामक टीका लिखी है जो इनके "प्रसन्नराघव" मे उल्लेख से विदित होती है। ये दक्षिण भारत के राजाश्रय में रहे थे।

जयदेव - एक युग-प्रवर्तक गीतिकार। इन्होंने "गीतगोविंद" नामक एक लोकप्रिय गीति-काव्य की रचना की है। ये बगाल के राजा लक्ष्मण सेन के सभा-कवि थे। इनका समय ई. 12 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। "गीत-गोविद" मे राधा कृष्ण की ललित लीला का मनोरम व रसस्निग्ध वर्णन है। इस पर राजस्थान के राजा कुभकर्ण व एक अज्ञातनामा लेखक की टीकाए प्राप्त होती हैं, जो निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित है। जयदेव का निवास-स्थान केंदुबिल्व या कदुली (बगाल) था, पर कतिपय विद्वान इन्हें बगाली न मानकर उत्कल-निवासी कहते हैं। जयदेव के सबध मे कतिपय प्रशस्तियां प्राप्त होती हैं, तथा कवि ने स्वय भी अपनी कविता के सबध में प्रशसा क वाक्य कहे हैं -

यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलासकलासुकुतूहलम्।
कलितकौमलकातपदावलीं श्रृणु तदा जयदेव-सरस्वतीम्।
(स्ववचन गीत-गोविंद, 1-3)

साध्वी माध्वीक चिता न भवति भवत शर्करे कर्कशासि,
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृतमृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते।
माकंद क्रद, काताधर धरणितलं गच्छ, यच्छन्ति भाव,
यावच्छृङ्गारसारं स्वयमिह जयदेवस्य विश्वग्वचासि।।
(गीत-गोविंद)

जयदेव के पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रमादेवी था। बहुत दिनों तक इस दंपति को संतान नहीं हुई। इसके लिये उन्होंने जगन्नाथ की आराधना की। जगन्नाथ की कृपा से उन्हें पुत्रप्राप्ति हुई। जयदेव के समय उत्कल पर कामदेव का शासन था। कतिपय विद्वानों के अनुसार, उन्हीं के आश्रय में रहते हुये जयदेव ने "गीत-गोविंद" की रचना की। कहते हैं कि गीतगोविंद के श्रवण के बिना राजा कामदेव अन्नग्रहण नहीं करते थे।

किंतु जयदेव के विवाह के सबंध में एक किंवदती है- केंदुपाटण (किंदुबिल्व) में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह निसतान था। उसने भगवान् जगन्नाथ से मनौती की कि यदि उसे संतान हुई तो वह उसे भगवान् के चरणों में समर्पित कर देगा। कुछ दिनों पश्चात् उसके यहां एक कन्या ने जन्म लिया। उसने उसका नाम पद्मावती रखा, और उसके युवा होने पर उसे मदिर के पुजारी को सौंप दिया। रात को पुजारी ने स्वप्न देखा कि भगवान् जगन्नाथ उसे आदेश दे रहे हैं कि वे पद्मावती को जयदेव को समर्पित कर दें। भगवान के आदेशानुसार दूसरे दिन प्रात पुजारी पद्मावती को अपने साथ लेकर जयदेव के पास पहुचा। जयदेव गाव के बाहर कुटिया में सन्यस्त वृत्ति से रहते थे। पुजारी ने अपने स्वप्न की बात उनसे कही। जयदेव को उस पर विश्वास नहीं हुआ पर पुजारी पद्मावती को वहीं छोडकर चला गया। अंतत अनिच्छापूर्वक जयदेव को उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करना पडा।

पद्मावती के पातिव्रत्य के सबध में भी एक बहुत ही अद्भुत आख्यायिका प्रचलित है ·

एक बार राजा लक्ष्मणसेन जयदेव के साथ शिकार खेलने गये। इधर रनिवास में लक्ष्मणसेन की रानी और पद्मावती वार्तालाप में मग्न थीं। रानी को पद्मावती के पातिव्रत्य की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसने एक दूत के साथ कानाफूसी कर षडयत्र रचा।

कुछ समय पश्चात् दूत दौडा-दौडा रनिवास में आया और उसने शिकार खेलते समय जयदेव की मृत्यु हो जाने की वार्ता सुनाई। वह समाचार सुनते ही पद्मावती के प्राणपखेरू उड गये।

कुछ समय पश्चात् राजा लक्ष्मणसेन और जयदेव आखेट से राजप्रासाद लोटे। राजा ने जब यह सुना कि उनकी रानी

पद्मावती की मृत्यु के लिये उत्तरदायी है, तब वे बहुत कुपित हुए और अपनी रानी को मारने के लिये दौड़े, जयदेव ने उन्हें मना किया और कहा - जब मैं जीवित हूं, तो पद्मावती का पुनर्जीवित होना संभव है। उन्होंने संजीवनी अष्टपदी कहकर जैसे ही पत्नी की देह पर जलसिंचन किया, वह सचेत होकर उठ बैठी।

"गीतगोविंद" के अतिरिक्त जयदेव को कतिपय बगाली पदों का भी रचयिता बतलाया जाता है। इन पदों का समावेश गुरुग्रंथसाहब तथा दादूपंथी साधकों के पदसंग्रहों में भी हुआ है। मूल बगाली पदों का स्वरूप, उन ग्रथों में हिंदी, पजाबी या राजस्थानी हो गया है।

जयदेव- केरलनिवासी। सोमयाग करने पर सन्यास ग्रहण किया। रचना- पूर्णपुरुषार्थ-चन्द्रोदयम् (नाटक)।

जयराम न्यायपंचानन - ई 17 वी शती। कृष्णनगर के राजा रामकृष्ण का समाश्रय प्राप्त। रामभद्र सार्वभौम के शिष्य। कृति - काव्यप्रकाश पर "रहस्यदीपिका" (अपर नाम "तिलक" अथवा "जयरामी") नामक टीका।

जयराम न्यायपंचानन (तर्कालंकार) - ई 17-18 वी शती। गुरु- रामभद्र सार्वभौम। रचनाए- तत्त्वचितामणि-दीधिति-गूढार्थविद्योतन, त चि आलोकविवेक, न्यायसिद्धान्तमाला, दीधिति विवृत्ति, न्यायकुसुमाजलिकारिकाव्याख्या, पदार्थमणिमाला (या पदार्थमाला), वृंदावनविनोद (काव्य), काव्यप्रकाशतिलक (साहित्यशास्त्रीय) और शक्तिवाद-टीका।

उपरोक्त ग्रथो मे से "पदार्थमणिमाला" इनका सर्वोत्तम ग्रथ माना जाता है। भीमसेन दीक्षित ने अपने दो ग्रथों मे इन्हे तथा देवनाथ तर्कपचानन को तर्कशास्त्र का प्रमाण कहा है। जयराम कृष्णनगर के राजा रामकृष्ण (नवद्वीपाधिपति) के आश्रय मे रहते थे।

जयराम पाण्डे - मुबई के एक प्रसिद्ध व्यापारी। शेअर बाजार में प्रतिष्ठा। अर्थशास्त्रज्ञ धर्म और अर्थ पुरुषार्थ पर शतक रचनाए-धर्मशतकम् और अर्थशतकम्।

जयराम पिण्ड्ये - शिवाजी महाराज के समकालीन। 5 सर्गो के इनके "पर्णालपर्वत-ग्रहणाख्यान" काव्य मे शिवाजी महाराज का पन्हाला किले पर प्रदर्शित पराक्रम वर्णित है। इस छोटे से काव्य को ऐतिहासिक महत्त्व है।

12 भाषाओं के तज्ञ तथा इन सब भाषाओ में काव्य करने की क्षमता उनमे थी। प्रस्तुत काव्य, भारत इतिहास सशोधक मण्डल, पुणे के प्रसिद्ध सशोधक सदाशिव महादेव दिवेकर ने अभ्यासपूर्ण प्रस्तुति के साथ तथा मराठी अनुवाद सहित प्रकाशित किया है। अन्य रचना - राधामाधवविलास-चम्पू।

जयरामशास्त्री - साहित्याचार्य। रचना - जवाहरवसन्तसाम्राज्यम्। 7 सर्ग, 500 श्लोक। 1950 ई को पं जवाहरलाल नेहरू की षष्ठ्यब्दिपूर्ति के वर्ष में प्रकाशित।

जयराशि भट्ट - ई 7 वीं शताब्दी। चार्वाक मतानुयायी। "तत्त्वोपप्लवसिंह" नामक ग्रन्थ के रचयिता। इसमें वैदिक और जैन तत्त्वज्ञान का खण्डन है।

जयशेखर सूरि - अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य। इस गच्छ के सस्थापक आर्यरक्षित सूरि थे, जिनकी दसवीं पीढ़ी में महेन्द्रप्रभसूरि हुए। उनके तीन शिष्य थे - मुनिशेखर, जयशेखर और मेरुतुंग सूरि। समय - ई 16 वीं शती। ग्रंथ-जैनकुमार-सम्भव (वि सं 1483)। (भरत की उत्पत्ति का वर्णन 11 सर्ग)। इनके अन्य ग्रंथ हैं 1) उपदेशचिन्तामणि (सं 1436), 2) प्रबंधचिन्तामणि (वि. स 1464) और 3) अम्मिल्लचरित।

जयसेन - ई 10 वीं शती। भावसेन सूरि के शिष्य। लाडबागडसघ के विद्वान। समय ई 12 वीं शती का मध्यकाल। इन्हें जयसेन प्रथम कहा जाता है। इस नाम के अन्य विद्वान हुए हैं। रचना - धर्मरत्नाकर।

कुन्दकुन्द के टीकाकार जयसेन द्वितीय, साधु महीपति के पुत्र चारुभट जो उत्तरकाल में जयसेन कहलाये। गुरु का नाम सोकसेन और दादा गुरु का नाम वीरसेन। समय ई 11-12 वीं शती। रचना कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार और पचास्तिकाय पर टीकाएं।

जयसेनापति - वरगलनरेश काकतीय गणपति (ई स. 1200 से 1265) के गजसेनाप्रमुख। रचना-वृत्त-रत्नावली। (ई स 1254 में रचित)।

जयस्वामी - समय - ई 16 वीं शताब्दी से पूर्व। आश्वलायन ब्राह्मण के भाष्यकार। जयस्वामी और जयन्तस्वामी एक ही हो सकते है। अपने "सस्कारतत्त्व" के मलमास प्रकरण में ग्रथकर्ता रघुनन्दन आश्वलायन ब्राह्मण के भाष्यकार जयस्वामी का निर्देश करते हैं। जयन्तस्वामी ने आश्वलायन गृह्यसूत्र पर "विमलोदय" नामक टीका लिखी है। यह भी सभव है कि जयन्त स्वामी के अतिरिक्त जयस्वामी भी कोई अन्य ग्रथकार हुए हों। "हारीत स्मृति" पर भी जयस्वामी की टीका उपलब्ध है।

जयस्वामी - हरिस्वामी के पुत्र। इन्होंने "ताण्ड्यब्राह्मण" पर भाष्य रचना की है। उस भाष्य का नामान्तर, पंचविंशार्थमाला होगा, ऐसा अनुमान है।

जयादित्य और वामन - अष्टाध्यायी की काशिका नामक वृत्ति इनकी सम्मिलित रचना है। पाणिनीय व्याकरण में महाभाष्य तथा भर्तृहरि के बाद यह सब से प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण वृत्ति है। इत्सिग के अनुसार जयादित्य का मृत्युकाल वि स 718 है।

वामन (साहित्यकार), विश्रान्तविद्याधर (जैन व्याकरणकार) तथा लिगानुशासनकार इन सबसे काशिकाकार भिन्न हैं। समय वि स 650 से 718।

जल्हण - 13 वीं शती। रचना - सूक्तिमुक्तावली।

जातुकर्ण्य - तीसरी या पांचवी शती के एक धर्मसूत्रकार। पिता- कात्यायन। गुरु- आसुरायण तथा यास्क। इनके एक शिष्य का नाम पाराशर्व था। जातुकर्ण्य द्वारा रचित आचार तथा श्राद्ध सबधी सूत्र अनेक व्यक्तियो के ग्रन्थों मे बिखरे हुए मिलते हैं। विश्वरूप, अपरार्क, हलायुध तथा हेमाद्रि ने तथा स्मृतिचन्द्रिका, श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थों में इनके सूत्रों का आधार लिया गया है।

जितेन्द्रिय - समय ई 11 वी शती। वगवासी। इनके नाम पर ग्रथ उपलब्ध नहीं है। जीमूतवाहन के "कालविवेक" तथा रघुनन्दन के "दायतत्त्व" नामक ग्रथों में जितेन्द्रिय के व्यवहार एव उत्तराधिकार सबधी मतो का उल्लेख है।

जिनचन्द्र - दिल्ली की भट्टारक गद्दी के आचार्य। इन्होने प्राचीन ग्रथो की नयी नयी प्रतिया कराकर मदिरो मे प्रतिष्ठित कीं। जीर्णोद्धार किया। रचनाए-सिद्धान्तमार और जिनचतुर्विंशतिस्तोत्र। इनके अतिरिक्त हिन्दी रचनाए भी उपलब्ध हैं। बाघेरवाल जाति। जीवराज पापडीवाल ने जो वि स 1548 में प्रतिष्ठा कराई थी, उसका आचार्यत्व शुभचन्द्र के शिष्य जिनचन्द्र ने ही किया था। जीवनकाल 91 वर्ष।

जिनदास - आयुर्वेद के निष्णात पण्डित। चिकित्साशास्त्री। पिता रेखा। माता-रेखश्री। धर्मपत्नी-जिनदासी। पुत्र-नारायणदास। जिनदास के पिता रणस्तम्भ में बादशाह शेरशाह के द्वारा सम्मानित हुए। नवलक्षपुर के निवासी। समय ई 16 वी शती। रचना होलीरेणुका-चरित (वि स 1608) 843 पद्य।

जिनदासगणि - कोटिकगणीय, वज्रशाखी गोपालगणि महत्तर के शिष्य। समय वि स 650-750। जिनदासगणि महत्तर ने जैन आगम ग्रथों पर चूर्णिया लिखी हैं। नन्दीचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिक-चूर्णि, उत्तराध्ययनचूर्णि, आचारागचूर्णि, सूत्रकृतागचूर्णि और व्याख्याप्रज्ञप्ति-चूर्णि। इन चूर्णियों की भाषा प्राय प्राकृत बहुल सस्कृत है। उत्तराध्ययन चूर्णि और सूत्रकृताग-चूर्णि में सस्कृत भाग अधिक है। कर्मप्रकृतिचूर्णि (7000 श्लोक प्रामण) शायद जिनदासगणि महत्तर की ही हो।

जिनसेन (प्रथम) - ई 8 वी शती। जैन पथी पुन्नाटसघ के आचार्य। गुरु-कीर्तिषेण। मूलत दक्षिणवासी। रचना हरिवशपुराण। (ई 783)। रचनास्थान-वर्धमानपुर (वर्तमान धार जिले का बदनावर), जहा हरिषेण ने अपने कथाकोष की रचना की थी। रविषेण के पद्मचरित से प्रभावित। पौराणिक महाकाव्य में बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र चित्रण तथा पाण्डवों और कौरवो का लोकप्रिय चरित्र भी सुदरता के साथ अकित है। कथावस्तु 36 सर्गों मे विभक्त है।

जिनसेन (द्वितीय) - ई 9-10 वीं शताब्दी। बचपन मे ही जैन पथ की दीक्षा ली। गुरु का नाम वीरसेन और दादागुरु का आर्यनन्दि। गुरुभाई का नाम जयसेन। उनके सतीर्थ दशरथ नामक आचार्य थे। उनके शिष्य गुणभद्र ने आदिपुराण के अवशिष्ट अश को पूरा किया। जिनसेन का संबंध चित्रकूट, बकापुर और बटग्राम से रहा है। राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित रहे हैं। अत जन्मस्थान महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमाभूमि अनुमानित की जा सकती है। ब्राह्मण कुल। रचनाए-पार्श्वाभ्युदय (सदेशकाव्य), आदिपुराण और जयधवला टीका। पार्श्वाभ्युदय (ग्रथार्गत जानकारी के अनुसार) कालिदास के मेघदूत नामक काव्य की समस्यापूर्ति है। इसमें 364 मन्दाक्रान्ता छन्द हैं। चौबीस जैन पुराणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 12 हजार श्लोकों वाले आदिपुराण में ऋषभदेव के दस पूर्व जन्मो की कथाए वर्णित हैं। जयधवला टीका मूलत वीरसेन (गुरु) की है, पर उनके स्वर्गस्थ हो जाने पर उसे जिनसेन ने पूरी की, जिसका प्रमाण चालीस हजार श्लोक हैं।

जिनेन्द्रबुद्धि - ई 8 वीं शती। बौद्ध पण्डित। "स्थविर जिनेन्द्र" तथा बोधिसत्त्वदेशीयाचार्य" के नामो से विख्यात। बगाल के पाल राजा के समाश्रित। काशिका विवरण पंजिका (अपर नाम "न्याय") नामक पाणिनीय व्याकरण विषयक ग्रथ के रचयिता। काशिका की टीकाओं में यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रथ है।

जीमूतवाहन - समय - 1090-1130 ई के बीच। स्थान - राढा। परिभद्रकुलोत्पन्न। बगाल के राजा विष्वक्सेन की राजसभा में न्यायाधीश तथा बगाल के प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार। इन्होंने कालविवेक, व्यवहारमातृका (न्यायमातृका) तथा दायभाग नामक तीन ग्रथ लिखे है। "कालविवेक" मे धार्मिक कृत्यो तथा सस्कारों के लिये उचित काल के विषय में विवेचन है। "व्यवहारमातृका" मे न्यायालयीन कार्यपद्धति, न्यायालयों का सविधान, न्यायालयो का वर्गीकरण तथा अष्टादशाधिकार विधि का विवरण है।

"दायभाग" मे स्वामित्व, सपत्तिविभाजन, उत्तराधिकार, स्त्रीधन, विधवा-विवाह आदि विषयो का विवेचन है। इस ग्रथ पर रघुनन्दन की टीका प्रसिद्ध है। कोलब्रुक ने इसका अग्रेजी अनुवाद किया है। बगाल के सभी न्यायालयों मे दायभाग ग्रथ प्रमाण माना जाता रहा। इसमें हिन्दू कानूनों का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए अनेक विचार "मिताक्षरा" के विरुद्ध व्यक्त किये गए है।

जीवगोस्वामी - समय लगभग 1575-1625 ई। बगाल मे जन्म। भारद्वाज गोत्री यजुर्वेदी ब्राह्मण। गोडीय मतावलबी, उद्भट विद्वान, भागवत के मर्मज्ञ तथा पाठादि के निमित्त बडे ही जागरूक टीकाकार। आपकी गणना गौडीय वैष्णव समाज के दैदीप्यमान रत्नों में की जाती है।

"दुर्गम सगमनी" टीका के आरभ में इन्होंने अपने ज्येष्ठ पितृव्य सनातन एवं वल्लभ का निर्देश किया है।

बाल्यकाल मे पिता का देहात। अत माता की देखरेख

में शिक्षा। अपने भक्त पितृव्यों की भक्ति तथा वैराग्य के उज्वल आदर्श से प्रभावित हो अल्पायु में ही घर बार त्याग कर परम विरक्त बन गए। काशी में मधुसूदन सरस्वती से वेदात शास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया। पश्चात् वृदावन में अपने पितृव्यों की संगति मे आकर रहने लगे। प्रकाड पडित के रूप में इनकी ख्याति सर्वत्र फैली। कहते हैं कि इन्होंने असम के रूपनारायण नामक एक उद्धत सन्यासी को शास्त्रार्थ में पराजित कर, उसका गर्वहरण किया था किंतु इनके पितृव्य सनातनजी उनसे इस वैष्णव विरोधी कार्य पर रुष्ट हुए थे। बाद में रूप गोस्वामी ने बडी युक्ति से इन्हें क्षमा प्रदान कराई थी। बादशाह अकबर के आग्रह करने पर ये एक दिन के लिये आगरा भी गए थे।

भजन भक्ति और ग्रंथप्रणयन ही इनके जीवन का व्रत था। इनके ग्रथ गौडीय वैष्णव सप्रदाय के सिद्धान्तों के प्रकाश स्तंभ हैं जिनमें इनकी विद्वत्ता पाठको को पग पग पर विस्मित करती है। इनके प्रमुख ग्रथों के नाम हैं। षट्सदर्भ, क्रमसदर्भ, दुर्गमसंगमनी, ब्रह्मसहिता की टीका, कृष्ण-कर्णामृत की टीका, हरिनामामृत-व्याकरण और कृष्णार्चन-दीपिका। ब्रह्मसंहिता की टीका और कृष्णकर्णामृत की टीका को चैतन्य महाप्रभु अपनी दक्षिण यात्रा के समय अपने साथ ले गए थे।

इनके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाए भी मिलती हैं। चैतन्य मत के षट्गोस्वामियों (6 आचार्यो) का कार्य, इस मत के इतिहास में अत्यत महत्त्वपूर्ण है। जीव गोस्वामीजी, इन छहो गोस्वामियों में नि सदेह प्रगल्भतम आचार्य थे। इनका अलौकिक कार्य विवेचक को विस्मय विमुग्ध करने वाला है।

ये एक ऐसे महनीय आचार्य हैं जिन्होने भागवत पर 3 टीकाओं का प्रणयन करते हुए, उसके रहस्यभूत एव गूढतम अर्थ की अभिव्यक्ति की।

इनके अतिरिक्त इन्होंने लघुतोषिणी, धातुसंग्रह, सूत्रमालिका, माधवमहोत्सव, गोपालचपू, गायत्रीव्याख्या निवृत्ति, गोपालतापिनी, योगसारस्तोत्र आदि छोटे बडे ग्रंथो की रचना की है।

केवल 25 वर्ष की आयु मे ही अपने चाचा रूप गोस्वामी से वैष्णव पथ की दीक्षा ली और आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर अपने संप्रदाय की सेवा मे सलग्न रहे। इन्होंने चैतन्य मत को सुदृढ दार्शनिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया। अत इन्हें चैतन्य मत का महान् भाष्यकार कहा जाता है।

जीवधर शर्मा - ई 17 वीं शती। मेवाड के कवि। इनकी कृति है "अमरसार" नामक महाकाव्य। इसमें मेवाड के राणा प्रताप, राणा अमरसिंह और राणा करणसिह के शासनकाल का वर्णन है।

जीवनलाल नागर - समय - 1823-1869 ई। नागर बूंदी के महाराजा रामसिह के शासनकाल में बूंदी राज्य के मुख्यमत्री थे। "कृष्णखण्डकाव्य" इनकी प्रसिद्ध कृति है।

जीवनलाल पारेख - ई 20 वीं शती। सूरत महाविद्यालय में व्याख्याता। "छायाशकुन्तला" नामक एकाकी रूपक के प्रणेता।

जीव न्यायतीर्थ - जन्म- ई 1894 में बगाल के चौबीस परगना जिले के भट्टपल्ली (भाटपाडा) ग्राम में। पचानन तर्कशास्त्र के पुत्र। गुरु-काशी निवासी म.म राखालदास।

1929 में कलकत्ता वि वि में संस्कृत के प्राध्यापक। वहां 29 वर्ष अध्यापन। फिर भट्टपल्ली के सस्कृत कालेज के प्राचार्य। "प्रणवपारिजात" तथा "अर्थशास्त्र" नामक पत्रिकाओं के सपादक। राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित। 1955 से सटीक महाभारत का सम्पादन।

जीवबुध - ई 17 वीं शती। पिता- कोनेरी राजा। जन्म उपद्रष्टा वश मे जिसमें पण्डितराज जगन्नाथ हुए थे। रचना-"नलानन्द" नामक नाटक।

जीवराज - "गोपालचम्पू" के रचयिता। इसका प्रकाशन वृदावन से वंगाक्षरों में हुआ है। इन्होंने स्वय ही अपने इस चम्पू काव्य पर एक टीका लिखी है। आप महाप्रभु चैतन्य के समकालीन व परम वैष्णव थे। ये महाराष्ट्र निवासी तथा भारद्वाज गोत्रोत्पन्न कामराज के पौत्र थे।

जीवानन्द विद्यासागर - ई. 19 वीं शती। कृतियां-हर्षचरित, दशकुमारचरित तथा वासवदत्ता पर व्याख्याए। मृच्छकटिक, शाकुन्तल, रत्नावली, मुद्राराक्षस, मालतीमाधव, उत्तररामचरित, बालरामायण, विद्धशालभंजिका तथा कर्पूरमंजरी इन नाटकों की व्याख्याएं। "काव्यसग्रह" (सस्कृत पद्य रचनाएं)।

रघुवश, कुमारसम्भव, मेघदूत, भट्टिकाव्य, किरात, शिशुपालवध, घटकर्पर तथा नलोदय पर टीकाएं। साहित्यदर्पण पर "विमला" नामक वृत्ति तथा श्रुतबोधव्याख्यान।

जुहु - ऋग्वेद के 10 वें मण्डल के 109 वें सूक्त के द्रष्टा। इस सूक्त में उन्होंने कहा है कि सृष्टि और उसके लिये आवश्यक तप की उत्पत्ति सत्य से हुई है।

जैमिनि - कौत्सकुलोत्पन्न। वेदव्यास के शिष्य। सामवेद के अध्यापक व प्रसारक। पूर्वमीमासादर्शन के सूत्रकार के रूप में महर्षि जैमिनि का नाम प्रसिद्ध है। समय ई पू. 4 थी शती। विष्णुशर्मा कृत "पचतंत्र" में हाथी द्वारा जैमिनि के कुचल दिये जाने की घटना का उल्लेख है। (मित्रसंप्राप्ति, 36 श्लोक)। महर्षि जैमिनि, मीमासा दर्शन के प्रवर्तक न होकर उसके सूत्रकार माने जाते हैं क्यो कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती व समसामयिक 8 आचार्यों का नामोल्लेख किया है। वे है · आत्रेय, आश्मरथ्य, काष्णाजिनि, बादरि, ऐतिशायन, कामुकायन, लाबुकायन व आलेखन। पर इन आचार्यों के कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते। जैमिनिकृत "मीमांसासूत्र" 16 अध्यायों मे विभक्त है जिसमें इस दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का निरूपण है। इस पर अनेक वृत्तियों व भाष्यों की रचना हुई है।

इन्हें सामवेद की जैमिनीय शाखा, जैमिनीय ब्राह्मण तथा जैमिनियोपनिषद् ब्राह्मण का भी रचयिता माना जाता है। इनके अतिरिक्त जैमिनिकोशसूत्र, जैमिनिनिघटु, जैमिनिपुराण, ज्येष्ठमाहात्म्य, जैमिनिभागवत, जैमिनिभारत, जैमिनिसूत्र, जैमिनिसूत्रसारिका, जैमिनिस्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों का भी रचयिता इन्हें बताया जाता है।

धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ के ऋत्विज और जनमेजय के सर्पसत्र के उद्गाता का नाम भी जैमिनि ही था।

जोशी लक्ष्मणशास्त्री (तर्कतीर्थ) - वाई (महाराष्ट्र) के निवासी, महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सामाजिक एव सास्कृतिक नेता। रचना - 1) धर्मकोश (व्यवहारकाण्ड) 3 भाग, 2) धर्मकोश (उपनिषत्काण्ड) 4 भाग। गुरु- केवलानन्द सरस्वती, जो स्वय महान् वैदिक कोशकार थे।

जोशी ग. गो. - रचना - काव्य-कुसुमगुच्छ। इसमें महाराष्ट्र के अर्वाचीन श्रेष्ठ सस्कृत पण्डित म म वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर की स्तुति है।

ज्ञानकीर्ति - ई 17 वीं शती। यति वादिभूषण के शिष्य। अकब्बरपुर (बगाल) के निवासी। बंगाल के महाराजा मानसिह के प्रधान अमात्य नानू के आग्रह से, यशोधरचरित महाकाव्य का निर्माण 1659 में किया।

ज्ञानभूषण (भट्टारक) - ज्ञानभूषण नामक चार प्रधान आचार्य भट्टारक हुए। उनमें विमलेन्द्रकीर्ति के शिष्य भट्टारक ज्ञानभूषण अधिक प्रसिद्ध हैं। गुजरात निवासी। मूर्तिप्रतिष्ठापक। गोलालारीय जाति। द्रविडदेश महाराष्ट्र और राजस्थान कार्यक्षेत्र। समय- वि स 1500-1562। प्रतिष्ठाचार्य। रचनाएं-आत्मसबोधनकाव्य, ऋषिमण्डलपूजा, तत्त्वज्ञानतरगिणी व पूजाष्टक-टीका, पचकल्याणकोद्यापनपूजा, नेमिनिर्वाणकाव्य पचिका टीका, भक्तामरपूजा, श्रुतपूजा, सरस्वतीपूजा, सरस्वतीस्तुति, शास्त्रमडलपूजा, आदिनाथ फाग, परमार्थोपदेश आदि। इनके अतिरिक्त कुछ हिन्दी रचनाए भी प्राप्य हैं।

ज्ञानविमलसूरि - तपागच्छीय जैन विद्वान्। अपरनाम नवविमलगणि। वीर-विमल-गणि के शिष्य। समय- ई 17-18 वीं शती। ग्रथ - प्रश्नव्याकरण-सुखबोधिकावृत्ति। तरसिपुर मे सुखसागर के सहयोग से लिखित। (वि स 1783)। ग्रथमान 7500 श्लोक।

ज्ञानश्री - बगाल निवासी। ई 10 वीं शती। विक्रमशील मठ के द्वारपण्डित। "वृत्तिमालाश्रुति" के रचयिता।

ज्ञानश्री - ई 14 वीं शती। बौद्धाचार्य। माधवाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में इनका उल्लेख किया है। ये क्षणिकवाद के पुरस्कर्ता थे। इन्होंने कार्यकारणभावसिद्धि, क्षणभगाध्याय, व्याप्तिचर्चा, भेदाभेदपरीक्षा, अनुपलब्धिरहस्य, अपोहपकरण, ईश्वरदूषण, योगनिर्णय, साकारसिद्धि आदि ग्रथ लिखे हैं। कुछ विद्वानो के अनुसार ये काश्मीर निवासी थे।

1) ज्ञानसागर - जैनधर्मी बृहत्तपागच्छ के रत्नसिंह के शिष्य। ग्रंथ-विमलनाथचरित। साम्यताथ, खभात में स 1517 में रचित, शाष्टराज सेठ की प्रार्थना पर। पाच सर्ग, गद्य रचना। अन्य रचना-शान्तिनाथचरित। भाषा और शैली आकर्षक।

ज्ञानसुंदरी - 19 वीं शती। कुम्भकोणम् की प्रख्यात नर्तकी। नृत्य गीत तथा वक्तृत्व में अत्यत निपुण। मैसूर राज्य से कविरत्नम् उपाधि से सत्कार हुआ था। रचना - हालास्यचम्पू 6 स्तबको का काव्य। विषय-मीनाक्षी-सुन्देरश विवाह प्रसंग का वर्णन, कुम्भकोणम् से मुद्रित।

ज्ञानेन्द्रसरस्वती - सिद्धान्तकौमुदी की तत्त्वबोधिनी नामक सुप्रसिद्ध व्याख्या के लेखक। गुरु-वामनेन्द्र सरस्वती। शिष्य-नीलकण्ठ वाजपेयी। भट्टोजी दीक्षित के समकालीन- वि स 1550-1600

टी. गणपति शास्त्री (म म.) - 20 वी शती का पूर्वार्ध। भास नाटक चक्र के प्रकाशन से विशेष प्रख्यात। अपनी रचना अर्थचित्र मणिमाला मे त्रिवाकुरनरेश (केरलवासी) विशाखरामवर्मा का स्तवन अलकारों के उदाहरणार्थ किया है। अन्य रचनाए - भारतेतिहास और माधवीवसन्त-नाटकम्।

टैगोर सुरेन्द्रमोहन - काव्य- व्हिक्टोरियामाहात्म्यम्। ई स 1898। अन्य रचना- प्रिन्स पचाशत् (प्रिन्स ऑफ वेल्स की स्तुति)। "राजा" और "सर" उपाधियो से विभूषित।

ठाकुर ओमप्रकाश शास्त्री - ई. 20 वी शती। हरियाणा में अध्यापक। "क्षमाशीलो युधिष्ठिर " नामक रूपक के प्रणेता।

डड्ढा - चित्तोड निवासी। पिता-श्रीपाल। जाति-प्राग्वाट (पोरवाड)। समय- ई 11 वी शती। ग्रथ "पचसग्रह" जो प्राकृत पचसग्रह का अनुवादसा लगता है। अमितगति ने डड्ढा के "पचसग्रह" का आधार लेकर एक और पचसग्रह रचा है।

डांगे सदाशिव अंबादास - मुबई विश्वविद्यालय के सस्कृत विभागाध्यक्ष। रचना-भावचषक रुबाइयो का सस्कृत पद्यों एव हिंदी गद्य मे अनुवाद।

डाऊ, माधव नारायण - दारव्हा (विदर्भ) के निवासी वकील। रचनाए- विनोदलहरी। विषय- हरि-हर तथा उमा-रमा का परिहासगर्भ सवाद। इनमे सामान्य व्यक्तिजीवन के सुखदुख का हृदयस्पर्शी चित्रण करते हुए कवि ने सासारिक जीवन को सुखी बनाने के लिये परस्पर आचारात्मक उपाय बताये है। इनका विनोद उच्च कोटि का तथा विद्वज्जनों का मन प्रसन्न करने वाला है। इस पर इनके चचेरे भाई की टीका है।

डेग्वेकर पांडुरंग शास्त्री - पुणे निवासी। मृत्यु दिनांक 24-11-1961 को। पढरपुर में व्याकरण, न्याय व वेदान्त के अध्यापक। हर्षदर्शन नाटक और कुरुक्षेत्र (काव्य) के प्रणेता। मनोबोध (समर्थ रामदासस्वामी कृत) का समवृत अनुवाद।

ढुण्ढिराज - ज्योतिष शास्त्र के आचार्य। पाथपुरा के निवासी। पिता- नृसिह दैवज्ञ। गुरु- ज्ञानराज। समय ई 16 वीं शती।

इन्होंने "जातकाभरण" नामक फलितज्योतिष के एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है जिसमें दो हजार श्लोक हैं।

ढुण्ढिराज व्यास यज्वा - पिता- लक्ष्मण। गुरु- त्र्यबक। निवास- स्वामीमलै। रचना "शाहविलासम्", यह सगीत प्रधान काव्य शाहजी भोसले का चरित्र वर्णन करता है। कवि की अन्य रचनाए- "अभिनव-कादम्बरी" (काव्य) तथा विशखादत्त के "मुद्राराक्षस" पर विद्वन्मान्य टीका।

ढोक, भास्कर केशव - महाराष्ट्रीय। "श्रीकृष्णदौत्य" नामक नाटक के रचयिता।

तपतीतीरवासी- इन्होंने अपने मूल नाम का निर्देश न करते हुए तपतीतीरवासी इस नाम से ही अपना निर्देश किया है। ग्रन्थ-समर्थ रामदास स्वामी कृत मनाचे श्लोक नामक महाराष्ट्र के लोकप्रिय ग्रंथ का मनोबोध नाम से अनुवाद।

तपेश्वरसिंह- गया के निवासी, वकील। रचना-पुनर्मिलनम् जिसमें राधा- माधव का पुनर्मिलन चित्रित है। अतिरिक्त रचना-हरिप्रिया (खण्डकाव्य, 108 श्लोक)।

तपोवनस्वामी- मलबार-निवासी। "ईश्वरदर्शनम्" या "तपोवनदर्शनम्" नामक काव्य मे कवि ने आत्मचरित्र लिखा है। 1950 ई में लिखित यह काव्य त्रिचूर मे प्रकाशित। सस्कृत साहित्य में आत्मचरित्रपर ग्रथ अतीव दुर्लभ है। अत इनका ग्रथ विशेष उल्लेखनीय है।

ताम्पुरान्- केरलनिवासी। 19 वीं शती। चार रचनाए- (1) किरातार्जुन, (2) सुभद्राहरण, (3) दशकुमारचरित और (4) जरासन्धवध। व्यायोग।

ताम्हन, केशव गोपाल (म.म.)- मारिस कालेज (नवीन नाम, नागपूर महाविद्यालय) के भूतपूर्व प्राचार्य। रचनाए- कविता-सग्रह (स्वरचित 24 काव्यो का सग्रह) जिसमे देवता स्तोत्र, श्रीरामस्तव, श्रीरामाष्टक, श्रीरामयष्टिकम्, श्रीरामस्तुति, तथा स्थानीय प्रमुख व्यक्तियो की स्तुति प्रासादिक भाषा में लिखी है।

ताराचन्द्र (या ताराचरण)- ई 19 वी शती। वाराणसी नरेश के राजपण्डित। म म प्रमथनाथ तर्कभूषण के पिता। कृतिया- (काव्य)- कनकलता, शृगार-रत्नाकार, काननशतकम् (निसर्ग-वर्णनपरक) और रामचन्द्रजन्म (भाण)।

तारानाथ तर्कवाचस्पति- ई 1822-1885। बगाली। कृतिया- आशुबोध व्याकरण, शब्दार्थ-रत्न, वृत्तरत्नाकर-विवृति। कुमारसम्भव, मालविकाग्निमित्र, वेणीसंहार, विक्रमोर्वशीय, तथा मुद्राराक्षस, महावीरचरित आदि नाटको की टीकाए।

तिम्मकवि- पिता-जग्गू। स्थान- इन्द्रपालयम्। रचना- सुजनमन.कुमुदचन्द्रिका (अपने पितामह के जनमनोभिराम नामक तेलुगु कथासंग्रह का अनुवाद।

तिरश्ची- एक सूक्त-द्रष्टा। आंगिरस कुलोत्पन्न होने के कारण इन्हें तिरश्ची आंगिरस कहते हैं। इनके नाम पर ऋग्वेद में 8-95 यह इन्द्र-सूक्त है। उन्होंने स्वय को एक सिद्धहस्त सूक्तकार बताया है।

तिरुमल कवि- तिरुमलनाथ तथा त्रिमलनाथ नामों से भी ज्ञात। पिता- बोम्मकण्ठि गगाधर। आन्ध्र-प्रदेशी। "कुहनाभैक्षव प्रहसन" के प्रणेता (सन् 1750)।

तिरुमलाचार्य- ई 17 वी शती। गोत्र-शठमर्शन। तेलगना में गडबल के निवासी। आश्रयदाता-पालभूपाल। रचना- कल्याणपुरजन (नाटक)।

तिरुवेंकटतातादेशिक- नेलोर-निवासी। रचनाए- नृसिहशतकम्, नखरशतकम् और स्तुतिमालिका।

तुलजराय (तुलाजी राजे भोसले)- तंजौर के नरेश। ई 1729 से 1735। रचनाए-सगीत-सारामृत और नाट्यवेदागम।

तेजोभानु (पं)- रावलपिण्डी-निवासी। जन्म- 1880 ई। पिता- प विष्णुदत्त। पजाब में सस्कृत-प्रचार का महत् कार्य किया। ख्यातिप्राप्त रचनाए- विप्रपचदशी, श्रीचन्द्रचरितम्, स्तुतिमुक्तावली, नीतिशतकम्, वैराग्यशतकम्। इस शतकत्रय के लेखन से "अभिनवभर्तृहरि" की उपाधि प्राप्त।

तोटकाचार्य- ई 8 वीं शती। आद्य शकराचार्यजी के चतुर्थ शिष्य। मूल शुभनाम आनदगिरि, किन्तु बाद में केवल "गिरि" नाम से ही पहचाने जाने लगे। शांकरभाष्य के व्याख्याकार आनदगिरि और ये आनदगिरि दोनों भिन्न हैं। आद्य शकराचार्यजी ने इन्हें बदरीनारायण के ज्योतिर्मठ का पीठाधिकारी नियुक्त किया था।

तोटकाचार्य के नाम पर अनेक ग्रंथ हैं। उनकी प्रमुख रचना है- तोटकश्लोक। कालनिर्णय नामक ग्रथ भी इन्हींका बताया जाता है। इनके श्रुतिसारसमुद्धरण नामक ग्रथ में 179 श्लोक तोटक छद मे हैं जिनमें अत्यत सुबोध रीति से अद्वैतवेदान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसी के कारण इन्हें तोटकाचार्य यह उपाधि प्राप्त हुई।

त्यागराज- जन्म तिरुवारुर में, ई स 1758 में, वैदिक ब्राह्मण कुल में। पिता- रामब्राह्मण्,। माता-पिता का बालपन में देहान्त। कौटुम्बिक पीडा का अनुभव। असीम रामभक्ति। भक्तिपरक गीत-रचना (आशुरचना)। देश में तथा बाहर भी प्रसिद्धि। उत्तरायुष्य में सन्यास। मृत्यु ई 1846 में। प्रारम्भ की गीत-रचना सस्कृत में हुई है। इनके गीत दक्षिणभारत में अत्यत लोकप्रिय हैं।

त्यागराज मखी (राजूशास्त्रिगल)- मन्नारगुडी (तामिलनाडू) के शिवाद्वैत सिद्धान्त के समर्थनार्थ "न्यायेन्दुशेखर" की रचना की।

त्रिलोचनदास- ई 13 वीं शती। अमरकोश के टीकाकार।

त्रिलोचनादित्य- ई 14 वीं शती। दिवाकर (ई 1385) और चरित्रवर्धन नामक टीकाकारों द्वारा उल्लेख। रचना- नाट्यालोचन और लोचनव्याख्याजन।

त्रिविक्रम- ई 11 वीं शती। गौड ब्राह्मण। अनहिलवाड

पट्टन (गुजरात) के निवासी। पिता- राघवार्य।

कृतिया- बृहद्वृत्ति (सारस्वत व्याकरण पर भाष्य), उद्योत (कातन्त्रवृत्ति पर टीका) और वृत्त-रत्नाकर-तात्पर्यटीका।

त्रिविक्रम- ई 19 वीं शती। पिता-चिद्धनानन्द। अग्रज-त्र्यबक। पचायुध-प्रपच भाण के रचयिता।

त्रिविक्रम पंडित- ई 13 वीं शती। एक द्वैती आचार्य। दक्षिण भारत के काकमठ-निवासी। पिता-सुब्रह्मण्यम भट्ट, श्रीविष्णु की उपासना से, ढलती आयु में उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। त्रिविक्रम बाल्यावस्था से ही बुद्धिमान् थे। उनका सपूर्ण अध्ययन अपने पिता के ही मार्गदर्शन में हुआ। काव्यशास्त्र के अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् उन्होंने अद्वैत वेदात का अध्ययन प्रारभ किया। किन्तु इस दर्शन के कई सिद्धातो से वे सहमत न हो सके। अत पिताजी की अनुमति से वे भक्तिमार्ग की ओर मुडे।

बाद में एक बार मध्वाचार्यजी से शास्त्रार्थ में पराजित होने पर उन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार करते हुए उनके मार्गदर्शन मे द्वैतमत का अध्ययन प्रारंभ किया। अल्पावधि में ही वे माध्वमत के बडे पडित बन गए। फिर मध्वाचार्य की आज्ञा से उन्होने आचार्यजी के भाष्य पर तत्त्वप्रदीप नामक एक टीकाग्रथ लिखा, जिसे देख मध्वाचार्यजी परम सतुष्ट हुए।

इन्होंने "उषाहरण" नामक एका काव्यग्रथ की भी रचना की जो कालिदास के शाकुतल जैसा ही लोकप्रिय हुआ। ये आजीवन माध्वमत का प्रचार करते रहे।

त्रिविक्रम भट्ट- ई 10 वीं शती का पूर्वार्ध। "नलचपू" नामक चपू-काव्य के रचयिता। इनकी यह कृति सस्कृत साहित्य का प्रथम और उत्कृष्ट चपू-काव्य है। इन्होने अपने "नलचपू" में अपने कुल-गोत्रादि का जो विवरण प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार इनका जन्म शाडिल्य गोत्र में हुआ था। पितामह-श्रीधर। पिता-नेमादित्य या देवादित्य। राष्ट्रकूटवशीय नृप इद्रराज तृतीय के सभा-पडित। इद्रराज तृतीय ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर अनेक प्रकार के दान दिये थे जिनका उल्लेख अभिलेख में किया गया है और उन प्रशस्तियो के लेखक त्रिविक्रम भट्ट ही हैं-

श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना।
कृता शस्ता प्रशस्तेयमिद्रराजाङ्घ्रिसेवया।।

इद्रराज की प्रशस्ति के श्लोक की श्लेषमयी शैली, "नलचंपू" के श्लेषबहुल पद्यों से साम्य रखती है।त्रिविक्रमभट्ट के नाम पर एक अन्य ग्रथ भी प्रचलित है जिसका नाम है "मदालसा-चपू"। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि मे विचार करने पर दोनों काव्यो का लेखक एक ही व्यक्ति सिद्ध नहीं होता। सस्कृत साहित्य मे श्लेष-प्रयोग के लिये इनकी अधिक प्रशस्ति है।

इनका "नलचपू" काव्य अधूरा है। उसके अधूरे रहने के बारे में एक किंवदती प्रचलित है -

"किसी समय समस्त शास्त्रो में निष्णात देवादित्य (नेमादित्य) नामक एक राजपडित थे। उनका पुत्र त्रिविक्रम था। प्रारभ में उसने कुकर्म ही सीखे थे, किसी शास्त्र का अध्ययन नही किया था। एक समय किसी कार्यवश देवादित्य दूसरे गांव चले गए। राजनगर मे उनकी अनुपस्थिति जान कर एक विद्वान राजभवन आया व राजा से बोला- राजन् मेरे साथ किसी विद्वान् का शास्त्रार्थ कराइये, अन्यथा मुझे विजय-पत्र दीजिये।राजा ने दूत को आदेश दिया कि वह देवादित्य को बुला लाये। राजदूत द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि देवादित्य कहीं बाहर गए हैं, तो उसने उनके पुत्र त्रिविक्रम को ही शास्त्रार्थ के लिए बुलवा लिया। त्रिविक्रम बडी चिता मे पडे। शास्त्रार्थ का नाम सुनते ही उनका माथा ठनका। अतत उन्होने सरस्वती की स्तुति की। तब पितृपरपरा से पूजित कुलदेवी सरस्वती ने उन्हे वर दिया - "जब तक तुम्हारे पिता लौट कर नहीं आते, मै तुम्हारे मुख मे निवास करूगी"। इस वर के प्रभाव से राजसभा मे अपने प्रतिद्वद्वी को पराजित कर राजा द्वारा बहुविध सम्मान प्राप्त कर त्रिविक्रम घर लौटे। घर आकर उन्होंने सोचा कि पिताजी के आगमन-काल तर सरस्वती मेरे मुख मे रहेंगी, यश के लिये मे कोई प्रबध क्यो न लिख डालू। अत उन्होंने पुण्यश्लोक राजा नल के चारित्र को गद्य-पद्य मे लिखना प्रारभ किया। इस प्रकार 7 वे उच्छ्वास की समाप्ति के दिन उनके पिताजी का आगमन हो गया और सरस्वती उनके मुख के बाहर चली गई। इसी लिये उनका "नलचम्पू" काव्य अधूरा रह गया। परन्तु इस किंवदती मे अधिक सार नही है क्यो कि त्रिविक्रम भट्ट की अन्य रचनाए भी प्राप्त होती है।

"नलचम्पू" के टीकाकार चण्डपाल ने इनकी प्रशस्ति मे निम्न श्लोक लिखा है -

शक्तिस्त्रिविक्रमस्येव जीयाल्लोकातिलघिनी।
दमयती-प्रबधेन सदा बलिमतोर्जिता।।

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्गणिती भास्कराचार्य के ये छटवे पूर्वज थे। भास्कराचार्य के पोते चगदेव के पाटन-शिलालेख के अनुसार इन्हे "कविचक्रवर्ती" यह विरुद प्राप्त हुआ था। इनका घराना सह्यपर्वताश्रित विज्जलविड नामक गाव का निवासी रहा। उनके घराने मे ज्ञानोपासना की परपरा सात-आठ पीढियो तक चली ऐसा प्रतीत होता है।

नलचपू, सस्कृत चपूसाहित्य का हक उत्तम ग्रथ है। इसका दूसरा नाम है दमयतीकथा। त्रिविक्रम के मदालसाचपू के विषय मे कुछ भी जानकारी उपलब्ध नही।

त्रिवेणी - ई 1817 से 1883। उपेन्द्रपुर के विद्वान अनन्ताचार्य की कन्या। पेरबुदूर के प्रतिवादिभयकर वेकटाचार्य पति। वैधव्य दशा मे अपने आराध्य-दैवत का मन्दिर शासकीय साहाय्य से बनवाया। 19 वीं सदी की प्रसिद्ध लेखिका। रचनाए लक्ष्मीसहस्रम् और रगनाथसहस्रम्।

त्रिवेदी लक्ष्मीनारायण (साहित्याचार्य) - जयपुर-निवासी। रचना- पुरुसिकंदरीयम्। विषय- पुरु तथा सिंकदर की ऐतिहासिक घटना। अन्य रचनाएं (1) वागीश्वरीस्तवराज, (2) ऋतुविलसित (काव्य), (3) स्वर्णेष्टकीय (नाटक), (4) त्रिभण्डघट्टक (भाण), (5) शिशुविलसित (हिन्दी छन्द में सस्कृत काव्य)।

त्रैलोक्यमोहन गुह (नियोगी) - ई 19-20 वीं शती। "मेघदौत्य" नामक दूतकाव्य के रचयिता। पाबना (बगाल) के निवासी।

त्र्यंबक - पिता श्रीधर। रचना- श्रीनिवासकाव्यम्

त्र्यंबक - पिता- पद्मनाभ। रचना- श्रीनिवासकाव्यम्

दण्डनाथ नारायण भट्ट - सरस्वतीकण्ठाभरण की व्याख्या हृदयहारिणी के रचयिता। हृदयहारिणी सहित सरस्वती- कंठाभरण के सम्पादक का मत है कि नारायण भट्ट भोज के सेनापति वा न्यायधीश थे। समय- ई 14 वीं शती।

दंडी - ई 6 वीं व 7 वीं शती। एक प्रसिद्ध सस्कृत महाकवि और काव्यशास्त्रज्ञ। इन्होंने अपने ग्रंथों में महाराष्ट्री प्राकृत की प्रशंसा की है, वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ माना है और आंध्र, चोल, कलिंग व विदर्भ-प्रदेशों का विपुल वर्णन किया है। उनके काव्य में कावेरी नदी तथा दाक्षिणात्य रीति-रिवाजो का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। इस आधार पर विद्वानों ने उन्हें दाक्षिणात्य माना है।

दंडी के प्रपितामह - दामोदर, पितामह- मनोरथ, पिता- वीरदत्त और मां का नाम गौरी था। यह जानकारी उनकी अवतिसुदरीकथा में मिलती है। तदनुसार कांचीस्थित पल्लव-राजसभा में आप कवि थे। उनके जीवनकाल के बारे में विद्वानो में मतभेद है, किन्तु बहुसंख्य अभ्यासक उन्हें छठी शताब्दी के आसपास का मानते हैं।

दडी के नाम पर प्रसिद्ध अनेक ग्रथो में से केवल दो ही उपलब्ध हैं। उनमें से प्रथम काव्यादर्श ग्रंथ है काव्यशास्त्रविषयक, और दूसरा दशकुमार-चरित है-गद्य काव्यरूप कथा। स्वतत्र काव्यचर्चा के प्रारंभिक काल में रचित काव्यादर्श ग्रथ को संस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान तथा विद्वज्जनों में आदर प्राप्त है।

वैदर्भी शैली में लिखे गए गद्यग्रथ दशकुमारचरित का पदलालित्य रसिकों को मुग्ध करने वाला है। इसीलिये "दंडिनः पदलालित्यम्" कह कर संस्कृत के रसिकों ने दण्डी की शैली का गौरव किया है।

किंवदंती की परंपरा के अनुसार इन्होंने ३ प्रबंधों की रचना की थी। इनमें पहला "दशकुमार-चरित" है, व दूसरा "काव्यादर्श"। तीसरी रचना के बारे में विद्वानों में मतभेद है। पाश्चात्य पंडित पिशेल का कहना है कि इनकी तीसरी रचना "मृच्छकटिक"ही है, जो भ्रमवश शूद्रक की रचना के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों ने "छंदोविचिति" को इनकी तृतीय कृति माना है, क्यों कि इसका सकेत "काव्यादर्श" में भी प्राप्त होता है। पर डॉ. कीथ के अनुसार "छंदोविचिति" व "कालपरिच्छेद" दंडी की स्वतंत्र रचना न होकर काव्यादर्श के दो परिच्छेद थे। अधिकांश विद्वान "अवन्तिसुंदरीकथा" को उनकी तीसरी कृति मानते हैं, जो एक अपूर्ण ग्रंथ है। अवन्तिसुंदरी-कथा में दंडी के जीवन-चरित के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसके नवीन पाठ के अनुसार, भारवि, दंडी के प्रपितामह दामोदर के मित्र थे। दंडी, बाण व हर्षवर्धन के पूर्ववर्ती है, और उनका समय 600 ई. के आसपास निश्चित होता है।

अभिव्यंजना शैली के निर्वाह में सतुलन उपस्थित कर दंडी ने सस्कृत में नवीन पद्धति प्रारभ की है। चरित्र-चित्रण की विशिष्टता, दंडी की निजी विशेषता है। इनके बारे में कई प्रशास्तिया प्राप्त होती हैं यथा-

जाते जगति वाल्मीकौ शब्दः कविरिति स्थिर ।
व्यासे जाते कवी चैति कवयश्चेति दण्डिनि।।

दत्त उपाध्याय - सन् 1275-1310। एक धर्मशास्त्रकार। मिथिला के निवासी। इन्होंने धर्मशास्त्र पर आचारादर्श, छान्दोगाह्निक, पितृभक्ति, शुद्धिनिर्णय, श्राद्धकल्प, समयप्रदीप, व्रतसार आदि अनेक सस्कृत ग्रथ लिखे हैं। छदोगाह्निक व श्राध्दकल्प ये ग्रथ सामवेदी लोगो के लिये है और उनमें नित्यकर्मविषयक जानकारी है। पितृभक्ति व आचारादर्श ग्रंथ हैं यजुर्वेदी लोगों के लिये। पितृभक्ति नामक ग्रथ के अनेक उद्धरण रुद्रधर ने उपयोग में लिये हैं। समयप्रदीप तथा व्रतसार नामक ग्रथों में व्रतों, व्रत-तिथियों आदि का विवेचन किया गया है।

दत्तक - मथुरा के एक ब्राह्मण के पुत्र। जन्म पाटलिपुत्र में। माता की मृत्यु से अन्य ब्राह्मणी द्वारा पालन। इसलिये दत्तक। वेश्या-व्यवसाय पर प्रबन्ध-रचना किन्तु अप्राप्त। केवल दो दत्तकसूत्र, श्यामिलक और ईश्वरदत्त द्वारा निर्दिष्ट हैं। गंगवेश के माधववर्मा द्वितीय ने दत्तक-सूत्र पर वृत्ति लिखी (समय ई. 380)। केवल दो अध्यायों की छन्दोबद्ध वृत्ति उपलब्ध। संभवत दत्तक मत पर आधारित यह लेखक की स्वतत्र रचना हो।

दत्तात्रेय कवि - "दत्तात्रेयचम्पू" नामक काव्य के रचयिता। समय 17 वीं शताब्दी का अंतिम चरण। पिता-वीरराघव। माता-कुप्पम्मा। गुरु-मीनाक्ष्याचार्य। इन्होंने अपने चम्पू-काव्य में विष्णु के अवतार दत्तात्रेय का वर्णन किया है।

दत्तिल - एक नाट्याचार्य व संगीताचार्य। डॉ. दीक्षित के अनुसार कोहल के बाद दत्तिल (या दंतिल) ही सर्वाधिक ख्यात आचार्य रहे हैं। धृवा के सम्बन्ध में दत्तिल के मत का उल्लेख अभिनवगुप्त ने किया है। रसार्णवसुधाकर में तथा कुट्टनीमतम् में भी इनका उल्लेख किया गया है। रामकृष्ण कवि ने दत्तिल के "गांधर्व-वेदासार" नामक ग्रंथ का उल्लेख

किया है। कामसूत्र के अनुसार पाटलिपुत्र की गणिकाओं के अनुरोध पर कामशास्त्र के वैशिक अध्याय की रचना दत्तक ने की थी। ये दत्तक, दंतिल या दत्तिल से अभिन्न थे या नहीं यह संदिग्ध है। अभिनवभारती की बड़ोदा में सुरक्षित पांडुलिपि में आतोद्य तथा ताल के प्रसंग में दत्तिल के अनेक पद्य उद्धृत हैं। इससे केवल यह सुस्पष्ट है कि ये भी एक नाट्याचार्य थे। दत्तिल को आचार्य विश्वेश्वर ने भरत का पूर्ववर्ती माना है परंतु बाबूलाल शुक्ल ने समकालीन माना है। सुरेन्द्रनाथ दीक्षित का भी यही मत है। श्री शुक्ल के अनुसार आचार्य दत्तिल का "दत्तिल-कोहलीयम्" नामक नृत्यकला विषयक ग्रथ है जिसकी अप्रकाशित पाण्डुलिपि तंजौर के ग्रन्थागार में विद्यमान है। "दत्तिलम्" नामक प्रसिद्ध तथा सर्वविदित प्राप्य सगीत ग्रंथ का भी उल्लेख किया गया है। नाट्यशास्त्र के सगीतकला विषयक 28 वें अध्याय में दत्तिल के मत का उल्लेख प्राय. 14 बार किया गया है, तथा उसके कुछ उद्धरण भी हैं। भरत के एक पुत्र को इन्होंने संगीत सिखाया था। भरत ने अपने ग्रंथ में दत्तिलाचार्य का उल्लेख किया है।

दफ्तरदार, विठोबाअण्णा - सन् 1813-1873। एक महाराष्ट्रीय कवि। इनका जन्म बेदरे उपनामक शांडिल्यगोत्र के देशस्थ ब्राम्हण-परिवार में कन्हाड में हुआ था। मूलत उनका घराना बेदर का, किन्तु इनके पितामह पेशवा की सेवा में कन्हाड विभाग के दफ्तरदार बने और कन्हाड ही में यह घराना बस गया। तभी से इनका परिवार बेदरे के बदले दफ्तरदार-उपनाम से पहचाना जाने लगा।

विठोबाअण्णा ने संस्कृत एवं मराठी श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया था। अपनी रसीली वाणी से वे पुराणों का कथन भी किया करते थे। अपने वक्तृत्व को संगीत से सजा कर, उन्होंने कीर्तन-कला में भी प्रावीण्य प्राप्त किया था। बचपन से ही वे आशुकवि थे। उन्होंने सस्कृत में अनेक काव्यों की रचना की। वे भगवान् राम के उपासक थे। उन्होंने अपनी रामभक्ति, अपने काव्य में अनेक प्रकार से व्यक्त की है। उन्होंने गजेन्द्रचपू, सुश्लोकलाघव, हेतुरामायण, प्रबोधोत्सवलाघव, साधुपार्षदलाघव आदि दस-बारह सस्कृत काव्य-ग्रंथों की रचना की है। उनके मराठी काव्य पर भी सस्कृत का काफी प्रभाव है।

अपनी आयु के साठवें वर्ष, चैत्र वद्य एकादशी के दिन प्रातः इन्होंने इहलोक छोडा। अपने कीर्तनों को प्रभावशाली बनाने हेतु महाराष्ट्र के कीर्तनकार आज भी विठोबाअण्णा के संस्कृत व मराठी काव्य का सहारा लिया करते हैं।

दमन - ऋग्वेद के दसवें मंडल के सोलहवें सूक्त के द्रष्टा किन्तु ऋग्वेद में इनका कहीं पर भी नामोल्लेख नहीं। अपने एक मृत संबंधी के कलेवर को भस्मसात् करने वाली अग्नि को संबोधित करते हुए इस सूक्त की रचना दमन ने की है। उन्होंने अग्नि से प्रार्थना की है कि वह मृतक के कलेवर के किसी भी भाग को इधर या उधर न होने देते हुए उसे पूर्णतः दग्ध करे और उसे पितरों के लोक में ले जाकर छोड़े।

जिस मृतक की देह को अग्नि ने दग्ध किया, उसके लिये अंत में दमन ने यह आश्वासन मांगा है कि दहनभूमि पर पुन. दूर्वांकुरों की हरियाली फैले और वल्लरियों की आल्हाददायक शीतलता छाए।

इस प्रकार एक मृत सबधी के प्रति स्नेहभावना से सरोबार होने के कारण इस सूक्त को काव्यात्मकता प्राप्त हुई है। दमन को यम का पुत्र माना जाता है।

दयानंद सरस्वती - समय- 1824-1883 ई.। मूल नाम मूलशकर (मूलजी)। पिता- अंबाशकर, सामशाखीय औदीच्य ब्राह्मण। कर्मठ, धर्मनिष्ठ, संपन्न शैव परिवार में जन्म। जन्मस्थान मोरवी (काठियावाड)। पिता के पास आठ वर्ष की आयु में ही यजुर्वेद का अध्ययन तथा व्याकरण से परिचय। छोटी बहन तथा पितृव्य की मृत्यु के कारण ससार से विरक्ति। गृह-त्याग। स्वामी पूर्णानद से सन 1845 में सन्यास- दीक्षा। स्वामी विरजानद के पास व्याकरण का अध्ययन। रचनाए- सत्यार्थ-प्रकाश, संस्कार-विधि, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, ऋग्वेद-भाष्य, यजुर्वेद-भाष्य, उणादिकोश-वृत्ति आदि। आर्य-समाज के संस्थापक, वेदों के आधुनिक भाष्यकार और महान् समाज-सुधारक के नाते सुप्रसिद्ध। गुरु विरजानंद की इच्छा के अनुसार की हुई प्रतिज्ञानुसार उन्होंने अपना पूरा जीवन सत्य के प्रचार, मूर्तिपूजा व अध रूढियो के खडन-उच्चाटन तथा वैदिक ज्ञान की पुन स्थापना के हेतु समर्पित कर दिया था।

दयानदजी का जन्म त्रेदविद्या के न्हासकाल में हुआ था। अंग्रेजी विद्या बडी तेजी से भारत में प्रतिष्ठित होने लगी थी। अपनी भारतीय विद्या के सबध मे उदासीनता भी उसी तरह फैल रही थी। ऐसे समय दयानन्दजी प्रकट हुए और उन्होने ऋग्वेद और यजुर्वेद पर भाष्य-रचना कर वेद-विद्या पर नया प्रकाश डाला।

वेदों में एकेश्वर-उपासना ही प्रतिपादित है, यह उनका मन्तव्य था। सायण-सदृश पूर्ववर्ती भाष्यों से उन्होंने कुछ सहायता ली किन्तु अर्थ का व्याख्यान स्वतंत्र रूप से किया। कर्म, उपासना व ज्ञानकाण्ड का अधिक विस्तार न कर उन्होंने सहितामत्रों के मूल अर्थ की खोज करने पर ही अधिक ध्यान दिया। अत पूर्ववर्ती भाष्यकारो का उन्होंने उचित स्थल, पर खण्डन भी किया है।

उनके मत से अरुचि रखने वाले अभ्यासक भी उनकी असाधारण विद्वत्ता, अलौकिक प्रतिभा, उत्कृष्ट वक्तृत्व व वाक्पटुता, स्वदेशाभिमान और परम वेदनिष्ठा को सदैव मानते रहेंगे। प्रतिकूल काल में उन्होंने वेदनिष्ठा जगाई और वेदविद्या के रक्षण के लिए तथा वेदानुकूल समाज-सुधार के लिए आर्य समाज जैसी प्रभावी संघटना की स्थापना की।

दयालपाल मुनि - रचना- रूपसिद्धि (शाकटायन व्याकरण का प्रक्रिया-ग्रन्थ)। इसके अतिरिक्त दो टीकाकारों ने प्रक्रिया ग्रंथ की रचना की है। अभयचन्द्राचार्य (प्रक्रियासग्रह), और भावसेन त्रैविद्यदेव (शाकटायन टीका)। रूपसिद्धि प्रकाशित है पर शेष दो अप्राप्य हैं। भावसेन को "वादिपर्वतवज्र" भी कहते हैं।

दवे, जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण - कार्यवाह, संस्कृत विश्व परिषद्। कृति-सोमनाथ प्रतिष्ठापन के प्रसंग पर रचित सोमराजस्तव। ४० श्लोको का शिवस्तोत्र। भारतीय विद्याभवन द्वारा आंग्लानुवाद सहित प्रकाशित। मुंबई के भारतीय विद्याभवन के निदेशक। अंग्रेजी में लिखे हुए अनेक शोधलेख प्रकाशित हैं। शकराचार्य द्वारा महामहोपाध्याय उपाधि प्राप्त।

दांडेकर, रामचंद्र नारायण (पद्मभूषण)- जन्म- सन 1901 में, सातारा (महाराष्ट्र) में। डेक्कन कॉलेज (पुणे) मे उच्च शिक्षा ग्रहण। 1931 मे हिडलबर्ग (जर्मनी) में एम् ए. उपाधि तथा 1938 में वहीं पर पीएच डी उपाधि प्राप्त। 1932 से 50 तक फर्ग्युसन कालेज (पुणे) में सस्कृत के आचार्य। 1939 से भाडारकर प्राच्यविद्या सस्थान के सतत अवैतनिक सचिव। डेक्कन एज्युकेशन सोसाइटी के मत्री। 1964 से 74 तक पुणे विश्वविद्यालय के सस्कृत उच्चाध्ययन केंद्र के निदेशक। विश्व के सभी देशो में, जहा भी सस्कृत के सम्मेलन हुए, वहा भारत के प्रतिनिधि होकर सहभागी हुए। विदेशो में सर्वत्र मान्यता प्राप्त। 1943 से अ भारतीय प्राच्यविद्या परिषद् के सचिव का दायित्व। विश्व सस्कृत सम्मेलन, वाराणसी-अधिवेशन के अध्यक्ष। अवकाश प्राप्ति के बाद पुणे विश्वविद्यालय मे "एमेरिटस् प्रोफेसर" पद प्राप्त। इन विविध समानों के अतिरिक्त 1973 में इण्टरनेशनल यूनियन फार ओरिएटल ॲण्ड एशियन स्टडीज के अध्यक्ष, यूनेस्को के जनरल असेंब्ली ऑफ दी इटर नेशनल कौन्सिल फॉर फिलॉसाफी ॲण्ड ह्यूमेनिस्टिक स्टडीज के सदस्य, इत्यादि विविध प्रकार के दुर्लभ सम्मान डॉ दाण्डेकरजी को प्राप्त हुए। ग्रथ- देर वेदिक (1938), ज्ञानदीपिका (आदिपर्व) 1941, ए हिस्ट्री आफ् गुप्ताज् 1941, प्रोग्रेस ऑफ इडिक स्टडीज (1942), रसरत्नदीपिका (1945), वैदिक बिब्लिओग्राफी, प्रथम खड (1951), द्वितीय खड (1961), तृतीय खंड (1973), न्यू लाइट ऑन् वैदिक माइथॉलाजी (1951), श्रौतकोष-तीन खण्डो में (1958-73), क्रिटिकल एडिशन ऑफ दी महाभारत शल्यपर्व (1961), अनुशासनपर्व (1966), सुभाषितावली (1962), सम् आस्पेक्टस् ऑफ हिस्ट्रि ऑफ् हिंदुईज्म (1967), इस बहुमूल्य वाङ्मय सेवा के अतिरिक्त देश-विदेश की अनेक शोध पत्रिकाओं तथा अभिनदन ग्रथों में डॉ. दाण्डेकरजी के अनेक विद्वत्तापूर्ण निबंध प्रकाशित हुए हैं। संस्कृत वाङ्मय की सेवा आपने केवल अंग्रेजी के माध्यम से की। संस्कृत भाषा में आपकी कोई रचना नहीं।

दानशेखरसूरि- तपागच्छीय हेमविमल सूरि के समकालीन। जिन माणिक्यगणि के प्रशिष्य और अनन्तहंसगणि के शिष्य। ग्रथ .- भगवती-विशेषपद-व्याख्या। सबद्ध विषयों का विस्तृत विवेचन इस ग्रंथ में किया है।

दामोदर- ई 17 वीं शती। गुजरात के संन्यासी कवि। वेदों के उपासक। रचना- "पाखण्ड-धर्म-खण्डन" नामक तीन अकी नाटक।

दामोदर- पुष्टि-मार्ग (वल्लभ-सप्रदाय) की मान्यता के अनुसार भागवत की महापुराणता के पक्ष में "श्रीमद्भागवत-निर्णय-सिद्धान्त" नामक लघु कलेवर ग्रंथ के लेखक। प्रस्तुत कृति एक स्वल्पाकार गद्यात्मक रचना है जिससे दामोदर द्वारा पुराणों के विस्तृत अनुशीलन किये जाने का परिचय मिलता है।

दामोदरशर्मा गौड (पं.)- वैद्य। वाराणसी में वास्तव्य। ए एम एस.। रचना-अभिनव-शारीरम् (पृष्ठ 582, श्वेतकृष्ण तथा रगीन चित्रो व आकृतियों सहित)। वैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन। 1975 ई।

दामोदरशास्त्री- समय- 1848-1909 ई में नूतन विचारों से संबंधित पाक्षिक पत्र "विद्यार्थी" का सम्पादन कर आपने सस्कृत साहित्य की अपूर्व सेवा की है। उनके द्वारा रचित, "बालखेलम्" नामक पांच अंकों वाला नाटक, श्रीगंगाष्टकम् तथा जगन्नाथाष्टकम् आदि अष्टक, कालिदास व हर्षवर्धन की शैलियों का अपना कर लिखी गयी "चन्द्रावलि" नाटिका के अतिरिक्त दार्शनिक सिद्धान्तों के विवेचन में "एकान्तवास" नामक निबंध विशेष उल्लेखनीय है।

दिङ्नाग- "कुन्दमाला" नामक नाटक के प्रणेता। इस नाटक की कथा "रामायण" पर आधृत है। रामचद्र-गुणचंद्र द्वारा रचित "नाट्य-दर्पण" में "कुंदमाला" का उल्लेख है। अत इनका समय 1000 ई के निकट माना गया है। बौद्ध न्याय के जनक आचार्य दिङ्नाग से ये भिन्न हैं।

दिङ्नाग- उच्च ब्राह्मण-कुल में जन्म। बौधन्याय के जनक। दीक्षा के पूर्व का नाम नागदत्त। ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। जन्म काची के निकट सिंहवक्त्र नामक गाव में। प्रारभ में वे हीनयान संप्रदायांतर्गत वात्सीपुत्रीय शाखा के नागदत्त के शिष्य थे। पश्चात् त्रिपिटक का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद उन्होंने महायान पथ में प्रवेश किया और वे आचार्य वसुबंधु के शिष्य बने। वसुबंधु के मार्गदर्शन में उन्होंने महायान पंथ के सभी प्रमाणभूत ग्रंथो का अध्ययन किया। कहते हैं कि उन पर बोधिसत्त्व मंजुश्री की असीम कृपा थी। अतः उन्हें कुछ भी अगम्य न रहता था। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि तथा प्रकांड पांडित्य की कीर्ति जब नालंदा पहुंची, तो नालंदा विद्यापीठ के आचार्य ने उन्हें वहां सादर आमंत्रित किया। वहां पहुंच कर उन्होंने सुदुर्जय नामक एक वैदिकधर्मीय तार्किक को तर्क

अन्य वैदिक पंडितों को वाद-विवाद में पराभूत किया। इस विजय के कारण उन्हें तर्कपुगव यह विरुद एव "पंडितोष्णीष" नामक शिरोभूषण प्राप्त हुए।

तदुपरात दिङ्नाग ने महाराष्ट्र और उडीसा-प्रदेशो में सचार करते हुए अनेक जैन पडितों को वाद-विवाद में पराजित किया। महाराष्ट्र के आचार्य विहार में वे दीर्घ काल तक रहे थ।

दिङ्नाग ने न्यायशास्त्र पर न्यायप्रवेश, हेतुचक्रडमरु, प्रमाणशास्त्र, आलंबनपरीक्षा, प्रमाणसमुच्चय आदि अनेक सस्कृत ग्रथों की रचना की। किन्तु केवल "न्यायप्रवेश" के अतिरिक्त उनका अन्य कोई भी ग्रंथ मूल स्वरूप में उपलब्ध नहीं। उनके कुछ ग्रंथों के तिब्बती भाषानुवाद दिखाई देते हैं। दिङ्नाग का मुख्य ग्रथ है "प्रमाणसमुच्चय"। छह परिच्छेदों में विभाजित यह ग्रथ, प्रमाणों के सबध में समय-समय पर रचे गये श्लोको का सग्रह है। अपने इस ग्रथ में दिङ्नाग ने, दो पूर्वाचार्यों, वात्स्यायन और गौतम का खडन किया है। डा कीथ, प्रो मेक्डोनेल प्रभृति के अनुसार इनका समय 400 ई है।

सन् 557 से 569 तक के कालखड मे, दिङ्नाग के दो ग्रथो का अनुवाद चीनी भाषा मे किया गया था। प्रमाणसमुच्चय का तिब्बती अनुवाद तिब्बती राजालामा दे-प-शे-ख के सहयोग से हेमवर्मा नामक एक भारतीय बौद्ध पडित ने किया। ग्रथ का तिब्बती नाम है छे-म-कुत-ई।

दिङ्नाग अत्यत वादनिपुण एव आक्रमक प्रवृत्ति के पडित थे। उनके पश्चात् हुए उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र, कुमारिल भट्ट, सुरेश्वराचार्य प्रभृति वैदिक पडितो तथा प्रभाचन्द्र, विद्यानद प्रभृति जैन दार्शनिको ने दिङ्नाग के मतो का खडन किया है। इनका निर्वाण उडीसा के एक वन में हुआ।

इन्हें बौद्ध न्याय का संस्थापक माना जाता है। प्राचीन नैयायिको में दिङ्नाग का स्थान अत्यत उच्च है। इत्सिग के आलेखानुसार, उनके ग्रथो को भारतीय विद्या-केन्द्रो में पाठ्यग्रथो का स्थान प्राप्त था। गगेश उपाध्याय के काल तक (सन् 1200) भारतीय न्यायविद्या के क्षेत्र में दिङ्नाग का ही साम्राज्य रहा।

दिङ्नाग के जीवन के वास्तव्य का अधिकाश काल उडीसा में रहा। ये मत्रतत्र-विशेषज्ञ भी थे। उडीसा के अर्थमत्री भद्रपालित (जिसे इन्होंने बौद्ध दीक्षा दी थीं) के सूखे हरीतकी-वृक्ष को आपने प्रयोग से हरा-भारा किया। इनकी शिष्य-शाखा में धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित, कमलशील, शंकरस्वामी जैसे विद्वान थे।

रचनाएं- न्यायदर्शन पर इनके द्वारा लगभग सौ ग्रंथ रचित हैं, जिनमें प्रमुख ग्रथ हैं- (1) प्रमाणसमुच्चय, (2) प्रमाणसमुच्चय-वृत्ति, (3) न्यायप्रवेश, (4) हेतुचक्रडमरु, (5) प्रमाणशास्त्र-न्यायप्रवेश, (6) आलम्बनपरीक्षा, (7) आलम्बनपरीक्षावृत्ति, (8) त्रिकालपरीश्रा और (9) मर्मप्रदीपवृत्ति इत्यादि।

इन्होंने बौद्धन्याय को सुव्यवस्थित करने में पूर्ण योग दिया तथा गौतम और वात्स्यायन के पचावयव-वाक्य का खण्डन कर, अनुमान के लिए तीन अवयव ही पर्याप्त हैं यह प्रमाणित किया।

दिनकर- ई 19 वी शती। पिता-अनन्त (महान् गणितज्ञ)। रचनाए- ग्रहविज्ञान-सारिणी, मास-प्रवेश-सारिणी, लग्न-सारिणी, क्रान्तिसारिणी, दृक्कर्मसारिणी, चन्द्रोदयाकजालम्, ग्रहमानजालम्, पातसारिणी-टीका और यन्त्र-चिंतामणि-टीका।

दिनकरभट्ट- ई 17 वीं शती। एक संस्कृत धर्मनिबधकार। इन्हे दिवाकरभट्ट भी कहते हैं। न्याय, वैशेषिक, मीमासा एवं धर्म शास्त्रों के वे प्रकाड पडित थे। कहा जाता है कि वे शिवाजी महाराज के आश्रित थे। उनके भाई लक्ष्मणभट्ट ने अपने आचाररत्न नामक ग्रथ में उनकी स्तुति निम्न शब्दों में की है-

"जिस प्रकार आदिवराह ने जल में डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर निकाला, उसी प्रकार जिसने अपने कुल की प्रतिष्ठा को उच्च पद तक पहुचाया और जिससे गगा के समान (पवित्र) विद्या प्रसृत हुई, उस ज्येष्ठ भ्राता की अर्थात् भट्ट दिवाकर की, मे स्तुति करता हू।"

दिनकर भट्ट ने शास्त्रदीपिका पर भट्ट-दिनकरमीमांसा अथवा भाट्टदिनकरी, शांतिसार, दिनकरोद्योत अथवा भाट्ट दिनकरोद्यात ये ग्रथ लिखे हैं। किन्तु कहा जाता है कि इनमें से अतिम ग्रथ उनके हाथो से पूरा न हो सका था। उसे उनके सुप्रसिद्ध पुत्र विश्वेश्वर (गागाभट्ट काशीकर) ने पूरा किया।

दिलीपकुमार राय- ई 20 वीं शती। द्विजेन्द्रलाल राय के पुत्र। रचना- पिता की बगाली कविताओ के सस्कृत-अनुवाद।

दिवाकर- ज्योतिषशास्त्र के एक आचार्य। समय ई 17 वीं शती। इनके चाचा शिव देवज्ञ अत्यत प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। दिवाकर ने इन्हीं से ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया था। इन्होने "जातक-पद्धति" नामक फलित ज्योतिष के ग्रथ की रचना की है। इसके अतिरिक्त "मकरद-विवरण" व केशवीय-पद्धति" नामक टीकाग्रथो की भी इन्होंने रचना की है। इनका दूसरा मौलिक ग्रथ है "पद्धति-प्रकाश" जिसकी सोदाहरण टीका इन्होंने स्वय ही लिखी है।

दिवाकर- पिता-विश्वेश्वर। रचना-राघवचम्पू।

दिवेकर, हरि रामचंद्र (डॉ)- समय- ई 20 वीं शती। ग्वालियर-निवासी। प्रयाग वि वि से एम ए डी.लिट्। मध्यभारत में सर्वोच्च शैक्षणिक पदों पर राजकीय सेवा में रत रहे। "कालिदासमहोत्सवम्" नामक नाटक के रचयिता। वैदिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर इन्होंने अनेक मौलिक शोधनिबंध लिखे हैं।

दिव्य आंगिरस- ऋग्वेद के दसवें मडल का 107 वा सूक्त इनके नाम पर है। दक्षिणा की महिमा है सूक्त का विषय।

इनके कथनानुसार देवताओं के लिये किये जाने वाले यज्ञ में दी जाने वाली दक्षिणा में दैवी प्रवृत्ति की पूर्णता होती है।

दक्षिणा के कारण प्राप्त होने वाली अनेक बातें आपने निम्न ऋचा में बताई हैं-

> दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामीणरग्रमेति।
> तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य. प्रथमो दक्षिणामाविवाय।।
> (ऋ. 10-107-5)

अर्थ- जो दक्षिणा देता है, उसी का नाम (लोगों के मुखों पर) प्रथम आता है। जो दक्षिणा अर्पण करता है, वही अपने गाव में नेता कहला कर श्रेष्ठ पदवी प्राप्त करता है। सर्वप्रथम व भरपूर दक्षिणा देने वाले पुरुष को ही मैं जनता का राजा मानता हू।

इस सूक्त के अंत में दानमाहात्म्य का वर्णन भी है।

दीक्षित राजचूडामणि (यज्ञनारायण)- ई 17 वीं शती। इन्हें यज्ञनारायण के नाम से पहचाना जाता है। इन्होंने तीन ग्रथो की रचना की है- जैमिनिसूत्र पर तंत्ररक्षणामणि नामक टीका, कर्पूरवार्तिक और जैमिनि के सकर्षणकाड (या देवता काड) पर सकर्षण न्यायमुक्तावलि नामक टीका। इन्होंने एक संस्कृत नाटिका भी लिखी है।

दीक्षित समरपुंगव- ई 17 वीं शती। रचना-तीर्थयात्रा-प्रबध (अनेक तीर्थक्षेत्रो तथा मन्दिरो का काल्पनिक वर्णन इसमें है)।

दीनद्विज- ई 19 वी शती का प्रथम चरण। असम-निवासी। सन्दिकेवशीय राजा बरफुकन द्वारा सम्मानित। "शंखचूडवध" नामक आकिया नाटक के रचयिता। रचनाकाल- सन् 1803 ई।

दीर्घतमा- ऋग्वेद के प्रथम मडल के 140 से 164 तक के 25 सूक्तो के आप द्रष्टा हैं। आगिरस गोत्र के दीघतर्मा, उतथ्य व ममता के पुत्र थे। अपने चाचा बृहस्पति के शाप से वे जन्माध थे। तद्विषयक एक कथा बृहद्देवता में मिलती है। माता के गर्भ में ही उन्हें सपूर्ण वेदविद्या अवगत हो चुकी थी। उन्होंने अग्नि की प्रार्थना की और उसकी कृपा से उन्हें दृष्टि प्राप्त हुई।

इनकी पत्नी का नाम था प्रद्वेषी। उससे इन्हें गौतम प्रभृति अनेक पुत्र हुए। किन्तु अपने कुल के अत्यधिक विस्तार हेतु इन्होंने गोरतिविद्या प्राप्त की, और वे लोगों के सामने स्त्री-समागम करने लगे। तब प्रद्वेषी दूसरा पति करने के लिये उद्युक्त हुई। यह देख उन्होंने मर्यादा डाल दी कि "स्त्री को यावज्जन्म एक ही पति होना चाहिये"।

फिर वे पुरोहित बने। उन्होंने यमुना के किनारे भरत दौष्यंति को ऐंद्र महाभिषेक किया था। लोकमान्य तिलक ने "दीर्घतमा" शब्द का ज्योतिर्विषयक अर्थ लगाया है- दीर्घ दिवसोपरात अस्त होने वाला सूर्य। ऋषि दीर्घतमा का ऋग्वेद का सूक्त (1 164), "अस्य वामीय सूक्त" के नाम से प्रसिद्ध है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से तो यह सूक्त बडा ही महत्त्वपूर्ण है। उसकी निम्न ऋचाए प्रसिध्द हैं-

> द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
> तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति।।
> (ऋ 1 164 20)

वेदातियों के अनुसार इस ऋचा में जीवात्मा और परमात्मा का आलंकारिक वर्णन है। इसमें पिप्पल (फल) खाने वाला अर्थात् विषयोपभोग करने वाला है जीवात्मा, और निरासक्त रह कर किसी भी प्रकार का भोग न करते हुए केवल साक्षित्व से रहनेवाला है परमात्मा।

> दीर्घतमा ने वेदों की स्तुति निम्नप्रकार की है-
> ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
> यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदु.।
> यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
> य इत्तद् विदुस्त इमे समासते।। (ऋ. 1 164 39)

अर्थ- ऋचाए, अक्षर अविनाशी अत्युच्च स्वर्लोक में रहती हैं, जहा सभी देवो ने वास किया है। इस बात को जो व्यक्ति समझ नहीं पाता उसे वेदों का भी क्या उपयोग। जिन्हे यह अर्थ समझा वे सब एकत्रिक (सामजस्यपूर्वक) रहा करते है।

डॉ. सम्पूर्णानद के अनुसार अपनी परावलबिता तथा अन्य कटु अनुभवो का विचार करने से दीर्घतमा के अतकरण में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। भोगो से परावृत्त होकर वे आत्मस्वरूप का चितन करने लगे और अतत निर्विकल्प समाधि तक पहुचे। डा वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार दीर्घतमा है दीर्घकालीन अधकार अर्थात् विश्वोत्पत्ति के रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न करनेवाले एक तत्त्वचिंतक ऋषि का उपनाम। दृष्य जगत् का वैज्ञानिक एव दार्शनिक दृष्टिकोण से अर्थ लगानेवाले प्रथम द्रष्टा थे ये दीर्घतमा ऋषि।

दुःखभंजन- 18 वी शती में वाराणसी के निवासी। रचना- चन्द्रशेखरचरितम्।

दुर्गाचार्य- यास्काचार्य के निरुक्त पर लिखी गई उपलब्ध टीकाओं में दुर्गाचार्य की टीका सर्वाधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। किन्तु जैसा कि दुर्गाचार्य की टीका से विदित होता है, इससे पूर्व भी कुछ आचार्यों ने निरुक्त पर टीकाए लिखीं थीं। दुर्गाचार्य ने अपनी टीका में अपने विवेचन के समर्थनार्थ उन पूर्वाचार्यों के वचनो को उद्धृत किया है। कतिपय ग्रंथो के अनुसार आप जंबुमार्गस्थित आश्रम में रहते थे। किन्तु इस स्थान का पता नहीं चलता। डा लक्ष्मण-स्वरूप के मतानुसार यह स्थान काश्मीर में होगा। इसके विपरीत प. भगवद्दत्त, दुर्गाचार्य को गुजरात के निवासी मानते हैं। दुर्गाचार्य की टीका में मैत्रायणी संहिता के अनेक उद्धरण हैं और प्राचीन काल में यह संहिता गुजरात ही में अधिक प्रचलित थी। यही है भगवद्दत्त की उक्त मान्यता का आधार।

दुर्गाचार्य-लिखित निरुक्त- टीका की उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित प्रति सन् 1387 के आसपास की है। तदनुसार दुर्गाचार्य 14 वीं शताब्दी के होने चाहिये। किंतु बै. का राजवाडे दुर्गाचार्य को 10 वीं अथवा 11 वीं शताब्दी के मानते हैं। उद्गीथाचार्य प्रभृति वेदभाष्यकारो ने पर्याप्त स्थलो में दुर्गाचार्य को प्रमाण माना है। उससे दुर्गाचार्य की प्राचीनता और श्रेष्ठता स्पष्ट होती है।

इनका नाम भगवद् दुर्गासिंह था। भगवद् उपाधि से वे विशिष्ट श्रेणी के सन्यासी होंगे ऐसा अनुमान है।

अपने निजी कापिष्ठल वसिष्ठ गोत्र का वे निर्देश करते हैं। सन्यासी रहते हुए अपने गोत्र का निर्देश उन्होंने क्यो किया यह चिंता का विषय है। अनेक पूर्ववर्ती ग्रथो से उन्होंने उद्धरण लिए जिनका मूल अभी अज्ञात है। इससे दुर्गाचार्य के पाण्डित्य की गहराई स्पष्ट होती है।

"ईदृशेषु शब्दार्थन्यायसक्टेषु मन्त्रार्थघटनेषु दुरवबोधेषु मतिमता मतयो न प्रतिहन्यन्ते। वय त्वेतावदत्रावबुध्यामहे इति।"

(ऐसे कठिन मन्त्रों के व्याख्यान में विद्वानों की बुद्धिया नहीं रुकती। हम तो यहां इतना ही जानते हैं)। यह उद्गार दुर्गाचार्यजी की प्रगल्भता और विनय का द्योतक है। दुर्गाचार्य की निरुक्त-वृत्ति के अनेक सस्करण निकले हैं। इससे भी ग्रथ और ग्रंथकार का प्रामाण्य स्पष्ट होता है।

दुर्गादत्तशास्त्री - ई 20 वीं सदी। हिमाचल प्रदेश के कागडा जिले के अन्तर्गत नलेटी जैसे छोटे से गाव में रहते हुए आपने सस्कृत साहित्य की अच्छी सेवा की। विद्यालकार एव साहित्यरत्न इन उपाधियों से आप विभूषित हैं, और आपको राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। कृतिया- (1) राष्ट्रपथप्रदर्शनम् (18 अध्यायों का काव्य), (2) तर्जनी (11 अध्यायों का काव्य), (3) मधुवर्षणम् (7 सर्गों का काव्य), (4) वत्सला (छह अकों का सामाजिक नाटक) (5) वियोगवल्लरी (गद्य कथा), और (6) तृणजातकम् (सामाजिक लघुनाटक)। इन ग्रथो के निर्माण से आपने सस्कृत-साहित्यिको मे प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

दुर्गादास - ई 16 वीं शती। प्रकाण्ड नैयायिक वासुदेव सार्वभौम विद्यावागीश के पुत्र। कुलनाम- गागुली। कृतिया- सुबोधा (व्याकरण ग्रथ) यह मुग्धबोध की टीका है।

दुर्गाप्रसन्न देवशर्मा विद्याभूषण - ई 20 वीं शती। कुलनाम- भट्टाचार्य। गुरु-कालीपद तर्काचार्य। पिता-विद्वच्चन्द्रकिशोर वाचस्पति। "एकलव्य-गुरुदक्षिणा" नामक नाटक के प्रणेता।

दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी - समय- ई 19 वीं शती। निवासस्थान- एकडलाग्राम। पिता- कोदीराम। गुरु-छोटक मिश्र। कुलपति के नाते दुर्गाप्रसादजी ने सैकडों छात्रों का अध्यापन किया था। काशिकासार-टीका, शब्देन्दुशेखर-टीका, बलभद्रीय सारस्वतटीका, रसमजरीटीका और रासपचाध्यायी टीका नामक टीकाग्रंथ और पुराणपरिमल, जातकशेखर (ज्योतिष-ग्रंथ) तथा प्रतिष्ठाप्रदीप, सस्कारदर्पण और ग्रन्थचन्द्रिका नामक तीन कर्मकाण्डविषयक आपके ग्रंथ अद्यापि अप्रकाशित हैं। त्रिविक्रम-कविकृत रामकीर्तिकुमुदमाला नामक खडकाव्य पर आपकी माधुरी नामक टीका मूल ग्रथ सहित श्रीचद्रभानु त्रिपाठी ने इलाहाबाद से प्रकाशित की है।

दुर्मित्र - ऋग्वेद के 10 वें मंडल का 105 वा सूक्त इनके नाम पर है। इन्होंने इन्द्र के अश्वो और उसके वज्र की क्षमता का वर्णन किया है। इनके इस सृक्त में निम्न मानसशास्त्रीय विचार प्रस्तुत है-

आ योरिन्द्र पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान्।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान्।। (ऋ 10-105-3)

अर्थ- जो वासनाए (वृत्तिया) पातक से उद्भूत होती हैं, उनका नाश इन्द्र करता है क्यो कि मर्त्य (मानव) परिश्रम से कतराने वाला तथा भीरू है किन्तु किसी शुभ कार्य के लिये प्रवृत्त होते ही वही बडा धैर्यशाली बन जावेगा। इस सूक्त के 11 वे मत्र मे दुर्मित्र ने स्वय को कुत्सपुत्र कहा है।

दुवस्यु- ऋग्वेद के दसवे मडल का 100 वा सूक्त इनके नाम पर है। एक धर्मपरिषदके अवसर पर यज्ञमडप मे इस सूक्त की रचना हुई होगी। इस सृक्त का विषय है इन्द्र, सूर्य, अग्नि, धेनु प्रभृति देवताओ की स्तुति। इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा के अत मे "हम स्वतत्र बने रहे" ऐसी प्रार्थना की गई है किन्तु हम उन्हे अपनी शरण मे लाकर ही छोडेगे" - ऐसा आत्मविश्वास भी अत में व्यक्त किया गया है। सबधित सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है-

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तनत्रतस्य या सदने कोशे अङ्ध्वे।
तन्रेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे।।

अर्थ- हे धेनुओ, तृणधान्य से परिपूर्ण इस भूमि पर तुम (चरती हो तब मानो) ओज और पुष्टि का ही सेवन करती हो तथा सद्धर्म के गृह मे वह ओज (दुग्ध के रूप में) प्रकट करती हो, तो तुम्हारा शरीरजन्य (दुग्ध) हमारे शरीरो के लिये औषधि बने क्यो कि हम यही वरदान मागते हैं कि हमारा सर्वतोपरि मगल हो और हम सदा स्वतत्र बने रहें। स्वातत्र्य-प्रेम इस सूक्त का वैशिष्ट्य है।

दृढबल- एक आयुर्वेदाचार्य। पिता- कपिलबल। तदनुसार इनको कापिलबलि भी कहा जाता था। काश्मीरस्थित पचनपुर के निवासी। अनुमानत आपका काल वाग्भट के पहले का (अर्थात् सन् 300 के आसपास का) माना जाता है क्यों कि वाग्भट और जेज्जट ने आपके वचनो को उद्धृत किया है। ऐसा कहते हैं कि चरकसहिता का कुछ भाग आपने पूर्ण किया था।

दृढच्युत - ऋग्वेद के 9 वें मडल के 25 वें सूक्त के दृष्टा। ये अगस्त्य-कुल के हैं। इन्होंने अपने सूक्त में सौम-प्रशस्ति

का गान किया है। तदंतर्गत एक ऋचा इस प्रकार है -

अरुषो जगयन् गिरः सोम.पवत आयुषक्।

इन्द्रं गच्छन् कविक्रतु ।।

अर्थ- तेजस्वी तथा काव्य-स्फूर्ति प्रदान करने वाला सोम, मानवों का हित करने हेतु इन्द्र की और जाने वाला ये अत्यंत प्रतिभावन सोम, देखिये किस प्रकार प्रवाहित है। सोमरस को बुद्धि-चातुर्य का एक साधन बताना ही इस ऋचा का आशय प्रतीत होता है।

दे. ति. ताताचार्य - ई 20 वीं शती। नई दिल्ली के निवासी। रचना "पुन:सृष्टि" व "सोपानशिला नामक रूपक।

देव- ई 12 वीं शती। रचना- पाणिनीय धातुपाठ पर 200 श्लोकों की वृत्ति पर लीलाशुकमुनि ने पुरुषकार नामक वार्तिक लिखा है। प. युधिष्ठिर मीमासक ने यह वार्तिक प्रकाशित किया है। इस ग्रथ में समान रूप वाली अनेक गणों में पठित धातुओं का विभिन्न गणों में पाठ करने के प्रयोजन का विचार किया गया है।.

देव विश्वनाथ - ई 17 वीं शती। शैवसप्रदायी। गोदावरी-परिसर के धारासुर नगर के निवासी। बाद में काशी में प्रतिष्ठित। रचना- "मृगाङ्कलेखा" (नाटिका)।

देवकी मेनन - ई 20 वी शती। मद्रास के क्वीन मेरी महाविद्यालय में सस्कृत-विभाग की अध्यक्षा। सेवानिवृत्ति के पश्चात् एर्नाकुलम (केरल) मे वास्तव्य। "कुचेल-वृत्त" तथा "सैरन्ध्री" नामक प्रेक्षणको (आपेरा) की रचयित्री।

देवकुमारिका - एक कवियित्री। उदयपुर के राणा अमरसिंह इनके पति थे। समय- 18 वीं शताब्दी का पूर्वार्ध। इन्होंने "वैद्यनाथ-प्रासाद-प्रशस्ति" नामक ग्रथ की रचना की है जिसका प्रकाशन "सस्कृत पोयटेसेस" नामक ग्रथ में (1940 ई में कलकत्ता से हुआ है)। इस ग्रथ में 142 पद्य हैं जो पाच प्रकरणों में विभक्त हैं। प्रथम प्रकरण में उदयपुर के राणाओ का सक्षिप्त वर्णन है व द्वितीय प्रकरण में राणा सग्रामसिह का अभिषेक वर्णित है। शेष प्रकरणों में मंदिर की प्रतिष्ठा का वर्णन है।

देवण भट्ट - ई. 13 वीं शती का पूर्वार्ध। राजधर्म के एक मान्य निबधकार व याज्ञिक। पिता- केशवादित्य भट्टोपाध्याय। डॉ शामशास्त्री के मतानुसार ये आध्र-प्रदेश के निवासी हो सकते है क्यों कि अपने ग्रथ में मामा की पुत्री से विवाह करने का इन्होंने विधान किया है जिसे आंध्र में मान्यता है। धर्मशास्त्र पर लिखा गया इनका "स्मृतिचंद्रिका" ग्रथ पाच कांडों में विभाजित है। उसमे संस्कार, आह्निक, व्यवहार, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि विषय समाविष्ट हैं। प्रस्तुत ग्रथ में उन्होंने प्रायः सभी टीकाकारों का उल्लेख किया है। विज्ञानेश्वर का बडे आदर के साथ निर्देश करते हुए भी उन्होंने कुछ स्थानो पर अपना मतभेद भी व्यक्त किया है। इस ग्रंथ में देवणभट्ट ने अन्य अनेक ग्रथों व ग्रथकारो के मतो की समीक्षा करते हुए बाद में स्वय के मत प्रस्तुत किये हैं।

इनके ग्रथ को दक्षिण के न्याय-विभाग में बडा मान दिया जाता है। "स्मृति-चद्रिका", सस्कृत निबध-साहित्य मे अत्यत मूल्यवान् निधि के रूप मे स्वीकृत है। स्मृति-चद्रिका के पाच काडो के अतिरिक्त इन्होने राजनीति-काड का भी प्रणयन किया है। इन्होंने राजनीति-शास्त्र को धर्म-शास्त्र का अग माना है व उसे धर्मशास्त्र के ही अतर्गत स्थान दिया है। धर्म-शास्त्र द्वारा स्थापित मान्यताओ की पुष्टि के लिये इन्होने अपने ग्रथ में यत्र-तत्र धर्मशास्त्र, रामायण व पुराण के भी उद्धरण दिये है।

देवनन्दि पूज्यपाद - ई 5-6 वी शती। जिनसेन, शुभचन्द्र, गुणनन्दि, धनजय आदि आचार्यों द्वारा उल्लिखित कवि और दार्शनिक। मूल नाम देवानन्दि। बाद में बुद्धि की महत्ता के कारण "जिनेन्द्रबुद्धि" तथा "पूज्यपाद" भी कहलाये। पिता-माधवभट्ट और माता- श्रीदेवी। ब्राह्मण-कुल। कर्नाटक के "कोले" नामक ग्राम के निवासी। नन्दिसघ के आचार्य। सरस्वती-गच्छ के अनुयायी।

कहा जाता है माता श्रीदेवी के भ्राता का नाम पाणिनि था। पूज्यपाद की बहन का नाम कमलिनी था जिसका पुत्र नागार्जुन था। साप के मुह से फसे मेंढक को देख कर ससार से विरक्त हुए और दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की। पाणिनि के अपूर्ण व्याकरण को पूर्ण किया। नागार्जुन को सिद्धिया सिखायीं। आकाशगामिनी विद्याधारी होने से विदेह-क्षेत्र आदि का भ्रमण किया। प्रस्तुत कथा की सत्यता विचारणीय है। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य घटनाए भी उल्लेखनीय हैं। - घोर तपश्चरणादि के कारण आखो की ज्योति नष्ट हो गई। कुछ मत्र साधना से उसकी पुन प्राप्ति हुई। इन्हे औषधि-ऋद्धि की उपलब्धि हुई। कहते है कि इनके पाद-स्पृष्ट-जल के प्रभाव से लोह स्वर्ण मे परिणत हो जाता था ऐसे ये महान् योगी थे।

पूज्यपाद, गगवशीय राजा अविनीति के पुत्र दुर्विनीति (ई 6 वी शती) के शिक्षा-गुरु थे। अकलक द्वारा पूज्यपाद का उल्लेख हुआ है। अत पूज्यपाद का समय पाचवी शती का उत्तरार्ध और छठी शती का पूर्वार्ध माना जाता है।

रचनाए- दशभक्ति, जन्माभिशेष, तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थ-सिद्धि), समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, जैनेन्द्र-व्याकरण, सिद्धिप्रियस्तोत्र, वैद्यक-शास्त्र, छन्द शास्त्र, शान्त्यष्टक, सार-सग्रह। इन ग्रंथो पर कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र आदि आचायो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

देवनाथ उपाध्याय - ई 16 वी शती। मैथिल ब्राह्मण। पर्वतपुर-निवासी। पिता-रघुनाथ। माता- गुणवती। "उषाहरण" नाटक के रचयिता।

देवनाथ ठाकुर - ई 16 वीं शती। मिथिला के निवासी।

इनका पूरा घराना ही विद्यावान् था। इन्होंने मीमांसा पर अधिकरणकौमुदी नामक ग्रंथ की रचना की है जिसमें मीमांसा और धर्म के संबंध का अभेद प्रतिपादित किया है।

देवनाथ तर्कपंचानन- ई 17 वीं शती। प्रसिद्ध बंगाली नैयायिक। कृतियां- रसिकप्रकाश और काव्यकौमुदी।

देवनारायण पांडे- संस्कृत साहित्य सुषमा का संपादन। (गाजीपुर (उ.प्र.) के निवासी)।

देवपाल - कठ मन्त्रपाठ के भाष्यकार। यह स्वतंत्र ग्रंथ नहीं अपि तु कठ-गृह्यभाष्य के अंतर्गत ही उपलब्ध है। इसमें विद्वानों का तर्क है कि देवपाल के पिता हरिपाल ने कठ मन्त्रपाठ पर भाष्यरचना की थी और पुत्र देवपाल ने उसे स्वकृत गृह्यभाष्य में संमिलित किया। वेद-मंत्रों का यज्ञपरक तथा अध्यात्मपरक अर्थ देने में देवपाल की श्रेष्ठता अभ्यासकों को प्रतीत होती है।

देवप्रभ सूरि - एक जैन कवि। ई 13 वीं शती। मलधारी गच्छ के आचार्य। रचना- पाण्डवचरित नामक (18 सर्ग) वीररसप्रधान महाकाव्य। ग्रंथरचना मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य देवानन्द सूरि के अनुरोध पर हुई है। भाषा-शैलीगत प्रौढता और कवित्व-कला का अभाव। कथानक का आधार षष्ठांगोपनिषद् तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित है।

देवराज यज्वा- ई 14 वीं शती। समग्र वैदिक निघण्टु के भाष्यकार। पिता-यज्ञेश्वर आर्य और पितामह- देवराज यज्वा। गोत्र-अत्रि। निवास-स्थान रंगेशपुरी। देवराज यज्वा ने नैघण्टुक का निर्वचन ही अधिक विस्तार से किया है। इस ग्रंथ का मूल आधार आचार्य स्कन्दस्वामी का ऋग्वेदभाष्य और स्कन्दमहेश्वर की निरुक्तभाष्य-टीका है। फिर भी स्कंदभाष्य पर विशेष बल है। "स्कंद- स्वामिव्यतिरिक्त भाष्यकार" इस तरह निर्देश देवराज यज्वा के भाष्य में मिलता है किन्तु यह कौन भाष्यकार है यह ठीक समझ में नहीं आता।

देवराज यज्वा सायणाचार्य के वचन उद्धृत नहीं करते। इससे वे सायण के पूर्ववर्ती है यह बात सूचित होती है। आचार्य देवराज यज्वा ने दुर्गाचार्य को कहीं भी उद्धृत नहीं किया यह आश्चर्यजनक है किन्तु दुर्गाचार्य की प्राचीनता प्रमाणान्तर से स्पष्ट है। देवराज के निर्वचन में स्वतंत्र रूप बहुत कम लिखा गया है। वहां पुरातन प्रमाणों का संग्रह अत्यधिक है।

देवराज सूरि - उपाधि- "अभिनव कालिदास"। केरल के राजा बालमार्तण्ड वर्मा (1729 से 1758 ई तक) तथा उनके भागिनेय रामवर्मा (1758-1798) के प्रमुख सभापण्डित। मद्रास के तिन्नेवेल्ली जनपद में पट्टमडाइ ग्राम के निवासी। पिता- शेषाद्रि। सन् 1765 ई में जिन बारह ब्राह्मणों को अग्रहार प्रदान किया गया उनमें देवराज प्रमुख थे। सन् 1750 में जब मार्तण्ड ने दिग्विजय के पश्चात् अपना राज्य पद्मनाभ को अर्पित किया तब इन्होंने "बालमार्तण्डविजयम्" नामक नाटक की रचना की। राजा बालमार्तण्ड ने ही त्रावणकोर के पद्मनाभ-मंदिर का जीर्णोद्धार किया था।

देवविजय गणि - तपागच्छ के आचार्य। विजयदान सूरि के प्रशिष्य और रामविजय के शिष्य। कार्यक्षेत्र- गुजरात। रचना- 'पाण्डवचरित्र" जो देवप्रभसूरिकृत "पाण्डवचरित्र" महाकाव्य का संस्कृत में गद्यात्मक रूपान्तर है (18 सर्ग)। जैन-रामायण (वि.सं. 1652) और कुछ अन्य रचनाएं भी इनके नाम पर प्राप्त हुई हैं।

देवविमल गणि - एक जैन महाकवि। समय- ई 16 वीं शती। इन्होंने "हीर-सौभाग्य" नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें हीरविजय सूरि का चरित वर्णित है। इस महाकाव्य के 17 सर्ग हैं। सूरिजी ने मुगल सम्राट् अकबर को जैन धर्म का उपदेश दिया था।

देवशंकर पुरोहित - ई 18 वीं शती। राठोड ग्राम (गुजरात) के निवासी। रचना - अलंकारमंजूषा जिसमें बडे माधवराव तथा रघुनाथराव इन दो पेशवाओं का चरित्र-वर्णन करते हुए अलंकारों के उदाहरण दिये हैं। पेशवाओं पर लिखी गई यही एकमात्र संस्कृत रचना है।

देवसूरि- सन्- 1086-1169। श्वेतांबर पंथ के एक जैन आचार्य, मुनि चन्द्रसूरि के शिष्य। इन्होंने न्यायशास्त्र पर "प्रमाणनय-तत्त्वालोकालंकार" नामक ग्रंथ की रचना की और उस पर स्वयं ही "स्याद्वादरत्नाकर" नामक टीका भी लिखी। जैन न्याय में इन ग्रंथों को प्रमाणभूत माना जाता है। गुजराथ के अनहिलपट्टणस्थित जयसिंहदेव के दरबार में एक बार दिगंबरपंथी कुमुदाचार्य से इनका शास्त्रार्थ हुआ। वाद का विषय था- स्त्रियां निर्वाण पद को प्राप्त कर सकती हैं या नहीं। इस वाद में यह सिद्ध करते हुए कि स्त्रियां भी निर्वाण-पद प्राप्त कर सकती हैं, देवसूरि ने कुमुदाचार्य को पराजित किया। इन्होंने सन् 1147 में फलवर्धिग्राम में एक चैत्य का निर्माण कराया और अरसाणा में इन्होंने नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित की।

देवसेन - समय ई 10 वीं शताब्दी। गुरु नाम- विमलगणि। रचनाएं - दर्शनसार, भावसंग्रह, आलापपध्दति, लघुनयचक्र, आराधनासार और तत्वसार। सुलोचनाचरित्र के रचयिता देवसेन से भिन्न (देवसेन नाम के अनेक जैन आचार्य प्रसिद्ध हैं)

देवस्वामी - ई 11 वीं शती। विमलबोध के ग्रंथ विदित होता है कि इन्होंने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा था। आश्वालायन श्रौतसूत्र पर भी इनका भाष्य है। भट्टोजी लिखित चतुर्विंशतिमत नामक ग्रंथ की टीका में देवस्वामी के मत का उल्लेख किया गया है। प्राप्त उल्लेख के अनुसार देवस्वामी ने शाबरभाष्य पर भी व्याख्या लिखी है। महाभारत की विमलबोधनात्मक टीका में पूर्ववर्ती टीकाकार के नाते देवस्वामी

का निर्देश होता है। ये सभी भिन्न व्यक्ति हैं या अभिन्न, यह गवेषणा का विषय है।

देवाचार्य - निबार्क सप्रदाय में प्रसिद्ध कृपाचार्य के शिष्य। इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है "सिद्धान्तजाह्नवी" जो ब्रह्मसूत्र का विस्तृत समीक्षात्मक भाष्य है। इस ग्रथ मे निंबार्क से 7 वी पीढी में स्थित पुरुषोत्तमाचार्य द्वारा प्रणीत "वेदान्त-रत्नमजूषा" का उल्लेख है। अत ये अवातरकालीन ग्रथकार हैं। गुरुपरपरा में क्रमांक 16 पर। गुर्जराधिप राजा कुमारपाल के अभिषेक काल में ये वर्तमान माने जाते हैं। आपके समय तक एक ही शिष्यपरपरा थी। किन्तु पश्चात् दो शाखाए हुई। प्रधान शाखा मे सुंदर भट्टाचार्य तथा दूसरी शाखा में व्रज-भूषण देवाचार्य प्रसिद्ध हुए।

देवातिथि - ऋग्वेद के आठवे मडल का चौथा सूक्त इनके नाम पर है। इस सूक्त में इद्र-सूर्यस्तुति है। तुर्वश राजा के यज्ञ मे दान मे सौ घोडे प्राप्त हुए ऐसा उनका कथन है। सूर्यस्तुति मे उन्होने एक निराले ही प्रकार की प्रार्थना सूर्य से की है जो निम्नाकित है -

स न शिशीहि भुजयोरिव क्षुर रास्व रायो विमोचन।
त्वे तत्र सुवेदमुस्त्रिय वसु य त्व हिनोषि मर्त्यम्।। (ऋ 8,4,16)

अर्थ - दोनों हाथो मे पकड कर जिस प्रकार छुरी को घिसा जाता है, उसी प्रकार (सकटो के पत्थर पर घिस कर) हम लोगो को तीक्ष्ण बनाइये। हे दु खविमोचन, हमे अक्षय सपत्ति प्रदान कीजिये। जो उष काल की काति के समान तेजस्वी है और (जिसे आप मर्त्य मानव की ओर सहज ही बिखेर देते है), वे आपके पास के गउओ के झुड आदि अक्षय धन हमे प्राप्त हो।

देवापि - ऋग्वेद के 10 वें मडल का 98 वा सूक्त देवापि के नाम पर है। ये कुरुकुलोत्पन्न एक राजपुत्र तथा राजा शतनु के ज्येष्ठ बधु थे। कुष्ठरोग से पीडित होने के कारण, राजगद्दी पर न बैठते हुए तपस्या हेतु इन्होंने वन की ओर प्रस्थान किया था। इसी लिये छोटे भाई शतनु राजगद्दी पर आए किन्तु बडे भाई के जीवित रहते हुए छोटे भाई के राजा बनने के कारण देवताओ ने राज्य मे पर्जन्यवृष्टि बद कर दी। तब शतनु ने देवापि को राजा बनने हेतु सविनय आमंत्रित किया। इस पर देवापि ने शतनु से कहा से कहा "तुम यज्ञ करो और मै तुम्हारा पुरोहित बनूगा, इससे पर्जन्यवृष्टि होगी।" तदनुसार शतनु ने यज्ञ किया और उसके फलस्वरूप सर्वत्र पर्जन्यवृष्टि हुई। उपरोक्त सूक्त की रचना देवापि ने इसी यज्ञ के समय की थी। चरित्र से देवापि क्षत्रिय थे ऐसा प्रतीत होता है, फिर भी उनके द्वारा पौरोहित्य किये जाने की कथा है। (ऋ. 10,98,11)। थोड़े बहुत अतर से देवापि के विषय मे यही जानकारी पुराणवाड्मय में भी मिलती है।

देवेन्द्र - नागेन्द्रगच्छीय विजयसिह सूरि के शिष्य देवेन्द्र या देवचन्द्र सूरि। ग्रथ - चन्द्रप्रभचरित - वि स 1260। इसमें वज्रायुध नृप की कथा विस्तार से वर्णित है जिसका उत्तरभाग नाटक शैली में लिखा गया है।

देवेन्द्र भट - ई 14-15 शती। रचना - संगीतमुक्तावली।

देवेन्द्रकीर्ति - ई 16 वीं शती। कारंजा के बलात्कारगण के आचार्य। ग्रथ - कल्याणमंदिरपूजा और विषापहारपूजा।

देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय - रचना - वगवीर प्रतापादित्य नामक ऐतिहासिक उपन्यास।

देवेन्द्र वंद्योपाध्याय - ई 19-20 वीं शती। कृति - पाणिनिप्रभा नामक व्याकरण विषयक ग्रथ।

देवेश्वर या देवेन्द्र - वाग्भट के पुत्र। एस् के डे. का कथन है कि ये वाग्भट दोनों साहित्यशास्त्रज्ञों से भिन्न हैं। ये मालवा नरेश के महामात्य थे। एक श्लोक में इन्होंने हम्मीर मही-महेन्द्र की प्रशसा की है। इस चौहान नृप का समय ई 13 वीं शती है। रचना - कविकल्पकता। समय ई स 1300।

देशमुख, चिंतामणि द्वारकानाथ - (पद्मविभूषण) जन्म ई 1896। जन्मस्थान- कोंकण में रोहे नामक गाव। मुबई और केंब्रिज मे शिक्षा। बरिस्टर तथा आई सी एस की उपाधि प्राप्त होने पर सन 1910 से अनेक उच्च अधिकारपद पर विभूषित किए। 1950 मे स्वतत्र भारत के अर्थमत्री बने और सयुक्त महाराष्ट्र राज्य की स्थापना के विषय में मतभेद के कारण मत्रीपद का त्याग किया। अनेक जागतिक सस्थाओं के पदाधिकारी रहने का सम्मान श्री देशमुख के समान प्राय अन्य किसी को नही मिला। कलकत्ता, कर्नाटक, अन्नमलै, इलाहाबाद, नागपुर और पजाब इन विश्वविद्यालयों द्वारा आपको डाक्टर आफ सायन्स एव डाक्टर आफ लिटरेचर जैसी श्रेष्ठतम उपाधिया असामान्य विद्वत्ता के कारण दी गई। डा देशमुख की सस्कृत साहित्य मे अत्यधिक रुचि प्रारभ से ही रही। 'गाधीसूक्तिमुक्तावली' नामक महात्मा गाधी के वचनों का पद्यानुवाद तथा सस्कृतकाव्यमालिका (अनेक स्फुट काव्यों सग्रह) इन ग्रथों के अतिरिक्त मेघदूत का मराठी भाषा में समश्लोकी अनुवाद आपने किया है जो मराठी के अनेक अनुवादों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है। भगवद्गीता पर आपका एक निबध ग्रथ और अमरकोश पर व्याख्याग्रथ अग्रेजी मे प्रकाशित हुए हैं। (प्रकाशक उप्पल पब्लिशिग हाऊस नई दिल्ली-2)। मृत्यु-सन 1980 मे हैदराबाद में। इडिया इटरनेशनल एव अन्य अनेकविध सांस्कृतिक सस्थाओं की सस्थापना आपने की है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख एक विदुषी, स्वातत्र्यसैनिक तथा प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता होने के कारण भारत शासन द्वारा "पद्मविभूषण उपाधि' से सम्मानित थीं।

दैवज्ञ सूर्य - "नृसिहचंपू" नामक काव्य के प्रणेता। रचना काल ई 16 वीं शती का मध्य भाग। इन्होंने नृसिंह चपू में स्वय का परिचय दिया है। (5-76-78)। तदनुसार दैवज्ञ सूर्य

भारद्वाज कुलोद्भव नागनाथ के पौत्र व ज्ञानराज के पुत्र थे। इनका जन्म गोदावरी तटस्थ वार्धा नामक नगर में हुआ था। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है जिनमें "लीलावती" व "बीजगणित" की टीकाएं भी हैं। नृसिंहचंपू का प्रकाशन कृष्ण ब्रदर्स द्वारा जालंधर से हुआ है।

दोड्डय्य - आत्रेय गोत्रीय विप्रोत्तम जैन धर्मावलम्बी। पिरियपट्टण के निवासी। करणिकतिलक देवप्प के पुत्र। गुरु नाम- पण्डित मुनि। समय ई 16 वीं शती। ग्रथ - भुजबलिचरितम्। कालिदास से प्रभावित।

द्या द्विवेद - नीतिमजरी (अथवा वेदमजरी) नामक एक नीतिपरक पद्य ग्रथ के रचयिता। आनदपुर (गुजरात) के निवासी तथा शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण। आपने इस ग्रथ की रचना, सन 1494 में की। चतुर्विध पुरुषार्थो के सदर्भ में ऋग्वेद के संदेश को स्पष्ट करने वाला यह ग्रथ नीतिपरक सस्कृत साहित्य में सम्मानित है।

इस ग्रंथ पर स्वय द्या द्विवेद ने ही सस्कृत मे टीका भी लिखी है। इस ग्रथ में वैदिक साहित्य की नानाविध कथाओ का परिचय प्राप्त होने के साथ ही उनके नैतिक मूल्यो का दर्शन भी होता है।

द्रविडाचार्य - इन्होंने छादोग्य उपनिषद् पर बृहद् भाष्य लिखा है। बृहदारण्यक उपनिषद् पर भी इनका भाष्य होने के उल्लेख मिलते हैं। शकराचार्य ने इन्हें आगमविद् व सप्रदायविद् कह कर गौरवान्वित किया है। शकराचार्यजी ने इनके मतो का कहीं पर भी खडन नहीं किया है। रामानुज सप्रदाय के कतिपय ग्रंथों में द्रविडाचार्य नामक एक प्राचीन आचार्य का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार शकराचार्यजी द्वारा गौरवान्वित द्रविडाचार्य और ये द्रविडाचार्य भिन्न हैं। कहते है कि इन दूसरे द्रविडाचार्य ने, पाचरात्र सिद्धान्त का अवलब करते हुए तमिल भाषा मे कुछ ग्रथों की रचना की।

द्रोणसूरि - पाटनसघ के प्रमुख पदाधिकारी। समय ई 11-12 वी शती। ग्रथ- ओघनिर्युक्ति और उसके लघुभाष्य पर वृत्ति। प्राकृत और सस्कृत उद्धरण भी हैं। आपने अभयदेव सूरिकृत टीकाओं का सशोधन भी किया है।

द्वारकानाथ - ई 18 वी शती का पूर्वार्ध। *गोविन्दवल्लभ* प्रकरण के रचयिता।

द्विजेंद्रनाथ शास्त्री - बीसवी शताब्दी के आर्यसमाजी लेखक और महाकवि। इनके द्वारा रचित ग्रथ हैं यजुर्वेदभाष्यम्, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका प्रकाश , वेदान्तत्त्वालोचनम्, सस्कृतसाहित्य -विमर्श एव स्वराज्यविजय (महाकाव्य)। इसका रचनाकाल 1955 ई है। "स्वराज्यविजय" महाकाव्य की रचना 1960 ई में इन्होंने पूर्ण की। वृंदावन के आर्यसमाजी गुरुकुल के आप कुलपति थे। निवास स्थान मेरठ।

द्विजेन्द्रलाल पुरकायस्थ (प्रा.) - रचना अलकामिलनम्। विषय- मेघदूत का पूरक खण्ड काव्य, यक्षपत्नी का विरह तथा मिलन। 113 श्लोक। अन्य रचना अद्वैतामृतसार।

द्विवेदगङ्ग - इन्होंने माध्यन्दिन आरण्यक पर मुख्यार्थप्रकाशिका नामक व्याख्या लिखी है। वेबर ने उसका सक्षेप अपने शतपथ ब्राह्मण के सस्करण के अन्त में छापा है।

धनंजय (नैघण्टुक) - निघण्टु के प्रणेता होने के कारण इन्हे नैघण्टुक धनजय भी कहा गया है। पिता- वसुदेव। माता- श्रीदेवी। गुरु- दशरथ। विषापहार स्तोत्र के माध्यम से अपने पुत्र को सर्प विष से मुक्त किया। समय लगभग ई 8 वी शती। रचनाए- धनजयनिघण्टु या अनेकार्थ नाममाला (246 पद्यों का शब्दकोश), विषापहारस्तोत्र (39 पद्य)। इस पर अनेक टीकाए लिखी गई हैं। राघव-पाण्डवीय नामक द्विसन्धान महाकाव्य सन्धान शैली का सर्वप्रथम महाकाव्य (सर्ग 18)। इसमे आद्यन्त राम और कृष्ण चरितों का निर्वाह, प्रत्येक श्लोक के दो दो अर्थों द्वारा किया गया है। इस महाकाव्य की गणना जैनियो के "अपश्चिम रत्नत्रय" मे की जाती है। धनजय की इस द्वयर्थी काव्यशैली का अनुकरण आगे के अनेक कवियो ने किया है।

धनंजय - "दशरूपक" नामक सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रथ के प्रणेता। समय- 10 वीं सदी का अतिम चरण। पिता- विष्णु। भ्राता- धनिक। "दशरूपक" का प्रणयन परमारवशी राजा मुज (वाक्पतिराज द्वितीय) के दरबार मे हुआ था। मुज का शासनकाल 974 ई मे 994 ई तक है। स्वय धनजय ने भी इस तथ्य का स्पष्टीकरण अपने "दशरूपक" नामक ग्रथ मे (4-86) किया है।

धनजय व उनके भ्राता धनिक दोनों ही ध्वनि-विरोधी आचार्य है। ये रस को व्यग न मानकर भाव्य मानते हैं। अर्थात् इनक मतानुसार रस व काव्य का सबध भाव्यभावक का है। "न रसादीना काव्येन सह व्यगव्यजक भाव किं तर्हि भाव्यभावकसबध। काव्य हि भावक भाव्या रसादय " (अवलोक टीका, दशरूपक (4-30)।

इन्होंने शातरस को नाटक के लिये अनुपयुक्त माना है क्यों कि शम की अवस्था मे व्यक्ति की लौकिक क्रियाए लुप्त हो जाती हैं। अत उसका अभिनय सभव नहीं है। इनकी यह भी मान्यता है कि रस का अनुभव दर्शक या सामाजिक को होता है। अनुकार्य को नही (अ टी 4-38) पद्मगुप्त, धनपाल और हलायुध इनके मित्र थे।

धनपति सूरि - समय लगभग ई 1725 ई एक विद्वान वैष्णव व्याख्याकार। श्रीमद्भागवत की रास-पचाध्यायी एव भ्रमरगीत (10 47) की भागवतगूढार्थदीपिका नामक टीका तथा भगवद्गीता की भाष्योत्कर्ष-दीपिका नामक टीका के प्रणेता। गुरु- बालगोपाल तीर्थ तथा पिता- रामकुमार। आपने

अपनी भगवद्गीता की टीका का रचनाकाल 1864 वि सं (1707 ई.) स्वयं ही दिया है।

श्रीधर स्वामी के समान ये भी रास-पंचाध्यायी को निवृत्ति मार्ग का उपदेश देने वाली मानते हैं। इनकी भाष्योत्कर्षदीपिका आचार्य शंकर के गीता भाष्य के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने वाली है। किंतु अद्वैत के आचार्यप्रवर मधुसूदन सरस्वती के अर्थ पर आक्षेप करने से भी वे पराङ्मुख नहीं होते। इनकी भागवत। गूढार्थदीपिका, "अष्टटीका भागवत" के संस्करण में प्रकाशित हो चुकी है।

धनपाल - ई 10 वीं शती। मेरुतुगाचार्य के प्रबधचिंतामणि नामक ग्रंथ में धनपाल का चरित्र आया है। संकाश्य गोत्र के ब्राह्मण सर्वदेव आपके पिता थे। प्रारंभ में धनपाल जैन धर्म के विरोधी थे, किन्तु बाद मे जैनधर्म का अध्ययन कर वे जैन बन गए। आप भोजराजा के सभा में पंडित थे। धनपाल के ग्रथों के नाम है पाईलच्छीनाममाला, तिलकमजरी और ऋषपंचाशिका। पाईलच्छीनाममाला है उनका प्राकृतकोश, जो प्राकृत का एकमात्र कोश है। धनपाल का संस्कृत ग्रथ है तिलकमंजरी। यह ग्रथ राजा भोज को अत्यंत प्रिय था। धनपाल की भाषा का गौरव करते हुए पडितों का प्रश्नार्थक कथन है कि धनपाल के सरस वचन और मलयगिरि के चदन से कौन सतुष्ट न होगा।

धनेश्वर या धनेश - महाभाष्य के टीकाकार। वोपदेव के गुरु। टीका- चिन्तामणि नामक व्याकरण विषयक ग्रथ और अन्य रचना "प्रक्रिया-रत्नमणि" उपलब्ध। समय वि की 13 वीं शती का उत्तरार्ध।

धनेश्वर सूरि - चन्द्रगच्छ के प्रसिद्ध जैन आचार्य। समय 610 ई। "शत्रुंजय" नामक महाकाव्य के रचयिता। इस महाकाव्य में इन्होंने शत्रुजयतीर्थ के उद्धारक 18 राजाओं की प्रसिद्ध दंतकथाओं का वर्णन 14 सर्गों में किया है। इसमें बौद्ध शास्त्रार्थ का भी उल्लेख है। तत्कालीन शासक शिलादित्य थे। डा हीरालाल जैन ने इनका समय 7-8 वीं शती माना है।

धन्वन्तरि - इन्हें आद्य धन्वंतरि का ही अवतार माना गया है। पुराणांतर्गत वशावलि के अनुसार इनका जन्म चंद्रवशी राजकुल मे हुआ था। "हरिवंश" में सुहोत्र, काशिक, दीर्घतपा, धन्वतरि के क्रम से इनकी वश परंपरा दी हुई है। (1,32,18,22)। कुछ, पुराणों में इन्हें दीर्घतप का पौत्र तथा धन्वा का पुत्र माना गया है।

धन्वतरि को आयुर्वेद का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने भारद्वाज से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया, उसका अष्टांगों में विभाजन किया और वह ज्ञान अपने अनेक शिष्यों को प्रदान किया। पुराणों ने इन्हें विद्वान, सर्वरोगप्रणाशन, महाप्राज्ञ, वाग्विशारद, राजर्षि आदि विशेषणों से गौरवान्वित किया है। इनके नाम पर चिकित्सादर्शन, चिकित्साकौमुदी, योगचिंतामणि, सन्निपातकलिका, गुटिकाधिकार, धातुकल्प, अजीर्णामृतमंजरी, रोगनिदान, वैद्यचिंतामणि, विद्याप्रकाशचिकित्सा, धन्वंतरिनिघंटु, वैद्यभास्करोदय और चिकित्सासारसंग्रह नामक तेरह ग्रंथ हैं। उनमें से कुछ ग्रथ उपलब्ध हो चुके हैं। इनके प्रपौत्र काशीराज दिवोदास को भी "धन्वन्तरि" का बिरुद प्राप्त हुआ था।

धरणीदास - ई 11 वीं शती। बंगाल के निवासी। अनेकार्थ समह (अपरनाम धरणीकोश) के कर्ता।

धर्मकीर्ति (आचार्य) - ई 7 वीं शती। एक बौद्ध नैयायिक। संभ्रांत ब्राह्मणकुल में जन्म। मूलत. ये आध्रप्रदेश के तिरुमलै के निवासी थे। प्रारंभ में इन्होंने वैदिक परपरा के ग्रंथों का उत्तम अध्ययन किया था, किन्तु बौद्ध पडितों के संपर्क में आने के बाद उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। न्यायशास्त्र में विशेष अभिरुचि होने के कारण इन्होंने सुप्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग के शिष्य ईश्वरसेन के पास बौद्धन्याय का अध्ययन किया। पश्चात् वे नालदा महाविहार पहुचे और वहा पर उन्होंने सघस्थविर विज्ञानवादी आचार्य धर्मपाल का शिष्यत्व स्वीकार किया। ब्राह्मण दर्शनों का ज्ञान कराने वाले कुमारिल इनके प्रथम गुरु थे किन्तु कुमारिल और धर्मकीर्ति ने एक दूसरे के मतों का खडन किया है।

धर्मकीर्ति ने ब्राह्मण तार्किकों का खंडन करने हेतु अनेक ग्रथ लिखे। "प्रमाणवार्तिक" उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त न्यायबिंदु, हेतुबिंदु, प्रमाणविनिश्चय, वादन्याय, सबधपरीक्षा और समान्तरसिद्धि नामक अन्य 6 ग्रथ भी उनके नाम पर हैं। इनमें से प्रमाणवर्तिक, न्यायबिंदु एवं वादन्याय नामक केवल तीन ग्रथ ही मूल संस्कृत रूप में उपलब्ध हैं। शेष ग्रथो के तिब्बती अनुवाद प्राप्त हुए हैं। "न्यायमजरी"कार जयत भट्ट (1000 ई) जैसे विरोधकों ने भी आचार्य धर्मकार्ति की प्रशसा की है।

बौद्ध न्याय परपरा में दिङ्नाग के पश्चात् धर्मकीर्ति का ही स्थान माना जाता है। इत्सिग ने अपने यात्रा वर्णन में इनका उल्लेख किया है। महापडित डा राहुल साकृत्यायन ने तिब्बत से इनके ग्रथ खोज निकाले हैं। उसके पूर्व ब्राह्मण नैयायिकों के ग्रथों में हुए नामाल्लेख के अतिरिक्त इनके बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

धर्मकीर्ति - न्यायबिन्दुकार धर्मकीर्ति से भिन्न बौद्ध पडित। समय वि सं 1140 के लगभग। रचना- रूपावतार, प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों में सबसे प्राचीन।

धर्मकीर्ति - ई 17 वीं शती। धर्मकीर्ति नाम के अनेक विद्वान भट्टारक परम्परा में हुए। उनमें ललितकीर्ति के शिष्य जैन मत के बलात्कारगण जेरहट शाखा के आचार्य धर्मकीर्ति की दो सस्कृत रचनाएं मिलती हैं - पदमपुराण और हरिवंशपुराण।

धर्मतापस - ऋग्वेद के 10 वें मंडल के 114 वें सूक्त के रचयिता। इसमें उन्होंने विश्वेदेव की स्तुति की है।

धर्मदास - ई. 11 वीं शती के पूर्व। बगाल निवासी। "विदग्धमुख-मण्डन" नामक काव्य के प्रणेता।

धर्मदास - चान्द्र व्याकरण पर अनेक वृत्तिया लिखी किंतु सभी अप्राप्य। केवल एक वृत्ति जर्मनी में रोमन लिपिबद्ध है। उस पर धर्मदास रचयिता होने का उल्लेख है पर युधिष्ठिर मीमासकजी को संदेह है कि वह चन्द्रगोमी द्वारा रचित होगी।

धर्मदेव गोस्वामी - ई. 18 वीं शती का उत्तरार्ध। केहती सत्र (असम) के निवासी। कृतियां-नरकासुर विजय काव्य, धर्मोदय काव्य तथा धर्मोदय नाटक।

धर्मधर - ई 16 वीं शती। पिता- यशपाल। माता- हीरादेवी। गोलाराडान्वयी। इनके विद्याधर और देवधर नामक दो भाई थे। पत्नी- नन्दिका। पुत्र- पराशर और मनसुख। सरस्वतीगच्छ के अनुयायी। गुरु- भट्टारक पद्मनन्दी योगी। रचनाए- श्रीपालचरित और नागकुमारचरित (ई 1454)। चौहानवशी राजा माधवचन्द्र द्वारा सम्मानित। नल्हू साहू की प्रेरणा से नागकुमारचरित की रचना की।

धर्मपाल - ई 7 वीं शती के एक बौद्ध नैयायिक। तमिलनाडु के कांचीपुरम् मे जन्म। आठ भाइयों मे सबसे बडे प्रमुख मत्री के ज्येष्ठ पुत्र। दिङ्नाग के परवर्ती। किशोरावस्था में ही ससार से विरक्त हो कर धर्मपाल ने गृहत्याग किया। घूमते फिरते नालदा विद्यापीठ मे रह कर आपने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। फिर आप वही पर प्रधानाचार्य बने। उस विद्यापीठ ने "बोधिसत्त्वविद्" पदवी देकर आपको गौरवान्वित किया। सुप्रसिद्ध बौद्ध पडित शून्यवाद के व्याख्याता धर्मकीर्ति तथा युआनच्वाग के गुरु शीलभद्र आपके ही शिष्य थे। चीनी यात्री युआन च्वाग और इत्सिग ने धर्मपाल का उल्लेख किया है।

धर्मपाल ने पाणिनि के व्याकरण पर एक वृत्ति लिखी है जिसका नाम है वेदवृत्ति। इसके अतिरिक्त आपके बौद्ध धर्म विषयक सस्कृत ग्रथ प्रसिद्ध है। वे है - आलबन-प्रत्यवधान शास्त्रव्याख्या, विज्ञाप्तिमात्रतासिद्धि-व्याख्या, शतशास्त्रव्याख्या आदि। एक ग्रथ का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है।ऐसा कहा जाता है कि कौशाबी मे अनेक ब्राह्मणो को शास्त्रार्थ मे आपने पराभूत किया। धर्मपाल बौद्धदर्शन के योगाचार मतानुयायी दार्शनिक थे।

धर्मभूषण (अभिनव) - अभिनव धर्मभूषण, वर्धमान भट्टारक के शिष्य थे। विजयनगर के राजा देवराय प्रथम द्वारा सम्मानित। विजयनगर के निवासी। समय ई 13 वीं शती का उत्तरार्ध। रचना- न्यायदीपिका (तीन परिच्छेद)। इसमे प्रमाण, प्रमाण के भेद और परोक्ष प्रमाण का विशद विवेचन किया गया है।

धर्मराज कवि - "वेंकटेशचंपू" के प्रणेता। निवासस्थान तंजौर। ये ई. 17 वीं शती के अतिम चरण मे विद्यमान थे। इनकी काव्यकृति अभी तक अप्रकाशित है। उसका विवरण तंजौर केटलाग में प्राप्त होता है।

धर्मराजाध्वरींद्र - एक प्राचीन नैयायिक। दक्षिण भारत स्थित बोलागुली के निवासी। वेकटनाथ इनके गुरु थे। इन्होंने तत्त्वचितामणिग्रथ पर पहले की दस टीकाओ का खडन करते हुए एक नई टीका लिखी। इनका प्रमुख ग्रथ है- वेदातपरिभाषा। वेदातविषयक विचारो को समझने की दृष्टि से यह ग्रथ अत्यत उपयोगी माना जाता है।

धर्मसूरि - ई 15 वी शती। आध्र मे गुतूर जिले के तेनाली समीपस्थ कठेश्वर गाव के निवासी। जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल मे। यह घराना अलौकिक बुद्धिमत्ता तथा पाडित्य के लिये प्रसिद्ध था। धर्मसूरि के पितामह धर्मसुधी ने तपस्या द्वारा यह वरदान प्राप्त किया था कि उनके कुल मे सात पीढियो तक पाडित्य की परपरा चलती रहे। उनके तीनो ही पुत्र महापडित थे। उनसे पर्वतनाथ के सुपुत्र धर्मसूरि का तो चौदह विद्याओं पर प्रभुत्व था। न्यायशास्त्र में वे विशेष रूप से पारगत थे। धर्मसूरि का "साहित्यरत्नाकर" नामक ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है। दस तरगो मे विभाजित इस ग्रथ में सपूर्ण काव्यशास्त्र की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त धर्मसूरि ने कृष्णस्तुति व सूर्यशतक नामक दो स्तोत्रो तथा बालभागवत और कसवध एव नरकासुरविजय नामक दो नाटक भी लिखे हैं।

धर्मोत्तराचार्य - ई 9 वी शती। ये कल्याणरक्षित और धर्मकरदत्त के शिष्य थे। ये बौद्धो के सौत्रान्तिक मत के अनुयायी थे। इन्होंने प्रमाणपरीक्षा अपोह नामक प्रकरण तथा परलोकसिद्धि, क्षणभगसिद्धि और प्रमाणविनिश्चय- टीका नामक ग्रथो की रचना की। इनके अतिरिक्त इन्होंने धर्मकीर्ति के न्यायबिंदु पर न्यायबिंदुटीका नामक ग्रथ भी लिखा है।

धानुष्कयज्वा (धन्वयज्वा) - ई 13 वीं शती। एक वैष्णव आचार्य। इन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद इन तीनो वेदो पर भाष्य लिखे, किन्तु उनमे से अब एक भी उपलब्ध नहीं। वेदाचार्य की सुदर्शनमीमासा में इनका त्रिवेदी भाष्यकार अथवा त्रयीनिष्ठ वृद्ध कहकर अनेक बार उल्लेख हुआ है।

धोयी - ई 12 वी शती। "पवनदूत" नामक एक सदेश काव्य तथा "सत्यभामाकृष्णसवाद" के प्रणेता। इनके कई नाम मिलते है यथा धूयि, धोयी व धोयिक। ये बगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि रहे। श्रीधरदासकृत "सदुक्तिकर्णामृत" मे इनके पद्य उद्धृत है, जो कि शक स 1127 या 1206 ई का ग्रथ है। म म हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार कविराज धोयी पालधिगधि तथा काश्यप गोत्र के राढीय ब्राह्मण थे। इनके वैद्य जातीय होने का आधार वैद्य वशावली ग्रथो में दुहिसेन या धुयिसेन नाम का उल्लिखित होना है। "गीतगोविंद" से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसेन के दरबार मे उमापतिधर, शरण, गोवर्धन, धोयी और जयदेव कवि रहे थे। इन्हें "कविराज" उपाधि प्राप्त हुई थी। अपने संदेशकाव्य "पवनदूत मे (श्लोक स 101 व 103) इन्होंने स्वय को "कविक्ष्मामृतां चक्रवर्ती" तथा "कविनरपति" कहा है।

ध्यानेश नारायण चक्रवर्ती - ई. 20 वीं शती। रवीन्द्रभारती वि.वि में प्राध्यापक। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों, गीतों के संस्कृत अनुवाद किये। विश्वेश्वर विद्याभूषण के साथ "दस्युरत्नाकर" नामक नाटक की रचना की।

नंदराज शेखर - शैव तत्त्वज्ञान विषयक 18 ग्रंथों के रचयिता। मैसूर के कृष्णराज द्वितीय के सर्वाधिकारी। रचना- संगीतगंगाधरम्

नंदकुमार शर्मा - नवद्वीप के नरेशचन्द्र (1639 ईसवी) का समाश्रय प्राप्त। "राधा-मान-तरंगिणी" के रचयिता।

नंदपंडित - समय 1595-1630। विनायक पंडित के शुभनाम से प्रसिद्ध एक काशीनिवासी धर्मशास्त्रकार। भारत के विभिन्न भागों के धनिकों की ओर से नदपडित को आश्रय प्राप्त था। लोग इन्हें धर्माधिकारी मानते थे। ग्रंथरचना - विद्वन्मनोहरा (पाराशरस्मृति पर टीका), प्रमिताक्षरा व प्रतीताक्षरा (मिताक्षरा पर टीका), श्राद्धकल्पलता, स्मृतिसिंधु (इसकी रचना महेंद्र घराने के मंगो राजा के पुत्र हरिवश वर्मा के निर्देशानुसार), तत्त्वमुक्तावलि, केशववैजयती (अथवा वैजयती), इसमें कर्नाटक स्थित विजयपुर के ब्राह्मण राजवंश की जानकारी है। (यह ग्रंथ कोडप नायक के पुत्र केशव नायक के नाम पर है) नवरात्रप्रदीप, हरिवशविलास, काशीप्रकाश, तीर्थकल्पलता, शुद्धिचद्रिका, कालनिर्णयकौतुक, ज्योति सारसमुच्चय, स्मार्तसमुच्चय और दत्तकमीमासा।

नंदलाल विद्याविनोद - सन 1885 ई मे प्रकाशित "गर्वपरिणति" नामक नाटक के लेखक। बगाल के निवासी।

नंदिकेश्वर - "अभिनयदर्पण" नामक नृत्य कला विषयक ग्रथ के प्रणेता। राजशेखर ने अपनी "काव्यमीमासा" में काव्य विद्या की उत्पत्ति पर विचार करते हुए काव्यपुरुष के 18 स्नातकों का उल्लेख किया है। उनमें नदिकेश्वर का भी नाम है। इन्होंने रस विषय पर ग्रथ लिखा था, ऐसा राजशेखर का मत है।

"रसाधिकारिक नदिकेश्वर"। बहुत दिनों तक भरत व नदिकेश्वर को एक ही व्यक्ति माना जाता रहा, किंतु "अभिनय दर्पण" के प्रकाशित हो जाने से यह भ्रम दूर हो गया। नदिकेश्वर ने अपने ग्रंथ में भरत द्वारा निर्मित "नाट्यशास्त्र" का उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि दोनों ही व्यक्ति भिन्न थे और नदिकेश्वर भरत के परवर्ती थे।

डॉ. मनमोहन घोष ने "अभिनयदर्पण" के आग्लानुवाद की भूमिका में सिद्ध किया है कि नंदिकेश्वर का समय 5 वीं शताब्दी है, पर अनेक विद्वान इन्हें 12 वीं व 13 वीं शताब्दी के बीच का मानते हैं।

नंदिपति - ई. 18 वीं शती का उत्तरार्ध। पुगौली (मिथिला) निवासी। कृतियां- कृष्णकेलिमाला तथा दो अप्राप्त नाटक- कदम्बकेलिमाला और रुक्मिणीस्वयंवर

नंदी - नन्दी अथवा तण्डु या नन्दिकेश्वर नामों को अभिनवगुप्त ने पर्यायवाचक माना है। अभिनवभारती के चतुर्थ अध्याय में नन्दिमत का उल्लेख है। भरतमुनि के ताण्डव शिक्षक होने की बात तण्डु नाम से ही प्रमाणित हो जाती है। यह ताण्डव नृत्य साक्षात् शिव से नन्दी ने पाया था। वास्तव में तण्डु तथा नन्दी दो भिन्न आचार्य हैं ऐसा वाचस्पति गैरोला का मत है। नन्दी का सुप्रसिद्ध ग्रंथ "अभिनयदर्पण" है जो अत्यंत लोकप्रिय रहा है। नन्दिकेश्वर का "नन्दिभरतोक्तसंकरहस्ताध्याय" नामक हस्तलिखित ग्रंथ अपूर्ण प्राप्त होता है ऐसा श्री शुक्ल का मत है। भरत के नाट्यशास्त्र की पुष्पिका में "नन्दिप्रणीतं संगीतपुस्तकं" के उल्लेख से नन्दि तथा भरत को एक मानने का उपक्रम भी हुआ है। वास्तव में भरत के शिष्यत्व तथा नंदि के महत्त्व का ही यह संकेत है। राजशेखर ने "रूपक-निरूपणीय भरत·" तथा "रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः" लिखकर इस तथ्य का समर्थन किया है। वाचस्पति गैरोला ने मनमोहन घोष, रामकृष्ण कवि आदि विद्वानों के एतद्विषयक विचारों का विवेचन करते हुए "अभिनयदर्पण" के कर्ता नन्दिकेश्वर के समय को तेरहवीं शती के आसपास स्थिर किया है।

नंदीश्वर - ई. 12 वीं शती। ये केरली ब्राह्मण थे। मीमासा पर लिखे गये इनके ग्रथ का नाम है प्रभाकरविजय। यह ग्रथ प्रभाकरमत की प्रवेशिका ही है। नंदीश्वर ने अपने इस ग्रंथ में शालिकनाथ व भवनाथ नामक दो पूर्वसूरियों का सादर उल्लेख किया है। इस ग्रथ के आज केवल इक्कीस प्रकरण ही उपलब्ध हैं।

नभःप्रभेदन- ऋग्वेद का 10-112 यह सूक्त आपके नाम पर है। इस सूक्त का विषय है इन्द्र का पराक्रम और सोमरस की स्तुति।

नयचन्द्र सूरि- जैनमतीय कृष्णगच्छ के स्थापक जयसिंहसूरि के शिष्य। प्रसिद्ध नैयायिक। समय-ई. 15 वीं शती। ग्रंथ- (1) हम्मीर-महाकाव्य (वि स 1448)- ग्वालियर के तोमर नृपति वीरमदेव की प्रेरणा से निर्मित। रणस्तंभपुर के युद्ध (वि.स. 1357) में अलाउद्दीन खिलजी के साथ वीरतापूर्वक लड़ने वाला योद्धा हम्मीरदेव इस काव्य का नायक है। 14 सर्गों में 1572 पद्य हैं। यह दु.खान्त महाकाव्य है। (2) रम्भामंजरी- प्राकृत भाषीय सट्टक, जिसमें सस्कृत का भी प्रयोग है। हम्मीर महाकाव्य की निर्मिति से सबंधित एक घटना, स्वयं कवि के ही शब्दों में इस प्रकार है-

एक बार तोमर वीर की राजसभा में, किसी ने कहा कि प्राचीन कवियों के समान काव्य करने की शक्ति अब किसी भी कवि में दिखाई नहीं देती। इन शब्दों से तिलमिलाकर तथा उस आव्हान को स्वीकार करते हुए नयचंद्र सूरि ने श्रृंगार, वीर व अद्भुत रसों युक्त चौदह सर्गों का काव्य प्रस्तुत कर वीर हम्मीर के शौर्यशाली जीवन को अमर कर दिया। नयचंद्र के इस काव्य में जैन कवि अमरचंद्र का लालित्य और श्रीहर्ष की वक्रिमा परिलक्षित होती है।

नयसेन- मूलसंघ-सेनान्वय-चन्द्रकवाट अन्वय के विद्वान और त्रैविद्यचक्रवर्ती नरेन्द्रसूरि के शिष्य। व्याकरण और न्यायशास्त्र के विद्वान। चालुक्यवंशीय भुवनैकमल्ल (सन् 1069-1076) द्वारा प्रशंसित। मल्लिषेण के गुरु जिनसेन के सधर्मा। समय- ई. 11-12 वीं शती। ग्रथ-कन्नडव्याकरण और धर्मामृत। संस्कृत, प्राकृत और कन्नड के विद्वान। ग्रथ कन्नड में होते हुए भी संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित।

नरचंद्र उपाध्याय- समय- ई. 14 वीं शताब्दी। इन्होंने ज्योतिष-शास्त्र-विषयक अनेक ग्रथों की रचना की थी, किन्तु संप्रति "बेडाजातक वृत्ति" व ज्योतिष-प्रकाश" नामक ग्रंथ ही प्राप्त होते है। "बेडाजातक वृत्ति" का रचनाकाल स. 1324 माघ सुदि 8 रविवार बताया जाता है। "ज्योतिष-प्रकाश" फलित ज्योतिष की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें मुहूर्त व सहिता का सुंदर विवेचन है। "बेडाजातक वृत्ति" मे लग्न व चद्रमा के द्वारा सभी फलो पर विचार किया गया है।

नरपति महामिश्र- न्यासप्रकाश के लेखक। समय- वि स 15 वीं शती (पूर्वार्ध)। इनके अतिरिक्त जिनेन्द्रबुद्धि के न्यास पर पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर और रत्नमति की टीकाए उल्लिखित हैं।

नरसिंह- श्रीमध्वाचार्य के ऋग्भाष्य पर जयतीर्थकृत टीका-ग्रथ के विवृतिकार। वे कर्नाटक और महाराष्ट्र की सीमा पर रहते थे ऐसा अनुमान, उनके उभयभाषापरिचायक कुछ स्थलो के आधार से होता है।

टी. नरसिंह अय्यंगार- (अपरनाम-कल्किसिह)। इ 1867-1935। बंगलोर में प्राध्यापक। रचनाए- पुष्पाजलिस्तोत्रम्। पुष्पसेनसमय राज्यारोहणम् (नाटक) एव तमिलवैष्णवगीतो के अनुवाद।

नरसिंहकवि- अलकार-शास्त्र के एक आचार्य। इन्होने "नंजराज-यशोभूषण" नामक ग्रथ की रचना, विद्यानाथ कृत "प्रतापरुद्र -यशोभूषण" के अनुकरण पर की है। यह ग्रथ मैसूर राज्य के मंत्री नंजराज की स्तुति में लिखा गया है। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरिएटल सीरीज ग्रथ-संख्या 47 से हो चुका है।

नरसिंह कवि - रचना- शिवनारायणमहोदयम् के लेखक।

नरसिंह कविराज- दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मण। पिता-नीलकण्ठ। कृति-मधुमती नामक वैद्यकशास्त्रविषयक ग्रथ।

नरसिंह मिश्र- उत्कल प्रदेश में मयूरभज के निकट केओझर के राजा बलभद्र भंज (1764-1782 ई) के द्वारा सम्मानित। "शिवनारायण-भजमहोदय" नाटक के रचियता।

नरसिंहाचार्य- ई 20 वीं शती। यह मद्रास के पण्डित हैं। इनका "आर्यनैषधम्" नामक काव्य, आर्यावृत्त में "नैषध" काव्य का सक्षेप है।

नरसिंहाचार्य एस.- रचना- कृष्णराजेन्द्रयशोविलासचम्पू। विषय-मैसूरनरेश का चरित्र।

नरसिंहाचार्य स्वामी- जन्म- सन् 1842 में विजयनगर के समीप सिंहाचलम् में। पिता-वीरराघव। पितामह-नृसिंहार्य। विजयनगरनरेश आनन्द गजपतिनाथ (1851-1897 ई) का समाश्रय प्राप्त।

कृतिया- उज्ज्वलानन्द (उपन्यास), अलंकार-सारसंग्रह, नीतिरहस्य, रामचन्द्रकथामृत, भागवत इ. ग्रथ तथा चार नाटक-वासवी-पाराशरीय, राजहसीय (प्रकरण), गजेन्द्र (व्यायोग) तथा शीतसूर्य। कुल ग्यारह ग्रंथो के लेखक।

नरहरि - इनका "यादवराघवीय" नामक काव्य (द्वयर्थी) कृष्ण और राम के चरित्र पर आधारित है। इसके अतिरिक्त रचना - छन्द सुन्दरम्। चन्द्रलक्ष्मोत्प्रेक्षा। शृंगारशतकम्।

नरेन्द्रनाथ चौधुरी- ई 20 वीं शती। काव्य-तत्त्व-समीक्षा नामक ग्रथ के रचयिता।

नरेन्द्र सेन- ई 18 वीं शती। नरेन्द्र सेन नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें "सिद्धान्तसार" के कर्ता नरेन्द्र सेन और "प्रमाणप्रमेयकलिका" नामक न्यायविषयक ग्रंथ के लेखक नरेन्द्रसेन, प्रसिद्ध हैं। उनके गुरु थे छत्रसेन।

"धर्मरत्नाकर" के कर्ता नरेन्द्र, जयसेन के वंशज हैं। ये गुणसेन के शिष्य थे। समय- ई 18 वीं शताब्दी। रचना-सिद्धान्तसार-सग्रह। तत्त्वार्थसूत्र और अमितगति श्रावकाचार से प्रभावित। नरेन्द्रसेन के नाम से एक प्रतिष्ठा-ग्रथ भी मिलता है।

नरेन्द्राचार्य- समय- वि स 1110। सारस्वत व्याकरण के प्रवक्ता। इस मूल व्याकरण की प्रक्रिया को सरल करने वाले अनुभूतिस्वरूपाचार्य, नरेन्द्राचार्य और नरेन्द्रसेन, एक ही व्यक्ति है। अनेक व्याकरणो के ज्ञाता। मूल ग्रथ अप्राप्य। अत उसकी प्रक्रिया को सरल करने वाली नरेन्द्राचार्य की कृति ही सारस्वत व्याकरण के नाम से ज्ञात है। इस पर 18 टीकाए लिखी गई तथा अनेक रूपान्तर किये गए है।

नवरंग- जैनसप्रदायी। 17 वी शती। रचना- परमहस-चरितम्।

नल्ला दीक्षित - समय- 1684 से 1710 ई। कौशिक गोत्रीय। अपर नाम "भूमिनाथ"। "अभिनव-भोजराज" की उपाधि। चोल प्रदेश में कुम्भकोणम् के समीप "कण्डरमाणिक्य" अग्रहार मे जन्म। पिता-बालचंद्र। गुरु-रामभद्र दीक्षित के ही परिवार से सबध्द। शिष्य-सदाशिव ब्रह्मेन्द्र और रामनाथ मखीन्द्र। अपने "धर्मविजयचंपू" में तजौर के शासक राजा शाहजी की जीवन-गाथा प्रस्तुत की है। अन्य कृतियां- शृगारसर्वस्व (भाण), सुभद्रापरिणय, जीवन्मुक्तिकल्याण और चित्तवृत्ति-कल्याण नामक 3 नाटक और अद्वैतमजरी नामक निबध। प्रथम दो कृतियों की रचना सत्रहवीं शती अतिम चरण मे। शेष तीन अठारहवीं शती प्रथम चरण में।

नवकृष्णदास- अठारहवीं शती। केरल-निवासी। "कलावती-कामरूप" नामक नाटक के रचयिता।

नवहस्त रघुनाथ गणेश- समय- 1650-1713 ई.। समर्थ रामदास स्वामी के मित्र। तंजौर के राजा एकोजी (व्यंकोजी) भोसले (जो छत्रपति शिवाजी के सौतेले भाई थे) की पत्नी दीपाबाई के आश्रित होकर रहे। इनका "भोजनकुतूहल" नामक ग्रंथ भारतीय पाकशास्त्रविषयक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। अन्य ग्रंथ हैं- साहित्यकुतूहल, प्रायश्चित्तकुतूहल, जनार्दन-महोदधि, धर्ममित्र-महोदधि, काशी-मीमांसा। मराठी भाषा में "नरकवर्णन" नामक ग्रंथ की रचना रघुनाथ नवहस्त ने की है। अनन्तदेव इनके गुरु थे। भोजनकुतूहल में एकेक भोज्यपदार्थ के कई प्रकार बताए गए हैं। लेखक महाराष्ट्रीय होने के कारण, महाराष्ट्रीय भोजन-पदार्थों का वर्णन अधिक मात्रा में मिला है। दाक्षिणात्य इडली का भी वर्णन "भोजनकुतूहल" में है।

नागचन्द्र- अपरनाम-अभिनव पम्प। सरस्वती और लक्ष्मी का अनूठा समन्वय-स्थल। बीजापुर में विशाल मल्लिनाथ जिन-मन्दिर के निर्माता। बीजापुर-निवासी। गुरु- वक्रगच्छ के विद्वान् मेघचन्द्र के सहाध्यायी बालचन्द्र। समय- ई 12 वीं शती। ग्रंथ- मल्लिनाथपुराण (14 आश्वास) और रामायण।

नागचन्द्र- मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के विद्वान् ललितकीर्ति तथा देवचन्द्र मुनीन्द्र के शिष्य। कर्नाटकवासी। विप्रकुल। गोत्र श्रीवत्स। पार्श्वनाथ और गुमराम्बा के पुत्र। समय- ई 16 वीं शती। रचना- विषापहारस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र आदि पर टीकाएं।

नागदेव- ई. 14 वीं शती। पिता-मल्लुगितू। सारस्वत कुल में उत्पन्न। चिकित्साशास्त्र के जानकार। हरदेव द्वारा लिखित अपभ्रंश के मथपापराजड ग्रथ के आधार पर कवि ने संस्कृत में मदनपराजय नामक रूपक काव्य की रचना की।

नागवर्म (प्रथम)- नागवर्म नाम के दो जैन कवि हैं। प्रथम नागवर्म बेंगीदेश के बेंगीपुर नगर निवासी। कौडिण्य गोत्रीय बेनामय्य ब्राह्मण के पुत्र। माता-पोलकव्वे। गुरुनाम-अजितसेनाचार्य। रक्कसगंगराज (राचमल्ल के भाई) तथा चामुण्डराय (ई 984-999) के दरबारी कवि। योद्धा भी थे। समय- ई. 10-11 वीं शती। ग्रंथ-छन्दोऽम्बुनिधि तथा कादम्बरी का पद्यानुवाद।

नागवर्म (द्वितीय)- नागवर्म द्वितीय जन्मत. ब्राह्मण थे। पिता-दामोदर। चालुक्यनरेश जगदेकमल्ल के सेनापति और जन्न कवि के गुरु। कन्नड साहित्य में "कविता-गुणोदय" नाम से ख्यातिप्राप्त। समय- ई. 12 वीं शताब्दी। ग्रंथ-काव्यावलोकन, कर्नाटक-भाषाभूषण और वस्तुकोश। कर्नाटक-भाषाभूषण संस्कृत में कन्नड भाषा का उत्कृष्ट व्याकरण है। इसमें मूल सूत्र और वृत्ति संस्कृत में तथा उदाहरण कन्नड में दिये गए हैं। इसी को आदर्श मान कर भट्टाकलंक द्वितीय (सन 1604) ने कन्नड का शब्दानुशासन नामक संस्कृत व्याकरण लिखा। "वस्तुकोश", कन्नड में प्रयुक्त होने वाले संस्कृत शब्दों का अर्थ बतलाने वाला पद्यमय निघण्टु या कोश है। "काव्यावलोकन" अलकार शास्त्र का ग्रंथ है।

नागार्जुन -बौध्द पंडित। समय-134- से 220 ई.। रचना- अर्जुनभरतम् नामक (अंशत प्राप्त) संगीत विषयक ग्रंथ।

नागार्जुन- समय- 166-196 ई । बौध्द-दर्शन के एक सिध्दात- शून्यवाद- के प्रवर्तक तथा उसे दार्शनिक रूप देने वाले उच्च श्रेणी के दार्शनिक। इन्होंने बौध्द साहित्य को अनेक ग्रंथ दिये हैं। भारत की अपेक्षा तिब्बत, चीन, मंगोलिया आदि बाह्य देशों में अधिक विख्यात हैं। इनके स्थल-कालादि तथा जीवनचरित्र विषयक तथ्य अज्ञात हैं। इतना निश्चित हुआ है कि ये दार्शनिक नागार्जुन, तान्त्रिक नागार्जुन तथा रासायनिक नागार्जुन से भिन्न हैं। चीनी तथा तिब्बती-परम्परा में ये तीनों एक ही व्यक्ति माने गए हैं। आरोग्यमजरी, योग-शतक, रसरत्नाकर तथा रसेन्द्रमंग आदि ग्रंथों के रचयिता तथा तान्त्रिक नागार्जुन सर्वथा भिन्न है। लोहशास्त्रविद् तृतीय नागार्जुन कल्पनामात्र हैं। रासायनिक, तांत्रिक तथा लोहशास्त्रविद् नागार्जुन ई पू 2 या 3 री शती के माने जाते हैं। अत दार्शनिक बौध्द नागार्जुन, उनसे पश्चाद्वर्ती ही हैं। चीनी व तिब्बती भाषा में इनके 20 ग्रथों के अनुवाद प्राप्त होते हैं।

प्रख्यात बौध्द भिक्षु तथा सस्कृत ग्रथो के चीनी रूपान्तरकार कुमारजीव ने नागार्जुन तथा वसुबन्धु का जीवन-वृत्तान्त लिखा है (चीनी अनुवाद ई 405)। उससे ज्ञात होता है की नागार्जुन दक्षिण कोसल या प्राचीन विदर्भ के निवासी थे। प्रथम ब्राह्मण थे किन्तु श्रीकृष्ण एव गणेश की प्रेरणा से बौध्दधर्म स्वीकृत। तारनाथ के अनुसार गुरु-राहुलभद्र। वेद-ब्राह्मण के अध्ययन के उपरान्त बौध्द धर्मग्रंथों का परिशीलन किया। व्हेन सांग के अनुसार ये बौद्ध-धर्म के चार सूर्या में से एक थे। समय के संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है।

रचनाए- (1) माध्यमिककारिका, (2) दशभूमि-विभाषाशास्त्र, (3) महाप्रज्ञापारिमिता-सूत्रकारिका, (4) उपायकौशल्य, (5) प्रमाणविध्वंसन, (6) विग्रहव्यावर्तिनी, (7) चतु स्तव, (8) युक्तिषष्टिका, (9) शून्यतासप्तति, (10) प्रतीत्यसमुत्पादहृदय, (11) महायानविंशक, (12) सहृल्लेख, (13) एक-श्लोकशास्त्र, (14) प्रज्ञादण्ड, (15) निरौपम्यस्तव और (16) अचिन्त्यस्तव आदि। इनमें से केवल दो ग्रंथ (क्र 1 और 6) मूल सस्कृत रूप में प्राप्त होते हैं।

नागेश पण्डित- समय- ई. 20 वीं शती। मुंबई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय के छात्र। व्याकरणाचार्य। काव्यतीर्थ। शालिग्राम द्विवेदी तथा अच्युत पाध्ये के साथ "भ्रान्त-भारत" नाटक की रचना की।

नागेश भट्ट (महाबल भट्ट) - सन् 1741-1782। आपको महाबल भट्ट भी कहा जाता था। कर्नाटक के कारवार

जिले के हलदीपुर नामक गांव में आपका जन्म हुआ। आप वैष्णव सम्प्रदायी सारस्वत ब्राह्मण थे। पिता-वेंकटेशभट्ट। माता-सतीदेवी। धर्मशास्त्र, ज्योतिष, याज्ञिक आदि विषयों में नागेशभट्ट निष्णात थे। यह विद्या उन्होंने अपने पिताश्री से ही प्राप्त की थी।

नागेशभट्ट ने धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष-शास्त्र पर 6 बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे। इनके स्मृत्यर्थमुक्तावली, तांत्रिकमुक्तावली और आगम नामक तीन ग्रथ धर्मशास्त्र विषयक हैं तथा आर्यातंत्र, आर्याकौतुक और महाबलिसिद्धात नामक तीन ग्रथ हैं गणित-विषयक। कनार्टक के लोगों ने नागेशभट्ट को श्रौतस्मार्त कर्मों में अग्रमान दिया था। यह सम्मान उनके वशजों को आज तक प्राप्त है। नागेशभट्ट को आसपास के गाव वालों की और से भूमि, वर्षासन आदि अनेक सुविधाएं प्रदान की गई थीं।

नागोजी भट्ट - समय- 1700-50 के लगभग। काशी के एक प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय वैयाकरण व दार्शनिक। पिता-शिवभट्ट। माता-सती। काले और उपाध्ये इनके कुलनाम (उपनाम) थे। उत्तरभारतीय श्रृगवेरपुर के राजा रामराजा इनके आश्रयदाता थे। नागोजी भट्ट ने भट्टोजी दीक्षित के पौत्र हरि दीक्षित के यहा व्याकरण शास्त्र का, तथा पडित रामराम भट्टाचार्य के यहा न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। इनके तीसरे गुरु थे शकरभट्ट।

व्याकरण, धर्मशास्त्र, अलंकारशास्त्र, इतिहास, पुराण, काव्यशास्त्र, साख्य, योग आदि विविध विषयों पर, नागोजी भट्ट ने तीस से अधिक ग्रंथों की रचना की है। तीर्थेंदुशेखर, आचारेंदुशेखर, अशौचनिर्णय, तिथीन्दुसार आदि हैं इनके धर्मशास्त्रविषयक ग्रथ। किन्तु पाणिनीय व्याकरण पर लिखित महाभाष्यप्रदीपोद्योत, परिभाषेंदुशेखर, लघुशब्देंदुशेखर, बृहत्शब्देंदुशेखर, वैयाकरणसिद्धान्तमंजरी नामक ग्रथों तथा रसगगाधर व रसतरंगिणी इन साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों पर लिखे गये भाष्यों के कारण उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली।

अपने गुरु के प्रति श्रद्धादर व्यक्त करने हेतु नागोजी भट्ट ने "शब्दरत्न" नामक व्याकरणविषयक ग्रथ की रचना करते हुए, उसे उन्हींके नाम से प्रसिद्ध किया। अनेक शास्त्रों पर विपुल ग्रथ-रचना करने पर भी उनकी विद्वत्ता का प्रमुख क्षेत्र व्याकरणशास्त्र ही था। इनका पांडित्य ज्ञानकोश के स्वरूप का था। आपने पचास वर्षों से भी अधिक कालावधि तक शास्त्रोपासना की।

एक आख्यायिका के अनुसार, जयपुर के राजा सवाई जयसिंह ने सन् 1714 में अश्वमेध का पौरोहित्य करने हेतु निमत्रण किया था, किन्तु स्वय द्वारा क्षेत्रसंन्यास लिये जाने का कारण बताकर नागोजी भट्ट ने उस निमत्रण को अस्वीकार कर दिया। काशीक्षेत्र में 62 वर्ष की आयु में आपका देहात हुआ।

नाथमुनि - समय- 824 से 924 ई। दक्षिण भारत के वैष्णवों में रंगनाथ मुनि के नाम से विख्यात। विशिष्टाद्वैतवाद के आचार्य। तमिल वेद के पुनरुद्धारक। शठकोपाचार्य की शिष्य-परंपरा में आते हैं। जन्मस्थान- बीरनारायणपुरम्। श्रीरंगम् में निवास। नाथमुनि को सिद्धियां प्राप्त थीं। अतः उन्हें योगींद्र भी कहा करते थे। उनके मूल नाम का पता नहीं चलता। संन्यास लेने के पश्चात् वे नाथमुनि कहलाए। नाथमुनि, संस्कृत व तमील इन दोनों भाषाओं के पंडित थे। आपका सबसे बडा वाङ्मयीन कार्य है आलवार-संतों के गीतों का संकलन एव संपादन। "नालायिरदिव्यप्रबंधम्" नामक संकलन में बारह आलवारों के चार हजार गीतों का संग्रह है।

नम्मालवार की शिष्यपरंपरा के परांकुश मुनि थे नाथमुनि के गुरु। नाथमुनि के ग्यारह शिष्यों में, पुंडरीकाक्ष, कुरूकनाथ और लक्ष्मीनाथ प्रमुख थे। उन्होंने भी अपने गुरु के भक्तिसिद्धांत का प्रचार-प्रसार किया। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत की नींव, नाथमुनि ने ही डाली। वेदान्तदेशिक नामक आचार्य तो नाथमुनि को ही विशिष्टाद्वैत सप्रदाय के सस्थापक मानते हैं।

नाथमुनि द्वारा लिखित सस्कृत ग्रथों के नाम हैं- न्यायतत्त्व, पुरुषनिश्चय और योगरहस्य। इनमें से न्यायतत्त्व को विशिष्टाद्वैत मत का सर्वप्रथम ग्रथ माना जाता है। श्रीनिवासदास नामक पडित ने अपने ग्रथ में नाथमुनि का उल्लेख व्यास और बोधायन के समकक्ष किया है। नाथमुनि के पौत्र यामुनाचार्य, प्रसिद्ध रामानुजाचार्य के गुरु थे।

नान्यदेव - तिरहुत (मिथिला) के राजा। बंगाल के विजसेन द्वारा ई.स 1160 में परास्त। नेपाल की तराई में कर्कोटक-वंश के राज्य-सस्थापक। राज्यकाल (लेवी के अनुसार) ई.स 1097 से 1147 तक। रचना- सरस्वती-हृदयभूषण या सरस्वती हृदयालकारहार। अतिरिक्त रचनाएं- मालतीमाधव-टीका, भरतनाट्य-शास्त्रभाष्य (भरतवार्तिक)। 'अभिनव भारती' में अभिनव गुप्त ने "उक्त नान्यदेवेन स्वभरतभाष्ये" ऐसा निर्देश किया है। इससे भरत भाष्यकर्ता नान्यदेव का अस्तित्व सिद्ध होता है।

नाभाक - ऋग्वेद के आठवें मडल के क्रमांक 39 से 42 तक के सूक्त नाभाक के नाम पर हैं। इन्होंने एक ऋचा में अपने नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है। (8-41-2)। ये कण्वकुल के होगे। आपने अपने एक सूक्त में मांधाता का उल्लेख किया है। अतः वे मांधाता के उत्तरकालीन होने चाहिये। वायु, भागवत व विष्णु इन पुराणों में दी गई वंशावली के अनुसार आप श्रुत के पुत्र हैं किन्तु मत्स्य पुराण में आपको भगीरथ का पुत्र कहा गया है।

नाभाक के सूक्तों का विषय है अग्नि एवं वरुण की स्तुति। उनके मतानुसार अग्नि काव्यस्फूर्ति का पोषण करने वाला है। वह देवताओं में वास करता है। वह सात ऋषिकुलों का अग्रणी है। नाभाक ने अग्नि से दुष्टविनाशक शक्ति की याचना

की है। तत्संबंधी उनकी एक ऋचा इस प्रकार है :-

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम्।
न्यराती रराव्णा विश्वा अर्यो अरातितो-
युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे।। (ऋ. 8-39-2)

अर्थ - हे अग्निदेव, हमारी इस अपूर्व प्रार्थना से इन (दुष्टों) की गालियों को उनके शरीरों ही में भस्म कर डालिये। उसी प्रकार दानशील भक्तों के शत्रु और आर्यों के सभी शत्रु मूढ होकर यहां से पूरी तरह चलते बने तथा सभी दुष्टों का नाश हो जाये। नाभाक ने अपनी एक ऋचा में अपने काव्य के मननीय होने का आत्मविश्वास व्यक्त किया है (ऋ. 8-39-3)।

नाभानेदिष्ठ - ऋग्वेद के दसवें मडल के 61 व 62 क्रमांक सूक्त इनके नाम पर हैं। विश्वेदेवों की प्रार्थना इन सूक्तों का विषय हैं। नाभानेदिष्ठ हैं मनु के पुत्र। इनकी कथा इस प्रकार है :-

नाभानेदिष्ठ जब विद्यार्जन हेतु गुरुगृह रहते थे, तब उनके तीन भाइयों ने समूचे पितृधन को आपस में बांट लिया। घर लौटने पर जब उन्होंने अपने हिस्से के बारे पूछा, तो उनके पिता बोले- "वत्स, संपत्ति का बटवारा क्या कोई बडी बात है। तुम अच्छे सुशिक्षित हो। तुम्हें कहीं पर भी सपत्ति प्राप्त हो सकती है। अब यदि तुम्हें सपत्ति चाहिये ही हो तो सुनो। पास ही नवग्व अगिरस स्वर्ग-प्राप्ति के लिये एक यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञ में 6 दिनो तक अनुष्ठान करने पर उनको बुद्धिभ्रम होगा। तब तुम वहा एक सूक्त कहना। इससे उनका कार्य सफल होगा और वे तुम्हें एक सहस्र गोधन देंगे।

तब नाभानेदिष्ठ यज्ञस्थल पहुचे। सातवें दिन यज्ञ में गड़बड़ी हो गई। यह देख नाभानेदिष्ठ आगे बढे और "इदमित्था" (ऋग्वेद 10-61) यह सूक्त उन्होंने कहा। परिणामस्वरुप यज्ञ की निर्विघ्न सफल समाप्ति हुई। नाभानेदिष्ठ की विद्वत्ता से अगिरस प्रसन्न हुए, और उन्होंने नाभानेदिष्ठ को एक सहस्र गोधन दान में दिया।

इस गोधन को घर ले जाते समय मार्ग में उन्हें वास्तोष्पति रुद्र मिले। बोले - "यह मेरा भाग होने के कारण, यह गोधन तुम मुझे दे डालो।" सुनकर नाभानेदिष्ठ ने कहा- "अपने पिता की सूचनानुसार मैने इस दान का स्वीकार किया है। अतः मैं वह तुम्हें नहीं दूंगा। तब रुद्र बोले- "अच्छा, तो तुम जाकर इस बारे में अपने पिता से पूछ आओ और फिर मुझे उचित उत्तर दो।" तदनुसार नाभानेदिष्ठ ने जाकर अपने पिता से पूछा। पिता ने बताया- "वत्स, वह भाग रुद्र का ही है"। नाभानेदिष्ट ने लौटकर पिता का निर्णय ज्यों-का-त्यों सुना दिया। इस सत्य-कथन से रुद्र प्रसन्न हुए और उन्होंने वह गोधन नाभानेदिष्ट को पुरस्कार में दे दिया। न्याय्य व सत्य भाषण उन्हें अत्यंत प्रिय है। उनके सूक्तों पर से भी यही बात परिलक्षित होती है। वे कहते हैं -

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदंत ऋतयुक्तिमग्मन्।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन्।।
(12-61-10)

अर्थ- न्याय भाषण तथा धर्मानुकूल योजना करने वाले नवग्वों ने युवती का प्रेम तत्काल संपादन कर लिया। वे सव्यसाची नवग्व-रक्षक जो देवता की ओर गए, उन्होंने ऐहिक लाभ की आशा न कर जो अचल एवं शाश्वत के रूप में (प्रसिद्ध) था उसी का दोहन किया। इनकी कथा ऐतरेय ब्राह्मण के समान ही सांख्यायन ब्राह्मण तथा साख्यायन श्रौतसूत्र में भी आयी है।

नारद काण्व - पौराणिक नारद से ये भिन्न हैं। ऋग्वेद के आठवें मंडल का 13 वा सूक्त इनके नाम पर है। इन्द्र की स्तुति इस सूक्त का विषय है। ऋषि नारद काण्व कहते हैं कि जिस प्रकार इन्द्र बलवान और सज्जनप्रतिपालक है, उसी प्रकार वे काव्य के स्फूर्तिदाता भी हैं। उनके सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी।
वृषा त्व शतक्रतो वृषा हव।। (8-13-31)

अर्थ- हे इन्द्र, तुम्हारा यह रथ वीर्यशाली है उसी प्रकार तुम्हारे अश्व भी वीर्यशाली हैं। हे अपार कर्तृत्व वाले देवता, आप स्वय तो वीर्यशाली हैं ही, किन्तु आपका नामसंकीर्तन भी वैसा ही वीर्यशाली है।

इसके अतिरिक्त 9 वें मडल के 104 और 105 क्रमाक के दो सूक्त, पर्वत-नारदौ इस संयुक्त नाम पर हैं। सोम की स्तुति इन सूक्तों का विषय है।

नारायण - ई छठी शती। वैदिक साहित्य में नारायण नाम के अनेक लेखक हुए हैं। स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ इन तीन आचार्यों ने मिल कर ऋग्वेद पर भाष्य रचना की। नारायण नामक अन्य दो विद्वानों ने आश्वलायन श्रौतसूत्र और आश्वलायन गृह्यसूत्र पर भाष्य लिखे हैं।

श्रीमध्वाचार्य कृत ऋग्भाष्य पर जयतीर्थ प्रणीत व्याख्या की विवृत्ति लिखने वाले और एक नारायण हुए हैं।

ऋग्भाष्यकार नारायण के पुत्र थे सामवेद-विवरणकार माधव भट्ट। उन्हीं का श्लोक बाणभट्ट ने मंगल, श्लोक के स्वरूप में स्वीकार किया है। इसी आधार पर नारायणाचार्य का काल सातवीं शताब्दी के पहले माना गया है। आश्वलायन श्रौतसूत्र-भाष्यकार नारायणाचार्य के पिता का नाम नरसिंह, और गोत्र गर्ग था। आश्वलायन गृह्यसूत्र के भाष्यकार नारायण, श्रौतसूत्र भाष्यकार नारायण से अर्वाचीन हैं। जयतीर्थ प्रणीत व्याख्या की विवृत्ति लिखने वाले नारायणाचार्य बहुत ही अर्वाचीन हैं इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता।

नारायण - ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। समय 1571 ई.।

पिता अनंतनंदन, जो टापर ग्राम के निवासी थे। इन्होंने **"मुहूर्त-मार्तण्ड"** नामक मुहूर्तविषयक ग्रथ की रचना की है। **नारायण** नामक एक अन्य विद्वान ने भी ज्योतिष-विषयक ग्रथ की रचना की है, जिनका समय 1588 ई. है। "केशवपद्धति" पर रचित इनकी टीका प्रसिद्ध है। इन्होंने बीजगणित का भी एक ग्रथ लिखा था।

नारायण - ई. 16 वीं शती। पिता-शंकर, जिन्हें गणित तथा ज्योतिषज्ञान के कारण बृहस्पति का अवतार माना गया। केरल में कोचीन के राजा राजराज का इन्हें आश्रय प्राप्त था। गणित-शास्त्र के विशेषज्ञ होते हुए भी नारायण साहित्योपासक थे।

कृतिया- महिषमगल (भाण), रासक्रीडा (पद्य), उत्तररामचरित (चम्पू) और भाषानैषधचम्पू (मलयालम भाषा में)।

नारायण गांगाधरि - समय 18 वीं शती। रचना- विक्रमसेनचम्पू। तंजौर के शाहजी राजा के अमात्य त्र्यंबक के पोते।

नारायण गुरु - सन 1856-1928। केरल के एक महान् धर्मसुधारक। त्रिवेंद्रम से सात मील की दूरी पर स्थित चेंबाझन्ती ग्राम तथा एलुवा नामक अस्पृश्य जाति में जन्म। पिता-मातन। माता- कुट्टी। प्रारंभ में अपने चाचा तथा बाद में रामन् पिल्ले नामक एक विद्वान से संस्कृत भाषा की शिक्षा ग्रहण की। केरल प्रदेश में उस समय भी अछूतों को सस्कृत सीखने की छूट थी। अत नारायण गुरु ने प्रारभिक तीन वर्षों तक संस्कृत व तमिल के वेदान्तविषयक ग्रथों का अध्ययन किया और छात्रों को संस्कृत तथा तमिल पढाई।

वेदात का अध्ययन करते हुए उन्हे विरक्ति उत्पन्न हुई। उसी अवस्था में उनकी भेट चट्टाबी स्वामी और थैक्कर अय्युबू नामक दो योगियों से हुई। उनके मार्गदर्शन में नारायणगुरु ने योगाभ्यास प्रारभ किया। फिर कन्याकुमारी के समीप मरुत्तमलै नामक स्थान पर पिल्ला थाडम नामक गुफा में रहते हुए उन्होंने घोर तपस्या की। फिर समाज जीवन के निरीक्षणार्थ तमिलनाडु तथा केरल प्रदेशों की यात्रा की।

उन दिनों सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों की बडी अवहेलना की जा रही थी। अस्पृश्य होने के कारण स्वय नारायण गुरु को भी सतत तीस वर्षों तक अनेक कठिनाइया झेलनी पडी थीं। उस स्थिति से लाभ उठाते हुए ईसाई तथा मुसलमान लोग अछूतों को अपने-अपने धर्मों में खींचने हेतु सलग्न थे। विशेष कर मछुए एव एलुवा जाति के लोग ईसाई बनाये जा रहे थे। उस स्थिति को देखते हुए नारायण गुरु ने अपनी भारत-भ्रमण की योजना स्थगित की और वे समाजोद्धार के कार्य में जुट गए। तदर्थ अरूविप्पुरम नामक गाव में उन्होंने अपना वास्तव्य स्थिर किया।

प्रतिदिन ध्यान-धारणा के पश्चात् नारायण गुरु दीन-दुखियों की सेवा किया करते। वे गरीबों को आयुर्वेदिक औषधिया निःशुल्क देने लगे। वे औषधिया रामबाण सिद्ध होने लगीं। परिणामस्वरूप अधिकाश निम्न वर्ग के लोग उनसे प्रेम करने लगे। उन्होंने अधिकारी पुरुषों को परमार्थ मार्ग का उपदेश देना भी प्रारभ किया।

केरल के विकृत बने धार्मिक एव सामाजिक जीवन को सुधारने हेतु, सर्वप्रथम उन्होंने अछूतोद्धार का कार्य प्रारंभ किया। उस समय स्पृश्यों के मंदिरों में अछूतों को प्रवेश बदी थी, किन्तु अछूत समाज के अंतःकरण पर सुसंस्कारों की दृष्टि से, उनके लिये देवालयों का होना आवश्यक था। अत नारायण गुरु ने एक शिवमंदिर बनवाया। किसी अस्पृश्य व्यक्ति द्वारा निर्मित यही भारत का पहला मदिर है। बाद में उन्होंने कुछ और मदिरों का भी निर्माण कराया। इन मंदिरों के लिये उन्होंने एक स्वतंत्र उपासना-पद्धति भी निर्माण की। साथ ही समाज में वेदात के प्रचार हेतु, नारायण गुरु ने नवीन सन्यासी-मठ भी स्थापित किये। अल्पावधि में ही ये मठ-मदिर, हिन्दू समाज के सगठन तथा ज्ञान-प्रचार के प्रभावी केन्द्र बन गए।

नारायण गुरु ने सभी जातियों को समान माना और सभी को सन्यास लेने की छूट दी। उन्होंने अस्पृश्यों को अद्वैत की सीख दी और मद्यपान पर प्रतिबध लगाया। पशुबलि की प्रथा का अत करते हुए आपने अनेक सामाजिक सुधारों की नींव रखी।

"सदाचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जातिभेद का विचार एव उसकी चर्चा मत करो। इस ससार में केवल एक ही जाति है, और वह है मानव जाति। परमात्मा भी एक ही है- इस प्रकार के अपने उपदेशों से नारायण गुरु ने लोगों के हृदय जीत लिये। परिणामस्वरूप विदेशी ईसाई धर्म की ओर प्रवाहित अस्पृश्य समाज का प्रवाह केरल प्रदेश में रुक गया। कहा जाता है कि यदि नारायण गुरु न हुए होते, तो केरल का बहुसख्य हिन्दू समाज ईसाई बन गया होता। उनका प्रतिपादन था कि जतिहीन व वर्गहीन नवीन समाज का निर्माण करने हेतु, हिन्दू समाज में आतर्जातीय विवाह होने चाहिये। जो धर्म अच्छाई की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देता है, वही सच्चा धर्म है।

नारायण गुरु के इन विचारों एव कार्यकलापों से, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी जैसे श्रेष्ठ पुरुष भी उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। शिवगिरिस्थित उनके आश्रम जाकर, ये दोनों ही महापुरुष नारायण गुरु से मिले थे।

उनके द्वारा मलयालम् भाषीय ग्रंथों में "आत्मोपदेशतकम्" नामक काव्य ग्रंथ में, उनके सभी उपदेशों का सार है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में नारायण गुरु ने विपुल उपदेशपरक एवं स्तोत्रात्मक वाङ्मय की निर्मिति की है, जो ग्रंथरूप में प्रकाशित है। केरल के बरकम नामक गांव में आपका देहान्त हुआ। वहा पर उनकी समाधि बनाई गई है। वहां के आश्रम में,

हीन कहलाने वाली अनेक जातियों के लोगों ने संस्कृत एवं वेदांत का ज्ञान प्राप्त किया।

नारायणतीर्थ - ई. 17 वीं शती का पूर्वार्ध। ये स्मार्त ब्राह्मण थे, और तंजौर में रहते थे गुरु-शिवरामानंदतीर्थ। श्रीकृष्णलीला-तरंगिणी (12 तरंग) नामक ग्रंथ में नारायणतीर्थ ने स्वयं का निर्देश शिवरामानंदतीर्थपादसेवक कह कर किया है। आपने जयदेव के गीतगोविंद का गहरा अध्ययन किया था। उन्हें जयदेव का अवतार माना जाता है।

नारायणतीर्थ - ई. 18 वीं शती। आंध्र में गोदावरी जिले में कुचिमन्ची के निवासी। मीमासा-दर्शन के एक प्रख्यात विद्वान्। सन्यास लेने के पहले का नाम गोविंद शास्त्री। काशी के नीलकंठ सूरि के सुपुत्र, शिवरामतीर्थ से संन्यास-दीक्षा ली। दीक्षा से पूर्व, मीमांसा पर भाट्टपरिभाषा नामक ग्रंथ की रचना। इस ग्रंथ में जैमिनीय सूत्र के बारह अध्यायों का सारांश सकलित किया गया है। मीमांसा के समान ही आपने वेदांत पर भी ग्रथ लिखे है। आपको एक प्रतिभाशाली विद्वान् के रूप में मान्यता प्राप्त है।

नारायण दीक्षित - तंजौर के राजा शाहजी भोसले (1683-1711) की राजसभा के सदस्य। रचना- अद्भुतपजर (नाटक)।

नारायण पण्डित - काल 900 तथा 1373 ई. के बीच माना जाता है। धवलचन्द्र का समाश्रय प्राप्त। सुप्रसिद्ध "हितोपदेश" नामक नीतिकथा सग्रह के रचयिता। (2) आश्लेषाशतकम् के लेखक।

नारायण नायर - केरल में नेम्मर ग्राम के निवासी। रचना- शीलपट्टिकारम् नामक प्रसिद्ध मलयालम् भाषीय ग्रंथ का अनुवाद।

नारायण भट्ट - समय- ई 16 वीं शती। जन्म-मदुरा के निवासी एक भृगुवंशी दीक्षित ब्राह्मण कुल में। बाल्यकाल से ही कृष्णभक्ति में पले हुए नारायणभट्ट, बाद में स्थायी निवास हेतु ब्रजमंडल गए और वहा पर उन्होंने कृष्णदास ब्रह्मचारी से दीक्षा ग्रहण की। नारायणभट्ट ने ब्रजमडल के माहात्म्य को बहुत वृद्धिंगत किया। भागवत तथा वराहादि पुराणों में श्रीकृष्ण-लीला के जिन स्थानों का उल्लेख है, वे स्थान कालप्रवाह में विस्मृत हो चुके थे। नारायणभट्ट ने उन स्थानों को खोज निकाला, और ब्रजमंडल के वनों, उपवनों, तीर्थों तथा देवी-देवताओं का माहात्म्य वृद्धिगत करने की दृष्टि से एवं कृष्णभक्ति के प्रसारार्थ अनेक ग्रंथों की रचना की। उसी प्रकार भक्तों द्वारा कृष्णलीला का अनुकरण किया जाने हेतु उन्होंने रास नृत्य का भी प्रसार किया। तदर्थ उन्होंने ब्रजमंडल में अनेक स्थानों पर रास-मंडलों की स्थापना की।

नारायणभट्ट ने संस्कृत भाषा में ब्रजभक्तिविलास, ब्रजोत्सवचंद्रिका, ब्रजोत्सवाह्लादिनी, भक्तभूषणसंदर्भ, बृहद्व्रजगुणोत्सव, भक्तिविवेक, साधनदीपिका आदि साठ ग्रथ लिखे हैं।

गोवर्धन पर्वत के समीप स्थित राधाकुंड के तट पर बारह वर्षो तक वास्तव्य करने के पश्चात् नारायणभट्ट ब्रजमंडल के अंतर्गत ऊंचेगाव में रहने गए, और वहां पर उन्होंने अपना गृहस्थजीवन प्रारंभ किया। ऊंचेगांव में उन्होंने बलदेवजी की, और बरसाना में लाडलीलालजी की पूजा-अर्चा प्रारंभ की। वह वृत्ति (कार्य) उनके वंशजों द्वारा अभी तक चालू है। ऊंचेगाव में ही नारायणभट्ट की समाधि है।

नारायणभट्ट - जन्म सन 1513 में। एक श्रेष्ठ मीमासक तथा धर्मशास्त्री। विश्वामित्र गोत्रीय देशस्थ ऋग्वेदी ब्राह्मण। मूल निवासस्थान पैठण (महाराष्ट्र)। कुलदेवता-कोल्हापुर की महालक्ष्मी। कहते हैं कि इनके पिता रामेश्वरभट्ट ने पुत्रप्राप्ति के हेतु महालक्ष्मीजी की मनौती मानी थी और उन्हीं के कृपाप्रसाद से नारायणभट्ट का जन्म हुआ। इनके पुत्र का नाम शकरभट्ट। आपने अपने पिताजी के पास ही शास्त्रों का अध्ययन किया था। राजा टोडरमल से इनकी मित्रता थी। गाधिवंशानुचरित तथा भट्टवंशकाव्य नामक ग्रथों के उल्लेखानुसार नारायणभट्ट ने बगाल व मिथिला के पंडितों को वाद विवाद में पराजित किया था। आपकी विद्वत्ता के कारण ही काशीक्षेत्र में दाक्षिणात्य पंडितों को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। आपने काशी में महाराष्ट्रीय लोगों की एक बस्ती बसाई। उत्कृष्ट विद्वत्ता तथा सदाचरण के कारण आपको "जगद्गुरु" की पदवी प्राप्त हुई थी। अत मत्रजागर के प्रसंग पर समस्त वैदिकों में इनके घराने को अग्रपूजा का सम्मान दिया जाने लगा, जो अभी तक चालू है। इनके वंशजों ने इन्हें प्रत्यक्ष विष्णु का अवतार माना है। निर्णयासिंधुकार कमलाकर भट्ट कहते हैं "वेदों के उद्दिष्ट धर्म की रक्षार्थ श्रीहरि ने नारायणभट्ट के नाम से मनुष्य रूप धारण किया, मेरे ऐसे पितामह को मैं वंदन करता हू।

कहा जाता है कि मुगलों द्वारा उध्वस्त काशी विश्वेश्वर का मदिर इन्होंने फिर से बनवाया था।

इन्होंने पार्थसारथी मिश्र के शास्त्रदीपिका नामक ग्रथ के एक भाग पर टीका लिखी, और दूसरे भाग पर उनके सुपुत्र शंकरभट्ट ने। नारायणभट्ट की वृत्तरत्नाकर पर लिखी टीका प्रसिद्ध है, और उनके मुहूर्तमार्तंड, अंत्येष्टि-पद्धति, त्रिस्थलीसेतु तथा प्रयोगरत्न नामक ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। प्रयोगरत्न में विवाह से गर्भाधान तक के सभी संस्कारों का इन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

अन्य ग्रथ अयननिर्णय, आरामोत्सर्गपद्धति, आतुरसंन्यासविधि, जीवच्छ्राद्धप्रयोग, आहिताग्निमरणदाहादि-पद्धति, महारुद्रपद्धति अथवा रुद्रपद्धति, काशीमरणमुक्तिविवेक, गोत्रप्रवरनिर्णय, तिथिनिर्णय, तुलापुरुषदानप्रयोग, दिव्यानुष्ठानपद्धति, मासमीमांसा, कालनिर्णयकारिका-व्याख्या, वृक्षोत्सर्गपद्धति, लक्षहोमपद्धति और

विष्णुश्राद्धपद्धति हैं इनके धर्मशास्त्रविषयक ग्रथ।

नारायण भट्टपाद - समय 1560-1666 ई। कवि, व्याकरणकार और मीमांसक। अपरनाम भट्टात्रि। मेलकुत्तूर (मलबार) के निवासी। केरल में जन्म। पिता- मातृदत्त। पुत्र- कृष्णकवि। नम्बुद्रि ब्राह्मण। विवाहोपरान्त शिक्षा का प्रारम्भ। एक कथा के अनुसार गुरु का वातविकार इन्होंने अपने योगसामर्थ्य से स्वय पर लिया। गुरुवायूर के श्रीकृष्ण की स्तुति में रचित सहस्र श्लोकों का नारायणीयम् नामक भक्तिस्तोत्र अत्यत लोकप्रिय है। भट्टोजी दीक्षित, इनकी प्रशसा सुन मिलने गए, परतु उनकी (106 वर्ष की आयु में) मृत्यु होने से भेंट न हो सकी।

रचनाएं - (1) पाचालीस्वयवरचम्पू, (2) राजसूयचम्पू, (3) द्रौपदीपरिणयचम्पू, (4) सुभद्राहरणचम्पू, (5) दूतवाक्यचम्पू, (6) किरातचम्पू, (7) भारतयुद्धचम्पू, (8) स्वर्गारोहणचम्पू, (9) मत्स्यावतारचम्पू, (10) नृगमोक्षचम्पू, (11) गजेन्द्रमोक्षचम्पू, (12) स्यमन्तकचम्पू, (13) कुचेलवृत्तचम्पू, (14) अहल्यामोक्षचम्पू, (15) निरनुनासिकचम्पू, (16) दक्षयागचम्पू, (17) पार्वतीस्वयवरचम्पू, (18) अष्टमीचम्पू, (19) गोष्ठीनगरवर्णनचम्पू, (20) कैलासवर्णनचम्पू, (21) शूर्पणखाप्रलापचम्पू, (22) नलायानीयचम्पू और (23) रामकथाचम्पू।

इनमें से क्र 2 व 9 प्रकाशित। अन्य रचनाए- प्रक्रियासर्वस्व (व्याकरण) और मानमेयोदय (मीमासा)।

नारायण कवि - समय 17-18 वीं शती। "विक्रमसेनचपू" नामक काव्य ग्रथ के रचयिता। इन्होंने अपने चपू काव्य में जो परिचय दिया है, उसके अनुसार ये मरहठा शासन के सचिव तथा गगाधर अमात्य के पुत्र थे। इनके भाई का नाम भगवत था। इनके चपू काव्य में प्रतिष्ठानपुर के राजा विक्रमसेन की काल्पनिक कथा गुफित की गयी है।

नारायणराव चिलुकुरी (डा.) - ई 20 वी शती। शिक्षा एम ए., पीएच डी. एल टी। अनन्तपुर (कर्नाटक) की प्रभुत्व कलाशाला में सस्कृत तथा कन्नड के अध्यापक। "विश्वकलापरिषद्" से अनेक उपाधिया प्राप्त। "विक्रमाश्वत्थामीय" नामक व्यायोग के प्रणेता।

नारायण विद्याविनोद - ई 16 वीं शती। पूर्वग्राम (बगाल) के निवासी। अभिधानतंत्र के कर्ता जटाधर के पौत्र। कृति शब्दार्थ-सन्दीपिका (अमरकोश पर वृत्ति)।

नारायणशास्त्री - समय लगभग वि स की 18 वीं शती। "महाभाष्यप्रदीप" की व्याख्या के लेखक। माता पिता का नाम अज्ञात। नल्ला दीक्षित के पुत्र नारायण दीक्षित इनके जामात थे। गुरु- धर्मराज यज्वा (नल्ला दीक्षित के भाई)।

नारायण शास्त्री - जन्म 1860 ई। मृत्यु 1911। पिता- रामस्वामी यज्वा। माता- सीतांबा। तंजौर जिलान्तर्गत नेडुकावेरी निवासी। "ब्रह्मविद्या" मासिक के सम्पादक श्रीनिवास शास्त्री के बन्धु। पाण्डित्य तथा कवित्व के लिये "भट्टश्री" और "बालसरस्वती" की उपाधियां प्राप्त। असाधारण वक्तृत्व। रचनाएं- सुन्दरविजयम् (महाकाव्य), गौरीविलास (चम्पू), चिन्तामणि (आख्यायिका), आचार्यचरितम् (गद्य) नाटकदीपिका (नाट्यशास्त्रीय प्रबध, 12 भाग) विमर्श (साहित्यशास्त्रीय प्रबन्ध, 6 भाग) और काव्यमीमासा (2 अध्याय)। इनका प्रधान लेखन है 91 नाटक (पुराण के रोचक विषयों पर)। 10 नाटक मद्रास तथा चिदम्बरम् में प्रकाशित। नाट्यनामावलि

त्रिपुरविजयम् (12 अक), मैथिलीयम्। 10 अंकी नाटक - कलिविधूनन, चित्रदीप, बालचन्द्रिका, मुक्तमन्दार, कृतकयौवत, मधुमाधवीयम, अवकीर्णकौशिकम्, माकन्दमकरन्दम्, ब्रह्मविद्या, दृष्टरोहितम्। (9 अकी नाटक) मुग्धबोधनम्, भट्टभासीयम्, बालचन्द्रिका, मृकण्डकोदय। (8 अंकी नाटक) रक्तसारसम् अमृतमन्थनम्, मैथिलीविजयम्, विश्ववीरव्रतम्, वीरवैश्वानरम्। (7 अकी नाटक) सामन्तसोविदल्लम्, सुदतीसमितिंजयम्, भामाभिषङ्गम, चितिनिग्रहम्, गूढकौशिकम्, मदालसा, मन्दारिकाविलासम्, महिलाविलासम्, रत्नमाला, वरगुणोदयम्, हारहैमवतम्, कलिविजयम्, मुक्ताप्रवालम्, भग्नाशकम्, अयश्शणकम्, कनकाङ्गी, काचनमाला, प्रौढपरपन्तपम्, मार्तातमैरावणम्, लवणलक्ष्मणम्, क्लान्तकौन्तेयम्, व्यत्यस्तभक्तम्, विजययादवम्, जैत्रजैवातृकम्, शूरमयूरम्।। 6 अकी नाटक- मुग्धमन्थरम् राजीविनी, शशिशारदीयम, मजुलमन्दिरम्, काममजरी, सुभद्राहरणम्, मन्दारमाला, पुष्करराघवम्, क्रूरसापत्यम, शिशुविनिमयम्, शिवदूतम्, विद्राणमाधवम्, बालप्राहुणिकम्। 5 अकी नाटक = प्राज्ञसामन्तम्, मुष्टिपाथेयम्, त्रिबदरम, बिल्हणीयम, भीमरथी, प्रसन्नपार्थम, कान्तिमती, भट्टराजीयम्, मूढकौशिकम्, सीताहरणम्, स्तब्धपाण्डवम्, क्लिष्टकीचकम्, प्लुष्टखाण्डवम्, धृष्टधौरेयम्, निरुद्धानिरुद्धम्, श्येनदूतम्, विद्धवेदनम्, विष्टब्धचापलम्, दूतवीरम्, मनोरमा, बद्धबाडवम्, मुक्तमन्दरम्। 4 अकी नाटक = मुक्तावली। 3 अंकी = तरंगिणी, स्वैराचार, मधुविधूनम्, बहुबालिशम्। 2 अंकी = शोभावती। 1 अंकी = शरभविजयम्, मुक्तकेशी, मणिमेखला, महिषासुरवधम्।

इनके अतिरिक्त 21 महाप्रबध तथा कतिपय प्राथमिक शिक्षा के लिये उपयुक्त पुस्तकें भी इनके नाम पर हैं।

नारायणशास्त्री कांकर - ई 20 वीं शती। जयपुर निवासी। "नराणां नापितो धूर्त" तथा "स्वातत्र्ययज्ञाहुति" नामक एकांकियों के प्रणेता। इनके द्वारा रचित कुछ स्तोत्र काव्य भी प्रकाशित हैं।

नारायणस्वामी - पिता- मण्डोय नारायण। गुरु- नृसिंहसूरि। सन् 1750 के लगभग "कैतवकलाचन्द्र" (भाण) का लेखन किया।

नारायणाचार्य ने ताण्ड्य भाष्य पर भाष्य लिखा है, ऐसा मैसूर सूचिपत्र (1922) से स्पष्ट होता है।

निम्बार्काचार्य - द्वैताद्वैत मत के (ऐतिहासिक प्रतिनिधि) प्रवर्तक आचार्य। दार्शनिकता तथा प्राचीनता की दृष्टि से वैष्णव संप्रदायों में इनके मत का विशेष महत्त्व है। संप्रदाय के अनुसार इस मत के सर्वप्रथम उपदेष्टा, हंसावतार भगवान् हैं। उनके शिष्य सनत्कुमार हैं। सनत्कुमार ने इसका उपदेश नारदजी को दिया और नारदजी से यह उपदेश निंबार्क को प्राप्त हुआ। इस परंपरा के कारण यह मत (संप्रदाय) हंससंप्रदाय, सनकादि संप्रदाय (या सनातन संप्रदाय), देवर्षि संप्रदाय आदि नामों से कहा जाता है।

आचार्य निंबार्क की जन्म तिथि कार्तिक शुक्ल पौर्णिमा मानी जाती है, और इसी दिन तत्संबंधी उत्सव मनाये जाते हैं। आचार्य का निश्चित देश काल आज भी अज्ञात है। कहा जाता है कि ये तेलंग ब्राह्मण थे और दक्षिण के बेल्लारी जिले के निवासी थे। किन्तु तेलंग प्रदेश से आज निंबार्क मत का संबन्ध तनिक भी नहीं है। न तो इनके अनुयायी आज वहां पाए जाते हैं और न इनके किसी सबंधी का ही पता उधर चलता है। निंबार्क वैष्णवों का अखाड़ा वृंदावन ही है। आज भी गोवर्धन समीपस्थ "निम्बग्राम" इनका प्रधान स्थान माना जाता है।

आचार्य स्वभाव से ही बडे तपस्वी, योगी एव भगवद् भक्त थे। कहा जाता है कि दक्षिण में गोदावरी के तीर पर स्थित वैदूर्यपत्तन के निकट अरुणाश्रम में इनका जन्म हुआ। पिता- अरुणमुनि। माता- जयंतीदेवी। ये भगवान के सुदर्शन चक्र के अवतार माने जाते हैं। सुनते हैं कि इनके उपनयन संस्कार के समय स्वयं देवर्षि नारद ने उपस्थित होकर इन्हें "गोपाल मंत्र" की दीक्षा दी, तथा "श्री-भू-लीला" सहित श्रीकृष्णोपासना का उपदेश दिया। इनका मूल नाम नियमानंद था। नियमानंद की निंबार्क और निंबादित्य के नाम से प्रसिद्धि की कथा "भक्तमाल" के अनुसार इस प्रकार है :

मथुरा के पास यमुना तीर के समीप ध्रुवक्षेत्र में आचार्य विराजमान थे। तब एक सन्यासी आपसे मिलने आए। उनके साथ आध्यात्मिक चर्चा में आचार्य इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें पता न चला की सूर्य भगवान् अस्ताचल के शिखर से नीचे चले गये। सध्याकाल उपस्थित हो गया। अपने संन्यासी अतिथि को भोजन कराने के लिये उद्युत होने पर आचार्य को पता चला कि रात्रि भोजन निषिद्ध होने के कारण संन्यासीजी रात को भोजन नहीं करेंगे। अतिथि सत्कार में उपस्थित इस अड़चन से आचार्य को बड़ी वेदना हुई। तभी एक अदभुत घटना घटी। संन्यासीजी तथा स्वयं आचार्य ने देखा कि आश्रम के नीम वृक्ष के ऊपर भगवान सूर्यदेव चमक रहे हैं। तब आचार्य ने प्रसन्न होकर अतिथि संन्यासी को भोजन कराया। पश्चात् सूर्यदेव अस्त हुए और सर्वत्र घना अंधकार छा गया। इस चमत्कार तथा भगवदकृपा के कारण इनका नाम "निंबादित्य" और "निंबार्क" पड़ गया और इसी नाम से ये प्रसिद्ध हो गए। उसी प्रकार जहां चमत्कार हुआ, वह स्थान आज भी निम्बग्राम के नाम से प्रसिद्ध है।

आचार्य के आविर्भाव-काल की निश्चिति, प्रमाणों के अभाव में असंभव है। इनके अनुयायियों की मान्यता के अनुसार, इनका उदय कलियुग के आरंभ में हुआ था और इन्हें भगवान् वेदव्यास का समकालीन बताया जाता है। इसके विपरीत आधुनिक गवेषक आचार्य का समय ई. 12 वीं शती या उसके भी बाद मानते हैं। डॉ. भांडारकर ने गुरुपरंपरा की छान-बीन करते हुए इनका समय ई. स. 1162 के आसपास माना है। नवीन विद्वानों की दृष्टि में यही आचार्य का प्राचीनतम काल है। कतिपय निंबार्कानुयायी पंडितों का कथन है कि उनके आचार्य योगी होने के कारण दीर्घजीवी थे, और वे 200-300 वर्षों तक जीवित रहे।

जो कुछ भी हो, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि आचार्य निंबार्कद्वारा प्रवर्तित संप्रदाय, अन्य वैष्णव-संप्रदायों से प्राचीनतम है। इसकी प्राचीनता के पक्ष में भविष्य-पुराण का निम्न पद्य भी प्रस्तुत किया जाता है। तदनुसार, एकादशी के निर्णय के अवसर पर निंबार्क का मत उद्धृत किया गया है और निंबार्क के प्रति असीम आदर व्यक्त करने हेतु उन्हें "भगवान्" विशेषण से विभूषित किया गया है :

निंबार्को भगवान् येषा वांछितार्थफलप्रद.।
उदय-व्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।।

उक्त पद्य को कमलाकर भट्ट ने अपने "निर्णयसिंधु" में, और भट्टोजी दीक्षित ने भविष्य पुराणीय मान कर सादर उल्लिखित किया है (द्रष्टव्य सकर्षणशरण देव रचित "वैष्णव-धर्म-सुरद्रुम-मंजरी")।

आचार्य निंबार्क के 4 शिष्य बताये जाते हैं- (1) श्रीनिवासाचार्य (प्रधान-शिष्य), (2) औदुंबराचार्य, (3) गौरमुखाचार्य और (4) लक्ष्मण भट्ट।

आचार्य निंबार्क की सर्वत्र प्रसिद्ध 5 रचनाओं के नाम हैं- वेदांत-पारिजात-सौरभ (वेदात-भाष्य), दश-श्लोकी, श्रीकृष्ण-स्तवराज, मंत्र-रहस्य-षोडशी तथा प्रपन्नकल्पवल्ली इनके अतिरिक्त, पुरुषोत्तमाचार्य तथा सुंदर भट्टाचार्य प्रभृति अवांतरकालीन लेखकों के उल्लेखों से विदित होता है कि आचार्य ने गीता-वाक्यार्थ, प्रपत्ति-चिंतामणि तथा सदाचार-प्रकाश नामक 3 और ग्रंथों का प्रणयन किया था परंतु अभी तक ये 3 ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं।

दार्शनिक पक्ष की ओर ध्यान देने पर स्पष्ट होता है कि आचार्य निंबार्क ने "भर्तृभेद-सिद्धान्त" से लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठित किया। इन वेदांताचार्यों के विचार अब जन-मानस से ओझल हो चुके है, किंतु निंबार्क का कृष्णोपासक संप्रदाय भक्ति-भाव का प्रचार करता हुआ आज भी भक्त-जनों के

विपुल आदर का भाजन बना हुआ है।

निंबार्काचार्य ने जिस स्वतंत्र दर्शन की नींव रखी, उसे **द्वैताद्वैत दर्शन** कहते हैं। इनके वेदातपारिजातसौरभ नामक ग्रथ में ब्रह्मसूत्र पर व्याख्या है। दशश्लोकी मे निंबार्क-सप्रदाय के उपास्य-दैवत राधाकृष्णयुगल का वर्णन है। शेष ग्रथों में युगल-उपासना का रहस्य प्रकाशित किया गया है।

निंबार्काचार्यजी के पूर्व जगन्नाथपुरी बौध्दो की विहारभूमि थी। उसे वैष्णवों का केन्द्र बनाने का महत्कार्य किया आचार्यश्री ने। जगन्नाथ-मदिर के शिखर पर जो चक्र है, उसे निंबार्काचार्य का प्रतीक मानकर भक्तजन श्रद्धापूर्वक उसका दर्शन करते हैं। निरतर भगवान् के सान्निध्य में रहने के कारण आचार्यजी को रगदेवी नामक कृष्णसखी का भी अवतार माना जाता है।

उत्तर भारत में निंबार्क-संप्रदाय के अनेक मंदिर हैं और राजस्थान के सलेमाबाद में सप्रदाय की सर्वश्रेष्ठ गद्दी है। वृदावन, मथुरा, राधाकुड, गोवर्धन तथा नीमगाव में भी इस सप्रदाय के मदिर हैं। वहा श्रीनिंबार्कजी ने प्रचारकार्य किया था।

इस सप्रदाय के अनुयायी माथे पर गोपीचदन का खडा तिलक लगाते हैं, और उसके मध्य बुक्के का काला टीका लगाते हैं। ये अनुयायी शुभ्र वस्त्र परिधान करते हैं, अपने गले में तुलसी-काष्ठ की माला पहनते हैं और अपने नाम के आगे लगाते हैं, 'दास' अथवा 'शरण' उपपद। एक-दूसरे का अभिवादन करते समय वे "जय सर्वेश्वर" का घोष करते हैं और मठ-प्रमुख को महत कहते हैं। इस सप्रदाय के अनुयायियो के विरक्त और गृहस्थ ऐसे दो भेद हैं। निंबार्क के हरिव्यास नामक एक शिष्य, गृहस्थ अनुयायियों के प्रमुख थे। मथुरा के समीप ध्रुवसेन नामक स्थान पर उनका मुख्य केंद्र है।

निंबार्काचार्य "रसिक भागवत" सप्रदाय के आद्य आचार्य है। उन्होंने रागात्मक भक्ति के केवल प्रियावत् भाव का ही अगीकार किया था। किन्तु एक अत साधक होने के कारण उन्होंने बाह्य स्त्री-वेश आदि का स्वीकार नहीं किया। निंबार्क न व्रजमडल में वैष्णव-भक्ति का जो प्रवाह प्रारभ किया था, उसी ने आगे चलकर सपूर्ण उत्तर भारत को आप्लावित कर दिया।

निगुडकर, दत्तात्रेय वासुदेव- ई 19-20 वी शती। सस्कृत विद्यालय, राजापुर (महाराष्ट्र) के आचार्य। रचना-गगागुणादर्शनचम्पू। इसमें सवादो द्वारा गुणदोष-विवेचन किया गया है। अन्य रचनाए- जानकीहरणम्, रुक्मिणीहरणम्, बुद्धचरितम् तथा रत्नावलि की स्पष्टीकरणात्मक टीका एव रघुवशसार।

निजगुण-शिवयोगी- इन का मूल नाम था निजगुणराय। पहले ये मैसूरस्थित शभुलिगन बेट्ट पर राज्य करते थे। कालातर से वैराग्य के कारण उन्होंने शिवयोगसाधना का मार्ग अपनाया। शभुलिग उनका आराध्य दैवत था, जिसका उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रथ मे उल्लेख किया है। शभुलिग के पर्वत पर इनके नाम से एक गुफा दिखाई जाती है। कहा जाता है कि वहा पर तपस्या करके ही उन्हें "शिवयोग" प्राप्त हुआ था।

निजगुणशिवयोगी के काल के बारे में मतभेद है, जो ई. 12 वीं से 16 वीं शताब्दी तक माना जाता है। उनके कन्नड ग्रथो की भाषा के आधार पर नरसिहाचार्य उन्हें 12 वीं शताब्दी का नहीं मानते। शातलिग स्वामी ने विवेकचितामणि नामक कन्नड ग्रथ का मराठी अनुवाद सन् 1604 में किया था। अत उनका काल 16 वीं शताब्दी के पूर्व का तो है ही।

निजगुण ने कन्नड भाषा मे वेदातविषयक विवेक चितामणि के अतिरिक्त और भी कई ग्रथ लिखे। उन से उनकी विद्वत्ता तथा षट्शास्त्र-सपन्नता व्यक्त होती है।

निजगुण द्वारा रचित भक्तिगीत कर्नाटक के गांव-गाव मे बडे चाव से गाये जाते है। निजगुण ने दो संस्कृत ग्रंथ भी लिखे थे। उनके नाम है दर्शनसार और आत्मतर्कचितामणि। उनकी विचारधारा पर विवेकासिधु एव अमृतानुभव नामक दो मराठी ग्रथो का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

नित्यानन्द- ई 14 वी शती। उत्तर बगाल के करजग्राम के निवासी। "हरिचरित" के लेखक चतुर्भुज के पितामह। "कृष्णानन्द" नामक काव्य के प्रणेता।

नित्यानन्द- ज्योतिष-शास्त्र के, एक गौडवशीय आचार्य। पिता-देवदत्त। समय ई 17 वी शताब्दी का प्रारभ। इन्होंने 1639 मे "सिध्दातराज" नामक एक महनीय ज्योतिष-ग्रथ की रचना की थी। ये इन्द्रप्रस्थपुर के निवासी थे। इनका "सिध्दातराज" ग्रह-गणित का अत्यत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रथ सायनमान का है। इसमे ग्रहो के बीज-संस्कार भी कथन किये गये हैं।

नित्यानन्द- ई 20 वीं शती। बगाल-निवासी। भारद्वाज गोत्रीय। पिता-रामगोपाल स्मृतिरत्न। पितामह-मधुसूदन। शासकीय सस्कृत महाविद्यालय, कलकत्ता के भारतीभवन में अध्यापक।

कृतिया- मेघदूत, प्रह्लाद-विनोदन, तपोवैभव और सीतारामाविर्भाव।

नित्यानन्द शास्त्री- जन्म 1875 ई मे। माधव कवीन्द्र के सुपुत्र। इनका जन्म जोधपुर में हुआ था। ये आशुकवि, कविराज, साहित्यरत्न, कविभूषण, कविरत्न, महाकवि, विद्यावाचस्पति आदि उपाधियो से सम्मानित थे। इनकी रचनाए निम्नाकित हैं-

1 मारुतिस्तव, 2. लघु-छन्दोलंकार-दर्पण, 3 हनुमद्दूतम् (खण्डकाव्य), 4 श्रीरामचरिताब्दि-रत्नम्, 5 आर्यामुक्तावली, 6 कृष्णाष्टप्रास, 7 पुष्पचरितम्, 8 आर्यानक्षत्रमाला, 9 आत्मारामपचरगम्, 10 लक्ष्मीषट्पदी (स्तोत्र), 11 गगाष्टपदी (स्तोत्र), 12 शारदास्तव (संस्कृतचन्द्रिका- 13/6, 1906 ई) 13 समस्यापूर्तय, 14 मेघदूतम् (नाटक), 15.

प्रह्लाद-विनोदनम् (नाटक), 16. सीतारामविर्भावम् (नाटक), और 17. तपोवैभवम् (नाटक)।

नित्यानन्द शास्त्री ने कुछ ग्रन्थो का सम्पादन भी किया था। यथा- 1 सूक्तिमुक्तावली, 2 चेतोदूतम्, 3 विश्वेश्वर-स्मृति-पूर्वार्ध-आर्यविधानम्-उत्तरार्ध (दो भाग)। "दधिमथी" और "सनातन" नामक पत्रिकाओ के संपादन का कार्य भी इन्होंने किया था।

निध्रुव काण्व- कश्यप-वंश। अवत्सार के सुपुत्र। पत्नी-सुकेशा। ऋग्वेद के 9 वें मडल का 63 वां सूक्त इनके नाम पर है किन्तु सपूर्ण सूक्त में निध्रुव काण्व का नाम कहीं पर भी दिखाई नहीं देता। इनके इस सूक्त का विषय है सोम-स्तुति। सोम की स्तुति करते हुए निध्रुव ने उससे अनेक बातों की अपेक्षा की है। तत्संबधी दो ऋचाओं का भावार्थ इस प्रकार है- हे पावन सोम, हे आल्हादप्रद, तुम सभी धोखेबाज दुष्टो को पूरी तरह मार भगाओ। हे पराक्रमी सोम, राक्षसो को जान से मार डालो। राक्षसों का नि·पात कर हे सोम, तुम गर्जना करते हुए अपने प्रवाह से तेजस्वी तथा उत्कृष्ट साहस हमारी ओर लाओ। इनका कथन है कि सोमरस में सपूर्ण विश्व को आर्यधर्मी बनाने की क्षमता है।

निश्चलपुरी- ई 17 वीं शताब्दी। गुसाई-पथ के एक ग्रंथकार। इन्होंने सस्कृत भाषा में "राज्याभिषेक-कल्पतरु" नामक ग्रथ की रचना की। गागाभट्ट ने छत्रपति शिवाजी महाराज का वैदिक पद्धति से राज्याभिषेक किया था। उनके उस प्रयोग के अनेक दोष-स्थल निश्चलपुरी ने अपने इस ग्रंथ में दर्शाए हैं। प्रतीत होता है कि निश्चलपुरी एक उत्तम ज्योतिषी भी थे। उन्होंने शिवाजी महाराज को चेतावनी दी थी कि उनके राज्याभिषेक के पश्चात् तेरहवें, बाईसवें और पचपनवें दिन उन पर कुछ सकट आवेंगे और उनकी भविष्यवाणी सही निकली। तब शिवाजी ने निश्चलपुरी को बुलवाकर उनसे तात्रिक पद्धति के अनुसार पुन वैदिक राज्याभिषेक के छह महीने बाद अपना तात्रिक राज्याभिषेक करवा लिया था।

नीतिवर्मा- ई 10 वीं शती। बंगाल या कलिग (उत्कल) के निवासी। "कीचकवध" नामक चित्र-काव्य के प्रणेता।

नीपातिथि- ऋग्वेद के आठवें मडल के 34 सूक्त के द्रष्टा। फिर भी संपूर्ण सूक्त में नीपातिथि के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। ये कण्व-कुल के होगे। इसी सूक्त की पहली व चौथी ऋचा में कण्व का उल्लेख है। इस सूक्त का विषय है इन्द्र की स्तुति। उसकी दो ऋचाए इस प्रकार है-

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिव्य यय दिवावसो।।
आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिव्य यय दिवावसो।।
(ऋ 8 34.14-15)

अर्थ- (हे इन्द्रदेव) इधर पधारिये, हजारों गउए, हजारो अश्व आदि प्रकार का ऐश्वर्य हमें सौंपिए (और) फिर दिव्यलोक को गमन कीजिये।

प्रस्कण्व द्वारा उल्लिखित एक प्रमाण के अनुसार एक बार इन्द्र ने नीपातिथि की रक्षा की थी (8 49 9)। एक अन्य स्थल पर श्रुष्टिगु द्वारा किये गये उल्लेख के अनुसार इन्द्र ने इसके घर सोमरस का पान किया था (8 51 1)। नीपातिथि ने एक साम की भी रचना की थी, ऐसा पंचविश ब्राह्मण में कहा गया है (14 10 4)।

नीर्पाजे भीमभट्ट- जन्म-सन् 1903 में। कन्यान (दक्षिण कर्नाटक) के निवासी। प्रारंभिक शिक्षा कम्मेज संस्कृत पाठशाला में। तत्पश्चात् परेडाल महाजन सस्कृत महापाठशाला से "साहित्य-शिरोमणि" की पदवी प्राप्त की।

"काश्मीर-सन्धान-समुद्यम" तथा "हैदराबादविजय" नामक समकालीन घटनाओ पर आधारित नाटको के प्रणेता। आधुनिक राजनैतिक घटनाओ का चित्रण इन नाटको की विशेषता है।

नीलकंठ- ई 15 वीं शताब्दी में हुए एक शैवाचार्य। नीलकठ ने वीरशैव पथविषयक "क्रियासार" नामक ग्रथ की रचना की है। इसके अतिरिक्त कन्नड भाषा में भी आपका एक ग्रथ है। इनके मतानुसार केवल वीरशैवागम ही वैदिक है जब की अन्य आगम है अवैदिक। आपने अपने ग्रथ में शक्तिविशिष्ट अद्वैतब्रह्मरूपी शिव के माहात्म्य का वर्णन किया है।

नीलकंठ- ई 16 वीं शताब्दी। एक प्रसिद्ध ज्योतिषी। माता-पद्मा। "टोडरानद" नामक आपका एक प्रसिद्ध ग्रथ जो अब पूर्णावस्था में उपलब्ध नहीं, फिर भी उस ग्रथ का विवरण अन्यत्र मिलता है। तदनुसार प्रतीत होता है कि इस ग्रथ के तीन स्कध होगे- गणित, मुहूर्त और होरा। इस ग्रथ के उपलब्ध भाग की श्लोकसख्या एक हजार है। अकबर के मत्री टोडरमल के नाम पर इस ग्रथ का नामकरण हुआ होना चाहिये। नीलकठ को अकबर बादशाह के दरबार मे "पडितेंद्र" की पदवी प्राप्त हुई थी। जैसा कि इनके पुत्र गोविद ने लिख रखा है, ये एक बडे मीमासक और साख्यशास्त्रज्ञ भी थे। ज्योतिष की ताजिक-पद्धति पर, इनका समातत्र (वर्षतत्र) नामक एक और ग्रथ है। उसे "ताजिक-नीलकठी" भी कहते हैं। यह ग्रथ विभिन्न टीकाओ सहित छपा है। इस ग्रथ पर विश्वनाथ की सोदाहरण टीका उपलब्ध है।

नीलकंठ ने एक जातक-पद्धति की भी रचना की। उसके साठ श्लोक हैं। वह मिथिला में प्रसिद्ध है। आफ्रेच-सूची के अनुसार इनके अन्य ग्रथ हैं- तिथिरत्नमाला, प्रश्नकौमुदी अथवा ज्योतिषकौमुदी व दैवज्ञवल्लभा (ज्योतिषविषयक), जैमिनी-सूत्र पर सुबोधिनी नामक टीका तथा ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव व मकरंद नामक ग्रंथों पर लिखे टीकाग्रथ।

नीलकण्ठ- काल-1610 से 1670 ई.। रचना- अधरशतकम्। अश्लीलता से अस्पृष्ट शृंगारिकता इस काव्य का वैशिष्ट्य है। अति तरल कल्पनाशक्ति का यह उदाहरण है। अतिरिक्त रचनाए- शृंगारशतकम्, जारजातशतकम्, चिमनीशतकम् (विवाहिता मुस्लिम स्त्री तथा ब्राह्मण युवक का प्रेमसबध वर्णित) तथा शब्दशोभा नामक व्याकरण विषयक लघुग्रथ।

नीलकण्ठ- ई 17 वीं शती। केरल के सग्राम ग्राम (वर्तमान कुडल्लूर) में जन्म। कुल-नम्बूदिरी। गोत्र-गार्ध। रचना- कमलिनी-कलहस (नाटक)।

नीलकंठ- अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे महाराष्ट्र में हुए। एक शैव-परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनके आचार्यों के शुभनाम हैं काशीनाथ और श्रीधर। आपके कथनानुसार आपने किसी रत्नाजी नामक व्यक्ति के कहने से "देवीभागवत" पर टीका लिखी। लगभग बारह ग्रथो के रचयिता नीलकंठ तत्रशास्त्र के ऊचे पडित थे। इनके तत्रविषयक ग्रथ हैं- देवीभागवत की टीका, कात्यायनी तत्र की टीका, शक्तितत्त्वविमर्शिनी और कामकलारहस्य। देवीभागवत की टीका मे नीलकठ ने देवी को मायाविशिष्ट ब्रह्मरूप बताया है और कहा है कि देवी को पशुबलि भाती है।

नीलकण्ठ- केओझर (उडीसा) के राजा बलभद्र भज (1764-1782 ई) तथा जनार्दन भज (1782-1831) द्वारा सम्मानित। "भजमहोदय" नामक नाटक के रचियता।

नीलकण्ठ- रामभट्ट के पुत्र। रचना- काशिकातिलकचम्पू (गधर्वों के सवाद-माध्यम से शैव-क्षेत्रों का वर्णन)।

नीलकंठ चतुर्धर- ई 17 वीं शती। इनके द्वारा लिखित महाभारत की सुप्रसिद्ध टीका का नाम "नीलकठी" व "भारत-भाव-दीप" है। पिता-गोविंद चौधरी। माता- फुल्लाबिका। गौतमगोत्रीय। गोदावरीतटस्थ कर्पूरनगर (कोपरगाव-महाराष्ट्र) में रहते थे। अल्पकाल काशीक्षेत्र में भी निवास था। इनके कथनानुसार महाभारत की "भारतभावदीप" टीका इन्होंने काशी मे ही लिखी। इसके अतिरिक्त मत्रकाशीखडटीका, मंत्रभागवत, मंत्ररामायण, वेदातशतक, शिवतांडवव्याख्या, षट्तत्रीसार, गणेशगीता-टीका, हरिवश-टीका, सौरपौराणिकमतसमर्थन, विधुराधानविचार, आचारप्रदीप आदि ग्रथ भी नीलकण्ठ चतुर्धर ने लिखे हैं।

ये महाराष्ट्रीय थे किंतु "सप्तशती" पर लिखी अपनी "सुबोधिनी" नामक टीका में इन्होंने स्वयं को चतुर्धर मिश्र कहलाया है। उसी प्रकार अपनी इस टीका को उन्होंने भाष्य कहा है। आपने वेद-मत्रो को एकत्र कर "मत्र-रामायण" नामक जिस सुप्रसिद्ध ग्रथ का निर्माण किया, उससे रामोपासना की प्राचीनता सिद्ध होती है। सप्रति इनके वशज काशी मे रहते हैं।

महाभारत वनपर्व (162-11) की टीका करते हुए इन्होंने लिखा है "निपुणतरमुपपादितमेतदस्माभि काण्वशतपथभाष्य एकपादी-काण्डे" अर्थात् ये काण्वशतपथ के भाष्यकार थे। एकपादी काण्ड का ही दूसरा नाम "एकवाथी काण्ड" दाक्षिणात्य हस्तलेखो में मिलता है। अत. विद्वानों का तर्क है कि भाष्यकार नीलकण्ठ, उत्तरभारत में रहने वाले (सभवतः वाराणसी-वासी) महाराष्ट्रीय होंगे।

नीलकण्ठ दीक्षित - ई 17 वीं शती। गुरु-वेंकटेश्वर अपरनाम अय्या दीक्षित। पिता- नारायण दीक्षित तथा चाचा अप्पय्य दीक्षित से धर्मशास्त्र तथा व्याकरण का अध्ययन किया। इन्हे अपने ब्राह्मण्य पर अभिमान था। माता - भूमिदेवी। गोत्र-भारद्वाज।

मदुराई के तिरुमल नायक आदि राजाओं के पैंतीस वर्षो तक मत्री। सन् 1659 ई में सेवानिवृत्त। अन्तिम आश्रम ताम्रपर्णी के तट पर राजा की ओर से अग्रहार रूप में प्राप्त पालामडई ग्राम मे। वहीं पर आज भी उनकी समाधि विद्यमान है। रचनाए- अघविवेक (धर्मशास्त्र)। कैयट-व्याख्या (व्याकरण)। शिव-तत्त्वरहस्य (दर्शन)।। महाकाव्य- शिवलीलार्णव (मदुरा के हालास्यनाथ आख्यान पर 22 सर्गो का महाकाव्य) और गगावतरण- 8 सर्गों का काव्य।। खण्डकाव्य- कलिविडम्बन, सभारजन, शान्तिविलास, अन्यापदेशशतक और वैराग्यशतक।। भक्तिकाव्य= आनन्द-सागर-स्तव, शिवोत्कर्षमंजरी, चण्डीरहस्यम्, रामायण-सार-सग्रह और रघुवीर-स्तव, नलचरित (नाटक), नीलकण्ठविजय (चम्पू), मुकुन्द-विलास (अप्रकाशित)।

नीलकण्ठ भट्ट - समय- लगभग 1610 ई.। पिता-शंकर भट्ट, पितामह- नारायण भट्ट, ज्येष्ठ भ्राता- कमलाकर भट्ट और पुत्र- शकर भट्ट। ये सभी विद्वान् व ग्रथलेखक थे। नीलकठ भरेह के राजा भगवतदेव के सभा-पडित थे। इन्होंने भगवतदेव के सम्मान में "भगवतभास्कर" नामक धर्मशास्त्र विषयक बृहद्काय ग्रथ का प्रणयन किया था। इस ग्रंथ के 12 विभाग हैं जो मयूख के नाम से प्रसिद्ध हैं। नीलकंठ ने अन्य ग्रथो का भी प्रणयन किया था। वे हैं- व्यवहारतत्त्व, कुडोद्योत, दत्तकनिरूपण व भारत-भावदीप (महाभारत की सक्षिप्त व्याख्या)। नीलकंठ की अपने चचेरे भाई कमलाकर से स्पर्धा रहती थी। अनेक स्थानों पर इन दोनों के मत परस्पर-विरोधी हैं। नीलकठ ने मीमांसा का अध्ययन किया था।

नीलकंठ वाजपेयी - वि सं 1575-1625, भाष्यतत्त्वविवेक नामक व्याकरण महाभाष्य की व्याख्या के रचयिता। (मद्रास के हस्तलेख पुस्तकालय में विद्यमान) लेखक रामचंद्र का पौत्र,वरदेश्वर का पुत्र और ज्ञानेन्द्र सरस्वती का शिष्य था। रचनाएं- पाणिनीय-दीपिका, परिभाषावृत्ति, सिद्धान्त-कौमुदी की सुखबोधिनी टीका, गूढार्थ-दीपिका का तत्त्वबोधिनी नामक व्याख्यान।

नीलांबर शर्मा - सन् 1823-1883। ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। मैथिलीय ब्राह्मण। पटना के निवासी और वहीं जन्म। इन्होंने कुछ समय तक अपने बडे भाई जीवनाथ के पास, तथा बाद में कुछ दिनों तक काशी की पाठशाला में ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन किया था। अलवर-नरेश शिवदाससिंह की सभा में ये मुख्य ज्योतिषी के पद पर रहे। इन्होंने पाश्चात्य पद्धति के अनुसार "गोल-प्रकाश" नामक एक ग्रंथ की रचना की है। पांच अध्यायों में विभाजित इस ग्रंथ के विषय हैं ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमिति-सिद्धांत, चापीय रेखागणित-सिद्धांत और चापीय त्रिकोणमिति-सिद्धांत। इस ग्रंथ का प्रकाशन बापूदेव ने काशी में किया। नीलाबर ने कतिपय भास्करीय ग्रंथों पर टीकाए भी लिखी हैं। पिता-शभुनाथ शर्मा।

नृमेध- ऋग्वेद के 8 वें मंडल के क्रमांक 89-90, 98-99 और 9 वें मडल के क्रमांक 27 व 29 के सूक्त नृमेध के नाम पर हैं किंतु उन सूक्तों में नृमेध का नाम कहीं पर भी दिखाई नहीं देता। आंगिरसकुलोत्पन्न नृमेध सामों के भी द्रष्टा थे। अग्नि ने इन्हें सतति प्रदान की ऐसा ऋग्वेद में उल्लेख है (ऋ 10-83-3)। इनके एक सुपुत्र शकपूत भी सूक्तद्रष्टा थे। ऋग्वेद के एक उल्लेखानुसार, एक बार मित्रावरुण ने नृमेध की रक्षा की थी (ऋ 12-132-7)। प्रतीत होता है, कि नृमेध परूच्छेप के शत्रु थे। इन्द्र एव सोम की स्तुति नृमेध के सूक्तों का विषय है। उनके मतानुसार सोम काव्यवृत्तिप्रेरक तथा पापनाशक है।

नृसिंह - ई 16 वीं शती। गोदावरीतटस्थ गोलग्रामस्थ दिवाकर के कुल में नृसिंह का जन्म हुआ था। आपने अपने पिता तथा चाचा के पास अध्ययन किया। नृसिह ने सूर्यसिद्धात पर "सौरभाष्य" नामक एक ग्रंथ की रचना की। श्लोक-सख्या है- 4200।

आपने "सिद्धान्तशिरोमणि" पर वासनावार्तिक अथवा वासनाकल्पलता नामक एक टीका भी लिखी जिसकी श्लोक सख्या 5500 है।

नृसिंह- ई. 16 वीं शती। सुप्रसिद्ध ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के भतीजे। जैसा कि सुधाकर ने लिख रखा है, आपने मध्यग्रहसिद्धि नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में केवल मध्यम-ग्रह ही दिये हैं। ग्रहलाघव की टीका और ग्रहकौमुदी नामक एक और ग्रथ आपके नाम पर है।

नृसिंह- सनगरवंशीय ब्राह्मण कवि। ई 18 वीं शती। मैसूर के निवासी। पिता-सुधीमणि, भाई-सुब्रह्मण्य, गुरु-योगानन्द। गुरु से परा विद्या का अध्ययन और पिता से ज्ञान-विज्ञान का। एक अन्य गुरु-पेरुमल। आश्रयदाता-नंजराज (1739-59 ई.) मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (1734-1766 ई.) के श्वशुर तथा सर्वाधिकारी। अभिनव- कालिदास की उपाधि से प्रख्यात। चन्द्रकला-कल्याण (नाटक) के प्रणेता।

नृसिंह- ई 18 वीं शती का पूर्वार्ध। कैरविणीपुरी (मद्रास) के निवासी। भारद्वाज गोत्र। पिता-कृष्णम्माचार्य। अनुमिति-परिणय (नाटक) के प्रणेता। न्यायशास्त्र पर यह लाक्षणिक नाटक आधारित है।

नृसिंह पंचानन - ई 17 वीं शती। रचना-न्यायसिद्धान्त-मंजरी-भूषा।

नृसिंह (बापूदेव) - सन् 1821-1890। एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी व गणितज्ञ। महाराष्ट्रीय ऋग्वेदी चित्तपावन ब्राह्मण। मूल निवास-नगर जिले का गोदावरी- तटस्थ टोकेगाव। नागपुर में आपका प्राथमिक शिक्षण हुआ और वहीं पर ढुंढिराज नामक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण विद्वान् के पास भास्कराचार्य के लीलावती व बीजगणित नामक ग्रथों का अध्ययन हुआ। नृसिंह का गणित-विषयक ज्ञान देखकर, विल्किन्सन नामक एक अग्रेज अधिकारी उन्हें सिहूर की सस्कृत पाठशाला में अध्ययनार्थ ले गए। वहीं पर सेवाराम नामक एक गुरुजी के पास उन्होंने रेखागणित का अध्ययन किया। सन् 1841 में नृसिंह काशी की एक संस्कृत-पाठशाला में रेखागणित के अध्यापक बने और बाद में वहीं पर बने गणित-शाखा के मुख्याध्यापक। सन् 1864 में ग्रेट ब्रिटेन व आयर्लंड की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के और सन् 1868 में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के वे सम्माननीय सदस्य बने। पश्चात् सन् 1869 में उन्हें कलकत्ता तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों की फेलोशिप प्रदान की गई। फिर सन् 1887 में सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से गौरवान्वित किया। नृसिह द्वारा लिखे गए ग्रथ हैं- रेखागणित, सायनवाद, ज्योतिषाचार्याशयवर्णन, अष्टादशविचित्रप्रश्नसग्रह (सोत्तर), तत्त्वविवेकपरीक्षा, मानमदिरस्थ-यंत्र- वर्णन और अकगणित। इनके अतिरिक्त नृसिह द्वारा लिखित कुछ छोटे-बडे अप्रकाशित लेख हैं- चलनकलासिद्धान्तबोधक बीस श्लोक, चापीयत्रिकोणमिति संबन्धी कुछ सूत्र, सिद्धात ग्रथोपयोगी टिप्पणिया, यंत्रराजोपयोगी छेद्यक व लघुशकुच्छिन्नक्षेत्रगुण। नृसिह के कुछ ग्रथों के हिन्दी और अग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

नृसिंहाचार्य - "त्रिपुर-विजय-चम्पू" के रचयिता। तजोर के भोसला नरेश एकोजी के अमात्यप्रवर। चपू- का रचना-काल ई. 16 वीं शती के मध्य के आस-पास माना जाता है। पिता-भारद्वाज गोत्रोत्पन्न आनद यज्वा। "त्रिपुर-विजयचम्पू" एक साधारण कोटि का काव्य है जो अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण तजौर केटलाग सख्या 4036 में प्राप्त होता है।

नृसिंहाश्रम - ई. 16 वीं शती। एक आचार्य व ग्रंथकार। ये पहले दक्षिण में तथा बाद में काशी में रहते थे। इनके गुरु थे सर्वश्री गीर्वाणेंद्र सरस्वती और जगन्नाथाश्रम। कहा जाता है कि इनके संपर्क में आने पर ही अप्पय्य दीक्षित ने शांकरमत की दीक्षा ली थी। इनके द्वारा लिखे गए ग्रंथों के

नाम हैं- वेदान्ततत्त्वविवेक, तत्त्वबोधिनी, ज्ञानप्रकाशिका, **अद्वैतदीपिका और भेदधिक्कार।** इनके अतिरिक्त नृसिंहाश्रम ने पंचपादिका-विवरण व प्रकाशिका नामक दो टीकाएं भी लिखी हैं।

न्यायविजय मुनिमहाराज - जैन मुनि। वाराणसी-निवासी। रचना-सन्देश। इस नीतिपरक काव्य में छात्रों को उपयुक्त सन्देश चार भागो मे दिया गया है।

नेम भार्गव - ऋग्वेद के 8 वें मंडल का 100 वा सूक्त इनके नाम पर है। इस सूक्त में नेम भार्गव ने इन्द्र की स्तुति की है। इसके साथ ही उनके द्वारा व्यक्त वाणी-विषयक विचार निम्नांकित हैं-

देवीं वाचमजनयन्त देवास्ता विश्वरूपा पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु।।

अर्थ- उस दिव्य वाणी को देवताओ ने ही जन्म दिया। किसी भी स्वरूप का प्राणी हो, वह बोलता ही है। (चाहे वह स्पष्ट ध्वनित हो, या न हो)। वह उल्लसित दिव्य वाणी, एक धेनु ही है। वह उत्साह व ओजस्विता का भरपूर दूध देती है। तो इस प्रकार की वह मन पूर्वक स्तुति की गई दिव्य वाणी, हम लोगों के समीप आवे।

नेमिचन्द्र - प्रथम नेमिचद्र को, सिद्धान्तग्रथो का गहन अध्ययन मनन और चिंतन होने के कारण, "सिद्धान्त-चक्रवर्ती" की उपाधि प्रदत्त। देशीयगण के आचार्य। गुरु-अभयनन्दि, वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि। शिष्य- गगवशी राजा राचमल्ल के प्रधान मत्री और सेनापति चामुण्डराय, जिन्होंने श्रवणबेलगोला (मैसूर) मे स्थित विन्ध्यगिरि पर 57 फीट ऊची बाहुबलि स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। चामुण्डराय का पारिवारिक नाम "गोम्मट" था। इसलिए उक्त प्रतिमा को गोम्मटेश्वर भी कहा गया है। इस मूर्ति का स्थापना काल ई 981 है। अत नेमिचन्द्र का समय ई 10 वीं शती का उत्तरार्ध है। ग्रथ-गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणकसार, द्रव्य-सग्रह, प्रतिष्ठापाठ आदि।

द्वितीय नेमिचन्द्र - नयनन्दि के शिष्य थे। समय ई 12 वी शती के आसपास। रचनाए- महाभारत का जैन रूपातर, जैनो के उत्तराध्ययन पर टीका और भववैराग्य शतक नामक स्वतत्र ग्रथ। **तृतीय नेमिचन्द्र** ने 16 वीं शती मे गोम्मटसार पर "जीवतत्त्वप्रदीपिका" नामक टीका लिखी थी। **चतुर्थ नेमिचन्द्र** भोजकालीन "द्रव्यसग्रह" के रचयिता है जिन्हे "सिद्धान्तदेव" कहा गया है। समय ई 12 वी शती। रचनाए- लघुद्रव्यसग्रह और बृहद्द्रव्यसग्रह। कार्यक्षेत्र- राजस्थान (बूदी के पास)।

नेमिचन्द्र सूरि - अपरनाम-देवेन्द्र गणि। उद्योतनाचार्य के शिष्य उपाध्याय आम्रदेव के शिष्य। गुरुभ्राता- मुनिचन्द्र सूरि। अणहिलपाटन नगर कार्यक्षेत्र। समय- ई 11-12 वीं शती। ग्रथ- उत्तराध्ययन-सुखबोधावृत्ति (वि स 1128), शान्त्याचार्य विहित शिष्यसहिता नामक बृहद्वृत्ति पर आधारित।

नेवासकर, परमानंद कवीन्द्र - ई 17 वी शती। इनका मूल नाम था गोविंद नाधिवासकर अर्थात् नेवासकर। ये महाराष्ट्र में नेवासा के रहने वाले थे और इनके घराने की कुलदेवी थी एकवीरा। जैसा कि उन्होंने लिखा है, इस देवी से ही उन्हें वाक्सिद्धि अथवा प्रतिभा प्राप्त हुई थी।

परमानद कवीन्द्र अनेक वर्षों तक अध्ययनार्थ काशी में रहे। सन् 1673 मे वे महाराष्ट्र लोटे और पोलादपुर में रहकर छात्रो को पढाने लगे। उनकी कीर्ति सुनकर शिवाजी महाराज पोलादपुर में उनसे मिले। सन् 1674 में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। उस प्रसंग पर परमानद कवीन्द्र वहा उपस्थित थे। उस समय शिवाजी ने उनसे कहा कि वे उनके जीवन पर एक बृहत् काव्य की रचना करे। यह बात परमानद ने अपने निम्न श्लोको द्वारा बताई है-

योऽय विजयते वीर पर्वतानामधीश्वर।
दाक्षिणात्यो महाराज शाहराजात्मज शिव।।
साक्षान्नारायस्याशस्त्रिदशद्वेशिदारण।
स एकदात्मनिष्ठ मा प्रसाद्येदमभाषत।।
यानि यानि चरित्राणि विहितानि मया भुवि।
विधीयन्ते च सुमते तानि सर्वाणि वर्णय।
मालभूपमुपक्रम्य प्रथित मत्पितामहम्।
कथामेता महाभाग महनीया निरूपय।।

अर्थ - दुर्गों (किलो) के अधिपति, दक्षिण के महाराजा, प्रत्यक्ष विष्णु के अवतार, देवद्रोहियों के सहारकर्ता, शहाजी के पुत्र वीर शिवाजी जो विजयो से विभूषित है, उन्होने एक बार मुझ ब्रह्मनिष्ठ को प्रसन्न करते हुए कहा -

"हे सुबुद्धे, मैंने इस पृथ्वी पर जो जो कार्य किये तथा सप्रति जो कार्य कर रहा हू, उन सब का आप वर्णन कीजिये। मेरे पितामह सुप्रसिद्ध मालोजी राजा प्रारभ करते हुए, हे महाभाग आप इस महनीय कथा का कथन करे।

तब परमानद ने 100 अध्यायों की योजना करते हुए शिवाजी के चरित्र पर एक महाकाव्य की रचना करने का निश्चय किया। किन्तु नियोजित महाकाव्य के 32 वे अध्याय के 9 श्लोक ही पूरे हो सके। सन् 1661 मे शिवाजी द्वारा श्रृगारपुर पर की गई चढाई तक का शिवचरित्र उसमे सगुफित है। इस महाकाव्य को परमानद ने नाम दिया "सूर्यवश", परतु प्रकाशन सस्था ने इसे "शिवभारत" नाम से प्रकाशित किया। इस ग्रथ पर शिवाजी महाराज ने उन्हें कवीन्द्र की पदवी से विभूषित किया।

इस ग्रथ को लेकर परमानंद वाराणसी गए थे। इस बारे में ग्रथ के पहले ही अध्याय में कहा गया है कि काशी के पडितो की प्रार्थना पर उन्होंने गगाजी के तट पर इस महाकाव्य का पाठ किया था।

शिवाजी महाराज के ही शासनकाल में उनकी शासन व्यवस्था, जीवन कार्य आदि का प्रत्यक्ष अवलोकन करते हुए ही परमानंद ने इस महाकाव्य की रचना की थी। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रस्तुत "शिवभारत" ग्रंथ को शिवाजी चरित्र की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

नैधृव व्यंकटेश - रचना - भोसल वंशावलि चम्पू। मनलूर के धर्मराज के पुत्र। चंपू का केवल प्रथम भाग उपलब्ध। अन्य रचनाएं- राघवानन्दम् (नाटक), नीलापरिणयम् (नाटक) और सभापतिविलासम् (नाटक)। तंजौरनरेश सरफोजी भोसले (18-19 वीं शती) द्वारा "साहित्यभोग" की उपाधि से सम्मानित।

नोधा गौतम - ऋग्वेद के पहिले मंडल के 58-64 तथा आठवें मंडल के 88 व 93 क्रमांक के सूक्त इनके नाम पर हैं। गौतम कुलोत्पन्न नोधा अच्छे कवि भी थे। उन्हें अपने काव्य के बारे में सार्थ अभिमान था। वे कहते हैं -

"हे नोधा, वीर्यशाली, अत्यंत पूज्य अत्यत कर्तृत्ववान् ऐसे मरुतों के सम्मानार्थ उनके गुणों को संबोधित करते हुए एक सुंदर स्तोत्र अर्पण करो। एक कवि होने के कारण मनन द्वारा अच्छा कौशल साध्य कर, मैं यज्ञ के अवसर पर प्रभावसपन्न स्तोत्रों की पानी की भांति वृष्टि करूगा।"

इन सभी सूक्तों में अग्नि, इन्द्र, मरुत व सोम की स्तुति है। अग्नि विषयक स्तुति की उनकी ऋचा निम्नांकित है .

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्य अथाभवदरती रोदस्यो ।
ते त त्वा देवासो जनयन्त देव वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ।।

अर्थ- अग्नि है द्युलोक का मस्तक और पृथ्वी की नाभि, वह द्युलोक तथा भूलोक का अधिपति बना है। सपूर्ण विश्व के प्रति मित्रत्व धारण करनेवाले हे अग्निदेव, आप इस प्रकार के श्रेष्ठ देवता होने के कारण, आप आर्य जनों के प्रकाश (मार्गदर्शक) बनें इस हेतु, आपको दिव्य जनो ने जन्म लेने के लिये प्रेरित किया।

नोधा ने मरूतों के सूक्त में (1.64) मरुतों सबधी पर्याप्त चरित्रविषयक जानकारी दी है।

न्यायवागीश भट्टाचार्य - ई 18 वीं शती। रचना - "काव्यमंजरी"। बगाल के निवासी।

पंचपागेश शास्त्री - (कविरत्न)। कुम्भकोणम् के शाकर मठ में अध्यापक। समय ई 19-20 वीं शती। रचनाए- हरिश्चन्द्रविजयचम्पू, ताटकप्रतिष्ठामहोत्सव चम्पू, जगद्गुरु अष्टोत्तरशतकम्, रामकृष्ण परमहंस चरितम्, शकरगुरुचरित-सग्रह तथा अनेक देवतास्तोत्र। सभी मुद्रित।

पंचशिख - सांख्यदर्शन को व्यवस्थित व सुसबद्ध करने वाले प्रथम आचार्य। साख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल के शिष्य आचार्य आसुरि के ये शिष्य थे। इनके सिद्धात वाक्य अनेक ग्रंथों में उद्धृत हैं, जिन्हें पंचशिखसूत्र कहा जाता है। यथा -

1) एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् (योगाभाष्य, 1-4)।
2) तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते (योग, 1-36)।
3) तत्संयोगहेतु विवर्जनात् स्यादयमात्यंतिको दुःखप्रतिकार । (योगभाष्य 2-17, ब्रह्मसूत्र-भामती, 2-2-10)।

चीनी परंपरा, पंचशिख को "षष्टितंत्र" का रचयिता मानती है जिसमें 60 हजार श्लोक थे। इनके सिद्धांतों का विवरण "महाभारत" में भी प्राप्त होता है। (शांतिपर्व, अध्याय 302-308)। "षष्टितत्र" के प्रणेता के बारे में विद्वानों मे मतभेद है। उदयवीर शास्त्री व कालीपद भट्टाचार्य, "षष्टितत्र" का रचयिता कपिल को मानते है। भास्कराचार्य ने भी अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कपिल को ही "षष्टितत्र" का प्रणेता कहा है। "कपिलमहर्षिप्रणीत षष्टितंत्राख्यस्मृते (ब्रह्मसूत्र 2-1-1) पर म.म डा गोपीनाथ कविराज के अनुसार, पचशिख ही "षष्टितत्र" के प्रणेता हैं।

पंचाचार्य - वीरशैव मत के प्रवर्तक पांच आर्य। इनके शुभनाम हैं एकोरामाराध्य, पंडिताराध्य, रेवणाराध्य, मरुलाराध्य और विश्वाराध्य। कहा गया है कि ये आचार्य शिवलिग से उद्भूत हुए और उन्होंने विश्वसचार करते हुए शिवभक्ति का सर्वत्र प्रचार किया। इस संबंध में शिवजी पार्वती से कहते हैं

मदादिसर्वलोकाना जगद्गुरुवरोत्तमा ।।

अर्थ - मेरे पाच मुखो से उत्पन्न हुए ये पांच आचार्य, मेरे तथा सभी लोगों के श्रेष्ठ गुरु हैं।

इन आचार्यों ने कर्नाटक के बाले होन्नूर, मालवा की उज्जयिनी, हिमालय के केदारक्षेत्र, श्रीशैलक्षेत्र तथा काशी इन पाच स्थानों पर धर्मपीठ स्थापन किये। माना जाता है कि इन पाच आचार्यों ने उपनिषदादि ग्रथों पर भाष्यों की रचना की थी, किन्तु अभी तक उनमे से एक भी भाष्य उपलब्ध नहीं हो सका है।

पंचानन तर्करत्न (म.म.) - जन्म- सन् 1866 में बंगाल के चौबीस परगना जिले के भट्टपल्ली (भाटापाडा) में। 19 वर्ष की अवस्था में पिता- नन्दलाल विद्यारत्न, जयराम न्यायभूषण, राखालदास न्यायरत्न, मधुसूदन स्मृतिरत्न, ताराचरण तर्करत्न, भास्कर शर्मा आदि से शिक्षा प्राप्त की। सन् 1885 से 1937 तक वंगवासी प्रेस में सपादन तथा सशोधन में रत रहे। नॅशनल कालेज व सस्कृत साहित्य परिषद् की स्थापना की। शारदा बिल का विरोध करते हुए, "महामहोपाध्याय" की उपाधि का त्याग किया। "अनुशीलनी" नामक क्रान्तिकारी दल का गठन किया। अलीपुर बम विस्फोट के संदर्भ में सन 1907 में बन्दिवास में रहे।

कृतिया - पार्थाश्वमेध व सर्वमगलोदय (काव्य), अमरमगल तथा कलकमोचन (नाटक), ब्रह्मसूत्र पर शक्तिभाष्य, रामायण, महाभारत,पचदशी, वैशेषिक दर्शन, सांख्यतत्व कौमुदी आदि

पर टीकाएं।

पक्षधर मिश्र - समय ई.की 13 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। इनका मूल नाम था जयदेव। किसी भी सिद्धांत को लेकर उसका एक पक्ष (पखवाडे) तक समर्थन करते रहने के उनके स्वभाव के कारण, उन्हें "पक्षधर" कहते थे। इन्होंने गगेश उपाध्याय के तत्त्वचिंतामणि नामक ग्रंथ पर, आलोक नामक टीका लिखी है। इनके शिष्य रुचिदत्त मिश्र भी प्रकाड पडित थे। उन्होंने वर्धमान के कुसुमांजलिप्रकाश पर "मकरद" नामक तथा गगेरी की तत्त्वचितामणि पर "प्रकाश" नामक टीका लिखी है।

पट्टाभिराम शास्त्री (विद्यासागर एव मीमासान्यायकेसरी उपाधियो से विभूषित) - - समय ई 20 वीं शती। महाराजा सस्कृत कॉलेज, जयपुर के अध्यक्ष एव कलकत्ता वि वि में मीमासा प्राध्यापक। "नवोढा वधू वरश्च" नामक प्रहसन के प्रणेता। वाराणसी में निवास।

पतंग प्राजापत्य - ऋग्वेद के 10 वे मडल का 177 वा सूक्त इनके नाम पर है। ये प्रजापति के प्रिय पुत्र थे। एक कथा के अनुसार, इनके द्वारा निर्मित साम (मत्र) के कारण, उच्चै श्रवस कौपेय को मृत्यु के पश्चात् धूम्रशरीर प्राप्त हुआ। उनके द्वारा विरचित सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया
हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चित ।
समुद्रे अन्त कवयो विचक्षते
मरीचीना पदमिच्छन्ति वेधस ।। (ऋ 10 1 77)

अर्थ - यह पतग = (परमात्मरूप पक्षी अथवा सूर्य) अपनी ईश्वरीय माया से (अतर्क्य शक्ति से) व्याप्त होने के कारण उत्तम ज्ञानी जन उसे केवल अपने हृदय की सवेदना से युक्त मन से ही पहचानते हैं। गूढ कल्पना तरग मे निमग्न रहनेवाले कवि भी (विश्वरूपी) सागर के उदर मे ही उसे देखते हैं और विधाता (स्वानुभवी) होते हैं, वे उसके प्रकाश स्थान की प्राप्ति की इच्छा करते हैं। सूर्य का वर्णन "पतग" इस नाम से करने के कारण इन्हें 'पतग' यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

पतंजलि - ई 2 री शती। "व्याकरण-पहाभाष्य" के रचयिता, योगदर्शन के प्रणेता तथा आयुर्वेद की चरक परपरा के जनक पतजलि की गणना, भारत के अग्रगण्य विद्वानो मे की जाती है। इसी लिये उन्हे नमन करते हुए भर्तृहरि ने अपने ग्रथ वाक्यपदीय के प्रारभ मे निम्न श्लोक लिखा है -

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा
मल शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् त प्रवर मुनीना
पतजलि प्राजलिरानतोऽस्मि।।

अर्थ - योग से चित्त का, पद (व्याकरण) से वाणी का व वैद्यक से शरीर का मल जिन्होंने दूर किया, उन मुनिश्रेष्ठ पतजलि को मे अजलि बद्ध होकर नमस्कार करता हू।

पतजलि के अन्य नाम हैं- गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, चूर्णिकार, फणिभृत्, शेषाहि, शेषराज और पदकार। निवास स्थान - गोनर्द ग्राम (काश्मीर) अथवा गोंडा उ. प्र.। माता- गोणिका। पिताजी का नाम उपलब्ध नहीं। रामचंद्र दीक्षित ने पतजलिचरित नामक उनका चरित्र लिखा है जिसमें पतजलि को शेष का अवतार मानकर, तत्सबधी निम्न आख्यायिका दी गई है-

एक बार जब श्रीविष्णु शेषशय्या पर निद्रित थे, शकरजी ने अपना ताडव नृत्य प्रारभ किया। उस समय श्रीविष्णु गहरी निद्रा में नहीं थे। अत स्वाभाविकत उनका ध्यान उस शिवनृत्य की ओर आकर्षित हुआ। उस नृत्य को देखते हुए श्रीविष्णु को इतना आनद हुआ, कि वह उनके शरीर में समाता नहीं था। अत उन्होंने अपने शरीर को बढाना प्रारभ किया। विष्णु का शरीर वृद्धिगत होते ही शेष को उनका भार असह्य हो उठा। वे अपने सहस्र मुखो से फूत्कार करने लगे। उसके कारण लक्ष्मीजी घबराई और उन्होंने श्रीविष्णु को नींद से जगाया। उनके जागते ही उनका शरीर आकुंचित हुआ। तब छुटकारे की सास लेते हुए शेष ने पूछा "क्या आज मेरी परीक्षा लेना चाहते थे।" इस पर श्रीविष्णु ने शेष को, शिवजी के ताडव नृत्य का कलात्मक श्रेष्ठत्व विशद करके बताया। तब शष बोले - "वह नृत्य एक बार मै देखना चाहता हू"। इस पर विष्णु ने कहा - "तुम एक बार पुन पृथ्वी पर अवतार लो, उसी अवतार मे तुम शिवजी का तांडव नृत्य देख सकोगे।"

तदनुसार अवतार लेने हेतु उचित स्थान की खोज मे शेषजी चल पडे। चलते चलते गोनर्द नामक स्थान पर, उन्हे गोणिका नामक एक महिला, पुत्रप्राप्ति की इच्छा से तपस्या करती हुई दीख पडी। शेषजी ने उसे मातृरूप में स्वीकार करने का मन ही मन निश्चय किया। अत जब गोणिका सूर्य को अर्ध्य देने हेतु सिद्ध हुई तब शेषजी सूक्ष्म रूप धारण कर उसकी अजलि में जा बैठे और उसकी अंजलि के जल के साथ नीचे आते ही, उसके सम्मुख बालक के रूप मे खडे हो गए। गोणिका ने उन्हें अपना पुत्र मान कर गोदी मे उठा लिया और बोली "मेरी अजुलि से पतन पाने के कारण, मै तुम्हारा नाम पतजलि रखती हू"।

पतजलि ने बाल्यावस्था से ही विद्याभ्यास प्रारंभ किया। फिर तपस्या द्वारा उन्होंने शिवजी को प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने उन्हें चिदबर क्षेत्र में अपना ताडव नृत्य दिखलाया और पदशास्त्र पर भाष्य लिखने का आदेश दिया। तदनुसार चिदंबरम् में ही रह कर पतजलि ने पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों पर विस्तृत भाष्य की रचना की। यह ग्रंथ "पातंजल महाभाष्य" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस महाभाष्य की कीर्ति सुनकर, उसके अध्ययनार्थ हजारों

पंडित पतजलि के यहां आने लगे। पतजलि एक यवनिका (पर्दे) की ओट में बैठ कर, शेषनाग के रूप में उन सहस्रों शिष्यों को एक साथ पढाने लगे। उन्होंने शिष्यों को कडी चेतावनी दे रखी थी कि कोई भी यवनिका के अंदर झाक कर न देखे। किन्तु शिष्यों के हृदय में इस बारे में भारी कुतूहल जाग्रत हो चुका था कि एक ही व्यक्ति एक ही समय इतने शिष्यों को ग्रथ के अन्यान्य भाग किस प्रकार पढा सकता है। अत· एक दिन उन्होंने जब यवनिका दूर की, तो उन्हें दिखाई दिया कि पतजलि सहस्रमुख शेषनाग के रूप में अध्यापन कार्य कर रहे हैं किन्तु शेषजी का तेज इतना प्रखर था कि उन्हें देखने वाले सभी शिष्य तुरत जल कर भस्म हो गए। केवल एक शिष्य जो उस समय जल लाने के लिये बाहर गया था, बच गया। पतजलि ने उसे आदेश दिया, कि वह सुयोग्य शिष्यों को महाभाष्य पढाए। फिर पतजलि चिदबर क्षेत्र से गोनर्द ग्राम लौटे। वहां पहुच कर उन्होंने अपनी माताजी के दर्शन किये, और फिर अपने मूल शेष रूप में वे प्रविष्ट हो गए।

महाभाष्य के समान ही पतजलि ने आयुर्वेद की चरक सहिता भी लिखी ऐसा कहा गया है। चरक सहिता का मूल नाम है आत्रेयसहिता। कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा थी चरक। उसके अनुयायियों को भी चरक ही कहा जाता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि चरक लोग सामान्यत. आयुर्वेदज्ञ, मात्रिक तथा नागोपासक थे। कहा जाता है कि पतजलि भी उसी शाखा के होंगे। चरकसहिता अत्रि के नाम पर होते हुए भी अधिकाश विद्वान मानते है कि पतजलि ने उस पर प्रबलसंस्कार अवश्य किये होंगे। पतजलि को आयुर्वेद की अच्छी जानकारी थी, यह बात उनके महाभाष्य से भी दिखाई देती है। उनके महाभाष्य में शरीररचना, शरीरसौंदर्य, शरीरविकृति, रोगनिदान, औषधिविज्ञान आदि के विषय में अनेक स्थानों पर उल्लेख आए हैं।

योगसूत्रों की भी रचना पतजलि ने ही की ऐसा प्रसिद्ध है किंतु भाष्यकार, योगसूत्रकार तथा चरकसस्कर्ता को एक ही व्यक्ति मानना, अनेक विद्वानों को मान्य नहीं। उनका तर्क है कि ये तीनों पतंजलि भिन्न काल के भिन्न व्यक्ति होने चाहिये। योगसूत्रो में आर्ष (ऋषिप्रणीत) प्रयोग नहीं हैं। सूत्रों के अर्थों के लिये अध्याहार (वाक्यपूर्ति के लिये शब्द-योजना) की आवश्यकता नहीं पडती और उसकी रचना-शैली महाभाष्य के अनुरूप स्पष्ट एव प्रासादिक है। इन आधारों पर डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, महाभाष्यकर्ता को ही योगसूत्रों का कर्ता मानते हैं। अन्य किसी भी दार्शनिक की तुलना में योगसूत्रकार एक श्रेष्ठ वैयाकरण प्रतीत होते हैं। चक्रपाणि नामक एक प्राचीन टीकाकार ने भी निम्न श्लोक द्वारा पतंजलि को एक ही व्यक्ति माना है-

पातंजल-महाभाष्य-चरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहिपतये नम·।।

अर्थ- योगसूत्र, महाभाष्य तथा चरकसंहिता का प्रतिसंस्करण इन कृतियों से, क्रमश मन, वाणी एवं देह के दोषों का निरसन करने वाले पतंजलि को मैं नमस्कार करता हूं।

चरक शब्द के कल्पित अर्थ लेकर विद्वानों ने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं उनमे द्विवेदी कहते हैं- अध्ययन की समाप्ति के पश्चात्, पतजलि कुछ समय के लिये "चरक" अर्थात् भ्रमणशील रहे। विभिन्न प्रदेशों व ग्रामों में घूम-फिर कर, उन्होंने पाणिनि कात्यायन के पश्चात् संस्कृत भाषा के शब्द-प्रयोगों में जो परिवर्तन रूढ हुए उनका अध्ययन किया, और उनका निरूपण करने हेतु "इष्टि" के नाम से कुछ नये नियम बनाये।

पुणे निवासी श्री अ. ज करंदीकर ने चरक के चर अर्थात् गुप्तचर इस अर्थ के आधार पर अपनी सभावना व्यक्त करते हुए लिखा है-

"प्रारंभ में पतजलि ने एक गुप्तचर की भूमिका से भारत भ्रमण किया होगा। उस स्थिति में उनका समावेश, अर्थशास्त्र में वर्णित सत्री नामक गुप्तचरों में हुआ होना चाहिये। आर्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में कहा है कि पितृहीन व आप्तहीन बालकों को सामुद्रिक, मुख-परीक्षा, जादू-विद्या, वशीकरण, आश्रम-धर्म, शकुन-विद्या आदि सिखाकर, उनमें से ससर्ग अथवा समागम द्वारा वृत्त-सग्रह करने वाले गुप्तचरों का चुनाव किया जाना चाहिये। पतजलि को गोणिका-पुत्र कह कर ही पहचाना जाता है। अत उनके पिताजी की अकालमृत्यु हुई होगी और वे निराधार रहे होंगे। परिणामस्वरूप सत्री नामक गुप्तचरों के बीच ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई होगी, अथवा उन्होंने स्वेच्छा से ही उस साहसी व्यवसाय का स्वीकार किया होगा।"

पतंजलि के जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों का एकमत नही हैं। पतंजलि ने कात्यायन को दाक्षिणात्य कहा है। इससे अनुमान होता है, कि वे उत्तर भारत के निवासी रहे होंगे। उनके जन्म-ग्राम के रूप में गोनर्द ग्राम का नामोल्लेख हो चुका है। किन्तु गोनर्द का सबध गोडप्रदेश से भी मानते हैं। कतिपय पंडितों के मतानुसार गोनर्द ग्राम अवध प्रदेश का गोंडा होगा। वेबर इस गाव को मगध के पूर्व में स्थित मानते हैं। कनिंगहैम के अनुसार, गोनर्द है गौड किन्तु पतजलि थे आर्यावर्त का अभिमान रखने वाले। अत उनका जन्म-ग्राम, आर्यावर्त ही में कहीं-न-कहीं होना चाहिये, इसमें संदेह नहीं। उस दृष्टि से वह गोनर्द, विदिशा और उज्जैन के बीच किसी स्थान पर होना चाहिये। प्रो सिल्व्हाँ लेव्ही भी गोनर्द को विदिशा व उज्जैन के मार्ग पर ही मानते हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि विदिशा के समीप स्थित सांची के बौद्ध स्तूप को, आसपास के प्राय· सभी गांवों के लोगों द्वारा दान दिये जाने के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु उसमें गोनर्द के लोगो के नाम दिखाई नहीं देते। इस बात पर उन्होंने आश्चर्य भी व्यक्त

किया है। तथापि इस पर से अनुमान निकलता है कि गोनर्द के लोग कट्टर बौद्ध-विरोधक होगे। ऐसे बौद्ध-विरोधकों के केन्द्र में पतजलि पले यह घटना, उनके चरित्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। व्याकरण-महाभाष्य से यह सूचित होता है, कि पतंजलि की मौर्य सम्राट् बृहद्रथ का वध कराने वाले पुष्यमित्र शुंग से मित्रता थी। पतजलि ने व्याकरण की परीक्षा पाटलीपुत्र (पटना) में दी। वहीं पर उन दोनो की मित्रता हुई होगी। बौद्ध बन कर वैदिक धर्म का विरोध करने वाले मौर्य-कुल का उच्छेद कर, भारत में वैदिकधर्मी राज्य की प्रस्थापना करने की योजना, उन दोनों ने वहीं पर बनाई होगी। इस दृष्टि से अ ज. करदीकर ने पतजलि से सबंधित आख्यायिकाओ को ऐतिहासिक अर्थ लगाने का निम्न प्रकार से प्रयत्न किया है-

श्री विष्णु ने अपने शरीर को बढाया और उसका भार शेषजी को असह्य हुआ। इसका अर्थ यह कि पृथ्वीपति रूपी विष्णु अर्थात् मौर्य सम्राट् द्वारा अपनी अधिकार-मर्यादा का किया गया उल्लंघन, पतजलि के समान ही मध्यभारत के सभी नागकुलोप्तन्नो को असह्य हो चुका था। प्रतीत होता है कि पतजलि का नागकुल से घनिष्ट सबध था, क्योंकि उन्हें शेषनाग का अवतार माना गया है। इन नागो का पुष्यमाणव नामक एक संगठन, पुष्यमित्र के ही नेतृत्व में निर्माण हुआ होगा यह बात-

''महीपालवच श्रुत्वा जुघुषु पुष्यमाणवा '' अर्थात् महीपाल का (राजा का) वचन सुनकर पुष्यमानव प्रक्षुब्ध हुए- इस महाभाष्यातर्गत श्लोक से सूचित होती है। यह कल्पना, प्रभातचद्र चॅटर्जी से लेकर डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल तक अनेक विद्वानो ने स्वीकार की है। पुष्यमित्र के साथ ही पतजलि ने भी इस सगठन का नेतृत्व किया होगा।

पुष्यमित्र शुग व पतंजलि दोनो ही वैदिक धर्म एव सस्कृत भाषा के अभिमानी थे। पुष्यमित्र ने दो अश्वमेघ यज्ञ किये थे, और उनका पौरोहित्य किया था पतजलि ने। व्याकरण-महाभाष्य लिख कर तो पतजलि ने सस्कृत भाषा को गौरव के शिखर पर ही पहुंचा दिया। परिणामस्वरूप पाली-अर्धमागधी जैसी बौद्ध-जैनों की धर्मभाषाए तक सस्कृत के सामने पिछड गई। ''सस्कृत तथा अपभ्रंश शब्दों से यद्यपि एक जैसा ही अर्थ व्यक्त होता है, फिर भी धार्मिक दृष्टि से सस्कृत-शब्दो का ही उपयोग किया जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अभ्युदय होता है''- ऐसा पतजलि ने कहा है। उस काल में पतजलि व पुष्यमित्र द्वारा किये गये सस्कृत भाषा के पुनरुत्थान के कारण ही रामायण-महाभारतादि महान् ग्रथो का अखिल भारत में सामान्यत. एक ही स्वरूप मे प्रचार हुआ, और भारत का एकराष्ट्रीयत्व अब तक टिक सका।

व्याकरण महाभाष्य है पतजलि की अजरामर कृति। भारत में अनेक भाष्यों का निर्माण हुआ जिनके निर्माता थे शबर, शकराचार्य, रामानुज, सायण जैसे महान् आचार्य किन्तु केवल पतंजलि का भाष्य ही, ''महाभाष्य'' होने का सम्मान प्राप्त कर सका। इस महाभाष्य द्वारा व्याकरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों तक का उद्घाटन किया जाता है।

इसके साथ ही अपने इस ग्रंथ में शब्द की व्यापकता पर प्रकाश डाल कर, पतंजलि ने ''स्फोटवाद'' नामक एक नवीन दार्शनिक सिद्धात की नींव भी डाली है। अनादि, अनंत, अखड, अज्ञेय, स्वयप्रकाशमान आदि नाना विशेषणों से विभूषित शब्दब्रह्म ही सृष्टि का आदिकारण है, ऐसा पतंजलि मानते हैं।

पतंजलि की रचनाएं- व्याकरण महाभाष्य के अतिरिक्त पतंजलि नाम से संबधित निम्न कृतियाँ है-

महाराज समुद्रगुप्त कृत ''कृष्णचरित'' में पतजलि को- ''महानंद'' या ''महानदमय'' काव्य का प्रणेता कहा गया है जिस में काव्य के बहाने योग का वर्णन किया गया है।

''सदुक्तिकर्णामृत'' में भाष्यकार के नाम से निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है-

यद्यपि स्वच्छभावेन दर्शयत्यम्बुधिर्मणीन्।
तथापि जानुदघ्नोऽयमिति चेतसि मा कृथा ।।

2 शारदातनय-रचित ''भावप्रकाशन'' में किसी वासुकी आचार्य कृत साहित्यशास्त्रीय ग्रथ का उल्लेख है। इसमें भावों द्वारा रसोत्पत्ति का कथन किया गया है। इससे अनुमान होता है कि पतंजलि ने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखा होगा।

3 लोहशास्त्र- शिवदासकृत वैद्यक ग्रथ ''चक्रदत्त'' की टीका में लोहशास्त्र नामक ग्रथ के रचयिता पतंजलि बताए गए हैं।

5 सिद्धात-सारावली- इसके प्रणेता भी पतंजलि कहे गए हैं।

6 कोश- अनेक कोश-ग्रथो की टीकाओं में वासुकि, शेष, फणपाति व भोगींद्र आदि नामों द्वारा रचित कोश-ग्रंथ के उद्धरण प्राप्त होते हैं।

पतंजलि का समय- बहुसख्य भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार पतंजलि का समय 150 ई. पू. है, पर युधिष्ठिर मीमासकजी ने जोर देकर बताया है, कि पतंजलि, विक्रम सवत् से दो हजार वर्ष पूर्व हुए थे। इस सबध में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है पर अंत.साक्ष के आधार पर इनका समय-निरूपण कोई कठिन कार्य नहीं। ''महाभाष्य'' के वर्णन से पता चलता है कि पुष्यमित्र ने किसी ऐसे विशाल यज्ञ का आयोजन किया था, जिसमें अनेक पुरोहित थे, और उनमें पतंजलि भी थे। वे स्वयं ब्राह्मण याजक थे और इसी कारण उन्होंने क्षत्रिय याजक पर कटाक्ष किया है-

यदि भवद्विध क्षत्रिय याजयेत् (3-3-147, पृ 332)।
पुष्यमित्रो यजते, याजका याजयति। तत्र भवितव्यम्
पुष्यमित्रो याजयते, याजका. याजयंतीति यज्वादिषु
चाविपर्यासो वक्तव्य (महाभाष्य, 3-1-26)।

इससे पता चलता है, कि पतंजलि का आविर्भाव कालिदास के पूर्व व पुष्यमित्र के राज्य-काल में हुआ था। "मत्स्य-पुराण" के अनुसार पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक राज्य किया था। पुष्यमित्र के सिहासनासीन होने का समय 185 ई. पू. है, और 36 वर्ष कम कर देने पर उसके शासन की सीमा 149 ई पू. निश्चित होती है। गोल्डस्टुकर ने "महाभाष्य" का काल 140 से 120 ई. पू. माना है। डॉ. भांडारकर के अनुसार पतजलि का समय 158 ई पू. के लगभग है पर प्रो. बेबर के अनुसार इनका समय कनिष्क के बाद अर्थात् ई. पू. 25 वर्ष होना चाहिये। डा. भाडारकर ने प्रो बेबर के इस कथन का खंडन कर दिया है। बोथलिंक के मतानुसार पतजलि का समय 200 ई पू है (पाणिनीज् ग्रामेटिक)। इस मत का समर्थन मेक्समूलर ने भी किया है। कीथ के अनुसार पतजलि का समय 140-150 ई. पू है।

पद्मगुप्त (परिमल)- ई 11 वीं शती। पिता-मृगाकगुप्त। धारा नगरी के सिधुराज के ज्येष्ठ भ्राता राजा मुंज के आश्रित कवि। इन्होंने सस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य का नाम है "नवसाहसाङ्कचरित"। यह इतिहास एव काव्य दोनो ही दृष्टियो से मान्यता प्राप्त है।

इस महाकाव्य के 18 सर्ग हैं, और इसमे सिधुराज के पूर्वजों अर्थात् परमारवशीय राजाओ का वर्णन किया गया है। इस कृति पर महाकवि कालिदास के काव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसकी रचना सन 1005 के आसपास हुई थी। इसका, हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा-विद्याभवन से हो चुका है।

पद्मगुप्त, "परिमल कालिदास" कहलाते थे। धनिक व मम्मट ने इन्हें उद्धृत किया है।

पद्मनंदि- इस नाम के अनेक सत्पुरुष जैन सम्प्रदाय में हुए। वे सभी संमानित है परतु उन में संस्कृत ग्रथकार के रूप में पद्मनंदि द्वितीय विशिष्ट उल्लेखनीय हैं। गुरुनाम-वीरनन्दि। समय ई. 11 वीं शती। रचनाएं-1 पद्मनन्दि पंचविंशतिका। इसमें धर्मोपदेशामृत (198 पद्य), दानोपदेशन (54 पद्य), उपासक-सस्कार (12 पद्य), देशव्रतोद्योतन (27 पद्य), सद्बोधचन्द्रोदय (50 पद्य) आदि 26 विषयों का सुदर वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ के कन्नड टीकाकार भी पद्मनदि हैं। कार्यक्षेत्र कोल्हापूर तथा मिरज रहा है।

पद्मनंदि भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य। जाति-ब्राह्मण। मूलसघ स्थित नन्दिसंघ बलात्कारगण और सरस्वती गच्छ के आचार्य। शिष्यनाम- मदनदेव, नयनन्दि और मदनकीर्ति। ई. 13 वीं शताब्दी। प्रतिष्ठाचार्य। रचनाएं:- 1. जीरापल्ली-पार्श्वनाथ स्तवन (10 पद्य), 2. भावना-पद्धति (34 पद्य), 3. श्रावकाचारसारोद्धार (तीन परिच्छेद), 4. अनन्तव्रतकथा (85 पद्य) और 5. वर्ध्दमानचरित (300 पद्य)।

पद्मनाभ- ई 15 वीं शती (पूर्वार्ध)। जन्मत कायस्थ थे, बाद में गुणकीर्ति भट्टारक के उपदेश से जैन धर्म स्वीकार किया। ग्वालियर के आसपास के निवासी। ग्रंथ यशोधरचरित (9 सर्ग)। यह ग्रंथ पद्मनाभ ने ग्वालियर के तोमरवंशी राजा वीरमदेव के मंत्री कुशराज के आग्रह से लिखा था।

पद्मनाभ- कामशास्त्री के पुत्र। ई 19 वीं शती। गोदावरी के तट पर कोटिपल्ली में जन्म। आन्ध्र के कोटिपल्ली गाव के महोत्सव में प्रदर्शन हेतु लिखित रचना "त्रिपुरविजय-व्यायोग"।

पद्मनाभ- मूलत आन्ध्रनिवासी। तदनन्तर काशी-वास्तव्य में रचना- लीलादर्पणभाण (शृंगारिक)।

पद्मनाभ दत्त- वि. स. 1400। "सुपद्म" नामक व्याकरण की रचना। पिता-दामोदरदत्त। पितामह-श्रीदत्त। अन्य रचनाए-सुपद्मम-पजिका, प्रयोगदीपिका, उणादिवृत्ति, धातुकौमुदी, यङ्लुङ्वृत्ति, गोपालचरित, आनन्दलहरी (माघटीका), छन्दोरत्न, आचारचन्द्रिका, भूरिप्रयोगकोश और परिभाषावृत्ति।

टीकाए-विष्णुमिश्र (सुपद्ममकरन्द), रामचद्र, श्रीधर चक्रवर्ती, काशीश्वर प्रभृति ने "सुपद्म" पर टीकाए लिखी हैं। इस व्याकरण का प्रचार बगाल के कुछ जिलों तक ही सीमित रहा।

इनके अतिरिक्त सुपद्मव्याकरण विषयक ग्रन्थकारो की व्याकरण-रचना अल्पमात्रा मे प्रचलित है - शुभचन्द्र कृत-चिन्तामणि व्याकरण। भरतसेनकृत-द्रुतबोध व्याकरण और रामकिंकरकृत-आशुबोध व्याकरण। रामेश्वर-शुद्धाशुबोध व्याकरण। शिवप्रसाद-शीघ्रबोध व्याकरण। काशीश्वर-ज्ञानामृत व्याकरण। रूपगोस्वामी-हरिनामामृत। जीवगोस्वामी-हरिनामामृत। बालराम पंचानन- प्रबोधप्रकाश व्याकरण। विजल भूपति- प्रबोध-चंद्रिका व्याकरण। विनायक - भावसिहप्रक्रिया। चिद्रूपाश्रम - दीपव्याकरण। नारायण सुरनन्द - कारिकावली व्याकरण। नरहरि - बालबोध व्याकरण।

पद्मनाभ मिश्र (प्रद्योतन भट्टाचार्य)- समय - ई 16 वीं शती। पिता-बलभद्र मिश्र। माता-विजयश्री। मूलत बगाली। काशी में निवास। "वीरभद्रसेन चपू" सहित अनेक ग्रंथो के प्रणेता, जिनमें काव्य के अतिरिक्त दर्शन-ग्रथों का भी समावेश है। इस चपू के साथ ही इनकी दूसरी प्रमुख कृति जयदेव कृत "चद्रालोक" की शरदागम टीका है।

"वीरभद्रसेन चपू" का रचना-काल 1577 ई है (7-7), जिसे इन्होंने रीवानरेश रामचद्र के पुत्र वीरभद्रदेव के आग्रह पर लिखा था। इस चपू-काव्य का प्रकाशन प्राच्यवाणी-मदिर, 3, फेडरेशन स्ट्रीट कलकत्ता-9 से हुआ है।

पद्मनाभ शास्त्री- व्ही. जी श्रीरगनिवासी। रचना-जार्ज-देवचरितम् जो राजभक्तिप्रदीप के नाम से भी प्रसिद्ध है अन्य रचना-पवनदूतम् (खण्ड काव्य)। जार्ज देवचरितम् में आंग्लनृप पंचम जार्ज का चरित्र वर्णित है।

पद्मनाभाचार्य- ई 16 वीं शती। आप शोभनभट्ट नाम से एक उद्भट विद्वान् के रूप में चालुक्यों की राजधानी कल्याण नगरी में सुप्रसिद्ध थे। इसी नगरी में मध्वाचार्य से हुए शास्त्रार्थ में पराजित होने पर उन्होंने मध्वाचार्यजी का शिष्यत्व स्वीकार किया। तभी मध्वाचार्य ने उनका नया नाम रखा पद्मनाभाचार्य। मध्वाचार्य के पश्चात् वे ही उनके मठ के उत्तराधिकारी बने। उन्होंने मध्वाचार्यजी के ग्रथों पर टीकाए तथा पदार्थसंग्रह, मध्वसिद्धातसार आदि कुछ ग्रंथ भी लिखे हैं।

पद्मनाभाचार्य- 19 वीं शती। कोईमतूर में वकील। रचनाए-गोवर्धन-विलासम् और ध्रुवतप।

पद्मपादाचार्य- ई 8 वीं शती। आद्य शकराचार्यजी के चार प्रमुख शिष्यो में से एक। काश्यपगोत्रीय ऋग्वेदी ब्राह्मण। चोकदेश के निवासी। आपके माता-पिता अहोबल क्षेत्र में रहते थे। नरसिह ही कृपा से पद्मपाद का जन्म हुआ था। पिताजी के समान आप भी नरसिंह के भक्त थे। नरसिह की प्रेरणा से वे वेदविद्या के अध्ययनार्थ काशी गए। वहा पर वेदाध्ययन करते समय उनकी भेट आद्य शकराचार्यजी से हुई। आचार्य श्री ने पद्मपाद की परीक्षा ली, और उसमें भलीभाति उत्तीर्ण हुआ देख, उन्हे सन्यास की दीक्षा देकर उनका नाम रखा पद्मपादाचार्य। आगे चलकर वे शकराचार्यजी के निस्सीम भक्त बने। इनके पद्मपाद नाम के बारे में एक रोचक आख्यायिका प्रसिद्ध है-

एक बार उन्हें शकराचार्यजी की करुण पुकार सुनाई दी। पुकार सुनते ही पद्मपाद अपने गुरुदेव के पास पहुचने के लिये उतावले हो उठे। मार्ग में थी अलकनदा नदी। नदी पर पुल भी था किन्तु व्यग्रतावश पुल से न जाते हुए, पद्मपाद सीधे नदी के पात्र में से ही गुरुदेव की ओर जाने लगे। नदी का जल-स्तर ऊचा था। परन्तु पद्मपाद की भक्ति के सामर्थ्य के कारण उनके हर पग के नीचे कमल-पुष्प उत्पन्न होते गए और उन पुष्पों पर पैर रखते हुए उन्होने सहज ही अलकनंदा को पार किया। इस प्रकार उनके पैरो के नीचे पद्मो की उत्पत्ति होने के कारण उनका नाम पद्मपाद पडा।

पद्मपादाचार्य सदैव शकराचार्यजी के साथ भ्रमण किया करते थे। एक बार गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर वे अकेले ही दक्षिण भारत की यात्रा पर निकले और कालहस्तीश्वर, शिवकाची, बल्लालेश, पुडरीकपुर, शिवगगा, रामेश्वर आदि तीर्थो की यात्रा कर वे अपने गांव लौटे।

फिर वे अपने मामा के गांव जाकर रहे। इससे पूर्व वे ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर अपना "पचपदिका" नामक टीका-ग्रथ लिख चुके थे। उनके मामा द्वैती थे। अपना भाजा विद्यासपन्न होकर ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर टीका-ग्रथ लिख सका, यह देख मामा बडे प्रसन्न हुए। किन्तु जब उन्होंने वह टीका-ग्रथ पढा तो उन्हें विदित हुआ कि भांजे ने उनके द्वैत मत का खंडन करते हुए अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। परिणामस्वरूप मामाजी को बडा बुरा लगा और वे मन-ही-मन पद्मपाद का द्वेष करने लगे।

पद्मपाद को मामा के द्वेष की जानकारी नहीं थी। अतः फिर से तीर्थयात्रा पर निकलते समय उन्होंने अपना टीका-ग्रंथ मामा के ही यहा रख छोडा। मामाजी, जो इस प्रकार के अवसर की ताक में थे ही, वे चाहते थे कि भांजे का टीका-ग्रथ तो नष्ट हो, किन्तु तत्सबधी दोषारोपण उन पर कोई भी न कर सके। इस उद्देश्य से उन्होंने स्वयं के घर को ही आग लगा दी। घर के साथ ही भांजे का टीका-ग्रंथ भी जल गया।

तीर्थयात्रा से लौटने पर पद्मपाद को वह अशुभ वार्ता विदित हुई। मामाजी ने भी दुख का प्रदर्शन करते नक्राश्रु बहाये। पद्मपादाचार्य को इस दुर्घटना से दुख तो हुआ, किन्तु वे हताश नहीं हुए। वे बोले- ग्रथ जल गया तो क्या हुआ। मेरी बुद्धि तो सुरक्षित है। मैं ग्रथ का पुनर्लेखन करूंगा।

तब पद्मपादाचार्य की बुद्धि को भी नष्ट करने के उद्देष्य से उनके मामा ने उन पर विषप्रयोग किया। विषमिश्रित अन्न-भक्षण के कारण, उनकी बुद्धि बेकार हो गई। तब पद्मपाद ने अपने गुरुदेव के पास जाकर वहीं रहने का निश्चय किया। उस समय शकराचार्यजी केरल में थे। पद्मपाद ने वहा पहुच कर उन्हें सारा वृत्तात निवेदन किया। आचार्यश्री ने अपने शिष्य का सात्वन किया और उसकी बुद्धि भी उसे पुन प्राप्त करा दी। तब पद्मपाद ने अपना टीका-ग्रथ फिर से लिखा।

पद्मपादाचार्य ने शकराचार्यजी के अद्वैत मत का प्रभावपूर्ण प्रचार करने का महान् कार्य किया। वेदान्त के समान ही वे तत्रशास्त्र के भी प्रकाड पडित थे। उनके द्वारा लिखे गए ग्रथों मे, प्रस्तुत पचपादिका नामक टीका-ग्रथ ही प्रमुख है। शकराचार्यजी के ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर लिखी गई, यह पहली ही टीका है। इसमे चतु सूत्री का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रथ पर आगे चलकर अनेक महत्त्वपूर्ण विवरणग्रंथ लिखे गए।

इसके अतिरिक्त विज्ञानदीपिका, विवरणटीका, पंचाक्षरीभाष्य, प्रपचसार तथा आत्मानात्मविवेक जैसे अन्य कुछ ग्रथ भी पद्मपादाचार्य के नाम पर है।

पद्मप्रभ मलधारिदेव- वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य। कार्यक्षेत्र तमिलनाडु। पश्चिमी चालुक्यराजा त्रिभुवनमल्ल सोमेश्वर देव के समकालीन। पद्मनदि-पचविंशतिका के कर्ता पद्मनंदि से मलधारि पद्मप्रभदेव भिन्न रहे हैं। समय ई 12 वीं शती। रचनाए-नियमानुसार-टीका तथा पार्श्वनाथ-स्तोत्र।

पद्मप्रभसूरि- ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। समय ई 10 वीं शताब्दी। इन्होंने "भुवन-दीपक" नामक ज्योतिष-विषयक ग्रथ की रचना की है, जिस पर सिंहतिलक सूरि ने वि.सं. 1362 में "विवृत्ति" नामक टीका लिखी थी। इन्होंने "मुनिसुव्रत-चरित", कुथुचरित" व "पार्श्वनाथ-स्तवन" नामक 3 अन्य ग्रथो की भी रचना की है।

पद्मशास्त्री- ई. 20 वीं शती। सिंगाली ग्राम (जिला पिथौरागढ, उ. प्र.) के निवासी। राजकीय उच्चमाध्यमिक विद्यालय, भीलवाडा (राजस्थान) में वरिष्ठ संस्कृत-अध्यापक। पिता-श्रीबदरीदत्त। कृतियां- बंगलादेश-विजय, सिनेमाशतक, स्वराज्य, पद्य-पंचतन्त्र, लोकतन्त्र-विजय, लेनिनामृत-महाकाव्य (उ. प्र. शासन द्वारा पुरस्कृत। सोवियत-भूमि नेहरू-पुरस्कार प्राप्त)।

हिन्दी रचना-महावीरचरितामृत। "महावीर-विशेषांक" का सम्पादन।

पद्मश्री (ज्ञान)- "नागर-सर्वस्व" के रचयिता। बौद्ध भिक्षु। इन्होंने "कुट्टनीमतम्" का उल्लेख किया है और "शाङ्र्गधर गद्धति" में इनका उल्लेख है। अत. इनका समय 1000 ई के लगभग माना गया है।

पद्मसुन्दर- समय-1532-1573 ई.। आनन्दमेरु के प्रशिष्य और पद्ममेरु के शिष्य। भट्टारकीय पण्डित-परम्परा से जुडे हुए। साहू रायमल्ल की प्रेरणा। चरस्थावर (मुजफ्फरनगर जिले का वर्तमान चरथावल) कार्यक्षेत्र रहा। रचनाए-भविष्यदत्तचरित (5 सर्ग), रायमल्लाभ्युदय महाकाव्य (25 सर्ग), सुदर-प्रकाश-शब्दार्णव (कोष), श्रृंगार-दर्पण, हायनसुंदर (ज्योतिष), प्रमाणसुदर, ज्ञानचन्द्रोदय (नाटक) और पार्श्वनाथ काव्य। पद्मसुदर, मुगल सम्राट अकबर के सभा-पंडित थे और उन्हें जोधपुर के राजा मालदेव ने सम्मानित किया था।

परमानन्द चक्रवर्ती- ई 15 वीं शती। पिता-व्रजचंद्र। रचना-शृगारसप्तशती। काव्यप्रकाश की "विस्तारिका-टीका" एवं नैषध-काव्य की टीका के कर्ता।

परमानन्द शर्मा- जन्म 1870 ई में। प्राचीन मारवाड राज्य के अन्तर्गत पाली नामक ग्राम के निवासी। श्रीमाली द्विवेदी के पुत्र। इनकी प्रसिद्ध कृतिया है- 1. विधवा-विलाप (कविता), 2 विज्ञप्ति (निबन्ध) आदि।

परमानन्द शर्मा कवीन्द्र- ई 19-20 शती। जयपुर राज्यान्तर्गत लक्ष्मणगढ के ऋषिकुल में रहने वाले कवीन्द्र ने, संपूर्ण रामचरित्र काव्य, पाच भागों में विभाजित कर लिखा है। उनके नाम- मंथरादुर्विलसितम्, दशरथविलापः, मारीचवधम्, मेघनादवधम् और रावणवधम्।

परमेश्वर झा- यक्ष-मिलन-काव्य (या यक्ष-समागम), महिषासुर-वध (नाटक), वाताह्वान (काव्य), कुसुम-कलिका (आख्यायिका) तथा ऋतु-वर्णन काव्य के रचयिता। समय, वि.सं. 1913 से 1981 तक। बिहार के दरभंगा जिला के तरुवनी (तरोनी) नामक ग्राम के निवासी। पिता-पूर्णनाथ या बाबूनाथ झा। जो व्याकरण के अच्छे पंडित थे। परमेश्वर झा स्वयं बडे विद्वान् थे। विद्वत्-समाज ने उन्हें "वैयाकरण-केसरी", कर्मकांडोध्दारक" तथा "महोपदेशक" आदि उपाधियां प्रदान की थीं। तत्कालीन सरकार की ओर से भी इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी। "यक्ष-मिलन काव्य" में महाकवि कालिदास के "मेघदूत" के उत्तराख्यान का वर्णन है। इस संदेश-काव्य का प्रकाशन वि.स 1962 में दरभंगा से हो चुका है।

परांकुश - ई 16 वा शती। रचना - नरसिंहस्तवः।

परांकुश रामानुज - ई. 18 वीं शती। रचनाएं - श्रीप्रपत्ति, नरसिंहमंगलाशंसन, क्षीरनदीस्तव, विहगेश्वरस्तव, देवराजस्तव, लक्ष्मीनरसिंहस्तव और वैकुण्ठविजय चम्पू।

पराशर - वसिष्ठ ऋषि के पौत्र, गोत्र प्रवर्तक व ग्रंथकार। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 65 से 73 तक के सूक्त पराशर के नाम पर हैं। ये सभी सूक्त अग्निविषयक एवं काव्यमय हैं। अपने उपमेयों को अनेक उपमानों से विभूषित करना है पराशरजी की विशेषता। इस दृष्टि से निम्न ऋचा उल्लेखनीय है।

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु।
अत्यो नाज्मन् त्सर्गप्रतक्त: सिंधुर्न क्षोद. क ईं वराते।
(ऋ. 1 65.3.)

अर्थ - उत्कर्ष के समान रमणीय, पृथ्वी के समान विस्तीर्ण, पर्वत के समान (फल पुष्पादि) भोग्य वस्तुओं से परिपूर्ण, उदक (जल) के समान हितकारी, तथा तीव्र वेग से निकला अश्व मैदान में जिस प्रकार अधिक गतिमान् होता है, महानदी जिस प्रकार अपने दोनों तटों को भग्न करने की क्षमता रखती है, उसी प्रकार की है यह अग्नि। वस्तुत: इसे कौन प्रतिबंधित कर सकेगा।

पाराशरजी को अग्नि का दिव्यत्व तथा महनीयत्व प्रतीत हुआ है। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में, पराशर को वसिष्टपुत्र शक्ति का पुत्र कहा गया है, किन्तु निरुक्त में की गई व्युत्पत्ति के आधार पर उन्हे बताया गया है वसिष्ठ का पुत्र। वहां पराशर शब्द की "पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे" अत्यंत थके हुए वृद्ध से इनका जन्म हुआ, ऐसी व्युत्पत्ति दी है। परन्तु उस पर से पराशर को वसिष्ठ का पुत्र मानना समुचित नहीं क्यों कि अपने सभी पुत्रों का निधन हो जाने के कारण, वसिष्ठ को केवल इन्हीं का आधार उत्पन्न हुआ था, और उसी पर से यह व्युत्पत्ति निर्माण हुई होगी। तत्सबधी कथा इस प्रकार है —

एक बार वसिष्ठ हताश स्थिति में अपने आश्रम के बाहर निकले। तब उनके पुत्र शक्ति की विधवा, पत्नी अदृश्यती भी चुपके से उनके पीछे हो निकली। कुछ समय के उपरान्त वसिष्ठ के कानों पर वेद ध्वनि आने लगी। पीछे मुड कर देखने पर उनके ध्यान में आया की वह ध्वनि अदृश्यंती के उदर से आ रही है। तब अपने वंश का अंकुर जीवित है यह जानकर वसिष्ठ आश्रम में लौटे।

यह विदित होने पर कि अपने पिता शक्ति को राक्षसों ने मार डाला है, पराशर ने सभी राक्षसों का संहार करने हेतु राक्षस सत्र आरंभ किया। परिणाम स्वरूप उसमें निरपराध

राक्षस भी मारे जाने लगे। अत पुलस्त्यादि ऋषियों ने उन्हें उस सत्र से परावृत्त किया। पराशर ने उनकी बाते मानते हुए उस सत्र को रोक दिया। तब ऋषि पुलस्त्य ने "तुम सकल शास्त्र पारंगत तथा पुराण वक्ता बनोगे" ऐसा उन्हें वरदान किया (विष्णु पु. 1 1)। राक्षस सत्र हेतु सिद्ध की गई अग्नि को पराशर ने हिमालय के उत्तर में स्थित एक अरण्य में डाल दिया। अग्नि अभी तक पर्व के दिन राक्षसों, पाषाणों व वृक्षों का भक्षण करती है ऐसा विष्णु पुराण (1 1) एव लिंग पुराण (1 64) में कहा गया है।

एक बार पराशरजी तीर्थ यात्रा पर थे। यमुना के तट पर सत्यवती नामक एक धीवरकन्या उन्हें दिखाई दी। वे उसके रूप व यौवन पर लुब्ध हो उठे। उसके शरीर से आने वाली मत्स्य की दुर्गंधि की ओर ध्यान न देते हुए जब कामातुर होकर वे उससे भोग की याचना करने लगे, तब वह बोली "आपकी इच्छा पूर्ण करने पर मेरा कन्या भाव दूषित होगा"। तब पराशर ने सत्यवती को दो वरदान दिये। 1) तेरा कन्याभाव नष्ट नहीं होगा और 2) तेरे शरीर की मत्स्य गध नष्ट होकर उसे सुगध प्राप्त होगी और वह एक योजन तक फैलेगी। ये वरदान दिये जाने पर सत्यवती पराशरजी की इच्छा पूर्ति हेतु सहमत हुई। तब पराशरजी ने भरी दोपहर में नाव पर कोहरा निर्माण करते हुए अपने एकात को लोगों की दृष्टि से ओझल बनाने की व्यवस्था की और फिर सत्यवती का उपभोग लिया। उस सबध से सत्यवती को वेदव्यास नामक पुत्र हुआ (म भा 63, 105 भाग पु 1, 3)।

पराशर से प्रवृत्त हुए पराशर गोत्र के गौरपराशर, नीलपराशर, कृष्णपराशर, श्वेतपराशर, श्यामपराशर व धूम्रपराशर नामक 6 भेद हैं।

पराशर ने राजा जनक को जिस तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था, उसी का साराश आगे चलकर भीष्म पितामह ने धर्मराज (युधिष्ठिर) को बताया। उसे पराशरगीता कहते हैं। (महा शांति 291-299)। इसके अतिरिक्त पराशरजी के नाम पर जो ग्रथ मिलते हैं उनके नाम हैं- बृहत्पाराशर, होराशास्त्र (12 हजार श्लोकों का ज्योतिष विषयक ग्रथ), लघु पाराशरी, बृहत्पाराशरीय धर्मसहिता (3300 श्लोक, पाराशर धर्मसहिता (स्मृति), पराशरोदित वास्तुशास्त्रम् (विश्वकर्मा ने इसका उल्लेख किया है), पाराशर सहिता (वैद्यक शास्त्र), पराशरोपपुराण, पराशरोदितं नीतिशास्त्रम् एव पराशरोदित केवलसारम्। ये सब ग्रंथ लिखने वाले पराशर, सूक्तद्रष्टा पराशर से भिन्न प्रतीत होते हैं।

इसी प्रकार कृषिसग्रह, कृषिपराशर व पराशर तंत्र नामक ग्रंथ भी पराशर के नाम पर हैं किन्तु ये पराशर कौन, इस बारे में विद्वानों में मतभेद है। कृषिपराशर नामक ग्रंथ की शैली पर से यह ग्रंथ ईसा की 8 वीं शताब्दी के पहले का प्रतीत नहीं होता।

कृषिपराशर नामक ग्रंथ में खेती पर पडने वाला ग्रह नक्षत्रों का प्रभाव, बादल और उनकी जातिया, वर्षा का अनुमान, खेती की देखभाल, बैलों की सुरक्षितता, हल, बीज की बोआई, कटाई व संग्रह, गोबर का खाद आदि से संबंधित जानकारी है। इस ग्रथ पर से अनुमान किया जाता सकता है कि उस काल में यहा की खेती अत्यधिक समृद्ध थी।

पराशर आयुर्वेद के एक कर्ता व चिकित्सक थे। अग्निवेश, भेल और पराशर समकालीन थे यह बात चरक संहिता से विदित होती है (सूत्र 1, 31)। पराशर तंत्र में कायचिकित्सा पर विशेष बल दिया गया है।

पराशरजी ने हस्त्यायुर्वेद नामक एक और ग्रथ की भी रचना की है। हेमाद्रि ने उनके मतों पर विचार किया है। पराशरजी का यह ग्रथ स्वतत्र था अथवा उनकी ज्योतिष सहिता का ही वह एक भाग था, इस बारे में मतभेद है।

पराशर - फल ज्योतिष के प्राचीन आचार्य। इनकी एकमात्र रचना "बृहत्पाराशर-होरा" है। इसी ग्रथ के अध्ययन के उपरान्त विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला है, कि पराशर वराहमिहिर के पूर्ववर्ती थे। इनका समय सभवत 5 वी शती, और निवासक्षेत्र पश्चिम भारत रहा होगा।

इनके नाम पर अनेक ग्रथ प्राप्त होते हैं जैसे "पराशर स्मृति" आदि। कौटिल्य ने इनके नाम व मत का छ बार उल्लेख किया है पर विद्वानों का कहना है कि स्मृतिकार पराशर, ज्योतिर्विद् पराशर मे भिन्न हैं। कलियुग मे पराशर के ग्रथ को अधिक महत्त्व दिया है। "कलौ पाराशर स्मृत "।

परितोष मिश्र - ई 13 वीं शती। मीमासा दर्शन के एक मैथिल आचार्य। कुमारिल भट्ट के तत्रवार्तिक पर, आपने अजिता नामक एक व्याख्या लिखी है। इस व्याख्या के अजिता नाम पर से आगे चलकर परितोष मिश्र को "अजिताचार्य" के नाम से पहचाना जाने लगा। इसी व्याख्या पर मिथिला के ही निवासी अनत नारायण मिश्र ने विजया नामक टीका लिखी है।

परुच्छेप देवोदासी - ऋग्वेद के प्रथम मडल के क्रमाक 127 से 139 तक के सूक्तो के द्रष्टा। इन सूक्तों में अग्नि, इन्द्र, वायु, मित्रावरुण, पूषा व विश्वदेव की स्तुति है। इन्द्र की प्रार्थना करते हुए वे कहते है -

त्व इन्द्र राया परीणसा याहि
पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा
सचस्व न पराक आ सचस्वास्तमीक आ
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभि सदा पाह्यभिष्टिभि । (ऋ 1, 129, 9)

अर्थ - हे इन्द्र जो मार्ग विपुल वैभव का व निर्दोष हो, उसी मार्ग से हमे ले चलो। जिस मार्ग में राक्षस न हो, उसी मार्ग से हमे ले चलो, हम परदेश में हो तो भी हमारे साथ रहो, और हम अपने घर में हो तो भी हमारे साथ रहो। हम पास हो या दूर, आप सदा ही अपने कृपा छत्र

से हमारी रक्षा कीजिए।

एक बार मंत्र सामर्थ्य के बारे में परुच्छेप व नृमेध के बीच स्पर्धा लगी। तब नृमेध ने गीली लकडियों में धुंआं उत्पन्न किया। यह देख परुच्छेप ने बिना लकडी के ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर दिखाई। यह घटना तैत्तिरीय ब्राह्मण में अंकित है (2, 5, 8, 3)।

पर्वणीकर, सीताराम - ई. 18 से 19 वीं शती। सीताराम, जयपुर के महाराजा के आश्रय में थे। पर्वणी नामक ग्राम, जिस पर से उक्त उपनाम प्रचलित हुआ, महाराष्ट्र में नासिक के पास है। सर्वप्रथम सीतारामजी के पूर्वज माधवभट्ट जयपुर गए।

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों को अभी अभी तक इतना ही ज्ञात था कि सीतारामजी ने कुमारसभव के 8 से 17 सर्गों पर एक भाष्य लिखा है, किन्तु जयपुरस्थित उनके घराने में, तदुपरांत उनका विपुल साहित्य उपलब्ध हुआ है। सीतारामजी का "जयवंश" नामक एक महाकाव्य, राजस्थान वि वि ने प्रकाशित किया है। इसमें जयपुर के राजवश और उसके कार्यों के अतिरिक्त प्रमुख दर्शनीय स्थानों का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त, आप निम्न ग्रथ संपदा के धनी हैं।

काव्य- राघवचरित, नलविलास (लघुकाव्य) व नृपविलास। विशेषता यह है कि ये सभी काव्य ग्रंथ सटीक हैं।

अष्टक (10)= शिवाष्टक, सूर्याष्टक, भैरवाष्टक, देव्यष्टक, हेरबाष्टक, गगाष्टक, विष्णूवष्टक और हनुमदष्टक। शेष दो, अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

अन्य ग्रथ साहित्यसार, साहित्यसुधा, काव्यप्रकाश-टीका, कुमारसंभव-व्याख्या, छदःप्रकाश, अलकार शास्त्र पर तीन ग्रथ, गणित विषय पर एक ग्रंथ। (जो अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है) और सत्ताईस नक्षत्र माला।

पर्वत काण्व - आप काण्व कुल के थे। ऋग्वेद के 8 वें मडल का 12 वा सूक्त आपके नाम पर है। 9 वें मडल के क्रमाक 104 व 105 वाले सूक्त हैं "पर्वत-नारदौ" इस सम्मिलित नाम पर। किन्तु कहा जाता है कि इन दो सूक्तों के भी द्रष्टा, पर्वत काण्व ही थे। इन्द्र की स्तुति करते हुए आप कहते हैं -

> न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्।
> अमादिदस्य तित्विषे समोजसः।। (ऋ. 8, 12, 24)

अर्थ - आकाश व पृथ्वी ये दोनों लोक भी इन्द्र का आकलन नहीं कर सकते, और अतरिक्ष तो कदापि नहीं। इसके विपरित इन्हीं की (इन्द्र की) ओजस्विता के कारण सभी (विश्व) उज्ज्वल होता है।

इस सूक्त में इन्द्र और विष्णु के ऐकात्मरूप की कल्पना की गई है। इससे विदित होता है कि ऋग्वेद के काल में ही विष्णु एक स्वतंत्र देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे थे।

पर्वते, रघुनाथशास्त्री - भोर नामक ग्राम के निवासी। रचना- शांकर पदभूषणम् और पदभूषणम् (गीता की टीका)।

पलसुले, गजानन बालकृष्ण (डॉ.) - जन्म सन 1921 में सातारा (महाराष्ट्र) मे, सन 1948 में पुणे से एम.ए की परीक्षा उत्तीर्ण होने पर सस्कृत धातुपाठों पर शोधप्रबध लिखकर, सन 1957 में आपने पीएच डी की उपाधि प्राप्त की। आधुनिक वैयाकरणो में आप सम्मानित हैं। भाडारकर प्राच्यविद्या मदिर में आपने संशोधन एवं अध्यापन का कार्य किया। सन 1981 में पुणे विद्यापीठ से प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त होने के बाद आप भाडारकर प्राच्यविद्या मदिर में निदेशक हुए। संस्कृत भाषा का तौलनिक और ऐतिहासिक परिचय करानेवाले "सिक्स्टी उपनिषदाज् ऑफ दी वेदाज्" नामक डायसनकृत जर्मन ग्रथ का अनुवाद और सौ से अधिक शोधनिबधों के अतिरिक्त, डा पलसुले ने सस्कृत में, "समानमस्तु वो मन" (भारत शासन द्वारा पुरस्कार प्राप्त नाटक), विनायक-वीरगाथा (वीर सावरकर का चरित्र), विवेकानदचरितम्, नामक मौलिक रचनाए, अग्निजा और कमला (वीर सावरकर के मराठी काव्यग्रंथों के अनुवाद, "अथाऽतो ज्ञानदोवोऽभूत" "धन्येय गायनी कला", खेटग्रामस्य चक्रोद्भव, भ्रातृकलह· नामक मराठी नाटको के सस्कृत अनुवाद भी लिखे हैं। पुणे में "भारतवाणी" नामक सस्कृत पत्रिका भी आपने शुरू की थी, जो अल्प अवकाश में बद हुई।

पांडुरंग - ई 19 वीं शती। रचना - विजयपुरकथा। इसमें विजयपुर के यवन बादशाहो का चरित्र वर्णित है।

पांडे, राजमल - ई 16 वीं शती। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश व हिन्दी इन चार भाषाओं में आपने ग्रथ लिखे हैं। उन ग्रथों के नाम हैं- लाटी संहिता, जंबुस्वामीचरित्र, अध्यात्म-कमलमार्तंड, पचाध्यायी आदि। कुदकुदाचार्य के समयसारचरित्र, अध्यात्म कमलमार्तंड, पचाध्यायी आदि, सस्कृत ग्रथों पर आपने टीकाए भी लिखी है। हिन्दी जैन गद्य में यही सर्वाधिक प्राचीन टीका है। इसके अतिरिक्त सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश व हिन्दी इन चारों ही भाषाओं में राजमल पांडे द्वारा लिखे गए वैशिष्ट्यपूर्ण ग्रथ प्रसिद्ध है।

पाटणकर, परशुराम नारायण - ई. 20 वीं शती। रत्नागिरि मे जन्म। पिता - नारायण शर्मा। दादा-माधव शर्मा। प्रपितामह- नरहरिभट्ट। अपरान्त विद्यापीठ से बी.ए. तथा प्रयाग विद्यापीठ से एम.ए. की उपाधि प्राप्त। डेक्कन कालेज, पुणे मे डा रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर के शिष्य। अनेक देशों में अध्यापन कार्य। सन् 1905 में "वीरधर्मदर्पण" नामक नाटक की रचना।

पाठक, रत्नाकर - खरतरगच्छ के चन्द्रवर्धनगणी के प्रशिष्य और मेघनन्दन के शिष्य। समय ई 16 वीं शती। ग्रथ-

शान्तिसूरि द्वारा लिखित "जीवविचार" पर संस्कृत वृत्ति (वि स 1610) सलेकशाह के राज्य में। इस पर मेघनन्दन (वि म 1610) समयसुन्दर (वि,स 1698), ईश्वराचार्य तथा क्षमाकल्याण (वि सं. 1850) ने भी संस्कृत में वृत्तियां लिखी हैं। 2) रचनाविचार पर वृत्ति।

पाठक, वासुदेव - ई 20 वीं शती। एम ए, साहित्याचार्य। बी डी. कॉलेज, अहमदाबाद के प्राचार्य। "साम्मनस्य" त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक। कृतिया- प्रबुद्ध, आराधना, साम्मनस्य आदि लघु नाटक।

पाठक, श्रीधरशास्त्री (म.म.) - धुलिया (महाराष्ट्र) निवासी। इनके धर्मशास्त्र के व्याख्यान (पुस्तकबद्ध) नागपुर वि वि में मीमासा तथा धर्मशास्त्र की शास्त्री परीक्षा के लिये पाठ्य पुस्तक के रूप में निर्धारित थे। अन्त में संन्यासी होकर आप गंगातट पर निवास करने चले गए। आचार्य विनोबाजी भावे के गीता-प्रवचन नामक ग्रथ का संस्कृत अनुवाद आपने ही किया है। अन्य रचना - अष्टाध्यायीशब्दानुक्रमणिका।

पाणिनि (भगवान्) - "अष्टाध्यायी" नामक अद्वितीय व्याकरण ग्रथ के प्रणेता। पाश्चात्य व आधुनिक भारतीय विद्वानों के अनुसार, इनका समय ई पू. 7 वी शती है, किन्तु प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार ये वि पू 2900 वर्ष मे हुए थे। इनका जीवन वृत्त, अद्यावधि अज्ञात है। प्राचीन ग्रथों में इनके कई नाम मिलते हैं यथा पाणिन, पाणि, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय व आहिक। इन नामो के अतिरिक्त पाणिनेय व पाणिपुत्र ये नाम भी इनके लिये प्रयुक्त किये गये हैं। पुरुषोत्तम देव कृत "त्रिकाड शेष" नामक ग्रथ मे सभी नाम उल्लिखित हैं।

कात्यायन व पतजलि ने पाणिनि नाम का ही प्रयोग किया है। पाणिन नाम का उल्लेख "काशिका" व "चांद्रवृत्ति" में प्राप्त होता है। दाक्षीपुत्र नाम का उल्लेख "महाभाष्य", समुद्रगुप्त कृत "कृष्णचरित" व श्लोकात्मक "पाणिनीय-शिक्षा" में है। शालातुरीय नाम का निर्देश भामहकृत "काव्यालकार", "काशिका विवरण पजिका", "न्यास" तथा "गुणरत्न महोदधि" में प्राप्त होता है।

वश व स्थान - प शिवदत्त शर्मा ने "महाभाष्य" की भूमिका में पाणिनि के पिता का नाम शलङ्क व उनका पितृ व्यपदेशक नाम "शालाङ्कि" स्वीकार किया है। शालातुर अटक के निकट एक ग्राम था, जो लाहुर कहलाता था। पाणिनि को वहीं का रहनेवाला बताया जाता है। वेबर के अनुसार पाणिनि उदीच्य देश के निवासी थे, क्यों कि शालकियो का सबध वाहीक देश से था। श्यू आङ् चुआङ् के अनुसार पाणिनि गाधार देश के निवासी थे। इनका निवास स्थान शालातुर, गाधार देश (अफगनिस्तान) में ही स्थित था, जिसके कारण पाणिनि शालातुरीय कहलाते थे। इनकी माता का नाम दाक्षी होने के कारण इन्हें "दाक्षीपुत्र" कहा जाता था। कुछ विद्वान इन्हें कौशाबी या प्रयाग का निवासी मानने के पक्ष में हैं, किन्तु अधिकांश मत शालातुर के ही पोषक हैं। पाणिनि के गुरु का नाम था वर्ष। वर्ष के भाई का नाम उपवर्ष। पाणिनि के भाई का नाम पिंगल व उनके शिष्य का नाम कौत्स मिलता है। "स्कंद पुराण" के अनुसार पाणिनि ने गो पर्वत पर तपस्या की थी जिससे उन्हें वैयाकरणों में महत्व प्राप्त हुआ।

"गोपर्वतमिति स्थान शभो प्रख्यापितं पुरा।
यत्र पाणिनिना लेभे वैयाकरणिकाग्रता।।"
अरूणाचल महात्म्य, उत्तरार्ध 2-28)।

पाणिनि की मृत्यु - "पञ्चतत्र" के एक श्लोक के अनुसार पाणिनि सिह द्वारा मारे गए थे (पंचतंत्र, मित्रसंप्राप्ति श्लोक 36)। एक किंवदती के अनुसार इनकी मृत्यु त्रयोदशी को हुई थी। अत अभी भी वैयाकरण उक्त दिवस को अनध्याय करते हैं।

पाणिनि के ग्रथ - "महाभाष्य-प्रदीपिका" से ज्ञात होता है, कि पाणिनि ने "अष्टाध्यायी" के अतिरिक्त "धातुपाठ", गणपाठ, उणादिसूत्र व लिगानुशासन की रचना की है। कहा जाता है कि पाणिनि ने "अष्टाध्यायी" के सूत्रार्थ परिज्ञान के लिये वृत्ति लिखी थी, किन्तु वह अनुपलब्ध है, पर उसका उल्लेख "महाभाष्य" व "काशिका" में है।

शिक्षासूत्र- पाणिनि ने शब्दोच्चारण के ज्ञान के लिये "शिक्षासूत्र" की रचना की थी जिसके अनेक सूत्र विभिन्न व्याकरण ग्रथों मे प्राप्त होते हैं। पाणिनि के मूल "शिक्षा सूत्र" का उद्धार स्वामी दयानद सरस्वती ने किया तथा उसका प्रकाशन "वर्णोच्चारण शिक्षा" के नाम से स 1936 में किया था।

पाणिनि का कवित्व - वैयाकरण की प्रचलित दंतकथा के अनुसार पाणिनि ने "जाम्बवतीविजय" या "पातालविजय" नामक एक महाकाव्य का भी प्रणयन किया था। उसके कतिपय श्लोक लगभग 26 ग्रथों में मिलते हैं। राजशेखर, क्षेमेंद्र व शरणदेव ने भी इस महाकाव्य का उल्लेख करते हुए उसका प्रणेता पाणिनि को ही माना है। पाणिनि द्वारा प्रणीत एक और काव्य ग्रथ माना जाता है। उसका नाम है "पार्वतीपरिणय"। राजशेखर ने वैयाकरण पाणिनि को कवि पाणिनि (जांबवती विजय के प्रणेता) से अभिन्न माना है। क्षेमेंद्र ने अपने "सुवृत्त तिलक" नामक ग्रथ में सभी कवियों के छंदों की प्रशंसा करते हुए पाणिनि के "जाति" छंद की भी प्रशंसा की है। कतिपय पाश्चात्य व भारतीय विद्वान, (जैसे पीटर्सन व भांडारकर) कहते हैं कि कवि एव वैयाकरण पाणिनि ऐसे सरस व अलंकृत श्लोको की रचना नहीं कर सकते। साथ ही इस ग्रथ के श्लोको मे बहुत से ऐसे प्रयोग हैं जो पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध नहीं होते, अर्थात वे अपाणिनीय या अशुद्ध हैं पर रुद्रट कृत "काव्यालकार" के टीकाकार नमिसाधु के कथन से, यह

बात निर्मूल सिद्ध हो जाती है।। उनके अनुसार पाणिनि कृत "पातालविजय" महाकाव्य में "संध्या वधूं गृह्य करेण भानुः" में "गृह्य" शब्द पाणिनीय व्याकरण के मत से अशुद्ध है। उनका कहना है कि महाकवि भी अपशब्दों का प्रयोग करते हैं और उसी के उदाहरण में पाणिनि ने यह श्लोक प्रस्तुत किया है। डा. आफ्रेट व डा. पिशेल ने पाणिनि को न केवल शुष्क वैयाकरण अपि तु सुकुमार हृदय कवि भी माना है। अतः पाणिनि के कवि होने में संदेह का प्रश्न नहीं उठता। "श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत" (सं. 1200) में सुबंधु, रघुकार (कालिदास) हरिश्चंद्र, शूर, भारवि व भवभूति जैसे कवियों के साथ दाक्षीपुत्र का भी नाम आया है जो पाणिनि का ही पर्याय है -

"सुबन्धौ भक्तिर्नःक इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चंद्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
तथाप्यंतर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते"।

महाराज समुद्रगुप्त रचित "कृष्णचरित" नामक काव्य में बताया गया है कि वररुचि ने पाणिनि के व्याकरण व काव्य दोनों का ही अनुकरण किया था।

"जाबवती-विजय" में श्रीकृष्ण द्वारा पाताल में जाकर जाबवती से विवाह व उसके पिता पर विजय प्राप्त करने की कथा है। दुर्घटवृत्तिकार शरणदेव ने "जाबवती-विजय" के 18 वें सर्ग का उद्धरण अपने ग्रथ में दिया है। उससे विदित होता है कि उसमें कम से कम 18 सर्ग अवश्य होंगे।

पाणिनि का समय - डा पीटर्सन के अनुसार अष्टाध्यायीकार पाणिनि एव वल्लभदेव की "सुभाषितावली" के कवि पाणिनि एक हैं और उनका समय ईसवी सन का प्रारंभिक भाग है। वेबर व मैक्समूलर ने वैयाकरण व कवि पाणिनि को एक मानते हुए, उनका समय ईसा पूर्व 500 वर्ष माना है। डा ओटो बोथलिक ने "कथासारित्सागर" के आधार पर पाणिनि का समय 350 ई.पू. निश्चित किया है, पर गोल्डस्टकर व डा रामकृष्ण भाडारकर के अनुसार इनका समय 700 ई पू है। डा बेलवलकर ने इनका समय 700 से 600 ई. निर्धारित किया है और डा वासुदेवशरण अग्रवाल इनका समय 500 ई पू. मानते हैं। इन सभी के विपरीत पं युधिष्ठिर मीमांसक का कहना है, कि पाणिनि का आविर्भाव वि पू. 2900 वर्ष हुआ था। मैक्समूलर ने अपने कालनिर्णय का आधार, "अष्टाध्यायी" (5,1,18) में उल्लिखित सूत्रकार शब्द को माना है, जो इस तथ्य का द्योतक है कि पाणिनि के पूर्व ही सूत्र ग्रंथों की रचना हो चुकी थी। मैक्समूलर ने सूत्रकाल को 600 ई.पूर्व से 200 ई.पू. तक माना है, किन्तु उनका काल विभाजन विद्वान्मान्य नहीं है। वे पाणिनि व कात्यायन को समकालीन मान कर, पाणिनि का काल 350 ई.पू. स्वीकार करते हैं, क्यों कि कात्ययन का भी समय यही है। गोल्डस्टूकर ने बताया कि पाणिनि केवल ऋग्वेद, सामवेद व यजुर्वेद से ही परिचित थे पर अथर्ववेद व दर्शन ग्रंथों से वे अपरिचित थे किन्तु डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस मत का खंडन कर दिया हैं । पाणिनि को वैदिक साहित्य के कितने अंश, का परिचय था,इस विषय में विस्तृत अध्ययन के आधार पर थीमे का निष्कर्ष है कि ऋग्वेद, मैत्रायणी सहिता, काठक सहिता, तैत्तिरीय सहिता, अथर्ववेद, सभवत. सामवेद, ऋग्वेद के पद पाठ और पैप्पलाद शाखा का भी पाणिनि को परिचय था। अर्थात् यह सब साहित्य उनसे पूर्व युग में निर्मित हो चुका था। गोल्डस्कूटर ने यह माना था कि पाणिनि को उपनिषद् साहित्य का परिचय नहीं था, अत· उनका समय उपनिषदों की रचना के पूर्व होना चाहिये यह कथन निराधार है, क्योंकि सूत्र 1-4-79 में पाणिनि ने उपनिषद् शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थ में किया है, जिसके विकास के लिये उपनिषद् युग के बाद भी कई शतीयों का समय अपेक्षित था। कीथ ने इसी सूत्र के आधार पर पाणिनि को उपनिषदों के परिचय की बात प्रामाणिक मानी थी। तथ्य तो यह है कि पाणिनिकालीन साहित्य की परिधि वैदिक ग्रंथों से कही आगे बढ चुकी थी। अद्यावधि शोध के आधार पर पाणिनि का समय ई पू 700 वर्ष माना जा सकता है।

पाणिनिकृत "अष्टाध्यायी" भारतीय जन जीवन व तत्कालीन सास्कृतिक परिवेश को समझने के लिये स्वच्छ दर्पण है। इसमे अनेकानेक ऐसे शब्दों का सुगुंफन है, जिनमें उस युग के सांस्कृतिक जीवन के चित्र का साक्षात्कार होता है। तत्कालीन भूगोल, सामाजिक जीवन, आर्थिक अवस्था, शिक्षा व विद्या सबधी जीवन, राजनैतिक व धार्मिक जीवन, दार्शनिक चितन, रहन सहन, वेश भूषा व खान पान का सम्यक् चित्र "अष्टाध्यायी" में सुरक्षित है।

किंवदंतियां - ई 7 वीं शताब्दी में भारत भ्रमण करते हुए चीनी यात्री युआन च्वाग शलातुर भी गया था। तब उन्हें पाणिनि से सबधित अनेक दतकथाए सुनने को मिलीं। उनके कथनानुसार वहा पर पाणिनि की एक प्रतिमा भी स्थापित की हुई थी। वह प्रतिमा सप्रति लाहोर के सग्रहालय में है किन्तु दीक्षित उसे बुद्ध की प्रतिमा मानते हैं। पाणिनि के जीवन चरित्र की दृष्टि से किंवदतियों तथा आख्यायिकों पर ही निर्भर रहना पडता है। कथासरित्सागर में एक किंवदती इस प्रकार है

वर्ष नामक एक आचार्य पाणिनि के गुरु थे। उनके पास पाणिनि और कात्यायन पढा करते थे। इन दोनों में कात्यायन कुशाग्र बुद्धि के थे जब कि पाणिनि मदबुद्धि के। कात्यायन सभी विषयों में पाणिनि से आगे रहा करते। यह स्थिति पाणिनि को असह्य हो उठी। अत· गुरुगृह का त्याग कर वे हिमालय गये। वहा पर शिवजी का प्रसाद प्राप्त करने हेतु उन्होंने घोर तपस्या की । शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें

प्रतिभाशाली बुद्धि प्रदान की। पाणिनि के सम्मुख नृत्य करने हुए शिवजी ने अपना डमरू 14 बार बजाया। डमरू से जो ध्वनि निकले उनका अनुकरण करते हुए पाणिनि ने अइउण्, ऋलृक्, एओङ् आदि 14 प्रत्याहार सूत्र बनाए (कथासरित्सागर 14)। पाणिनि की अष्टाध्यायी, इन 14 शिवसूत्रों पर ही आधारित है।

शलातुर गाव में युआन च्वाग को पाणिनि के बारे में जो आख्यायिकाएं विद्वानों से सुनने को मिलीं उनका साराश इस प्रकार है -

अति प्राचीन काल में साहित्य का विस्तार अत्यधिक था। कालक्रम से उसका ह्रास होता गया और एक दिन सभी कुछ शून्य हो गया। उस समय ज्ञान की रक्षा हेतु देवताओं ने पृथ्वी पर अवतार लिया। उन्होंने फिर व्याकरण व साहित्य की निर्मिति की। आगे चल कर व्याकरण का विस्तार होने लगा। उसे अत्यधिक वृद्धिंगत हुआ देख ब्रह्मदेव व इन्द्र ने लोगो की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, व्याकरण के कुछ नियम बनाए और शब्दों के रूपों को स्थिर किया। आगे चल कर विभिन्न ऋषियो ने अपने अपने मतानुसार अलग अलग व्याकरणो की रचना की। उनके शिष्य व प्रशिष्य उन व्याकरणों का अध्ययन करने लगे किन्तु उनमें जो मदबुद्धि के थे उन्हें उन सब का यथावत् आकलन न हो पाता था। उसी काल में पाणिनि का जन्म हुआ।

अध्ययन यात्रा - पाणिनि की ग्रहण शक्ति जन्मत ही तीव्र थी। उन्होंने देखा कि मानव की आयुमर्यादा तथा व्याकरण के विस्तार का आपस में मेल बैठना सभव नही। अत पाणिनि ने व्याकरण में सुधार करने तथा नियमों के निर्धारण द्वारा अशुद्ध शब्द प्रयोगो को ठीक करने का निश्चय किया। व्याकरण विषयक सामग्री के सग्रह हेतु वे तुरत यात्रा पर चल पडे। इस यात्रा मे उनकी भेट हुई ईश्वरदेव नामक एक प्रकाड पडित से। पाणिनि ने ईश्वरदेव के सम्मुख अपने नवीन व्याकरण की योजना प्रस्तुत की। ईश्वरदेव का मार्गदर्शन प्राप्त कर पाणिनि एकात स्थान में पहुचे। वहा बैठ कर उन्होंने आठ अध्यायों के एक नये व्याकरण की निर्मिति की। फिर उन्होंने अपना वह व्याकरण ग्रथ पाटलिपुत्र स्थित सम्राट् नद के पास भिजवाया। सम्राट् ने उस ग्रथ को उपयुक्त व सारभूत घोषित किया। तब सम्राट् ने एक आज्ञापत्र प्रसारित करते हुए आदेश दिया कि वह ग्रथ उनके साम्राज्य में पढाया जाये। मगध सम्राट् नद पाणिनि के मित्र बन गए थे।

महती सूक्ष्म दृष्टि- पाणिनि इस दृष्टि से नर्मदा के उत्तर के प्राय सपूर्ण भू-भाग में घूमे थे। विविध प्रकार के पदार्थों के बारे में पाणिनि की अष्टाध्यायी में नियम और उल्लेख मिलते हैं। इस पर से अनुमान किया जा सकता है कि भाषा-विषयक सामग्री जुटाने हेतु, पाणिनि ने विभिन्न प्रदेशों की कितनी व्यापक यात्रा की थी। पाणिनि ने उदीच्याम्, प्राच्याम् के निदेशों के साथ अपनी अष्टाध्यायी में यह भी बताया है कि किस प्रदेश के लोग किसी शब्द विशेष का ह्रस्व-दीर्घ आदि की दृष्टि से किस प्रकार उच्चारण किया करते है। इन्हीं बातो से प्रभावित होकर काशिकाकार के गौरवोद्‌गार व्यक्त हुए- "अहो महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य" (पाणिनि की यह कितनी महान् सूक्ष्मदृष्टि है) पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में जनपद, ग्राम, नगर, सघ गोत्र, चरण आदि की सुदीर्घ सूचि भी दी है। गोत्रों के लगभग एक हजार नाम पाणिनीय गणो ने सग्रहित किये हुए हैं। अष्टाध्यायी में 500 ग्रामों व नगरो की पूरी सूची मिलती है। साथ ही तत्कालीन रीति-रिवाज कला-कौशल, देव-धर्म, उपासना की पद्धतियां, लोगों की रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, जीवन-व्यवयसाय आदि अनेक बातों की भी जानकारी पाणिनि के इस व्याकरण-ग्रंथ से उपलब्ध होती है।

वेदत्रयी, वेदो की विभिन्न शाखाए, वेदाग, ब्राह्मण, महाभारत, कथागाथात्मक साहित्य, श्रौतसूत्र व धर्मसूत्र, उपनिषद् तथा दृष्ट व प्रोक्त के अन्तर्गत आने वाला अधिकांश वाङ्मय पाणिनि को ज्ञात था, ऐसा दिखाई देता है।

अपने इस सर्वग्राही स्वरूप के कारण पाणिनि की अष्टाध्यायी, प्रातिशाख्यो के समान सबधित वेद-विशेष तक ही सीमित नहीं रही। उसने अपना सबध सभी वेदो से स्थापित किया। सामवेद के ऋक्तत्र नामक प्रातिशाख्य के अनेक सूत्र पाणिनि के सूत्रो से मिलने-जुलते प्रतीत होते हैं। उन दोनों की तुलना करते हुए डा वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं- पाणिनि ने अपने पहले के सूत्रो को भाषा, अर्थ एव विस्तार इन तीनों ही दृष्टियो से पल्लवित किया। पाणिनि ने किसका और कितना ऋण लिया यह निर्धारित करने की दृष्टि से निश्चित साधन उपलब्ध नहीं फिर भी यह कहा जा सकता है कि विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से अष्टाध्यायी अपने-आप में परिपूर्ण है। वेदों से लेकर समस्त सस्कृत वाङ्मय का अध्ययन उसके कारण सुलभ होता है।

भट्टोजी दीक्षित ने अष्टाध्यायी पर आधारित "सिद्धात-कौमुदी" नामक ग्रथ की रचना की। उसमे वैदिकी प्रक्रिया व स्वर-प्रक्रिया नामक दो प्रकरण हैं। वैदिकी प्रक्रिया में बताया गया है कि पाणिनि के व्याकरण-विषयक नियम किस प्रकार समस्त वैदिक वाङ्मय को लागू पडते हैं और स्वर-प्रक्रिया मे वैदिक भाषा के उच्चार किस प्रकार किये जायें इसका विवेचन है। अपने व्याकरण-विषयक सूत्रों की रचना करते समय पाणिनि ने संपूर्ण वैदिक ग्रथ-भाडार व उपनिषदों का आलोडन किया था ऐसा प्रतीत होता है।

पाणिनि व्याकरण की सर्वंकष विशेषता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा-ग्रथों में निम्न श्लोक अंकित किया गया है-

येन धौता गिर पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानज भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः।।

अर्थ- जिन्होंने निर्मल शब्द-जल से मानवों की वाणियों को धोकर स्वच्छ किया और अज्ञानजन्य अंधकार को दूर किया, उन पाणिनि को नमस्कार।

पात्रकेसरी- कुलीन ब्राह्मण। अहिच्छत्र (पांचाल की राजधानी) निवासी। द्रमिल संघ के आचार्य। अनन्तवीर्य, शान्तरक्षित आदि आचार्यों ने उनका नामोल्लेख किया है। समय-ई. की छठी शताब्दी का उत्तरार्ध और सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध। राज्य का महामात्यपद छोड कर त्रिलक्षणकदर्थन में बौद्धों द्वारा प्रतिपादित पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षाद्व्यावृत्तिरूप हेतु के त्रैरूप्य का खण्डन कर अन्यथानुपपन्नत्व रूप हेतु का समर्थन किया गया है। इसी तरह "स्तोत्र" भी समन्तभद्र के स्तोत्रों के समान न्यायशास्त्र का ग्रंथ है। पात्रकेसरी को नैयायिक कवि कहा जा सकता है।

पाध्ये, काशीनाथ अनंत- सन् 1790-1806। धर्मशास्त्र के निबंधकार। पिता-अनंत पाध्ये व माता-अन्नपूर्णा। मूल ग्राम रत्नागिरि जिले का गोलवली किन्तु पांडुरंग के भक्त होने के कारण पंढरपुर जा बसे और जीवन के अंत तक वहीं पर रहे। इन्हे बाबा पाध्ये भी कहा जाता था।

आपने धर्मसिंधु नामक ग्रथ की रचना की। धार्मिक व्यवहार के लिये आवश्यक धर्मशास्त्रीय विषयों का विचार आपने इस ग्रथ में उत्तम रीति से किया है।

काशीनाथ उपाख्य बाबा पाध्ये पढरपुर में एक संस्कृत पाठशाला भी चलाते थे। तदर्थ पेशवा की ओर से उन्हें 1,200 रु वार्षिक मानधन दिया जाता था। बाबा ने पंढरपुर के विठोबा की पूजा के उपचारों में वृद्धि की। स्वरचित सस्कृत स्तवन-गीत (आरतिया), विठोबा की आरती के प्रसग पर (व्यक्तिश. अथवा सामूहिक पद्धति से) गाने की प्रथा भी पाध्ये बाबा ने प्रारंभ की। अपनी विद्वत्ता तथा अपने सदाचरण के कारण बाबा के प्रति पंढरपुर में बड़ा श्रद्धाभाव निर्माण हो चुका था। अत बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठाप्राप्त महानुभाव एवं राजा-महाराजा भी पांडुरंग (विठोबा) के दर्शन करने के पश्चात् बाबा के दर्शन हेतु अवश्य जाया करते थे। अपने देहावसान के कुछ समय पूर्व, पाध्ये बाबा ने संन्यास ग्रहण किया था। 'बाबावाक्यं प्रमाणम्'- यह कहावत इसी बाबा पाध्ये के कारण चालू हुई।

पायगुंडे, वैद्यनाथ- ई. 18 वीं शती। पिता-रामभट्ट। पुत्र-बालंभट्ट। गुरु-नागोजी भट्ट। पत्नी-लक्ष्मी। चातुर्मास्यप्रयोग, वेदान्तकल्पतरु-मजरी, प्रभा (शास्त्र-दीपिका की व्याख्या) आदि रचनाएं प्रमुख हैं। महाभाष्य-प्रदीपोद्योत के व्याख्याकार।

पायु भारद्वाज- ऋग्वेद के 6 वें मंडल का 75 वां और 10 वें मंडल का 87 वां सूक्त इनके नाम पर है। प्रथम सूक्त में पायु भारद्वाज ने धनुष्य, बाण, तूणीर (तरकश), कवच (जिरह-बख्तर), भुजबंध, रथ, सारथी एवं वीर योद्धाओं के बारे में गौरवपूर्वक व आत्मीयता से लिखा है। इस सूक्त पर से प्रतीत होता है कि सूक्त-द्रष्टा का या तो प्रत्यक्ष युद्धक्षेत्र से संबंध आया होगा, अथवा उन्होंने युद्धों का अति निकट सूक्ष्म निरीक्षण किया होगा। सूक्तकार का धनुष्य पर अटूट विश्वास है। "धनुष की सहायता से हम विश्व पर विजय प्राप्त करेंगे" ऐसा वे आत्मविश्वासपूर्वक कहते है। दूसरा सूक्त रक्षोहाग्नि सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त में सूक्तकार ने मुरदेव, यातुधान, क्रव्याद व किमीदिन नामक राक्षसों का वध करने की अग्नि से प्रार्थना की है। जब अभ्यावर्ती चायमान और प्रस्तोक साजय का वरशिखो ने युद्ध में पराभव किया तब पिता भरद्वाज ने पायु को उनके लिये यज्ञ करने को कहा था।

पार्थसारथी- वैयाकरणपंचानन। नुज्विड ग्रामवासी। जमींदार वेंकटाद्रि अप्पाराव के आश्रित। रचनाए- मदनानन्दभाण., आर्तिस्तव और स्वापप्रत्यय (यह दो स्तोत्रकाव्य)।

पार्थसारथि मिश्र- (मीमांसाकेसरी) -मीमासादर्शन के अतर्गत भाट्ट-मत के एक आचार्य। पिता-यज्ञात्मा। समय- ई 12 वीं शती। मिथिला के निवासी। इन्होंने अपनी रचनाओ द्वारा भट्ट-परंपरा को अधिक महत्त्व व स्थायित्व प्रदान किया मीमासा-दर्शन पर इनकी विद्वन्मान्य 4 कृतियां उपलब्ध होती हैं- तंत्ररत्न, न्याय-रत्नाकर, न्याय-रत्नमाला व शास्त्र-दीपिका (पूर्व मीमासा)। "तत्ररत्न", प्रसिद्ध मीमासक कुमारिल भट्ट रचित "टुप्टीका" नामक ग्रथ की टीका है। "न्याय-रत्नाकर भी कुमारिल भट्ट की रचना "श्लोकवार्तिक" की टीका है "न्याय-रत्नमाला" इनकी मौलिक कृति है जिस पर रामानुजाचा ने (17 वीं शती) "नाणकरत्न" नामक व्याख्या-ग्रथ की रच की है। "शास्त्र-दीपिका" भी प्रौढ कृति है। इसी ग्रथ कारण इन्हें "मीमांसा-केसरी" की उपाधि प्राप्त हुई "शास्त्र-दीपिका" पर 14 टीकाए उपलब्ध हैं। सोमनाथ अप्पय दीक्षित की क्रमश "मयूख-मालिका" व मयूखावल नामक टीकाए प्रसिद्ध हैं।

अपने ग्रथों द्वारा पार्थसारथि मिश्र ने बौद्ध तत्त्वज्ञान नास्तिकवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद का सप्रमाण खंडन व हुए वेदान्त-शास्त्र के व्यावहारिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया उनकी टीका की शैली व्यगपूर्ण है। उन्होंने अनेक नवीन प्रस्थापित किये हैं। मीमांसा-दर्शन के इतिहास में इनका स्थ अद्वितीय माना जाता है। इनके पिता यज्ञात्मा, तत्कालीन विद्वा में एक दार्शनिक के नाते सुप्रसिद्ध थे। पार्थसारथि ने अप पिता के ही पास समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था।

पारिथी कृष्ण कवि- ई 19 वीं शती। रचनाएं- मीनाक्षीशतव मालिनीशतक, हनुमत्शतक, लक्ष्मीनृसिंहशतक, कौमुदीसोम (नाटक), कलि-विलास-मणि-दर्पण. (काव्य) और रामाय के एक भाग पर रसनिस्यन्दिनी नामक टीका।

पाल्यकीर्ति- अपर नाम शाकटायन। प्राचीन आर्य शाकटायन व्याकरण के रचयिता थे। ये अर्वाचीन जैन शाकटायन है। इन्होने भी व्याकरण रचना की है। यापनीय सप्रदाय के प्रभावी लेखक। समय वि.स 871-924। अन्य रचनाए-स्त्रीमुक्ति, केवलभुक्ति। आपने निजी शब्दानुशासन से सबंधित धातुपाठ पर धातुवितरण नामक प्रवचन किया है। शाकटायन का धातुपाठ पाणिनि के उदीच्य पाठ से अधिक मिलता है।

पार्श्वदेव- (संगीतकार)- महादेवार्य के शिष्य और अभयचद्र के प्रशिष्य। श्रीकान्त जाति के आदिदेव एव गौरी के पुत्र। दाक्षिणात्य। इनके सगीतसमयसार ग्रथ में भोज, सोमेश्वर, परमार्दिन आदि का उल्लेख होने से तथा सिंगभूपाल द्वारा ग्रथ उल्लिखित होने से इनका समय ई 12-13 वी शती होगा। "सगीतरत्नाकर" से प्रभावित यह ग्रथ 9 अधिकरणो मे विभाजित है। इस ग्रथ मे सगीत से अध्यात्म का सबध जोडा गया है। पार्श्वदेव के अनुसार सगीत से मुक्ति मिलती है न कि दर्शन से। पार्श्वदेव स्वय को "सगीताकर" और "श्रुतिज्ञान-चक्रवर्ती" कहते हैं।

पिंगल- आपने वेदो के 5 वें अग छद पर, छन्द सूत्र नामक सूत्ररूप ग्रंथ की रचना की। इसके 8 अध्याय हैं। इसमें प्रारभ से लेकर चौथे अध्याय के 7 वें सूत्र तक वैदिक छदो के लक्षण बताये हैं और उसके पश्चात् लौकिक छदो का वर्णन किया है। आप पिंगलाचार्य अथवा पिंगलानाग के नाम से भी जाने जाते थे। आपके काल के बारे मे पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। कीथ ने आपका काल ईसा पूर्व 200 वर्ष निश्चित किया है। छन्द सूत्र पर लिखी गई भाव-प्रकाश नामक टीका मे आपको पाणिनि का छोटा भाई बताया गया है। पिंगल ने अपने ग्रथ मे क्रौष्टुकी, यास्क, काश्यप, गौतम, आंगिरस, भार्गव, कौशिक, वसिष्ठ, सेतव प्रभृति आचार्यो का उल्लेख किया है।

पिड्ये, जयराम - ई 17 वी शती। पिता गभीरराव व माता- गगाबा। छत्रपति शिवाजी महाराज के पिता शाहजी राजा भोसले जब बगलोर (कर्नाटक) मे शासक के रूप मे स्थिर हुए, तब जयराम पिड्ये उनके आश्रय मे पहुचे। आप 12 भाषाए जानते थे। राजा शाहजी की स्तुति में आपके द्वारा लिखा गया राधामाधवविलास-चपू नामक सस्कृत काव्य प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक प्रमाणों की दृष्टि से भी यह काव्य ग्रथ महत्त्वपूर्ण है।

के. व्ही. लक्ष्मणराव के मतानुसार राधामाधवविलास चपू की रचना, शाहजी के पुत्र एकोजी के शासन काल में हुई और जयराम पिड्ये, एकोजी तथा छत्रपति शिवाजी दोनो के ही आश्रित कवि रहे थे। तदनुसार जयराम पिड्ये ने शिवाजी महाराज के विषय मे भी पर्णालपर्वतग्रहणाख्यानम् नामक एक काव्य की रचना की थी। इस आख्यानकाव्य का भी ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। शिवाजी महाराज के जीवन कार्य व धवल चरित्र पर मुग्ध होकर आपने उनके संपूर्ण जीवन को विविध भाषाओं में काव्यबद्ध करने का प्रयास भी प्रारंभ किया था।

पितामह - समय- अनुमानत 400 से 700 ई. के बीच। "पितामहस्मृति" के प्रणेता। आपने अपनी स्मृति में व्यवहार का विशेष विचार किया है। आपके मतानुसार वेद, वेदांग, मीमासा, स्मृति, पुराण व न्यायशास्त्र का धर्मशास्त्र में समावेश होता है। आपने बताया है कि कोई भी अभियोग (दावा) पहले ग्राम पचायत में, फिर नगर में, और उसके पश्चात् राजा के सम्मुख चलाया जाना चाहिये। यदि वादी तथा प्रतिवादी एक ही देश, नगर अथवा गाव के हों, तो संबंधित अभियोग का निर्णय स्थानीय रीति प्रथाओं तथा संकेतों के अनुसार दिया जाय किन्तु वादी व प्रतिवादी भिन्न गावों के होने की स्थिति में, सबधित अभियोग का निर्णय शास्त्रानुसार ही दिया जाना चाहिये।

पितामह के आह्निक, व्यवहार व श्राद्ध सबंधी वचनों को "स्मृतिचद्रिका" में उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार विश्वरूप ने, अनेक अशौच विषयक मत का उल्लेख किया है और उन्हे धर्मवक्ताओं में स्थान दिया है। इनकी स्मृति के उद्धरण, "मिताक्षरा" मे भी प्राप्त होते हैं।

पितामह ने न्यायालय में जिन 8 कारणों की आवश्यकता पर बल दिया है वे हैं- लिपिक, गणक, शास्त्र, साध्यपाल, सभासद सोना, अग्नि और जल।

पिप्पलाद - एक ऋषि। इस शब्द का अर्थ है पीपल के पेड के पत्ते खाकर जीवित रहनेवाला। इनकी माता के तीन नाम मिलते हैं गभस्तिनी, सुवर्चा व सुभद्रा। गभस्तिनी दधीचि ऋषि की पत्नी थी। दधीचि के देहावसान के समय गभस्तिनी गर्भवती थी तथा अन्यत्र रहती थी। पति के निधन का समाचार विदित होते ही उन्होंने अपना पेट चीर कर गर्भ को बाहर निकाला तथा उसे पीपल वृक्ष के नीचे रखा। पश्चात् वे सती गईं। गभस्तिनी के इस गर्भ का वृक्षों ने सरक्षण किया। आगे चलकर इस गर्भ से जो शिशु बाहर निकला, वही पिप्पलाद कहलाया।

पशु पक्षियों ने इस शिशु का पालन पोषण किया तथा सोम ने उसे सभी विद्याए सिखाई। यह ज्ञात होने पर कि अपने मातृपितृवियोग के लिये शनि ग्रह कारणीभूत है, पिप्पलाद ने शनि को आकाश से नीचे गिराया। शनि उनकी शरण आया। तब शनि को यह चेतावनी देकर कि 12 वर्ष की आयु तक के बालकों को वे भविष्य में पीडा न पहुंचाएं, पिप्पलाद ने उन्हें छोड दिया। ऐसा कहते हैं कि गाधि (विश्वामित्र के पिता), पिप्पलाद व कौशिक (विश्वामित्र) इस त्रयी का स्मरण करने से शनि की पीडा नहीं होती। देवताओं की सहायता से अपने माता पिता से मिलने पिप्पलाद स्वर्गलोक गए, वहा से लौटने पर उन्होंने गौतम की कन्या से विवाह किया।

पिप्पलाद के पिता दधीचि ऋषि ने जिस स्थान पर देह त्याग किया था, वहां पर कामधेनु ने अपनी दुग्ध धारा छोडी थी। अतः उस स्थान को "दुग्धेश्वर" कहा जाने लगा। पिप्पलाद उसी स्थान पर तपस्या किया करते थे। इसलिये उसे पिप्पलादतीर्थ भी कहते हैं।

वेदव्यासजी ने अपने शिष्य सुमंतु को अथर्वसंहिता दी थी। पिप्पलाद उन्हीं सुमंत के शिष्य थे। इन्होंने अथर्ववेद की एक शाखा का प्रवर्तन किया था। अत. उस शाखा को पिप्पलाद शाखा कहा जाने लगा। इन्होंने अथर्ववेद की एक पाठशाला भी स्थापित की थी। पिप्पलाद एक महान् दार्शनिक भी थे। जगत् की उत्पत्ति के बारे में कबंधी कात्यायन द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया :

सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व जगत्कर्ता थे। उन्होंने रे व प्राण की जोडी का निर्माण किया। प्राण आत्मा से उत्पन्न हुआ, और आत्मा पर छाया के समान फैल गया। मन की क्रिया से प्राण मानवी शरीर में प्रवेश करते हुए स्वय को 5 रूपों में विभाजित करता है।

उन्होंने गार्ग्य को बताया गहरी नींद में इन्द्रियां निष्क्रिय रहती हैं, केवल प्रतीति ही कार्य किया करती है शैव्य सत्यकाम से वे कहते हैं, ओंकार की विभिन्न मात्राओं का ध्यान करने से जीव-ब्रह्मैक्य साध्य होता है। एक अन्य स्थान पर वे बताते हैं- ओंकार का ध्यान व योगमार्ग के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है। शरभ उपनिषद्, पिप्पलाद का महाशास्त्र है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु व महेश की एकरूपता प्रतिपादित की गई है। भीष्म पितामह के निर्वाण के समय, पिप्पलाद अन्य मुनिजनों के साथ वहां पर उपस्थित थे।

पी. एस. वेरियर (व्ही. एन. नायर) - मलबार प्रदेशीय। रचना - अनुग्रहमीमांसा जिसका विषय है, जंतुरोगों की चिकित्सा।

पुंडरीक विठ्ठल - ई. 16-17 वीं शती। एक सुप्रसिद्ध गायक व संगीतज्ञ। जामदग्न्य गोत्रीय ब्राह्मण। मैसूर के निवासी। कीर्ति संपादन हेतु सन् 1570 में आप मैसूर छोड कर उत्तर की ओर चल पडे, और पहला पडाव किया बुरहानुपर में। पुंडरीक विठ्ठल के समय उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में बडी अव्यवस्था फैली थी। अत राजा बुरहानखान ने इनसे कहा कि वे उस सगीत पद्धति को अनुशासनबद्ध सुव्यवस्थित रूप दें। तदनुसार कार्यारंभ की दृष्टि से पुंडरीक विठ्ठल ने उत्तर व दक्षिण की संगीत पद्धतियों का तौलानिक अध्ययन किया और बाद में "सद्राग-चंद्रोदय" नामक ग्रथ की रचना की। फिर वे राजपूत राजा मानसिंग के आश्रय में पहुंचे, तथा मानसिंग के निर्देशानुसार आपने "रागमंजरी" नामक ग्रथ लिखा। परिणामस्वरूप संगीतशास्त्रज्ञ के रूप में आपको दिल्ली बुलवाया गया। अकबर के आश्रय में पुंडरीक ने "रागमाला" नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में उन्होंने रागों के वर्गीकरण हेतु परिवार-राग-पद्धति अपनाई। यह पद्धति, रागों में दिखाई देने वाला स्वरसाम्य के तत्व पर आधारित है। विद्वानों के मतानुसार इस प्रकार रागों के गुट निर्माण करने वाली पुडरीक की यह पद्धति, अन्य तत्सम पद्धतियों से अधिक सयुक्तिक है। दाक्षिणात्य संगीत को ध्यान में रखते हुए पुंडरीक ने एक नवीन पद्धति का निर्माण किया। इनके अन्य ग्रंथ हैं- विठ्ठलीय, रागनारायण और नृत्यनिर्णय। सगीत-वृत्तरत्नाकर के प्रणेता विठ्ठल तथा पुडरीक विठ्ठल एक ही हैं। पुडरीक विठ्ठल को दिल्ली में विपुल सम्मान प्राप्त हुआ।

पुंडरीकाक्ष विद्यासागर - ई 15 वीं शती। बगाल के निवासी। पिता- श्रीकान्त। कृतियां- काव्यप्रकाश, दण्डी- वामन के साहित्यशास्त्रीय ग्रंथ भट्टकाव्य तथा कलापव्याकरण पर टीकाएं। कारककौमुदी नामक व्याकरण ग्रथ। न्यासटीका और कातन्त्र-परिशिष्ट-टीका।

पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा - सन् 1859-1935। पट्टाम्बी के सस्कृत महाविद्यालय में आचार्य। पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा केरल के प्रतिष्ठित विद्वान थे। आपको "पण्डितराज" की उपाधि प्राप्त थी। पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से सस्कृत के प्रचार का उद्देश्य सामने रख कर, आपने विज्ञानचिन्तामणि और "साहित्य रत्नावलि" नामक पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन किया। व्यगात्मक निबन्धो के लेखक और अनेक "शतकों" के प्रणेता के रूप में इनकी विशेष ख्याति थी। शैलाब्धि-शतक पट्टाभिषेक-प्रबन्ध, सात्त्विकस्वप्न और आर्याशतक इनकी प्रसिद्ध रचनाए हैं।

पुरुषोत्तम - रचना- शिवकाव्यम्। इसमें शिवाजी महाराज से दूसरे बाजीराव पेशवा तक मराठा साम्राज्य का इतिहास वर्णित है।

पुरुषोत्तम (कविरत्न) - जन्म- गंजम जिले में सन 1790 में। रचनाए- रामचन्द्रोदय, रामाभ्युदय, बालरामायण और रागमालिका। इनके पुत्र कविरत्न नारायण मिश्र की भी संगीतमणि, बलभद्रविजय, शकरविहार, कृष्णविलास आदि अनेक रचनाए हैं।

पुरुषोत्तमजी - इनका जन्म स. 1724 में आचार्य वल्लभ से 7 वीं पीढी में हुआ था। पिता का नाम पीताबर। आरंभिक जीवन मथुरा मे और बाद का सूरत में बीता। इन्होंने आचार्य वल्लभ के "अणुभाष्य" पर "भाष्यप्रकाश" नामक पाडित्यपूर्ण व्याख्यान लिखे, जिसमें अणुभाष्य के गूढार्थ का प्रकाशन होने के अतिरिक्त अन्य भाष्यों का तुलनात्मक विवेचन भी है। इस व्याख्या की यही विशेषता है।

पुरुषोत्तमजी के अन्य मुख्य ग्रथ हैं (1) सुबोधिनी-प्रकाश, (2) उपनिषद्दीपिका, (3) आवरणभंग, (4) प्रस्थान-रत्नाकर, (5) सुवर्णसूत्र (विद्वन्मण्डन की पाडित्यपूर्ण विवृति), (6) अमृततरंगिणी (गीता की पुष्टिमार्गीय टीका) तथा (7) षोडश-ग्रंथ विवृत। श्रीमद्भागवत-स्वरूप-शंकानिरास नामक अपनी रचना में आपने श्रीमद्भागवत के अष्टादश पुराणों के

अंतर्गत होने का मत, परमतखडन पूर्वक स्थापित किया है।

पुरुषोत्तमजी का जन्म ई 1838 में माना जाता है। ये कृष्णचन्द्र महाराज के शिष्य थे। इनके "भाष्यप्रकाश" पर, इनके गुरु की ब्रह्म-सूत्रवृत्ति (भावप्रकाशिका) का विशेष प्रभाव पडा है।

पुरुषोत्तमजी (पुरुषोत्तमलालजी) द्वारा प्रणीत ग्रथों की सख्या 45 बतलाई जाती है। इनमें कुछ तो टीका ग्रथ हैं और अन्य स्वतंत्र निबध ग्रंथ हैं। ग्रथों के प्रणयन के साथ ही ये मूर्धन्य विद्वानों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त किया करते थे। शक्ति तत्र के मर्मज्ञ विद्वान भास्करराय तथा शैव दर्शन के आचार्य अप्पय्य दीक्षित से हुए शास्त्रार्थ का विवरण वल्लभ सप्रदाय के इतिहास में मिलता है।

पुरुषोत्तमजी वस्तुत शुद्धाद्वैत मत के प्राण थे। इन्हीं के प्रयास से संप्रदाय की दार्शनिक प्रतिष्ठा में विशेष वृद्धि हुई। आचार्य वल्लभ, गोसाई विठ्ठलनाथ और पुरुषोत्तमजी शुद्धाद्वैत मत के "त्रिमुनि" माने जाते हैं।

पुरुषोत्तम देव - ई 12 वीं अथवा 13 वीं शती। बगाल के एक प्रसिद्ध बौद्ध वैयाकरण। देव, इनकी उपाधि थी। अत अष्टाध्यायी की वैदिकी प्रक्रिया को छोड कर, आपने शेष सूत्र पर भाष्य लिखा जो भाषावृत्ति के नाम से सुप्रसिद्ध है। पुरुषोत्तम देव, राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित थे। इन्हींकी प्रेरणा से आपने भाषावृत्ति की रचना की। सृष्टिधर नामक एक बगाली पडित ने देव की भाषावृत्ति पर टीका लिखी है। बिहार के वैयाकरणों ने इनके प्रस्तुत ग्रथ को प्रमाण ग्रथ के रूप में मान्यता दी है।

देवजी द्वारा लिखित अन्य ग्रथों के नाम है महाभाष्यलघुवृत्ति, भाष्यव्याख्याप्रपच, गणवृत्ति, प्राणपणा, कारककारिका, दुर्घटवृत्ति, त्रिकाडशेष, अमरकोश- परिशिष्ट, परिभाषावृत्ति (ललितावृत्ति), ज्ञापकसमुच्चय, उणादिवृत्ति, द्विरूपकोश, कारकचक्र, हारावली-कोश, वर्णदेशना और एकाक्षर-कोश। इनके अतिरिक्त नलोदयप्रकाश नामक नलोदय काव्य की टीका भी आपने लिखी है।

पुरुषोत्तमाचार्य (विवरणकार) - निंबार्क सप्रदायी। आचार्य निंबार्क की 7 वीं पीढी मे स्थित। आपने निबार्काचार्यजी के "दशश्लोकी" नामक ग्रथ पर, "वेदात-रत्नमजूषा" नामक विशाल विवरण भाष्य लिखा है। दशश्लोकी तथा श्रीनिवासाचार्यजी के रहस्यप्रबध नामक ग्रथों पर विवरण लिखने वाले प्रथम आचार्य होने के कारण, आप "विवरणकार" के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपके दूसरे ग्रथ का नाम है "श्रुत्यतसुरद्रुम"। उसमें श्रीकृष्णस्तवराज पर वेदातपरक टीका है।

पुरुहन्मा (वैखानस) - आगिरस कुलोत्पन्न। ऋग्वेद के 8 वें मडल का 70 वा सूक्त इनके नाम पर है। इन्द्र की स्तुति इस सूक्त का विषय है। पुरुहन्मा ने इन्द्र के लिये अखंडानदपूरण, शत्रुभयकर, वृत्रनाशन, अभयलोक धारक आदि विशेषण प्रयुक्त किए हैं। इनके सूक्त की एक ऋचा में इन्द्र का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है जो श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ, पूजनीयों में भी अत्यत पूजनीय तथा वरदान देने के लिये सदैव सिद्ध रहते है, उन (इन्द्रदेव) का स्तवन कीजिये । संकट चाहे क्षुद्र हो अथवा दुस्तर हो, सकट काल में उन्हींको पुकारा जाना चाहिये। सत्त्वप्राप्ति का प्रयत्न करते समय उन्हीं की पुकार की जानी चाहिए। (ऋ 8-70-8)। पचविंश ब्राह्मण में (14.9.29) इन्हें वैखानस भी कहा गया है।

पुलस्त्य - एक सांख्याचार्य व स्मृतिकार। महाभारत में (आदि 66-10) इन्हें ब्रह्मदेव का मानसपुत्र तथा भागवत में (4.1) कपिल का बहनोई बताया गया है। मिताक्षरा में इनके कुछ श्लोक दिए गए हैं। पुलस्त्यस्मृति की रचना इन्होंने अनुमानतः ई 4 थी व 7 वीं शती के बीच की होगी।

पुल्य उमामहेश्वर शास्त्री - इस कवि ने अपने "दुर्गानुग्रहकाव्यम्" में वाराणसी के तुलाधार श्रेष्ठी का पुष्कर क्षेत्र के समाधि नामक वैश्य का तथा विजयवाडा के धनाढ्य व्यापारी चुण्डूरी रेड्डी का चरित्र वर्णन किया है। रेड्डी का चरित्र धनाशा से लिखा है ऐसा उन्होंने कहा है।

इस कवि ने अपनी अन्य रचना में आन्ध्र के विद्वान् साधु बेल्लम्कोण्ड रामराय का चरित्र वर्णन, अश्वधाटी छन्द के 108 श्लोकों में किया है।

पुष्पदंत - शिवमहिम्न स्तोत्र के रचयिता। यह स्तोत्र सर्वत्र अत्यधिक लोकप्रिय है किंतु उसके कर्ता के नाम (पुष्पदत) के अतिरिक्त जीवन चरित्र विषयक अन्य कोई भी अधिकृत जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती। शिवभक्त लोग महिम्नः स्तोत्र को वैदिक रूद्रसूक्त के समकक्ष मत्रमय मानते हैं।

पुसदेकर, शार्ङ्गधर - ई 16 वीं शती। एक महानुभाव सम्प्रदायी व्युत्पन्न ब्राह्मण। पुसदे (विदर्भ, जिला अमरावती) के निवासी। अनेक शास्त्रों में पारंगत। संस्कृत व मराठी भाषाओं में विपुल ग्रथरचना। गीता पर कैवल्यदीपिका नामक सस्कृत व मराठी में टीकाए। काव्यचूडामणि नामक प्रसिद्ध सस्कृत ग्रंथ के कर्ता। मराठी में गीताप्रश्नावली, परमहंस-धर्म-मालिका आदि ग्रथ भी लिखे हैं।

पूर्णसरस्वती - ई 14 वीं शती का पूर्वार्ध। केरल में दक्षिण मलबार के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म। गुरु का नाम-पूर्णज्योति। कहते हैं कि गुरु व शिष्य दोनों ही संन्यासी थे और त्रिचूरस्थित मठ में रहते थे। पूर्णसरस्वती द्वारा लिखे गए ग्रथों के नाम हैं- विद्युल्लता (मेघदूत पर टीका), भक्ति-मदाकिनी (शकराचार्यजी के विष्णुपादादि के शान्त-स्तोत्र पर टीका), ऋजुलध्वी- माधव पर काव्यमय टीका, हंसदूत (मेघदूत की शैली पर लिखा गया काव्य) और कमलिनी-राजहंस (पांच अकों का नाटक)।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी टीका ग्रंथ आपने लिखे हैं। संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने वाले केरल के पंडितों में, पूर्णसरस्वतीजी का अपना एक विशेष स्थान है।

पेरियअप्पा दीक्षित - किलायूर के चिदम्बर के पुत्र। रचना - शृंगारमंजरी, शाहजीयम् (नाटक), तंजावर नरेश शहाजी का विलास वर्णन इनके कवित्व का विषय है।

पेरूसूरि - ई. 18 वीं शती। सम्भवतः कांचीपुर के निवासी। पिता- वेंकटेश्वर। माता- वेंकटाम्बा। "वसुमंगल" (नाटक) के रचयिता। अन्य काव्यकृतियां- रामचन्द्रविजय, भरताभ्युदय व चकोरसंदेश।

पैठीनसी - अर्थव परिशिष्ट के अतर्गत तर्पण की सूचि में आपका नाम समाविष्ट है और आपके द्वारा अकित श्राद्ध विधियों के कुछ विधि, अथर्ववेदीय श्राद्धविधियों से मिलते जुलते हैं। इस आधार पर कहा जाता है कि आप अथर्ववेदी होंगे। स्मृति-चंद्रिका तथा अपरार्क, हरदत्त प्रभृति के ग्रथों में पैठीनसी के पर्याप्त वचन उद्धृत हैं। अपुत्र का धन विद्वत्परिषद् को प्राप्त होना चाहिये, राजा को नहीं। इसी प्रकार आपका कहना है, कि देवालयों व गणों की धरोहर का तथा अवयस्क बालकों एवं महिलाओं के धन का विनियोग, राजा ने स्वय के लिये नहीं करना चाहिये।

पौष्करसादि - संस्कृत व्याकरण के प्राचीन आचार्य। प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय 3100 वर्ष वि पू है। इनका उल्लेख महाभाष्य के एक वार्तिक मे हुआ है। ("चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् 8-4-48)। पिता- पुष्क्रत्। निवासस्थान- अजमेर के निकटस्थ पुष्कर। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य" (5-40) के माहिषेय भाष्य मे कहा गया है कि पौष्करसादि ने कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का प्रवचन किया था। इनके मत "हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र" (1-6-8) एवं "आग्निवेश्य गृह्यसूत्र" (1-1 पृ 9) में भी उल्लिखित है। "आपस्तब धर्मसूत्र" में भी (1-19-7 1-18-1) पुष्करसादि आचार्य का नाम आया है।

पौत्र आत्रेय - ऋग्वेद के 5 वें मंडल का 73 वा व 74 वा सूक्त इनके नाम पर है। अश्विदेवों की स्तुति इन सूक्तों का विषय है। 74 वें सूक्त की 4 थी ऋचा में इनका नाम है। उसमें आपने यह बताया है कि उन्होंने सोम याग की दीक्षा ली थी। दीक्षा काल में आप दुष्टों के चंगुल में फसे थे। किन्तु अश्विदेवों ने उन्हें उनसे मुक्त किया। यह बात उनकी ऋचाओं से ध्वनित होती है। उनके सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळ्यत्तमा।। (5.73.9)

अर्थ - अहो अश्वी, आपको (जगत् का) मंगल करनेवाले कहते हैं, वह सर्वथा सत्य ही है। इसी लिये यज्ञ में (भक्तजन) आप लोगों की अत्याग्रहपूर्वक प्रार्थना किया करते हैं (क्योंकि) यज्ञ में पुकार की जाने पर आप ही अत्यत सुख देने वाले हैं। अश्विदेवों को पौर आत्रेय कवि-प्रतिपालक कह कर भी सबोधित करते हैं।

प्रकाशात्म यति - ई 13 वीं शती। रामानुजाचार्य द्वारा शांकर मत के खंडन का प्रयत्न किया जाने पर, प्रकाशात्मयति ने शांकर मत के समर्थनार्थ पद्मपादाचार्यकृत पचपादिका पर "पचपादिका-विवरण" नामक टीका लिखी। अद्वैत तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में, इस टीका ग्रथ को अत्यत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वेदात तत्त्वज्ञान में भामती प्रस्थान के पश्चात् विवरण-प्रस्थान के रूप में एक नवीन प्रस्थान का उपक्रम, प्रकाशात्म यति ने किया। प्रस्तुत टीका ग्रंथ में अद्वैत मत का और विशेषतः पद्मपादाचार्य के मत का विशेष विवेचन किया गया है। शारीरकभाष्य पर न्यायसग्रह व शब्दनिर्णय नामक दो और भी ग्रंथ यतिजी ने लिखे हैं। इन्हें "प्रकाशानुभव" नाम से भी जाना जाता है।

प्रकाशानंद - ई 15 वीं शती। ज्ञानानद के शिष्य। इनका प्रमुख पांडित्यपूर्ण ग्रथ, वेदान्त-सिद्धात-मुक्तावलि है। यह वेदात का प्रमाणभूत ग्रथ माना जाता है। यह ग्रथ गद्य पद्यात्मक है। गद्य में युक्तिवाद है। प्रकाशानद के मतानुसार माया अनिर्वचनीय है, अज्ञान प्रमाणगम्य नही है, आत्मा केवल आनदस्वरूप न होकर आनदवान् तथा दु खवान् भी हो सकती है आदि। प्रस्तुत ग्रथ पर अप्पय्य दीक्षित ने सिद्धातदीपिका नामक वृत्ति लिखी है। वेदात-सिद्धात-मुक्तावलि के अतिरिक्त प्रकाशानद द्वारा लिखे गए तात्रिक ग्रथों के नाम हैं मनोरमातंत्रराज टीका, महालक्ष्मी-पद्धति, श्रीविद्या-पद्धति आदि।

प्रगाथ काण्व - ऋग्वेद के 8 वे मडल के क्रमांक 10, 48, 51 व 54 के सूक्त आपके नाम पर हैं। इन्हें प्रगाथ नामक मंत्रविशेष का द्रष्टा माना गया है। यज्ञ में शसन करने समय एक विशिष्ट पद्धति से दो ऋचाओं की तीन ऋचाए करते हैं, जिन्हें "प्रगाथ" कहा जाता है। इन प्रगाथों को, सबंधित देवता के अनुसार, ब्रह्मणस्पद प्रगाथ काण्व ने अपने सूक्तों में इन्द्र, अश्वी व सोम की स्तुति की है सोमरस के बारे मे इन्होंने काव्यमय भाषा में लिखा है। सोम के पान से उल्लसित होकर वे कहते हैं।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य।।
(ऋ 8 48.3)

अर्थ - हमने सोम रस का प्राशन किया, हम अमर हुए, दिव्य प्रकाश को प्राप्त हुए। हमने देवों को पहचाना। अब धर्म विमुख दुष्ट हमारा क्या कर लेंगे। हे अमर देव, मानवों की धूर्तता भी अब हमारा क्या अहित कर सकेगी।

इसके उपरांत प्रगाथ काण्व ने स्वयं को अग्नि के समान

उज्वल बनाने तथा सभी प्रकार की समृद्धि प्रदान करने की सोम से प्रार्थना की है।

प्रचेता आंगिरस- ऋग्वेद के 10 वे मडल का 164 सूक्त इनके नाम पर है। दु स्वप्रनाश इस सूक्त का विषय है तत्संबंधी एक ऋचा इस प्रकार है-

> अजैष्माद्यासनाम चा भूमानागसो वयम्
> जाग्रत्स्वप्न सङ्कल्प पापो य द्विष्मस्त
> स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु।। (ऋ 10 164 5)

अर्थ- देखो, आज हमने वाणी पर विजय प्राप्त करने के साथ ही अपना उद्दिष्ट भी साध्य किया। अपना निरपराधी होना भी सिद्ध किया। फिर भी जाग्रत् या निद्रित अवस्था में जो कोई दुर्वासना हमारे मन में छिपी बैठी हो, वह पापी वासना हमारे शत्रुओं की ओर उन्मुख हो, जो हमारा द्वेष करते हैं, उनकी ओर जावे।

प्रजापति- इनकी एक श्राद्धविषयक स्मृति है। उसमें 198 श्लोक विविध छदो में हैं। चरित्रकोशकार चित्राव शास्त्री के कथनानुसार प्रस्तुत स्मृति में कल्पशास्त्र, स्मृति, धर्मशास्त्र एव पुराणों का विचार किया गया है। अशौच्य व प्रायश्चित्त से सबंधित इनके श्लोक, याज्ञवल्क्य-स्मृति पर लिखी गई मिताक्षरा-टीका में दिये गये हैं। अपरार्क ने परिव्राजक विषय में इनका एक गद्यात्मक उध्दरण समाविष्ट किया है। इसी प्रकार स्मृति-चद्रिका, पराशर-माधवीय एव कतिपय अन्य ग्रथो में भी इनके व्यवहार-विषयक श्लोक अपनाए गए हैं। प्रजापति के मतानुसार निपुत्रिक विधवा का अपने पति की सपत्ति पर अधिकार होता है, उसे अपने पति का श्राद्ध करने का भी अधिकार है।

प्रजापति परमेष्ठी- ऋग्वेद के 10 वें मडल के 129 वें सूक्त के द्रष्टा। यह सूक्त, "नासदीय" के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रजापति वाच्य- इनके नाम पर ऋग्वेद के तीसरे मडल के सूक्त क्रमाक 38, 54, 55 व 56 हैं। इन्हें 9 वें मडल के 101 वें सूक्त की 13 से 16 तक की ऋचाओं का भी द्रष्टा माना जाता है। प्रजापति इनका व्यक्तिनाम व वाच्य कुलनाम है। ये दोनो ही नाम काल्पनिक हैं। इनको प्रजापति वैश्वामित्र भी कहते हैं। विश्वामित्र कुलोत्पन्न के मतानुसार, प्रजापति वाच्य व प्रजापति वैश्वामित्र ये दो भिन्न व्यक्ति होने चाहिये। इन्होंने अपने सूक्तों में व्यक्त किये कुछ विचार इस प्रकार हैं-

चाहे कोइ कितना ही बडा युक्तिवान्, सूज्ञ या सज्जन हो, किंतु पुरातन काल से अबाधित सिध्द हुए देवो के नियमो को वह बाधा नहीं पहुचा सकता। द्यावा-पृथिवी सभी मानवो व देवो को धारण करती हैं। ऐसा करते हुए वे कभी नहीं थकतीं। देवो की ओर जाने का मार्ग वास्तव ही में गूढ है।

ये ऋषि कवि-हृदय के हैं। अन्य द्रष्टा कवियो से वे कहते हैं- अपने स्तोत्रों को बेढब न रहने दो, उन्हें सुदर व सुशोभित बनाओं। उन्हें जिस प्रकार के इहलोक उत्कृष्ट सुखों का उपभोग करने की तीव्र आकाक्षा है, उसी प्रकार प्रज्ञावंतों के दर्शन व सहवास का आकर्षण भी है। उन्होंने अनेक देवताओं को सबधित करते हुए ऋचाओ की रचना की है व उनके द्वारा सबधित देवता के सामर्थ्य को अभिव्यक्त किया है। निम्न ऋचा में वे परमेश्वर का वर्णन तीन स्वरूपों में करते हैं-

> त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उतत्र्युधा पुरूष. प्रजावान्।
> त्र्यनीक पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभ
> शश्वतीनाम्।। (ऋ 3 56 3)।।

अर्थ- ये जो अनत रूपों को धारण करनेवाला, मनोरथ पूर्ण करनेवाला व वीर्यशाली परमेश्वर है, उसकी ऊर्जस्विता तीन प्रकार की है। उसके वक्षस्थल भी तीन ही हैं। उसकी प्रजा तीन लोको में भारी हुई है। उसके प्रकाशमय रूप भी तीन प्रकार के हैं। वह सर्वश्रेष्ठ देव त्रैलोक्य का प्रभु है।

ऐसा कहा जा सकता है कि पुराण-काल में सत्त्व-रज-तम पर आधारित जो त्रिमूर्ति-कल्पना उदित व विकसित हुई तथा जो मूर्ति-कला में भी स्वीकृत की गई, उसका बीज उक्त मंत्र में है।

प्रजावान् प्राजापत्य- ऋग्वेद के 10 वें मंडल का 183 वां सूक्त इनके नाम पर है। इस सूक्त के कोई विशेष देवता नहीं हैं। इसमें ऋषि अपनी प्रेयसी को, पुत्र की प्राप्ति के हेतु अपने पास आने का आग्रह करते हैं। अत इस सूक्त को संततिदायक माना गया है। इसमें कहा गया है कि "प्रवर्ग्य" नामक अनुष्ठान में इस सूक्त का पठन करने से संतति का लाभ होता है।

प्रतर्दन- ऋग्वेद के 9 वें मडल का 96 वा सूक्त व 10 वें मंडल के 179 वें सूक्त की दूसरी ऋचा इनके नाम पर है। इन्होंने अपने सूक्त में पवमान सोम की प्रशंसा की है। वे कहते हैं- सोमरस का प्रभाव वाणी को चालना, मन को प्रेरणा व स्तवनो को स्फूर्ति देता है, इसी प्रकार सोमरस का प्रा न करने वाले वीर संग्राम में निर्भयतापूर्ण लडते हैं। सोम की प्रार्थना में उनकी ऋचा इस प्रकार है -

> यथा पवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवो विद्धविष्मान्।
> एवा पवस्व द्रविण दधान इन्द्रे स तिष्ठ जनयायुधानि।।

अर्थ- यौवन का बल-उत्साह लाने वाला, शत्रओं का वध करने वाला, समाधानी वृत्ति देने वाला व दिव्य जनों को हविर्भाग पहुचाने वाला तू जिस प्रकार पहले मनु के लिये पावन प्रवाह से प्रवाहित रहता था, उसी प्रकार अब भी संपत्ति के साथ आकर अपने प्रवाह से बह, इन्द्र में वास कर, और युद्ध में शस्त्रों को प्रकट कर।

प्रतापरुद्र देव - ई 16 वीं शती। उडीसा में राज्य करनेवाले गजपति घराने के एक राजा। सरस्वतीविलास नामक ग्रंथ के रचयिता। अपनी राजधानी में पंडितों की सभा आयोजित कर तथा उनसे चर्चा करने के पश्चात् आपने प्रस्तुत ग्रंथ लिखा।

इस ग्रंथ में आर्थिक विधान (दीवानी कानून) व धर्मशास्त्रों के नियमों का समन्वय किया गया है। आगे चल कर इस ग्रंथ को विधान (कानून) का स्वरूप प्राप्त हुआ।

आपने प्रताप मार्तण्ड नामक एक और ग्रंथ की भी रचना की है। उसके पदार्थ निर्णय, वासरादि निरूपण, तिथि निरूपण, प्रतिनिरूपण व विष्णु भक्ति शीर्षक नामक पांच विभाग हैं।

प्रतापसिंह देव - जयपुर के महाराजा। ई. 1779-1804। रचना - सगीतसागर।

प्रतिप्रभ आत्रेय - ऋग्वेद के 5 वें मंडल का 49 वां सूक्त इनके नाम पर है। सविता की प्रार्थना इस सूक्त का विषय है। प्रस्तुत सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

तन्नो अनर्वा सविता वरूथ तत्सिंधव इष्यन्तो अनुग्मन्।
उप यद् वोचे अध्वरस्य होता राय स्याम पतयो वाजरत्ना ।।

अर्थ - जिसका किसी भी प्रकार का अहित नहीं हो सकता, ऐसा सविता ही हमारा अभेद्य कवच है। वेगवान नदियां हमारी इच्छा पूर्ण करने के लिये बहती हैं। इसी लिये मैं अध्वर (यज्ञ) का होता प्रार्थना करता हूं कि हम लोग सत्वाढ्य व (दिव्य) वैभव के अधिपति बनें।

प्रबोधानन्द सरस्वती - ई. 16 वीं शती। कृतिया- सगीत-माघव, वृन्दावन-महिमामृत तथा चैतन्यचन्द्रामृत।

प्रभाकरभट्ट - ई 16 वीं शती का उत्तरार्ध। माघव भट्ट के पुत्र। बंगाली नैयायिक। कृतियां· रसप्रदीप, अलकार-रहस्य तथा लघु सप्तशतिका स्तोत्र।

प्रभाकर मिश्र (गुरु) - ई 7 वीं शती। अनेक विद्वानों के मतानुसार कुमारिल भट्ट के शिष्य व मीमासा क्षेत्र में "गुरुमत" के संस्थापक। आपकी अलौकिक कल्पनाशक्ति पर मोहित होकर कुमारिल भट्ट ने इन्हें "गुरु" की उपाधि से गौरवान्वित किया। तब से आपका उल्लेख "गुरु" के ही नाम से होने लगा।

भारतीय दर्शन के इतिहास में मिश्रजी का शुभनाम एक देदीप्यमान रूप में अंकित है। अपने स्वतंत्र मत की प्रतिष्ठापना करने हेतु, आपने "शाबरभाष्य" पर बृहती अथवा निबंधन तथा लघ्वी अथवा विवरण नामक दो टीकाए लिखी हैं। उनमें से बृहती प्रकाशित हो चुकी है। अपनी अमोघ विचारशक्ति के बल पर मिश्रजी ने मीमांसादर्शन को विचारशास्त्र बनाने में सहायता की, और दर्शन पर स्थापित कुमारिल भट्ट के एकाधिपत्य को दूर किया।

कप्पुस्वामी शास्त्री ने प्रभाकर मिश्र का काल सन् 610 से 690 के बीच तथा कुमारिल भट्ट का काल सन् 600 से 660 के बीच निश्चित किया है। प्रो. कीथ व डा. गंगानाथ झा के मतानुसार मिश्रजी सन् 600 से 650 के बीच हुए तथा भट्टजी उनसे कुछ काल के उपरात हुए। इन विद्वानों का मत है कि मिश्रजी के ग्रंथों के अनुशीलन से वे भट्टजी से प्राचीन प्रतीत होते हैं।

प्रभाचंद्र - गुरुनाम- पद्मनन्दी सैद्धान्तम्। दक्षिण भारतीय। श्रवण बेलगोल शिलालेखों में उल्लिखित। कार्यक्षेत्र उत्तरभारत (धारानगरी)। माणिक्यनन्दी के शिष्य। चतुर्भुज का नाम भी गुरु के रूप में उल्लिखित। समय के बारे में तीन मान्यताएं हैं (1) ई. 8 वीं शताब्दी, (2) ई. 11 वीं शताब्दी और (3) ई 1065। इनमें द्वितीय मत अधिक युक्तिसंगत है। भोजदेव और जयसिंह देव (ई 1065) के राज्यकाल में वे रहे। रचनाए - प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षामुख व्याख्या), न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रय व्याख्या), तत्त्वार्थवृत्ति पदविवरण (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या), शाकटायनन्यास (शाकटायन व्याकरण व्याख्या), शब्दाम्भोजभास्कर (जैनेन्द्र व्याकरण व्याख्या), प्रवचनसार, सरोजभास्कर (प्रवचनसार व्याख्या), गद्यकथाकोष (स्वतन्त्र रचना), रत्नकरण्डश्रावकाचारटीका, समाधितन्त्रटीका, क्रियाकलाप टीका, आत्मानुशासन टीका और महापुराण टिप्पण। प्राय. ये सभी ग्रंथ महाकाय हैं।

प्रभुदत्त शास्त्री - ई 20 वीं शती। दिल्ली निवासी। "संस्कृत वाग्विजय" नामक 5 अकी नाटक के प्रणेता। इस नाटक में प्राचीन प्राकृत के स्थान पर अर्वाचीन प्रकृत (हिंदी) का उपयोग किया है।

प्रभुवसु आंगिरस - ऋग्वेद के 5 वें मडल के 35 व 36 वें तथा 9 वें मडल के भी 35 व 36 वें सूक्त इनके नाम पर हैं। प्रथम दो सूक्तों का विषय इन्द्र की स्तुति है व द्वितीय दो सूक्तों का विषय सोम की स्तुति है। आपने इंद्र के लिये अशनिधर, अपारप्रज्ञ, अतुलबल, भक्तों पर कृपा करने हेतु अवतीर्ण होनेवाला आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। इस प्रत्येक विशेषण से इन्द्र के चरित्र के विविध अग स्पष्ट होते हैं। उनकी एक ऋचा इस प्रकार है।

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या।
वय शविष्ठ वीर्यं दिवि श्रवो दधीमहि
दिवि स्तोमं मनामहे (ऋ 5 35 8)

अर्थ - हे इन्द्र देव, हमारी ओर कृपया आगमन कीजिये और अपनी प्रगल्भ बुद्धि से हमारे (मनो) रथ पर अपनी अनुकंपा की छाया (संरक्षा) रखिये। हे सामर्थ्यसागर, हम आपके सुयश को स्वर्ग में भी स्थिर कर सकें तथा स्वर्ग में भी आपके ही गुणानुवाद का चिंतन हो ऐसी योजना कीजिये।

अपनी एक ऋचा में (ऋ. 5.36 6) प्रभुवसु आंगिरस ने उन्हें प्राप्त एक दान का वर्णन किया है। वे कहते हैं "न्यायी व सामर्थ्य के प्रशंसक श्रुतरथ (राजा) ने 2 अवलक्ष (अबलख) अश्व, उन पर आरूढ अश्ववीर और उनके साथ 300 सैनिक मुझे अर्पण किये। हे मरुत प्रभो, उस युवा श्रुतरथ राजा के सम्मुख, उसके अधीनस्थ प्रजानन नतमस्तक रहे"।

प्रमथनाथ तर्कभूषण (म.म.) - वाराणसी के राजपण्डित ताराचन्द्र के पुत्र। जन्म- सन् 1866 में, भाटपारा, जिला चौबीस परगना, बंगाल में। कृतियां (काव्य) - रासरसोदय, विजयप्रकाश, और कोकिलदूतम्।

प्रयस्वन्त आत्रेय - आपने ऋग्वेद के 5 वें मंडल के 20 वें सूक्त की रचना की है। अग्नि की स्तुति उस सूक्त का विषय है। प्रस्तुत सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः।
अप द्वेषो अपह्वरो न्यव्रतस्य सश्चिरे।। (ऋ 5.20 2)

अर्थ - हे अग्निदेवता, आप उग्र एवं उत्कट बलाढ्य होने पर भी जो उच्च पद पर पहुंचे हुए अथवा वयस्क लोग आपके अंतःकरण को (भक्तिद्वारा) द्रवीभूत नहीं करते, वे निश्चित ही दूसरों की सेवा में रत पुरुषों के द्वेष व तिरस्कार के पात्र होते हैं।

प्रयाग वेंकटाद्रि - रचना - विद्वन्मुखभूषण (महाभाष्य टिप्पणी)। इसी ग्रंथ के अड्यार में उपलब्ध दूसरी प्रति का नाम है - विद्वन्मुखमण्डन।

प्रयोग भार्गव - ऋग्वेद के 8 वें मंडल का 102 वा सूक्त इनके नाम पर है। आपने विविध नामों से अग्नि की स्तुति की है। अन्न की प्राप्ति के हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों के सफल होने की वे कामना करते हैं। उनकी एक ऋचा इस प्रकार है -

त्वया ह स्विद्युजा वय चोदिष्ठेन यविष्ठय।
अभिष्मो वाजसातये। (ऋ 8 102 3)

अर्थ - हे अति युवा अग्ने, समृद्धि हेतु हमें प्रेरणा देने वाले आपकी सहायता से हम लोग अन्न की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले युद्ध में शत्रु का पराभव करेंगे।

प्रह्लाद बुवा - ई 18 वीं शती। अमृतानुभव नामक (ज्ञानेश्वर कृत) आध्यात्मिक मराठी ग्रंथ का संस्कृत में अनुवाद किया। पिता- शिवाजी। गुरु- राघव। पढरपुर (महाराष्ट्र) के निवासी। बाल्यकाल से ही परमार्थ में रुचि। बाल्यजीवन विषयक अनक आख्यायिकाओं में से एक इस प्रकार है -

एक बार उनकी मां ने कहा "मै देवालय जा रही हू। आंगन में दाल सूखने के लिये फैलाई हुई है। उसे गाय न खाए इसका ध्यान रखना"। मा के जाने के पश्चात् एक गाय आयी और दाल को खाने लगी, किन्तु प्रह्लाद ने उसे नहीं रोका। इसी बीच मा देवालय से लौटी। गाय को देख मा बडी क्रोधित हुई तथा गाय को मारने के लिये दौडी। तब प्रल्हाद ने मां का हाथ पकडा और कहा "मा, पहले अपनी दाल का वजन करके देख लो, कम हुई तो ही गाय को पीटना।" मां ने वैसा ही किया और पाया कि दाल तनिक भी कम नहीं हुई।

छत्रपति शिवाजी महाराज की मृत्यु के उपरान्त, औरंगजेब अति विशाल सेना के साथ दक्षिण पर छा गया। देवालयों को गिराना और देव मूर्तियो की विटंबना करना, उसके अत्याचारों का प्रमुख अग था। अत पढरपुर जाकर भगवान् विठ्ठल की मूर्ति को नष्ट करने का उसने निश्चय किया। यह बात विदित होते ही प्रह्लादबुवा ने विठ्ठल मूर्ति को देवालय से उठाकर अपने घर में छिपा दिया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उस मूर्ति की देवालय में पुन प्राणप्रतिष्ठा की गई। कहा जाता है कि वह मूर्ति आज तक वहा है।

"अमृतानुभव" के संस्कृत अनुवाद के अतिरिक्त प्रल्हादबुवा ने मराठी मे श्रीपाडुरग-माहात्म्य, अहिल्योद्धार, सीतास्वयंवर, प्रमाण लक्षण आदि प्रकरण ग्रंथ लिखे।

आप उत्तम कीर्तनकार भी थे। भागवत के दशम स्कध का पारायण करते हुए माघ वद्य एकादशी के दिन प्रल्हादबुवा का देहावसान हुआ। उनकी समाधि पढरपुरस्थित मदिर में ही है

प्रवर्तकोपाध्याय - रचना - महाभाष्यप्रदीप-प्रकाशिका (प्रकाश)। इस ग्रंथ के अनेक हस्तलेख उपलब्ध हैं।

प्रशस्तपाद (प्रशस्तदेव) - वैशेषिक दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य। "पदार्थधर्मसग्रह" नामक मौलिक ग्रंथ के रचयिता। समय- ईसा की चतुर्थ शती का अंतिम चरण। इनके ग्रंथ का चीनी भाषा में (648 ई मे) अनुवाद हो चुका था। प्रसिद्ध जापानी विद्वान डा उई ने उसका आग्ल भाषा मे अनुवाद किया। इस ग्रंथ की व्यापकता व मौलिकता के कारण इस पर अनेक टीकाए लिखी गई हैं। वैशेषिक सूत्र के पश्चात्, इस दर्शन का अत्यत प्रौढ ग्रंथ, "प्रशस्तपादभाष्य" ही माना जाता है ("पदार्थधर्मसग्रह" की प्रशस्ति, "प्रशस्तपादभाष्य" के रूप में है) यह वैशेषिक दर्शन का आकर ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में भाष्य ग्रंथ के कोई भी लक्षण नहीं फिर भी अनेक विद्वान् इसे भाष्यग्रंथ के तुल्य ही मानते हैं। स्वयं प्रशस्तपाद ने इसे भाष्य ग्रंथ नहीं बताया है। उदयनाचार्यजी के मतानुसार वैशेषिक सूत्रों पर प्रसिद्ध रावणभाष्य के विस्तृत होने के कारण, प्रशस्तपादजी ने वैशेषिक सिद्धान्तों का सकलन सक्षेप में किया है।

प्रियंवदा - ई 17 वीं शती का पूर्वार्ध, पिता - शिवराम। पति- रघुनाथ। फरीदपुर (बगाल) में निवास। "श्यामरहस्य" (कृष्णभक्तिपरक काव्य) की रचयित्री।

प्रेमचन्द्र तर्कवागीश - समय ई. 19 वीं शती। बगाली। कृतियां- शाकुन्तल, उत्तररामचरित और काव्यप्रकाश पर टीकाए।

बकुलाभरण - शठगोप के पुत्र। अपने "यतीन्द्रचम्पू" में इन्होंने रामानुजाचार्य का चरित्र लिखा है।

बटुकनाथ शर्मा (प्रा.) - जन्म- वाराणसी में सन 1895 में। उपनाम- बालेन्द्र। काशी हिन्दू वि वि में प्राध्यापक। पिता ईश्वरीप्रसाद मिश्र। कृतिया- बल्लवदूत, शतकसप्तक,

आत्मनिवेदन-शतक, कालिकाष्टक, सीतास्वयंवर आदि महाकाव्य तथा पाण्डित्य-ताण्डवित (प्रहसन)। आपने भरत के नाट्यशास्त्र का (संशोधित संस्करण का) भी प्रकाशन कराया।

बदरीनाथ शास्त्री - ई. 20 वीं शती। बडौदा निवासी। "विद्यासुधानिधि" की उपाधि से विभूषित। "रत्नावलि" नामक पुष्पगण्डिका के प्रणेता।

बदरीनाथ शर्मा - मुजफ्फरपुर (बिहार) के निवासी। रचना-दीधिति (ध्वन्यालोक की सुबोध टीका)।

बभ्रु आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवे मडल के तीसवें सूक्त के रचयिता। इस सूक्त का विषय इंद्रस्तुति है।

इस सूक्त में बभ्रु आत्रेय ने स्वय की जानकारी भी दी है। उससे ज्ञात होता है कि बभ्रु आत्रेय ऋणचय नामक राजा के आश्रय में रहते थे।

बरु - आगिरस कुल के एक सूक्तद्रष्टा। ऋग्वेद के दसवें मडल के 96 वें सूक्त के रचयिता। ऐतरेय ब्राह्मण (6.25) तथा शांखायन ब्राह्मण (25 8) में इनका उल्लेख है।

बर्बरस्वामी - स्कन्दस्वामी के निर्देशानुसार दुर्गासिंह के अतिरिक्त निरुक्त के एक व्याख्याकार।

बलदेव विद्याभूषण - ई 18 वी शती का पूर्वार्ध। मेदिनीपुर निवासी। इनका जन्म बगाल मे वैश्य जाति में हुआ था। इन्होंने गौडीय वैष्णव धर्म स्वीकार किया था। रूप गोस्वामी की स्तवमाला तथा उत्कलिका वल्लरी के टीकाकार।

इन्होने पीतांबरदास के निकट शास्त्राध्ययन करने के पश्चात् वृदावन मे जाकर विश्वनाथ चक्रवर्ति का (जिनका स्वतत्र पथ था) शिष्यत्व ग्रहण किया। विश्वनाथ चक्रवर्ती के पश्चात् बलदेव ही उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने वैष्णव सप्रदाय की दृष्टि से ग्रथ लेखन किया।

उस समय वृदावन जयपुरनरेश के शासनाधीन था। कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने वृदावन के चैतन्य सप्रदाय के विरुद्ध राजा के कान फूके। राजा ने सत्यासत्य का पता लगाने के लिये जयपुर में पडितों की सभा बुलायी। उस सभा मे उपस्थित होकर बलदेव ने अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि चैतन्य मत वेदविरोधी न होकर वेदानूकुल है।

उस सभा में पंडितों ने उनसे पूछा - "तुम्हारे मत का ब्रह्मसूत्रभाष्य है क्या।" बलदेव ने कहा "अभी तक नहीं है, परंतु वह निर्माण करूगा"। इसके पश्चात् बलदेव ने ब्रह्मसूत्र पर वैष्णवमतानुसार गोविंदभाष्य लिखा।

इसके अतिरिक्त इन्होंने सिद्धांतरत्न, पद्यावली, कृष्णानदिनी, व्याकरणकौमुदी, प्रमेयरत्नावलि, साहित्यकौमुदी, वेदातस्यमतक, काव्यकौस्तुभ, छंद·कौस्तुभभाष्य आदि ग्रथ लिखे है।

बलदेवसिंह - वाराणसी के निवासी। रचना-चक्रवर्ति-व्हिक्टोरिया-भारत वर्षे 32 विजयपत्रम्। ई 1889 में सगृहीत।

बलदेवसिंह वर्मा (डा.) - ई 20 वीं शती। एम ए ,पीएच डी। व्याकरणाचार्य। शिमला वि वि (हिमाचल प्रदेश) मे प्राध्यापक तथा सस्कृत विभागाध्यक्ष। सस्कृत और भाषाविज्ञान पर प्रभुत्व। "हर्षदर्शन" नामक एकाकी के प्रणेता।

बलरामवर्मा (बालरामवर्मा) - कोचीन नरेश बालमार्तण्ड वर्मा के भतीजे। जन्म सन् 1724 मे। राजाधिकार 1753 ई से 1798। शूर, दयालु, लोकप्रिय, धर्मराज इन नामों मे भी प्रसिद्ध। कवियो के लिये उदार। स्वय भाषाशास्त्री। इनकी राजसभा के सदस्य सदाशिव मखी की रचना "रामवर्मयशोभूषणम्" तथा अप्पय दीक्षित के वंशज वेंकट सुब्रह्मण्याध्वरिन् की रचना "वसुमतीकल्याणम्"। स्वय इनकी रचना बालरामभरतम् (संगीतविषयक) है।

बल्लालसेन - बगाल के राजा विजयसेन इनके पिता थे। ई स 1158 में ये गद्दी पर बैठे। इनके गुरु का नाम अनिरुद्ध भट्ट था।

इन्होंने अद्‌भुतसागर (ज्योतिषविषयक) दानसागर, प्रतिष्ठासागर, आचारसागर तथा व्रतसागर नामक (धर्मशास्त्र विषयक) ग्रथो की रचना की।

बल्लालसेन अत्यंत पराक्रमी पुरुष थे और ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य भी। इन्होंने 1168 ई मे "अद्‌भुतसागर" नामक ग्रथ का प्रणयन किया था। इन्होंने ग्रहों के सबध मे जितनी बातें लिखी हैं, उनका स्वय परीक्षा कर विवरण दिया है। यह ग्रंथ इन्होंने उनके राज्याभिषेक के 8 वर्षो के बाद लिखा था। यह अपने विषय का विशाल ग्रथ है, जिसमे लगभग 8 हजार श्लोक हैं। इस ग्रथ का प्रकाशन प्रभाकरी यत्रालय काशी से हो चुका है।

बसव नायक - हुकेरी (कर्नाटक) के निवासी। रचना-शिवतत्त्व रत्नाकर। ई 18 वी शती।

बाणभट्ट - समय ई 7 वी शती। सस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कथाकार व सस्कृत गद्य के सार्वभौम सम्राट्। सस्कृत के साहित्यकारों में एकमात्र बाण ही ऐसे कवि हैं, जिनके जीवन के सबध मे पर्याप्त मात्रा मे प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध होती है। इन्होंने अपने ग्रथ "हर्षचरित" की प्रस्तावना व "कादबरी" के प्रारंभ में अपना परिचय दिया है।

इनके पूर्वज सोननद के निकटस्थ प्रीतिकूट नामक नगर के निवासी थे। कतिपय विद्वानो के अनुसार यह स्थान बिहार प्रात के आरा जिले मे "पियरो" नामक ग्राम है, तो अन्य कुछ विद्वान उसे गया जिले के "देव" नामक स्थान के निकट "पिट्रो" नामक ग्राम मानते हैं। बाण का कुल पाडित्य के लिये विख्यात था। ये वात्स्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके यहां अनेक छात्र यजुर्वेद का पाठ किया करते थे। कुबेर के चार पुत्र हुए। इनमें से पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति

था। अर्थपति के 11 पुत्र थे जिनमे मे चित्रभानु के पुत्र बाणभट्ट थे। बाण की माता का नाम राजदेवी था।

इनकी मा का देहात इनकी बाल्यावस्था मे ही हो चुका था। पिता द्वारा ही इनका पालन पोषण हुआ। 14 वर्ष का आयु मे बाण के पिता भी इन्हे अकेला छोड स्वर्गवासी हुए। अत योग्य अभिभावक के सरक्षण के अभाव मे ये अनेक प्रकार की शैशवोचित चपलताओं मे फस गए और देशाटन करने के लिये निकले। इन्होंने अनेक गुरुकुलो मे अध्ययन किया और कई राजकुलों को देखा।

विद्वत्ता के प्रभाव मे इन्हे महाराज हर्षवर्धन की सभा मे स्थान प्राप्त हुआ। कुछ दिनो तक वहा रहकर बाण अपनी जन्मभूमि को लौटे और हर्षवर्धन की जीवन गाथा प्रस्तुत की। फिर इन्होंने अपने महान् ग्रथ "कादबरी" का प्रणयन प्रारभ किया, किन्तु इनके जीवन काल मे यह ग्रथ पूरा न हो सका। उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्ही की शैली मे उनके पुत्र भूषणभट्ट ने उनकी "कादबरी" के उत्तर भाग को पूर्ण किया। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि कई स्थलों पर बाणतनय ने अपने पिता से भी अधिक प्रौढता प्रदर्शित की है।

बाण की सतति के बारे मे किसी भी प्रकार का उल्लेख नही है। धनपाल की "तिलकमजरी" मे बाणतनय पुलिध का वर्णन है, जिसके आधार पर विद्वानों ने उनका नाम पुलिन भट्ट निश्चित कर दिया है। "केवलोऽ पि स्फुरन् बाण करोति विमदान् कवीन्। कि पुत्त क्लुप्तसधान पुलिधकृतसन्निधि ।।" अनुमान है कि इनके गुरु भचु नामक महापडित थे और इनका विवाह मयूरभट्ट नामक एक विद्वान पडित की भगिनी के साथ हुआ था।

बाणकृत 3 ग्रथ प्रसिद्ध हैं। हर्षचरित, कादबरी और चण्डीशतक। इनकी अन्य दो कृतिया भी प्रसिद्ध हैं व हैं पार्वतीपरिणय व मुकटताडितक पर विद्वान् इन्हे अन्य बाणभट्ट नामधारी लेखक की रचनाए मानते हैं। बाणभट्ट के बारे मे अनेक कवियो की प्रशस्तिया उपलब्ध होती हैं। बाणभट्ट का समय 607 ई से 648 ई (महाराज हर्षवर्धन का शासनकाल) तक है।

बाणभट्ट अत्यत प्रतिभाशाली साहित्यकार है। इन्होंने कादबरी की रचना कर, सस्कृत कथा साहित्य मे युग प्रवर्तन किया। हर्षचरित की प्रस्तावना में इनकी अलकार प्रचुर शैली सबधी मान्यता का पता चलता है। इनके वर्णन सस्कृत काव्य की निधि हैं। धनपाल ने उन्हे अमृत उत्पन्न करने वाला गभीर समुद्र कहा है। अपनी वर्णनचातुरी के लिये बाण प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे हैं और आचार्यो ने इनके इस गुण पर मुग्ध हो कर "बाणोच्छिष्ट जगत सर्वम" तक कह दिया है।

बाणेश्वर- ई 18 वी शती। जन्म-हुगली जनपद (बगाल) के गुप्तपल्ली ग्राम मे। पिता-रामदेव (तर्कवागीश नैयायिक)। उन्हीं से शिक्षा प्राप्त।

नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र के सभाकवि। बाद में मुर्शिदाबाद मे अलिवर्दीखान के पास रहे। फिर बर्दवान के राजा चित्रसेन के पास ई 1744 तक रहे। उसकी मृत्यु के पश्चात् फिर कृष्णचन्द्र के आश्रय में। अनन्तर कलकत्ता के शोभा बाजार के महाराज नवकृष्णदेव के आश्रय में। अन्त मे सन् 1755 मे काशीयात्रा की।

वारेन हेस्टिग्ज के आदेशानुसार "विवादार्णव-सेतु" की रचना, जो फारसी तथा अग्रेजी मे अनूदित है। यह ग्रथ 21 खण्डो मे है। ये समस्यापूर्ति मे अद्वितीय आशुकवि थे।

कृतिया- चन्द्राभिषेक (नौ अक), चित्रचम्पू, रहस्यामृत (महाकाव्य), वाराणसीशतक, शिवशतक (काव्य), हनुमत्स्तोत्र, तारास्तोत्र और विवादार्णवसेतु (धर्मशास्त्र-विषयक ज्ञान-कोश के समान)।

बादरायण- ई पू 6 वी शती (अनुमानत)। इनके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रो को वेदातसूत्र अथवा व्याससूत्र कहते हैं। ये "व्यास"- उपाधि से विभूषित थे। इन्होंने अपने ब्रह्मसूत्रो में उपनिषदो के भिन्न-भिन्न सिद्धातो का निवेदन किया है।

बापूदेव शास्त्री- जन्म-1686 ई मृत्यु-1755 ई। पिता-सीताराम। मूल निवास-अहमदनगर (महाराष्ट्र)। अध्ययनार्थ अधिक काल काशी मे वास्तव्य। भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योति शास्त्र का तौलनिक अभ्यास कर अनेक भाषाओ में ग्रथ-लेखन। आधुनिक काल के एकमेव श्रेष्ठ ज्योति शास्त्रज्ञ। शासकीय सस्कृत कालेज मे अध्यापक। रचनाए- रेखा-गणितम् (प्रथमाध्याय), त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन अष्टादशविचित्र-प्रश्न-सग्रह, तत्त्वविवेक-परीक्षा, मानमन्दिरस्य यत्रवर्णनम्, अकगणितम् आदि प्रकाशित। अन्य हस्तलिखित ग्रथ प्रकाशित। हिन्दी में प्रभूत लेखन। लीलावती का एक सस्करण प्रकाशित। सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय का तथा सूर्यसिध्दान्त का अग्रजी अनुवाद विल्किन्सन की सहायता से किया। मैथिल पण्डित नीलाम्बर शर्मा की पाश्चात्य पद्धति के अनुसार लिखित संस्कृत रचना गोलप्रकाश का प्रकाशन किया। पाण्डित्य के कारण शासन द्वारा सी आई ई तथा महामहोपाध्याय की उपाधिया प्रदत्त।

बालकवि- ई 16 वी शती। उत्तर अर्काट में मुलुंड्रम के निवासी। बाद में आश्रयदाता की खोज में केरल में आगमन। कोचीन के राजा रामवर्मा द्वारा आश्रय प्राप्त। पिता-कालहस्ती। पितामह-मल्लिकार्जुन। प्रपितामह-यौवनभारती (कवि)। गुरु-कृष्ण। रचनाए- (1) रामवर्मविलास, (2) रत्नकेतूदय नाटकम्, (3) शिवभक्तानदम् (4) गैर्वाणीविजयम्।

बालकृष्ण- तैत्तिरीय सहिता के भाष्यकार।

बालकृष्ण दीक्षित- जन्म-1740 ई में। दीक्षितजी जयपुर-निवासी औदीच्य ब्राह्मण थे। मारवाड-शासक अजितसिह के समय में

इनका जन्म हुआ था। "अजितसिंहचरितम्" महाकाव्य, इनकी एकमात्र कृति है जिसमें अजितसिंह का चरित्र 10 सर्गों में वर्णित है।

बालचन्द्- मूल संघ, देशीयगण, पुस्तक गच्छ और कुन्दकुन्दान्वयके विद्वान्। गुरु-नयकीर्ति। भ्राता-दामनन्दी। समय-ई. 12 वीं शती। ग्रंथ-प्रवचनसार, समयसार, पचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश और तत्त्वार्थसूत्र (तत्त्वरत्न-प्रदीपिका) इन पांचो ग्रंथों पर टीकाएं उपलब्ध हैं।

बालसरस्वती- व्याकरण के एक सुप्रसिद्ध पंडित तथा कवि भी थे। इनका राघवयादव-पाडवीय नामक महाकाव्य (शब्दश्लेश द्वारा) तीन अर्थो को प्रकट करता है। काव्य का प्रत्येक श्लोक राम, कृष्ण तथा पाडव तीनो से सबधित अर्थ प्रकट करता है, जिससे सपूर्ण काव्य में रामायण, महाभारत तथा भागवत की कथा का समावेश हो गया है। इन्होंने चद्रिकापरिणय नामक एक अन्य काव्य की भी रचना की है।

बालचंद्र सूरि- समय- ई 13 वीं शताब्दी। "वसत-विलास" नामक महाकाव्य के प्रणेता। इस महाकाव्य में राजा वस्तुपाल का जीवन-चरित्र वर्णित है। कवि ने इसकी रचना, वस्तुपाल के पुत्र के मनोरजनार्थ की थी। "प्रबध-चितामणि" के अनुसार यह काव्य वस्तुपाल को इतना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ कि उन्होने इस पर बालचद्र सूरि को एक सहस्त्र सुवर्ण मुद्राएं प्रदान की और उन्हें आचार्य-पद पर अभिषिक्त किया।

बाहुवृक्त आत्रेय- ऋग्वेद के पाचवे मंडल के 71 एव 72 दो सूक्त इनके नाम पर हैं। इन सूक्तो में मित्र और वरुण की स्तुति की गयी है। एक ऋचा इस प्रकार है-

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषता यज्ञमिष्टये।
नि बर्हिषि सदता सोमपीतये।।

अर्थ- हमारी अभीप्सा पूर्ण हो इसके लिये मित्र और वरुण हमारे इस यज्ञ को स्वीकार करें। इस लिये अब दोनो देवताओं, सोमरस के आस्वादन के लिये इस कुशासन पर आप आरोहण कीजिये।

बिल्वमंगल- (लीलाशुक) पिता-दामोदर। माता-नीली या नीरी। अपने जीवन के पूर्वार्ध में ये अत्यत विषयासक्त थे। चिंतामणि नामक वेश्या के घर पर दिन-रात पड़े रहते थे।

एक बार अपने पिता की श्राध्दतिथि पर भी वे चितामणि वेश्या के यहां गये। वेश्या को अपार दु:ख हुआ। उसने उनकी निर्भत्सना करते हुए कहा, मुझ पर जितने आसक्त हो उतना भगवान् कृष्ण पर प्रेम करो तो तुम्हारा और तुम्हारे कुल का उद्धार हो जायेगा। बिल्वमंगल को उपरति हुई। वहां से वे सीधे व्रजभूमि की ओर चल पडे। राह में सोमगिरि नामक महात्मा से इनकी भेंट हुई। उन्होंने बिल्वमगल को वैष्णवदीक्षा दी और इनका नाम "लीलाशुक" रखा। इनकी यात्रा जारी रही। रास्ते में सुदर-सुंदर वस्तुओं को देख कर इनका मन उनकी ओर आकृष्ट होता था। एक दिन इनके मन में विचार आया "आखे बडी पापी हैं। वे भगवान् के दर्शन में बाधक हैं, क्यों कि ये अनेक विषयों की ओर मन को आकर्षित करती हैं। उन्होंने तुरत एक कांटा लेकर उससे अपनी दोनों आंखे बेध डाली। दृष्टिविहीन बिल्वमगल ठोकरे खाते हुए ब्रज की ओर चलने लगे।

कहते है कि भगवान् कृष्ण को इनकी दया आयी। उन्होंने बालक का रूप धारण कर उन्हें अपने हाथ का सहारा दिया और वृदावन तक पहुचा दिया। वहां उन्होंने बिल्वमगल से बिदाई मागी। परतु इन्होंने उनका हाथ दृढता से पकड रखा। फिर भी भगवान् कृष्ण हाथ छुडा कर चल पड़े। तब इन्हें अनुभव हुआ कि इन्हें पहुचाने वाला बालक स्वय भगवान कृष्ण थे। उस समय इनके मुख से निम्न श्लोक निकला-

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुष गणयामि ते।।

बिल्वमगल वृदावन में रहने लगे। वहा इन्होने कृष्ण की सरस और मधुर लीलाओं पर 112 श्लोक रचे। इनके ये श्लोक "कृष्णकर्णामृत" के नाम से विख्यात हुए। चैतन्य महाप्रभु इनका नित्य पाठ करते थे इससे कृष्णकर्णामृत की महत्ता प्रमाणित होती है। कृष्णकर्णामृत का निम्न श्लोक बिल्वमगल की हरि-दर्शन की उत्कटता प्रकट करता है-

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथ नयामि।।

अर्थ हे हरि, हे अनाथ बधु, हे करुणासागर, तुम्हारे दर्शन के बिना मेरे विफल सिद्ध होनेवाले दिन मैं कैसे पार करु। मुझे अत्यत दु:ख हो रहा है।

बिल्हण- पिता-ज्येष्ठ कलश और माता-नागदेवी। जन्म-काश्मीर के प्रवरपुर के निकटवर्ती ग्राम खानमुख मे। कौशिक गोत्री ब्राह्मण।

बिल्हण के प्रपितामह और पितामह वैदिक वाङ्मय के प्रकाड पडित थे। इनके पिता ने पतजलि के महाभाष्य पर टीका लिखी थी। बिल्हण ने वेद, व्याकरण तथा काव्यशास्त्र का अध्ययन काश्मीर मे ही पूर्ण किया था।

ई स 1062-65 के बीच किसी समय बिल्हण ने काश्मीर छोडा और देश के विभिन्न भागो का भ्रमण किया। अत में कर्नाटक के चालुकक्यवशीय सम्राट् विक्रमाक की राजसभा में उन्हें सम्मानपूर्वक आश्रय मिला। वहीं इन्होंने कालिदास के रघुवंश के अनुकरण पर "विक्रमाकदेव-चरित" नामक महाकाव्य लिखा। उनका और पर्याय से बिल्हण का समय 1076-1127 ई है।

बिल्हण का कर्णसुदरी नामक नाटक और चौरपचाशिका नामक लघु प्रणयकाव्य भी उपलब्ध है।

चौरपंचाशिका के संबध में एक किंवदती इस प्रकार है-

बिल्हण का किसी राजकुमारी पर प्रेम था। यह वार्ता राजा को ज्ञात होते ही उसने बिल्हण को मृत्युदड दिया। जब सिपाही वधस्तंभ की ओर बिल्हण को ले जाने लगे, तब इनके मन में अपने अनुभूत प्रणय की स्मृतिया उभर आयीं और इन्होंने उन्हें श्लोकबद्ध किया। उन श्लोकों को सुन कर राजा का मन द्रवित हुआ। उसने बिल्हण को मुक्त किया तथा उनका राजकन्या के साथ विवाह भी कर दिया।

ऐतिहासिक घटनाओं के निदर्शन में ये बडे जागरूक रहे हैं। वैदर्भी-मार्ग के कवि हैं। बिल्हण ने राजाओं की कीर्ति ओर अपकीर्ति प्रसारण का कारण, कवियो को माना है। इनके महाकाव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन जे.जी बूल्हर द्वारा 1875 ई में हुआ था। फिर हिन्दी अनुवाद के साथ वह चौखबा विद्याभवन से प्रकाशित हुआ।

बुद्धघोष- समय- सभवत 4-5 वी शती। टीकाकार बुद्धघोष से भिन्न। इन्होने "पद्यचूडामणि" नामक महाकाव्य की रचना की है। ये पाली-लेखको व बौद्ध-धर्म के व्याख्याकारो में महनीय स्थान के अधिकारी हैं। इन्होंने "विसुद्धिमग्ग" नामक बौद्ध-धर्म-विषयक ग्रथ का भी प्रणयन किया है, तथा "महावश" व "अठ्ठ कथा" नामक ग्रथ भी इनके नाम पर प्रचलित हैं। ये ब्राह्मण से बौद्ध हुए थे। इनके एक ग्रथ का चीनी अनुवाद 488 ई में हुआ था। जैसा कि इनके महाकाव्य "पद्मचूडामणि" से ज्ञात होता है, ये अश्वघोष तथा कालिदास के काव्यों से पूर्णत परिचित थे।

बुध्ददेव पाण्डेय- ई 20 वीं शती। दयानद कन्या विद्यालय, मीठापूर (पटना) में अध्यापक। "आदिकवि" नामक नाटक के प्रणेता।

बुद्धपालित- समय- प्राय पाचवीं शती। महायान सम्प्रदाय के महान् आचार्य। शून्यवाद के प्रमुख व्याख्याकार। प्रासगिक मत के प्रतिष्ठापक। इसके कारण विशेष प्रसिद्ध। रचना-माध्यमिक-कारिका पर "अकुतोभया" नामक टीकाग्रथ। अन्य स्वतत्र रचना नहीं।

बुध आत्रेय- ऋग्वेद के पाचवे मडल के प्रथम सूक्त के रचयिता। इस सूक्त में अग्नि की स्तुति की गयी है।

बुधवीस- वंश-अग्रवाल। साहू तोतू के पुत्र और म हेमचन्द्र के शिष्य। समय- ई 16 वीं शती। ग्रथ-बृहत्सिद्धचक्र-पूजा, धर्मचक्र-पूजा, नन्दीश्वर-पूजा और षष्टिमडल-यन्त्र-पूजापाठ।

बूल्हर जे. जी.- जर्मनी के प्राच्य-विद्या-विशारद। जर्मनी मे 19 जुलाई 1837 ई को जन्म। हनोवर-राज्य के अतर्गत, वोरलेट नामक ग्राम के निवासी। एक साधारण पादरी की सतान । शैशव से ही धार्मिक रुचि। उच्च शिक्षा प्राप्ति के हेतु गार्टिजन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट व वहा सस्कृत के अनूदित ग्रथो का अध्ययन। 1858 ई में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, और भारतीय विद्या के अध्ययन में संलग्न हुए। आर्थिक सकट होते हुए भी बडी लगन के साथ भारतीय हस्तलिखित पोथियो का अन्वेषण कार्य प्रारभ किया। तदर्थ आप पेरिस, लदन व ऑक्सफोर्ड के इडिया आफिस-स्थित विशाल ग्रथागारों मे उपलब्ध सामग्रियो का आलोडन करने के लिये गए। सयोगवश लदन में मैक्समूलर से भेंट होकर इस कार्य में पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। लदन में ये विडसर के राजकीय पुस्तकालय में सह-पुस्तकालयाध्य के रूप में नियुक्ति हुए व अतत गार्टिजन-विश्वद्यिालय के पुस्तकालय में सह-पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में इनकी नियुक्ति हुई। भारतीय विद्या के अध्ययन की उत्कट अभिलाषा के कारण ये भारत आए और मैक्समूलर की सस्तुति के कारण बबई-शिक्षा-विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष हार्वड ने इन्हे मुबई-शिक्षा-विभाग में स्थान दिया। यहा ये 1863 ई से 1880 ई तक रहे। विश्वविद्यालय का जीवन समाप्त होने पर इन्होंने स्वय को लेखन-कार्य में लगाया और "ओरिएट एण्ड ऑक्सीडेंट" नामक पत्रिका में भाषा-विज्ञान व वैदिक शोधविषयक निबध लिखने लगे। इन्होंने "बबई सस्कृत-सीरीज" की स्थापना की, और वहा से "पचतत्र", "दशकुमार-चरित" व "विक्रमाकदेवचरित" का सपादन व प्रकाशन किया। सन् 1867 में मर रेमाड वेस्ट नामक विद्वान के सहयोग मे इन्होंने "डाइजेस्ट-ऑफ हिंदू लॉ" नामक पुस्तक का प्रणयन किया। इन्होंने सस्कृत की हस्तलिखित पोथियो की खोज का कार्य अक्षुण्ण रखा, और 1868 ई में एतदर्थ शासन की ओर से बगाल, मुबई व मद्रास मे सस्थान खुलवाये। डा कीलहार्न, बूल्हर, पीटर्सन, भाडारकर, बर्नेल प्रभृति विद्वान भी इस कार्य में लगे। बूल्हर को मुबई शाखा का अध्यक्ष बनाया गया। बूल्हर ने लगभग 2300 पोथियो को खोज कर उनका उद्धार किया। इनमें से कुछ बर्लिन-विश्वद्यिालय मे गयी तथा कुछ पोथियों को इडिया ऑफिस लाइब्रेरी लदन में रखा गया। सन् 1887 में इन्होंने लगभग 500 जैन ग्रथो के आधार पर जर्मन भाषा मे धर्म-विषयक एक ग्रथ की रचना की, जिसे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

इस प्रकार अनेक वर्षों तक निरतर अनुसधान-कार्य मे जुटे रहने के कारण इनका स्वास्थ्य गिरने लगा । अत आरोग्य लाभ हेतु, ये वायना (जर्मनी) चले गए। वायना-विश्वविद्यालय मे इन्हे भारतीय साहित्य व तत्त्वज्ञान के अध्यापन का कार्य मिला। वहा इन्होंने 1886 ई मे "ओरीएटल इन्स्टीट्यूट" की स्थापना की और "ओरीएटल जर्नल" नामक पत्रिका का प्रकाशन इन्होंने किया। इन्होने 30 विद्वानो के सहयोग से "एनसायक्लोपेडिया ऑफ् इडो-आर्यन् रिसर्च" का सपादन-कार्य प्रारभ किया किन्तु इसके केवल 9 भाग ही प्रकाशित हो सके।

अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण, बूल्हर विश्वविश्रुत विद्वान

हो गए। एडिनबरा-विश्वविद्यालय ने इन्हें डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया। दि 8 अप्रैल 1898 ई को झील मे नौका-विहार करते हुए ये अचानक जल-समाधिस्थ हो गए। उस समय आपकी आयु 61 वर्ष की थी।

बृहदुक्थ वामदेव - वामदेव के पुत्र हैं या वशज, इस विषय में निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। ऋग्वेद के 10 वें मंडल के 54-56 सूक्तो के द्रष्टा। इनके पुत्र का नाम वाजिन था। पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर के भाग ले जाने की इन्होंने देवताओ से प्रार्थना की है (10-56)। ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि इन्होने पाचाल देश के दुर्मुख नामक राजा का राज्याभिषेक किया था।

इनके तीनो सूक्त इद्र-स्तुतिपरक हैं। इन सूक्तों में इनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। ये सूक्त श्रेष्ठ काव्यगुणों से युक्त हैं।

बृहद्दिव आथर्वण- ऋग्वेद के 10 वे मडल के 120 वें सूक्त के द्रष्टा। यह सूक्त इद्रस्तुतिपरक है। शाखायन आरण्यक मे इन्हे सुम्रयु का शिष्य कहा गया है। (15-1)।

बृहस्पति आंगिरस- ऋग्वेद के नवम मडल के 39 वे तथा 40 वे सूक्त के द्रष्टा। इन सूक्तो में सोम की स्तुति की गयी है।

बृहस्पति- ऋग्वेद के 10 वें मडल के 71 तथा 72 वे सूक्त के द्रष्टा। इनके नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- "वाग् बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद् बृहस्पति", वाणी का पति बृहस्पति।

अपने सूक्त में दिव्य वाणी का महत्त्व बतलाते हुए ये कहते हैं- "सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखाय सख्यानि जानते। भद्रेषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि"। (ऋ 10-71-2)।

अर्थ- जिस प्रकार चलनी से सत्तू छानकर साफ करते हैं, उसी प्रकार शुद्ध बुद्धि के सत्पुरुष अपने अत करण से ही भाषण करते हैं। ऐसे समय वे उस भाषण का मर्म समझते हैं जो भगवान् के प्रिय होते हैं तथा इन (सत्पुरुषो की) वाणी मे मगलरूप लक्ष्मी निवास करती है।

इन्हे चतुर्विशति रात्र, अन्य कुछ यागो (ते स.7-4-1) तथा कुछ सामो के रचयिता कहा जाता है। बताया जाता है कि इन्होंने याज्ञवल्क्य को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दी थी।

बृहस्पति (अर्थशास्त्रकार)- अर्थशास्त्र के एक प्राचीन आचार्य। इनके द्वारा रचित अर्थशास्त्र का ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, परतु कौटिल्य ने अपने "अर्थशास्त्र" ग्रथ में बार्हस्पत्य शाखा के मतो का छह बार उल्लेख किया है।

राजा के 16 प्रधानमंत्री हों ऐसा इनका मत था। महाभारत के अनुसार (शांति 59 80 85) ब्रह्मा द्वारा धर्म, अर्थ तथा काम-विषय पर लिखे हुए प्रचंड ग्रथ का, इन्होंने 3 हजार अध्यायों में संक्षेप किया है। वनपर्व में (महाभारत) बृहस्पति-नीति का उल्लेख है। शांतिपर्व में बृहस्पति के कुछ श्लोक तथा गाथाएं दी गयी हैं। मनुस्मृति को चार विभागों में विभाजित करने का श्रेय जिन चार ऋषियो को दिया जाता है, उनमें बृहस्पति एक हैं। अन्य तीन ऋषि हैं- आंगिरस, नारद और भृगु।

बृहस्पति मिश्र- ई 15 वीं शती। पिता-गोविन्द। माता-नीलमुखायी देवी। "रायमुकुट" के नाम से विख्यात। राढ प्रदेश (बंगाल) के निवासी। गौड-नरेश से समाश्रय प्राप्त। कृतिया- पदचन्द्रिका अथवा अमरकोश-पंचिका, व्याख्याबृहस्पति (रघुवश तथा कुमार पर टीका) और निर्णयबृहस्पति (माघ काव्य पर टीका)।

बेलुल सुब्रह्मण्य शास्त्री- ई 20 वीं शती। सस्कृत तथा तेलुगु में एम. ए। ए वी एस आर्ट्स कालेज, विशाखापट्टम में तेलुगु के व्याख्याता। "वरुथिनी-प्रवर" नामक एकांकी के प्रणेता।

बेल्लमकोण्ड रामराय- अल्पजीवन काल में लोकोत्तर ग्रथसम्भार की निर्मिति करने वाले प्रकाण्ड विद्वान्। जन्म 1875 ई में। पिता-मोहनराय, माता-हनुमाम्बा। नरसाराबुपेट (आन्ध्र) के निवासी। पिता का शीघ्र ही देहान्त। काका के पास अध्ययन। गुरु-सीताराम। हयग्रीवोपासना एव रत्नगुरू के पास साधना। अद्भुत काव्य-शक्ति। प्राय 16 वर्ष की आयु मे रुक्मिणी-परिणय-चम्पू (सटीक) और कृष्णलीलातरगिणी इन काव्यों की निर्मिति। आदिलक्ष्मी से विवाह। दैनिक कार्यक्रम-उपासना, अध्यापन, अध्ययन, चिन्तन तथा ग्रंथशोधन व लेखन। सिद्धान्त-कौमुदी पर शरद्-रात्रि नामक टीका। गुरु-रामशास्त्री प्रसन्न। चम्पू-भागवत की टीका गुरु के आदेश से की। इनकी कुल रचनाएं 143 हैं। आयु मर्यादा 38 वर्ष। मधुमेह से मृत्यु। पुल्य उमामहेश्वर शास्त्री ने इनका चरित्र लिखा (108 श्लोक) और इनकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन किया।

प्रमुख रचनाएं- भगवद्गीताभाष्यार्थ-प्रकाश, समुद्रमन्थन-चम्पू, कन्दर्पदर्पविलास (भाण), शारीरक-चतुःसूत्रीविचार, शकराशकर-भाष्यविमर्श, वेदान्तकौस्तुभ, अद्वैतविजय, मुरारिनाटक व्याख्या, दशावताराष्टोत्तराणि, धर्मप्रशसा, काममीमासा, त्रितरसम्मतम्, विद्यार्थिविद्योतनम्, रामायणान्तरार्थ, भारतान्तरार्थ, मोक्षप्रासाद, ब्राह्मणशब्दविचार आदि।

बोकील, विनायकराव- जन्म-दि 8-1-1890 को, सातारा जिले में। स्नातकीय शिक्षा पुणे के फर्ग्युसन कालेज में। सन् 1939 से 1945 तक शिक्षा-विभाग में इन्स्पेक्टर। पुणे में प्राध्यापक के पद पर भी रहे। प्रवृत्ति आध्यात्मिक।

कृतियां- (नाटक)- श्रीकृष्ण-रुक्मिणीय, सौभद्र, श्रीशिववैभव, भीमकीचकीय व रमा-माधव जिसमें माधवराव पेशवा और उनकी धर्मपत्नी सती रमाबाई का व्यक्तित्व चित्रित किया है। (बालोपयोगी-बालरामायण), बालभागवत और बालभारत। इनके अतिरिक्त मराठी और अग्रेजी में भी ग्रंथ-लेखन किया है।

बोधायन- संभवत. ईसा पूर्व छठी से तीसरी शती के बीच

इनका आविर्भाव हुआ था। कल्पसूत्र के रचयिता। ये कृष्णयजुर्वेदीय थे। बर्नेल के अनुसार इनके छह सूत्र उपलब्ध हैं। वे इस प्रकार है- 1 श्रौतसूत्र, 2 कर्मान्तसूत्र, 3 द्वैधसूत्र, 4. गृह्यसूत्र, 5 धर्मसूत्र और 6 शुल्बसूत्र। बौधायन-शाखा के लोग संप्रति आन्ध्र में कृष्णा नदी के मुहाने के निकटवर्ती क्षेत्र में अधिक सख्या मे है।

बोपदेव- मुग्धबोध नामक लघु व्याकरण-तन्त्र के प्रणेता। पिता-केशव। गुरु-धनेश्वर (धर्मेश)। निवास-दौलताबाद (देवगिरि) के समीप। देवगिरि के हेमाद्रि के मन्त्री। समय-वि स 1300-1350। अन्य रचनाए-कवि-कल्पद्रुम नामक धातुपाठ-सग्रह और उसकी टीका, मुक्ताफल, हरिलीलीविवरण, शतश्लोकी (वैद्यक ग्रथ) और हेमाद्रि नामक धर्मशास्त्रीय निबन्ध।

बोम्मकांटि रामलिंगशास्त्री- ई 20 वीं शती। उस्मानिया वि वि हैदराबाद में सस्कृत-विभागाध्यक्ष। शिक्षा-एम ए. (भारतीय पुरातत्त्व) पीएच.डी (सस्कृत) तथा शास्त्री। प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्याओं के ज्ञाता। नाट्यसाहित्य आधुनिक विदेशी पद्धति पर विकसित किया। कृतिया- सत्याग्रहोदय (नाटक), दशग्रीव (पद्य-सवाद), जवाहर-श्रध्दाजलि, लघुगीतसग्रह, गेयाजलि (कविता-संकलन), सस्कृतिकरणम्, शुन शेप (एकाकी), मेघानुशासन (एकाकी), सुग्रीव-सख्य, मातृगुप्त (एकाकी), देवयानी और यामिनी (नभोनाट्य) और विक्रान्त-भारत।

ब्रजनाथ तैलंग- "मनोदूत" नामक सदेश-काव्य के रचयिता। रचना-काल, वि स 1814। इस काव्य की रचना, इन्होने वृदावन मे की थी। पिता-श्रीरामकृष्ण। पितामह-भूधर भट्ट। ये पंचनद के निवासी माने जाते हैं।

ब्रह्म कृष्णदास (केशवसेन सूरि)- लोहपत्तन नगर-निवासी। पिता-हर्ष। माता-वीरिकादेवी। ज्येष्ठ भ्राता-मगलदास। काष्ठासघ के पट्टधर भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य। समय- ई 17 वीं शती। रचनाए- मुनिसुव्रत-पुराण (वि स 1681)-23 सर्ग और 3025 पद्य। कर्णामृत-पुराण व षोडशकारण व्रतोद्यापन।

ब्रह्मगुप्त (गणकचक्रचूडामणि)- समय- 598-665 ई। पिता-जिष्णु। गणित-ज्योतिष के सुप्रसिद्ध आचार्य। इनका जन्म 598 ई मे पजाब के "भिलनालका" नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने "ब्रह्मस्फुट-सिद्धात" व "खड-खाद्यक" नामक ग्रथों की रचना की है। ये बीजगणित के प्रवर्तक व ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाड पडित माने जाते हैं। इनके दोनो ही ग्रथो के अनुवाद अरबी भाषा में हुए है। "ब्रह्मस्फुट-सिद्धात" को अरबी में "असिन्द हिन्द" व "खड-खाद्यक" के अनुवाद को "अलर्कन्द" कहा जाता है। आर्यभट्ट के पृथ्वी-चलन-सिद्धात को खंडित करते हुए, इन्होंने पृथ्वी को स्थिर कहा है। अपने ग्रंथों में ब्रह्मगुप्त ने अनेक स्थलो पर आर्यभट्ट, श्रीषेण, विष्णुचंद्र प्रभृति आचार्यों के मतों का खडन करते हुए, उन्हें त्याज्य बतलाया है। ब्रह्मगुप्त के अनुसार इन आचार्यों की गणना-विधि से ग्रहो का स्पष्ट स्थान शुद्ध रूप में नहीं आता। सर्वप्रथम इन्होने गणित व ज्योतिष के विषयो को पृथक् कर, उनका वर्णन अलग-अलग अध्यायो में किया है और गणित-ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की है। आर्यभट्ट के निंदक होते हुए भी, इन्होंने ज्योतिष विषयक तथ्यों के अतिरिक्त बीजगणित, अकगणित व क्षेत्रमिति के सबंध मे अनेक मौलिक सिद्धात प्रस्तुत किये है, जिनका महत्त्व आज भी उसी रूप मे अक्षुण्ण है। "ब्रह्मस्फुट-सिद्धात" मूल व लेखक-कृत टीका के साथ काशी से 1902 ई में प्रकाशित। सपादक- सुधाकर द्विवेदी। मूल व आमराज-कृत सस्कृत टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित। भास्कराचार्य ने इन्हे "गणक-चक्र-चूडामणि" की उपाधि से विभूषित किया है। अग्रेजी अनुवाद पी सी सेनगुप्ता, कलकत्ता द्वारा सपन्न।

ब्रह्म जिनदास- कुन्दकुन्दान्वयी, सरस्वतीगच्छ के भट्टारक सकलकीर्ति के कनिष्ठ भ्राता। बलात्कारगण की ईडर-शाखा के प्रमुख आचार्य। पिता-कर्णसिह, माता-शोभा। जाति-हुवड। समय- वि स 1450-1525। शिष्यनाम-मनोहर, मल्लिदास, गुणदास और नेमिदास। रचनाए-जम्बूस्वामि-चरित (11 सर्ग), हरिवशपुराण (14 सर्ग), रामचरित (83 सर्ग), पुष्पाजलिव्रत-कथा-, जम्बूद्वीप-पूजा सार्द्धद्वय-द्वीपपूजा, सप्तर्षि पूजा, ज्येष्ठिजिनवरपूजा, गुरुपूजा, अनन्तव्रतपूजा और जलयात्राविधि। राजस्थानी भाषा मे भी इन्होंने 53 ग्रथ रचे हैं।

ब्रह्मज्ञानसागर- ई 17 वीं शती। गुरु-श्रीभूषण। ग्रथ-नेमिधर्मोपदेश और दशलक्षण कथा।

ब्रह्मतन्त्र परकाल स्वामी- मैसूर के परकाल मठ के 31 वें अधिपति (ई 1839 से 1916)। रचना- अलकारमणिहार। काव्य मे वेंकटेश्वर-स्तुति तथा अलकारो का निदर्शन। ये स्वामी मैसूर के प्रसिद्ध कृष्णम्माचार्य वकील थे। इन्होंने अन्यान्य विषयों पर 67 ग्रथों की रचना की। उनमे से कुछ प्रमुख हैं -

रगराजविलासचम्पू, कार्तिकोत्सवदीपिकाचम्पू, श्रीनिवासविलासचम्पू, चपेटाहतिस्तुति, उत्तराङ्गमाहात्म्य, रामेश्वर-विजय, नृसिह-विलास, मदनगोपाल-माहात्म्य आदि।

ब्रह्मदत्त- एक महान् वेदाती। आद्य शकराचार्य द्वारा अपने बृहदाराण्य के भाष्य मे इनका उल्लेख किया गया है। वेदान्तदेशिकाचार्य अपनी सर्वार्थसिद्धि नामक टीका मे ब्रह्मदत्त के कुछ मतों का उल्लेख करते हैं। ये ध्याननियोगवादी थे और जीवन्-मुक्ति नहीं मानते थे। मोक्ष को ये अदृष्ट फल मानते थे। टीकाकार सुरेश्वराचार्य तथा ज्ञानोत्तम इन्हें ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी मानते हैं।

ब्रह्मदेव- रचनाए- 1 बृहद्द्रव्यसग्रह-टीका, 2 परमार्थप्रकाश-टीका, 3 तत्त्वदीपक, 4 ज्ञानदीपक, 5 प्रतिष्ठातिलक, 6 विवाहपटल, तथा 7 कथाकोष।

ब्रह्मनेमिदत्त- ई 16 वी शती। मूलसघ सरस्वतीगच्छ

बलात्कार-गण के जैन विद्वान्। भट्टारक मल्लिषेण के शिष्य। अग्रवाल। गोत्र-गोयल। आशानगर (मालव प्रदेश) के निवासी। रचनाएं- आराधना-कथा-कोश, नेमिनाथ-पुराण, श्रीपालचरित, सुदर्शनचरित, रात्रिभोजनत्याग कथा, प्रीतंकर-महामुनिचरित, धन्यकुमार-चरित, नेमिनिर्वाण-काव्य, नागकुमार-कथा और धर्मोपदेशपीयूषवर्ष-श्रावकाचार। इनके अतिरिक्त हिन्दी में भी इनकी रचनाएं उपलब्ध हैं।

ब्रह्म शिव- कर्नाटकवासी। वत्सगोत्री ब्राह्मण। पिता-अग्गलदेव। गुरुनाम-वीरनन्दी। कीर्तिवर्मा और आहवमल्ल नरेश के समकालीन। पहले वैदिक मतानुयायी, बाद में लिंगायती बने। तत्पश्चात् जैन धर्मावलबी हुए। समय- ई. 12 वीं शती। ग्रंथ-समयपरीक्षा।

ब्रह्मश्री कपाली-शास्त्री- योगिराज अरविन्द के प्रमुख शिष्य। वेदोपनिषदन्तर्गत गूढ आध्यात्मिक ज्ञान का संशोधन करने में व्यस्त। आधुनिक समय के रमण महर्षि, तथा वसिष्ठ-गणपति-मुनि कपाली शास्त्री के प्रेरक तथा स्फूर्तिदायक थे। भारद्वाज गोत्र। पिता-विश्वेश्वर। तिरुवोषिपुरि-निवासी। पिता के पास वेदाध्ययन। 20 वर्ष की आयु तक आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्र मे नैपुण्य प्राप्त। गायत्री-साधना। वेदविद्या का गूढ खोजने की अनिवार अभिलाषा। वासिष्ठ गणपति मुनि से सपर्क। उनके द्वारा मन्त्र-तत्रादि साधना में विशेष गति। रमण महर्षि से भेंट। अन्त. प्रेरणा से पाण्डीचेरी में योगिराज अरविंन्द का शिष्यत्व ग्रहण कर उनके अग्रेजी ग्रंथो द्वारा (लाइटस् आन दि उपानिषदाज तथा थॉटस ऑन् दि तन्त्राज) उपनिषदों पर तथा तन्त्रमार्ग पर प्रकाश। योगिराज अरविंद के पूर्णयोग-सिद्धान्त के अनुसार, ऋग्वेद-सिद्धांजनभाष्य। (भूमिका सहित) 60 वर्ष की आयु में लिखा। वासिष्ठ गणपति मुनि का चरित्र लिखा तथा उनकी रचनाओ पर टीकाएं लिखी। "भारतीस्तव" लिख कर दशभक्ति का परिचय दिया। ऐसे देशभक्त योगी तथा वेदरहस्यज्ञ महापुरुष का देहावसान, सन् 1953 में हुआ।

ब्रह्मातिथि काण्व- ऋग्वेद के आठवें मडल के पांचवे सूक्त के रचियता। इस सूक्त में अश्विनी-देवताओं की स्तुति की गयी है।

ब्रह्मानंद सरस्वती- ई. 17 वीं शती। ये गौड ब्रह्मानंद नाम से भी विख्यात हैं। मूलत बगाल प्रान्त के निवासी। परतु काशी-क्षेत्र में रहते थे। इनके नारायणतीर्थ तथा परमानंद सरस्वती दो गुरु थे। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर मुक्तावलि नामक तथा जैमिनि-सूत्र पर मीमासा-चंद्रिका नामक टीका-ग्रथ लिखे हैं। इनका, अद्वैतसिद्धि पर अद्वैतचद्रिका नामक टीकाग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इस टीका के लघु तथा गुरु दो भेद उपलब्ध हैं। लघुरूप, चंद्रिका नाम से सर्वत्र विख्यात है। इन ग्रथों के अतिरिक्त, "अद्वैतसिद्धांतविद्योतन" नामक इनका और एक ग्रथ है। ये भट्ट-सम्प्रदायानुगामी मीमांसक थे।

भगवंत कवि (भगवंतराय गांगाधरि) - समय 1687 से 1711 ई. के आस पास। ये नरसिंह के शिष्य तथा शाहजी राजा भोसले के पुत्र एकोजी (शिवाजी के सौतेले भाई) के मुख्य सचिव गगाधरामात्य के पुत्र थे। इन्होंने अपने चंपू काव्य में अपना परिचय दिया है।

अन्य कृतियां - राघवाभ्युदय (नाटक) मुकुंदविलास (काव्य) और उत्तररामचम्पू (वाल्मीकि रामायण पर आधारित)

भगवत्प्रसाद - स्वामिनारायण संप्रदाय के सस्थापक तथा उद्धव के अवतार माने गए ब्रह्मानंद स्वामी (1837 वि 1866 वि) के पौत्र। इन्होंने अपने सप्रदाय के अनुसार भागवत की व्याख्या लिखी जिसका 'भक्तरजनी' नाम है। यह व्याख्या भगवत्प्रसाद के पुत्र बिहारीलाल की आज्ञा से 1940 वि = 1883 ई में प्रकाशित हुई है। इसका रचना काल 1850 ई के लगभग माना जा सकता है।

भगवदाचार्य स्वामी - ई 20 वीं शती का पूर्वार्ध। आपने "भारतपारिजातम्" नामक 26 सर्ग के महाकाव्य की, लोक-जागृति-हेतु, रचना की। इस महाकाव्य में महात्मा गांधी का चरित्र वर्णित है। स्वामीजी जन्मत बिहारी थे। अहमदाबाद में आपका दीर्घकाल निवास रहा। भारत पारिजात के अतिरिक्त पारिजातापहार और पारिजातसौरभ नामक गाधी चरित्र से संबधित रचनाए तथा ब्रह्मसूत्रवैदिकभाष्य और सामसस्कारभाष्य नामक आपके ग्रथ प्रकाशित हुए हैं।

भगीरथप्रसाद त्रिपाठी - ई 20 वीं शती। उपनाम-वागीश। जन्मग्राम- विलइया (म.प्र) के खुरई स्टेशन के समीप, जिला सागर। पूरा कुटुम्ब सस्कृत-भाषाभाषी। सस्कृत वि वि वाराणसी से व्याकरणात्मक शोधप्रबन्ध पर "विद्यावाचस्पति" की उपाधि। सस्कृत वि वि वाराणसी में अनुसन्धान सचालक। "सारस्वती सुषमा" नामक पत्रिका के प्रधान सम्पादक। हिन्दी तथा संस्कृत मे बहुविध रचनाए। "कृषकाणा नागपाश" नामक रूपक के प्रणेता।

भट्टअकलङ्क - व्याकरण-रचयिता। स्वय उस पर मजरी-मकरन्द नाम्नी टीका लिखी। टीका का प्रारभिक भाग लन्दन में सुरक्षित। समय- लगभग वि स 700।

भट्ट अकलंक - जैन-दर्शन के एक आचार्य। ये दिगबर मतावलबी जैन आचार्य थे। समय- ई 8 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। इनके 3 लघु ग्रथ प्रसिद्ध हैं। लघीयस्त्र, न्याय-विनिश्चय एव प्रमाण-सग्रह। तीनों ही ग्रथों का प्रतिपाद्य विषय जैन-न्याय है। इनके अतिरिक्त भट्ट अकलक ने कई जैन ग्रथों के भाष्य भी लिखे है। तत्त्वार्थ-सूत्र पर "राजवार्तिक" व आप्तमीमांसा पर "अष्टशती" के नाम से इन्होंने टीका-ग्रथों की रचना की है।

भट्ट गुणविष्णु - पिता-दामुकाचार्य। समय- 16 वीं शती से पूर्व। रचना- मत्रब्राह्मण का भाष्य।

भट्टगोपाल - ई 9 वीं शती। ये संगीतज्ञ थे। इन्होंने

तालशास्त्र पर तालदीपिका नामक ग्रंथ और भरत के नाट्यशास्त्र के कुछ अंशों पर टीका लिखी है।

भट्ट गोविंदस्वामी - ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्यकार। समय-सभवत नवम शताब्दी से पूर्व। देवग्रन्थ की पुरुषकार व्याख्या के कर्ता श्रीकृष्ण-लीलाशुक मुनि, और मेधातिथि (अनुक्रमत) स्पष्ट रूप से और अस्पष्ट रूप से भट्ट गोविन्द स्वामी का निर्देश करते हैं। गोविन्द स्वामी ने सभवत बोधायन धर्मसूत्र पर भी बोधायनीय धर्मविवरण लिखा होगा।

भट्ट तौत - अभिनवगुप्ताचार्य के गुरु। "काव्यकौतुक" नामक काव्य-शास्त्रविषयक ग्रंथ के प्रणेता। इस ग्रथ में इन्होंने शातरस को सर्वश्रेष्ठ रस सिद्ध किया है। "अभिनवभारती" के अनेक स्थलों में अभिनवगुप्त ने भट्ट तौत के मत को "उपाध्याया" या "गुरव" के रूप में उद्धृत किया है। उनके उल्लेख से विदित होता है कि भट्ट तौत ने नाट्य-शास्त्र की टीका भी लिखी थी। भट्ट तौत का रचना काल 950 ई. से 980 के बीच माना जाता है। मोक्षप्रद होने के कारण, इनके मतानुसार, शांतरस सभी रसों में श्रेष्ठ है।

अभिनवगुप्त ने इनका स्मरण "अभिनवभारती" तथा "ध्वन्यालोक-लोचन" में श्रद्धापूर्वक किया है। नाट्यशास्त्र-विषयक इनकी गभीर मान्यताए भी उद्धत की गई हैं। शान्त रस के विवरण को मूल पाठ की मान्यता देना, रस की अनुकरणशीलता का विरोध, काव्य एव नाट्य में रस-प्रतिपादन आदि विषयो पर, इनके अपने सिद्धान्त हैं। अपने समय के वे प्रख्यात नाट्यशास्त्रीय व्याख्याता- आचार्य माने जाते थे। इनके "काव्यकौतुक" पर अभिनवगुप्त ने विवरण भी लिखा था। दुर्भाग्य से ये दोनों ग्रथ अप्राप्य है। हेमचन्द्र ने "काव्यकौतुक" से तीन पद्य उद्धृत किये है। इससे इस ग्रथ के अस्तित्व को प्रामाणिक आधार मिलता है। भट्ट तौत का समय 10 वीं शती का पूर्वार्ध रहा होगा, क्योंकि अभिनव गुप्त का काल 10 वी शती के उत्तरार्ध से 11 वी शती के पूर्वार्ध तक माना जाता है।

अभिनवगुप्त ने अपने व्याख्यान सन्दर्भों मे कीर्तिधर, भट्टगोपाल, भागुरि, प्रियातिथि, भट्टशकर आदि आचार्यों का भी उल्लेख किया है परन्तु इनके विषय मे अधिक जानकारी नही है।

रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया का विवेचन, भट्ट तौत ने इस प्रकार किया है - "काव्य का विषय श्रोता के आत्मसात् होने पर वह प्रत्यक्ष होने की सवेदना होती है तथा उसमें रसनिष्पत्ति होती है। इस पर शकुक द्वारा उठाये गये आक्षेपो का भट्ट तौत ने निवारण किया है।

क्षेमेंद्र, हेमचद्र, सोमेश्वर आदि सस्कृत साहित्यकार, भट्ट तौत के मतों का अपने-अपने ग्रथो मे उल्लेख करते हैं। अभिनवगुप्त के विचारो पर भट्ट तौत के मतो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भट्टनायक - ई 10 वीं शती। काव्य-शास्त्र के आचार्य। "राजतरंगिणी" मे उल्लेखित भट्टनायक से भिन्न। "हृदय-दर्पण" नामक (अनुपलब्ध) ग्रथ के प्रणेता। इनके मत, अभिनवभारती, व्यक्ति-विवेक, काव्य-प्रकाश, काव्यानुशासन माणिक्यचंद्र-कृत काव्यप्रकाश की सकेत-टीका में उद्धत हैं। भट्टनायक ने भरतकृत "नाट्यशास्त्र" की भी टीका लिखी थी। भरत मुनि के रस-सूत्र के तृतीय व्याख्याता के रूप मे भट्टनायक का नाम काव्यप्रकाश मे आता है। इन्होंने रसविवेचन के क्षेत्र में "साधारणीकरण" के सिद्धात का प्रतिपादन कर भारतीय काव्य शास्त्र के इतिहास मे युग-प्रवर्तन किया है।

इनका समय ई 9 वी शती का अतिम चरण या 10 वी शती का प्रथम चरण है। इनके रसविषयक सिद्धात को भुक्तिवाद कहते हैं। तदनुसार न तो रस की उत्पत्ति होती है और न अनुमिति, अपि तु भुक्ति होती है। इन्होंने रस की स्थिति सामाजिकगत मानी है। भट्टनायक के अनुसार शब्द की तीन व्यापार हैं- अभिधा, भावकत्व व भोजकत्व। भोजकत्व नामक तृतीय व्यापार के द्वारा रस का साक्षात्कार होता है। इसी को भट्टनायक "भुक्तिवाद" कहते है। भोजकत्व की स्थिति, रस के भोग करने की होती है। इस स्थिति मे दर्शक के हृदय के राजस व तामस भाव सर्वथा तिरोहित हो जाते हैं और (उन्हे दबा कर) सत्त्वगुण का उद्रेक हो जाता है। भट्टनायक ध्वनि-विरोधी आचार्य है। इन्होंने अपने "हृदय-दर्पण" नामक ग्रथ की रचना ध्वनि के खडन के लिये ही की थी। "ध्वन्यालोकलोचन" मे भट्टनायक के मत अनेक स्थानो पर बिखरे हुए है। उनसे पता चलता है कि इन्होने ध्वनि-सिद्धात का खडन, बडी ही सूक्ष्मता के साथ किया है। ये काश्मीर-निवासी थे। इनके "हृदय-दर्पण" का उल्लेख महिमभट्ट कृत "व्यक्ति-विवेक" मे भी है।

भट्टनायक, नाट्यशास्त्र के भी प्रमुख व्याख्याता हैं। अभिनवगुप्त ने छ स्थानो पर इनका उल्लेख किया है। जयरथ, महिमभट्ट तथा रुय्यक ने भी इनका उल्लेख किया है। ये ध्वनि-सिद्धान्त के विरोधी आचार्य थे। काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (855-884 ई) इनके आश्रयदाता थे। अत सभव है कि ये आनन्दवर्धन के समकालीन रहे हो। रसशास्त्र के व्याख्यान-क्रम मे साधारणीकरण के उद्भावक तथा भुक्तिवाद के प्रवर्तक रूप मे आप प्रसिद्ध हैं।

भट्टनारायण - ई 7 वी शती का उत्तरार्ध। ब्राह्मण-कुल। शाडिल्य गोत्र। कन्नौज से बगाल जा बसे। "वेणी-संहार" नामक नाटक के प्रणेता। इनके जीवन का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इनकी एकमात्र कृति "वेणीसहार" उपलब्ध होती है। इनका दूसरा नाम (या उपाधि) "मृगराजलक्ष्म" था। एक अनुश्रुति के अनुसार वगराज आदिशूर द्वारा गौड देश में आर्य-धर्म की प्रतिष्ठा कराने के लिये बुलाये गये पाच ब्राह्मणों मे भट्टनारायण भी थे। राजा ने इन्हे नाम मात्र मूल्य पर कुछ

गाव दिये। कुछ इतिहासवेत्ताओं का मत है कि बगाल का ठाकुर-राजवश इन्हीं से प्रारभ हुआ। "वेणी-सहार" के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये वैष्णव सप्रदाय के कवि थे। "वेणीसंहार" के भरतवाक्य से पता चलता है कि ये किसी सहृदय राजा के आश्रित रहे होगे। पाश्चात्य पडित स्टेन कोनो के कथनानुसार वे राजा आदिशूर आदित्यसेन थे, जिनका समय 671 ई है। रमेशचंद्र मजूमदार भी माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन का समय 675 ई के लगभग मानते हैं, जो शक्तिशाली होकर स्वतंत्र हो गए थे। आदिशूर के साथ सबद्ध होने के कारण, भट्टनारायण का समय 7 वीं शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है। विल्सन ने "वेणी-संहार" का रचना-काल 8 वीं या 9 वीं शती माना है। परपरा मे एक श्लोक मिलता है -

'वेदबाणाङ्गशाके तु नृपोऽभूच्चादिशूरक। वसुकर्माङ्गके शाके गौडे विप्र समागत"।। इसके अनुसार आदिशूर का समय 654 शकाब्द (या 732 ई) है पर विद्वानो ने छानबीन करने के बाद आदित्यसेन व आदिशूर को अभिन्न नहीं माना है। बंगाल में पाल-वंश के अभ्युदय के पूर्व ही आदिशूर हुए थे, और पाल-वश का अभ्युदय 750-60 ई के आस-पास हुआ था। "काव्यालकार-सूत्र" में भट्टनारायण का उल्लेख किया है। अत इनका समय ई 8 वीं शती का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। सुभाषित-सग्रहों में इनके नाम से अनेक पद्य प्राप्त होते हैं जो "वेणी-सहार" में उपलब्ध नहीं होते। इससे ज्ञात होता है कि "वेणी-सहार" के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतिया भी रही होगी। दडी ने अपनी 'अवन्ति-सुदरी कथा" में उल्लेख किया है कि भट्टनारायण की 3 कृतिया हैं। प्रो गजेंद्रगडकर के अनुसार "दशकुमारचरित" की पूर्वपीठिका के रचयिता भट्टनारायण ही थे। "जानकी-हरण" नामक नाटक की एक पाडुलिपि की सूची इनके नाम से प्राप्त हुई है पर कतिपय विद्वान् इस विचार के हैं कि ये ग्रथ किसी अन्य के हैं। भट्टनारायण को एकमात्र "वेणी-सहार" का ही प्रणेता माना जा सकता है।

"वेणी-संहार" में महाभारत के युद्ध को वर्ण्य-विषय बनाकर उसे नाटक का रूप दिया गया है। अत में गदा-युद्ध में भीमसेन दुर्योधन को मार कर उसके रक्त से रजित अपने हाथों द्वारा द्रौपदी की वेणी (केश) का संहार (गूथना) करता है। इसी कथानक की प्रधानता के कारण कवि ने इसे "वेणी-संहार" की संज्ञा दी। आलोचकों ने इनके "वेणी-संहार" को नाट्य-कला की दृष्टि से दोषपूर्ण माना है पर इसका कला-पक्ष या काव्य-तत्त्व सशक्त है। इनकी शैली पर कालिदास माघ व बाण का प्रभाव है।

रात्रि (निशा) का सुंदर वर्णन करने के कारण, इन्हें "निशा-नारायण" यह अपरनाम सुभाषित-संग्रह-कारों ने दिया। बाण के कहने पर वे बौद्धशिष्य होकर उस मत में पारंगत हुए और धर्मकीर्ति (बौद्ध) को पराजित किया। "रूपावतार" यह रचना भट्टनारायण तथा धर्मकीर्ति की बताई जाती है।

भट्ट भास्कराचार्य - ई 11 वीं शती। उज्जयिनी के निवासी। सायणाचार्य और देवयज्वाचार्य के पूर्वकालीन भट्ट भास्कराचार्य, अपने काल के बडे उद्भट वेद-भाष्यकार थे। सायण के पूर्ववर्ती, अस्य वामीयसूक्त के भाष्यकार आत्मानन्द भी भट्ट भास्कराचार्य का निर्देश करते हैं।

तैत्तिरीय सहिता पर "ज्ञानयज्ञ" नामक भाष्य के समान, ब्राह्मण और आरण्यक आदि ग्रथों पर भी भट्ट भास्कर के भाष्य हैं। वे कौशिक गोत्री तेलगु ब्राह्मण थे। उनके शिवोपासक होने का अनुमान है।

अपने भाष्य में एक-एक शब्द के अनेक अर्थ भट्ट भास्कर देते हैं। मत्रो के आध्यात्मिक अर्थ भी उनकी भाष्यरचना मे उपलब्ध हैं। वैदिकी स्वरप्रक्रिया का उन्हे प्रशस्त ज्ञान था।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री - समय 1890 से 1960 ई। पिता द्वारकानाथ शर्मा प्रकाड पडित थे। सस्कृत-पत्रिका "भारती" के प्रारभ से सपादक। जयपुर के निवासी। इन्होंने साहित्याचार्य व व्याकरणशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी, तथा जयपुर के विख्यात महाराजा सस्कृत महाविद्यालय के प्रोफेसर व अध्यक्ष- (सस्कृत-साहित्य-विभाग) के पद को भूषित किया था। श्री शास्त्री को कवि शिरोमणि, साहित्यवारिधि, साहित्यालकार कविरत्न, कविसार्वभौम, कवि-सम्राट् इत्यादि उपाधियो से अलकृत किया गया था। राजस्थान के सस्कृत-कवियो में इनकी गणना प्रथम श्रेणी में की जाती है।

प्रकाशित कृतियां - 1 साहित्यवैभव, 2 गोविन्दवैभव, 3 जयपुरवैभव 4 सस्कृतगाथासप्तशती (हालकृत गाथा सप्तशती का सस्कृत अनुवाद), 5 त्रिपुरसुन्दरीस्तवराज, 6 मजुकवितानिकुजम्, 7 ईश्वरविलासितम्,

अप्रकाशित कृतियां - 1 आर्याणामादिभाषा, 2 काश्मीरक-महाकविर्विह्लणस्तस्य काव्यं च, 3 सस्कृतसुधा, 4 भारतवैभवम्। सपादित कृतिया हैं- 1 रसगगाधर, 2 ईश्वरविलासकाव्य, 3 कादम्बरी, 4 धातुप्रयोगपारिजात, 5 शिलालेखललन्तिका, 6 पद्यमुक्तावली आदि।

"साहित्यवैभवम्" में आधुनिक विषयो पर हिन्दी- उर्दू छदो में ग्रथित काव्य-रचनाएं कर सस्कृत में आधुनिकता लाने का प्रथम प्रयास आपने किया। काव्य के प्रेमियों की ओर से उनके इस प्रयास को समिश्र प्रतिसाद प्राप्त हुआ। "साहित्यवैभवम्" पर इन्होंने स्वय ही "सहचरी" नामक टीका लिखी है।

अनेक विषयों पर आपकी स्फुट रचनाए भी हैं - **सामाजिक**- 1 एकवारं दर्शनम्, 2 दयनीया, 3 अनादृता। **प्रणय संबंधी** - प्रतिदानम्, 2 दीक्षा। **ऐतिहासिक**- 1

अगुलिमाल, 2 पुरुराजपौरुषम्, 3 भारतध्वज, 4 विजयिघण्टा, 5 अत्याचारिण परिणाम, 6 पृथ्वीराज- पौरुषम्, 7 आल्हा च ऊदलश्च, 8 सिहदुर्गे सिहवियोग, 9 वीरवाणी, 10 कृत्रिमबंदी, 11 सामन्तसग्राम, 12 चिरममरे द्वे बलिदाने, 13 अनुपताप।

विविध - 1 करुणा (कपोनी च युवती च), 2 दानी दिनेश।

हास्यपरक- 1 लाला-व्यायोग, 2 चपण्डुक, 3 शिष्याणा फाल्गुनगोष्ठी।

भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक - 1 मत्यो बालचर, 2 विषमा समस्या, 3 बालकभृत्य, 4 मनोलहरी।

भट्ट लोल्लट (आपराजिति) - ये भरतकृत "नाट्यशास्त्र" के प्रसिद्ध टीकाकार व उत्पत्तिवाद नामक रस-सिद्धात के प्रवर्तक है। सप्रति इनका कोई भी ग्रथ उपलब्ध नहीं होता, पर *अभिनवभारती, काव्य-प्रकाश* (4-5), *काव्यानुशासन*, ध्वन्यालोक-लोचन, मल्लिनाथ की तरला टीका और गोविद ठाकुर-कृत "काव्य-प्रदीप" (4-5) मे इनके विचार व उद्धरण प्राप्त होते हैं। राजशेखर व हेमचद्र के ग्रथो मे इनके कई श्लोक "आपराजिति" के नाम से प्राप्त होते है। इनसे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम अपराजित था। लोल्लट नाम के आधार पर इनका काश्मीरी होना सिद्ध होता है। ये उद्भट के परवर्ती थे क्यों कि अभिनवगुप्त ने उद्भट के मत का खडन करने के लिये इनके नाम का उल्लेख किया है। भरत-सूत्र के व्याख्याकारो में इनका नाम प्रथम है। इनके मतानुसार रस की उत्पत्ति अनुकार्य मे(मूल पात्रो में) होती है और गौण रूप मे अनुसधान के कारण नट को भी इसका अनुभव होता है। विभाव, अनुभाव आदि सयोग से अनुकार्य राम आदि मे रस की उत्पत्ति होती है। उनमे भी विभाव सीता आदि मुख्य रूप से इनके उत्पादन होते हैं। अनुभाव रस उत्पन्न रस के परिपोषक होते हैं। अत स्थायी भावों के साथ विभावों का उत्पाद्य उत्पादक, अनुभावो का गम्य-गमक और व्याभिचारियों का पोष्य-पोषक सबध होता है। "काव्य-मीमासा" मे भट्ट लोल्लट के तीन श्लोक उद्धृत हैं। काव्यप्रकाश के प्राचीन व्याख्याकार माणिक्यचन्द्र ने लोल्लट तथा शकुक की तुलना मे लोल्लट को ही रसशास्त्र का मार्मिक पडित माना है। इन्होने कल्लट की "स्पदकारिता" पर "वृत्ति" नामक टीका भी लिखी जिसका उल्लेख अभिनवगुप्त के परम शिष्य क्षेमराज ने किया है।

भट्टवोसरि - दामनन्दी के शिष्य। वैदिक धर्म से जैनधर्म मे दीक्षित। धारा नगरी कार्यक्षेत्र। समय- ई 12 वीं शती। ग्रथ-प्राकृत भाषा मे "आर्यज्ञान-तिलक" जो प्रश्नविद्या से सबद्ध है। चिकित्सा और ज्योतिष का यह महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। ग्रथकार को ही इस पर स्वोपज्ञ एक सस्कृत टीका है।

भट्ट व्रजनाथ - पुष्टिमार्गीय सिद्धातानुसार ब्रह्मसूत्र पर लिखी हुई "मरीचिका" नामक महत्त्वपूर्ण वृत्ति के लेखक।

भट्ट श्रीनिवास - ग्वालियर-निवासी। समय- ई. 20 वीं शती। इनकी कृतिया- श्रीनिवाससहस्र, रंगराजस्तवराज, भगवद्विंशति, और माधवराव- सिधिया- प्रशस्ति प्रकाशित हैं। श्रीनिवास-सहस्रम् 10 शतकों का, विविध छन्दों मे विरचित, एक प्रौढ, सरस तथा उपनिषद् व पुराणकथाओ के सन्दर्भो से परिपूर्ण स्तोत्र है।

भट्टि - समय ई 7 वीं शती। "भट्टि-काव्य" या "रावण-वध" नामक महाकाव्य के प्रणेता। इन्होंने संस्कृत में शास्त्र-काव्य लिखने की परपरा का प्रवर्तन किया है। ये मूलत वैयाकरण व अलकारशास्त्री हैं जिन्होंने सुकुमारमति के या काव्य-रसिकों को व्याकरण व अलकार की शिक्षा देने के लिये अपने महाकाव्य की रचना की थी। उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य है व्याकरण-शास्त्र के शुद्ध प्रयोगों का संकेत करना, जिसमे वे पूर्णत सफल हुए हैं।

कतिपय विद्वानो ने "भट्टि" शब्द को "भर्तृ" शब्द का प्राकृत रूप मान कर उन्हे भर्तृहरि से अभिन्न माना है। डॉ बी सी मजूमदार ने 1904 ई में 'जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी' (पृ 306 एफ) में एक लेख लिख कर यह सिद्ध करना चाहा था कि भट्टि, मदसौर- शिलालेख के वत्सभट्टि तथा 'शतकत्रय' के भर्तृहरि से अभिन्न है। पर इसका खडन डा कीथ ने, उसी पत्रिका में 1909 ई में लेख लिख कर किया था। (पृ 455)। डॉ एस के. डे ने अपने ग्रथ "हिस्ट्री ऑफ् सस्कृत लिटरेचर" में कीथ के कथन का समर्थन किया है।

भट्टि के जीवन-वृत्त के बारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नही होती किंतु अपने महाकाव्य के अत में उन्होंने जो श्लोक लिखा है, उससे विदित होता है कि भट्टि को वलभी-नरेश श्रीधर सेन की सभा में अधिक सम्मान प्राप्त होता था। शिलालेखों में वलभी के श्रीधर सेन सज्ञक 4 राजाओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम का काल 500 ई के लगभग व अतिम का काल 650 ई के आस-पास है। श्रीधर द्वितीय के एक शिलालेख में भट्टि नामक किसी विद्वान् को कुछ भूमि दी जाने की बात उल्लिखित है। इस शिलालेख का समय 610 ई के आस-पास है। अत. महाकवि भट्टि का समय 7 वी शती के मध्य काल से पूर्व निश्चित होता है। ये भामह और दडी के पूर्ववर्ती हैं। विद्वानों ने इनकी गणना अलकारशास्त्रियों में की है।

भट्टि ने अपने महाकाव्य मे काव्य की सरलता का निर्वाह करते हुए पाडित्य का भी प्रदर्शन किया है। उसमें महाकाव्योचित सभी तत्त्वो का सुदर निबध है, और पात्रों के चरित्र-चित्रण में उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा का परिचय है। यत्र-तत्र उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा भी भट्टि ने अपने महाकाव्य को सजाया है। इस काव्य का प्रकाशन मल्लिनाथ की "जयमंगला" टीका के

साथ, निर्णयसागर प्रेस बंबई से 1887 ई में हुआ था।

भट्टोजी दीक्षित - ई. स 1570 से 1635। पिता-लक्ष्मीधर भट्ट आन्ध्रप्रदेश कें रहनेवाले, तथा विजयनगर के राजा के आश्रित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण। उनके दो पुत्र थे भट्टोजी तथा रंगोजी। भट्टोजी की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता के सान्निध्य में हुई। पिता की मृत्यु के पश्चात् वे प्रथम जयपुर तथा वहां से काशी गये। काशी में उन्होंने शेषकृष्ण नामक गुरु के निकट व्याकरण का अध्ययन किया। विद्याध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् इन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। उसके बाद उन्होंने सोमयाग किया। सोमयाग करने कारण उन्हें भट्टोजी "दीक्षित" के नाम से संबोधित किया जाने लगा। इन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी की "सिद्धात-कौमुदी" नामक ग्रन्थ के रूप में पुनर्रचना की। व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के लिये यह सिद्धात कौमुदी अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस ग्रंथ ने व्याकरण के अध्यापन क्षेत्र में नया मोड उपस्थित किया। भट्टोजी ने अपने सिद्धातकौमुदी- ग्रंथ पर स्वय "प्रौढमनोरमा" नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने पाणिनि सूत्रों (अष्टाध्यायी पर शब्दकौस्तुभ" नामक टीका लिखी है।

भट्टोजी वेदातशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के प्रगाढ पडित थे। व्याकरणशास्त्र के अतिरिक्त इन्होंने अद्वैतकौस्तुभ, आचारप्रदीप, आह्निकम्, कारिका, कालनिर्णयसग्रह, गोत्रप्रवरनिर्णय, दायभाग, तत्राधिकारनिर्णय, श्राद्धकाड आदि 34 ग्रथ लिखे हैं।

भट्टोजी के वीरेश्वर तथा भानु नामक दो पुत्र तथा वरदाचार्य, नीलकठ शुक्ल, रामाश्रम तथा ज्ञानेंद्र सरस्वती नामक शिष्य थे।

इनके पौत्र हरि दीक्षित ने "प्रौढ-मनोरमा" पर दो डीकाएं लिखी हैं जिनके नाम हैं बृहच्छब्दरत्न" व "लघुशब्दरत्न"। इनमें से द्वितीय प्रकाशित है और साप्रतिक वैयाकरणों में अधिक लोकप्रिय है। "शब्दकौस्तुभ" पर 7 टीकाए और "सिद्धान्तकौमुदी" पर 8 टीकाए प्राप्त होती हैं। "प्रौढ मनोरमा" पर पडितराज जगन्नाथ ने "मनोरमा-कुचमर्दिनी" नामक (खडनात्मक) टीका लिखी है।

काशी के पडित भट्टोजी को नागदेवता का अवतार मानते हैं। नागपचमी के दिन वहा के छात्र "बडे गुरु का, छोटे गुरु का नाग लो नाग" कहते हुए नाग के चित्रों की बिक्री करते है। बडे गुरु से पतजलि तथा छोटे गुरु से भट्टोजी की ओर सकेत है।

इनके संबंध में एक किंवदती इस प्रकार प्रचलित है- इनकी, काशी में विद्यालय स्थापित करने की इच्छा अपूर्ण रह जाने से, मृत्यु के बाद ये ब्रह्मराक्षस होकर अपने घर में ही रहने लगे। परिवार के लोग इससे त्रस्त हो गये तथा उन्होंने मकान छोड दिया। कुछ वर्षो के बाद काशी में विद्याध्ययन के उद्देश्य से आये हुए दो ब्राह्मण घूमते घूमते उस मकान के भीतर पहुंचे। उन्होंने छपरी पर भट्टोजी को बैठे हुए देखा। भट्टोजी ने उन दोनों से कुशल क्षेम पूछकर, उनके निवास तथा भोजन की व्यवस्था की। दोनों ब्राह्मणों ने उस "भूत महल" में 7-8 वर्ष रहकर भट्टोजी के मार्गदर्शन में व्याकरणशास्त्र का अध्ययन पूर्ण किया। तब भट्टोजी ने उन्हें अपना सत्य स्वरूप कथन किया। दोनों छात्रों ने जब अपने गुरु का शास्त्रविधि से क्रियाकर्म पूर्ण किया तब भट्टोजी को मुक्ति मिली।

भट्टोत्पल - ई 10 वीं शती का उत्तरार्ध। काश्मीर निवासी, शैव। ज्योतिषशास्त्र के महान् आचार्य। इन्होंने वराहमिहिर के यात्रा, बृहज्जातक, लघुजातक तथा बृहत्संहिता नामक ग्रंथों पर टीकाग्रंथ लिखे हैं। इन्होंने ब्रह्मगुप्त के खंडखाद्यक तथा षट्पचाशिका पर भी टीकाए लिखी हैं। कल्याणवर्मा के अपूर्ण रहे सारावलि ग्रंथ को इन्होंने पूर्ण किया।

इन्होंने प्रश्नज्ञान अर्थात् आर्यासप्तती नामक प्रश्नग्रथ की भी रचना की है

अल्बेरूनी, इनके द्वारा रचित कुछ अन्य ग्रंथों का भी उल्लेख करते हैं परतु वे अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

भय्याभट्ट - कृष्णभट्ट के पुत्र। समय ई. 17 वीं शती। रचना- तक्ररामायण। विषय- काशीस्थित राम का वर्णन।

भरत मल्लिक - ई 17 वीं शती। भूरिश्रेष्ठी (बंगाल) के कल्याणमल्ल के समाश्रित गौराग सेन के पुत्र। कृतिया- एकवर्णार्थसग्रह, द्विरूपध्वनि सग्रह, लिंगादि संग्रह, मुग्धबोधिनी (अमरकोश की वृत्ति), उपसर्गवृत्ति, कारकोल्लास, द्रुतबोध व्याकरण तथा सुखलेखन ये व्याकरण ग्रथ। इन्होंने रघुवश, कुमारसभव, मेघदूत, शिशुपालवध, नैषध, घटकर्पर और गीतगोविंद पर टीकाए लिखीं जिनका नाम 'सुबोधा' है। भट्टिकाव्य की टीका का नाम है मुग्धबोधिनी।

भरतमुनि - भारतीय काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र व अन्य ललित कलाओं के आद्य आचार्य। इनका सुप्रसिद्ध ग्रथ है "नाट्यशास्त्र", जो अपने विषय का "महाकोश" है। इनका समय अद्यावधि विवादास्पद है। डा मनमोहन घोष ने "नाट्यशास्त्र" के आग्लानुवाद की भूमिका में भरतमुनि को काल्पनिक व्यक्ति माना है। (1950 ई मे रॉयल एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा प्रकाशित) किन्तु अनेक परवर्ती ग्रंथों में उनका उल्लेख होने के कारण यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है। महाकवि कालिदास ने अपने नाटक "विक्रमोर्वशीय" में उनका उल्लेख किया है (2-18)। अश्वघोषकृत "शारिपुत्र-प्रकरण" पर नाट्यशास्त्र" का प्रभाव परिलक्षित होता है। अश्वघोष का समय विक्रम की प्रथम शती है। अत भरत मुनि का काल, विक्रम पूर्व सिद्ध होता है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर कतिपय विद्वानों ने उनका समय वि पू. 500 ई से 100 ई तक माना है। हरप्रसाद शास्त्री ने इनका आविर्भाव काल ईसा पूर्व 2 री शती माना है, जब कि प्रभाकर भांडारकर और पिशेल के मतानुसार इनका काल क्रमश· चौथी और छटवीं शती है।

एस.के. डे का कहना है कि मूल "नाट्यशास्त्र" मे परिवर्तन होते रहे हैं और उसका वर्तमान रूप उसे ई 8 वीं शती में प्राप्त हुआ होगा।

भरतमुनि के दो नाम मिलत हैं। वृद्ध भरत या आदिभरत तथा भरत। रचनाए भी दो हैं। नाट्यवेदागम तथा नाट्यशास्त्र। नाट्यवेदागम को द्वादशसाहस्त्री और नाट्यशास्त्र को षट्साहस्त्री कहा गया है। द्वादशसाहस्त्री सभवत वृद्धभरत की रचना हो। अब इसके केवल 36 अध्याय उपलब्ध हैं। वृद्धभरत रचित श्लोकों को निश्चयपूर्वक पहचानना अशक्यप्राय है। शारदातनय का कथन है कि दोनों रचनाए एकसाथ ही लिखीं गईं हैं तथा छोटी रचना केवल सक्षेप है।

"नाट्यशास्त्र" सबसे पुरातन सस्कृत रचना है। उसमे न ऐंद्र व्याकरण तथा यास्काचार्य के उद्धरण है, न पाणिनि के। भाषा प्रयोग भी कुछ आर्ष हैं। विषयचर्चा भी आर्ष पद्धति की है। यही कारण है कि उसका लेखक, "मुनि" की उपाधि से सादर निर्दिष्ट है। भरतमुनि को कही कही सूत्रकृत भी कहा गया है। पुराणों की कालगणना के अनुसार इनका समय बहुत प्राचीन होता है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि "नाट्यशास्त्र", रामायण महाभारतादि के समय या उसके अनन्तर की रचना हो सकती है। सूत्रकाल के बाद ही जब शास्त्र विवरण छन्दोबद्ध होने लगा तब इसकी रचना हुई होगी।

भरत मुनि बहुविध प्रतिभासपन्न व्यक्ति ज्ञात होते है। उन्होने नाट्यशास्त्र, सगीत, काव्यशास्त्र, नृत्य आदि विषयो का अत्यत वैज्ञानिक व सूक्ष्म विवेचन किया है। उन्होने सर्वप्रथम चार अलकारो का विवेचन किया था- उपमा रूपक, दीपक व यमक। नाटक को दृष्टि मे रखकर उन्होंने रस का निरूपण किया है, और अभिनय की दृष्टि मे 8 ही रसा की मान्यता दी है। उनका रसनिरूपण अत्य प्रौढ व व्यावहारिक है। इसी प्रकार सगीत के सबध म भी उनके विचार अत्यत प्रौढ सिद्ध होते है।

भरतस्वामी - ई 13 वी शती। ये काश्यपगोत्र के ब्राह्मण थे। पिता-नारायण। माता-यज्ञदा। ये दक्षिण क श्रीरगम् क रहनेवाले थे। ये होयसल-राजवश के रामनाथनृपति (1263-1310 ई) के समकालीन थे। इन्होंने सामवेद पर भाष्य लिखा है जो इसी नृपति के काल मे लिखा जाने का निर्देश इन्होंने अपने भाष्य मे किया है। भरतस्वामी का प्रस्तुत भाष्य अत्यत सक्षिप्त है। सामविधानादि ब्राह्मणा पर भी भरतस्वामी ने भाष्यरचना की है।

इनके भाष्य मे ऐतरेय ब्राह्मण और आश्वालायन सूत्र का अधिक निर्देश होता है। भरतस्वामी ने आचार्य माधव से पर्याप्त सहायता ली है।

भरद्वाज - पिता- बृहस्पति। माता-ममता। इनके जन्म के बाद ही इनके माता-पिता इन्हे छोडकर चले गये। उस अर्भक को मरुत् देवता ने उठा लिया तथा वे उसे दुष्यंतपुत्र भरत के निकट ले गये। उस समय भरत द्वारा पुत्र-प्राप्ति के लिये मरुत्स्तोम नामक यज्ञ का आयोजन किया गया था। मरुत् ने वह शिशु भरत को अर्पण कर दिया। भरद्वाज बडे हुये तब उन्होंने भरत के लिये एक यज्ञ किया। फलस्वरूप छठवा मडल भरद्वाज तथा उनके वशजो द्वारा रचित है। भरद्वाज की ऋचाये अत्यत ओजपूर्ण हैं। कुछ ऋचाओ का आशय इस प्रकार है -

"हम उत्तम वीरो सहित सहस्रों वर्षो तक आनदपूर्वक जीवित रहेंगे। हमारी देह पाषाणवत् कठिन हो।"

भरद्वाज गोभक्त थे। ऋग्वेद के छठवें मंडल का 28 वा सूक्त 'गोसूक्त' नाम से विख्यात है जिसकी एक ऋचा का आशय इस प्रकार है -

अनेक जातियों की कल्याणप्रद सवत्स गाये हमारे गोशालाओं मे विद्यमान रह कर उष काल में इद्र के लिये दुग्ध-स्रवण करें।

इनके वेदाध्ययन के सबध मे एक कथा इस प्रकार है -

सपूर्ण वेदो का अध्ययन करने का प्रयास असफल होने पर भरद्वाज ने इद्र की स्तुति की। उनकी स्तुति से इन्द्र प्रसन्न हुए तथा उन्हे सौ-सौ वर्षो के तीन जन्म प्रदान किये। तीनो जन्म इन्होंने वेदाध्ययन करने मे व्यतीत किये। जब तीसरे जन्म के अतिम दिनो मे भरद्वाज मरणासन्न स्थिति मे थे, तब इन्द्र उनके निकट पधारे और उन्होंने भरद्वाज से पूछा- "यदि तुम्हे और एक जन्म की प्राप्ति हुई तो तुम क्या करोगे"।

भरद्वाज ने उत्तर दिया - "मै वेदाध्ययन करूगा"।

तब इन्द्र ने तीन पर्वतो का निर्माण किया तथा प्रत्येक पर्वत की एक-एक मुट्ठि मिट्टी लेकर तथा उसमे से एक-एक कण भरद्वाज को दिखाकर कहा, "वेदो का ज्ञान इन तीन पर्वतो के बराबर है तथा तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है वह इन तीन कणो के बराबर है। अत तुम एक और जन्म की प्राप्ति होने पर भी पूर्ण वेदाध्ययन नही कर सकोगे।"

इद्र द्वारा परावृत्त किये जाने पर भी भरद्वाज ने सौ वर्षो के एक और जन्म की माग की। उनकी ज्ञाननिष्ठा देखकर इन्द्र अत्यत प्रसन्न हुए, तथा सरल उपाय से वेदज्ञान प्राप्ति के लिये सावित्राग्निविद्या भरद्वाज को सिखलाई। इस प्रकार भरद्वाज वेदज्ञाता हुए।

भर्तृप्रपंच - आद्य शकराचार्यजी के पूर्ववर्ती वेदाताचार्यों में ये भेदाभेद-सिद्धात के पक्षपाती थे। शकराचार्यजी ने इनके मत का उल्लेख तथा खडन बृहदारण्यक के भाष्य में किया है (2-3-6, 2-5-1, 3-4-2, 4-3-30)। इनका मत है कि परमार्थ एक भी है तथा नाना भी है। ब्रह्म रूप मे एक और जगद्रूप में नाना है। जीव नाना तथा परमात्मा का एकदेश मात्र है। काम, वासनादि जीव के धर्म हैं। अत धर्म तथा

दृष्टि के भेद से जीव का नानात्व औपाधिक नहीं है, अपि तु वास्तविक है। ब्रह्म एक होने पर समुद्र-तरग न्याय से द्वैताद्वैत है जिस प्रकार समुद्र-रूप से समुद्र की एकता है, परन्तु विकार-रूप तरंग, बुद्बुद आदि की दृष्टि से वही समुद्र नानात्मक है। इनके मतानुसार परमात्मा तथा जीव में अंशांशि-भाव अथवा एकदेश-एकदेशिभाव सिद्ध होता है। इन्होंने कठ तथा बृहदारण्यक- उपनिषद पर भाष्य लिखे हैं। बादरायण-पूर्व आचार्यों की भेदाभेद- परंपरा का अनुसरण भर्तृप्रपंच ने अपने ग्रंथों में किया है।

भर्गप्रगाथ - ऋग्वेद के 8 वें मंडल के 60 तथा 61 वें सूक्त के द्रष्टा। इन सूक्तों में अग्नि तथा इंद्र की स्तुति है। 61 वें सूक्त के, "यत इन्द्र भयामहे" ऋचा से प्रारंभ होने वाली 13 से 18 ऋचायें, शांतिपाठ-मत्र है। ग्रहबाधा के निवारणार्थ तथा अपशकुनादि के परिहारार्थ इस मंत्र का जप करते हैं।

भर्तृमेण्ठ - "हयग्रीव-वध" नामक महाकाव्य के प्रणेता। यह काव्य अभी तक अनुपलब्ध है किंतु इसके श्लोक क्षेमेंद्र-रचित "सुवृत्ततिलक", भोजकृत "सरस्वती-कंठाभरण' व 'श्रृंगार-प्रकाश" एव "काव्य-प्रकाश" प्रभृति रीतिग्रथों व सूक्ति-ग्रंथो में उद्धृत किये गये हैं। इनका विवरण कल्हण की "राजतरंगिणी" में है।

कहते हैं कि मेंठ हाथीवान् थे। मेंठ शब्द का अर्थ भी महावत होता है। लोगों का अनुमान है कि विलक्षण प्रतिभा के कारण ये महावत से महाकवि बन गए। इनके आश्रयदाता काश्मीर-नरेश मातृगुप्त थे। इनका समय ई 5 वीं शती है। सूक्ति-ग्रथों में कुछ पद "हस्तिपक" के नाम से प्राप्त होते हैं। उन्हें विद्वानों ने भर्तृमेण्ठ की ही कृति स्वीकार किया है। इनकी प्रशंसा में धनपाल का एक श्लोक मिलता है जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार हाथी महावत के अंकुश की चोट खाकर बिना सिर हिलाये नहीं रहता, उसी प्रकार भर्तृमेण्ठ का काव्य श्रवण कर सहृदय व्यक्ति आनंद से विभोर होकर सिर हिलाये बिना नहीं रहता।

"राजतरगिणी" में कहा गया है कि अपने "हयग्रीव-वध" काव्य की रचना करने के पश्चात् मेंठ किसी गुणग्राही राजा की खोज में निकले और काश्मीर-नरेश मातृगुप्त की सभा में जाकर उन्होंने अपना काव्य सुनाया। काव्य की समाप्ति होने पर भी मातृगुप्त ने उनके काव्य के गुण-दोष के संबंध में कुछ भी नहीं कहा। राजा के इस मौनालंबन से मेंठ को बडा दुख हुआ और वे अपना काव्य वेष्टन में बाधने लगे। इस पर राजा ने काव्य-ग्रथ के नीचे सोने का थाल इस भाव से रख दिया कि कहीं काव्य-रस भूमि पर न जाय। राजा की इस सहृदयता व गुणग्राहकता को देख मेंठ बडे प्रसन्न हुए, उन्होंने उसे अपना सत्कार माना तथा राजा द्वारा दी गई सपत्ति को पुनरुक्त के सदृश समझा (राजतरंगिणी, 3-264-266)। इनके संबंध में अनेक कवियों की प्रशस्तियां प्राप्त होती हैं।

भर्तृयज्ञ - ईसा पूर्व 8 वीं शती। एक प्राचीन भाष्यकार। मेधातिथि ने इनका उल्लेख किया है। कहा जाता है कि इन्होंने कात्यायन-श्रौतसूत्र तथा गौतम-धर्मसूत्र पर भाष्य लिखा है। प्रा. बलदेव उपाध्याय के मतानुसार ये पारस्कर गृह्यसूत्र के प्राचीनतम भाष्यकार हैं। अग्निहोत्र की दीक्षा ग्रहण करने का अधिकार किसे है इस विषय में भर्तृयज्ञ के मत का उल्लेख त्रिकांडमंडन ने अपने आपस्तंबसूत्र ध्वनितार्थकारिका में किया है।

भर्तृहरि (राजा) - समय - ई 7 वीं शती। एक संस्कृत कवि। इनके आविर्भाव काल के संबध में मतभेद है। इनका विश्वसनीय चरित्र भी उपलब्ध नहीं है। दंतकथाओं, लोकगाथाओं तथा अन्य सामग्रियों से इनका जो चरित्र उपलब्ध होता है वह इस प्रकार है -

ये उज्जयिनी के राजा, तथा 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण करनेवाले द्वितीय चंद्रगुप्त के बंधु थे। पिता-चद्रसेन। पत्नी-पिंगला।

इन्होंने नीति, वैराग्य तथा श्रृगार इन तीन विषयों पर क्रमश शतक-काव्य लिखे हैं। तीनों ही शतकों की भाषा रसपूर्ण और सुंदर है।

उक्त शतकत्रय के अतिरिक्त, 'वाक्यपदीय' नामक एक व्याकरण विषयक विद्वन्मान्य ग्रथ भी भर्तृहरि के नाम पर प्रसिद्ध है।

कहा जाता है कि नाथपंथ के वैराग्य नामक उपपथ के ये ही प्रवर्तक हैं। चीनी यात्री इत्सिग के कथनानुसार इन्होंने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था परंतु अन्य सूत्रों के अनुसार ये अद्वैत वेदान्ताचार्य हैं। इनके जीवन से सबंधित एक किंवदन्ती इस प्रकार है -

एक बार भर्तृहरि अपनी पत्नी पिंगला के साथ शिकार खेलने के लिये जगल में गये थे। वन में बहुत समय तक भटकने के बाद भी उनके हाथ कोई शिकार नहीं लगी। निराश होकर दोनों घर लौट रहे थे, तब उन्हें हिरनों का एक झुण्ड दिखाई दिया। झुण्ड के आगे एक मृग चल रहा था। भर्तृहरि ने उस पर प्रहार करने के लिये ज्यो ही अपने हाथ का भाला ऊपर उठाया, पिंगला ने पति को कहा- "महाराज, यह मृगराज 17 सौ हिरनियो का पति और पालनकर्ता है। इसलिये आप उसका वध मत कीजिये। 'भर्तृहरि ने पत्नी की बात नहीं मानी और उसने हिरन पर अचूक शूल फेंक कर मारा। हिरन जमीन पर गिर पडा। प्राण छोडते-छोडते उसने कहा- "तुमने यह ठीक नहीं किया। अब जो मैं कहता हूं उसका पालन करो। मेरी मृत्यु के बाद मेरे सींग श्रृंगीबाबा को दो, मेरे नेत्र चचल नारी को दो, मेरी त्वचा साधु-संतों को दो, मेरे पैर भागने वाले चोरों को दो और मेरे शरीर की मिट्टी पापी राजा को दो।"

हिरन की बात सुनकर भर्तृहरि का हृदय द्रवित हुआ। हिरन का कलेवर घोडे पर लाद कर वह मार्गक्रमण करने लगा। रास्तें मे गोरखनाथ से भेंट हुई। भर्तृहरि ने उन्हें सारा किस्सा सुनाया, तथा उनसे प्रार्थना की कि वे हिरन को जीवित करें। गोरखनाथ ने कहा- "एक शर्त पर में इसे जीवनदान दूंगा। इसके जीवित होने पर तुम्हें मेरा शिष्यत्व स्वीकार करना पडेगा।" राजा ने गोरखनाथ की बात मान ली। भर्तृहरि ने वैराग्य क्यों ग्रहण किया यह बतलानेवाली और भी किंवदन्तिया है।

दतकथाएं उन्हें राजा तथा विक्रमादित्य का ज्येष्ठ भ्राता बताती हैं। किन्तु कतिपय विद्वानों का मत है कि उनके ग्रथो मे राजसी भाव का पुट नही, अत उन्हे राजा नही माना जा सकता। अधिकाश विद्वानो ने चीनी यात्री इत्सिग के कथन में आस्था रखते हुए, उन्हे महावैयाकरण (वाक्यपदीय के प्रणेता) भर्तृहरि से अभिन्न माना है। पर आधुनिक विद्वान् ऐसा नही मानते। इनके ग्रथो से ज्ञात होता है कि इन्हे ऐसी प्रियतमा से निराशा हुई थी जिसे ये बहुत चाहते थे। "नीति-शतक" के प्रारंभिक श्लोक में भी निराश प्रेम की झलक मिलती है। किंवदती के अनुसार प्रेम में धोखा खाने पर इन्होंने वैराग्य ग्रहण किया था। इनके तीनो ही शतक सस्कृत काव्य का उत्कृष्टतम रूप प्रस्तुत करते हैं। इनके काव्य का प्रत्येक पद्य अपने मे पूर्ण है, और उससे शृगार, नीति या वैराग्य की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। इनके अनेक पद्य व्यक्तिगत अनुभूति से अनुप्रणित हैं तथा उनमे आत्म-दर्शन का तत्त्व पूर्णरूप से परिलक्षित है।

भर्तृहरि (वैयाकरण) - "वाक्यपदीय" नामक व्याकरण ग्रथ के प्रणेता। प युधिष्ठिर शर्मा मीमासक के अनुसार इनका समय वि पू 400 वर्ष है। पुण्यराज के अनुसार इनके गुरु का नाम वसुराज था। ये "शतकत्रय" के रचयिता भर्तृहरि से भिन्न हैं। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रथ हैं- महाभाष्य-दीपिका, भागवृत्ति (अष्टाध्यायी की वृत्ति), मीमासा-वृत्ति और शब्द-धातु-मीमासा।

भवत्रात - भवत्रात आचार्य ने जैमिनीय ब्राह्मण और आरण्यक के समान जैमिनीय श्रौतसूत्र पर भाष्यरचना की है। जैमिनीय ब्राह्मण का दूसरा नाम अष्ट-ब्राह्मण है। इस पर भवत्राताचार्य ने भाष्यरचना की है।

ये भवत्रात, देवत्रात (अपरनाम वराहदेव या वराहकाय देवत्रात) से सबधित थे या नहीं इस विषय में विद्वानों मे मतभेद है।

भवदेव - षडङ्गरुद्र के भाष्यकार। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर भी भाष्य-रचना की है जो त्रुटित रूप में उपलब्ध है। गुरु का नाम भवदेव। निवास-गगातटवर्ती पट्टन नामक नगर मे। भवदेव मैथिल थे। भवदेव के निवेदन के अनुसार "रुद्र-व्याख्या" उन्होंने उवटादि प्राचीन आचार्यों के अनुसार लिखी।

भवदेव भट्ट - समय- ई 11 वीं शती । बगाल के वर्म-वश के हरिवर्म राजा के आश्रित। इनके द्वारा रचित ग्रंथ -

1 व्यवहारतिलक (न्यायालयीन कार्यपद्धति का विवरण), 2 कर्मानुष्ठानपद्धति, (दशकर्मपद्धति या दशकर्मदीपिका नाम से भी इस ग्रथ का उल्लेख होता है। विषय है- सामवेद का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों को जिन दस प्रमुख धार्मिक विधियों का पालन करना पडता है, उनका विवरण), 3 प्रायश्चित्तनिरूपण (विषय-धर्मशास्त्र)। 4. तौतातित- मततिलक, विषय- कुमारिल भट्ट के दृष्टिकोण से पूर्वमीमांसा दर्शन ग्रंथ के सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण। यह ग्रंथ लिखते समय इन्होंने "बालवलभी-भुजग" छद्मनाम धारण किया है। यह मीमांसादर्शन का प्रमाणभूत ग्रंथ है। ये वास्तुशास्त्र के भी ज्ञाता थे। इन्होंने एक मदिर तथा तालाब बनवाया था।

भवस्वामी (भवदेव स्वामी) - यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता के भाष्यकार भट्टभास्कर दशम शताब्दी में हुए। उन्होंने भवस्वामी का निर्देश किया है। अत एव भवस्वामी का समय दशम शताब्दी के पूर्व मानना चाहिये। त्रिकाण्डमण्डनकार केशवस्वामी ने भी भवस्वामी का निर्देश किया है। त्रिकाण्ड-मण्डन 11 वीं शताब्दी का ग्रथ है। इस प्रमाण से भी भवस्वामी का समय दशम शताब्दी के पहिले हो सकता है। भवस्वामी ने तैत्तिरीय सहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण और बोधायनसूत्र पर विवरण लिखा है। कशव स्वामी तथा बोधायन-कारिकाकार गोपाल भी इनका निर्देश करते हैं, किंतु इनके ग्रथ अनुपलब्ध हैं।

भवभूति (उवेकाचार्य) - समय- ई 7-8 वीं शती। ये अपने युग के एक सशक्त एव विशिष्ट नाटककार ही नहीं थे, अपि तु साख्य, योग, उपनिषद् व मीमासा प्रभृति विद्याओं मे भी निष्णात थे। इनके आलोचकों ने इनके सबध में कटु उक्तियो का प्रयोग किया था। उनसे क्षुब्ध होकर भवभूति ने उन्हे चुनौती दी थी, कि निश्चय ही एक युग ऐसा आयेगा, जब उनके ममानधर्मा कवि उत्पन्न होकर उनकी कला का आदर करेग, क्यो कि काल निरवधि या अनन्त है और पृथ्वी भी विशाल है (मालती- माधव, अक प्रथम)। वह प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है -

ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्न ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।

भवभूति ने अपने नाटको की प्रस्तावना में अपना पर्याप्त परिचय दिया है। इनका जन्म कश्यप-वशीय उदुबर नामक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। ये विदर्भ (महाराष्ट्र) के अंतर्गत पद्मपुर के निवासी थे। इनका कुल कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनके पितामह का नाम भट्ट गोपाल था जो महाकवि थे। पिता-नीलकंठ, माता-जतुकर्णी (अथवा जातूकर्णी)। इन्होने अपना सर्वाधिक विस्तृत परिचय

"महावीर-चरित" की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्वय अपने श्रीकण्ठ नाम का सकेत किया है। इसी प्रकार का परिचय, किंचित् परिवर्तन के साथ, उनके "मालती-माधव" नाटक में भी प्राप्त होता है। इन्होंने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि दिया है। कहा जाता है कि देवी पार्वती की प्रार्थना में बनाये गये एक श्लोक से प्रभावित होकर तत्कालीन पडित-मडली ने उन्हें "भवभूति" की उपाधि प्रदान की थी। "मालती-माधव" के टीकाकार जगद्धर के अनुसार भी इनका नाम श्रीकण्ठ था भवभूति नाम से वे प्रसिद्ध हुए- "नाम्ना श्रीकण्ठ प्रसिद्ध्या भवभूति."

इस संबध में एक अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि क्या भवभूति उबेकाचार्य से अभिन्न थे। "मालती-माधव" के एक हस्तलेख के तृतीय अक की पुष्पिका में इसके लेखक का नाम उंबेक दिया गया है। उंबेक मीमासा शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। उन्होंने कुमारिल रचित "श्लोकवार्तिक" की टीका भी लिखी थी। म.म कुप्पुस्वामी शास्त्री, म म पां वा. काणे तथा एस आर. रामनाथ शास्त्री, उबेक व भवभूति को एक ही व्यक्ति मानते हैं। प बलदेव उपाध्याय भी इसी मत का समर्थन करते हैं। किंतु डा. कुन्हन राजा व म म डा मिराशी ने भवभूति व उबेक को भिन्न व्यक्ति माना है। कुन्हन राजा तो भवभूति के मीमांसक होने पर भी सदेह प्रकट करते हैं। उनके अनुसार भवभूति का आग्रह वेदात पर अधिक था किंतु डा राजा का यह मत इस आधार पर खंडित हो जाता है कि भवभूति ने स्वयं अपने को "पदवाक्य-प्रमाणज्ञ" कहा है। डा मिराशी के अनुसार उंबेक का रचना-काल 775 ई है, और भवभूति 8 वीं शती के आदि चरण में हुए थे। भवभूति व उबेक की एकता प्राचीन काल से ही चली आ रही है। अत. दोनों को पृथक् व्यक्ति स्वीकार करना ठीक नहीं है।

भवभूति ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपना समय निर्दिष्ट नहीं किया है। अत इनका काल-निर्णय भी विवादास्पद बना हुआ है। इनके बारे में प्रथम उल्लेख वाक्पतिराज कृत "गउडवहो" में मिलता है। इसमें कवि ने भवभूति रूपी सागर से निकले हुए काव्यामृत की प्रशंसा की है (779)। वाक्पतिराज, कान्यकुब्ज-नरेश यशोवर्मा के सभाकवि थे, जिनका समय 750 ई है। भवभूति भी जीवन के अतिम दिनों में राजा यशोवर्मा के आश्रित हो गए थे। "राजतरगिणी" में लिखा है कि यशोवर्मा की सभा में भवभूति आदि कई कवि थे (4-144)। वामन के 'काव्यालकार" में भवभूति के पद्य उद्धृत हैं। वामन का समय 8 वीं शती का उत्तरार्ध या 9 वीं शती का चतुर्थांश है। अत भवभूति का समय 7 वीं शती का अंतिम चरण या 8 वीं शती का प्रथम चरण हो सकता है।

भवभूति की केवल तीन रचनाए प्राप्त होती हैं- मालती-माधव (कल्पित कथात्मक प्रकरण)। महावीर-चरित (नाटक) व उत्तररामचरित (नाटक), दोनों नाटक राम-कथा पर आधारित हैं। 'उत्तररामचरित' उनकी सर्वश्रेष्ठ व अंतिम रचना है। इसमें सीतानिर्वासन की करुण गाथा वर्णित है। भवभूति के संबध में अनेक कवियों की उक्तियां प्राप्त होती है। राजशेखर ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार बताया है।

भवभूति, "नाटककारों के कवि" कहे जाते हैं। कालिदास के साथ इन्हें संस्कृत का सर्वोच्च नाटककार माना जाता है। इन्हें विशुद्ध नाटककार नहीं कहा जा सकता क्यों कि इनकी अधिकाश रचनाए गीति-नाट्य (लिरिकल ड्रामा) है। भवभूति की भाव-प्रवणता, उनकी कला का प्राण है। इनके भाव-पक्ष मे वैविध्य व विस्तार दिखाई पडता है। कालिदास की भाति ये केवल भावो के ही कवि नहीं है। इन्होंने कोमल के साथ ही साथ गभीर व कठोर भावों का भी चित्रण किया है। इनकी शैली का प्रमुख वैशिष्ट्य, उसकी उदात्तता है। भाषा पर इनका अधिकार है। इन्होंने छोटे-बडे विविध छंदों का प्रयोग किया है। क्षेमेंद्र ने शिखरिणी छंद के प्रयोग में इनकी प्रशसा की है। इनमें अलंकार-वैचित्र्य भी अधिक पाया जाता है।

कुछ आलोचकों ने नाटककार के रूप में इन्हें उच्च कोटि का नहीं माना है और इनके अनेक दोषो का निर्देश किया है। किंतु कतिपय दोषों के होते हुए भी भवभूति संस्कृत भाषा-साहित्य के गौरव हैं।

भवभूति के बारे में एक किंवदती इस प्रकार है - एक बार भवभूति अपने उत्तररामचरित नाटक के प्रति कालिदास का अभिप्राय जानने के लिये गये। उस समय वे चौसर खेल रहे थे। उन्होंने भवभूति को नाटक पढकर सुनाने को कहा। कालिदास ने नाटक की प्रशंसा की परतु उसके एक श्लोक के एक शब्द से अनुस्वार हटा देने की सूचना की। श्लोक इस प्रकार है -

> किमपि किमपि मन्द मन्दमासत्तियोगाद्
> अविरलितकपोल जल्पतोरक्रमेण।
> अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो
> अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत्।।

इस श्लोक के चतुर्थ चरण के "एव" शब्द से अनुस्वार हटा देने की कालिदास की सूचना भवभूति ने स्वीकार कर ली। इससे उसका सुधारित रूप इस प्रकार हुआ-

"रात्रिरेव व्यरसीत्"। इसके कारण शब्द के अभिधार्थ के स्थान पर हृद्य व्यंग्यार्थ उत्पन्न हुआ। "एव" सहित इस चरण का मूल अर्थ था- "वार्तालाप में मग्न इस प्रकार रात समाप्त हो गयी"। परंतु "एव" के कारण रात्रि ही समाप्त हुई परंतु प्रेमालाप समाप्त नहीं हुआ, यह व्यंग्यार्थ ध्वनित हुआ।

भवभूति-कथा - 1 भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ था। उन्होंने अपने पुत्र का नाम श्रीकण्ठ रखा। (श्रीकण्ठ-

पदलांछन.) परन्तु आगे चलकर एक श्लोक में श्रीकण्ठ ने "**भवभूति**" शब्द का सुंदर प्रयोग किया। वह श्लोक है -

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराविव स्तनौ।
वन्दे गौरीघनाश्लेष-भवभूति-सितानननौ।

आशय यह है- पार्वती द्वारा भगवान् शंकर का प्रगाढ आलिंगन करने पर उनके शरीर पर चर्चित विभूति से देवी के स्तन श्वेत हुवे, मानो वे हंस को कह रहे हों कि इस तपस्वी की अवस्था प्रेमवश क्या हो गई है।

कुछ टीकाकार अन्य रचना की और निर्देश कर यही नामान्तर दर्शाते हैं। वह श्लोक है -

साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्ति

इस कारण से वह "भवभूति" नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

भवानन्द सिद्धान्तवागीश - ई 17 वीं शती। बगालनिवासी। रचनाएं- तत्त्वचिंतामणिदीपिका, प्रत्यगालोकसारमजरी, तत्त्वचिन्तामणिटीका और कारकविवेचन (व्याकरण- विषयक)

भवालकर, श्रीमती वनमाला (डा.) - जन्म-सन् 1914 में, बेलगांव में। मातृभाषा- कन्नड। शिक्षा मराठी माध्यम से। मुबई वि वि से बी ए तथा एम ए प्रथम श्रेणी में। "महाभारत में नारी" विषय शोधप्रबन्ध पर मध्यप्रदेश के सागर वि वि से डॉक्टरेट और उसी वि वि में सस्कृत की प्राध्यापिका। वहीं से प्रवाचक-पद से सेवानिवृत्त। नाट्याभिनय तथा निर्देशन मे निपुण। वाद्यसगीत में रुचि। उ प्र शासन द्वारा इनका "पाददण्ड" नामक नाटक पुरस्कृत। कृतिया- पाददण्ड, रामवनगमन और पार्वती-परमेश्वरीय नामक तीन नाटक।

भल्लट - ई 8 वीं शती का उत्तरार्ध। काश्मीर-निवासी कवि। इनका 'भल्लटशतक' नामक काव्यग्रथ उपलब्ध है। मम्मट, क्षेमेंद्र, अभिनवगुप्त, आनदवर्धन आदि प्रसिद्ध सस्कृत-कवियो ने अपने-अपने अलकार-ग्रथों मे उत्तम काव्य के उदाहरण के रूप में इनकी काव्य-पक्तियां उद्धृत की है। "भल्लटशतक" में मुक्तक पद्य हैं और उनमें अन्योक्ति का प्राधान्य है।

भांडारकर, रामकृष्ण गोपाल (डा.) (सर) - ई 1837-1925। एक श्रेष्ठ नव्य विद्वान् तथा गवेषक। रत्नागिरि जिले के मालवण नामक ग्राम मे जन्म। सारस्वत ब्राह्मण। सन 1858 मे मुबई के एल्फिन्सटन कालेज से बी ए की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1858 मे इन्हे दक्षिणा-फेलोशिप प्राप्त हुई। उन्होंने पुणे के वर्तमान डेक्कन कालेज में 5-6 वर्षो तक सस्कृत का सूक्ष्म अध्ययन किया। सन् 1863 मे इन्होंने संस्कृत में एम ए किया। इन्होंने मस्कृत का अध्ययन पाश्चात्य अनुसधान पद्धति से किया था। इस पद्धति से इन्होंने न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि गहन विषयों का भी अध्ययन किया। एक सशोधक तथा चिकित्सक सस्कृत-पडित के नाते इनकी कीर्ति फैली।

अध्ययन, अनुसंधान तथा अध्यापन-कार्य को ही इनका जीवन समर्पित था। सन् 1865 में इनकी हैदराबाद (सिंध प्रान्त) के हायस्कूल मे इनकी मुख्याध्यापक पद पर नियुक्ति हुई। परतु वहा से शीघ्र ही रत्नागिरि के हायस्कूल में इनका उसी पद पर स्थानातरण हुआ। सन् 1868 में एल्फिन्स्टन कॉलेज मे संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1882 में डेक्कन कॉलेज में सेवारत हुए और 1893 में सेवानिवृत्त हुए।

ये सस्कृत-पडित तथा पुरातत्त्वसशोधक थे। ताम्रलेख-पठन, प्राकृत भाषाओ तथा ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों का अध्ययन कर इन्होने उन विषयो पर अनेक निबध प्रकाशित किये। इनके इस कार्य का महत्त्व अनुभव कर सन् 1879 में सरकार ने पुरातन सस्कृत लेखो के सशोधन का दायित्व इन पर सौंपा। इन सशोधनलेखों के पाच सग्रह प्रकाशित हुए हैं। सन् 1885 मे जर्मनी के गारिजम-विश्वविद्यालय ने इन्हें पीएच डी की उपाधि प्रदान की। सन् 1891 में सरकार ने इन्हें सी आय ई की उपाधि से गौरवान्वित किया। सन् 1893 में वे मुबई-विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुये।

आयु के 80 वर्ष पूर्ण करने के उपलक्ष में इनके शिष्यों ने सन् 1917 मे "भाडारकर स्मारक लेखसग्रह", स्मरणिका के रूप मे प्रकाशित कर इन्हें समर्पित किया। उसी समय पुणे मे "भाडारकर प्राच्यविद्यासशोधन मदिर" नामक एक सस्था की स्थापना की गयी। आज यह सस्था इनकी सस्कृत वाङ्मय सेवा तथा पुरातत्त्व अनुसन्धान का महान् केंद्र है। इन्होंने इस सस्था को अपना बहुमूल्य सस्कृत-ग्रथो का सग्रह अर्पित किया। इस सस्था ने महाभारत की सेकडो पाण्डुलिपियो का अनुसधान कर सपूर्ण महाभारत की शुद्ध प्रति तैयार की और उसे प्रकाशित करने का प्रचण्ड कार्य पूर्ण किया है।

इनके "अर्ली हिस्टरी ऑफ दि डेक्कन" तथा "वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर मायनर रिलिजस सेक्ट्स" नामक दो ग्रथ अत्यत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'मालती-माधव' ग्रथ पर टीका तथा शालेय छात्रों के लिय सस्कृत व्याकरण की पुस्तकें लिखी जो अत्यत लोकप्रिय थी।

भागुरि - सस्कृत के प्राचीन वैयाकरण। युधिष्ठिर मीमासकजी के अनुसार इनका समय 4000 वि पू है। व्याकरण सबधी इनके कतिपत नवीन वचना के उद्धरण, जदीश तर्कालिकारकृत "शब्दशक्ति-प्रकाशिका" मे प्राप्त होते है। सभवत इनके पिता का नाम भागुर था। विद्वानो का कथन है कि भागुरि का व्याकरण, "अष्टाध्यायी" से भी विस्तृत था। "शब्दशक्ति-प्रकाशिका" मे उद्धृत वचनो से ज्ञात होता है कि इनके व्याकरण की रचना श्लोको मे हुई थी। इनकी कृतियों के नाम है- भागुरि-व्याकरण, सामवेदीय शाखा ब्राह्मण, अलकार-ग्रथ त्रिकाण्ड-कोड, साख्य-भाष्य व दैवत ग्रथ। भागुरि की प्रतिभा बहुमुखी थी और उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की थी।

भातखण्डे, विष्णु नारायण - जन्म- 10-8-1860। मृत्यु 19-9-1936। संगीत-शास्त्र के महान् पण्डित तथा सगीत सेवा में निरत प्रख्यात कार्यकर्ता। हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू तथा संस्कृत (छह) भाषाओ पर प्रभुत्व। विविध भाषाओं में किया हुआ सगीत विषयक लेखन। सगीत के जानकारों के लिये उपयुक्त। इन्होंने अभिनव-रागमजरी तथा अभिनव तालमजरी नामक दो रचनाए "विष्णुशर्मा" उपनाम से की है। बडोदा, ग्वालियर, तथा लखनऊ मे आपने सगीत शास्त्र के अध्ययनार्थ विद्यालय स्थापन किए। अनेक स्थानों मे सगीत परिषदों को आयोजित कर, सगीत शास्त्र विषयक चर्चासत्र किए और सगीत शास्त्र को कालोचित व्यवस्थित रूप प्रदान किया। श्रीमल्लक्ष्यसगीतम् यह अपना सस्कृत ग्रथ चतुरपण्डित उपनाम से प्रकाशित किया। अत इन्हे "चतुरपडित" कहते हैं। नागपुर मे इनके स्मरणार्थ चतुरसगीत विद्यालय स्थापित हुआ है। हिंदुस्थानी सगीत पद्धति नामक इनके द्वारा निर्मित 6 खड सर्वत्र लोकप्रिय हैं। इस ग्रथमाला में 181 राग तथा 1875 गीतों का स्वरलिपि सहित सकलन करने का अपूर्व कार्य प भातखडेजी ने किया है।

भानुदत्त (भानुकर मिश्र या भानुमित्र) - समय- 13-14 वीं शती। इन्होंने अपने ग्रथ "रस-मजरी" मे स्वय को "विदेहभू" लिखा है जिससे इनका मैथिल होना सिद्ध होता है। पिता गणेश्वर कवि थे। इन्होंने अनेक ग्रथो की रचना की है - रस-मजरी, रस-तरगिणी, अलकार-तिलक, चित्र-चद्रिका, गीत-गौरीश, मुहूर्तसार, रस-कल्पतरु, कुमारभार्गवीय आदि। "श्रृगार-दीपिका" नामक एक अन्य ग्रथ भी इन्हीं का माना जाता है।

"रस-मजरी" नायक-नायिका-भेद विषयक अत्यत प्रौढ ग्रथ है। इसकी रचना सूत्र-शैली मे हुई है और स्वय भानुदत्त ने इस पर विस्तृत वृत्ति लिखकर उसे अधिक स्पष्ट किया है। इस पर आचार्य गोपाल ने 1428 ई मे "विवेक" नामक टीका की रचना की है। आधुनिक युग में प बद्रीनाथ शर्मा ने "सुरभि" नामक व्याख्या लिखी है जो चौखबा विद्याभवन से प्रकाशित है। आचार्य जगन्नाथ पाठक कृत इसकी हिन्दी व्याख्या भी वही से प्रकाशित हो चुकी है।

भानुदत्त की प्रसिद्धि मुख्यत "रस-मजरी" व "रस-तरगिणी" के कारण हैं। ये रसवादी आचार्य है। "रस-तरगिणी" का हिंदी टीका के साथ प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस मुबई से हुआ है।

भामह - समय- ई 6 वीं शती का मध्य। "काव्यालकार" नामक ग्रंथ के प्रणेता। अनेक आचार्यो ने दडी को भामह से पूर्ववर्ती माना है पर अब निश्चित हो गया है कि दंडी भामह के परवर्ती थे। भामह के व्यक्तिगत जीवन के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता। अपने काव्यालकार ग्रथ के अत में इन्होंने स्वय को "रक्रिलगोमिन्" का पुत्र कहा है (6-64)। "रक्रिल" नाम के आधार पण कुछ विद्वानों ने इन्हें बौद्ध माना है पर अधिकाश विद्वान् इससे सहमत नही क्यों कि भामह ने अपने ग्रथ मे बुद्ध की कही भी चर्चा नही की है। इसके विपरीत उन्होंने सर्वत्र रामायण व महाभारत के नायको का निर्देश किया है। अत वे निश्चित रूप से वैदिक-धर्मावलबी ब्राह्मण थे। वे काश्मीर-निवासी माने जाते हैं।

भामह अलकार-सप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होने अलकार को ही काव्य का विधायक तत्त्व स्वीकार किया है। इन्होने ही सर्वप्रथम काव्य-शास्त्र को स्वतत्र शास्त्र का रूप प्रदान किया और काव्य मे अलकार की महत्ता स्वीकार की। भामह के अनुसार बिना अलकारो के कविता-कामिनी उसी प्रकार सुशोभित नही हो सकती जिस प्रकार आभूषणों के बिना कोई रमणी। इन्होने रस को "रसवत्" आदि अलकारों मे अतर्भूत कर उसकी महत्ता कम कर दी है।

भारतचन्द्र राय (गुणाकर) - जन्म, ई 1712 मे, बगाल के हुगली-जनपद के बसन्तपुर ग्राम में। मृत्यु सन् 1860 मे। नदिया के राजा कृष्णचन्द्र राय (1728-1782) के सभाकवि। 'गुणाकर' की उपाधि से विभूषित। सस्कृत, फारसी, बगला, हिन्दी तथा व्रजभाषा मे प्रवीण।

बर्दवान के राजा द्वारा जमीनदारी छीनी जाने के बाद दरिद्र अवस्था में मामा के यहा इनका वास्तव्य रहा। कई वर्षो पश्चात्, जमीनदारी मागने पर कारागृहवास हुआ। कारागार के अधिकारियो की सहायता से भाग कर जगन्नाथपुरी में शकराचार्य के मठ मे सन्यास ग्रहण किया। सम्बधियों के अनुरोध पर पुनरपि गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। परन्तु दारिद्र्य के कारण पत्नी को मायके भेजकर स्वय फ्रान्सीसी शासकों के मत्री इन्द्रनारायण चौधरी के सम्पर्क मे रहे। नदिया के राजा कृष्णचन्द्र राय का आश्रय इन्द्रनारायण की मध्यस्थता से मिला।

कृष्णचन्द्र द्वारा "मूलाजोड" ग्राम में भारतचन्द्र के सपत्नीक रहने की व्यवस्था की गई। मूलाजोड के नये स्वामी रामदेव नाग द्वारा अत्याचार हुए परतु मूलाजोड के निवासियों से प्रेमसम्बन्ध के कारण वही वास्तव्य रहा। सस्कृत कृतिया- आनन्दमंगल, विद्यासुन्दर, मानसिह, चोरपचाशत्, रसमजरी, सत्यापीड, ऋतुवर्णना और चण्डीनाटक।

अन्य भाषा में रचनाए- बगला राधाकृष्ण के प्रेमालाप, घेडे बडेर कौतुक, नानाभाषा की कवितावली, गोपाल उडेर, कवितावली और नागाष्टक। हिन्दी कवितावली और फरदरफत।

भारतीकृष्णतीर्थ (अद्वैत-ब्रह्मानन्द) - विद्यारण्य स्वामी के गुरु। सन् 1333 मे विद्यातीर्थ महेश्वर के पश्चात् श्रृगेरी- पीठ के आचार्यपद पर आसीन हुए। सन् 1346 में विजयनगर साम्राज्य के सस्थापक हरिहरराय ने विजयप्राप्ति के लिये अपने पाचों बधुओं के साथ शृगेरी की यात्रा की तथा भारती कृष्णतीर्थ का आशीर्वाद प्राप्त किया था। विद्यारण्य ने अपने गुरु का स्तवन इस प्रकार किया है -

"सर्वेषा तु प्रथममुखदं भारतीतीर्थमाहु" (जिन्होंने मुझे सर्वप्रथम वाणी दी वे भारततीर्थ हैं)। माधवाचार्य को उनके जीवन के उत्तरार्ध में, भारतीतीर्थ ने ही सन्यासदीक्षा तथा 'विद्यारण्य'- अभिधान दिया। इन्होंने वाक्य-सुधा तथा वैयासिकन्यायमाला नामक दो ग्रथों की रचना की है। "वाक्य सुधा" का दूसरा नाम "दृग्दृश्य- विवेक" है। इस पर ब्रह्मानद भारती रथा आनदज्ञान यति ने टीकाए लिखी हैं।

भारद्वाज - पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरण व अनेक शास्त्रो के निर्माता। प युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय 9300 वर्ष वि पू है। इनकी व्याकरण-विषयक रचना "भारद्वाज-तत्र" थी जो सप्रत्ति उपलब्ध नहीं है। "ऋक्तत्र (1-4) मे इन्हें ब्रह्म, बृहस्पति व इद्र के पश्चात् चतुर्थ वैयाकरण माना गया है। इसमे यह भी उल्लिखित है कि भारद्वाज को इद्र द्वारा व्याकरण-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त हुई थी। इद्र ने उन्हे घोषवत् व उष्म वर्णो का परिचय दिया था। (ऋक्तत्र 1-4) "वायु-करण" के अनुसार भारद्वाज को पुराण की शिक्षा तृणजय से प्राप्त हुई थी। (103-63)। कौटिल्य कृत "अर्थशास्त्र" से ज्ञात होता है कि भारद्वाज ने किसी अर्थशास्त्र की भी रचना की थी (12-1)। वाल्मीकि रामायण के अनुसार उनका आश्रम प्रयाग में गगा-यमुना के सगम पर था (अयोध्या काड, सर्ग 54)। भारद्वाज बहुप्रतिभासपन्न व्यक्ति थे। उनकी अनेक रचनाए हैं - भारद्वाज-व्याकरण, आयुर्वेद-सहिता, धनुर्वेद, राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र। प्रकाशित ग्रथ-1 यत्रसर्वस्व (विमानशास्त्र) और 2 शिक्षा। इनके प्रकाशक क्रमश आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा, दिल्ली तथा भाडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे हैं।

भारवि - समय- 550 ई के लगभग। सस्कृत-महाकाव्य के इतिहास मे अलकृत शैली के प्रवर्तक होने का श्रेय इन्हें ही है। "किरातार्जुनीय" भारवि की एकमात्र अमर कृति है। इनका जीवन-वृत्त अभी तक अधकारमय है। इनका समय-निर्धारण पुलकेशी द्वितीय के समय के एक शिलालेख से होता है। इसमे कवि रविकीर्ति ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में महाकवि कालिदास के साथ भारवि का भी नाम लिया है और स्वय को कालिदास व भारवि के मार्ग पर चलने वाला कहा है। इस शिलालेख का निर्माण काल 634 ई है। कवि रविकीर्ति ने 634 ई मे एक जैन-मदिर का निर्माण करवाया था। इससे सिद्ध होता है कि इस समय तक भारवि का यश दक्षिण में फैल चुका था।

भार्रावे के स्थिति-काल का पता एक दान-पत्र से भी चलता है। यह दान-पत्र दक्षिण के किसी राजा का है जिसका नाम पृथ्वीकोंगणि था। इसका लेखन-काल 698 शक (770 ई) है। इसमे लिखा है कि राजा की 7 पीढिया पूर्व दुर्विनीत नामक व्यक्ति ने भारविकृत "किरातार्जुनीय" के 15 वें सर्ग की टीका रची थी। इस दान-पत्र से इतना निश्चित हो जाता है कि भारवि का समय ई 7 वीं शती के प्रथम चरण के बाद नहीं हो सकता। वामन व जयादित्य की "काशिकावृत्ति" में भी, (जिसका काल 650 ई है), "किरातार्जुनीय" के श्लोक उद्धृत हैं। बाणभट्ट ने अपने "हर्ष-चरित" में अपने पूर्ववर्ती प्राय सभी कवियों का नामोल्लेख किया है किंतु उस सूची मे भारवि का नाम नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि 600 ई तक भारवि उतने प्रसिद्ध नहीं हो सके थे। भारवि पर कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है और माघ पर भारवि का प्रभाव पडा है। अत इस दृष्टि से भारवि, कालिदास के परवर्ती व माघ के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। विद्वानों ने भारवि का काल ई छटी शती स्वीकार किया है जो बाण के 50 वर्ष पूर्व का है। 'अत 500 ई. की अपेक्षा 550 ई के लगभग ही भारवि के समय को मानना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है' (सस्कृत साहित्य का इतिहास-कीथ)।

राजशेखर-कृत 'अवति-सुदरीकथा' के अनुसार भारवि परम शैव थे। 'किरातार्जुनीय' की कथा से भी यह बात सिद्ध होती है। राजशेखर ने इस आशय का उल्लेख किया है कि उज्जयिनी मे कालिदास की भाति, भारवि की भी परीक्षा हुई थी। कहा जाता है कि रसिकों ने भारवि के काव्य पर मुग्ध होकर उन्हें 'आतपत्रभारवि' की उपाधि दी थी। किरातार्जुनीय के एक श्लोक (5-39) से इसका प्रमाण प्राप्त होता है।

अवतिसुदरीकथा में भारवि का जो अन्य जीवनवृत्तात आया है, वह इस प्रकार है -

भारत के वायव्य के आनदपुर नगर में एक कौशिकगोत्री ब्राह्मण परिवार रहता था। कुछ दिनों बाद इस परिवार ने नासिक्य देश के अचलपुर नामक नगर में स्थलातर किया। इस परिवार के नारायण स्वामी को दामोदर नामक जो पुत्र हुआ, वही आगे चलकर भारवि नाम से विख्यात हुआ।

अचलपुर के राजा विष्णुवर्धन के साथ भारवि का घनिष्ट सबध था। एक बार राजा के साथ ये शिकार खेलने गये। वहा इन्होंने राजा के आग्रह पर मांसभक्षण किया। अभक्ष्यभक्षण के पातक के विचार से ये इतने अस्वस्थ हुए कि शिकार से ये सीधे तीर्थयात्रा के लिये चल पडे। तीर्थयात्रा के काल में इनका गग राजवश के दुर्विनीत नामक राजा से परिचय हुआ तथा उनके निकट वे कुछ काल रहे। वहां पल्लव-नृपति सिहविष्णु की स्तुतिपरक एक आर्या लिखी। वह आर्या एक गायक के हाथ लगी। उसने उसे सिंहविष्णु की राजसभा में गाकर सुनाया राजा प्रसन्न हुआ। उसने कवि के नाम-ग्राम का पता लगाकर उसे अपनी सभा में राजकवि के नाते आश्रय दिया।

भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीय से उनका जीवनविषयक दृष्टिकोण प्रकट होता है। वे ऐहिक वैभव को महत्त्वपूर्ण मानते

थे। इन्द्र-अर्जुन- संवाद के रूप में भारवि ने अपना जीवनविषयक दृष्टिकोण अर्जुन के मुख से कहलवाया है। जब अर्जुन ने इंद्र से शस्त्रों की मांग की तब इंद्र कहते हैं- 'शस्त्र क्या मागते हो, मोक्ष मांगों'। इस पर अर्जुन कहता है - 'मुझ जैसे क्षत्रिय को - विशेषत अपमानदंश से दग्ध क्षत्रिय को - यह उपदेश मत दो। जब तक में अपने शत्रुओं का विनाश कर वंश की कीर्ति को उज्ज्वल नहीं करता, तब तक यदि मुझे तुम्हारा मोक्ष प्राप्त हो भी गया, तो मेरी विजयसिद्धि के मार्ग में वह एक रोडा ही सिद्ध होगा'।

इनके विषय में निम्न किंवदन्ती प्रचलित है -

भारवि की पत्नी ने एक बार घर के दारिद्र के बारे में पति को उलाहना दिया। पत्नी की बात उनके हृदय को चुभी। वे गृहत्याग कर निरुद्देश्य चल पडे। मार्ग में एक तडाग के किनारे विश्राम के लिये बैठे। वहा उन्हें निम्न श्लोक स्फुरित हुआ-

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदां पदम्।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पद ।।"

अर्थ- कोई भी कार्य बिना सोचे-समझे नहीं करना चाहिये क्यो कि अविचार सभी अनर्थों की जड है। विवेकी पुरुष के गुणों पर मोहित होकर लक्ष्मी स्वय उसे वरण करती है।

जैसे ही उपयुक्त श्लोक भारवि के मुख से बाहर निकला, निकटवर्ती राजधानी से मृगयार्थ आये हुए एक राजा ने उसे सुना। वे प्रसन्न हुये तथा उन्होंने भारवि को दूसरे दिन राजसभा में उपस्थित रहने का आमत्रण दिया। तदनुसार भारवि राजप्रासाद के द्वार पर पहुचे। द्वारपाल ने उन्हें चीथडों में देखकर भीतर प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी।

राजा ने भारवि का वह श्लोक अपने शयनकक्ष में सुवर्णाक्षरों में अकित करवाया।

एक बार राजा मृगया से रात को बहुत देरी से लौटे तथा सीधे अपने शयनकक्ष में पहुंचे। उन्होंने पर्यंक पर रानी को किसी युवा पुरुष के साथ लेटे हुए देखा। उन्हें अत्यत क्रोध हुआ। उन्होंने दोनों का शिरच्छेद करने के लिये खड्ग उठाया। उसी समय उनकी दृष्टि उस श्लोक पर पडी। अत उन्होंने रानी को जगा कर उस युवक के विषय में पूछताछ की। रानी ने कहा "बीस वीर्ष पूर्व खोया हुआ यह अपना पुत्र आज ही अचानक आया है। देखो, कैसा शांति से सो रहा है।" राजा ने अनुभव किया कि उस श्लोक के कारण ही उनके हाथों अविवेकपूर्ण कृति नहीं हुई। अत उन्होंने भारवि को ढूंढ निकाला तथा उन्हें विपुल धन से पुरस्कृत किया।

भारवि ने एकमात्र महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' की रचना की है, जिसमें 'महाभारत' (वनपर्व) के आधार पर अर्जुन व किरात-वेषधारी शिव के युद्ध का वर्णन है। 'किरातार्जुनीय', संस्कृत के प्रसिद्ध पंच-महाकाव्यों में गिना जाता है। भारवि के संबंध में सुभाषित-संग्रहों में कतिपय प्रशास्तियां प्राप्त होती हैं।

भारवि ने अपने महाकाव्य में एक नयी शैली तथा नयी प्रवृत्ति का सूत्रपात किया जिसका अनुकरण माघ, रत्नाकर, भट्टि आदि परवर्ती कवियों ने किया है।

अनुमान है कि दंडी तथा भामह ने आदर्श महाकाव्य के जो लक्षण बताये हैं, वे भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य पर आधारित हैं।

भावभट्ट - संगीतराय जर्नादन भट्ट के पुत्र। गायक तानभट्ट के पौत्र, बीकानेर के राजा अनूपसिंह (ई स 1674 से 1709) के आश्रित। रचनाए-अनूपसंगीत-विलास, अनूप-संगीतरत्नाकर, अनूपसंगीतांकुश। मुद्रित, संगीत-विनोद, मुरली-प्रकाश, नष्टोद्दिष्टप्रबोधक, ध्रौवपद टीका।

भावमिश्र - ई.16 वीं शती। एक सुप्रसिध्द वैद्यकशास्त्रज्ञ। पिता-श्रीमिश्र लटक। बहुधा कन्नौज-निवासी। "भावप्रकाश" नामक ग्रंथ के रचयिता। इस ग्रथ के पूर्व लिखे गये वैद्यकशास्त्र के ग्रथों में जिन औषधि-वनस्पतियों तथा व्याधियों का उल्लेख नहीं हुआ था, उनका इस ग्रथ में वर्णन मिलता है। "भावप्रकाश" की गणना, आयुर्वेदशास्त्र की लघुत्रयी के रूप में होती है। भावमिश्र ने 'गुणरत्नमाला' नामक एक चिकित्सा-विषयक ग्रथ की भी रचना की थी, जो हस्तलेख के रूप में इंडिया ऑफिस पुस्तकालय में है।

भावविजयगणि - जैनपंथी तपागच्छीय मुनि विमलसूरि के शिष्य। समय- ई. 17 वीं शती। ग्रथ- उत्तराध्ययन-व्याख्या (वि स 1689)। यह व्याख्या कथानकों से भरपूर और पद्यबद्ध है।

भावविवेक - (भव्य या भाविवेक) - बौद्ध न्याय में स्वतन्त्र मत के उद्भावक। माध्यमिक सिद्धान्तों की सत्ता सिद्ध करने के लिये स्वतन्त्र प्रमाण उपस्थित करने से प्रतिपक्षी स्वय परास्त होता है, यह इनकी मान्यता रही। इनकी रचनाए मूल सस्कृत में अनुपलब्ध। चीनी तथा तिब्बती अनुवादों से ज्ञात। रचनाएं - (1) माध्यमिक-कारिका-व्याख्या (2) मध्यम-हृदयकारिका, (3) मध्यमार्थ-सग्रह और (4) हस्तरत्न।

भावसेन त्रैविद्य - ई. 13 वीं शती। जैनपंथी मूलसघ सेनगण के आचार्य। कर्नाटकवासी। व्याकरण, दर्शन और सिद्धान्त इन तीन विद्याओं में निपुण। अत त्रैविद्य कहलाये। वादीभकेसरी, वादिपर्वतवज्र आदि विशेषण प्राप्त। रचनाएं- 1 प्रभाप्रमेय, 2 कथाविचार, 3. शाकटायन-व्याकरण टीका, 4. कातन्त्ररूपमाला, 5. न्यायसूत्रावली, 6. भुक्ति-मुक्ति-विचार, 7. सिद्धान्तसार, 8 न्यायदीपिका, 9 सप्तपदार्थी-टीका, 10 विश्वतत्त्वप्रकाश।

भास - समय- ई पू. चौथी व पांचवी शती के बीच। इन्होंने 13 नाटकों की रचना की है जो सभी प्रकाशित हो चुके हैं। इनके सभी नाटकों का हिन्दी अनुवाद व संस्कृत-टीका

के साथ प्रकाशन, "भासनाटकचक्रम्" के नाम से "चौखम्बा संस्कृत सीरीज" से हो चुका है। भास के संबंध में विविध ग्रंथों में अनेक प्रकार के प्रशंसा-वाक्य प्राप्त होते हैं। संस्कृत के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने भी भास का महत्त्व स्वीकार किया है। महाकवि कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक की प्रस्तावना में भास की प्रशंसा की है। इनके नाटक दीर्घ काल तक अज्ञात अवस्था में पड़े हुए थे। 20 वीं शती के प्रथम चरण के पूर्व तक, भास के संबंध में कतिपय उक्तियां ही प्रचलित थीं। इनके नाटकों का उद्धार सर्वप्रथम त्रिवेंद्रम के म.म.टी. गणपति शास्त्री ने 1909 ई. में किया। उन्हें पद्मनाभपुरम् के निकट मनल्लिकारमठम् में ताडपत्र पर लिखित इन नाटकों की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुईं। सभी हस्तलेख मलयालम् लिपि में थे। शास्त्रीजी ने सभी (13) नाटकों का संपादन कर, 1912 ई. में उन्हें प्रकाशित किया। ये सभी नाटक, 'अनंतशयन संस्कृत ग्रंथावली' में प्रकाशित हुए हैं। इन नाटकों को देख विद्वान् व रसिक जन विस्मित हो उठे।

भास के नाटकों के संबंध में विद्वानों के तीन दल हैं। प्रथम दल के मतानुसार सभी (13) नाटक भासकृत ही है। दूसरा दल इन नाटकों को भासकृत नहीं मानता। उनके मतानुसार इनका रचयिता या तो 'मत्तविलासप्रहसन' का प्रणेता युवराज महेन्द्रविक्रम है या 'आश्चर्य-चूडामणि' नाटक का प्रणेता शीलभद्र है। बर्नेट के अनुसार इन नाटकों की रचना पाड्य राजा राजसिंह प्रथम के शासन-काल (675 ई.) में हुई थी। अन्य विद्वानों के मतानुसार इन नाटकों का रचना-काल सातवीं-आठवीं शती है और इनका प्रणेता कोई दाक्षिणात्य कवि था। तीसरा दल ऐसे विद्वानों का है जो इन नाटकों का कर्ता तो भास को ही मानता है किंतु इनके वर्तमान रूप को उनका संक्षिप्त व रंगमंचोपयोगी रूप मानता है। पर संप्रति अधिकांश विद्वान् प्रथम मत के ही पोषक है। डा. पुसाल्कर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ- 'भास-ए स्टडी' और ए.एस.पी. अय्यर ने अपने 'भास' नामक (अंग्रेजी) ग्रंथ में, प्रथम मत की ही पुष्टि, अनेक प्रमाणों के आधार पर, की है।

विद्वानों ने भास का समय ई.पू. छठी शती से 11 वीं शती तक स्वीकार किया है। अंतः व बहिःसाक्ष्यों के आधार पर, इनका समय ई.पू. 4 थी व 5 वीं शती के बीच निर्धारित किया गया है। अश्वघोष व कालिदास दोनों ही भास से प्रभावित है। अतः भास का इन दोनों से पूर्ववर्ती होना निश्चित है। कालिदास का समय सामान्यतः ई.पू. प्रथम शती माना गया है। भास के नाटकों में अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता देख कर उनकी प्राचीनता निःसंदेह सिद्ध हो जाती है। अनेक पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों के मतों का ऊहापोह करने के पश्चात् बाह्य साक्ष्यों से भास का समय ई.पू. चतुर्थ शतक तथा पंचम शतक के बीच मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता हैं। कथावस्तु के आधार पर भासकृत 13 नाटकों को 4 वर्गों में विभक्त किया गया है- **(1) रामायण-नाटक** — प्रतिमा व अभिषेक, **(2) महाभारत नाटक** — बालचरित, पंचरात्र, मध्यम-व्यायोग, दूत-वाक्य, उरु-भंग, कर्णभार व दूत-घटोत्कच, **(3) उदयन नाटक** — स्वप्न वासवदत्त व प्रतिज्ञा- यौगंधरायण, **(4) कल्पित नाटक** — अविमारक व दरिद्र-चारुदत्त।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से भास के नाटकों का वस्तुक्षेत्र विविध है। विस्तृत क्षेत्र से कथानक ग्रहण करने का कारण इनके पात्रों की संख्या अधिक है और उनकी कोटियां भी अनेक है। भास के सभी पात्र प्राणवंत तथा इसी लोक के प्राणी है। उनमें कृत्रिमता नाममात्र को नहीं है। इतना अवश्य है कि "मध्यम-व्यायोग" व अविमारक' नामक नाटकों मे ब्राह्मणीय संस्कृति एवं वैदिक धर्म का प्रभाव, इन्होंने जानबूझकर प्रदर्शित किया है। पात्रों के संवाद नाटकीय विधान के सर्वथा अनुरूप है। इन्होंने नवों रसों का प्रयोग कर अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। इनके सभी नाटक अभिनय-कला की दृष्टि से सफल सिद्ध होते है। कथानक, पात्र, भाषा-शैली, देश-काल व संवाद किसी के भी कारण उनकी अभिनेयता में बाधा नहीं पडती। इन्होंने ऐसे कई दृश्यों का भी विधान किया है जो शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित हैं यथा वध, अभिषेक आदि पर ये दृश्य इस प्रकार रखे गए है कि इनके कारण नाटकीयता में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।

भास की शैली सरल व अकृत्रिम है। इनकी कवित्व-शक्ति भी उच्च कोटि की है। अपने वर्ण्य-विषयों को भास ने अत्यंत सूक्ष्मता से रखा है। इनका प्रकृति-वर्णन भी अत्यंत स्वाभाविक व आकर्षक है।

भास के कुछ नाट्यगुण इतने श्रेष्ठ थे कि उनका परवर्ती नाटककारों पर प्रभाव पडना अपरिहार्य ही था। शूद्रक का मृच्छकटिक नाटक भास के चारुदत्त पर से ही लिखा गया मानते है। कालिदास, भवभूति और हर्षवर्धन जैसे श्रेष्ठ नाटककारों पर भी भास की छाप परिलक्षित होती है।

"भासनाटकचक्रे हि च्छेके: क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।"

उक्त प्रसिद्ध सुभाषित के अनुसार भास के सारे नाटकों की अग्निपरीक्षा की गई थी। उस परीक्षा मे स्वप्नवासवदत्त नाटक को अग्नि भी नहीं जला सकी। उनके अनेक नाटकों में अग्निदाह के प्रसंग वर्णित है। अतः उन्हें 'अग्निमित्र' की उपाधि प्राप्त थी।

यद्यपि इनका विश्वसनीय जीवन-चरित्र उपलब्ध नहीं है, तथापि इनके नाटकों के अध्ययन से इनके चरित्र पर कुछ प्रकाश पडता है जिससे अनुमान होता है कि वे ब्राह्मण थे। 'भास' व्यक्ति-नाम है या कुल-नाम, इसका भी पता नहीं

चलता। नाटकों में उत्तर भारत के स्थलों तथा रीति-रिवाजों का अधिक वर्णन है जो इनके उत्तर भारत के निवासी होने का प्रमाण है। राजप्रासाद, अत·पुर, मंत्रिमंडल, सेना, द्वद्वयुद्ध आदि इनके नाटकों के वर्णित विषयों से अनुमान निकलता है कि इनका राजघरानों से विशेष सपर्क रहा हो। उनके प्रत्येक नाटक के भरतवाक्य में 'राजसिह. प्रशास्तु न·' (हमारा राजसिंह प्रशासक रहे) यह चरण आता है। इससे प्रतीत होता है कि इन्हें किमी राजसिह नामक राजा का आश्रय प्राप्त हुआ था।

भासर्वज्ञ - ई 9 वीं शती का उत्तरार्ध। काश्मीर के निवासी। इन्होने 'न्यायसार' नामक ग्रथ की रचना की। उसमे स्वार्थ व परार्थ अनुमान, पक्षाभास, दृष्टाताभास, मुक्ति आदि का विवेचन किया गया है। भासर्वज्ञ की ये सभी कल्पनाए न्याय-जगत् में अपूर्व मानी जाती है। अन्य नैयायिकों के विपरीत, इन्होंने प्रमाण के 3 ही भेद माने हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। इनके न्यायसार ग्रथ पर 10 टीकाए लिखी गई हैं।

भास्कर - 'भास्कर-भाष्य' के प्रणेता। भेदाभेदवादी। आचार्य शकरोत्तर युग के वेदाताचार्यो में इनका नाम प्रमुख है। रामानुज ने अपने 'वेदार्थसग्रह' में, उदयनाचार्य (984 ई) ने 'न्याय-कुसुमाजलि' मे और वाचस्पति ने 'भामती' में इनके मत का खडन किया है। अत इनका समय 8 वा शतक मानना चाहिये।

इनके मतानुसार ब्रह्म, सगुण, सल्लक्षण, बोधलक्षण और सत्य- ज्ञान-अनत लक्षण है। चैतन्य तथा रूपातररहित अद्वितीय है। ब्रह्म, कारण-रूप मे निराकार तथा कार्य-रूप में जीव-रूप और प्रपचमय है। ब्रह्म की दो शक्तिया, भोग्य-शक्ति तथा भोँक्तृ-शक्ति होती हैं (भास्कर भाष्य, 2-1-27)। भोग्य-शक्ति ही आकाशादि अचेतन जगत्-रूप में परिणत होती हैं। भोक्तृ-शक्ति, चेतन जीव-रूप में विद्यमान रहती है। ब्रह्म की शक्तिया पारमार्थिक हैं। वह सर्वज्ञ तथा समग्र शक्तियों से सपन्न है (भा भा 2-1-24)।

भास्करजी, ब्रह्म का परिणाम स्वाभाविक मानते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियों का विक्षेप करता है, उसी प्रकार ब्रह्म अपनी अनत और अचिंत्य शक्तियों का विक्षेप करता है।

यह जीव, ब्रह्म से अभिन्न है तथा भिन्न भी। इन दोनों मे अभेद रूप स्वाभाविक है, भेद उपाधिजन्य है।

मुक्ति के लिये भास्कर, ज्ञान-कर्म-समुच्चयवाद को मानते हैं। उनके मतानुसार शुष्क ज्ञान से मोक्ष का उदय नही होता, कर्म-सवलित ज्ञान से होता है। उपासना या योगाभ्यास के बिना अपरोक्ष ज्ञान का लाभ नहीं होता। श्री भास्कर को सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति दोनों ही अभीष्ट हैं।

भास्कर - जन्म- 1805 ई, मृत्यु 1837 ई.। जन्मग्राम- शोरनूर। नम्मूतिरिवंशीय। कालीकट के राजा विक्रमदेव तथा कोचीन के महाराज द्वारा सम्मानित। वेदान्त का अध्ययन त्रिपुणैथुरै में तथा व्याकरण का कूटल्लूर में। केवल 16 वर्ष की आयु में शृगारलीला-तिलक-भाण की रचना की।

भास्कर - रचना- शाहजी-प्रशस्ति। इस काव्य में तजौरनरेश शाहजी भोसले की स्तुति है। इन्हें राजा ने 40 घरों वाला एक ग्राम इनाम में दिया था। कवि ने वे सभी घर शिष्यों को दिये।

भास्करनन्दी - सर्वसाधु के प्रशिष्य और जिनचन्द्र के शिष्य। समय- 14-15 वीं शती। दाक्षिणात्य। ग्रथ-तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति पर सुबोध टीका तथा ध्यानस्तव। प्रथम ग्रथ डड्ढा के पचसंग्रह से प्रभावित है और द्वितीय ग्रंथ पर तत्त्वानुशासनादि का प्रभाव दिखाई देता है।

भास्करभट्ट - ई. 15 वी शती। इन्होंने यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता पर ज्ञानयज्ञ नामक भाष्य लिखा है। इसमें इन्होंने वेदमंत्रों का अर्थ यज्ञपरक लगाने के साथ ही उनका आध्यात्मिक अर्थ भी विशद किया है और पाणिनि के सूत्रों के आधार पर अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति बतलायी है। वैदिक साहित्य में यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भास्करयज्वा - ई. 16 वीं शती का पूर्वार्ध। पिता- महाकवि शिवसूर्य, जो पाण्ड्य राजा हालघट्टि के कुलगुरु थे। ये परम शैव तथा श्रोत्रियों में अग्रगण्य थे। रचना- वल्लीपरिणय (नाटक)।

भास्करराय - ई 18 वीं शती। एक मीमांसक तथा तंत्रशास्त्रज्ञ। इन्होंने वादकुतूहल तथा भाट्टजीविका दो ग्रथ मीमासा विषयक, तथा सेतुबध और सौभाग्य-भास्कर (तत्र-विषयक) ग्रंथ लिखे हैं। सेतुबध में नित्याषोडशिकार्णव तत्र का भाष्य है तथा सौभाग्यभास्कर ललिता-सहस्रनाम की व्याख्या है।

भास्कराचार्य - वरदगुरु के वशज। चिगलपेट जिले के निवासी। समय- सभवत ई 18 वीं शती। रचना- साहित्य-कल्लोलिनी।

भास्कराचार्य - समय- 1157 से 1223 ई। एक महान् ज्योतिषशास्त्रज्ञ। मराठी ज्ञानकोशकार डा केतकर के अनुसार ये सह्याद्रि पर्वत के निकटवर्ती विज्जलवीड (जि. जलगाव, महाराष्ट्र) नामक ग्राम के निवासी थे। अन्य एक विद्वान् के मतानुसार ये मराठवाडा के बीड नामक नगर के निवासी थे। गोत्र-शाडिल्य। पिता-महेश्वर उपाध्याय जो इनके गुरु भी थे।

इन्होंने गणित तथा ज्योतिषशास्त्र पर सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल, वासना-भाष्य, बीजगणित, सर्वतोभद्र नामक ग्रथ लिखे हैं।

सिद्धातशिरोमणि तथा करणकुतूहल दोनों ज्योतिर्गणित विषयक ग्रथ हैं। वासनाभाष्य, सिद्धांत- शिरोमणि के ग्रहगणित तथा गोलाध्याय पर भास्कराचार्य के स्वकृत टीकाग्रंथ भी हैं।

पृथ्वी गोल है तथा वह अपने चारों और घूमती है यह भास्कराचार्य को ज्ञात था। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भी उन्हें ज्ञात था जो इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है -

आकृष्टशक्तिश्च मही तथा यत्। स्वस्थ गुरु स्वाभिमुख स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति। समे समन्तात् क्व पतत्विद च।।

अर्थ- पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है। इस शक्ति से वह आकाश की जड वस्तुयें अपनी और खींचती है। वह (पृथ्वी) गिर रही है ऐसा भ्रम होता है, परतु वह गिरती नही, क्यो कि चारों ओर समानरूप से विद्यमान अवकाश में वह कहां जायेगी।

सूर्यग्रहण तथा चद्रग्रहण के कारण तथा पृथ्वी के चारो ओर वायुमडल की ऊचाई आदि वैज्ञानिक तथ्य भी इन्हे ज्ञात थे।

वायुमण्डल के सबध में इन्होंने कहा है-

"भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि। भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्"।।

अर्थ- पृथ्वी के पृष्ठभाग से 12 योजन (96 मील) तक भूवायु है। उस वायुमडल में बादल, बिजली आदि नैसर्गिक घटनाए होती हैं।

अकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित के मौलिक सिद्धात इन्होंने ही सर्वप्रथम विश्व को दिये हैं। गणितशास्त्र का इतिहास लिखने वाले विद्वानों के मतानुसार लाग्राज नामक पाश्चात्य गणितशास्त्रज्ञ के पूर्व विश्व मे भास्कराचार्य की बराबरी का अन्य गणितशास्त्री नहीं था। फलित-ज्योतिष पर इनके ग्रथ प्राप्त नहीं होते किंतु मुहूर्त- चितामणि की पीयूषधारा नामक टीका में इनके फलित-ज्योतिष-विषयक श्लोक प्राप्त होते हैं। सिद्धातशिरोमणि के प्रथम अध्याय का नाम लीलावती है। उसके सबध में एक किंवदती इस प्रकार है -

भास्कराचार्य ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता थे। उन्हे लीलावती नामक एक कन्या थी। उसकी जन्म-पत्रिका से उन्हे ज्ञात हुआ कि उसके भाग्य मे वैधव्य-योग है परतु यदि एक विशिष्ट मुहूर्त पर विवाह- विधि हुआ तो वह दुर्भाग्य टल सकता है यह भी उन्हे ग्रह-गणना से ज्ञात था। उस विशिष्ट मुहूर्त पर विवाह-विधि सपन्न हो, इस दृष्टि से उन्होंने व्यवस्था की। उन दिनों घटिकापात्र से मुहूर्त जाना जाता था। गौरीहरपूजा के लिये लीलावती को बिठाया गया तथा घटिकापात्र की ओर ध्यान देने की उसे सूचना दी गयी। घटिकापात्र जल में ठीक प्रकार से डूबता है या नहीं इसकी प्रतीक्षा करती हुई लीलावती बैठी रही। दुर्भाग्य से उसके माथे की कुकुम-अक्षत का दाना घटिकापात्र मे गिर पडा तथा उसकी पेंदी का सूक्ष्म छिद्र बद हो गया। इससे घटिकापात्र मे पानी भरने की क्रिया विलब से हुई। फलस्वरूप इष्ट विवाह-मुहूर्त टल गया। इस प्रकार विधि-विधान अटल सिद्ध हुआ तथा लीलावती विधवा हुई। उस अवस्था में वह अपने पिता के घर लौट आयी। उसका समय ज्ञान-साधना में व्यतीत हो इस उद्देश्य से भास्कराचार्य ने उसे जो गणितशास्त्रज्ञ सिखाया, वही सिद्धात शिरोमणि के लीलावती अध्याय में ग्रथित हुआ है।

भिक्षु आंगिरस - ऋग्वेद के दसवें मंडल के 117 वे सूक्त के रचयिता। इस सूक्त में अन्नदान की प्रशसा तथा अन्नदान न करने वालो की निंदा है।

एक ऋचा इस प्रकार है -

स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्।।
(ऋ 10-17-3)

अर्थ- द्वार पर आये हुए क्षुधाग्रस्त तथा निर्धन अतिथि को अन्नदान करनेवाले व्यक्ति के शत्रु भी मित्र बनते है तथा उन्हें अन्न-फल प्राप्त होता है।

भिडे न ना. - पुणे- निवासी। रचना- कर्मतत्त्वम्। छात्रों में सरल सुबोध सस्कृत लेखन का प्रसार करने हेतु मैसूर वि वि के नवीनम् रामानुजाचार्य द्वारा हर तीसरे वर्ष जो सस्कृत निबध स्पर्धा आयोजित की जाती थी, उसमे प्रथम पुरस्कार सन् 1944 मे प्राप्त किया। तदनतर यह रचना मैसूर वि वि मे प्रकाशित हुई। इन का अन्य निबध "किं राष्ट्र कश्च राष्ट्रिय" हिंदुत्ववादी दृष्टिकोण से लिखा हुआ है।

भिषग् आथर्वण - एक सूक्तद्रष्टा। ऋग्वेद के दसवें मडल के 97 वे सूक्त के रचयिता। सूक्त अनुष्टुप् छद मे है। औषधियो की प्रशसा इसका विषयवस्तु है। सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है-

शत वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुह।
अधा शतक्रत्वो यूयमिम मे अगद कृत।।

अर्थ- शतावधि मर्मस्थानो और सहस्रावधि अकुरो से युक्त, शतकार्यकारी तथा मातृभूत औषधियो, मुझे स्वस्थ रखो।

भीमसेन - ई 7 वी शती के पूर्व। पाणिनीय धातुपाठ का अर्थनिर्देश करने वाले वैयाकरण। गणलसूरि, सर्वानन्द, मैत्रेयरक्षित जैसे लेखकों ने भीमसेन के वचन यत्र तत्र उद्धृत किये है। कुछ विद्वानो का मत है कि भीमसेन ने पाणिनीय धातुपाठ पर का कोई व्याख्या लिखी थी।

भुवनानन्द - ई 14 शती। "कविकण्ठाभरण" उपाधि सम्मानित। विश्वप्रदीप ग्रथ के लेखक। विषय - सगीत।

भूतविद् आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवे मडल के 62 वें सूक्त के द्रष्टा। सूक्त का विषय है मित्रावरुण की स्तुति

भूदेव मुखोपाध्याय - ई 19 वी शती। "रस-जलनिधि" के कर्ता।

भूदेव शुक्ल - सभवत सत्रहवीं शती के कवि। जन्मभूमि जम्बूसर (जम्बू)। पिता- शुकदेव पडित। कृतिया-धर्मविजय-नाटकम् और रसविलास प्रबन्ध। अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओ मे अधिक है।

भूपाल - ग्रथ जिनचतुर्विंशतिका स्तोत्र (26 पद्य)। इस पर प्राचीन टीका प आशाधर की है। इसके बाद म श्रीचन्द्र और नागचन्द की भी टीकाए उपलब्ध हैं। उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत) के एक पद्य से इस स्तवन के एक पद्य का साम्य देखते

हुए कवि का समय 11 वीं शती के आसपास अनुमेय है।

भृगु - एक सूक्तदृष्टा। ऋग्वेद के नववें मंडल का 65 वा सूक्त भृगु तथा जमदग्नि ने तथा दसवें मडल का 19 वा सूक्त भृगु, मथित तथा च्यवन ने मिलकर रचा है।

भृगु के जन्म के संबध में भिन्न भिन्न मत है, परतु सामान्यत ब्रह्मदेव से उनकी उत्पत्ति बतलाई जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, महाभारत, भागवत और पुराणों में उनकी उत्पत्ति की कथाए हैं।

ऋग्वेद में उल्लेख है कि भृगु ने मानव जाति के उपयोग के लिये अग्नि का आविष्कार किया। भृगु शब्द भृज् धातु से बना है, जिसका अर्थ भूनना है। महाभारतकार भृगु शब्द की उत्पत्ति भृक् धातु से बतलाते हैं, जिसका अर्थ ज्वाला है। ऋग्वेद ने मातरिश्वा को अग्नि का आविष्कारकर्ता बतलाया है। एक ही तत्त्व के दो आविष्कार होने से, प्रश्न निर्माण होता है कि दोनों के आविष्कार की क्या विशेषता है। इसका समाधान इस प्रकार है मातरिश्वा ने भौतिकशास्त्र की दृष्टि से तथा भृगु ने व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से अग्नि का आविष्कार किया।

भोज (भोजराज) - परमारवशीय धारा-नरेश। सस्कृत भाषा के पुनरुद्धारक। इन्होंने अनेक शास्त्रो का निर्माण किया है। इन्होंने ज्योतिष सबधी 'राजमृगाक' नामक ग्रथ की रचना 1042-43 ई मे की थी। इनके पितृव्य (चाचा) महाराज मुज की मृत्यु 994 से 997 ई के मध्य हुई थी। तदनतर इनके पिता सिधुराज सिहासनारूढ हुए और कुछ दिनो तक गद्दी पर रहे। भोज के उत्तराधिकारी जयसिह नामक राजा का समय 1055-56 ई है क्यो कि उनका एक शिलालेख माधाता नामक स्थान में इसी ई का प्राप्त होता है। अत भोजराज का समय, एकादश शतक का पूर्वार्ध माना जाना उचित है। (1018 मे 1063 ई)। राजा भोज की विद्वत्ता गुणग्राहकता तथा दानशीलता, इतिहास प्रसिद्ध हैं। 'राजतरगिणी' मे काश्मीर-नरेश अनतराज व मालवाधिपति भोज को समान रूप से विद्वत्प्रिय बताया गया है (7-259)। उन्होंने विविध विषयो पर समान अधिकार के साथ अपनी लेखनी चलायी है और विविध विषयों पर 84 ग्रथ लिखे। इन्होंने 'श्रृगार-मंजरी' नामक कथा-काव्य व 'मदारमरदचपू' काव्य का भी प्रणयन किया है। वास्तुशास्त्र पर इनका 'समरागण-सूत्रधार' नामक प्रसिद्ध ग्रथ है जिसमें 17 हजार श्लोक हैं। 'सरस्वती- कठाभरण' (बृहत्शब्दानुशासन) नामक इनका व्याकरण सबधी ग्रंथ प्रसिद्ध है जो 8 प्रकाशों मे विभक्त है। इन्होंने 'युक्तिप्रकाश' व 'तत्त्वप्रकाश' नामक धर्मशास्त्रीय ग्रथों की रचना की है, और औषधियों विषयक 'राजमार्तंड' नामक ग्रंथ लिखा है जिसमें 418 श्लोक हैं। इनकी योगसूत्र पर 'राजमार्तंड' नामक टीका भी प्राप्त होती है।

काव्याशास्त्र पर भोजराज ने 'शृगार-प्रकाश' और 'सरस्वती-कठाभरण' नामक प्रसिद्ध ग्रथ लिखे हैं। इन ग्रथों मे तद्विषयक सभी विषयो के विस्तृत विवेचन के साथ कई नवीन तथ्य प्रस्तुत किये गए है। श्रृगार को मूल रस मान कर, भोज ने अलकार-शास्त्र के इतिहास में नवीन व्यवस्था स्थापित की है। इन्होंने पूर्ववर्ती सभी काव्यशास्त्रीय सिद्धातो का विवेचन करते हुए समन्वयवादी परपरा की स्थापना की है। इसी दृष्टि से इनका महत्त्व अधिक है।

भोजराज की बहुमुखी प्रतिभा स प्रभावित 16 वी शती के बल्लाल सेन ने 'भोज-प्रबध' नामक एक अमूठे काव्य का प्रणयन किया है। इस प्रबध म भोजराज की विभिन्न कवियों द्वारा की गई प्रशस्ति का कथात्मक वर्णन है। उन में मे कुछ कथाए -

भोजकथा- 1 एक दिन राजा भोज की सभा मे घोर दारिद्रय का अनुभव करते हुए प्रकाण्ड विद्वान् कवि क्रीडाचन्द्र उपस्थित हुए। उनकी यह अवस्था देखकर कालिदास ने बडे आदर से उनकी पूछताछ की तथा ऐसी दशा होने का कारण पूछा। क्रीडाचन्द्र ने बताया 'द्रव्य का सचय कर दान न देने वाला धनी भी दरिद्रो की सख्या मे अग्रगण्य होता है। अपेय जल सचय करने वाला समुद्र भी मरुस्थल के समान है।

यह सुनकर कालिदास, वररुचि, मयूर आदि विद्वानो ने उसकी प्रशसा की तथा राजा ने उन्हे बीस हाथी और पाच गाव भेट किये।

भोजकथा- 2 अपनी दानशूरता पर राजा भोज ने गर्व का अनुभव किया। इसे जानकर उनके अमात्य ने विक्रमार्क के चरित्र का कुछ भाग राजा के सम्मुख रखा। उसने यह भाग पढा - 'राजा विक्रमार्क ने प्यास लगने पर दासी द्वारा पानी मगवाया। उसने वह पानी हल्का, मधुर तथा शीतल और सुगधित हो ऐसा आदेश दिया। यह सुनकर वेतालिक मागध ने कहा- 'हे देव, आपके मुख मे सरस्वती (देवी, नदी) का नित्य वास है। आपके शौर्य की याद दिलाता है समुद्र जो अगूठी से युक्त है। वाहिनी (सेना, नदी) आपके पार्श्व मे नित्य उपस्थित है। आपका मानस (चित्त, सरोवर) स्वच्छ है। इतना होते हुए आपको पानी पीने की इच्छा कैसे हुई। विक्रमार्क ने इस उक्ति पर प्रसन्न होकर उस वैतालिक को प्रभूत सुवर्ण, मोती, एक करोड घोडे, पचास हाथी, सौ वारागनाए आदि, जो पाण्ड्य राजा से यौतक मे प्राप्त हुआ था, इनाम दे दिया।

यह विक्रमार्क की दान सीमा पढकर भोज का गर्व निरस्त हुआ।

भोजकथा- 3 धारा के सिधुल राजा को वृद्धावस्था मे भोज नामक पुत्र हुआ। सिंधुल ने वृद्धावस्था के कारण राज्य का भार दूसरों को सौंपने का विचार किया। छोटा भाई मुज बडा शक्तिशाली था तथा भोज पाच वर्ष का बालक था। इस

अवस्था में उसने अमात्यों से मत्रणा कर राज्यभार मुज को सौंपा और भोज को उसकी गोद मे दे दिया।

एक बार उसकी सभा में एक सर्वविद्यापारगत ज्योतिषी आया। मुज ने उसे भोज का फलित बताने की इच्छा प्रकट की। तब उस महापण्डित ने कहा कि भोज गौडसहित दक्षिणापथ का राज्य करेगा।

यह जानकर राजा मुज ने चौक कर किसी प्रकार भोज को अपने मार्ग से अलग करना निश्चित किया। वगदेश के वत्सराज को बुलवा कर आदेश दिया कि वह भुवनेश्वरी वन मे भोज की हत्या कर दे तथा उसका कटा हुआ सिर राजा को लाकर दिखावे। वत्सराज के बहुत समझाने पर भी मुज ने अपना आदेश नही फेरा तथा वत्सराज को आदेश पालन के लिये बाध्य किया। बेचारा वत्सराज भोज को साथ लेकर भुवनेश्वरी वन की ओर प्रस्थित हुआ। इधर भोज को उसका वध करने ले जाया गया यह जानकर धारावासी जनता अतिप्रक्षुब्ध हुई।

इधर वत्सराज भोज को भुवनेश्वरी वन मे महामाया मंदिर के पास ले गया। उसे उसके पितृतुल्य चाचा का आदेश सुनाया गया। भोज ने एक वटवृक्ष के पत्र पर अपने रक्त से एक सन्देश लिख कर राजा मुज को देने के लिये वत्सराज को सौंपा। फिर उसने वत्सराज को शीघ्र ही मुज की आज्ञा का पालन करने को कहा। भोज के देदीप्यमान मुख को देखकर वत्सराज करुणा से ओतप्रोत हो गया। उसने भोज को अपने घर मे सुरक्षित रखा और एक कृत्रिम सिर बनवा कर राजा मुज को दिखाया और साथ-साथ भोज का सदेश भी उसने मुज को दिया। मुज ने वह सदेश पढा -

'मान्धाता स महीपति कृतयुगालकारभूतो गत ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचित क्वासौ दशास्यान्तक ।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिव भूपते।
नैकेनापि सम गता वसुमती मुज त्वया यास्यति।'

सन्देश पढकर मुज बेहोश हुआ। जब वह होश मे आया तो अपने को महापापी कहते हुए पुत्रघात के प्रायश्चित्त के लिये वह उद्युक्त हुआ। तब वत्सराज ने बुद्धिसागर अमात्य से विचारणा कर तथा उसे सत्य घटना बताकर भोज को मुज के सम्मुख उपस्थित किया। मुज अपने किये पर पछताते हुए भोज के सम्मुख बहुत रोया। भोज ने उसे आश्वस्त किया।

इसके उपरान्त मुज ने स्वय भोज का राज्याभिषेक कर अपना पुत्र जयन्त भोज को सौंप दिया और स्वय तपोवन मे चला गया।

भोज कथा- 4 एकबार मृगया के परिश्रम से थक कर भोज जगल मे एक वृक्ष के नीचे विश्रांति के लिये बैठ गये। उन्हे बडी प्यास लगी थी तथा पानी का कही पता नही था। धूप भी बडी तेज थी। इस से राजा बडे विकल थे। इतने मे एक सुदर गोपकन्या वहा से धारा नगरी की ओर जाती उन्हे दिखाई दी। उसके सिर पर रखे पात्र मे छाछ था और वह उसे बेचने जा रही थी।

उस पात्र मे कोई पेय हो तो पीने की आशा से राजा ने उस कन्या से पूछा- 'तुम्हारे पात्र में क्या है।' उसने उत्तर दिया-

'हे नृपराज, हिम, कुन्द या चन्द्रमा के समान शुभ्र, पके हुए कपित्थ (कैथ) के समान स्वाद वाला, युवति के हाथों मथा हुआ, तथा रोगहर यह छाछ पीजिये'।

तक्रपान कर राजा बडे प्रसन्न हुए तथा उस कन्या से पूछा- 'क्या चाहती हो'। उसने तुरन्त जबाब दिया- 'राजन् जिस प्रकार चद्रविकासि कमल चंद्रमा को, चातक वृन्द मेघ को, भौरो की श्रेणी सुगधि फूलों को या स्त्री अपने परदेशगमन किये प्राणेश्वर को देखने उत्कण्ठित रहते हैं, उसी प्रकार मेरी चित्तवृत्ति आपको देखने के लिये लालायित रहती है।'

उसका आशय जानकर राजा उसे अपने साथ धारा नगरी को ले गए तथा रानी लीलावती की अनुज्ञा से उस गोपकन्या को राजा ने अपनाया।

भोलानाथ गंगटिकरी - ई 20 वीं शती। बगाली। 'पान्थदूत' नामक दूतकाव्य के रचयिता।

मंख (मंखक) - समय-सन 1120 से 1170। पिता-विश्ववर्त (या विश्वव्रत)। काश्मीर के निवासी। राजतरगिणी के अनुसार ये काश्मीर के राजा जयसिह (सन् 1127 से 1149) के संधिविग्रहिक मत्री थे। सुप्रसिध्द अलकारशास्त्री रुय्यक इनके गुरु थे। गुरु के आदेश पर इन्होंने 'श्रीकठ-चरित' की रचना की। 25 सर्गों के इस महाकाव्य में शकर द्वारा त्रिपुरासुर के वध की कथा है।

महाकाव्य के 25 वे सर्ग में, कवि द्वारा उनके बधु मत्री अलकार के यहा होने वाली विद्वत्सभा तथा उसमें भाग लेने वाले तीस विद्वद्रत्नों का विस्तृत वर्णन है। उसमें आनद, कल्याण, गर्ग, गोविद, जल्हण, पट, पद्मराज, भुड्डु, लोष्ठदेव, बागीश्वर, श्रीगर्भ तथा श्रीवत्स नामक कवियों का उल्लेख है।

इन्होने 'मखकोश' नाम से एक शब्दकोश भी लिखा है। हेमचद्र ने इसका उल्लेख अपने कोश में किया है। कोश में इन्होंने किसी भी विशिष्ट शब्द का उपयोग विशद करते समय अभिजात सस्कृत वाङ्मय के अवतरण उद्धृत किये हैं। यह इस कोश की विशेषता है। कोश अप्रकाशित है।

'श्रीकठचरित' का प्रकाशन काव्यमाला से 1887 ई. में हो चुका है। इस महाकाव्य के कतिपय स्थलो पर आलोचनात्मक उक्तिया भी प्रस्तुत की गई हैं जिनमें मखक की कवि एवं काव्य-सबधी मान्यताए निहित हैं।

मगराज - जन्मस्थान मुगुलिपुर (मैसूर)। सस्कृत और कन्नड के विद्वान्। ग्रथ-**खगेन्द्रमणि-दर्पण (विष-चिकित्सा का ग्रथ)**। 16 अधिकारो मे विभक्त। ग्रथ का अपर नाम जीवित-चिन्तामणि।

मंगलकर, गंगाधरशास्त्री (गंगाधर कवि) - नागपुर की पण्डित-परम्परा में उल्लेखनीय व्यक्ति। जन्म- ई 1790। पिता- विठ्ठलशास्त्री। नागपुर के भोसले (रघूजी) के पुराणवाचक। ग्रन्थरचना- भामाविलास, गुरुतत्त्वविचार, रामप्रमोद, अपराधमार्जन, राधाविनोद, गणेशलीला, विलासगुच्छ, रतिकुतूहल, प्रसन्नमाधव, चित्रमंजूषा, गगाष्टपदी, सगीतराघव। इन काव्यों में सगीतराघवम् गेय है। शकराचार्यजी की आनन्दलहरी पर इनकी गद्य-पद्य टीका भी है। इनका हस्तलिखित साहित्य नागपुर वि वि. सग्रहालय में सुरक्षित है।

मंगलगिरि कृष्णद्वैपायनाचार्य- ई 20 शती का प्रथम चरण। कौशिक गोत्री। आन्ध्रप्रदेश के विजयपटनम् के निवासी। पिता-वेंकटरमणाचार्य मैसूर राज्य में प्रसिद्ध थे। कृतिया- श्रीकृष्णदानामृत (नाटक), वसन्तमित्र (भाण), श्रीकृष्ण-चरित (काव्य) और हयग्रीवाष्टक (स्तोत्र)। तेलगु रचनाए- राका-परिणय, एकावली और पार्वतीपति-शतक।

मंडनमिश्र - ई 7 वीं शती का उत्तरार्ध। कुमारिल भट्ट के शिष्य। पिता- हिममित्र। शुल्क यजुर्वेदी काण्वशाखीय ब्राह्मण। कोई इन्हें मिथिला का तो कोई महिष्मती का (मध्यप्रदेश में नर्मदा के तट पर बसा हुआ महेश्वर नामक स्थान) निवासी बतलाते हैं। शोण नदी के तीर पर रहने वाले विष्णुमित्र नामक विद्वान् ब्राह्मण की विदुषी कन्या अबा इनकी पत्नी थी। उस विदुषी को लोग 'भारती' के नाम से पहिचानते थे। इनके पुत्र जयमिश्र भी मीमासा दर्शन के प्रकाड पडित थे। ये वैदिक कर्मकाण्ड के निष्ठावान् उपासक थे। तत्कालीन कर्मकाडी मीमासक पंडितो में इनका स्थान सर्वश्रेष्ठ था।

ये आद्य शकराचार्य के समकालीन थे। इन्होंने मीमासा-दर्शन पर निम्न ग्रथों की रचना की है -

1 विधिविवेक - इसमें विध्यर्थ का अनेक पहलुओं से विचार किया गया है।

2 भावनाविवेक - इसमें आर्थी भावना की विस्तारपूर्वक मीमांसा है।

3. विभ्रमविवेक- इसमें पांच ख्यातियों का विवरण है।

4 मीमांसासूत्रानुक्रमणी - इसमें मीमांसासूत्रों की श्लोकों में संक्षिप्त व्याख्या है। इन्होंने वेदात पर ब्रह्मसिद्धि तथा स्फोटसिद्धि नामक दो और ग्रथ लिखे हैं। दोनों ग्रथों में अद्वैत तत्त्वज्ञान के सिद्धान्तों की चर्चा है। जीवन के पूर्वार्ध में मीमांसा तत्त्वज्ञान के अनुसार इनका आचार-विचार रहा, परतु उत्तरार्ध में शकराचार्य की प्रेरणा से ये वेदान्तनिष्ठ बने।

शंकराचार्य से सन्यास धर्म की दीक्षा ग्रहण करने पर ये सुरेश्वराचार्य के नाम से विख्यात हुए परंतु कुछ विद्वानों का मत है कि मंडन मिश्र और सुरेश्वराचार्य भिन्न व्यक्ति है।

मंडन-मिश्र और शंकराचार्य के वाद-विवाद की आख्यायिका सुप्रसिद्ध है। एक बार जब शंकराचार्य की कुमारिल भट्ट से भेंट हुई, तब उन्होंने अपना ब्रह्मसूत्र पर लिखा हुआ भाष्य कुमारिल भट्ट को दिखाया। कुमारिल भट्ट ने आचार्य से कहा कि वे अपना भाष्य मडन मिश्र को दिखायें। यदि उन्होंने उनके अद्वैतसिद्धान्त को मान्यता दे दी, तो उसके विश्वमान्य होने में कोई अडचन नहीं रहेगी। कुमारिल भट्ट के कथनानुसार आचार्य अपनी शिष्य-मडली के साथ माहिष्मती पहुचे। वहां मडन मिश्र का आवास ढूढने के लिये अकेले ही चल पडे। मार्ग में एक दासी से आचार्य ने मडन मिश्र का पता पूछा। दासी ने आचार्य से कहा कि वे जिस मार्ग से जा रहे है उसी से आगे जावें तथा जिस प्रासाद के सामने -

जगद् ध्रुव स्याज्जगदध्रुव स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौक ।।

विश्व शाश्वत है या अशाश्वत है (मीमांसकों के मत से जगत् शाश्वत है तथा वेदातियों के मत से जगत् अशाश्वत है) ऐसी चर्चा जिसके द्वार पर टगे हुए पिंजरे की मैनाये करती हों, वही आप समझिये कि मडन पडित का घर है।

दासी द्वारा बताये गये लक्षण के अनुसार आचार्य मडन-मिश्र के घर पहुंचे। उस समय मडन मिश्र अपने पिता के श्राद्धकर्म में लगे हुए थे। श्राद्ध के समय यतिदर्शन निषिद्ध माना जाता है। अत मंडन मिश्र यतिवेष में आचार्य को देखकर अत्यत क्रुद्ध हुए। दोनो में शाब्दिक नोंकझोंक हुई। अत में मडन-मिश्र ने यति को भिक्षा देने को कहा। तब शकराचार्य ने कहा, 'मुझे अन्नभिक्षा नहीं, वाद-भिक्षा चाहिये'। मडन मिश्र ने आचार्य की चुनौती मान ली। शास्त्रार्थ में हार-जीत का निर्णय करने के लिये वहा उपस्थित व्यास-जैमिनि ने मडनपत्नी भारती को ही पच नियुक्त किया। दूसरे दिन दोनो के बीच शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। शंकराचार्य ने निम्न प्रमेय रखा .-

'इस जगत में एक ब्रह्म ही सत्, चित्, निर्मल तथा यथार्थ वस्तु है। वही ब्रह्म, सींप पर भासमान होनेवाली रजत की आभा-सदृश स्वय जगद्रूप में भासमान है। जैसे सींप की रजतआभा मिथ्या है, वेसे ही यह जगत् भी मिथ्या है। अत ब्रह्मज्ञान आवश्यक है। उस ज्ञान से प्रपच का विनाश होकर मनुष्य जगत् के बाह्य जजाल से मुक्त होगा, अपने विशुद्ध रूप में प्रतिष्ठित होगा तथा जन्म-मरण के चक्र से अर्थात् संसारपाश से मुक्त होगा। इस प्रकार मेरा अद्वैत का सिद्धान्त है। श्रुति इसका प्रमाण है।'

अपने सिद्धान्त का मडन करने के पश्चात् आचार्य ने कहा, मैं प्रतिज्ञा करता हू कि यदि मैं शास्त्रार्थ में पराजित हुआ, तो में संन्यास धर्म छोडकर गृहस्थाश्रम स्वीकार करूगा।

इसके बाद मंडनमिश्र ने अपना निम्नलिखित प्रमेय प्रतिपादित किया .-

वेदों का कर्मकाड ही प्रमाण है। ज्ञानकाण्ड (उपनिषद्) को मै प्रमाण नहीं मानता क्यों कि वह चैतन्यस्वरूप ब्रह्म का

प्रतिपादन कर, सिद्धवस्तुओं का वर्णन करता है। विधि का प्रतिपादन ही वेदो का तात्पर्य है। परन्तु उपनिषद् विधि का वर्णन न कर केवल ब्रह्मस्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं। इसलिये प्रमाणकोटि मे नहीं गिने जा सकते। शब्दो की शक्ति कार्यमात्र के प्रकटन में है तथा दु:ख से मुक्ति कर्म द्वारा ही सभव है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को जीवन भर कर्मानुष्ठान मे रत रहना चाहिये। यह मेरा वेदोक्त सिद्धात है। इसके पश्चात् मंडन-मिश्र ने कहा, 'मैं प्रतिज्ञा करता हू कि यदि मै शास्त्रार्थ मे हार गया, तो मे गृहस्थाश्रम का त्याग कर सन्यास धर्म ग्रहण करूगा'।

शास्त्रार्थ मे मडन मिश्र की हार हुई। उनकी धर्मपत्नी भारती ने आचार्य की विजय की घोषणा की तथा शकराचार्य से कहा, 'मेरे पति को शास्त्रार्थ में पराजित करने मात्र से आपको पूर्ण विजय प्राप्त नही होगी, मैं उनकी अर्धांगी हू, अत मुझसे शास्त्रार्थ कर यदि मुझे भी हरा सके तो ही आपकी जीत पूर्ण होगी।'

शकराचार्य ने भारती का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बहुत समय तक दोनो के बीच शास्त्रार्थ चलता रहा। अत मे भारती ने आचार्य से कामशास्त्रविषयक प्रश्न पूछकर आचार्य को निरुत्तरित कर दिया। तब आचार्य ने प्रश्न का उत्तर देने के लिये 6 मास का समय मागा। इस बीच उन्होने परकाया-प्रवेश कर कामशास्त्रविषयक ज्ञान प्राप्त किया और प्रत्यावर्तन कर भारती को उस शास्त्र मे भी हराया। इसके पश्चात् मडन मिश्र ने शकराचार्य से सन्यास- धर्म की दीक्षा ग्रहण की और उनके कार्य में जुट गए।

मंडपाक पार्वतीश्वर - समय- सन् 1833 से 1897। पिता- कामकवि। माता- जोगम्मा। इनका जन्म विशाखापट्टण के समीप पालनेरू नामक देहात मे हुआ था। बोब्बिल राजा के दरबार मे ये विद्वत्कवि थे। इनके संस्कृत तथा तेलगु भाषा मे 80 गद्यरूप एव पद्यरूप ग्रथ प्रकाशित हुए हैं।

कविता-विनोद-कोश, सीता-नेतृ-स्तुति, काशीश्वराष्टकम्, श्रीवेंकटगिरिप्रभुद्वयर्थिश्लोक-कदब आदि इनकी सस्कृत रचनाए हैं।

मदिकल रामशास्त्री - 'मेघप्रतिसदेशकथा' नामक सदेश काव्य के प्रणेता। मैसूर राज्य के अतर्गत मदिकल नामक नगरी मे 1849 ई में इनका जन्म हुआ। पिता-वेंकटसुब्बा शास्त्री, जो रथीतर-गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। माता- अक्काम्बा। महाराज कृष्णराज के सभा-पडित। महाराज से अग्रहार प्राप्त। बहुत दिनो तक ये शारदा-विलास सस्कृत-पाठशाला मैसूर में अध्यक्ष-पद पर विराजमान रहे। इन्होंने अनेक ग्रथों की रचना की है। वे हैं आर्यधर्म-प्रकाशिका, नलविजय, चामराज-कल्याणचपू, चामराज-राज्याभिषेक-चरित्र, कृष्णराज्याभ्युदय, भैमी- परिणय (नाटक) और कुभाभिषेकचपू। शास्त्रीजी को अनेक सस्थाओं एव व्यक्तियों के द्वारा कविरत्न, कवि-कुलालकार, कवि-शिरोमणि, कवि-कुलावतस आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था।

मत्स्येन्द्रनाथ - नाथ-सप्रदाय के प्रवर्तक। इनके नाम के साथ इतनी अद्भुत आख्यायिकाए जुडी हैं कि उनका विश्वसनीय चरित्र लिखना कठिन है। उनके जीवन सबंधी कुछ कथाएं इस प्रकार हैं -

(1) एक बार एक द्वीप में एकात में बैठे हुए शंकर, पार्वती को योग का उपदेश दे रहे थे। समीप ही बहने वाले जलप्रवाह मे विचरण करने वाली मछली ने उनका वह उपदेश सुन लिया। उसका मन इतना एकाग्र हो गया कि उसे निश्चलावस्था प्राप्त हुई। भगवान् शकर ने उसकी वह अवस्था देखकर उस पर अनुग्रहपूर्वक जलप्रोक्षण किया। मत्स्य का मत्स्येंद्रनाथ बन गया।

(2) भगवान् शकर द्वारा अपने गले में धारण की गयी मुण्डमाला के मुण्ड उनके पूर्वजन्मों के हैं, यह रहस्य जब नारद मुनि से जगन्माता पार्वती को ज्ञात हुआ, तब उन्हें भगवान् शकर के पूर्वजन्म के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई। उन्होने अपनी इच्छा शिव के सामने प्रकट की। अपने पूर्वजन्म का रहस्य बतलाने के लिये शिवजी ने समुद्र में एकात स्थान ढूढा। सयोग मे उसी समुद्र में 12 वर्षों से मछली के पेट मे पलने वाले एक बालक ने वह शिव-पार्वती सवाद सुन लिया। वह बालक किसी भृगुवशीय ब्राह्मण के यहा गडातरयोग पर पैदा होने के कारण पिता द्वारा समुद्र में फेंक दिया गया था, तथा उसे मछली ने निगल लिया था। अपना सवाद बालक ने सुन लिया है यह ज्ञात होने पर शिव ने उस पर कृपा की। वह बालक महासिद्ध अवस्था में मछली के पेट से बाहर निकला। वही मत्स्येन्द्रनाथ (मच्छिंद्रनाथ) के नाम से विख्यात हुआ।

(3) मच्छिंद्रनाथ और गोरखनाथ गुरु-शिष्य थे। एक बार घूमते हुये दोनो प्रयाग मे पहुचे। उस समय वहा के राजा की मृत्यु हो गयी थी। सारी प्रजा शोकसागर में डूब गयी थी। गोरखनाथ प्रजा का दु:ख देखकर द्रवित हुए तथा उन्होंने अपने गुरु से अनुरोध किया कि वे राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर उसे जीवित करें। मच्छिंद्रनाथ ने शिष्य का अनुरोध स्वीकार कर लिया।

इधर गोरखनाथ मच्छिंद्रनाथ के निर्जीव शरीर की रक्षा करते रहे, उधर मच्छिंद्रनाथ राजपाट तथा आमोद-प्रमोद में आकठ डूब गये। बारह वर्षो के बाद रानियों को इस रहस्य का पता चला। उन्होने मच्छिंद्रनाथ के शरीर के टुकडे-टुकडे करवा डाले तथा उन्हें चारों ओर फिंकवा दिया। भगवान् शिव को यह ज्ञात होते ही उन्होंने अपने अनुचर वीरभद्र को उन टुकडों को एकत्र कर लाने को भेजा। वीरभद्र ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया।

गोरखनाथ को इस बात का पता चला। वे वीरभद्र के निकट गये और उन्होंने मच्छिंद्रनाथ के देहखंड उनसे मांगे। वीरभद्र ने अस्वीकार किया। तब गोरखनाथ ने वीरभद्र तथा उनके साथियों से युद्ध कर अपने गुरु के देहखंड उनसे छीन लिये। गोरखनाथ ने सजीवनी-विद्या से देहखंडों को शरीराकृति प्रदान की ओर गुरु के पास सदेश भेजा। तब गुरुजी राजशरीर का त्याग कर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हुए।

डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन आख्यायिकाओं तथा कथाओं का परिशीलन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि मच्छिंद्रनाथ योगमार्ग के प्रवर्तक थे परतु दैववशात् वे एक ऐसी वामाचार-साधना में प्रविष्ट हो गए जिसमें निराबाध स्त्री-संग अनिवार्य था।

मत्स्येन्द्रनाथ के जन्मकाल के संबध में मतभेद है। अनेक इतिहासवेत्ताओं का मत है कि वे 8 वीं, 9 वीं या 10 वीं शताब्दी में हुए हैं। इनके सप्रदाय में (1) कौलमत के ग्रथों और (2) नाथमत के ग्रथो को मान्यता है। कौलमत के ग्रंथ, कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतत्र, कुलानदतंत्र, तथा ज्ञानकलिका। इनके अतिरिक्त कामाख्यगुह्यसिद्धि, अकुलागमतत्र कुलार्णवतत्र, कौलोपनिषद्, ज्ञानकलिका कौलावलिनिर्णय आदि ग्रथ भी मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित बताये जाते हैं। ये सारे ग्रथ नेपाल के शासकीय ग्रथालय में उपलब्ध है।

नाथमत के ग्रथों में योगविषयक ग्रथों तथा कुछ रचनाओं का समावेश है। नेपाल के नेवार लोग मत्स्येन्द्रनाथ को बहुत मानते हैं। ये लोग ''कृषिदेव'' के रूप में इनकी पूजा करते हैं। इसके लिये लकडी के पिण्ड को लाल रग देकर उत्सवमूर्ति निर्माण करते है। नेपाल में मच्छिद्रनाथ पर बौद्धमत का प्रभाव पडा है और उन्हें अवलोकितेश्वर का अवतार माना जाता है। पाटण में तथा बाघमती के तीर पर मच्छिद्र का एक-एक मदिर है। नेवारों की धारणा है कि मच्छिद्रनाथ क्रमश· 6-6 महिने इन मदिरो में रहते है। किंवदन्ती है कि जब एक बार नेपाल मे अकाल पडा, तब गोरखनाथ मच्छिद्रनाथ को बाघमती के तीर पर ले गये। उनके वहा जाने से अकाल दूर हो गया। श्रद्धालु नेवार इस मदिर को मच्छिंद्रनाथ का प्रमुख निवासस्थान मानते हैं। गुरखा लोग भी इनकी उपासना करते हैं।

मथित यामायन - एक सूक्तद्रष्टा। ऋग्वेद के 10 वें मडल के 19 वें सूक्त के रचयिता। भृगु, च्यवन भी इसी सूक्त के रचयिता हैं। इस सूक्त में विनष्ट हुआ गोधन पुन प्राप्त करने की दृष्टि से प्रार्थना की गयी है।

मथुरानाथ - नवद्वीप (बगाल) के एक प्रसिद्ध नव्य नैयायिक। समय- ई 16 वीं शताब्दी। इन्होंने नव्यन्याय के आलोक, चिंतामणि व दीधिति इन 3 प्रसिद्ध ग्रथों पर, 'रहस्य' नामक टीकाएं लिखी हैं। इनकी टीकाए दार्शनिक जगत् में मौलिक ग्रंथ के रूप में मान्य हैं। टीकाओं में मूल ग्रंथों के गूढार्थ का सम्यक् उद्घाटन किया गया है।

मथुरानाथ - इन्होंने पुष्टिमार्गीय आचार्य वल्लभ के अणु-भाष्य पर 'प्रकाश' नामक टीका लिखी है।

मथुरानाथ - ई. 19 वीं शताब्दी के एक ज्योतिषशास्त्रज्ञ। पिता-सदानंद। पटना (बिहार) के निवासी। काशी संस्कृत पाठशाला में वृत्ति। काशिराज शिवप्रसाद के पितामह दयालुचंद्र का आश्रय इन्हें प्राप्त हुआ था। इन्होंने ज्योतिषविषयक यंत्रराजघटना तथा ज्योति·सिद्धांतसार नामक दो ग्रथों की रचना की।

मथुरानाथ तर्कवागीश - समय- ई. 17 वीं शती। पिता-रघुनाथ शिरोमणि। रचनाएं- आयुर्वेदभावना, तत्त्वचिन्तामणिरहस्यम्, आलोक-रहस्यम् (पक्षधर मिश्र जयदेव के तत्त्वचिन्तामणि आलोक की टीका), दीधिति-रहस्य (पिता के ग्रथ की टीका), सिद्धान्तरहस्य, किरणावलि-प्रकाश-रहस्य, न्यायलीलावती-प्रकाश-रहस्य, न्यायलीलावती-रहस्य, बौद्धधिकार-रहस्य और आदिक्रियाविवेक।

मथुराप्रसाद दीक्षित (म.म.) - जन्म सन् 1878 में, भगवन्तनगर ग्राम (जिला हरदोई उ.प्र) में। पिता-बदरीनाथ। माता- कुन्तीदेवी। पितामह- हरिहर (प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य) पत्नी-गौरीदेवी। पुत्र-सदाशिव दीक्षित (सस्कृत नाटककार)। इनकी कृतियों की सख्या 24 हैं, जिनमें 6 नाटक हैं।

कृतियां - निर्णय-रत्नाकर, नारायण-बलि-निर्णय, काशीशास्त्रार्थ, कुतर्क-तरु-कुठार, कलिदूतमुखमर्दन, जैनरहस्य, कुण्डगोलनिर्णय, मन्दिर-प्रवेश-निर्णय, आदर्श-लघुकौमुदी, वर्णसंकर-जाति-निर्णय, पणिनीय-सिद्धान्त-कौमुदी, मातृदर्शन, समास-चिन्तामणि, केलिकुतूहल, प्राकृतप्रकाश, रोगिमृत्यु-विज्ञान, गौरी-व्याकरण, पृथ्वीराजरासो की टीका, पालि-प्राकृत व्याकरण और कविता-रहस्य।

अप्रकाशित नाटक - वीर-प्रताप, वीर-पृथ्वीराज-विजय, भारत-विजय, भक्त-सुदर्शन, शकरविजय, गांधीविजय, भूभारोद्धरण। अप्रकाशित नाटक- जानकी-परिणय, युधिष्ठिर-राज्य, कौरवोचित-भ्रष्टाचार-साम्राज्य। अप्रकाशित काव्य-भगवत्-नख-शिख-वर्णनशतक, नारद-शिव-वर्णन। इनके अतिरिक्त, 'अभिधान-राजेन्द्र-कोश' का अंशत. सम्पादन। 'पृथ्वीराजरासो' की गवेषणात्मक टीका पर, 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्राप्त।

मदनपाल - कन्नौज के नृपति। चन्द्रदेव के पुत्र। इनका शिलालेख प्राप्त (1104-1109 ई का)। रचना-आनन्द-सजोवन (सगीत-विषयक)। शब्दकोश तथा धर्मशास्त्र पर भी इनकी रचना है।

मदनपाल - ई 14 वीं शती का उत्तरार्ध। 'नूतनभोजराज' इस उपाधि से विभूषित। मदनविनोद और मदनपारिजात (आयुर्वेद-विषयक), तिथिनिर्णयसागर और सूर्यसिद्धान्तविवेक (ज्योति·शास्त्र- विषयक) और मंत्रप्रकाश आदि अन्य विषयों

के ग्रन्थों के लेखक। मदनविनोद ग्रन्थ में आयुर्वेद की अनेक वनस्पतियों के गुणधर्मों का वर्णन है।

मदन बालसरस्वती - ई. 13 वीं शती। गौडदेशीय। धार के परमार राजा अर्जुनदेव के गुरु। 'पारिजात-मंजरी' नामक नाटक के प्रणेता।

मदभूषी वेंकटाचार्य - ई. 19-20 वीं शती। अनन्ताचार्य के पुत्र, नैध्रुवकाश्यप गोत्र, पूर्व गोदावरी जिले के सामलकोट के निवासी। रचना- अर्जुनादिमतसार (संगीत-विषयक)। अन्य रचना-शुद्धसत्त्वम् (नाटक)।

मधुर कवि - वाजिवंश। भारद्वाज गोत्र। पिता-विष्णु। माता-नागाम्बिका। विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बुक्कराय के पुत्र हरिहर (द्वितीय- 1377-1404 ई) के मंत्री के आश्रित कवि। दक्षिण कर्नाटक के वासी। रचना- धर्मनाथ पुराण और गोम्मटाष्टक।

मधुच्छंदा - ऋग्वेद के प्रथम मडल के प्रथम दस तथा नवम मडल के प्रथम सूक्त के द्रष्टा। विश्वामित्र मुनि के सौ पुत्रों में से ये 51 वें पुत्र थे। ये शर्याति के पुरोहित थे। इन्हें धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ के लिये आमंत्रित किया गया था। (भागवत- 10-74-9 तथा वायुपुराण 91-96)। इन्हें जेता तथा अधमर्षण नामक दो पुत्र थे। इन्होंने ऋग्वेद के लिये तथा इनके पिता ने अथर्ववेद के लिये ऋचायें रची थी। इसलिये इन्हें अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के बीच की कडी मानते है।

मधुरवाणी - समय- 17 वीं शती। कुछ लोगों के अनुसार ये तंजौर के राजा रघुनाथ नायक की पत्नी, तो कुछ लोगो के अनुसार राजसभा की कवयित्री थीं। तेलगु, प्राकृत तथा संस्कृत पर इनका समान रूप से अधिकार था तथा वे तीनो भाषाओं में कवितायें करती थीं। ये समस्यापूर्ति मे अत्यत निपुण थीं। ये वीणा उत्तम बजाती थीं तथा कहा जाता है कि उसके कारण ही इनका नाम मधुरवाणी प्रचलित हुआ। इन्होंने एक तेलगु रामायण का सस्कृत रूपातर किया है। प्रस्तुत रूपातर की सुदर काड तक की रचना उपलब्ध है। इस रूपातर के विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है। एक बार रघुनाथ की राजसभा में उनके द्वारा रचित तेलगु रामायण का पाठ हो रहा था। उस समय वहा उपस्थित कवयित्रियो से राजा ने पूछा कि क्या उनमें से कोई उस काव्य का सस्कृत मे रूपातर कर सकती है। कोई प्रस्तुत्तर नहीं मिला परतु रात्रि को राजा को स्वप्न में दृष्टात हुआ कि वह मधुरवाणी से उस काव्य का सस्कृत में रूपान्तर करवा ले। राजाज्ञा से मधुरवाणी ने वह काम पूर्ण किया।

मधुसूदन - कृष्णसरस्वती के शिष्य। नारायण के पुत्र। रचना- कृष्णकुतूहलम्।

मधुसूदनजी ओझा (समीक्षा चक्रवर्ती) - जन्म ई 1845 में, बिहार प्रान्त के गाढा ग्राम (जिला मुजफ्फरपुर) में। पिता- प वैद्यनाथ ओझा, उच्च श्रेणी के विद्वान। सन्तानहीन काका के दत्तक पुत्र। जयपुर राज्य-पण्डित काका के पास अध्ययन। जयपुर नरेश तथा काका के देहान्त से अपने पिता के घर वापिस लोटे। वाराणसी में आगे का अध्ययन किया। 17 वर्ष की आयु में विवाह। अध्ययनोपरान्त अनेक संस्थानों में परिभ्रमण के बाद जयपुर के महाराजा संस्कृत कालेज में वेदान्त के प्राध्यापक, राजग्रन्थालय के प्रमुख तथा धर्मसभाध्यक्ष हुए। जयपुर-नरेश के साथ सन् 1902 में इग्लैंड का प्रवास हुआ। वहा केम्ब्रिज वि वि मे सस्कृत में वेद-विज्ञान तथा वेद-इतिहास पर व्याख्यान। मैकडोनेल, बेडाल आदि विद्वानों द्वारा महान् सत्कार। सन् 1915 मे 70 वर्ष की आयु में देहान्त। लगभग 50 वर्षों तक वैदिक विज्ञान तथा इतिहास का अन्वेषण कर क्रमबद्ध सूत्र तैयार किया। अत इन्हें आधुनिक ऋषि मानते हैं। मधुसूदनजी ने प्रभूत मात्रा में लेखन कार्य किया। उनके पुत्र प्रद्युम्नजी ओझा ने लगभग 50 ग्रन्थ प्रकाशित किये। अभी भी अप्रकाशित हस्तलिखितों की सूची बडी है। इनकी रचनाए योजनाबद्ध थीं।

रचनाए- ब्रह्म-विज्ञान-खण्ड- (उपविभाग दिव्य-विभूति)।

1 जगद्गुरु-वैभव, 2 स्वर्गसन्देश 3 इन्द्रविजय (उपविभाग-उक्थवैराजिक)- 4 सदसद्वाद, 5 व्योमवाद, 6 अपरवाद, 7 आवरणवाद, 8 अम्भोवाद, 9 अहोरात्रवाद, 10 सशयतदुच्छेदवाद, 11 दशकवाद-रहस्यम्। (उपविभाग-आर्यहृदयसर्वस्व)- 12 गीताविज्ञानभाष्यस्य प्रथम रहस्य-काण्डम्, 13 गीताविज्ञान द्वितीय-रहस्य-काण्डम, 14 गीता - तृतीय आचार्यकाण्डम्, 15 गीता- चतुर्थ हृदयकाण्डम्, 16 शारीरक-विज्ञान भाष्यस्य प्रथम भाग, 17 शारीरक-द्वितीय भाग, 18 शारीरकविमर्श (उपविभाग-विज्ञानप्रवेशिका)- 19 विज्ञान-विद्युत्, 20 ब्रह्मविज्ञान-प्रवेशिका, 21 ब्रह्मविज्ञानम्। (उपविभाग-सायन्य प्रदीप) 22 पचभूतसमीक्षा, 23३ वस्तुसमीक्षा, यज्ञ-विज्ञानखड (उ वि -निचित्कलाप) 24 देवतानिवित्। (उ वि -यज्ञमधुसूदन) 25 स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय। 26 यज्ञोपकरणाध्याय, 27 यज्ञविटपाध्याय, 28 कमनिक्रमणिकाध्याय, 29 आधिदैविकाध्याय। (उ वि -यज्ञविज्ञान- पद्धति) 30 यज्ञसरस्वती, 31 छन्दोभ्यस्ता, (उ वि -प्रयोग-पारिजात) 32 निरूढ पशुबद्ध, पुराणसमीक्षा-खड- (उ वि -विश्वविकास)- 33 पुराणोत्पत्ति प्रसग, 34 ३५ वैदिक उपाख्यान, (उ वि -देवयुगाभास) 36 देवासुरख्याति, 37 माध्वख्याति, 38 अत्रिख्याति, (उ वि -प्रसगचर्चितक) 39 पुराणाधिकरण वेदागसमीक्षा खण्ड- (उ वि -वाक्पदिका)- 40 वैदिककोश, 41 पदनिरुक्त, (उ वि -ज्योतिश्चक्रधर)- 42 कादम्बिनी। (उ.वि -आत्मसस्कारकल्प)- 43 पितृसमीक्षा, 44 अशौचपंजिका, 45 धर्मपरीक्षा पचिका, (उ.वि.-परिशिष्टानुग्रह)

46. कौशीतक्युपनिषत्, 47. ऐतरेयोपनिषत्, 48. प्रत्यन्तप्रस्थान-मीमांसा, 49. वेदधर्मव्याख्यानम्, 50 वेदार्थ-भ्रम-निवारण। इस ग्रन्थावली से यह स्पष्ट है कि श्री ओझाजी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत लेखक थे। इनका लिखा जानकीहरण नामक महाकाव्य (88 पृष्ठबद्ध अभी तक अप्रकाशित है। इंग्लैण्ड में दिये व्याख्यानों को 'वेदधर्म-व्याख्यानम्' में ग्रन्थबद्ध किया है।

मधुसूदन-सरस्वती - समय- ई 17 वीं शती का पूर्वार्ध। पिता- प्रमोदन पुरंदर। ब्राह्मण-कुल। भागवत के उपजीव्य टीकाकारों में से एक। रामचरित-मानस (तुलसी रामायण) के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदासजी के समकालीन ये अद्वैतवादी आचार्य केवल शुष्क ज्ञानमार्ग के अनुयायी पंडित नहीं थे, प्रत्युत भक्तिरस के व्याख्याता एव भक्तिस्निग्ध हृदयसंपन्न साधक थे। भक्ति-रस की शास्त्रीय व्याख्या के निमित्त इन्होंने अपना महनीय स्वतंत्र ग्रंथ रचा है 'भक्ति-रसायन'। इसमें एकमात्र भक्ति को परम रस सिद्ध किया गया है। 'आनंद-मदाकिनी' इनकी एक और कृति है।

'अद्वैत-सिद्धि' है इनकी मूर्धन्य रचना, जिसमें द्वैतवादियों के तर्कों का खण्डन करते हुए अद्वैतमत की युक्तिमत्ता सिद्ध की गई है। इनके मतानुसार परमानंद रूप परमात्मा के प्रति प्रदर्शित रति ही परिपूर्ण रस है, और श्रृगार आदि रसों से वह उसी प्रकार प्रबल है जिस प्रकार खद्योतों से सूर्य की प्रभा —

परिपूर्ण-रसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्-रति.।
खद्योतेभ्य इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा।।
(भक्तिरसायन 2-78)

मानसकार गोस्वामी तुलसीदासजी की प्रख्यात प्रशस्ति आप ही ने लिखी थी।

आनदकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरु ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर-भूषिता।।

इनका जन्म तो हुआ था बंगाल के फरीदपुर जिले के कोटलिपाडा नामक गाव में, परन्तु इनकी कर्मस्थली काशी ही रही। यहीं रहकर इन्होंने अपने पांडित्यपूर्ण ग्रथ-रत्नो का प्रणयन किया।

ये वेदांत के प्रकाड पंडित, रससिद्ध कवि एव महान् भगवद्भक्त थे। नवद्वीप में हरिराम तर्कवागीश तथा माधव सरस्वती के पास अध्ययन के पश्चात् वे काशी गये तथा वहां अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। इन्होंने विश्वेश्वर तीर्थ से संन्यासधर्म की दीक्षा ग्रहण की।

ये अद्वैत वेदान्त के कट्टर उपासक थे। "अद्वैतसिद्धि' नामक ग्रंथ में इन्होंने अद्वैत-सिद्धान्त का मण्डन किया है। इनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये प्रमुखता से श्रुतियों को ही प्रमाणभूत माना था, मधुसूदन सरस्वती ने प्रधानतः अनुमान प्रमाण के आधार पर अद्वैत-सिद्धान्त की स्थापना की है।

अद्वैत-वेदान्त पर इन्होंने 'सिद्धान्तबिंदु' या 'सिद्धान्ततत्त्वबिंदु', 'वेदान्तकल्पलतिका', 'संक्षेपशारीरक-व्याख्या', अद्वैतसिद्धि', अद्वैतरत्नरक्षण' तथा 'प्रस्थानभेद' नामक ग्रंथ लिखे हैं। इन्होंने गीता पर 'गूढार्थदीपिका' नामक भाष्य भी लिखा है। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। कृष्णभक्ति के सामने वे अन्य बातों को तुच्छ मानते थे-

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुण निष्क्रियं।
ज्योति· किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिर।
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नील महो धावति।।

अर्थ- ध्यान के अभ्यास से जिनका मन वशीभूत हो चुका हो चुका है, ऐसे योगियों को यदि निर्गुण तथा निष्क्रिय परम ज्योति का दर्शन होता हो तो होने दो। हमारे नेत्रों को तो कालिदी तट पर दौडने वाला श्यामल तेज (श्रीकृष्ण का बालरूप) ही सुख देता है। इन्होंने महिम्न स्तोत्र की शिवपरक तथा विष्णुपरक व्याख्या कर दोनों मे अभेद दिखाया है और भागवत पर टीका लिखी है।

मध्वाचार्य - द्वैतमत के प्रतिष्ठापक मध्वाचार्य के समय के बारे में विद्वानो का एकमत नहीं किंतु उपलब्ध शिलालेख एव अवातरकालीन द्वैत मतावलबी ग्रथकारों के ग्रथों से प्राप्त जानकारी के आधार पर इतिहास लेखकों ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि मध्वाचार्य का जीवन-काल 1238 ई मे 1317 ई तक व्याप्त था। इस विषय मे अब दो मत नही हो सकते।

नारायण पंडिताचार्य ने अपने 'मध्व-विजय' नामक ग्रथ में आचार्य की सब से प्राचीन जीवनी उपलब्ध की है जो घटनाओं के तारतम्य एव निरूपण में प्रमाण मानी जाती है। मध्व का जन्म, वर्तमान मैसूर राज्य मे प्रसिद्ध क्षेत्र उडुपी से लगभग 8 मील दक्षिण-पूर्व 'पाजक' नामक ग्राम में, तुलु ब्राह्मण के घर में हुआ था। उनके पिता के कन्नड भाषीय कुटुब-नाम का सस्कृत रूप 'मध्यगेह' तथा 'मध्यमदिर' माना जाता है। 7 वर्ष की आयु में उपनीत होकर इन्होंने बडे परिश्रम तथा निष्ठा से वेद-शास्त्र का अध्ययन किया। 16 वर्ष की आयु में गृह-त्याग कर इन्होंने अपने वेदाती गुरु अच्युतप्रेक्ष से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने पर इनका नया नाम हुआ पूर्णप्रज्ञ किन्तु थोडी ही कालावधि के उपरात, वेदात-विषय मे गुरु-शिष्य के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया। मायावाद तथा अद्वैत के प्रति इनके मन में तीव्र अवहेलना निर्माण हुई, और इन्होंने अपने स्वतत्र द्वैत-मत को प्रतिष्ठित किया। कुछ दिनों तक उडुपी में इन्होंने निवास किया तथा अच्युतप्रेक्ष के शिष्यों को वे द्वैत-वेदांत पढाते रहे। फिर इन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की और वहा के विद्वानों को अपने नवीन मत का उपदेश

देकर उडुपी लौटे। उडुपी में इन्होंने सर्वप्रथम गीता पर भाष्य लिखा।

मध्वाचार्य ने उत्तर भारत की दो बार यात्रा की। हिमालय के बदरीनाथ में कुछ दिनों तक रहकर ये महाबदरिकाश्रम (वेदव्यास के आश्रम) पहुचे। इन्होंने वहा पर कुछ मास तक निवास किया और वेदव्यास की कृपा से उद्बुद्ध प्रतिभा के द्वारा वहीं पर ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा। मध्वाचार्य के साथ उनकी शिष्य-मडली भी थी। पश्चात् बिहार-बगाल होते हुए वे लौटे, और गोदावरी तीरस्थ शोभनतीर्थ नाम से उनके शिष्य बने।

उडुपी लौटने पर इन्होंने मठ स्थापित किया और श्रीकृष्ण की सुदर मूर्ति प्रतिष्ठित की। उनकी शिष्य-परपरा बढने लगी तथा इनके द्वैत उपदेशों ने जनता एव विद्वानों को अपनी और आकृष्ट किया। इन्होंने अनुष्ठान-पद्धति मे सुधार किए, एव वैदिक यज्ञों में पशु-बलि के स्थान पर पिष्ट-पशु (आटे के बने पशु) का विधान अपने अनुयायियों के लिये निर्दिष्ट किया।

इसके अनतर मध्वाचार्य ने उत्तर भारत की द्वितीय यात्रा के लिये प्रस्थान किया, और दिल्ली, कुरुक्षेत्र, काशी तथा गोवा की यात्रा करते हुए लौटे। इस काल मे इन्होंने दसो उपनिषदों पर भाष्य, दस प्रकरण एव भागवत तथा महाभारत पर व्याख्याए लिखकर अपने मत की पूर्ण प्रतिष्ठा का समुचित उद्योग किया।

कहते हैं कि मध्वाचार्य के प्रखर खडन से उद्विग्न होकर अद्वैती लोगों ने इन पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया, इनके बहुमूल्य पुस्तकालय को ध्वस्त करने हेतु भी वे प्रयत्नशील रहे, किन्तु स्थानीय राजा जयसिह के प्रयत्नो से उनकी पुस्तके उन्हें वापस मिल गई।

इन्हीं जयसिह के सभा-पडित त्रिविक्रम पडिताचार्य का मध्वअनुयायी बन जाना उस काल की बडी महत्त्वपूर्ण घटना है, क्योंकि वे अद्वैती पडितो के प्रमुख अग्रणी थे। मध्वाचार्य के आदेश पर त्रिविक्रम ने आचार्य के ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर "तत्त्व-प्रदीप" नामक अपनी प्रौढ व्याख्या लिखी और आगे चलकर त्रिविक्रम के पुत्र नारायण पडिताचार्य ने 'मध्व-विजय' नामक आचार्य की प्रामाणिक जीवनी लिखी। इसी काल मे मध्वाचार्य ने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रथ 'अनु-व्याख्यान' का प्रणयन किया। इसी समय आचार्य ने उडुपी मे अष्ट मठो की स्थापना की। साथ ही पूजन-अर्चन मे सलग्न रहते हुए आचार्य ने न्याय-विवरण, कर्म-निर्णय तथा कृष्णामृतमहार्णव नामक तीन ग्रथों की रचना की। इस प्रकार शिष्य-समुदाय एव ग्रथ-सपत्ति के द्वारा द्वैत-मत प्रतिष्ठित हुआ। मध्वाचार्य के जीवन का उद्देश्य सफल हो गया। तब माघ शुक्ल नवमी तिथि को 1318 ई. मे 79 की आयु पूर्ण कर आचार्य इस धरा-धाम से एकाएक अतर्हित हुए। साप्रदायिकों की धारणा है कि वे वेदव्यासजी के निकट बदरिकाश्रम चले गए।

मध्वाचार्य, आनदतीर्थ भी कहलाते थे। कहते हैं कि जब वे हिमालय के व्यासाश्रम गए थे तब व्यासजी ने प्रसन्न होकर उन्हें शालिग्राम की 3 मूर्तिया दी थीं। इन मूर्तियों को आचार्य ने 3 क्षेत्रों- सुब्रहमण्यम्, उडुपी तथा मध्यतल में प्रतिष्ठित किया। समुद्र-तल से निकाली गई श्रीकृष्ण मूर्ति की भी प्रतिष्ठापना उन्होंने उडुपी में की। तभी से यह स्थान माध्वों के लिये आचार्य-पीठ एव विशेष तीर्थ माना जाता है। यहीं पर आचार्य ने अपने शिष्यों की सुविधा के लिये 8 मंदिरों का निर्माण कराया, जिनमें सीता-राम, लक्ष्मण-सीता, द्विभुज कालिया-दमन, चतुर्भुज कालिया-दमन, विठ्ठल आदि 8 मूर्तियों की स्थापना की। मध्वाचार्य ने अपने जीवन के आरंभ-काल से ही सिद्धात-ग्रथो के प्रणयन का महनीय कार्य अपने हाथ में लिया था। छोटे बडे मिलाकर उनके 37 ग्रथ है, जिन्हें समवेत रूप मे 'सर्व-मूल' कहा जाता है। सर्व-मूल के देवनागरी सस्करण, कुभकोणम् तथा बेलगाव से प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य के इन ग्रथों को चार भागों में विभक्त किया जाता है- प्रस्थानत्रयी पर व्याख्या (16 ग्रथ), दश-प्रकरण (10 ग्रथ), तात्पर्य-ग्रथ (इनकी सख्या 3 है) और काव्य-ग्रंथ (8)। कदुक-स्तुति नामक 38 वी लघुतम कृति को, 'सर्व-मूल' मे समाविष्ट नही किया जाता। यह आचार्य के बाल्य-काल की रचना है।

मध्वाचार्य की विशेषता थी, अपने व्याख्यान एव मत की पुष्टि विविध प्राचीन ग्रथो के उद्धरणों से करना। उनमें से आजकल अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात हैं तथा कतिपय ग्रथो का पता भी नही चलता। उनके विस्तृत अध्ययन, गभीर अनुशीलन एव प्रगाढ पाडित्य का परिचय उनके द्वारा प्रणीत ग्रथो से भली-भाति मिलता है।

जन्म और सन्यास विषयक विशेष- इनके पिता का नाम तुलु (मध्यगेहभट्ट) तथा माता का नाम वेदवती था। इनके जन्म के पूर्व मध्यगेहभट्ट के दो पुत्र और एक पुत्री थी, परतु दोनो पुत्र बचपन में ही चल बसे थे। अत मध्यगेहभट्ट (तुलु) ने पुत्र-प्राप्ति के लिये उडुपी के अनतेश्वर की उपासना की। उनकी कृपा से उन्हे पुत्रप्राप्ति हुई। पुत्र का नाम वासुदेव रखा गया।

उपनयन-सस्कार के पश्चात् जब वासुदेव ने वेदाध्ययन तथा शास्त्राध्ययन पूर्ण किया तो माता-पिता ने वासुदेव के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। परतु वैष्णव भक्ति का प्रचार ही जीवित-कार्य है तथा उसकी पूर्ति सन्यास-धर्म की दीक्षा ग्रहण किये बिना सभव नही यह उनकी दृढ धारणा होने से, वे माता पिता के प्रस्ताव के प्रति उदासीन रहे।

एक बार उडुपी मे अच्युतप्रेक्ष नामक एक विद्वान् यति का आगमन हुआ। मध्वाचार्य को समाचार मिलते ही घर पर किसी को भी सूचना न देते हुए वे उडुपी चले गये। वहा उन्होंने अच्युतप्रेक्ष से अनुरोध किया कि वे उन्हें संन्यासधर्म

की दीक्षा दें। अच्युतप्रेक्ष ने उन्हें संन्यास की दीक्षा नहीं दी परंतु उन्हें अपने सान्निध्य में रख लिया। माता-पिता को इस बात का समाचार मिलते ही वे दोनों, पुत्र को घर लौटा लाने के लिये उडुपि गये। उन्होंने मध्वाचार्य को सन्यासधर्म ग्रहण करने से परावृत्त करने का प्रयत्न किया। परंतु मध्वाचार्य अपने निश्चय से डिगे नही किंतु उन्होंने पिता से कहा कि जब तक उनके एक और भाई नहीं होता तब तक वे घर पर रहेंगे तथा संन्यासदीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे। इसके पश्चात् अल्पावधि में ही मध्वाचार्य की माता गर्भवती हुई तथा यथाकाल उनके एक पुत्र हुआ। इसके बाद मध्वाचार्य पुनश्च उडुपी गए तथा उन्होंने अच्युतप्रेक्ष से संन्यासदीक्षा ग्रहण की। उनका नाम पूर्णप्रज्ञतीर्थ रखा गया था परतु लोगों में उनका मध्वाचार्य नाम ही प्रचलित रहा।

मनु वैवस्वत - ऋग्वेद के 8 वें मडल के 27 से 31 तक के सूक्तों के द्रष्टा। इन सब सूक्तों का विषय विश्वेदेवस्तुति है। इनमें से 29 वा सूक्त प्रसिद्ध कूटसूक्त है। उसमे 10 ऋचाये है। प्रत्येक ऋचा की स्वतंत्र देवता का स्थूल चिन्ह से कूटसदृश उल्लेख इस प्रकार है-

1. बभ्र (सोम), 2 योनि (अग्नि), 3 वाशी (त्वष्टा), 4 वज्र (इद्र), 5 जलाषभेषज (रुद्र), 6 पथ (पूषा), 7 उरुधनु (विष्णु), 8. सहप्रवासी (अश्विनीकुमार), 9 सम्राट् (मित्रावरुण), 10. सूर्यप्रकाश (अत्रि अथवा सूर्य)।

30 वें सूक्त की देवता अश्विनी है। 31 वें सूक्त में यजमान-प्रशसा, दपतीप्रशसा तथा दपती को आशीर्वाद है। इसे ऋग्वेद में मनुसावर्णी सज्ञा है। कहते हैं कि वैवस्वत इनका पैतृक नाम है और सावर्णी मातृवंशसूचक नाम है।

यदु, तुर्वश, मनु वैवस्वत के समकालीन तथा माडलिक थे। ये इद्र के कृपापात्र थे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जलप्रलय से जगत् की इन्होंने रक्षा की थी। ये दानशूर थे।

मम्मटाचार्य - समय- ई 12 वीं शती। 'राजानक' की उपाधि। इनके नाम से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर निवासी रहे होंगे। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' नामक युगप्रवर्तक काव्यशास्त्रीय ग्रथ का प्रणयन किया है जिसकी महत्ता व गरिमा के कारण ये 'वाग्देवतावतार' कहे जाते हैं। 'काव्यप्रकाश' की 'सुधाकर' नामक टीका के प्रणेता भीमसेन दीक्षित ने इन्हें काश्मीरदेशीय जैयट का पुत्र तथा पतजलिकृत 'महाभाष्य' के टीकाकार कैयट एव चतुर्वेदभास्कर उव्वट का ज्येष्ठ भ्राता माना है। पर इस विवरण को आधुनिक विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते। इसी प्रकार नैषधकार श्रीहर्ष को मम्मट का भागिनेय कहने की अनुश्रुति भी पूर्णत संदिग्ध है, क्यों कि श्रीहर्ष काश्मीरी नहीं थे। 'अलंकारसर्वस्व' के प्रणेता रुय्यक ने 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है और इसका उल्लेख भी किया है। रुय्यक का समय 1128-1149 ई. के आसपास है। अतः मम्मट का समय उनके पूर्व ही सिद्ध होता है। यह अवश्य है कि रुय्यक, मम्मट के 40 या 50 वर्ष बाद ही हुए होंगे।

'काव्यप्रकाश' के प्रणेता के प्रश्न को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है कि मम्मट ने संपूर्ण ग्रथ की रचना अकेले नहीं की है। परतु अनेक प्रमाणों के आधार पर आचार्य मम्मट ही इस सपूर्ण ग्रंथ के प्रणेता सिद्ध होते हैं। काव्यप्रकाश के अतिरिक्त शब्दव्यापारविचार तथा सगीतरत्नावली नामक दो अन्य ग्रंथ भी इन्होंने लिखे हैं।

इनका प्रमुख ग्रथ काव्यप्रकाश, सस्कृत- साहित्य शास्त्र का आकरग्रथ माना जाता है। उसके संबध में कहा जाता है कि "काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे टीका तथाप्येष तथैव दुर्गम" अर्थात् काव्यप्रकाश पर घर-घर में टीका लिखी गई, परतु वह दुर्गम ही है।

मन्यु तापस- ऋग्वेद के 10 वें मडल के 83 वें तथा 84 वें सूक्त के द्रष्टा। इन सूक्तों मे रणदेवता की स्तुति है जैसे -

अग्निरिव मन्यो त्विषित सहस्व-सेनानीर्न सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व।।
(10-84-2)

अर्थ- अग्निशिखासदृश, तेजस्वी, शत्रुसहारक, युद्धनिमत्रित तथा बलदाता मन्युदेवता हमारे सेनापति होकर आप हमें विपुल धन दे। यही सूक्त अथर्ववेद में भी है। (4-31-32)।

मय- दक्षिण भारत के एक शिल्पशास्त्रज्ञ। इन्होंने शिल्पशास्त्र पर मयमत, मयशिल्प, मयशिल्पशतिका तथा शिल्पशास्त्रविधान नामक चार ग्रथ लिखे हैं। अंतिम ग्रथ मे पाच प्रकरण हैं तथा उसमे मूर्ति-रचना का ऊहापोह है।

मयूरभट्ट - समय- ई 7 वीं शती। काशी के पूर्व में निवास। 'सूर्यशतक' के रचयिता। सस्कृत में मयूर नामक कई लेखक मिलते हैं उदाहरणार्थ बाण के सबधी मयूरभट्ट, 'पद्मचद्रिका' नामक ग्रथ के लेखक मयूर, सिहलद्वीप के लेखक मयूरपाद थेर आदि। किंतु 'सूर्यशतक' के प्रणेता मयूरभट्ट इन सभी से भिन्न एवं प्राचीन हैं। ये बाणभट्ट के समकालीन थे और दोनों हर्षवर्धन की सभा में सम्मान पाते थे। ये बाण के सबधी, संभवत जामात कहे गए हैं। कहा जाता है कि इन्हें कुष्ठ-रोग हो गया था और उसकी निवृत्ति के के लिये इन्होंने 'सूर्यशतक' की रचना की थी। बाण और मयूर के सबध में एक आख्यायिका प्रचलित है - एक बार रात्रि को बाण पति-पत्नी का प्रेमकलह हुआ। तब बाण ने पत्नी को प्रसन्न करने के लिये निम्न श्लोक कहना प्रारम्भ किया-

गतप्राया रात्रि कृशतनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽय निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो।।

संयोगवश तभी मयूर वहा बाण से मिलने के लिये

पहुंचे थे। उन्होंने उपर्युक्त तीन चरण सुन लिये थे। अतः चौथा चरण स्वयं उन्होंने ही इस प्रकार पूर्ण कर डाला- 'कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्।' चतुर्थ चरण सुनकर बाण को क्रोध हो आया। उन्होंने मयूर को शाप दिया कि वह कुष्ठरोगी होगा। शापनिवृत्ति के लिये मयूर ने सूर्यस्तुतिपरक सौ श्लोक (स्रग्धरा वृत्त में) लिखे। तब उनकी रोग से मुक्ति हुई।

उपयुक्त श्लोक का अर्थ है- हे कृशांगि रात्रि प्राय समाप्त होती आयी है। चद्र फीका पड गया है। यह दीप भी निद्रावश होकर बुझने को है। पति के चरण छूने पर (पत्नी का) मान दूर होता है, परतु तूने अभी तक क्रोध नहीं छोडा है। हे चण्डि, कठिन स्तनो के समीप रहने से तेरा हृदय भी कठिन हो गया है।

मयूरेश - वैदिक रुद्र सूक्त के भाष्यकार। गुरु का नाम- कैवल्येन्द्र। भाष्यनिर्मिति का शक 1634। अपने भाष्य को मयूरेश 'अतिगूढ' बताते हैं। यह भाष्य चैत्र शुक्ल चतुर्थी शक 'विकृत्' में उन्होंने पूर्ण किया।

मलयगिरि - गुजरात-निवासी मत्रशास्त्रज्ञ। समय- ई 11-12 वीं शती। हेमचन्द्रसूरि तथा देवेन्द्रसूरि के समकालीन। ग्रथ-1 भगवतीसूत्र- द्वितीय शतक-वृत्ति, 2 राजप्रश्नीयोपाग टीका, 3 जीवाभिगमोपांग टीका, 4 प्रज्ञापनोपाग टीका, 5 चन्द्रप्रज्ञप्त्युपाग टीका, 6 सूर्यप्रज्ञप्त्युपाग टीका, 7 नदिसूत्रटीका, 8 व्यवहारसूत्र वृत्ति, 9 ब्रह्मकल्प पीठिकावृत्ति (अपूर्ण), 10 आवश्यक-वृत्ति (अपूर्ण) 11 पिण्डनिर्युक्ति टीका, 12 ज्योतिष्करण्डकटीका, 13 धर्मसग्रहणी वृत्ति, 14 कर्मप्रकृति, 15 पचसग्रहवृत्ति, 16 षडशीतिवृत्ति, 17 सप्ततिकावृत्ति, 18 बृहत्सग्रहणीवृत्ति, 19 बृहत्क्षेत्रसमासवृत्ति और 20 मलयगिरि-शब्दानुशासन। सूत्र गाथा आदि का स्पष्टीकरण प्राकृत-सस्कृत उद्धरणो के साथ।

मलयकवि- रचनाए- (1) 'मीनाक्षी-परिणय' (अठारह सर्ग) (2) 'कामाक्षी-विलास' और (3) 'तारकासुर वध'

मल्लय यज्वा - महाभाष्यप्रदीप पर टिप्पणी के लेखक। इनके पुत्र तिरुमल यज्वा ने अपने दर्शपूर्णमासमन्त्र भाष्य में इस टिप्पणी का उल्लेख किया है। राज,-हस्त,-पुस्त, मद्रास में उपलब्ध। तिरुमल ने भी एक भाष्य 'प्रदीप' पर लिखा जो अप्राप्य है।

मल्लिनाथ - सुप्रसिद्ध पच महाकाव्यो तथा मेघदूत के टीकाकार तथा न्यासोद्योत नाम्नी शास्त्रीय टीका के लेखक। समय- ई की 14 वीं शती। निवासस्थान- कोलाचलम् (जि -मेदक, आध्रप्रदेश) के तेलग ब्राह्मण। मल्लिनाथ की टीकाए साहित्यक्षेत्र में आदर्श मानी जाती हैं। "नामूल लिख्यते किंचित् नानपेक्षितमुच्यते", अर्थात् मेरी टीका में निराधार तथा अनेपेक्षित कुछ भी लिखा नही है- यह इनकी प्रतिज्ञा थी। मल्लिनाथ की टीकाओं में उनका सर्वकष पाडित्य दिखाई देता है। इनके पिता का नाम कपर्दी था और राजा सिंगभूपाल ने अपने 16 वें यज्ञ के अवसर पर इनका स्वर्ण-मौक्तिकों से अभिषेक किया था।

मल्लिषेण - समय- ई 11 वीं शती। कवि और मठाधिपति भट्टारक। मन्त्र-तन्त्र और रोगोपचार में प्रवृत्त। कार्यक्षेत्र- कर्नाटक के धारवाड जिले का मूलगुन्द नामक स्थान। चामुण्डराय के गुरु अजितसेन की परम्परा में दीक्षित।

रचनाए- 1 नागकुमारकाव्य (5 सर्ग) 2 महापुराण (2000 श्लोक), 3 भैरवपद्मावतीकल्प (10 अधिकार और 400 अनुष्टुप्), 4 सरस्वती-मन्त्रकल्प (75 पद्य तथा कुछ गद्य), 5 ज्वालिनीकल्प और 6 कामचाण्डालीकल्प।

मल्लिसेन - ज्योतिष-शास्त्र के एक आचार्य। जन्म- 1043 ई। इनके पिता जिनसेन सूरि जैन-धर्मावलंबी थे। कर्नाटक के धारवाड जिले मे स्थित गदग नामक ग्राम के निवासी। प्राकृत तथा सस्कृत दोनों ही भाषाओं के पंडित। इन्होंने 'आर्यसद्भाव' नामक ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रथ की रचना की है। इस ग्रथ के अत मे इन्होंने बताया है कि ज्योतिष-शास्त्र के द्वारा भूत, भविष्य तथा वर्तमान का ज्ञान प्राप्त होता है। यह विद्या किसी अनधिकारी व्यक्ति को नहीं देनी चाहिये।

महादेव - ई 17 वीं शती। गोत्र-कौण्डिण्य। पिता-कृष्णसूरि तजावर के निकट कावेरी के तट पर पलमारनेरी के निवासी। गुरु-बालकृष्ण। रामभद्र दीक्षित के सतीर्थ। शाहराज (शहाजी भोसले) के द्वारा दोनो सतीर्थों को 1693 में प्रदत्त अग्रहार मे भाग। महादेव को रामभद्र दीक्षित से तिगुना भाग मिला। रचना- अद्भुतदर्पण नामक नौ अकों का अद्भुतरस प्रधान नाटक।

महादेव - रचना- प्रपचामृतसार। इस का विषय है रामानुज के विशिष्टाद्वैत तथा माध्वद्वैत-सिद्धान्त का खण्डन तथा अद्वैतमत की स्थापना। मराठी अनुवाद उपलब्ध।

महाबल - भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण। पिता-राथिदेव। माता-राजियक्का। गुरु- माधवचन्द्र त्रैविद्य। कवि के आश्रयदाता- राजा केतनायक। समय- ई 13 वीं शती। ग्रथ- नेमिनाथ-पुराण (ई 1254) चम्पू-शैली में लिखित।

महालिंग शास्त्री - जन्म तिरुवालगाड (तजावर) मे जुलाई 1897 मे। सुप्रसिद्ध अप्पय दीक्षित के वंशज। पिता-यज्ञस्वामी। शिक्षा- एम.ए., एल एल बी.। मद्रास हाईकोर्ट मे वकालत। सगीतशास्त्र में निपुण। महालिंग शास्त्री द्वारा लिखित-

प्रकाशित काव्यकृतियां - किंकिणीमाला, द्राविडार्या सुभाषित-सप्तति, व्याजोक्ति-रत्नावली, भ्रमरसन्देश, देशिकेन्द्र-स्तवाजलि, शम्भुचर्योपदेश, वनलता, स्तुतिपुष्पोपहार (अपर नाम मुक्त-स्तुतिमजरी)।

प्रकाशित नाट्यकृतियां - कौडिन्य-प्रहसन, प्रतिराजसूय, मर्कटमार्दलिक-भाण, शृगारनारदीय, उभयरूपक, कलिप्रादुर्भाव, आदिकाव्योदय, उद्गातृदशानन तथा अयोध्याकाण्ड।

अन्य प्रकाशित कृतियां - छात्रोपयोगी लघुरामचरित, उपक्रम पाठावली, मध्यमपाठावली, प्रौढ पाठावली, प्रवेशपाठावली तथा संस्कृत-लाघव। महाविद्यालयों के लिए भासकथासार (तीन खण्डों में) गद्य कथानककोश, संकथासन्दोह, कवि-काव्यनिकष। इसके अतिरिक्त संस्कृत में कीर्तन तथा रागमालिकाएं में रागोचित स्वर-निर्देशन।

अप्रकाशित कृतियां - मणिमाला (काव्य), प्रशस्ति-प्रगुणमालिका, किंकिणीमाला (द्वितीय खण्ड), व्याजोक्तिरत्नावली (द्वितीय खण्ड), प्रकीर्ण काव्य, भारतीविषाद, महामहिषसप्तति, लघुपाण्डवचरितम्, शृंगाररसमंजरी, श्रीवल्लभ-सुभाषितानि, उत्तरकाण्ड (लघु रामचरित का पूरक)।

महावीर प्रसाद जोशी - जन्म- 1914 ई. में। काव्यतीर्थ व साहित्यायुर्वेदाचार्य महावीरप्रसाद जोशी का जन्म डूंडलोद (झुंझुन, राजस्थान) में हुआ था। इनकी रचना है प्रतापचरितम्। संस्कृत-रत्नाकर, सुप्रभात तथा सूर्योदय आदि संस्कृत-पत्रिकाओं में भी आपकी अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य के महान् सेवक। सस्कृत में विनोदपरक रचना- 'कान्यकुब्जलीलामृतम्'।

महावीराचार्य - समय ई 9 वीं शती। रेखागणित, बीजगणित व पाटीगणित के प्रसिद्ध आचार्य। कन्नड-भाषी। जैनमतावलंबी। इन्होंने गणित व ज्योतिष पर दो ग्रंथों की रचना की है- 'गणितसारसंग्रह' और 'ज्योतिषपटल'। ये जैनधर्मी राजा अमोघवर्ष (राष्ट्रकूट-वश) के आश्रित थे। इनका 'ज्योतिषपटल' नामक ग्रंथ अधूरा ही प्राप्त हुआ है। अपने "गणितसार-सग्रह" नामक ग्रथ के प्रारभ में इन्होंने गणित की प्रंशसा की है। इनका 'जातकतिलक' ग्रंथ भी उल्लेखनीय है।

महासेन - लाडवागड संघ के जैन आचार्य। गुणाकरसेन के शिष्य और पर्पट के गुरु। परमारवंशी राजा मुज (समय- 10 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) द्वारा पूजित। ग्रथ-प्रद्युम्नचरित महाकाव्य, जिसमें 14 सर्गों में भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न की गौरव गाथा वर्णित है। यह गाथा श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण में भी मिलती है पर जैन साहित्य में हरिवंशपुराण के आधार पर उनके चरित को सुविधानुसार परिवर्तित किया है। कथानक श्रृखलाबद्ध एवं सुगठित है।

महासेन पण्डितदेव - दक्षिणवासी। समय-ई 12 वीं शती। नवसेन पण्डितदेव के शिष्य। पद्मप्रभ मलधारी देव द्वारा वादी-विजेता के रूप में उल्लिखित। ग्रंथ-स्वरूपसंबोधन तथा प्रमाण-निर्णय।

महास्वामी : सामसंहिता और भाषिकसूत्र के भाष्यकार। अनन्ताचार्य का भाषिक सूत्रभाष्य इनके ग्रन्थ की छायामात्र है। भाषिकसूत्रभाष्य और सामवेद-भाष्य इन दो कृतियों के कर्ता एक ही हैं या भिन्न यह निश्चित कहना कठिन है।

महिम भट्ट : इन्होंने "व्यक्ति-विवेक" नामक काव्यशास्त्र के युगप्रवर्तक ग्रंथ की रचना की है जिसमें व्यंजना या ध्वनि का खडन कर उसके सभी भेदों का अंतर्भाव अनुमान में किया गया है। इनकी उपाधि "राजानक" थी आर ये काश्मीर के निवासी थे।

समय- ई. 11 वीं शती का मध्य। पिता-श्रीधैर्य व गुरु श्यामल। इन्होंने अपने ग्रंथ में कुतक का उल्लेख किया है, और अलंकारसर्वस्वकार रुय्यक ने इनके ग्रंथ 'व्यक्तिविवेक' की व्याख्या लिखी है। इससे इनका समय ई. 11 वीं शती का मध्य ही निश्चित होता है। महिमभट्ट नैयायिक हैं। इन्होंने न्याय की पद्धति से ध्वनि का खंडन का उसके सभी भेदों को अनुमान में गतार्थ किया है और ध्वनिकार द्वारा प्रस्तुत किये गये उदाहरणों में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ दोषान्वेषण कर उन्हें अनुमान का उदाहरण सिद्ध किया है। इन्होंने ध्वन्यालोक में प्रस्तुत किये गये ध्वनि के लक्षण में 10 दोष ढूंढ निकाले हैं जिससे इनका प्रौढ पांडित्य झलकता है। इनके समान ध्वनि-सिद्धात का विरोधी कोई नहीं हुआ। इनका प्रौढ पांडित्य व सूक्ष्म विवेचन सस्कृत काव्यशास्त्र में अद्वितीय है। इन्होंने व्यंग्यार्थ को अनुमेय स्वीकार करते हुए ध्वनि का नाम 'काव्यानुमिति' दिया है। इनके अनुसार काव्यानुमिति वहां होती है जहा वाच्य या उसके द्वारा अनुमित अर्थ, दूसरे अर्थ को किसी संबध से प्रकाशित करे (व्य वि 1-25)।

महिमभट्ट - रचना- नटाङ्कुशम्। (अभिनय और रस संबंधी)। प्रथम श्लोक में महिम शब्द के प्रयोग से यह तर्क किया जाता है, कि रचना महिमभट्ट की हो।

महिमोदय - ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। समय- ई 18 वीं शती। गुरु-जैन विद्वान् लब्धिविजय सूरि। महिमोदय ने 'ज्योतिष-रत्नाकर' नामक फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है जिसमें सहिता, मुहूर्त तथा जातक तीनों ही अगो का विवेचन किया गया है। ये फलित व गणित दोनों के ही मर्मज्ञ थे। इन्होंने 'गणित साठ सौ' तथा 'पचांगानयनविधि' नामक गणित 'ज्योतिष-विषयक दो ग्रंथों की रचना की है।

महीधर - ई. 17 वीं शती। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार। निवासस्थान- काशी। 'मन्त्रमहोदधि' नामक तत्र ग्रंथ और उस पर टीका भी महीधराचार्य ने लिखी। मन्त्रमहोदधि में जो काल-निर्देश है, उससे महीधराचार्य का समय निःसंदिग्ध हो जाता है। उवट और माधव इन दोनों के भाष्य का अभ्यास करते हुए अपने वेददीप नामक यजुर्भाष्य की रचना महीधर आचार्य ने की। कई विद्वानों के मतानुसार यह निर्दिष्ट माधव, वेंकट-माधव हैं, सायण-माधव नहीं किन्तु इस मत का खण्डन भी हो चुका है। महीधराचार्य का वेददीपभाष्य-उवटाचार्य के माध्यंदिनभाष्य से प्रभावित है। उवट संक्षेप्र के, और महीधर विस्तार के प्रेमी हैं। महीधराचार्य ने

मंत्रों का विनियोग विस्तृत रूप से दिया है।

महीधर वेंकटराम शास्त्री - ई 20 वीं शती।। पिता-वेंकटराम दीक्षित। राजमहेन्द्रवरम् नगरी (आध्रप्रदेश) के निवासी। वैयाकरण एवं आयुर्वेद-विशारद। 'सरोजिनी-सौरभ' नामक नाटक के रचयिता।

महेन्द्रसूरि- ज्योतिष शास्त्र के आचार्य। समय- ई 12 वी शती का अंतिम चरण। गुरु-मदनसूरि। महेन्द्रसूरि, फीरोज शाह तुगलक के आश्रय में रहते थे। इन्होंने 'यत्रराज' नामक ग्रह-गणित का अत्यत महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखा है जिस पर इनके शिष्य मलयेंद्र-सूरि ने टीका लिखी है। इस ग्रथ का रचना-काल सन् 1192 है।

महेशचन्द्र तर्कचूडामणि - ई 19-20 वीं शती। राजारामपुर, (दिनाजपुर बगाल) के निवासी। कृतिया- भूदेवचरित, दिनाजपुर-राजवंश-चरित व काव्यपेटिका तथा तत्त्वावली (काव्य)।

महेश ठक्कुर - अकबर बादशाह के आश्रित। इन्होंने 'सर्व-देश-वृत्तान्त सग्रह ' की रचना की। यह ग्रथ 'अकबरनामा' के नाम से प्रसिद्ध है। महेश ठक्कुर न्यायशास्त्र के विशेषज्ञ थे। उनके शिष्य रघुनन्दनदास भी प्रखर नैयायिक थे। अकबर ने इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें दरभगा प्रान्त भेंट दिया परतु रघुनन्दनदास ने वह भेट अपने गुरु के चरणों पर समर्पित की। अभी-अभी तक ठक्कुर के वशज दरभगा की गद्दी पर थे।

महेश्वर न्यायालंकार - ई 16 वीं शती। बगाल के निवासी। कृतिया- 'साहित्यदर्पण' पर 'विज्ञप्रिया' नामक तथा 'काव्यप्रकाश' पर 'आदर्श' अथवा 'भावार्थ-चिन्तामणि' नामक टीका।

माघ (घण्टामाघ) - 'शिशुपाल-वध' नामक युगप्रवर्तक महाकाव्य के प्रणेता। अपनी विशिष्ट शैली के कारण 'शिशुपाल-वध' सस्कृत महाकाव्य की 'बृहत्त्रयी' में द्वितीय स्थान का अधिकारी रहा है। माघ की विद्वत्ता, महनीयता, प्रौढता व उदात्त काव्यशैली के सबध में सस्कृत ग्रथों में अनेक प्रकार की प्रशस्तिया प्राप्त होती हैं। स्वय माघ ने ही 'शिशुपाल-वध' के अत में 5 श्लोकों मे अपने वश का वर्णन किया है। तदनुसार माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था और वे श्रीवर्मल नामक किसी राजा के प्रधान मत्री थे। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्त या दत्तक था, जो अत्यत गुणवान् थे, और इन्ही के पुत्र माघ थे।

माघ का जन्म भिन्नमाल या भीमाल नामक स्थान में हुआ था। इस स्थान का उल्लेख 'शिशुपाल-वध' की कतिपय प्राचीन प्रतियों में मिलता है। विद्वानों का अनुमान है कि यही भिन्नमाल का भीनमाल कालातर मे श्रीमाल हो गया था। प्रभाचद्र रचित 'प्रभाकरचरित' मे माघ को श्रीमाल-निवासी कहा गया है। प्रभाचद्र ने श्रीमाल के राजा का नाम वर्मलात और मंत्री का नाम सुप्रभदेव लिखा है (प्रभाकर-चरित, 14-5-10)। यह स्थान अभी भी राजस्थान में श्रीमाली नगर के नाम मे विख्यात है तथा गुजरात की सीमा से अत्यत निकट है। माघ ने जिस रैवतक पर्वन का वर्णन अपने 'शिशुपाल-वध' में किया है, वह राजस्थान मे ही है। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानो ने माघ को राजस्थानी श्रीमाली ब्राह्मण कहा है।

माघ का समय ई 7 वीं शती से 11 वीं शती तक माना जाता रहा है। राजस्थान के वसतपुर नामक स्थान में राजा वर्मलात का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसका समय 625 ई है। यह समय माघ के पितामह सुप्रभदेव का है। अत यदि इसमे 50 वर्ष जोड दिये गये जाये, तो माघ का समय 675 ई माना जा सकता है। 'शिशुपाल-वध' के एक श्लोक (2-114) मे माघ ने राजनीति की विशेषता बताते समय उध्दव के कथन मे राजनीति व शब्दविद्या दोनो का प्रयोग एक-साथ श्लिष्ट उपमा के रूप में किया है। इसमे काशिकावृत्ति (650 ई) तथा उस पर जिनेंद्रबुद्धि रचित न्यास-ग्रथ (700 ई) का सकेत है। इससे सिद्ध होता है कि "शिशुपाल-वध" की रचना 700 ई के बाद हुई है। सोमदेव कृत 'यशस्तिलकचपू' (959 ई) में माघ का उल्लेख प्राप्त होता है तथा 'ध्वन्यालोक' में 'शिशुपाल-वध' के दो श्लोक (3-53 व 5-26) उद्धृत हैं। 'शिशुपाल-वध' पर भारवि तथा भट्टि दोनो का प्रभाव लक्षित होता है। अत इनका समय ई 7 वी शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है।

माघ-प्रणीत एकमात्र ग्रथ- 'शिशुपाल-वध' है। इस महाकाव्य की कथावस्तु का आधार महाभारतीय कथा है जिसे माघ ने अपनी प्रतिभा के बल पर रमणीय रूप दिया है। माघ का व्यक्तित्व एक पडित कवि का है। उनका आविर्भाव सस्कृत महाकाव्य की उस परपरा मे हुआ था, जिसमें शास्त्र-काव्य एव अलकृत-काव्य की रचना हुई थी। इस युग में पाडित्य-रहित कवित्व को कम महत्त्व प्राप्त होता था। अत माघ ने स्थान-स्थान पर अपने अपूर्व पांडित्य का परिचय दिया है। ये महावैयाकरण, दार्शनिक, राजनीतिशास्त्र विशारद एव नीतिशास्त्री भी थे। बौद्ध-दर्शन के सूक्ष्म भेदो का भी इन्हे ज्ञान था। इन्होंने एक ही श्लोक (2-28) के अतर्गत, राजनीति व बौद्ध-दर्शन के मूल सिद्धातो का विवेचन किया है। इन शास्त्रो के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र, व्याकरण, सगीतशास्त्र, अलकारशास्त्र, कामशास्त्र एव अश्वविद्या के भी परिशीलन का परिचय महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में यत्र-तत्र दिया है। इनका प्रत्येक वर्णन, प्रत्येक भाव, अलकृत भाषा में ही अभिव्यक्त किया गया है। इनका काव्य कठिनता के लिये प्रसिद्ध है और इन्होने कही-कही चित्रालकार का प्रयोग कर उसे जानबूझकर कठिन बना दिया है।

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जौ।
अहिमरुचौ- हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरय विलम्बिघण्टा-
द्वयपरिवारित-वारणेन्द्रलीलाम् ।।4-20।।

अर्थ- एक ओर से प्रदीर्घ और अर्ध्वगामी किरणो के रज्जु धारण करने वाले तेजस्वी सूर्य का उदय तथा दूसरी ओर से शीतरश्मि चन्द्रमा का अस्त होते समय, यह (रैवतक) पर्वत, दोनों ओर लटकनेवाली घटा धारण करन वाले गजेन्द्र की शोभा धारण करता है। इस श्लोक में घण्टा की अपूर्व उपमा के कारण उत्तरकालीन रसिको ने इन्हें 'घण्टामाघ' की उपाधि दी है।

माघनन्दि - माघनन्दि नाम के तेरह आचार्य हुए हैं। सभी प्राय दक्षिण भारतीय रहे हैं। इनमें माघनन्दि योगीन्द्र प्रमुख हैं जिनका समय ई 12 वीं शती है। गुरुनाम-कुमुदेन्दु। शिष्यनाम- कुमुदचन्द्र। ग्रथ- 1 माघनन्दि- श्रावणाचारसार (चार अध्याय) और 2 शास्त्रसार-समुच्चय। सिद्धान्तसार, पदार्थसार, और प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण (जिनसहिता)।

माणिक्यशेखर सूरि - जैनधर्मी अचलगच्छीय महेन्द्रप्रभसूरि के प्रशिष्य और मेरुतुगसूरि के शिष्य। गुरुभ्राता- जयकीर्तिसूरि। चैत्यवासी। समय-वि की 15 वी शती। ग्रथ- 1 आवश्यक-निर्युक्ति-दीपिका, 2 दशवैकालिक-निर्युक्ति-दीपिका, 3 पिण्डनिर्युक्ति-दीपिका, 4 उत्तराध्ययन दीपिका और 5 आचार-दीपिका।

माणिक्यचन्द्र सूरि - वस्तुपाल (स 1276) के मत्री मे अच्छा सपर्क। रचना- 1 शान्तिनाथचरित। (आठ सर्ग, 5574 श्लोक) जो हरिभद्र सूरिकृत समराइच्चकहा पर आधारित है (विक्रम की 13 वीं शती का उत्तरार्ध, 1276) और 2. काव्यप्रकाश की सकेत नामक टीका (स 1266)।

माणिक्यनन्दि - जैनधर्मी नन्दिसघ के प्रमुख आचार्य। धारा नगरी के निवासी। गुरुनाम- रामनन्दी। शिष्य-नयनन्दी और प्रभाचन्द्र। न्यायशास्त्र के पण्डित। समय- ई 11 वी शताब्दी का प्रथम चरण। ग्रथ-परीक्षामुख (जैन न्यायशास्त्र का आद्य न्यायसूत्र। कुल छ समुद्देशों में विभक्त, 208 सूत्र)। उत्तरकाल में इस पर अनेक टीकाएं- व्याख्याए लिखी गयीं जिनमे प्रभाचन्द्र का प्रमेयकमल-मार्तण्ड, लघु अनन्तवीर्य की प्रमेय-रत्नमाला, चारुकीर्ति का प्रमेयरत्न-मालालकार एवं शान्तिवर्णी की प्रमेयकण्ठिका आदि टीकाए प्रसिद्ध हैं। देवसूरि का प्रमाण-नयतत्वालोक तथा हेमचद्र की प्रमाणमीमासा पर परीक्षामुख-सूत्र का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

मातृगुप्ताचार्य- समय- सभवत 5 वीं शती। राजतरगिणी में मातृगुप्त का कवि के रूप मे उल्लेख है। अभिनवभारती मे वीणावादन के पुष्प नाम प्रमेद की व्याख्या के समय मातृगुप्त का मत उद्धृत किया है। कुन्तक ने काव्य की सुकुमारता तथा विचित्रता नामक गुणो के लिये मातृगुप्त के उद्धरण दिये हैं। मातृगुप्त के सर्वाधिक उद्धरण अभिज्ञान-शाकुन्तल की टीका करते हुए राघवभट्ट ने दिए हैं। नान्दी का सूत्रधार नाटक तथा यवनिका के लक्षणहेतु, मातृगुप्त के ही श्लोक उद्धृत किए गए हैं। भरत के 'आरभ' तथा 'बीज' विषयक पद्यों को लिखते समय भी राघवभट्ट ने मातृगुप्त को उद्धृत किया है-

'अत्र विशेषो मातृगुप्ताचार्यौ उक्त -

'क्वचित् कारणमात्रन्तु क्वचिच्च फलदर्शनम्।।'

सुन्दरमिश्र ने नाट्यप्रदीप (1613 ई) नामक ग्रंथ में भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार नान्दी का लक्षण देते हुए उसकी व्याख्या मे मातृगुप्ताचार्य के मत का उल्लेख किया है।

मातृचेट - समय- ई प्रथम शती। कनिष्क के समकालीन महायानी बौद्ध पडित व स्तोत्रकवि। स्तोत्र-साहित्य के प्रवर्तक। भारत के बाहर विशेष ज्ञात तथा आदृत। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा खोतान तथा तुरफान से विशेष ग्रथो का अन्वेषण कर इनके ग्रन्थो का प्रकाशन किया गया। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने महत्प्रयास से कवि के 'अध्यर्ध-शतक' (बुद्ध स्तोत्र) की मूल सस्कृत प्रति तिब्बत के विहार से प्राप्त की (1926)। इनके तथा अन्य अन्वेषण से विन्टरनिट्झ तथा तारानाथ ने कवि के जीवन पर कुछ प्रकाश डाला है। तदनुसार मातृचेट पूर्वायुष्य मे काल नामक ब्राह्मण और शिवोपासक थे। नालन्दा में बौद्ध-केन्द्र पर शास्त्रार्थ में पराजित होने पर बौद्ध सघ मे समाविष्ट हुए। आर्यदेव इनके धर्मपरिवर्तक थे। कुछ जीवनीकारों के अनुसार, इन्होने क्षुधित व्याघ्री को शरीरार्पण किया।

रचनाए- चतु.शतक और अध्यर्धशतक। तन्जौर के ग्रथालय में इनके नाम पर 11 कृतियों का उल्लेख है- (1) वर्णनाथ-वर्णन, (2) सम्यक्बुद्धलक्षण-स्तोत्र, (3) त्रिरत्नमगल-स्तोत्र, (4) एकोत्तरी स्तोत्र, (5) सुगत-पचत्रिरत्न-स्तोत्र, (6) त्रिरत्न-स्तोत्र, (7) मिश्रक-स्तोत्र, (8) चतुर्विपर्यय-कथा, (9) कलियुग परिकथा, (10) आर्य तारादेवी-स्तोत्र (सर्वार्थसाधननाम-स्तोत्रराज) और (11) मतिचित्र-गीति। ये रचनाए मूल सस्कृत में अनुपलब्ध है। नेपाल मे उपलब्ध हस्तलेखो के अनुसन्धान से इनमें से कुछ प्राप्त हो सकती हैं।

माथुरेश विद्यालंकार - ई 17 वी शती। पिता-शिवराम चक्रवर्ती। माता-पार्वती। बगाली पडित। कृतिया- शब्द-रत्नावली (कोश) व सार-सुन्दरी (व्याकरण)।

माधव- आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रथ 'रोगविनिश्चय' या 'माधवानिदान' के प्रणेता। समय ई 7 वीं शती के आसपास। 'माधव-निदान', आधुनिक युग में रोग निदान का अत्यत लोकप्रिय ग्रंथ माना जाता है -

'निदाने माधव श्रेष्ठ। इनके पिता निघण्टुकार इदु हैं। कविराज गणनाथसेन ने इन्हे बंगाली कहा है। इनके 'माधव-निदान' ग्रथ की दो टीकाए प्रसिद्ध हैं और उसके तीन हिंदी अनुवाद प्राप्त होते हैं।

माधव कवीन्द्र- ई. 17 वीं शती। बगाली वैष्णव। 'उद्धव-दूत' नामक संदेश-काव्य के रचयिता। इनके जीवन के बारे में कोई

जानकारी प्राप्त नहीं होती। डा. एस.के.डे के अनुसार इनका समय ई. 7 वीं शताब्दी है। इन्होंने अपने इस वैष्णव काव्य की रचना 'मेघदूत' के अनुकरण पर की है।

माधव कवीन्द्र - समय- 1850-1895 ई.। इनका जन्म राजस्थान के अन्तर्गत विजयपुर राज्य के छीर ग्राम में हुआ था। पिता- रामवृक्ष, माता- जयकुमारी। ये दाधीच ब्राह्मण थे। इनकी शिक्षा महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई थी। कवि की प्रमुख कृति है - 'मुक्तिलहरी'।

माधवचन्द्र त्रैविद्य - माधवचन्द्र नाम के 10-11 विद्वान हुए हैं। उनमें दो का नाम उल्लेखनीय है। प्रथम माधवचन्द्र त्रैविद्य वे हैं जो आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे। उनका समय ई. 10 वीं शताब्दी का अन्तिम भाग होना चाहिये। उनका ग्रंथ है त्रिलोकसार की संस्कृत टीका।

दूसरे माधवचन्द्र त्रैविद्य वे हैं जो चन्द्रसूरि के प्रशिष्य और सकलचन्द्र के शिष्य थे। उन्होंने क्षुल्लकपुर (कोल्हापुर) में 'क्षपणासार-गद्य' की रचना (शिलाहार कुल के राजा वीर भोजदेव के प्रधानमन्त्री बाहुबली के लिए) की। समय- ई. 13 वीं शती का प्रथम चरण। दोनों विद्वान त्रैविद्य अर्थात् जैनसिद्धांत, व्याकरण और न्यायशास्त्र के पण्डित थे।

माधवभट्ट- ई. 16 वीं शती। पिता- मण्डलेश्वर। माता-इन्दुमती। श्रीपर्वत के समीप निवास। कृति- 'सुभद्राहरण' नामक एकांकी, जो श्रीगदित कोटि का एकमात्र उपलब्ध उपरूपक है।

माधवभट्ट (कविराज) - 'राघव-पांडवीय' नामक श्लेष-प्रधान महाकाव्य के प्रणेता जिसमें आरंभ से अंत तक एक ही शब्दावली में रामायण और महाभारत की कथा कही गई। इनका वास्तविक नाम माधवभट्ट था और कविराज उपाधि थी। ये जयंतीपुर में कादंब-वंशीय राजा कामदेव के सभा-कवि थे जिनका शासन-काल 1182 से 1187 ई. तक रहा था। अपने ग्रंथ में इन्होंने स्वयं को सुबंधु एवं बाणभट्ट की श्रेणी में रखते हुए, भंगिमामयश्लेषरचना की परिपाटी में निपुण कहा है तथा यह भी विचार व्यक्त किया है कि इस प्रकार का कोई चतुर्थ कवि है या नहीं इसमें संदेह है

'सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणा चतुर्थो विद्यते न वा।। (1/44)

माध्यंदिनि - संस्कृत के पाणिनि पूर्वकालीन वैयाकरण। पं. युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय 3000 वि. पू. है। 'काशिका' की उद्धृत एक कारिका से ज्ञात होता है कि इन्होंने एक व्याकरण-शास्त्र का प्रवर्तन किया था। (काशिका, 9-1-14)। पिता- मध्यंदिन। इनके नाम से दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं- 'शुक्लयजु पदपाठ' तथा 'माध्यंदिनशिक्षा'। कात्यायन कृत 'शुक्लयजु प्रातिशाख्य' में, 'माध्यंदिन-संहिता' के अध्येता माध्यंदिनि का एक मत उद्धृत है (8-35)। 'वायुपुराण' में माध्यंदिन को याज्ञवल्क्य का साक्षात् शिष्य कहा गया है (61-24, 25)। 'माध्यंदिन-शिक्षा' में स्वर तथा उच्चारण संबंधी नियमों का निरूपण है। इस शिक्षाग्रंथ के दो रूप हैं- लघु एवं बृहत्।

मान्धाता - ई. 15 वीं शताब्दी का पूर्वार्ध। 'नूतनभोजराज'- मदनपाल के द्वितीय पुत्र। संस्कृतविधाता' और 'रिपुकुलजेता' की उपाधियों से विभूषित। विश्वेश्वरभट्ट की सहायता से 'मदनमहार्णव' नामक कर्मविपाक-विषयक ग्रंथ की रचना की। कर्मविपाक के कारण कौन से रोग उत्पन्न होते हैं और उनका निवारण किन उपायों से करना चाहिये, इसका प्रतिपादन मदनमहार्णव में किया गया है।

मानतुंग - समय- लगभग 7 वीं शती। इनके जीवन के विषय में अनेक किंवदन्तियां हैं। पायमल्लकृत 'भक्तामरवृत्ति' में, विश्वभूषणकृत' भक्तामरचरित में, प्रभाचन्द्रसूरिकृत 'प्रभावकचरित' में और मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि में अनेक चमत्कारपूर्ण इतिवृत्त उल्लिखित हैं। ये दिगम्बर-श्वेताम्बर-सम्प्रदाय द्वारा समान रूप से मान्य हैं। भक्त-कवि। ब्राह्मण कुलोत्पन्न। चमत्कार दिखाने के उद्देश्य से हथकडियों और बेडियों से हाथ-पैर कसवाकर, मानतुंग युगादिदेव मंदिर के पिछले भाग में बैठ गये। फिर मानतुंग ने 'भक्तामरस्तोत्र' की रचना कर अपने आपको उनसे मुक्त कर लिया। मानतुंग नाम के अनेक विद्वान् उत्तरकाल में हुए हैं।

मानतुंग सूरि - जैनधर्मी कोटिगण की वैरशाखा के अन्तर्गत चन्द्रगच्छ से संबद्ध। रचना- श्रेयांसनाथ-चरित- (वि.सं. 1332)। इस काव्य का आधार है- देवभद्राचार्य- विरचित प्राकृत काव्य श्रेयांसनाथ-चरित। मानतुंग सूरि की शिष्यपरम्परा में क्रमशः रविप्रभसूरि, नरसिंहसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि और विनयचन्द्रसूरि पूर्णिमागच्छ के अधिपति। अन्य ग्रंथ- जयन्तीचरित (प्राकृत) तथा स्वप्नविचारभाष्य।

मानदेव - कालीकत के नरेश। अपरनाम एरलपट्टी। रचना- 'मानदेव-चम्पू-भारतम्'

मानवल्ली गंगाधरशास्त्री (म.म.) - सी.आई.ई.आन्ध्र पण्डित। वाराणसी में वास्तव्य। रचना- काव्यात्मक संशोधन, रसगंगाधर-टीका, राजाराम शास्त्री तथा बालशास्त्री (लेखक के गुरु) का पद्यमय चरित्र, भर्तृहरिकृत-वाक्यपदीयम् और कुमारिलभट्टकृत तन्त्रवार्तिक (व्याकरण और मीमांसा विषयक) ग्रन्थों का संस्करण आपने किया है।

मानवेद - परम वैष्णव। गुरुवपूर (केरल) के विष्णु मन्दिर में निवास। आध्यात्मिक गुरु-बिल्वमंगल। व्याकरणों के गुरु-कृष्ण पिशारोटी। कृतियां-कृष्णनाटक (गीतिनाट्य) और पूर्वभारतचम्पू (अनन्तभट्ट के अपूर्ण भारतचम्पू पर आगे बढाई हुई रचना)।

मानांक- ई. 10 वीं शती। वृन्दावन-यमकम् (चित्रकाव्य) तथा मेघाभ्युदय (काव्य) के प्रणेता। भवभूतिकृत मालती-माधव

नामक प्रकरण के टीकाकार।

मित्रमिश्र - पिता-परशुराम पंडित। पितामह-हसपडित। ओरछा-नरेश वीरसिह देव के आश्रित, जिनका शासनकाल सं. 1605 से 1627 तक था। इन्होंने वीरसिंह की ही प्रेरणा से "वीरमित्रोदय" नामक बृहत् प्रबन्ध का प्रणयन किया था। यह पद्य ग्रथ 22 प्रकाशों में विभाजित है। सभी प्रकाश अपने आप में विशाल ग्रंथ हैं। उदाहणार्थ "व्रतप्रकाश" के श्लोकों की सख्या 22,650 है और "संस्कार-प्रकाश" की श्लोक सख्या 17,415 है। "वीरमित्रोदय" में धर्मशास्त्र के सभी विषयों के अतिरिक्त राजनीतिशास्त्र का भी निरूपण है। मित्रमिश्र ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर भाष्य की भी रचना की थी। इनके काव्य "आनदकंदचम्पू" में बाल श्रीकृष्ण की लीला वर्णित है।

मिराशी - वासुदेव विष्णु - पद्मभूषण महामहोपाध्याय, डाक्टर आफ लेटर्स इत्यादि उपाधियों से विभूषित। राष्ट्रपति डा राजेन्द्रप्रसाद, डा राधाकृष्णन् और इदिरा गाधी द्वारा सम्मानित। नागपुर विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक सस्कृत-पालिप्राकृत विभाग के और प्राचीन भारतेतिहास और संस्कृति विभागों के अध्यक्ष। "कार्पस्कस् इंडिकेरम्" नामक महत्त्वपूर्ण ग्रथ के संपादक। सशोधन-मुक्तावली नामक ग्रथमाला में आपके अनेक शोधनिबध प्रकाशित हुए हैं। नागपुर विदर्भ सशोधन मडल के सस्थापक। सस्कृतरचना - हर्षचरितसार (सटीक)। सन 1986 में आपका देहान्त नागपुर में हुआ।

मीननाथ - ई 10 वीं शती। एक बगाली सिद्ध पुरुष। "स्मरदीपिका" या रतिरत्नप्रदीपिका नामक कामशास्त्रीय ग्रंथ के लेखक।

मुजाल (मंजुल) - समय, ई 10 वी शताब्दी। ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य। "लघुमानस" नामक सुप्रसिद्ध ज्योतिष-विषयक ग्रथ के प्रणेता। ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में इनका महत्त्व दो कारणों से है। इन्होंने सर्वप्रथम ताराओं का निरीक्षण कर नवीन तथ्य प्रस्तुत करने की विधि का आविष्कार किया। म म प सुधाकर द्विवेदी ने भी अपने ग्रंथ "गणकतरगिणी" में मुजाल की प्रासादिक शैली की प्रशसा की है। इनके "लघुमानस" का प्रकाशन परमेश्वर कृत संस्कृत टीका के साथ 1944 ई में हो चुका है, सपादक हैं वी डी आपटे। एन के मजूमदार कृत इसका अग्रेजी अनुवाद भी 1951 ई में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

मुंजे, बालकृष्ण शिवराम (डा) - रचना- नेत्रचिकित्सा। संकल्पित तीन खण्डों में से केवल एक ही लिख पाए। नागपुर (महाराष्ट्र) के निवासी। मुंबई के मेडिकल कालेज में अध्ययन हुआ। आयुर्वेद तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र का विशेष अध्ययन किया था। लोकमान्य तिलक के अनुयायी होने के कारण सारा जीवन राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहा। अनेक वर्षों तक हिंदुमहासभा का नेतृत्व किया। उत्तरायुष्य में नासिक में भोसला मिलिटरी स्कूल की स्थापना की। नेत्रचिकित्सा की प्रथम आवृत्ति का प्रकाशन चित्रशाला प्रेस, पुणे से 1930 ई में। द्वितीय सस्करण 1976 में डाक्टरसाहब की शताब्दी निमित्त बैद्यनाथ प्रकाशन, नागपुर द्वारा प्रकाशित।

मुकुलभट्ट - "अभिधावृत्तिमातृका" नामक काव्यशास्त्र विषयक लघु किंतु प्रौढ ग्रंथ के प्रणेता। समय ई 9 वीं शती। अपने ग्रथ के अत में इन्होंने स्वय को कल्लट भट्ट का पुत्र कहा है। उद्भट कृत "काव्यालकारसारसग्रह" के टीकाकार प्रतिहारेंदुराज ने स्वय को मुकुल का शिष्य कहा है और इन्हें मीमांसा, साहित्य, व्याकरण व तर्क का प्रकाड पडित माना है। "अभिधावृत्तिमातृका" में केवल 15 कारिकायें हैं जिन पर इन्होंने स्वयं वृत्ति लिखी है। ये व्यंजना-विरोधी आचार्य हैं। इन्होंने अभिधा को ही एकमात्र शक्ति मान कर उसमें लक्षणा व व्यजना का अंतर्भाव किया है। मम्मट ने इनके ग्रंथ "अभिधावृत्तिमातृका" के आधार पर "शब्दव्यापारविचार" नामक ग्रथ का प्रणयन किया था।

मुडुम्बी नरसिंहाचार्य - विजयानगरम् के नरेश विजयराम गणपति तथा आनन्द गणपति के आश्रित। रचनाएं- काव्योपोद्घात, काव्यप्रयोगविधि, काव्यसूत्रवृत्ति, अलंकारमाला, दैवोपालम्भ., नरसिहाट्टहास, जयसिहश्वमेधीय, युद्धप्रोत्साहनम् और व्हिक्टोरिया-प्रशस्ति।

मुडुम्बी वेंकटराम नरसिंहाचार्य - समय 1842 से 1928 ई.। माता-रङ्गाम्बा, पिता-वीरराघव। विजयनगर के गणपति विजयराम के आश्रित। प्रमुख रचनाए- चित्सूर्यालोक, गजेन्द्रव्यायोग, राजहसीय (नाटक), वासवी-पाराशरीय (प्रकरण), रामचद्र-कथामृत, भागवतम्, खलावहेलन, नीतिरहस्य, उज्वलानन्दचम्पू, काव्यालङ्कार-सग्रह इत्यादि कुल 114 ग्रथ इन्होंने लिखे हैं।

मुद्गल - ई 14 वी शती। ऋग्वेद के भाष्यकार। भाष्य-ग्रथ त्रुटित रूप में उपलब्ध है। यह भाष्य, सायण कृत भाष्य का ही सक्षेप है। इस तरह का संकेत स्वयं ग्रंथकार ने ही दिया है।

मुद्दुराम - तंजौर के महाराज शाहजी (1684-1711 ई) द्वारा सम्मानित। तजौर निवासी। पिता-रघुनाथाध्वरी। माता-जानकी। "रसिकतिलक" भाण के रचयिता।

मुनिभद्रसूरि - जैनधर्मी बृहद्गच्छ के विद्वान्। मुहम्मद तुगलक द्वारा सम्मानित। गुणभद्रसूरि के शिष्य। समय ई 14 वीं शती। ग्रथ-शान्तिनाथ-चरित (सन् 1353) 14 सर्ग। कालिदास, भारवि आदि महाकावियों के काव्य में दोषावलोकन कर ग्रंथ की रचना की गई है। राजशेखरसूरि द्वारा सशोधित।

मुनीश्वर - ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। प्रसिद्ध ज्योतिषि रंगनाथ के सुपुत्र। स्थिति-काल ई 17 वीं शती। इन्होंने "सिद्धान्तसार्वभौम" नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की है तथा भास्कराचार्य-प्रणीत "सिद्धांतशिरोमणि" एवं "लीलावती"

पर टीकायें लिखी हैं।

मुम्मिडि चिक्कदेवराय - मैसूर के नरेश (ई स 1672 से 1704)। रचना-भरतसारसग्रह।

मुरलीधर - पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के अणु-भाष्य पर इन्होंने सिद्धान्त-प्रदीप नाम की टीका लिखी है।

मुरारि - "अनर्घराघव" नाटक के रचयिता। बगाल निवासी। इस नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम वर्धमान भट्ट व माता का नाम ततुमती था। वे मौद्गल्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। सूक्ति-ग्रथों मे इनकी प्रशसा के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। सूक्ति-ग्रथों से स्पष्ट होता है कि मुरारि, माघ और भवभूति के परवर्ती थे। ये भवभूति की काव्य-शैली से प्रभावित हैं। अत उनका समय 700 ई के पश्चात् है। रत्नाकर ने अपने "हरविजय" महाकाव्य के एक श्लोक में मुरारि की चर्चा की है। अत वे रत्नाकर (850 ई) के पूर्ववर्ती हैं। मख-रचित "श्रीकंठचरित" (1135 ई) में मुरारि, राजशेखर के पूर्ववर्ती सिद्ध किये गये है। इन प्रमाणों के आधार पर मुरारि का समय 800 ई के आस-पास निश्चित होता है।

मुरारिमिश्र - समय ई 12 वा शतक। मीमासा-दर्शन क अंतर्गत मुरारि-परपरा या मिश्र-परपरा के प्रतिष्ठापक आचार्य। इन्होंने "नयविवेक" नामक ग्रथ के प्रणेता तथा गुरुमत के अनुयायी भवनाथ नामक प्रसिद्ध मीमासक के मत का खडन किया है जिनका समय ई 11 वीं शती है। इस आधार पर ये भवनाथ के परवर्ती सिद्ध होते हैं। मुरारि मिश्र के सभी ग्रथ प्राप्त नहीं होते, और जो प्राप्त हुए हैं, वे अधूरे हैं। कुछ वर्षों पूर्व डा उमेश मिश्र को इनके दो ग्रथ प्राप्त हुए हैं। त्रिपादनीतिनयम् और एकादशाध्यायाधिकरणम्। दोनो ही ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम ग्रथ में जैमिनि के प्रारभिक चार सूत्रों की व्याख्या है तथा द्वितीय में जैमिनि के 11 वे अध्याय में विवेचित कुछ अशों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इन्होंने प्रामाण्यवाद के सबध में अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। इनके मत का उल्लेख अनेक दार्शनिकों ने किया है जिनमें प्रसिद्ध नव्यनैयायिक गगेश उपाध्याय और उनके पुत्र वर्धमान उपाध्याय हैं।

मुरारिदान चारण - जन्म 1837 म। कवि मुरारिदान चारण जोधपुर के निवासी थे। ये साहित्यशास्त्र के विद्वान थे। इन्होंने काव्यशास्त्रीय प्रसिद्ध ग्रन्थ "भाषा-भूषण" का सस्कृत रूपान्तर, "यशवन्तयशोभूषणम्" नाम से किया है।

मॅक्डॉनेल - पूरा नाम डा आर्थर एटनी मॅक्डॉनेल। जन्म 11 मई 1854 ई. मे मजुफ्फरपुर (बिहार) में। इनके पिता अलेक्जडर मॅक्डॉनेल भारतीय सेना के एक उच्च-पदस्थ अधिकारी थे। शिक्षा, गोटिंगन (जर्मनी) में। इन्होंने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जर्मन, सस्कृत व चीनी भाषाओ का अध्ययन किया था। ये, प्रसिद्ध वैयाकरण विलियम्स, बेनफी (भाषा-शास्त्री), रॉथ एव मैक्समुलर के शिष्य थे। इनका जन्म भारत में, किंतु शिक्षा-दीक्षा विदेशो मे हुई। 1907 ई में इन्होंने 6-7 मास के लिये भारत की यात्रा की थी और इसी यात्रा-काल में इन्होने भारतीय हस्तलिखित पोथियों पर अनुसधान किया था। एम ए करने के पश्चात् इन्होने ऋग्वेद की कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी का पाठ-शोध कर उस पर प्रबध लिखा। इसी पर इन्हे लिप्जिग विश्वविद्यालय से पीएच डी की उपाधि प्राप्त हुई। पश्चात् इनकी नियुक्ति सस्कृत-प्राध्यापक के रूप में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे हुई। इनके ग्रथो की नामावली - 1) ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका का "वेदार्थ-दीपिका" सहित सपादन (1896 ई), 2) वैदिक-रीडर (1897 ई), 3) हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर (1900 ई), 4) टिप्पणी सहित बृहद्देवता का सपादन (1904) और 5) वैदिक ग्रामर (1910 ई), साथ ही वैदिक इडेक्स (कीथ के सहयोग से)।

मेघविजय (गणि) - समय- ई 18 वी शती। तपागच्छ के जैनाचार्य। कृपाविजय के शिष्य। गुरुपरम्परा - हीरविजय, कनकविजय, शीलविजय, कमलविजय, सिद्धिविजय और कृपाविजय। ग्रथ 1) देवानन्द महाकाव्य (सात पर्व), इसमें माघ काव्य की पादपूर्ति है। 2) शान्तिनाथचरित (छह सर्ग) नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग के सम्पूर्ण श्लोको की समस्यापूर्ति, 3) मेघदूत समस्यालेख - मेघदूत की समस्यापूर्ति, 4) दिग्विजय महाकाव्य (13 सर्ग) विजयप्रभसूरि का चरित निबद्ध, 5) हस्तसजीवन (सामुद्रिक शास्त्रपरक), 6) वर्षप्रबोध (ज्योतिष), 7) युक्तिप्रबोध नाटक (दार्शनिक), 8) चन्द्रप्रभा (सिद्धहेमशब्दानुशासन की कौमुदी रूप टीका), 9) सप्तसधान काव्य नामक श्लेषकाव्य, जिसमें ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, रामचद्र और श्रीकृष्ण इन सात महापुरुषों का चरित श्लेष अलकार मे वर्णन किया गया है। एक श्लोक के सात अर्थ निकलना यह महान् चमत्कार है।

मेडपल्ली वेकटरमणाचार्य - जन्म ई 1862। महाराज महाविद्यालय में सस्कृत पण्डित। रचना- अनुवाद गीर्वाणशठगोपसहस्रम्, (मूल- तमिल भक्तिकाव्य) अनु शेक्सपियर-नाटक-कथावली, मूल शेक्सपियर नाटक कथाए (चार्ल्स लॅम्ब कृत)।

मेदिनीकर - ई 12 वीं शती। बगाली। पिता प्राणकर। कृतिया- मेदिनी नामक शब्दार्थ कोश।

मेधावि-रुद्र (मेधावी) - काव्य-शास्त्र के आचार्य। इनका कोई भी ग्रथ उपलब्ध नहीं है, किंतु इनके विचार भामह, रुद्रट, नमिसाधु एव राजशेखर प्रभृति के ग्रथों में प्राप्त होते हैं। मेधाविरुद्र, भरत व भामह के बीच पडने वाले समय के सुदीर्घ व्यवधान में हुए होंगे। उपमा के 7 दोषों का विवेचन करते हुए भामह ने इनके मत का उल्लेख किया है।

(काव्यालकार 2-39, 40)। मेधाविरुद्र को "संख्यान" अलंकार की उद्भावना करने का श्रेय दडी ने दिया है। राजशेखर ने प्रतिभा के निरूपण में इनका उल्लेख किया है और बताया है कि वे जन्मांध थे। नमिसाधु इन्हे किसी अलंकार-ग्रथ का प्रणेता भी मानते हैं।

मेधावी - गुरुनाम- जिनचन्द्र सूरि। ग्रथ - धर्मसग्रह-श्रावकाचार (10 अधिकार) जो वि.सं 1541 में समाप्त हुआ। प्रस्तुत ग्रंथ पर समन्तभद्र वसुनन्दि और आशाधर का प्रभाव है।

मेधाव्रत शास्त्री - ई 20 वी शती का पूर्वार्ध। जन्म, नासिक के समीप येवला ग्राम में, सन् 1893 में। मूलत गुजराती आर्यसमाजी। पिता -जगजीवन। माता-सरस्वती। प्राथमिक शिक्षा सिकन्दराबाद के गुरुकुल में। तत्पश्चात् वृन्दावन मे। 1918 में कोल्हापुर के वैदिक विद्यालय के अध्यक्ष। सन् 1920 से 25 तक सूरत में अध्यापक। सन् 1925 में इटोला-गुरुकुल के आचार्य। सन् 1941 में नौकरी छोड कर अनेक प्रदेशो में भ्रमण करते हुए वेदों का प्रचार किया। सन् 1947 में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश। बाद मे नरेला तथा चित्तोडगढ के गुरुकुलों के प्राचार्य। दण्डकारण्य के निकट कुसूर ग्राम मे दिव्यकुज उपवन की स्थापना की। सस्कारादि कराने मे दक्ष। योगाभ्यास मे निपुण। पाचवें वर्ष से ही काव्य-सर्जन। सन् 1964 मे मृत्यु। कृतिया- (चरित्र ग्रथ) दयानन्द-दिग्विजय (महाकाव्य), हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित, ब्रह्मर्षि विरजानन्द-चरित, नारायणस्वामिचरित, नित्यानन्द-चरित, ज्ञानेन्द्रचरित, विश्वकर्माद्भुतचरित व संस्कृतकथामजरी।

(काव्य - दयानन्दलहरी, दिव्यानन्दलहरी, सुखानन्दलहरी, ब्रह्मचर्यशतक, गुरुकुलशतक व ब्रह्मचर्यमहत्त्व।

लघुकाव्य - वैदिक राष्ट्रकाव्य, मात प्रसीद प्रसीद, वाङ्मन्दाकिनी, सरस्वती-स्तवन, मात का ते दशा, श्रीरामचरितामृत, श्रीकृष्णचन्द्रकीर्तन, श्रीकृष्णस्तुति, विक्रमादित्य-स्तवन, नर्मदास्तवन, सत्यार्थप्रकाश-महिमा, दिव्यकुंजयोगाश्रमवर्णन, लालबहादुर शास्त्रिप्रशस्ति, श्रीवल्लभाष्टक, दामोदर-शुभाभिनन्दन, तद्भारतवैभवम्, मातृविलाप, विमानयात्रा, चित्तौडदुर्ग व देशोन्नति।

(गद्य) - कुमुदिनीचन्द्र, शुद्धिगङ्गावतार व हिन्दुस्वराज्यस्य प्रभातकाल·।

(नाटक) - प्रकृति-सौन्दर्यम्।

मेरुतुंग सूरि (प्रथम) - इस नाम के अनेक विद्वान् आचार्य हुए हैं। उनमें प्रथम थे प्रथम नागेन्द्रगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य। ग्रथ - 1) महापुरुष-चरित (धर्मोपदेशशतक या काव्योपदेश शतक), स्थविरावली (विचारश्रेणी) और 3) प्रबंधचिंतामणि (संवत् 1361), वढमाण- (वर्धमानपुर) में रचित। पांच प्रकाशों और 11 प्रबन्धों में विभक्त। ऐतिहासिक उपाख्यानों से युक्त। इसमें वि.स. 940-1250 तक के गुजरात का सामान्य इतिहास होने से इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी ग्रंथ। इसमें विक्रमादित्य, सातवाहन, भूपराज, चालुक्य कुमारपाल आदि राजाओं का वर्णन है। अपने युग (ई. 1304) का वर्णन कुछ भी नहीं। प्रस्तुति-पद्धति आकर्षक है।

मेरुतुंग (द्वितीय) - ग्रथ - संभवनाथ-चरित (सं 1413) तथा कामदेवचरित्र (सं 1409)।

मेरुतुंग (तृतीय) - महेन्द्रसूरि के शिष्य। ग्रथ- नाभाकनृपकथा, जैनमेघदूत (सटीक), कातन्त्र व्याकरणवृत्ति, षड्दर्शननिर्णय आदि।

मैक्समूलर - इन्होंने अपना सारा जीवन संस्कृत, विशेषत· वैदिक वाङ्मय के अध्ययन व अनुशीलन में लगा दिया था। इनका जन्म जर्मनी के देसाउ नामक नगर मे 6 दिसबर 1823 ई को हुआ था। इनके पिता प्राथमिक पाठशाला के शिक्षक थे। पिता का देहात 33 वर्ष की आयु में ही हो गया था। उस समय मैक्समुलर की आयु 4 वर्ष की थी। 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक इन्होंने ग्रामीण पाठशाला में ही अध्ययन किया। फिर लैटिन भाषा के अध्ययन के लिये इन्होंने 1836 ई में लिप्जिग विश्वविद्यालय मे प्रवेश किया और 5 वर्षों तक वहा अध्ययन करते रहे। अल्पायु में ही इन्हें संस्कृत भाषा के अध्ययन की रुचि उत्पन्न हो गई थी। विश्वविद्यालय छोडने के बाद ही ये जर्मनी के राजा द्वारा इंग्लैण्ड से खरीदे गए सस्कृत-साहित्य के बृहद् पुस्तकालय को देखने के लिये बर्लिन गए। वहा उन्होंने वेदान्त व सस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया। बर्लिन का कार्य समाप्त होते ही वे पेरिस गए। वहा इन्होंने एक भारतीय की सहायता से बगला भाषा का अध्ययन किया और फ्रेंच भाषा में बगला का एक व्याकरण लिखा। वहीं रहकर इन्होंने ऋग्वेद पर रचित सायणभाष्य का अध्ययन किया। इन्होंने 56 वर्षो तक अनवरत गति से सस्कृत-साहित्य व ऋग्वेद का अध्ययन किया, और ऋग्वेद पर प्रकाशित हुई विदेशों की सभी टीकाओं को एकत्र कर उनका अनुशीलन किया। इन्होंने सायण-भाष्य के साथ ऋग्वेद का अत्यंत प्रामाणिक शुद्ध सस्करण प्रकाशित किया, जो 6 सहस्र पृष्ठों एव 4 खडों में समाप्त हुआ। इस ग्रथ का प्रकाशन, ईस्ट इडिया कपनी की ओर से 14 अप्रैल 1847 ई को हुआ। मैक्समुलर के इस कार्य की तत्कालीन यूरोपियन सस्कृतज्ञों ने भूरि-भूरि प्रशसा की। फिर अपने अध्ययन की सुविधा देख कर मैक्समूलर इंग्लैण्ड चले गए और मृत्यु पर्यन्त लगभग 50 वर्षों तक वहीं रहे। इन्होंने 1859 ई में अपना विश्वविख्यात ग्रथ सस्कृत साहित्य का प्राचीन इतिहास लिखा और वैदिक साहित्य की विद्वत्तापूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की। 1 जुलाई 1900 में मैक्समुलर रोग ग्रस्त हुए और रविवार 18 अक्तूबर को उनका निधन हो गया। इन्होंने भारतीय साहित्य और दर्शन के अध्ययन और अनुशीलन में यावज्जीवन घोर परिश्रम किया। इन्होंने तुलनात्मक भाषाशास्त्र एवं नृतत्वशास्त्र के आधार पर

संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन का सूत्रपात किया था। इनके ग्रंथों के नाम हैं 1) ऋग्वेद का सपादन 2) ए हिस्ट्री ऑफ दि एंश्येंट संस्कृत लिटरेचर 3) लेक्चर्स ऑन दि साइस ऑफ लेंग्वेज (दो भाग) 4) ऑन स्ट्रेटिफिकेशन ऑफ लेंग्वेज 5) बायोग्राफीज ऑफ वंडर्स एण्ड टीम ऑफ आर्यार्ज् 6) इंट्रोडक्शन टु दि साइस ऑफ रिलिजन् 7) लेक्चर्स ऑन ओरीजन एण्ड ग्रोथ ऑफ रिलिजन ऐज इलस्ट्रेटेड बाय दि रिलिजन्स ऑफ् इंडिया 8) नेचुरल रिलिजन् 9) फिजीकल रिलिजन 12) काँट्रिब्यूशन टु दि साइंस ऑफ साइकॉलॉजी 13) हितोपदेश का जर्मन अनुवाद 14) मेघदूत का जर्मन अनुवाद 15) धम्मपद का जर्मन अनुवाद 16) उपनिषद् (जर्मन अनुवाद) 17) दि सेक्रेड बुक्स ऑफ दि इस्ट सीरीज (ग्रथमाला) के 48 खडो का सपादन।

मैत्रेयनाथ - बौद्ध विज्ञानवाद के सस्थापक। योगाचार की स्थापना कर इन्होंने आर्य असग को इस मत की दीक्षा दी। इनका मत आध्यात्मिक सिद्धान्तों के कारण विज्ञानवाद तथा धार्मिक एव व्यावहारिक दृष्टि से योगाचार कहलाता है। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। इनमे से केवल दो ही मूल संस्कृत में उपलब्ध हैं। शेष तिब्बती तथा चीनी अनुवाद के रूप में विद्यमान हैं। बस्तोन ने इनके 5 ग्रथो का उल्लेख किया है 1) महायान सूत्रालंकार, 2) धर्मधर्मताविभाग, 3) महायान उत्तरतत्र, 4) मध्यात्र विभग और 5) अभिसमयालंकारकारिका। आर्याछन्द मे सालकार काव्यरचना मे कौशल्य।

मैत्रेयरक्षित - ई 11 वीं शती का उत्तरार्ध। बगाल के निवासी बौद्ध पडित। पिता-धनेश्वर। कृतिया- तत्रप्रदीप ("न्यास" पर टीका), धातुप्रदीप (पाणिनीय धातुपाठ पर भाष्य), दुर्घटवृत्ति और महाभाष्यव्याख्या। "धातुप्रदीप" का प्रकाशन, वारेन्द्र रिसर्च सोसायटी राजशाही (बगाल) द्वारा सपन्न। इनके "तत्रप्रदीप" पर तंत्रप्रदीपोद्योता", "प्रभा" तथा "आलोक" नामक 3 टीकाए मिलती हैं। प्रथम दो के लेखक हैं क्रमश नदनमिश्र और सनातन तर्काचार्य। तीसरी टीका (आलोक) के लेखक अज्ञात है।

मोडक अच्युतराव - (ई 18-19 वीं शती) नासिक (महाराष्ट्र) के निवासी। गुरु- रघुनाथ भट्ट। साहित्य सार, भागीरथी-चपू व कृष्णलीला (काव्य), भामिनीविलास और पंचदशी पर टीकाएं आदि 30 ग्रथों के रचयिता। सन् 1834 में मृत्यु।

मोरिका - सस्कृत की प्राचीन कवयित्री हैं। "सुभाषितावली" तथा "शार्ङ्गधर-पद्धति" में इनके नाम की केवल 4 रचनाए प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त इनके सबध में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता।

म्हसकर - मुम्बई के निवासी। रचना - स्वास्थ्यवृत्तम्। इसमें स्वास्थ्य तथा दीर्घायुत्व के सबध में विवरण है।

मृत्युंजय - रत्नखेट की कन्या के पुत्र। पिता- कृष्णाध्वरी। रचना- प्रद्युम्नोत्तरचरितम् (11 सर्गों का महाकाव्य)।

यक्षसेन - चितामणि नामक ग्रथ के रचयिता जो शाकटायन व्याकरण की लघु वृत्ति है।

यज्ञनारायण दीक्षित - ई 17 वीं शती। पिता- गोविन्द दीक्षित (तजौर के प्रधानामात्य)। छोटे भाई वेंकटेश्वर भी कवि। तजौर के राजा रघुनाथ की सभा में सम्मानित स्थान। समकालिक कवियो द्वारा प्रशस्ति तथा सम्मान प्राप्त। पाण्डित्यप्रदर्शिकी शैली। रचनाएं - रघुनाथविलास (5 अकों का नाटक), रघुनाथभूपविजय (अनुपलब्ध), साहित्यरत्नाकर (13 सर्गों का महाकाव्य) और अलकार-रत्नाकर।

यज्ञनारायण दीक्षित - ई 20 वीं शती। "पद्मावती" तथा "वरूथिनी" नामक नाटकों के प्रणेता।

यज्ञसुब्रह्मण्य और स्वामी दीक्षित - तिनवेल्ली के निवासी। ई 19 वी शती। रचना- वल्लीपरिणय-चम्पू।

यतीन्द्रविमल चौधुरी (डा.) - जन्म कर्णफुली नदी के तट पर स्थित कधुखिल ग्राम (बागला देश) मे दि 2-1-1908 को। मृत्यु सन् 1964 मे। पिता - रसिकचन्द्र चौधुरी प्राइमरी स्कूल मे अध्यापक थे। माता-नयनतारा देवी। पत्नी- डा रमा चौधुरी। सन् 1928 में बी ए करने के पश्चात् लन्दन प्रस्थान। सन् 1934 में "वुमेन इन वैदिक रिच्युअल" पर पीएच डी उपाधि प्राप्त। इस बीच लन्दन मे सेवारत। विवाह सन् 1938 मे। भारत लौटने पर वगीय सस्कृत शिक्षा परिषद् के मत्री। सस्कृत शिक्षा समिति (बगाल) के मत्री। प्रेसिडेन्सी कालेज मे सस्कृत विभागाध्यक्ष। कलकत्ता वि वि में सस्कृत के व्याख्याता। बाद मे सस्कृत कालेज के प्राचार्य। प्राच्यवाणी (इन्स्टिट्यूट आफ् ओरिएटल लर्निंग) के सस्थापक। "प्राच्यवाणी" नामक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का पत्नी के सहयोग से सम्पादन।

कृतिया- (काव्य) - शक्तिसाधन, मातृलीलातत्त्व और विवेकानन्दचरित (चपू)। नाटक-महिममय-भारत, मेलनतीर्थ, भारत-हृदयारविन्द, भास्करोदय, भारत-विवेक, भारत-राजेन्द्र, सुभाष सुभाष, देशबन्धुदेशप्रिय, रक्षक श्रीगोरक्ष, निष्किचन-यशोधा, शक्तिसारद, आनन्दराध, प्रीतिविष्णुप्रिय, भक्तिविष्णुप्रिय, मुक्तिसारद, अमरमीर, भारतलक्ष्मी, महाप्रभु-हरिदास, विमलयतीन्द्र, दीनदास-रघुनाथ, धृतिसीतम् आदि।

बगाली कृतिया- पडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गौडीय वैष्णवेर सस्कृत साहित्य दान, जननी यशोधरा, बुद्ध- यशोधरा तथा प्रजन्धावली (आठ खण्ड) वगीयदूत काव्येतिहास आदि।

शोध कृतिया- 1) कान्ट्रिब्यूशन ऑफ विमेन टू सस्कृत लिटरेचर (सात भागों में) 2) कान्ट्रिब्यूशन ऑफ मुस्लिम्स टू सस्कृत लिटरेचर, (तीन भागों में) 3) मुस्लिम पेट्रोनेज टू सस्कृत लर्निंग (तीन भागों में) 4) कान्ट्रिब्यूशन आफ बेंगाल टू सस्कृत लिटरेचर (तीन भागों में)

अनूदित कृतियां- शेक्सपियर के ओथल्लो और मर्चेण्ट आफ् वेनिस के संस्कृत अनुवाद। सम्पादित ग्रंथ- भ्रमरदूत, चन्द्रदूत, हंसदूत, पान्थदूत, वाङ्मण्डनगुणदूत, घटकर्पर, पदांकदूत आदि काव्य। अब्दुल्लाचित, सुरजन-चरित, वीरभद्र (चम्पू), जामविजय (काव्य) आदि ऐतिहासिक रचनाएं।

इनके अतिरिक्त पालि में एक नाटक जो रंगून में सन् 1960 में अभिनीत हुआ।

याज्ञवल्क्य - इनके द्वारा लिखित याज्ञवल्क्यस्मृति, योगयाज्ञवल्क्य और बृहद्योगी-याज्ञवल्क्य नामक तीन ग्रथ माने जाते हैं। धर्मशास्त्र इतिहास के लेखक भारतरत्न काणे, स्मृतिकार और योगशास्त्रकार याज्ञवल्क्य को भिन्न मानते हैं। उसका कारण यह है कि याज्ञवल्क्य कृत स्मृति और योग विषयक ग्रंथों में दस यमों एव दस नियमों का उल्लेख है किन्तु दोनो ग्रंथ नामोल्लेख में मेल नहीं खाते। बृहदारण्यक उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी और कात्यायनी नामक दो पत्नियों का निर्देश है। मैत्रेयी अध्यात्मप्रवण और कात्यायनी ससाराभिमुख थी। जनक की राजसभा मे उपस्थित अश्वल, आर्तभाग, भुज्यु, लाह्यायनि, उषस्त, चाक्रायण, कहोड के समान गार्गी वाचक्नवी का याज्ञवल्क्य से संवाद हुआ था। वहां गार्गी अन्य लोगो के समान याज्ञवल्क्य के ब्रह्मनिष्ठ होने के अधिकार पर विरोध प्रकट करती है। तब याज्ञवल्क्य उसकी भर्त्सना करते हैं और कहते हैं कि यदि वह उसी प्रकार तर्क का आश्रय लेती चलेगी तो उसका सिर भ्रमित हो जायेगा। योगीयाज्ञवल्क्य के सम्पादक पी सी दीवाणजी ने गार्गी को याज्ञवल्क्य की पत्नी कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे "याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतु । मैत्रेयी च कात्यायनी च" कहा गया है। इस वाक्य में केवल दो पत्नियों का स्पष्ट निर्देश होने से वाचक्नवी गार्गी का ही अपरनाम मैत्रेयी माना जाता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के भाष्य में शकराचार्य ने योगियाज्ञवल्क्य ग्रथ से साढे चार श्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क एव स्मृतिचन्द्रिका ने लगभग 100 श्लोक बृहद् योगियाज्ञवल्क्य से उद्धृत किये है।

कृत्यकल्पतरु ने लगभग 70 श्लोक बृहद्योगि-याज्ञवल्क्य से उद्धृत किये हैं। बगाल के राजा बल्लालसेन (ई 1152-79) ने अपने दानसागर में बृहद्योगि-याज्ञवल्क्य से बहुत से उद्धरण लिए हैं।

याज्ञिक, मूलशंकर माणिकलाल - जन्म नडियाद (गुजरात) में दि 31-1-1886 को। मृत्यु दि 13-11-1965 को। पिता-माणिकलाल। माता-अतिलक्ष्मी। आरम्भिक शिक्षा नडियाद में। उच्च शिक्षा बडोदा में। बी.ए. के बाद बैंक में कार्यरत। सन् 1924 में शिनोर में शिक्षक। बाद में बडोदा के सस्कृत कॉलेज के प्राचार्य। सेवानिवृत होने पर नडियाद में निवास। वाराणसी विद्वत् परिषद् द्वारा "साहित्यमणि" तथा शंकराचार्य द्वारा "श्रीविद्या" की उपाधि से विभूषित।

कृतिया- विजयलहरी (गीतिकाव्य)। प्रतापविजय, सयोगिता-स्वयंवर तथा छत्रपति-साम्राज्यम्, ये तीन नाटक। सप्तर्षिदृष्टवेद-सर्वस्व (भाष्य)। इनके अतिरिक्त मेवाडप्रतिष्ठा, हर्षदिग्विजय आदि पाच गुजराती पुस्तकें।

यादव - भदाभेदवादी एक वेदांताचार्य। ये, यदि रामानुज के गुरु यादवप्रकाश से अभिन्न हों, तो इनका समय ई 11 वीं शताब्दी का अंतिम भाग होना। रामानुज ने "वेदार्थसंग्रह" में वेदातदेशिक ने "परमत-भग" में और व्यासतीर्थ ने तात्पर्य-चद्रिका" में इनके मत का उल्लेख किया है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र और गीता पर भेदाभेदसम्मत भाष्य का निर्माण किया है। ये निर्गुण ब्रह्म तथा मायावाद नहीं मानते। इनके मत के अनुसार ज्ञान-कर्मसमुच्चय मोक्ष का साधन है। ब्रह्म भिन्नाभिन्न है। इनके पूर्ववर्ती वेदाताचार्य भास्कर भेद को औपाधिक मानते हैं पर यादव उपाधिवाद नहीं मानते। ये परिणामवादी हैं तथा जीवन्मुक्ति को अस्वीकार करते हैं।

यादवेन्द्र राय - समय- ई 20 वीं शती। बंगाली। कृतिया- आरण्यकविलास तथा मङ्गलोत्सव खण्डकाव्य। नाटक- स्वर्गीयप्रहसन

यादवेश्वर तर्करत्न - समय ई 19-20 शती। बगाली। कृतिया- राज्याभिषेक काव्य (1902) और अश्रुविसर्जन खण्डकाव्य (1900)।

यामुनाचार्य (आलवंदार) - समय- ई 10 वीं शती का अंतिम-चरण। विशिष्टाद्वैत मुनि (नाथमुनि) के पौत्र। ये नाथमुनि के समान ही अध्यात्म-निष्णात विद्वान् थे किन्तु इनकी प्रवृत्ति राजसी वैभव मे ही दिन बिताने की होने से नाथमुनि के पश्चात् आचार्य-पद पर पुडरीकाक्ष तथा राममिश्र आरूढ हुए थे। राममिश्र को यामुनाचार्य की राजसी प्रवृत्ति से बडा दुःख हुआ। अत उन्होंने इन्हें समझा-बुझाकर इनमें अध्यात्मविद्या की अभिरुचि उत्पन्न की और भक्तिशास्त्र का उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया। राममिश्र के वैकुठवासी होने के पश्चात् ये सन् 973 में श्रीरगम् के आचार्यपीठ पर आसीन हुए और वैष्णव मंडली का नेतृत्व करने लगे। ये अपने तामिल नाम "आलवदार" के नाम से विशेष प्रख्यात हैं। इन्होंने प्राचीन आलवार-काव्यों के प्रचार, प्रसार तथा अध्यापन के साथ ही नवीन ग्रथो का प्रणयन भी किया। इनके प्रमुख ग्रंथों के नाम है- गीतार्थसग्रह, श्रीचतुःश्लोकी, सिद्धितंत्र, महापुरुषनिर्णय, आगमप्रामाण्य तथा आलवदारस्तोत्र। यामुनाचार्य के ग्रथो मे यही सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ है और "स्तोत्ररत्न" के नाम से वैष्णव समाज में विख्यात है। आलवदारस्तोत्र के 70 श्लोकों में आत्मसमर्पण के सिद्धान्त का सुंदर वर्णन है। यामुनाचार्य ने काव्य एवं दर्शन दोनो ही प्रकार के ग्रथों का प्रणयन किया।

यास्क - वैदिक वाङ्मय के रत्नों में निरुक्त एक अत्यंत तेजस्वी रत्न है। यद्यपि निरुक्तकार अनेक (चौदह) हुए, फिर भी आचार्य यास्क का निरुक्त कालानुक्रम से अन्तिम किन्तु गुणों से अग्रिम माना जाता है।

यास्काचार्य के निरुक्त के बारह अध्याय हैं। अभी परिशिष्ट रूप मे और दो गिने जाते हैं। ये परिशिष्टात्मक अध्याय भी पूर्वकाल में बारहवें अध्याय का ही भाग माने जाते होंग ऐसा विद्वानों का तर्क है।

जिस निघण्टु पर भाष्यरूप में निरुक्त की रचना हुई वह निघण्टु यास्कप्रणीत है या नहीं इस विषय मे विद्वानो मे एकमत नहीं। फिर भी दोनों कृतियों को एककर्तृक मानने पर ही विद्वानों का बहुमत दीखता है।

यास्काचार्य ने निरुक्त के अतिरिक्त याजुषसर्वानुक्रमणी और कल्प ये दो ग्रथ लिखे थे किन्तु वे ग्रथ उपलब्ध नही है। निरूक्त के आधारभूत निघण्टु के तीन काड और पाच अध्याय और हैं। प्रथम तीन अध्याय नैघण्टुककाण्ड, चौथा नैगमकाण्ड और पाचवा दैवतकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इसका शास्त्रीय विवरण ही निरुक्त नाम से प्रसिद्ध है। सभी परवर्ती वेदभाष्यकारा के लिए यह ग्रथ प्रमाणभूत रहा है।

यास्क का काल, महाभारत-काल ही समझना चाहिये। महाभारत मे यास्क का निर्देश है। यास्क के अतिरिक्त अन्य निरुक्तकार गालव का भी निर्देश होने के कारण वह सभावना यास्क का समय निर्धारित करने मे बाधक नही होगी।

यास्क प्रणीत निरुक्त के दो पाठ है, बृहत्पाठ और लघुपाठ। दुर्गाचार्य की वृत्ति लघुपाठ पर है। लघुपाठ गुर्जर पाठ के नाम से और बृहत्पाठ महाराष्ट्र पाठ के नाम से प्रसिद्ध है।

वेदार्थनिर्णय के विषय मे निरुक्तकार ने अधिदैवत, अध्यात्म, आख्यान, समय आदि ९ पक्ष बना कर उन सब पक्षो का यथोचित समन्वय करके दिखाया है। यही निरुक्त की विशेषता है।

युधिष्ठिर मीमांसक - आधुनिक युग के प्रसिद्ध वैयाकरण। राजस्थान के अतर्गत जिला अजमेर के विरकच्यावास नामक ग्राम में दि 22 सितबर 1909 ई को जन्म। इन्होने व्याकरण, निरुक्त, न्याय एव मीमासा का विधिवत् अध्ययन व अध्यापन किया है और सस्कृत के अतिरिक्त हिंदी मे भी अनेक ग्रथ लिखे है। सस्कृत मे अभी तक 14 शोधपूर्ण निबध, विविध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने सस्कृत के 10 ग्रथो का सपादन किया है। 'वेद-वाणी' नामक मासिक पत्रिका के सपादक। भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान (अजमेर) के सचालक। 'सस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' तीन खडों मे लिखा। इस ग्रथ की अपूर्वता के कारण अनेक सस्करण प्रकाशित हुए। इस के अतिरिक्त काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यान का सस्कृत अनुवाद, दैवम् पुरुषकारोपेतम् (धातुपाठविषयक) और निरुक्तसमुच्चय (वररुचि-कृत) इन ग्रथो का सपादन युधिष्ठिर मीमासकजी ने किया है।

योगेन्द्र मोहन - जन्म- 1886 ई। मृत्यु- 1796 ई.। पिता- काशीश्वर चक्रवर्ती। माता- रोहिणी देवी। अग्निहोत्री श्रीराममिश्र, माधव मिश्र आदि के वशज। बगला-देश के ऊनसिया ग्राम (परगना कोटालीपाडा, जिला 'फरीदपुर') में जन्म। शिक्षा- हरिदास सिद्धान्तवागीश से। सन् 1915 से 1961 तक मतिलालसील फ्री कालेज में सस्कृत से प्रधान अध्यापक।

कृतिया- कृतान्त-पराजय (महाकाव्य), संयुक्ता-पृथ्वीराज (नाटक)। बगाली कृतिया-कर्मफल (उपन्यास) और भारते कलिनाटक। इनके अतिरिक्त कतिपय सस्कृत निबन्ध।

रंगनाथ - काशी के निवासी। सन् 1575 में जन्म। पिता- बरूलाल । माता-मौजी। ज्योतिषशास्त्रविषयक 'सूर्यसिद्धात' पर इनकी 'गूढार्थप्रकाशिका' नामक टीका प्रसिद्ध है।

रंगनाथ - समय- ई 16-17 वीं शती। रचना- 'लक्ष्मीकुमारोदयम्' (मुद्रित)। इसमे कुम्भकोणम् के सत्पुरुष लक्ष्मीकुमार ताताचार्य का चरित्र-वर्णन है। कवि चरित्रनायक का वशज था। चरित्रनायक विजयनगर के श्रीरग तथा वेंकपति राजाओ के मत्री तथा गुरु थे। इन्हे कोटि-कन्यादान की पदवी प्राप्त थी क्यो कि इन्होंने अनेक कन्याओ का दान किया था। चरित्रनायक के गुरु काचीवरम् पीठ के आचार्य पचमत भजक तातादेशिक थे।

रंगनाथ - समय- ई 18 वी शती। तामिल प्रदेश मे ताम्रपर्णी तट के अग्रहार के निवासी। 'दमयन्ती-कल्याण' नामक नाटक के प्रणेता।

रंगनाथ कविकुंजर - पितामह- वीरराघवसूरि कविराज। कृतिया- भोजराज (अक), *रम्भारावणीय* (*ईहामृग*) तथा *अभिनवराघव* (नाटक)।

रंगनाथ ताताचार्य - जन्म- 1894 ई। सरस्वती महल ग्रन्थालय, (तजौर) के प्रमुख अधिकारी। रचनाए- शुकसन्देश, हनुमत्प्रसादसन्देश, काव्य-रत्नावली, न्यायसभा और कुत्सितकुसीदम् (मजूषा मासिक पत्रिका में क्रमश प्रकाशित)। प्रारभिक 4 कृतिया भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी रचनाओ मे सस्कृत-वाक्यप्रचारो का अधिक मात्रा में प्रयोग है।

रगनाथ मुनि (नाथमुनि) - समय- 824 ई 924 ई। वैष्णव-जगत् में ये नाथमुनि के नाम से विख्यात हैं। ये शठकोपाचार्य की शिष्य-परपरा के थे। शठकोप, मधुरकवि, पराकुशमुनि, नाथमुनि यह परपरा है। इन्होंने आलवारों द्वारा तामिल भाषा में विरचित भक्तिपूरित काव्यों (तामिल वेद) का पुनरुद्धार किया, श्रीरगम् के प्रसिद्ध मंदिर में भगवान् के सामने उनके गायन की व्यवस्था की तथा वैदिक ग्रथों के समान इन ग्रथों का भी वैष्णव मंडली में अध्यापन आरंभ किया। इस प्रकार नाथमुनि ने जहा प्राचीन तामिल भक्ति ग्रथों का उद्धार तथा प्रचार किया, वहीं नवीन सस्कृत ग्रंथों की रचना एव वैष्णव मत का प्रचार भी किया। इनके 'योग-रहस्य' नामक ग्रथ का निर्देश वेदातदेशिक ने अपने ग्रथों मे किया

है। इनका 'न्याय-तत्त्व' नामक ग्रंथ विशिष्टाद्वैत संप्रदाय का प्रथम मान्य ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ में इस मत की दार्शनिक दृष्टि का विवेचन किया है।

नाथमुनि श्रीरंगम् की आचार्य-गद्दी पर आरूढ थे। इनके पौत्र यामुनाचार्य, इन्हीं के समान अध्यात्म-निष्णात विद्वान् थे किन्तु उनकी प्रवृत्ति राजसी वैभव में ही दिन बिताने की होने से नाथमुनि के पश्चात् आचार्य -पद पर पुंडरीकाक्ष तथा राममिश्र आरूढ हुए थे।

रंगनाथ यज्वा - समय- वि 18 वीं शती का मध्य। मंजरीमकरन्द (पदमंजरी की टीका) के लेखक। अनेक हस्तलेख उपलब्ध। अड्यार के हस्तलेख में इनका नाम परिमल लिखा है। नल्ला दीक्षित के पौत्र, नारायण दीक्षित के पुत्र। इनका वंश श्रौत यज्ञों के अनुष्ठान के लिये प्रसिद्ध। चौल देश के करण्डमाणिक्य ग्राम के निवासी। इन्होंने सिद्धान्त कौमुदी पर पूर्णिमा नामक व्याख्या थी लिखी है।

रंगनाथाचार्य - तिरुपति निवासी। कृष्णम्माचार्य के पिता। रचनाए- सुभाषितशतकम्, शृगारनायिकातिलकम्, पादुकासहस्रावतार- कथासग्रह, गोदाचूर्णिका, रहस्यत्रयसाररत्नावली, सन्मतिकल्पलता, अलकारसग्रह ।

रंगाचार्य - समय- ई 20 वी शती। प्रसिद्ध देशभक्त। 'शिवाजीविजय'तथा 'हर्ष-बाणभट्टीय' नामक नाटकों के प्रणेता।

रघुदेव न्यायालंकार - ई 17 वी शती। रचनाए- तत्त्व-चितामणि-गूढार्थदीपिका, नवीननिर्माणम् दीधितिटीका, न्यायकुसुमकारिका- व्याख्या, द्रव्यसारसग्रह और पदार्थ-खण्डन व्याख्या।

रघुनंदन - पिता- वद्यघटीय ब्राह्मण हरिहर भट्टाचार्य। समय- 1490 से 1570 ई के बीच। इन्हें बगाल का अतिम धर्मशास्त्रकार माना जाता है। इन्होंने 'स्मृतितत्त्व' नामक बृहत् ग्रथ की रचना की है। यह ग्रथ धर्मशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है। इसमें 300 ग्रंथो व लेखकों के उल्लेख है। 'स्मृतितत्त्व' 28 तत्त्वो वाला है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'तीर्थतत्त्व', 'द्वादशयात्रा-तत्त्व', 'त्रिपुष्करशातितत्त्व,' 'गया-श्राद्ध-पद्धति', 'रासयात्रा-पद्धति' आदि ग्रथों की भी रचना की है। कहा जाता है कि रघुनदन व चैतन्य महाप्रभु दोनो के गुरु वासुदेव सार्वभौम थे। इन्होंने दायभाग पर भाष्य की भी रचना की है।

रघुनन्द गोस्वामी - समय- ई 18 वीं शती। बरद्वान-निवासी। स्तव-कदम्ब, कृष्णकेलि- सुधाकर, उद्धवचरित, गौरागचम्पू आदि काव्य-ग्रथों के रचयिता।

रघुनाथ नायक- विद्वान् व कलाभिज्ञ नायकवशीय तंजौर-नरेश। इन्होंने 'रामायणसार-सग्रह' के अतिरिक्त पारिजात-हरण, अच्युतेन्द्राभ्युदय, गजेन्द्रमोक्ष, यक्षगान तथा रुक्मिणीकृष्णविवाह का भी प्रणयन किया है। 'सगीत-सुधा' तथा 'भारत-सुधा' नामक रचनाएं भी इनके नाम पर चलती हैं किंतु उनका लेखक गोविंद दीक्षित माने जाते हैं।

रामायण विषयक इनके तेलगु ग्रंथ का सस्कृत अनुवाद मधुरवाणी ने किया, जो राजसभा की सदस्या थीं। रघुनाथ के जीवन पर अनेक कवियों ने काव्य-रचना की है। इनकी पत्नी रामभद्रांबा भी श्रेष्ठ कवयित्री थी जिसने रघुनाथाऽभ्युदय नामक महाकाव्य में अपने पति का चरित्र वर्णन किया है।

रघुनाथ - रचना- 'वादिराज- वृत्त-रत्न-संग्रह'। इस काव्य में विजयनगर साम्राज्य के अंतिम दिनों मे हुए कर्नाटकीय महाकवि वादिराज का चरित्र वर्णन है। वादिराज ने अनेक काव्य लिखे हैं। वे सब मुद्रित हैं।

रघुनाथ - समय- अनुमानत 1626-1678 ई। मेवाडी कवि। आप महाराजा जगत्सिंह के समकालीन थे। इनकी एकमात्र कृति है- जगत्सिंहकाव्यम्। इसमें महाराणा का जीवनचरित वर्णित है।

रघुनाथ- ई 17 वीं शती। सामन्तसार (बगाल) के निवासी। पिता- गौरीकान्त। 'कृष्णवल्लभ' से समाश्रय प्राप्त। कृति-त्रिकाण्ड-चिन्तामणि (अमरकोश की वृत्ति)।

रघुनाथदास - ई 15 वी शती। चैतन्य-परम्परा के छ प्रमुख गोस्वामियों में से एक। सप्तग्राम के जमींदार-कुल में जन्म। कृतिया- दानकेलि-चिन्तामणि (लघु काव्य) मुक्ताचरित (चम्पू) तथा स्तवावलि।

रघुनाथदास - रचना- हसदूतम् (ई 17 वीं शती)।

रघुनाथ नायक - तजौर के एक विद्वान। इनका 'वाल्मीकिचरित' (वाल्मीकि के चरित्र पर आधारित एकमेव काव्य) सस्कृत साहित्य मे विद्यमान है।

रघुनाथशास्त्री - समय- ई 19 वी शती। रचना- गादाधरीपचवाद-टीका।

रघुनाथ शिरोमणि - ई 14 वीं शती। नवद्वीप के सर्वश्रेष्ठ नव्य नैयायिक। वासुदेव सार्वभौम व पक्षधरमिश्र के पास इन्होंने अध्ययन किया था। इन्होंने'तत्त्वचितामणि' पर 'दीधिति' नामक टीका लिखी। इस टीका मे इन्होंने अनेक सिद्धातो का युक्तिपूर्व खडन करते हुए अपने नवीन सिद्धात प्रस्थापित किये हैं। मूल ग्रथ के साथ ही, आगे चलकर यह टीका भी पाडित्य की कसौटी सिद्ध हुई। यह टीका, मौलिक विचारो एव तार्किक प्रतिभा का अपूर्व सगम है। रघुनाथ की इस अद्वितीय तार्किक बुद्धि के कारण उन्हें, 'शिरोमणि' की पदवी प्राप्त हुई थी।

अन्य रचनाएं - बौद्ध-धिक्कार-शिरोमणि, पदार्थ-तत्त्व-निरूपण, किरणावली-प्रकाश-दीधिति, न्यायलीलावती-प्रकाश-दीधिति, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति, खण्डन-खण्डखाद्य दीधिति, आख्यातवाद और नञ्वाद।

रघुनाथसूरि - पाकशास्त्र विषयक सकलित जानकारी प्रस्तुत

करने वाले **'भोजन-कुतूहल'** नामक ग्रथ के लेखक। यह ग्रथ **मुद्रित स्वरूप में नहीं। इसकी हस्तलिखित** प्रति उज्जैन के **प्राच्य ग्रंथ-संग्रह में सुरक्षित है।** रचना-काल ई 18 वी शती **का पूर्वार्ध। ग्रंथ की रचना करते समय धर्मशास्त्र** तथा **वैद्यकशास्त्र के** 101 **ग्रथों के उद्धरणों** का विपुल प्रयोग करने **के साथ ही रघुनाथसूरि ने कहीं-कहीं पर** अपना स्वय का भी **मत व्यक्त किया है।**

रघुनाथसूरि - समय- ई 18 वीं शती। मैसूर- निवासी। पिता-शैलनाथसूरि। रामानुज महादेशिक की शिष्यपरम्परा मे। 'प्राभावत' नाटक के प्रणेता।

डा. रघुवीर - अनेकविध आधुनिक शास्त्रों की संस्कृतनिष्ठ परिभाषा के कोशों के निर्माता। इन कोशो मे अर्थशास्त्र-शब्दकोश, आंग्लभारतीय-पक्षिनामवली, आग्लभारतीय प्रशासन शब्दकोश, खनिज- अभिज्ञान, तर्कशास्त्रपारिभाषिक-शब्दावली, वाणिज्यशब्दकोश, सांख्यिकी-शब्दकोश इत्यादि उल्लेखनीय है। आपका कोशकार्य नागपुर तथा दिल्ली मे हुआ। आप भारतीय जनसघ के अध्यक्ष थे। एक शोचनीय अपघात के कारण आपका देहान्त हुआ।

रजनीकान्त साहित्याचार्य- समय- ई 19 वी शती। चितगाव (बगाल) के निवासी। कृतिया- चन्द्रलविलाप-चित्रकाव्य। विद्याशतक। नाटक-मड्गलोत्सव और संस्कृतबोध- व्याकरण।

रणछोड भट्ट - समय- अनुमानत 1652 1680 ई। इन्होंने मेवाड के महाराणा अमरसिंह को अपनी रचना का विषय बनाया है। ग्रंथ (1) अमरकाव्यवंशावली और (2) राजप्रशस्तिकाव्य- इस महाकाव्य को 24 सर्गों में विभक्त किया गया है।

रणेन्द्रनाथ गुप्त कविराज - समय- ई 20 वी शती। बगवासी। 'हीरश्चन्द्रचरित' नामक नाटक के प्रणेता।

रत्नकीर्ति - ई 16 वी शती। गुरु-ललितकीर्ति। ग्रथ- बाहुभद्रचरित (4 सर्ग)। पुराणशैली मे लिखित।

रत्नभूषण - ई 19 वी शती। पूर्व बगाल के निवासी। कृतियां- काव्यकौमुदी (विषय- काव्यशास्त्र)।

रत्ननन्दिगणी - जैनपथी तपागच्छ के सोमसुन्दर सूरि के प्रशिष्य और नन्दिरत्नगणी के शिष्य। ग्रथ- 1 उपदशतरगणी 2 भोजप्रबध (वि स 1510)।

रत्नाकर - 'हरविजय' नामक महाकाव्य के प्रणेता। पिता अमृतभानु। काश्मीर-नरेश चिपट जयापीड (800 ई) के सभा-पंडित। कल्हण की 'राजतरगिणी' में इन्हें अवतिवर्मा के राज्यकाल में प्रसिद्धि प्राप्त होने का उल्लेख है। ये ई 9 वीं शती के प्रथमार्ध तक विद्यमान थे। 'हरविजय' का प्रकाशन काव्यमाला संस्कृत सीरीज मुबई से हो चुका है। रत्नाकर ने माघ की ख्याति को दबाने के लिये ही 'हरविजय' महाकाव्य का प्रणयन किया था।

रत्नाकर पण्डित - राजस्थान- निवासी। रचना- जयसिह-कल्पद्रुम', विषय- धर्मशास्त्र। ई 18 वीं शती।

रत्नाकर शान्तिदेव - ई 9 वीं शती। 'बुभुक्षु' के नाम से विख्यात। विक्रमशिला मठ के द्वारपण्डित। 'छन्दोरत्नाकर' के कर्ता।

रमाकान्त मिश्र - ई 20 वीं शती। व्याकरणाचार्य,साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य तथा बी ए। नरकटियागज (चपारन) के जानकी सस्कृत विद्यालय मे प्रधानाध्यापक। 'जवाहरलाल नेहरू विजय' नामक नाटक के प्रणता।

रमा चौधुरी - समय- ई 20 वी शती। डा यतीन्द्रविमल चौधुरी की पत्नी। पिता- बैरिस्टर सुधाशुमोहन बोस (वगीय पब्लिक सर्विस कमिशन के अध्यक्ष)। पितामह- बै आनन्दमोहन बोस (इडियन नेशनल कॉग्रेस के अध्यक्ष)। मामा प्रा ए सी बेनर्जी (प्रयाग वि वि के अध्यक्ष)। पिता के मामा महान् वैज्ञानिक सर जगदीशचद्र बसु। इस प्रकार आपकी कुलपरपरा उल्लेखनीय है। आक्सफोर्ड वि वि से डी फिल की उपाधि। लेडी ब्रेबोर्न कालेज की 30 वर्षो तक प्राचार्या। सात वर्षो तक रवीन्द्र भारती वि वि की कुलपति। कई सांस्कृतिक सस्थाओ की सदस्या एव अध्यक्षा। सन् 1970 में जर्मन शासन द्वारा सम्मानित। सन् 1971 मे रूस के निमत्रण पर (दो अन्य कुलपतियो के साथ) रूस-गमन। पति के दिवगत होने के पश्चात् चार वर्षो मे 20 नाटको का सृजन। भारत तथा विदेशो मे अनेक बार अपने तथा अपने पति डा यतीन्द्रविमल चौधुरी के नाटको का मचन तथा निर्देशन। साहित्य अकादमी की जनरल कौन्सिल तथा सस्कृत मडल की सदस्या।

कृतिया- शकर-शकरम्, देशदीपम्, पल्लीकमल, कविकुल-कोकिल, मेघमेदुर-मेदिनीय, युगजीन-निवेदित-निवेदितम्, अभेदानन्द, रसमय-रासमणि,रामचरितमानम, चैतन्य-चैतन्यम्, मसारामृत, नगरनूपुर, भारत-पथिक, कविकुल-कमल, भारताचार्य, अग्निवीणा, गणदेवता, भारततातम्, यतीन्द्रम् तथा प्रसन्नप्रसाद।

बगाली कृतिया - दशवेदान्त सम्प्रदाय, साहित्यकण, सस्कृतागरोग, निम्बार्कदर्शन, वेदान्तदर्शन, सूफीदर्शन ओ वेदान्त।

अग्रेजी कृतिया - (1) डाक्ट्रिन्स ऑफ निंबार्क अेन्ड हिज् फालोअर्स (तीन खड) (2) सुफीझम् अैण्ड वेदान्त। (3) इडो इस्लामिक सिथेटिक फिलॉसॉफी। (4) डाक्ट्रिन्स ऑफ श्रीकण्ठ (3 खड)। (5) सस्कृत अैण्ड प्राकृत पोएटेसेस्। (6) फिलॉसॉफिकल एसेज। (7) टेन स्कूल्स् ऑफ वेदान्त (3 खड)।

रमानाथ मिश्र - जन्म- सन् 1904 मे, बालेश्वर के निकट मणिखम्भ ग्राम (उत्कल) मे। पिता- यदुनाथ मिश्र। बालेश्वर के श्रीरामचन्द्र सस्कृत विद्यालय में सस्कृत की शिक्षा। आजीवन वहीं अध्यापन। साहित्यशास्त्री, आयुर्वेदशास्त्री तथा कर्मकाण्डाचार्य की उपाधियों से अलंकृत। अंग्रेजी में भी निपुण। कृतिया-

चाणक्यविजय, पुरातनबालेश्वर, समाधान, प्रायश्चित, आत्मविक्रय, कर्मफल तथा श्रीरामविजय नामक नाटक।

रमानाथ शिरोमणि - मेदिनीपुर (बंगाल) के निवासी। पारिजात-हरण नाटक के लेखक। प्रकाशन 1904 में।

रमापति उपाध्याय - पल्ली- निवासी। भार्गव वंशी मैथिल ब्राह्मण। दरभंगा के राजा नरेन्द्रसिंह (1744-1761 ई) का समाश्रय प्राप्त। पिता- श्रीकृष्णपति भी कवि थे। रचना- 'रुक्मिणी- परिणय' नामक छः अंकों का नाटक।

रमेशचंद्र शुक्ल - एम ए पीएच.डी , साख्ययोगाचार्य, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न इत्यादि उपाधियों से विभूषित। डा रमेशचद्र शुक्लजी, अलीगढ के वार्ष्णेय महाविद्यालय में संस्कत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए। आधुनिक सस्कृत लेखको में आपकी साहित्य सेवा सराहनीय है। चारुचरितचर्चा नामक आपका गद्य निबध सग्रह प्राचीन, मध्ययुगीन एव अर्वाचीन महापुरुषो का सक्षेप मे परिचय देता है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा लिखित ग्रथ हैं- (1) प्रबधरत्नाकर, (2) नाट्यसस्कृतिसुधा, (3) गांधिगौरवम् (उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कृत) (4) लालबहादुर शास्त्री चरितम्, (5) भरतचरितामृत, (6) विभावनम्, (7) बगलादेश, (8) गीतमहावीरम्, (9) सस्कृतवैभवम्, (10) यशास्तिलकम्। आपके ग्रथ वाणी परिषद, आर-6, उत्तमनगर, वाणीविहार, नई दिल्ली- 59, इस स्थान पर प्राप्त हो सकते हैं।

रयत अहोबलमन्त्री - ई 16 वीं शती। पिता- नृसिंहामात्य। पितामह- चत्रय मन्त्री। रचना- कुवलय-विलास नाटक (पाच अकी)।

रविकीर्ति - प्रशस्ति-लेखक। चालुक्य पुलकेशी सत्याश्रय द्वारा सरक्षित। समय- ई 7 वीं शताब्दी। प्रशस्ति में पुलकेशी के प्रताप और तेज का सरस और अलकृत शैली में वर्णन। कालिदास और भारवि के समकक्ष। 37 श्लोकों में निर्मित इस प्रशस्ति से दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास पर विशद प्रकाश पडता है। इतिहास की दृष्टि से इस प्रशस्ति का बहुत महत्त्व है।

रविचन्द्र - अपरनाम मुनीन्द्र। कर्नाटकवासी। जैनपथी माधवचन्द्र की गुरुपरंपरा के अनुयायी। समय- ई. 13 वीं शती। रचना- आराधनासार-समुच्चय। इस पर आचार्य कुन्दकुन्द का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

रविषेण - दक्षिण भारतीय महाकवि। मुनि लक्ष्मणसेन के शिष्य। जिनसेन और उद्योतनसूरि ने उनका नामोल्लेख किया है। अत समय सातवीं शताब्दी निश्चित है। रचना- पद्मचरित जो 123 पर्वों में विभक्त है। विमलसूरि के 'पउमचरिय' पर यह ग्रंथ आधारित है। कवि ने कथावस्तु के साथ वानरवश, राक्षसवंश आदि की बुद्धिसंगत व्याख्याएं की हैं। यह ग्रथ जैनरामायण नाम से विदित है।

राखालदास न्यायरत्न (म.म.) - मृत्यु- सन् 1921 में। प्रसिद्ध नैयायिक। कृतियां- रसरत्न और कवितावली (काव्य)

डा. वे. राघवन् - (देखिए वेंकटराम राघवन्)।

राघवाचार्य - श्रीनिवासाचार्य के पुत्र। रचना- वैकुण्ठविजयचम्पू (भारत के अनेक मन्दिरों तथा तीर्थस्थानों का वर्णन) और इन्दिराभ्युदयम्।

राघवेन्द्र कवि - ई. 18 वीं शती का पूर्वार्ध। 'राधा-माधव' नामक सात अकी नाटक के प्रणेता।

राघवेन्द्र कविशेखर - ई. 17 वीं शती का उत्तरार्ध। भवभूतिवार्ता नामक चम्पू के रचयिता।

राघवेन्द्र यति - माध्व संप्रदाय के प्रसिद्ध ग्रंथकार। मन्त्रार्थमंजरी नामक ग्रंथ के प्रणेता जिसमें श्रीमध्वाचार्य कृत भाष्य का स्वतन्त्र व्याख्यान किया गया है। इस व्याख्यारूप ग्रंथ में शाबरभाष्य, चन्द्रिका, ऐतेरेयभाष्य, अनुव्याख्यान, सूत्रकारकण्ठीरव, गीता, कण्वश्रुति आदि अनेक ग्रंथों के उद्धरण मिलते हैं जिनसे राघवेन्द्र यति के पाण्डित्य की गरिमा का परिचय मिलता है।

राजचूडामणि (दीक्षित) - ई 17 वीं शती। पिता- श्रीनिवास दीक्षित जो षड्भाषा-चतुर, 'अद्वैताचार्य' 'अभिनव-भवभूति' आदि उपाधियों से प्रसिद्ध थे और जिन्हें आश्रयदाता चोल राजा ने 'रत्नखेट' की उपाधि दी। इस महाकवि के पुत्र राजचूडामणि भी कवि थे। उनके 'शंकराभ्युदय' (6 सर्ग) काव्य में जगद्गुरू शकराचार्य का चरित्र-वर्णन है। यह काव्य सस्कृत मासिक 'सहृदया' में क्रमश. प्रसिद्ध हुआ।

अन्य रचनाएं- यादव-राघव- पांडवीयम्, वृत्तरत्नावली, चित्रमंजरी, कामकथा और काव्यदर्पण, रघुनाथ-भूपविजय, 'रत्नखेटविजय (पिता का चरित्र वर्णन)। इन्होंने 'मंजुभाषिणी' नामक रामकथा परक काव्य, एक ही दिन में लिखा था।

राजचूडामणि मखी - ई 17 वीं शती। रचनाएं- तत्त्वचिन्तामणि-दर्पण।

राजादित्य - समय- 12 वीं शती। उपनाम- पद्यविद्याधर। पिता- श्रीपति। माता- वसन्ता। गुरु-शुभचंद्र देव। जन्मग्राम- कोंडिमंडल का पूविनबाग। विष्णुवर्धन राजा के सभा-पण्डित। ग्रंथ- व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न, जैनगणित सूत्र टीका उदाहरण, चित्रहसुगे और लीलावती।

राजमल्ल - काष्ठासंघी, हेमचन्द्रान्वयी। कुमारसेन के पट्टशिष्य। समय- ई 17 वीं शती। रचनाएं- 1. लाटी-संहिता, 2. जम्बू-स्वामिचरित (13 सर्ग, 1400 पद्य), 3. अध्यात्म-कमलमार्तण्ड (4 अध्याय, 101 पद्य), 4. पिंगलशास्त्र और 5. पंचाध्यायी। आगरा और नागरा कार्यक्षेत्र रहा।

राजवर्मा ए. आर. - समय- 1863-1918 ई। सन् 1890 में विद्यालयों के अधीक्षक। सन् 1899 में त्रावणकोर के संस्कृत शिक्षण के सुपरिण्टेण्डेण्ट। मद्रास वि.वि. के एम.ए.।

सन् 1912 में त्रिवेन्द्रम के महाविद्यालय में सस्कृत के प्राध्यापक। विद्वद्गोष्ठियों द्वारा सस्कृत के अभ्युदय की योजनाए कार्यान्वित की। गुरु-आचार्य चूत्रकर अच्युत वारियार तथा चाचा केरलवर्मा से शिक्षा प्राप्त।

कृतियां- गैर्वाणी-विजय (नाटक), आग्ल-साम्राज्य (महाकाव्य), राधा-माधव (गीतिकाव्य), उद्दालकचरित (ओथेल्लो का संस्कृत गद्यानुवाद), तुलाभार-प्रबंध, ऋग्वेदकारिका, लघुपाणिनीय (अष्टाध्यायी का सक्षेप), करणपरिष्करण (ज्योतिष विषयक), वीणाष्टक, देवीमगल, विमानाष्टक आदि लघुकाव्य। इनके अतिरिक्त आपने केरलपाणिनीय (मलयालम का व्याकरण) तथा भाषाभूषण (काव्यशास्त्रविषयक) नामक मलयालम-ग्रंथों का भी प्रणयन किया।

राजरुद्र - काशिका वृत्ति में उद्धृत कात्यायनीय वार्तिकों के भाष्यकार। पितृनाम-गन्नय। मद्रास के हस्तलेख-सग्रह में एक हस्तलिधित प्रति विद्यमान है, जिसमें आठ अध्याय और प्रत्येक में चार पाद हैं।

राजवल्लभ- बगाल निवासी। ग्रन्थ- द्रव्यगुण।

राजवर्म-कुलशेखर - ई 19 वीं शती। त्रावणकोर के नरेश। रचनाएं- अजामिलोपाख्यान, पद्मनाभशतक, कुचेलोपाख्यान, भक्तिमजरी और उत्सववर्णन। सभी मुद्रित।

राजशेखर - समय- ई 10 वीं शती का पूर्वार्ध। प्रसिद्ध नाटककार व काव्यशास्त्री। इन्होंने अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपनी जीवनी विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की है। ये महाराष्ट्र की साहित्यिक परपरा से विमडित एक ब्राह्मण-वश में उत्पन्न हुए थे। इनका कुल "यायावर" के नाम से विख्यात था। कीथ ने इन्हे भ्रमवश क्षत्रिय माना है। इनकी पत्नी अवश्यही चौहान-कुलोत्पन्न क्षत्राणी थीं जिनका नाम अवतिसुदरी था। वे सस्कृत व प्राकृत भाषा की विदुषी एव कवयित्री थी। राजशेखर ने अपने साहित्यशास्त्रीय ग्रथ "काव्य-मीमासा" मे "पाक" के प्रकरण मे इनके मत का आख्यान किया है।

राजशेखर, कान्यकुब्ज-नरेश महेंद्रपाल व महीपाल के राजगुरु थे। प्रतिहारवशी शिलालेखो के आधार पर महेद्रपाल का समय, ई 10 वी शती का प्रारभिक काल माना जाता है। अत राजशेखर का भी यही समय है। उस युग में राजशेखर के पाडित्य एव काव्यप्रतिभा की सर्वत्र ख्याति थी, और वे स्वय को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति के अवतार मानते थे (बालभारत)। इनके सबध में सुभाषितसग्रहों तथा अनेक ग्रथों में विचार व्यक्त किये गये हैं।

राजशेखर की अब तक 10 रचनाओ का पता चला है, जिनमें 4 रूपक, 5 प्रबध और 1 काव्यशास्त्रीय ग्रथ है। इन्होंने स्वयं अपने षट्प्रबधों का सकेत किया है। (बालरामायण 1/12)। इन प्रबधों में से 5 प्रबध प्रकाशित हो चुके हैं तथा 6 वा प्रबध "हरविलास" का उद्धरण हेमचंद्र रचित "काव्यानुशासन" मे मिलता है। "काव्यमीमांसा" इनका साहित्यशास्त्र विषयक ग्रथ है। इनके 4 नाटकों के नाम हैं- 1) बालरामायण, 2) बालमहाभारत (जिसका दूसरा नाम "प्रचडपाडव" भी है), 3) विद्धशालभंजिका और 4) कर्पूरमजरी। कर्पूरमजरी की सपूर्ण रचना प्राकृत में होने के कारण इस नाटिका को सट्टक कहा जाता है। राजशेखर ने स्वय को कविराज कहा है और महाकाव्य के प्रणेताओ के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट किया है। ये भूगोल के भी महाज्ञाता थे। इन्होंने भृगोलविषयक "भुवनकोष" नामक ग्रथ की भी रचना की थी। इसकी सूचना "काव्य-मीमासा" मे प्राप्त होती है।

इन्होने "कविराज" उसे कहा है जो अनेक भाषाओं में समान अधिकार के साथ रचना कर सके। इन्होंने स्वय अनेक भाषाओ में रचना की थी। इनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे नाटककार की अपेक्षा कवि के रूप मे अधिक सफल रहे हैं। "बालरामायण" की विशालता (10 अक), उसके अभिनेय होने में बाधक सिद्ध हुई है।

राजशेखर शार्दूलविक्रीडित छद के सिद्धहस्त कवि हैं जिसकी प्रशसा क्षेमेंद्र ने अपने "सुवृत्ततिलक" में की है। इन्होंने अपने नाटकों के "भणितिगुण" की स्वय प्रशसा की है। इन्होंने "बालरामायण" के नाट्य-गुण को महत्त्व न देकर उसे पाठ्य व गेय माना है। ये अपने नाटको की सार्थकता अभिनय मे न मान कर पढने मे स्वीकार करते हैं (बालरामायण 1/12)।

आचार्यों ने राजशेखर को "शब्द-कवि" कहा है। वर्णन की निपुणता तथा अलकारो का रमणीय प्रयोग उन्हे उच्च कोटि का कवि सिद्ध करते है। इन्होंने अपनी रचनाओ मे लोकोक्तियों व मुहावरो का भी चमत्कारपूर्ण विन्यास किया है।

राजशेखर - समय- ई 19 वी शती। सोमनाथपुरी (जिला गोदावरी, आन्ध्र प्रदेश) में वास्तव्य। रचनाए- साहित्यकल्पद्रुम (81 स्तबक), अलकारमकरन्द, शिवशतक और श्रीश (भागवत) चम्पू।

राजानक रुय्यक - ये काश्मीरी माने जाते है। राजानक इनकी उपाधि थी। "काव्य-प्रकाश-सकेत" नामक ग्रथ के प्रारभिक द्वितीय पद्य मे इन्होंने अपना नाम रुचक दिया है। "अलकार-सर्वस्व" के टीकाकार चक्रवर्ती, कुमारस्वामी, अप्पय दीक्षित प्रभृति ने भी इनका रुचक नाम दिया है। किन्तु मखक के "श्रीकठचरित" नामक महाकाव्य में रुय्यक अभिधा दी गई है। अत इनके दोनों ही नाम प्रामाणिक हैं और इन दोनो ही नामधारी एक ही व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम राजानक तिलक था, जो रुय्यक के गुरु भी थे। मखक से "श्रीकठ-चरित" का रचनाकाल 1135-45 ई के मध्य है। रुय्यक ने अपने "अलकार-सर्वस्व" में "श्रीकठचरित" के 5 श्लोक उदाहरण स्वरूप उद्धृत किये हैं। अत. इनका

समय ई 12 वीं शती का मध्य ही निश्चित होता है। "अलंकारसर्वस्व" इनकी प्रौढ कृति है। यह ग्रथ सूत्र, वृत्ति और उदाहरण इन तीन भागों में है। इस में छह शब्दालकारों व 75 अर्थालकारो का वर्गीकरण किया है। इसपर जयरथ की विमर्शिनी नामक टीका है।

रुय्यक ने साहित्य के विभिन्न अगों पर स्वतंत्र रूप से या व्याख्यात्मक ग्रथों के रूप में रचना की है। इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं- सहृदयलीला (प्रकाशित), साहित्य-मीमासा (प्रकाशित), अलकारानुसारिणी, अलंकारमंजरी, अलकार-वार्तिक, अलकार-सर्वस्व (प्रकाशित), श्रीकंठस्तव, काव्यप्रकाशसकेत (प्रकाशित) एवं बृहती। "सहृदयलीला" अत्यत छोटी पुस्तक है जिसमे केवल 4-5 पृष्ठ है। "अलकार-सर्वस्व" इनका सर्वोत्कृष्ट ग्रथ है जिसमें अलकारों का प्रौढ विवेचन है। "नाटक-मीमांसा" का उल्लेख "व्यक्ति-विवेक-व्याख्यान" नामक इनके ग्रंथ में है किंतु सप्रति यह ग्रथ अनुपलब्ध है। "अलंकारानुसारिणी", अलकारवार्तिक व अलकारमजरी की सूचना जयरथकृत विमर्शिनी-टीका में प्राप्त होती है। "व्यक्ति-विवेक-व्याख्यान", महिम भट्टकृत "व्यक्ति-विवेक" की व्याख्या है, जो अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध है।

रुय्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होंने "अलकारसर्वस्व" के प्रारभ मे काव्य की आत्मा के सबध मे भामह, उद्भट, रुद्रट, वामन, कुतक, महिमभट्ट व ध्वनिकार के मतो का सार प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनके विवेचन का अत्यधिक महत्त्व है। परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ व शोभाकर मित्र ने रुय्यक के अलकार संबधी मत से पर्याप्त सहायता ग्रहण की है।

राजेन्द्र मिश्र (डा.) - ई 20 वीं शती। प्रयाग वि.वि में अध्यापक। कृतियां- वामनावतरण (महाकाव्य) भारतदण्डक, आर्यान्योक्ति शतक व नाट्यपचगव्य। कविसम्मेलन, राधा-माधवीय, फण्टुसचरित-भाण, नवरस-प्रहसन तथा कचाभिशाप नामक रूपकों का संकलन। इनके अतिरिक्त हिन्दी तथा जौनपुरी में भी कतिपय रचनाए प्रसिद्ध हैं।

रातहव्य आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवे मडल के 85 व 66 सूक्तों के द्रष्टा। 66 वें सूक्त की तीसरी ऋचा में रातहव्य का उल्लेख आया है। उक्त दोनों सूक्तों में मित्रावरुण की स्तुति की गयी है। 66 वें सूक्त को अत में लोकमतानुवर्ती स्वराज्य की प्रार्थना की गयी है।

रात्री भारद्वाजी - एक सूक्त द्रष्ट्री। आपने ऋग्वेद के दसवें मंडल के 127 वें सूक्त की रचना की है। इसमें रात्रि-देवता का स्तवन किया गया है। सायणाचार्य के अनुसार इस सूक्त के द्रष्टा कुशिक सौभर हैं। सूक्त की एक ऋचा इस प्रकार है -

> रात्री व्यख्यदायती पुरूत्रा देव्यक्षभिः।
> विश्वा अधि श्रियो घित।।

अर्थात् अनेक देशों पर राज करने वाली, द्रुतगामिनी और शोभायमान रात्रि देवी, अपने नक्षत्र रूपी नेत्रों से विश्व का निरीक्षण करती है।

दुष्टग्रहों के निवारण हेतु शांतिपाठ के रूप में इस सूक्त का पठन किया जाता है। रात्रि देवी के दो प्रकार बताये गये हैं। एक जीवरात्रि और दूसरा ईश्वररात्रि (जिसे कालरात्रि भी कहा जाता है) दुर्गोपनिषद् में दुर्गा को कालरात्रि बताया गया है। मारीचकल्प में दुर्गासप्तशती का प्रारभ करते समय रात्रि-सूक्त के पठन का निर्देश दिया गया है।

राधाकान्त देव (राजा) - ई. 19 वीं शती का पूर्वार्ध। रचना- शब्दकल्पद्रुम नामक कोशग्रंथ।

राधाकृष्ण तिवारी - कविशेखर की उपाधि प्राप्त। सोलापुर-निवासी। वैष्णव सम्प्रदायी। 35 वर्ष की आयु तक भागवत के एक हजार पारायण किये थे। रचना-राधाप्रियशतकम् (विद्यार्थी-दशा में लिखित)। अन्य रचनाएं- दशावतारस्तवन, दशावतारचरित, गजेन्द्रचरित, सावित्रीचरित, बालभक्तचरित, श्रीरामचरित और श्रीकृष्णचरित।

राधादामोदर - बगाली-वैष्णव। कृति-छन्द.कौस्तुभ।

राधामोहनदास - ई 19 वीं शती। राधावल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी व सस्कृत भाष्यकार। पिता का नाम-राजा जयसिंह देव। गोस्वामी चन्द्रलाल, रूपलाल एवं मोतीलाल के शिष्य। रीवा-निवासी सत प्रियादास ने इन्हें भक्तिमार्ग पर लाया। आपने "राधावल्लभभाष्य" व "श्रीमद्भागवतार्थ-दिग्दर्शन" इन दो ग्रथों की रचना की है। "राधावल्लभभाष्य" में ब्रह्मसूत्र के चार अध्यायों पर भाष्य लिखा है। "भागवतार्थदिग्दर्शन" भागवत का गद्य रूप में सक्षिप्त अनुवाद है।

राधामंगल नारायण- ई 19 वीं शती। "मुकुन्द-मनोरथम्" "उदारराघवम्" तथा "महेश्वरोल्लास" इन तीन नाटकों के प्रणेता।

राधामोहन सेन - कृतियां- सगीत-तरग और सगीत-रत्न।

राधारमणदास गोस्वामी - समय- विक्रमी की 19 वीं शती का पूर्वार्ध। वृंदावन के निवासी। श्रीधर स्वामी की भावार्थ-दीपिका (भागवत की श्रीधरी व्याख्या) के भावार्थ को सरल बनानेवाली "दीपिका-दीपन" के लेखक। आप अपने दीपिका-दीपन को टीका न कहकर "टिप्पण" कहते हैं। इनका यह ग्रथ पूरे भागवत पर न होकर कतिपय स्कधों तक ही सीमित है। इन्होंने अपने कुटुंबी जनों का निर्देश एकादश स्कध के आरंभ में किया है। इनके समय (विक्रमी की 19 वीं शती का पूर्वार्ध) के बारे में वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी ने अपने ग्रंथ "श्रीमद्भागवत के टीकाकार" में विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है।। आप श्री चैतन्य के मतानुयायी वैष्णव संत थे।

राधावल्लभ त्रिपाठी (डा.) - जन्म दि. 15-2-1949 को, राजगढ (म प्र.) में। एम्.ए. तक सभी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी

में उत्तीर्ण। सन् 1972 में सागर वि.वि से "संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास" शीर्षक शोधप्रबंध पर पीएच.डी। सागर वि.वि. में संस्कृत विभागप्रमुख। कृतियां- महाकवि कण्टक- (आख्यायिका), प्रेम-पीयूष (नाटक), संस्कृत निबंधकालिका तथा भारती। "दिव्य-ज्योति" व "संस्कृत-प्रतिभा" में प्रकाशित कतिपय कहानियाँ एवं कविताएं। हिन्दी कृतियां-भारतीय धर्म तथा संस्कृति आदि कतिपय ग्रंथ।

रानडे, विश्वनाथभट्ट - ई. 17 वीं शती। मूलत: कोंकण-निवासी। बाद में काशी में प्रतिष्ठित। पिता-महादेवभट्ट रानडे। पितामह-विष्णुभट्ट रानडे। गुरु-कमलाकरभट्ट तथा ढुण्ढिराज। रचनाएं-शम्भुविलास (काव्य) और शृंगारवापिका (नाटिका)।

रामकवि - ई 16 वीं शती। बंगाल के निवासी। गोत्र-काश्यप। पिता-रामकृष्ण। "शृंगार-रसोदय" नामक काव्य के कर्ता।

रामकिशोर चक्रवर्ती - बगाल-निवासी। "अष्टमगला" (कातन्त्रवृत्ति की टीका) के कर्ता।

रामकिशोर मिश्र - जन्म सन् 1939 में एटा (उ प्र) जिले में। मेरठ वि.वि के अन्तर्गत प्राध्यापक। पिता- होतीलाल। माता- कलावती। "अंगुष्ठ-दान" तथा "ध्रुव" नामक लघु नाटकों के रचयिता।

रामकुबेर मालवीय - ई 20 वीं शती। मृत्यु सन् 1973 में। काशी वि वि के साहित्याचार्य। वहीं पर अध्यापक। अन्तिम दिनों में काशी के संस्कृत वि वि में साहित्य के प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष। "तीर्थयात्रा" नामक प्रहसन के प्रणेता।

रामकैलाश पाण्डेय - ई 20 वीं शती। एडिया के निकट प्रयाग जिले के निवासी। प्रयाग वि वि से एम् ए। कृतिया-प्रबुद्धभारत (नाटक), भारतशतक (काव्य) तथा अनेक सस्कृत निबन्ध।

रामकृष्ण - समय- ई 18 वीं शती। वत्सगोत्रीय। पिता-तिरुमल। गुरु- रमणेन्द्र सरस्वती। पितामह- वेंकटाद्रि भट्टारक। "उत्तरचरित" नाटक के प्रणेता। उपनाम "भवभूति"। अन्य रचना- रत्नाकर (सिद्धान्त कौमुदी की टीका)।

रामकृष्ण कादम्ब - समय- ई 19 वीं शती। गोदावरी तटवासी। रचनाएं- अदितिकुण्डलाहरण तथा कुशलवचरित (नाटक), नृसिंह-विजय (काव्य), चित्रशतक, रामावयव-मंजरी, नैषध-चरित-टीका, चम्पू-भारत-टीका, श्रीमद्-भागवततात्पर्य-मजरी और दत्तकोल्लास (धर्मशास्त्रविषयक)।

रामकृष्ण चक्रवर्ती - ई 16 वीं शती के एक श्रेष्ठ नैयायिक। काशी के बंगाली पंडितों में इन्हें जगद्गुरु, महामहोपाध्याय, भट्टाचार्य के रूप में सम्मान प्राप्त था। अनेक पंडितों के अनुसार दीधितिकार रघुनाथ शिरोमणि इनके साक्षात् गुरु थे।

आपने चितामणिदीधितिटीका, गुणदीधितिप्रकाश, लीलावतीदीधितिटीका, पदार्थखंडन-टीका व आत्मतत्त्वविवेक-दीधितिटीका आदि ग्रथों की रचना की है।

रामकृष्ण भट्ट - (1) ई 16 वीं शती के एक मीमांसक। आपकाशी-निवासी पाराशर गोत्री ब्राह्मण थे। आपने अनेक ग्रथों की रचना की जिनमें पार्थसारथी मिश्र की शास्त्रदीपिका पर "युक्तिस्नेहप्रपूरणी" नामक व्याख्या तथा "प्रतापमार्तण्ड" नामक ग्रथ महत्त्वपूर्ण हैं। इस ग्रथ के कारण इन्हें "पंडित-शिरोमणि" की उपाधि से विभूषित किया गया।

(2) ई 16 वीं शती। काशी के भट्ट-परिवार के एक धर्मशास्त्री। पिता-नारायण भट्ट आपने जीवात्पितृकर्मनिर्णय, ज्योतिष्टोमपद्धति, विभागतत्त्व, मासिक-श्राद्धनिर्णय, तत्रवार्तिकटीका आदि ग्रथ लिखे हैं। 52 वर्ष की आयु में मृत्यु। पत्नी उमा सती हो गई। निर्णय-सिन्धुकार कमलाकर भट्ट इनके पुत्र थे।

रामकृष्ण भट्ट- पुष्टिमार्ग (वल्लभ-संप्रदाय) की मान्यता के अनुसार भागवत की महापुराणता सिद्ध करने हेतु लिखे गए "श्रीमद्भागवत-विजयवाद" नामक लघुकाय-ग्रंथ के लेखक। आपका यह ग्रथ, इसी प्रकार के पूर्ववर्ती पाच ग्रथो की अपेक्षा एव युक्ति के उपन्यास मे श्रेष्ठ तथा प्रमेय-बहुल है। इससे आपके द्वारा किये गये पुराणों के गभीर मथन तथा अनुशीलन का परिचय मिलता है। ग्रथ की पुष्पिका से विदित होता है कि आप वल्लभाचार्य के वंशज थे।

रामकृष्ण भट्टाचार्य - ई 16 वी शती। बगाली ब्राह्मण। कृति- नामलिगाख्या कौमुदी।

रामकृष्ण भट्टाचार्य चक्रवर्ती - ई 17 वी शती। पिता-रघुनाथ शिरोमणि। रचनाए- गुणशिरोमणिप्रकाश और न्यायदीपिका।

रामगोपाल- नदिया नरेश कृष्णचन्द्र (ई 18 वीं शती) का समाश्रय प्राप्त। रचनाए- काकदूत और कीरदूत।

रामचन्द्र - सम्भवत ई 18 वीं शती। बगाल-नरेश चन्द्र के समाश्रित। पिता-श्रीहर्ष। "देवानन्द" (नाटक) के प्रणेता।

रामचंद्र (प्रबध शतकर्ता) - हेमचद्राचार्य के शिष्य। आश्रयदाता- गुजरात के तीन अधिपति-सिद्धराज, कुमारपाल एव अजयपाल। कई नाटको के रचयिता तथा प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रथ "नाट्य-दर्पण" के प्रणेता, जिसे इन्होंने गुणचद्र की सहायता से लिखा है। गुजरात के निवासी। समय- ई 12 वीं शती। इनके सभी ग्रंथ प्राप्त नहीं होते, पर छोटे छोटे प्रबधों को मिलाकर लगभग 30 ग्रथ उपलब्ध हो चुके है। इनके नाटकों की सख्या 11 है जिनके उद्धरण नाट्यदर्पण में मिलते हैं। "नल-विलास" व "सत्य-हरिश्चंद्र" प्रकाशित हो चुके हैं। यादवाभ्युदय, राघवाभ्युदय तथा रघुविलास नामक 3 ग्रंथ अप्रकाशित हैं। इनके उद्धरण "नाट्यदर्पण" में प्राप्त होते है। इन्होंने 3 प्रकरणों की भी रचना की है जिनमें से "कौमुदी-मित्रानद" का प्रकाशन हो चुका है। "रोहिणी-मृगांक-प्रकरण" व

"मल्लिका-मकरंद" ये दोनों "नाट्य-दर्पण" में ही उद्धृत हैं। इन्होंने "वनमाला" नामक एक नाटिका की भी रचना की थी जो अप्रकाशित है। "नाट्य-दर्पण" में इसके उद्धरण हैं। इन्होंने "निर्भय-भीम" नामक व्यायोग की रचना की है जो प्रकाशित हो चुका है। नाट्यदर्पण में 35 ऐसे नाटकों के उद्धरण हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इन सब ग्रंथों से ज्ञात होता है कि रामचद्र प्रतिभाशाली व्यक्ति थे जिन्होंने व्यापक रचना-कौशल्य एवं नाट्यचातुरी का परिचय दिया है। "रघुविलास" की प्रस्तावना में इनकी प्रशस्ति की गई है। कहा जाता है कि अजय पाल के आदेश से इन्हें मृत्युदण्ड मिला।

रामचंद्र - पिता जनार्दन। रचना- "राधा-विनोद"। इस पर त्रिलोकीनाथ तथा भट्ट नारायण की टीकाए उपलब्ध हैं।

रामचंद्र- ई 17 वीं शती। जैन साम्प्रदायिक कवि। रचना-प्रद्युम्नचरित (महाकाव्य, 18 सर्ग)। इसमें श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न की कथा, जैन परम्परा के अनुसार वर्णित है।

रामचंद्र आचार्य - समय- ई 14 वीं शती। काशी-निवासी। शेषवशीय। पिता-कृष्ण। ये ऋग्वेदी कौडिण्यगोत्री तेलगी ब्राह्मण थे। आपने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर "प्रक्रियाकौमुदी" नामक ग्रथ लिखा। इसके अतिरिक्त "कालनिर्णय-दीपिका" (ज्योतिष विषयक) "वैष्णवसिद्धान्तसद्दीपिका" (वैष्णववेदान्त) तथा "कृष्णकिंकर-प्रक्रिया" आदि इनके प्रमुख ग्रथ हैं।

रामचंद्र कविभारती - समय- ई 13 वीं शती। बगाल के बारेन्द्र-प्रात के निवासी ब्राह्मण। श्रीलका में आमन्त्रित। वहा के अधिपति पराक्रमबाहु के आश्रय में बौद्ध मत का स्वीकार किया। प्रधान रचना-भक्तिशतक। अन्य कृतियां- वृत्तमाला और वृत्तरत्नाकर-पंजिका।

रामचंद्र कोराड - जन्म- 1816, मृत्यु- 1900। निवास- आन्ध्र प्रदेश में। पिता-लक्ष्मणशास्त्री, माता-सुब्बाम्बा। गुरु-कृष्णमूर्ति-शास्त्री। मछलीपट्टन के नोबल कालेज में सेवारत। कृतिया- शृगार-विजय (डिम) देवीविजय तथा कुमारोदयचम्पू, उपमावली, मृत्युंजय-विजय (काव्य), शृगारमजरी, मंजरी-सौरभ, कृष्णोदय (काव्य), श्रीसुधा, अमृतनन्दीय, रामचन्द्रीय, बालचन्द्रोदय, कन्दर्प-दर्प, वैराग्य-वर्धिनी, पुमर्थ-शेवधि (काव्य) और स्वोदयकाव्य (आत्मचरित्र विषयक)।

रामचंद्र दीक्षित - कान्धमाणिक्य ग्राम के निवासी। पिता-यज्ञराम दीक्षित (महान् वैयाकरण)। रचना- केरलाभरण-चम्पू (हास्यरसप्रधान)।

रामचन्द्र न्यायवागीश - ई 18 वीं शती। पिता-विद्यानिधि। बंगाली। रचना-"काव्यचन्द्रिका" (अपरनाम अलंकारचन्द्रिका)।

रामचन्द्र मुमुक्षु - केशवनन्दि के शिष्य। जैनपंथी वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दी से व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन किया। पुण्याश्रवकथा कोश। इस ग्रंथ में 4500 श्लोक हैं और उनमें 53 कथाएं वैदर्भी शैली में लिखी हैं।

रामचन्द्र राव (एस्. के.)- ई. 20 वीं शती। बंगलोर-निवासी। ऑल इंडिया इन्स्टिट्यूट ऑन मेंटल हेल्थ, बंगलोर में रीडर। "पौरव-दिग्विजय" नामक नाटक के प्रणेता।

रामचंद्र विबुध - ई. 15 वीं शती। बंगाल के वीरवाटिका ग्राम के निवासी। तत्पश्चात् संभवतः लंकाद्वीप में निवास था। कृति- केदारभट्ट के वृत्तरत्नाकर पर पंजिका।

रामचन्द्र वेल्लाल - मैसूर-नरेश कृष्णराज द्वितीय (1734-1766 ई) के सेनापति-मंत्री देवराज द्वारा सम्मानित। रचना- कृष्णविजय (व्यायोग) तथा सरसकविकुलानन्द (भाण)।

रामचन्द्र शास्त्री - जन्म- सन् 1901 में हनुमानगढ़ में। विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त। कृतियां- (1) कविविलसितम् और (2) कवितापचामृतम्।

रामचन्द्र शेखर - तंजौर के शासक महाराज प्रतापसिंह (1741-1764 ई) के समाश्रित। प्रताप के पश्चात् तुलज द्वितीय (1764-1787 ई.) के कार्यकाल में "कलानन्दक" नामक सात अकी नाटक की निर्मिति। "पौण्डरीकयाजी" की उपाधि से विभूषित।

रामचंद्र सरस्वती- प्रदीप पर विवरण नामक लघु व्याख्या के लेखक। मद्रास और मैसूर में हस्तलेख उपलब्ध। भट्टोजी दीक्षित के शब्दकौस्तुभ में इनका उल्लेख है। समय- वि. 1525-1575।

रामचन्द्राचार्य (पी. व्ही.) - मद्रास राज्य में शिक्षाधिकारी। रचना- समर-शान्ति-महोत्सव।

रामचंद्राश्रम - वल्लभ-सप्रदाय की मान्यता के अनुसार भागवत की महापुराणता के पक्ष में "दुर्जन-मुख-चपेटिका" नामक लघु-कलेवर ग्रंथ के लेखक। इनके पूर्ववर्ती गगाधर भट्ट द्वारा इसी नाम की "चपेटिका" की अपेक्षा रामचद्राश्रम की प्रस्तुत कृति परिमाण में कम है।

रामचरण तर्कवागीश - ई 17 वीं शती का अन्तिम चरण। बरद्वान-निवासी। चट्टोपाध्याय। रचनाए- साहित्य-दर्पण की टीका, "रामविलास" (काव्य), "कलाप-दीपिका" (अमरकोश पर टीका)।

रामजी उपाध्याय (डा.) - सागर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष। आधुनिक संस्कृत साहित्य विषयक शोधकार्य को प्रोत्साहन आपका विशेष कार्य है। भारतीय नाट्यशास्त्र के विशेषज्ञ। रचनाएं- भारतस्य सांस्कृतिको निधि। द्वा सुपर्णा इत्यादि। सेवानिवृत्ति के बाद वाराणसी में निवास।

रामदासशिष्य-प्रयागदत्त-पुत्र - प्रस्तुत कवि का नामनिर्देश उनके "राजविनोद काव्यम्" में नहीं है। उन्होंने अपना परिचय, पिता तथा गुरु के नाम से दिया है। अपने राजविनोद (सप्तसर्गात्मक) काव्य में इन्होंने किसी सुलतान महंमद नामक यवन राजा का चरित्र वर्णन किया है।

रामदेव या वामदेव (शतावधानी) - ई 18 वीं शती। पिता-राघवेन्द्र भट्टाचार्य। कवि-चिरजीव नाम से प्रसिद्ध। ढाका के नायब दीवाल यशवन्तसिह के आश्रित। रचनाए- विद्वन्मोदतरंगिणी, वृत्तरत्नावली (आश्रयदाता की स्तुति), शृंगारतटिनी, कल्पलता, शिवस्तोत्र, माधवचम्पू और काव्यविलास (साहित्यशास्त्रविषयक ग्रंथ)।

रामदेव मिश्र - वृत्तिप्रदीप नामक काशिका-व्याख्या के लेखक।

राम दैवज्ञ - समय- ई 16 वीं शती। प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री अनंत दैवज्ञ के पुत्र तथा ज्योतिष के आचार्य नीलकठ के बंधु। सन् 1600 में काशी में इन्होंने "मुहूर्त-चितामणि" नामक फलित ज्योतिष का अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखा है जो विद्वानों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है। कहा जाता है कि बादशाह अकबर के अनुरोध पर इन्होंने "राम-विनोद" नामक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रथ की रचना की थी और टोडरमल के लिये "टोडरानद" का प्रणयन किया था जो सप्रति उपलब्ध नहीं है।

रामनाथ चक्रवर्ती - ई 16 वीं शती। बंगालनिवासी। वेदगर्भ तर्काचार्य के पुत्र। वायीकुलोत्पन्न। कृतिया- अमरटीका, मनोरमा के धातुगण की व्याख्या और परिभाषा-सिद्धान्तरत्नाकर।

रामनाथ विद्यावाचस्पति - ई 17 वीं शती। नारायण नृपति से सम्मानित। कृतिया- काव्यरत्नावली, काव्यप्रकाश की "रहस्यप्रकाश" नामक टीका, कारक-रहस्य, त्रिकाण्ड-विवेक (अमरकोश पर टीका) और त्रिकाण्डरहस्य।

रामनाथ शास्त्री (एस.के.) - ई 20 वीं शती। "मणिमजूषा" नामक नाटक के रचयिता।

रामनारायण मिश्र - रास-पचाध्यायी के सरस टीकाकार। टीका- ग्रथ का नाम "भाव-भाव-विभाविका"। टीका के उपोद्घात में आपने अपना परिचय दिया है। तदनुसार गुरु का नाम रामसिह है। प्राचीन आचार्यों एव टीकाकारो में आपने अपनी टीका में शकराचार्य, श्रीधर, कृष्णचैतन्य, जीव, रूप, सनातन प्रभृति का सादर उल्लेख किया है। विलक्षण बात यह है कि इन्होंने सिक्ख गुरु नानक की वदना की है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के मतानुसार नानक की यह वदना द्योतित करती है कि ये नानक-पथी विद्वान थे अथवा नानक के प्रति भक्ति-भाव रखते थे। ये चैतन्यमतानुयायी वैष्णव थे। इनके गुरु रामसिह के पूर्वज एवं संबंधी उत्तर प्रदेश (सहारनुपर जिला) के प्रसिद्ध ग्राम देवनद के निवासी थे। ये स्वय भी इसी क्षेत्र के निवासी प्रतीत होते हैं।

रामपाणिवाद - जन्म-सन् 1707 में, मगलग्राम में। अम्पल्लपुल के राजा देवनारायण द्वारा पुत्रवत् सवर्धित। सन् 1750 में अम्पल्लपुल के त्रावणकोर में मिलने से त्रावणकोर के राजा मार्तण्डवर्मा के आश्रय में।

रचनाएं- मदनकेतु-चरित (प्रहसन), चन्द्रिका और लीलावती (वीथी), सीताराघव (नाटक) ललितराघवीय, पादुकापट्टाभिषेकम् और विष्णुविलास (महाकाव्य) भागवतचम्पू, मुकुन्दशतक, (इस नाम की दो रचनाए) अम्बरनदीशस्तोत्र, सूर्याष्टक और शिवशतक (स्तोत्र), वृत्तवार्तिक (शास्त्रीय ग्रथ), और प्राकृतप्रकाश की व्याख्या बालपाठ्या। प्राकृत कृतिया- कसवध और उषा-अनिरूद्ध-काव्य। इनके अतिरिक्त भी अनेक ग्रंथो पर टीकाए तथा शास्त्रीय ग्रन्थ रामपाणिवाद के नाम पर हैं।

रामभट - ई 16 वी शती के काशी-निवासी, एक ज्योतिर्विद् व ग्रथकार। गार्ग्यगोत्री ब्राह्मणकुल मे जन्मे रामभट का परिवार, मूलतया विदर्भ के धर्मपुरी ग्राम का था। आपने "रामविनोद" नामक करणग्रथ की रचना की जिसमे सूर्यसिद्धान्तानुसार वर्धमान, क्षेपक व ग्रहों की गति का विवेचन है। ग्रहगति को बीज-सस्कार देने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त "मुहूर्तचिंतामणि" नामक एक अन्य ग्रथ की रचना भी की है। इस ग्रथ पर स्वय ग्रथकार ने ही "प्रमिताक्षरा" नामक टीका लिखी है।

रामभद्र - ई 17 वीं शती। रचना-न्यायरहस्यम् (न्यायसूत्र की टीका)।

रामभद्र दीक्षित - ई 17 वी शती। जन्म-कुम्भकोणं समीपस्थ कण्डरमाणिक्य ग्राम में, चतुर्वेद-यज्वेन्द्र वश में। पिता-यज्ञराम दीक्षित (वैयाकरण)। गुरु-नीलकण्ठ (साहित्य), चोक्कनाथ (व्याकरण) और बालकृष्ण भगवत्पाद (दर्शन)। रामचन्द्र (हास्य रस के कवि) तथा अद्भुत-दर्पण के कर्ता महादेव के सहपाठी थे। तजौर के राजा शाहजी ने जो शाहजिपुर अग्रहार बनाया, उसमे प्रतिष्ठित।

कृतिया- कुल 12- षड्दर्शन-सिद्धान्त-सग्रह, परिभाषा-वृत्ति-व्याख्यान, उणादि-मणिदीपिका, शब्द-भेद-निरूपण, अष्टप्रास, चापस्तव, पतजलिचरित, पर्यायोक्ति-निस्यन्द, प्रसादस्तव, बाणस्तव, विश्वगर्भस्तव, शृगारतिलक (भाण) और जानकीपरिणय (नाटक)।

रामभद्र सार्वभौम - ई 17 वीं शती। रचनाए- दीधितिटीका, न्यायरहस्यम्, गुणरहस्यम्, न्यायकुसुमाजलिकारिका-व्याख्या, पदार्थविवेक-प्रकाश और षट्चक्रकर्मदीपिका।

रामभद्र सिद्धान्तवागीश - ई 17 वी शती। रचना- सुबोधिनी (शब्दशक्तिप्रकाश-टीका)।

रामभद्राम्बा - तजावर के रघुनाथ नायक की धर्मपत्नी। श्रेष्ठ सस्कृत कवयित्री। अपना पति राम का अवतार है इस श्रद्धा से कवयित्री ने "रघुनाथाभ्युदयम्" काव्य की रचना की है।

राममाणिक्य - "कृतार्थमाधव" (नाटक) के प्रणेता।

रामराम शर्मा - ई 17 वीं शती। "मनोदूत" कार विष्णुदास के वंशज। "मनोदूत" नामक अन्य दूतकाव्य के कर्ता।

रामरुद्र तर्कवागीश- ई 17-18 वीं शती। रचनाए- तत्त्व चिन्तामणि-दीधितिटीका, व्याप्तिवादव्याख्या, दिनकरीयप्रकाश

तरंगिणी, तत्त्वसंग्रहदीपिका-टिप्पणी, सिद्धान्तमुक्तावली-टीका और कारकनिर्णय-टीका।

रामवर्म महाराज - त्रावणकोर नरेश (ई 1860-1880)। संगीत के जानकार। रचनाएं- वृत्तरत्नाकर (छन्द-शास्त्र), श्रीकृष्णविलास काव्य टीका और जलधरासुरवध (कथाकली नृत्य नाट्य)।

रामवर्मा (रामवर्म वंची) - जन्म-1757 ई। पूर्ण नाम-अश्वति तिरूनाल रामवर्मा। पिता- रविवर्मा कोयिल ताम्पूरान्। किल्लिमानूर के निवासी। प्राथमिक शिक्षा कार्तिक तिरुनाल महाराज के अधीन। दूसरे अध्यापक आचार्य शकर नारायण तथा रघुनाथ तीर्थ। सन् 1785 में युवराजपद। सन् 1795 में मृत्यु।

कृतिया- (संस्कृत) रुक्मिणीपरिणय तथा शृगारसुधाकर (भाण) कार्तवीर्यविजय (चम्पू), वंचिमहाराजस्तव, सन्तानगोपाल प्रबध और दशावतार दण्डक।

मलयालम रचनाए - रुक्मिणी-स्वयवर, पूतना-मोक्ष, अम्बरीष-चरित, पौंड्क-वध, नरकासुर-वध (ये कथाकली कोटि की कृतिया) तथा पद्मनाभकीर्तन। सर्वश्रेष्ठ रचना - "रुक्मिणीपरिणय"।

रामवर्मा - क्रांगनोर के युवराज। ई 18-19 वीं शती। रामचरितम् (12 सर्ग) महाकाव्य के प्रणेता।

रामवर्मा - क्रागनोर-राजवश के युवराज। कवि सार्वभौम तथा कोचिन्नु ताम्पूरान् नाम से प्रसिद्ध। समय- 1858 से 1926 ई। रचनाए- अनगविजयभाण, विटराजभाण, त्रिपुरदहनम् (काव्य), वल्ल्युद्भवम् (काव्य), विप्रसन्देशम् (काव्य), देवदेवेश्वरशतकम् (स्तोत्रकाव्य), उत्तररामचम्पूः, बाणायुधचम्पू, देवीसप्तशतीसार, किरातार्जुनीय-व्यायोग और जरासंध-व्यायोग।

रामशास्त्री वेदमूर्ति - ई 19 वीं शती। रचना- गायकवाडबन्धम्। विषय- बडोदा के गायकवाड-वंशीय राजाओं का चरित्र।

रामसेवक - महाभाष्यप्रदीप-व्याख्या के लेखक। पिता- देवीदत्त। पुत्र-कृष्णमित्र। समय- सभवत सं 1650-1700 के मध्य।

रामसेन - काष्ठासघ नदीतटगच्छ और विद्यागण के आचार्य। नरसिहपुरा जाति के सस्थापक। विद्यागुरु-वीरचंद्र, शुभदेव, महेन्द्रदेव और विजयदेव। दीक्षागुरु-नागसेन जो सेनगण और पोगरिगच्छ के आचार्य थे। समय- ई 11 वीं शती का मध्य भाग। रचना- तत्त्वानुशासन (59 पद्य) यह अध्यात्म विषयक ग्रंथ स्वानुभूति से अनुप्राणित और ध्यानयोग से संबद्ध है।

रामस्वामी शास्त्री - समय- 1823-1887 ई। केरल के एक कवि। पिता-शकरनारायण शास्त्री। सन् 1849 में त्रिवांकुर राजा के दरबार में जाकर शेष जीवन उन्हीं के आश्रम में बिताया। इन्होंने भट्टिकाव्य के समान "सुरूपराघव" नामक एक महाकाव्य रचा। इसमें रामकथा के साथ ही व्याकरण के नियमों और अलंकारों की जानकारी दी गई है। इस महाकाव्य के 15 से अधिक सर्ग थे किन्तु वर्तमान में उपलब्ध उसके हस्तलिखित, 8 वें सर्ग के मध्य में ही समाप्त हो गये हैं। "कीर्तिविलास" नामक इनके दूसरे काव्य का केवल एक उल्लास ही प्राप्य है। इसमें दरबार के पडितों व कवियों की सभाओ का विवरण है। इनके अतिरिक्त इन्होंने गाधारचरित, पार्वतीपरिणय, अबरीषचरित, तुलाभारप्रबध, अन्यापदेशद्वासप्तती, गौणसमागम, वृत्तरत्नावली, रामोदय, क्षेत्रतत्त्वदीपिका आदि ग्रंथ भी लिखे हैं।

रामस्वामी शास्त्री के. एस. - समय- ई 20 वीं शती। कुम्भकोणम् निवासी। जगदम्बा के उपासक। डिस्ट्रिक्ट जज। पिता-सुन्दररामार्य। माता-चम्पकलक्ष्मी। सरकारी नौकरी में रह कर भी समाजसेवी। सन् 1928 में "रतिविजय" नामक नाटक की रचना की।

रामस्वामी शास्त्री व्ही. एस. - मदुरा के एक वकील। रचना- त्रिबिल्वदलचम्पू. (विभिन्न तीर्थक्षेत्रों तथा विश्वविद्यालयों का प्रवास वर्णन)। मुद्रित।

रामानंद - समय- 1410-1510 ई। रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य। जन्म-प्रयाग में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवार में हुआ। पिता-पुण्यसदन, माता-सुशीला। बाल्यकाल से ही वीतरागी होने के कारण गृहत्याग और काशी-प्रयाण। काशी में राघवानन्द का शिष्यत्व। इस सन्दर्भ में एक कथा यह बतायी जाती है कि जब रामभारती (पूर्वनाम) काशी पहुंचे तो वहा वे एक अद्वैती सन्यासी के शिष्य बने। योगायोग से एक दिन उनकी भेट राघवानंद से हुई। उन्होंने रामानद के गुणों की प्रशसा की किन्तु कहा कि "तू अल्पायुषी है"। यह बात रामानद ने अपने गुरु को बतायी, तो उन्होंने रामानद की अपमृत्यु टालने के लिये उन्हें राघवानद के सुपूर्द कर दिया। राघवानन्द ने उन्हें योगचर्या और समाधि की शिक्षा दी। यहीं वे रामभारती से रामानंद बने। अपमृत्यु का समय निकट आने पर राघवानन्द ने उन्हे समाधि लगाकर बैठने का निर्देश दिया। समाधि की अवस्था में उन्हें मृत्यु स्पर्श नहीं कर पायी। समाधि उतरते ही राघवानद ने कहा "अब तुम्हारी मृत्यु टल गयी है"। राघवानन्द के सम्प्रदाय में जाति-पाति व खान-पान के कठोर नियम थे। तीर्थयात्रा के दौरान रामानद उन नियमों का पालन नहीं कर पाये तो राघवानद ने उन्हें प्रायश्चित्त करने के लिये कहा। किन्तु रामानद ने यह कह कर कि "जातिपाति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई", प्रायश्चित्त करने से इकार कर दिया। इस पर राघवानन्द ने उन्हें अपने सप्रदाय से निकाल दिया। अब रामानद ने नये सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें जाट, क्षत्रिय, बुनकर, चमार, नापित (नाई) ब्राह्मण सभी को शामिल कर, उन्हें अपना शिष्य बनाया। रामानद स्वय को राम का अवतार मानते थे। कुछ लोग उन्हें कपिलदेव का तथा कुछ सूर्यनारायण का अवतार मानते हैं। जात-पात के बंधनों को तोड कर सम्पूर्ण

हिन्दू समाज में एकता की भावना जगाने और विधर्मियों के आक्रमण का सफल प्रतिकार करने की प्रेरणा देने में रामानद के महत्त्वपूर्ण योगदान का इतिहास साक्षी है।

रामानंद ने संस्कृत व हिन्दी में जिन ग्रथों की रचना की है, उनके नाम हैं- 1) वैष्णवमताब्ज-भास्कर 2) रामार्चनपद्धति, 3) गीताभाष्य, 4) उपनिषद्भाष्य, 5) आनदभाष्य, 6) सिद्धान्तपटल, 7) रामरक्षास्तोत्र, 8) योगचितामणि, 9) श्रीरामाराधनम्, 10) वेदान्त-विचार, 11) रामानदादेश, 12) अध्यात्मरामायण आदि। काशी के पंचगगा घाट पर रामानद का मठ विद्यमान है।

रामानन्द त्रिपाठी - समय- ई 17 वीं शती। सरयूपारीण ब्राह्मण। पिता- मधुकर त्रिपाठी शैव विद्वान् एवं काशीनिवासी थे। कृतियां- रसिक-जीवन, पद्यपीयूष, काशीकुतूहल, रामचरित, भावार्थ-दीपिका (टीका), हास्यसागर (प्रहसन) विराड्विवरण) सन 1655 ई में दारा शिकोह की प्रार्थनानुसार रचित)। दारा (बादशाह शाहजहां का पुत्र) से "विविध विद्याचमत्कार-पारगत" की उपाधि प्राप्त। इन्होंने "सिद्धात कौमुदी" की "तत्त्वदीपिका" नामक व्याख्या तथा लिंगानुशासन पर टीका लिखी।

रामानन्द राय - ई 16 वीं शती। उत्कल के महाराज गजपति प्रतापरुद्र का आश्रय। पिता-भवानन्द राय (राजमत्री)। रचना- जगन्नाथ-वल्लभ नामक पाच अंकों का सगीत नाटक।

रामानुज - कुरुकापुरनिवासी। पिता- गोविन्द। रचना- कुरुकेश-गाथानुकरणम् जो मूल नालायिरम् नामक प्रख्यात तामिल काव्य का अनुवाद है।

रामानुज कवि - ई 17 वीं शती। त्रिवेल्लोर (तामिळनाडु) के निवासी। रचनाएं- वसुमती-कल्याण, वीरराघव-कड्कणवल्ली-विवाह, वार्धिकन्यापरिणय और वेदपादरामायण।

रामानुजदास- "नाथमुनि-विजय-चम्पू" नामक काव्य के प्रणेता। मैत्रेय गोत्रोद्भव कृष्णाचार्य के पुत्र। समय- अनुमानत ई 16 वीं शताब्दी का अतिम चरण। चपू-काव्य के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतिया हैं- वेंगलार्य-परपरा, उपनिषदर्थविचार और तथ्य-निरूपण। ये ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित हैं। इनका उल्लेख डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास 12306 में प्राप्त होता है।

रामानुजाचार्य - समय- 1017-1137 ई। श्री-वैष्णव मत के आचार्य शिरोमणि। यामुनाचार्य (आलवदार) के निकटस्थ स्नेही। उनके पौत्र श्री शैलपूर्ण के भागिनेय। जन्म- 1017 ई में तेरूकुदूर नामक मद्रास के समीपस्थ ग्राम में। पिता-केशवभट्ट जो इन्हें बचपन में ही छोड कर चल बसे। तब इन्होंने कांची जाकर यादवप्रकाश नामक एक अद्वैती विद्वान् के पास वेद एवं वेदान्त का अध्ययन आरंभ किया। किन्तु यह अध्ययन अधिक दिनों तक न चल सका। उपनिषद् के अर्थ के विषय में गुरु-शिष्य के बीच विवाद खडा हो गया। अत अपने गुरु यादवप्रकाश को छोड रामानुज स्वतंत्र रूप से वैष्णव-शास्त्र का अनुशीलन करने लगे।

यामुनाचार्य (आलवदार) ने अपनी मृत्यु के समय अपने एक शिष्य द्वारा रामानुज को बुलवा भेजा किन्तु उनके श्रीरंगम् पहुचने मे पहले ही आलवदार का वैकुंठवास हो चुका था। रामानुज ने देखा, कि वैकुठवासी हुए आचार्य के हाथ की तीन उगलिया मुडी हुई हैं। इसका रामानुज ने यह अर्थ लगाया कि आलवदार उनके द्वारा ब्रह्म-सूत्र और विष्णु-सहस्रनाम पर भाष्य तथा आलवारों के 'दिव्यप्रबधम्' पर टीका लिखवाना चाहते थे। एतदर्थ रामानुज ने ब्रह्म-सूत्र पर स्वयं 'श्रीभाष्य' नामक विख्यात भाष्य की रचना की और अपने पट्टशिष्य कूरेश (कुरत्तालवार के ज्येष्ठ पुत्र पराशर) के द्वारा विष्णुसहस्रनाम की टीका 'भगवतद्-गुण-दर्पण' तथा अपने मातुल-पुत्र कुरूकेश के द्वारा नम्मालवार के 'तिरूवाय मौलि' पर तामिल भाष्य की रचना कराई। इस प्रकार रामानुज ने दिवगत आचार्य आलवदार के तीनों मनोरथों की पूर्ति कर वैष्णव-समाज की बडा हित किया।

रामानुज के जीवन की तीन घटनाए प्रमुख हैं। पहली है महात्मा नाम्बि से अष्टाक्षर-मत्र (ओम् नमो नारायणाय) की दीक्षा लेना। यह मत्र जगदुद्धारक होने के कारण महात्मा नाम्बी ने इनसे आग्रह किया था कि इस यत्र को वे अत्यत गोपनीय रखे किंतु ससार के प्राणियो के विषम दु ख से उद्धार-निमित्त इन्होने मकान की छतो से तथा वृक्षों के शिखरो से इस मत्र का सभी-किसी को उपदेश देकर उसका विपुल प्रचार किया।

दूसरी घटना है श्रीरगम् के अधिकारी चोलनरेश का कट्टर शैव राजा कुलोत्तुग के भय से श्रीरगम् का परित्याग करना। यह घटना 1096 ई के आसपास की है जब रामानुज की आयु 80 वर्ष की थी। राजा ने रामानुज को अपने दरबार में बुलाया था किंतु इनके पट्ट शिष्य कूरेश ने इन्हें वहां जाने नहीं दिया। गुरु के बदले कूरेश स्वय राजदरबार में जा उपस्थित हुए और वहा पर वैष्णव-धर्म का उपदेश दिया। फलत राजा के कोप का भाजन बन अपनी आखों से इन्हें हाथ धोना पडा।

तीसरी प्रमुख घटना है, मैसूर के शासक बिट्टिदेव को वैष्णव धर्म मे दीक्षित करना तथा उनका नाम विष्णुवर्धन रखना। इस घटना का समय 1098 ई है। फिर 1100 ई के आसपास रामानुज ने मेलकोटे में भगवान् श्रीनारायण के मदिर का निर्माण कराया और लगभग 16 वर्षों तक वे इसी प्रदेश में रहे। कट्टर (धर्मांध) शैव राजा कुलोत्तुंग की मृत्यु के पश्चात् रामानुज 1118 ई में श्रीरगम् लौट आए और अनेक मंदिरों का निर्माण करवा कर 1137 ई तक आचार्य-पीठ पर आसीन रहे। इन्होंने दक्षिण के विष्णु-मंदिरों में वैखानस-आगम द्वारा होने वाली उपासना का उच्चाटन करते हुए उसके स्थान पर पाचरात्र आगम को प्रतिष्ठित किया।

अपने 120 वर्ष के दीर्घ जीवन में रामानुज ने श्रीभाष्य के अतिरिक्त वेदान्तसग्रह, वेदान्तदीप, वेदान्ततत्त्वसार, गीताभाष्य, अष्टादशरहस्य, कूटसंदोह, गुणरत्नकोष, न्यायरत्नमाला, नारायणमन्त्रार्थ, नित्याराधनविधि, पंचरात्ररक्षा, मुण्डकोपनिषद् व्याख्या, विष्णुविग्रहशंसन-स्तोत्र आदि ग्रंथों की रचना की।

रामानुज ने अपने विशिष्टाद्वैत मत को प्राचीनतम तथा श्रुत्यनुकूल सिद्ध करने का विपुल उद्योग किया। उनके महनीय प्रयत्नों से दक्षिण प्रदेश में वैष्णव धर्म का भरपूर प्रचार-प्रसार हुआ।

रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव-मत में दास्य-भाव की भक्ति स्वीकार की गई है। इन्होंने भगवान नारायण की उपासना की पद्धति चलाई। इनके संप्रदाय का जन्म, शांकर अद्वैत प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसीलिये दार्शनिक-जगत् में यह संप्रदाय विशेष महत्त्व का अधिकारी है।

रामानुजाचार्य योगी - एक द्रविड पडित किंतु वृंदावन के रगनाथजी के विशाल मदिर एवं सस्थान से आकृष्ट होकर, वृंदावन ही मे रहने लगे। इस सस्थान से वे संबद्ध भी थे।

इन्होंने वेद-स्मृति (भाग 10-87) पर अपनी 'सरला' नामक टीका लिखी। यह विस्तृत टीका, रामानुज के मान्य सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर विरचित है। इसमें उन्होंने अपने द्रविड व वृंदावनवासी होने का उल्लेख किया है।

इनका समय ई 19 वीं शती के पूर्वार्ध में हुए श्रीनिवास सूरि के बाद का है। अत ये आधुनिक टीकाकार हैं।

रामानुजाचार्य व्ही. - मद्राम के छत्र नामक ग्राम मे जन्म। विद्वत्ता तथा प्रतिभा के कारण 'सर्वशास्त्रपारगत', 'मस्कृत-महाकवीश्वर', 'सरसकविराज', 'कविरत्न', 'साहित्यभास्कर' आदि उपाधिया प्राप्त। इन्होंने रूपक-लक्षणों के अनुसार 10 प्रकार की रचना की। रचनाओ के नाम - कलिका-कोलाहल (नाटक), आत्मावलीपरिणय (प्रकरण), श्रीनिवासविलास (भाण), महादेशिकचरित (व्यायोग), लक्ष्मी-कल्याण (समवकार), दक्षमखरक्षण (डिम), नहुषाभिलाष (इहामृग), अन्यायराज्यप्रध्वसन (अक), मुनित्रयविजय (वीथि) और वाणीपाणिग्रहण (लाक्षणिक नाटक)। इसके व्यतिरिक्त रुक्माङ्गद-चरित नाटक और अभिनव-लक्ष्मी-सहस्रनाम-स्तोत्र की भी रचना इन्होंने की। यह अप्रकाशित साहित्य अयोध्या में प कालीप्रसाद त्रिपाठी, (सपादक- संस्कृतम्') के यहा सुरक्षित था।

रामामात्य - तिम्मामात्य के पुत्र। विजयनगर के अलिय-रामराज के आश्रित (रामराज तालिकोट की लडाई में मारा गया (सन् 1565)। सगीतरत्नाकर के टीकाकार चतुर- कल्लीनाथ के दौहित्र। रचना- स्वरमेल-कलानिधि।

रामावतार शर्मा (म.म.) - समय- 1877-1929 ई। पिता- देवनारायण। माता- गोविंददेवी। महामहोपाध्याय की पदवी प्राप्त। बिहार के छपरा जिले में दि 6 मार्च 1877 को जन्म। साहित्याचार्य व एम ए (संस्कृत) की परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। सन् 1906 में पटना-कालेज के सस्कृत-विभागाध्यक्ष। सन् 1919 से 1922 तक हिंदू विश्वविद्यालय मे प्राच्य-विभाग के प्राचार्य। इन्होंने नाटक, गीत, काव्य, निबंध आदि के साथ-ही-साथ दर्शन तथा संस्कृत-विश्वकोष का भी प्रणयन किया है। इनके 'परमार्थदर्शन' की ख्याति सप्तमदर्शन के रूप में हुई है। इन्होंने केवल 15 वर्ष की ही आयु में 'धीरनैषध' नामक नाटक की रचना की जिसमें पद्य का बाहुल्य है। 'भारत-गीतिका' (1904 ई.) तथा 'मुद्गर-दूत' (1914 ई) इनके काव्यग्रंथ हैं। 'मुद्गर-दूत' (श्लोक संख्या 1482) में मेघदूत के आधार पर किसी व्यभिचारी मूर्खदेव का जीवन चित्रित किया गया है इनका 'वाङ्मयार्णव' नामक प्रसिद्ध पद्यबद्ध संस्कृत ज्ञानकोश ज्ञानमडल वाराणसी से सन् 1967 में प्रकाशित हुआ है। अन्य रचना- भारतेतिवृत्तम्। विषय- भारत का इतिहास।

उक्त कृतियो के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी में अनेक शोध-निबंध लिखे और मित्रगोष्ठी पत्रिका का सपादन किया।

रामाश्रम - सारस्वत व्याकरण का रूपान्तर। 'सिद्धान्त-चन्द्रिका'। नामक यह टीका स्वतन्त्र व्याकरण के रूप में प्रसृत हुई। सिद्धान्त-चन्द्रिका पर तीन टीकाएं लिखीं गई हैं।

रामेश्वर भट्ट - ई 16-17 वीं शती। पैठण निवासी गोविंद भट्ट के पुत्र। ये अनेक शास्त्रों तथा कलाओं में पारंगत थे। प्रख्यात मीमांसक गागाभट्ट काशीकर इसी वश में हुए। रामेश्वरभट्ट के सबध में कहा जाता है कि अहमदनगर दरबार के जाफर मलिक के पुत्र को इन्होंने महारोग से मुक्ति दिलाई। इन्होंने 'रामकुतूहल' नामक काव्य की रचना की किन्तु यह काव्य अब उपलब्ध नहीं है। इनकी मृत्यु काशी में हुई। इनके साथ इनकी पत्नी सती हो गई।

रामेश्वर - वाराणसीस्थ मीमांसक 18 वीं शती। रचना- विधिविवेक.।

रावण - ई 15 वीं शती। ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्यकार। भाष्य-ग्रथ अनुपलब्ध है किन्तु कुछ अश इधर-उधर अवतरणों में उपलब्ध। उससे ज्ञात होता है कि रावणाचार्य शांकर मतानुयायी वेदान्ती थे। सायण शब्द का ही अपभ्रंश रावण है ऐसा कुछ विद्वानों का तर्क है किन्तु परमार्थप्रपा नामक सूर्यपण्डित रचित गीता-भाष्य के आधार से (जहां रावण-भाष्य का निर्देश है) दिखाया गया है कि ये दो भिन्न व्यक्ति हैं।

रावणाचार्य ने ऋग्वेद का पदपाठ भी बनाया। वह शाकल्य के पदपाठ से भिन्न होने के कारण अन्य शाखा से संबंधित हो ऐसा विद्वानों का तर्क है।

राशिवडेकर अप्पाशास्त्री - समय- 1873-1913 ई। जन्म महाराष्ट्र में कोल्हापुर के निकट राशिवडे ग्राम में दिनांक 2-11-1873 को। पिता- सदाशिव और माता- पार्वती। जयचन्द्र

सिद्धान्तभूषण के संपादकत्व में 'सस्कृत चन्द्रिका' में 'मातृभक्ति' विषय पर आयोजित काव्य-स्पर्धा में आपको प्रथम पुरस्कार मिला था। कालान्तर से अपनी प्रतिभा के कारण आप स्वय संस्कृतचन्द्रिका के संपादक बने। इसमें प्रकाशित आपके प्रबन्धों के कारण आपको 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्राप्त हुई। गद्य-काव्यों में आपकी 'इन्दिरा', 'देवीकुमुद्वती', 'दशापरिणति', 'मातृभक्ति' तथा 'लावण्यमयी' आदि रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने 'अधर्मविपाक' नामक सामाजिक नाटक के अतिरिक्त 'सामान्यधर्मदीप', 'मातृगोत्रवर्णननिर्णय', 'पतितोद्धारमीमासाखण्डन' जैसे धार्मिक ग्रंथों तथा 'समाजसस्कार', धर्मपीठानि धर्माचार्यांश्च' आदि ग्रंथों की रचना की। गद्य और पद्य दोनों पर इनका समानाधिकार था। उसी प्रकार उनमें कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का अद्भुत समन्वय था। सस्कृत के प्रति उनका जन्मजात अनुराग था।

आपने 1889 ई तक हरिशास्त्री पाटगावकर से काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, अनतर कोल्हापुर में 1893 ई तक कान्ताचार्य से व्याकरण की। हिंदी, बगला, मलयालम, तेलगु, तमिल व अंग्रेजी का भी आपने ज्ञान प्राप्त किया। 1894 ई. में आपकी प्रथम सस्कृत कविता, 'सस्कृत-चन्द्रिका' मे प्रकाशित हुई। सस्कृतचंद्रिका का सपादन और प्रकाशन का कार्य कलकत्ता से आपने किया। बाद में कोल्हापुर मे निवास कर सुनृतवादिनी का सपादन किया। मृत्यु- 1913 में हुई। महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास, बगाल आदि में भ्रमण कर सस्कृत का प्रचार किया। संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय हैं।

रुद्रकवि - ई 16-17 वीं शती। राजा नारायण शाह के आश्रित इस कवि ने, 'जहांगीरचरितम्'' की रचना दशकुमारचरितम् की पद्धति के अनुसार की। इसमें जहांगीर के चरित्र का वर्णन है। अन्य रचना राष्ट्रोदवश। 20 सर्गों के इस महाकाव्य में बागुलवंशीय राजाओं का चरित्र-चित्रण है।

रुद्रट - 'काव्यालकार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रथ के प्रणेता। नाम के आधार पर इनका काश्मीरी होना निश्चित होता है। 'काव्यालंकार' के प्रारभ व अत में गणेश, गौरी, भवानी, मुरारि व गजानन की वदना होने के कारण ये शैव माने गए हैं। टीकाकार नमिसाधु के अनुसार इनका दूसरा नाम शतानद था और ये वामुकभट्ट के पुत्र थे। इनके पिता सामवेदी थे। भरत के बाद रुद्रट रससिद्धात के प्रबल समर्थक सिद्ध होते हैं किन्तु इन्होंने भामह, दडी, उद्भट की अपेक्षा अलंकारों का अधिक व्यवस्थित विवेचन किया है और कतिपय नवीन अलंकारों का भी निरूपण किया है। अत ये उपर्युक्त आचार्यों से परवर्ती थे। इनके मत को ई 10 वीं शती के आचार्यों ने उद्धृत किया होने से, ये उनके पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रकार इनका समय ई 9 वीं शती का पूर्वार्ध उचित जान पडता है।

रुद्रधर उपाध्याय - ई 15 वी शती के एक धर्मशास्त्री। मिथिला-निवासी म म लक्ष्मीधर के पुत्र और हलधर के सबसे छोटे भाई। आपने श्राद्धविवेक, पुष्पमाला, वर्षकृत्य, व्रतपद्धति, शुद्धिविवेक आदि ग्रथो की रचना की है। श्राद्धविवेक के चार परिच्छेद हैं जिनमे श्राद्ध की व्याख्या, श्राद्धप्रकार, क्रियापद्धति, श्राद्ध के स्थल-काल आदि का विवेचन है। 'शुद्धिविवेक' के तीन परिच्छेद हैं जिनमें जननमरणअशौच, अन्नशुद्धि, जलशुद्धि, रजस्वला की शुद्धि आदि का विवेचन है।

रुद्र न्यायपंचानन - नवद्वीप- निवासी काशीनाथ विद्यानिवास के पुत्र। पितामह- रत्नाकर विद्यावाचस्पति। समय- ई 17 वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है। इनके द्वारा प्रणीत ग्रंथों की सख्या 39 है - अधिकरण- चंद्रिका, कारक-परिच्छेद, कारक-चक्र, विधिरूप-निरूपण, उदाहरण-लक्षण-टीका, उपाधिपूर्वपक्षग्रथ-टीका, केवलान्वयि-टीका, पक्षतापूर्व ग्रथ-टीका, न्यायसिद्धात-मुक्तावली-टीका, व्याध्यनुगम-टीका, कारकाद्यर्थ-निर्णय-टीका, सव्यभिचारसिद्धात-टीका, भावप्रकाशिका, अनुमिति-टीका, कारकवाद, तत्त्वचितामणि-दीधिति- टीका आदि।

इनके द्वारा रचित 4 काव्य-ग्रथ भी है- भावविलासकाव्य, वृन्दावनविनोद, भ्रमरदूत व पिकदूत। भ्रमरदूत में राम द्वारा किसी भ्रमर से सीता के पास सदेश भेजने का वर्णन है। पिकदूत नामक सदेश-काव्य मे राधा ने पिक के द्वारा श्रीकृष्ण के पास सदेश भेजा है। इस छोटे-से काव्य मे केवल 31 श्लोक हैं। संभवत ये बगाल के हुसेन शाह के आश्रित राजकवि भी थे।

रुद्रभट्ट - काव्य-शास्त्र के आचार्य। श्रृगार-तिलक' नामक ग्रंथ के प्रणेता। डा एस के डे के अनुसार समय ई 10 वीं शती। बहुत दिनों तक रुद्रट व रुद्रभट्ट को एक ही व्यक्ति माना जाता रहा है किन्तु अब निश्चित हो गया है कि ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे। बेबर, बुल्हर, औफ्रेट व पिशल ने फिर भी इन दोनो को अभिन्न माना है। पर रुद्रटकृत 'काव्यालकार' तथा रुद्रभट्टकृत 'श्रृगार-तिलक' के अध्ययन से दोनों का पार्थक्य स्पष्ट हो चुका है। 'काव्यालकार' के रचयिता रुद्रट एक महनीय आचार्य के रूप में आते है। इन्होंने अपने ग्रंथ में काव्य के सभी अगों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इसके विपरित रुद्रभट्ट की दृष्टि परिमित है और वे काव्य के एक ही अंग (रस) का वर्णन करते हैं। इस प्रकार रुद्रभट्ट का क्षेत्र सकुचित है, और वे मुख्यत कवि के रूप में दिखाई पडते हैं।

रुद्रराम - ई 18 वीं शती। रचनाए- वादपरिच्छेद, व्याख्याव्यूह, चित्तरूप, अधिकरणचन्द्रिका और वैशैषिकशास्त्रीयपदार्थ - निरूपण और तर्कसग्रह की टीका।

रूप गोस्वामी - समय- 1492 ई. 1591 ई। बंगाल की

वैष्णव परपरा के भक्ति व रसशास्त्र के चैतन्य-मतानुयायी आचार्य। षट् गोस्वामियों में से एक। भक्ति एव विद्वत्ता के जाज्वल्य प्रतीक। भारद्वाज गोत्री। धनाढ्य ब्राह्मणकुल में जन्म। पूर्वज कर्नाटक से बंगाल में आकर बस गए थे। पिता का नाम श्रीकुमार। सनातन गोस्वामी के अनुज, चैतन्य महाप्रभु के प्रथम कृपापात्र होने के कारण वैष्णव समाज मे उनके बडे भाई समझे जाते हैं। ये दोनों भाई चैतन्य-मत के शास्त्रकर्ता माने जाते हैं। बगाल मे इनकी जन्मभूमि थी वफल। माता-रेवती। आप बगाल के नवाब हुसेनशाह के प्रधान मत्री थे। त्रिवेणी के पवित्र तट पर चैतन्य से इनकी भेंट होने पर इन्होंने अपने ऊंचे पद को त्याग कर सन्यास ले लिया और अपने गुरुदेव की सूचनानुसार वृंदावन को अपना निवास-स्थल बनाया। शाह ने इनकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर इन्हें 'साकर मल्लिक' की उपाधि से गौरवान्वित किया था। इनकी महत्ता, इनके 3 काव्याशास्त्रीय ग्रथों के ही कारण अधिक है।

आनुवशिक परिचय - कर्नाटक के भारद्वाज गोत्रीय अनिरुद्ध की दो पत्नियो से राजकुमार रूपेश्वर और हरिहर का जन्म हुआ। हरिहर दुष्ट थे। उन्होंने रूपेश्वर को राज्य से वचित किया। रूपेश्वर का पुत्र पद्मनाभ गंगातट के नवहट्ट ग्राम में सुप्रतिष्ठित हुआ। उसके पाच पुत्रो में सबसे छोटा मुकुन्द फतेहाबाद में बसा। उनके पुत्र श्रीकुमार के अमर, सन्तोष तथा वल्लभ नामक तीन पुत्रो को चैतन्य ने सनातन, रूप और अनुपम नाम से दीक्षित किया। दीक्षा के पश्चात् रूप प्राय गोकुल में ही रहे।

कहा जाता है कि श्रीगोविददेवजी ने इन्हे स्वप्न में बताया कि मैं अमुक स्थान पर भूमि मे गडा पडा हू। एक गाय प्रतिदिन मुझे दूध पिला जाती है। तुम उसी गाय को लक्ष्य कर मेरे स्थान पर आओ, मुझे बाहर निकालो और मेरी पूजा करो। तदनुसार रूपजी ने भगवान् की मूर्ति बाहर निकाली। कालातर मे जयपुर के महाराज मानसिह ने गोविददेवजी का लाल पत्थरों का बडा ही विशाल मदिर बनवाया जो आज भी वृंदावन की श्री-वृद्धि कर रहा है।

रूप गोस्वामी ने 17 से अधिक ग्रथों की रचना की है जिनमें अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं- हसदूत (काव्य), उद्धव-सदेश (काव्य), विदग्ध-माधव (नाटक), प्रेमेन्दुसागर, ललित-माधव (नाटक), दानकेलि-कौमुदी, भक्तिरसामृत-सिधु, उज्ज्वल-नीलमणि एव नाटक-चद्रिका। इनमें अतिम 3 ग्रथ काव्य-शास्त्रीय हैं।

इनके अन्य ग्रथों के नाम हैं- लघुभागवतामृत, पद्यावली, स्तवमाला, उत्कलिका-मजरी, आनंद-महोदधि, मथुरा-महिमा, गोविद-बिरुदावलि, मुकुन्द-मुक्तावली, अष्टादश छद, गीतावली आदि। सोलहवी शताब्दी के वृंदावन में, रूप गोस्वामी भक्त-मडली के अग्रणी थे। कहते हैं कि संत मीराबाई ने इन्हींसे दीक्षा ली थी।

इनके मृत्यु-सवत् के विषय में विद्वानों का एकमत नहीं किन्तु आचार्य बलदेव उपाध्याय तथा डा डी सी सेन द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों के अनुसार ये पूरे 100 वर्षों तक जीवित रहे ऐसा माना जा सकता है।

रेणु - ऋग्वेद के 9 वे 10 वे मडल के दो सूक्तों के द्रष्टा। ये विश्वामित्र के पुत्र थे। इन्द्र व सोम-स्तुति ही सूक्तो का विषय है।

अपनी प्रथम ऋचा मे ही सोम हेतु 21 गायो के दोहन का उल्लेख इन्होंने किया है। विश्वामित्र द्वारा निर्मित प्रतिसृष्टि का निर्देश भी इसमे चार भुवनो के उल्लेख से स्पष्ट होता है।

रेभ - एक सूक्त-द्रष्टा। आपने इन्द्रस्तुति पर सूक्त की रचना की है। उनकी एक ऋचा का आशय है -

ऐ अद्भुत शूर, वज्रधारी और भक्तरक्षक इन्द्र, अपने सत्यस्वरूप को प्रकट कर आप हमे सकट-मुक्त करें। आपकी स्पृहणीय सम्पत्ति आप हमें कब देंगे?

रेभ के बारे में एक कथा ऋग्वेद में यह बतायी जाती है कि एक बार असुरो ने इनके हाथ-पैर बाध कर इन्हें कूए मे धकेल दिया। 9 दिनो और दस रातो तक इस स्थिति में रहने के बाद अश्विनीदेवों ने उन्हें मुक्त किया।

रेवाप्रसाद द्विवेदी (डा.) - जन्म-सन् 1935 में रेवा (नर्मदा) के तट पर नादनेर ग्राम (म प्र) में। आरम्भिक शिक्षा अपने सस्कृतज्ञ पिता से प्राप्त। काशी हिन्दू वि वि. से एम् ए तथा साहित्याचार्य की उपाधिया प्राप्त। जबलपुर वि वि से डी लिट् । सन् 1970 तक म प्र की राजकीय सेवा मे। तत्पश्चात् काशी हिन्दू वि वि में साहित्य-विभागाध्यक्ष। आप सस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक हैं। कृतिया- सीताचरित (महाकाव्य), काग्रेस-पराभव (समवकार) और यूथिका (नाटिका)। कालिदास ग्रन्थावली का एकत्र सपादन। अनेक लघु-काव्य एव निबन्ध भी प्रकाशित।

रोडे, यज्ञेश्वर सदाशिव (बाबा रोडे) - लगभग 1707 ई में लेखन-कार्य प्रारंभ। रचनाए- यन्त्रराज-वासनाटीका, गोलानन्द-अनुक्रमणिका और मणिकान्ति टीका।

लंबोदर वैद्य - ई. 20 वीं शती। बगाली। "गोपीदूत" नामक काव्य के रचयिता।

लक्ष्मण - माता-भवानी। पिता-विश्वेश्वर। काशी निवासी। कालान्तर से तजौर के शाहजी के सभासद। इनकी साहित्य शास्त्रीय रचना "शाहराजीयम्" में शाहजी का चरित्र-वर्णन है। अन्य रचना- शाहराज-सभासरोवर्णिनी।

लक्ष्मण - ई. 11 वीं शती। ग्रंथकार के प्रपौत्र (भावप्रकाश नामक साहित्यशास्त्रीय ग्रंथ के लेखक)। शारदातनय ने आचार्य लक्ष्मण के संबंध में लिखा है कि इनका निवासस्थान मेरूत्तर जनपद का माठर नामक ग्राम था। गोत्र-कश्यप। इन्होंने तीस

यज्ञों से विष्णु की आराधना की और "वेदभूषण" नामक वेदभाष्य की रचना की। किस संहिता पर यह भाष्य-रचना है यह ज्ञात नहीं।

लक्ष्मण भट्ट - ई. 17 वीं शती के एक धर्मशास्त्रकार। ये निर्णयसिंधु के रचयिता कमलाकर भट्ट के छोटे भाई तथा रामकृष्ण भट्ट के पुत्र थे। आपने धर्मशास्त्र से सम्बन्धित "आचाररत्न", "आचारसार" और "गोत्रप्रवररत्न" नामक तीन ग्रंथों की रचना की है। इसके अतिरिक्त आपने नैषधचरित पर "गूढार्थप्रकाशिका" नामक टीका भी लिखी है।

लक्ष्मणभट्ट - वैष्णवों के निंबार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निंबार्क के 4 प्रमुख शिष्यों में से एक। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर एक स्वतंत्र सूक्ष्म वृत्ति लिखी है।

लक्ष्मण भास्कर - समय- ई. 14 वीं शती। रचना-मतंगभरतम्।

लक्ष्मण माणिक्य - ई. 16 वी शती। नोआखली के नरेश। कृतियां- विख्यातविजय तथा कुवलयाश्वचरित (नाटक) और "सत्काव्य-रत्नाकर" नामक सुभाषितसंग्रह।

लक्ष्मण शास्त्री - नागौर निवासी। रचना- श्रीविष्णुचतुर्विंशत्यवतारस्तोत्र (चित्रकाव्य)। विष्णु के 24 अवतारों का वर्णन भागवत (2-7) के अनुसार। अतिरिक्त रचनाएं विष्णुचरित्रामृत, विष्णुस्तवषोडशी, श्रीहरिद्वादशाक्षरस्तोत्र, श्रीरामविवाह, श्रीरामपाद-युगुलीस्तव और श्रीहरिस्तोत्र।

लक्ष्मणसूरि - "भारतचपूतिलक" नामक काव्यग्रन्थ के प्रणेता। ये ई. 17 वी शती के अंतिम चरण मे विद्यमान थे। ग्रंथ के अंत मे इन्होंने अपना अल्प परिचय दिया है। तदनुसार पिता- गंगाधर, माता-गंगाबिका।

लक्ष्मणसूरि (म.म.) - जन्म- तिन्नेवेल्ली जनपद (तमिलनाडु) के पुन्नाल ग्राम मे, सन् 1858 मे। सन् 1886 तक मद्रास के पचयप्पा संस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापन। सन् 1903 मे मैसूर के दीवान द्वारा "सूरि" की उपाधि प्राप्त। भारत सरकार द्वारा सन् 1916 मे "महामहोपाध्याय" की उपाधि। जीवन के अन्तिम चरण मे परिव्राजक बने और भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्म-दर्शन पर प्रवचन करने लगे।

पिता- मुथु भारती, संस्कृत तथा तमिल के विद्वान् लेखक थे। गुरु-सुब्बा दीक्षित। कृतियां- घोषयात्रा डिम (अपरनाम युधिष्ठिरानृशंस्य), दिल्लीसाम्राज्य तथा पौलस्त्यवध (नाटक), भीष्मविजय, भारतसंग्रह तथा नलोपाख्यानसंग्रह (गद्य), कृष्णलीलामृत (महाकाव्य), जार्ज-शतक (काव्य), अनर्घराघव, उत्तररामचरित, वेणीसंहार तथा बालरामायण पर टीकाएं। "दिल्ली-साम्राज्य" नामक नाटक सन् 1912 मे मद्रास से मुद्रित।

लक्ष्मी - ई. 19 वीं शती। निवासस्थान- मलबार के एकावल कोविलग्राम मे। रचना- सन्तानगोपाल नामक 3 सर्गो का काव्य। श्रीकृष्ण द्वारा एक मृत ब्राह्मण-पुत्र को जीवित करने की कथा। तीसरे सर्ग में यमकबन्ध है।

लक्ष्मीकान्तैया - एम्.ए., संस्कृत प्राध्यापक, निजाम महाविद्यालय हैदराबाद। रचना- कीर-सन्देश। सर्वजनपुस्तकमाला से प्रकाशित।

लक्ष्मीदत्त - ई. 13-14 वीं शती। "पाण्डवचरित" नामक महाकाव्य के प्रणेता। इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के ग्रंथालय में उपलब्ध है। सर्गान्त की पुष्पिका मे "श्री लक्ष्मीनारायणराय वाजपण्डित कविडिण्डिम श्रीलक्ष्मीदत्त" इन शब्दो में लेखक ने अपना परिचय दिया है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि मैथिली लिपि में है।

लक्ष्मीधर - ई. 11 वीं शती। जन्मस्थान- भट्टांकित कोसल-ग्राम (जिला-बोगरा, उत्तर बंगाल) "चक्रपाणि-विजय" महाकाव्य के प्रणेता।

लक्ष्मीधर - विजयनगर के तिरुमलराय (ई. स. 1570-73) के आश्रित। अपनी गीत-गोविन्द की टीका मे इन्होंने राग-दीपिका, रागलक्ष्मी-विलास, वामदेवीय, तथा प्रताप-नृपति के संगीत चूडामणि का उल्लेख किया है। अन्य रचना- भरत-शास्त्रग्रंथ।

लक्ष्मीधर भट्ट - राजधर्म के निबंधकार। कान्यकुब्जेश्वर जयचंद्र के पितामह गोविंदचंद्र के महासंधिविग्रहिक (विदेश मंत्री)। समय- ई. 12 वी शती का प्रारंभ। इनका ग्रंथ "कृत्यकल्पतरु", अपने विषय का अत्यंत प्रामाणिक व विशालकाय निबंध-ग्रंथ है। यह 14 कांडो मे विभाजित है किन्तु अब तक सभी कांड प्रकाशित नही हो सके है।

लक्ष्मीनारायण (भण्डारू) - पिता- भण्डारू विट्ठललेश्वर। माता-रूक्मिणी। भारद्वाज गोत्र। विजयनगर के सम्राट् कृष्णदेवराय (सन् 1509 से 1529) के "वाग्गेयकार" अर्थात् कवि तथा संगीतरचनाकार। इन्हें सम्राट् की ओर से सोने की पालकी, मोतियो का पंखा तथा हाथी मिले थे। गुरु-विष्णुभट्टारक। रचना - संगीत-सूर्योदय।

लक्ष्मीनारायण राव - ई. 20 वीं शती। वेंकटेश्वर वि.वि. तिरुपति मे तेलगु भाषा के प्राध्यापक। "धर्मरक्षण" नामक संस्कृत नाटक के प्रणेता।

लगध - इन्होंने "वेदांग ज्योतिष" नामक ग्रंथ की रचना की है। 36 श्लोको वाले इस ग्रंथ में तिथि, नक्षत्र निकालने की सरल पद्धति का विवेचन है। वेदांग ज्योतिष के कालखंड के बारे मे पाश्चात्य पंडितों में काफी मतभेद है। मैक्समूलर इसका कालखंड ईसा पूर्व तीसरा शतक मानते हैं व वेबर ईसा पूर्व 5 वें शतक का उल्लेख करते हैं। श.बा. दीक्षित के मतानुसार यह काल ईसा पूर्व 1400 होना चाहिये। लगध के चरित्रविषयक जानकारी अनुपलब्ध है। मौखिक गणित करनेवाले प्राचीन ज्योतिषियों मे इनकी गणना की जाती है।

लघुअनन्तवीर्य - सिद्धिविनिश्चय के टीकाकार अनन्तवीर्य के उत्तरवर्ती होने के कारण इन्हें लघु अनन्तवीर्य कहा जाता है।

आपने प्रभाचन्द्र का उल्लेख किया है। अतः समय ई 11 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध होना चाहिये। रचना- "प्रमेयरत्नमाला" जिसमें प्रमाण और प्रमाणाभास का प्रतिपादन है। हेमचंद्र की प्रमाणमीमांसा प्रस्तुत प्रमेयरत्नमाला से पूर्णत प्रभावित है।

लघुसमन्तभद्र - अपरनाम-कुलचन्द्र उपाध्याय। वंश ब्राह्मण। समय- ई. 13 वीं शती। ग्रंथ- विद्यानद की अष्टसहस्री पर विषमतात्पर्यवृत्ति नामक टिप्पण।

लबऐंद्र - ऋग्वेद के 10 वें मडल के 119 वें सूक्त के द्रष्टा। आत्मा की स्तुति इस सूक्त का विषय है और छंद गायत्री है। "बृहद्देवता" के अनुसार इन्द्र को लबऋषि के रूप में सोमरस का पान करते हुए ऋषियों ने देखा। सोमपान से मदोन्मत्त शरीरावस्था और पराक्रम का वर्णन इस सूक्त मे किया गया है।

ललितकीर्ति - जैनधर्मी काष्ठासंघ माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक आचार्य। दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टधर। मन्त्र-तन्त्रवादी। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा सम्मानित। रचनाए- महापुराण टीका (तीन खण्ड) तथा 24 कथाए।

ललितमोहन - मृत्यु- सन् 1972 के लगभग। पुराणपुर ग्राम (जिला-बर्दवान, बगाल) के निवासी। काव्यतीर्थ, व्याकरणतीर्थ व स्मृतितीर्थ। "कविभूषण" की उपाधि से विभूषित। "देवीप्रशस्ति" नामक नाटक के प्रणेता।

लल्ल - "शिष्यधीवृद्धिद-तंत्र" नामक प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्रीय ग्रथ के प्रणेता जिसमें एक सहस्र श्लोक हैं, जिसका संपादन सुधाकर द्विवेदी द्वारा किया गया है और जो 1886 ई में बनारस से प्रकाशित हुआ है। इनके समय के बारे में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। म म पडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार इनका समय 5 वीं शती है पर शकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय छठी शती मानते हैं। "खडखाद्यक" की टीका (ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी द्वारा रचित ग्रथ) की भूमिका मे प्रबोधचंद्र सेनगुप्त इनका समय 670 शक मानते हैं, जिसका समर्थन डा गोरखप्रसाद ने भी किया है। लल्ल ने ग्रंथ-रचना का कारण देते हुए बताया है कि आर्यभट्ट अथवा उनके शिष्यों द्वारा लिखे गए ग्रथों की दुरूहता के कारण, इन्होंने विस्तारपूर्वक (उदाहरण के साथ) कर्मक्रम से इस ग्रथ की रचना की है।

मध्यमाधिकार "पाटी-गणित" एव "रत्नकोश" नामक अन्य दो ग्रथ भी इनके हैं पर वे प्राप्त नहीं होते।

ललितमोहन भट्टाचार्य - ई 19 वीं शती। पूर्वस्थली (बगाल) के निवासी। कृति- "खाण्डव-दहन" महाकाव्य।

लीला राव दयाल - इ. २० वा शती। पडिता क्षमादेवी राव की पुत्री। पति-हरीश्वर दयाल माथुर (शासकीय वैदेशिक सेवा में)। संस्कृत-लेखन की प्रेरणा माता से प्राप्त। क्षमा राव की अनेक कथाओं को नाट्यरूप दिया। आधुनिक शैली में सामाजिक समस्याओं पर लेखन।

नाट्यरूप कृतियां- गिरिजायाः प्रतिज्ञा, बालविधवा, कटुविपाकः, होलिकोत्सव, क्षणिक-विभ्रम, गणेशचतुर्थी, असूयिनी, मिथ्याग्रहण, कपोतालय, वृत्तशंसिच्छत्र, वीरभा, तुकारामचरित, ज्ञानेश्वरचरित और जयन्तु कुमाउनीयाः।

लोंढे, गणेशशास्त्री - ई 20 वीं शती। पुणे के प्रसिद्ध सस्कृताध्यापक। पिता-पांडुरंग। कृतियां- भूपो भिषक्त्वं गत (एकाकी), संस्कृत-प्रवेश, सुबोध-सस्कृत-संवाद, सुभाषित रत्नमजूषा व सुपठव्याकरण (मराठी पद्यों में सस्कृत के नियम)।

लोकनाथ भट्ट - ई 17 वीं शती का पूर्वार्ध। पिता-वरदार्य या कविशेखर विश्वगुणादर्श के रचयिता वेंकटाध्वरी के मामा थे। रचना- "कृष्णाभ्युदय" नामक प्रेक्षणक।

लोलिंबराज कवि - आयुर्वेद-शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ "वैद्यजीवन" के प्रणेता। जुन्नर (महाराष्ट्र) के निवासी। समय- 17 वीं शती। पिता-दिवाकर भट्ट। इन्होंने "वैद्यावतंस" नामक एक अन्य ग्रंथ की भी रचना की है। इनके "वैद्यजीवन" की विशेषता यह है कि उसकी रचना सरस एवं ललितमनोहर शैली में हुई है, रोग व औषधि का वर्णन इन्होंने अपनी प्रिया को संबोधित कर किया है और इसमें शृगार रस की प्रधानता है। इसका हिन्दी अनुवाद कालीचरण शास्त्री ने किया है। इनकी अन्य रचनाएं मराठी भाषा में है।

लौगाक्षी - ई 10 वीं शती के शतशाखाध्यायी सामवेदी आचार्य। पौष्यंजी इनके गुरु थे। अशौच व प्रायश्चित्त-विषय पर इनके श्लोक मिताक्षरा में दिये गये हैं। आपने योग और क्षेम की व्याख्या कर दोनों में अभिन्नत्व प्रतिपादित किया है। आपने आर्षाध्याय, उपनयनतत्र, काठक गृह्यसूत्र, प्रवराध्याय व श्लोक-दर्पण नामक ग्रथों की रचना की है।

लौगाक्षी भास्कर - ई 17 वीं शती। "लौगाक्षी" इनका उपनाम है। पिता-मुद्गल व गुरु जयराम न्यायपचानन। आपने "न्यायसिद्धान्तदीप" और मीमासाशास्त्र पर "अर्थसग्रह" नामक दो ग्रथों की रचना की है।

वंगसेन - ई 11 वीं शती। पश्चिम बगाल स्थित 'काजिक' ग्राम के निवासी। वैद्य गगाधर के पुत्र। कृतिया- चिकित्सा-सार-संग्रह (वैद्यकविषयक) और आख्यानवृत्ति (व्याकरण)।

वंगेश्वर - तजौर नरेश तुकोजी भोसले के आश्रित। 17 वीं शती। तुकोजी द्वारा अपमानित होने पर अन्यत्र प्रस्थान किया और वहा से राजा और भैंसे का साम्य सूचित करने वाला व्याजस्तुतिपर शतक काव्य माहिशशतकम् राजा को भेंट किया।

वंदारुभट्ट - ई. 19 वीं शती का पूर्वार्ध। माता- श्रीदेवी, पिता- नीलकण्ठ। कोचीन नरेश के आश्रित। श्रीहर्ष के 'नैषध-चरितम्' का क्लिष्टत्वरहित अनुकरण इस काव्य की

वंशगोपाल शास्त्री - रचनाएं- चेतना क्वास्ते तथा शुक्रलोक-यात्रा। ये दोनों रचनाए डा राघवन द्वारा उल्लिखित तथा सस्कृत साहित्य पत्रिका एव सस्कृतम् मे प्रकाशित।

वंशमणि - ई 17 वीं शती। नेपाल में गजा प्रतापमल्ल का आश्रय प्राप्त। पिता- रामचद्र। मैथिल ब्राह्मण। रचना- गीतदिगम्बर। इस की अष्टक रचनाए नेपाल में मदिरों की दीवारों पर अंकित की हैं।

वंशीधर शर्मा - भावार्थप्रदीपिका- प्रकाश (वशीधरी) नामक भागवत की विशालकाय टीका के लेखक। कौशिक गोत्री गौड-वशी ब्राह्मण। नाभा-नरेश हीरासिग के आश्रित। इनकी 'वशीधरी', इनके जीवन-काल ही में वेकटेश्वर प्रेस मुबई मे 1945 विक्रमी (1888 ई) मे प्रकाशित हुई थी। अत इनका समय ई 19 वी शती का उत्तरार्थ (लगभग 1828 ई - 1890 ई) है। 'वशीधरी' के उपसहार के परिचय-पद्यो से पता चलता है कि आप हिमालय प्रदेश के 'खरड' नामक ग्राम मे निवास करते थे जो हिमालय के पश्चिम में स्थित है। इनकी वश-परपरा इस प्रकार है - बलराम शर्मा भृधर- गौरीप्रसाद- सुखदेव शर्मा- गजराज शर्मा- निक्काराम- वशीधर शर्मा- लक्ष्मीनारायण।

आपकी वशीधरी अलौकिक पाडित्य से पूर्ण तथा प्राचीन आर्ष ग्रथो के उद्धरणो से परिपुष्ट है। इसमे अनेक शकाओ का भी समाधान किया गया है। वेद-स्तुति की व्याख्या 5 प्रकार से करना, आपके प्रकाड पाडित्य का प्रमाण है। नि सदेह यह एक सिद्ध टीका है। इसके द्वारा श्रीधर स्वामी को भावार्थ-दीपिका (श्रीधरी), वास्तव ही में प्रकाशित हुई है। स्तुतियों की टीका मे इनका दार्शनिक पाडित्य भी पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। वास्तविकता से दूर होते हुए भी, वशीधर, श्रीमद्भागवत तथा देवीभागवत को ही समानरूपेण महापुराण अगीकार करते हैं। आप भागवत म 335 अध्याय और 18 हजार पूरे श्लोक मानते है। गिनती करके सिद्ध भी किया है। प्रकाड पाडित्य के साथ विनम्रता आपका एक वैशिष्ट्य है।

वज्रदत्त - महाराज देवपाल (नवम शती) के आश्रित कवि। रचना- लोकेश्वर शतक (अवलोकितेश्वर बुद्ध का स्तवन)।

वझे, भाऊशास्त्री - समय 20 वी शती। वाराणसी एव नागपुर मे निवास। रचना- काशीतिहास। वाराणसी निवासी प्रख्यात पण्डित तथा श्रेष्ठ प्रवचनकार। वेदकाल से स्वातत्र्य पर्यन्त काशीसम्बधी समग्र इतिहास इन्होंने अपने ग्रथ में सक्षेप मे दिया है।

वत्सकाण्व - ऋग्वेद के आठवें मडल के छठे सूक्त के द्रष्टा। पिता का नाम कण्व। सूक्त में इन्द्र व तिरिदर की स्तुति की गयी है। तिरिदर, पर्शुदेश अर्थात् ईरान का राजा था। इस कारण भौगोलिक दृष्टि से इनके सूक्त को विशेष

वत्सभट्टि - इनके द्वारा प्रणीत कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, एकमात्र 'मदसौर- प्रशस्ति' प्राप्त होती है जो कुमारगुप्त के राज्यकाल में उत्कीर्णित हुई थी। इस प्रशस्ति का रचना-काल मालव-सवत् 529 है। इसमें रेशम-बुनकरों द्वारा निर्मित एक सूर्य-मदिर का वर्णन किया गया है जिसका निर्माण 437 ई. और जीर्णोद्धार 473 ई में सपन्न हुआ था। इस प्रशस्ति में 44 श्लोक हैं।इसके प्रारंभिक श्लोकों में भगवान् भास्कर की स्तुति एव बाद में दशपुर (मदसौर) का मनोरम वर्णन है। पश्चात् वत्सभट्टि ने तत्कालीन नरेश नरपति बधुवर्मा का प्रशस्ति-गान किया है जिनका समय ई 5 वीं शती है। यह प्रशस्ति काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उच्च कोटि की है। इस पर महाकवि कालिदास की छाया परिलक्षित होती है।

वत्सराज - नाटककार। कालिजर-नरेश परमर्दिदेव के मत्री। समय 1163 ई से 1203 ई का मध्य। इनके द्वारा रचित 6 नाटक प्रसिद्ध हैं। कर्पूरचरित (भाण), किरातार्जुनीय (व्यायोग), रुक्मिणी- हरण (ईहामृग), त्रिपुर-दाह (डिम), हास्यचूडामणि (प्रहसन) और समुद्रमथन (तीन अको वाला समवकार)। इनके रूपको (नाटको) में क्रियाशीलता, रोचकता तथा घटनाओं की प्रधानता स्पष्टत दीख पडती है।

वनमाली मिश्र - (1) ई 17 वीं शती। माध्व सम्प्रदाय के एक वेदान्ती आचार्य। वेदान्त- सिद्धान्त- सग्रह नामक ग्रंथ के रचयिता। इस ग्रथ में मध्वसम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की जानकारी दी गयी है। आपके अन्य ग्रथ हैं- माध्व मुखालकार, न्यायामृत-सौगन्ध, वेदान्तसिद्धान्त- मुक्तावली, श्रुतिसिद्धान्तप्रकाश, विष्णुतत्त्वप्रकाश, तरगिणीसौरभ, भक्तिरत्नाकर और प्रमाणसग्रह।

(2) ई 17 वीं शती में भट्टोजी दीक्षित के शिष्य के रूप में ख्यातिप्राप्त ग्रथकार जिन्हें कृष्णदत्त मिश्र नाम से भी जाना जाता था। आपने जिन पाच ग्रथों की रचना की, वे हैं - 1 कुरुक्षेत्रप्रदीप, 2 सर्वतीर्थ प्रकाश, 3 सध्यामत्रव्याख्या, 4 वैयाकरण- मतोन्मजना तथा 5 सिद्धान्ततत्त्वविवेक।

वर्णेकर, श्रीधर भास्कर - जन्म 31 जुलाई 1918। नागपुर में माध्यमिक और उच्च शिक्षा का अध्ययन। सन 1938 में काव्यतीर्थ। 1941 में एम.ए. (सस्कृत)। 1945 में एम ए (मराठी), 1966 में "अर्वाचीन संस्कृत साहित्य" इस प्रबन्ध पर नागपुर विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उच्चतम उपाधि प्राप्त। अध्यापन- धनवटे नेशनल कॉलेज में 1941 से 59 तक, बाद में नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में नियुक्ति। 1970 से 1979 तक सस्कृत विभागाध्यक्ष। सेवानिवृत्ति के बाद प्रस्तुत सस्कृत वाङ्मय कोश के संपादन का निर्वेतन कार्य। संस्कृत के क्षेत्र में विविध प्रकार के दायित्व डा. वर्णेकर ने सम्हाले। 1950 से 56 से नागपुर में संस्कृत

भवितव्यम् एवं राष्ट्रशक्ति (मराठी) साप्ताहिक तथा योगप्रकाश (मराठी मासिक) के संपादक। 1952 से संस्कृत विश्व परिषद् (कुलपति कन्हैयालाल मुन्शी द्वारा सस्थापित) के अ भा संगठन मन्त्री। 1956 में पुराने मध्यप्रदेश शासन के संस्कृत पाठशाला पुनर्गठन समिति के सदस्य। 1953 में युनेस्को द्वारा प्रवर्तित अ.भा.सस्कृत कथा-स्पर्धा के सयोजक। 1973 से 83 तक महाराष्ट्र राज्य की संस्कृत समिति के सदस्य। भारत सरकार की तांत्रिक एवं वैज्ञानिक परिभाषा समिति के सदस्य। साहित्य अकादमी की जनरल कौन्सिल तथा सस्कृत समिति के 1973 से दस साल नक सदस्य। 1973 में शिवराज्योदय महाकाव्य (68 सर्ग) पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त। 1983 में श्रीराम संगीतिका (गीतिनाट्य) पर मध्यप्रदेश शासन का अ भा. कालिदास पुरस्कार प्राप्त। 1983 में न्यूयार्क की संस्कृत परिषद् में भारत के प्रतिनिधि। 1961 और 82 मे आकाशवाणी के अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में संस्कृत काव्यगायन। इसके अतिरिक्त डा वर्णेकर नागपुर की अनेक सास्कृतिक सस्थाओ के अध्यक्ष रहे। भारत के अन्यान्य प्रातों में आयोजित सस्कृत परिषदों का अध्यक्षपद आपने विभूषित किया और अपने प्रचार कार्य में सैकडो स्थानों पर सस्कृत भाषा में व्याख्यान दिए। डा. श्री भा वर्णेकर के प्रकाशित ग्रथ- (संस्कृत में) - (1) मन्दोर्मिमाला (छात्रावस्था में लिखित मुक्तक काव्यों का सग्रह) (2) महाभारत कथा (तीन भाग), (3) सस्कृतनाट्यप्रवेशा, (4) प्रश्नावलीविमर्श- (भारत सरकार के सस्कृत आयोग की प्रश्नावली के उत्तरार्थ-निबध), (5) जवाहर-तरगिणी (खडकाव्य)। (6) विनायक-वैजयन्ती (खंडकाव्य- स्वातत्र्यवीर सावरकरविषयक)। (7) कालिदास रहस्य (खडकाव्य), (8) रामकृष्ण-परमहसीयम् (खडकाव्य)। (9) वात्सल्यरत्रम् (कृष्णलीलाशतक), (10) शिवराज्योदय (68 सर्ग 4 हजार श्लोक) महाकाव्य- साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त), (11) विवेकानद- विजय (10 अकी नाटक)। (12) शिवराज्याभिषेक (7 अकी नाटक)। (13) श्रीरामसगीतिका (गीतिनाट्य) 11 अकी (म प्र शासन का कालिदास पुरस्कार प्राप्त) (14) श्रीकृष्ण-सगीतिका (गीतिनाट्य- 8 अकी)। (15) श्रमगीता।

(16) सघगीता। (17) ग्रामगीतामृतम् (41 अध्याय)। (18) तीर्थभारतम् (गीति महाकाव्य- न्यूर्याक की सस्कृत परिषद में प्रकाशित)। इनमें से कुछ काव्यो के अन्यान्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

मराठी में प्रकाशित ग्रंथ - (1) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य (बृहत्प्रबंध) (2) अभंगधर्मपद (धम्मपद का अभग छन्द में गेय रूपांतर)। (3) सुबोधज्ञानेश्वरी। (4) भारतीय धर्म-तत्त्वज्ञान (प्रबध)।

हिन्दी में- भारतीयविद्या (प्रबंध)। इसके अतिरिक्त अनेक अप्रकाशित लेख।

वरकर कृष्ण मेनन - त्रिचूर (कोचीन) निवासी, रचनाएं- गाथाकादम्बरी (बाणभट् की कादम्बरी का पद्य रूप) और टॉमसनकृत दो अग्रेजी काव्यो का संस्कृत अनुवाद।

वरद कृष्णम्माचार्य - वालतूर (तजौर) निवासी। समय- ई 19 वीं शती। रचना- कचशतक और विधवाशतक।

वरदराज - तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्यकार वरदराज दाक्षिणात्य थे। पिता- वामनाचार्य। पितामह- अनन्तनारायण। इन्होंने सामवेदीय कई सूत्रों पर वृत्ति वा भाष्य लिखे हैं किन्तु उनका कोई भी हस्तलेख अभी तक नहीं मिला।

वरदराज - (1) ई 16 वीं शती। मीमांसादर्शन के प्राभाकर-मतानुयायी आचार्य। आपने भवनाथ मिश्र के न्यायविवेक ग्रंथ पर दीपिका और अर्थदीपिका नामक टीकाएं लिखी हैं। पिता- रगनाथ। गुरु- सुदर्शन। आप ज्योतिष, व्याकरण और आयुर्वेद शास्त्र के भी पडित थे।

(2) 'व्यवहारनिर्णय' ग्रंथ के रचयिता वरदराज के काल के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई उन्हें ई 12 वी शती का और कोई ई. स 1450-1500 के कालखण्ड का मानते हैं। उक्त ग्रथ दक्षिण भारत में प्रमाणभूत माना जाता है।

(3) भट्टोजी दीक्षित के एक शिष्य का नाम वरदराज था जिनका उपनाम दीक्षित था। आपने सिद्धान्त कौमुदी पर आधारित मध्यसिद्धान्तकौमुदी व लघुसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रंथ लिखे हैं। 'गीर्वाणपदमंजरी' नामक एक अन्य ग्रथ भी आपने लिखा है जिसमें काशी के अनेक घाटों के नाम दिये गये हैं।

वरदाचार्य - ई. 17 वीं शती। जन्म-रामानुजाचार्य के वश में, काचीपुरी में। रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी। उपनाम- अम्मल आचार्य। पिता- घटिकाशत सुदर्शन, एक घटिका में सौ पद्य लिख सकने के कारण वे 'घटिकाशत' नाम से विख्यात थे। रचनाए- यतिराजविजय, वेदान्तविलास और वसन्ततिलक (भाण)। भाण की रचना, रामभद्र के श्रृगारतिलक-भाण को नीचा दिखाने के लिये इन्होंने की थी।

वरदाचार्य - वेंकटदेशिक के पुत्र। रचना- कोकिलसन्देश नामक दूतकाव्य।

वरदादेशिक - ई. 17 वी शती। पिता- श्रीनिवास। रचनाए- लक्ष्मीनारायणचरित, वराहशतक, धल्लीशतक, गद्यरामायण, रघुवीरविजय और रामायणसंग्रह।

वररुचि - एक वैयाकरण। इनके कालखण्ड के बारे में काफी मतभेद है। कोई इन्हें ई 4 थी तो कोई 5 वीं शती का मानते हैं। प. भगवद्दत्त के अनुसार ये ई. प्रथम शती मे हुए जब कि श्री विल्सन इन्हें ई पूर्व प्रथम शती का मानते हैं। सामान्यतया इनका कालखण्ड पाणिनि के बाद और पतजलि के पूर्व का मानने की प्रवृत्ति है। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश

के कर्ता डा. केतकर इन्हें पाणिनि के समकालीन मानते हैं। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिकों की रचना वररुचि की मानी जाती है। इस कारण पाणिनि की अष्टाध्यायी समझने का मार्ग प्रशस्त हो सका। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके 5032 वार्तिकों का समावेश किया है। कैयट ने इनके अन्य 34 वार्तिकों का उल्लेख किया है। इनके बारे में कहा जाता है कि ये ऐन्द्र नामक प्राचीन व्याकरण शाखा के अनुयायी थे। उणादिसूत्र व कातंत्रकृति की रचना का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है।

"प्राकृत-प्रकाश" इनका महत्त्वपूर्ण व्याकरण-ग्रंथ है। यह ग्रंथ दक्षिण में काफी प्रचारित हुआ। ग्रथ के 12 परिच्छेद हैं। 9 वें परिच्छेद में शौरसेनी, 10 वें में पैशाची व 11 वें परिच्छेद में मागधी के लक्षण बताये गये हैं।

'कथासरित्सागर' में इनके जन्म-विषयक कथा इस प्रकार बतायी गयी है .-

(1) भगवान् शिव जब पार्वती को एकात में सात विद्याधरों की कहानी सुना रहे थे तब पुष्पदंत नामक शिवगण ने चोरी-छिपे वह कहानी सुन ली और घर आकर अपनी पत्नी को सुनायी। उसकी पत्नी ने वह कहानी जब फिर से पार्वती को सुनाई तो इस रहस्यभेद से कुपित होकर पार्वती ने पुष्पदत को शाप दिया कि 'तू मनुष्य लोक में जन्म लेगा'। शाप सुनकर पुष्पदत की पत्नी घबरायी और पार्वती से क्षमा याचना करने लगी। पार्वती ने दया-भाव से उसे कहा कि जब पुष्पदत काणभूति नामक पिशाच को पुन वही कथा सुनायेगा, तब यह शाप दूर होगा।

(2) कौशाम्बी नगर के सोमदत्त ब्राह्मण को उसकी भार्या वसुदत्ता से एक पुत्र हुआ। यही था शाप से मर्त्य हुआ पुष्पदन्त जो आगे चल कर वररुचि नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके जन्म के समय आकाशवाणी हुई कि यह बालक व्याकरण शास्त्र को प्रतिष्ठित करेगा। पिता का देहान्त वररुचि के बाल्यकाल में ही हुआ। तब उसकी मा बडे कठिन परिश्रम से अपने बच्चे का भरण पोषण करती रही। एक बार उनके यहा लम्बा मार्ग आक्रमण कर थक हुये दो ब्राह्मण आए तथा रात्रि के विश्राम के लिये ठहरे। उन्हें ज्ञात हुआ कि वररुचि "एकश्रुतधर" (एक वक्त सुनकर धारण करनेवाला) है। उन्होंने इसकी जांच की तथा उन्हें बालक के मेधावी होने का विश्वास हुआ।

इससे आनन्दित हो उन्होंने वररुचि की मा से प्रार्थना कर तथा उसे प्रभूत धन देकर अपने साथ लिया तथा वहा से चले गए। यह दो ब्राह्मण व्याडि तथा इन्द्रदत्त थे। उन्हें वर्ष नामक विप्र से पाटलीपुत्र में विद्याध्ययन करना था परन्तु वर्ष की शर्त थी कि वह एकश्रुतधर को ही ज्ञान देंगे। व्याडि स्वयं दो वक्त सुनकर तथा इन्द्रदत्त तीन वक्त सुनकर धारण कर सकते थे। अब उन्हें एक श्रुतधर भी मिल गया था। अत. वे वर्ष के यहा पहुचे तथा इन्होंने अपना अध्ययन प्रारम्भ किया। यथासमयतीनों ने वर्ष से सर्व विद्या संपादन की।

3) समय के साथ साथ आचार्य वर्ष का शिष्य संप्रदाय भी बढता गया। उनके शिष्यों में एक पाणिनि नाम का अति जडबुद्धि शिष्य था। गुरु तथा गुरुपत्नी की सेवा उसे भारस्वरूप लगती थी। इसलिये गुरुपत्नी ने उसे अपने आश्रम से भगा दिया। पाणिनि बडा खिन्न हुआ तथा विद्याप्राप्ति की अभिलाषा से उग्र तप करने लगा। उसके तप से प्रसन्न हो भगवान् शकर ने उसे सब विद्याओं का मुख, व्याकरण शास्त्र नये सिरे से रचकर उपदिष्ट किया। यह नया शास्त्र पाकर पाणिनि वररुचि को आह्वान देकर, उससे वाद करने लगा। सात दिन तक वाद चला। आठवें दिन पाणिनि हारने लगा यह देखकर शिव ने हुकार किया जिससे ऐन्द्र व्याकरण लुप्त हो गया तथा वररुचि, जीते हुये पाणिनि के सामने मूर्ख सिद्ध हुआ।

पराजित वररुचि जीवित तथा गृहस्थ जीवन से ऊबकर माता और पत्नी की उचित व्यवस्था कर तप से शिव को प्रसन्न करने हिमालय में चला गया। निराहार रहकर उसने उग्र आराधना की। प्रसन्न होकर शिव ने उसे पाणिनि को उपदिष्ट किया हुआ व्याकरण ही दिया। वररुचि ने उसे पाकर अपनी वार्तिक रचना से उस शास्त्र को पूर्ण किया। वह कात्यायन नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

कथा -4) व्याडि, इन्द्रदत्त तथा वररुचि अपने गुरुवर्य के पास गए तथा उनसे गुरुदक्षिणा क्या दी जावे यह पूछा। गुरु ने एक कोटि स्वर्णमुद्राए मागी। इतना धन पास न होने पर पाटलीपुत्र के नन्दराजा से मागने का निश्चय कर वे तीनों चले गये। पाटलीपुत्र पहुचने पर उन्हे पता चला कि राजा की मृत्यु हो गई है। तब इन्द्रदत्त राजा के मृत शरीर में प्रविष्ट हुआ तथा अपने मृत शरीर की रक्षा करने व्याडि से कहा। वह एक दिन नन्द के पास गया तथा उससे गुरुदक्षिणा के हेतु एक कोटि स्वर्ण मुद्राए मागी। राजा ने (जिसके मृत शरीर में इन्द्रदत्त ने प्रवेश किया था।) त्वरित वह धन दिया। व्याडि ने वह गुरु को अर्पण किया।

इधर नन्द के मन्त्री ने साशक होकर इन्द्रदत्त का निश्चेष्ट शरीर नष्ट करवा दिया जिससे इन्द्रदत्त राजा नन्द के ही शरीर मे रहा। इस नन्द के राज्य से समाधान न पाकर, इन्द्रदत्त और वररुचि से बिदा होकर व्याडि तप करने चला गया। इधर वररुचि को नन्द ने अपना मन्त्री बनाया। कुछ समय आनन्द से व्यतीत होने पर नन्द ने वररुचि की हत्या का आदेश दिया, क्योंकि उसे सशय हुआ कि वररुचि अन्त पुर में जाकर रानियों से सम्पर्क रखता है। युक्तिप्रयुक्ति से उसकी जान बच पायी तथा वररुचि निर्विण्ण होकर अपनी पत्नी तथा मां के पास चला गया। वहा उसे ज्ञात हुआ कि उसकी मृत्यु की वार्ता से उसकी मा तथा रानी ने देहत्याग किया है। तब

वह पूर्ण विरक्त होकर विन्ध्याटवि में प्रविष्ट हुआ। वहां काणभूति पिशाच से भेट होने पर, उसे अपने शाप तथा पूर्वजन्म का स्मरण हो आया।

अन्त में वररुचि ने शिव से सुनी हुई कथा काणभूति को बताई तथा उसे वह गुणाढ्य के रूप में वर्तमान माल्यवान् को बताने के लिये कहकर स्वयं शापमुक्त हुआ और शिवगणों में सम्मीलित हुआ। वररुचि ने अपना गोत्र कात्यायन बताया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन और वार्तिककार वररुचि दोनों एक ही व्यक्ति थे।

वररुचि - "निरुक्तनिश्चय" नामक ग्रंथ के लेखक। व्याकरणकार वररुचि से भिन्न। आप ने समग्र निरुक्त पर टीका न लिखते हुए, निरुक्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले लगभग 100 श्लोकों की रचना की है।

वराहमिहिर - भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अप्रतिम आचार्य। सन् 595 में उज्जयिनी के निकट कायथा नामक ग्राम में जन्म। "बृहज्जातक" इनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। इनके अन्य ग्रथ हैं- पंचसिद्धांतिका, बृहत्संहिता, लघुजातक, विवाह-पटल, योग-यात्रा व समय-सहिता। बृहज्जातक में इन्होंने स्वय के विषय में जो कुछ लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि इनका जन्म-स्थान कालपी या कापिल्ल था। अपने पिता आदित्यदास से इन्होंने ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था और उज्जैन जाकर "बृहज्जातक" का प्रणयन किया था। इन्हें महाराज विक्रमादित्य की सभा के (नवरत्नों) में से एक माना जाता है। इन्हें "त्रिस्कधज्योतिष का रहस्यवेत्ता तथा "नैसर्गिक कवितालता का प्रेमाश्रय" कहा गया है।

वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र को तीन शाखाओं में विभक्त किया। प्रथम को तत्र कहा है, जिसका प्रतिपाद्य है सिद्धातज्योतिष व गणित सबधी आधार। द्वितीय का नाम होरा है, जो जन्मपत्र से सबद्ध है। तृतीय को संहिता कहते हैं, जो भौतिक फलित ज्योतिष है। इनके "बृहत्संहिता", फलित ज्योतिष की सर्वमान्य कृति है। इनके ग्रंथों की काव्यमय शैली से, ये उच्च कोटि के कवि भी सिद्ध होते हैं। डा ए. बी कीथ ने अपने "संस्कृत साहित्य के इतिहास" में इनकी अनेक कविताओं को उद्धृत किया है। इनकी असाधारण प्रतिभा की प्रशंसा पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है।

इन्होंने अपने "पंचसिद्धान्तिका" ग्रंथ में शकसंवत् 427 को आरंभ वर्ष माना है। कुछ पंडित उसे ही उनका जन्म वर्ष मानते हैं। ब्रह्मगुप्त टीकाकार आमराज के अनुसार, उनकी मृत्यु शके 509 में हुई।

इनका बृहत्संहिता ग्रंथ छंदोबद्ध है जिसके प्रथम 13 अध्यायों में सूर्यचन्द्रादि ग्रहों की गति व फलों, ग्रहणों आदि की जानकारी है। 14 वें अध्याय में भरतखण्ड के 9 विभाग तथा उनपर भिन्न-भिन्न नक्षत्रों के आधिपत्य, नक्षत्रव्यूह, ग्रहों के युद्ध एवं समागम, अदि फलों का विवेचन है। बाद के अध्यायों में वर्षफल, पर्जन्यगर्भ लक्षण, गर्भधारण, पर्जन्यवृष्टि मापक-रीति, संध्यासमय आकाश में दिखाई देने वाली रक्तिमा, दिग्दाह, भूकम्प या भूचाल, उल्का, परिवेष, इन्द्रधनुष्य आदि सृष्टि चमत्कारों, दिव्य, अंतरिक्ष व भौम इन तीन उत्पातों, भूगर्भजल की खोज, वास्तुप्रतिष्ठा, रत्न-परीक्षा आदि का विस्तृत विवेचन है।

पंचसिद्धान्तिका ग्रंथ में पितामह, वसिष्ठ, रोमक, पुलिश व सूर्य इन पांच प्राचीन सिद्धान्तों का सार दिया गया है। इसके अलावा त्रैलोक्यसंस्थान नामक पृथक् अध्याय भी इसी ग्रंथ में है।

विवाहपटल व योगयात्रा ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। बृहज्जातक में जन्म-काल की ग्रहस्थितियों के अनुसार व्यक्ति के सुखदुःखों-विषयक भविष्य जानने हेतु आवश्यक जानकारी दी गयी है। लघुजातक इसी का संक्षिप्त रूप है।

वर्धमान - "गणरत्न-महोदधि" के रचयिता। इस ग्रन्थ से ये वैयाकरणों में सुप्रसिद्ध हुए। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इन्होंने व्याकरण की भी रचना की थी और उसके अनुरूप गणपाठ श्लोकबद्ध कर उसकी व्याख्या की थी। वि सं 1150-1225। इन्होंने "सिद्धराज-वर्णन" नामक एक काव्य की भी रचना की थी।

वर्धमान - समय- ई 14 वीं शती। जैनधर्मी मूलसंघ, बलात्कारगण और भारतीगच्छ के आचार्य। धर्मभूषण के गुरु। विजयनगरवासी राजा हरिहर के मन्त्री। चैत्रदण्डनायक के पुत्र। रचना-वरांग-चरित महाकाव्य (13 सर्ग, 1313 श्लोक)।

वर्धमान - कातन्त्रपंजिका पर "कातन्त्र-विस्तर" नामक टीका के लेखक। वर्धमान की इस टीका पर पृथ्वीघर ने व्याख्या लिखी है। दुर्गवृत्ति पर काशीराज, लघुवृत्ति, हरीराम तथा चतुष्टयप्रदीप व्याख्याएं उल्लिखित हैं। कातन्त्र व्याकरण पर उमापति, जिनप्रभसूरि (कातन्त्रविभ्रम), जगद्धरभट्ट (बालबोधिनी) तथा पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर की टीकाएं उल्लिखित हैं। इनमें से कातन्त्रविभ्रम पर अवचूर्णि चारित्रसिंह ने लिखी है तथा बालबोधिनी पर राजानक शितिकण्ठ ने टीका रची है। यह अप्राप्य है।

वर्धमान सूरि - परमारवंशीय नगेन्द्रगच्छीय वीरसूरि के शिष्य। रचना- वासुपूज्य-चरित। काव्यरचना अणहिल्लपुर में स 1299 में हुई। ग्रंथ में अनेक चमत्कारपूर्ण उपकथाएं हैं।

वर्धमान सूरि - अभयदेव सूरि के शिष्य। ग्रंथ- धर्मरत्नकरण्डक (वि. स. 1172) स्वोपज्ञवृत्ति महती। अशोकचंद्र धनेश्वर, नेमिचन्द और पार्श्वचन्द्र द्वारा संशोधित।

वल्लभाचार्य - ई 12 वीं सदी। आपका "न्यायलीलावती" नामक ग्रंथ, वैशेषिक सिद्धांत का आगर है। उस पर अनेक टीकाएं हैं। उनमें शंकर मिश्र की "कंठाभरण", वर्धमानकृत

"प्रकाश" तथा रघुनाथ शिरोमणी की "दीधिति" नामक टीकाए प्रसिद्ध है।

वल्लभाचार्य - आचार्य वल्लभ के विस्तृत जीवन-चरित्र तथा उनके साक्षात् शिष्यो का परिचय, वल्लभसप्रदाय के विविध ग्रंथों से मिलता है। तदनुसार आचार्य वल्लभ का जन्म सं 1535 में मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के चपारन नामक स्थान में वैशाख कृष्ण एकादशी को हुआ। इनके पिता-लक्ष्मणभट्ट तलग ब्राह्मण थे। माता-एल्लम्मागारू। लक्ष्मणभट्ट काशी में हनुमानघाट पर रहते थे। यवनों के आक्रमण की आशका से काशी छोड कर दक्षिण जाते समय, मार्ग में ही वल्लभ का जन्म हुआ।

आचार्य वल्लभ की शिक्षा-दीक्षा, पठन-पाठन आदि सभी सस्कार काशी में ही सपन्न हुए। गोपाल कृष्ण इनके कुल-देवता थे। विद्या-वृद्धि के साथ ही इनकी आध्यात्मिकता में भी वृद्धि होती गई और इन्होंने भागवत के आधार पर एक नवीन भक्ति-सप्रदाय को जन्म दिया। यह सप्रदाय "पुष्टि-मार्ग" (वल्लभ-संप्रदाय) कहलाता है। दार्शनिक क्षेत्र में आचार्य वल्लभ का मत "शुद्धाद्वैत" के नाम से प्रसिद्ध है।

वल्लभ के जीवन की अधिकाश महत्त्वपूर्ण घटनाए काशी, अडेल (प्रयाग के यमुना पार का एक गाव) और वृदावन में घटित हुईं। इनकी मत्र-सिद्धि से दिल्ली का तत्कालीन बादशाह सिकदर लोदी इतना प्रभावित हुआ था कि उसने वैष्णव-संप्रदाय के साथ किसी भी प्रकार का जोर-जुल्म न करने की मुनादी फिरवा दी थी। उसी प्रकार ई स 1510 में अपने एक चित्रकार द्वारा आचार्य का एक चित्र बनवा कर दिल्ली के दरबार में लगवाया था। आगे चल कर बादशाह अकबर ने इनके सुपुत्र विठ्ठलनाथ की आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर, गोकुल तथा गोवर्धन की भूमि इन्हें दे दी, जहा सप्रदाय की ओर से अनेक मदिरों का निर्माण किया गया।

वल्लभाचार्य के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना, विजयनगर के महाराजा कृष्णदेव राय द्वारा विहित "कनकाभिषेक" है। इन्होंने कृष्णदेव राय की विशाल सभा में उपस्थित नास्तिकों को परास्त कर मायावाद का भी कुशलतापूर्वक खडन किया था। वल्लभ ने शुद्धाद्वैत का प्रतिष्ठापन, श्रुतियों एव युक्तियों के सहारे इतने प्रभावी ढग से किया कि उपस्थित विद्वानों को इनका पाडित्य स्वीकार करना पडा। राजसभा ने इन्हें "महाप्रभु" की उपाधि से सम्मानित किया। महाराजा ने भी "कनकाभिषेक" द्वारा इनका विशेष सत्कार किया। इन्होंने भारत के तीर्थों की अनेक बार यात्रा की और अपने मत का प्रचार किया। स 1549 (= 1492 ई) में ये व्रज मे भी पधारे और वहा अंबाले के एक धनी सेठ पूरनमल खत्री ने 1500 ई में श्रीनाथजी का एक मदिर बनवा दिया। वल्लभ ने यही रहकर पुष्टिमार्ग की अर्चा एव सेवा-विधि की व्यवस्था की। 52 वर्ष की आयु मे (1587 वि = 1530 ई मे) इन्होने काशी-धाम क हनुमान-घाट पर जल-समाधि ली। इनके वश में 100 सोमयाग किये गए थ। अत उनका वश "सोमयाजी" के नाम से प्रसिद्ध था।

वल्लभाचार्य का जन्म मध्यप्रदेश के एक घने जगल में हुआ। इस सम्बन्ध मे यह कथा बतलायी जाती है कि इनके पिता लक्ष्मण भट्ट और मा एल्लम्मागारू गोदावरी तट पर काकारवाड ग्राम मे सुखी दम्पती के रूप में रहते थे। इन्हें एक पुत्र व दो पुत्रिया थी। किन्तु वर्षों के बाद लक्ष्मण भट्ट को अकस्मात् गृहस्थजीवन के प्रति विरक्ति होने लगी और वे प्रेमकर नामक सत्पुरुष के आश्रम मे जाकर रहने लगे। उनसे गुरूपदेश ग्रहण किया। कुछ दिनों बाद लक्ष्मण भट्ट के पिता तथा पत्नी, उनकी खोज करते-करते प्रेमकर के आश्रम में जा पहुचे और लक्ष्मण भट्ट के पूर्वजीवन सबधी जानकारी देकर उन्हें पुन गार्हस्थ जीवन में लौटने हेतु प्रेमकर से अनुरोध किया। एल्लम्मागारू की गाथा सुन कर प्रेमकर द्रवित हुए और उन्होंने केवल लक्ष्मण भट्ट को पुन गार्हस्थजीवन में लौटने हेतु प्रेरित किया वरन् उनकी पत्नी को यह आशीर्वाद भी दिया कि वे शीघ्र ही एक अलौकिक पुत्र को जन्म देंगी। इस आशीर्वाद को पाकर दोनो ही हर्षित होकर पुन गार्हस्थ जीवन बिताने घर लौटे। कुछ दिनो बाद एल्लम्मागारू गर्भवती हुई। उन दिनों यह परिवार यात्रा पर निकला था। प्रयाग से काशी पहुचने पर उन्हे यह खबर मिली कि दिल्ली के मुगल सुलतान शीघ्र ही काशी पर आक्रमण करने वाले हैं। लोग काशी छोड कर भागने लगे। लक्ष्मण भट्ट भी अपने परिवार के साथ वापस लौटने लगे। रास्ते में मध्यप्रदेश के रायपुर के निकट चम्पारन के घने जगल में रात्रि के समय एल्लम्मागारू ने एक पुत्र को जन्म दिया, किन्तु दुर्भाग्य से वह मृत निकला। अत वहीं एक शमीवृक्ष के नीचे उसे गाड कर वे आगे बढे। दूसरे दिन जब वे अगले गाव पहुचे तो उन्हें यह पता लगा कि काशी पर सुलतान के हमलें की खबर अफवाह मात्र थी। अत उन्होंने पुन काशी जाने के इरादे से वही राह पकडी। रास्ते मे उस शमी-वृक्ष के पास उन्होने एक अजीब दृश्य देखा। जिस गड्ढे मे मृत बालक को गाडा गया था उस स्थान पर एक अग्निकुड मे बालक खेल रहा है। जैसे ही एल्लम्मागारू ने उस बालक को उठाने हाथ बढाये वह अग्निकुड बुझ गया और बालक उछलकर उनकी गोद मे आ गया। प्रभु की कृपा से अपने बच्चे का पुनर्जन्म हुआ ऐसा मानकर वे उस बच्चे को साथ ले गये, उसका नाम वल्लभ रखा, जो आगे चलकर वल्लभाचार्य के नाम से विख्यात हुआ।

वल्लभाचार्य ने तीन बार भारत यात्रा की और नये सम्प्रदाय की स्थापना कर लगभग 84 ग्रथो की रचना की। इनमे से केवल 31 ग्रथ ही आज उपलब्ध है, जिनके नाम

इस प्रकार हैं- 1) ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य, 2) श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी नामक टीका, 3) तत्त्वदीपनिबंध, 4) पूर्वमीमासाभाष्य, 5) गायत्रीभाष्य, 6) पत्रावलबन, 7) पुरुषोत्तम-सहस्रनाम, 8) दशमस्कंध-अनुक्रमणिका, 9) त्रिविधनामावली, 10) शिक्षाश्लोक-षोडशग्रंथ, 11 से 26 तक यमुनाष्टक, बालबोध, सिद्धान्तमुक्तावली, पुष्टिप्रवाह, मर्यादाभेद, सिद्धान्तरहस्य, नवरत्न, अन्तःकरणप्रबोध, विवेकधैर्याश्रय, कृष्णाश्रय, चतु श्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, पचपद्य, सन्यासनिर्णय, निरोधलक्षण व सेवाफल, 27) भगवत्पीठिका, 28) न्यायादेश, 29) सेवाफल-विवरण, 30) प्रेमामृत, 31) विविध अष्टक।

आचार्य वल्लभ के पूर्व प्रस्थान-त्रयी में "ब्रह्मसूत्र", "गीता" और "उपनिषद्" को स्थान मिला था, किन्तु इन्होंने "भागवत" की "सुबोधिनी" टीका के द्वारा प्रस्थान-चतुष्टय के अतर्गत श्रीमद्भागवत का भी समावेश किया। इनके दार्शनिक सिद्धात को शुद्धाद्वैतवाद कहते हैं, जो शाकर-अद्वैत की प्रतिक्रिया के रूप में प्रवर्तित हुआ था। इस सिद्धात के अनुसार ब्रह्म माया से अलिप्त होने के कारण नितात शुद्ध है। इसमें मायिक ब्रह्म की सत्ता स्वीकार नहीं की गई है।

आचार्य वल्लभ ने अपने "कृष्णाश्रय-स्तोत्र" मे तत्कालीन कुटिल स्थिति का वर्णन किया है। तदनुसार- "समस्त देश म्लेच्छो के आक्रमणों से ध्वस्त हो गया था। गगादि तीर्थों को पापियों ने घेर रखा था तथा उनके अधिष्ठातृ-देवता अतर्धान हो गए थे"। ऐसे विपरीत काल मे ज्ञान की निष्ठा, यज्ञ-यागादिको का अनुष्ठान जैसे मुक्ति-मार्गो का अनुसरण असभव ही था। इस लिये आचार्य वल्लभ ने शूद्रो एव स्त्रियो सहित सर्वजन-सुलभ "पुष्टि-मार्ग" का प्रवर्तन किया था।

वल्लीसहाय - समय- ई 19 वीं शती। कुलनाम वाधूल। विरिंचिपुर निवासी नारायण पडित के सुपुत्र। कृतिया- ययाति-तरुणानन्द, रोचनानन्द तथा ययाति-देवयानी-चरित नामक तीन नाटक और शकराचार्य दिग्विजय-चपू नामक चरित्र-ग्रथ।

वव्री आत्रेय- ऋग्वेद के पाचवे मडल के 19 वें सूक्त के द्रष्टा। इस सूक्त की देवता अग्नि है जिसकी स्तुति मे यह सूक्त रचा गया है।

वशअश्व - ऋग्वेद के आठवें मडल के 46 वें सूक्त के रचयिता। 33 ऋचाओं वाले इस सूक्त में, इन्द्र-वायु वर्णन और पृथुश्रवस् के दान की स्तुति की गई है। 21 वीं ऋचा मे वश को अदेव याने देवसदृश निरूपित किया गया है। इन पर अश्विनौ की कृपा थी। आरण्यक के अनुसार इस सूक्त में सम्पूर्ण जगत् को वश में करने की शक्ति होने के कारण इसे "वश-सूक्त" नाम प्राप्त हुआ, जब कि कुछ विद्वानों के अनुसार रचयिता के नाम पर ही यह सूक्त विख्यात हुआ है।

वसवराज (या बसवराज) - "वसवराजीवम्" नामक आयुर्वेदशास्त्र के ग्रथ-प्रणेता। आंध्र प्रदेश के निवासी। समय- ई 12 वीं शती का अंतिम चरण। जन्म-स्थान कोट्टूर ग्राम। नीलकठ-वश में जन्म। पिता का नाम नम शिवाय। ग्रथान्तर्गत उल्लेख के अनुसार वसवराज शिवलिग के उपासक थे। इनके ग्रंथ "वसवराजीवम्" का प्रचार दक्षिण भारत मे अधिक है। इसका प्रकाशन नागपुर (महाराष्ट्र) से प गोवर्धन शर्मा छागाणी ने किया है।

वसिष्ठ - ऋग्वेद के सातवें मण्डल के द्रष्टा। इस मडल के 104 सूक्त इन्हीं के हैं। इन सूक्तों से वैदिक भूगोल व इतिहास पर काफी प्रभाव पडता है। ये मित्रा-वरुण के पुत्र थे किन्तु पौराणिक-युग में इन्हें उर्वशी का पुत्र माना गया। पुराण-वाङ्मय में इन्हें अगस्त्य का भाई बताया गया है। वसिष्ठ की तपस्या और कर्मकौशल्य से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया था। वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच वैमनस्य था। इसका एक कारण यह बताया जाता है कि विश्वामित्र पहले राजा सुदास् के राजपुरोहित थे, किन्तु बाद में उस स्थान पर वसिष्ठ की नियुक्ति की गई। दूसरा कारण यह बताया जाता है कि वसिष्ठ-पुत्र शक्ति ने जब वादविवाद में विश्वामित्र को पराजित किया, तब विश्वामित्र ने ससर्परी विद्या के सहारे उस पर विजय पायी। उन दिनो यज्ञकर्म में वसिष्ठ-कुल के लोग आदर्श माने जाते थे। यह भी उनमें वैमनस्य का कारण माना जाता है। कालान्तर में यह वैमनस्य समाप्त हुआ और दोनो ऋषिश्रेष्ठियों ने यज्ञसस्था के उत्कर्ष में महान् योगदान दिया। वसिष्ठ ने इन्द्र, वरुण, उषा, अग्नि व विश्वेदेव पर सूक्तो की रचना की है। इन्द्र व वरुण-सूक्तों में भक्तिमार्ग के बीज पाये जाते हैं। इनके एक भक्तिपूर्ण मत्र का आशय है

"रस निचोडे बिना केवल सोम ही इन्द्र को अर्पित किया, तो वे कभी सतुष्ट नहीं होंगे। उसी प्रकार रस निचोड कर अर्पित करने पर भी यदि भक्तिपूर्वक प्रार्थना सूक्त न कहें तो भी उन्हें प्रसन्नता नहीं होगी। इसलिये हम प्रार्थनासूक्तों का गान करें। इससे देवता प्रसन्न होंगे और वीरों को प्रिय मया स्तोत्र सुन कर वे हमारा अनुरोध स्वीकार करेंगे"।

वसुक्र ऐन्द्र - ऋग्वेद के दसवें मडल के 27 से 29 तक के तीन सूक्तों के द्रष्टा। इनमें प्रथम दो सूक्त इन्द्र-वसुक्र के बीच सवादों के रूप में हैं। इनमें इन्द्र की महत्ता प्रतिपादित की गई है।

बृहद्देवता के मतानुसार वसुक्र, इन्द्र का पुत्र था। 27 वें सूक्त मे आत्मज्ञान-प्राप्ति और गांधर्वविवाह का विवेचन किया गया है।

वसुकर्ण वासुक्र - ऋग्वेद के दसवें मंडल के 65 व 66 इन दो सूक्तों के द्रष्टा। इनमें विश्व-देवताओं की स्तुति की गयी है। इनमें भुज्यु तौग्र्य और विश्वक्र कार्ष्णा की कथाएं भी हैं।

वसुनन्दी - नेमिचन्द्र के शिष्य। समय- ई 11-12 वीं शती।

रचनाएं- प्रतिष्ठासार-सग्रह (संस्कृत), उपासकाचार (प्राकृत) और मूलाचार की आचारवृत्ति। "प्रतिष्ठासार-संग्रह" के छह परिच्छेदों में मूर्ति-मंदिर-प्रतिष्ठाविधि का सागोपांग वर्णन किया गया है।

वसुबंधु - समय- 280 ई. से 360 के बीच। बौद्ध दर्शन के अंतर्गत "वैभाषिक" मत के आचार्यों में वसुबधु का स्थान सर्वोपरि है। ये सर्वास्तिवाद नामक सिद्धान्त के प्रतिष्ठापको मे से हैं। ये असाधारण प्रतिभा-सपन्न कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण थे और इनका जन्म गांधार देश के पुरुषपुर (पेशावर) में हुआ था। पांडित्य तथा परमार्थवृत्ति के कारण इन्हें "द्वितीय बुद्ध" की संज्ञा प्राप्त हुई थी। काश्मीर में विद्याध्ययन। इनके आविर्भाव-काल के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। जापानी विद्वान् तकासुकु के अनुसार इनका समय ई 5 वीं शती है, पर यह मत अमान्य सिद्ध होता है क्यों कि इनके बडे भाई असग के ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद 400 ई में हो चुका था। धर्मरक्षक नामक विद्वान् ने जो 400 ई में चीन में विद्यमान थे, इनके ग्रथों का अनुवाद किया था। इनका स्थिति काल 280 ई से लेकर 360 ई तक माना जाता है। कुमारजीव नामक विद्वान् ने वसुबधु का जीवन-चरित 401 से 409 ई के बीच लिखा था, अत उपर्युक्त समय ही अधिक तर्कसगत सिद्ध होता है। ये 3 भाई थे- असग, वसुबधु व विरिचिवत्स। कहा जाता है कि इन्होंने अयोध्या को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था और वहा 80 वर्षों तक ग्रंथरचना की। इनकी प्रसिद्ध रचना "अभिधर्मकोश" है जो वैभाषिक मत का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रथ है। जीवन के अतिम समय में इन्होंने अपने बडे भाई असग के विचारों से प्रभावित होकर वैभाषिक मत का परित्याग कर योगाचार-मत को ग्रहण कर लिया था। इन्होंने हीनयान व महायान दोनों के लिये ग्रंथ लिखे। इनके अन्य ग्रथ हैं- 1) परमार्थ-सप्तति, इसमें विंध्यवासी द्वारा प्रणीत "साख्य-सप्तति" नामक ग्रथ का खडन है। 2) तर्कशास्त्र- यह बौद्ध-न्याय का प्रसिद्ध ग्रथ है। 3) वाद-विधि- यह भी न्याय-शास्त्र का ग्रथ है। 4) अभिधर्मकोश की टीका। 5) सद्धर्म-पुडरीक की टीका। 6) महापरिनिर्वाण-सूत्र की टीका। 7) वज्रच्छेदिका (प्रज्ञापारमिता की टीका) और 8) विज्ञप्ति-मात्रासिद्धि। तिब्बती विद्वान् बुस्तोन के अनुसार वसुबंधु द्वारा रचित अन्य ग्रथ हैं- पचस्कध-प्रकरण, व्याख्यायुक्ति, कर्मसिद्धि-प्रकरण, महायानसूत्रालंकार की टीका, प्रतीत्य समुत्पादसूत्र की टीका तथा मध्यात-विभाग का भाष्य।

डा पुर्से ने "अभिधर्मकोश" मूल ग्रथ के साथ उसका चीनी अनुवाद, फ्रेंच भाषा की टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया है। इसका हिंदी अनुवादसहित प्रकाशन, हिंदुस्तानी अकादमी से हो चुका है जिसका अनुवाद व सपादन आचार्य नरेंद्रदेव ने किया है। विज्ञप्तिमात्रासिद्धि का हिंदी अनुवादसहित प्रकाशन चौखबा सस्कृत सीरीज़ से हो चुका है। अनुवादक डा महेश तिवारी हैं।

वसु भारद्वाज - ऋग्वेद के 9 वें मडल के 80-81-82 इन तीन सूक्तों के द्रष्टा। पवमान-सोमस्तुति इन सूक्तों का विषय है।

वसूय आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवें मडल के 25 व 26 इन दो सूक्तों के द्रष्टा। इन सूक्तों में अग्निदेवता की स्तुति की गयी है।

वसुश्रुत आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवे मडल के तीन से छह तक के सूक्तों के द्रष्टा। पाचवा सूक्त आप्रीसूक्त के नाम से विख्यात है। अन्य तीन सूक्तों का विषय है अग्निस्तुति।

वस्तुपाल (वसन्तपाल) - जन्म-अणहिलवाड में। प्रपितामह चण्डप गुर्जरेश की राजसभा के पडित। पिता-आशाराज (या अश्वराज)। माता- कुमारदेवी। गुरु-विजयसेन सूरि। आप कुशल प्रशासक और महाकवि थे। बालचद्र के वसन्तविलास काव्य मे इनके महाकवित्व का उल्लेख है। गुजरात के राजा वीरधवल तथा उसके पुत्र वीसलदेव के महामात्य। कवियों के आश्रयदाता। 'लघु भोजराज" के नाम से विख्यात। विद्यामंडल के संचालक, जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक पण्डित, मदन, यशोवीर और अरिसिह थे। कवि की प्रशंसा में लिखित कीर्ति-कौमुदी और सुकृत-सकीर्तन काव्य उपलब्ध। वस्तुपाल की ही प्रेरणा से नरेन्द्रप्रियसूरि द्वारा महोदधि जैसा लक्षणग्रथ लिखा गया। अणहिलवाण, स्तम्भतीर्थ और भृगुकच्छ में कवि द्वारा ग्रथभण्डार स्थापित। सन् 1232 में गिरनार में जैन-मदिरों का निर्माण। देलवाडा के मदिरों के बीच मे स्थित कलात्मक मदिर, वस्तुपाल के बडे भाई लुणीये की स्मृति मे निर्मित लणुवसतिका नाम से प्रख्यात है। इन्होंने छह गिरनार यात्रासघ निकाले। सन् 1240 की यात्रा में निधन। अत समय ई 13 वीं शताब्दी। ग्रथ- 1) नरनारायणानन्द महाकाव्य (सन् 1230-31-16 सर्ग) महाभारत के कथानक पर आधारित है। 2) आदिनाथ-स्तोत्र, 3) नेमिनाथ-स्तोत्र 4) आराधना-गाथा।

वांदन दुवस्यू - ऋग्वेद के दसवें मडल के 100 वें सूक्त के द्रष्टा।

वाक्तोल नारायण मेनन - केरल-निवासी। रचनाए- कृष्णशतक, तापार्ति-सवरण महाकाव्य और देवीस्तव।

वाग्भट - (1) समय- ई 7 वीं शती का पूर्वार्ध। आयुर्वेद पर "अष्टागसग्रह" नामक ग्रथ के रचयिता। उक्त नाम से एक ही वश मे दो आयुर्वेदाचार्य हो गये है। इनमें उक्त ग्रथ के रचयिता ने अपने ग्रथ के उत्तरतंत्र में स्वय के बारे मे जानकारी देते हुए कहा है-

मेरे पितामह का नाम वाग्भट था, और वही मेरा नाम भी रखा गया। उनके पुत्र सिहगुप्त मेरे पिता थे और मेरा जन्म सिन्धु देश में हुआ। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों में अष्टाग सग्रह पर सर्वाधिक टीकाए प्राप्त होती हैं।

चिनी प्रवासी ईत्सिग ने अष्टागसंग्रह-कर्ता वाग्भट का उल्लेख

किया है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि इनका कालखण्ड ई 7 वीं शती का पूर्वार्ध रहा होगा।

(2) एक विख्यात रस-वैद्य। वैद्यक-शास्त्र पर अनेक ग्रंथों की रचना की। उनमें "अष्टांग-हृदय" सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त ग्रंथ है। कुछ विद्वान इन्हें साक्षात् धन्वंतरि मानते है, तो कुछ इन्हें गौतम बुद्ध का अवतार मानते हैं। होर्न्ले के मतानुसार इनका कालखण्ड ई. 8 वीं या 9 वीं शती रहा होगा। रसायन, रसकुपी व कायाकल्प के विषय में इनकी ख्याति जावा, कम्बोडिया, इजिप्त आदि देशों तक फैली थी। इनका "अष्टांग-हृदय" नामक ग्रथ श्लोकबद्ध है तथा इसमें शस्त्रक्रिया का विस्तृत विवेचन है। आयुर्वेद में इसे आज भी प्रमाण-ग्रथ माना जाता है। इस पर 34 टीकाए हैं। इसका हिन्दी अनुवाद हुआ है और हिन्दी टीका भी लिखी गई है।

इनके बारे में कहा जाता है कि इन्होंने भारतीय आयुर्वेद शास्त्र को विदेशों में श्रेष्ठत्व प्राप्त कराया। इस सम्बन्ध में एक आख्यायिका इस प्रकार है

मिस्र (इजिप्त) देश के तत्कालीन राजा ने, जो उदरशूल से पीडित थे, दुनिया भर के चिकित्सकों से इलाज करवाने के बाद भी कोई लाभ नहीं होने पर वाग्भट को मिस्र आमन्त्रित किया। वाग्भट ने निमत्रण स्वीकार कर वृद्धावस्था के बावजूद लम्बी विदेश यात्रा की, और मिस्र पहुच कर राजा को रोगमुक्त किया। राजा ने इनके सम्मान में भव्य समारोह आयोजित कर आधा राज्य देने की घोषणा की किन्तु इन्होंने यह कहकर कि इससे सम्पूर्ण जगत् में भारतीय वैद्यकी की श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित होने का जो समाधान उन्हें मिला है, वही पर्याप्त है, अन्य कोई पुरस्कार लेना अस्वीकार कर दिया। मिस्र की कुछ वनस्पतियों पर सशोधन करने के विचार से वे कुछ काल मिस्र में रहे किन्तु इस बीच एक दुर्घटना हुई। मिस्र की राजकन्या किसी कर्मचारी के साथ प्रेमबधन में फंस गई और उससे उसे गर्भ रह गया। यह बात जब महारानी के कानों तक पहुंची, तो राजकन्या को गर्भ से मुक्ति दिलाने हेतु वाग्भट से अनुरोध किया गया। वाग्भट ने यह कहकर कि "ऐसा भयंकर पाप मैं कदापि नहीं करूंगा" अनुरोध स्वीकार नहीं किया। इस पर राजकन्या ने कहा- वह अपने प्रेमी के साथ आत्महत्या कर लेगी, तब एक साथ तीन जीवों की हत्या का पाप उन पर लगेगा। वाग्भट ने इससे बचने का एक उपाय यह सुझाया कि होने वाले बच्चे के पिता के रूप में वह वाग्भट का नाम घोषित कर दें। इससे भले ही उन्हें मौत का सामना करना पडे, किन्तु एक साथ तीन जीवों के प्राणों की रक्षा का समाधान उन्हें मिलेगा। महारानी ने विवश होकर वाग्भट की यह सलाह मान ली और राजा के कानों तक यह बात पहुंचाई। इस अपराध पर मिस्र में मृत्युदण्ड दिया जाता था। वाग्भट से द्वेष करने वाले मंत्रियों के दुराग्रह पर राजा ने यह सोचे बिना कि इतनी वृद्धावस्था में भी वाग्भट के हाथों यह पाप कैसे हो सकता है, वाग्भट को मृत्युदण्ड दिया। कहते हैं कि महारानी ने चंदन की चिता पर वाग्भट का दाहसंस्कार कराया और उनकी रक्षा स्वर्ण-कुंभ में भर कर गंगा में प्रवाहित करने भारत भिजवाई।

(3) ई 12 वीं शती का पूर्वार्ध। "वाग्भटालकार" नामक ग्रथ के रचयिता। टीकाकारों ने इनके पिता का नाम सोम बताया है। उक्त ग्रंथ साहित्य शास्त्र पर है जिसमें विभिन्न अलंकारों का विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ के पांच परिच्छेद हैं तथा अनुष्टुभ् छंद का अधिक प्रयोग किया गया है। इस पर लिखी गई 8 टीकाओं में से 2 प्रकाशित। हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। ये जैन थे तथा प्राकृत में इनका नाम बाहड बताया गया है। इनका सबध जयसिह (1093-1143 ई) से था।

(4) ई 13 वीं शती के एक अलंकारशास्त्री। जैन-धर्मावलबी, मेवाड के एक धनी व्यापारी नेमिकुमार इनके पिता थे। ये दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने अलकार प्रधान "काव्यानुशासन" नामक ग्रंथ की रचना की। कुल पाच अध्यायों वाले इस ग्रथ में 289 सूत्र हैं। अपने इसी ग्रंथ पर पृथक् रूप से आपने विस्तृत व्याख्या भी लिखी है, जिसका नाम "अलकारतिलकवृत्ति" है। इनका दूसरा ग्रथ है "छन्दोनुशासन"।

(5) जैन कवि। इन्होंने "नेमिनिर्वाण" नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें 15 सर्गों में जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की कथा कही गयी है। इनका जन्म अहिछत्र (वर्तमान नागोद) में हुआ था और ये परिवाटवशीय छाहयु या बाहड के पुत्र थे। नेमिनिर्माण पर भट्टारक ज्ञानभूषण ने पजिका नामक टीका लिखी है।

वाचस्पति मिश्र - (1) ई 9 वीं शती के मिथिला-निवासी टीकाकार। इन्होंने वैशषिक दर्शन छोड कर अन्य सभी दर्शनों पर टीकाएं लिख कर अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त किये हैं। इसलिये इन्हें सर्वतंत्रस्वतत्र की उपाधि प्राप्त हुई। इन्हें मिथिला का राजाश्रय प्राप्त था। गुरु-त्रिलोचन। ब्रह्मसूत्र के "शाकरभाष्य" पर आपने "भामती" नामक टीका लिखी। ग्रंथलेखन मे इनकी तन्मयता इतनी अधिक थी कि वे उस समय सारे जगत को भूल बैठते। इस सम्बन्ध में एक आख्यायिका ऐसी बतायी जाती है कि एक बार ग्रथ-लेखन के समय रात्रि में दीप बुझ गया। उनकी पत्नी ने आकर पुन: उसे प्रज्वलित किया और वहीं पास खडी रही। जब वाचस्पति का ध्यान उनकी और गया तो वे उससे पूछ बैठे "तुम कौन हो"। पत्नी ने उत्तर दिया- "मै आपकी चरणदासी हूं"। इस पर उन्होंने दूसरा प्रश्न किया- "क्या तुम मुझसे कुछ मांगने आयी हो"। पत्नी ने कहा- "पति की सेवा करना स्त्री का

परम धर्म है। आपके चरणों की सेवा का अवसर मिला, इससे मेरा जीवन कृतार्थ हो गया है। आपक चरणो मे मस्तक रखकर आपके पहले इस ससार मे बिदा लूं यही मेरी इच्छा है"। इतना सुनते ही उन्हें स्मरण हो आया कि यह तो अपनी पत्नी ही है। अपनी पत्नी के नाम पर ही भामती नामक ग्रथ लिख कर, उसे अमर बना दिया। भारतीय दर्शन में वाचस्पतिकृत भामती भाष्य का महघतवपूर्ण स्थान है। इसे "भामतीप्रस्थान" कहते है।

भामती के अतिरिक्त इन्होंने सुरेश्वर की ब्रह्ममिद्धि पर ब्रह्मतत्त्व-समीक्षा, साख्याकारिकाओं पर तत्त्वकौमुदी, पातजल-दर्शन पर तत्त्ववैशारदी, न्यायदर्शन पर न्यायवार्तिकतात्पर्य व न्यायसूची-निबध, भाट्टमत पर तत्त्वबिंदु तथा मडनमिश्र के विधिविवेक नामक ग्रथ पर न्यायकणिका नामक टीका लिखी है। उनका भामती नामक व्याख्याग्रथ अद्वैतदर्शन का प्रमाण ग्रथ माना जाता है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि वाचस्पति मिश्र के रूप में सुरेश्वराचार्य ने ही पुनर्जन्म लिया था। इन्हें तात्पर्याचार्य तथा षड्दर्शनीवल्लभ की भी उपाधियां प्राप्त थी।

(2) ई 15 वीं शती के एक धर्मशास्त्रकार। मिथिला-निवासी। "अभिनव वाचस्पति मिश्र" के नाम से विख्यात। ये राजा बहिरवेन्द्र व रामभद्र के दरबार में थे। इनका विवादचितामणि नामक ग्रथ आज भी भारत के वरिष्ठ न्यायालयो में उपयोग में लाया जाता है। इसके आलवा इन्होंने आचार-चितामणि, आह्निक-चितामणि, शद्ध-चितामणि कल्प-चितामणि, तीर्थचितामणि, द्वैतचितामणि, नीतिचितामणि, व्यर्यचितामणि, शूद्र-चितामणि व श्राद्धचितामणि, तिथि-निर्णय, द्वैतनिर्णय, महादाननिर्णय, महावर्ण तथा दत्तक-विधि नामक ग्रथों की रचना की है। श्राद्धकल्प अथवा पितृभक्तितरगिणी नामक ग्रथ भी आपने ही लिखा है।

वाटवे शास्त्री - कुरुन्दवाड (महाराष्ट्र) के निवासी। रचनाए- कलियुगाचार्य-स्तोत्र, कलियुगप्रतापवर्णनम्, कलिवृत्तादर्शनपुराणम्, अग्रेजी शब्दो के प्रयोग इनकी सस्कृत रचनाओ में हुए है।

वाणी अण्णय्या - प्रख्यात तेलगु कवि। तजौर के श्रीधर अय्यावल के शिष्य। रचनाए- व्यास-तात्पर्य-निर्णय और यश-शास्त्रार्थ-निर्णय।

वात्स्यायन - समय- ई पूर्व 3 री शती। इन्होंने कामसूत्रो की रचना की। इनका नाम मल्लनाग था किन्तु ये अपने गोत्रनाम "वात्स्यायन" के रूप मे ही विख्यात हुए। कामसूत्र मे जिन प्रदेशों के रीति-रिवाजों का विशेष उल्लेख किया गया है, उनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि वात्स्यायन पश्चिम अथवा दक्षिण भारत के निवासी रहे होंगे। कामसूत्र के अतिम श्लोक से यह जानकारी मिलती है कि वात्स्यायन ब्रह्मचारी थे। पचतत्र मे इन्हे वैद्यकशास्त्रज्ञ बताया गया है। मधुसूदन शास्त्री ने कामसूत्रो को आयुर्वेदशास्त्र के अन्तर्गत माना है।

वात्स्यायन ने प्राचीन भारतीय विचारों के अनुरूप, काम को पुरुषार्थ माना है। अत धर्म व अर्थ के साथ ही मनुष्य को काम (पुरुषार्थ) की साधना कर जितेन्द्रिय बनना चाहिये। वात्स्यायन के कामसूत्र सात अधिकरणों में विभाजित है :-

1) सामान्य, 2) साप्रयोगिक, 3) कन्यासंप्रयुक्त, 4) भार्याधिकारिक, 5) पारदारिक, 6) वैशिक और 7) औपनिषदिक।

इन्होंने अपने ग्रंथ में कुछ पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है जिनसे यह जानकारी मिलती है कि सर्वप्रथम नदी ने एक हजार अध्यायों के बृहद् कामशास्त्र की रचना की, जिसे आगे चलकर औद्दालिकी श्वेतकेतु और बाभ्रव्य पांचाल ने क्रमश सक्षिप्त रूपों में प्रस्तुत किया। वात्स्यायन का कामसूत्र इनका अधिक सक्षिप्त रूप ही है। कामसूत्रों से तत्कालीन (17 सौ वर्ष पूर्व के) समाज के रीति रिवाजों की जानकारी भी मिलती है।

"कामसूत्र" पर वीरभद्रकृत "कदर्पचूडामणि", भास्करनृसिंहकृत कामसूत्र-टीका तथा यशोधर-कृत कदर्पचूडामणि नामक टीकाएं उपलब्ध हैं।

वात्स्यायन (न्यायसूत्र के भाष्यकार) - इनके ग्रथ में अनेक वार्तिको के उद्धरण प्राप्त होते हैं। इससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्व भी न्यायसूत्र पर अनेक व्याख्या ग्रंथों की रचना हुई थी, किंतु सप्रति इनका भाष्य ही एतद्विषयक प्रथम उपलब्ध रचना है। इनके भाष्य पर उद्योतकराचार्य ने विस्तृत वार्तिक की रचना की है। इनका ग्रथ "वात्स्यायनभाष्य" के नाम से प्रसिद्ध है जिसका समय विक्रम पूर्व प्रथम शतक माना जाता है। सस्कृत साहित्य में वात्स्यायन नामक अनेक व्यक्ति हैं, जिनमे "कामसूत्र" के रचयिता वात्स्यायन भी हैं पर न्यायसूत्र के भाष्यकार प्रस्तुत वात्स्यायन उनसे सर्वथा भिन्न हैं। "वात्स्यायन-भाष्य" के प्रथम सूत्र के अत में चाणक्य-रचित "अर्थशास्त्र" का एक श्लोक उद्धृत है। अतः विद्वानों का अनुमान है कि चाणक्य (कौटिल्य) ही न्यायसूत्र के भाष्यकार हैं पर यह मत अभी तक पूर्णत मान्य नहीं हो सका।

वात्स्यायन ने "न्यायदर्शन" अध्याय 2, अधिकरण-सूत्र 40 वीं व्याख्या में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए चावल पकाने की विधि का वर्णन किया है। इसके आधार पर विद्वान उन्हें द्रविड प्रदेश का निवासी मानते है।

वादिचन्द्र (प्रतिष्ठाचार्य) - समय- ई 17 वीं शती। जैन आचार्य व साहित्यकार। बलात्कारगण की सूरत शाखा के भट्टारक। गुरु- प्रभाचन्द्र। दादा गुरु- ज्ञानभूषण। जाति-हुंबड, रचनाए- पार्श्वपुराण (1580 श्लोक), श्रीपाल आख्यान, सुभगसुलोचनाचरित (9 परिच्छेद), ज्ञानसूर्योदय (लाक्षणिक नाटक), पवनदूत (101 पद्य), पाण्डवपुराण, यशोधर-चरित और होलिका-चरित। इनका कार्यक्षेत्र गुजरात था। इन्होंने अपने पवनदूत की रचना मेघदूत के अनुकरण पर की है। कथा काल्पनिक है। उसका प्रकाशन (हिन्दी अनुवादसहित) हिन्दी

जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय मुंबई से हुआ है।

वादिराजतीर्थ - ई. 15 वीं शती। माध्वमत के आचार्य। कर्नाटक के मंगलोर जिले के हुबिनकेरे ग्राम में आपका जन्म हुआ। पिता-रामाचार्य व माता-गारम्मा। इस दम्पती को वागीशतीर्थ के कृपाप्रसाद से यह पुत्रलाभ हुआ। इनका नाम वराह रखा गया। आगे चल कर वागीशतीर्थ ने संन्यास की दीक्षा दी और "वादिराजतीर्थ" नया नामकरण किया। ऐसा बताया जाता है कि इन्हें योगसिद्धि भी प्राप्त थी। वे अपनी चटाई पर बैठकर आकाशमार्ग से सुबह उडुपी, दोपहर धर्मस्थली और रात को सुब्रमण्यम् नामक धार्मिक केन्द्रों पर देवताओं की पूजा के लिये जाया करते थे। "हयग्रीव नारायण" इनके इष्टदेव थे। अतिम दिनों में आपने सोदे ग्राम मे मठ स्थापना कर उसमे कृष्णमूर्ति की प्रतिष्ठापना की। सुप्रसिद्ध तीर्थप्रबध के अतिरिक्त तत्त्वप्रकाशिका, गुरुवार्तादीपिका, प्रमेयसग्रह, श्रीकृष्ण-स्तुति, रुक्मिणीय-विजय सरसभारतीविलास, एकीभावस्तोत्र, दशावतारस्तुति आदि अनेक ग्रथों की आपने रचना की है।

वादिराज सूरि - ई 11 वीं शती के दिगम्बर जैन सम्प्रदायी। मतिसागर मुनि के शिष्य। वादिराज उनकी उपाधि है किन्तु उनके मूलनाम विषयक कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। एक शिलालेख मे इनकी तुलना अकलकदेव (जैन), धर्मकीर्ति (बौद्ध), बृहस्पति (चार्वाक) व गौतम (नैयायिक) से की गयी है। इन्हें षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वाद-विद्यापति व जगदेकमल्ल आदि उपाधियों से विभूषित किया गया। रचनाए-

1) पार्श्वनाथचरित- 12 सर्गों के महाकाव्य की रचना आपने चालुक्य चक्रवर्ती जयसिह देव की राजधानी में उन्हीं की प्रेरणा से ही।

2) यशोधरचरित नामक चार सर्गों का खण्ड काव्य।

3) एकीभावस्तोत्र। यह 25 पद्यों का स्तोत्र है। कहा जाता है कि इसके गायन से वादिराज कुष्ठ रोग से मुक्त हुए।

4) न्यायविनिश्चय-विवरण- यह अकलकदेव के न्यायनिश्चय नामक ग्रथ पर लिखी गयी टीका है। इसमें २० हजार श्लोक तथा प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम ये तीन प्रकरण हैं। भारतीय ज्ञानपीठ (काशी) नामक सस्था ने इसे प्रकाशित किया है।

5) "प्रमाणनिर्णय" नामक ग्रथ मे प्रमाण, प्रत्यक्ष, परोक्ष व आगम ये चार अध्याय हैं। इनके अलावा काकुत्स्थ-चरित, अध्यात्माष्टक व त्रैलोक्यदीपिका आदि ग्रथों की रचना भी आपने की है।

वादीभसिंह - नाम का अर्थ वादीरूपी हाथियों (इभों) को सिंहसमान भयप्रद। (समय- ई. 11 वीं या 12 वीं शती) एक जैन आचार्य। इनका मूल नाम ओइयदेव था। इनका वास्तव्य कर्नाटक के पोंचब नामक ग्राम अथवा उसके आसपास होने का अनुमान है। वादविवाद में प्रवीणता के कारण इन्हें "वादीभसिंह" कहा जाने लगा। इनकी दो काव्य कृतियां उपलब्ध हैं क्षत्रचूडामणि और गद्यचितामणि। प्रथम कृति पद्यात्म और दूसरी गद्यात्म है। दोनों में जीवधर स्वामी के चरित्र का वर्णन है। क्षत्रचूडामणि की गणना नीतिग्रंथों मे की जाती है। इनका समाधिस्थल तमिलनाडु के तिरुमल पर्वत पर है। वादीसिह और वादीभसिह एक ही व्यक्ति हैं। इन्हे महाकवि बाण की कोटि का गद्य लेखक माना जाता है।

वामदेव - गौतम व ममता के पुत्र। ऋग्वेद के 4 थे मंडल के 42-44 तक के सूक्तों को छोड कर बाकी सम्पूर्ण चौथे मडल के सूक्तों के द्रष्टा। कहते हैं इन्हें गर्भ में ही आत्मज्ञान हो गया था और "गर्भे नु सत्" (ऋ 4.27 1) यह ऋचा आपने गर्भ मे ही रची। इनका जन्म भी इनकी इच्छानुसार ही निसर्गसिद्ध मार्ग से न होकर माता का पेट फाड कर हुआ, योग-सामर्थ्य के बल पर श्येन रूप धारण कर वे माता के पेट से बाहर निकले। ये विश्वामित्र की बाद की पीढी के थे। इन्होंने विश्वामित्र के सूक्तों का प्रचार किया। निसर्ग, मानवी सौंदर्य, कृषिकर्म, सगीत आदि विषयक अभिरुचि के कारण आपने अनेक ऋचाए इन्हीं विषयो पर लिखी हैं।

उपनिषदो में वर्णित जानकारी के अनुसार, गायत्री मत्र के चौबीस ऋषियों में पाचवा स्थान इनका है। इन्होंने शुक से तुलसी उपनिषद् सुना और अन्य ऋषियों को सुनाया।

वामदेव - जैनधर्मी मूलसंघ के भट्टारक त्रैलोक्यकीर्ति के प्रशिष्य और मुनि लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य। कुलनाम (कायस्थ)। प्रतिष्ठाचार्य। दिल्ली के आसपास इनका कार्यक्षेत्र था। समय- वि.स 15 वीं शती। रचनाए- त्रैलोक्यदीपक, भावसंग्रह, प्रतिष्ठा-सूक्ति-सग्रह, त्रिलोकसार-पूजा, तत्त्वार्थसार, श्रुतज्ञानोद्यान और मंदिरसस्कारपूजा।

वामन - काव्यशास्त्र के आचार्य। "काव्यालंकार-सूत्र" के प्रणेता। ये रीति सप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने "काव्यालकार-सूत्रवृत्ति" नामक वृत्ति की भी रचना की है जिसमे "रीति" को काव्य की आत्मा माना गया है। ये काश्मीर-निवासी तथा उद्भट के सहयोगी हैं। "राजतरंगिणी" में इन्हें काश्मीर-नरेश जयापीड का मत्री लिखा गया है (4/497)। जयापीड का समय 779 ई से 813 ई तक है।

वामन का उल्लेख अनेक अलकारिकों ने किया है जिससे उनके समय पर प्रकाश पडता है। राजशेखर ने अपने ग्रंथ "काव्य-मीमांसा" में, "वामनीया" के नाम से इनके सप्रदाय के आलकारिकों का उल्लेख किया है तथा अभिनवगुप्त ने अपने ध्वन्यालोक में उद्धृत एक श्लोक के संबंध में बताया है कि वामन के अनुसार उसमें आक्षेपालकार है। इस प्रकार राजशेखर व अभिनवगुप्त से वामन पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। वामन की "काव्यालंकार सूत्रवृत्ति" में उन्होंने बताया है कि उन्होंने ग्रंथान्तर्गतसूत्र एव वृत्ति दोनों की रचना की है। (मंगलश्लोक)। वामन ने गुण व अलंकार के भेद को स्पष्ट

करते हुए काव्य शास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इन्होंने उपमा को मुख्य अलंकार के रूप मे मान्यता दी है और काव्य में रस का महत्त्व स्वीकार किया है। अन्य रचनाए- लिंगानुशासन, विद्याधर (काव्य) और काशिकावृत्ति (जयादित्य के सहयोग से)।

वामन - विश्रान्त-विद्याधर नामक व्याकरण-ग्रथ के रचयिता। अनेक स्थानों में प्राप्त उद्धरणों से ही ज्ञात। वर्धमान सूरि ने इन्हें 'सहृदय-चक्रवर्ती' की उपाधि प्रदान की। इन्होंने अपने ग्रन्थ पर लघ्वी तथा बृहती ऐसी दो टीकाएं रची हैं। दोनो अप्राप्य। मल्लवादी ने इस व्याकरण पर न्यास की रचना की।

वामन-भट्ट - वेमभूपाल के राजकवि। समय विक्रम का पंद्रहवा शतक। इनकी रचनाओं में काव्य, नाटक, गद्य-ग्रथ, कोश-ग्रंथ आदि प्राप्त होते हैं। विवरण इस प्रकार है- 1 नलाभ्युदय- (नलदमयती की कथा। यह काव्य अपूर्ण रूप में उपलब्ध तथा त्रिवेंद्रम सस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। 2. रघुनाथ-चरित- 30 सर्गो वाला यह काव्य-ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है। 3 हसदूत (संदेश काव्य)। 4 बाणासुर-विजय, इस अप्रकाशित काव्य का विवरण ओरियटल लाइब्रेरी मद्रास की त्रिवर्षीय हस्तलिखित पुस्तक-सूची 6 में प्राप्त होता है। 5. पार्वती-परिणय- 5 अकों का नाटक। 6 कनकलेखा- चार अकों वाले इस नाटक में व्यासवर्मन् व कनकलेखा के विवाह का वर्णन है। (अभी तक अप्रकाशित)। 7. श्रृंगारभूषण-भाण इसका नायक विलासशेखर नामक एक धूर्त व्यक्ति है। 8 वेमभूपाल-चरित- गद्यात्मक चरित्र- ग्रथ। इसका प्रकाशन श्रीरंगम् से हो चुका है। 9. शब्दचद्रिका- 10 शब्दरत्नाकर- ये दोनों कोश-ग्रथ हैं और दोनों ही अभी तक अप्रकाशित हैं।

वार्षगण्य - एक साख्य-आचार्य। इनके कालखण्ड के विषय में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं। ये साख्य दर्शन के विशेष विचारप्रवाह के अनुयायी थे तथा इनका योग-दर्शन से अधिक सम्बन्ध था। साख्य-योग दर्शन में इन्हें भगवान् वार्षगण्य कहा गया है। इनके योग-संबद्ध साख्य-प्रवाह का वार्षगणो ने अध्ययन कर प्रचार किया।

वाल्मीकि - सस्कृत के आदिकवि। 'रामायण' नामक विश्वविख्यात महाकाव्य के प्रणेता। कहा जाता है कि ससार में सर्वप्रथम इन्हींके मुख से काव्य का आविर्भाव हुआ था। रामायण के बालकांड में यह कथा प्रारभ में ही मिलती है कि एक दिन तमसा नदी के किनारे महर्षि भ्रमण कर रहे थे। तभी एक व्याध आया और उसने वहा विद्यमान क्रौंच पक्षी के युगुल पर बाण-प्रहार किया। बाण के लगने के क्रौंच मर गया और क्रौंची करुण स्वर में आर्तनाद करने लगी। इस करुण दृश्य को देखते ही महर्षि के हृदय में करुणा का स्रोत फूट पडा और उनके मुख से अकस्मात् अनुष्टुप छद में शापवाणी फूट पडी। उन्होंने व्याध को शाप देते हुए कहा- 'जाओ, तुम्हें जीवन में कभी भी शाति न मिले, क्यों कि तुमने काम-मोहित क्रौंच-युग्म मे से एक को मार दिया'। कवि वाल्मीकि का यह कथन सम-अक्षर युक्त चार पादों के श्लोक में व्यक्त हुआ था।

कहा जाता है कि उक्त श्लोक को सुन कर, स्वय ब्रह्माजी वाल्मीकि के समक्ष उपस्थित हुए और बोले- 'महर्षे, आप आद्यकवि हैं। अब आपकी प्रतिभाचक्षु का उन्मेष हुआ है'। महाकवि भवभूति ने इस घटना का वर्णन अपने 'उत्तररामचरित' नामक नाटक मे किया है। महाकवि कालिदास ने भी अपने 'रघुवश' नामक महाकाव्य मे इस घटना का वर्णन किया है (14-70)। ध्वनिकार ने भी अपने ग्रथ में इस तथ्य की अभिव्यक्ति की है (ध्वन्यालोक 1-5)। महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' के माध्यम से राजा राम के लोकविश्रुत, पावन तथा आदर्श चरित्र का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने कल्पना, भाव, शैली एव चरित्र की उदात्तता का अनुपम रूप प्रस्तुत किया है। वे नैसर्गिक कवि हैं जिनकी लेखनी किसी भी विषय का वर्णन करते समय उसका यथातथ्य चित्र खींच देती है। अपनी अन्य विशेषताओं के कारण, उनके 'रामायण' को वेदों के समान पूज्य माना जाता रहा है और उसका उपयोग जन-जागृति-ग्रथ के रूप में किया जाता रहा है। वाल्मीकि के सबध में अनेक प्रशस्तियां प्राप्त होती हैं।

अध्यात्म रामायण में स्वय वाल्मीकि ने रामनाम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए अपनी कथा सक्षेप में इस प्रकार बतायी हैं- 'मैं ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ, किन्तु किरात लोगों में पला और बढा। मुझे शूद्र पत्नी से अनेक पुत्र हुए। मैं सदा धनुष बाण लेकर लूट-मार करता था। एक बार मुझे देवर्षि मिले। उन्हें लूटने के इरादे से मैने उन्हें रोका, तो उन्होंने मुझसे कहा कि मैं अपनी पत्नी और बच्चों से जाकर यह पूछ आऊ कि क्या वे मेरे पापों में सहभागी हैं। मैने घर जाकर जब पत्नी और बच्चों से उक्त प्रश्न किया, तो उन्होंने यह कहकर हाथ झटक दिये कि आपके पापों से हमारा क्या सबध। यह सुन कर मुझे बडा पश्चाताप हुआ। मे देवर्षि की शरण में गया, तो उन्होंने मुझे राम-नाम के उलटे अक्षरों वाला मत्र 'मरा-मरा' जपने का परामर्श दिया। मैंने वैसा किया तो वह मंत्र 'राम-राम' ही सिद्ध हुआ।

मैने एक ही स्थान पर खडे रह कर वर्षों तक इस मत्र का जप किया। तब मेरा शरीर चीटियों के भीटे से ढंक गया था। तपस्या पूर्ण होने पर ऋषि ने वहा आकर मुझे चीटियों के भीटे (वल्मीक) से बाहर निकलने का आदेश दिया और कहा कि वल्मीक से निकलने के कारण 'वाल्मीकि' के नाम से मेरा पुनर्जन्म हुआ है।

ईसा पूर्व प्रथम शती से ही वाल्मीकि को रामायण की घटनाओं का समकालीन माना गया है। परित्यक्ता सीता उन्हीं

के आश्रय में प्रसूत हुई और उन्हें लव तथा कुश नामक दो पुत्र हुए। वाल्मीकि ने स्वरचित रामायण इन पुत्रों को सिखाई। राम के अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर वाल्मीकि ने ही सीता के सतीत्व की साक्ष्य प्रस्तुत की। कालान्तर से वाल्मीकि विष्णु के अवतार माने जाने लगे। वाल्मीकिकृत रामायण न केवल श्रेष्ठ साहित्य की दृष्टि से ही उनकी अमर कृति है, परन्तु वह भारतीय संस्कृति का प्रतीकस्वरूप राष्ट्रीय ग्रंथ भी है।

वार्ष्यायणि - यास्कप्रणीत अनेक निरुक्तकारों में उल्लिखित एक निरुक्तकार। भाष्यकार पतंजलि ने भी वार्ष्यायणि का 'भगवान्' इस श्रेष्ठ उपाधि से निर्देश किया है । इससे वार्ष्यायणि आचार्य की महत्ता स्पष्ट होती है।

वासवसेन - बागडान्वय। समय- ई 14 वीं शती। ग्रंथ- यशोधरचरित (8 सर्ग)। गंधर्व कवि ने इसी का अनुकरण कर पुष्पदन्त के यशोधर-चरित में कुछ प्रसंग सम्मिलित किये हैं। 'यशोधरचरित' का आधार लेकर संस्कृत-प्राकृत भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे गये, जिनमें प्रभजन का यशोधर-चरित प्राचीनतम है।

वासुदेव - मलबार-निवासी। रचनाए- मृत्युजयस्वामी का स्तोत्र 'रविवर्मस्तुति' और दमयन्तीपरिणय।

वासुदेव कवि - 'युधिष्ठिर-विजय' नामक महाकाव्य के प्रणेता। केरल के निवासी। इस महाकाव्य में महाभारत की कथा सक्षेप मे वर्णित है। इस पर काश्मीर-निवासी राजानक रत्नकठ की टीका प्रकाशित हो चुकी है। टीका का समय है 1671 ई । वासुदेव कवि ने 'त्रिपुर-दहन' तथा 'शौरिकोदय' नामक अन्य दो काव्यों की भी रचना की है।

वासुदेव कवि - समय- 15 वीं से 16 वीं शताब्दी का मध्य। कालीकट के राजा जमूरिन के सभा-कवि। इन्होंने पाणिनि के सूत्रों पर व्याख्या के रूप में 'वासुदेव-विजय' नामक एक काव्य लिखा था जो अधूरा रहा। उसे उनके भाजे नारायण कवि ने पूरा किया। वासुदेव की अन्य रचनाए हैं- देवीचरित (6 आश्वासों का यमक-काव्य), शिवोदय (काव्य) और अच्युत-लीला (काव्य) । इनका 'भृग-सन्देश' या भ्रमरसदेश नामक काव्य विशेष प्रसिद्ध है।

वासुदेव दीक्षित - ई 18 वीं शती का पूर्वार्ध। पिता- महादेव। माता- अन्नपूर्णा। गुरु- विश्वेश्वर वाजपेयी। ये तंजावर के सरफोजी और तुकोजी भोसले के दरबारी पडितराज थे। इन्होंने भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी पर 'बालमनोरमा' नामक प्रसिद्ध व्याख्या लिखी है। ये मीमांसा-दर्शन के भी आचार्य थे, इन्होंने जैमिनि के सूत्रों पर 'अध्वर-मीमांसा-कुतूहल-वृत्ति' नामक ग्रंथ लिखा।

वासुदेव द्विवेदी - ई 20 वीं शती। देवरिया (उ.प्र.) के निवासी। वेदशास्त्री तथा साहित्याचार्य। काशी में सार्वभौम संस्कृत-प्रचार कार्यालय के संस्थापक। भारत भर भ्रमण करते हुए, व्याख्यानों तथा नाट्यप्रयोगों द्वारा संस्कृत का प्रचार। 'संस्कृत प्रचार पुस्तक-माला' में छपे अनेक एकांकियों के रचयिता। कृतिया- कौत्सस्य गुरुदक्षिणा, भोजराज्ये सस्कृत-साम्राज्यम्, स्वर्गीय-संस्कृतकवि-सम्मेलनम्, बालनाटक, साहित्यनिबंधादर्श, संस्कृत-पत्र-लेखन- गीतामाला इत्यादि प्रचारोपयोगी पुस्तकें।

वासुदेव पात्र - ओरिसा के अन्तर्गत खिमुण्डी के संस्थानिक गजपति नारायण देव के चिकित्सक। रचना- कवि- चिन्तामणि (24 किरण)। इस ग्रंथ में कवि सकेत तथा समस्यापूर्ति की प्राधान्य से चर्चा है। अंतिम 3 किरणों में संगीत विषयक चर्चा है।

वासुदेव सार्वभौम - समय- ई 13-14 वीं शती। इन्होंने मिथिला में पक्षधर मिश्र के यहां तत्वचिंतामणि का अध्ययन किया था। मिथिला के नैयायिक अपने यहा के न्याय-ग्रथो को बाहर नहीं ले जाने देते थे। अत· श्री वासुदेव सार्वभौम ने तत्वचिंतामणि तथा न्याय-कुसुमांजलि नामक दो ग्रथों को कंठस्थ कर लिया, और फिर काशी जाने के बाद उनको लिखा। फिर बंगाल में नवद्वीप जाकर न्यायशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन के लिये इन्होंने एक विद्यापीठ की स्थापना की। धार्मिक निबंधकार रघुनंदन, शाक्ततंत्र के व्याख्याकार कृष्णानंद और वैयाकरण शिरोमणि रघुनाथ भट्टाचार्य, ये तीनों ही वासुदेव सार्वभौम के शिष्य थे।

वासुदेवानन्द सरस्वती (टेम्बे स्वामी) - समय- 1854-1914 ई.। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध योगी सन्त। विशाल शिष्य शाखा। पिता-गणेशभट्ट टेम्बे। माता- रमाबाई। निवास- सावन्तवाडी सस्थान का माणगांव। जन्म 1854 में। दादा के पास घर में ही अध्ययन। बचपन से उपासना, पुरश्चरण आदि से मन्त्रसिद्धि। 21 वर्ष की आयु में विवाह। पत्नी- अन्नपूर्णा। ई. 1891 में पत्नी का देहान्त। नारायण स्वामी से उज्जयिनी में दण्डग्रहण तथा आश्रम नाम प्राप्त। योगिराज श्री वामनराव गुलवणी द्वारा इनकी सभी रचनाएं 12 खण्डों में 'वासुदेवानन्द-सरस्वती ग्रंथमाला' में प्रकाशित।

रचनाए- शिक्षात्रय, स्त्री-शिक्षा, माघ- माहात्म्य, गुरुचरित्र (द्विसाहस्त्री), श्रीगुरुसंहिता, श्रीगुरुचरित्रत्रिशती काव्य, श्रीदत्त-चम्पू, श्रीदत्तपुराण (सटीक), वेदनिवेदनस्तोत्रम्, कृष्णालहरी (दोनों सटीक)। ई. 1914 में नर्मदा-तीर पर गरुडेश्वर-क्षेत्र में समाधि। यहा पर उनका समाधि- मंदिर बनाया गया है। इन्हें श्री दत्त का अवतार माना जाता है। संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने मराठी में भी अनेक ग्रंथों व स्तोत्रों की रचना की है। महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजराथ में आपका प्रभूत शिष्य संप्रदाय है।

विंध्यवास - ई. 3 री या 4 थीं शती। सांख्यदर्शन के एक आचार्य जिन्होंने सांख्यशास्त्र पर 'हिरण्यसप्तती' नामक ग्रंथ की रचना की।

इनके बारे में चीनी भाषा के बौद्ध ग्रंथों में कुछ जानकारी

मिलती है। तदनुसार अयोध्या में विक्रमराजा के काल मं, वसुबधु के गुरु बुद्धमित्र को इन्होंने वादविवाद मे परास्त किया था। विंध्यारण्य मे रहने के कारण ही उनका नाम विंध्यवास पडा, वैसे इनका मूल नाम रुद्रिक था। इनके 'हिरण्यसप्तती' ग्रथ के खडन मे वसुबन्धु ने 'परमार्थ-सप्तति' नामक ग्रंथ लिखा था, किन्तु आज ये दोनो ही ग्रथ उपलब्ध नहीं है।

विकटनितंबा - प्रसिद्ध कवयित्री- जन्म-स्थान काशी। इनके सबध में अभी तक अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। राजशेखर ने 'सूक्ति-मुक्तावली' मे इनके बारे में अपने विचार प्रकट किये है- (के वैकटनितबेन गिरा गुफेन रजिता· । निदति निजकाताना न मौग्ध्यमधुर वच ' ।।) इनकी एक कविता का आशय इस प्रकार है- 'रे भ्रमर तेरे मर्दन को सह सकने वाली अन्य पुष्पलताओं में अपने चचल चित्त को विनोदित कर। अनखिली केसर-रहित इन नवमल्लिका की छोटी कली को अभी असमय में क्यो व्यर्थ दुख दे रहा है। अभी तो उसमें केसर भी नहीं है। बेचारी खिली तक नहीं है। इसे दुख देना क्या तुझे सुहाता है। यहा से हट जा। कहा जाता है कि इनके पति अशिक्षित थे।

विक्रम - पिता- सगम। रचना- नेमिदूत। मेघदूत की पक्तियो का समस्यारूप प्रयोग - इस काव्य की विशेषता है।

विजयध्वजतीर्थ - द्वैतवादी- सप्रदाय के मुख्य भागवत-व्याख्याकार। इनकी टीका 'पदरत्नावली' बडी ही प्रामाणिक रचना है और वह इस सप्रदाय के टीकाकारो का प्रतिनिधित्व करती है। सप्रदायानुसार ये पेजावर-पठ के अधिपति थे जो माध्वसप्रदायी मठो मे सप्तक मठ माना जाता है। 'पदरत्नावली' के उपक्रम मे इन्होंने अनेक ज्ञातव्य बाते लिखी हैं, जो इनके जीवन पर प्रकाश डालती है। इस सबध में डा वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी लिखित 'श्रीमद्भागवत के टीकाकार' नामक ग्रथ मे भी पर्याप्त जानकारी अंकित है। आप विजयतीर्थ के शिष्य महेन्द्रतीर्थ के शिष्य थे। (मगल श्लोक 7) इसमें आनदतीर्थ की कृति 'भागवत- तात्पर्य- निर्णय' प्रतीत होती है परन्तु परम गुरु विजयतीर्थ की एतद्विषयक कृति गवेषणीय है। गोडीय दर्शन इतिहास के अनुसार इन्हे नमस्कार तथा निर्देश करने वाले द्वैतवादी कृति को अपने लिये अनुकरण का विषय माना है। व्यास तत्वज्ञ का समय 1460 ई है। फलत ये इससे पूर्ववर्ती ग्रथकार हैं। इनका समय अनुमानत· 1410 ई - 1450 ई के लगभग मानना उचित है (मोटे तौर पर 15 वीं शती का पूर्वार्ध)। अपनी 'पद-रत्नावली' में वेदस्तुति के अवसर पर आपने भागवत के पद्यों के लिये उपयुक्त आधारभूत श्रुतिमत्रों का सकेत किया है। इससे आपके प्रगाढ वैदिक पांडित्य का परिचय मिलता है।

विजयरक्षित - सन् 1240 में बगाल में 'आरोग्यशालीय' पद पर थे। चक्रदत्त के व्याख्याकार निश्चलकर के गुरु। कृति-व्याख्या- मधुकोश जो माधवनिदान नामक प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रथ पर टीका है।

विजयराघवाचार्य - तिरुपति देवस्थान के ताम्रपट-शिलालेखाधिकारी। रचनाए- सुरभिसन्देश, पचलक्ष्मी- विलास (5 सहस्र श्लोक), नीतिनवरत्नमाला, अभिनवहितोपदेश., कवनेन्दुमण्डली, वसन्तवास, ध्यान-प्रशसा, दिव्यक्षेत्रयात्रा-माहात्म्य, आत्मसमर्पण, नवग्रहस्तोत्र, दशावतारस्तव , लक्ष्मीस्तुति और गुरुपरपराप्रभाव।

विजयवर्णी - ई 13 वीं शती। मुनीन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य। राजा कामराय से व्यक्तिगत सपर्क था। ग्रथ-श्रृगारार्णवचन्द्रिका (दस परिच्छेदो मे विभक्त)।

विजयविमलगणि - जैनधर्मी तपागच्छीय आनन्दविमलसूरि के शिष्य। समय- ई 16 वीं शती। ग्रथ- गच्छाचारवृत्ति नामक विस्तृत ग्रथ। गच्छाचार पर ही तपागच्छीय विद्वान आनन्द विमलसूरि के ही शिष्य वानरर्षि की टीका उपलब्ध है।

विज्जिका (विद्या) - सुप्रसिद्ध कवयित्री। इनकी किसी भी रचना का 'अभी तक पता नहीं चला है, पर सूक्ति-सग्रहों में कुछ पद्य प्राप्त होते हैं। इनके 3 नाम प्राप्त होते हैं- विज्जका, विज्जिका व विद्या। विज्जिका के अनेक श्लोक, संस्कृत आलकारिको द्वारा उद्धृत किये गए हैं। मुकुलभट्ट ने 'अभिधावृत्ति-मातृका' में तथा मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में इन्हें उद्धृत किया है। मुकुलभट्ट का समय 925 ई के आसपास है। अत. विज्जिका का अनुमानित समय 710 और 850 ई के बीच माना जा सकता है।। इनके बारे में केवल इतनी ही जानकारी उपलब्ध है कि इनका जन्म दक्षिण भारत मे हुआ। इन्हें अपने कवित्व पर कितना अभिमान था, यह इस श्लोक से स्पष्ट है -

> नीलोत्पलदलश्यामा विज्जका मामजानता।
> वृथैव दण्डिना प्रोक्तं 'सर्वशुक्ला सरस्वती'' ।।

अर्थात्- नीलकमल के पत्ते की तरह श्याम वर्ण वाली मुझे समझे बिना ही दंडी ने व्यर्थ ही सरस्वती को 'सर्वशुक्ला' कह दिया। इनकी कविताएं शृगार-प्रधान है।

विज्ञसूरि राघवाचार्य - ई 19 वीं शती का अंतिम चरण। विजयवाडा के हाइस्कूल मे अध्यापक। कृतिया- शृगार-दीपक (भाण), नरसिह-स्तोत्र, मानस-संदेश, हनुमत्-सन्देश, रघुवीर-गद्य-व्याख्या और रामानुज-श्लोकत्रयी।

विज्ञानभिक्षु - समय- ई 16 वीं शती का प्रथमार्ध। काशी के निवासी। इन्होंने साख्य, योग व वेदात तीनों ही दर्शनों पर भाष्य रचना की है। साख्य-सूत्रों पर इनकी व्याख्या 'साख्यप्रवचनभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने योगसूत्रों के व्यास-भाष्य पर 'योगवार्तिक' तथा ब्रह्मसूत्रपर 'विज्ञानामृत-भाष्य' की रचना की है। इनके अन्य दो ग्रथ हैं- 'साख्य-सार' व 'योगसार', जिनमें तत्तत् दर्शनों के सिद्धातों का सक्षिप्त विवेचन है।

विज्ञानेश्वर - ई. 11-12 वीं शती। धर्मशास्त्र और याज्ञवल्क्य-स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी। भारद्वाज गोत्री। पिता- पद्मनाथ भट्टोपाध्याय। गुरु- उत्तमपाद। आंध्रप्रदेश के कल्याणी नामक स्थान पर छठे विक्रमादित्य के दरबार में आप थे। धर्मशास्त्रविषयक वाङ्मय में विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा' टीका का महत्त्व अत्युच्च है। दो हजार वर्ष पूर्व के धर्मशास्त्रविषयक विचारों का सार इस ग्रंथ में दिया गया है। अत दत्तक, उत्तराधिकार आदि हिन्दू कानून में यह ग्रंथ प्रमाण माना जाता है (ग्रंथ-रचना- काल 1070-1100 ई. के बीच)।

विज्ञानेश्वर ने दाय को दो भागों में विभक्त किया है- अप्रतिबंध एवं सप्रतिबंध। इन्होंने आग्रहपूर्वक कहा है कि वसीयत पर पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

विट्ठल - समय- वि.सं 16 वीं शती। प्रक्रिया-कौमुदी की प्रसाद टीका के लेखक। इन्होंने शेषकृष्ण के पुत्र रामेश्वर (वीरेश्वर) के पास व्याकरण का अध्ययन किया। ये प्रक्रिया-कौमुदीकार रामचंद्र के पौत्र थे।

विट्ठलदेवुनि सुंदरशर्मा - दैवज्ञशिखामणि वीरराघव शर्मा के छठवें पुत्र। माता- श्रीगौरी अंबा। हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के शोधविभाग में आप कार्यरत रहे। मकुटशतकों की रचना आपकी विशेषता है। मकुटनियम याने काव्य के प्रारंभ में और अंतिम चतुर्थ पंक्ति में एकता रखना। सुदरशर्मा ने श्रीनिवासशतक, देवीशतक, वीराजनेयशतक और शभुशतक नामक चार शतकों की रचना की है। इन सभी भक्तिप्रधान शतकों में मकुटनियम का पालन किया गया है। आंध्र प्रादेशिक साहित्य में यह पद्धति विशेष लोकप्रिय है।

विट्ठलनाथजी - समय- ई 1515 - 1594। जन्म- पौष कृष्ण नवमी को, काशी के निकटवर्ती क्षेत्र चरणाद्रि (चुनार) में। जगन्नाथपुरी जाते समय इनके पिता आचार्य वल्लभ सपत्नीक यहा रुके थे। यहीं पर वर्तमान आचार्य-कूप है। इसी स्थान पर इनका जन्म हुआ। कहा जाता है कि यात्रा में नवजात शिशु की रक्षा न हो सकेगी इस आशंका से आचार्य वल्लभ ने इन्हें यहीं छोड दिया था परतु जगन्नाथ की तीर्थ-यात्रा से लोटने पर किसी अज्ञात व्यक्ति की गोद में शिशु विट्ठल सुरक्षित मिला। उस व्यक्ति ने शिशु को उसके माता-पिता के हाथों सौंपा और स्वयं अदृश्य हो गया। वल्लभाचार्य, विट्ठल को अपने आवास-स्थान अडैल (प्रयाग में त्रिवेणी के दक्षिण पार) ले गए। वहीं पर विट्ठल के संस्कार एवं शिक्षा-दीक्षा हुई। 15 वर्ष की आयु में ही इनके पिता आचार्य वल्लभ ने अपना शरीर त्यागा। फिर भी इन्होंने वेद-वेदांगों का अध्ययन एवं सांप्रदायिक साहित्य का अनुशीलन किया। वल्लभ के ये द्वितीय पुत्र थे। गोसाईजी के नाम से अधिक प्रसिद्ध।

अपने पिता के समान विट्ठलनाथ भी गृहस्थ थे। उन्हीं के समान गृहस्थों मे रह कर ही इन्होंने परमार्थ-चिंतन की अपूर्व निष्ठा निभाई। इन्होंने दो विवाह किए थे। प्रथम पत्नी रुक्मिणी से 6 पुत्र और 4 पुत्रिया थी। गढा की रानी दुर्गावती के अत्यधिक आग्रह पर इन्होंने दूसरा विवाह सागर की पद्मावती से किया, जिससे एकमात्र पुत्र घनश्याम हुए। रानी ने मथुरा में इनके निवास- हेतु एक भव्य वास्तु का निर्माण कराया, जो सतघरा के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1542 में दुर्गावती ने आचार्य को अपनी राजधानी गढा मडला में आमंत्रित कर उनका सम्मान किया।

स 1587 में आचार्य वल्लभ के महाप्रयाण के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी सांप्रदायिक गद्दी के उत्तराधिकारी हुए, किन्तु कुछ ही वर्षों में उनकी लीला समाप्त हुई। गोपीनाथ जी की विधवा ने अपने पुत्र पुरुषोत्तम को गद्दी का अधिकारी करवाया। कृष्णदास ने भी पुरुषोत्तमक का ही पक्ष लिया। मतभेद होने के कारण श्रीनाथजी का ड्योढी-दर्शन विट्ठलनाथ के लिये बद हो गया दुखी होकर ये पारसोली चले गए और वहीं से नाथद्वारा के मदिर में झरोखे की ओर देखा करते थे। इसी वियोग-काल में इन्होंने 'विज्ञप्ति' की रचना की, जो आध्यात्मिक काव्य की दृष्टि से एक सुदर ग्रथ माना जाता है। कहते हैं कि मथुरा के 'हाकिम' की आज्ञा से जब कृष्णदास बदी बना लिये गए, तो इन्होंने दुखित होकर अन्न-जल का त्याग कर दिया। कृष्णदास के मुक्त किये जाने पर ही भोजन ग्रहण किया। इस उदात्तता से प्रभावित कृष्णदास ने इनके उत्तराधिकार को स्वीकार कर लिया।

पुष्टि-सप्रदाय की ग्रथ-सपदा-वृद्धि, आर्थिक-स्रोत-वृद्धि, विस्तार एव व्याख्या सभी का सब श्रेय इन्हीं का है। ये बडे विद्वान् तथा आध्यात्मिक विभूति थे। बादशाह अकबर तथा उसके प्रधान दरबारी राजा टोडरमल, राजा बीरबल प्रभृति से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। इसी व्यक्तित्व के वशीभुत होकर अकबर ने गोकुल तथा गोवर्धन की भूमि इन्हे भेट कर दी थी। इस सबंधी दो शासकीय फर्मान आज भी मिलते हैं। तदनुसार ब्रज-मंडल में गउएं चराने आदि अनेक करों की माफी का हुक्म गोसाई विट्ठलनाथजी को बादशाह की ओर से प्राप्त हुआ था। बादशाह की ओर से इन्हें न्यायाधीश के अधिकार भी प्राप्त थे।

इन्होंने अपने पिता आचार्य वल्लभ के ग्रथों का गूढ नहीं समझाया, प्रत्युत नवीन ग्रथों की रचना कर वल्लभ-सप्रदाय के साहित्य की वृद्धि की। इनके ग्रंथ प्रौढ, युक्तिपूर्ण एव विवेचनामडित हैं। मुख्य ग्रथों के नाम हैं - (1) अणु-भाष्य-अंतिम डेढ अध्यायों की रचना द्वारा अपने पिता के अपूर्ण ग्रथ की पूर्ति की, (2) विद्वन्मडन, (3) भक्ति-हंस। (4) भक्ति-निर्णय, (5) निबध-प्रकाश-टीका, (6) सुबोधिनी-टिप्पणी और (7) श्रृगार-रस-मडन। ग्रंथों की कुल संख्या 46 बतायी जाती है।

आचार्य-पद पर आसीन होने के पश्चात् इन्होंने भ्रमण कर अपने मत का विपुल प्रचार किया। विशेषत गुजरात में वल्लभ-सप्रदाय के विशेष प्रचार का श्रेय विट्ठलनाथ को ही है, जिन्होंने इस कार्य हेतु गुजरात की 6 बार यात्रा की एव उस प्रदेश में विस्तृत भ्रमण किया। इस सप्रदाय में आज जो सेवापद्धति व्यवस्थित रूप मे दिखाई देती है, उसका श्रेय भी विट्ठलनाथ को ही है।

इनकी पुत्र-सपत्ति भी विपुल थी। इनके 7 पुत्र हुए और उन सातों को भगवान् के 7 रूपों की सेवा तथा अर्चना का अधिकार देकर इन्होंने अपने सप्रदाय के विस्तार तथा परिवर्तन की समुचित व्यवस्था की। वल्लभ सप्रदाय मे इन्हे कृष्ण का अवतार माना जाता है।

विट्ठलनाथजी जिस प्रकार धर्म के आचार्य, शास्त्रो के प्रकाड पडित तथा मुगल शासन के न्यायाधीश थे, उसी प्रकार ब्रज-भाषा के महनीय उन्नायक भी थे। इनके पिता आचार्य वल्लभ के समय तक ब्रज भाषा असस्कृत, अपरिमार्जित और साहित्य के क्षेत्र से बहिर्भूत भाषा थी। परतु आपके पिता तथा आपके सतत उद्योग एव प्रोत्साहन के बल पर वह सर्वमान्य साहित्यिक भाषा बनी। ब्रज भाषा की वर्तमान साहित्य समृद्धि का श्रेय भी आप दोनो को प्राप्त है। "अष्टछाप" के कवियो के रूप मे प्रसिद्ध सूरदास, परमानददास, कुभनदास तथा कृष्णदास आपके पिता वल्लभ के शिष्य थे, तो नददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविंददास आपके शिष्य थे।

विट्ठलनाथ के आध्यात्मिक चरित्र का प्रभाव, तत्कालीन शासकों एव शासनाधिकारियों पर पडे बिना न रह सका। बादशाह अकबर पर इनका प्रभाव विशेष पडा। इसी प्रकार आपके उपदेशो से प्रभावित होकर राजा टोडरमल, राजा बीरबल, राजा मानसिह, सगीतसम्राट् तानसेन, गढा की रानी दुर्गावती, राजा रामचद्र प्रभृति इनके शिष्य बने थे। फिर भी ये बडी उदार प्रकृति के होने के कारण, राजा से रक तक इनकी दृष्टि समभावन सभी पर पडती रही। स 1647 (= 1590 ई) की माघ शुक्ल सप्तमी को "राजभोग" के पश्चात् आप गोवर्धन की कदरा मे प्रविष्ट हो नित्य लीला मे लीन हो गए। इनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजी ने इन्हें वैसा करने से रोकना चाहा, किन्तु इनका उत्तरीय वस्त्र ही उनके हाथ लग सका। उसी वस्त्र से उत्तर क्रिया करने का आदेश देकर ये अतर्धान हो गए। उस समय "अष्टछाप" के अन्यतम कवि एव इनके शिष्य चतुर्भुजदास वहा पर उपस्थित थे।

गोसाई विट्ठलनाथ जी का जीवन-चरित्र, भगवान् श्रीकृष्ण के लीला-सौंदर्य का दर्शन बोध है। (उनके पुष्टि-मार्गी सिद्धान्त में मानवता के समस्त गुणों की भावना सन्निहित है। उनका सप्रदाय काव्य, चित्रकला आदि विविध कलाओं के स्फूर्तिदाता तथा प्रोत्साहक रहा।

आचार्य वल्लभ द्वारा प्रणीत **वैष्णव जन की परिभाषा मे जाति, धर्म अथवा उपासना-पद्धति की विभिन्नता, कोई मतभेद उपस्थित नहीं करती थी। इस लिये उनके सुपुत्र विट्ठलनाथजी से अलीखान, तानसेन, रसखान, ताजबीबी जैसे मुसलमानों ने** भी वैष्णव दीक्षा ली थी।

विद्याकर - ई 12 वीं शती का पूर्वार्ध। **"कवीन्द्र-वचन-समुच्चय"** के सकलनकर्ता। बगाल के जगद्दल मठ में निवास।

विद्यातीर्थ - ई 14 वीं शती। ये माधववर्मा व सायणाचार्य के विद्यागुरु तथा विजयनगर के राजा के आध्यात्मिक गुरु थे। ये त्रिदडी स्वामी तथा शृगेरीपीठ के शंकराचार्य थे। विद्यातीर्थ ने "रुद्रप्रश्नभाष्य" नामक ग्रथ की रचना की। शृंगेरी मे विजयनगर के सम्राट बुक्कराय के सहयोग से माधवाचार्य ने विद्यातीर्थ-मदिर बनवाकर उसमें उनकी मूर्ति प्रतिष्ठापित की।

विद्याधर - काव्यशास्त्र के आचार्य। समय-ई 13-14 वीं शती। इन्होंने "एकावली" नामक काव्यशास्त्रीय ग्रथ की रचना की है जिसमे काव्य के दशागों का वर्णन है और वे उत्कल-नरेश नरसिंह की प्रशस्ति में लिखे गये हैं। इसका प्रकाशन (श्री त्रिवेदी रचित भूमिका व टिप्पणी के साथ) मुंबई सस्कृत सीरीज से हुआ है। विद्याधर ने "केलिरहस्य" नामक काम-शास्त्रीय ग्रथ की भी रचना की है।

विद्याधर - ई 17 वीं शती। रचना- "प्रतिनैषध"। श्रीहर्ष के "नैषध" महाकाव्य से प्रेरणा लेकर इस काव्य की रचना हुई। इनके सहकारी का नाम था लक्ष्मण।

विद्यानिधि - ई 17 वीं शती के सन्यासी-पडित। इन्होंने अनेक ग्रथों की रचना की है। इनके समय में काशी व प्रयाग जाने वाले यात्रियों पर मुगल शासकों ने भारी कर लगाया था जिसे आपने बद करवाया। शाहजहा ने इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें "सर्वविद्यानिधि" की उपाधि से विभूषित किया। कलकत्ता की रॉयल एशियाटिक सोसायटी मे इन्हे दिये मानपत्र अभी भी सुरक्षित हैं। इन काव्यमय मानपत्रों का संग्रह प्रकाशित हुआ है।

विद्याधर शास्त्री (पं) - जन्म 8 अगस्त, 1901, मृत्यु 24 फरवरी 1983। गौड ब्राह्मण। पिता- देवीप्रसाद शास्त्री (विद्यावाचस्पति)। पितामह-हरनामदत्त शास्त्री। चुरू ग्राम में जन्म। इनकी शिक्षा रामगढ, भिवाणी और लाहौर में हुई। डूंगर कालेज, बीकानेर में सस्कृत-विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए आप सन् 1956 में सेवानिवृत्त हुए। उसके बाद जीवन-पर्यन्त, बीकानेर के एक शोध संस्थान में निदेशक पद पर कार्य करते रहे। सस्कृत-भाषा और साहित्य के विकास के लिए की गई विशिष्ट सेवाओं के कारण, राष्ट्रपति द्वारा आपको सम्मानित किया गया था। उत्कृष्ट साहित्य सर्जन के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा आपको सम्मानित किया

गया। विद्याधर शास्त्री ने अनेक प्रकार के काव्यों, नाटकों एव स्तोत्रों का प्रणयन किया। वे हैं- 1) वैचित्र्य-लहरी, 2) मत्तलहरी, 3) लीलालहरी, 4) विद्याधर-नीतिरत्नम्, 5) हरनामामृतम् (महाकाव्य), 6) शिवपुष्पांजलि (स्तोत्र), 7) आनंदमंदाकिनी, 8) अनुभवशतकम्, 9) विक्रमाभ्युदय (चपू), 10) काव्यवाटिका, 11) विश्वमानवीय, 12) हिमाद्रिमाहात्म्य, 13) सूर्यप्रार्थना, 14) सत्यसन्दोहिनी, 15) कलिपलायन, 16) पूर्णानन्द, 17) दुर्बलबल (तीनों नाटक), 18) नीतिकल्पतरु, 19) नीतिकल्पलता, 20) नीतिकाव्य, 21) नीतिचन्द्रिका, 22) नीतिद्विषष्ठिका, 23) नीतिनवरत्नमाला, 24) नीति-प्रदीप, 25) नीति-मंजरी, 26) नीतिमाला, 27) नीतिरहस्य, 28) नीति-रामायण, 29) नीतिलता, 30) नीति-वाक्यामृत, 31) नीति-विलास, 32) नीतिशास्त्र-समुच्चय, 33) नीति-कुसुमावली, 34) नीतिरत्न।

विद्यानन्द - कर्नाटकवासी। जैनधर्मी नन्दिसघ के ब्राह्मणकुलीन आचार्य। वादिराज आदि आचार्यों द्वारा उल्लिखित। समय ई 8-9 वीं शताब्दी। गंगनरेश शिवभाट द्वितीय (ई 9 वीं शती) तथा राचमल्ल सत्यवाक्य-प्रथम (ई 10 वीं शती) के समकालीन। रचनाएं- (1) स्वतत्र ग्रथ आप्तपरीक्षा (स्वोपज्ञवृत्तिसहित) प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, श्रीपुरपार्श्वनाथ-स्तोत्र, विद्यानन्द-महोदय। (2) (टीका ग्रथ)- अष्टसहस्त्री, तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिक और युक्त्यनुशासनालकार। इन कृतियों पर पूर्ववर्ती ग्रथकार समन्तभद्र, सिद्धसेन, पात्रस्वामी, भट्टाकलक, कुमारसेन आदि आचार्यों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी तरह माणिक्यनन्दि, वादिराज, प्रभाचद्र, अभयदेव, देवसूरि आदि आचार्य विद्यानद से प्रभावित हैं।

विद्यानन्दी - बलात्कारगण को सूरत शाखा के सस्थापक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य। मंदिरमूर्ति प्रतिष्ठापक। जाति-पोरवाड। पिता-हरिराज। कार्यक्षेत्र-गुजरात और राजस्थान। समय- वि स 1499-1538। रचनाए- सुदर्शनचरित (1362 श्लोक) और सुकुमालचरित। तत्कालीन अनेक राजाओं द्वारा सम्मानित।

विद्यानंदी - ई 9 वीं शती के एक जैन आचार्य। इन्होंने अकलकदेव की "अष्टशती" पर "अष्टसाहस्त्री" नामक टीका लिखी। इसके अलवा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, युक्त्यनुशासनालकार, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा व सत्यशासन आदि ग्रथों की रचना भी इन्होंने की है।

विद्यानाथ - समय- ई. 14 वीं शती। मूल नाम अगस्त्य। काव्यशास्त्र के आचार्य। "प्रतापरुद्रयशोभूषण" या "प्रतापरुद्रीय" नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के प्रणेता। आंध्र प्रदेश के काकतीय राजा प्रतापरुद्र के आश्रित-कवि, जिनकी प्रशंसा मे इन्होंने "प्रतापरुद्रीय" के उदाहरणों की रचना की है। इनके "प्रतापरुद्रीय" पर कुमारस्वामी कृत रत्नायण-टीका मिलती है। "रत्नशाण" नामक अन्य अपूर्ण टीका भी प्राप्त होती है। इस ग्रथ का प्रचार दक्षिण में अधिक है। इसका प्रकाशन मुंबई सस्कृत सीरीज से हुआ है। सहित्य के क्षेत्र में विद्यानाथ का यह एक नवीन उपक्रम था, जिसका अनुकरण आज तक होता आ रहा है। अन्य रचनाए- प्रतापरुद्रकल्याणम् (नाटक) और हेमन्त-तिलक (भाण)।

विद्यारण्य - ई 14 वीं शताब्दी। इनका पूर्वनाम माधवाचार्य था। इन्होंने हरिहर व बुक्क इन दो सरदारों को शुद्ध कर हिंदू धर्म में वापस लिया और उनकी सहायता से विजयनगर का राज्य स्थापित किया। 30 वर्षों तक वे विजयनगर के प्रधानमंत्री थे। सन् 1380 मे शृंगेरीपीठ के शकराचार्य भारतीतीर्थ के निधन के बाद, उस पीठ का आचार्य-पद इन्हीं को प्राप्त हुआ। इनका वेदान्त विषयक "पचदशी" नामक ग्रथ अत्यत महत्त्वपूर्ण है। अपररचना-संगीतसार (अप्राप्य)

विद्यालंकार भट्टाचार्य - विजयिनीकाव्यम्" मे आपने रानी व्हिक्टोरिया का चरित्र ग्रथन किया है।

विद्यावागीश - आसाम नरेश प्रमत्तसिह (1744-51 ई.) के मत्री गगाधर बडफूकन द्वारा सम्मानित। पिता- आचार्य पचानन। श्रीकृष्ण-प्रयाण नामक अंकिया नाटक के रचयिता।

विद्यासागर मुनि - प्रक्रियामजरी नामक व्याकरणविषयक काशिका टीका के लेखक। इस टीका के दो हस्तलिखित उपलब्ध है।

विधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्री (म.म.) - समय 1877-1946 ई। जन्म कालीवाटी (बगाल) मे। पिता-त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य। 1897 मे काशी जाकर कैलाशचन्द्र तर्कशिरोमणि से विविध विषयों (विशेषकर न्याय) का अध्ययन किया। सन् 1904 में "मित्रगोष्ठी" में प्रकाशित हुई इनकी अन्य रचनाए इस प्रकार हैं दुर्गासप्तशती, भरतचरित, उमापरिणय, हरिश्चन्द्र-चरित (महाकाव्य), चित्तविलास (खण्डकाव्य), अपत्यविक्रय, क्षुत्कथा, दीनकन्यका आदि कहानिया और जयपराजयम् चन्द्रप्रभा (उपन्यास) व मिलिन्दप्रश्न (प्राकृत मिलिन्द पन्हो का अनुवाद)

विनयचन्द्र - विनयचन्द्र नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। एक वे हैं जो रविप्रभसूरि के शिष्य हैं। समय वि स 1300 के लगभग। ग्रंथ-मल्लिनाथ-चरित, मुनिसुव्रतनाथ-चरित और पार्श्वनाथ-चरित। दूसरे वे हैं जो आदिनाथ-चरित के रचयिता हैं। समय- वि स 1474। तीसरे- रत्नसिह सूरि के शिष्य हैं। ई 14 वीं शती)। ग्रथ-कालकाचार्यकथा, पर्यूषणकल्प और तत्त्वदीपमालिकाकल्प। इस नाम के और भी विद्वान् हुए हैं।

विनय-विजयगणि - "इंदुदूत" नामक सदेश-काव्य के प्रणेता। समय- 18 वीं शती का पूर्वार्ध। वैश्य-कुलोत्पन्न श्रेष्ठी तेजपाल के पुत्र। दीक्षागुरु-विजयप्रभ सूरीश्वर। इनका एक अधूरा काव्य-ग्रंथ "श्रीपालरास" भी प्राप्त होता है जिसे इनके मित्र यशोविजयजी ने पूरा किया। इन्होने संस्कृत, प्राकृत व गुजराती

में लगभग 35 ग्रंथों की रचना की है। सस्कृत ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं- श्रीकल्पसूत्र-सुबोधिका, लोकप्रकाश, हेमलघुप्रक्रिया, शांतसुधारस, जिनसहस्रनाम-स्तोत्र, हेमप्रकाश, नयकर्णिका, षट्त्रिंशत्-जल्पसंग्रह, अर्हन्नमस्कार-स्तोत्र, और आदिजिनस्तवन। "इंदुदूत" का प्रकाशन श्री जैन साहित्यवर्धक सभा, शिवपुर (पश्चिम खानदेश, महाराष्ट्र) से हुआ है। इस संदेश-काव्य की रचना "मेघदूत" के अनुकरण पर की है, किंतु नैतिक व धार्मिक तत्त्वों की प्रधानता के कारण इन्होंने एक सर्वथा नवीन विषय का प्रतिपादन किया है।

विनायकभट्ट - समय-ई. 19 वीं शती। रचना-आङ्ग्रेजचन्द्रिका। विषय- अंग्रेजी साम्राज्य के वैभव का वर्णन।

विबुध श्रीधर - समय ई. 15 वीं शती। कार्यक्षेत्र-राजस्थान। रचना-भविष्यदत्त-पंचमी कथा। इसकी रचना- लम्बकचुककुल के प्रसिद्ध साहू लक्ष्मण की प्रेरणा से हुई।

विभ्राजसौर्य - ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 117 वें सूक्त के द्रष्टा। इसमें सूर्य की स्तुति की गयी है। इस सूक्त की चौथी ऋचा में कहा गया है कि विश्वरक्षक व देवरक्षक सूर्य अपने तेज से त्रैलोक्य का पोषण करता है।

विमद ऐंद्र प्राजापत्य - ऋग्वेद के दसवें मडल में 20 से 26 तक सूक्तों की रचना इनकी मानी जाती है। इन्हें अनुकृत वासुक भी कहा जाता है। अपने सूक्तों में इन्होंने अग्नि, इन्द्र, सोम व पूर्वा की स्तुति की है।

ऋग्वेद में विमद का उल्लेख इन्द्र व प्रजापति के मानसपुत्र के रूप में किया गया है। पुरूमित्र की पुत्री कमद्यु इनकी पत्नी थी। उसने स्वयंवर में इनके गले में वरमाला डाली तो वहा उपस्थित अन्य राजाओं ने इनके साथ युद्ध किया। अश्विदेवताओं के सहयोग से ये युद्ध में विजयी हुए।

विमलकुमार जैन - कलकत्ता के निवासी। रचनाए- रक्षाबन्धनशतक। वीर-पचाशत्का, गणेशपचविंशतिका, मुनिद्वात्रिंशत्का, द्रव्यदीपिका और गान्धिवादाष्टक।

विमलदास - वीरग्राम के निवासी। अनन्तसेन के शिष्य। तजौर नगर इनका कार्यक्षेत्र था। समय-ई 17 वीं शती। ग्रथ-सप्तमंत्रतरगिणी (800 श्लोक)।

विमलमति - समय वि स 702 के लगभग। भर्तृहरि उपाधि। रचना - भागवृत्ति, जो पाणिनि की अष्टाध्यायी पर काशिका के समान प्रामाणिक वृत्ति है। लेखक बौद्ध सम्प्रदाय में प्रसिद्ध व्यक्ति। सपूर्ण ग्रन्थ अनुपलब्ध। किसी श्रीधर ने इस भागवृत्ति पर व्याख्या लिखी थी, वह भी अप्राप्य है।

विरूपअंगिरस - ऋग्वेद के आठवे मंडल के 43, 44 व 75 वें सूक्तों के द्रष्टा। इन्हें अगिरा का पुत्र कहा गया है। इनके तीनों सूक्त अग्नि की स्तुति में है।

विरूपाक्षकवि - "चोलचम्पू" व "शिवविलासचम्पू" नामक काव्यों के प्रणेता। "चोलचम्पू" के संपादक डा. बी. राघवन् के अनुसार विरूपाक्ष का अनुमानित समय ई. 17 वीं शताब्दी है। पिता-शिवगुरु। माता-गोमती। कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण। "चोलचम्पू" का प्रकाशन, मद्रास गवर्नमेंट ओरियंटल सीरीज (और सरस्वती महल सीरीज तंजौर) से हो चुका है। "शिवविलासचम्पू" का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। इसका विवरण तजौर कैटलाग 4160 में प्राप्त होता है। "शिवविलास-चम्पू" में विरूपाक्ष ने अपना परिचय दिया है।

विलिनाथ - ई 17 वीं शती (पूर्वार्ध) पिता-कनक सभापति। चोल प्रदेश के विष्णुपुर नामक अग्रहार में जन्म। यज्ञनारायण के प्रपौत्र। रचना- "मदनमजरी-महोत्सव" नामक पाच अकी कपटनाटक।

विव्रि काश्यप - ऋग्वेद के दसवें मडल के 163 वें सूक्त के द्रष्टा। इस अनुष्टुभ् छदोबद्ध सूक्त का विषय है रोगनाश। इनकी एक ऋचा इस प्रकार है

अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते।।

अर्थात्, हे रोगी, मै तेरी आखो, कान, नाक, जीभ और मस्तिष्क के रोगों को दूर करता हू।

विशाखदत्त (विशाखदेव) - समय- प्राय ई. 6 वीं शती का उत्तरार्ध। एकमात्र प्रसिद्ध रचना "मुद्राराक्षस" उपलब्ध है। अन्य कृतियों की केवल सूचना प्राप्त होती है, जिनमे "देवीचद्रगुप्तम्" नामक नाटक प्रमुख है। इस नाटक के उद्धरण "नाट्यदर्पण" व "श्रृगारप्रकाश" नामक काव्यशास्त्रीय ग्रथों में प्राप्त होते हैं। इसमें विशाखदत्त ने ध्रुवस्वामिनी व चद्रगुप्त के प्रणय-प्रसग का वर्णन किया है और चद्रगुप्त के बडे भाई रामगुप्त की कायरता प्रस्तुत की है। "मुद्राराक्षस" में सघर्षमय राजनीतिक जीवन की कथा कही गयी है तथा चाणक्य, चद्रगुप्त व राक्षस के चरित्र को नाटक का वर्ण्य-विषय बनाया गया है।

"मुद्राराक्षस" की प्रस्तावना में अपने बारे में जो लिखा है, वही इनसे सबधित विवरण का प्रामाणिक आधार है। तदनुसार ये सामंत वटेश्वरदत्त के पौत्र थे, और इनके पिता का नाम पृथु था। पृथु को "महाराज" की उपाधि प्राप्त थी तथा इनके पितामह सामत थे किंतु इन व्यक्तियों का विवरण अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। इनके समय-निरूपण के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। "मुद्राराक्षस" के भरतवाक्य में चद्रगुप्त का उल्लेख है, पर कतिपय प्रतियों में चद्रगुप्त के स्थान पर दतिवर्मा, अवतिवर्मा व रतिवर्मा का नाम मिलता है। विद्वानों का अनुमान है कि सभवत अवतिवर्मा मौखरी-नरेश हों, जिनके पुत्र ने हर्ष की बहन से विवाह किया था। इन्हें काश्मीर-नरेश भी माना गया है, जिनका समय 855-883 ई तक है। याकोबी "मुद्राराक्षस" में उल्लिखित ग्रहण का समय, ज्योतिष-गणना के अनुसार, दिनाक 2 दिसबर 860 ई. मानते

हैं। याकोबी का यह मत है कि राजा के मंत्री शूर द्वारा इस नाटक का अभिनय कराया गया था पर इसके संबंध में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। डा. काशीप्रसाद जायसवाल, स्टेन कोनो और एस. श्रीकंठ शास्त्री ने विशाखदत्त को चद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन माना है। (समय- 375-413 ई)। चार्पेटियर इन्हें अंतिम गुप्तवंशियों में से समुद्रगुप्त का समकालीन मानते हैं। कीथ के अनुसार इसका समय ई 9 वीं शती है। चद्रगुप्त को गुप्तवशी राजा मानने वाले कोनो, इन्हें कालिदास का कनिष्ठ समसामयिक मानते हैं।

"दशकरूपक" व "सरस्वतीकठाभरण" में "मुद्राराक्षस" के उद्धारण प्राप्त होते हैं। इन दो ग्रथों का रचना काल ई. 10 वीं या 11 वीं शती है। अत "मुद्राराक्षस" का स्थितिकाल ई 9 वीं शती से पूर्व निश्चित होता है।

संप्रति विद्वानों का बहुसख्यक समुदाय, विशाखदत्त का समय छठी शती का उत्तरार्ध स्वीकार करने के पक्ष में हैं। "मुद्राराक्षस" की रचना, विशाखदत्त ने छठी शती के अतिम चरण में और कन्नोज के मौखरी-नरेश अवतिवर्मा की हूणों पर प्राप्त विजय के उपलक्ष्य में की थी। वास्तव में समस्त सस्कृत नाट्य-साहित्य में केवल विशाखदत्त ही एक ऐसा नाटककार है जिसने परपरागत रूढियों का सम्मान नहीं किया। उसने समस्त सैद्धान्तिक परपरागत रूढियों का उल्लघन किया है।

विश्वक कार्ष्णि - ऋग्वेद के आठवे मडल के 86 वें सूक्तों के द्रष्टा। इसमें अश्विनीकुमार की स्तुति जगती छंद में की गयी है। विश्वक, कृष्ण आगिरस के पुत्र थे, अत इन्हें कार्ष्णि कहा जाने लगा। ऋग्वेद में इस बात का उल्लेख आया है कि अश्विनीकुमार की कृपा से ही ये अपने खोये हुए पुत्र विष्णापु को पुन पा सके।

विश्वकर्मा शास्त्री - पिता-दामोदर विज्ञ। पितामह-भीमसेन। रचना-प्रक्रियाव्याकृति (प्रक्रियाकौमुदी की टीका)।

विश्वनाथ - ई 17 वीं शती। रचना- "न्यायसूत्रवृत्ति" (गौतम के न्यायसूत्र की टीका)।

विश्वनाथ - त्रिमालदेव का पुत्र। ई. 18 वीं शती। आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के निवासी। जीवन का अधिक काल काशी में व्यतीत किया। रचना- मृगाङ्कलेखा।

विश्वनाथ - (1) ई 16 वीं शती के एक टीकाकार। तैत्तिरीय शाखा के भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण व गोलग्रामस्थ दिवाकर के पुत्र। इन्होंने सूर्यसिद्धान्त पर उदाहरणरूप अनेक टीकाए लिखी हैं। इनके 18 टीकाग्रथ हैं। इनमें कुछ नाम हैं गहनप्रकाशिका टीका, सिद्धान्तशिरोमणि टीका, करणकुतूहल टीका, मकरंद टीका, ग्रहलाघवटीका, पातसारणी टीका और सामतंत्र-प्रकाशिका टीका।

(2) ई 17 वीं शती के एक संस्कृत कोशकार। इन्होंने अत्रि गोत्री ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। जन्मस्थान- देवलपट्टण ग्राम। ये कुछ काल नवानगर के जाम शत्रुशाल्य के आश्रय में रहे। वहां इन्होंने "शत्रुशल्यचरित" नामक महाकाव्य रचा। बाद में मेवाड के रावलवंशी राजा जगत्सिंह के आश्रय में रहकर उनकी प्रशंसा में "जगत्प्रकाश" नामक 14 सर्गों का काव्य रचा।

"कोशकल्पतरु" इनका प्रमुख ग्रंथ है जो विभिन्न विषयों एवं वर्गों का कोश है। प्रथम खंड में परमात्मवर्ग, स्वर्ग-वर्ग, व्योम-वर्ग, कलावर्ग, धीवर्ग व नाट्यवर्ग आदि प्रकरण हैं। दूसरे खंड में वनौषधि वर्ग की चर्चा है जिसमें वन-उपवन, फल-फूल, औषधियों आदि की जानकारी दी गयी है।

विश्वनाथ कविराज - उत्कल के प्रतिष्ठित पंडित-कुल में जन्म। पिता-चंद्रशेखर, जिन्होंने "पुष्पमाला" व "भाषार्णव" नामक ग्रंथों का प्रणयन किया था। उनके इन ग्रंथों का उल्लेख "साहित्य-दर्पण" में है। इनके पिता विद्वान्, कवि व सांधिविग्रहिक थे। नारायण नामक विद्वान् इनके पितामह या वृद्धपितामह थे। इनका समय 1200 ई से लेकर 1350 ई के मध्य है, क्योंकि इनके साहित्य-दर्पण में (4-4) जिस अलावदीन नृपति का वर्णन है, उस दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी का समय 1296 ई से 1316 ई तक था।

ये कवि, नाटककार व सफल आचार्य थे। इन्होंने राघव-विलास (सस्कृत महाकाव्य) कुवलयाश्वचरित (प्राकृत काव्य), प्रभावती-परिणय व चद्रकला (नाटिका), प्रशस्ति-रत्नावली काव्यप्रकाश-दर्पण (काव्य-प्रकाश की टीका) व साहित्य दर्पण नामक ग्रथों का प्रणयन किया था। इनकी कीर्ति का स्तम्भ, एकमात्र साहित्यदर्पण ही है, जो सभी अलकार शास्त्रविषयक प्रमुख ग्रंथों में है। इस पर चार टीकाए लिखी गई हैं। कविराज (महापात्र) विश्वनाथ, रसवादी आचार्य हैं। इन्होंने रस को ही काव्य की आत्मा माना है और उसका स्वतत्र रूप से विवेचन किया है।

विश्वनाथ चक्रवर्ती - ई. 17 वीं सदी का उत्तरार्ध व 18 वीं सदी का प्रथम चरण। गौडीय वैष्णवों के अवातरकालीन आचार्यों में प्रधानतम। गौडीय षट्गोस्वामियों के तिरोधान के पश्चात् ब्रजधाम की महिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने का श्रेय श्री चक्रवर्ती को प्राप्त है। इन्होंने तपस्या एवं ग्रथ-निर्माण द्वारा परंपरा के सूत्र को विच्छिन्न होने से, बचाया।

बगाल में जन्म तथा शिक्षित। विश्वनाथ ने वैराग्य धारण कर वृदावन को अपना साधनास्थल बनाया और वहीं राधाकुड के समीप रह कर अपने अधिकाश ग्रंथों का प्रणयन किया। षट्गोस्वामियों द्वारा विरचित ग्रंथ, सामान्य जनों की समझ के बाहर थे। विश्वनाथ ने उन पर टीकाएं लिख कर, उन्हें सरल-सुबोध बनाया। इनके द्वारा प्रणीत टीकाएं बहुमूल्य हैं। इन्होंने अपनी भागवत टीका का रचनाकाल टीका के अंत में दिया है। तदनुसार इस टीका का निर्माण काल है 1626

शक (= 1704 ई.)। एक प्राचीन ग्रंथ में इनका प्रकट-काल **शकाब्द 1565 से लेकर 1652 शक है। यदि यह निर्देश प्रामाणिक हो, तो विश्वनाथजी** 87 वर्षों तक जीवित रहे। जो **कुछ भी हो, किंतु इनकी भागवत-टीका, इनकी प्रौढ अवस्था की रचना अवश्य है।** फलत इनका स्थितिकाल, ई 17 वीं सदी का उत्तरार्ध एव 18 वीं सदी का प्रथम चरण मानना उचित प्रतीत होता है।

इनकी भागवत की टीका का नाम है- सारार्थ-दर्शिनी। बलदेव विद्याभूषण इनके पट्ट शिष्य थे जिन्होंने वैष्णवानंदिनी नामक भागवत-टीका का प्रणयन किया। अन्य कृतिया- श्रीकृष्ण-भावनामृत, निकुज-केलिबिरुदावली, गौराग-लीलामृत, च चमत्कार-चन्द्रिका, आनन्द-चन्द्रिका नामक टीका (उज्ज्वल-नीलमणि पर) तथा अलकारकौस्तुभ पर सारबोधिनी नामक टीका।

विश्वनाथ पंचानन (भट्टाचार्य) - समय ई 17 वीं शती। वैशेषिक दर्शन के प्रसिद्ध वगदेशीय आचार्य। नवद्वीप (बगाल) के नव्यन्याय-प्रवर्तक रघुनाथ शिरोमणि के गुरु वासुदेव सार्वभौम के अनुज रत्नाकर विद्यावाचस्पति के पौत्र। पिता-काशीनाथ विद्यानिवास, जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् थे। विश्वनाथ पचानन ने न्यायवैशेषिक पर दो ग्रथो की रचना की है, भाषापरिच्छेद व न्यायसूत्रवृत्ति। भाषापरिच्छेद, वैशेषिक दर्शन का अत्यधिक लोकप्रिय ग्रथ है। "भाषापरिच्छेद" पर दिनकरी, रामरुद्री, मजूषा आदि टीकाए प्रसिद्ध हैं। "न्यायसूत्रवृत्ति" की रचना 1631 ई हुई थी। इसमें न्यायसूत्रो की सरल व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

अन्य रचनाए- अलकारपरिष्कार, नञ्वाद – टीका, पदार्थ-तत्त्वालोक, न्यायतत्रबोधिनी, सुबर्थतत्त्वालोक (व्याकरणशास्त्र) और पिंगलप्रकाश (छद शास्त्र)।

विश्वनाथ मिश्र - ई की 20 वीं शती। एम ए तथा आचार्य। पूर्वी उ प्र के निवासी। शार्दूल विद्यापीठ (बीकानेर) मे प्राचार्य। कृतिया- कलिकौतुक, वामनविजय (एकाकी) तथा कविसम्मेलन (बालोचित लघु प्रहसन)।

विश्वनाथ सत्यनारायण (पद्मभूषण) - समय- ई 20 वीं शती। जन्म नन्दमुरू ग्राम। जिला कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश मे। पिता- विश्वनाथ शोभनाद्रि। शिक्षा-एम्.ए. साहित्यशास्त्र आचार्य। तेलगु मे रचित "श्रीरामायण-कल्पवृक्ष" पर ज्ञानपीठ पुरस्कार। इनके "वेयि पदगल्लु" उपन्यास पर मद्रास वि वि द्वारा पुरस्कार। "कवि-सम्राट्" की उपाधि से अलकृत। आन्ध्र प्रदेश शासन के आजीवन राजकवि। गुण्टूर मे प्रथम तेलगु पण्डित, बाद में व्याख्याता। अन्त मे करीमनगर महाविद्यालय के प्राचार्य। "पद्मभूषण" की उपाधि से विभूषित।

कृतिया- गुप्तपाशुपत तथा अमृतशर्मिष्ठा नामक दो सस्कृत नाटक। तमिल मे इनकी शताधिक रचनाए हैं।

विश्वनाथ सिद्धान्तपंचानन - ई 18 वीं शती। विद्यानिवास भट्टाचार्य के पुत्र। बगालनिवासी। सूक्ति-मुक्तावली नामक सुभाषित-सग्रह के कर्ता।

विश्वनाथसिंह - बघेल वशीय रीवा-नरेश। 19 वीं शती। रचना-रामचन्द्राह्निकम् (सटीक)।

विश्वमनस् वैयश्व - ऋग्वेद के आठवे मडल के 23 से 26 तक के चार सूक्तो की रचना इनके नाम है। व्यश्व के पुत्र होने के कारण वैयश्व यह नाम पैतृक रूप से मिला। ये इन्द्र के मित्र हैं। इन्होंने धनप्राप्ति के लिये वरोसुषामन् से प्रार्थना की है किन्तु सयाणाचार्य के मतानुसार वरोसुषामन् किसी व्यक्ति का नाम नही।

अपने उक्त चार सूक्तों मे इन्होंने क्रमश अग्नि, इन्द्र, मित्रवरुण व अश्विनौ की स्तुति की है। 24 वे सूक्त में इन्होंने कहा है कि मनुष्य के शरीर मे 9 प्राण और 10 वा आत्मारूपी इन्द्र वास करते है। सप्तसिन्धु प्रदेश का उल्लेख भी इसी सूक्त मे है।

विश्ववारा - एक वैदिक सूक्तद्रष्टा। ऋग्वेद के पाचवे मडल का 28 वा सूक्त इनके नाम पर है। सूक्त मे अग्नि की महिमा गायी है।

विश्वसामन् आत्रेय - एक सूक्तद्रष्टा। अत्रिकुल में उत्पन्न होने के कारण आत्रेय कहा गया है। ऋग्वेद के पाचवे मडल के 22 वें सूक्त के द्रष्टा। सूक्त का विषय है अग्निस्तुति।

विश्वामित्र - ऋग्वेद क तीसरे मडल के द्रष्टा। इनका जीवन चरित्र बडा अद्भुत रहा है। वर्षानुवर्ष कठोर तपश्चर्या करने वाले, त्रिशकु को सदेह स्वर्ग भेजने की जिद करने वाले, प्रतिसृष्टि निर्माण करने वाले, बलि चढाने के लिये लाये गये शुन शेप को मुक्त कर अपनी गोद मे बिठाने वाले, वसिष्ठ के शतपुत्रो की हत्या करने वाले, दक्षिणा के लिये हरिश्चन्द्र-तारामती को सताने वाले, ऐसे नानाविध रूपो में विश्वामित्र का जीवन-चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इनमे से कुछ घटनाए वैदिक तथा कुछ पौराणिक हैं। वेदो में उपलब्ध जानकारी के अनुसार विश्वामित्र का जन्म क्षत्रियकुल मे कान्यकुब्ज (कनोज) देश मे हुआ। ये अमावसु-वश के कुशिक राजा के पोते तथा गाथी क पुत्र थे। इनका जन्म नाम विश्वरथ था। जब ये क्षत्रिय से ब्राह्मण बने तब इन्हें "विश्वामित्र" कहा जाने लगा।

सुदास् राजा ने जब वसिष्ठ के स्थान पर इन्हें राजपुरोहित बनाया तो वसिष्ठ ने इसे अपना अपमान समझा और उसी दिन से वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच वैमनस्य पैदा हो गया। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति ने पिता के अपमान का बदला लेने की ठानी और सुदास् द्वारा आयोजित यज्ञ-प्रसग पर हुए वादविवाद मे शक्ति ने विश्वामित्र को पराजित किया, किन्तु विश्वामित्र ने जमदग्नि से प्राप्त ससर्परी-विद्या का सहारा लेकर

शक्ति को परास्त किया और अत में सुदास् की हत्या करवा दी।

वसिष्ठ से वैमनस्य के सन्दर्भ में विश्वामित्र ने कुछ ऋचाए लिखी हैं जो "वसिष्ठद्वेषिणी" के नाम से जानी जाती हैं। वसिष्ठ गोत्री जन इन ऋचाओं का पाठ नही करते। दुर्गाचार्य नामक वसिष्ठ-गोत्री भाष्यकार ने ऋग्वेद के अपने भाष्य में उन ऋचाओं को अछूत छोड दिया।

विश्वामित्र को अपने कर्तृत्व का अभिमान था। एक ऋचा में उनका यह अभिमान झलकता है "विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतं जनम्" - अर्थात् विश्वामित्र का यह ब्रह्म (याने सूक्त) ही भारतजनों की रक्षा कर रहा है।

इनके 100 पुत्र थे, जिनमें से आधे पुत्रो को अपनी आज्ञा की अवहेलना करने पर इन्होने शाप दिया जिससे वे आगे चल कर दस्यु जमात के जनक बने। शुन शेष को बलिवेदी से मुक्त कराने की गाथा से यह ध्वनित होता है कि विश्वामित्र नरबलि के विरुद्ध थे।

महाभारत और पुराणो मे वर्णित विश्वामित्र सम्बन्धी अनेक घटनाओं को विद्वज्जन अतिशयोक्तिपूर्ण मानते हैं।

(2) एक धर्मशास्त्री। याज्ञवल्क्य ने धर्मशास्त्रियो की अपनी सूची मे इनका नामोल्लेख किया है तथा अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, कालविवेक आदि ग्रंथों मे इनके अनेक श्लोक उद्धरित किये गये हैं। ये श्लोक पचमहापातक, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि विषयो से सम्बन्धित हैं। इनकी धर्म सम्बन्धी व्याख्या इस प्रकार है

यमार्या क्रियमाण तु शसन्त्यागमवेदिन ।
स धर्मो य विगर्हन्ति तमधर्म प्रचक्षते।।

अर्थात् वेदवेत्ता आचार्य जिन कृत्यों की प्रशसा करते है उन्हे धर्म तथा जिनकी निंदा करते है उन्हें अधर्म कहते है। इनकी एक अन्य स्मृति श्लोकबद्ध है जिसके 9 अध्याय है।

विश्वास भिक्षु - ई 14 वीं शती। काशी में निवास। सांख्य-प्रवचन-भाष्य, साख्यसार, योगवार्तिक, योगसारसग्रह, ब्रह्मसूत्रभाष्यविज्ञामृत, ब्रह्मादर्श, पाखण्डमत-खंडन, श्वेताश्वेतरोपनिषद्भाष्य आदि ग्रथों की रचना आपने की। अपने ग्रथों में आपने शकराचार्यजी के अनुयायियों को पाखंडी कहा है और उनके अद्वैत वेदान्त मत का खडन भी किया है।

विश्वेश्वर कवि - 18 वीं शती। अल्मोडा के निवासी। रचनाए- रुक्मिणी-परिणय व नवमालिका नामक दो रूपक।

विश्वेश्वर तर्काचार्य - कातन्त्र व्याकरण की पंजिका नामक व्याख्या के लेखक। इसके अलावा जिन प्रभासूरि, रामचंद्र और कुशल की पंजिका-व्याख्या अप्राप्य है।

विश्वेश्वर दयालु - ई 20 वीं शती। इटावा (उ.प्र.) के निवासी। चिकित्सक-चूडामणि। "अनुभूत-योगमाला" पत्रिका के सम्पादक। वैद्य सम्मेलन में प्रायः अध्यक्षपद प्राप्त। मुकुन्दलीलामृत तथा प्रसन्नहनुमन्नाटक के प्रणेता। एक ख्यातनाम देशभक्त।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ (म.म.) - जोधपुर के निवासी। इन्होंने विश्वेश्वर-स्मृति एव आर्यविधान आदि धर्मशास्त्रविषयक ग्रन्थो की रचना की है।

विश्वेश्वर पाण्डेय - समय- ई 18 वीं शती का प्रारंभिक काल। "अलकारकौस्तुभ", "व्याकरणसिद्धांतसुधानिधि" आदि प्रौढ ग्रथों के प्रणेता। 15 वर्षों की अवस्था में काव्यरचना प्रारभ। उत्तरप्रदेश के अतर्गत अल्मोडा जिले के पटिया नामक ग्राम के निवासी। पिता-लक्ष्मीधर। व्याकरण-सिद्धान्त-सुधानिधि इनका उल्लेखनीय ग्रथ है। न्यायशास्त्र पर इन्होंने "तर्ककुतूहल" व "दीधिति-प्रवेश" नामक ग्रथों की रचना की है। साहित्य-शास्त्रविषयक इनके 5 ग्रंथ है - अलकारकौस्तुभ, अलकारमुक्तावली, अलकारप्रदीप, रसचद्रिका व कवींद्रकठाभरण (चित्रकाव्य)। इनका अलकार कौस्तुभ ग्रथ एक असाधारण रचना है, जिस पर इन्होंने स्वय ही टीका लिखी थी जो रूपकालकार तक ही प्राप्त होती है। ये एक अच्छे कवि भी थे। इन्होंने अलकारो पर अनेक स्वरचित सरस उदाहरण अपने ग्रथों मे दिये हैं। मृत्यु के समय इनकी आयु 40 से कम थी।

अन्य रचनाए- (उपलब्ध) - आर्यासप्तशती, (चित्रकाव्य), नवमालिका (नाटिका), नैषधीय टीका, मन्दारमंजरी (गद्य), रस-चद्रिका, रस-मजरी (टीका), रोमावलीशतक, लक्ष्मी-विलास, वक्षोजशतक, शृगारमंजरी (सट्टक), होलिकाशतक (विनोदप्रधान काव्य), काव्यरत्न, रुक्मिणी-परिणयम् (नाटक) आदि। अनुपलब्ध ग्रंथ - काव्यतिलक, तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रवेश, तर्ककुतूहल, तारासहस्रनाम-व्याख्या, षड्ऋतुवर्णन और अलंकार-कुलप्रदीप।

विश्वेश्वर पंडित - काश्मीरी। रचनाएं - स्कन्दास्तिप्रश्ना (दर्शन शास्त्र) और रणवीर-ज्ञानकोश।

विश्वेश्वर भट्ट - ई 14 वीं शती के एक धर्मशास्त्री। ये कौशिक गोत्री पेलिभट्ट के पुत्र थे। माता-अंबिका। गुरु-व्यासारण्य मुनि। द्रविड प्रदेश के वासी। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा पर "सुबोधिनी" नामक भाष्य ग्रंथ लिखा। फिर विश्वेश्वर ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। यमुनातटवर्ती प्रदेश के मदनपाल नामक काष्ट-परिवार के राजा ने इन्हें आश्रय दिया। यहां इन्होंने मदनपारिजात, तिथि-निर्णय-सार और स्मृति-कौमुदी नामक ग्रंथों की रचना की।

मदनपारिजात के 9 स्तबक हैं जिनमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थधर्म, नित्यकर्म, गर्भाधान से आगे के संस्कार, जनन मरण शोध, शुद्धि-क्रिया, श्राद्ध, दायभाग व प्रायश्चित्त का विवेचन है। स्मृति-कौमुदी के चार कल्लोल हैं जिनमें शूद्र के धर्म, कर्तव्य, आचार आदि का विवेचन है।

विश्वेश्वर विद्याभूषण - चट्टाला नगरी (बंगाल) के निवासी। पिता-कृष्णकान्त कविरत्न। माता-कुसुमकामिनी देवी। कुलगुरु-श्रीमन्महेशचंद्र भट्टाचार्य। चट्टल संस्कृत महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त। वहीं अध्यापक। पश्चिम बंगशिक्षाधिकार सेवा के

प्राध्यापक के रूप मे सेवानिवृत्त। सेवानिवृत्ति के पश्चात् हुगली में निवास। अभिनय में रुचि। बगला और सस्कृत के कई नाटकों में अभिनय। कलकत्ता आकाशवाणी से कई रचनाए प्रसारित।

कृतियां - वनवेणु (गीतिकाव्य), मणिमालिका (कथा), काव्यकुसुमाजलि तथा गगासुर-तरगिणी (खण्डकाव्य) तथा 15 नाटक दस्यु-रत्नाकर, भरत-मेलन, वाल्मीकि-सवर्धन, चाणक्यविजय, प्रबुद्ध-हिमाचल, विष्णुमाया, राजर्षि-भरत, उमा-तपस्विनी, ओंकारनाथ-मगल, द्वारावती, मातृपूजन, उत्तर-कुरुक्षेत्र, राजर्षि सुरथ, काशी-कोशलेश, अरुणाचल-केतन। इनमें से दस्युरत्नाकर तथा भरत-मेलन की रचना मे ध्यानेश नारायण चक्रवर्ती से सहयोग प्राप्त। बगला कृतिया- पद्मपुट और पुष्पराग।

विश्वेश्वर सूरि - समय- ई 17 वीं शती। अष्टाध्यायी पर "व्याकरण-सिद्धान्त-सुधानिधि" नामक विस्तृत व्याख्या के लेखक। आदि के तीन अध्याय उपलब्ध। पिता-लक्ष्मीधर। केवल 32-34 वर्ष की आयु में मृत्यु। अन्य रचनाए- तर्ककौतूहल, अलकार-कौस्तुभ, रुक्मिणी-परिणय, आर्यासप्तशती, अलकारकुलप्रदीप और रसमजरी टीका।

विष्णुदत्त शुक्ल "वियोगी" - जन्म 1895 ई में। इन्होंने "गगा" व "सौलोचनीय" नामक दो काव्य ग्रथ लिखे हैं। "गगा" 5 सर्गो में रचित खण्डकाव्य है। "सौलोचनीय" का प्रकाशन 1958 ई में वाणी-प्रकाशन, 21/1, कस्तूरबा गाधी मा' कानपुर से हुआ है। इसमें रावण-पुत्र मेघनाद की पत्नी सुलोच ना का वृत्त वर्णित है। इसमे इन्होने आधुनिक शैली का अनुगमन किया है।

विष्णुदास कवि - समय- ई 15 वीं शती। "मनोदूत" नामक सदेश-काव्य के रचयिता। ये चैतन्य महाप्रभु के मातुल कहे जाते हैं। विषय व भाषा की दृष्टि से इनका "मनोदूत" काव्य एक उत्कृष्ट कृति के रूप में समादृत है। विष्णुदास की दूसरी कृति है "कवि-कौतूहल" जो काव्यशास्त्रीय ग्रथ है।

विष्णुपद भट्टाचार्य - बगाल के भट्टपल्ली, (भाटपाडा), जिला चौबीस परगना के निवासी। म म राखालदास न्यायरत्न के पोते। पिता-हरिचरण विद्यारत्न। कृतिया- काचुकुचिक, अनुकूल-गलहस्तक, धनजय-पुरजय, मणिकाचन समन्वय आदि कतिपय रूपक। मृत्यु - फरवरी 1964 में।

विष्णुमित्र - व्याकरण महाभाष्य पर क्षीरोदक नामक टिप्पणी के लेखक। यह टिप्पणी अप्राप्य है।

विष्णुशास्त्री - भारत की विख्यात 'वैष्णव-सप्रदाय- चतुष्टयी' में, वल्लभ सप्रदाय, रुद्र-सप्रदाय के नाम से विख्यात है। इस सप्रदाय के मुख्य प्रवर्तक थे विष्णुस्वामी, तथा इसके मध्ययुगी प्रतिनिधि थे आचार्य वल्लभ, जिन्होंने विष्णुस्वामी की गद्दी पर आरूढ होकर उनके सिद्धात का प्रचार किया।

आवश्यक प्रमाणों के अभाव में विष्णुस्वामी के देश और काल की निश्चिति अभी तक नहीं हो पाई। वैष्णव-संप्रदाय में प्रसिद्धि है कि विष्णुस्वामी द्रविड प्रदेश के किसी क्षत्रिय राजा के ब्राह्मण-मत्री के सुपुत्र थे। बाल्य-काल से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख थी। इन्होंने उपनिषदों का केवल पारायण ही नहीं किया था अपि तु उनमे वर्णित तथ्यों को अपने व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित करने की उनमें दृढ अभिलाषा थी। अतर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार करने की उनके हृदय में तीव्र इच्छा थी। उपनिषद् धर्म के अनुसार उपासना के सफल न होने पर उन्होंने अन्न-जल-ग्रहण करना बद कर दिया। सातवे दिन उनका हृदय दिव्य ज्योति से भर उठा। उन्हे किशोर मूर्ति श्री श्यामसुदर के दिव्य दर्शन हुए। पश्चात् बालकृष्ण ने स्वय उपदेश दिया कि मेरी प्राप्ति का सर्वाधिक सुलभ उपाय है भक्ति।

इस प्रकार विष्णु स्वामी की उपासना फलवती हुई। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की बालमूर्ति का निर्माण करा कर उसकी प्रतिष्ठापना की और अपने अनुयायियों को भक्ति की विमलसाधना का उपदेश दिया। इस मत के सात सौ आचार्यों की बात सुनी जाती है, जिनमें आचार्य बिल्वमगल एक महान् उपदेशक हुए। जिस समय वल्लभाचार्य उपदेश की कामना से साशक-चित्त हो रहे थे, तब आचार्य बिल्व मगल ने उन्हें विष्णुस्वामी की शरण मे जाने का उपदेश दिया था।

विष्णुस्वामी के सप्रदाय में त्रिलोचन, नामदेव तथा ज्ञानदेव (सत ज्ञानेश्वर) आदि विख्यात सतो की गणना नाभादास ने की है तथा आचार्य वल्लभ ने इसी मार्ग का अनुसरण कर अपना शुद्धाद्वैतमूलक पुष्टिमार्ग चलाया। यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है। कुछ विद्वान्, वेद-भाष्य के कर्ता आचार्य सायण तथा माधवाचार्य के विद्या-गुरु विद्याशकर को ही विष्णुस्वामी मानते हैं किन्तु सायणाचार्य का समय, चतुर्दश शतक का मध्य भाग है। अत उनके गुरु का समय, 14 वें शतक का आरभ-काल अथवा 13 वें शतक का अतिम काल हो सकता है। विद्याशकर तथा विष्णुस्वामी की अभिन्नता, प्रमाणों से पुष्ट नहीं की जा सकती।

विष्णु स्वामी का काल-निर्णय करते समय डा.रामकृष्ण भाडारकर ने नाभाजी के एक छप्पय के आधार पर, उसे 13 वें शतक का आरभकाल माना है।

भारत के धार्मिक इतिहास में अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका के धनी विष्णुस्वामी के व्यक्तित्व, देश और काल की समस्या को सुलझाने के अभिप्राय से कुछ विद्वानों ने एकाधिक विष्णु स्वामी होने की कल्पना की है, कतिपय आलोचकों की सम्मति में कम-से-कम तीन विष्णुस्वामी का उल्लेख मिलता है- (1) देवतनु विष्णुस्वामी (300 ई पू) जो मथुरा में रहते थे। पिता

का नाम देवेश्वर भट्ट था। इन विष्णु स्वामी के 700 वैष्णव त्रिदंडी संन्यासी, उनके मत का प्रचार करते थे, (2) कांचीनिवासी, राजगोपाल विष्णुस्वामी (जन्म 830 ई) जिन्होंने विष्णु कांची में राजगोपाल देवजी अथवा वरदराजजी की प्रसिद्ध मूर्ति की प्रतिष्ठापना की। आचार्य बिल्वमगल इन्हीं के शिष्य थे, और (3) विष्णुस्वामी, जो आचार्य वल्लभ के उपदेष्टा पूर्वपुरुष थे। अत. इस तथ्य का निर्णय नहीं हो पाता कि विष्णुस्वामी का वास्तविक व्यक्तिमत्व, देश और काल क्या था।

विष्णु स्वामी की ग्रंथ-संपदा विपुल बतलाई जाती है, परतु इनमें 'सर्वज्ञसूक्त' ही एकमात्र ऐसी रचना है, जो प्रमाण-कोटि में स्वीकृत की गई है। श्रीधर स्वामी ने अपनी रचनाओं में इसका अत्यधिक उपयोग किया है। श्रीधरी (टीका) में विष्णुस्वामी के कतिपय सिद्धांतों का भी आभास मिलता है। विष्णुस्वामी के ईश्वर सच्चिदानद-स्वरूप हैं और वे अपनी 'ह्लादिनी सवित्' के द्वारा आश्लिष्ट हैं तथा माया उन्हीं के आधीन रहती है। ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिह-रूप बतलाया गया है। कुछ लोग विष्णु स्वामी को नृसिह ओर गोपाल दोनों का उपासक मानते हैं। भागवत की श्रीधरी टीका से यह तथ्य स्पष्टत विदित होता है कि ऐसी अवस्था में श्रीधर स्वामी को भी विष्णुस्वामी-मत का अनुयायी माना जा सकता है।

विहारकृष्ण दास - ई 17 वीं शती का पूर्वार्ध। बंगाली। कृतियां- पारसिक-प्रकाश (संस्कृत- फारसी भाषा कोश)।

वीतहव्य आंगिरस - ऋग्वेद के छठे मडल के पद्रहवें सूक्त के द्रष्टा।

वीरनन्दी - नदिसघ देशीयगण के जैन आचार्य। गुरु-अभयनदी। समय 950-999 ई.। इन्होंने 'चद्रप्रभचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमें 18 सर्ग हैं और उनमें 7 वें जैन तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवन चरित्र वर्णित है। इस महाकाव्य के 1697 पद्य हैं, धर्म, दर्शन, आचार आदि की दृष्टियों से भी यह सुरस महाकाव्य समृद्ध है।

वीरनन्दी (सिद्धान्त चक्रवर्ती) - मूलसंघ देशीयगण के आचार्य मेघचन्द्र त्रैविद्यदेव के पुत्र और शिष्य। कर्नाटकवासी। प्रमुख शिष्य प्रभाचन्द्र, जिन्होंने गंगराज द्वारा मेघचन्द्र की निषद्या का निर्माण कराया था। समय- ई 12-13 वीं शती। ग्रंथ-आचारसार। इसमें 12 अधिकारों में मुनियों के आचार-विचार का वर्णन किया गया है। वीरनन्दी की ही इस ग्रंथ पर कन्नड-टीका उपलब्ध है। इस ग्रंथ को जैन विद्वानों ने शिरोधार्य माना है। अन्य शिष्य- अभिनव पम्प (नामचन्द्र)। यह वीरनंदी चन्द्रप्रभचरित्र के कर्ता वीरनंदी से भिन्न हैं। वीरनंदी ने न्याय, साहित्य तथा व्याकरण का गहरा अध्ययन किया था।

वीरभद्रदेशिक - काकतीय भूपति रुद्रदेव के आश्रित। रचना- नाट्यशेखर (सन 1160 में)।

वीरभद्रदेव - "कदर्प-चूडामणि' नामक काव्य के रचयिता। इसकी रचना इन्होंने 1577 में की थी। इनके जीवन-चरित्र पर पद्मनाम मिश्र ने 'वीरभद्रसेन-चपू' का प्रणयन किया था। ये महाराज रीवा-नरेश रामचद्र के पुत्र थे।

वीरभद्रय्या - तंजौर निवासी। समय- ई 1735 से 1817। अपने समय के उत्कृष्ट सगीतज्ञ। रचना- *तालमालिका*।

वीरराघव - जन्म 1820, मृत्यु- 1882 ईसवी। तजौर के महाराज शिवेन्द्र (1835-1865) (शिवाजी) की राजसभा में सम्मानित। कौण्डिन्यगोत्री। कृतिया- रामराज्याभिषेक नाटक (अपूर्ण), वल्लीपरिणय नाटक, रामानुजाष्टक काव्य तथा अन्य सात रचनाएं।

वीरराघव - मैसूरनिवासी। जन्म- मद्रास के चिगलपेट जिले के भूसुरपुरी (तिरूमलिसाई) ग्राम में सन् 1770 ई में। दाशरथिवंशीय। पिता- नरसिह सूरि। कृतिया- मलयजाकल्याण नाटिका, उत्तररामचरित् टीका, महावीरचरित् टीका, भक्तिसारोदय काव्य तथा कई दार्शनिक ग्रथ।

वीरराघवाचार्य - पिता- श्रीशेल गुरु। पितामह- अहोबिल। अपनी विद्वत्ता के कारण इनके पिता "अखिल-विद्या-जलनिधि" की उपाधि से मडित थे। इन्होंने अपने इन विद्वान् पिता से ही महाभारत, पुराणों एव श्रीमद्भागवत का गंभीर अध्ययन किया था।

इन्होंने सुदर्शन सूरि की '*श्रुतप्रकाशिका*' नामक श्रीभाष्य-व्याख्या का नामत उल्लेख किया है तथा श्रीधर के अद्वैती मतका बहुश. खंडन किया है। फलत इन्हें ई 14 वीं शताब्दी के पश्चात् का ही माना जा सकता है। उधर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने, अपनी सारार्थदर्शिनी भागवत-टीका में इनके मत का खंडन किया है, जिनका समय ई 17 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है- 1700 विक्रमी- 1789 विक्रमी (1644 ई - 1733 ई.)। फलत वीर राघव का समय श्रीधर एव विश्वनाथ चक्रवर्ती के मध्य में अर्थात् 1500 ई के आसपास होना चाहिये।

वीरराघव की भागवत-व्याख्या का नाम है- भागवत-चन्द्रचन्द्रिका। यह बडी विस्तृत व विशालकाय व्याख्या है। उसका उद्देश्य है विशिष्टाद्वैती सिद्धान्तों का भागवत से समर्थन तथा पुष्टीकरण। इस उद्देश्य की सिद्धि में वीरराघव को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इस कार्य में उन्होंने श्रीधर के मत का बहुश खण्डन किया है। स्पष्ट है कि सुदर्शन सूरि की लघ्वक्षर टीका से संतुष्ट न होने के कारण, वीर राघव ने अपनी भागवत-चन्द्रचन्द्रिका में दार्शनिक तत्त्वों का बहुशः विस्तार किया है। इस टीकाग्रंथ की प्रामाणिकता, साम्प्रदायानुशीलता एवं प्रमेयबहुलता का यही प्रमाण है कि वीर राघव की भागवत-चंद्रचंद्रिका के अनंतर किसी भी विशिष्टाद्वैती विद्वान् ने समस्त भागवत पर टीका लिखने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया।

वीरसेन - ये मूलसघ के पचस्तूपान्वय शाखा के आचार्य थे। एलाचार्य के पास चित्रकूट (चित्तोड) में सिद्धान्त ग्रथों का अध्ययन किया और बाद में दीक्षागुरु की आज्ञा से बाटग्राम (बडोदा) पहुचे। वहा जिनालय में बप्पदेव द्वारा निर्मित टीका प्राप्त हुई। अनंतर उन्होंने समस्त षट्खण्डागम की 'धवला' टीका लिखी। तत्पश्चात् कषायप्राभृत की चार विभक्तियों की 'जयधवला' टीका लिखे जाने के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। उनके शिष्य जिनसेन द्वितीय ने अवशेष जयधवलाटीका लिख कर पूरी की। यह जयधवलाटीका अमोघवर्श के काल में श.सं 738 में समाप्त हुई। अत वीरसेन का समय ई 8 वीं शताब्दी है।

वीरसेन की धवला और जयधवला टीका, प्राकृत-सस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल रीति से लिखी गई है। इसे विचार-प्रगल्भता और विषय की प्रौढता के कारण 'उपनिबन्धन' कहा गया है। इसमें दो मान्यताओं का उल्लेख मिलता है- दक्षिणप्रतिपत्ति (परम्परागत) और उत्तरप्रतिपत्ति (अपरपरम्परागत)। वीरसेन ने सूत्रों मे प्राप्त होने वाले पारम्परिक विरोधों का समन्वय भी किया है। शैली की दृष्टि से इसमें पाच गुण समाहित हैं- प्रसादगुण, समाहारशक्ति, तर्क या न्यायशैली, पाठकशैली तथा सृजक शैली।

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य - जन्म सिलहट (बगाल) मे, सन् 1917 में। उच्च शिक्षा कलकत्ता वि वि मे। सन् 1940 मे दर्शन में एम.ए। सन 1948 में डी लिट्। सन् 1943 से 1948 तक सेण्ट पाल कालेज (कलकत्ता) मे अध्यापन। दर्शन-विभागाध्यक्ष। तदुपरान्त शासकीय सेवा मे। सन् 1967 में सस्कृत मे लिखना प्रारम्भ। 'साहित्य-मूरि' उपाधि से अलकृत। कृतिया- कविकालिदास, शार्दूल-शकट, सिद्धार्थचरित, वेष्टनव्यायोग, गीतगौराग, शरणार्थि-सवाद, शूर्पणखाभिसार लक्षण-व्यायोग, चार्वाकताण्डव, मर्जिना- चातुर्य, सुप्रभा- स्वयवर, मेघदौत्य और झंझावृत्त। इन नाट्य ग्रथो के अतिरिक्त कलापिका और उमरखय्याम की रुबाइयों का सस्कृत अनुवाद भी आपने लिखा है। बंगाली कृतिया-ए देहमन्दिर, स्वप्नसहार, सुरा ओ साकी, पवनदूत, रामपरिगेर, छडा और दूतीप्रणय शतक। अग्रेजी में भी, कॅजुॲलिटी इन सायन्स ॲण्ड फिलासॉफी और लॉजिक व्हेल्यू ॲण्ड रिएलिटी नामक दो ग्रथ श्रीभट्टाचार्य ने लिखे।

वीरेश्वर पण्डित - ई. 18 वी शती। बगाल के निवासी। वेणीदत्त तर्कवागीश के पिता। दो रचनाए - "रस-रत्नावली' और कृष्णविजयचम्पू।

वेंकट (वेंकटार्य कवि) - पिता- श्रीनिवासाचार्य। निवासस्थान- सुरसिद्धिगिरि नगर। समय- ई 17 वीं शती का अतिम चरण या 18 वीं शती का प्रारभ। "बाणासुर-विजय चपू' के रचयिता। इनका चंपू-काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

वेंकट - समय- ई 19 वीं शती। कौण्डिन्यगोत्री। पिता- वेदान्ताचार्य। 'रसिकजन- मनोल्लास' नामक भाण के रचयिता।

वेंकटकवि - समय- ई 18 वीं शती के आस-पास। पिता- वीरराघव। वैष्णव। 'विबुधानद-प्रबध-चंपू' के रचयिता। ग्रंथ के आरभ में इन्होंने वेदांतदेशिक (महाकवि) की वंदना की है। इनका यह चपू काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

वेंकटकृष्ण तम्पी - जन्म 1890- मृत्यु 1938 ई.। केरलनिवासी। त्रिवेन्द्रम सस्कृत कालेज में अध्यापक और प्राचार्य। कृतियां- श्रीरामकृष्ण-चरित, धर्मस्य सूक्ष्मा गति., ललिता, प्रतिक्रिया व वनज्योत्स्ना। इनके अतिरिक्त मलयालम भाषा में कतिपय पुस्तकें लिखी हैं।

वेंकटकृष्ण दीक्षित - तजोर के शाहजी महाराज के आश्रित। सन् 1693 में शाहजीपुरम् के अग्रहार में भाग प्राप्त। पिता- वेंकटाद्रि। कृतिया- (नाटक) "कुशलव- विजय। (काव्य) नरेश-विजय, श्रीरामचन्द्रोदय और उत्तरचम्पू।

वेंकटकृष्ण राव - ई 20 वीं शती। "भक्तिचन्द्रोदय" नामक तीन अकी नाटक के प्रणेता।

वेंकटनाथ (वेदांतदेशिक) - समय- 1269-1369 ई.। आप 'कवि-तार्किकसिह' व 'सर्वतत्रस्वतत्र' नामक उपाधियों से समलकृत हुए थे। इनका जन्म काजीवरम् के निकट तुप्पिल नामक ग्राम मे हुआ था। पिता- अनत सूरि। माता- तोतरम्मा। ये विशिष्टाद्वैत वेदात के महान् व्याख्याता माने जाते हैं। इन्होंने साप्रदायिक ग्रथों के अतिरिक्त, काव्य-कृतियों की भी रचना की थी, जिनमे काव्यतत्त्वों का सुदर समावेश है। इनके काव्यों मे 'सकल्पसूर्योदय (महानाटक), 'हसदूत', 'रामाभ्युदय', 'यादवाभ्युदय', 'पादुकासहस्त्र' आदि प्रमुख हैं। इनके प्रमुख दार्शनिक ग्रथो का विवरण इस प्रकार है- तत्त्वटीका (यह श्रीभाष्य की विशद व्याख्या है), न्याय-परिशुद्धि व न्याय-सिद्धाजन (इन दोनो ग्रथों मे विशुद्धाद्वैतवाद की प्रमाण-मीमासा का वर्णन है), अधिकरण-सारावली (इसमें ब्रह्मसूत्रों के अधिकरणों का श्लोकबद्ध विवेचन किया गया है), तत्त्वमुक्ताकलाप, गीतार्थ-तात्पर्यचद्रिका (यह रामानुजाचार्य के गीता-भाष्य की टीका है), ईशावास्य-भाष्य, द्रविडोपनिषद्, तात्पर्य-रत्नावली, शतदूषणी, सेश्वर-मीमासा, पाचरात्र-रक्षा, सच्चरित्र-रक्षा, निक्षेप-रक्षा व न्यायविशति।

वेंकटनारायण - तजौर- अधिपति शाहजी राजा की सभा के पडित। जैन मुनि सुमतीन्द्राभिक्षु का चरित्र, उनके इस कवि शिष्य ने अपने 'सुमतीन्द्रविजय-घोषण' नामककाव्य में प्रस्तुत किया है।

वेंकट मखी- गोविन्द मखी दीक्षित के पुत्र। यज्ञनारायण के भाई। रचनाए- साहित्यसाम्राज्यम् (महाकाव्य)। चतुर्दानादिप्रकाशिका और वार्तिकाभरण नामक दो शास्त्रीय रचनाए। पिता के सगीत-सुधानिधि तथा रामायण (सुन्दरकांड) पर टीकाए। इनके लक्षण-गीत, संगीत-सप्रदाय-प्रदर्शिनी में

मुद्रित हैं। ये तंजौर के राजा विजय-राघव (ई. सन् 1672) की सभा के सदस्य थे। गुरु-रघुनाथ नरेश। साहित्य, संगीत तथा मीमांसा में ये निपुण थे। इन्होंने वाजपेय यज्ञ किया था।

वेंकटमाधव - ई 11 वीं शती। सायण और देवराज यज्वा के पूर्ववर्ती- ऋग्वेद के प्रगल्भ भाष्यकार। एक ही ऋग्वेद पर उन्होंने दो भाष्य लिखे ऐसी संभावना है। सम्प्रति प्रथम भाष्य ही उपलब्ध है जिसका नाम है 'ऋगर्थदीपिका'। इस भाष्य में वेंकट माधवाचार्य ने अपने कुल आदि के विषय में कहा है -

पितामह- माधव। पिता- वेंकटार्य। मातामह- भवगोल। माता-सुन्दरी। गोत्र- कौशिक। मातृगोत्र- वासिष्ठ। अनुज-संकर्षण। पुत्र- वेंकट और गोविन्द। निवास- दक्षिणापथ में चोलदेश। कावेरी के समकालीन राजा- एकवीर।

वेंकटमाधव का भाष्य याज्ञिक पद्धति के अनुसार और संक्षिप्त है। 'वर्जयन् शब्दविस्तरम्' शब्दविस्तार को वर्ज्य कर- यह उनकी प्रतिज्ञा है। 'ऋक्संहिता का अर्थ जानने के लिए केवल- निरुक्त और व्याकरण पर्याप्त नहीं, उसके लिये ब्राह्मण-ग्रंथों का ज्ञान आवश्यक है'- यह माधवाचार्य की भूमिका है। भाल्लानि, मैत्रायणीय और चरकों का मन्त्रोपबृहण करने वाले ब्राह्मण-ग्रंथ हमने सुने नहीं, ऐसा उन्होंने निर्देश किया है। इससे स्पष्ट है कि माधवाचार्य का ब्राह्मण-ग्रंथों के अभ्यास पर कितना बल था। सामवेद का विवरण भी माधवाचार्य के नाम पर प्रसिद्ध है। विवरणकार और ऋग्भाष्यकार माधवाचार्य एक ही हैं या नहीं यह गवेषणा का विषय है।

वेंकट रंगनाथ (म.म.) - सन् 1822-1900। भारद्वाज-वंशीय। विजगापट्टम-निवासी। राजकीय उपाधि से सम्मानित। संस्कृत पाठशाला में अध्यापक। प्रसिद्ध पौराणिक कथावाचक। पिता-महाकवि श्रीनिवास गुरु थे। अंग्रेजी तथा संस्कृत के विद्वान्।

कृतियां- मंजुल-नैषध (नाटक), कुंभकर्णविजय, आंग्लाधिराज- स्वागत, संस्कृत भाषा और साहित्य विषयक विश्वकोश (अप्रकाशित) तथा संस्कृत व्याकरण के सरलीकरण विषयक दो निबंध।

वेंकटरमणार्य - ई. 20 वीं शती। चेन्नराय नामक गांव (कर्नाटक) के निवासी। कुछ दिन बंगलोर की चामराजेन्द्र संस्कृत महापाठशाला के अध्यक्ष। तत्पश्चात् मैसूर की संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षक। सेवानिवृत्ति के समय मैसूर की संस्कृत शाला के उपदेष्टा।

कृतियां- स्तुतिकुसुमांजलि, हरिश्चन्द्रकाव्य, सर्वसमवृत्त-प्रभाव, कमलाविजय (टेनिसनकृत नाटक का अनुवाद) और जीवसंजीवनी।

वेंकटराम राघवन् (डॉ) (पद्मभूषण) - जन्म दि 22-8-1908 को, तिरूवायुर नगर (जिला तंजौर) में। पिता- वेंकटराम अय्यर। माता- मीनाक्षी। प्रेसिडेन्सी कालेज, मद्रास में म म कुप्पुशास्त्री के अधीन 'शृंगारप्रकाश' पर पीएच.डी. सन 1935 में। सन् 1935 से 1955 तक योरोपीय संग्रहालय में भारतीय पुरातत्त्व के ग्रंथों का पर्यालोचन। संस्कृत के कई हस्तलिखित ग्रंथों का प्रकाशन। ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फेरन्स के श्रीनगर- अधिवेशन के तथा विश्व संस्कृत सम्मेलन के दिल्ली-अधिवेशन के अध्यक्ष। मद्रास वि वि के संस्कृत विभागाध्यक्ष। विदेशी संस्कृत संस्थाओं द्वारा प्राय आमंत्रित। 'कविकोकिल', 'सकल-कला-कलाप','विद्वत्कवीन्द्र' तथा 'पद्मभूषण' की उपाधियों से विभूषित। सन् 1958 में मद्रास में संस्कृत रंगमंच के संस्थापक। अलंकारशास्त्रविषयक 25 ग्रंथों का प्रकाशन किया।

कृतियां- (लघु काव्य)- देववन्दीवरदराज, सर्वधारी, महीपो मनुनीतिचोल, फाल्गुन, षोडशी-स्तुति., किं प्रियं कालिदासस्य, नरेन्द्रो विवेकानन्द., श्लिष्टप्रकीर्णक, किमिदं तव कार्मणम्, काल. कवि, संक्रान्तिमह, कविर्ज्ञानी ऋषि, विश्वभिक्षुस्तव, कामकोटिकार्मण, गृहीतमिवान्तरंगम्, कावेरी, शब्द (नृत्यगीत), वैवर्तपुराणम्, ब्रह्मपत्र, महात्मा, दम्मविभूति ,गोपहम्पन., और स्वराज्यकेतु। संपादक- प्रतिभा (साहित्य अकादमी की संस्कृत पत्रिका, जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च, जर्नल ऑफ म्युझिक अकादमी।

महाकाव्य- मुत्तुस्वामी दीक्षितचरित। इसका प्रकाशन सन् 1955 में मद्रास में कांचीकामकोटि के शंकराचार्य की अध्यक्षता मे हुआ।

रूपक- विमुक्ति, रासलीला, कामशुद्धि, पुनरुन्मेष, लक्ष्मीस्वयंवर, आषाढस्य प्रथमदिवसे, महाश्वेता, प्रतापरुद्रविजय और अनारकली।

प्रेक्षणक (ओपेरा) -विकटनितम्बा, अवन्तिसुन्दरी तथा विज्जिका।

अनूदित रूपक - वाल्मीकि-प्रतिभा और नदीपूजा। इसके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक समावर्तन, भाषण, अनुवाद, टीकाएं तथा गद्य-निबन्ध। इनका प्रमुख कार्य है न्यू कैटलागस कॅटलागोरम् का सम्पादन।

वेंकटसुब्रह्मण्याध्वरी - त्रावणकोर के राजा बालरामवर्मा (1758-1782 ई) की राजसभा में सम्मानित। पिता-वेंकटेश्वर मखी। विख्यात पंडित अप्पय दीक्षित के वंशज। व्याकरण, मीमांसा, तर्क तथा साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित। "वसुलक्ष्मीकल्याण" नामक नाटक के प्रणेता।

वेंकटाचार्य - समय- ई 18 वीं शती का उत्तरार्ध। पिता-श्रीनिवास, माता-वेंकटाम्बा। गुलबर्गा (आन्ध्रप्रदेश) के निवासी। गुरु- वेंकटदेशिक। अनुज- अण्णैयाचार्य ("रसोदार" भाण के प्रणेता)। छोटे भाई श्रीनिवासाचार्य (कल्याणराघव नाटक के प्रणेता)। भागिनेय वुच्चि वेंकटाचार्य) "कल्याणपुरंजन" नाटक के रचयिता) स्वयं "अमृतमन्थन" नामक पांच अंकी नाटक के लेखक।

वेंकटाचार्य - मैसूर-निवासी। पिता- अण्णय्याचार्य। चाचा-श्रीनिवासताताार्य। सुरपुरम्नरेश वेंकट नायक (1773-1802 ई) का समाश्रय। परकाल मठ के महादेशिक के उपासक। कृतिया- गणसूत्रार्थ (व्याकरणविषयक), कृष्णभावशतक-स्तोत्र, अलंकारकौस्तुभ, शृगारलहरी (गीतिकाव्य), दशावतारस्तोत्र, हयग्रीवदण्डक स्तोत्र, यतिराजदण्डकस्तोत्र (रामानुजाचार्य विषयक), झझामारूत दर्शन, श्रीकृष्णशृगार-तरगिणी (नाटक) और तेलगु में अचलात्मजा-परिणयम्।

वेंकटाचार्य - शतकर्तृ ताताचार्य के पुत्र। रचना- कोकिल-सन्देश नामक दूतकाव्य।

वेंकटाचार्य - रचनाए- कावेरी-महिमादर्श, (2) व्याघ्रतटाकभूविवरम्, (3) ग्रन्थिज्वरचरितम्, (4) रामानुजमताभासविलास, (5) यादवगिरिमाहात्म्य सग्रह (6) काकान्योक्तिमाला, (7) चम्पकान्योक्तिमाला, (8) दिव्यसूरिवैभवम् (गद्य प्रबध)।

वेंकटाद्रि - (श 19)- राजा शोभनाद्रि अप्पाराव के पुत्र। "राजलक्ष्मीपरिणय" नामक प्रतीक नाटक के रचयिता।

वेंकटाध्वरी - समय- ई 17 वी शती। अत्रि गोत्री। रामानुजी वैष्णव सप्रदायी। इन्होंने 3 प्रसिद्ध व लोकप्रिय चपू-काव्यो की रचना की है। वे हैं- विश्वगुणादर्श-चपू (निर्णयसागर प्रेस मुबई से 1923 ई मे प्रकाशित), वरदाभ्युदय-चपू (इसका दूसरा नाम हस्तगिरि-चपू- सस्कृत सीरीज मैसूर से 1908 ई में प्रकाशित) और उत्तररामचरित-चपू (गोपाल नारायण एण्ड क मुबई से प्रकाशित)।

ये अप्पय दीक्षित के पौत्र तथा रघुनाथ-दीक्षित के पुत्र थे। माता-सीताबा। ये रामानुज के मतानुयायी व लक्ष्मी के भक्त थे। ग्रथ-रचना-काल 1637 ई के आस-पास। इनका निवास-स्थान काचीपुर के निकट अर्शनफल (अर्सनपल्ली) नामक ग्राम था। "उत्तररामचरित-चपू" कवि की प्रौढ रचना है, जिसमें वर्णनसौंदर्य की आभा देखने योग्य है। ये नीलकण्ठचपू के प्रणेता कवि नीलकठ दीक्षित के सहाध्यायी थे। इन्होंने लक्ष्मीसहस्रम् नामक एक अन्य काव्य का भी प्रणयन किया था। "वरदाभ्युदय या हस्तगिरिचपू" के अत में कवि ने अपना परिचय दिया है।

वेंकटेश - तैत्तिरीय सहिता के अन्तिम तीन काण्डों पर ही इनका भाष्य विद्यमान है। भाष्य का नाम है "वेदभाष्य सग्रहसार" या वेदार्थ-सग्रह। यह भाष्य कई स्थानों पर भट्ट भास्कर भाष्य से अक्षरश मिलता है। रुद्रभाष्यकार, एक वेंकटनाथ भी हुए हैं। वे दोनों एक या भिन्न यह निश्चित नहीं है।

वेंकटेश - पिता-श्रीनिवास। काचीवरम् के पास स्थित, आर सलाई ग्राम के निवासी। इन्होंने रामचरित्र पर आधारित रामचन्द्रोदयम् नामक महाकाव्य (30 सर्ग) लिखा। इन्हीं का दूसरा काव्य यमकार्णव यमकमय है। इसका लेखन सन् 1656 में सपन्न हुआ।

वेंकटेश - रामनाड सस्थान (तामिलनाडु) के सेतुपति के आश्रित। रचना-त्रिंशच्छ्लोकी *अर्थात् विष्णुतत्त्वनिर्णय* (सटीक) जिसमें *न्यायेन्दुशेखर* का खण्डन है।

वेंकटेश्वर - तजौर के महाराज शाहजी (1684-1711 ई.) द्वारा सम्मानित। सरफोजी के आश्रित। मनलूर-निवासी। रचनाए-उन्मत्त-कविकलशम् अर्थात् लम्बोदरप्रहसन, राघवानन्द, नीलापरिणय, सभापति-विलास और भोसले-वशावली-चम्पू।

वेंकप्रभु - वेंकसूरिचन्द्र अथवा प्रधान वेंकप्पा नामों से भी प्रसिद्ध। माता-बाबाम्बिका, पिता-हम्पार्य (राज्यमन्त्री)। भार्गव-वंशी ब्राह्मण। श्रीरामपुर के निवासी। ब्रह्मविद्या में पारगत। "षड्दर्शनीवल्लभ" की उपाधि से विभूषित। राम तथा हनुमान् के भक्त। सुशीलता तथा दानशूरता के लिए विख्यात। सन् 1763 से सन् 1780 तक मैसूर के राजा कृष्णराज (द्वितीय), नन्जराज तथा चामराज के मत्री। कृष्णराज द्वारा अनेक विभागो के अध्यक्षपद पर नियुक्त। मराठा-अधिपति राघोबा के साथ कृष्णराज की सन्धि वेंकप्प ने ही करायी थी। युद्धनिपुण। हैदरअली ने मैसूर का शासन सभालने के बाद वेंकप्प को राजधानी से दूर भगाया।

रचनाए- (16) कामकलाविलास (भाण), कुक्षिम्भरभैक्षव (प्रहसन), महेन्द्रविजय (डिम), वीरराघव (व्यायोग), लक्ष्मीस्वयवर और विबुधानद (समवकार), सीताकल्याण (वीथी), रुक्मिणीमाधव (अक), ऊर्वशीसार्वभौम (ईहामृग), सुधाझरी (उपन्यास), कुशलविजय (चम्पू), आजनेयशतक, सूर्यशतक, हनुमज्जय, चिदद्वैतक जगन्नाथविजयकाव्य (व्याकरणनिष्ठ), अलकारमणिदर्पण (साहित्य-शास्त्रीय) और कन्नड रचनाए- कर्णाटरामायण, हनुमद्विलास और इन्दिराभ्युदय।

वेचाराम न्यायालंकार - ई 18 वीं शती। पिता-राजाराम। "काव्यरत्नाकर" के कर्ता। बंगाल के निवासी। अन्य कृतियां- आनन्दतरगिणी (प्रवासवृत्त) और सिद्धान्त-तरी (आनन्दतरगिणी पर व्याख्या)।

वेणीदत्त तर्कवागीश - बगाल के निवासी। ई 18 वीं शती। "श्रीवर" के नाम से विख्यात। वीरेश्वर पडित के पुत्र। "अलकार-चन्द्रोदय" के कर्ता।

वेदगर्भ पद्मनाभाचार्य - ई 18 वीं शती। रचना- माध्वसिद्धान्तसार।

वेदान्तवागीश भट्टाचार्य - "भोजराज-सच्चरित" (नाटक) के प्रणेता।

वेलणकर, श्रीराम भिकाजी - जन्म महाराष्ट्र के सारन्द ग्राम (जिला-रत्नागिरी) में, सन् 1915 में। उच्च शिक्षा विल्सन कालेज, मुबई में। सन् 1940 में एम ए, एलएल.बी कर डाक तार विभाग में नियुक्ति व उच्चाधिकार प्राप्त। भारत में पिन-कोड

पद्धति का आविष्कार आपने ही किया। गुरु- हरि दामोदर वेलणकर की इच्छानुसार यावज्जीवन सस्कृताध्ययन तथा लेखन का व्रत। गणित, संगीत और नाटक में विशेष रुचि। सेवानिवृत्ति के पश्चात् गणित विषयक अनुसन्धान तथा संस्कृत प्रचार कार्य में निरत। अपनी रचनाओं में नये व पुराने दोनों छंदों का प्रयोग किया है।

कृतियां-काव्य - विष्णुवर्धापन, गुरुवर्धापन, जयमंगला (अनूदित), जीवनसागर (भारतरत्न पां.वा. काणे का चरित्र), विरहलहरी, जवाहर-चिन्तन, जवाहर-गीता, गीर्वाण-सुधा और अहोरात्र। नाटक - कालिदास-चरित, कालिन्दी, सौभद्र (अनूदित), छत्रपति शिवराज और तिलकायन।

नभोनाटिका - कैलास-कम्प, हुतात्मा दधीचि, स्वातत्र्य-लक्ष्मी, राज्ञी दुर्गावती, स्वातंत्र्यचिन्ता, स्वातंत्र्य-मणि, मध्यम पाण्डव, आषाढस्य प्रथमदिवसे, तनयो राजा भवति कथ में, श्रीलोकमान्य-स्मृति, जन्म रामायणस्य, तत्त्वमसि और मेघदूतोत्तरम्। ब्राह्मण सभा और स्वयंस्थापित देववाणी मदिर इन संस्थाओं के द्वारा आपने संस्कृत प्रचार का भरपूर कार्य मुबई में तथा अन्यत्र किया।

मराठी कृतिया - जनतेचे दास जसे, कलालहरी निमाली, पैठणचा नाथ, वनिता-विकास, रेवती, राधा-माधव और श्रीराम-सुधा।

अग्रेजी कृतियां - सिमिलीज् इन् ऋग्वेद और कान्ट्रैक्ट ब्रिज।

वैजयन्ती - ई. 17 वीं शती का मध्य। धनुक ग्राम (जिला-फरीदपुर, बगाल) के निवासी मथुराभट्ट की पुत्री। मीमासादि शास्त्रों में पारंगत विदुषी। कोटलिपाडा के दुर्गादास तर्कवागीश की पुत्रवधू। पति कृष्णनाथ के साथ "आनन्दलतिका" नामक चम्पू की रचना वैजयन्ती ने की है।

वैद्यनाथ - जन्म- वाराणसी में। समय-सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध। "श्रीकृष्णलीला" नामक नाटिका के रचयिता।

वैद्यनाथ द्विज - ई 18 वीं शती। बगाल के निवासी। "तुलसीदूत" के रचयिता।

वैद्यनाथ - (श. 19) जन्म-मुम्बई के निकट सुगन्धपुर में। गुरु-रघुनाथ। आश्रयदाता-श्री जीवनजी महाराज। "सत्संग-विजय" नामक प्रतीक नाटक के लेखक।

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य - नवद्वीप के राजा ईश्वरचन्द्र राय (1788-1802 ई.) के सभापण्डित। "चैत्रयज्ञ" नामक नाटक के रचयिता।

वैद्यनाथ शर्मा व्यास - ई. 10 वीं शती। वाराणसी-निवासी। बालकवि। गुरु-आन्ध्र पंडित रामशास्त्री। कृतियां- गणेशसम्भव (काव्य) और गणेश-परिणय (नाटक)।

वैयाघ्रपाद - पाणिनि के पूर्ववर्ती एक प्राचीन वैयाकरण। मीमांसकजी ने इनका समय 3100 वि.पू. माना है। महाभारत के अनुशासन पर्व में आए उल्लेख के अनुसार ये महर्षि वसिष्ठ के पुत्र थे (53/30)। "काशिका" में इनका कल्लेख, व्याकरण-प्रवक्ता के रूप में किया गया है। (7/1/94)। इसके अतिरिक्त "शतपथ ब्राह्मण" (10/6), "जैमिनि ब्राह्मण", "जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण" (3/7/3/211, 4/9/1) एव "शांख्यायन आरण्यक" (9/7) में भी इनका नाम उपलब्ध है।

"काशिका" के एक उदाहरण से ज्ञात होता है कि इनके वैयाघ्रपदीय व्याकरण में 10 अध्याय रहे होंगे (5/1/58)। बगला के प्रसिद्ध "व्याकरण शास्त्रेतिहास" के लेखक श्री हालदार ने इनके व्याकरण का नाम वैयाघ्रपद तथा इनका नाम व्याघ्रपात् लिखा है, किंतु मीमासकजी ने प्राचीन उद्धरणों के आधार पर श्री हालदार के मत का खडन करते हुए वैयाघ्रपाद नाम को ही प्रामाणिक माना है। इस सबध में अपने मत को स्थिर करते हुए वे कहते हैं कि "महाभाष्य में व्याघ्रपात् नामक वैयाकरण का उल्लेख है किंतु वे वैयाघ्रपाद से भिन्न हैं, हा, "महाभाष्य" (6/2/26) में एक पाठ है जिसमें व्याडीय का एक पाठातर "व्याघ्रपदीय" है। यदि यह पाठ प्राचीन हो तो मानना होगा कि आचार्य "व्याघ्रपात्" ने भी किसी व्याकरण का प्रवचन किया था।"

वैशंपायन - निगद अर्थात् कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता के निर्माता। तैत्तिरीय आरण्यक एवं आश्वलायन, कौषीतकी और बोधायन गृह्यसूत्र में आपका उल्लेख है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों का नया अर्थ लगाने का युगप्रवर्तक कार्य आपने किया। शबरस्वामी के अनुसार वैशपायन ने कृष्णयजुर्वेद की सभी शाखाओं का अध्ययन किया था। (मीमासा भाष्य-1-1-30)। पाणिनि ने एक वैदिक गुरु के रूप में आपका उल्लेख किया है।

व्यासजी के चार प्रमुख वेदप्रवर्तक शिष्यों में से वैशपायन एक थे। पुराणों के अनुसार उन्हें सम्पूर्ण यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त था। व्यासजी से प्राप्त यजुर्वेद की 86 सहिताए बनाकर अपने 86 शिष्यों में बांट दी। विष्णु-पुराण के अनुसार यह सख्या 27 है। इनके शिष्यो ने कृष्ण यजुर्वेद के प्रसार का कार्य किया। आपके शिष्य उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिम भारत में विभाजित थे।

काशिकावृत्ति के अनुसार आलंबी, पलग एव कामठी ये तीन शिष्य चरक देश के पूर्व में, ऋचाभ, आरुणि एव ताड्य मध्य में तथा श्यामायन, कठ एवं कलापी उत्तर में वेद-प्रचार का कार्य कर रहे थे।

वैशंपायनप्रणीत 86 शाखाओं में से केवल तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एव कपिष्ठल ही विद्यमान हैं। शेष शाखाएं अनध्याय के कारण लुप्त हो चुकी हैं।

कृष्ण यजुर्वेद को बाद में 'चरक' नाम प्राप्त हुआ। चरक का अर्थ ज्ञानप्राप्ति हेतु देशभर संचार करने वाला विद्वान्। वैशपायन एवं उनके शिष्य भ्रमणशील थे। "चरक इति

वैशम्पायनस्य आख्या" (एकाशिका 4/3-4) यज्ञ मे अध्वर्यु का काम यजुर्वेदी की ओर रहता है। इस कारण आपके शिष्य चरकाध्वर्यु कहलाये।

आपने व्यासकृत "जय" ग्रथ का "भारत" बनाकर भी अमूल्य कार्य किया। व्यासजी ने अपना "जय" नामक ग्रथ प्रथम आप ही को सुनाया। वह कौरव पाडवो के सघर्ष तक ही मर्यादित था। उसमें केवल 8,800 श्लोक थे। वैशम्पायन ने उन्हें बढाकर 24 हजार तक पहुंचाया और उसे "भारत" नाम दिया। अर्जुन के पौत्र जनमेजय के राजपुरोहित एव महाभारत की कथा सुनाने वाले यही वैशपायन थे। याज्ञवल्क्य के साथ सघर्ष में उन्हें यह पद छोडना पडा। राज्य का भी त्याग करना पडा।

वायुपुराण के अनुसार वैशपायन यह गोत्र-नाम हो सकता है, परन्तु ब्रह्माण्ड-पुराण के आधार पर नाम-विशेष भी हो सकता है।

व्रजनाथ - नरेश माधव के आश्रित। पद्यतरगिणी (सुभाषित सग्रह)। 12 तरगो में सकलन।

व्रजलाल मुखोपाध्याय - रचना -ख्रिस्तधर्मकौमुदी समालोचना। कलकत्ता 1894। बेलेन्टाइन के ख्रिस्तधर्म- कौमुदी की हिन्दुधर्म-निन्दा का खण्डन।

वृंदावनचन्द्र तर्कालंकार - ई 16 वी शती। राधाचरण कवीन्द्र चक्रवर्ती के पुत्र। कवि कर्णपूर के "अलकारकौस्तुभ" पर "अलकारकौस्तुभ-दीधिति-प्रकाशिका" नामक टीका के कर्ता।

वृंदावन शुक्ल - आपने दो काव्यों का रचना की है- (1) "साम्बचरित" तथा (2) "गौरीचरित"।

वृत्तिविलास - अमरकीर्ति के शिष्य। कर्नाटक-वासी। समय-ई 12 वीं शती। ग्रथ- धर्मपरीक्षा और शास्त्रसार। धर्मपरीक्षा ग्रथ अमितगति की धर्मपरीक्षा पर आधारित है।

व्यश्व आंगिरस - अगिरस् कुलोत्पन्न। ऋग्वेद के आठवें मडल के छब्बीसवें सूक्त के द्रष्टा। इस सूक्त मे अश्विनौ और वायु की स्तुति है। प्रस्तुत सूक्त मे व्यश्व के रूप मे उनका उल्लेख है।

व्यासतीर्थ - आपने न्यायामृत, तर्कताडव, तात्पर्यचद्रिका, मदारमजरी आदि ग्रथो की रचना की है। उनमे से न्यायामृत को द्वैतवाद का सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना जाता है। मधुसूदन सरस्वती ने अपने अद्वैतसिद्धि नामक ग्रथ मे उसका खडन किया है। इसी न्यायामृत ग्रथ से द्वैत व अद्वैत-संप्रदायो मे प्रखर वाग्युद्ध प्रारभ हुआ जो अभी तक खडन-मडन के रूप मे चालू है।

व्याडि - दाक्षि या दाक्षायण के नाम से भी ज्ञात। पाणिनि के मामा। गुरु-शौनक। पिता-व्यड। "सग्रह" नामक ग्रथ के रचयिता (पाणिनीय शास्त्र पर व्याख्यान)। वाहीक (सतलज तथा सिन्धु की अन्तर्वेदी) के निवासी। काल-भारतीय युद्ध के पश्चात् 200 वर्ष तक। अन्य रचनाए- व्याकरणशास्त्र (व्याडिकृत), बलचरित काव्य (बलराम-चरित), परिभाषापाठ और लिगानुशासन। सभी रचनाए अप्राप्त हैं।

व्यास (भगवान्) - एक अलौकिक व्यक्तित्व के महापुरुष। महाज्ञानी ग्रथकार। वर्ण से काले थे, अत 'कृष्ण' कहलाये। द्वीप पर जन्म होने से 'द्वैपायन' भी कहे गये। "कृष्णद्वैपायन" नाम से भी सबोधित किये गये। "वेदान् विव्यास" वेदों के विभाग करने से व्यास सज्ञा प्राप्त। पराशर पुत्र होने से 'पाराशर्य' भी कहा जाता रहा। बदरी-वन में तपस्या करने के कारण 'बादरायण' भी कहलाते थे। विद्वज्जन उन्हें "वेदव्यास" कहते थे। यह सर्वमान्य लोकोक्ति है कि ससार का सारा ज्ञान व्यास की जूठन है। "व्यासोच्छिष्ट जगत् सर्वम्" अर्थात् सारा ज्ञान उन्हे प्राप्त था। वेदोत्तर-काल से आज तक वे भारतीय सस्कृति के महाप्राण रहे हैं। इतिहास-पुराणो की रचना, प्राचीन युग की विस्मृतप्राय विद्या-कला का पुनरुज्जीवन, वेदवेदाग का सकलन, सपादन, विभाजन आदि के द्वारा व्यासजी ने भारतीय सस्कृति का सारा ज्ञान अक्षुण्ण रखा। उन्हे भगवान् विष्णु का अवतार माना जाता है। व्यास यह नाम व्यक्तिवाचक नहीं। यह एक उपाधि है। पुराणो के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग में एक-एक महनीय पुरुष "व्यास" होता है।

> द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने।
> वेदमेक सबहुधा कुरुते जगतो हित ।।

अर्थ- हे महामुने, प्रत्येक द्वापर युग मे विष्णु व्यासरूप से अवतार लेते हैं और विश्व के हितार्थ एक वेद का विभाग करते है।

अभी तक ऐसे 28 व्यास हो गये है। कृष्णद्वैपायन अतिम थे। देवीभागवत मे सपूर्ण नामावली दी है।

व्यासजी का जन्म पराशर ऋषि और धीवर-कन्या सत्यवती (मत्स्यगधा) से हुआ। इतिहासज्ञों द्वारा यह काल सभवत ईसा पूर्व 3100 का माना गाया है। व्यास का विवाह जाबालि की कन्या वटिका से हुआ। उनके पुत्र का नाम शुक था। धृतराष्ट्र और पडु, बीजदृष्टि से नियोग पद्धति से उत्पन्न, व्यास-पुत्र ही थे। दासी से जन्मा विदुर भी उनका ही पुत्र था। आपका आश्रम सरस्वती के किनारे पर था। वहीं से वे हस्तिनापुर आते-जाते थे। वे कौरव-पाडवों को सदा उपदेश दिया करते थे। पाडव जब वनवास में थे, उस समय उन्होंने युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति नामक सिद्धविद्या दी थी। कृष्ण जब स्वर्ग सिधारे तो अर्जुन उनकी पत्नियों को लेकर हस्तिनापुर लौटे। मार्ग में उन पर आभीर-गणो ने आक्रमण किया। अर्जुन उनका प्रतिकार नहीं कर सके। विव्हल हो अर्जुन जब व्यास के पास पहुचे, तो उन्होंने कालचक्र की अनिवार्यता उन्हें समझायी-

> कालमूलमिद सर्वं जगद्बीजं धनजय।
> काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया
> स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बल ।

(म.भा मौसल 8-33-34)

अर्थ - काल सभी जागतिक घटनाओं का एव विश्व-सहार का बीज है। काल ही अपनी शक्ति से विश्व को खा जाता है। कभी वह बलवान् होता है, कभी दुर्बल।

व्यासजी के पुत्र थे शुक जो बचपन से ही वीतराग थे। जनक से आत्मज्ञान प्राप्त कर वे जीवन्मुक्त हो गये थे। उन्होंने हिमालय से होकर निर्वाण-मार्ग पर बढने का निश्चय किया। व्यासजी इससे व्यथित हुए। अपना जीवन अर्थशून्य मानकर उन्होंने आत्महत्या का निर्णय किया। उस समय भगवान् शकर ने दर्शन देकर उन्हें परावृत्त किया।

व्यास नामक कोई व्यक्ति थे या नही, इस बारे में पाश्चात्य विद्वानो ने सन्देह व्यक्त किया है पर भारतीय विद्वानों ने उन्हें मान्य किया है। वे वैदिक ऋषि थे। पराशर पिता एव वसिष्ठ पितामह, यह परपरा ब्राह्मण एव उपनिषदो में भी अविच्छिन्न है। बोधायन एव भारद्वाज के गृह्यसूत्र में भी व्यासजी का उल्लेख पराशर-पुत्र के रूप मे है। पाणिनि भी एक सूत्र मे कह गये हैं कि व्यास पराशर-पुत्र थे। (अष्टा. 4-3-110) आद्य शंकराचार्य ने अपनी गुरुपरंपरा व्यासजी से ही बतलाई है। बौद्ध-साहित्य में कृष्ण-द्वैपायन नाम कण्हद्वैपायन बताया गया है। उन्हें बुद्ध का ही एक अवतार माना है। अश्वघोष के सौंदरनद नामक ग्रथ मे व्यास और उनके पूर्वजो का निर्देश है। पुराण परपरा मे तो उन्हे इस भांति नमन किया गया है

व्यास वसिष्ठानप्तार शक्ते पौत्रकल्मषम्।
पराशरात्मज वन्दे शुकतात तपोनिधिम्।।

भारतीय सस्कृति का सर्वांग यथावत् ज्ञान प्राप्त करना हो, तो व्यास रचित ग्रंथो का अध्ययन करना अपरिहार्य है। व्याससाहित्य भारतीय सस्कृति का मेरुदड है। व्यासरचित एव व्यास-सपादित ग्रथों को "व्यासचर्या" कहा गया है। वराहपुराण के अनुसार (175-9) "व्यासचर्या" के अध्ययन से आत्मा विशद एव शुद्ध बनती है।

आदियुग में जब वेदाध्ययन कठिन होने लगा, तो व्यासजी ने यज्ञसस्था के लिये उपयुक्त और परंपरा से वेद टिके रहे इस दृष्टि से वेद राशि को चार भागों में विभक्त किया और अपने चार शिष्यों को उनका ज्ञान कराया। बहुऋचात्मक ऋग्वेद संहिता पैल को, निगदाख्य यजुर्वेदसंहिता वैशम्पायन को, छदोग नामक सामवेदसहिता जैमिनी को एवं आंगिरसी नामक अथर्वसंहिता सुमंतु को दी। व्यासकृत यह वेद-विभाजन सर्वमान्य हुआ है।

वेदों में भगवान् के निर्विशेष रूप का जो प्रतिपादन हुआ है, उसके प्रतिपादन की अभिव्यक्ति का दर्शन अपने "ब्रह्मसूत्र" द्वारा प्रस्तुत कर, आपने एक बडी कमी पूरी की। व्यासकृत ब्रह्मसूत्र में अध्यात्म के सिद्धान्त सूत्ररूप में ग्रथित किये गये हैं।

शंकराचार्य, निंबार्काचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचाय आदि आचार्योंने ब्रह्मसूत्र को ही आधार मान कर अपने-अपने दर्शन निर्माण किये।

प्राचीन काल में पुराणों का स्वरूप अव्यवस्थित था। वह सूत-मागधो के विभिन्न गुटों में बिखरा हुआ था। व्यासजी ने उसे एकत्र कर सुबद्ध पुराणसंहिता तैयार की और अपने शिष्य लोमहर्ष* को उसका प्रसार करने की आज्ञा की। लोमहर्षण ने व्यास-संहिता के आधार पर अपनी एक पुराण-सहिता तैयार की और अपने छह शिष्यों को उसका प्रसार करने के लिये कहा। इस भांति मूल एक पुराण के 18 पुराण बने। इस प्रकार पुराण वाङ्मय के प्रवर्तक व्यास ही थे।

उनकी समस्त ग्रथ-सपदा में महाभारत की महिमा अलौकिक है। व्यासजी की कीर्ति का वह जयस्तभ है। उसे "पंचम वेद" कहा गया है।

हिमालय के नर-नारायण नामक दो पर्वतों के बीच से भागीरथी प्रवाहित है। उसके किनारे विशाला बदरी नामक स्थान है। महाभारत युद्ध के बाद वहीं अपना आश्रम स्थापित कर उन्होंने निवास किया, एव तीन वर्षों तक सतत कार्यरत रह कर, "महाभारत" की आद्यसहिता तैयार की।

अपने ग्रथों द्वारा व्यासजी ने राजसत्ता का विस्तृत और सुयोग्य मार्गदर्शन किया है। उनके मतानुसार राजधर्म बिगड गया तो वेद, धर्म, वर्ण, आश्रम, त्याग, तप, विद्या सभी का नाश होता है।

आपने धर्म का जो विवेचन किया है, वह उनके महान ऋषित्व का दर्शन है। व्यक्ति, राष्ट्र, समग्र जीवन,लोक और परलोक का जो "धारण" करता है, वही धर्म है, यह उनकी व्याख्या है।

धर्म जीवन-धारण की उत्तम वस्तु है, तो जीवन भी उतना ही मूल्यवान् होना चाहिये। उनके अनुसार जीवन रोने के लिये नहीं, वह आनदमय है। वे जिस भांति कर्मवाद को मानते हैं, उसी भांति दैववाद को भी। उनका केन्द्रबिन्दु देवता नहीं, मनुष्य है।

गुह्य ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि।
न हि मानुषाच्छ्रेष्ठतर हि किंचित्।
(म.भा शाति 1-10-12)

अर्थ - मैं यह रहस्यज्ञान आपको कराता हूं कि इस ससार में, मनुष्य को छोड कर और कोई श्रेष्ठ नहीं।

इसी कारण उन्होंने पुरुषार्थ का उपदेश किया। पाणि याने हाथ याने पुरुषार्थ। इसी लिये उन्होंने इन्द्र के मुख से "पाणिवाद" की प्रशंसा की है।

अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणय ।
अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणय ।।
पाणिमद्भ्य. स्पृहाऽस्माकं यथा तव धनस्य वै।

न पाणिलाभादधिको लाभ· कश्चन विद्यते।
(म.भा शांति 180-11-1)

अर्थ - जिनके हाथ हैं, वे क्या नही कर सकते। वे सिद्धार्थ हैं। जिनके हाथ हैं, वे मुझे अच्छे लगते हैं। जैसी तुझे धन की आकांक्षा है, उसी प्रकार मुझे हाथ की, पाणिलाभ से बढ कर और कोई लाभ नहीं।

महाभारत लिखने के बाद व्यास उदास हो गये थे। एक बार नारद मुनि से भेंट हुई। उनके परामर्श पर उन्होंने भागवत-पुराण की रचना की। कृष्णचरित्र का वर्णन उसमे किया। श्रीमद्भागवत भक्ति का महाकाव्य बना और व्यासजी के मन की उदासीनता भी दूर हुई।

"महाभारत' के अत में जो चार श्लोक हैं, उन्हे "भारत-सावित्री" कहा जाता है। व्यासजी ने मानव जाति को उसमें शाश्वत सन्देश दिया है।

न जातु कामान्न भयान्न लोभात्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो
धर्मो नित्य· सुखदु खे त्वनित्ये ।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य ।

अर्थ - काम, भय या लोभ किंबहुना जीवित के भी कारण से धर्म का त्याग मत करो क्यों·कि धर्म शाश्वत है। सुख-दु·ख अनित्य हैं। जीव (आत्मा) नित्य है, जन्म-मृत्यु अनित्य हैं।

व्यासराय - द्वैत-मत के "मुनित्रय" मे अतिम मुनि तथा माध्व-मत की गुरु-परपरा में 14 वें गुरु। मध्व तथा जयतीर्थ के साथ में व्यासराय द्वैत-सम्प्रदाय के "मुनित्रय" मे समाविष्ट होते हैं। अपने प्रगाढ पाडित्य, उदात्त चरित्र एव गभीर साधना के कारण इन्हें "द्वितीय मध्वाचार्य" माना जाता है। इन्होंने अपने पाडित्यपूर्ण भाष्यो के द्वारा भारतीय दार्शनिक गोष्ठी मे द्वैत-दर्शन को उच्चतम स्तर पर प्रतिष्ठित किया और भारत के दार्शनिक इतिहास में द्वैत-वेदात को शास्त्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कराई।

सोमनाथ ने "व्यास-योगि-चरित" नामक अपने ऐतिहासिक काव्य में व्यासराय का चरित्र विस्तारपूर्वक दिया है। वह सर्वथा प्रामाणिक तथा इतिहाससगत है तदनुसार इनका जन्म मैसूर के एक गाव में 1460 ई के आसपास हुआ। पिता वल्लण्ण सुमति थे कश्यप-गोत्री। ब्रह्मण्यतीर्थ इनके दीक्षागुरु थे। उनकी 1475-76 ई में आकस्मिक मृत्यु होने के कारण व्यासराय को शास्त्रों के अध्ययन का अवसर न मिल सका। पीठाधिपति बनने के पश्चात् ही ये दक्षिण भारत के विश्रुत विद्यापीठ मे अध्ययनार्थ काची गए, और वहा पर न्याय-वेदात का पाडित्य अर्जित किया। श्रीपादराज नामक पंडित से भी इन्होंने द्वैत-शास्त्रों का विशद अध्ययन किया। इनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। चंद्रगिरि के शासक सालुव नरसिह ने इनका बडा आदर-सत्कार किया। उनकी राजसभा में अनेक पंडितो को शास्त्रार्थ में परास्त करते हुए इन्होने अपने पाडित्य का परिचय दिया।

व्यासराय के जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल आरभ होता है 1509 ई से जब विजयनगर के सिंहासन पर कृष्णदेवराय आरूढ हुए। कृष्णदेवराय स्वय कवि थे और गुणग्राही भी। व्यासराय को वे अपने "कुल-देवता" के समान मानते थे। व्यास राय उनके गुरु भी थे। राजा ने उन्हें अनेक गाव दान मे दिये थे। उस युग के शिलालेख इसके साक्षी हैं। 1530 ई में राजा की मृत्यु के पश्चात् अच्युत राय के शासन-काल में भी व्यास राय की प्रतिष्ठा तथा मर्यादा पूर्ववत् अक्षुण्ण बनी रही। दि 8 मार्च 1539 को व्यास राय की ऐहिक लीला समाप्त हुई। तुगभद्रा नदी के "नव वृदावन" नामक टापू पर इनके भौतिक अवशेष समाधिस्थ किये गये जो आज भी वहा विद्यमान हैं। इनका पीठाधीश्वर रहने का काल 61 वर्ष (1478 ई 1539 ई) माना जाता है।

व्यासराय द्वैत-सम्प्रदाय के द्वितीय प्रतिष्ठापक हैं। मध्व ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर जिस द्वैत-मत का प्रवर्तन किया था, उसके विरोधियों के सिद्धातो का प्रबल खडन तथा मीमासा न्यायादि शास्त्रों के आधार पर स्वमत का युक्तियुक्त मडन करते हुए, इन्होंने द्वैत-मत का प्राबल्य एव प्रामुख्य सदा के लिये स्थापित कर दिया। इसी प्रकार न्यायामृत, तात्पर्यचद्रिका तथा तर्क-ताण्डव जैसे श्रेष्ठ ग्रथों का प्रणयन कर, इन्होंने अखिल भारतीय विद्वानों में अपनी अपूर्व प्रतिष्ठा स्थापित की। कहते हैं कि जब मैथिल नैयायिक पक्षधर मिश्र दक्षिण गए, तब उन्होंने व्यास राय की प्रशसा में कहा था-

यदधीत तदधीतं यदनधीत तदप्यधीतम्
पक्षधर-विपक्षो नावेक्षि विना नवीनव्यासेन।।

व्यासराय केवल तार्किक-शिरोमणि ही न थे, प्रत्युत भक्तिरस से स्निग्ध कन्नड भाषीय सरस गीतियों के रचयिता भी थे। इनके पद आज भी साधको तथा सतों के मार्ग-प्रदर्शक हैं और कन्नड-कविता के गौरवस्वरूप माने जाते हैं। इनके पाडित्यपूर्ण ग्रथों ने द्वैत-वेदात के इतिहास में एक नई शैली को जन्म दिया, जो अब "नव्य वेदात" के नाम से प्रख्यात है। अद्वितीय तार्किक होने के साथ ही, व्यासराय मधुर कवि तथा नैष्ठिक साधक भी थे। इन्हींके शिष्य पुरदरदास ने कन्नड भाषा मे सरस पदों एव गीतियों की रचना कर वही कीर्ति अर्जित की, जो हिन्दी-जगत् में सत सूरदासजी को प्राप्त है। इस प्रकार कन्नड में "दासकूट" (भ्रमणशील पदगायक संत) के उद्भावक के रूप में तथा सुदुर बगाल में अपने प्रभाव का विस्तार करने में व्यासराय अद्वितीय हैं।

व्यासराय ने 8 ग्रथों का निर्माण किया जिनमें 3 ग्रंथ मूर्धाभिषिक्त कृतियां मान सकते है। वे हैं- न्यायामृत, तात्पर्य-चंद्रिका और तर्क-तांडव। इन्हें "व्यासत्रय" के समवेत नाम से अभिहित किया गया है। तीनों ही ग्रथ समवेत रूप से द्वैत-वेदात के

इतिहास में महत्त्वपूर्ण तथा अविस्मरणीय स्थान प्राप्त करने में पूर्णतः सफल सिद्ध हुए हैं।

व्योमशिवाचार्य - वैशेषिक-दर्शन के एक भाष्यकार। प्रशस्तपादभाष्य पर आपकी लिखी टीका का नाम है "व्योमवती"। उदयनाचार्य ने किरणावली में "आचार्या" कहकर आपका गौरव किया है। राजशेखर ने भी न्यायकंदली में भाष्यकारों की सूची में आपको प्रथम स्थान दिया है। इसी से आपका काल ई 10 वीं शती के पूर्व अनुमानित है। श्रीधर, शिवादित्य आदि वैशेषिक आचार्य प्रत्यक्ष एवं अनुमान इस भांति प्रमाण द्वय मानते है किन्तु व्योमशिवाचार्य शब्द को भी स्वतंत्र प्रमाण मानते हैं।

शंकर दीक्षित - समय-ई 18 वीं शती। काशी नरेश चेतसिह के समकालीन। काशीनिवासी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण। पिता-बालकृष्ण (सस्कृत-रचनाकार)। पितामह-ढुण्ढिराज (शाहविलासगीत तथा मुद्राराक्षस की टीका के रचयिता)। कृतिया- प्रद्युम्नविजय (नाटक), गगावतार और शकरचेतोविलास (चम्पू)। शकरचेतोविलास चपू में काशी नरेश चेतसिह का चरित्र वर्णित है। आप बुदेलखड के राजा सभासिह के भी कुछ काल तक सभापंडित रहे थे।

शंकरभट्ट - ई 17 वीं सदी। स्वय को "मीमासाद्वैत-साम्राज्यनीतिज्ञ" कहलवाते थे। पिता-काशी के सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्रज्ञ एव महामीमासक नारायणभट्ट। पार्थसारथी मिश्र की "शास्त्रदीपिका" के दूसरे भाग पर आपने प्रकाश नामक टीका लिखी है। आपका प्रसिद्ध ग्रथ है "द्वैतनिर्णय"। इस ग्रथ मे कृष्णजन्माष्टमीव्रत, नवरात्रव्रत, सनिपाताशौच आदि के मतमतातरो पर मीमासाशास्त्र के आधार पर निर्णय दिये गये हैं। मीमांसा-बालप्रकाश यह ग्रथ, पूर्वमीमासासूत्रों के सिद्धातों का बालसुबोध पद्यात्मक विवेचन है। इसके अतिरिक्त निर्णयचद्रिका, व्रतमयूख, विधिरसायन, श्राद्धकल्पसार, ईश्वरस्तुति आदि ग्रथों की भी रचना आपने की है। सिद्धांतकौमुदी के रचयिता भट्टोजी दीक्षित आपके शिष्य और भगवद्भास्कर नामक बृहत् ग्रथ के लेखक नीलकंठ आपके पुत्र थे।

(2) ई 17 वी सदी। एक धर्मशास्त्रकार और मीमासक। पिता-नीलकंठ। पिता के धर्मशास्त्रविषयक "सस्कारमयूख" ग्रथ में शकर भट्ट ने बहुत सहायता की। आपके ग्रथ हैं- कुडभास्कर, व्रतार्क, कुडार्क, कर्मविपाकार्क, सदाचार-संग्रह एव एकादशीनिर्णय। "व्रतकौमुदी" नामक एक और ग्रंथ भी शकर भट्ट के नाम पर मिलता है किंतु ये शकरभट्ट कौन हैं, इसका पता नहीं चल पाया।

शंकर मिश्र - ई 15 वीं शती। बिहार प्रदेश के दरभंगा जिले में सरिसव नामक स्थान पर जन्म। पिता-भवनाथ मिश्र उपाख्य डायाची, मीमांसक थे। गुरु-रघुदेव उपाध्याय अथवा कणाद एवं महेश ठाकुर। शंकर मिश्र ने खंडनखाद्य-ग्रंथ पर टीका लिखी है। आप द्वैतवादी एव शिवभक्त थे। आपके जन्मस्थान पर निर्मित सिद्धेश्वरी देवी का मंदिर आज भी विद्यमान है।

अन्य रचनाएं- उपस्कार, कणादरहस्य, आमोद, कल्पलता, कंठाभरण, आनंदवर्धन, मयूख, वादिविनोद, भेदरत्नप्रकाश, स्मृति-परक तीन ग्रंथ और शिव-पार्वती-विवाह पर गौरीदिगंबर नामक प्रहसन।

शंकरलाल (म.म.) - मोरवी-निवासी। संस्कृत महाविद्यालय मोरवी के आजीवन प्राचार्य थे। जन्म- 1842, मृत्यु 1918 ई। जन्म- काठियावाड (गुजरात) के प्रशनोर नगर में। भारद्वाज-गोत्री गुजराती ब्राह्मण। पिता-भट्ट महेश्वर (प्रथम गुरु)। द्वितीय गुरु- केशव शास्त्री। शैव। जामनगर के राजा द्वारा "महामहोपाध्याय" की उपाधि। मोरवी के राजा द्वारा सम्मानित। इनके स्मरणार्थ मोरवी में "शंकराश्रम" की स्थापना की गई जहा प्रति दिन धार्मिक कार्यक्रम होते हैं। इनकी सभी कृतियां शिष्यों द्वारा प्रकाशित।

कृतिया- बालचरित (महाकाव्य), चन्द्रप्रभाचरित (गद्य-उपन्यास), विपन्मित्र तथा विद्वत्कृत्यविवेक (निबन्ध), प्रयोगमणिमाला (लघुकौमुदी पर टीका), अनसूयाभ्युदय, भगवती-भाग्योदय, महेश्वरप्राणप्रिया, पाचालीचरित, अरुन्धतीचरित, प्रसन्न-लोपामुद्रा, केशव-कृपा-लेश-लहरी, कैलाशयात्रा, भ्रान्ति-माया-भंजन, मेघप्रार्थना, सावित्री-चरित, गोपाल-चिन्तामणि-विजय, ध्रुवाभ्युदय, अमर-मार्कण्डेय तथा श्रीकृष्णाभ्युदय ये छायानाटक और भद्रायु-विजय नामक रूपक। सभी नाटकों में छायातत्त्व की प्रचुरता है। इनके द्वारा गुजराती मे लिखित ग्रथ है अध्यात्म-रत्नावली।

शंकरस्वामी - चीनी-परम्परा के अनुसार दिङ्नाग के शिष्य। दक्षिण भारत के निवासी। बौद्ध न्यायसबधी इन्होंने दो ग्रंथ लिखे- हेतुविद्या-न्यायप्रवेश तथा न्यायप्रवेश-तर्कशास्त्र। ह्वेनसांग ने ई 647 में इनका चीनी अनुवाद किया।

शंकराचार्य (भगवत्पूज्यपाद) - ई 7-8 वीं शती। महान् यति, ग्रथकार, अद्वैत-मत के प्रवर्तक, स्तोत्रकार, एवं वैदिक सनातन धर्म के सस्थापक, भगवान् शंकराचार्य भारतवर्ष की एक महान विभूति थे।

आचार्य के पूर्वकाल में जैन एवं बौद्ध मतों का सघर्ष वैदिक धर्म के साथ चल रहा था। बौद्धों का प्रभाव अधिक था। ऐसे समय वैदिक धर्म को क्रियाशील पडित की आवश्यकता थी। तब भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य के रूप में यह पुरुषश्रेष्ठ भारत को प्राप्त हुआ। आचार्य के जन्मकाल के विषय में मतभेद है। कुछ लोग उन्हें सातवीं सदी का मानते हैं, तो कुछ नौवीं का। लोकमान्य तिलक के अनुसार सातवीं सदी का अतिम चरण उनका जन्मकाल रहा। प्रा बलदेव उपाध्याय भी सातवीं सदी के अंतिम चरण से आठवीं सदी के प्रथम चरण का काल मानते हैं।

केरल में काल्टी नामक एक गाव है। इसी से सटकर जो नदी है उसे अलवाई कहते हैं। वहीं शिवगुरु नामक एक तपोनिष्ठ नंपूतिरी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी का नाम विशिष्टा या सती था। दोनों शिवभक्त थे। शिव की उपासना करने पर वैशाख शुद्ध पचमी पर उन्हे पुत्रप्राप्ति हुई। शिवकृपा के कारण शकर नाम रखा गया। शंकर के पिता की मृत्यु कुछ ही दिनों बाद हो गई। मा ने पाचवे वर्ष में इनका उपनयन कराया। विद्याध्ययन प्रारभ हुआ। शकर के मन में सन्यास लेने की इच्छा जागृत हुई। मा की अनुमति मिल पाना कठिन था। कहते है एक बार नदी में स्नान करते समय एक मगरमच्छ ने शकर का पैर पकड लिया। पैर छूट नहीं रहा था। शंकर ने मा से कहा कि वे अब बच नही सकते। उन्हें मरते समय तो सन्यास लेने की अनुमति दे। व्यथित मां ने स्वीकृति दी। उसी समय कुछ केवट सहायतार्थ दौडे और शकर बचा लिये गये।

शकर ने नर्मदा-तीर पर समाधि लगाय बैठे गोविन्द यति के पास पहुंचकर उनसे सन्यास-दीक्षा ली और वे शकराचार्य बने। इस सबध में एक कथा है। एक बार गुरु समाधिस्थ थे। नर्मदा मे बाढ आई थी। उन्होंने मिट्टी का एक घडा गुफा के द्वार पर रख दिया। बाढ का पानी उस घडे में जाता और वहीं समा जाता। उसे गुफा मे जाने का मौका ही नहीं मिला। बाढ उतर गयी। गुरुजी जब समाधि से उठे, तो उन्होने यह चमत्कार देखा। आचार्य के सामर्थ्य का उन्हें ज्ञान हुआ। उन्होंने कहा- "तुरन्त काशी जाओ, विश्वनाथजी का दर्शन लो और ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखो। वेद व्यास कह गये हैं कि जो कोई बाढ पानी घडे मे समा लेगा वही मेरे ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिख सकेगा।"

गुरु की आज्ञा लेकर आचार्य काशी पहुंचे और मणिकर्णिका-घाट पर वेदान्त के पाठ देने लगे। गुरु बारह वर्ष का, और उसके शिष्य तरुण-प्रौढ। काशी के विद्वानों को आश्चर्य होता। इन्ही में एक विद्वान थे सदानद। वे ही आचार्य के प्रथम शिष्य थे।

एक दिन आचार्य मध्याह्नकृत्य के लिये गगा की ओर जा रहे थे। बीच में एक चाडाल आया। आचार्य ने उसे हटने के लिये कहा। इस पर उस चाडाल ने विनीत भाव से कहा- "यतिवर्य, ओ अद्वैती! जो परमात्मा सर्वत्र है, वही मुझमे भी है। मुझे हटने के लिये स्थान ही कहा है। यतिराज, आप अद्वैत के पाठ ही देते हैं, पर वह बुद्धि मे ही रहा है। उसका अनुभव नहीं"

आचार्य अवाक् रह गए। "तुम मेरे गुरु हो" कहकर, उन्होंने चाडाल को प्रणाम किया। वह चाडाल, साक्षात् काशी-विश्वनाथ थे। आचार्य को उन्होंने बाद में दर्शन दिया।

आचार्य वहां से बदरिकाश्रम की ओर रवाना हुए। मार्ग में उन्होंने तान्त्रिकों द्वारा अपनाई गई नरबलि की प्रथा बंद करवाई। बदरी क्षेत्र में, उन्हें मंदिर में नारायण-मूर्ति दिखाई नहीं दी। चीनी मूर्तिभजको के भय से वह नारदकुंड में डाली गई और वहा से उसे निकालना कठिन है यह ज्ञात होते ही, वे अलकनदा के नारदकुड में कूद पडे और नारायण मूर्ति का निकाल लाये। फिर समारोहपूर्वक उन्होंने उसकी प्रतिष्ठा की। वहा के पुजारी मत्रमुख नहीं थे। अत. उन्होंने केरल के वैदिक विद्वान् बुलवाये और उन्हे पूजा का अधिकार सौंपा।

बदरीक्षेत्र के पास व्यासतीर्थ है। वहीं व्यास आश्रम है। कहते हैं व्यासजी ने वहा "भारत" की रचना की थी। आचार्य वहीं गये और उन्होने ब्रह्मसूत्र, गीता व उपनिषदों पर भाष्य लिखे। एक कथा के अनुसार वहीं भगवान वेद व्यास ने भी उन्हें दर्शन दिये। आचार्यजी की आयु उस समय सोलह वर्ष थी।

आचार्य इसके बाद प्रयाग रवाना हुए। प्रयाग में त्रिवेणी-सगम पर कुमारिल भट्ट का वास्तव्य था। वे महा मीमासक एव वैदिक कर्मकाड के प्रखर अभिमानी थे। वहां पहुचने पर ज्ञात हुआ कि भट्ट स्वयं को तुषाग्नि में जला रहे हैं। आचार्यजी के प्रश्न पर इन्होंने कहा कि बौद्ध धर्म का सप्रमाण खडन करने के लिये, उन्होंने उसका सूक्ष्म ज्ञान नालदा विश्वविद्यालय में प्राप्त किया। वहीं धर्मपाल नामक उनके गुरु से वादविवाद में उन्होंने गुरु को परास्त किया। इस गुरुद्रोह पर वे प्रायश्चित्त ले रहे हैं। आचार्यजी के आग्रह पर भी भट्ट नहीं माने और उन्होंने स्वयं को जला लिया। इसके बाद आचार्य मध्यप्रदेश पहुचे, जहा माहिष्मती नगरी में महान् कर्मकाण्डी मडनमिश्र रहते थे। मीमांसा-श्रेत्र में उनका शब्द प्रमाण था। अत अद्वैत वेदान्त के अबाधित प्रचार के लिये, उन्हें अनुकूल करना आवश्यक था। उनके साथ शास्त्रार्थ हुआ और आचार्यजी विजयी रहे। पर उनकी पत्नी ने उन्हें चुनौती दी, उनके साथ शास्त्रार्थ में जब कामशास्त्र के प्रश्न उठे, तो आचार्य ने अनुभवज्ञान के लिए छह माह की अवधि मागी। फिर उसी समय मृत हुए राजा अमरु के शरीर में प्रवेश कर उन्होंने इस शास्त्र की जानकारी प्राप्त की, एव छह माह बाद लौटकर शास्त्रार्थ में विजयी हुए। मडनमिश्र आचार्य के शिष्य बने और उन्होंने अपना सारा विद्यावैभव अद्वैत सिद्धान्त के मडन में ही सार्थक किया।

शकराचार्य अपने प्रवास में केरल में अपने जन्म ग्राम पहुचे। उनकी मा वहा मृत्युशय्या पर थी। पुत्र की भेंट के बाद उनकी मृत्यु हुई। धर्मशास्त्र के अनुसार संन्यासी को अपने किसी भी रिश्तेदार की अत्येष्टि नहीं करनी चाहिये। किन्तु किसी भी ब्राह्मण के आगे नहीं बढने से, आचार्यजी मा का शव किसी भाति बाहर ले आये और घर के आंगन में ही उन्होंने अत्येष्टि की।

आचार्य ने देश भर प्रवास कर अद्वैत सिद्धान्त का प्रसार

किया। अंत में वे काश्मीर गये। वहां शारदा के एक मंदिर में विद्वानों का वास्तव्य था। वहीं एक पीठ था। उसे "सर्वज्ञ-पीठ" कहते थे। आचार्य उसी पर जाकर बैठ गये। विद्वानों ने उनसे पूछा- "क्या आप सर्वज्ञ हैं" उनकी स्वीकारोक्ति पर, उन्होंने उन्हें अनेक प्रश्न पूछे। आचार्य द्वारा समाधान किया जाने पर, सभी ने उनका जयजयकार किया।

आचार्य नेपाल गये। वहां पशुपतिनाथ-मंदिर पर बौद्धों का अधिकार था। वैदिक पूजाविधि जानने वाला कोई नहीं था। नेपाल के राजा की अनुमति से केरल ने नंपूतीरी ब्राह्मण बुलाकर उन्होंने उन्हें पूजा का कार्य सौंपा। मंदिर का जीर्णोद्धार किया।

अपनी 31 वर्ष की आयु में भाष्य-लेखन, प्रचार दिग्विजय, मठस्थापन आदि प्रचंड कार्य आपने पूर्ण किये। अंत में केदार-क्षेत्र को देहत्याग के लिये योग्य मानकर, वैशाख शुक्ल एकादशी के दिन इस यतिश्रेष्ठ ने शरीर त्याग किया। उनके निर्याण-स्थल और तिथि पर मतभेद है।

आचार्य के चार प्रमुख शिष्य थे। सुरेश्वर (मंडनमिश्र, पद्मपाद (सनंदन), हस्तामलक (पृथ्वीधर) एवं तोटकाचार्य (गिरि)। हस्तामलक के बारे में कथा है कि उनके पिता बच्चे की वैराग्यवृत्ति देखकर उसे आचार्य के पास ले आये। आचार्य ने बच्चे से पूछा- तुम कौन हो, कहां के हो, किस के हो, उत्तर मिला -

नाहं मनुष्यो न च देवयक्षो
न ब्राह्मण क्षत्रियवैश्यशूद्रा.।
न ब्रह्मचारी, न गृही वनस्थो
भिक्षुर्नचाहं निजबोधरूप ।।

अर्थ- मैं मनुष्य नहीं, उसी भांति देव, यक्ष भी नहीं। मैं चारों वर्णों में से कोई नहीं, चारों आश्रम मैं से कोई नहीं। मे केवल निजबोधरूप अर्थात् ज्ञानरूप हू।

तब आचार्य ने पिता से कहा- यह बच्चा आपके काम का नहीं। यह कोई जीवन्मुक्त आत्मा है। इसे मेरे यहां छोडिये। आचार्य ने अपने इन चारों शिष्यों की नियुक्ति चार पीठों पर की। पद्मपाद-गोवर्धनपीठ (उडीसा), सुरेश्वर-शृंगेरीपीठ (कर्नाटक), हस्तमालक-शारदापीठ (द्वारका) एवं तोटक-ज्योतिर्मठ (हिमालय)।

प्रचलित ग्रंथों के अनुसार, आचार्य की गुरुपरंपरा इस भांति है- विष्णु-शिव- ब्रह्मा- वसिष्ठ-शक्ति- पराशर- शुक- गौडपाद- गोविंद- शंकर। इस परंपरा के अनुसार, शंकराचार्य गौडपाद के प्रशिष्य एवं गोविंद के शिष्य है। आचार्य श्रीविद्या के उपासक थे। उनके कुछ मठों में श्रीचक्र की स्थापना रहती है। मठपति के दैनिक कृत्यों में श्रीचक्र की पूजा की विधि भी है। आचार्य के सौन्दर्यलहरी और प्रपंचसार ये प्रकरणग्रंथ तंत्रविद्या के ही हैं। श्रीविद्यार्णवतंत्र के अनुसार, गौडपाद और गोविंद के बीच चार पुरुष हैं : गौडपाद- पावक- पराचार्य- सत्यनिधि- रामचंद्र- गोविंद।

काशी का सुमेरुमठ एवं कांची का कामकोटि-पीठ भी आचार्य द्वारा निर्मित माना जाता है। कामकोटि-पीठ के अधिपति इसे ही प्रधानपीठ मानते हैं। कुछ उपपीठ भी निर्माण हुए हैं। वे हैं . कूडली, संकेश्वर, पुष्पगिरि, विरूपाक्ष, हव्यक, शिवगंगा, कोप्पाल, श्रीशैल, रामेश्वर एवं बागड। सभी मठाधीशों को आचार्य ने जो उपदेश किया, उसे 'महानुशासन' कहा गया है। उसकी धर्माज्ञा के अनुसार मठपति अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिये आलस छोड दे, अपने शासनप्रदेश में सदैव भ्रमण कर वर्णाश्रमों के कर्तव्यों का उपदेश करें। सदाचार बढावें, एक मठाधिपति दूसरेके अधिकार-क्षेत्र में जावें, सभी मठाधिपति बीच-बीच में एकत्र आकर धर्मचर्चा करें, धार्मिक सुव्यवस्था के लिये प्रयास करें, वैदिक धर्म प्रगतिशील एवं अक्षुण्ण रहे, इस हेतु दक्ष रहें। शास्त्रज्ञ विद्वान् ही धर्म के मामले में नियामक हो सकते हैं। वे धर्मपीठों पर नजर रखें, समय-समय पर मठपति के आचरण की जांच करें। विद्वान्, चारित्र्यवान्, कर्तव्यदक्ष, सद्गुणी संन्यासी को ही पीठाधिष्ठित करें।

आचार्य द्वारा लिखे गये ग्रथों की सख्या 200 से अधिक मानी जाती है। उनमें आद्य शंकराचार्य के प्रमाणभूत जो ग्रथ निश्चित हुए हैं, वे हैं प्रस्थानत्रयी के भाष्य। (प्रस्थानत्रयी = ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद् और भगवद्गीता) स्तोत्रों में आनंदलहरी भगवती देवी पर रचा गया है। शिखरिणी वृत्त में 107 श्लोक इसमें है। उनमें प्रारंभिक 41 श्लोकों को आनन्दलहरी और अवशिष्ट श्लोकों को सौन्दर्यलहरी नाम है। उस पर 30 टीकाएं उपलब्ध हैं। देवी की यह स्तुति रसिकजनों को आनदप्रद रही है।

दक्षिणामूर्ति-स्तोत्र शार्दूल-विक्रीडित वृत्त में है। इसमें वेदान्त प्रतिपादन के सार्थ तांत्रिक उपासना के कुछ पारिभाषिक शब्द हैं।

चर्पटपंजरी (17 श्लोकों का स्तोत्र) अत्यंत नादमधुर है। उसमें वैराग्य का उपदेश है। इसे "भज गोविंदम्" कहते है।

षट्पदी- स्तोत्र का एक प्रसिद्ध श्लोक है-

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाह न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्ग. क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

हरिमीडे-स्तोत्र में विष्णु की प्रशंसा है। शिवभुजंगप्रयात में चौदह श्लोक हैं। अपनी मां के अत में आचार्य ने उनके निमित्त श्रीकृष्णस्तुतिपर स्तोत्र की रचना की।

'सौंदर्यलहरी' काव्य-दृष्टि से सरस, प्रौढ एवं रहस्यपूर्ण स्तोत्र है। यह शतक काव्य है। 41 श्लोकों में तंत्रविद्या के रहस्य एवं 59 श्लोकों में त्रिपुरसुन्दरी का वर्णन है।

प्रकरण ग्रंथ- आचार्यजी ने अपने अद्वैत वेदान्त प्रचार हेतु जो छोटे-बडे ग्रंथ लिखे, उन्हें 'प्रकरण ग्रंथ' कहा जाता है। इसमें कुछ प्रमुख हैं . अद्वैत-पंचरत्न, अद्वैतानुभूति,

अनात्मश्रीविगर्हण, उपदेशसाहस्री, धन्याष्टक, विवेकचूडामणि इ.।

शंकराचार्य को कुछ लोग 'प्रच्छन्न बौद्ध' मानते हैं। पद्मपुराण के निम्न श्लोक का आधार वे लेते हैं-

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा।

परंतु वे प्रच्छन्न बौद्ध नहीं थे यह स्वयं बौद्ध दृष्टि से भी सिद्ध होता है। शांतरक्षित समान प्रकांड बौद्ध दार्शनिक ने आचार्य के मतों की कटु आलोचना की है।

आचार्य ने जो अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित किया, उसका मूलमंत्र है।

"ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर"

आचार्य ने 32 वर्ष की आयु में जो सर्वंकष कार्य किया कि वह विश्व में अपूर्व है।

शंकरानंद - ई. 11 वीं सदी। बौद्ध मतानुयायी तर्कशास्त्री। काश्मीरी ब्राह्मण। धर्मकीर्ति की प्रमाणवार्तिक एवं संबंध-परीक्षा पर टीका, अपोहसिद्धि तथा प्रतिबंधसिद्धि इनके ग्रंथ हैं। सभी ग्रंथ तिब्बती में अनुवादित।

(2) एक अद्वैती आचार्य। ई. 14 वीं सदी। विद्यारण्य स्वामी के गुरु। इन्होंने अद्वैत प्रचार के लिये प्रस्थानत्रयी पर टीका लिखी। आत्मपुराण नामक ग्रंथ की भी रचना की जो सर्वोपनिषदों का सार है।

(3) ई. 18 वीं सदी। एक धर्मशास्त्री व मीमांसक। पूर्वाश्रम का नाम बालकृष्ण भट्ट। काशी में निवास। खंडदेव के भाट्टदीपिका नामक मीमांसा ग्रंथ पर इन्होंने प्रभावली नामक टीका लिखी। धर्मशास्त्र पर लिखे अन्य ग्रंथ हैं कालतत्त्व-विवेचनसारसंग्रह, त्रिंशच्छ्लोकी, निर्णय-सारोद्धार एवं पातयज्ञप्रयोग। इनके अतिरिक्त तंत्रशास्त्र पर सुंदरी-महोदय नामक ग्रंथ की भी इन्होंने रचना की है।

शंकुक - शंकुक के मत का अभिनवगुप्त ने 15 स्थानों पर उल्लेख किया है तथा टीका के उद्धरण देकर आलोचना भी की है। ये रसशास्त्र के व्याख्यान में अनुमितिवादी आचार्य माने जाते हैं। राजतरंगिणी में इन्हें भी अजितापीड के समय ई. 9 वीं शती का कहा गया है -

कविर्बुधमनःसिन्धुशशांकः शंकुकाभिधः।
यमुद्दिश्याकरोत् काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम्।

इससे सिद्ध होता है कि शंकुक ने 'भुवनाभ्युदय' नामक काव्य अजितापीड की स्तुति में लिखा था। सूक्ति-मुक्तावली तथा शार्ङ्गधरपद्धति से ज्ञात होता है कि शंकुक के पिता का नाम मयूर था। ये बाण के समकालीन मयूर से भिन्न ही होंगे।

शंतनु - व्याकरण के फिट्सूत्रों के कर्ता। इनके संबंध में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में आपके सूत्रों का आधार लिया है। अतः शंतनु का काल, ई.पू. दूसरी शताब्दी से पूर्व का निश्चित होता है। शंतनु के सूत्र पाणिनि के भी पहले होने चाहिये ऐसा मत, सिद्धांत-कौमुदी के वैदिक प्रकरण पर सुबोधिनी नामक टीका-ग्रंथ के लेखक ने अंकित किया है। सूत्रकार शंतनु की परंपरा, पाणिनि से भिन्न प्रतीत होती है। विशेष बात यह कि प्रचलित मान्यता के विपरीत वे कहते है कि वेदों के समान लौकिक भाषा में भी प्रत्येक शब्द को स्वर होता है। अर्थभेद के कारण स्वरभेद होने वाले 'अर्जुन', 'कृष्ण' आदि अनेक शब्दों की स्वरविषयक चर्चा उन्होंने इस दृष्टि से अपने फिट्सूत्रों में की है।

शक्तिवल्लभ अर्ज्याल - नेपाली। ई. 18 वीं शती। आत्रेय गोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण। पिता-लक्ष्मीनारायण। शक्ति के उपासक। राजनीतिनिपुण। संगीत-कुशल। संस्कृत तथा देशभाषाओं के विद्वान्। 'जयरत्नाकर' नाटक के प्रणेता।

शकपूत - एक सूक्तद्रष्टा राजा। नृमेध आंगिरस के पुत्र होने से नार्मेध भी कहलाये। ऋग्वेद के दसवें मंडल का 132 वां सूक्त, आपके नाम पर है। इस सूक्त का विषय मित्रावरुणस्तुति है। एक ऋचा है -

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती
सुषुम्नेषितत्वा यजामसि।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ।।

अर्थ- हे इष्ट देवतास्वरूप, पृथ्वी-रक्षक, धनसम्पन्न मित्रावरुण, आपकी सहायता से ही हम यज्ञद्वेषी राक्षसों को पराजित करते है।

शची पौलोमी - पुलोमा असुर की कन्या। ऋग्वेद के दसवें मंडल का 159 वां सूक्त आपके नाम है। इस सूक्त में सपत्नी (सौत) के नाश की प्रार्थना की गई है। सूर्य को लक्ष्य कर इसका जप किया जाता है।

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्य भवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि असपत्ना किलाभुवम् ।।

अर्थ- हे हविर्दत्त देवताओं, आपकी कृपा से इंद्रसमान जगद्विख्यात पति मुझे मिला है, मैं आज सपत्नी (सौत) की पीडा से मुक्त हुई हूं।

शठकोप यति (शठकोपाचार्य) - दक्षिण भारत के अहोबिल मठ के सप्तम आचार्य। मूल नाम तिरुमल्ल। 'कवि-तार्किक-कण्ठीरव' की उपाधि से विभूषित। कवि वाहिनीपति द्वारा प्रशंसित। विजयनगर के रंगराज (1575-1598) के समकालीन। रचना- वासंतिका-परिणय नामक नाटक।

शठकोपाचार्य - वैष्णवों के श्री - संप्रदाय के प्रधान आलवार। श्रीराम के प्रति मधुर भावना से युक्त 'सहस्र-गीति' नामक रस-भावात्मक ग्रंथ के रचयिता। आपने अपने सहस्र- गीति ग्रंथ में भगवान् राम की माधुर्यमयी प्रार्थना की है। राम के प्रति दक्षिण के आलवारों की मधुर भावना का परिचय आपके इस ग्रंथ से होता है। आप 'शठकोप मुनि' के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

शठगोप रामानुज - ई. 19 वीं शती। रचनाएं- कवि-हृदयरंजिनी और वेदगिरिवर्णन।

शतप्रभेदन वैरूप - विरूप के पुत्र। ऋग्वेद में आपका उल्लेख नहीं किन्तु ऋग्वेद के दसवें मंडल के 113 वें सूक्त के द्रष्टा। प्रस्तुत सूक्त इंद्रस्तुति पर है।

शतानंद - 11 वीं सदी। एक प्रसिद्ध वैष्णव ज्योतिष-ग्रथकार। जगन्नाथपुरी में निवास। वराहमिहिर के सूर्यसिद्धान्त के आधार पर आपने भास्वतीकरण नामक करणग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में क्षेपक और ग्रहगति के गुणक-भाजक शतांश पद्धति से दिये गये हैं जो दशांशपद्धति से मिलती जुलती है।

यह ग्रंथ तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुटतिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिपात्र, चद्रग्रहण, सूर्यग्रहण एवं परिलेख नामक आठ अधिकारों में विभाजित है। मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत नामक ग्रथ में भी इसकी चर्चा है। यह लोकप्रिय ग्रथ रहा है। इसके सभी टीकाकार उत्तर-भारत के ही हैं।

शत्रुघ्न (मिश्र) - ई 15 वीं शती। मन्त्रार्थ-दीपिका नामक ग्रथ के रचयिता। ग्रंथकार के कथनानुसार यह टीकाग्रंथ उवटाचार्य कृत यजुर्वेदभाष्य, गुणविष्णुकृत छन्दोगमन्त्रभाष्य, हलायुध का ब्राह्मणसर्वस्व और गौरधर की वेदविलासिनी टीका को देखकर हुआ है। स्नानमन्त्र, सन्ध्यामन्त्र, देवार्चनमन्त्र, श्राद्धमन्त्र, षडगशतरुद्र, विवाहादि मन्त्र आदि पर यह सरल रूप से सविस्तर व्याख्यान है।

शबरस्वामी - ईसापूर्व 3 री सदी। मीमांसासूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार। आपका जीवनचरित उपलब्ध नहीं। कुछ लोग आपको तामिलनाडु के मानते हैं तो कुछ उत्तरभारत के। डा सपूर्णानद का मत है कि आपका जन्म तमिलनाडु का एव कार्यक्षेत्र बिहार रहा।

शबरस्वामी का वास्तव नाम आदित्य था। वे राजा थे। चार वर्ण की चार कन्याओं से आपने विवाह किया था। आप ब्राह्मण रहे होंगे क्यों कि उस काल में ब्राह्मणों को चारों वर्णो की स्त्रियां करने का अधिकार था। ब्राह्मण स्त्री से हुए पुत्र थे वराहमिहिर, क्षत्रिय से भर्तृहरि एवं विक्रम, वैश्य से हरचंद वैद्य एव कुशलशंकु तथा शूद्र से अमर। दंतकथा के अनुसार वे जैनियों के भय से शबर का वेश धारण करते थे, अत शबरस्वामी कहलाये। आपने जैमिनी के मीमासासूत्र पर भाष्य लिखा। इसे 'शाबर-भाष्य' कहते हैं। जैमिनि के सूत्रों पर लिखा गया यह पहला ग्रंथ है। आप प्रगत विचारों के थे। वेद एवं यज्ञ के प्रति अंधश्रद्धा दूर कर उन्हें उपयुक्तवाद के क्षेत्र में लाकर रखा। उनका सारा विवेचन तर्काधिष्ठित है।

वेद का प्रामाण्य अबाधित रखने का आपने अपने भाष्य में प्रयत्न किया है। आपने ईश्वर के स्थान पर 'अपूर्व' को ही मान्य किया।

शबरस्वामी के पूर्व-मीमासा की स्वतंत्र दार्शनिक विचारधारा नहीं थी। बौद्धों का भी जोर था। उस कठिन समय में वेदों की रक्षा और प्रामाण्य अबाधित रखने का कार्य आपने किया।

शरणदेव - बौद्ध-मतावलम्बी। समय-ई 13 वीं शती। अष्टाध्यायी की दुर्घटवृत्ति के लेखक। संस्कृत भाषा के जो पद व्याकरण से साधारणतया सिद्ध नहीं होते उनका साधुत्व बताने का प्रयास इस ग्रथ में है और यही उसका वैशिष्ट्य है। श्रीसर्वरक्षित द्वारा इनके ग्रंथ का संक्षेप तथा प्रतिसस्करण हुआ। यह ग्रंथ उपलब्ध है। समय-वि स 1230।

शरफोजी (द्वितीय) - तजौर के शासक महाराज। शासन-काल 1800 ई. से 1832 ई तक। कुमारसंभव-चम्पू, स्मृति-सार-समुच्चय, स्मृतिसंग्रह व मुद्राराक्षस-छाया नामक 4 ग्रथों के प्रणेता। इन ग्रथों में से "कुमारसंभवचम्पू" का प्रकाशन वाणी विलास प्रेस श्रीरगम् से 1939 ई में हो चुका है।

शर्ववर्मा - कातत्र व्याकरण के कर्ता। भृगुकच्छ (भडोच-गुजरात) निवासी। हाल सातवाहन ने अपनी गाथा सप्तशती की पुष्पिका में इन्हें "धीसखा" यानी विद्वत्ता के कारण हुआ मित्र कहा है। कहते हैं कि कार्तिकेय की आराधना कर शर्ववर्मा ने सरल व्याकरण प्राप्त किया और हाल सातवाहन को सस्कृत 6 माह में सिखा दी। कार्तिकेय के वाहन कलापक (मोर) पर, इसे (व्याकरण को) कालापक भी कहा गया है। राजा ने गुरुदक्षिणा के रूप में भृगुकच्छ (भडोच) राज्य इन्हें दान में दिया था।

शशकर्ण काण्व - कण्वकुल के सूक्तद्रष्टा। ऋग्वेद के आठवें मंडल का नौवा सूक्त आपके नाम पर है। इसमें अश्विनीकुमारों की स्तुति है।

शांडिल्य (धर्मसूत्रकार) - आपस्तम्ब श्रौत के रुद्रदत्तकृत भाष्य में (9-11-12) शाण्डिल्य गृह्य उद्धृत हैं। वह सामशाखा का गृह्य है ऐसा कुछ विद्वानों का तर्क है। शाण्डिल्य सूत्रकार याजुष थे ऐसा भी कुछ विद्वानों का अनुमान है।

शांडिल्य - बृहदारण्यक उपनिषद् में शांडिल्य के गुरु वात्स्य बताये गये हैं। यज्ञविधि में आप कुशल थे। शतपथ ब्राह्मण के 6 से 10 वें काण्ड मे शाण्डिल्य के मतानुसार वेदी का विचार किया गया है। गोत्र-सूची में आपका नाम है तथा शांडिल्य, असित, एवं देवल इस गोत्र के प्रवर हैं। शांडिल्यविद्या नामक तत्त्वज्ञानविषयक विचार आपके नाम पर है। आपके अनुसार आत्मा में विलीन हो जाना जीवन का साध्य है। शांडिल्यस्मृति, शाडिल्यतत्त्वदीपिका एव भक्तिमार्ग का शांडिल्यसूत्र नामक ग्रंथ आपकी रचनाएं हैं।

शातलूरी कृष्णसूरि - रचना-अलंकारमीमांसा। इस ग्रंथ में रसगंगाधर के मतों का परामर्श लेने का प्रयास लेखक ने किया है। अन्य रचना- साहित्यकल्पलतिका।

शांतिदेव - महायान सम्प्रदाय के प्रसिद्ध दार्शनिक। तारनाथ के अनुसार इनका जन्म सौराष्ट्र (गुजरात) के राज-परिवार में हुआ। पिता-कल्याणवर्मा। तारादेवी की प्रेरणा से राज्यत्याग तथा बौद्ध मत का स्वीकार। बोधिसत्व मंजुश्री की कृपा से दीक्षा प्राप्त। मन्त्रतन्त्रों के पूर्ण ज्ञाता। कुछ समय तक महाराज पंचसिंहल के अमात्य। नालन्दा के प्रधान विद्वान् जयदेव के शिष्य। पीठस्थविर के पद पर नियुक्त। रचनाएं- (1) शिक्षा-समुच्चय, (2) सूत्र-समुच्चय और (3) बोधिचर्यावतार। इन रचनाओं का विस्तृत वर्णन बुस्तोन ने किया है।

शांतिरक्षित - ई 8 वीं सदी। बिहार के भागलपुर जिले में जन्म। प्रथम वैदिक ग्रंथों का अध्ययन किया। बाद में बौद्ध मत के प्रति आकर्षित होकर नालंदा गये। आचार्य ज्ञानगर्भ से भिक्षुदीक्षा ली। नालंदा महाविहार के प्रधान पीठस्थविर बने। 75 वर्ष की आयु तक आप नालदा में ही रहे। तिब्बत के राजा का निमंत्रण पाकर, आप अनेक कष्ट सहन कर तिब्बत पहुंचे। राजा के अनुरोध पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उन्हीं दिनों तिब्बत में महामारी फैली। भूत-प्रेतपूजक तिब्बती शांतिरक्षित को ही कारण मानने लगे। अत उन्हें तिब्बत छोडना पडा। वहा से वे नेपाल गये। दो वर्ष पश्चात् वे पुन तिब्बत गये। इस बार पद्मसभव नामक आचार्य भी उनके साथ थे। वे तांत्रिक थे। बाद में अनेक विद्वान् नालदा से पहुंचे। बौद्ध ग्रंथों का तिब्बती में अनुवाद किया। सन् 749 में तिब्बत में "सम्मे विहार" की स्थापना की। आप स्वतत्र शून्यवादी आचार्य थे।

"तत्त्वसंग्रह" नामक पाच हजार श्लोकों का स्वतत्र दार्शनिक ग्रंथ आपने लिखा। सौ वर्ष की आयु में दुर्घटना में आपकी मृत्यु हुई (762 ई) सम्मे (साम्य) विहार के पास एक स्तूप में आपकी अस्थियां रखी गयी थी। स्तूप गिरने के बाद पात्र, चीवर एव कपाल साम्ये विहार में रखी गयीं।

शांतिसागर गणि - तपागच्छीय धर्मसागर गणि के प्रशिष्य एवं श्रुतसागर गणि के शिष्य। आपने कल्पसूत्र पर कल्पकौमुदी नामक शब्दार्थ प्रधान वृत्ति लिखी। (वि स. 1707)। ग्रथमान 3707 श्लोक प्रमाण)। इसमें तपागच्छप्रवर्तक की गणना आपने की है।

शांतिसूरि - समय- ई विक्रम की 12 वीं शती। जन्म- राधनपुर (गुजरात) के पास उण-उन्नतायु नामक गाव में। पिता-धनदेव। माता-धनश्री। बाल्यावस्था का नाम भीम। थारापद-गच्छिय-विजयसिहसूरि द्वारा दीक्षित। मालव प्रदेश मे भोजराज के सभापण्डितों को पराजित करने पर "वादिवेताल" की उपाधि से विभूषित। कवि धनपाल के मित्र। प्रधानशिष्य-मुनिचन्द्र। ग्रंथ-उत्तराध्ययन टीका। (शिष्यहिता वृत्ति) तथा तिलकमंजरी-टिप्पण। टीका में मूल सूत्र और वृत्ति दोनों का विषद विवेचन प्राकृत कथाओं के साथ किया है।

शाकटायन - (1) समय- ईसापूर्व एक हजार वर्ष। एक प्राचीन वैयाकरण। कुछ लोग इन्हें शकट-पुत्र मानते हैं, तो पाणिनि को शकट-पौत्र। पाणिनि के अनुसार आप काण्व-वंश के थे। ऋग्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद के प्रातिशाख्य एवं यास्क के निरुक्त में आपका उल्लेख आता है। पाणिनि आपको श्रेष्ठ मानते ही हैं। (अष्टा 1-4-86-87)। केशव नामक ग्रंथकार ने आपका गौरव "आदिशाब्दिक" कह कर दिया है।

व्याकरण का उणादिसूत्र आपकी रचना है। आपके अनुसार सारे शब्द धातुसाधित हैं। बृहद्देवता-ग्रथ में दैवतशास्त्र विषयक कुछ उदाहरण हैं। शाकटायन ने संभवत इस पर ग्रथ लिखा होगा। शाकटायन-स्मृति एव शाकटायन-व्याकरण भी आपकी रचनाए हैं, पर एक भी उपलब्ध नहीं।

(2) सन् 9 का उत्तरार्ध। सुप्रसिद्ध जैन वैयाकरण। "शाकटायन-प्रक्रियासग्रह" नामक ग्रथ की रचना कर उस पर स्वय ही "अमोघवृत्ति" नामक टीका लिखी।

शाकपूणि - यास्कप्रणीत निरुक्त मे उद्धृत एक निरुक्तकार। आत्मानन्द-प्रणीत "अम्य वामीय भाष्य" मे शाकपूणि निरुक्तकार का बार-बार उल्लेख होने के कारण शाकपूणिकृत निरुक्त उपलब्ध हो ऐसी सभावना है। अन्य निरुक्तकारों की भाति शाकपूणि केवल निरुक्तकार ही नही, अपि तु निघण्टुकार भी थे। इनके निघण्टु का भी प्रमाण रूप से प्राचीन ग्रथों में निर्देश मिलता है। शाकपूणि का अन्य नाम था रथीतर। शाकपूणि (रथीतर) ने तीन ऋक्सहिताओं का प्रवचन किया और फिर चौथा निरुक्त बनाया ऐसा पुराणो में निर्देश है। अर्थात् शाकपूणि ऋग्भाष्यकार, निरुक्तकार और निघण्टुकार थे। जैसे यास्काचार्य ने निरुक्त के अतिरिक्त याजुष-सर्वानुक्रमणि लिखी उसी तरह शाकपूणि आचार्य ने तैत्तिरीय सहिता से सबधित और कोई ग्रथ लिखा हो ऐसी सभावना है। शाकपूणि, पदकार शाकल्य के काल के समीप एव शाखा-प्रवर्तक होने से भी महाभारत काल के समीप ही हुए ऐसा प भगवद्दत्त का मत है।

शाकल्य - ऋग्वेद के पदपाठकार। इनके अतिरिक्त दूसरे देवमित्र शाकल्य का पुराणों में वर्णन मिलता है। उन्होंने पाच सहिताए बनाई ऐसा पुराणो मे वर्णन है। पदपाठकार शाकल्य और पच-सहिताकार शाकल्य एक ही हैं, भिन्न नहीं, ऐसा विद्वानो का निर्णय है। शाकल्य महाभारतकालीन व्यक्ति हैं। जनक-सभा मे याज्ञवल्क्य के साथ इनका विवाद हुआ था। शाकल्य का पदपाठ, निरुक्तकार यास्क को कई स्थानों पर मान्य नहीं था। माध्यदिन सहिता का पदपाठ भी शाकल्यकृत हो ऐसी सभावना है।

शाट्यायनि - मूल नाम शग पर शाट्य के वशज होने से शाट्यायनि या शाट्यायन कहे गये। सामविधान ब्राह्मण में बादरायण आपके गुरु बताये गये हैं। शाट्यायन ब्राह्मण,

शाट्यायन गृह्यसूत्र एवं जैमिनीय उपनिषद्-ब्राह्मण आपकी रचनाएं मानी जाती है।

शातातप - याज्ञवल्क्य एव पाराशर के अनुसार एक प्रमुख धर्मशास्त्रकार। आपका स्मृतिग्रंथ गद्य-पद्यात्मक है। ग्रंथ में छ अध्याय और 231 श्लोक हैं। प्रायश्चित्त, विवाह, वैश्वदेव, श्राद्ध, अशौच आदि विषय इस स्मृति में है।

शारदातनय - ई 13 वीं सदी का मध्य। नाट्य्-शास्त्र एव रससिद्धान्त का विवेचन करने वाला भावप्रकाशन नामक ग्रंथ आपकी रचना है। यह दस अधिकारणों में विभाजित है। इसमें भाव, रस, शब्दार्थ-संबध, रूपक इन चार विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

शार्ङ्गदेव - ई. 13 वी सदी। इनका जन्म काश्मीर के सपन्न परिवार में हुआ था। इनके पितामह भास्कर दक्षिण में आए। पिता-सोड्ढल, देवगिरि के यादव-राज्य-संस्थापक राजा सिहल (1132-1169 ई.) के लेखापाल थे। सगीतशास्त्रज्ञ। देवगिरि के सिंघण यादव के दरबार मे गायक। "सगीत-रत्नाकर" ग्रंथ की आपने रचना की। इसमें स्वरगत, रागविवेक, प्रकीर्णक, प्रबध, ताल, वाद्य, नृत्य पर कुल सात अध्याय हैं। भरत, मतग, सोमेश्वर, अभिनवगुप्त आदि प्राचीन आचार्यो के मतों का विवेचन भी शार्ङ्गदेव ने अपने "सगीत-रत्नाकर" में किया है।

शार्ङ्गदेव ने कहा है कि उनमें सरस्वती निवास करती है। वे स्वय को "निःशक" कहते है। इस नाम से उन्होंने एक वीणा का आविष्कार किया है।

शार्ङ्गधर - ई 11 वों सदी। पिता-दामोदराचार्य। वैद्यकशास्त्र पर शार्ङ्गधरसहिता नामक ग्रथ लिखा (इसके 3 खंड और बत्तीस अध्याय हैं)।

प्रथम खंड में औषधियों के गुणधर्म, उनके परिणाम, निदान एव चिकित्सा, शरीर-शास्त्र, पदार्थविज्ञानशास्त्र, गर्भशास्त्र आदि विषय हैं। दूसरे विभाग में आसव, कषाय, रसायन, मादक पेय की चर्चा है। अतिम खड में रोग-निवारण सबधी उपचार हैं। चरक, सुश्रुत एव माधव से भी अधिक चर्चा आपके ग्रथ में रोगों के बारे में है, नाडी-परीक्षा के बारे में विपुल जानकारी है। उमेशचंद्र दत्त के अनुसार भस्मीकरण आदि पर लिखने वाले आप सबसे प्राचीन ग्रंथकार हैं। रसायन तैयार करने में भी आप कुशल थे। सोना, चांदी, लोह आदि निरिन्द्रिय धातुओं के भस्मीकरण की पद्धति आपने ही ढूढ निकाली।

(2) ई. 12 वीं सदी। राजस्थान के हम्मीरदेव के दरबार में थे। हम्मीरविजय और सुभाषितशार्ङ्गधर नामक दो ग्रथों की रचना की। प्रथम ग्रंथ लोकभाषा में एवं द्वितीय संस्कृत में (4689 पद्यों में) है।

शर्ववर्मा - ई पू. 405 वर्ष। इन्होंने कातन्त्र धातुपाठ का संक्षिप्त धातुपाठ किया था। उसका तिब्बती अनुवाद जर्मन विद्वान् लिबिश ने प्रकाशित किया है। शर्ववर्मा ने कातन्त्र व्याकरण और धातुपाठ पर भी वृत्ति लिखी थी जिसमें चुरादि धातुओं में क्रियाफल स्वगामी और परगामी होने पर भी आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों इष्ट माना गया है। पाणिनि ने क्रियाफल कर्तृगामी होने पर चुरादि धातु का आत्मनेपद और अकर्तृगामी होने पर परस्मैपद इष्ट माना है।

शालिकनाथ मिश्र - ई 9 वीं सदी के पूर्व। गौड देश में जन्म। प्रभाकर परपरा के श्रेष्ठ मीमासक ग्रथकार। प्रभाकर के लघ्वी एव बृहती दोनों ग्रंथों पर दीपशिखा एव ऋजुविमला नामक व्याख्या लिखी है। आपका तीसरा ग्रथ प्रकरणपंचिका। यह सर्वाधिक लोकप्रिय है। आपको ब्राह्मणत्वादि जातिया मान्य नहीं थी।

शालिग्राम द्विवेदी - ई 20 वीं शती। मुबई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत म वि के छात्र। व्याकरणशास्त्री। काव्यतीर्थ नागेश पण्डित तथा अच्युत पाध्ये के साथ "भ्रान्त-भारत" नामक नाटक की रचना की।

शालिग्राम शास्त्री - लखनऊवासी। आशुकवि। सन् 1923 में सपन्न अ भा. सस्कृत परिषद में प. मदनमोहन मालवीय के प्रश्न के उत्तर में आधुनिक शिक्षा पद्धति का दोषदर्शन करनेवाली रचना- "पाश्चात्य-शिक्षादूषणानि। इस उत्तर से प्रचुर विनोद-निर्मिति। सन् 1931 में अ भा सस्कृत कविसम्मेलन में पद्यात्मक अध्यक्षीय भाषण पढा।

शालिहोत्र - कपिल ऋषि के पुत्र। आप अश्वविद्या के आचार्य थे। अश्वायुर्वेद पर शालिहोत्रतत्र अथवा शाल्यहोत्र नामक ग्रथ आपने लिखा है। अग्निपुराण के अनुसार (292 44) आपने अपने सुश्रुत नामक पुत्र को अश्वायुर्वेद का ज्ञान कराया। शालिहोत्र ग्रंथ का अनुवाद बाद में 14 वीं सदी में अरबी में हुआ। लंदन की इंडिया हाऊस लायब्ररी में शाल्यहोत्र की दो प्रतियां सुरक्षित हैं। महाभारत के अनुसार शालिहोत्र एक ऋषि भी थे। महर्षि व्यास कुछ काल तक आपके आश्रम में थे। पांडव भी आपसे मिलने वहा गये थे। शालिहोत्र राणायनी-शाखा के आचार्य भी थे। सामवेद पर आपने छह संहिताएं लिखीं। आपका दूसरा नाम लांगली था।

शास भारद्वाज - ऋग्वेद के दसवें मंडल के 152 वें सूक्त के द्रष्टा। प्रस्तुत सूक्त की प्रथम ऋचा में आपका उल्लेख भी है। इंद्र इस सूक्त के देवता हैं और उनकी स्तुति इसका विषय। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार, युद्ध के लिये निकले राजा का उत्साह बढाने हेतु इस सूक्त का पाठ किया जाता है।

शास्त्राचार्य आनन्दताण्डव दीक्षित और सोमशेखर दीक्षित - इन दो पंडितों ने नटसहस्रम् नामक अति प्राचीन नामस्तोत्र के भाष्य की रचना की।

शास्त्री एच. वी. - ई 20 वीं शती। बगलौर-निवासी। "श्रीकृष्ण-भिक्षा" नामक रूपक के प्रणेता।

पी.बी.एस. शास्त्री - रचनाएं- (1) मेकडॉनेल की हिस्ट्री

आफ लिटरेचर के वैदिक वाड्मय प्रकरण का सम्कृत अनुवाद। (2) सरस्वती महल (तंजौर) के हस्तलिखित ग्रथों का 19 खंडों में प्रकाशन।

शाहजी महाराज - जन्म-ई 1672 में तजौर के राजा। शासनकाल-1684-1711 ई। अनेक कवियों के आश्रयदाता। छत्रपति शिवाजी महाराज के सौतेले भाई व्यकोजी (एकोजी) के पुत्र।

सस्कृत कृतिया - चन्द्रशेखर-विलास, शृगारमजरी तथा पचभाषा-विलास नामक यक्षगान।

हिन्दी कृतिया - विश्वातीतविलास तथा राधा-वशीधर विलास नामक यक्षगान। शब्द-रत्न-समन्वय कोश, शब्दार्थ-सग्रह। आपने तेलगु और मराठी मे भी कतिपय रचनाए की हैं।

शिंगभूपाल - ई 14 वीं सदी। सगीत व नाट्यशास्त्र के आचार्य। आध्र मंडलाधिपति। विंध्याचल से श्रीशैल तक के प्रदेश के अधिपति। राजाचल राजधानी। पिता का नाम अनत या अन्नपोत। अन्वेषकों के अनुसार शिगभूपाल और सिगम नायडु, एक ही व्यक्ति के दो नाम है।

"सगीत-रत्नाकर" पर आपने "सगीत-सुधाकर" नामक टीका लिखी है। नामशेष हो चुके अनेक प्राचीन ग्रथकारों के अवतरण इसमें मिलते हैं। नाट्यशास्त्र के अनेक उपादेय विषयो की चर्चा करने वाला आपका यह ग्रथ अनुपम है। रसार्णवसुधाकर, रजकोल्लास, रसिकोल्लास एव भावोल्लास नामक तीन विलासो में यह ग्रथ विभाजित है।

शिग्रैयंगार - रचनाए - कृष्णकथारहस्यम्, श्रीकृष्णराजचम्पू, यदुशैलचम्पू, चित्रकूटोद्यान (यमक काव्य) आदि।

शितिकण्ठ वाचस्पति (म.म) - ई 20 वी शती। कृति-अलङ्कार-दर्पण (काव्यशास्त्रीय ग्रथ)।

शिव - अठारहवीं शती। यमुनातट पर व्रजप्रदेश मे रानेर नगर के निवासी। "विवेकचन्द्रोदय" नामक नाटक के रचयिता।

शिवकुमार शास्त्री - काशी-निवासी। जन्म ई 1848 मे, मृत्यु 1919 मे। माता-मतिराणी, पिता-रामसेवक मिश्र। इन्होंने दरभगा राजवश का वर्णन, अपने काव्य "लक्ष्मीधरप्रताप" मे किया है। इनकी अन्य काव्य-कृति "यतीन्द्रजीवन-चरितम्" मे, योगी भास्करानन्द का चरित्र वर्णित है।

शिवदत्त त्रिपाठी (पं) - 20 ई वी शती का पूर्वार्ध। पुष्कर (अजमेर) के निवासी। रचनाए- 1) श्रीकृष्णचरित, 2) गद्यभारत (2 भाग), 3) गद्यरामायण, 4) आस्तिकस्मृति, 5) दुर्वासस्तृप्तिस्वीकारनाटक, 6) श्रीदुर्गाचरित्र, 7) श्रीसामामृतसिन्धु, 8) सूर्यशतक, 9) विवाहदिग्दर्शन, 10) वृषभदेवचरित, 11) दाधीचारिगजांकुश, 12) नीतिवाक्यरत्नावली, 13) गोलाभदर्शन, 14) हिन्दूहितवार्ता इत्यादि।

शिव दीक्षित - महाभारत की नीलकण्ठी टीकाकार के वशज। ई 18 वीं शती। रचना- धर्म-तत्त्वप्रकाश।

शिवनारायण दास - ई 13 वीं शती। उत्कल के राजा गजपति नरसिह देव का आश्रय प्राप्त। नन्दिघोष-विजय (कमलाविलास) नामक पाच अकी नाटक के प्रणेता।

शिवनारायण दास (सरस्वतीकण्ठाभरण) - ई 17 वीं शती। बगाल के निवासी। पिता-दुर्गादास। काव्यप्रकाश की "दीपिका" नामक टीका के कर्ता।

शिवप्रसाद भारद्वाज - ई 20 वी शती। एम ए, एम ओ एल। विश्वेश्वरानद सस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर मे प्राध्यापक।

कृतिया - साक्षात्कार (भाण), अजेय भारत (नभोनाट्य), केसरी-चक्रम (ध्वनिरूपक) तथा कतिपय पद्य व निबन्ध रचनाएं।

शिवराम कवि - ई 19-20 वी शती। इन्होंने चार काव्यो मे रामचरित्र प्रस्तुत किया है- (1) हनुमत्काव्य, (2) हनूमर्दविजय, (3) रावणवध और (4) सुरेन्द्रचरितकाव्य (इसमें अहिल्योद्धार की कथा वर्णित है)।

शिवराम, पाण्डे - प्रयाग-निवासी। रचनाए- एडवर्डशोकप्रकाशन (ई 1910)। एडवर्ड-राज्याभिषेकदरबारम् (1903 ई), जार्जराज्याभिषेक (ई 1911 और जार्जाभिषेकदरबार।

शिवराम शास्त्री - शतावधानी विद्वान्। रचना-दिल्लीप्रभा (सन् 1911 के दिल्ली-दरबार का काव्यमय वर्णन)।

शिवरामेन्द्र सरस्वती - "महाभाष्य-रत्नाकर" के लेखक। औफ्रेक्ट द्वारा उल्लिखित। अन्य रचनाए- सिद्धान्त-कौमुदी-रत्नाकर (टीका ग्रथ)।

शिवशरण शर्मा (डा) - पिता-सत्यनारायण द्विवेदी। माता-सौभाग्यवती। कान्यकुब्ज ब्राह्मण। जन्मस्थल-भैरमपुर, जिला-फतेहपुर, उत्तरप्रदेश। जन्म-सन् 1929 मे। वाराणसी तथा प्रयाग मे अध्ययन। शासकीय स्नातक महाविद्यालय, दतिया (मध्यप्रदेश) में सस्कृत-प्राध्यापक। श्रीमद्भागवतानुशीलन, कालिदास और उनका मेघदूत ये दो हिंदी प्रबध होने के बाद आधुनिक विषयो पर जागरणम् नामक सस्कृत गीति काव्यों का आपका सग्रह, सन् 1963 मे प्रकाशित हुआ है।

शिवसागर त्रिपाठी - ई 20 वी शती। राजस्थान वि वि जयपुर मे सस्कृत के व्याख्याता। कृतिया-गान्धी-गौरव, प्राणाहुति (एकाकी) आदि।

शिवस्वामी - ई 9 वी सदी। एक सस्कृत कवि। काश्मीर में निवास। पिता-भट्टार्य स्वामी शैवमतानुयायी थे। चद्रमित्र नामक बौद्ध पंडित की प्रेरणा से अवदान कथा पर आधारित "कप्फिणाभ्युदय" नामक महाकाव्य की रचना की।

इनका "प्रोक्तव्याकरण" उपलब्ध नही है। इन्होंने अपने व्याकरण पर वृत्ति भी लिखी है, धातुपाठ का भी प्रवचन किया है। ये शिवयोगी से भिन्न व्यक्ति हैं। शिवस्वामी बौद्ध हैं। समय वि स की 9 वीं शती। शिवयोगी वैदिक धर्मावलम्बी,

वि.सं. की 13 वी शती के हैं। अन्य रचनाएं- क्षीरतरंगिणी, माधवीया धातुवृत्ति, (कातन्त्रगणधातुवृत्ति तथा गणरत्न-महोदधि मे उल्लिखित)। वर्धमान की दृष्टि में शिवस्वामी पाणिनि के समान महान् है।

शिवाजी महाराज भोसले - तंजौर के महाराज (1883-1855 ई.)। "इन्दुमति-परिणय" नामक यक्षगानात्मक नाटक के रचयिता।

शिवादित्य मिश्र - ई. 10 वीं सदी। आपने अपने सप्तपदार्थी ग्रंथ में वैशेषिक सिद्धान्त का नैयायिक सिद्धान्त से समन्वय किया है। "लक्षणमाला" नामक आपका एक और ग्रंथ है।

शिवानंदनाथ - ई. 17 या 18 वीं सदी। मूल नाम काशीनाथ भट्ट। वाराणसी में निवास। शिव और शक्ति के उपासक। दक्षिणाचार के पुरस्कर्ता। वामाचार के कट्टर विरोधक। तंत्र और पुराणों पर अन्यान्य साठ ग्रंथों की रचना की।

शिशुमायण - पितामह-मायणसेट्टि। पिता-वोमसेट्टि। माता-नेमांबिका। जन्म-स्थान-होयसल देश के अन्तर्गत नयनापुर। गुरु-काणूरगण के भानुमुनि। समय-ई. 13 वीं शती। ग्रंथ-त्रिपुरदहनसागत्य तथा अंजनाचरित।

शीलांक - अपरनाम-शीलाचार्य एवं तत्त्वादित्य। कुशल टीकाकार। समय-ई. नवीं-दसवीं शताब्दी। ग्रंथ-प्रथम 9 आगमों पर टीकाएं (जिनमे आज दो टीकाएं ही उपलब्ध है- (1) आचारांग टीका और (2) सूत्रकृतांग टीका)। इन टीकाओं की लेखनकार्य मे शीलांक को विद्वानो का सहयोग मिला था। सांस्कृतिक सामग्री से समन्वित इन टीकाओ को विवरण संज्ञा दी गई है। ये विवरण मूल सूत्र और नियुक्ति पर संस्कृत भाषा में हैं। शब्दार्थ के साथ विषय का विस्तृत विवेचन इनमें है। संस्कृत-प्राकृत के उद्धरणों से वक्तव्य की पुष्टि की है।

शीलांक - अपरनाम-सीलक। निर्वृत्तिकुल के आचार्य मानदेव सूरि के शिष्य। आगम टीकाकार शीलांकाचार्य से भिन्न। समकालीन शीलाचार्य (अपरनाम तत्त्वादित्य) से भी भिन्न। ग्रंथ- 1) चउपन्न महापुरिस चरियं (संस्कृत-प्राकृत मिश्रित भाषाओं में लिखित गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ)। 10800 श्लोकपरिमाण। पउमचरियं। विमलसूरि तथा वाल्मीकि रामायण से प्रभावित, 2) विबुधानन्द नाटक, 3) देशीनाम-माला। समय-चउपन्न महापुरिसचरियं की रचना वि.स. 925 में हुई।

शुकदेव - ई. 19 वीं सदी का पूर्वार्ध। भागवत के द्वैताद्वैती व्याख्याकार। सिद्धान्त-प्रदीप नामक भागवत की टीका के लेखक। सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार मथुरा के "परशुराम-द्वार" नामक स्थान पर निवास। गुरु-सर्वेश्वरदास, जिनकी वंदना शुकदेव ने अपने सिद्धान्त-प्रदीप के मंगलाचरण में की है।

"सर्वेश्वर" पत्र के अनुसार विक्रम सं. 1897 (= 1840 ई.) में सलेमाबाद के जगद्गुरु-पीठ पर आसीन होने के लिये इनसे प्रार्थना की गई थी, किन्तु नितांत विरक्त होने के कारण इन्होंने यह पद स्वीकार नहीं किया। शुकदेव ने बडी निष्ठा से भागवत की व्याख्या अपने सप्रदायानुसार की है। इस टीका-संपत्ति के लिये निंबार्क-सम्प्रदाय इनका सदैव ऋणी रहेगा।

शुनहोत्र भारद्वाज - भरद्वाज के पुत्र। पुत्र का नाम गृत्समद। ऋग्वेद के छठे मंडल के तैंतीस और चौंतीसवें सूक्त के द्रष्टा। इंद्रस्तुति इनका विषय है।

शुभंकर - ई. 15 वीं शती। बंगाल के निवासी। "संगीत दामोदर" के कर्ता। यह रचना राजा दामोदर को अर्पित की गई है। इनकी दूसरी रचना है "नारदीय-शिक्षा" की टीका।

शुभचन्द्र - शुभचन्द्र नाम के अनेक आचार्य हुए है। प्रस्तुत शुभचन्द्र, ई. 11-12 वी शती मे हुए। कहा जाता है, शुभचन्द्र और भर्तृहरि उज्जयिनी के राजा सिन्धुल के पुत्र थे। दोनों बडे शक्तिशाली थे। उनकी शक्ति को देखकर मुंज राजा ने उन्हें नामशेष करने का षडयन्त्र किया। इसकी जानकारी होने पर दोनो भाइयो ने सन्यास ले लिया। शुभचन्द्र दिगम्बर जैन मुनि हुए और भर्तृहरि कौल तपस्वी। भर्तृहरि ने कुछ विद्याएं सीखीं जिन्हें शुभचन्द्र को भी बताया। पर शुभचन्द्र ने समझाया- "यदि यही करना था, तो सन्यासी क्यो हुए।" भर्तृहरि को समझाने के लिए ही शुभचन्द्र ने "ज्ञानार्णव" की रचना की। यह ग्रंथ महाकाव्य के समान सर्गो में विभक्त है। सर्ग 42, और श्लोक 2107 है। इनमे बारह भावना, पंच महाव्रत, चार ध्यान आदि का विस्तृत विवेचन है। इस ग्रंथ पर पूज्यपाद के समाधितंत्र और इष्टोपदेश का प्रभाव अधिक है। अमृतचन्द्र, अमितगति, जिनसेन हेमचंद्र आदि से भी यह प्रभावित है।

शुभचन्द्र - भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य। जीवनकाल-वि.स. 1535-1620। बहुभाषाविज्ञ। कार्यक्षेत्र-गुजरात और राजस्थान। रचनाएं- चन्द्रप्रभचरित, करकण्डुचरित, कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, चन्दनाचरित, जीवन्धरचरित, पाण्डवपुराण, श्रेणिकचरित, सज्जनचित्तवल्लभ, पार्श्वनाथ काव्यपंजिका, प्राकृतलक्षण, अध्यात्मतरंगिणी, अम्बिकाकल्प, अष्टाह्निकी कथा, कर्मदहनपूजा, चन्दनषष्ठीव्रत पूजा, गणधरवलय पूजा, चारित्र्यशुद्धिविधान, पंचकल्याण पूजा, पल्लीव्रतोद्यान, तेरह द्वीपपूजा, पुष्पाजलिव्रतपूजा, सार्द्धद्वयद्वीप पूजा और सिद्धचक्रपूजा। इनके अतिरिक्त शुभचंद्र के कुछ हिन्दी ग्रंथ भी प्राप्य हैं।

शुभचन्द्र - कर्नाटकवासी। द्रासूरगण के विद्वान। बलात्कारगण के शुभचन्द्र से भिन्न व्यक्तित्व। समय-ई. 14 वीं शती। ग्रंथ- "षट्दर्शन-प्रमाण-प्रमेय-संग्रह"।

शूद्रक - "मृच्छकटिक" नामक प्रख्यात रूपक के कर्ता। उक्त प्रकरण के एक श्लोक के अनुसार शूद्रक एक महान् क्षत्रिय राजा थे। ऋग्वेद, सामवेद, गणितशास्त्र, ललितकला, तथा हाथियों को प्रशिक्षित करने की विद्या उन्हें ज्ञात थी। अश्वमेध यज्ञ भी आपने किया था। आपकी आयु सौ वर्ष और दस दिन की रही। आखिर स्वयं होकर आपने अग्निप्रवेश किया।

प्राचीन इतिहास-पुराणों में शूद्रक नामक एकाधिक राजा है। कहते हैं कि शूद्रक याने सवत्सर-संस्थापक विक्रमादित्य थे। राजशेखर ने एक शूद्रक का उल्लेख किया है जिनके दरबार में रामिल और सोमिल नामक दो कवि थे और इन दोनों कवियों ने मृच्छकटिक की रचना की। कालिदास के मालविकाग्निमित्र में सौमिल्लक का उल्लेख है। इस आधार पर कालिदासपूर्व काल के राजा होने चाहिये।

कथासरित्सागर में भी एक शूद्रक का उल्लेख है जिन्हें सौ वर्ष की आयु मिली थी। ये शूद्रक हैं आभीर राजा शिवदत्त (सन् 250)। हाल ही में भास कृत नाटक के रूप में दो नाटक मिले हैं। उनमें दरिद्रचारुदत्त नामक चार अक का अपूर्ण नाटक है। इसमें और मृच्छकटिक के पूर्व भाग में बहुत साम्य है। पंडितों का तर्क है कि मृच्छकटिक भास की या अन्य किसी की सम्पूर्ण कृति थी। दरिद्रचारुदत्त, उसी का संक्षेप है।

बाण ने कादबरी में और दडी ने दशकुमारचरित में शूद्रक का उल्लेख किया है। कुछ पडितों ने स्कद-पुराण का आधार लेकर कहा है कि आध्रभृत्य-वश के सस्थापक शिमुक एव शूद्रक एक ही थे। प चद्रबली पाडे के अनुसार शूद्रक ही वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी हैं। अवतिसुदरी-कथासार ग्रंथ मे इद्राणीगुप्त का दूसरा नाम शूद्रक दिया गया है।

इन सारे मतमतातरों से मृच्छकटिक की रचना किसने की इसका निर्णय नहीं हो पाता। पर यह निश्चित है कि वह जो कोई भी हो, दक्षिण भारत का था। इस नाटक मे "कर्नाटकलहप्रयोग" एवं दक्षिण के द्रविड, चोल आदि का उल्लेख है। इस नाटककार को सस्कृत के साथ प्राकृत भाषा का और ज्योतिष एव धर्मशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। वह शिवभक्त और योगाभ्यासी भी था।

कवि के रूप में शूद्रक, भवभूति एव कालिदास की बराबरी के थे।

उदयति हि शशाङ्क कामिनीगण्डपाण्डु
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीप ।
तिमिर-निकरमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति।।

अर्थ- कामिनी के कपाल समान सफेद, ग्रहगण से घिरा, राजमार्ग का दीप चद्रमा उदित हुआ है। घने अन्धकार मे सफेद किरण, रेती के कीचड में दूध की धारा जैसे बरस रहे हैं।

कुछ सुभाषित देखिये -

अल्पक्लेश मरणं दारिद्र्ययमनन्तक दुखम्।

अर्थ- मरने में दुख थोडा सा होता है, तो दारिद्र में दुख समाप्त ही नहीं होता।

पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु।

अर्थ- विश्वास पर ही धरोहर रखी जाती है, मकान की मजबूती पर नहीं।

साहसे श्री प्रतिवसति।

अर्थ- साहस में सपत्ति रहती है।

सस्कृत के सुप्रसिद्ध प्राचीन नाटककारों में कालिदास एवं भास के समान शूद्रक का स्थान अत्युच्च है। उनका मृच्छकटिक नामक नाटक सार्वकालिक लोकाभिरुचि की कृति बन पड़ी है। नाट्यशास्त्र की विहित मर्यादा का उल्लंघन करते हुए शूद्रक ने इस नाटक की रचना की है।

शृंगारशेखर - 14 वीं शती। आन्ध्रवासी। अभिनयभूषण नामक सगीत शास्त्र विषयक ग्रथ के लेखक।

शेवडे, वसन्त, त्र्यम्बक - जन्म- सन् 1918। नागपुर-निवासी। रचना-वृत्तमजरी (वृत्तलक्षणात्मक काव्य)। इसमें भगवतीस्तोत्र के उदाहरण, उसी वृत्त में दिये गये हैं तथा लक्षणनामादि भी दर्शित किये गये है।

इनकी रघुनाथतार्किक-शिरोमणि-चरितम् नामक त्रिसर्गात्मक, 127 श्लोकों की रचना, "सारस्वती सुषमा" (अं. 3-4 व 12) में प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त शुभविजय नामक आपके महाकाव्य को उत्तरप्रदेश अकादमी का 1985 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उत्तर आयुष्य में वाराणसी निवास।

शेवालकर शास्त्री - 20 वीं शती। विदर्भ-निवासी। रचना- "पूर्णानन्दचरितम्"। इसमें ई 19 वीं शती के प्रसिद्ध वैदर्भीय साधु श्रीपूर्णानन्द स्वामी का चरित्र ग्रथित है। (50 अध्यायों मे)। लेखक ने स्वय इस काव्य का मराठी अनुवाद भी किया है। आप कीर्तन कला में निपुण थे।

शेषकृष्ण - ई 16 वीं शती। पिता-नरसिह। काशी में तण्डनवशी राजा गोविन्दचन्द्र का आश्रय प्राप्त। "गोविन्दार्णव" नामक धर्मशास्त्र विषयक ग्रथ की रचना की। काशी में वैयाकरण-परम्परा की स्थापना की, जिसमें आगे चलकर भट्टोजी तथा नागोजी आदि विद्वान् हुए। ज्येष्ठ बन्धु चिन्तामणि ने रुक्मिणीहरण नामक रूपक तथा रसमजरी-परिमल की रचना की। पुत्र वीरेश्वर ने पण्डितराज जगन्नाथ, भट्टोजी तथा अन्नंभट्ट को शास्त्रीय ज्ञान में दीक्षा दी। तत्कालीन काशिराज "गोवर्धनधारी" का आश्रय प्राप्त। उनकी विद्वद्गोष्ठी के सदस्य। कृतियां- क्रियागोपन-रामायण (चम्पू)- पारिजातहरण (काव्यमाला मुंबई से 1926 ई में प्रकाशित), उषापरिणय, सत्यभामा-विलास। (रूपक)- मुरारिविजय, मुक्ताचरित, सत्यभामा-परिणय और कसवध।

शेषकृष्ण - प्रक्रियाकौमुदी-प्रकाश (वृत्ति) के लेखक। प्रक्रिया-कौमुदीकार रामचन्द्र के भ्रातृज तथा शिष्य। समय ई 16 वीं शती।

शेषगिरि - ई. अठारहवीं शती का मध्य। पिता-शेषगिरीन्द्र।

माता-भागीरथी। आन्ध्र प्रदेश के रालपल्ली के निवासी। मैसूर नरेश कृष्णराज द्वितीय (1734-1766 ई) के अध्यापक। कल्पनाकल्पक नाटक तथा शारदातिलक भाण के रचयिता।

शेषनारायण - समय- वि.सं. 1500 से 1550। पिता-वासुदेव, पितामह-अनन्त, पुत्र-कृष्णसूरि। सूक्तिरत्नाकर नामक महाभाष्य की प्रौढ व्याख्या के लेखक। अनेक अप्रकाशित हस्तलेख उपलब्ध। इस शेष वंश में अनेक प्रथितयश वैयाकरण हुए।

शेष विष्णु - समय वि.सं 1600-1650। शेषवंशीय। महाभाष्य-प्रकाशिका के लेखक। शेषनारायण के प्रपौत्र। पिता-महादेव सूरि।

शेषाचलपति (आन्ध्रपाणिनि) - रचना-कोसलभोसलीयम् (द्वयर्थी काव्य)। इसमें कोसल-वंशीय रामचंद्र तथा भोसलवंशीय शाहजी के पुत्र एकोजी का चरित्र संगुंफित है। शाहजी ने इनका कनकाभिषेक से सत्कार किया था। ये शाहजी के आश्रित-कवि थे।

शेषाचार्य - पिता- सकर्षण। "सत्यनाथाभ्युदयम्" नामक काव्य के रचयिता। काव्य के चरित्रनायक सत्यनाथतीर्थ माध्वसप्रदाय के द्वैतसिद्धान्ती आचार्य थे। देहान्त सन् 1674 में।

शैल कवि - 17 वीं शताब्दी। तजावर नरेश के मन्त्री, आनन्द यज्वा का पुत्र। रचना- त्रिपुर-विजय-चम्पू।

शोभाकर मित्र - ई. 13 वीं सदी। पिता- त्रयीश्वर। सभवत काश्मीर-निवासी। आपके "अलंकाररत्नाकर", ग्रथ में एक सौ बारह गद्य सूत्र और उन पर सोदाहरण वृत्ति है। ग्रथ में 107 अलकारों का निरूपण है। चारुता एवं प्रतीतिभेद पर ही विवेचन है। आपने अनेक पुराने अलकार अमान्य कर, 39 नये अलंकार प्रस्तुत किये हैं। वे शास्त्र पर आधारित होने से, इस ग्रंथ का महत्त्व है।

शोभाकर भट्ट - ई. 14 वीं शती। इन के ग्रथ का नाम "आरण्यक-विवरण" है। आरण्यक-विवरण ग्रथ का निर्माण होने के पहले उनकी कुछ भाष्य-रचना भी हो सकती है। नारदीय-शिक्षा-विवरण नामक टीका-ग्रंथ भी आचार्य शोभाकर ने लिखा है।

शौनक - अनेक व्यक्तियों का कुलनाम। ऋग्वेद के दूसरे मंडल के कर्ता गृत्समद शौनक थे। शतपथ ब्राह्मण के इद्रोत व स्वैदायन शौनक थे। बृहदारण्यक के अनुसार रौहिणायन के गुरु शौनक थे। अनेक पुराणों मे उल्लिखित भृगुकुल के मत्रकार शौनक ही हैं। ये कुलपति वेदार्थशास्त्रज्ञ थे। शौनकगृह्यसूत्र, शौनकगृह्य-परिशिष्ट और वास्तुशास्त्र पर भी आपने एक ग्रंथ लिखा है। ऐतरेय आरण्यक का पांचवां आरण्यक आपकी रचना मानी जाती है। आश्वलायन आपके प्रमुख शिष्य थे। पुराणों से पता चलता है कि आपने अनेक यज्ञ एवं सूत्र किये। परीक्षित के पुत्र शातनीक को तत्त्वज्ञान का उपदेश आप ही ने दिया। आपने युधिष्ठिर को धर्मोपदेश दिया था।

महाभारत में शौनक को योगशास्त्रज्ञ एवं साख्य-निपुण कहकर गौरवान्वित किया गया है। अनेक पुराणों में उन्हें प्राप्त उपाधियां है- क्षेत्रोपेत द्विज, मत्रकृत्, मध्यमाध्वर्यु, कुलपति। आपने ऋग्वेद अनुक्रमणिका, ऋक्प्रातिशाक्य, बृहद्देवता, शौनकस्मृति, चरणव्यूह, ऋग्विधान, ऋग्वेदकथानुक्रमणी आदि ग्रथों की रचना की है। वैद्यक शास्त्र की शल्यतत्र शाखा के जनक आप ही हैं। आपने ऋग्वेद की दो शाखाओं (शाकल एवं बाष्कल) का एकत्रीकरण किया है। ऋग्वेद की उपलब्ध अनुक्रमणिका में आपकी अनुक्रमणी प्राचीन मानी जाती है। उसमें ऋग्वेद का मंडल, अनुवाक, सूक्त इस भाति विभाजन है। ऋक्प्रातिशाख्य में वैदिक ऋचाओ एव शाखातर्गत मत्रों की उच्चारण-पद्धति बताई गयी है। इस ग्रंथ में आपने अनेक पूर्वाचार्यों का एवं व्याकरणकार व्याडी का उल्लेख किया है। व्याडी का काल ईसापूर्व 1100 वर्ष माना जाता है। शौनक के वे शिष्य थे। अतः शौनक का काल भी वही माना जाना चाहिये। उवट इन्हें "ऋषि" कहकर सबोधित करते हैं।

श्यामकुमार टैगोर - ई 20 वीं शती। "जर्मनीकाव्य" के कर्ता।

श्यावाश्व - अत्रिकुल के सबसे बडे सूक्त-द्रष्टा। ऋग्वेद के पांचवें मंडल के बावन से इकसठ, इक्यासी, बयासी, आठवें मंडल के पैंतीस से अडतीस और नौवे मडल का बत्तीसवा सूक्त आपकी रचना मानी जाती है। पिता का नाम अर्चनानस् एव पुत्र का अंधीगू था। रथ्वीती दार्भ्यऋषि की कन्या श्यावाश्व की पत्नी थी। श्यावाश्व के सूक्तों में मरुतो की प्रार्थना एव सवितृ व इद्र की स्तुति है।

श्येन आग्नेय - ऋग्वेद के दसवें मडल के 188 वें सूक्त के द्रष्टा। इस लघुकाय सूक्त का विषय अग्नि की स्तुति है। यह सूक्त गायत्री छद में है।

श्वेतारण्य नारायण दीक्षित - मूलत काची-निवासी। फिर तंजौर के श्वेतारण्य में निवास। काशी के बालूशास्त्री तथा विश्वनाथ शास्त्री से शिक्षा प्राप्त की। मद्रास के सस्कृत महाविद्यालय में प्रधान अध्यापक। कृतिया- मुकुटाभिषेक (नाटक), कुमारशतक, नक्षत्रमालिका (काव्य) तथा हरिश्चन्द्रादि सात गद्य-कथाए।

श्वेताश्वतर - एक आचार्य। आपने स्वायभुव ऋषि से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। कृष्ण-यजुर्वेद की एक शाखा आपके नाम पर है। इनके नाम का एक ब्राह्मण भी है, पर वह उपलब्ध नहीं। सुप्रसिद्ध श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रवक्ता आप ही हैं।

श्रद्धा कामायनी - एक सूक्त-द्रष्ट्री। ऐसा लगता है कि यह नाम कल्पित होगा। ऋग्वेद के दसवें मडल का इक्क्यावनवा सूक्त आपका माना जाता है। "श्रद्धासूक्त" के रूप में यह प्रसिद्ध है। श्रद्धा का माहात्म्य इसमें समझाया गया है। श्रद्धा, बुद्धि का प्रकार माना गया है बालक को प्रथम स्तनपान

कराते समय, व्रतबंध के मेधाजनन संस्कार में, ये सूक्त कहा जाता है। मेधासूक्त, श्रद्धासूक्त के अंत में आने वाला खिलसूक्त है।

श्रीकांत गणक - अठारहवीं शती का मध्य। मिथिलानिवासी। "श्रीकृष्णजन्म-रहस्य" नामक दो अंकी नाटक के प्रणेता।

श्रीकुमार - समय-ई. 11 वीं शती। नयनन्दि द्वारा उल्लिखित। धारा-निवासी। भोज राजा के समकालीन। रचना- आत्मप्रबोध (149 श्लोक)। अध्यात्म-विषयक ग्रथ। कवि को "सरस्वती-कुमार" भी कहा जाता था।

श्रीकृष्ण कवि - समय- 16-17 वीं शती। मदार-मरदचपू के प्रणेता। इस चपू-काव्य की रचना लक्षण ग्रथ के रूप में हुई है और इसका प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस मुबई से सन् 1924 में हुआ है। ग्रथ के उपसहार में इन्होंने अपना जो परिचय दिया है, उसके अनुसार इनका जन्म गुहपुर नामक ग्राम में हुआ था और इनके गुरु का नाम वासुदेव योगीश्वर था।

श्रीकृष्ण जोशी - जन्म-1882 ई मृत्यु-1965 ई। नैनीताल-निवासी। प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में अध्ययन। कुछ समय तक कुमाऊ में अधिवक्ता। बग-भग-आन्दोलन मे सक्रिय सहभाग। तत्पश्चात् प मदनमोहन मालवीयजी के अनुरोध पर हिन्दू वि वि में अध्यापन। "विद्या-विभूषण" तथा "कवि-सुधाशु" की उपाधियों से विभूषित। कृतिया- रामरसायन (महाकाव्य), अखण्डभारत, स्यमन्तक (महाकाव्य), काव्यमीमासा, सर्व-दर्शन-मजूषा, अद्वैत-वेदात-दर्शन, अन्तरग-मीमासा (उ प्र शासन द्वारा पुरस्कृत), कृतार्थ-कौशिक (नाटक), सत्य-सावित्र (नाटक) और परशुराम-चरित।

श्रीकृष्ण तर्कालंकार - ई 18 वी शती। बगाल के निवासी। "चद्रदूत" के रचयिता।

श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी - ई 20 वी शती। देवरिया (पूर्वी उत्तर-प्रदेश) के निवासी। एम ए एव साहित्यरत्न। हरिहर संस्कृत पाठशाला मे प्रधानाध्यापक। सस्कृत वि वि में प्राध्यापक। गुरु-रामयश त्रिपाठी। कृतिया-योगदर्शन-समीक्षा, भाख्यकारिका, पुराणतत्त्वमीमासा, अष्टादश-पुराणपरिचय, सावित्री-नाटक (एकाकी) तथा अनेक हिन्दी रचनाए। उ प्र शासन द्वारा सम्मानित।

श्रीकृष्ण न्यायालंकार - ई 17 वीं शती। रचना- भावदीपिका (न्याय-सिद्धान्तमजरी की टीका)।

श्रीकृष्ण ब्रह्मतन्त्र - परकाल स्वामी, ई 19 वीं शती। आपने 60 से अधिक ग्रथों की रचना की है जिनमें प्रमुख हैं- चपेटाहतिस्तुति, उत्तरगमाहात्म्य, रामेश्वरविजय, नृसिहविलासं, मदनगोपाल-माहात्म्य, अलंकार-मणिहार आदि।

श्रीकृष्ण भट्ट - जन्म 1870 ई में। जयपुर के महाराजा सवाई ईश्वरीसिह के आश्रित। इनकी मुख्य रचनाएं हैं- 1) ईश्वरविलास (इस महाकाव्य में जयपुर की स्थापना, अश्वमेध यज्ञ एवं नगर की व्यवस्था का सुदर वर्णन है), 2) सुन्दरीस्तवराज (स्तोत्र काव्य, 103 पद्य)।

श्रीकृष्ण मिश्र - "प्रबोधचद्रोदय" नामक एक सुप्रसिद्ध प्रतीक नाटक के रचयिता। आप जैजाकभुक्त के राजा कीर्तिवर्मा के शासनकाल में विद्यमान थे। कीर्तिवर्मा का एक शिलालेख 1098 ई का प्राप्त हुआ है। उससे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण मिश्र का समय 1100 ई. के आसपास था। अपने "प्रबोधचंद्रोदय" नाटक मे मिश्रजी ने श्रद्धा, भक्ति, विद्या, ज्ञान, मोह, विवेक, दभ, बुद्धि आदि अमूर्त भावमय पदार्थों को नर-नारी के रूप मे प्रस्तुत करते हुए वेदात व वैष्णव-भक्ति का अतीव सुदर प्रतिपादन किया है।

श्रीकृष्णराम शर्मा - जयपुर में आयुर्वेद के अध्यापक। इनका विनोदप्रचुर काव्य है "पलाण्डुशतक" (पलाण्डु = प्याज)। अन्य रचनाए-सारशतक, आर्यालङ्कारशतक, मुक्तावली-मुक्तक और होलिमहोत्सव।

श्रीचंद सूरि - समय-ई 12-13 वीं शती। अपरनाम-पार्श्वदेव गणि। शीलभद्रसूरि के शिष्य। निशीथ्य सूत्र की विशेष चूर्णि के बीसवे उद्देशक की दुर्गपद व्याख्या, कल्यावतसिका, पुष्पिका, पुष्पचूला और वृष्णिदशा उपागों पर वृत्ति और जीतकल्पबृहच्चूर्णि-विषमपद व्याख्या। इसमें प्राकृत गाथाएं भी उदधृत हैं।

श्रीचन्द - लाल बागड सघ और बलात्कारगण के आचार्य श्रीनन्दी के शिष्य। ग्रथ-पुराणसार (सन् 1023), रविषेण के पद्मचरित की टीका (सन् 1030), पुष्पदन्त के उत्तरपुराण का टिप्पण (सन् 1030) और शिवकोटि की भगवती आराधना का टिप्पण। ये ग्रथ राजा भोजदेव के राज्यकाल में धारानगरी में रचे गये।

श्रीधर - अम्पलप्पुल (त्रावणकोर) के राजा देवनारायण (अठारहवी शती) द्वारा सम्मानिक कवि। रचना- 'लक्ष्मी-देवनाराणीय" (नाटक)।

श्रीधरदास - ई 12 वीं शती। बंगाल के लक्ष्मण सेन के महामाण्डलिक। पिता- बटुदास महासामत। 'सदुक्तिकर्णामृत' के सकलनकर्ता।

श्रीधर वेंकटेश (अय्यावल) - तजौर के भोसले-वंशीय शहाजी महाराज के आश्रित। इन्होंने अपने आश्रयदाता का चरित्र, अपने 6 सर्गयुक्त महाकाव्य "शाहेन्द्र-विलासकाव्यम्" मे ग्रथित किया है। कवि की अन्य रचनाए- (1) दयाशतक, (2) मातृभूशतक, (3) तारावतीशतक और (4) आर्तिहरस्तोत्र आदि लघु काव्य। सभी काव्य हैं। कुम्भकोणम् के वैद्य मुद्रणालय में मुद्रित)।

श्रीधर सेन - गुरु- मुनिसेन। सेन संघ के आचार्य। ग्रथ-विश्वलोचन - कोश (मुक्तावली कोश)। शैली की दृष्टि

से, इस कोश पर हेम, विश्वप्रकाश और मेदिनी कोशों का प्रभाव दीखता है।अत. इसका रचनाकाल ई. 13 वीं शती का उत्तरार्ध और 14 वीं शती का पूर्वार्ध माना जा सकता है। इसमें 2453 श्लोक हैं। नानार्थकोश की परम्परा में यह कोश अग्रगण्य माना जाता है।

श्रीधरस्वामी- समय- 1908-73 ई। पिता- नारायणराव देगलूरकर। माता- कमलाबाई। समर्थ रामदास के परम भक्त और महान् तपस्वी। निवास- महाराष्ट्र में सज्जनगड पर और अत में कर्नाटक के वरदहल्ली मठ में। रचनाएं- श्रीदत्तकरुणार्णव और श्रीशिवशान्तस्तोत्रतिलकम् नामक दो संस्कृत काव्य और आर्यसंस्कृति नामक मराठी प्रबध। आपके हजारों भक्त महाराष्ट्र और कर्नाटक में विद्यमान हैं।

श्रीधरस्वामी - ई 14 वी शती का पूर्वार्ध। श्रीधर स्वामी की सुप्रसिद्ध व्याख्या "भावार्थ-दीपिका", श्रीमद्भागवत के भाव तथा अर्थ की विद्योतिका टीका है। श्रीधर स्वामी का व्यक्तित्व सर्वथा अप्रसिद्ध है। यो तो उनके देश और काल दोनों ही अज्ञात हैं, कोई उन्हें बगाल का मानता है, कोई उत्कल का, कोई गुजरात का, तो कोई महाराष्ट्र का। निर्विवाद इतना है कि वाराणसी में वे बिन्दुमाधव मदिर के सान्निध्य मैं निवास करते थे और उनका मठ तथा नृसिह का विग्रह, मणिकर्णिकाघाट पर आज भी विद्यमान है। वे नृसिह भगवान् के अनन्य उपासक थे। उनकी भागवत-व्याख्या के निम्न मंगल श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है-

वागीशो यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये सवित् त नृसिंहमह भजे।।

एक प्राचीन प्रशसा-श्लोक से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें नृसिंह के प्रसाद से श्रीधर के समग्र भागवतार्थ के ज्ञाता होने की बात कही गई है। श्रीधर के गुरु का नाम, अंत.साक्ष के आधार पर, परमानंद था जिसकी सूचना अन्यत्र भी उपलब्ध होती है। गीता की टीका में भी उनके गुरु परमानद का नाम निर्दिष्ट है। द्वादश स्कध की समाप्ति पर श्रीधर ने स्वयं को 'परमानंद-पदाब्जभृंग " कहा है तथा परमानद की प्रीति के निमित्त उन्होंने भागवत-व्याख्या का प्रणयन अपने गुरु के मत का आश्रय लेकर ही करने की बात कही है। एक उद्भट विद्वान् होने पर भी श्रीधर बडे ही विनम्र भक्त थे। भगवद्गीता की अपनी 'सुबोधिनी' टीका में, श्रीधर ने स्वयं को 'यति' कहा है। इससे स्पष्ट है कि 'सुबोधिनी' के प्रणयन के पूर्व वे संन्यास ले चुके थे। (सुबोधिनी, 18 अ अंतिम पद्य)।

श्रीधर अद्वैत वेदांती होते हुए भी शुष्क ज्ञानमार्गी न होकर सरस भक्ति-मार्गावलंबी थे। अतः इनकी व्याख्या, गौडीय वैष्णव संप्रदाय में सर्वाधिक मान्यता से मंडित तथा प्रामाणिक मानी जाती है। श्री. चैतन्य महाप्रभु, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने अपने ग्रथो में श्रीधर स्वामी के प्रति श्रद्धा एव कृतज्ञता व्यक्त की है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रथ "वैष्णव सप्रदायों का साहित्य एव सिद्धात" में श्रीधर के समय-निर्धारण हेतु जो आधार प्रस्तुत किये है, तदनुसार उनका समय बोपदेव और विष्णुपुरी के बीच का (अर्थात् 1300 ई और 1350 ई. के लगभग) होना चाहिये।

श्रीधराचार्य - ई. आठवीं-नौवीं सदी। कर्नाटक-निवासी। आपका गणितसार (या त्रिशतिका) नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। ज्योतिर्ज्ञानविधि एव जातकतिलक ग्रथ ज्योतिष संबधी है। भास्कराचार्य ने ये नियम वैसे-के-वैसे उठाये हैं। आपका 'लीलावती'नामक ग्रंथ कन्नड भाषा में है। उसमें गणित का विवेचन है।

श्रीनारायण - ई 15 वीं शती। इन्होने कुल 60 ग्रंथ लिखे हैं जिनमें नारायणचरितम् विशेष उल्लेखनीय है।

श्रीनिवास - ई 12 वीं शती। 'राजपडित' व'चूडामणि'की उपाधियो से अलकृत। बगाल के निवासी। गणितज्ञ। कृतिया- गणित-चूडामणि और शुद्धिदीपिका (मुहूर्त-शास्त्र-विषयक)।

श्रीनिवास - ई 13 वी शती। वेद के भाष्यकार और निरुक्त के टीकाकार। ग्रथ अनुपलब्ध, फिर भी वेदभाष्यकार देवराज यज्वा द्वारा श्रीनिवासाचार्य का वेदभाष्यकार और निरुक्त-टीकाकार के रूप में उल्लेख हुआ है।

श्रीनिवास - मुष्णग्राम के निवासी। वरदवल्ली- वश। वरद के पुत्र। रचना- 'भू-वराहविजय' (वराहविजय)

श्रीनिवास - वेंकटेश के पुत्र। रचना- श्रीनिवास-चम्पू. (तिरुपति क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन)।

श्रीनिवास - रचना- 'सत्यनाथ-विलसितम्'। इसमें माध्व-सांप्रदायी, द्वैत-सिद्धान्ती सत्यनाथतीर्थ (जिनका देहान्त सन् 1674 में हुआ) का चरित्र वर्णित है।

श्रीनिवास कवि - "आनंदरग-विजय-चपू' के रचयिता। पिता- गंगाधर। माता- पार्वती। श्रीवत्सगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण। अपने चपू-काव्य में इन्होंने प्रसिद्ध फ्रेंच शासक डुप्ले के प्रमुख सेवक आनंदरंग के जीवन-वृत्त का वर्णन किया है। विजयनगर तथा चन्द्रगिरि के राज-वशों का वर्णन इस काव्य की बहुत बडी विशेषता है। इसका रचना-काल ई. 18 वीं शताब्दी है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का महत्त्व है। यह मद्रास से प्रकाशित हुआ है। श्रीनिवास कवि डुप्ले के भाषण-सहायक थे।

श्रीनिवासदास - ई. 14 वीं सदी। एक विशिष्टाद्वैती आचार्य। देवराज के पुत्र एव वेंकटनाथ के शिष्य। वेंकटनाथ के न्यायपरिशुद्धि ग्रंथ पर आपने 'न्यायसार' नामक टीका लिखी है। विशिष्टाद्वैतसिद्धांत, कैवल्यशतदूषणी, दुरुपदेशधिक्कार, न्यायविद्या-विजय, मुक्तिशब्दविचार, सिद्ध्युपाय-सुदर्शन,

सारनिष्कर्षटिप्पणी, वादाद्रिकुलिश ग्रंथ भी आप ही के कहे जाते हैं।

श्रीनिवास दीक्षित - ई 16 वीं शती। पिता-श्रीभवस्वामी भट्ट। भाष्यकार श्रीभवस्वामी, आह्निक प्रणेता श्रीकृष्णार्य, अद्वैत चिंतामणिकार कुमार भवस्वामी जैसे विद्वानों के वश में इनका जन्म हुआ। राजा सूरप नायक द्वारा प्रतिष्ठापित सूर-समुद्र-अग्रहार में निवास। चोलराज के द्वारा प्रशस्तिपत्र प्राप्त। रचना- भावनापुरुषोत्तम (नाटक)।

श्रीनिवास दीक्षित (रत्नखेट) - ई 17 वीं शती। 'अभिनव-भवभूति' तथा 'रत्नखेट' इन नामों से प्रसिद्ध। रचना- 'शितिकण्ठविजय-काव्यम्'। चोलराजा ने 'रत्नखेट' उपाधि प्रदान की। षड्भाषाचतुर तथा अद्वैतविद्याचार्य यह उपाधिया भी इन्हें प्राप्त हुई थीं। साहित्यशास्त्रविषयक साहित्यसजीवनी, भावोद्भेद, रसार्णव, अलकारकौस्तुभ, काव्यदर्पण, काव्यसारसग्रह और साहित्यसूत्रसरणी नामक ग्रंथों की रचना श्रीनिवास दीक्षित ने की है।

श्रीनिवास भट्ट - साहित्यशिरोमणि। अध्यापक- प्रबाधी सस्कृत पाठशाला। रचना- रामानन्दम्। विषय- माध्वसिद्धान्त।

श्रीनिवासरंगार्य - ई 20 वीं शती। कौशिक गोत्री। भाषाद्वय-पडित। 'गुरुदक्षिणा' नामक नाटक के प्रणेता।

श्रीनिवास विद्यालंकार - इन्होंने अपने 'देहली- महोत्सव-काव्य' में दिल्ली में सपन्न राजमहोत्सव का वर्णन किया है।

श्रीनिवास शास्त्री - जन्म कावेरी नदी के तट पर सहजपुरी ग्राम में, सन् 1850 के लगभग। पिता- वेंकटेश्वर। पितामह- सुब्रह्मण्य शास्त्री। "तिरुवसलूर पडित' नाम से विख्यात। माधव यतीन्द्र द्वारा 'वेद-वेदान्त-वर्धक' की उपाधि से समलकृत। 'उपहार-वर्म-चरित" नामक नाटक के रचयिता।

श्रीनिवास शास्त्री - समय- ई 19 वीं शती का उत्तरार्ध। कुम्भकोणम्-निवासी शैव। माता-सीताम्बा। पिता- रामस्वामी यज्वा। पितामह- रामस्वामी शास्त्री। अनुज-नारायण शास्त्री। गुरु-त्यागराज मखी। 'ब्रह्मविद्या' नामक दर्शन विषयक पत्रिका के सम्पादक। अप्पय दीक्षित के शिवाद्वैत सिद्धान्त के प्रचारक। परम धार्मिक और वैष्णव। कृतिया- सौम्यसोम (नाटक), विज्ञप्तिशतक, योगि-भोगिसवाद-शतक, शारदा-शतक, महाभैरव-शतक, हेतिराज शतक, श्रीगुरुसौन्दर्य-सागर-साहस्रिका तथा उपनिषदों की सुबोध टीकाए।

श्रीनिवास सूरि - सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से भागवत के दो स्थल विशेष महत्त्व रखते हैं। वे हैं ब्रह्म-स्तुति तथा वेद-स्तुति। इन दोनों स्तुतियों पर श्रीनिवास सूरि द्वारा लिखी गई टीका का नाम है तत्त्व-दीपिका। इस टीका में विशिष्टाद्वैत के द्वारा उद्भावित दार्शनिक तथ्यों का निर्धारण, भागवत के पद्यों से बडी गभीरता के साथ किया गया है। श्रीनिवास सूरि, द्रविड पडित थे; किन्तु वृंदावन के श्रीरगनाथजी के विशाल मदिर एव सस्थान से आकृष्ट होकर, वृदावन ही में रहते थे तथा इस सस्था से संबद्ध थे। इनके गुरु थे गोवर्धनवासी वेंकट या वेंकटाचार्य जिनकी स्तुति इन्होंने वेद स्तुतिव्याख्या (टीका) के अत में की है। आपके शिष्य थे रगदेशिक, जिनके आदेश से सेठ राधाकृष्ण ने वृंदावन में रंगनाथ मदिर का निर्माण करवाया था। निर्माणकार्य का आरंभ 1902 वि.स. में अर्थात् 1845 ई में हुआ था। अतः श्रीनिवास सूरि का समय ई 19 वीं शती का पूर्वार्ध मानना युक्तियुक्त है।

श्रीनिवासाचार्य - वैष्णवों के निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक। आचार्य निंबार्क के प्रधान शिष्य। इनका निवासस्थान मथुरा जिला में गोवर्धन से एक कोस दूर (श्री राधाकुंड) ललितासंगम पर माना जाता है। जन्मतिथि-वसंत पंचमी। इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ हैं- (1) वेदात-कौस्तुभ नामक शारीरक-मीमांसा-भाष्य और (2) लघु-स्तवराज सभाष्य। ख्यातिनिर्णय, पारिजात-कौस्तुभ-भाष्य तथा रहस्य-प्रबंध नामक तीन अन्य ग्रथों के भी होने का सकेत है, किंतु अभी तक ये अप्राप्य हैं।

श्रीनिवासाचार्य - शासकीय महाविद्यालय कुम्भकोणम् में सस्कृत प्राध्यापक (ई 1848 से 1914)। पितृनाम- वेदान्ताचार्य। पिता- तिरुवाहीन्द्रपुर के निवासी। आप आमरण संस्कृत पद्यभाषी थे। रचनाए- शृंगारतरगिणी (भाण), उषापरिणय (नाटक), हसविलास (काव्य) श्रीकृष्णलीलायित (गद्यकाव्य), अमृतमन्थन (गेयकाव्य), शार्ङ्गकोपाख्यान (काव्य) तथा नागानन्द और मृच्छकटिक की टीका। सभी रचनाएं मुद्रित।

श्रीपतिदत्त - ई 11 वीं शती। बंगाल-निवासी। कातन्त्र-परिशिष्ट के रचयिता।

श्रीपतिभट्ट - ई 11 वीं सदी। महाराष्ट्र के बुलढाणा जिले के रोहिणखेड ग्राम के निवासी। ज्योतिष शास्त्र की प्रत्येक शाखा पर आपने एक-एक ग्रंथ लिखा है। धीकोटिकरण, सिद्धान्तशेखर, जातकपद्धति, पाटीगणित, श्रीपतिनिबध, ध्रुवमानसकरण, दैवज्ञवल्लभ, श्रीपतिसमुच्चय एव ज्योतिषरत्नमाला, ये सभी ग्रथ आपके हैं। रमल पर भी आपका एक ग्रथ है।ज्योतिष-रत्नमाला मुहूर्तग्रथ है। श्रीपति ने स्वयं उस पर मराठी गद्यटीका लिखी है। गृहनिर्माण, गृहप्रवेश, विवाह, उपनयन आदि पर हर घडी मुहूर्त देखा जाता है। इस आवश्यकाता को पहिचानकर यह ग्रंथ उपलब्ध किया गया है।

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य - हरिव्यास देवाचार्य के शिष्य। आपके वेदान्त- रत्नमजूषा व श्रुत्यन्तसुरद्रुम नामक टीकाग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

श्रीभूषण - काष्ठासघ, नन्दितट गच्छ और विद्यागण के भट्टारक विद्याभूषण के पट्टधर। सोजिना (गुजरात) की गद्दी के पट्टधर। पिता- कृष्णासह। माता- माकेहो। वादिविजेता और प्रतिष्ठाचार्य। समय- ई 17 वीं शती। रचनाएं- (1) पाण्डव-पुराण (वि.सं. 1657) (6700 श्लोक)। (2) शान्तिनाथ-पुराण (वि.सं 1659) (4025 श्लोक), (3) हरिवंश पुराण (वि.सं. 1675) (4) द्वादशांगपूजा और (5) प्रतिबोधचिंतामणि।

श्रीरंगराज - विजयनगर के युवराज। ई. 17 वीं शती का पूर्वार्ध। रचना- नाटक-परिभाषा।

श्रीराम गोस्वामी - समय- 1727-1787 ई.। कवि रामगोस्वामी बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह के आश्रित। इन्होंने अपने महाराजा को अपनी काव्य-रचना का विषय बनाया एवं 'सूरत-विलासः' नामक राजप्रशस्तिपर काव्य का प्रणयन किया।

श्रीरामचन्द्र (प्रा.) - मछलीपट्टनम् के नोबल महाविद्यालय में प्राध्यापक। रचनाएं- शृंगारसुधार्णव-भाण, कुमारोदय-चम्पू और देवीविजय-काव्य।

श्रीराम शर्मा - ई. 15 वीं शती। चम्पाहट्टीय ब्राह्मण। वीरेन्द्र-प्रदेशी। कृतियां- विजया नामक सरिदेवकृत 'परिभाषावृत्ति' की टीका। विषय- व्याकरणशास्त्र (2) मुग्धबोध व्याकरण की टीका।

श्रीरामशास्त्री वेदमूर्ति - 19-20 वीं शताब्दी। नेलोर निवासी। रचना- 'गुरुकल्याणम्'।

श्रीलोकाचार्य - श्रीरामानुजाचार्य के वैकुंठवासी होने के पश्चात् 150 वर्षों की अवधि में ही दक्षिण के श्रीवैष्णवों में दो स्वतंत्र मत उठ खडे हुए थे। पहले मत का नाम था- 'टेंकलै' और दूसरा 'वडकलै' कहलाता था। श्रीलोकाचार्य ने टेंकलै मत की प्रतिष्ठापना की। इनका समय 13 वां शतक था। इन्होंने अपने ग्रंथ 'श्रीवचनभूषण' में इस प्रपत्ति-पंथ का विशद शास्त्रीय विवेचन किया है।

आजकल लोकभाषा पर अधिक पक्षपात होने के कारण दक्षिण में टेकलै-मत पर विशेष आग्रह दृष्टिगोचर होता है। श्रीलोकाचार्य-प्रणीत 'श्रीवन-भूषण' नामक ग्रंथ पुरी के किसी मठ से प्रकाशित है।

श्रीवत्सलांछन भट्टाचार्य - ई. 16 वीं शती। श्रीविष्णु चक्रवर्ती के पुत्र। 'रामोदय' (नाटक) काव्यामृत, काव्यपरीक्षा, सारबोधिनी तथा साहित्य-सर्वस्व के कर्ता।

श्रीवल्लभ पाठक - ई. 17 वीं शती। तपागच्छ-निवासी। इन्होंने 21 सर्गों के 'विजय-देव-माहात्म्य' नामक महाकाव्य में जैन मुनि विजयदेव सूरि का चरित्र-वर्णन किया है।

श्रीशैल दीक्षित - ई. 19 वीं शती। 'कर्नाटक-प्रकाशिका' (बंगलोर) के सम्पादक। रचनाएं- वीरांजनेय-शतक, हनुमन्नक्षत्रमाला (काव्य), गोपालार्या (काव्य), भ्रान्ति-विलासम् (शेक्सपियर के 'कामेडी ऑफ एरर्स' का संस्कृत अनुवाद) और कावेरीगद्यम् (प्रवासवृत्त), श्रीकृष्णाभ्युदयम् (गद्यकाव्य)। इन्हें गायनकला में नैपुण्य प्राप्त था।

श्रीश्वर विद्यालंकार (भट्टाचार्य) - ई. 19-20 वीं शती। रंगपुर (बंगाल) के निवासी। पिता- क्षितीश्वर भट्टाचार्य कृतियां- शक्तिशतक (अपर नाम देवीशतक), विजयिनीकाव्य (महारानी-विक्टोरिया पर सन् 1902 में रचित), दिल्ली-महोत्सव (काव्य) और विक्रमभारत। दिल्ली-महोत्सव-काव्यम् की रचना सन् 1902 में हुई। छह सर्गों वाले इस काव्य में सप्तम एडवर्ड का राज्याभिषेक वर्णित है।

श्रीहरि - एक महनीय भक्त कवि। गोदावरी-तट के निवासी। काश्यप गोत्री ब्राह्मण। 'हरिभक्ति-रसायन' नामक टीका के प्रणेता। टीका का रचना-काल सन् 1887। यह टीका भागवत के दशम स्कध के पूर्वार्ध पर ही है। इनका कहना है कि भगवान् का प्रसाद ग्रहण कर ही वे इस टीका के प्रणयन में प्रवृत्त हुए। टीका से इनकी प्रतिभा प्रकाशित होती है। इस टीका का पुनर्प्रकाशन सन 1972 में हुआ।

श्रीहर्ष - ई. 12 वीं सदी। 'नैषधीयचरित' (महाकाव्य) के कर्ता। इन्होंने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के पश्चात् एवं ग्रंथसमाप्ति के बाद रचित चार श्लोकों में स्वयं के बारे में जानकारी दी है। आपके लिखे अन्य ग्रंथ हैं- विजयप्रशस्ति, अर्णव-वर्णन एवं नवसाहसांक-चरितचंपू। काव्य व तर्क दोनों में उनकी बुद्धि चलती थी। कहते हैं कि योगसमाधि में आपको परब्रह्म का साक्षात्कार होता था। स्थैर्यविचारणा प्रकरण एव ईश्वराभिसंधि नामक अन्य दो ग्रंथ भी आपकी ही रचनाए हैं।

आपके काव्य में श्लेष, यमक, अनुप्रास इन शब्दालकारों के साथ विविध अर्थालकार, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्यगत सौंदर्य एव वैद्यकशास्त्र, कामशास्त्र, राज्यशास्त्र, धर्म, न्याय, ज्योतिष, व्याकरण, वेदान्त आदि परम्परागत शास्त्रीय ज्ञान इतना भरा है कि इसे 'शास्त्रकाव्य' कहने की प्रथा है। नैषधीय के अध्ययन से मन, बुद्धि सदृढ बनती हैं। इसे विद्वानों की बलवर्धक औषधि ('नैषधं विद्वदौषधम्') कहा गया है।

श्रुतकक्ष - ऋग्वेद के आठवें मंडल के 92 वे क्रमांक के सूक्त के द्रष्टा। अंगिरस कुलोत्पन्न। इद्र-सोम की स्तुति इनके सूक्त का विषय है।

श्रुतकीर्ति - समय- ई 12 वीं शती। नन्दिसंघ की गुर्वावली में श्रुतकीर्ति को वैयाकरण भास्कर लिखा है। कन्नड भाषा के चन्द्रप्रभचरित नामक ग्रंथ के कर्ता अग्गल कवि के ये गुरु थे। रचना- पंचवस्तु नामक व्याकरण ग्रथ।

श्रुतकीर्ति - ई. 16 वीं सदी। दिगम्बर सम्प्रदाय के भट्टारक। गुरु का नाम त्रिभुवनकीर्ति। मालवा के जेरहट ग्राम के नेमिनाथ मंदिर में हरिवंशपुराण, परमेष्ठीप्रकाशसार, योगसार एवं धर्मपरीक्षा नामक ग्रथों की रचना आपने की।

श्रुतसागर सूरि - मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के आचार्य। सूरत-शाखा के भट्टारक। विद्यानन्दि के शिष्य, देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य। मल्लिषेण के गुरुभाई। शिष्यनाम श्रीचंद्र। समय- ई. 16 वीं शती। ईडर के राजा भानु अथवा रविमाण के समकालीन। रचनाएं- यशस्तिलक-चन्द्रिका, तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनाम-टीका, महाभिषेक

टीका, षट्पाहुडटीका, सिद्धभक्तिटीका, सिद्धचक्राष्टक-टीका, ज्येष्ठजिनवरकथा, रविव्रतकथा, सप्तपरमस्थानकथा, मुकुटसप्तमी-कथा, अक्षय-निधिकथा, षोडषकारण-कथा, मेघमालाव्रतकथा, चन्दनषष्ठीकथा, लब्धिविधानकथा, पुरन्दरविधानकथा, दशलक्षणीव्रतकथा, पुष्पाजलिव्रतकथा, आकाशपंचमीव्रतकथा, मुक्तावलीव्रतकथा, निर्दु:खसप्तमी-कथा सुगन्धदशमी-कथा, श्रावण द्वादशी-कथा, रत्नत्रयव्रत-कथा, अनन्तव्रत-कथा, अशोक-रोहिणी-कथा, तपोलक्षण- पंक्तिकथा, मेरुपंक्तिकथा, विमानपंक्ति कथा, पल्लिविधान-कथा, श्रीपालचरित, यशोधरचरित, औदार्यचिन्तामणि (प्राकृत व्याकरण) श्रुतस्कन्धपूजा, पार्श्वनाथ स्तवन और शान्तिनाथ स्तवन।

श्रुष्टिगु काव्य - ऋग्वेद के आठवें मडल के 51 वें सूक्त के द्रष्टा। इंद्रस्तुति इसका विषय है। अनेक ऋषियों का उल्लेख होने से इसे सूक्त को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है।

षड्गुरुशिष्य - समय- 13 वीं शती। ग्रथ- ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, आश्वालायन श्रौत, आश्वालयन गृह्य तथा ऋक् सर्वानुक्रमणी पर वृत्तिया लिखी हैं। ऐतरेय ब्राह्मण वृत्ति का नाम है 'सुखप्रदा'। सर्वानुक्रमणी वृत्ति का नाम 'वेदार्थ-दीपिका है। इसी ग्रंथ के अन्त में सवत् 1234 का निर्देश होने के कारण षड्गुरु शिष्य का समय स्पष्ट होता है।

षड्गुरुशिष्य ने विनायक, शूलपाणि, वा शूलाग, मुकुन्द वा गोविंद, सूर्य, व्यास तथा शिवयोगी इन छह गुरुओ का निर्देश किया है।

षष्ठीदास विशारद - ई 18 वीं शती की उत्तरार्ध। जयकृष्ण तर्कवागीश के पुत्र। 'धातुमाला' नामक व्याकरण-ग्रथ के कर्ता।

संकर्षणशरणदेव - निंबार्क-सप्रदार्य के प्रसिद्ध दिग्विजयी आचार्य केशव काश्मीरी के शिष्य। इन्होंने 'वैष्णव-धर्म सुरद्रुम-मजरी' नामक ग्रथ की रचना की जिसमे निंबार्क-मत की श्रेष्ठता का द्रिग्दर्शन तथा व्रतादि का वर्णन है।

संघभद्र - आचार्य वसुबन्धु के समकालीन तथा उनके प्रबल विरोधक। वसुबन्धु के अभिधर्मकोशभाष्य मे प्रतिपादित अनेक सिद्धान्त, वैभाषिक मत से असगत होना ही विरोध का कारण था। सघभद्र वैभाषिक मत के पोषक थे तथा उसका पुनरुद्धार चाहते थे। इसी निमित्त उन्होंने दो ग्रथों की रचना भी की- अभिधर्मन्यायानुसार व अभिधर्मसमयदीपिका। इन दोनो ग्रथों के केवल अनुवाद चीनी भाषा मे उपलब्ध है।

संघविजयगणि - विजयसेन सूरि के शिष्य। तपागच्छीय विद्वान। ग्रथ-कल्पसूत्र- कल्पप्रदीपिका (वि स 1674)। कल्याणविजयसूरि के शिष्य धनविजयगणि द्वारा वि स 1681 मे संशोधित। ग्रथमान 3200 श्लोक।

संध्याकर नन्दी - ई 12 वीं शती। पुड्रवर्धन (बगाल) के निवासी। रामपाल (सन् 1017-1120) के विदेश-मन्त्री। प्रजापति नन्दी के पुत्र। 'रामचरित'काव्य के प्रणेता।

संभाजी महाराज - ई 17 वीं शती। छत्रपति शिवाजी महाराज के वीर, रसिक और विद्वान पुत्र। रचना- बुधभूषण। कामदकीय तथा नीतिविषयक अन्य ग्रथों का परिशीलन एवं सकलन कर इस सुभाषित ग्रथ की निर्मिति हुई है।

संवनन आंगिरस - ऋग्वेद के दसवें मडल के 191 वें क्रमाक के महत्त्वपूर्ण लघु सूक्त के द्रष्टा। प्रस्तुत सूक्त की दो से चार तक की ऋचाए राष्ट्रीय आकांक्षा व प्रार्थना मानी जानी चाहिये। समाज के मतभेद दूर हो, स्नेह बढे, ऐक्य प्रस्थापित हो इस हेतु इनकी रचना की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण (23 1) मे सूचना है कि परस्पर-विरोधी लोगों में सामंजस्य निर्माण करने के लिये इस सूक्त का पठन किया जाये। यह सूक्त है -

सर्समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।
स गच्छध्व स वदध्व स वो मनासि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासते।।2।।
समानो मत्र समिति समानी
समान मन सह चित्तमेषाम्।
समान मन्त्रमभि मन्त्रये व
समानेन वो हविषा जुहोमि।।3।।
समानि व आकृति समाना हृदयानि व
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।।4।।

अर्थ- हे उत्तरवेदी मे प्रदीप जगद्व्यापक कामपूरक परमेश्वर अग्नि, हमे धन दो। सभी लोग एक विचार, एक भाषण, एक ज्ञान के हो। पुरातन सहविचारी लोगों के समान अपने कार्य एकमत से करें।

हम सभी की प्रार्थना, विचारस्थान, ज्ञान और मन एक-समान हो। एक ही सामग्री से देवपूजन करें। संघशक्ति की पुष्टि के लिये सभी के अभिप्राय, अत करण और मन एक-समान हों।

इस सूक्त की पहली ऋचा में इळस्पद स्थान का उल्लेख है। वैदिकों की धारणा है कि पृथ्वी पर आद्य अग्नि यहीं निर्माण हुई। सायणाचार्य के अनुसार इळस्पद याने उत्तरवेदी कुरुक्षेत्र है।

संवर्त - याज्ञवल्क्य द्वारा प्रस्तुत स्मृतिकारों की सूची में आपका नाम है। आपकी दो स्मृतिया उपलब्ध हैं। उनमें क्रमश 227 और 230 श्लोक हैं। इनमें यज्ञोपवीत के बाद ब्रह्मचारी का कर्तव्य, विवाहोत्तर गृहस्थ का आचार, अनेक प्रकार के दान और उनके फल, सन्यासधर्म आदि विषय हैं।

संवर्त आंगिरस - आंगिरस के पुत्रों में से एक। आपका दूसरा नाम वीतहव्य है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, मरुत्त आविक्षित राजा के आप पुरोहित थे। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 172 वे सूक्त के आप द्रष्टा है। उसमें उषा का वर्णन है (10 172 4)

संवर्त यज्ञकर्ता रहे होंगे। ऋग्वेद में यज्ञकर्ता के रूप में अन्यत्र भी उनका उल्लेख है (8.54.2)। अपने भाई बृहस्पति से आपकी स्पर्धा चलती थी। बृहस्पति ने मरुत्त का यज्ञ अधूरा छोड दिया था। उसे आप ने पूरा किया। इस यज्ञ में अग्नि को ही जला डालने की धमकी आपने दी थी। आप महान् तपस्वी थे। जहां आपने तप किया उसे सवर्ततापी कहा जाने लगा।

सकलकीर्ति - जन्म-राजस्थान में, 1386 ई. में। पिता-कर्णसिंह। माता-शोभा। जाति-हूंवड। निवास-अणहिलपुर पट्टन। जन्म नाम-पूर्णसिंह। 14 वर्ष की अवस्था में विवाहित और 18 वर्ष की अवस्था में दीक्षित। दीक्षागुरु-भट्टारक पद्मनन्दि। 34 वें वर्ष में आचार्यपद की प्राप्ति। बागड और गुजरात कार्यक्षेत्र। बलात्कारगण ईडर शाखा के सस्थापक। वि स 1482 में गलियाकोट में भट्टारक-गद्दी के सस्थापक। प्रतिष्ठाचार्य। स्थिति 56 वर्ष। रचनाएं- 1) शांतिनाथचरित (16 अधिकार व 3475 पद्य), 2) वर्द्धमानचरित (19 सर्ग), 3) मल्लिनाथचरित (7 सर्ग-874 श्लोक), 4) यशोधरचरित (8 सर्ग), 5) धन्यकुमारचरित (7 सर्ग), 6) सुकुमालचरित (9 सर्ग), 7) सुदर्शनचरित (8 परिच्छेद), 8) श्रीपालचरित (7 सर्ग), 9) मूलाचारप्रदीप (12 अधिकार), 10) प्रश्नोत्तरोपासकाचार (24 परिच्छेद), 11) आदिपुराण (20 सर्ग), 12) उत्तरपुराण (15 अधिकार), 13) सद्भाषितावली (389 पद्य), 14) पार्श्वनाथपुराण (23 सर्ग), 15) सिद्धान्तसार-दीपक (16 अधिकार), 16) व्रतकथाकोश, 17) पुराणसार-सग्रह, 18) कर्मविपाक, 19) तत्त्वार्थसारदीपक (12 अध्याय) और परमात्मराजस्तोत्र। राजस्थानी भाषा में भी इनके 8 ग्रथ हैं।

सकलभूषण - मूलसंघ-स्थित नन्दिसघ और सरस्वती गच्छ के भट्टारक विजय-कीर्ति के प्रशिष्य, म. शुभचन्द्र के शिष्य एव म सुमतिकीर्ति के गुरुभ्राता। समय-ई. 17 वीं शती। रचनाएं-उपदेश रत्नमाला (18 अध्याय, 3383 पद्य। वि स 1627) तथा मल्लिनाथचरित्र।

सत्यव्रत - ई 20 वीं शती। मुम्बई-निवासी। शैशव से ही मातृपितृहीन। 14 वर्ष की आयु में आर्य-विद्या-सभा द्वारा मुबई में संचालित गुरुकुल में मायाशंकर के आचार्यत्व में अध्ययन। सन् 1926 में वेदविशारद। अध्यापन तथा आर्यधर्म के प्रचार में रत। मेधाव्रत शास्त्री से संस्कृत-लेखन की प्रेरणा। "महर्षि-चरितामृत" नामक नाटक के प्रणेता।

सत्यव्रत शास्त्री - ई. 20 वीं शती। "नपुसकलिंगस्य मोक्षप्राप्ति." नामक एक लघु रूपक के प्रणेता।

सत्यव्रतशास्त्री (डॉ.) - दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक। रचना-श्रीबोधिसत्व-चरितम्। एक सहस्र श्लोकों के इस ग्रंथ में भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएं हैं। यह कथाएं मूल पाली जातक कथाओं पर आधारित हैं। गुरुगोविंदसिंहचरित नामक आपके काव्यग्रंथ को साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। डा सत्यव्रत शास्त्री ने विदेशों में भी अध्यापन कार्य किया है। आप जगन्नाथपुरी संस्कृत विद्यापीठ में उपकुलपति थे।

सत्यव्रत सामश्रमी - सफल पत्रकार और वैदिक वाङ्मय के ज्ञाता। वाराणसी में रहते हुए इन्होंने "प्रत्नकलमनन्दिनी" नामक संस्कृत मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। बाद में कलकत्ता में वैदिक वाङ्मय से संबंधित "उषा" नामक पत्रिका का सम्पादन किया। इस पत्र की ख्याति विदेशों में भी थी। वैदिक साहित्य में शोधानुशीलन का प्रारंभ इन्हीं के प्रयासों का फल है। इनके द्वारा रचित "कन्याविवाहकालः" तथा समुद्रयात्रा, जीवगति· आदि निबंध मौलिक अनुसन्धान से ओतप्रोत हैं। अक्षरतंत्र, आर्षेयब्राह्मण., साम-प्रातिशाख्य, नारदीयशिक्षा आदि समालोचनाप्रधान ग्रथों की आपने रचना की है।

सदाक्षर - अपरनाम-कविकुंजर। अल्प आयु में ही मृत्यु (ई. 1614 से 1634)। इस अत्यल्प जीवन-काल में ही समृद्ध साहित्य-निर्मिति की। रचनाएं- अम्बाशतक, कविकर्णरसायन और रत्नावलीभद्रस्तव। आप कर्नाटक के राजा चिकदेव के आश्रित थे।

सदाजी - आपने सन् 1825 में "साहित्यमंजूषा" नामक साहित्य-शास्त्रनिष्ठ काव्य की रचना की। इसमें शिवाजी का चरित्र तथा भोसले-वश का इतिहास वर्णित है।

सदानंद योगीन्द्र - ई 16 वीं सदी। वेदान्तसार नामक ग्रंथ के कर्ता। अत्यंत सरल होने से ग्रंथ लोकप्रिय है। वेदान्तशास्त्र-सिद्धान्त, सारसंग्रह एवं स्वरूपनिर्णय नामक ग्रथ भी आपने लिखे हैं।

सदाशिव - ई 18 वीं शती। उत्कल प्रदेश के धारकोटे नरेश के राजपुरोहित। "कविरत्न" की उपाधि से विभूषत। वृत्ति वैष्णव। "प्रमुदित-गोविन्द" नामक काव्य के प्रणेता।

सदाशिव दीक्षित (मखी) - ई. 18 वीं शती। भारद्वाज गोत्री। पिता-चोक्कनाथ, माता-मीनाक्षी। संन्यास ग्रहण। आध्यात्मिक काव्यरचना आत्मविद्याविलास तथा 6 सर्गों का "गीतसुन्दर" (सोमसुन्दर विषयक भक्तिगीत)। त्रावणकोर में रामवर्मा कार्तिक (ई 1755-98) के आश्रय में रहकर रचना- रामवर्म-यशोभूषणम्। इनके अतिरिक्त 'वसुलक्ष्मीकल्याण' और लक्ष्मीकल्याण नामक दो नाटकों के भी प्रणेता।

सनातन गोस्वामी - समय- 1490 से 1591 ई। रूप गोस्वामी के बडे भाई, किन्तु अपने छोटे भाई के बाद इन्होंने चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ली। षट् गोस्वामियों में से एक। ये भी बंगाल के नवाब के ऊंचे अधिकारी थे किन्तु उस पद को छोड इन्होंने भगवद्भक्ति को ही अपना जीवन-व्रत बना लिया। महाप्रभु की आज्ञा से ये वृंदावन में ही रहते थे। किन्तु प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन से विमुख होने के कारण एक

बार इतने विषण्ण हो गये थे कि श्री जगन्नाथजी के रथ के नीचे प्राण त्यागने का निश्चय किया परन्तु महाप्रभु चैतन्य के समझाने पर ये वृंदावन लौटे तथा भजन, श्रीकृष्ण की पूजा-अर्चा एवं ग्रंथ-लेखन में लीन रहने लगे। कहते हैं कि इनके पास प्रसिद्ध पारसमणि था जो इन्होंने किसी दरिद्री ब्राह्मण-याचक को दे डाला। इनके भक्तिमय जीवन की अनेक विलक्षण बाते भक्तजनों में प्रसिद्ध हैं।

रूप और सनातन ये दो भाई, चैतन्य-मत के शास्त्रकर्ता माने जाते हैं। रूपजी ने इस मत के लिये भक्तिशास्त्र के गूढ सिद्धांतों की विवेचना की और सनातनजी ने इस मत के आदरणीय नियमों एव आचारों का विस्तृत विवेचन ग्रथ-बद्ध किया। इस प्रकार सनातन गोस्वामी, चैतन्य सप्रदाय के कर्मकाड के निर्माता है। आज भी उन्हीं के नियमानुसार चैतन्य सप्रदाय के मंदिरों में पूजा-अर्चा की जाती है और मठ के साधुओं के जीवन की व्यवस्था का निर्धारण होता है।

सनातनजी का एतद्विषयक ग्रथ है "हरिभक्तिविलास"। इनके अन्य ग्रथों में बृहत्तोषिणी है जिसमें भागवत की मार्मिक व्याख्या की गई है। इन्होंने अपने भागवतामृत ग्रथ मे भागवत के सिद्धातों का सुदर विवरण प्रस्तुत किया है। इन्होने "मेघदूत" पर "तात्पर्यदीपिका" नामक टीका भी लिखी है।

रूपजी तथा सनातनजी की भक्ति एव विद्वत्ता से आकृष्ट होकर राजा-महाराजा तक दर्शनों के लिये वृदावन आया करते थे। सन् 1573 में अकबर बादशाह भी इनसे मिलने वृदावन गये थे।

अपने बधु रूपजी के समान ही इनके मृत्यु-सवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद है किन्तु आचार्य बलदेव उपाध्याय तथा डा डी सी सेन द्वारा प्रस्तुत प्रमाणो के आधार पर इन्हें शतायुषी मानना उचित प्रतीत होता है।

सन्मुख - मूल रचना अप्राप्य। सग्रहचूडामणि नामक इनकी रचना में प्राचीन लेखकों के मतो का विवरण तथा सदानन्द और शार्ङ्गदेव का उल्लेख है। अत: समय ई 14 वीं शती के बाद। अन्य रचना सगीत-चिन्तामणि। य दोनों सगीत विषयक रचनाए हैं।

सप्तगू आंगिरस - ऋग्वेद के दसवें मडल के 47 वें सूक्त के द्रष्टा। वैकुंठ इद्र नामक इद्रावतार की इसमें स्तुति है।

सप्तवध्री आत्रेय - अत्रि-कुल के एक सूक्त-द्रष्टा। ऋग्वेद के पाचवें मडल का 78 वां एव आठवें मडल का (विकल्प का) 72 वा सूक्त आपके नाम है। ऋग्वेद (10.39 9), अथर्ववेद (4 29 4) तथा बृहद्देवता में आपका उल्लेख है।

सायणाचार्य के अनुसार असुरों ने इन्हें पेटी में बन्द कर पत्नी से भेट भी असंभव कर दी थी। अश्विनीकुमारो ने इन्हें मुक्त किया। फिर इन्हें पुत्रप्राप्ति हुई।

समंतभद्र - ई पाचवीं सदी। दक्षिण भारत के चोलवंश के राजकुमार। पिता-कावेरी नदी के तटवर्ती नगर उरगपुर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) के क्षत्रिय राजा थे। जन्मनाम-शान्विवर्मा। कन्नड कवि आपका उल्लेख अत्यत आदर के साथ करते हैं।

बिहार, मालवा, सिध, पजाब में जाकर, आपने अन्य मतों के आचार्यों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की। आप जैन-वाङ्मय के प्रथम सस्कृत कवि और प्रथम दार्शनिक स्तुतिकार हैं। जिनसेन द्वारा वादित्व, वाग्मित्व, कवित्व और गमकत्व जैसे गुणसूचक विशेषणो से अलकृत।

एक कथा के अनुसार राजबलिकथा के अनुसार मुनि-दीक्षा के बाद मणुवकहल्ली नामक नगर में भस्मक-व्याधि से पीडित हुए। गुरु की आज्ञानुसार व्याधि से मुक्त होने का प्रयत्न किया। फलत वाराणसी मे शिवकोटि के राजा भीमलिग नामक शिवालय में शिवजी को अर्पण किए जाने वाले नैवेद्य को शिवजी को ही खिला देने की घोषणा की और राजा की आज्ञा से शिवालय के किवाड बद कर उस नैवेद्य को स्वयं खाकर क्षुधा शान्त करने लगे। शनै शनै व्याधि शान्त होने लगी और फलत नैवेद्य बचने लगा। तब संदेहग्रस्त होकर राजा ने समन्तभद्र से शिवपिण्डी को प्रणाम करने का आग्रह किया। प्रणाम करने के लिये समन्तभद्र ने "स्वयभू-स्तोत्र" की रचना की और आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की स्तुति करते हुए वन्दना की। वन्दना करते ही शिवपिण्डी फट गई और उसमे से चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति प्रकट हुई। इस आश्चर्यकारी घटना को देखकर राजा प्रभावित हुआ और जैनधर्म में दीक्षित हो गया। सनगण पट्टावली तथा श्रवण बेलगोला-शिलालेख के अनुसार यह घटना काची मे हुई। भारतीय इतिहास में शिवकोटि नाम का कोई राजा नहीं हुआ। लगभग प्रथम शताब्दी मे शिवस्कन्धवर्मन नामक राजा अवश्य हुआ। यदि शिवकोटि और शिवस्कन्धवर्मन का व्यक्तित्व एक रहा हो तो इस कथा का सबध समन्तभद्र के साथ घटित हो सकता है। काची को दक्षिण काशी कहा जाता रहा है।

चन्नराय पट्टण ताल्लुके के अभिलेख में समन्तभद्र को श्रुतकेवली के समान कहा गया है। वे कुन्दकुन्दान्वयी थे। तत्त्वार्थसूत्र के मगलाचरण "मोक्षमार्गस्य-नेतारम्" पर "आप्तमीमासा" नामक दार्शनिक ग्रंथ लिखने वाले समन्तभद्र का समय ई द्वितीय शताब्दी माना जाता है।

रचनाए- बृहत्-स्वयम्भू-स्तोत्र, स्तुति-विद्या-जिनशतक, देवागम-स्तोत्र, आप्तमीमासा, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्डश्रावकाचार, जीवसिद्धि, तत्त्वानुशासन, प्राकृत-व्याकरण, प्रमाणपदार्थ, कर्मप्राभृत-टीका तथा गन्धहस्ति-महाभाष्य। इनमें से प्रथम पांच ग्रथ ही उपलब्ध होते हैं जिन के द्वारा जैन-दर्शन के क्षेत्र में समन्तभद्र का विशेष योगदान रहा है।

समयसुन्दरसूरि - खरतरगच्छीय सकलचन्द्र सूरि के शिष्य।

समय-ई 17 वीं शती। ग्रंथ-दशवैकालिक-दीपिका (स. 1691) (श्लोक 3450) स्तम्भतीर्थ (खंभात) में लिखित।

समरपुंगव दीक्षित - पिता-वेंकटेश। माता-अनंतम्मा। गुरु-अप्पय दीक्षित। समय-ई. 16 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। "तीर्थ-यात्रा-प्रबंध-चम्पू" के रचयिता। इन्हीं का दूसरा ग्रंथ "आनंदकंद-चम्पू" है (जो अप्रकाशित है)। ये वाधूल गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म दक्षिण के वटवनाभिधान नामक नगर में हुआ था। भ्राता-सूर्यनारायण। "तीर्थ-यात्रा-प्रबंध-चम्पू" का प्रकाशन, काव्यमाला (36) निर्णय सागर प्रेस, मुंबई से 1936 ई. में हो चुका है।

सरफोजी भोसले - तंजौर के व्यकोजीराव भोसले के द्वितीय पुत्र। समय-ई. 18 वीं शती। रचना-कुमारसम्भवचम्पू।

सर्वज्ञमित्र - काश्मीर-निवासी स्तोत्रकवि। ई. 8 वीं शती का पूर्वार्ध। कल्हण द्वारा उल्लिखित। कथ्यनिर्मित विहार में रहते थे। अपनी रचना स्रग्धरास्तोत्र द्वारा बौद्ध देवी तारा की स्तुति कर, अपने स्वत के साथ 100 लोगों को नरबलि होने से बचाया। एक दरिद्र ब्राह्मण को द्रव्य देने के लिये, अपने को एक राजा को बेच दिया था। यही राजा, इनके समवेत 100 नरबलि देने के प्रयास में था। तारादेवी की स्तुति से, राजा का प्रयास असफल रहा।

सर्वज्ञात्ममुनि - अद्वैत सम्प्रदाय के एक प्रमुख आचार्य। आप "नित्यबोधाचार्य" भी कहलाते थे। गुरु थे सुरेश्वराचार्य।

संक्षेपशारीरक, पचप्रक्रिया एवं प्रमाणलक्षण नामक आपने तीन ग्रथ हैं। सक्षेपशारीरक, ब्रह्मसूत्रशाकरभाष्य के आधार पर लिखा गया ग्रथ है। उसमें 1240 श्लोक हैं। चार अध्यायों में वह विभाजित है। उसमें प्रतिबिंबवाद का पुरस्कार किया गया है। सक्षेपशारीरक पर नृसिहाश्रम की तत्त्वबोधिनी, मधुसूदनसरस्वती की सारसग्रह, पुरुषोत्तम दीक्षित की सुबोधिनी एवं रामतीर्थ की अन्वयार्थ-प्रकाशिका नामक टीकाएं प्रसिद्ध हैं।

सर्वानन्दसूरि - सुधर्मगच्छीय जयसिंह नामक विद्वान थे, जिनकी पट्टपरम्परा में क्रमशः चन्द्रप्रभसूरि, धर्मघोषसूरि, शीलभद्रसूरि, गुणरत्नसूरि और सर्वानन्दसूरि हुए। रचनाए- पार्श्वनाथचरित (सं.1291/8000 स्लोक) और चन्द्रप्रभचरित (सं. 1302/13 सर्ग, 6141 श्लोक)। मूल कथा और अवान्तर कथाएं चमत्कारपूर्ण हैं।

सर्वोरुशर्मा त्रिवेदी - सर विलियम जोन्स की प्रेरणा से रचना-विवादसारार्णवः।

सवाई ईश्वरीसिंह - समय-ई. 18 वीं शती। जयपुर के महाराजा थे। रचना-"भक्तमाला" नामक संस्कृत काव्य।

सव्य आंगिरस - ऋग्वेद के पहले मंडल के 44 से 51 तक के सात सूक्तों के द्रष्टा। इद्र के पराक्रम का वर्णन इनमें है।

सहस्रबुद्धे - धारवाड (कर्नाटक) निवासी। रचनाएं- "अब्दुल-मर्दन" (2) "प्रतिकार" नामक दो नाटक (रचनाकाल सन् 1933 के लगभग) (3) काकदूतम् (4) चायगीता।

सांबशिव - ई 18 वीं शती। मद्रास के गोपालसमुद्र नामक ग्राम के निवासी। शृंगारविलास नामक भाण के रचयिता।

सांब दीक्षित हारील - ई 20 वीं शती। कर्नाटक-निवासी। पिता- दामोदर। व्याकरण में निपुण। श्रौत तथा स्मार्त कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ। कृतियां- नित्यानन्दचरित (काव्य), अग्निसहस्र व महागणपति-प्रादुर्भाव (नाटक)।

सागरनन्दी - इनके प्रमुख ग्रन्थ का नाम है- "नाटकलक्षण-रत्नकोश"। सर्वप्रथम 1922 ई मे सिल्वा लेवी ने नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार पर इसका प्रकाशन जर्नल आफ् एशियाटिक सोसाइटी में किया था। सन् 1937 में श्री. डिल्लन ने इस ग्रथ को लन्दन से प्रकाशित करवाया। बाबूलाल शुक्ल के सम्पादन मे हिन्दी टीका सहित यह चौखम्बा से प्रकाशित हुआ है। सागरनदी, धनजय तथा भोज के परवर्ती आचार्य थे। इनके ग्रथ में हर्षवार्तिक, मातृगुप्त गर्ग, कश्यकुट्ट, नखकुट्ट तथा बादरि का उल्लेख हुआ है जिनसे पता चलता है कि इन्होंने इन आचार्यों के सिद्धान्तों का अनुशीलन करने के पश्चात् अपना ग्रन्थ लिखा होगा। इन्होंने कारिका के रूप में यह ग्रन्थ लिखा है जिसमें कही-कहीं भरतकृत नाट्यशास्त्र के श्लोक मूलत. उद्धृत किये गये हैं।

सागरनन्दी, अभिनवगुप्त के मत के प्रतिकूल, वर्तमान नरपति के चरित्र को नाटक का विषय बनाने के पक्ष मे है। वे रसों की दृष्टि से नाट्यवृत्तिया के विभाजन के अवसर पर कोहल का अनुसरण करते है, भरत का नहीं। कहीं-कहीं वे धनजय से भी मतभेद प्रकट करते हैं। इन्होंने उपरूपक के विभिन्न प्रकारों के उदाहरण-ग्रन्थों के नाम गिनवाए हैं। "नाटकलक्षण-रत्नकोश" मध्ययुग का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। अन्य कृतिया- "जानकी-राघव" (नाटक) तथा छदशास्त्र, संगीत व निघटु विषयक ग्रथ।

सातवळेकर, श्रीपाद दामोदर (वेदमूर्ति) - जन्म-सावतवाडी (महाराष्ट्र)। चित्रकला में अत्यत निपुण थे। 40 वर्ष की आयु में चित्रकार का व्यवसाय छोडकर वेदाध्ययन में रममाण हुए। राष्ट्रीय वृत्ति के कारण तत्कालीन अग्रेजी सरकार द्वारा सतत उपद्रव हुआ। अतः भारत में अन्यान्य स्थानों में निवास करना पडा। औन्ध नरेश भवानराव पंत प्रतिनिधि के आश्रय में वेद प्रचार का कार्य किया। आपने सपादन की हुई चारों वेदों की दैवतसंहिता अपूर्व है। वेद और रामायण के मराठी अनुवाद प्रकाशित किए। गोज्ञानकोश में गोविषयक वैदिक मत्रों का सकलन किया है। पुरुषार्थ (मराठी) और वैदिक धर्म (हिंदी) मासिक पत्रिकाओं द्वारा वैदिक विचारों का प्रचार किया। पुरुषार्थबोधिनी नामक आपकी भगवद्गीता की हिंदी टीका अत्यत लोकप्रिय है। "सस्कृत स्वयंशिक्षिका" नामक

आपकी बालबोध पुस्तकमाला सर्वत्र लोकप्रिय हुई है। स्वाध्याय मंडल नामक आपने स्थापन की हुई सस्था के द्वारा सस्कृत की प्राथमिक परीक्षाएं होती हैं। आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक सघ के कार्यकर्ता थे।

सामन्त चूडामणि - ई 12 वीं शती। बगाल-निवासी। "श्यामलचरित" नामक काव्य के रचयिता।

सामराज दीक्षित - ई 17 वीं शती। मथुरा-निवासी। बुदेलखड के राजा आनदराय के आश्रित। पिता-नरहरि विन्दुपुरन्दर। पुत्र-कामराज (शृगार-कलिका के लेखक)। पौत्र-व्रजराज (रसमजरीटीका के लेखक)। प्रपौत्र-जीवराज (रसतरंगिणी की टीका के प्रणेता)।

कृतिया- श्रीदामचरित (नाटक), धूर्तनर्तक (प्रहसन), रतिकल्लोलिनी (कामशास्त्र विषयक ग्रन्थ), शृंगारामृत-लहरी, त्रिपुरसुन्दरी-मानस-पूजन-स्तोत्र, काव्येन्दु-प्रकाश (काव्यशास्त्र-विषयक), आर्यात्रिशती और अक्षरगुम्फ।

सायणाचार्य - ई 14 वीं सदी। एक कूटनीतिज्ञ, सग्रामशूर, प्रकांड पंडित और वेदभाष्यकार। जन्म आध्र मे हुआ। पिता-मायण एव माता-श्रीमती। माधवाचार्य आपके बडे भाई थे। छोटे बाई थे भोगनाथ। आपके विद्यागुरु तीन थे - (1) शृगेरीपीठ के स्वामी विद्यातीर्थ, (2) भारतीकृष्णतीर्थ और (3) श्रीकठनाथ। 31 वर्ष की आयु में आप कपण के महामत्री बने। कंपण, उदयगिरि (जिला नेल्लोर, आन्ध्र) मे विजयनगर सम्राट हरिहर के प्रतिनिधि थे। कपण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सगम (द्वितीय) को योग्य मार्गदर्शन कर आपने उनका राज्य सम्हाला। उनके शासन के विषय मे कहा है कि-

"सत्य महीं भवति शासति सायणार्ये।
सम्प्राप्तभोगसुखिन सकलाश्च लोका ।।"

अर्थ- सायणाचार्य राज्य का शासन जब कर रहे थे तब सभी को उपभोग के सुख प्राप्त हुए।

चोल देश के राजा चप ने जब सगम को छोटा जानकर आक्रमण किया, तो सायण ने सेना का नेतृत्व कर चप को पराजित किया। "अलकारसुधानिधि" में इसका उल्लेख है।

सगम के राज्य में 48 वर्ष की आयु तक रहने के बाद आप सम्राट बुक्क के राज्य में आये। वहा भी प्रधानपद आपने सम्हाला।

सायणाचार्य ने कुछ लोकोपयोगी ग्रथो की रचना भी की। वे हैं- सुभाषितसुधानिधि, आयुर्वेदसुधानिधि, अलकारसुधानिधि, पुरुषार्थसुधानिधि, प्रायश्चित्तसुधानिधि और धातुवृत्तिसुधानिधि। यंत्रसुधानिधि नामक ग्रथ भी आपने लिखा है।

सायणाचार्य वेदभाष्यकार के रूप मे अजरामर हैं। आपने भाष्यलेखन के लिये पहले कृष्ण यजुर्वेद का चुनाव किया। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के होने से इसे आपने अग्रपूजा का सम्मान दिया होगा। तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय आरण्यक पर भी आपने भाष्य लिखे। यजुर्वेद का भाष्य पूर्ण होने पर आपने ऋग्वेद का क्रम लिया। उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण एव ऐतरेय आरण्यक पर भी भाष्य लिखे। फिर सामवेद व अथर्ववेद पर भाष्य लिखे। शतपथ ब्राह्मण पर लिखित भाष्य आपकी अंतिम रचना रही। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में याज्ञिक-पद्धति को महत्त्व दिया है।

सार्वभौम - ई 16 वीं शती। गुरु-विश्वनाथ चक्रवर्ती। पुत्र-दुर्गादास। कवि कर्णपूर लिखित अलकार-कौस्तुभ के टीकाकार।

सिंधुक्षित् - ऋग्वेद के दसवें मडल के 75 वें सूक्त के द्रष्टा। यह सूक्त छोटा है किन्तु सिन्धु नदी के नाम पर जाना जाता है। इस सूक्त की पाचवी ऋचा में गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), मरुद्वृधा तथा आर्जिकीया नदियों का उल्लेख है। इसी प्रकार छठवीं ऋचा में कुभा (काबुल), सुमूर्त, रसा आदि नदियों का उल्लेख है। इनकी एक ऋचा इस प्रकार है-

प्र ते रदद्वरुणो यातवे पथ सिन्धो यद्वाजा अभ्यद्रवस्त्वम्
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्र जगतामिरज्यसि

अर्थात् पर्वत शिखर से अवतीर्ण होनेवाली जगत्स्वामिनी हे सिन्धु नदी, उर्वरा प्रदेश में तेरा प्रवाह वरुण देवता ने ही तैयार किया है। भौगोलिक दृष्टि से यह सूक्त महत्त्वपूर्ण है।

सिद्धसेन दिवाकर - ई 5 वीं शती-उत्तरार्ध। पिता-कात्यायन गोत्रीय ब्राह्मण। माता-देवश्री। जन्मस्थान-उज्जयिनी। सिद्धसेन ने वृद्ध वादिसूरि मे वादविवाद मे पराजित होने पर उनसे गुरु-दीक्षा ली। दीक्षानाम था कुमुदचन्द्र।

इस सबध में एक आख्यायिका इस प्रकार बतायी जाती है कि सिद्धसेन को अपनी विद्वत्ता और पाडित्य पर बडा गर्व था। उन्होने यह प्रतिज्ञा की कि जो उन्हे वाद-विवाद में परास्त कर देगा उसे वे गुरु मान लेंगे। सिद्धसेन अपने इस प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिये दिग्विजय करते गये। उन्हें यह जानकारी मिली कि पश्चिम भारत मे एक विख्यात जैन आचार्य रहते हैं। उनकी खोज करने वे निकल पडे। सूरत के निकट जगल में उनकी भेंट वृद्धवादी से हुई। उन्हें शास्त्रार्थ की चुनौती दी। वृद्धवादी ने कहा कि उन्हे चुनौती मजूर है, किन्तु जय-पराजय का निर्णय देने वाले किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति में ही वे शास्त्रार्थ करेंगे। वहा पास में ही एक ग्वाला अपने पशु चरा रहा था। सिद्धसेन ने उसे अपने पास बुलाया और उसे पहल की और वे लगातार बोलते गये। उस ग्वाले की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसे लगा यह ब्राह्मण अर्ध-पागल-सा है। सिद्धसेन का भाषण समाप्त होने पर वृद्धवादी ने उस ग्वाले के पास की ढोलक अपने हाथों में ली और उसके ताल पर उन्होंने एक गीत गाया जिसका अर्थ था- किसी को

कष्ट न पहुंचायें, चोरी न करें, परस्त्री से संग न करें, यथाशक्ति गरीबों को दान दें। जो इस रास्ते पर चलेगा उसका ही अन्त में उद्धार होगा। उस ग्वाले को यह गीत बहुत अच्छा लगा। उसने गीत समाप्त होते ही वृद्धवादी के चरणों में सिर झुका कर कहा- आपकी बात मुझे आसानी से समझ में आ गई और इन सिद्धसेन महाराज की बात मेरे पल्ले नहीं पडी। जय तो आपकी ही हुई।

सिद्धसेन इस घटना का वास्तविक अर्थ समझ गये। उनका घमंड चूर हो गया और उन्होंने जैन आचार्य वृद्धवादी को गुरु मान कर उनसे दीक्षा ली।

सिद्धसेन दिवाकर ने कुल 32 ग्रथों की रचना की है जिनमें से 21 ग्रंथ आज भी उपलब्ध हैं। इनमें न्यायावतार, सन्मतितर्कसूत्र, तत्त्वार्थटीका, कल्याण-मदिर-स्तोत्र तथा द्वात्रिंशिका-स्तोत्र विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हे जैन न्यायशास्त्र का प्रणेता माना जाता है। प्रमाण के स्वरूप का व्यवस्थित विवचेन और नयवाद के रूप मे जैन-तर्कशास्त्र का विस्तृत विवेचन उनके मौलिक कार्य हैं। डा विद्याभूषण के अनुसार सिद्धसेन दिवाकर 5 वीं शताब्दी के अत में मालवा के राजा यशोधर्म देव के आश्रित थे, वहीं उन्होंने अपने सभी ग्रथों की रचना की।

नित्यानन्द - सिद्धान्तराज नामक ग्रथ के रचयिता। रचना काल- 1639 ई.। यह ग्रथ ग्रह-गणित विषयक अत्यत महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें वर्णित विषयो के शीर्षक इस प्रकार हैं-

मीमासाध्याय, मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, भू-ग्रहयूत्यधिकार, उन्नताश-साधना-धिकार, भुवनकोश, गोलबंधाधिकार और यात्राधिकार।

सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय - जन्म-सन् 1918 में, पूर्व बगाल में। शिक्षा-दीक्षा कलकत्ते मे। एम् ए , डी लिट्. तथा काव्यतीर्थ। संस्कृत साहित्य परिषद के सचिव। वर्धमान वि वि मे सस्कृत के प्रध्यापक।

कृतियां - धरित्रीपति-निर्वाचनम्, अथ किम्, ननाविताडन और स्वर्गीय प्रहसनम्। इनके अतिरिक्त कुछ अग्रेजी, बगला तथा संस्कृत में कई अनुसधानात्मक कृतिया भी इनके नाम हैं।

सिस्टर बालम्बाल - मद्रास निवासी। इन्होंने सरल-सुगम शैली में बालों के लिये "आर्यारामायणम्" की रचना की है।

सीताराम आचार्य - ई. 20 वीं शती। "भैमीनैषधीय" नामक रूपक के रचयिता।

सीताराम शास्त्री - काकरपारती (आंध्र) के निवासी। रचनाएं- (1) चम्पूरामायणम् (2) सीतारामदयालहरी (खण्ड काव्य)।

सीताराम सूरि - समय-ई. 1836-1905। "कविमनोरंजक-चंपू" नामक काव्य के रचयिता। जन्म-तिरूनेलवेलि जिले के तिरुकुरुडिग नामक ग्राम में। ग्रंथ का रचना काल- 1870 ई। इसका प्रकाशन 1950 ई. में हुआ।

सीरदेव - ई 13 वीं शती का पूर्वार्ध। बगाली के वैयाकरण। "परिभाषावृत्ति" (पाणिनि-कृत पारिभाषिक शब्दावली पर वृत्ति) के रचयिता। यह ग्रथ "बृहत्परिभाषावृत्ति" के नाम से भी जाना जाता है। इस पर अनेक टीकाए लिखी गई, किंतु उनमें से केवल तीन टीकाए हस्तलिखित स्वरूप में उपलब्ध हैं।

सुंदरदास - ई 20 वीं शती। पिता-रामानुज। रचनाएं- कोमलाम्बाकुचशतक, हनुमद्विलास और अष्टप्रास।

सुंदरदेव - ई 17 वीं शती। इन्होंने 20 से अधिक तत्कालीन कवियो के सुभाषित प्रभूत मात्रा में सकलित किये। अकबर, निजामशाह, शाहजहां जैसे यवन शासकों की स्तुति के श्लोक भी संग्रहित करना एक विशेषता है। कहीं-कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग भी सस्कृत के साथ इन्होंने किया है। ग्रथनाम- सुनीतिसुदरम्।

सुंदर भट्टाचार्य - इन्होंने अपने गुरु देवाचार्य के "सिद्धात-जाह्नवी" नामक ग्रंथ पर "सेतु" नामक विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत किया। व्याख्यान की प्रथम तरग, (चतु सूत्री तक) प्राप्त तथा मुद्रित। शेष भाग अभी तक अनुपलब्ध है। देवाचार्य तक निंबार्क-सप्रदाय की एक ही शिष्य-परंपरा रही। पश्चात् दो शाखाए हुई। प्रधान शाखा में सुदर भट्टाचार्य तथा दूसरी शाखा में व्रजभूषण देवाचार्य प्रसिद्ध हैं।

सुंदरराज (सुंदरराजाचार्य) - केरल-निवासी। कुल वैखानस। रामानुज सम्प्रदायी। जन्म-सन 1841 में, इलत्तुर अग्रहार में। मृत्यु सन् 1905 मे। पिता-वरदराज। गुरु-रामस्वामी शास्त्री तथा स्वामी दीक्षित। एट्टियपुरम् तथा त्रावणकोर के राजाओं द्वारा सम्मनित।

कृतिया- रामभद्रचम्पू, रामभद्रस्तुतिशतक, कृष्णार्याशतक, नीति-रामायण काव्य तथा पाच नाटक-स्नुषा-विजय, हनुमद्विजय, रसिकरजन, वैदर्भी-वासुदेव तथा पद्मिनी-परिणय।

सुंदरवल्ली - ई 19 वीं शती। मैसूर निवासी नरसिंह अय्यगार की कन्या तथा कस्तूरी रगाचार्य की शिष्या। रचना-रामायणचम्पू (6 सर्गों का काव्य)।

सुन्दरवीरराघव - तिरुवल्लूर के कस्तूरी रगनाथ का पुत्र। रचनाए- (1) भोजराजाङ्कम, (2) अभिनवराघवम् (3) रम्भारावणीयम्।

सुंदरेश शर्मा - ई 20 वीं शती। तजौर-निवासी। रामभक्त। तंजौर में संस्कृत एकेडेमी के प्रवर्तक। कृतिया- त्यागराज-चरित (महाकाव्य), रामामृत-तरंगिणी (स्तोत्र-सग्रह), शृगार-शेखर (भाण) राघव-गुणरत्नाकर और प्रेमविजय (नाटक)।

सुकीर्ति काक्षीवत् - ऋग्वेद के 10 वें मंडल के 131 वें सूक्त के द्रष्टा। इन्द्र व अश्विनीकुमार इस सूक्त की देवता है।

सुखमय गंगोपाध्याय - ई 20 वीं शती। बगाल-निवासी। एम ए ,बी.एड्. काव्यतीर्थ, व्याकरणतीर्थ व स्मृतितीर्थ। "पातिव्रत्य"

तथा "विद्यामन्दिर" नामक रूपकों के प्रणेता।

सुतंभर आत्रेय - अत्रिकुल में जन्म। ऋग्वेद के पाचवे मडल के 11 से 14 वें क्रमाकों के सूक्तों के द्रष्टा। इनके सूक्तों का विषय है-अग्निस्तुति।

सुदर्शनपति - ई 20 वीं शती। "सिहल-विजय", "पादुकाविजय" तथा "सत्यचरितम्" नामक ऐतिहासिक नाटको के प्रणेता। ये नाटक उत्कल की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं। आप जगन्नाथपुरी सस्कृत विद्यालय म अध्यापक थे।

सुदर्शनसूरि - ई 14 वीं शताब्दी का मध्यकाल। तामिलनाडु में जन्म। अपरनाम वेदव्यास। गुरु-वरदाचार्य। हारीत-कुल में उत्पन्न "वाग्-विजय" के पुत्र। द्रविड ब्राह्मण। रामानुजाचार्य के भागिनेय व शिष्य।

श्रीरामानुजाचार्य ने अपने दर्शन-ग्रथो में भागवत के सिद्धान्तो का यथावसर उल्लेख किया है, परन्तु सप्रदायानुसारिणी टीका लिखने का प्रयास किया सुदर्शन सूरि ने। ये रामानुजाचार्य के दार्शनिक ग्रंथों के प्रौढ व्याख्याकार हैं। आपने, गुरु वरदाचार्य से श्रीभाष्य का अध्ययन कर, नितात लोकप्रिय "श्रुति-प्रकाशिका" टीका श्रीभाष्य पर निबद्ध की। इनकी भागवत-व्याख्या का नाम है- "शुकपक्षीय"। इनके मतानुसार यह टीका शुकदेवजी के विशिष्ट मत का प्रतिपादन करती है। अष्टटीकामवलित भागवत के सस्करण में यह केवल दशम, एकादश एव द्वादश स्कधो पर ही उपलब्ध है।

कहा जाता है कि जब दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़र ने श्रीरङ्गम् पर 1367 ई में आक्रमण किया था, तब उस युद्ध मे ये मारे गये थे। फलत इनका समय ई 14 वीं शताब्दी का मध्यकाल (लगभग 1320 ई 1367 ई) है।

सुधाकर शुक्ल - जन्मस्थान-क्योटरा, जिला-इटावा, उत्तरप्रदेश। गुरु-प वनमालीलाल दीक्षित और प ललितप्रसाद। काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य और एम ए की उपाधिया प्राप्त होने के पश्चात् दतिया (म प्र) मे निवास किया। आपने गाधीसौगन्धिक (20 सर्ग) और भारतीस्वयंवर (12 सर्ग) नामक दो सस्कृत के महाकाव्यो के अतिरिक्त चन्द्रबाला नामक (20 सर्गो का) एक हिंदी महाकाव्य, देवदूतम् तथा केलिकलश नामक दो सस्कृत खडकाव्य तथा किरनदूत और कसक नामक दो हिंदी खडकाव्य लिखे है। "लवगलता" नामक 10 अको का एक नाटक भी आपने लिखा है। आपके "गान्धीसौगन्धिकम्" महाकाव्य को अ भा सस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा और कसक नामक हिंदी खड काव्य को विन्ध्यप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

सुधाकलश - राजशेखर के शिष्य। जैन पडित। रचना-संगीतोपनिषद् (ई 1323) और उसकी टीका (ई 1349)।

सुनाग - कात्यायन से उत्तरकालीन वैयाकरण। वार्तिकों के प्रवचनकर्ता। इन्होंने पाणिनीय धातुपाठ पर भी कोई व्याख्या लिखी थी। सायणभाष्य में सौनाग-मत का निर्देश अनेक स्थानों पर किया गया है।

सुपर्ण तार्क्ष्यपुत्र - एक सूक्त द्रष्टा। ऋग्वेद के 10 वें मडल के 144 वे सूक्त की रचना आपने की है। इन्द्र इस सूक्त की देवता है।

सुबन्धु - रचना-वासवदत्ता (गद्यकथा)। बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रारम्भ में कुछ ग्रथ तथा उनके लेखकों का उल्लेख किया है, उनमे वासवदत्ता का समावेश है। वासवदत्ता में विक्रमादित्य की मृत्यु से काव्य सौन्दर्य-क्षति होने की बात लेखक ने कही है। भामह ने वासवदत्ता की कथावस्तु लोकशास्त्र-विरुद्ध होने की टीका की है। वासवदत्ता की कथा पूर्वकाल से रसिकों मे प्रिय होने का सदर्भ पातजल-महाभाष्य में भी मिलता है। वासवदत्ता पढने वाले, वहा 'वासवदत्तिक' बताए गए हैं पर सुबन्धु उसका लेखक होना असम्भव सा प्रतीत होता है। सुबन्धु (वासवदत्ता) का उल्लेख वामन के काव्यालकार में मिलता है तथा बाण और भवभूति के शब्द-प्रयोगों का अनुकरण वासवदत्ता मे पाया जाता है यह बात विवाद्य नहीं। इससे सुबन्धु, बाण भवभूति और भामह के बाद तथा वामन के पूर्व हुए होंगे यह अनुमान तर्कसगत है। तदनुसार सुबधु का समय ई 8 वी शती का उत्तरार्ध होना सभव है।

सुब्बराम - ई 20 वीं शती। "मेघोदय" नामक नाटक के रचयिता।

ए.व्ही. सुब्रह्मण्य अय्यर - प्राचार्य आर डी सस्कृत महाविद्यालय मदुरै। रचना-पद्यपुष्पाजलि (कुछ चुनी अग्रेजी कविताओं का अनुवाद)।

सुब्रह्मण्य शर्मा - ई 20 वीं शती। "समीहित-समीक्षण" नामक प्रहसन के प्रणेता।

सुब्रह्मण्य सूरि (प्रा) - पिता-चौक्कनाथ अध्वरी। पुदुकोट्टा के राज कालेज मे सस्कृत के प्राध्यापक (सन् 1894 से 1910 तक)। जन्म-ई 1850। स्थान-कडायकुडि। विविध शास्त्रो तथा कलाओ की निपुणता के कारण दक्षिण भारत में प्रसिद्ध व्यक्ति। रचनाए- रामावतार, विश्वामित्रायाग, सीताकल्याण, रुक्मिणीकल्याण, विभूतिमाहात्म्य, हल्लीशमजरी, दोलागीतानि, वल्लीबाहुलेय (नाटक), शन्तनुचरित, मन्मथमथन (भाण), बुद्धिसन्देश, हरतीर्थेश्वरस्तुति, शुकसूक्तिसुधारसायनम् आदि 18 ग्रथ। इन्हे सामवेद कठस्थ था, और ये साम-गायन तथा वक्तृत्व एव चित्रकला मे निपुण थे।

सुभूतिचन्द्र - ई स 1062 से 1172 के मध्य। बगालनिवासी। सभवत मगध के आनन्दगर्भ के उत्तराधिकारी। कृतिया-कामधेनु (अमरकोश की टीका) और नामलिगानुशासन।

सुमति - सन्मतिसूत्र के टीकाकार। तत्त्वसंग्रह में प्रत्यक्ष-लक्षण-समीक्षा के सदर्भ में शान्तरक्षित तथा उनके

शिष्य कमलशील द्वारा उल्लिखित। समय-लगभग ई 8 वीं शताब्दी। प्रमाण और नय के विशिष्ट विद्वान्।

सुमतिकीर्ति - इनके गुरु-ज्ञानभूषण ने कर्मकाण्ड की टीका सुमतिकीर्ति की सहायता से प्रस्तुत की। रचनाएं- कर्मकाण्डटीका और पंचसंग्रहटीका। इनके अतिरिक्त इनकी कुछ हिन्दी रचनाएं भी उपलब्ध हैं।

सुमतीन्द्र - रचना-सूमतीन्द्र-जयघोषणा। सुरीन्द्रतीर्थ और वेंकटनारायण के शिष्य। माध्वसम्प्रदायी। इन्होंने शाहजी-स्तवन के लिये यह रचना की थी। राजा ने तिरुवाडमरुदूर नामक ग्राम में इन्हें ग्उ प्रदान किया।

सुमित्र कौत्स - ऋग्वेद के दसवें मडल के 105 वें सूक्त के द्रष्टा। इन्द्र की स्तुति में रचे गए इस सूक्त में इन्द्र की यज्ञप्रियता, भक्तों पर वह कैसे कृपादृष्टि रखता है तथा द्वेष करने वालों के लिये वह किस प्रकार घातक है आदि का विवरण दिया गया है। इनकी एक ऋचा इस प्रकार है

अप योरिन्द्र पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान्।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान्।।

अर्थात् - पातक के कारण जो वासनाएं उत्पन्न होती हैं, इन्द्र उनका नाश करता है। मर्त्य (मानव) का स्वभाव कुछ ऐसा है कि वह परिश्रम नहीं करना चाहता साथ ही वह डरपोक भी है परन्तु यदि मनुष्य शुभकार्य की ओर प्रवृत्त होगा तो वह बडा धैर्यवान् बनेगा।

सुरेन्द्रमोहन पंचतीर्थ - ई 20 वी शती। कलकत्ता-निवासी। कृतिया- वैद्यदुर्ग्रह, काचनमाला, पंचकन्या, प्रजापते पाठशाला, अशोककानने जानकी, वणिक्सुता आदि कई बालोचित लघु नाटक।

सुरेश्वर - ई 11 वीं शती। अपर नाम सुरपाल। बगाल-नरेश रामपाल के अतरंग वैद्य। पिता-भद्रेश्वर। "शब्दप्रदीप" नामक आयुर्वेदिक वनस्पतिकोश के कर्ता। अन्य- कृतिया - वृक्षायुर्वेद और लोहपद्धति।

सुरेश्वराचार्य - ई 8 वीं शती। श्रीशकराचार्य के प्रमुख चार शिष्यों में से एक। पूर्वाश्रम में इनका नाम विश्वरूप था। यह माना जाता था कि सुरेश्वराचार्य मंडनमिश्र का चतुर्थाश्रमी नाम है। मंडनमिश्र कर्मकाडी मीमांसक थे जिन पर वादविवाद में शकराचार्य ने विजय पायी है और उन्हें संन्यास-दीक्षा देकर उनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा। इस प्रकार की जानकारी "शांकर-दिग्विजय" में दी गयी है। किन्तु हाल मे किये गये सशोधन से यह तथ्य सामने आया है कि मडन-मिश्र और सुरेश्वराचार्य, पृथक् तथा भिन्नकाल थे। शकराचार्य के आदेशो पर सुरेश्वराचार्य ने तैत्तिरीययोपनिषद्-भाष्य, बृहदारण्यक-भाष्य, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, पचीकरण आदि ग्रथों पर वार्तिकों की रचना की। इनके अलावा नैष्कर्म्य-सिद्धि नामक एक स्वतत्र ग्रंथ भी आपने लिखा। इसमें उन्होंने अविद्या के लक्षणों पर प्रकाश डाला है।

सुवेदा शैरिषी - शिरिद के पुत्र। ऋग्वेद के 10 वें मण्डल के 147 वें सूक्त के द्रष्टा। इस सूक्त का विषय है इन्द्रस्तुति।

सुश्रुत - एक आयुर्वेदाचार्य तथा शल्यतंत्र-वेत्ता। इनके निश्चित काल की जानकारी उपलब्ध नही है, तथापि ये वाग्भट के पूर्व तथा अग्निवेश के समकालीन रहे होंगे। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में "सौश्रुतपार्थवा" नामक पाठ लिखा है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि सुश्रुत पाणिनि के पूर्वकाल में रहे होंगे। "सुश्रुतसहिता" से पता चलता है कि ये विश्वामित्र के पुत्र थे, किन्तु एक अन्य मतानुसार सुश्रुत को शालिहोत्र का पुत्र माना गया है। इस सन्दर्भ मे लक्षण-प्रकाश में कहा है कि शालिहोत्र नामक ऋषिश्रेष्ठ से सुश्रुत प्रश्न करता है और इस प्रकार पुत्र द्वारा प्रश्न किये जाने पर शालिहोत्र कहता है।

सुश्रुत ने शस्त्र-शास्त्र की विद्या दिवोदास से प्राप्त की और "सुश्रुतसहिता" नामक ग्रन्थ लिखा। इसके पाच विभाग हैं- सूत्रस्थान, निदानस्थान, शरीरस्थान, चिकित्सास्थान और कल्पस्थान। शस्त्रोपचार तथा व्रणोपचार विषयक विस्तृत जानकारी इसमे दी गई है। वैद्यकी-क्षेत्र में त्वचारोपण-तत्र के भी सुश्रुत अच्छे जानकर थे। सुश्रुत-सहिता मे आगे चलकर "उत्तरस्थान" नामक एक और विभाग जोडा गया है। इसे मिलाकर इस ग्रथ को "वृद्धसुश्रुत" कहा जाने लगा।

सुहस्त्य घौषेय - घोषा के पुत्र। ऋग्वेद के 10 वें मडल के 41 वें सूक्त के द्रष्टा। इस सूक्त की देवता अश्विनी है।

सुहोत्र - भारद्वाज के पुत्र। ऋग्वेद के 6-31-32 वे सूक्तों के द्रष्टा। इन्द्र इन सूक्तो की देवता है।

सूर्य दैवज्ञ - ई 15 वीं शती। सामभाष्यकार। इनके ग्रथ अनुपलब्ध हैं। ग्रथकार ने "परमार्थप्रपा" नामक अपने गीताभाष्य मे कई बार सामसबधी अनेक मत्र और ग्रथ उद्धृत किये हैं। उनका रावण-भाष्य पर बडा विश्वास था। ग्रथकार ने भक्तिशतक और शतश्लोक-भाष्य नामक दो ग्रथ रचे थे।

सूर्यनारायण - अलूरिकुलोत्पन्न। माता-ज्ञानम्बा व पिता-यज्ञेश्वर। इन्होंने "एकदिन-प्रबन्ध" नामक काव्य की रचना एक ही दिन में की थी। यह इसकी विशेषता है। काव्य का वर्ण्य विषय है महाभारत की कथा।

सूर्यनारायणाध्वरी - ई 19-20 वी शती। "सीता-परिणय" नामक काव्य के रचयिता।

सोंठीभद्रादि रामशास्त्री - ई 1856 से 1915। पीठापुरम् (आध्र) के निवासी। रचना-शम्बरासुरविजय-चम्पू, श्रीरामविजयम् काव्य और मुक्तावली नाटिका।

सोढ्ढल - समय-ई 13 वीं शताब्दी का मध्य। आयुर्वेद विषयक "गदनिग्रह" व "गुणसग्रह" नामक दो ग्रथों के प्रणेता। ये गुजरात के निवासी तथा जोशी थे। गद-निग्रह

आयुर्वेद शास्त्र का ग्रंथ है, और गुण-संग्रह चिकित्सा-ग्रथ है। सोड्ढल ने अपने "गुण-संग्रह" में स्वयं को वैद्यनंदन का पुत्र व सर्वदयालु का शिष्य बतलाया है। "गद-निग्रह" का हिंदी अनुवाद सहित (दो भागों में) प्रकाशन, चौखंबा विद्या-भवन से हो चुका है।

सोड्ढल - ई. 11 वीं शती का पूर्वार्ध। वलभी (गुजरात) के कायस्थ-वंश में जन्मे सोड्ढल का पालनपोषण, पिता की मृत्यु के बाद लाटाधिपति गंगाधर नामक चालुक्य राजपुत्र के आश्रय में हुआ। बीच के कालखंड में सोड्ढल शिलाहार-वश के चित्त राजा के आश्रय में रहे, जहा उन्हें "कविप्रदीप" की उपाधि से विभूषित किया गया। आगे चलकर लाटनपति वत्सराज के निमंत्रण पर वे पुन उनके आश्रय लौट आये तथा उनकी प्रेरणा से बाण के उपन्यास का आदर्श सामने रखकर उदयसुंदरी नामक गद्य-पद्यात्मक ग्रंथ की रचना की। संस्कृतकाव्य के इतिहास में इनके ग्रथ को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान इस लिए प्राप्त है कि इसमें उन्होंने वैदर्भी, गौडी व पांचाली इन तीनों रीतियों का उपयोग किया है।

सौभरी - ऋग्वेद के 8 वें मंडल के 19, 22 व 103 वे सूक्तों के द्रष्टा। इनके सूक्तों में इनके पिता तथा परिवार का अनेक बार उल्लेख आया है। सूक्तों की देवता है अग्नि, अश्विनौ और अग्नि-मरुत।

सोमकीर्ति - काष्ठासंघ के नन्दीतट गच्छ के रामसेनान्वयी भट्टारक लक्ष्मीसेन के प्रशिष्य और भीमसेन के शिष्य। समय-ई 16 वीं शती। रचनाए- सप्तव्यसन-कथा-समुच्चय (2067 श्लोक), प्रद्युम्नचरित (4850 श्लोक) तथा यशोधर-चरित्र (1018 श्लोक)।

सोमदेव - (1) ई 11 वीं शती। काश्मीर के राजा अनत की सभा में राजकवि। पिता-राम। सोमदेव ने गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर "कथासरित्सागर" नामक ग्रथ की रचना की।

सुनीलचन्द्र राय के मतानुसार इन्होंने यह ग्रथ काश्मीर के राजा कलश की माता सूर्यमति के मनोरजन हेतु लिखा। इन्होंने "क्रियानीतिवाक्यामृत" नामक एक ओर ग्रथ भी लिखा है।

(2) शाकंभरी के राजा वीसलदेव विग्रहराज की सभा में सोमदेव नामक कवि हो गये जिन्होंने ई 12 वीं शती के पूर्वार्ध में राजा की प्रशस्ति में "ललितविग्रहराज" नामक नाटक लिखा।

(3) व्याकरण शास्त्र के विद्वान। शिलाहारवश के राजा भोजदेव (द्वितीय) के समकालीन। समय-ई 13 वीं शती। ग्रथ-शब्दचन्द्रिकावृत्ति, जिसे शब्दार्णव (गुणनन्दीकृत) में प्रविष्ट करने की दृष्टि से लिखा गया। कोल्हापुर मंडलान्तर्वर्ती अर्जुरिका नामक ग्राम के त्रिभुवनतिलक जैन-मंदिर में इस ग्रथ का प्रणयन हुआ।

सोमदेवसूरि - नेमिदेव के शिष्य, यशोदेव के प्रशिष्य, महेन्द्रदेव के अनुज। देवसघ के आचार्य। अरिकेसरी नामक चालुक्य राजा के पुत्र वद्दिग सोमदेव के संरक्षक। कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव से सबद्ध। रचनाए और रचनाकाल- तीन रचनाएं उपलब्ध हैं- नीतिवाक्यामृत यशस्तिलकचम्पू (ई. 10 शती) और अध्यात्मतरंगिणी। नीतिवाक्यामृत राजनीति का ग्रंथ है। इस पर कवि नेमिनाथ की कन्नड-टीका (ई 13 वीं शती) उपलब्ध है। यशस्तिलक-चम्पू आठ आश्वासों में विभक्त है। इसकी गद्यशैली बाण की कादम्बरी के तुल्य है। इसकी कथावस्तु यशोधर का चरित है। इसके पूर्वार्ध पर ब्रह्म श्रुतसार की संस्कृत टीका है। अध्यात्मरगणी में चालीस श्लोक हैं। इस पर गणधरकीर्ति की सस्कृत टीका (ई 12 वीं शती) उपलब्ध है। इसमें ध्यानविधि का वर्णन है।

सोमदेव कवि और दार्शनिक विद्वान हैं। औरंगाबाद के समीप परभणी नामक स्थान से प्राप्त एक ताम्रपत्र में चालुक्य सामत अरिकेसरी (ई 10 वीं शती) द्वारा निर्मित शुभ धाम नामक जिनालय के जीर्णोद्धारणार्थ सोमदेव को एक गाव देने का उल्लेख है। यह जिनालय लेंबुल पाटण नाम की राजधानी में वद्दिग सोमदेव ने बनवाया था।

सोमनाथ - आन्ध्र प्रदेश मे गोदावरी जिले के निवासी। रचना- रागविबोध (ई म 1609) नामक सगीतविषयक ग्रथ।

सोमनाथ - 12 वी शती। पिता- गुरुलिंग। वीरशैव सम्प्रदाय। रचनाए- पाण्डिताराध्यचरितम् (2) बसवपुराणम् (3) बसवगद्यम्।

सोमशेखर - ई 18 वीं शती। आध्र निवासी। इन्होंने 'राम कृष्णार्जुनरूप नारायणीयम्' नामक श्लिष्ट काव्य की रचना की। इसकी विशेषता यह है कि यह तीन-अर्थों वाला है अर्थात् इसका प्रत्येक श्लोक राम, कृष्ण व अर्जुन इन तीनों के लिये लागू पडता है।

सोमशेखर - गोदावरी जिलान्तर्गत पेरूर ग्रामवासी। अपरनाम राजशेखर। रचना- भागवतचम्पू। अतिरिक्त रचना- साहित्यकल्पद्रुम (साहित्यशास्त्र विषयक ग्रथ)। माधवराव पेशवा ने अपनी राज्यसभा में इनका बडा सत्कार किया था।

सोमसेन - ई 17 वीं शती। जैनधर्मीय सेनगण और पुष्करगच्छ के प्रतिष्ठाचार्य गुणभद्र (गुणसेन) के शिष्य। ग्रंथ-रामपुराण (33 अधिकार), शब्दरत्नप्रदीप (सस्कृत कोश) और धर्मरसिक-त्रिवर्णाचार।

सोमानंद - ई 9 वीं शती का उत्तरार्ध। इनका "शिवदृष्टि" नामक ग्रथ, काश्मीर में प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का आधारभूत ग्रथ माना जाता है। इस ग्रथ के सात अध्यायों में कुल सात सौ श्लोक हैं। अपने इसी ग्रथ पर इन्होंने 'विवृत्ति' नामक टीका लिखी है।

सोमानन्द पुत्र - कठ-मन्त्रपाठ के भाष्यकर्ता। निवास-स्थान विजयेश्वर। इनका भाष्य ग्रथ खण्डरूप में उपलब्ध है।

सोमेश्वर - ई. 12 वीं शती। विक्रमादित्य के बाद 1126 ई. में कल्याणी के राजपद की प्राप्ति। चतुरस्त्रविद्वत्ता के कारण 'सर्वज्ञभूप' की उपाधि प्राप्त। मानसोल्लास अथवा अभिलषितार्थ-चिंतामणि नामक कोशग्रंथ के लेखक।

सोमेश्वर दत्त - ई 13 वीं शती। गुजरात के निवासी। इन्होंने 'कीर्तिकौमुदी' और 'सुरथोत्सव' नामक दो महाकाव्यों की रचना की है। 'कीर्तिकौमुदी' में गुजरात के राजा वीरधवल के अमात्य वस्तुपाल की प्रशस्ति है, और सुरथोत्सव में दुर्गासप्तशती के राजा सुरथ का चरित्र- वर्णन है।

सोमेश्वर भट्ट राणक - ई 12 शती। पिता माधव भट्ट। इन्होंने तन्त्रवार्तिक- ग्रंथ पर न्यायसुधा, सर्वोपकारिणी, सर्वनिबधकारिणी अथवा राणक नामक विस्तृत भाष्य लिखा है। इन्हें 'मीमांसक राणक' के नाम से जाना जाता है। इनका दूसरा ग्रंथ है तन्त्रसार जो अब तक अप्रकाशित है।

सोवनी, वेंकटेश वामन - ई स 1882 से 1925 तक। शिवाजी महाराज के चरित्र पर काव्यमय 'शिवावतार-प्रबंध' के कर्ता। मेरठ तथा प्रयाग में संस्कृताध्यापक। अन्य रचनाए (1) इन्द्रद्युम्नाभ्युदय (आध्यात्मिक काव्य) (2) दिव्यप्रबंध, (3) ईशलहरी और (4) रामचन्द्रोदय (4 सर्ग)।

सौचीक - ऋग्वेद के 10 वें मडल के 79 वें तथा 80 वें सूक्त के द्रष्टा। इन सूक्तों की देवता वैश्वानर अग्नि है। इनकी एक ऋचा इस प्रकार है -

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि।
अत्राण्यस्मै पड्भि सरू भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु।।

अर्थात्- वैश्वानर का मस्तक भले ही गुफा में गुप्त स्थान पर हो, फिर भी नेत्र भिन्नभिन्न दिशाओं की ओर देखते रहते हैं। वह अपनी जीभ से वन-के-वन निगल जाता है। इसीलिये ऋत्विज अपने हाथ पसारकर और नम्र बनकर इस मानव-लोक के खाद्य-पदार्थ उसके सामने सत्वर रख देते हैं।

सौती - 'महाभारत' के रचयिता। ये लोमहर्षण के पुत्र थे तथा इनका पूर्व नाम उग्रश्रवा था। इन्होंने 'भारत' की श्लोक सख्या तीस हजार से बढाकर 1 लाख तक पहुंचा दी, और उसे महाभारत बना दिया। इस सन्दर्भ में एक आख्यायिका यह बतलायी जाती है कि नैमिष्यारण्य में एकत्रित शौनक आदि ऋषियों ने एक प्रदीर्घ सत्र में इन्हें आमंत्रित कर भारत-कथा सुनाने का निवेदन किया। उन्होंने अपने अनेक आख्यानों और उपाख्यानों द्वारा मूल भारत-कथा को बृहत् स्वरूप प्रदान किया।

स्कन्द - ई 7 वीं शती। स्कंदमहेश्वर तथा स्कंदस्वामी के नामों से प्रसिद्ध। सब से प्राचीन ऋग्भाष्यकार। पिता- भर्वध्रुव। सायण, देवराज और आत्मानन्द, आचार्य स्कन्दस्वामी को अपने-अपने भाष्य में उद्धृत करते हैं। स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ इन तीन आचार्यों ने मिलकर ऋग्भाष्य की रचना की थी। स्कन्द-भाष्य पहले भाग पर, नारायण-भाष्य मध्य भाग पर और उद्गीथ-भाष्य अन्तिम भाग पर है। स्कन्दस्वामी के गुरु हरिस्वामी थे। उन्होंने शतपथ-भाष्य की रचना की थी। स्कन्दस्वामी का ऋग्भाष्य याज्ञिक-मतानुसारी है। इसके प्रत्येक सूक्त के भाष्य के प्रारंभ में प्राचीन अनुक्रमणियों के ऋषि और देवता के बोध कराने वाले श्लोकार्ध वा श्लोकों के चरण पाये जाते हैं। शायद यह अनुक्रमणिया शौनक-प्रणीत होंगी। स्कन्द, वेदार्थ के बोध में छन्दोज्ञान को उपयुक्त मानते हैं। इस भाष्य की यह विशेषता माननी चाहिये। निघण्टु, निरुक्त, बृहद्देवता शौनकोक्त वचनों और ब्राह्मण-ग्रंथों के प्रमाणों से यह भाष्य सुभूषित है।

सायण का ऋग्वेदभाष्य बहुत स्थलों में इस भाष्य की छायामात्र है। प्रस्तुत भाष्यग्रथ, अभी तक खण्ड रूप में उपलब्ध हुआ है। निरुक्त-टीकाकार महेश्वर, स्कन्द-स्वामी से संबधित होंगे। इसी कारण 'स्कन्द-महेश्वर' नाम से उनका परिचय दिया जाता है।

स्कंदस्वामी का ऋग्भाष्य अत्यंत विशद है, तथा वैदिक साहित्य में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है किन्तु यह भाष्य अधूरा अर्थात् चौथे अष्टक तक ही उपलब्ध हो सका है। भाष्य के अन्त में स्कंदस्वामी ने आत्मपरिचय दिया है। उसके अनुसार ये गुजरात की राजधानी वलभी के निवासी एव हर्ष तथा बाणभट्ट के समकालीन थे। इन्होंने यास्क के निरुक्त पर भी टीका लिखी है। स्कन्दमहेश्वर कृत निरुक्त-टीका में, अनेक प्राचीन व्याख्याकार 'अन्ये', 'अपरे', 'एके', 'केचित्' इत्यादि रूप से उल्लिखित हैं। वैयाकरण आपिशलि, स्मृतिकार मनु, एक अप्रसिद्ध पदकार, निघण्टुकार शाकपूणि, देवताकार, चूर्णिकार, गीता, अनुक्रमणी, बृहद्देवता, वाक्यपदीयकार, भर्तृहरि के कुछ वचन आदि कई ग्रंथों और ग्रंथकारों का उल्लेख यहा मिलता हैं। इससे स्पष्ट है कि स्कन्द महेश्वर की टीका में कितनी प्राचीन सामग्री भरी हुई है।

आचार्य स्कन्दमहेश्वर ने अपनी निरुक्त-टीका में ऋग्भाष्य से बहुत सहायता ली है। फिर भी उद्गीय-भाष्य का मत स्कन्दमहेश्वर को कुछ स्थलों पर अनभिमत-सा लगता है। यह देखने योग्य है कि उद्गीथ आचार्य स्कन्दस्वामी के सहकारी होने के कारण और स्कन्दस्वामी के पूजनीय होने के कारण, उद्गीथ-मत के विषय में अपनी अस्वीकृति का प्रतिपादन करते समय, स्कन्दमहेश्वर बडी सावधानी से शब्दयोजना करते हैं। पूर्वग्रंथों के गवेषणाकारों के लिये स्कन्दमहेश्वर की टीका एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।

स्थविर बुद्धपालित - ई 5 वीं शती। बौद्ध महायान-पंथ के आचार्य। इन्होंने नागार्जुन के 'माध्यमिककारिका' ग्रंथ पर टीका लिखी है किन्तु यह अनुपलब्ध है। उसका तिब्बती

अनुवाद प्राप्य है।

स्थौलाष्ठीवि - चौदह निरुक्तकारो में एकतम। यास्कप्रणीत निरुक्त में स्थौलाष्ठीवि का दो बार उल्लेख आता है।

स्फुलिंग - ई 16 वीं शती। पिता -लक्ष्मण। प्रसिद्ध कवि कुमारडिण्डिम के जामात। मल्लिकार्जुन नाम से भी विख्यात। 'सत्यभामापरिणय' नामक पाच अंकों के नाटक के प्रणता।

स्वस्ति आत्रेय - ऋग्वेद के पाचवें मण्डल के 50 तथा 51- इन दो सूक्तों के द्रष्टा। ये सूक्त विश्वेदेव की स्तुति मे लिखे गये हैं। 51 वें सूक्त में स्वस्ति का अनेक बार तथा इसी सूक्त की 8, 9 व 10 वीं ऋचा में अत्रि का उल्लेख आया है। इस आधार पर इनका नाम स्वस्ति आत्रेय रहा होगा, ऐसा अनुमान है। इनकी एक ऋचा इस प्रकार है -

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव
पुनर्ददता घ्नता जानता सगमेमहि।

अर्थ- विश्वदेव की कृपा से मेरा प्रवास सूर्य चद्र की तरह सुखदायी बने। हमें सदा ज्ञानवान, दानवीर और दयालु व्यक्ति मिलते रहें।

स्वामी नारायण (सहजानंद स्वामी) - वैष्णव-धर्म के अंतर्गत 'श्री स्वामी नारायण पथ' के प्रवर्तक। अयोध्या के पास छपिया नामक ग्राम के सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में, वि.स. 1837 (1781 ई) की चैत्र शुक्ल नवमी को जन्म। पिता- धर्मदेव, माता- भक्तिदेवी। स 1849 में अर्थात् 12 वर्ष की आयु होते ही माता-पिता का देहांत। तभी गृह-त्याग कर निरंतर 7 वर्षों तक भारत के तीर्थ-क्षेत्रों का भ्रमण। बाल्यकाल का नाम घनश्याम था किंतु तीर्थ-यात्रा मे 'नीलकठ वर्णी' नाम धारण कर, स 1856 (=1800 ई) मे आप लोजपुर पहुचे, जहां श्री रामानुज स्वामी द्वारा दीक्षित श्री रामानद स्वामी का आश्रम था। स्वामीजी के प्रति आप इतने आकृष्ट हुए कि एक वर्ष की अवधि में ही स 1857 (=1801 ई) की कार्तिक शुल्क एकादशी को 'पीपलाणा' नामक स्थान में आपने उनसे भागवती दीक्षा ग्रहण की। अब आपका नाम हुआ नारायण मुनि, और रामानदजी के शिष्यों में आप ही अग्रगण्य माने जाने लगे। एक वर्ष पश्चात् अपना अतकाल समीप जानकर, रामानंदजी ने वि स 1858 (=1802 ई) की देवोत्थान एकादशी को जेतपुर की अपनी धर्मधुरीण गद्दी पर इन्हें अभिषिक्त किया। इसके पश्चात् आपने विशिष्टाद्वैती श्री स्वामी नारायण संप्रदाय की स्थापना की। फिर 28 वर्षों तक अपने संप्रदाय का प्रचार प्रसार कर वि स 1886 (1830 ई) की ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को लगभग 50 वर्ष की आयु होनेपर आपने अपनी इहलीला समाप्त की। इस संप्रदाय में आपके अनेक नाम प्रचलित हैं यथा सरयूदास, सहजानद स्वामी, श्रीजी महाराज, श्री स्वामी नारायण आदि। स्वामी सहजानद द्वारा दलित वनवासी समाज के उद्धार का कार्य बहुत बडे प्रमाण में हुआ। आपने शिक्षापत्री नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमें जनकल्याणार्थ धर्म तथा शास्त्रों के सिद्धान्तों का विवरण दिया गया है। व्यावहारिक उपदेशों के साथ दार्शनिक विचारों का भी इसमें समावेश है। इसी प्रकार आपके उपदेशों का सग्रह 'वचनामृत' के नाम से प्रख्यात है जिसमें साख्य, योग तथा वेदात का समन्वय है। इनके कुछ उपदेश निम्नाकित हैं -

मनुष्य को चाहिये कि वह ग्यारह प्रकार के दोषों का सर्वथा त्याग करे। ये दोष हैं- हिंसा, मास, मदिरा, आत्मघात, विधवा-स्पर्श, किसी पर कलक लगाना, व्यभिचार, देव-निंदा, भगवद्-विमुख व्यक्ति से श्रीकृष्ण की कथा सुनना, चोरी और जिनका अन्न-जल वर्जित है उनका अन्न-जल ग्रहण करना। इन दोषो का त्याग कर भगवान की शरण में जाने पर भगवत्-प्राप्ति होती है। परमात्मा के माहात्म्य-ज्ञान द्वारा उनमें जो आत्यतिक स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहते हैं। भगवान् से रहित अन्यान्य पदार्थों में प्रीति का जो अभाव होता है, उसी का नाम वैराग्य है।

श्रीस्वामी नारायण द्वारा प्रवर्तित पथ, ईश्वर और परमेश्वर में पार्थक्य मानता है। श्री स्वामी नारायण-सप्रदाय, श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धात को बहुश मानता है तथा पाचरात्र के तत्त्वों का भी पक्षपाती है। वैष्णव-धर्म के इस सप्रदाय का प्रसार विगत कुछ वर्षों से गुजरात में विपुल है। आज कल विदेशों मे भी इस सप्रदाय के अनुयायी लोगों की सख्या काफी अधिक है।

स्थिरमति - ई 4 थी शती। बौद्धाचार्य। वसुबन्धु के प्रमुख शिष्य। अपने गुरु के ग्रथो पर अनेक टीकाए रचकर उसका गूढार्थ स्पष्ट किया और गुरु के प्रेमभाजन बने। इनकी रचनाए चीनी अनुवाद के रूप में ही उपलब्ध हैं। रचनाए- काश्यपपरिवर्त-टीका, सूत्रालकारवृत्ति-भाष्य, त्रिंशिका-भाष्य, पचस्कन्ध-प्रकरण-भाष्य, अभिधर्मकोशभाष्यवृत्ति, मूल-माध्यमिककारिकावृत्ति और मध्यान्तविभागसूत्रभाष्यटीका। स्थिरमति मूलत सौराष्ट्र के थे। अध्ययन हेतु वे नालंदा-विद्यापीठ गये और आगे चलकर वहा के आचार्य बने।

हंसराज अगरवाल - लुधियाना में सस्कृत प्राध्यापक। रचना- (1) सस्कृत निबध प्रदीप (5 प्रदीप = विभाग)। विभिन्न विषयों पर छात्रोपयुक्त निबध, अन्य रचना- (2) सस्कृत-साहित्येतिहास।

हजारीलाल शर्मा - ई 20 वीं शती। हरियाणा में पिण्डारा, जिन्द के लज्जाराम सस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य। 'विद्यालंकार' की उपाधि से विभूषित। कृतिया- सगुणब्रह्मस्तुति, सस्कृत-महाकविदिव्योपाख्यान, कादम्बरी-शतक, महर्षिदयानन्द-प्रशस्ति, शिवप्रतापबिरुदावली, चर्पटपजरी आदि काव्य तथा हकीकतराय नामक एकाकी रूपक।

हणमंते, रघुनाथपंत - स्वराज्य संस्थापना के पश्चात् शिवाजी महाराज ने प्रादेशिक मराठी भाषा की, जिसका स्वरूप यावनी शब्दों के मिश्रण से विकृत हो गया था, शुद्धि की आकांक्षा की। एतदर्थ राज्य-कार्य में व्यवहृत भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा शुद्ध करने के हेतु इन्हें नियुक्त किया तथा इनसे कोश-निर्मिति करवाई। इस 'राज्य-व्यवहार- कोश' नामक रचना में उर्दू-फारसी में व्यवहृत शब्दों के संस्कृत समानार्थी शब्द हैं। इस प्रयास में पं. रघुनाथ शास्त्री का संभवतः उपहास हुआ था। उन्होंने उपहास करने वाले लोगों को मधुरकदली फल का स्वाद न समझने वाले क्रमेलक (ऊंट) की उपमा दी है।

हम्मीर - संभवतः मेवाडनरेश कुम्भकर्ण के पूर्वज। कृति-शार्ङ्गदेव के संगीत-रत्नाकर पर संगीत- शृंगारहार नामक टीका। मृत्यु ई. 1394 में।

हरदत्त मिश्र - "पदमंजरी" नामक काशिका की प्रौढी और पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या के लेखक। मिश्रजी व्याकरण के अतिरिक्त कल्पसूत्र (श्रौत, गृह्य तथा धर्म) के भी व्याख्याकार हैं। इन्होंने पं जगन्नाथ सदृश आत्म-प्रशंसा की है। पिता पद्मकुमार (रुद्रकुमार)। माता-श्री। ज्येष्ठ भ्राता- अग्निकुमार। गुरु-अपराजित। शैवमतानुयायी। द्रविडदेशवासी। समय- 12 वीं शती। अन्य रचनाएं- महापदमजरी (यह किस ग्रथ की टीका है यह अज्ञात) परिभाषामंजरी (अप्राप्त), आश्वलायन-गृह्यव्याख्या- अनाकुला, गौतम-धर्मसूत्र-व्याख्या मिताक्षरा, आपस्तम्ब-गृह्य व्याख्या अनाकुला, आपस्तम्ब- धर्मसूत्र- व्याख्या उज्ज्वला, आपस्तम्ब-गृह्यमन्त्र व्याख्या, आपस्तम्ब परिभाषाव्याख्या, एकाग्निकाण्ड-व्याख्या, श्रुतिसूक्तिमाला। सायण और देवराज अपने वेदभाष्य में हरदत्त का उल्लेख करते हैं।

हरदत्त - पिता- जयशकर। रचना- राघव-नैषधीयम्। दो सर्गों वाले इस श्लिष्ट काव्य पर इन्होंने टीका भी लिखी है।

हरदेव उपाध्याय - ई. 20 वीं शती। 'भारतमस्ति भारतम्' नामक नाटक के रचयिता।

हरपति - ई. 15 वीं शती। ये महाकवि विद्यापति के द्वितीय पुत्र थे। बिहार के दरभंगा जिले के बिसफी नामक ग्राम के निवासी। कुछ विद्वानों के मतानुसार प्रसिद्ध कवयित्री चन्द्रकला इनकी पत्नी थी। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र पर व्यवहारप्रदीपिका तथा दैवज्ञ-बाधव नामक दो ग्रथ लिखे हैं।

हररात - कूष्माण्ड-प्रदीपिका नामक टीका-ग्रंथ के रचयिता। यह टीका- ग्रंथ उवटादि वेदभाष्यकारों पर आधारित है, ऐसा ग्रंथकार का निवेदन है। ग्रंथ त्रुटित रूप में उपलब्ध है।

हरलाल गुप्त - ई 19-20 वीं शती। कृति- आयुर्वेद- चन्द्रिका।

हरि कवि - समय- ई. 17 वीं शती। रचना- 'शम्भुराज-चरितम्'। सूरत-निवासी महाराष्ट्रीय पण्डित। संभाजी (राजा) के मन्त्री कवि कलश के आदेश पर प्रस्तुत चरित्र-काव्य की रचना। इसके अतिरिक्त इनके नाम पर शृंगारकलिका ओर 'सुभाषित-हारावली' नामक एक सकलन भी प्राप्त होता है।

हरिचंद्र - (1) ई 11 वीं शती के जैन कवि। पिता-आर्द्रदेव। माता- रथ्या। जाति-कायस्थ। उपनाम- चन्द्र। इन्होंने धर्मशर्माभ्युदय नामक 21 सर्गो वाले एक महाकाव्य की रचना की। इसमें इन्होंने जैनियों के पंद्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित्र चित्रण किया है। डा हीरालाल जैन के मतानुसार यह काव्य माघ के शिशुपाल-वध नामक महाकाव्य का अनुकरण है, जब कि डा चन्द्रिकाप्रसाद शुक्ल के मतानुसार श्री हर्ष के नैषधीयचरित पर उक्त महाकाव्य का काफी प्रभाव है। इनकी दूसरी रचना है- जीवधरचपू। बाणभट्ट, राजशेखर प्रभृति द्वारा उल्लिखित।

(2) चरकन्यास नामक टीका ग्रथ के लेखक। ई 4 थी शती। कुछ विद्वानों के अनुसार ये साहसांक राजा याने चन्द्रगुप्त द्वितीय के वैद्य थे। ये विश्वप्रकाश-कोश के रचयिता महेश्वर के पूर्वज थे। अनेक टीकाकारों ने इनके चरकन्यास का आधार लिया है।

हरिचरण भट्टाचार्य - जन्म ई 1879 में विक्रमपुर में। कलकत्ता के मेट्रोपोलिटन कालेज में प्राध्यापक। कृतिया- कर्णधार तथा रूपनिर्झर काव्य, उमर खय्याम की रूबाईयों का सस्कृत भावानुवाद और बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'कपालकुण्डला' (उपन्यास) का सस्कृत-अनुवाद।

हरिजीवन मिश्र - आमेर के राजा रामसिह (1667-1675 ई) का समाश्रय प्राप्त। पिता- लाल मिश्र। पितामह- वैद्यनाथ मिश्र। कृतियां- विजयपारिजात (नाटक) तथा 6 प्रहसन - अद्भुततरग, प्रासगिक, पलाण्डुमण्डन, विबुधमोहन, सहृदयानन्द और धृतकुल्यावली।

हरिदत्त शास्त्री (डा) - ई. 20 वीं शती। 'प्रत्याशिपरीक्षण' नामक प्रहसन के प्रणेता।

हरिदास - पिता- पुरुषोत्तम। ई 17 वीं शती। रचना- सकलन प्रस्तावरत्नाकर।

हरिदास - शान्तिपुर (नदिया, बगाल) के निवासी। 'कोकिलदूत' के प्रणेता।

हरिदास न्यायालंकार भट्टाचार्य - ई 16-17 वीं शती। वासुदेव सार्वभौम के शिष्य। रचनाए- न्याय-कुसुमांजलिकारिका-व्याख्या, तत्त्वचिन्तामणि- प्रकाश और भाष्यालोक टिप्पणी।

हरिदास सिद्धान्तवागीश (पद्मभूषण) - जन्म अनशिया ग्राम (जिला फरीदपुर) में, सन् 1876 में। मृत्यु दिनांक 25-12-1961 को। मधुसूदन सरस्वती के वशज। पद्रह वर्ष की अवस्था से लेखन प्रारंभ। नकिपुर नरेश के टोल में प्राध्यापक। काशी के भारत धर्म महामण्डल से 'महोपदेशक', भारत शासन द्वारा 'महामहोपाध्याय' तथा निखिल भारत पण्डित महामण्डल द्वारा 'महाकवि' की उपाधियों से विभूषित। रवीन्द्र

शत वार्षिकोत्सव में रवीन्द्र पुरस्कार प्राप्त। स्वतत्र भारत के पद्मभूषण। सन् 1962 में राष्ट्रपति की ओर से मानपत्र। कुल 12 उपाधियों से विभूषित। माता-विधुमुखी, पिता- गगाधर विद्यालंकार। पितामह- काशीचन्द्र वाचस्पति। गुरु-जीवानन्द-विद्यासागर।

कृतियां - कसवध, जानकी-विक्रम, मिवारप्रताप, विराज-सरोजिनी, शिवाजी-चरित तथा वगीय-प्रताप ये नाटक। **रुक्मिणीहरण** (महाकाव्य), विद्यावित्त-विवाद, शकर-सम्भव तथा **वियोगवैभव** ये तीन खण्डकाव्य, सरला (गद्य), स्मृति-चिन्तामणि, काव्यकौमुदी और साहित्यदर्पण की वृत्ति। वैदिक-वादमीमासा (ऐतिहासिक), आदिपर्व से वनपर्व तक महाभारत की टीका। दशकुमारचरित एव कादम्बरी की व्याख्याए। मृच्छकटिक, शाकुन्तल, उत्तररामचरित की टीकाए। बगला पुस्तकें- युधिष्ठिर समय तथा विधवार अनुकल्प।

हरिपाल देव - सोमनाथ के पोते। देवगिरि के यादव-वश के राजा हो सकते हैं- (ई स 1312 से 1318)। मुबारक द्वारा 1318 ई मे हत्या। चालुक्यवशीय अनहिलवाड नरेश हरिपाल (ई स 1145-1155) ये नहीं हो सकते। रचना-सगीत- सुधाकर।

हरिभद्रसूरि - ई 5 वी शती। चित्रकूट नगर में हरिभद्र नाम ब्राह्मण रहते थे। वे राजा जितारि के पुरोहित थे। हाथ में जबू वृक्ष की एक शाखा लिये, वे कमर में स्वर्ण-पट्ट बाधे रहते। वह जबूद्वीप में सर्वश्रेष्ठ विद्वान होने का प्रतीक था वह। उन्होंने याकिनी नामक जैन साध्वी से प्रभावित होकर जैन सम्प्रदाय की दीक्षा ली। इनके बारे में कहा जाता है, कि इन्होंने 1400 प्रबन्ध लिखे।

(2) ई 8 वीं शती में श्वेताम्बर जैनियों के आचार्य जिन्होंने लगभग 76 ग्रथों की रचना की। इनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं- अनेकान्तवाद-प्रवेश, अनेकान्तजयपताका, ललितविस्तर, षड्दर्शनसमुच्चय, धूर्ताख्यान, नदिसूत्रवृत्ति, योगबिन्दु आदि।

हरियज्वा - ई अठारहवीं शती। पिता- लक्ष्मीनृसिह। 'विवेक-मिहिर' नामक नाटक के रचयिता।

हरियोगी - नामान्तर- प्रोलनाचार्य अथवा शैवलाचार्य। ई. 12 वीं शती। ग्रंथ- पाणिनीय-धातुपाठ पर शाब्दिकाभरण नामक व्याख्या और धातुप्रत्यय-पजिका।

हरिराम तर्कवागीश - ई 17 वीं शती। कृतियां- तत्त्वचिन्तामणि टीका-विचार, आचार्य-मत-रहस्य-विचार,रत्नकोष-विचार और स्वप्रकाशरहस्यविचार।

हरिवल्लभ शर्मा (कविमल्ल) - जन्म 1848 ई में। 'कविमल्ल' व 'मल्लभट्ट'की उपाधियों से अलंकृत हरिवल्लभ शर्मा का जन्म जयपुर के राजवैद्य-परिवार में हुआ था। इनके पिता जीवनराम शर्मा महाराज रामसिंह द्वितीय (1835-1880 ई) के आश्रित थे। कविमल्ल की प्रसिद्ध रचनाएं- 1. जयनगरपचरग (ऐतिहासिक खण्डकाव्य), 2. श्लोकबद्ध-दशकुमार-चरित या दशकुमार-दशा, 3. ललनालोचनलोल्लास (काव्य), 4 कान्तावक्षोजशतोक्तयः (काव्य), 5 शृगारलहरी, 6 मुक्तकसूक्तानि इत्यादि.

हरिशास्त्री दाधीच (पं) - जन्म 1893 ई. में। आशुकवि दाधीच का जन्म जयपुर में हुआ था। इनके पिता दामोदर दाधीच थे। आप तन्त्रशास्त्र के परम विद्वान थे। आपको जीवन में साहित्याचार्य, आशुकवि, साहित्यसुधानिधि, कवि-चक्रवर्ती, काव्यरत्नाकर, कविभूषण आदि अनेकों उपाधियों से सम्मानित किया गया था। आपकी प्रकाशित रचनाएं हैं- 1. अलकारकौतुक, 2 अलकारलीला, 3 ललितासहस्र काव्य, 4 शक्तिगीताजलि, 5 सिद्धिस्तव, 6 प्रेमसुधा, 7 दधिमथी, 8 पुष्पिताग्रा, 9 लक्ष्मीनक्षत्रमाला, 10 राममानसपूजन, 11 वाणीलहरी, 12 उदरप्रशस्ति और 13 शिवरत्नावली। अप्रकाशित कृतियो के नाम इस प्रकार हैं- 1 सजीवनी-साम्राज्य, 2. साम्राज्यसिद्धिकाव्य, 3 वर्णबीजाभिधान, 4. अन्योक्तिविनोद, 5 अन्योक्तिमुक्तावलि, 6 अम्बिकासूक्त आदि।

हरिश्चंद्र- ई 19 वीं शती। जयपुर के राजा रामसिंग के आदेशानुसार आपने 'वर्गसग्रह' नामक ग्रथ का लेखन किया।

हरिषेण - हरिषेण नाम के अनेक आचार्य हुए। 1 समुद्रगुप्त के राजकवि, 2 अपभ्रश ग्रथ धर्मपरीक्षा के रचयिता (ई 11 वीं शती), 3 सूक्तावली के रचयिता (ई. 13 वीं शती), 4 जगत्सुन्दरीयोगमलाधिकार के रचयिता, 5 यशोधरचरित में उल्लिखित, 6. अष्टाह्निकी कथा के रचयिता और 7. बृहत्कथाकोश के रचयिता जो जैनी पुन्नाटसंघ के आचार्य थे। गुर्जर प्रतिहारवंशी राजा विनायक पाल के राज्यकाल में वर्धमानपुर में कोश की रचना हुई। (रचनाकाल- ई 931 ई)। बृहत्- कथाकोश में 157 कथाएं और 12500 श्लोक हैं। आयुर्वेद, ज्योतिष, दर्शन आदि विषयों का वर्णन इस कोश में है।

हरिस्वामी - शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार। समय- ई 10 वीं शती से पूर्व। कर्काचार्य अपने कात्यायन श्रौतसूत्र-भाष्य में हरिस्वामी को उद्धृत करते हैं। उवटाचार्य, कर्काचार्य और भोजराज का निर्देश करते हैं। हरिस्वामी ने विक्रमार्क अवन्तिनाथ का निर्देश किया है। इन सभी प्रमाणों से हरिस्वामी का समय दशम शताब्दी से पूर्व का हो सकता है। सभवत· कात्यायन श्रौतसूत्र और यजुर्वेद पर भी इनकी भाष्य-रचना है। ऋग्भाष्यकार स्कंदस्वामी इनके गुरु थे।

हरिहर त्रिवेदी (डा.) - ई 20 वीं शती। मध्यभारत के निवासी। प्रयाग वि वि से एम ए., डी लिट। मध्यभारत की राजकीय सेवा में उच्च पदों पर। मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व विभाग के उपसचालक पद से निवृत्त होकर इदौर में निवास। कृतियां- नागराज-विजय, गणाभ्युदय आदि।

हरिहरोपाध्याय - ई. 17 वीं शती। मिथिला-निवासी। माता- लक्ष्मी। पिता- राघव। कृतियां- प्रभावती- परिणय (नाटक) और हरिहर- सुभाषित अथवा सूक्ति-मुक्तावली।

हर्याचार्य - श्रीजानकी-गीत काव्य के रचयिता। गालवाश्रम (गलता-गद्दी) के पीठाधीश्वर। रामभक्ति शाखा में हर्याचार्य के श्रीजानकी-गीत को मान्यता प्राप्त है।

हर्षकीर्ति - ई. 17 वीं शती में आप नागपुरीय तपागच्छ शाखा के अध्यक्ष थे। गुरु- चन्द्रकीर्ति। इन्होंने अमरकोश के आधार पर 'शारदीयाख्यान-माला' नामक शब्दकोश की रचना की है। इस कोश के 5 सर्ग हैं। श्लोक 465 है, जो सभी अनुष्टुप् छन्द में हैं। उक्त कोश के अतिरिक्त इन्होंने बृहच्छान्तिस्तोत्र, कल्याणमन्दिर-स्तोत्र, सारस्वत- दीपिका, धातुपाठतरंगिणि, योगचिंतामणि, वैद्यकसारोद्धार और ज्योति.सारोद्धार नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है।

हलायुध- (1) ई. 8 वीं शती। ये राजा कृष्ण(प्रथम) राष्ट्रकुल की सभा में थे। इन्होंने अमरकोश के आधार पर 'अभिधान- रत्नमाला' नामक शब्दकोश लिखा है जो 'हलायुध-कोश' के नाम से विख्यात है। इन्होंने कविरहस्य व मृतसजीवनी नामक ग्रंथ भी लिखे हैं।

(2) ई 12 वीं शती। पिता- धनजय। ये लक्ष्मण सेन नामक राजा की सभा में थे तथा इन्हें बाल्यावस्था में ही श्वेतछत्र धारण करने का अधिकार प्राप्त था। इन्होंने सायणाचार्य के पूर्व शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर ब्राह्मणसर्वस्व नामक भाष्य लिखा। मीमासा-सर्वस्व, वैष्णव-सर्वस्व और पंडित-सर्वस्व नामक ग्रथ भी इन्होंने लिखे हैं।

(3) ई 12 वीं शती। संकर्षण के पुत्र। इन्होंने कात्यायन के श्राद्धकल्पसूत्र पर 'प्रकाश' नामक भाष्य लिखा है।

हस्तिमल्ल - समय- ई 13 वीं शती। दिगम्बर पंथी जैन- ग्रंथकार। वत्स्य गोत्रीय ब्राह्मण। जन्मस्थान- दीपनगुडि (तंजौर)। मूलनाम- मल्लिषेण। पिता- गोदिभट्ट। इनके नाम को लेकर एक आख्यायिका यह बतायी जाती है कि ये हस्तिविद्या में पारंगत थे तथा इन्होंने एक मदोन्मत्त हाथी को शांत किया था। इनके पराक्रम से इन्हें पांड्य राजा की सभा में सम्मानजनक आश्रय मिला। तब से लोग इन्हें हस्तिमल्ल कहने लगे।

इन्होंने आठ नाटक लिखे जिनके नाम इस प्रकार है- विक्रान्त-गौरव, मैथिली-कल्याण, अजनापवनजय, सुभद्रा, उदयनराज, भरतराज, अर्जुनराज व मेघेश्वर। इनमें से प्रथम चार नाटक प्रकाशित अवस्था में उपलब्ध है। इनकी एक और रचना है- आदि पुराण।

हर्षवर्धन - कन्नौज के सुप्रसिद्ध प्राचीन सम्राट (601 से 647 ई.)। चीनी यात्री ह्युएन सांग के प्रभाव से बौद्ध-मत स्वीकृत। साथ ही प्रबल समर्थक। जीवन के अन्त में 'सुप्रभात - स्तोत्र' तथा 'महाश्रीचैत्यस्तोत्र' का रचना की। तिब्बती प्रतिलेखों के आधार पर डा. लेवी को अनुवाद उपलब्ध है। इन्होंने 3 नाटक भी लिखे हैं- रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानंद। हर्षवर्धन के रत्नावली नामक नाटक पर कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र का प्रभाव दिखता है। चित्रों का रेखाकन सुव्यवस्थित है। उनके नागानंद नामक नाटक पर बौद्धधर्म की गहरी छाप अंकित है।

हसूरकर श्रीपाद शास्त्री - इन्दौर के संस्कृत महाविद्यालय में प्रधानाचार्य। सिक्खगुरु- चरितामृत नामक प्रबंध में नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनसिंह, हरगोविन्द, हरराय, हरकिसन, तेजबहादुर तथा गुरु गोविंदसिह इन 10 सिक्ख गुरुओं का चरित्र उत्कृष्ट गद्य में वर्णन किया है। अन्य रचनाएं -

(1) छत्रपति शिवाजी-महाराज चरितम्, (2) महाराणा-प्रतापसिंह-चरितम्, (3) श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरितम्, (4) श्रीरामदास-स्वामि-चरितम्, (5) पृथ्वीराज चौहान-चरितम्। ये ग्रथ "भारत नररत्नमाला" के पुष्प है। इनके अतिरिक्त 9 काव्य अमुद्रित है। (6) मोक्षमन्दिरस्य द्वादशदर्शन-सोपानावलि नामक गद्य प्रबंध सर्वदर्शन-संग्रह की योग्यता का ग्रंथ यह है।

हस्तामलक - ई 7 वीं शती। पिता-प्रभाकर मिश्र। शाखा-आश्वलायन। सभवतः ऋग्भाष्य के रचयिता। भाष्य-ग्रंथ अनुपलब्ध है। हस्तामलक आद्य शकराचार्य के चार प्रमुख शिष्यों में से एक थे।

हरिश्चन्द्र चक्रवर्ती - ई. 19 वीं शती। कलकत्ता-निवासी। प्रख्यात वैद्य। आपने "सुश्रुत संहिता" पर व्याख्या लिखी है।

हारीत - धर्मशास्त्र के एक सूत्रकार। ये ई.स. 400 से 700 के बीच हुए होंगे क्यों कि बोधायन, आपस्तंब व वसिष्ठ ने इनके धर्मसूत्रों के उद्धरण दिये हैं। हारीत का धर्मसूत्र, अन्य धर्मसूत्र से विशाल ग्रंथ है क्यों कि इसमें उन्होंने वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, अध्यात्म-विद्या और ज्ञान की अन्य शाखाओं का विचार किया है। इसमें विवाह के आठ प्रकार बताये हैं, नट-व्यवसाय निंद्य माना है और ब्रह्मवादिनी कन्याओं को उपनयन संस्कार का अधिकार दिया है। सम्पत्ति विषयक अधिकारों की भी इसमें चर्चा है। न्यायालयीन जांच को धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के नियमों पर आधारित बताया गया है।

हिरण्यगर्भ प्राजापत्य - ऋग्वेद के 10 वें मडल में 120 वें सूक्त के द्रष्टा। सृष्टि की उत्पत्ति संबंधी यह सूक्त, प्रजापति- सूक्त नाम से विख्यात है।

हिरण्यस्तूप - ऋग्वेद के 10 वें मंडल में 149 वें सूक्त के द्रष्टा। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति की उपपत्ति बतायी गयी है।

हितहरिवंशजी - राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रवर्तक महात्मा। सांप्रदायिक मतानुसार श्री मुरली के अवतार। पिता का नाम केशवदास मिश्र। माता का तारावती। गौड ब्राह्मण। उपनाम व्यासजी। इनके जन्म-स्थान तथा आविर्भावकाल के विषय में

विद्वानों का अभी तक एकमत नहीं। इनके पिता सहारनपुर जिले के देवबंद नामक ग्राम के निवासी अवश्य थे, किन्तु बादशाह के साथ दौरे में सपत्नीक घूमते हुए इनका जन्म "बाद" नामक ग्राम में हुआ। यह स्थान मथुरा से 4 कोस की दूरी पर है।

इनके संप्रदायी उत्तमदास नामक भक्त द्वारा निर्मित "हित-चरित्र" ग्रथ के अनुसार इनका जन्म सवत् 1559 (1503 ई) में हुआ था। साम्प्रदायिक ग्रथों के अनुसार इन्हें अल्पायु में ही श्रीराधिकाजी से स्वप्न में गुरु-दीक्षा प्राप्त हुई थी। देवबद में इनके घर के पास एक कुआ था। उस कुए से इन्होंने श्रीरगलालजी की मूर्ति निकाली तथा मदिर बनाकर उस मूर्ति की पूजा-अर्चा में लीन रहने लगे। फिर राधिकाजी की आज्ञा से ये वृदावन के लिये चल पडे। मार्ग में चिडचावल नामक ग्राम के निवासी आत्मदेव नामक ब्राह्मण ने अपनी दो कन्याएं तथा श्रीकृष्ण की एक सुदर मूर्ति इन्हें अर्पित की। यह राधावल्लभजी का विग्रह था, जिसे आपने वृदावन में मदिर बनवाकर स्थापित किया।

चैतन्यमतानुयायी श्री भगवत्मुदित के ग्रथ रसिक अनन्यमाल के अनुसार इस मदिर का प्रथम पट-महोत्सव 1519 विक्रमी में हुआ था। ये राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे तथा युगल उपासना का उपदेश इनके सिद्धान्त का सार अश था। कृष्ण की अपेक्षा राधा की पूजा तथा भक्ति को इन्होंने अधिक महत्त्वपूर्ण एव शीघ्र फलदायी निरूपित किया।

इनके दो ग्रंथ प्रधान हैं- राधा-सुधानिधि (सस्कृत मे) और हित-चौरासी (ब्रज भाषा में) इनके अतिरिक्त आशास्तव, चतु श्लोकी, श्रीयमुनाष्टक तथा राधातत्र नामक ग्रथ भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रंथों में अध्यात्म-पक्ष का विवरण कम है, प्रत्युत राधा-कृष्ण की कुज-केलि तथा वन-विहार के नितांत ललित एव श्रृगारिक वर्णन की ही इनके ग्रथों मे प्रचुरता है।

ये अत तक गृहस्थाश्रमी ही रहे। इनके चार पुत्र और एक कन्या मानी जाती है। आज भी इनके वंशज देवबद तथा वृदावन दोनों स्थानो में पाए जाते हैं। इनका देहान्त 50 वर्ष की आयु में विक्रमी सवत् 1609 शारदीय पूर्णिमा के दिन हुआ। अपने संप्रदाय में ये- "गोस्वामी रसिकाचार्य श्रीहित हरिवंशचंद्र" के नाम से सबोधित किए जाते हैं।

हृदयनारायणदेव - ई. 17 वीं शती। एक सगीतशास्त्रकार। गढ दुर्ग (जबलपुर) के राजा प्रेमशाह के पुत्र। राजा प्रेमशाह की मृत्यु के बाद हृदयनारायण ने दिल्ली के बादशाह शहाजहा का सहारा लिया। अतिम काल में जबलपुर के दक्षिण में (मंडला में) रहे। इन्होंने "हृदयकौतुक" व "हृदयप्रकाश" नामक संगीतशास्त्र-विषयक दो ग्रथ लिखे। प्रथम ग्रथ की प्रेरणा उन्हें तरगिणी से मिली। दूसरा ग्रथ अहोबिल के "सगीत-पारिजातक" पर आधारित है। इसमें तत्कालीन 12 स्वरों के स्थान, तारों की लम्बाई के आधार पर निश्चित किये गए हैं।

हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य - भटपल्ली ग्राम (कलकत्ता के समीप) में 1850 ई. में जन्म। सन् 1913 में मृत्यु। ओरियंटल कालेज लाहोर में आप प्राध्यापक थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक "विद्योदय" नामक सस्कृत मासिक पत्रिका का कुशलता से सपादन किया। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। अनेक अंग्रेजी पुस्तको का सस्कृत में अनुवाद किया जिनमें "पर्यटकत्रिंशत्" और "हेमलेटचरितम्" प्रधान हैं। "विद्योदय" में प्रकाशित "नाविकसगीत", "मातृस्तोत्र", "कमलास्तव", "वियोगिविलाप" आदि उनके गीतिकाव्य और "होल्यष्टक", "विजयादशक", "देव्यष्टक", आदि अष्टक और दशक विशेष लोकप्रिय रहे हैं।

सस्कृत में हास्य और व्यगशैली का प्रयोग भी पहली बार आपने ही सफलतापूर्वक किया। भाषाविचार, परिहास, विदूषक, काबुलयुद्ध, शिक्षाप्रयोजन आदि सामयिक विषयों पर उनके निबन्ध और एकाक्षरकोष एकवर्णार्थसग्रह, द्विरूपाक्षकोश आदि उनके द्वारा रचित कोश, उनकी महत्त्वपूर्ण कृतिया हैं। उनकी भाषा पर बाण की शैली की पूरी छाप है। उनका उद्देश्य सस्कृत भारती के भाण्डार को अर्वाचीन वाड्मय से परिपूर्ण करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में वे सदा प्रयत्नशील रहे।

हेमंतकुमार तर्कतीर्थ - ई 20 वीं शती। बगवासी। "सरस्वती-पूजन" नामक रूपक के प्रणेता।

हेमचन्द्र राय कविभूषण - जन्म-सन् 1882 मे रामनगर (पाबना-बगाल) में। पिता-यदुनदन राय। कृतिया-(काव्य)-सत्यभामा-परिग्रह, सुभद्रा-हरण, हैहय-विजय, रुक्मिणीहरण, परशुराम-चरित और पाण्डवविजयभारती (गीति)। सभी कृतिया प्रकाशित। आप एडवर्ड महाविद्यालय पाबना में सस्कृत के प्राध्यापक थे।

हेमचन्द्र सूरि (अथवा मलधारी हेमचन्द्र सूरि) - अभयदेव सूरि के शिष्य। जन्म-धधुका (गुजरात) मे। पिता-चाचदेव। माता-पाहिनीदेवी। जाति-मौढ महाजन। जन्मनाम-चगदेव। वि स 1150 में 5 वर्ष की अवस्था में ही देवचन्द्र सूरि द्वारा दीक्षित। वि स 1166 में खभात शहर में आचार्य-पदवी-समारोह। चालुक्यवशी राजा सिद्धराज जयसिह द्वारा सम्मनित। महाराज कुमारपाल के राजगुरु, धर्मगुरु और साहित्यगुरु। वि स 1229 में स्वर्गवास। इनके तीन शिष्य थे, विजयसिह, श्रीचंद्र और विबुधचन्द्र। ग्रथ- 1) आवश्यक टिप्पण-4600 श्लोक-प्रमाण, 2) शतक-विवरण, 3) अनुयोगद्वारवृत्ति, 4) उपदेशमाला-सूत्र, 5) उपदेशमाला-वृत्ति, 6) जीवसमासविवरण, 7) भवभावनासूत्र, 8) भावभावनाविवरण, 9) नन्दि-टिप्पण और 10) विशेषावश्यक भाष्य-बृहद्वृत्ति। (इन ग्रथों का परिमाण लगभग 80000 श्लोक है। विषय की दृष्टि से प्राय· ये स्वतन्त्र हैं), 11) द्व्याश्रय महाकाव्य (सस्कृत और प्राकृत) 2828 + 1500 श्लोक। 12) अभिधानचिन्तामणि, 13) अनेकार्थसग्रह, 14)

देशीनाममाला, 15) शेषनाममाला, 16) काव्यानुशासन, 17) छन्दोनुशासन, 18) योगशास्त्र अध्यात्मोपनिषद, 1200 श्लोक, 19) वीतरागस्तोत्र, 20) महादेवस्तोत्र, 21) त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित, 22) परिशिष्ट-पर्व, 23) प्रमाण-मीमांसा, 24) अन्ययोग-वाक्यच्छेद (इसी पर मल्लिषेण सूरि की 3000 श्लोक प्रमाण टीका है जो स्याद्वाद-मजरी के नाम से प्रसिद्ध है और 25) अर्थागव्यवच्छेद। आप कलिकालसर्वज्ञ की उपाधि से अलंकृत थे।

हेमाद्रि - ई. 13 वीं शती। एक धर्मशास्त्री। इन्हें हेमाडपंत के नाम से महाराष्ट्र में जाना जाता है। पिता-कामदेव। देवगिरि के राजा महादेव के शासन-काल में, इन्हें मंत्रिचूडामणि व करणधिप ये दो उपाधिया मिली थीं। इन्होंने "चतुर्वर्गचितामणि" नामक ग्रंथ लिखा जो धर्म की अनेक शाखाओं का एक ज्ञानकोश ही हैं। इसमें व्रत, दान, तीर्थ और मोक्ष ये चार विभाग है। परिशेष नामक पाचवा खंड भी है। इस पांचवें खण्ड में उपास्य देवता, उनकी पूजाविधि, श्राद्धविधि, नित्यनैमित्तिक कर्म के मुहूर्त, प्रायश्चित्त विधि तथा पापनाशन के साधनों की जानकारी दी गयी है।

इसके अतिरिक्त आपने कालनिर्णय, कालनिर्णयसक्षेप, तिथिनिर्णय, कैवल्यदीपिका, आयुर्वेदरसायन, दानवाक्यावली, पर्जन्यप्रयोग, प्रतिष्ठालक्षणसमुच्चय, हेमाद्रिनिबध, त्रिस्थलविधि, अर्थकाण्ड, हरिलीला आदि अनेक छोटे-बडे ग्रंथों की रचना की है। इनके व्रतखंड को आज भी प्रमाणभूत ग्रंथ माना जाता है। ये शिल्पकार भी थे। इनके नाम पर "हेमाडपती" नामक एक शिल्पपद्धति महाराष्ट्र में चल पडी है।

हेर्लेकर, पुरुषोत्तम सखाराम - अमरावती (विदर्भ) के निवासी उत्तम वैद्य। भारतीय आयुर्विद्या शिक्षण समिति के कार्याध्यक्ष थे। रचना-शारीरं तत्त्वदर्शनम् (वातादिदोषज्ञानम्)। अनुष्टुप छन्दोबद्ध। मूलश्लोक सन् 1930 के पूर्व रचित। ग्रथ-प्रस्तुति सन् 1942 में, वैद्य सम्मेलन के मैसूर अधिविशन में सुवर्ण-पदक तथा प्रशस्ति-पत्रक से सम्मानित।

होता वेंकटरामशास्त्री पंडित - ई 20 वीं शती। पिता-वेंकटेश्वर। माता-सुभद्रा। अमलापुरम (जिला-गोदावरी) के कुचिमंचिवरि अग्रहार के निवासी रामभक्त। "पौराणिकाग्रेसर"की उपाधि से विभूषित। "सीताकल्याण" नामक नाटक के रचयिता।

ग्रंथकार खंड का परिशिष्ट

संपादकीय

प्रस्तुत ग्रंथकार खड का संपादन करते समय जिन ग्रथकारों के संबध में संक्षेपत: उल्लेखनीय कुछ विशिष्ट जानकारी सदर्भ ग्रंथों में प्राप्त हुई, उनका निर्देश मूल खड में यथा स्थान हुआ है। परंतु इस सपादन कार्य में ऐसे अनेक ग्रंथकारों के नाम सकलित हुए, जिनके संबध में उनकी प्राय एक दो (या क्वचित् अधिक) रचनाओं के अतिरिक्त विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई। हो सकता है कि इनके सबध में उनकी प्रादेशिक भाषाओं में अधिक जानकारी मिले। हमने अपने सीमित भाषा ज्ञान के कारण सदर्भ के लिए हिंदी, अग्रेजी और मराठी ग्रंथों का ही उपयोग किया है। अत सस्कृत वाङ्मय विषयक अन्य प्रादेशिक भाषाओं के ग्रंथों का लाभ नहीं लिया जा सका।

जिन ग्रंथकारों के संबध में इस प्रकार, उनकी रचना के अतिरिक्त अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई, उनका निर्देश टालना असंभव और अयोग्य था। अत ग्रथकार खड में उल्लेखनीय ग्रंथकारों के नामों की केवल सूची के रूप में यह परिशिष्ट दिया जा रहा है। ग्रंथकार की रचना के अतिरिक्त कुछ अधिक जानकारी भी प्रयत्नपूर्वक सकलित कर यथास्थान जोडी गई है। अत. अनेक ग्रथकारों के स्थान तथा समय का निर्देश इस परिशिष्ट में स्थान स्थान पर मिलेगा।

ग्रथकार की रचना का स्वरूप (काव्य, नाटक, चम्पू, प्रबन्ध आदि भी अनेक स्थानों पर उपलब्ध सदर्भ के अनुसार दिया गया है।

मूल खड में उल्लिखित होने पर भी अनेक नामों का परिशिष्ट में भी उल्लेख हुआ है। इसका अर्थ यही समझना चाहिए कि नाम एक होते हुए भी व्यक्ति भिन्न भिन्न हैं। इस परिशिष्ट में उन नामों का निर्देश होने का कारण उन व्यक्तियों के संबंध में रचना के अतिरिक्त अधिक जानकारी सदर्भ ग्रथों में नहीं मिली।

मूल खड के समान प्रस्तुत परिशिष्ट मे भी प्राय मुद्रित रचनाओ का ही निर्देश हुआ है। इस मे अपवादों की भी सभावना है।

प्रस्तुत परिशिष्ट मे निर्दिष्ट हुए बहुसख्य ग्रथो के स्वरूप की कल्पना उनके नामो से ही आ सकती है। अत उसका पुनरुल्लेख नही किया है। शुनकदूतम्, रुक्मिणीपरिणयचम्पू, गीतगगाधरम् अन्योक्तिशतकम् इत्यादि प्रकार के नामों का विवरण देने की आवश्यकता नही।

परिशिष्ट मे उल्लिखित अनेक ग्रथो का सक्षेपत परिचय प्रस्तुत कोश के ग्रथखड मे मिल सकेगा।

प्रस्तुत परिशिष्ट मे एक ही लेखक के नाम पर अनेक रचनाओं का निर्देश कई स्थानो पर किया है। उस एक ही नाम के लेखक होने की, उनका स्थान और काल भिन्न भिन्न होने की भी सभावना है। उनकी व्यक्तिश विशेष जानकारी न मिलने के कारण, एक ही नाम के आगे क्रमश ग्रन्थों का नाम निर्देश किया है। जैसे कृष्ण- इस नाम के आगे 5 रचनाओं का निर्देश है, परतु उन पाच रचनाओ के लेखक एक से अधिक होने की सभावना है।

ग्रथ के साथ जहा वर्ष का निर्देश है, वह उस ग्रथ के लेखन या प्रकाशन का वर्ष समझना चाहिए। अन्यत्र अनुपलब्धि के कारण इस प्रकार निर्देश नही हो सके। भारत मे व्यक्तियो नाम मात्र मे उसके प्रदेश की कल्पना आती है। महाराष्ट्र, बगाल, केरल, कर्नाटक, एव उत्तर भारत मे व्यक्ति नामों की अपनी अपनी निजी विशेषता है। जिन ग्रथकारों के प्रदेश का निर्देश, सदर्भ के अभाव से नही हुआ, उनके नाम की विशेषता से उनके प्रदेश की कल्पना पाठको को आ सकती है।

कुछ प्रादेशिक नामो के निर्देश मे निश्चित उच्चारण के ज्ञानाभाव के कारण वर्णदोष होने की सभावना है।

ग्रंथकार	रचना
अंबिकाचरण देव	पिकदूतम्
अक्षयकुमार शास्त्री	कामवैभवम्
अण्णंगराचार्य	कोकिलसंदेशम्
अण्णंगराचार्य शेष	दशकोटि (नवकोटि नामक ग्रंथ का खंडन)
अण्णंगराचार्य	वैदिकमनोहरा नामक मासिक पत्रिका के संपादक
अद्वैतराम भिक्षु	राघवोल्लास
अद्वैतेन्द्रयति (महाराष्ट्र में अहमदनगर के पास वास्तव्य था)	धर्मनौका
अनन्त (14 वीं शती)	कामसमूह
अनन्त त्रिपाठी (उत्कल में ब्रह्मपुर के निवासी)	मनोरमा मासिक पत्रिका के सपादक
अनन्तराम	स्वानुभूत्यभिधा
अनन्तशर्मा	आर्यासप्तशती
अनन्तसूरि (19 वीं शती)	(1) भागीरथी चम्पू (2) लक्ष्मीश्वर चम्पू
अनन्ताचार्य	कृष्णराज-यशोडिंडिम
अनन्ताचार्य	ससारचक्र (जगन्नाथप्रसाद कृत हिंदी ग्रंथ का अनुवाद)
अनन्ताचार्य कोडंबकम्	
अनन्ताल्वार (मेलकोटे ग्राम के निवासी)	सम्मार्जनीशतकम्
अन्नंभट्ट मीमांसक (वाराणसी के संग्राम-सिंह के आश्रित)	सदाचाररहस्यम्
अनन्यदास गोस्वामी	राधाकृष्णमाधुरी
अनूपसिंह	कामप्रबोध
अप्पन नैनाय (वैष्णवदास)	प्रक्रियादीपिका
अप्पय्या दीक्षित	1 आर्याशतकम् 2 अन्यापदेशशतकम् 3 वैराग्यशतकम् 4 नामसग्रहमाला
अप्पलाचार्य	1 यदुगिरिभूषणचम्पू 2 संगीतसंग्रह-चिंतामणि
अप्पा वाजपेयी	सुनीति-कुसुममाला (सुप्रसिद्ध तिरुवल्वारकृत तिरुक्कुरल नामक तमिल ग्रंथ का अनुवाद)
अभयपाल	नानार्थरत्नमाला
अभयचंद्राचार्य.	प्रक्रियासंग्रह (व्याकरण विषयक)
अभिनव कालिदास	शृंगारकोश भाण
अमृतानंद योगी	अलंकारसग्रह
अय्यास्वामी अय्यर (अथवा के.एस. विद्यानाथ)	जार्जवंशम् 1911 में मुद्रित
अरुणाचलनाथशिष्य	श्रीरामविजय
अलसिंग	वज्रमुकुटविलास-चम्पू
अविनाशी स्वामी (9 वीं शती)	शृंगारतिलक-भाण
अशोकमल्ल	नाट्याध्याय
असंग (17 वीं शती)	वर्धमानचरितम्
आत्रेय (19 वीं शती)	काकी षोडशिका (विनोदप्रचुर काव्य)
आत्रेय श्रीनिवास	कुचशतकम्
आत्रेयवरद (19 वीं शती)	रुक्मिणीपरिणय नाटक
आदिनारायण	मीनाक्षीपरिणय-चम्पू
आनंदधर	माधवानल
आनंदराम बरुआ	प्रॅक्टिकल् सस्कृत डिक्शनरी
आन्दान श्रीनिवास	सहस्त्रकिरणी (शतदूषणी का खडन)
आपटे, वामन शिवराम	1 प्रॅक्टिकल सस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, इसका द्वितीयसंस्करण सन 1959 में पुणें में प्रकाशित हुआ। 2 स्टुडन्टस् इंग्लिश-संस्कृत डिक्शनरी
आपटे, वासुदेव गोविंद	सस्कृत-मराठी कोश
आप्पातुलसी (19-20 वीं शती)	1 सगीतसुधाकर 2 रागकल्पद्रुमाकुर 3 रागचद्रिका
आफ्रेट (19 वीं शती)	ट्रिनिटी कॉलेज (केंब्रिज) के ग्रंथसंग्रह की सूची
आसुरी अनन्ताचार्य (19 वीं शती)	चम्पूरामायण
इलगपद दंडाधिनाथ	नानार्थरत्नमाला
इलातुर रामस्वामी शास्त्री	क्षेत्रतत्त्वदीपिका (विषय-भूमिति शास्त्र)
इल्लूर रामस्वामी शास्त्री (19 वीं शती)	कैवल्यावलीपरिणय

इन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय	गौरचद्र (ऐतिहासिक उपन्यास)
ईश्वर दीक्षित	रामायणमारसग्रह
ईश्वरसुमति	पार्वती परिणयम् (8 सर्ग)
ईश्वरचंद्रशर्मा (कलकत्तावासी) (20 वीं शती)	राजराजेश्वरस्य गजसूयशक्तिरत्नावली
इन्द्रदत्तोपाध्याय	फक्किकाप्रकाश (सिद्धान्तकौमुदी की टीका)
उत्तमकर महादेव (18 वीं शती)	व्याधिरहस्य की टीका
उदयवर्मा 19 वीं शती	रसिकभूषण-भाण
उदयन	मितवृत्यर्थ '
उद्गीथ (वलभी-निवासी)	ऋग्वेद भाष्य (अल्पमात्र)
उद्दण्ड	कोकिलमदेशम् (भृगसदेश का उत्तर)
उपाध्याय, व्ही.व्ही.	धातुरूपचद्रिका
उपाध्याय, एस.ए.	ईश्वरस्वरूपम्
उमानन्द	यौवनोल्लासम
उमापति	1 वृत्तवार्तिक 2 सुभाषितरत्नाकर
उमापतिधर	चद्रचूड-चरितम
उमामहेश्वर भट्ट	सुभाषितरत्नावली
उर्वीदत्त शास्त्री (लखनऊ निवासी)	गड्वर्डवशम् (1905)
ऋषीश्वर भट्ट	सस्कृत हिंदी-कोश
एकनाथ	अन्यापदेशशतकम्
एकामरनाथ	वीरभद्र विजयचम्पू
ओक, म पा	अभगरसवाहिनी (महाराष्ट्रीय सत तुकाराम के कतिपय अभगो का अनुवाद)
ओक, जनार्दन विनायक	गीर्वाणलघुकोश
ओल्डेनबर्ग	ग्रथसूची
कंकण कवि	मृगाकशतकम्
कक्कोण (18 वीं शती)	कान्तिमतीपरिणयम्
कल्पेश्वर दीक्षित	रामचन्द्र यशोभूषणम्
कडवानतयेडवालात केरलीय-19 वीं शती	सन्तानगोपाल काव्यम्
कथानाथ	प्रह्लादविजयम्
कमललोचन	1 सगीतामृत 2 सगीतचिंतामणि
कमलाकर (पिता रामकृष्ण)	रामकौतुकम्
कर्ण देव	कामसार
कर्णपूर	सस्कृतपारसिक-प्रकाश
कल्पवल्ली	सत्यसन्धचरित चम्पू
कल्याणकवि	गीतगगाधरम्
पी.के. कल्याणरामशास्त्री	कनकलता (शेक्सपीयरकृत ल्युक्रेस काव्य का अनुवाद)
कविकेसरी	हरिकेलि-लीलावती
कविभट्ट	पद्यसग्रह नामक सुभाषितों का सग्रह
कविराज सूर्य (19 वीं शती । गोत्र-कुंडिन)	विक्रमविजय नाटक
कविराम	रामाभ्युदयचम्पू
कविवल्लभ	रामचन्द्रोदयम्
कविशेखर (पिता-यशोदाचंद्र)	हरिविलास
कान्तिचन्द्र मुखोपाध्याय	कविकौतूहलम्
कामराज (सामराज दीक्षित का पुत्र)	1 काव्येन्दुप्रकाश 2 शृगारकलिका
कामराज कवि (10-20 वीं शती)	सीतास्वयंवर काव्य
कामराज दीक्षित (पिता-वैद्यनाथ)	रसिकबोधिनी
कार्तिकेय	मुग्धबोध टीका
कालिदास (इस नाम पर चार ग्रंथ)	1 वृत्तरत्नाकर 2 शृगारतिलकम् 3 शृंगारसार 4 श्रुतबोध
कालीप्रसाद	भक्तिदूतम्
कालीहरदास बसु	चैतन्यचरितम्
काशीचन्द्र	उद्धारचन्द्रिका
काशीनाथ	1 सक्षिप्त कादम्बरी 2 रामचरितम्
काशीनाथ कवि (10-20 वीं शती)	वैदेहीपरिणय काव्य
डॉ. काशीप्रसाद जायस्वाल और ए. बेनर्जी	मिथिला के हस्तलिखित ग्रथों का चार खडों में प्रकाशन
काशीलक्ष्मण	शहाजीराजीयम्
काश्यप	अन्यापदेशशतकम्

किशोरविलास : गोपालचम्पू

कुंजुकुट्टन ताम्पूरान (केरलवासी) : यादवविजयम्

कुन्जुकुरी रामेश्वर : पार्वतीपरिणय-चम्पू

कुन्जुककहटण ताम्पूरान् (क्रांगनूर-केरल-निवासी) : बभ्रुवाहन-चम्पू

कुर्तकोटी (शंकराचार्य) (नासिक 'महाराष्ट्र' में निवास) : समत्वगीतम् (भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिपादन)

कुलचंद्र शर्मा (काशी निवासी) : शोकमहोर्मि काव्य महारानी व्हिक्टोरिया के निधन निमित्त)

कृष्ण : 1 पद्मनाथचरितचम्पू
2 वृत्तदीपिका
3 सुभाषितरत्नाकर
4 जयतीर्थ विजयाब्धि
5 सेतुराजविजयम्
6 सत्यबोध-तत्त्वजयम्

कृष्ण कवि : 1 रघुनाथ विजयचम्पू
2 नन्दिचरितम्
3 प्रजापतिचरितम्
4 सत्यबोधविजयम् (मध्वाचार्य का चरित्र)

कृष्णचंद्र तर्कालंकार . चन्द्रदूतम्

कृष्णदेव दास : कर्णानन्द चम्पू

कृष्णदेव : प्रस्तारपतनम्

कृपणनाथ (महाराष्ट्रीय) : धर्मसिन्धु

कृष्णनायर व्ही.पी. (एर्णाकुलम्-निवासी) : मदिरोत्सव (उमरखय्याम की रुबाइयों का अनुवाद)

कृष्ण (अय्या) दीक्षित : नैषधपारिजातम् (द्व्यर्थी काव्य)

कृष्ण बॅनर्जी : गीतावृत्तसार (सन 1850)

कृष्णभट्ट : छन्दोव्याख्यासार

कृष्णम्माचार्य आर. पिता-परवस्तु रंगाचार्य (सहृदया पत्रिका के संपादक) : 1 मेघसन्देश विमर्श
2 सुशीला (गद्यकथा)
3 पातिव्रत्यम्
4 पाणिग्रहणम्
5 वररुचि

कृष्णमिश्र : 1 श्राद्धकाशिका (कात्यायन कृत श्राद्धसूत्र की वृत्ति)
2 कृष्णलीला

के.व्ही. कृष्णमूर्ति शास्त्री : शुनकदूतम्

कृष्णमूर्ति (पुणे निवासी) : 1 सतीविलासकाव्यम्
2 मत्कुणाष्टम्

कृष्णमिश्र : 1 रत्नार्णव (सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या)
2 भावप्रदीप (शब्दकौस्तुभ की टीका)
3 तत्त्वमीमांसा (विजयसांख्यदर्शन)

कृष्णय्याचार्य : रामचर्यामृतचम्पू

कृष्णराज : वृत्तरत्नाकर

कृष्णराम : 1 वृत्तमुक्तावली
2 छन्द सुधाकर

कृष्णराव : संगीतसर्वार्थसंग्रह

कृष्णरूप : चमत्कारचन्द्रिका (कृष्णभक्तिपरक)

कृष्णशास्त्री : 1 कृष्णविजयचम्पू
2 बालरामरसायनम्

कृष्णसोमयाजी : कण लुप्त गृह दहति (टालस्टाय के "ए स्पार्क निगलेक्टेड बर्न्स दी हाऊस" का अनुवाद)

कृष्णानंदवाचस्पति : नाट्यपरिशिष्टम् (नाट्यद्वारा व्याकरण के पाठ)

कृष्णनाथ न्यायपंचानन · वातदूतम्

कृष्णावधूत पंडित : गीतम् (ईहामृग)

कैपलर : संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी

केरलवर्म वलियकोयितम्पुरान : व्हिक्टोरिया चरितसंग्रह

केलाडी बसवप्पा नायक : सुभाषित-सुरद्रुम

केशव : 1 रामाभिषेकम्
2 आनन्दवृन्दावन चम्पू
3 कामप्राभृतक

केशव दीपक (काठमांडू निवासी) : "जयतुसंस्कृतम्" पत्रिका के संपादक

केशव स्वामी : शब्दकल्पद्रुम

केशवभट्ट : प्रस्तावमुक्तावली (सुभाषितसंग्रह)

केशवार्क : कृष्णक्रीडा

डा. कैलाशनाथ द्विवेदी (कानपुर के निवासी) : 1 गुरुमाहात्म्यशतक
2 कुसुमांजलि
3 कालिदासीयम्
4 संस्कृतनिबंधनिचय

कोकनाथ (18 वीं शती) : शेवन्तिकापरिणयम्

कोचा नरसिंहाचारलु	:	जॉर्ज महाराजविजय (1911 में तिरुपति में मुद्रित)
कौण्डिण्य वेंकट- 18 वीं शती का अंतिम चरण	:	रसिकरसोल्लास-भाण
कौतुकदेव	:	1 अनगदीपिका 2 रतिसार 3 रतिचन्द्रिका 4 शृगारकुतूहल
कौशिक वेंकटेश	:	श्रीभाष्यकारचरितम् (रामानुजाचार्य का चरित्र)
क्षेमकरण मिश्र शास्त्री	·	वृत्तरागास्पद
क्षेमकर्ण	:	रागमाला (सन् 1570)
गन्धर्वराज	·	रागरत्नाकर
पी. गणपतिशास्त्री	:	वयोनिर्णय
गणेशदत्त शास्त्री	·	पद्यचद्रकोश
गणेशपण्डित (जम्मूनिवासी)	:	विषहरमत्र (आयुर्वेदविषयक)
गदाधरभट्ट	:	रसिकजीवनम्
गरुडवाहन पंडित	.	दिव्यसूरिचरितम् (तमिलनाडु के वैष्णव आलवार सतों के चरित्र)
गलगली पंढरीनाथाचार्य (कर्नाटक में बाललकोट के निवासी)	:	साप्ताहिक वैजयन्ती पत्रिका के सपादक)
गिरिजाशंकर मेहता	:	सस्कृत-गुजराती शब्दादर्श
गिरिधरदास	:	रामकथामृतम्
गिरिधरशर्मा (झालवाड संस्थान के राजगुरु)	:	अमरसूक्तिसुधाकर (उमरखय्याम की रुबाइयों का अनुवाद - सन 1929)
गिरिसुंदरदास	·	गोपालविजयम्
गीताचार्य	:	कृष्णराजोदयचम्पू (मैसूरनरेश कृष्णराज वोडियर का चरित्र)
गीर्वाणेन्द्र यज्वा	:	कार्तिकेयविजयम्
गुणवर्धन	:	कोकिलसन्देशम्
गुमणिक	·	गुमानीशतकम् (महाभारत के दृष्टात द्वारा नीतिबोध इस शतक का विषय है)
गुरुदयालु शर्मा (दिल्ली निवासी)	:	देवीस्तवराज
गुस्ताव ओपर्ट	:	दक्षिण भारत के व्यक्तिगत सस्कृत सग्रहों की सूची-2 खडों में प्रकाशित की।

गोकुलनाथ मैथिल	:	अमृतोदयनाटकम्
गोडबोले, नारो अप्पाजी	:	सस्कृत- मराठी कोश।
गोपालदास	:	वल्लभाख्यानम्
गोपाल पिल्लै, एन.	:	सीताविचारलहरी (चिन्ताविष्टयाय सीता नामक मलयालम् काव्य का अनुवाद)
गोपालाचार्य रा.व्ही.	:	सन्देशद्वयसारास्वादिनी (दो दूत काव्यों का समालोचन)
गोपालाचार्य ए.	·	यदुवृद्धसौहार्दम् (विषय- सप्तम एडवर्ड का राज्यत्याग)
गोपीनाथ	:	1 रघुपतिविजयम्। 2 सुभाषितसर्वस्वम्
गोवर्धन (पिता- धनश्यामकवि)	:	घटखर्परकाव्य टीका
गोविन्द	.	1 सगीतशास्त्रसक्षेप (वेंकटमखी के मत का खडन) 2 तालदशाप्रमाणदीपिका
गोविन्दजित्	:	सभ्यालकरणम् (सुभाषितसग्रह)
गोविन्दनाथ	.	1 गौरीकल्याणम् 2 शकराचार्यचरितम्
गोविन्दशर्मा	:	मुग्धबोध की टीका
गोविन्दान्तरवाणी	:	रुक्मिणीपाणिग्रहणम्
गौतम	:	सभ्यभूषणमजरी
गौरीनाथ शास्त्री	:	शाकरभाष्यगाभीर्य- निर्णयखडनम्
ग्रेव्ज हाघून	·	डिक्शनरी ऑफ बेंगाली ॲण्ड सस्कृत।
घण्टावतार	:	सीताविजयचम्पू
घाशिराम	:	पद्यमुक्तावली (सुभाषित सग्रह)
घट्टशेषाचार्य (19 वीं शती)	:	सपिण्डीकरणनिरास- नाटकम्
घनश्याम शास्त्री	:	1 मानसतत्त्वम्। 2 पाश्चात्यप्रमाणतत्त्वम्।
चण्डशिखामणि	:	शिवगीतमालिका
चण्डीसूर्य	:	उदारराघवम्
चन्द्रचूड	:	प्रस्तावशिखामणि (सुभाषितसंग्रह)
चन्द्रशेखर	:	1 अभिनयमुकुरः

		2. संगीतलक्षणम्
		3. भरतसार-संग्रह
चन्द्रशेखर	:	पिता के प्रचण्डराहूदय नाटक
(पिता घनश्यामकवि		की टीका
चम्पकेश्वर	:	पदार्थमाला
		(विषय- शांकराद्वैत तथा
		माध्वमत का खंडन)।
चक्रपाणि	:	कलाकौमुदीचम्पू
चक्रपाणि दीक्षित	:	दशकुमारचरितम् का
		उत्तरार्ध।
चक्रवर्ती वेंकटाचार्य	:	1 दिव्यचापविजयचम्पू
		2. सुभाषितमंजरी
चारुदेवशास्त्री	:	1 प्रस्तावतरंगिणी
		2. गान्धिचरितम्
चिक्कदेवराय	:	भरतसारसग्रह
चितले, कृष्ण वामन	:	लोकमान्यतिलकचरितम्।
		(बालबोध पुस्तक)
चित्रधर	:	शृंगारसार ।
चिन्नबोम भूपाल	:	सगीतराघवम्।
चिन्मयानन्द	:	भारतीविद्या के संपादक
(फतेहगढवासी)		
डा. चिलकूरी नारायणराव	:	विक्रमाश्वत्थामीय-व्यायोग
(अनन्तपुर, आंध्र में संस्कृत		
प्राध्यापक)	:	1. माधवचम्पू
चिरंजीव		2 विद्वन्मोदतरंगिणी
चैतन्यचन्द्र	:	राधारसमजरी
जगदीश्वर भट्टाचार्य	:	हास्यार्णव-प्रहसनम्
जगदेकमल्ल	:	संगीतचूडामणि
प्रतापचक्रवर्ती		
(12 वीं शती)		
जगद्गुरु	:	वृत्तकौमुदी
जगद्बन्धु	:	आरब्ययामिनी
		(अरेबियन नाइटस् का
		अनुवाद)
जगद्धर	:	वसन्तोत्सव
जगन्नाथ, पिता-राम	:	1. छन्दःपीयूष
		2 सुभाषितरंगसारः
जगन्नाथ स्वामी	:	रामकृष्णकथामृतम्
		(महेन्द्रनाथ कृत मूल
		बंगाली ग्रंथ का अनुवाद)
जनार्दन	:	1. वृत्तप्रदीप।
		2. शृंगारशतकम्।
जयन्त	:	रसरत्नाकर-भाण
जयन्तभट्ट	:	सन्मतनाटकम्।

जयदेव	:	रतिमंजरी
जयनारायण	:	1. शंकरसंगीतम्
(पिता- कृष्णचंद्र)		2 शंकरीगीतम्
जयमंगलाचार्य	:	कविशिक्षा
(राजस्थानी। समय		
12 वीं शती)		
जयराज	:	न्यायसिद्धान्तमाला
		(न्यायसूत्रों की टीका)
जानकीनाथ शर्मा	:	न्यायासिद्धांतमंजरी
(16-17 वीं शती)		
जाबालि	:	जाबलिस्मृति
(भृगुकुलोत्पन्न)		
जिनेश्वर	:	छन्दोनुशासनम्
जीवदेव	:	भक्तिवैभवम्
जीवनजी शर्मा	:	बालकृष्णचम्पू
जीवन्यायतीर्थ	:	1. संस्कृतायोगप्रश्नावली
(कलकत्ता निवासी)		प्रतिवचनम् (पद्यमय)
		2. पुरुषरमणीयम्
		3. क्षुत्क्षेमम्।
जीवराज	:	1 रागमाला
(पिता-व्रजराज)		2 रसतरंगिणीसेतु
पितामह-सामराज		टीकाग्रथ)
दीक्षित)		3. गोपालचम्पू
जीवरामोपाध्याय	:	1 अभिनव-तालमंजरी
		2. अभिनव-रागमंजरी
		3 आदर्श-गीतावली
जेम्स डी आलीज	:	भारतीय संस्कृतग्रंथसूची
		(कोलम्बो में सन् 1870
		में प्रकाशित)
जोन्स (सर विलियम	:	हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों
तथा लेडी जोन्स)		की प्रथसूची। प्रकाशन
		1807 में
जोसिलबेंडाल	:	केंम्ब्रीज वि.वि. के संस्कृत
(और राईस		और पाली ग्रंथों की सूची
डेविड्स)		प्रकाशन- 1883 में
जोशी, वेंकटेशशास्त्री	:	राजनीतिकोश
		(कालिदास खंड) विषय-
		राजनीति- विषयक कालिदास
		के वचनों का संग्रह।
ज्यूलियस, एगलिंग	:	सन 1887 में और
		सन 1896 में लंदन से
		संस्कृत संपादन एवं
		ग्रंथसूचियों का प्रकाशन।
ज्योतिरीश्वर (कविशेखर)	:	पंचसायक

झलकीकर, भीमाचार्य	:	न्यायकोश (विविध शास्त्रों के पारिभाषिक शब्दों का विवरण)
झलकीकर, वामनाचार्य	:	बालबोधिनी (काव्यप्रकाश की बृहत् टीका)
दुण्ढिराज	:	शहाजिविलासगीतम्
तर्कपंचानन भटाचार्य	:	अमरमंगलम्।
तलेकर, अनन्तशास्त्री	:	सस्कृत- मराठीकोश
ताडपत्रीकर (पुणे-निवासी)	:	विश्रवमोहन (नाटक), विषय- जर्मन महाकवि गट के फाउस्ट नामक नाटक का अनुवाद
ताताचार्य (उद्यानपत्रिका के संपादक। तिरुवायूर निवासी)	:	मेनका (डोरास्वामी अयगार के तामिल उपन्यास का अनुवाद)
ताताचार्य (एम.के.)	:	भारतीमनोरथम् (राष्ट्रवादी काव्य)
तिम्मयज्वा	:	कृष्णाभ्युदयम्।
तिरुमलकोणाचार्य	:	रघुवीरवर्यचरितम्
तिरुमल द्वादशाह-याजी	:	सुमनोरमा (सिद्धान्त कौमुदी की टीका)
के. तिरुवेंकटाचार्य	:	अमर्षमहिमा
तिरुवेंकटाचार्य (मैसूर निवासी)	·	तुलसीदासकृत रामचरितमानम का सस्कृत अनुवाद
तोप्पल दीक्षित	·	प्रकाश (सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या)
त्रिपुरान्तक कवि		याचप्रबन्ध (वेकटगिरि के याचवश का इतिहास
त्रिलोचन		तुलसीदूतम्
त्रिविक्रम		पजिका उद्योत
त्रिविक्रमशास्त्री	.	कृष्णराजगुणावलोक (मैसूरनरेश कृष्णगज वोडियर का चरित्र)
त्रिवेणी	:	भृगसदेशम्।
त्र्यंबकभट	:	प्रतिष्ठेन्दु
त्र्यंबकशास्त्री		1 भाष्यभानुप्रभा। 2 श्रुतिमतोद्योत 3 अद्वैत सिद्धान्त वैजयन्ती।
बी.के. थम्पी (केरलवासी)		राजस्थान की ऐतिहासिक

		घटनाओं पर आधारित तीन नाटक - 1 प्रतिक्रिया 2 वन ज्योत्स्ना 3 धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः।
दत्तात्रेय	:	कृष्णभूषणम्।
दर्शनविजयगणी	.	अन्योक्तिशतकम्
दलाल सी.डी. (और एल.बी.गांधी)	:	पटना के जैन ताडपत्रीलेखों की सूची (1937 में बडोदा से प्रकाशित)
दशपुत्र सदाशिव	.	अधरामृतचन्द्रिका
दामोदर	:	वाणीभूषणम्
दामोदरन् नंबुद्री (19 वीं शती)	:	1 कुलशेखरविजय (नाटक) 2 अक्षयपत्रम् (व्यायोग) 3 मन्दारमालिका (वीथी)
दामोदर मिश्र (16-17 वीं शती)	.	सगीतदर्पण।
दिनेश	:	राधाविनोदम्
दिवाकरदत्त शर्मा (शिमला निवासी)	·	दिव्यज्योति पत्रिका सपादन 1955 से
दीखित, डी.आर	:	पुराणशब्दानुक्रमणिका
दुर्गगुप्त सिंह		दुर्गवृत्ति (अर्थात् कातत्रवृत्ति-टीका)
दुर्गसिंह (ई. 7 वीं शती) (अन्यनाम दुर्गात्मा)	:	कातत्रवृत्ति
दुर्गादत्त	·	1 वृत्तरत्नावली 2 वृत्तमुक्तावली।
दुर्गादास	.	कविकल्पद्रुम के टीकाकार
दुर्वास कवि	:	आर्याद्विशती
दुर्गासहाय	:	वृत्तविवेचन
देवकृष्ण	·	धर्मादर्श
देवदास	:	वेंकटगिरिमाहात्म्य
देवर दीक्षित (पिता- श्रीपाद)	:	प्रसन्नरामायणम्
देवराजदेशिक (पिता- पद्मनाभ)	:	1 रामाभिषेकचम्पू 2 रामकथासुधोदयचम्पू
देवराज (पिता- रघुपति)	:	अनिरुद्धचरितचम्पू
देवराव और गंगाराव	:	नानकचन्द्रोदयम्
देवसहाय	:	पाणिनीयसूत्रवृत्ति (टिप्पणी)
देवानन्द पूज्यपाद	:	राघवोल्लास

देवेश्वर उपाध्याय	: स्त्रीविलास·
देवीदास	: मुग्धबोध की टीका
द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी (और तारिणीश झा)	: संस्कृतशब्दार्थ- कौस्तुभ ।
द्विजेन्द्रनाथ गुहचौधरी	: 1. आर्यभाषाचरितम् 2. देवभाषा देवनागराक्षरयो. उत्पति. । (ये दोनों गद्य निबध हैं)
धरणीधर ·	: रसवतीशतकम्
नंदकिशोर भट्ट (15 वीं शती)	: मुग्धबोधव्याकरण का परिशिष्ट एवं टीका
नरेशशास्त्री के.जी. (10 वीं शती)	: परिणयमीमासा
नन्दन	: प्रसन्नसाहित्यरत्नाकर
नरसप्पा मन्त्री	: अभिनवभारतम्
नरसिंह	: गुणरत्नाकर., विषय- अलकारों के उदाहरणार्थ तजौरनरेश सरफोजी भोसले के गुणों का वर्णन
नरसिंह (मद्रासनिवासी)	: अनुमितिपरिणयम् (न्यायशास्त्रविषयक नाटक)
नरसिंह	: कोकिलसदेशम्
नरसिंह चार्लु (19 वीं शती)	: चित्सूर्यालोक (नाटक)
नरसिंहतात	: रुक्मिणीवल्लभपरिणयचम्पू।
नरसिंहदत्त शर्मा (अमृतसर निवासी)	: राजभक्तिमाला (ई 1929)
नरसिंह सूरि- पिता- अनन्तराय	: कृष्णविलासचम्पू
नरहरि चक्रवर्ती	: भक्तिरत्नाकर
नल्ला सोमयाजी	: जीवन्मुक्तिकल्याण।
नवनीतकवि	: मार्गसहायचम्पू।
नागनाथ	: महाभाष्य- प्रदीपोद्योत ।
नागेशभट्	: 1 व्यजनानिर्णय । 2 युक्तिमुक्तावली (केशवमिश्र की तर्कभाषा पर टीका)
व्ही.एन. नायर (मलबार निवासी)	: अनुग्रहमीमांसा (विषय- जतुरोगचिकित्सा)
के. नागराजन्	: विवेकानन्दचरितम्
के.के.आर. नायर	: आलस्यकर्मीयम्।
नारायण एस.	: आग्लगानम्
नारायण	: 1 महाभाष्यविवरणम् 2. महाभाष्यप्रदीप (नेपाल दरबार पुस्तकालय में हस्तलिखित सुरक्षित)
नारायण	: शाहराज नक्षत्रमाला (27 श्लोक)
नारायण	: वृत्तरत्नावली
नारायणकवि	: 1 सुभगसंदेशम् 2 सगीतसार·
नारायण पुरोहित	: वृत्तकारिका
नारायणसुधी	: अष्टाध्यायीप्रदीप (अन्यनाम- शब्दभूषणम्)
नारायण स्वामी	: अनुरागरस ।
नारायण शिवयोगी	: नाट्यसर्वस्वदीपिका
नारायण (पिता- त्रिविक्रम)	: 1 मध्वविजय 2 अणुमध्वविजय· 3. मणिमजरी 4 राघवेन्द्रविजयम्
नारायणेन्द्र सरस्वती	: शतपथान्तर्गत- मण्डलब्राह्मण का भाष्य
नारायण पंडित	· आश्लेषा
नारायण देव	: सगीतनारायण
नीलकण्ठ	: 1 तर्कसग्रहटीका 2 आर्याशतकम् 3 मुकुन्दविलास
नीलकण्ठार्य	: समवृत्तसार
नूतनकालिदास	: विक्रमराघवीयम्
नृत्यगोपाल कविरत्न (19 वीं शती)	: माधवसाधना (नाटक
नृसिंह	: 1 शिवदयासहस्रम् 2 कृष्णदूतम् 3 पुरुषोत्तमचम्पू 4 त्रिपुरविजयचम्पू 5 आजनेय विजयचम्पू 6 व्याख्यान (प्रक्रियाकौमुदी टीका)
नृसिंह भागवत	: वृत्तरत्नार्णव
नृसिंहसूरि	: श्रीशैलकुलवैभवम् (विषय- रामानुजाचार्य का चरित्र)
पंडित, प्रभाकर दामोदर (जलगांव- महाराष्ट्र) के निवासी	: सूक्तिरत्नावली (टाइम्स ऑफ इडिया के कतिपय दैनिक सुभाषितों का पद्यानुवाद)
पद्मानन्द	: वीरचम्पू

पद्मनाभ	: रामखेटकाव्यम्	**भगवद्दत्तशास्त्री**	: कामायनी (जयशंकर कृत हिंदी महाकाव्य का अनुवाद)
पद्मनाथ भट्ट	: गोपालचरितम्	**भगवानदास (वाराणसीवासी)**	: मानवधर्मसार
परमानन्ददास	: आनन्दवृन्दावनचपू	**भट्टकृष्ण**	· सुभाषितरत्नकोश
परवस्तु रंगाचार्य	: आग्लाधिराज्य- स्वागतम्	**भट्टगोविंदजित्**	: सग्रहसुधार्णव (सुभाषितसंग्रह)
परशुराम	: कृष्णचम्पू	**भट्टनाथस्वामी (विजगापट्टणवासी)**	: जॉर्जप्रशस्ति
परवस्तु लक्ष्मी-नरसिंहस्वामी	: चालुक्यचरितम्	**भट्टनारायण**	: 1 कुचेलवृत्रम् 2 कृष्णकाव्यम्
पांडुरंगशास्त्री	: सत्याग्रहकथा	**भट्टपल्ली राखालदास**	: तत्त्वसार ।
पात्राचार्य	: रघुनदनविलास	**भट्टमाधव (14 वीं शती)**	: 1 सगीतदीपिका 2 सगीतचद्रिका
पापय्याराध्य	· कल्याणचम्पू	**भट्टविनायक (पिता- भट्टमाधव, वृद्धनगर के निवासी)**	· कौषीतकी अथवा शाखायन ब्राह्मण के भाष्यकार
पितामह नरसिंह	: प्रक्रियाकल्पवल्ली	**भट्ट श्रीकृष्ण**	. सुभाषितरत्नकोश
पीटरसन	: सन् 1883, 1892 और 1898 मे सस्कृत ग्रथों की सूचियों का प्रकाशन- छ खडो में	**भट्टाचार्य**	: शृगारतटिनी
पुणतांबेकर, महादेव	: तर्कसग्रह की टीका	**भट्टाचार्य तर्कपंचानन**	अमरमगलम् (ऐतिहासिक नाटक)
पुण्यकोटि	· कृष्णविलास	**भद्रादि रामशास्त्री (19 वीं शती)**	मुक्तावलीनाटकम्
पुरुषोत्तम	: सुभाषितमुक्तावली	**भद्रेश्वरसूरि (12 वीं शती)**	: दीपकव्याकरणम्
पुरुषोत्तम मिश्र	. रामचन्द्रोदय	**भवानन्द ठाकुर**	· सदर्पकन्दर्पम्
पूर्णानंद हृषीकेश	: पूर्णज्योति	**भागवत, सखारामशास्त्री**	: अहल्याचरितम् (महाकाव्य)
पेद्दुभट	. सूक्तिवारिधि	**भाटवडेकर एस के**	· सुभाषितरत्नाकर
पेरी काशीनाथशास्त्री (19 वीं शती)	: 1 द्रौपदीपरिणयम् 2 पार्चालिकारक्षणम् 3 यामिनीपूर्णतिलक	**भानुदत्त (पिता-गणपति)**	: कुमारभार्गवीयचम्पू·
पेगिनाडु पंचपागेशशास्त्री	ताटकप्रतिष्ठा- महोत्सव	**भानुदास**	गीतगौरीपति
प्रधान, दाजी शिवाजी	: रमामाधव	**भानुनाथ दैवज्ञ (मिथिला के निवासी 19 वीं शती)**	प्रभावतीहरणम् (कीर्तनीयारूपक)
प्रभाकर	: 1 गीतराघवम् 2 कृष्णविलास	**भारद्वाज**	1 कृष्णायनम् (सात सर्ग) 2 वृत्तसार
प्रीतिकर	· काव्यजीवनम्	**भावदत्त**	रत्नसेनकुलप्रशस्ति । (बगाल के सेन वश का इतिहास)
फतेहगिरि	: वृत्तविनोद	**भावमिश्र**	: शृगारसरसी।
बंदलाझडी रामस्वामी	· रामचम्पू	**भावानन्द**	· सदर्पकन्दर्पम्
बदरीनाथ	: वृत्तप्रदीप	**भाष्यकार**	: यादवशेखरचम्पू.
बदरीरामशास्त्री	शम्बरासुरविजयचम्पू	**भास्कर**	: कृष्णोदन्त.
बागेवाडीकर (सोलापूर- महाराष्ट्र के निवासी	: 1 क्रान्तियुद्धम् 2 लोकमान्यतिलकचरितम्		
बालकृष्ण	: रामकाव्यम्		
बुद्धिसागरसूरि	. ××		
बेन्फे	: सस्कृत-इग्लिश डिक्शनरी		
ब्रह्मदत्त	: रमणीयराघवम्		
ब्रह्मपण्डित	. उत्तरचम्पू		
ब्रह्ममित्र वैद्य	· भैरवविलास .		
भगवद्गीतादास	नूतनगीतावैचित्र्यविलास।		

भास्कर : कुमारविजयचम्पू
(पिता-शिवसूर्य)
भास्कराध्वरी : कृतचन्द्रोदय
भिडे, विद्याधर वामन : संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी
भीमदेव : श्रुतिभास्कर
भीमनरेन्द्र : 1 संगीतराज.
2 संगीतकलिका
3 संगीतसुधा
भीष्मचन्द्र : वृत्तदर्पण
भुला पंडित : ब्रह्मसिद्धान्त
भुवनेश्वर : आनन्ददामोदर चम्पू
भूदेव मुखर्जी : रसजलनिधि
भूषणभट्ट : बाणभट्ट की कादम्बरी का
(पिता-बाणभट्ट) उत्तरार्ध
भोलानाथ : संदर्भामृततोषिणी
(मुग्धबोध व्याकरण की
व्याख्या)
भोसदेव : संगीतसारकलिका
(शुद्धस्वर्णकार)
मंगलदेवशास्त्री डा. : प्रबन्धप्रकाश
(वाराणसी निवासी) (छात्रोपयोगी पुस्तक)
मणिराम . ग्रहगणितचिन्तामणि
मतंग : बृहद्देशीय
मथुरादास : वृषभानुनाटिका
(गुरु-कृष्णदास)
(यमुनातीरवर्ती सुवर्ण
शेखर-पुरनिवासी)
मथुरानाथ : 1 छन्द:कल्पलता
2 सुभाषितमुक्तावली
3 यन्त्रराजघटना
4 ज्योतिष सिद्धान्तसार
मथुरानाथ शुक्ल : वृत्तसुधोदय
मदन (पिता-कृष्ण) : कृष्णलीला
मदनपाल : संगीतशिरोमणि
(14 वीं शती)
मधुव्रत : रामरत्नाकर.
मधुसूदन : 1 मुग्धबोधव्याकरण की
टीका
2 पंडितचरित-प्रहसनम्
3. अन्यापदेश-शतकम्
4 जानकीपरिणय-नाटकम्
मधुसूदन तर्कालंकार : इग्लंडीय व्याकरणसार.
(1835 में प्रकाशित)
मधुसूदन : निघण्टुमणिमाला

विद्यावाचस्पति (वैदिकशब्दकोश)
मल्लभट्ट हरिवल्लभ : जयनगरपंचरंगम्
(जयपुर के नरेशों का वर्णन)
मल्लारि आराध्य : शिवलिंगसूर्योदयम्
(पिता-शरवणाराध्य)
मल्लारि : वृत्तमुक्तावली
मल्लिकार्जुन : वीरभद्रविजयचम्पू
महादेव पांडेय : भारतीशतकम्
महानंदधीर : काव्यकल्पचम्पू
महेश्वर : विश्वप्रकाशकोश
माधव : उद्धवदूतम्
माधव : जडवृत्तम्
माधव चन्द्रोबा : शब्दरत्नाकर
(संस्कृत-मराठी कोश)
माधवभट्ट : प्रणयिमाधवचम्पू
माधवानन्द : आनन्दवृन्दावनचम्पू
माधवामात्य : नरकासुरविजयम्
माधवाचार्य : संक्षेप-शंकरविजय
मानकवि : शृंगारमंजरी
मानदेव : कृष्णचरितम्
मानसिंह : वृन्दावनमंजरी
मिश्र सानन्द : वृत्तरत्नाकर
मुकुंद कवि : पद्यावली (सुभाषितसंग्रह)
मुड्डु विट्ठलाचार्य : पलाण्डुप्रार्थना
मुद्गल : कर्णसन्तोष
मुनिवेदाचार्य : सुभाषितरत्नाकरः
मेरुतुंग : जैनमेघदूतम्
(15 वीं शती) (विषय- नीतिप्रतत्त्वोपदेश)
मैत्रेय रामानुज : नाथमुनिविजयचम्पू
(रामानुजाचार्य का चरित्र)
मोडक, गोविन्द कृष्ण : चोरचत्वारिंशीकथा
(अरेबियन नाइटस् की एक
कथा का अनुवाद)
मोतीराम : 1 कृष्णचरितम्।
2 कृष्णविनोदम्।
मोनियर विल्यम्स : संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी।
मोहनशर्मा : अन्योक्तिशतकम्
मोहनस्वामी : रामचरितम्
मोहनानन्द : रासकल्पलता
यज्ञस्वामी, म.म. : त्यागराजविजयम्। विषय-
लेखक के पितामह का चरित्र
योगध्यान मिश्र : क्षेत्रतत्त्व-दीपिका
(विषय- भूमितिशास्त्र)

यज्ञेश्वर दीक्षित और वासुदेव दीक्षित	: बौधायन श्रौतसूत्र व्याख्या
यदुगिरि अनन्ताचार्य	: कृष्णराजकल्लोदयचम्पू (मैसूरनरेश का चरित्र)
यदुनन्दनदास	: विलापकुसुमाजलि कृष्णवियोग
यलंदुर श्रीकण्ठशास्त्री	. जगद्गुरुविजचम्पू।
यश:पाल (14 वीं शती)	मोहपराजयम्
यशपाल टंडन	: पुराणविषयानुक्रमणिका
यशवन्त	. वृत्तद्युमणि ।
यशवन्तसिंह	: वृत्तरत्नाकर
यादवप्रकाश	: वैजयन्तीकोश
यादवेश्वर तर्करत्न	: अश्रुबिंदु (ई. 1901) (महारानी व्हिक्टोरिया का निधन)
येडवाथि कोडमानीय नंपुद्रीपाद	· रुक्मिणीस्वयवरप्रबन्ध
योगानन्द	. वज्रमुकुटविलासचम्पू ।
योगेन्द्रनाथ	. दशाननवधम्
रंगनाथ	· सम्पत्कुमारविलासचम्पू
रंगाचार्य पिता- रघुनाथ	: 1 मयूरसंदेशम्। 2 पिकसन्देशम् 3 प्रेमराज्यम् (व्हिकार ऑफ वेकफिल्ड नामक अंग्रेजी उपन्यास का अनुवाद)
रघुदेव नैयायिक (बंगाल निवासी)	दिनसंग्रह (विषय- फलज्योतिष)
रघुनाथ	. 1 विलापकुसुमाजलि 2 सगीतप्रकाश 3 रागादिस्वरनिर्णय 4 वृत्तसिद्धान्तमजरी। 5 मारुतिविजयचम्पू। 6 इन्दिराभ्युदयचम्पू। 7 रामचरित्रम्
रघुनाथप्रसाद	: भरतशास्त्रम्
रघूत्तमतीर्थ	: मुकुन्दविलास.।
रत्नाराध्य	: दारुकावनविलासम्।
रत्नपाणि	: मैथिलेशचरितम् (दरभंगा के राजवश का वर्णन)
रत्नशेखर	: छन्द कोश
रमणपति	: 1 शृगारकोश 2 देव्यशीतिकम्
रमानाथ (पिता- बाणेश्वर)	· रामलीलोद्योत.
रविकर	· वृत्तरत्नावली
रविदास	: मिथ्याज्ञानखडनम्
रवीन्द्रकुमार शर्मा	मानवप्रजापतीयम (काव्य
रागकवि	: रागलक्षणम्
राघव	· 1 भद्राचलचम्पू 2 उत्तरकाण्डचम्पू ।
एम.आर राजगोपाल अय्यगार	1 काकदूतम् 2 रुबाइयो का अनुवाद (1940)
राजगोपालचक्रवर्ती	कविकार्यविचार।
राजचूडामणि	1 रुक्मिणीकल्याणम् (10 सर्ग) 2 कसवधम् (10 सर्ग) 3 भारतचम्पू। 4 आनदराघवम्। 5 कमलिनीकलहसम्। 6 शृंगारसर्वस्वभाण।
राजानकगोपाल	शिवमाला
राजे, श्या वि (कल्याण मे वकील)	माहित्यविनोदराज
राजनृसिंह	शब्दबृहती (महाभाष्य की व्याख्या)
राजा माधवदेव	: रतिसार।
राजराजवर्मा (त्रावणकोर के अधिपति)	1 लघुपाणिनीयम् 2 विशाखतुला-प्रबन्धचम्पू ।
राजवल्लभशास्त्री	नृसिंहभारतीचरितम् (नृसिहभारती शृंगेरी के शंकराचार्य थे)
राधाकृष्णजी	. 1 आनदगानम् 2 कल्याणकल्पद्रुम । 3 गानस्तवमजरी 4 जोगविहारकल्पद्रुम । 5 दोलोत्सवदीपिका 6 धर्मसंगीतम् 7 गजलसग्रह ।
राधा मोहन	: 1 सगीततरगम् 2 संगीतरत्नम्।
राधामोहन शर्मा न्यायरत्न	: भक्तिमार्ग
राम	: 1 कसनिधनम्।

		2 वर्णलघुव्याख्यानम्।
राम (पिता-नृसिंह)	:	अलंकारमुक्तावली
रामकवि	:	1 गीतराघवम्। 2. गीतगिरीशम्।
रामकवि (मलबार राजवंशीय)	:	1 सुबालावज्रतुण्डम्। 2 मन्मथमथनम् (डिम)
रामकिशोर (19 वीं शती)	:	रुक्मिणीस्वयवरम्
रामकृष्ण	.	1 भार्गवचम्पू 2 मनोदूतम्
एम. रामकृष्णभट्ट (बंगलोर निवासी)	:	अमृतवाणी पत्रिका का सपादन
रामकृष्णभट्	.	1 सगीतसारोद्धार । 2 रागकौतूहलम्।
रामचन्द्र	:	1 वृत्ताभिरामम् 2 गोपाललीला 3 गोविंदलीला 4 कृष्णविजयम्
रामचन्द्र (पुल्लोलवंशीय)		पौलस्त्यराघवीयम्।
रामचंद्र (पिता-केशव- 17 वीं शती)	.	केरलाभरणम्
रामचन्द्र (रत्नखेट दीक्षित का पोता)	.	रामचन्द्रचम्पू
रामचन्द्र (पिता- नागोजी)	.	सिद्धान्तकौमुदी की स्वर-प्रक्रिया के अश पर टीका।
रामचंद्र तर्कवागीश	:	1 रामविलास 2 साहित्यदर्पण की कृति
रामचन्द्राचार्य	:	शेक्सपीयर के कुछ काव्यो के अनुवाद
रामचरण	:	वृत्तकौमुदी
रामजसन	:	सस्कृत- इंग्लिश डिक्शनरी
रामदयाल तर्करत्न	:	अनिलदूतम्।
रामदयालु	:	वृत्तचन्द्रिका
रामदास	:	रामचन्द्रोदयम्।
रामदेव	:	रामगुणाकर।
रामनंबुद्री ई.व्ही. (नम्पुतीरी)	:	1 केरलभाषाविवर्त 2 महाकविकृत्यम् (विषय- मलयालम् काव्यों के अनुवाद)
रामनाथ	:	1 अभिरामकाव्यम्। (विषय- रामचरित्र) 2 चन्द्रशेखरचम्पू।
रामनाथ नन्द	:	जयपुरराजवंशावली।
रामनाथपाठक (आरा- उ.प्र. के निवासी)	:	राष्ट्रवाणी (75 गीतों का सग्रह)
रामनाथशास्त्री एस.के.	:	मणिमंजूषा
रामभद्र	:	1 रामविलास 2 भागवतचम्पू.
रामभट्ट	:	शृंगारकल्लोलम्
रामभद्र विद्यालंकार		मुग्धबोधव्याकरण (हस्तलेख लंदन में)
राममनोहर	:	शृंगारमजरी
आर. राममूर्ति	:	वीरलब्ध पारितोषिकम् (चोलवशीय राजा के चरित्र पर आधारित उपन्यास)
रामराय	.	राष्ट्रस्मृति
रामवर्मा, केरल में क्रांगनोर के राजवंशी	:	कौमुदी (गोल्डस्मिथ के हरमिट् काव्य का अनुवाद)
रामवर्मा	:	चन्द्रिकाकलापीडम् (मलबार के राजा रविवर्मा का चरित्र)
राम वारीयर	:	आर्यासप्तशती
रामशरणभारती (दिल्ली-निवासी)	:	सस्कृतप्रचारकम् (पत्रिका)
रामशर्मा	:	प्रस्तावसारसंग्रहः (सुभाषित संग्रह)
रामशास्त्री	:	1 नवकोटि 2 शतकोटि (शैवसिद्धान्त)
रामस्वामी	:	राजाम्लमहोद्यानम्।
रामस्वामीशास्त्री	:	1 वृत्तरत्नाकर 2 रामस्तुतिरत्न
रामस्वरूप (एटा के निवासी)	:	बालविवाह-हानिप्रकाशः
रामस्वरूप शास्त्री (मुंबई में वैद्य)	:	1 बालसंस्कृतम् नामक पत्रिका 2 आदर्श हिन्दी-संस्कृतकोश
रावले, श्या.गो.	:	मनोबोध (समर्थ रामदास के मराठी काव्य का अनुवाद)
रामाचार्य	:	सत्यभामापरिणयम्।
रामाचार्य गलगली (बेलगाव- कर्नाटक के निवासी)	:	मधुरवाणी- मासिक पत्रिका का संपादन सन 1937 से।
रामानन्द	:	मुग्धबोध व्याकरण की टीका

रामानन्दतीर्थ	. 1 सगीतसिद्धान्त। 2 रामकाव्यम्
रामानुज	1 वल्लीकल्याणचम्पू 2 रामायणचम्पू 3 विवेकविजयम्
रामानुजदास	1 रामानुजचम्पू 2 रामानुजाचार्यचरित्रम् 3 ताताचार्यवैभवम् (कुम्भकोण के सत्पुरुष कुमार ताताचार्य का चरित्र) 4 रामानुजचरितकुलकम् (भाष्यकार रामानुजाचार्य का चरित्र)
रामार्य पी.जी. (19 वीं शती)	: गजनवी महमदचरितम्
रुद्र	: स्मरदीपिका।
रुद्रदास	चन्द्रलेखा-सट्टम्
रुद्रधर	: अष्टाध्यायी की वृत्ति
रुद्रभट्ट	: जगन्नाथविजयम्
लक्ष्मण (और विद्याधर)	: प्रतिनैषधम्।
लक्ष्मण (पिता- दामोदर)	: 1 रघुवीरविलास। 2 कृष्णविलासचम्पू 3 सूक्तावली
लक्ष्मणगोविन्द	: अभिनवरामायणचम्पू
लक्ष्मणदान्त	: अभिनवरामायणचम्पू
लक्ष्मणसूरि	: सुभगसन्देशम्
लक्ष्मण सोमयाजी (पिता- ओरगंटी शंकर)	: सीतारामविहार
लक्ष्मणशास्त्री (जयपुरनिवासी)	: भारतसग्रह (इतिहास ग्रथ)
लक्ष्मणार्य	: चण्डीकुचपचशती
लक्ष्मीअम्मल	: भारतगीता
लक्ष्मीनारायण द्विवेदी	. ऋतुविलसितम्
लक्ष्मीनृसिंह	: 1 विलास (सिद्धान्त कौमुदी की व्याख्या) 2 ज्ञानाकुरचम्पू
लालापंडित (काश्मीरवासी)	: प्रश्नार्थरत्नावली (ज्योति शास्त्र)
लालमिणिशर्मा	. 1 जॉर्जप्रशस्ति। 2 शृगारकौतूहलम्।
लेवीज् राइस	: मैसूर तथा कुर्ग राज्यों के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची। 1884 में बंगलोर मे प्रकाशित।
लोचन पंडित	· 1 रागतरगिणी 2 रागसर्वस्वम्
लोलंबराज	· सुन्दरदामोदरम्
लौहित्यसेन	: प्रस्तावसार· (सुभाषित-सग्रह)
वंगदेशीय पंडिता·	: धर्मपुस्कस्य शेषांश·। न्यू टेस्टामेंट (अपर नाम- प्रभुणा यीशुख्रष्टेन निरूपितस्य नूतनधर्मनियमस्य ग्रथसंग्रह) (बाइबल का अनुवाद) प्रकाशन- 1910 और 1922
वत्सांकमिश्र कुट्टालवार (11 वीं शती)	· 1 वैकुठस्तव 2 सुन्दरबाहुस्तव·
वल्लभ	: रजनी (सिद्धान्त कौमुदी की व्याख्या)
वल्लभजी	: वृत्तमाला
वल्लीसहाय	. 1 शकराचार्य दिग्विजय.। 2 काकुत्स्थविजयचम्पू।
वरदराज (पिता- ईश्वराध्वरी)	कामानन्दम्।
वरदराज (सुंदरराजाचार्य का वंश)	. विवरण (प्रक्रिया-कौमुदी की टीका)
सी. वरदराजशर्मा	: मनोहर दिनम्।
वरदराज यज्वा	कृष्णाभ्युदय।
एस.टी.जी. वरदाचारीयर	· भाषाशास्त्रसग्रह·।
वांछेश्वर	· भाट्टचिन्तामणि
वाग्भट	: शृगारविलास.।
वादिशेखर	: शिवचरित्रम्
वामन (अभिनव बाणभट्ट)	· वीरनारायणचरितम्
वारणवनेश	: अमृतसिद्धि (प्रक्रिया-कौमुदी की टीका)
वारवुर कृष्णमेनन	: गाथाकादम्बरी
वासुदेव (काश्मीरी पंडित)	: चित्रप्रदीप।
वासुदेव	: चकोरसन्देशम्

वासुदेवदीक्षित (यज्ञेश्वर दीक्षित) : बौधायन श्रौतसूत्र व्याख्या।

वासुदेव पण्डित : जगन्मोहनवृत्तशतकम्।

वासुदेव सार्वभौम (बंगाली) : छन्दोरत्नाकर

विंटरनित्झ और कीथ : संस्कृतग्रंथ संग्रह की सूची- 1905

विठ्ठल : रससर्वस्वम्।

विठ्ठलपन्त : गजेन्द्रचम्पू।

विद्याचक्रवर्ती : गद्यकर्णामृतम्।

विद्यानाथ दीक्षित : प्रक्रियारंजन (प्रक्रियाकौमुदी टीका)

विद्याभूषण : 1 ऐश्वर्यकादम्बिनी (कृष्णचरित्र)
2 पद्यावली।

विद्याशंकर (शंकरानंद) : शंकरविजय।

विनायक : विरहिमनोविनोदम्।

विमलसरस्वती (ई. 16 वीं शती) : रूपमाला (पाणिनीय अष्टाध्यायी की प्रयोगानुसार व्याख्या)

विरूपाक्ष यज्वा : वृत्तमाला

विलोचनदास : कातन्त्रपत्रिका। (दुर्गवृत्ति की बृहत् टीका)

विश्वंभरनाथ शर्मा : संस्कृत-हिंदी कोश।

विश्वक्सेन : रामचरितम्

विश्वनाथ : 1 संगीतरघुनंदनम्
2 वृत्तकौतुकम्
3 रामचन्द्रचम्पू
4 कृष्णभावनामृतम्
5 शृंगारवाटिका

विश्वनाथ टी.ए. : वल्लीपरिणयम् (नाटक)

विश्वनाथ भट्टाचार्य वाचस्पति : चैत्रयज्ञम्

विश्वनाथसिंह : गोपालचम्पू

विश्वबन्धुशास्त्री : वैदिकपदानुक्रमकोश।

विश्वशर्मा : न्यायप्रदीप (तर्कभाषा की टीका)

विश्वेश्वर (वसिष्ठगोत्रीय) : संकरविवाहम्

विश्वेश्वर : 1. षड्ऋतुवर्णनम्
2 आर्यासप्तशती
3 आर्याशतकम्
4 वक्षोजशतकम्
5. रोमावलीशतकम्
6. रसचन्द्रिका

विश्वेश्वर (रत्नाकर पंडित का वंशज) : 1. निर्णयकौस्तुभ
2 प्रतापार्क

विश्वेश्वरानन्द और स्वामी नित्यानन्द : रामवेदपदानाम् अकारादि वर्णानुक्रमणिका

विष्णुत्रात (ई. 17 वीं शती) : कोकसंदेश।

विष्णुपुत्र : संहितोपनिषद् ब्राह्मण का भाष्य।

वीरकर कृ.भा. : 1 संस्कृतधातुरूपकोश।
2 संस्कृतशब्दरूपकोश।

वीरराघव : 1 भद्रादिरामायणम्
2 शारीरकसुप्रभातम्
3 श्रीगोष्ठीस्तवनार्थस्तव

वीरेश्वरभट्ट : अन्योक्तिशतकम्।

वृन्दावनदास : रासकल्पसारतत्त्वम्

वेंकट : चकोरसंदेशम्।

वेंकटकृष्ण (चिदम्बर निवासी) (19 वीं शती) : 1 कुशलवविजयम् (नाटक)
2. उत्तररामायणचम्पू.

वेंकटकृष्णशास्त्री एस.एस. : 1 विवाहसमुद्रमीमांसा
2 अभियानविमर्श।

वेंकटनाथ : 1 सुभाषितनीवि
2 दयाशतकम्

वेंकटनाथ (वेंकटदेशिक) : 1 हंससंदेशम् 2 यदुवंशम्
3 मारसंभवम्
4 पादुकासहस्रम्।
5. संकल्पसूर्योदयम्

वेंकटप्पानायक (मैसूरनरेश- 16 वीं शती) : शिवाष्टपदी

वेंकटमखी (17 वीं शती) : चित्रबन्धरामायणम्।

वेंकटव्या सुधी : कुशलवचम्पू।

वेंकटरंगा : रामामृतम्।

वेंकटरत्न पंतलु : मार्गदायिनी।

वेंकटरमण (बंगलोर निवासी) : 1. रामगीता।
2 कृष्णगीता।
3. दशावतारगीता।
4 गणेशगीता
5 सद्गुरुगीता
6 शिवगीता।
7. वाणीगीता।

	8 लक्ष्मीगीता 9 गौरीगीता। 10 नवगीतकुसुमाञ्जलि।
सी वेंकटरमणाचार्य	सनातनभौतिकविज्ञानम्
वेंकटराघव	हयवदनविजयचम्पू
वेंकटराघवशास्त्री	भाष्यगाभीर्य निर्णयखडनम्
वेकटराघवाचार्य (19 वीं शती- त्रिचनापल्लीवासी)	मन्मथविजयम् नाटक।
सी.व्ही. वेंकटराम दीक्षितर (पालघाट (केरल) के निवासी)	कृष्णार्जुनविजयम् (नाटक)
आर एस. वेंकटराम शास्त्री	भाषाशास्त्रप्रवेशिनी
वेंकटरामशास्त्री	महीशूराभिवृद्धिप्रबन्धचम्पू
एन. वेंकटरामशास्त्री	कथाशतकम् (अन्यान्य प्रादेशिक कथाओ का अनुवाद)
वेंकटवरद	कृष्णविजयनाटकम्
वेंकटसुब्बा	1 गगाधरविजयम्। 2 जप्येशोत्सवचम्पू ।
वेंकटसूरि	1 मार्कडेयोदयम्। 2 गौरीपरिणयचम्पू।
वेकटाचलशास्त्री (काशी शेष)	अब्धिनौयानमीमासा।
वेंकटाचार्य	रघुनदनविलासम्
वेंकटाचार्य सुरपुरम्	बाणासुरविजयचम्पू ।
वेकटाचार्य और अम्मल	रुक्मिणीपरिणयचम्पू ।
वेंकटाध्वरी	सुभाषितकौस्तुभम्।
वेंकटेश	1 कृष्णामृततरगिका। 2 हससदेशम् 3 श्रीनिवासविलासचम्पू , 4 रामाभ्युदयम्।
वेकटेश (पिता- अवधानसरस्वती)	वृत्तरत्नाकर।
वेंकटेश (और कृष्णमूर्ति)	मदनाभ्युदयम्
वेंकटेश्वर	काफीशतकम्
वेणीदत्त (पिता- जगज्जीवन)	पद्यवेणी (सुभाषितसग्रह)
वेणीदत्त	वासुदेवचरितम्।
वेणीविलास	वृत्तसुधोदय
वैकुण्ठपुरी	शान्तिरसम्
वैद्यनाथ	वृत्तवार्तिकम्, रसिकरजनम्
व्रजकान्त लक्ष्मीनारायण	विजयविजयचम्पू
व्रजनाथ	मनोदूतम्
व्रजनाथशास्त्री (पुणे निवासी)	व्हिक्टोरियाप्रशस्ति
डॉ. व्रजमोहन	गणितीयकोश
व्रजराज दीक्षित	रसमजरीटीका
व्रजराज	आर्यात्रिशती
व्रजलाल	शृगारशतकम्
शकर	वैष्णवकरणम्
शंकरकवि	गगावतरणम्
शंकरदयालु	वृत्तप्रत्यय
शंकरनारायण	बालहरिवशम्
शंकरराम	नीवी (रूपावतार की व्याख्या)
शंकरआचार्य	कृष्णविजयम्
शंकराराध्य	बसवराजीयम्
शठकोपाचार्य	बालराघवीयम्
शभुकालिदास	रामचन्द्रकाव्यम्
शभुदास	शृगारसारसग्रह
शंभुराम	छन्दोमुक्तावली
शान्तराज पंडित	वृत्तचिन्तारत्नम्
शाङ्र्गदेव	शकरगीति
शाङ्र्गधर	छन्दोमाला
एल् बी. शास्त्री	1 लीलाकमलविलसितम् 2 चामुण्डा 3 निपुणिका
वेकटाचल शास्त्री (अय्या)	गोपीचन्द्रचरितम्
शिंगराचार्य	गायकपारिजात
शिन्त्रे, शिवरामशास्त्री	1 सार्थ वेदाग निघटु (वैदिक-मराठी कोश) 2 भारतीशतकम्
शितिकण्ठ	शितिकण्ठरामायणम्
शिव	तिथिपारिजातम्
शिवचणरेणु	कुमारविजयम्
शिवराम	बाणविजयम्
शिवरामचन्द्र सरस्वती	रत्नाकर (सिद्धान्त कौमुदी की टीका)
शिवराय कृष्ण और जगन्नाथ	अनगविजयम्
पं शिवशकर (काश्मीर निवासी)	गणवीररत्नाकर विषय- धर्मशास्त्र

शुक्लेश्वर	: प्रमाणादर्श	**श्रीनिवासाचार्य (19 वीं शती)**	: 1 शृंगारतरंगिणीभाण 2 क्षीराब्धिशयनम् 3 ध्रुव (नाटक)
शेषकवि	: 1 चिन्तामणिविजयचम्पू. 2. कल्याणरामायणम्	**श्रीनिवासाचार्य**	: 1 मयूरसन्देशम् 2 सुभाषितपदावली
शेषगिरिशास्त्री और अन्य पंडित	: ओरिएटल् मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी के सग्रह की सूचि 29 खंडों में प्रकाशित	**श्रीनिवासाचार्य (भूतपुरी निवासी)**	: मणिमेखला (तमिलकथा का अनुवाद
शेषचिन्तामणि	: छन्द.प्रकाशः	**श्रीनिवासाचार्य इचवन्दी (19 वीं शती)**	: उमापरिणयम् (नाटक)
शेषदीक्षित	: कृष्णविलास		
शेषसुधीः	: कृष्णचम्पूः		
श्यामकुमार आचार्य	: कीदृशं संस्कृतम्	**एस्. श्रीनिवासाचार्य (कुम्भकोणनिवासी)**	: उत्तमजार्जजायसी रत्नमालिका
आर. श्यामशास्त्री	: भाषातत्रम्		
श्रीकण्ठभट्ट	: वागर्थवशीकरणम्	**श्रीनिवासाचार्य तिरुमलबुक्कपट्टणम्**	: आग्लजर्मनीयुद्ध विवरणम्
श्रीकाशीश	: मुग्धबोध की टीका		
श्रीकृष्ण	: 1. श्रीनिवासविलामचपू 2. रामेश्वरविनयचम्पू	**श्रीनिवासाचार्य (येलयवल्ली) (पिता-वेंकटेश)**	: कृष्णाभ्युदयम्
श्रीकृष्णसार्वभौम (17 वीं शती)	: 1. पादांकदूतम् 2 कृष्णपदामृतम्	**श्रीपति गोविन्द**	: जानक्यानदबोध
श्रीगोपाल	: नरसिंहसरस्वती-मानस-पूजास्तोत्रम्	**श्रीपतिठक्कुर**	: व्हिक्टोरियादेवीस्तोत्रम्
		श्रीपाल	: प्रस्तावतरंगिणी (सुभाषितसग्रह)
श्रीदास	: राधामुकुंदस्तव		
श्रीधर	: 1. कथाकौतुकम् (फारसी ग्रंथ युसुफ जुलेखा का अनुवाद) 2 रामरसामृतम्	**श्रीवल्लभ**	: मुग्धबोध की टीका
		श्रीशैल	: 1 पद्मावतीपरिणयचम्पू 2 इन्दिरापरिणयम्
श्रीधरस्वामी	: व्रजविहार.	**श्रीशैलताताचार्य (शिरोमणि)**	: कपीनाम् उपवास
श्रीनिवास	: 1 वृत्तमणिमालिका 2 नवरत्नविलास 3 मुकुन्दचरितचम्पू 4 शाहराजाष्टपदी 5 सुदामचरितम्	**श्रीशैलताताचार्य**	: 1 दुर्गेशनन्दिनी और 2. क्षत्रियरमणी (बकिमचद्र के उपन्यासों के अनुवाद)
		श्रीशैलताताचार्य (कांचीवरम् निवासी, पिता-वेंकटवरद)	: 1 युगलागुलीयम् 2 वेदान्तदेशिकम् (दोनों नाटक)
श्रीनिवास (19 वीं शती)	: रसिकरंजन-भाण.	**श्रीशैल श्रीनिवास**	: रामकथासुधोदयम्
श्रीनिवास (पिता-वरदपंडित)	: वराहचम्पू	**श्रुतिकान्त**	: लघुनिबंधमणिमाला
श्रीनिवास (पिता-वेंकट)	: प्रसारशेखरः	**संकर्षण**	: 1. नृसिंहचम्पू 2 सत्यनाथाभ्युदयम् 3 सत्यनाथमाहात्म्य रत्नाकर
श्रीनिवास कवि	: कृष्णराज-प्रभावोदयम् (विषय-मैसूरनरेश का चरित्र)	**एम.व्ही. संपतकुमार**	: 1 काफीपानीयम् 2 काफीत्यागद्वादश-मजरिका
श्रीनिवास पंडित	: रागतत्त्वविबोध		
श्रीनिवास रथ	: ललितराघवम्	**सकलकीर्ति (जैनपंडित)**	: सुभाषितावली
श्रीनिवास राघवन्	: गीर्वाणभाषाभ्युदय		
श्रीनिवास शास्त्री	: सौम्यसोमम्	**सच्चिदानन्द**	: रामभद्रमहोदयम् (काव्य)

सत्यव्रतशर्मा	:	1 भैरवस्तव 2 मातृभूस्तोत्रम् 3 भयभजनम् (नाटक)
सदानन्द	:	1 शाकरदिग्विजयसार 2 व्रजेन्द्रचरितम्
सदानन्दनाथ	:	तत्त्वदीपिका (अष्टाध्यायी की वृत्ति)
सदाशिव	:	कामकल्पलता
सदाशिव दीक्षित	:	सगीतसुन्दरम्
सदाशिवमखी	.	रामवर्मयशोभूषणम्
सदाशिवमुनि	:	वृत्तरत्नाकर
समसन्दर्भ	.	काव्यरसायनम्
सरस्वती	.	हससन्देशम्
सर्वेश्वर दीक्षित	:	महाभाष्यस्फूर्ति
सर्वेश्वर सोमयाजी	:	महाभाष्यप्रदीपस्फूर्ति
साम्बशिव	:	अनिरुद्धचरितचम्पू
साकुरीकर डी.टी. भोर (महाराष्ट्र) निवासी	:	गीर्वाणकेकावली (मराठी स्तोत्रकाव्य का अनुवाद)
सीतादेवी	:	अरण्यरोदनम्
सीताराम	:	वृत्तदर्पण
सीतारामशास्त्री	.	महीशूर (मैसूर) देशाभ्युदयचम्पू
सिद्धनाथ विद्यावागीश		पवनदूतम्
सुन्दरदेव	.	मुक्तिपरिणयम्
सुन्दरमिश्र (16 वीं शती)		अभिराममणिनाटकम् (7 अकी)
सुन्दरसेन	:	कुमारीविलसितम् (कन्याकुमारी देवी की कथा)
सुन्दराचार्य	:	गीतशतकम्
सुन्देश्वर	.	शिवपादकमलरेणुसहस्रम्
सुकुमार		रघुवीरचरितम्
सुकालमिश्र (18 वीं शती)		शृगारमाला
सुधीन्द्रयोगी	·	अलकारसार
सुदर्शनशर्मा	.	शृगारशेखरभाण
सुबालचन्द्राचार्य		राधासौन्दर्यमजरी
वाय. सुब्बाराव	·	मूलाविद्यानिरास
सुब्रह्मण्य सूरि	:	अशोकाक-रामायणम् (199 आर्या)
सूर्यनारायण	·	प्रासभारतम्
सूर्यनारायण		श्रुतकीर्तिविलासचम्पू
सेतुमाधव		विश्वप्रियगुणातिरत्नमितम् (मध्वाचार्य का चरित्र)
सौमदत्ति	:	विटवृत्तम्
सोमनाथ (या आर्यक)	.	1 अन्योक्तिशतकम् 2 व्यासयोगिचरितचम्पू·
सोमराजदेव (सोमभूपाल) (12 वीं शती)	:	सगीतरत्नावली
सोमेश्वर (भूलोकमल्ल)	:	1 अभिलषितार्थ-चिंतामणि (सगीत) 2 मानसोल्लास
सौरीन्द्रमोहन	:	सगीतसारसग्रह
डा स्टीन	:	रघुनाथ मदिर (जम्मू) के सस्कृत ग्रथ सग्रह की सूची, (1894 में मुबई मे प्रकाशित)
हंसयोगी	·	हसदूतम्
हसराज		वैदिककोश (ब्राह्मणवाक्यों का सग्रह)
हरभट्टशास्त्री और रामचंद्र काक		जम्मू-काश्मीर नरेश के सग्रह की सूची, 1927 में पुणे मे प्रकाशित
हरिकृष्ण	:	वैदिक वैष्णव सदाचार
हरिनाथ	:	रामविलासकाव्यम्
हरिभट्ट	:	1 सगीतदर्पण 2 सगीतसारोद्धार 3 सगीतकलानिधि
हरिभास्कर		पद्यामृततरगिणी (सुभाषितसग्रह)
हरिराम		महाभाष्यप्रदीप
हरिव्यास मिश्र		1 वृत्तमुक्तावली (ई 1574)
हरिशंकर		गीतराघवम्
हरिसखी		अनुभवरसम्
हरिहर	·	भर्तृहरिनिर्वेदम्
हीरालाल शास्त्री (रायबहादुर)		पुराने मध्यप्रदेश बेरार प्रात के हस्तलिखित सग्रह की सूची, प्रकाशन-1926 में नागपुर में हुआ
हुपरीकर, ग श्री.		सस्कृतानुशीलनविवेक·
ऋषीकेश शर्मा (और शिवचंद्र गुई)		सस्कृत लाइब्रेरी कलकत्ता के सग्रह की सूची। प्रकाशन · 1895 और 1906 में
हेब्बरे, ए आर	:	मनोहर दिनम्
हेमचन्द्र	:	छन्दश्चूडामणि.
हेमचन्द्राचार्य कविभूषण	.	पाडवविजयम्
हेलाराज	:	वार्तिकोन्मेष· (कात्यायन वार्तिकपाठ का भाष्य)

परिशिष्ट-क
ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा ऋषि

प्रथम मण्डल

द्रष्टा	सूक्त
मधुच्छन्दा	- 1 से 10
मेधातिथि	- 12 से 23
सव्यआगिरस	- 51 से 57
गोतम	- 74 से 93
कश्यप	- 99
कक्षीवान् पज्रिय	- 116 से 126
परुच्छेप दैवदासी	- 127 से 139
दीर्घतमा	- 140 से 164

द्वितीय मंडल

× × × ×

तृतीय मंडल

द्रष्टा	सूक्त
गाथी	- 19 से 22
देवश्रवा देववात	- 23
कुशिक	- 33
प्रजापतिवाच्य	- 38, 54, 55, 56
विश्वामित्र	- अवशिष्ट सपूर्ण मडल

(इसी मंडल के 62 वे सूक्त मे 10 वा है प्रख्यात गायत्री मंत्र)

चतुर्थ मण्डल

द्रष्टा	सूक्त
त्रसदस्यु दौर्गह	- 38
पुरुमीळ्ह सौहोत्र	- 43, 44
वामदेव	- अवशिष्ट सपूर्ण मडल

पंचम मण्डल

बुध आत्रेय	- 1
वसुश्रुत आत्रेय	- 3 से 6
गय आत्रेय	- 9, 10
सुतंभर आत्रेय	- 11 से 14
पुरु आत्रेय	- 16, 17
प्रयस्वन आत्रेय	- 20
विश्व सामन आत्रेय	- 22
वसुसु आत्रेय	- 25, 26
त्र्यरुण	- 27 (कुछ मत्र)
अश्वमेधभारत	- 27 (कुछ मत्र)
विश्ववारा	- 28
वव्री आत्रेय	- 29
बभ्रु आत्रेय	- 30
अवस्यु आत्रेय	- 31, 75
गातु आत्रेय	- 32
संवरण प्राजापत्य	- 33, 34
प्रभूवसु आंगिरस	- 35, 36
अत्रि	- 37, 38
अत्रिभौम	- 42
सदापूण आत्रेय	- 45
प्रतिक्षत्र आत्रेय	- 46
प्रतिभानु आत्रेय	- 48
प्रतिप्रभ आत्रेय	- 49
स्वस्ति आत्रेय	- 50, 51
श्यावाश्व	- 52 से 61
श्रुतविद् आत्रेय	- 62
अर्चनानस आत्रेय	- 64
उरुचक्रि आत्रेय	- 69
बाहुवृक्त आत्रेय	- 71, 72
पौर आत्रेय	- 73, 74
पायु भारद्वाज	- 75
अत्रि	- 76, 77
सप्तवध्रि आत्रेय	- 78
वसु भारद्वाज	- 80 से 82
श्यावाश्व	- 81 से 83

षष्ठ मण्डल

द्रष्टा	- सूक्त
वीतहव्य आंगिरस	- 15
सुहोत्र	- 31, 32
शुनहोत्र भारद्वाज	- 33, 34
शंयु बार्हस्पत्य	- 44, 45, 46, 48
गर्ग भारद्वाज	- 47
ऋजिश्वा	- 49 से 52

पायुभारद्वाज	- 87
भरद्वाज	- अवशिष्ट संपूर्ण मडल

सप्तम मंडल

द्रष्टा	- सूक्त
अश्वसूक्ति काण्वायन	- 14, 15
वसिष्ठ	- अवशिष्ट कुल 104 सूक्त

अष्टम मण्डल

द्रष्टा	- सूक्त
मेधातिथि	- 2, 3
देवातिथि	- 4
ब्रह्मातिथि	- 5
वत्सकाव्य	- 6
आयुकाण्व	- 8
शशकर्ण काण्व	- 9
प्रगाथ काण्व	- 10, 48, 51, 54
पर्वत काण्व	- 12
नारद काण्व	- 13
गोषूक्ति काण्वायन	- 13, 14
इरिंबिठि काण्व	- 16 से 18
विश्वमनस् वैयश्व	- 23 से 26
व्यश्व आंगिरस	- 26
कश्यप	- 29
नीपातिथि	- 34
श्यावाश्व	- 35 से 38
नाभाक्त	- 39 से 42
विरूप आंगिरस	- 43, 44
त्रिशोक काण्व	- 45
वश अश्व्य	- 46
श्रुष्टिगु काण्व (वालखिल्यसूक्त)	- 51
मेध्य काण्व	- 53, 57, 58
कलि प्रागाथ	- 55
मान्य मैत्रावरुणि	- 67
पुरुहन्मा आंगिरस	- 70
पुरुमीळ्ह आंगिरस (या सुदीप्ति आंगिरस)	- 71
सप्तवध्री आत्रेय	- 73
विरूप आंगिरस	- 75
विश्वक् कार्ष्णि	- 86
नृमेध	- 89, 90, 98, 99
श्रुतकक्ष	- 92
तिरिश्चि आंगिरस	- 95
रेभ	- 97
नेमभार्गव	- 100

नवम मण्डल

द्रष्टा	सूक्त
मधुच्छन्दा	- 1
असित काश्यप	- 5
दृळहच्युत	- 25
इध्मवाह	- 26
नृमेध	- 27 से 29
गोतम	- 31, 67
श्यावाश्व	- 32
रहूगण आंगिरस	- 37, 38
बृहन्मति आंगिरस	- 39, 40
अयास्य आंगिरस	- 46 से 46
कपि	- 47, 49, 75 से 79
अवत्सार काश्यप	- 53 से 60
अमहीयु आंगिरस	- 61
निध्रुव काण्व	- 63
भृगु + जमदग्नि	- 65
कश्यप	- 64, 67
वात्सप्री भालंदन	- 68
रेणु	- 70
कक्षीवान् पज्रिय	- 74
प्रतर्दन	- 96
मृळीक वासिष्ठ	- 97
कर्णश्रुत वासिष्ठ	- 97
प्रजापति वाच्य	- 101
पर्वत काण्व	- 104, 105
ऊरु आंगिरस	- 108
अनानत पारुच्छेप	- 111

दशम मण्डल

द्रष्टा	- सूक्त
कश्यप	- 13
दमन	- 16
भृगु + मथित + च्यवन	- 19
विमद ऐन्द्र प्राजापत्य (या वसुकृत वासुक्त)	- 20 से 26
वसुक्र ऐन्द्र	- 27 से 29

कवष ऐलूष	- 30 से 34
प्रभूवसु आंगिरस	- 35, 36
सप्तगु आंगिरस	- 47
बृहदुक्थ वामदेव	- 54 से 56
गय प्लात	- 63, 64
वसुकर्ण वासुक्र	- 65, 66
आयास्य आंगिरस	- 67, 68
स्यूमरश्मि	- 77, 78
सौचीक	- 79, 80
मूर्धन्वत् आंगिरस	- 88
रेणु	- 89
नारायणऋषि	- 90 (पुरुषसूक्त)
वरु आंगिरस	- 96
भिषग् आथर्वण	- 97
देवापि	- 98
वम्र (या वम्रक) वैखानस	- 99
वान्दन दुवस्यु	- 100
बुध सौम्य	- 101
मुद्गल	- 102
दुर्मित्र	- 105
सुमित्र कौत्स	- 105
दिव्य आंगिरस	- 107
जुहू (स्त्री)	- 109
अष्टादंष्ट्र वैरूप	- 111
नभः प्रभेदन	- 112
शतप्रभेदन वैरूप	- 113
धर्मतापस	- 114
लब ऐन्द्र	- 119
बृहद्दिव आथर्वण	- 120
हिरण्यगर्भ प्राजापत्य	- 120 (प्रजापतिसूक्त)
रात्री भारद्वाजी (स्त्री)	- 127
विहव्य आंगिरस	- 128
प्रजापति परमेष्ठी	- 129 (नासदीय सुक्त)
यज्ञ प्राजापत्य	- 130
सुकीर्ति काक्षीवत	- 131
शकपूत नार्मेध	- 132
अत्रि सांख्य	- 143 से 145
सुपर्ण तार्क्ष्यपुत्र	- 144
सुवेदा शैरिषि	- 147
हिरण्यस्तूप	- 149
श्रध्दा कामायनी (स्त्री)	- 151 (श्रद्धासूक्त)
शास भारद्वाज	- 152
शिरिंबिठ भारद्वाज	- 155
शची पौलोमी (स्त्री)	- 159
रक्षोहा ब्राह्म	- 162
विव्री काश्यप	- 163
प्रचेता आंगिरस	- 164
ऋषभ वैराज	- 166
शबर काक्षीवत	- 167
विभ्राज सौर्य	- 170
संवर्त आंगिरस (या वीतहव्य)	- 172 (उषासूक्त)
ऊर्ध्वग्रावा	- 175
पतंग प्राजापत्य	- 177
अरिष्टनेमि तार्क्ष्य	- 178
प्रतर्दन	- 179
जय ऐन्द्र	- 180
प्रजावान् प्राजापत्य	- 183
वत्स आग्नेय	- 187
श्येन आग्नेय	- 188
संवनन आंगिरस	- 191 (मधुसुक्त)

अवांतर मंत्रद्रष्टा ऋषिगण

ऋषि	- वेद
कौषीतकी	- ऋग्वेद का कौषीतकी ब्राह्मण
ऐतरेय महीदास	- ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, आरण्यक, तथा उपनिषद्
वैशम्पायन	- कृष्ण यजुर्वेद (अर्थात् निगद या तैत्तिरीय संहिता)
मित्रयु	- कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी सहिता
याज्ञवल्क्य	- शुक्लयजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता)
मध्यन्दिन	- माध्यदिन (वाजसनेयी सहिता)
कण्व	- शुक्ल यजुर्वेद कण्वशाखा
उपोदिति गौपलेय	- सामवेद
आश्वसूक्ति	- सामवेद
आंगिरस	- अर्थववेद।

(प्राचीन चरित्रकोश (मराठी) - सिद्धेश्वर शास्त्री चित्रीवकृत तथा भारतीय सस्कृति कोश (कुल 10 खड) (मराठी) महादेवशास्त्री जोशी कृत- पर आधारित)

वेदपाठ की 10 प्रकार की विकृतियाँ प्राचीन काल से वैदिक विद्वानों में प्रचलित है, उसके प्रवर्तक-

संहिता पाठ	- भगवान।
पदपाठ	- रावण।

क्रमपाठ - बाभ्रव्य।
जटापाठ - व्याडि।
मालापाठ - वसिष्ठ
शिखापाठ - भृगु
रेखापाठ - अष्टावक्र।
दण्डपाठ - पराशर
रथपाठ - कश्यप
घनपाठ - अत्रि

निम्न लिखित तीन श्लोकों में अष्टविध विकृतियों (या पाठों) के प्रवर्तकों के नाम संकलित हैं।

भगवान् संहिता प्राह
पदपाठं तु रावणः।
बाभ्रव्यर्षिः क्रमं प्राह
जटां व्याडिरवोचत ॥1॥

मालापाठं वसिष्ठश्च
शिखापाठं भृगुर्व्यधात्
अष्टावक्रोऽकरोद् रेखां
विश्वामित्रोऽपठद् ध्वजम् ॥2॥

दण्डं पराशरोऽवोचत्
कश्यपो रथमब्रवीत्।
घनमत्रिर्मुनिः प्राह
विकृतीनामयं क्रमः ॥3॥

परिशिष्ट-(ख) वैदिक वाङ्मय

[संस्कृत वाङ्मय कोश के अन्तर्गत अकारादि वर्णानुक्रम में विविध विषयोंके ग्रंथो का उल्लेख यथास्थल हुआ है। प्रस्तुत परिशिष्टो मे वेद पुराण दर्शन काव्य नाटक चम्पू इत्यादि अन्यान्य विषयो के ग्रंथो की सूची दी गई है। जिज्ञासुओं को इस सूची के आधारपर आवश्यक विषय के महत्त्वपूर्ण ग्रंथो की नामावली एकत्र मिल सकेगी और अपेक्षित ग्रंथ के विषय में कुछ जानकारी मूल कोश मे मिल सकेगी।]

(संपादक)

वैदिक (संहिता)	मूल (अपौरुषेय)
ऋग्वेद	
यजुर्वेद	
सामवेद	
अथर्ववेद	
शाकलसंहिता (ऋग्वेद)	
वेदार्थदीपिका	- सायणाचार्य
भाष्य	- स्कन्दस्वामी
ऋगर्थदीपिका	- वेंकटमाधव
वेदभूषण	- लक्ष्मण
माध्वभाष्य	- आनन्दतीर्थ
नारायणीय भाष्य	- नारायण
भाष्य	- आत्मानन्द
भाष्य	- उद्गीथाचार्य
वृत्ति	मुद्गल
शुक्ल यजुर्वेद	
माध्यन्दिन संहिता	
भाष्य	- उव्वट
वेददीप	- महीधर
वेदविलास	- गोरधर
काण्व संहिता	
भाष्य	- सायणाचार्य
काण्ववेद मंत्रभाष्यसंग्रह	आनन्दबोध
भावार्थदीपिका	- अनन्ताचार्य
ब्राह्मणसर्वस्व	- हलायुध
कृष्णयजुर्वेद· तैत्तिरीय संहिता	
भाष्य	- सायण
भाष्य	- माधवाचार्य
मन्त्रार्थदीपिका	- भट्टभास्कर
भाष्य	- भयस्वामी, गुहदेव

काठक संहिता, मैत्रायणी	
संहिता, कपिष्ठल कठसंहिता	(चरक)
श्वेताश्वर संहिता	
सामवेदीय	
कौथुमसंहिता	
भाष्य	- सायण
छन्दसिका, उत्तरविवरण	- माधव
(सामविवरण)	
भाष्य (अमुद्रित)	- भरतस्वामी
सामवेदीय	- राणायनीय संहिता
-''-	- जैमिनीय संहिता
-''-	- गेयगान (प्रकृतिगान)
-''-	- आरण्यगान
-''-	- (ग्रामे) गेयगान
-''	- ऊहगान
-''-	- ऊह्यगान
अथर्ववेदीय	- **शौनक संहिता**
	भाष्य सायण
पिप्पलाद संहिता	
ब्राह्मण ग्रंथ	
ऐतरेय ब्राह्मण (ऋ.)	
भाष्य	- सायण
वृत्ति	- षड्गुरुशिष्य
कौषीतकी (शांखायन) ब्राह्मण	
शांखायनभाष्य	- माधवपुत्र विनायक
शतपथ ब्राह्मण (माध्यंदिन)	
भाष्य	- सायण
टीका	- हरिस्वामी
टीका	- द्विवेदगंग
टीका	- कवीन्द्राचार्य सरस्वती
काण्वशाखीय शतपथ ब्राह्मण	
तैत्तिरीय ब्राह्मण (कृष्ण यजु)	
भाष्य	- सायण
भाष्य	- भट्टभास्कर
आर्षेय ब्राह्मण (सामवेद)	
भाष्य	- सायण
जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (सामवेद)	-

सामविधान ब्राह्मण (सामवेद)
वेदार्थप्रकाश - सायण
ताण्ड्य महाब्राह्मण
(पंचविंशति ब्राह्मण)
भाष्य - सायण
विवृति - भरतस्वामी
षड्विंश ब्राह्मण (सामवेदीय)
वेदार्थप्रकाश - सायण
दैवत ब्राह्मण (देवताध्याय ब्रा.)
छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण
(मंत्र ब्राह्मण)
जैमिनीय ब्राह्मण (जैमिनीय
आर्षेय या तलवकार)
वंश ब्राह्मण (कौथुमशाखीय)
भाष्य - सायण
संहितोपनिषद् ब्राह्मण
(कौथुमशाखीय)
गोपथब्राह्मण (अथर्व)

आरण्यक

ऐतरेय आरण्यक
वृत्ति मोक्षप्रदा - षड्गुरुशिष्य
भाष्य - सायण
शांखायन आरण्यक -
बृहदारण्यक (माध्य) उपनिषद्
भाष्य - त्रिवेद गग
तैत्तिरीय आरण्यक
भाष्य - सायण
भाष्य - भट्ट भास्कर
मैत्रायणीय आरण्यक
कौषीतकी ब्राह्मण आरण्यक

उपनिषद् वाङ्मय सूची

ईशोपनिषद्
केन-उपनिषद्
कठोपनिषद्
प्रश्नोपनिषद्
मुण्डकोपनिषद्
माण्डूक्योपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
ऐतरेय उपनिषद्
छान्दोग्य उपनिषद्
बृहदारण्यकोपनिषद्
श्वेताश्वतर उपनिषद्
कैवल्योपनिषद्
कौषीतकी उपनिषद्
मैत्रायणी उपनिषद्
जाबालोपनिषद्
महानारायणोपनिषद्
बृहज्जाबालोपनिषद्
नृसिह पूर्वतापिनीयोप
नृसिहोत्तरतापिनीयोप.
नृसिहषट्चक्रोप
नारदपरिव्राजकोप
त्रिशिखिब्राह्मणोप
त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोप
श्रीरामपूर्वतापिनीयोप
श्रीरामोत्तरतापिनीयोप
महोपनिषद्
परमहस-परिव्राजक्रोप
गोपालपूर्वतापिन्युप
गोपालोत्तरतापिन्युप
गणेशपूर्वतापिन्युप
गणेशोत्तरतापिन्युप
नारायणपूर्वतापनीयोपनिषद्
नारायणोत्तरतापनीयो.
त्रिपादमूर्तिमहानारायणोप
अमनस्कोपनिषद्
आत्मपूजोपनिषद्
आत्मप्रबोधोप
आत्मोपनिषद्
आत्मस्वरूपविज्ञानोप
आयुर्वेदोपनिषद्
आथर्वणनारायणोप
आथर्वणोप
आरुण्याद्युपनिषद्
इतिहासोपनिषद्
आनन्दवल्ली-उपनिषद्
भृगूपनिषद्
ब्रह्मबिन्दूपनिषद्
हसोपनिषद्
आरुणिकोपनिषद्
गर्भोपनिषद्
नारायणाथर्वशिर उप.
परमहंसोप
ब्रह्मोपनिषद्
अमृतनादोप.
अथर्वशिर उपनिषद्
अथर्वशिखोपनिषद्

कालाग्निरुद्रोपनिषद्
मैत्रेयी-उपनिषद्
सुबालोप.
क्षुरिकोप.
मंत्रिकोप
सर्वसारोप
निरालम्बोपनिषद्
शुकरहस्योप
वज्रसूचिकोप
तेजोबिन्दूप
नादबिन्दूपनिषद्
ध्यानबिन्दूप.
ब्रह्मविद्योप.
योगतत्त्वोप
सीतोपनिषद्
योगचूडामण्युप
निर्वाणोप
मण्डलब्राह्मणोप
दक्षिणामूर्त्यप
शरभोप
स्कन्दोपषिद्
अदयतारकोप
रामरहस्योप
वासुदेवोप
मुद्गलोप
शाण्डिलोप
पैंगलोपनिषद्
भिक्षुकोप
शारीरकोप
योगशिखोप
तुरीयातीतोप
सन्यासोप
अक्षमालिकोप
अक्षमालोप
अव्यक्तोप
एकाक्षरोप.
अन्नपूर्णोप
सूर्योपनिषद्
अक्ष्युपनिषद्
अध्यात्मोप.
कुण्डिकोप
सावित्र्युपनिषद्
पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्
परब्रह्मोपनिषद्

अवधूतोपनिषद्
त्रिपुरतापिन्युप.
त्रिपुरोप.
कठरुद्रोप
भावनोप
रुद्रहृदयोप.
योगकुण्डल्युप
भस्मजाबालोप
रुद्राक्षजाबालोप
गणपत्युपनिषद्
जाबालदर्शनोप.
तारस्वरोप.
महावाक्योप.
पंचब्रह्मोप
प्राणाग्निहोत्रोप.
कृष्णोपनिषद्
याज्ञवल्क्योप.
वराहोपनिषद्
शाख्यायनीयोप
हयग्रीवोप
दत्तात्रेयोप
गारुडोप.
कलिसन्तरणोप.
जाबाल्युप
संन्यासोप
गोपीचन्दनोप.
सरस्वतीरहस्योप
पिण्डोपनिषद्
महोपनिषद्
बह्वृचोप
आश्रमोप
सौभाग्यलक्ष्मुप.
योगशिखोप
मुक्तिकोप
योगराजोप
अद्वैतोपनिषद्
अद्वैतभावबोपनिषद्
आचमनोप.
अनुभवसारोप.
आर्षेयोप.
चतुर्वेदोप.
चाक्षुषोप.
छागलेयोप.
तुरीयोप.

तारोपनिषद्
तुरीयातीतोप
द्वयोपनिषद्
निरुक्तोप
निरालम्बोप
प्रणवोपनिषद्
बाष्कलमन्त्रोप
मठाम्नायोप
विश्रामोप
शौनकोप
सूर्यतापिन्युप
स्वसंवेद्योप
ऊर्ध्वपुण्ड्रोप
कात्यायनोप.
तुलस्युप
नारदोपनिषद्
पादयात्रिकोप
यज्ञोपवीतोप
राधोपनिषद्
लांगूलोप
श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोप
संकर्षणोपनिषद्
सामरहस्योप
सुदर्शनीयो
नीलरुद्रोप
पारायणोप
बिल्वोपनिषद्
मृत्युलांगूलोपनिषद्
रुद्रोपनिषद्
लिंगोपनिषद्
वज्रपंजरोप
बटुकोपनिषद्
शिवसंकल्पोप
शिवोपनिषद्
सदानन्दोप
सिद्धान्तशिखोप
सिद्धान्तसारोप
हेरम्बोपनिषद्
अल्लोपनिषद्
आथर्वण द्वितीयोप
कामराजकीलितोद्धारोप
कालिकोप
कालीमेधादीक्षितोप
कुण्डिकोप
गायत्रीरहस्योप
गायत्र्युपनिषद्
गुह्यकाल्युप
पीताम्बरोप
राजश्यामलारहस्योप
वनदुर्गोप
श्यामोपनिषद्
श्रीचक्रोपनिषद्
श्रीविद्यातारकोप
षोढोपनिषद्
सुमुख्युपनिषद्
हंसषोढोप
योगकुण्डल्युप
मैत्र्युपनिषद्
कौलोपनिषद्
गान्धर्वोपनिषद्
चित्युपनिषद्
देव्युपनिषद्
निर्वाणोप
अमृतबिन्दूपनिषद्
चूलिकोपनिषद्
ब्रह्मबिन्दूप

परिशिष्ट (ग) वेदांग वाङ्मय

शिक्षा

याज्ञवल्क्यशिक्षा - याज्ञवल्क्य
वासिष्ठी शिक्षा - वसिष्ठ
कात्यायनी शिक्षा - कात्यायन
व्याख्या - जयन्तस्वामी
पाराशरी शिक्षा - पराशर
माण्डव्य शिक्षा - माण्डव्य
पाणिनीय शिक्षा - पाणिनि
नारदीय शिक्षा - नारद
भाष्य - शोभाकर
गौतमी शिक्षा - गौतम
माण्डूकी शिक्षा (अर्थवेदीय) - मण्डूक
लोमशी शिक्षा - लोमश
स्वर-भक्तिलक्षण शिक्षा
आपिशली शिक्षा
कौहली शिक्षा
चान्द्रवर्णसूत्र शिक्षा
अमोघानन्दिनी शिक्षा - अमोघानन्द
स्वरभक्तिलक्षण परिशिष्ट शिक्षा - कात्यायन
स्वराकन शिक्षा -
षौडशश्लोकी शिक्षा - रामकृष्ण
मन·स्वारशिक्षा -
प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा - योगी याज्ञवल्क्य
वेद परिभाषाकारिका - बालकृष्ण रामचन्द्र
स्वरांकुश शिक्षा
क्रमकारिका शिक्षा
यजुर्विधान शिक्षा
गलदृक् शिक्षा
अवसान निर्णय - अनन्तदेव
वर्णरत्न प्रदीपिका - अमरेश
केशवी शिक्षा - दैवज्ञ केशवराम
क्रमसन्धान शिक्षा
स्वराष्टक शिक्षा
लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा

कल्पः (श्रौत-गृह्य-धर्म-शुल्व सूत्राणि)

आश्वलायन श्रौतसूत्र (ऋग्वेद) - आश्वलायन
वृत्ति - गार्ग्यनारायण
शांखायन श्रौतसूत्र (ऋग्वेद) - शांखायन
भाष्य - अनृत
व्याख्या - गोविन्द
आश्वलायन गृह्यसूत्र (ऋग्वेद) - आश्वलायन
वृत्ति - गार्ग्यनारायण
कारिका - कुमारिल भट्ट
व्याख्या - हरदत्त
शांखायन गृह्यसूत्र (कल्पसूत्र) - शांखायन
वासिष्ठ धर्मसूत्र (ऋग्वेदफ - वसिष्ठ
व्याख्या - गोविन्दस्वामी
परशुराम कल्पसूत्र (ऋग्वेद) -
व्याख्या - रामेश्वर
पद्धति - उमानन्द
कौषीतकी गृह्यसूत्र (शांभव्य गृह्यसूत्र) (ऋग्वेद)
कात्यायन श्रौतसूत्र - कात्यायन
(शुक्लयजुर्वेद भाष्य - कर्काचार्य
सरलावृत्ति - म म विद्याधर गौड
पारस्कर गृह्यसूत्र
(शुक्ल यजुर्वेद)
(अन्तर्गत-परिशिष्ट -व्याख्या - कर्काचार्य
कण्डिका श्रौतसूत्र, -व्याख्या - जयराम
सोवरसूत्र श्राध्दसूत्र, -व्याख्या - हरिहर
भोजनसूत्र) -व्याख्या - गदाधर
- व्याख्या - विश्वनाथ
श्राद्धसूत्र (शुक्ल यजुर्वेद) - कात्यायन
शुल्बसूत्र (शुक्ल यजुर्वेद) - कात्यायन
-भाष्य - कर्काचार्य
-वृत्ति - महीधर
बौधायन श्रोतसूत्र
(कृष्ण यजुर्वेद)
(तैत्तिरीय शाखा)
बौधयन गृह्यसूत्र (कृष्ण यजुर्वेद -
बौधायन धर्मसूत्र (कृष्ण यजुर्वेद
-विवरण - गोविन्दस्वामी
बौधायन कल्पसूत्र
(कृष्ण यजुर्वेद
बौधायन कर्मान्तसूत्र (कृष्णयजु - बौधायन
तैत्ति.)
बौधायन द्वैधसूत्र

बौधायन शुल्वसूत्र
आपस्तम्ब श्रौतसूत्र - आपस्तम्ब
-भाष्य - धूर्तस्वामी
-वृत्ति - रामाग्निचित्
आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (कृष्णयजु. तैत्ति)
-अनाकुलाव्यमाख्या - हरदत्तमिश्र
-तात्पर्यदर्शन - सुदर्शनाचार्य
आपस्तम्ब धर्मसूत्र (कृष्णयजु. तैत्ति.)
-उज्ज्वला व्याख्या -
आपस्तम्ब शुल्वसूत्र (कृष्णयजु. तैत्ति.) - आपस्तम्ब
-भाष्य (परिभाषासूत्र) - कपर्दीस्वामी
-व्याख्या - हरदत्त
वाधुल (शुल्व) सूत्र (कृष्णयजु तैत्ति.) - वाधुल
सत्याषाढ श्रौतसूत्र (हिरण्यकेशी कृष्णयजु.तैतिरीय)
-वैजयन्ती - गोपीनाथ भट्ट
-ज्योत्स्ना
-चन्द्रिका
सत्याषाढ गृह्यसूत्र
-व्याख्या - मातृदत्त
भारद्वाज श्रौतसूत्र
भारद्वाज गृह्यसूत्र
वैखानस श्रौतसूत्र
वैखानस गृह्यसूत्र
वैखानस धर्मसूत्र
मानव श्रौतसूत्र(कृ.यजु. मैत्रायणी
मानव गृह्यसूत्र (-''-)
-भाष्य - अष्टावक्र
वाराह श्रौतसूत्र -
वाराह गृह्यसूत्र
मानव धर्मसूत्र
काठक गृह्यसूत्र (कृष्ण यजु. कठ. शाखा)
लौगाक्षि गृह्यसूत्र (-''-)
-भाष्य - देवपाल
अग्निवेश्य गृह्यसूत्र (कृष्ण यजु. कठ. शाखा)
विष्णु धर्मसूत्र (कृष्ण यजु. कठ. शाखा)

पितृमेधसूत्र - (डच भाषामें अनुवाद) (गौतम, बौधायन हिरण्यकेशी)
लाट्यायन श्रौतसूत्र (साम. कौथुम) - लाट्यायन
-मशक भाष्य - आनन्दचन्द्र
-वृत्ति - अग्निस्वामी
गोभिल गृह्यसूत्र (साम.कौथुम)
-व्याख्या (भाष्य) - चन्द्रकान्त तर्कालंकार
-व्याख्या - रुद्रस्कन्द, खादिर
गोभिल परिशिष्ट (साम.कौथुम - चन्द्रकान्त तर्कालंकार
द्राह्यायण श्रौतसूत्र (साम. -
-राणायनी व्याख्या - धन्वी
-वृत्ति - रुद्रस्कन्द
खादिर गृह्यसूत्र -
-व्याख्या - रुद्रस्कन्द
पंचविध सूत्र
निदान सूत्र
क्षुद्रसूत्र (आर्षेय कल्प श्रौत) जैमिनि.) - मशक, गार्ग्य
प्रतीहार सूत्र (श्रौत-दशतय्या) - वरदराज
जैमिनीय श्रौतसूत्र (साम.जैमि.)
जैमिनीय गृह्यसूत्र (-''-)
गौतम धर्मसूत्र (-''-)
-भाष्य - मस्करी
वैतान श्रौतसूत्र (अथर्व)
वैखानस श्रौत (अथर्ववेदीय)
आक्षेपानुविधि व्याख्या - सोमादित्य
कौशिक गृह्यसूत्र (अथर्व) - कौशिक
-व्याख्या - दारिल
- '' - (केशवपद्धति) - केशव
वसिष्ठ धर्मशास्त्र -
वैदिक योगसूत्र - हरिशंकरजोशी

प्रतिशाख्य (वैदिक व्याकरण)

ऋक्प्रातिशाख्य (पार्षदसूत्र) - शौनक
-भाष्य - उव्वट
शुक्लयजुः प्रतिशाख्य - कात्यायन
-भाष्य - उव्वट
-भाष्य - अनन्तभट्ट
साम प्रतिशाख्य (पुष्पसूत्र) - पुष्प
-भाष्य - सायण
-भाष्य - अजातशत्रु

अथर्व प्रातिशाख्य		अक्षतंत्रम् (साम प्रातिशाख्य)	-
तैतिरीय प्रातिशाख्य		-विवृत्ति	-
-त्रिरत्नभाष्य	- सोमाचार्य	शौनकीया चतुराध्यायी	- कौत्स
-व्याख्या (वैदिकाभरण)	- गोपालयज्वा	प्रतिज्ञासूत्र	- (शुक्ल यजु: प्रातिशाख्यका परिशिष्ट)
-भाष्य (पदक्रमसदन)	- माहिषेय	भाषिक सूत्र	

(छ) वैदिक परिशिष्ट (अनुक्रमणी आदि)

आर्षानुक्रमणी	
देवतानुक्रमणी	
छन्दोनुक्रमणी	
अनुवाकानुक्रमणी	
सूत्रानुक्रमणी	
ऋग्विधान	
पादविधान	
प्रातिशाख्य (अनुक्रमणी)	
शौनकस्मृति	- शौनक
बृहद्देवता	- शौनक
वेदार्थदीपिका	- षड्गुरुशिष्य
-भाष्य	- उव्वट
अनुवाकाध्याय परिशिष्ट	- कात्यायन
जटादिविकृति लक्षण	- व्याडी
-विकृतिवल्ली	- मधुसूदन यति
शुक्लयजु:सर्वानुक्रमणसूत्र	- कात्यायन
-भाष्य	- अनन्तदेव
शुक्लयजुर्विधान	- अनन्तदेव
यजुर्वेदमंजरी	- कालनाथ
प्रतिज्ञासूत्र परिशिष्ट	- कात्यायन
भाषिक परिशिष्ट सूत्र	- कात्यायन
अष्टादश परिशिष्ट	- कात्यायन
याजुष सर्वानुक्रमणी (कृष्णयजु	
-भाष्य	- अनन्तदेव
काण्डानुक्रमणी	-
एकाग्निकाण्ड?	
माधवीयानुक्रमणी	- वेङ्कटमाधव
चारायणीय मंत्रार्षाध्याय	
उपग्रन्थसूत्र (गीतविचार)	- शौनक
(उपलेखगत) (साम.)	
पंचविधसूत्र	
साम-प्रकाशन	- प्रीतिकर त्रिवेदी
बृहत्सर्वानुक्रमणी (अथर्व)	- शौनक
पंच पटलिका	
अथर्वपरिशिष्ट	
चरणव्यूह परिशिष्ट (अथर्व)	- शौनक
-वृत्ति	- महिदास
उपलेख सूत्र (ऋ)	- शौनक
ऋग्वेद ऋषि-देवता-छन्दोनुक्रमणी	सपादक-विश्वबन्धु
माध्यन्दिन संहिता पदपाठ	- सपादक-युधिष्ठिर मीमांसक
तैत्तिरीय संहिता अनुक्रमणिका	- सपादक-परशुराम
जैमिनीय श्रौतसूत्र वृत्ति	
अथर्ववेद ऋषि-देवता-छन्दोनुक्रमणी	- सपादक-विश्वबन्धु
आर्षेयकल्प	- वरदराज
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-संग्रह	- सायण
नीतिमंजरी	- द्याद्विवेद
-भाष्य	- -"-
वैदिक इण्डेक्स्	- मेकडोनेल-कीथ
संकर्षणकाण्ड सूत्राणि	- जैमिनि
सामवेदीय सुबोधिनी पद्धति	- शिवराम
ऋग्वेद कवि विमर्श	- टी जी माईणकर
अथर्ववेद व्रात्यकाण्ड	- सपादक सपूर्णानद
छन्दोदर्शनम्	- महर्षि देवरात
-वसिष्ठान्वय भाष्य	- काव्यकंठ गणपतिमुनि

पाणिनीयेतरग कातंत्र

कातंत्र - शर्ववर्मा
कातंत्र परिशिष्ट - श्रीपतिदत्त
-व्याख्या - गोपीनाथ तर्कचरण
कातंत्र वृत्ति - दुर्गसिह
कातत्र चैत्रकूटी वृत्ति - वररुचि
कातंत्रवृत्ति टीका - दुर्गसिह
-कातंत्रपंजी या पंजिका - त्रिलोचनदास
कातन्त्रविस्तर - वर्धमान
कातत्र बालबोधिनी (वृत्ति) - जगद्धर
कातंत्र टीका - कविराज
गणप्रदीप
वारुरुचसंग्रह
कातत्र धातुपाठ - दुर्गसिह
-मनोरमा व्याख्या - रमानाथ चक्रवर्ती
दशबल कारिका
कविरहस्य

कातंत्रव्याकरण प्रकीर्ण

चर्करीत रहस्य
-व्याख्या
षट्कारक कारिका
समासवाद - गोविन्द भट्ट
शब्दसाध्य प्रयोग - रमानाथ
सारनिर्णय - रमानाथ
कृन्मंजरी - शिवराम शर्मा
कारकोल्लास - भरत मल्लिक
आख्यात चन्द्रिका - भट्टमल्ल
आख्यात मजरी
कातंत्ररूपमाला - शर्ववर्मा
लिंगानुशासन - दुर्गसिह

चान्द्र व्याकरण

चान्द्र व्याकरण - चन्द्रगोमी
-वृत्ति - धर्मदास या चन्द्रगोमी
-बालबोधिनी - कश्यप
चन्द्रधातुपाठ - चन्द्रगोमी
उपसर्गवृत्ती - चन्द्रगोमी

जैनेन्द्र व्याकरण

जैनेन्द्र (व्याकरण) - देवनदी (पूज्यपाद)
-महावृत्ति - अभयनदी
-शब्दाम्भोजभास्करन्यास - प्रभाचन्द्रचार्य
-जैनेन्द्रवृत्ति - महाचन्द्र
शब्दार्णव चन्द्रिकावृत्ति - सोमदेवसुरी
जैनेन्द्र परिभाषा
वृत्ति - काशीनाथ वा अभ्यकर
पंचवस्तु (प्रक्रिया ग्रथ) - आर्य श्रुतकीर्ति
जैनेन्द्रप्रक्रिया - वशीधर
शब्दार्णव प्रक्रिया - गुणनदी (?)
शब्दानुशासन - मलयगिरि
-वृत्ति - मलयगिरी

मुग्धबोध व्याकरण

मुग्धबोध - बोपदेव
सुबोधा व्याख्या - दुर्गादास
-व्याख्या - राम तर्कवागीश
कविकल्पद्रुम (धातुविषयक) - बोपदव
विचारचिन्तामणि - बोपदेव
पदार्थ-निरूपण - राम तर्कवागीश

शाकटायन (जैन) व्याकरण

शाकटायन व्याकरण - शाकटायन (पाल्यकीर्ति)
चिंतामणि वृत्ति
-अयोध्या वृत्ति - शाकटायन
-व्याख्या - अभयचन्द्रसूरि
रूपसिद्धि (प्रक्रिया ग्रन्थ) - दयालपाल मुनि

संक्षिप्तसार

संक्षिप्तसार - क्रमदीश्वर
-रसवतीवृत्ति - जुमरनंदी
-व्याख्या - गोपीचन्द्र
सरस्वतीकण्ठाभरण - भोजदेव

-हृदयहारिणी वृत्ति	- दण्डनाथ
-रत्नदर्पण व्याख्या	- रामसिंहदेव

सारस्वत व्याकरण

सारस्वत व्याकरण	- अनुभूतिस्वरूपाचार्य
-टिप्पणी	- क्षेमन्द्र
-टिप्पणखण्डन	- धनेश्वर
सारस्वत प्रक्रिया	- अनुभूति स्वरूपाचार्य
-बालबोधिनी व्याख्या	-
-चंद्रकीर्ति व्याख्या	- चन्द्रकीर्ति
-प्रसाद व्याख्या	- वासुदेव भट्ट
-माधवी व्याख्या	
-मनोरमा व्याख्या	
-इन्दुमती व्याख्या	
-लघुभाष्य	- श्री सरस्वती
सिद्धान्तचन्द्रिका	- रामचन्द्राश्रम
-सुबोधिनी व्याख्या	- सदानन्द
-तत्त्वदीपिका	- लोकेशकर
लिंगानुशासन	- अनुभूतिस्वरूपाचार्य
अव्ययार्थमाला	
उणादि कोष	

सुपद्म व्याकरण

सपद्म	- पद्मनाभदत्त
पंजिका व्याख्या	- पद्मनाभदत्त
मकरन्द व्याख्या	- विष्णुमिश्र
हैम व्याकरण	
सिद्ध हैम शब्दानुशासन	- हेमचन्द्र
-बृहद्वृत्ति	- चंद्रसागर सूरि
-लघ्वी वृत्ति	- हेमचन्द्र
-महा वृत्ति	- हेमचन्द्र
-बृहती वृत्ति	- हेमचंद्र
-मुष्टिवृत्ति	- मलयगिरि
शब्दार्णवन्यास	- हेमचन्द्र

धातुपाठ-गणपाठ
उणादि
लिंगानुशासन

क्षीण सम्प्रदाय (व्याकरण)

मुग्धबोध	- भरत सेन
आशुबोध	- रामकिंकर
शब्दार्थरत्न	- तारानाथ तर्कवाचस्पति
आशुबोध	- तारानाथ तर्कवाचस्पति
शीघ्रबोध	- शिवप्रसाद
हरिनामामृत	- रूपगोस्वामी
-व्याख्या	- जीवगोस्वामी
-व्याख्या	- नरहरि
छात्रबोध	
प्रयोगरत्नमाला	
-वृत्ति	- पुरुषोत्तम विद्यावागीश
चाङ्गुसूत्र	- चागुदास

<u>प्राक्-पाणिनीय</u>

काशकृत्स्न धातुपाठ	- काशकृत्स्न

<u>पाणिनीय व्याकरण</u>

अष्टाध्यायी (अष्टक या अष्टिका	- पाणिनि
-श्लोकवार्तिक	- व्याघ्रभूति
-काशिका वृत्ति	- वामनजमादित्य
-भाषावृत्ति	- पुरुषोत्तम देव
दुर्घटवृत्ति	- शरणदेव
-व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि	- विश्वेश्वर सूरि
-भाषावृत्ति (संकलन)	- विमलमति
-शब्दकौस्तुभ	- भट्टोजि दीक्षित
-पाणिनीय मिताक्षरा	- अन्नम्भट्ट
-व्याकरण दीपिका	- श्रीराम भट्ट
-अष्टाध्यायी भाष्य	- स्वामी दयानन्दसरस्वती
-पाणिनि सूत्रव्याख्या	- वीरराघवाचार्य
-प्रत्याख्यानसंग्रह	- नागेश भट्ट
(काशिकावृत्ति व्याख्या)	
विवरणन्यास पंजिका	- जिनेन्द्रबुद्धि
पदमंजरी	- हरदत्त
भाषावृत्त्यर्थविवृति	
(भाषावृत्तिव्याख्याकी टीका)	- सृष्टिधर
वार्तिक और महाभाष्य	
वार्तिक पाठ	- कात्यायन (वररुचि)
श्लोकवार्तिक	- व्याघ्रभूति
(पातंजल) महाभाष्य	- पतजलि
-प्रदीप	- कैयट
-उद्योत	- नागेश
-उद्योतन	- अन्नम्भट्ट
-दीपिका	- भर्तृहरि
-छाया (उद्योतव्याख्या)	- वैद्यनाथ पायगुण्डे

<u>प्रक्रिया ग्रन्थ</u>

रूपावतार	- धर्मकीर्ति
रूपमाला	- विमलसूरि
प्रक्रिया कौमुदी	- रामचन्द्र

-प्रकाश व्याख्या	- शेषकृष्ण
-प्रसाद व्याख्या	- विठ्ठल
सिद्धान्तकौमुदी	- भट्टोजि दीक्षित
-तत्त्वबोधिनी	- ज्ञानेन्द्र सरस्वती
-बालमनोरमा	- वासुदेव दीक्षित
तत्त्वदीपिका	- रामानन्द
व्याख्या	- गिरिधर
मध्यसिद्धान्त कौमुदी	- वरदराज
लघुसिद्धान्त कौमुदी	- वरदराज
प्रौढमनोरमा (सिद्धान्तकौमुदी-व्याख्या)	- भट्टोजि दीक्षित
-शब्दरत्न	- हरि दीक्षित
लघुशब्देन्दुशेखर	- नागेश भट्ट
-चन्द्रकला	
बृहत्शब्देन्दुशेखर	- नागेशभट्ट
-भैरवी	- भैरव मिश्र
-दीपक	- म म नित्यानद पत पर्वतीय
-विषमस्थलवाक्यवृत्ति	
प्रौढ मनोरमाखण्डन	- चक्रपाणिदत्त
मनोरमा कुचमर्दन (नी)	- पण्डितराज जगन्नाथ
प्रकरण एवं प्रकीर्ण	
अपाणिनीयप्रमाणता	- नारायण भट्ट
वाक्यपदीय	- भर्तृहरि
-प्रकाश	- पुण्यराज
-प्रकीर्णप्रकाश	- हेलाराज
-स्वोपज्ञवृत्ति	- भर्तृहरि
-स्वोपज्ञवृत्तिव्याख्या	- वृषभदेव
स्फोटसिद्धि	- भरतमिश्र
स्फोटसिद्धि	- मण्डनमिश्र
-गोपालिकाव्याख्या	- ऋषिपुत्र परमेश्वर
स्फोटतत्त्वनिरूपण	
प्रातिपादिक संज्ञावाद	
स्फोटसिद्धि न्यायविकार	
स्फोटचन्द्रिका	- श्रीकृष्णभट्ट
वाक्यवाद	
वाक्यदीपिका	
वैयाकरण भूषण कारिका	- भट्टोजिदीक्षित
वैयाकरणभूषणसार	- कौण्डभट्ट
-काशिका	
-दर्पण	- हरिवल्लभ
-बृहद् वैयाकरण भूषण	- कौण्डभट्ट
वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा	- नागेश भट्ट
-कुंजिकाव्याख्या	- दुर्बलाचार्य
-कला व्याख्या	- वैद्यनाथ पायगुण्डे

सज्जनेन्द्र प्रयोग कल्पद्रुम	- कृष्णपण्डित धर्माधिकारी
जीर्वाण पदमंजरी	- वरदराज
लघुमंजूषा	- नागेश
परमलघुमंजूषा	- नागेश
-अर्थदीपिका	
अव्ययविवेक	
निपाताव्ययोपसर्गवृत्ति	- तिलक
उपसर्गवर्ग	- महादेव
पदार्थदीपिका	- कौण्डभट्ट
लकारार्थ निर्णय	-
पूर्वपाणिनीयम्	-
पदवाक्य-रत्नाकर	- गोकुलनाथ उपाध्याय
वृत्तिदीपिका	- मौनी श्रीकृष्णभट्ट
शब्दतत्त्व प्रबोधिनी	
स्वरमंजरी	- जयकृष्ण
शब्दमंजरी	-
स्फोटवाद	- नागेश
कारकवादार्थ	
कारकचक्र	- भवानन्द सिद्धान्तवागीश
-माधवी व्याख्या	
कारकचक्र	- पुरुषोत्तम देव
ज्ञापक-समुच्चय	- पुरुषोत्तम देव
शब्दमंजरी	
समासचक्र	
कारकसम्बन्धोद्योत	
धर्मदीपिका	
-वृत्ति	
गणपाठसंबंधी ग्रन्थ	
गणपाठ (प्रातिपदिक गणपाठ)	- पाणिनि
गणरत्नमहोदधि	- वर्धमान
गणरत्नावली	- यज्ञेश्वरभट्ट
धातुपाठसंबंधी ग्रन्थ	
धातुपाठ	- पाणिनि
-क्षीरतरंगिणी	- क्षीरस्वामी
धातुवृत्ति	- सायण
-धातुप्रदीप	- मैत्रेय दीक्षित
दैव	- देव
-दैवव्याख्या पुरुषकार	- कृष्णलीलाशुक
कविरहस्य	- हलायुध
औष्ठ्य कारिका	
धातुरूपभेद	- दशबल धा वरदराज
क्रियाकलाप	- विद्यानन्द
क्रिया-पर्यायदीपिका	- - वीरपाण्डय
क्रियाकोश	- रामचन्द्र

प्रयुक्ताख्यानमंजरी	- सारग
लिंगानुशासनसंबन्धी ग्रन्थ	
लिङ्गानुशासन सूत्र	- पाणिनि
लिंगानुशासन	- हर्षवर्धन
-भैरवी व्याख्या	- भैरव मिश्र
-व्याख्या	- तारानाथ तर्कवाचस्पति
-सबलक्षण व्याख्या	- पृथिवीधर
लिंगानुशासन (लिंगविशेष विधि)	- वररुचि
-स्वोपज्ञ वृत्ति	- वररूचि
लिंगानुशासन	- वामन
स्वोपज्ञवृत्ति	- वामन
लिंगबोध व्याकरण	-
लिंगवचन विचार	- दीनबन्धु
लिङ्गानुशासन	- अभिनव शाकटायन
(स्वोपज्ञ) लिङ्गानुशासन	- हेमचन्द्र (जैन)
-स्वोपज्ञवृत्रि	- --''-
लिङ्गादिसंग्रह टिप्पणी (कातंत्र)	- रामनाथ विद्यावाचस्पति
लिङ्गानुशासन	- पद्मनाथ दत्त
लिङ्गानुशासन वृत्त्युद्धार	- जमानक
लिङ्गनिर्णय भूषण	- तापुरी
लिंगानुशासन	- दुर्गसिंह
लिंगानुशासनवर्ग	- मुकुन्दशर्मा
उणादिसूत्र	
उणादि सूत्राणि	- पाणिनि
-व्याख्या	- श्वेतवनवासी
-दशपादी व्याख्या	-
-व्याख्या	- उज्ज्वल दत्त
निजविनोद व्याख्या	- महादेव वेदान्ती

-औणादिक पदार्णव	- पेरुसूरि
-उणादिकोष व्याख्या	- रामशर्मा
वृत्ति	- शिवराम
-''	- जयानन्द सरस्वती
परिभाषा ग्रन्थ	
परिभाषावृत्ति	- पुरुषोत्तम देव
--''--	- सीरदेव
परिभाषेन्दुशेखर	- नागेश भट्ट
-भूति	- तात्याशास्त्री पटवर्धन
-तत्त्वप्रकाशिका (भूतिव्याख्या)	- गणपतिशास्त्री मोकाटे
-विजया	- जयदेव मिश्र
-लघुजटाजूट	- रघुनाथशास्त्री भारद्वाज
-गदा व्याख्या	-
-भैरवी ''	- भैरव मिश्र
-वाक्यार्थचन्द्रिका	-
परिभाषासंग्रह	- काशीनाथ शास्त्री अभ्यंकर
परिभाषावृत्ति	- नीलकण्ठ बाजपेयी
परिभाषा भास्कर	- शेषाद्रिनाथ
वर्णविषयक ग्रन्थ	
काशिका	नन्दिकेश्वर
-व्याख्या	- उपमन्यु
फिटसूत्र	
फिट्सूत्राणि	- शन्तनु
-व्याख्या	- जयकृष्ण
स्वरसिद्धान्तचन्द्रिका (स्वरसूत्रव्याख्या)	- श्रीनिवास यज्वा
कोविदानन्द	- आशाधर भट्ट
गैरिकसूत्र	- गङ्गाराम जडी

छंद:शास्त्र

छन्द:सूत्र	- पिंगलाचार्य
-वृत्ति	- हलायुध
छन्दोनुशासन	- हेमचन्द्र
छन्दश्चूडामणि	- हेमचन्द्र
छन्दोऽनुशासन	- जयकीर्ति
छन्द:	- जयदेव
छन्दोमंजरी	- गगादास
-व्याख्या जीवानन्दी	- जीवानन्द विद्यासागर
- ''	- जयदेव
छन्दोविचिति (जनाश्रयी)	- जनाश्रय
वृत्तरत्नाकर	- भट्ट केदार
-नारायणी व्याख्या	- नारायण भट्ट
-पंजिका ''	-
-तात्पर्यटीका ''	-
-सुकविहृदयानान्दिनी	-
-छन्दोवृत्ति	-
जगद्विजयच्छन्द:	-
वाणीभूषण	- दामोदरमिश्र
वृत्तरत्नावली	- वेंकटेश
-व्याख्या	-
वृत्तवार्तिक	- रामपाणिवाद
श्रुतबोध	- कालिदास
नेमिरंग रत्नाकर	- लावण्यसमय
कविदर्पण	- --''--
वृत्तजातिसमुच्चय	- विरहांक
वाग्वल्लभ	- दु खभजनकवि
छन्दोविंशतिका	- श्रीकृष्ण भट्ट
वृत्त मुक्तावली	- भट्ट चन्द्रशेखर
स्वयंभू छन्द	- स्वयभू
छन्द:कौमुदी	- नारायणशास्त्री खिस्ते
छन्दोविन्मण्डन	-

संगीतशास्त्र

बृहद्देशी	- मतङ्ग
संगीतमकरन्द:	- नारद
संगीतदामोदर	- शुभंकर
संगीतरत्नाकर	- शार्ङ्गदेव
-संगीतसुधा	- शिंगभूपाल
-व्याख्या	- सोमनाथ
राग-विबोध	- सोमनाथ
अभिनवभरतसारसंग्रह	- चिक्कभूपाल
संगीतदर्पणम्	- दामोदर (चतुर दामोदर)
रागतरंगिणी	- लोचन पण्डित
संगीतपारिजात	- अहोबल
नृत्यसंग्रह	-
दत्तिलम्	- दत्तिल
संगीतोपनिषत्सारोद्धार	- वामनाचार्य सुधाकलश
रागतत्त्वविबोध	- श्रीनिवास
सरस्वतीहृदयालंकार	- नान्यदेव
भरतार्णव	- नान्दिकेश्वर
संगीतसुधाकर	- हरिपाल
पंचमसारसंहिता	- नारद
दत्तिल कोहलीयम्	-
कोहलमतम्	- कोहल
आंजनेय-संहिता	- आजनेय
संगीतराज (पाठ्यरत्नप्रवेशा)	- कीलसेन महाराणा कुम्भराज
नृत्तरत्नावली	- जयसेनापति
संगीतसारामृतम्	- तजौरनरेश तुलजादेव
औमापतम्	-
अभिनयप्रकाशिका	- गोपीनाथ
संगीतसमयसार	- पार्श्वदेव
शारदीयम्	- शारदातनय
संगीतरत्नावली	- सोमराज
स्वरमेल कलाविधि	- रामामात्य
शम्भुराजीयम्	- पण्डितमण्डली
आनन्दसंजीवनम्	- मदनपाल
संगीतालोक	- भुवनानन्द
संगीतमुक्तावली	- देवेन्द्रभट्ट
संगीत-दीपिका	- भट्टमाधव
नृत्याध्याय	- अशोक
नृत्यप्रकाश	- विप्रदास
संगीतचिन्तामणि	- वेम
संगीतमुक्तावली	- रेवणभट्ट
नृत्यरत्नकोश	- कुम्भराज
संग्रहचूडामणि	- गोविंदाचार्य

ज्यौतिषशास्त्र (गणित, फलित, सिद्धान्त)

अंकगणित	- नृसिंह बापूदेवाशास्त्री

अद्भुतसागर	- बल्लालसेन
अह्निबलचक्रम्	-
अर्घमार्तण्ड	- मुकुन्दवल्लभ
आर्यभटीयम्	- आर्यभट
-भाष्य	- नीलकण्ठ सोमसुत
करणकुतूहलम्	- भास्कराचार्य
करणकौस्तुभ	- कृष्णदैवज्ञ
करणप्रकाश	- ब्रह्मदेव
कुट्टाकारशिरोमणि	- देवराज
केशवीयजातक पद्धति	- केशव
-व्याख्या	- सीताराम झा
अष्टादश विचित्र प्रश्नसंग्रह	- नृसिह बापूदेव
आद्रिरोघप्रकाश	- सुदाजी बापू
खेटकौतुकम्	-
गणकतरंगिणी	- सुधाकर द्विवेदी
गणितकौमुदी	- नारायण पण्डित
गणितसिद्धान्तकौमुदी	-
गौरीजातक (आर्ष)	-
गोलप्रकाश	- नीलाम्बरशर्मा
गोलीय रेखागणितम्	- सुधाकर द्विवेदी
ग्रहणन्यायदीपिका	- परमेश्वर
ग्रहणमण्डनम्	- --''--
ग्रहणमण्डनम्	- सुधाकर द्विवेदी
ग्रहलाघवम्	- गणेश दैवज्ञ
-व्याख्या	- विश्वनाथ
- '' (सुधामंजरी)	- सुधाकर द्विवेदी
ग्रहणांकजाल	- दिनकर
-ग्रहविज्ञानसारिणी	- अनेक लेखक
चमत्कार चिन्तामणि	-
चलनकलन	- सुधाकर द्विवेदी
चलनकलनसिद्धान्त	- नृसिह बापूदेव
चापीय त्रिकोणमिति	- --''--
छादक निर्णय	- कृष्ण दैवज्ञ
जातक क्रोड	-
जातक पद्धति	- भूदेव
-व्याख्या	- केशव
जातक पद्धति	- श्रीपति
-महादेवी व्याख्या	- महादेव
-नीलकण्ठी	- नीलकण्ठ
जातक पारिजात	-
-सुधाशालिनी व्याख्या	- बैद्यनाथ दीक्षित
जातकाभरणम्	- धुण्डिराज
जातकालंकार	-

-व्याख्या	- हरिभानु
जैमिनीयसूत्रम्	-
-व्याख्या (तत्त्वादर्श)	
ज्योतिर्विवेक	-
ज्यौतिष कल्पद्रुम (मुहूर्त पारिजात)	-
ताजिकनीलकण्ठी	- नीलकण्ठ
-जलदगर्जना व्याख्या	-
-शिशुबोधिनी	- माधव (नीलकण्ठपौत्र)
-सभाविवेकवृत्ति	- ''
ताजक पद्धति	- केशव
जातकभूषणम्	- गणेश दैवज्ञ
तिथि चिन्तामणि (बृहद्)	- गणेश देवज्ञ
--''-- (लघु)	- --''--
त्रिकोणमिति	- नृसिह बापूदेव
दीर्घवृत्तलक्षणम्	- सुधाकर द्विवेदी
दृक्सिद्ध पंचांग निर्माण पद्धति	- गणपति देवशास्त्री
दैवज्ञकामधेनु	-
दैवज्ञाभरणम्	- श्रीनिवासशास्तरी
देव केरलम् (चन्द्रकला नाडी)	- अच्युत
दीर्घवृत्तलक्षणम्	- सुधाकर द्विवेदी
द्विचरचार	-
धराभ्रम	-
धराचक्र	-
नरपतिजयचर्चा (स्वरोदय)	- नरपति जैन
-सुबोधिनी व्याख्या	- गणेशदत्त
-जयलक्ष्मी व्याख्या	- हरिवेश
-व्याख्या	- नरहरि
-व्याख्या	- भूधर
-व्याख्या	- रामनाथ
नारदीसंहिता (आर्ष)	-
नाड्दित्त पंचविंशतिका	-
पंचसिद्धान्तिका	- वराहमिहिर
-प्रकाशव्याख्या	- सुधाकर द्विवेदी
पत्रीमार्ग प्रदीपिका (वर्षदीपक)	-
फलित मार्तण्ड	- मुकुन्दवल्लभ
प्रश्न-कौमुदी	- नीलकण्ठ
प्राचीन ज्योतिषाचार्याशयवर्णनम्	- नृसिह बापूदेव
बीजगणितम्	- भास्कराचार्य
-बीजनवांकुर व्याख्या	- कृष्ण दैवज्ञ
-सुबोधिनी	- जीवनाथ दैवज्ञ
बृहज्जातकम्	-
-व्याख्या	- अनन्तदेव
बृहत्पाराशर होराशास्त्रम्	-

(आर्ष)
बृहत्संहिता - वराहमिहिर
-विवृति - भट्टोत्पल
ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त - ब्रह्मगुप्त
-व्याख्या - पृथूदक
-व्याख्या -
-व्याख्या - अमरराज
-व्याख्या - बलभद्र
बृहद् विमानशास्त्रम् - भरद्वाज
भंगीविभंगी करणम् - रंगनाथभट्ट
बृहद् दैवज्ञ रंजनम् -
भावकुतूहलम् -
भावप्रकाश - जीवनाथ दैवज्ञ
-भास्करबीज व्याख्या -
भाभ्रमरेखानिरूपण - सुधाकर द्विवेदी
भास्वती - शतानन्द
-व्याख्या सत्त्वप्रकाशिका - रामकृष्ण
(अनेक व्याख्याएँ)
भृगुसंहिता (आर्ष) -
मकरन्द - मकरन्द
-सारिणी - गोकुलनाथ दैवज्ञ
-व्याख्या - नीलकण्ठ
-विवरण - दिवाकर
मानसागरी -
मानसोल्लास - भूलोकमल्ल सोमेश्वर
-अभिलषितार्थ चिन्तामणि
मुहूर्त कल्पद्रुम - विट्ठल दीक्षित
मुहूर्त गणपति -
मुकुन्द पद्धति -
मुहूर्त चिन्तामणि - राम दैवज्ञ (भट्ट)
-प्रमिताक्षरा - --"--
-पीयूषधारा - गोविन्द दैवज्ञ
मुहूर्ततत्त्वम् - केशव
-व्याख्या - गणेश दैवज्ञ
मुहूर्त दीपक -
मुहूर्त मार्तण्ड - नारायण
-मार्तण्ड प्रकाशिका -
-मार्तण्डवल्लभ -
यंत्रराज - महेन्द्रसूरि

यंत्रराजरचना - जयसिंह देव
आर्य सिद्धान्त - आर्य भट्ट
अपातलक्षणम् -
अल्पकालक्षण -

योगयात्रा -
योगिनीजातकम् -
रत्नमाला - श्रीपति
-महादेवी व्याख्या - महादेव
-व्याख्या - माधव
रत्नगर्भाचक्रम् -
रत्नाभरणम् -
रमलचिन्तामणि -
रमलनवरत्नम् -
रेखागणितम् -
लघुजातकम् - वराहमिहिर
-संस्कृत व्याख्या - भट्टोत्पल
-व्याख्या - अनन्त दैवज्ञ
लघुपाराशरी -
-उडुदायप्रदीप - मुकुन्दवल्लभ
मध्यपाराशरी -
लग्नवाराही - वराहमिहिर
लीलावती - भास्कराचार्य
-बुद्धिविलासिनी - गणेश दैवज्ञ
-भूषण - धनेश्वर
-विवरण - महीधर
-मनोरंजना - रामकृष्णदेव
-क्रियाक्रमकर्म - शंकरनारायण
-वासना - दामोदर
-अंकामृतसागरी - गंगाधर (या लक्ष्मीधर)
(गणितामृतसागरी)
-अमृतकूपिका - सूर्य पण्डित
-गणितामृतकूपिका - सूर्यदास
-गणितामृतलहरी - रामकृष्ण
लघुशङ्कुच्छिन्न क्षेत्रगुण - नृसिंह बापूदेव शास्त्री
लौह गोलखण्डनम् - रंगनाथ दैवज्ञ
लौह गोल समर्थनम् - गदाधर दैवज्ञ
वटेश्वर सिद्धान्त - वटेश्वराचार्य
वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नति साधनम् - सुधाकर द्विवेदी
विचित्र प्रश्न, सभंग -
वास्तु रत्नावली -
लोमशसंहिता-भावफलाध्याय -
शीघ्रबोध -
शिवजातक - केशव
विवाह वृन्दावन - गणेश दैवज्ञ
-व्याख्या - गणेश दैवज्ञ
व्यवहारसारस्वत - गोपीतनय
षट्पंचाशिका -
-व्याख्या - भट्टोत्पल

समरसार	- राम वाजपेयी
-व्याख्या	- भरत
सायनवाद	- नृसिंह बापूदेव
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	- कमलाकर भट्ट
-टिप्पणी	- सुधाकर द्विवेदी, मुरलीधर
सारावली	- कल्याणवर्मे
सिद्धान्तदर्पणम्	- गार्ग्य केरल नीलकण्ठ
गोलसार	- नीलकण्ठ सोमयाजी
ज्यौतिषसिद्धान्तसंग्रह	-
तंत्रसंग्रह	- नीलकण्ठ सोमयाजी
प्रश्नचण्डेश्वर	- रामकृष्ण दैवज्ञ
सिद्धान्तशिरोमणि	- भास्कराचार्य
-सिद्धान्त दीपिका	- परमादीश्वर
-सिद्धान्तमंजरी	-
-मितभाषिणी	- रङ्गनाथ
-सिद्धान्तसूर्योदय	- गोपीनाथ
(गोलाध्याय)	
-सुधारसकरण चषण (गोलाध्याय)	- धुण्डिराज
-सूर्यप्रकाश	- सूर्यदास
-शिरोमणिप्रकाश (गोलाध्याय)	- गणेश
-वासनाकल्पलता (वार्तिक)	- नृसिंह
-वासना भाष्य	-
-मारीचिभाष्य	- लक्ष्मीदास
-गणिततत्त्व चिन्तामणि	- दादाभट्ट
स्कन्दशारीरकम्-किरणावली	-
सिद्धान्त सार्वभौम	- [illegible]
हस्त संजीवनम्	-
होराशास्त्रम्	- वराहमिहिर
-अपूर्व प्रकाशिका	

परिशिष्ट (घ) आयुर्वेद शास्त्रग्रंथ

चरक-संहिता	- चरकाचार्य
-आयुर्वेददीपिका	- चक्रपाणिदत्त
-चिकित्सा टिप्पण	- --"--
-जल्पकल्पतरु	- गङ्गाचर
-चरकन्यास	- भट्टार हरिचन्द
-निरन्तपरव्याख्या	- जेज्जट
-पंजिका	- कुमारस्वामी
-चरकोपस्कार	- योगीन्द्रनाथसेन
-व्याख्या तत्त्वप्रदीपिका	- शिवदाससेन
सुश्रुत संहिता	- सुश्रुत
-निबन्धसंग्रह	- डल्हण
-भानुमती	- चक्रपाणिदत्त
-संदीपन भाष्य	- तरुणचन्द्र चक्रवर्ती
-न्यायचन्द्रिका (पंजिका)	- गयदास
-व्याख्या	- जेज्जट
नावनीतकसंहिता	- सुश्रुत
भेल-संहिता	- भेल
काश्यप-संहिता	- काश्यप
हारीत-संहिता	- हारीत
अष्टांगहृदयसंहिता	- वाग्भट
-सर्वांगसुन्दरा	- अरुणदत्त
-शशलेखा	- इन्दु
-पदार्थचन्द्रिका	- चन्द्रनन्दन
-तत्त्वबोध	- शिवदाससेन
-आयुर्वेदरसायन	- हेमाद्रि
-व्याख्या	- रामनाथ
अष्टांगसंग्रह संहिता	- वाग्भट
-शशिलेखा	- इन्दु
-व्याख्या	- हेमाद्रि
शाङ्गर्धर-संहिता	- शाङ्गर्धर
-दीपिका	- आढमल्ल
-गूढार्थदीपिका	- काशीराम
भट्टार-संहिता	- भट्टार हरिचन्द्र
आयुर्वेद सुषेण-संहिता	-
अंजन-निदानम्	- अंजनाचार्य
इन्दुकोष	- इन्दु
वैद्यवल्लभ	- शाङ्गर्धर
तत्त्वचन्द्रिका	- शिवदाससेन
वैद्य-प्रदीप	- भप्यदत्त

सिद्धयोग	- वृन्दकुन्द
योगचिंतामणि	- श्रीहर्ष
योगतरंगिणी	- त्रिमल्लभट्ट
वैद्यजीवनम्	- लोलिम्बराज
-व्याख्या	- ज्ञानदेव
-विज्ञानानन्दकरी	- प्रयागदत्त
बालतन्त्रम्	- कल्याणभट्ट
प्रयोगरत्नाकर	- कविकण्ठहार
वैद्यक-रत्नावली	- कविचन्द्र
योगसमुच्चय	- गणपति
कालज्ञानम्	- शम्भुनाथ
द्रव्यगुणम्	- गोपाल
-दीपिका	- कृष्णदत्त
नाडी-विज्ञानम्	- कणाद
औषधप्रकार	- कृष्णभट्ट
वैद्यरत्नम्	- केदारभट्ट
माधवनिदानम्	- माधवकर
-मधुकोश	- विजयरक्षित
-रुग्विनिश्चय	- भवानीसहाय
योगरत्नाकर	- केशवसेन
चिकित्सासारसंग्रह	- खेमराज
योगरत्नावली	- गङ्गाधर
योगरत्नमाला	- नागार्जुन
-लघुविवृति	- श्वेताम्बर भिक्षु गुणाकर
शरीर विनिश्चयाधिकार	- गङ्गाराम
योग (सार) समुच्चय	- गणपति व्यास
वैद्यसार-समुच्चय	- "
चिकित्सामृतम्	- गणेश भिषक्
रुग्-विनिष्चयार्थ-प्रकाशिका	- "
योग-चिन्तामणि	- "
चक्रदत्त चिकित्सासंग्रह	- चक्रपाणिदत्त
-तत्त्वचन्द्रिका	- शिवदास
-चिकित्सासारसंग्रह	- वंगसेन
-रत्नप्रभा	- निश्चलेकर
वैद्यप्रसारक	- गदाधरदास
योगामृतम्	- गोपालदास
योगचिन्तामणि	- गोरक्षमिश्र
लोहप्रदीप	- त्रिविक्रमदेव
सन्निपातमंजरी	- गोविन्दाचार्य
रसेन्द्रसारसंग्रह	-

-गूढार्थसंदीपिका	- अंबिकादत्तशास्त्री
सर्वसारसंग्रह	- चक्रपाणिदत्त
वैद्यकोष	- "
द्रव्यगुणसंग्रह	- "
-व्याख्या	- निश्चलेकर
चन्द्रसारोद्धार	- चन्दर
योगरत्नसमुच्चय	- "
ज्वरतिमिर भास्कर	- चामुण्डकायस्थ
प्रयोगामृतम्	- चिन्तामणि वैद्य
योगसंग्रह	- जगन्नाथ वैद्य
सद्वैद्यकौस्तुभ	- जनार्दन सेन
बालभृत्यम्	- जीवक
योगरत्नाकर	- नारायण शेखर
व्याध्यर्गल	- ज्ञानदेव
चिकित्साकलिका	- तीसर
-व्याख्या	- चन्दर
योगसार	- आदिनाथ
योगसंग्रह	- तुलसीदास
वैद्यचिन्तामणि विवृति	- दलपति
धातुरत्नमाला	- देवदत्त
निघण्टु	- धन्वन्तरि
मदनपालनिघण्टु	- मदनपाल
-(मदनविनोद विघण्टु)	- बगसेन
वंगसेन	-
पारद-संहिता	-
काकचण्डीश्वरकल्पतंत्रम्	-
कैयदेव-निघण्टु	- कैयदेव
क्वाथ- मणिमाला	-
गदनिग्रह	- वैद्य सोढल
भावप्रकाश	- भावमिश्र
मधुमती	- नरसिह कविराज
राजनिघण्टु	- नरहरि
योगमंजरी	- नागार्जुन
आरोग्यमंजरी	- --''--
वैद्य परिभाषा	- नारायणदास वैद्य
त्रिदोषविज्ञानम्	-
वैद्यचिन्तामणि	- नारायण भट्ट
पर्यायार्णव (वैद्यकोष)	- नीलकण्ठ मिश्र
त्रिदोषसंग्रह	-
भैषज्यसारामृतसंहिता	- प्राणनाथ
वैद्यदर्पणम्	- "
द्रव्यगुणशास्त्रम्	- गो आ फडके
नाडी-परीक्षा	- मार्कण्डेय कवीन्द्र

पंचभूतविज्ञानम्	- उपेन्द्रनाथ दास
गन्धशास्त्रम्	- भवदेव भट्ट
सन्निपातचन्द्रिका	- --''--
प्रत्यक्षशारीरम्	- गणनाथ सेन
वैद्यप्रदीप	- भव्यदत्त देव
-व्याख्या	- उद्धव मिश्र
कुमार भार्गवीयम्	- भानुदत्त
लौहसर्वस्वम्	- सुरेश्वर
तत्त्वकर्णिका	- भारतकर्ण
हरीतक्यादिनिघण्टु (भावप्रकाशनिघण्टु)	- भावमिश्र
गुणरत्नमाला	-
वैद्यबोधसंग्रह	- भीमसेन
योगांजनम्	- मणिराम
वृत्तरत्नावली	- "
वैद्यरत्नमाला	- मल्लिनाथ
कल्पतरु	- "
योगशतकम्	- मदनसिह
आयुर्वेदप्रकाश	- माधव उपाध्याय
पर्यायरत्नमाला	- माधवकर
कूटमुद्गर	- "
रत्नावली	- माधवदेव
मुग्धबोधा	- माधवसेन
ज्वरादिरोगचिकित्सा	- --''--
वैद्यविलास	- लोलिम्बराज
अजीर्णमंजरी	- काशीनाथ
सिद्धसार	- रविगुप्त
रत्नमाला	- राजवल्लभ
राजवल्लभ पर्यायमाला	- "
राजवल्लभीय द्रव्य-गुणम्	- "
कनकसिंह प्रकाश	- रामकृष्ण वैद्यराज
कनकसिंहविलास	- --''--
वैद्यविनोद	- रामनाथ वैद्य
-व्याख्या	-
वैद्यमन उत्सव	- शिवानन्द
प्रयोगचिन्तामणि	- राममाणिक्य सेन
नाडी-परीक्षा	- रामराज
अर्थप्रकाश	- रावण
बालचिकित्सा	- --''--
नाडी-परीक्षा	- --''--
वंगसेन	- वंगसेन
योगमुक्तावली	- वल्लभदेव
वैद्यचिन्तामणि	- वल्लभेन्द्र
वैद्यवल्लभ	- --''--

बालबोध	- वानराचार्य
वैद्यसंहिता (वाभटसंहिता)	- वाभटाचार्य
वामन-निघण्टु	- वामन
आयुर्वेद-प्रकाश	- --"--
बिन्दुसार (बिंदुसंग्रह)	- बिन्दुनाथ
वीरसिंहावलोक	- वीरसिंह
सिद्धमंत्रनिघण्टु	- केशव
-प्रकाश	- बोपदेव
शतश्लोकी	- बोपदेव
हृदयदीप-निघण्टु	- --"--
विद्याविनोदसंहिता	- शकरसेन
नाडी-प्रकाश	- --"--
पर्यायशब्द मंजरी	- शार्ङ्गधर
धातुमंजरी	- --"--
वैद्यवल्लभ	- --"--
संज्ञासमुच्चय	- शिवदत्त मिश्र
आयुर्वेदमहोदधि	- सुखलता
सोढलनिघण्टु	- सोढल
चारुचर्या	- भोजराज
राजमार्तण्ड	- --"--
अगदतंत्रम् (काश्यपसंहितान्तर्गत)	- काश्यप
कल्याणकारक	- उग्रादित्य
चिकित्साकर्मकल्पवल्ली	- काशीराम चतुर्वेदी
द्रव्यगुणशतकम्	- चिमल्ल भट्ट
पथ्यापथ्यम्	- विश्वनाथ कविराज
वैद्यकल्पद्रुम	- रघुनाथप्रसाद
वैद्यवल्लभ	- हस्तिरुचि
वैद्योत्तंस	- राजसुन्दर
आयुर्वेदसूत्रम्	-
-योगदानन्दभाष्य	-
बसवराजीयम्	- बसवराज
भैषज्यरत्नावली	- गोविन्ददास
आनन्दकन्द	- भैरव
सिद्धान्तनिदानम्	- गणनाथ सेन
लंका भैषज्य मणिमाला	- आर्यदासकुमारसिंह
स्वस्थवृत्तसमुच्चय	- वैद्य राजेश्वर दत्त
अंजननिदानम्	-
अनुपानदर्पणम्	-
आत्मसर्वस्वम्	-
आयुर्वेदप्रकाश	- सोमदेव
आसवारिष्टसंग्रह	-
काकचण्डीश्वरकल्पतंत्रम्	-
नपुंसक-संजीवनी	-
नाडीतत्त्वदर्शनम् (दूतनाडीविज्ञानम्)	-
रससंग्रह सिद्धान्त	- अच्युत गोणिका पुत्र
रसेश्वरसिद्धान्त	- --"--
रसचिन्तामणि	- अनन्तदेव सूरि
रसरत्नाकर	- आदिनाथ (नित्यनाथ)
रसेन्द्रचूडामणि	- सोमदेव
रसरत्नसमुच्चय	- वाग्भट (नित्यनाथ)
-सरलार्थ प्रकाशिनी	- चिन्तामणि शास्त्री
रसदीपिका	- आनन्दानुभव
रसकौमुदी	- माधव
रसेन्द्रचिन्तामणि	- रामचन्द्र
रसेन्द्रसारसंग्रह	- गोपालकृष्णभट्ट
-अर्थवीथिका	- रामसेन
रसकंकालीयम्	- कंकालयोगी
रसराज महोदधि	- कापाली
रससार	- गोविन्दाचार्य
-संग्रह	- गगाधर
रसरत्नावली	- गुरुदत्तसिंह
रसहृदयम्	- गोविन्दभिक्षु
-मुग्धावबोधिनी	- चतुर्भुज मिश्र
रसगोविन्द	- गोविन्दराम सेन
रससंकेतकलिका	- चामुण्ड कायस्थ
रसाध्याय	- जयदेव
रसेन्द्रचिन्तामणि	- ढुण्ढुकनाथ
दिव्यरसेन्द्रसार	- घनपति
रसयोगमुक्तावली	- नरहरि
रसरत्नाकर	- नागार्जुन
रसेन्द्रमंगलम्	- नागार्जुन
नागार्जुनसिद्धान्त	- नागार्जुन
रसचन्द्रिका	- नीलाम्बर
रसमुक्तावली	- नृपसूनुवैद्य
रसप्रदीप	- प्राणनाथ
रसेनुभास्कर	- भास्करभट्ट
रसनक्षत्रमालिका.	- मथनसिंह
रसपद्धति	- बिन्दु
आयुर्वेदरसशास्त्र	- माधवकर
रसायन प्रकरणम्	- मेरुतुगसूरि
रसप्रकाश-सुधाकर	- यशोधर
रसेन्द्रकल्पद्रुम	- रामकृष्णभट्ट
रसेन्द्रचिन्तामणि	- रामचन्द्रदास
रसरत्नाकर	- रामचन्द्रदास
रसपारिजात	- रामचन्द्रदास

रसकदम्ब - वल्लभदेव
रसेन्द्रपरिभाषा - सोमदेव
रसेन्द्रचूडामणि - सोमदेव
रसकामधेनु - चूडामणि वैद्य
रसचण्डांशु - दत्तात्रेय
रसराजसुन्दर - दत्तराम

गजायुर्वेद

हत्यायुर्वेद (हस्तिशास्त्रम्) - पालकाप्य

गो-वैद्यक - कीर्तिवर्मा
अश्ववैद्यक - जयदत्त
अश्ववैद्यक - दीपकर
शालिहोत्रतंत्र (अश्वचिकित्सा) - शार्ङ्गधर
तुरंगपरीक्षा - शार्ङ्गधर
शालिहोत्रसंहिता - शालिहोत्र
शालिहोत्रसार समुच्चय - कल्हण
मातंगलीला - कल्हण

परिशिष्ट (ङ)
वास्तु-स्थापत्यशास्त्रग्रंथ

विश्वकर्मप्रकाशम्	- विश्वकर्मा
मंत्रसर्वस्वम्	- भरद्वाज
क्षीरार्णव	- विश्वकर्मा
अपराजितापृच्छा	- भुवनदेवाचार्य
शिल्पप्रकाश	- रामचन्द्र कौलचर
काश्यप शिल्पम्-महेश्वरोपदिष्टम्	- काश्यप
वास्तुविद्या	-
मनुष्यालयचन्द्रिका	
मयमतम्	- मय
शिल्परत्नम्	- श्रीकुमार
युक्तिकल्पतरु	- भोजदेव
समराङ्गणसूत्रधार	- --''--
मानसार	- मानसार
प्रतिमामानलक्षणम्	- आत्रेय
सम्यकसुबुद्धभाषित-प्रतिमा लक्षणम्	-
मयवास्तु (मयमतागमः)	-
अभिलाषितार्थचिन्तामणि	
गृहवास्तुप्रदीप	-
प्रासादमण्डनम्	- मडन
रूपमण्डनम्	- --''--
औमापतम्	
दीपार्णव	
वास्तुनिर्णय	
वास्तुप्रकाश	
वास्तुतत्त्वम्	- गजपतिशिष्य
वास्तुप्रदीप	
वास्तुचन्द्रिका	- कृपाराम
वास्तुरत्नावली	- जीवनाथ दैवज्ञ
वास्तुशिरोमणि	- शकर
वास्तुसर्वस्वसंग्रह	-
प्रासादमंजरी	- नाथजी
प्रमाणमंजरी	- सूत्रधारमल्ल
विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्	-
गृहरत्नभूषणम् (नूतनवास्तुप्रबन्ध)	- रामेश्वरदत्तशर्मा
वास्तु-प्रबोध	
वास्तुरत्नाकर	
वास्तुप्रतिष्ठासंग्रह	

प्रकीर्ण- (क) पाककला

पाकदर्पणम् (नलपाक)	- नलराज
भोजनकुतूहलम्	- रघुनाथसूरि
क्षेमकुतुहलम् (स्वस्थवृत्त व पाकविचार)	- क्षेमराज
पाक-प्रदीप	-
पाकरत्नाकर	
पाकावली	
पुष्टिप्रकाश	

कृषिविद्या

उद्यानशास्त्रम्	
उपवनविनोद (शार्ङ्गधर पद्धति अन्तर्गत)	- शार्ङ्गधर
कृषिपराशर	

धनुर्वेद

धनुर्वेदसंहिता	- वसिष्ठ
कोदण्डमण्डन	
धनुर्वेद	- सम्पा नरहरिनाथ
औशनसधनुर्वेद	- उशाना

रत्नविद्या

रत्नपरीक्षा	- ईश्वरदीक्षित
रत्नपरीक्षा	- स्मृतिसारान्तर्गता
रत्नदीपिका रत्नशास्त्रम्	- चण्डेश्वर, बुधभट्ट

चित्रकला

चित्रसूत्रम् (विष्णुधर्मोत्तर-पुराणान्तर्गत)	- वेदव्यास
चित्रलक्षण	- मानजित्
सारस्वतीय चित्रकर्मशास्त्रम्	-

कामशास्त्र

कामसूत्रम्	- वात्स्यायन
-जयमङ्गला	- यशोधर
रतिरहस्यम्	- काचीनाथ
रतिरहस्यम् (कोकसार)	- कोकक (कोकदेव)
अनङ्गरंग	- कल्याणमल्ल
कामकुंजलता (मीनानाथ, भरत-सुरत्खा, दैवज्ञसूर्य आदि द्वादश	राजर्षिविरचित)
कामप्रदीप	- गुणाकर वैद्य
रतिमंजरी	- जयदेव

रतिशास्त्रम् - नागार्जुन
-स्मरतत्त्व प्रकाशिका - रेवणाराध्य
नागरिकसर्वस्वम् - पद्मश्रीज्ञान
रतिरत्नप्रदीपिका - प्रौढ देवराज
कामकुतूहलम्
कुचिमारतंत्रम्
पंचसायक - ज्योतिरीश्वर
केलिकुतूहलम् - मथुरानाथ दीक्षित
कोकशास्त्रम् - नर्बुदाचार्य
नर्मकेलिकौतुक संवाद - दण्डी
मदनसन्देश - अरुन्द
नागरसर्वस्वम्
कुट्टिनीमतम् - दामोदरकवि
गणिकावृत्तसंग्रह

परिशिष्ट (च) पुराण

महापुराण

मत्स्यपुराण - वेदव्यास
स्वल्प मत्स्यपुराण
भविष्यपुराण
भविष्योत्तरपुराण
ब्रह्मपुराण
ब्रह्मवैवर्तपुराण
ब्रह्माण्डपुराण
वायुपुराण
विष्णुपुराण
-व्याख्या
-व्याख्या
वामनपुराण
वाराहपुराण
अग्निपुराण
नारदीयपुराण
पद्मपुराण
लिंगपुराण
-शिवतोषिणी
गरुडपुराण
कूर्मपुराण
स्कन्दपुराण
श्रीमद्भागवत
भागवत की प्रमुख व्याख्याएं
भावार्थदीपिका - श्रीधरस्वामी
अन्वितार्थ प्रकाशिका
चूर्णिका

सुबोधिनी - वल्लभाचार्य
हरिलीलामृत - बोपदेव
मुक्ताफल - बोपदेव
देवीभागवत - वेदव्यास
-व्याख्या - नीलकण्ठ
शिवपुराण
शिवधर्मपुराण
शिवधर्मोत्तरपुराण
वह्निपुराण
एकाम्रपुराण
स्वतंत्र पुराणांश
काशीखण्ड (स्कन्दपुराणान्तर्गत)
केदारखण्ड (स्कन्दपुराणान्तर्गत)
हिमवत्खण्ड (स्कन्दपुराणान्तर्गत)
रेवाखण्ड (स्कन्दपुराणान्तर्गत)
सत्यनारायण व्रतकथा (स्कन्द.रेवा.) (बंगाली प्रत)
क्रियायोगसार (पद्मपुराणान्तर्गत)
रास-पंचाध्यायी (श्रीमद्भागवतान्तर्गत)
गोपीगीतम् (श्रीमद्भागवतान्तर्गत)
कौमुदीव्याख्या
पुरुषोत्तम-माहात्म्य
ललितोपाख्यान
ललिता-सहस्रनाम
सप्तशती (मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत)
-गुप्तवती - भास्करराय
-व्याख्या - नागेश भट्ट
-व्याख्या (चतुर्धरी) - चतुर्धरमिश्र
-व्याख्या (शान्तनवी - शन्तनु चक्रवर्ती
-देवीभाष्य - पचानन तर्करत्न
-व्याख्या - गोपाल चक्रवर्ती
-जगच्चन्द्रचन्द्रिका - भगीरथ
-सप्तशती-दंशोध्दार - राजाराम
उपपुराण
बृहद्धर्मपुराण
बृहन्नारदीयपुराण
देवीपुराण
कालिकापुराण
साम्बपुराण
गणेशपुराण
कल्किपुराण
नरसिंहपुराण
सूतसंहिता
विष्णुधर्मोत्तर
महाभागवतपुराण

पराशरपुराण
औशनसपुराण
आत्मपुराण
सूर्यपुराण (सौर पुराण)
मल्लपुराण
पुराणसंहिता
पुराण-जातीय ग्रंथ
पशुपतिपुराण
गर्ग-संहिता
युगपुराण
नीलमतपुराण
भारद्वाजसंहिता
कैवली मंजुनाथ माहात्म्य
नैपालमाहात्म्य

इतिहासग्रंथ

वाल्मीकीय रामायण - वाल्मीकि
-धर्माकूतम् (व्याख्या - त्र्यम्बकराय मखी
-व्याख्या
-व्याख्या
-व्याख्या
अन्यान्य रामायण ग्रंथ
मूलरामायणम्
रामाश्वमेध
भुशुण्डिरामायण
अद्भुतरामायण
अग्निवेश रामायण
अध्यात्म रामायण
योगवासिष्ठ
-व्याख्या - आनन्दबोधेन्दु
आनन्दरामायण
महाभारत
भारतभावदीप (टीका) - नीलकण्ठ
-व्याख्या - देवबोध
-दीपिका - अर्जुनमिश्र
-दुर्घटार्थप्रकाशिनी (विषमश्लोकी) - विमलबोध
-भारतार्थप्रकाश - सर्वज्ञ नारायण
-लक्षाभरण (लक्षालंकार) - वादिराज तीर्थ
-व्याख्या - चतुर्भुज मिश्र
महाभारतान्तर्गत प्रमुख ग्रंथ
(विराटपर्वमात्र) - रामकृष्ण
हरिवंश
-नीलकण्ठी - नीलकण्ठ
जैमिनीयाश्वमेध
सनत्सुजातीय - गौडपाद, शंकराचार्य
-व्याख्या
विष्णुसहस्रनाम
-शांकरभाष्य - शंकराचार्य
-विवृति - तारक ब्रह्मानन्द
श्रीमद्भगवद्गीता
-भाष्य - शंकराचार्य
-भाष्यव्याख्या - आनन्दगिरी
-सुबोधिनी - श्रीधर
-व्याख्या - अभिनवगुप्त
-व्याख्या - रामकृष्ण
-व्याख्या - नीलकण्ठ
-गूढार्थदीपिका - मधुसूदन सरस्वती
-गूढार्थ तत्त्वालोक - बच्चा झा
-अद्वैतांकुश
-पैशाच भाष्य
-सर्वतोभद्र व्याख्या - राजानक रामकवि
-शंकरानन्दी - शंकरानन्द
-भाष्य (विशिष्टाद्वैत) - रामानुजाचार्य
-तात्पर्यचन्द्रिका (रामानुजभाष्य - वेंकटनाथ
गीतातत्त्वामृत - विष्णुतीर्थ
-गीतार्थसंग्रह - बालधन्वी जग्गू वेंकटाचार्य
-(शांकर) भाष्योत्कर्षदीपिका -
-अमृततरंगिणी
भगवदाशयानुसारणाभिधान (भाष्य) - भास्कराचार्य
अन्यान्य गीताएँ
अष्टावक्रगीता
ईश्वरगीता
उत्तरगीता
-व्याख्या - गौडपादाचार्य
उद्धवगीता
गणेशगीता
-नीलकण्ठी व्याख्या
गोपीगीता
-व्याख्या
पंचदशीगीता
पाण्डवगीता
रामगीता
गुरुगीता
-व्याख्या
विष्णुगीता

शक्तिगीता
जीवन्मुक्तिगीता
अवधूतगीता
हंसगीता
रासगीता
गीतासार
पितृगीता
पृथिवीगीता
सप्तश्लोकीगीता
पराशरगीता
शान्तिगीता
शिवगीता
-व्याख्या
तुलसी गीता
गार्भ गीता
वैष्णव गीता
यमगीता
हारितगीता
शम्भुगीता

सप्तशती गीता
संन्यास गीता
सूर्य गीता
सनत्सुजारीय गीता
-कालिका व्याख्या
-व्याख्या
-व्याख्या
-व्याख्या

भगवती गीता
धीशगीता
चतुर्विंश गीता
श्रमगीता - श्री भा वर्णेकर
सघगीता - श्री भा वर्णेकर
ग्रामगीतामृतम् - श्री भा वर्णेकर

इतिहास-पुराण प्रकरण ग्रन्थ

भागवत खण्डनम् - स्वा दयानन्द सरस्वती
अष्टादश पुराण व्याख्या - काशीनाथ भट्ट
महाभारततत्त्वदीप - वाराणसी सुब्रह्मण्यशास्त्री

परिशिष्ट - (छ) स्मृतिग्रन्थ

आङ्गिरसस्मृति (पूर्वोत्तर)	- अंगिरा ऋषि
अत्रिस्मृति	- महर्षि अत्रि
आपस्तम्बस्मृति	- आपस्तम्ब
औशनसस्मृति	- उशना
गौतमस्मृति (वृद्ध)	- गौतम
बृहत्पाराशर स्मृति	- पराशर
-भाष्य	- सायण-माधव
-व्याख्या	
प्राचेतसस्मृति	- प्रचेता
दक्षस्मृति	- दक्ष
बृहस्पतिस्मृति	- बृहस्पति
मनुस्मृति	- मनु
-व्याख्या	- मेधातिथि
-मन्वर्थमुक्तावली	- कुल्लूक भट्ट
-व्याख्या	
-व्याख्या	
(बृहद्योगी) याज्ञवल्क्यस्मृति	- याज्ञवल्क्य
-बालक्रीडा	- विश्वरूपाचार्य
-अपरार्क	-
-मिताक्षरा	-
-मिताक्षराव्याख्या बालम्भट्टी	- बालभट्ट
-दीपकलिका	
(बृहद्) यमस्मृति	- यम
विष्णुस्मृतिः	- विष्णु
लिखितस्मृतिः	- लखित
शंखस्मृतिः	- शख
हारीतस्मृतिः	- हारीत

उपस्मृति ग्रंथ

नारदस्मृतिः	- नारद
पुलहस्मृतिः	- पुलह
गार्ग्यस्मृतिः	- गार्ग्य
पुलस्त्यस्मृति	- पुलस्त्य
शौनक स्मृति	- शौनक
ऋतुस्मृति	- ऋतु
बौधायनस्मृति	- बौधायन
जातुकर्णस्मृति	- जातुकर्ण
विश्वामित्रस्मृति	- विश्वामित्र
पितामहस्मृतिः	- पितामह
जाबालिस्मृति	- जाबालि
नाचिकेतस्मृति	- नाचिकेता
स्कन्दस्मृति	- स्कन्द
लौगाक्षिस्मृति	- लौगाक्षि
काश्यपस्मृति	- कश्यप
व्यासस्मृतिः	- व्यास
सनत्कुमारस्मृतिः	- सनत्कुमार
शन्तनुस्मृति	- शन्तुनु
जनकस्मृतिः	- जनक
व्याघ्रस्मृतिः	- व्याघ्र
कात्यायनस्मृति	- कात्यायन
जातुकर्ण्यस्मृतिः	- जातुकर्ण्य
कपिंजलस्मृति	- कपिंजल
बौधायनस्मृतिः	- बौधायन
सुमन्तुस्मृतिः	- सुमन्तु
पैठीनसी स्मृतिः	- पैठीनस
गोभिलस्मृतिः	- गोभिल

अन्यान्य स्मृतिग्रन्थ

वसिष्ठस्मृतिः	- वसिष्ठ
देवलस्मृतिः	- देवल
कपिलस्मृतिः	- कपिल
वाधूलस्मृति	- वाधूल
नारायण स्मृतिः	
शाण्डिल्यस्मृतिः	- शाण्डिल्य
कण्वस्मृति	- कण्व
दाल्भ्यस्मृति	- दाल्भ्य
भारद्वाजस्मृतिः	- भारद्वाज
लोहितस्मृति	-
मार्कण्डेयस्मृतिः	- मार्कण्डेय
मरीचिस्मृतिः	-
पारस्करस्मृतिः	-
ऋष्यशृंगस्मृति	
जमदग्निस्मृतिः	-
कार्ष्णाजिनि स्मृतिः	- कार्ष्णाजिनि
वैजवाप-स्मृतिः	-
वत्सस्मृतिः	-

अंगस्त्यसंहिता
आश्वलायनधर्मशास्त्र -
लोमशस्मृतिः - लोमश
गर्गस्मृतिः - गर्ग
कौशिकस्मृति
गालवस्मृति
गवेयस्मृति
सत्यव्रतस्मृतिः
वैखानसस्मृतिः
लल्लस्मृतिः
हिरण्यकेशि स्मृतिः
शाकटायनस्मृतिः
छागल्यस्मृतिः
सप्तर्षिस्मृतिः
चन्द्रस्मृतिः
इन्द्रदत्तस्मृतिः
देवलस्मृतिः
शाखायनिस्मृतिः
विश्वेश्वरस्मृतिः
च्यवनस्मृतिः
बभ्रुस्मृतिः
पैग्यस्मृतिः
प्रह्लादस्मृतिः
षण्मुखस्मृतिः

नीतिशास्त्र ग्रन्थ

अक्षयनीतिसुधाकर
कथासंवर्तिका
कामन्दकीय नीतिसार - कामन्दक
-व्याख्या
-व्याख्या

कौटिलीयम्अर्थशास्त्रम् - कौटिल्य (विष्णुगुप्त)
-जयमंगला व्याख्या
चाणक्यनीतिः
चाणक्यसप्ततिः
चाणक्यसूत्रम्
-बालबोधिनी
नीतिकल्पतरुः - कामदेव क्षेमेन्द्र
नीतिवाक्यामृतम् - सोमदेवसूरि
नीतिशतकम् - भर्तृहरि
-व्याख्या -
नीतिसूत्राणि -
पंचतंत्रम् - विष्णुशर्मा
पाश्चात्य नीतिशास्त्रम् - विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी
पुरुषपरीक्षा -

पुरुषार्थोपदेशः - भर्तृहरि
प्रतापकण्ठाभरणम् -
प्राचीनराज्यार्थशास्त्रयोः
वैज्ञानिकमध्ययनम् - सत्यनारायण मिश्र
प्रियदर्शिका प्रशस्तयः -
भर्तृहरिशतकत्रयम्
राजनीतिरत्नाकर - चण्डेश्वर
विदुरनीति - (महाभारतान्तर्गता)
वैशम्पात्यननीतिप्रकाशिका
नीतिमंजरी - द्या (विद्या) द्विवेद
शुक्रनीतिः -
हरिहरचतुरंगम् - गोदावरी मिश्र
हितोपदेशः - नारायण शर्मा
भारतीयं संविधानम् -
मोक्षनीतिदर्पण

परिशिष्ट (ज)
दार्शनिक वाङ्मय

न्यायदर्शन

न्यायसूत्राणि	- महर्षि गौतम
वात्स्यायन भाष्य	- वात्स्यायन
न्यायवार्तिक	- भारद्वाज उद्योतकर
न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका	- वाचस्पति मिश्र
तात्पर्य परिशुद्धि	- उदयनाचार्य
परिशुद्धिप्रकाश	- वर्धमान उपाध्याय
न्यायतात्पर्यमण्डनम्	- शंकर मिश्र (प्रकाशव्याख्या)
न्यायसूत्रविवरणम्	- राधामोहन गोस्वामी
न्यायसूत्रोद्धार	- वाचस्पति मिश्र
न्यायदीप (न्यायभाष्य व्याख्या)	- मित्र मिश्र
न्यायसूत्रवृत्ति	- विश्वनाथ पचानन
--''-- **मितभाषिणी**	- महादेव भट्ट
--''-- **चन्द्रनारायणी**	- चन्द्रनारायण
--''-- **पदपंजिका**	- वासुदेव काश्मीरक
--''-- **तात्पर्यदीपिका**	- जयसिह
--''--	- मुकुन्ददास
--''--	- अभयतिलक
न्यायमंजरी (न्यायसूत्र बृहद्वृत्ति)	- जयन्त भट्ट
न्यायमंजरी- ग्रन्थिभंग	- चक्रधर
न्यायसूत्रोद्धार	- वाचस्पति मिश्र
न्यायसूचीनिबन्ध	- वाचस्पतिमिश्र
न्यायनिबन्धप्रकाश व्याख्या	- पद्मनाभ
न्यायकुसुमांजलि	- उदयनाचार्य
-आमोद व्याख्या	- शंकर मिश्र
-प्रकाशिका (जलद)	- मेघ ठक्कुर
-मकरन्द	- रुचिदत्त
-प्रकाश	- वर्धमान उपाध्याय
-बोधिनी	- वर्धमान उपाध्याय
-विवेक	- गुणानन्द
-विवरणम्	- जयराम
-विकास	- गोपीनाथ मौनी
-व्याख्या	- वामध्वज
-न्यायवासना	- अय्या देवनाथ ताताचार्य
-नागेशी	- नागेशभट्ट
-टिप्पण	- बच्चा झा
न्यायकुसुमांजलि हरिदासी	- हरिदास
-व्याख्या	-
-व्याख्या	-
न्यायकणिका	- जयन्तभट्ट
न्यायसिद्धान्तमाला	- जयराम
आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धधिक्कार)	- उदयनाचार्य
-प्रकाश	- वर्धमान उपाध्याय
-माथुरीरहस्य	- मथुरानाथ
-हरिदासी	- हरिदास
-न्यायालंकार	- अविराज
न्यायसार	- भासर्वज्ञ
-स्वोपज्ञ न्यायभूषण व्याख्या	- --''--
-पदपंजिका	-
पदमंजरी	- अनन्त
तार्किकरक्षा	- वरदराज
-व्याख्या	- ज्ञानपूर्ण
-प्रकाशिका	- नृसिंह ठक्कुर
-निष्कण्टक	- मल्लिनाथ
-न्यायकौमुदी	- विनायक भट्ट
कुसुमांजलिकारिका व्याख्या	- अविराज
योगावली	- नारायण
न्यायरत्नम्	- मणिकण्ठ मिश्र
न्याय-परिशिष्टम्	- उदयनाचार्य
-ध्वजपंजिका	- वामेश्वर
न्यायसारविचार	- भट्टराघव
न्यायसिद्धान्त मंजरी	- जानकीनाथ भट्टाचार्य
-न्यायसार	- यादव
-न्यायसिद्धान्तदीप	- शशधर
-प्रभा	- शेषानन्त
न्यायसिद्धान्त मंजरी	- श्रीनिवास
न्यायरत्नावली	- वासुदेव
--''--	- कृष्णवागीश
--''--	- त्रिलोचन देव
न्यायसार	- लौगाक्षिभास्कर
--''--	- माधवदेव
षोडशपदार्थी	- गणेशदास
तर्कामृतम्	- जगदीश

-प्रकाश	-
-तत्त्वालोक	-
तर्ककुतूहलम्	- विश्वेश्वरपाण्डेय
तर्कप्रकाश	- श्रीकठ
भावदीपिका	- श्रीकृष्ण
तर्कभाषा	- केशव मिश्र
-चित्रम्भट्टीया	- चित्रभट्ट
-व्याख्या	- रामलिग
-तर्कभाषाप्रकाश	- गोवर्धन
-व्याख्या	- मुरारि
-विवरण	- शुभविजय
-न्यायविलास	- विश्वनाथ
-भावार्थदीपिका	- गौरीकान्त
-व्याख्या	- माधवदेव
- ''	- सिद्धचन्द्र
- ''	- माधवभट्ट
-तत्त्वप्रबोधिनी	- गणेश दीक्षित
-प्रमोदिनी	- - वागीश
-प्रकाशिका	- कौण्डिन्य दीक्षित
-व्याख्या	- गुडुभट्ट
-उज्ज्वला	- गोपीनाथ मौनी
-दर्पण	- भास्कर
-भावप्रकाशिका	- गोपीनाथ ठकुर
-प्रकाश	- चैतन्यभट्ट
-कौमुदी	- दिनकर
-व्याख्या	- गगाधर भट्ट
योगावली	- नागेश
पदार्थखण्डनम्	- रघुनाथभट्ट
पदार्थतत्त्वनिरूपणम्	- --''--
पदार्थचन्द्रिका	- मित्रमिश्र
पदार्थमाला	- लौगाक्षिभास्कर
द्रव्यप्रकाशिका	- भगीरथमेघ
तत्त्वचिन्तामणि (नव्यन्याय)	- *गङ्गेश उपाध्याय*
-व्याख्या	- वासुदेव सार्वभौम
-तत्त्वलोक	- जयदेव मिश्र
-व्याख्या	- हरिदास मिश्र
-हनुमदीया	- हनूमान्
-व्याख्या	- पक्षेश्वर
-प्रकाश	- जानकीनाथ तर्कचूडामणि (शकरमित्र के गुरु)
दीधिति (तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या)	- रघुनाथ शिरोमणि
दीधितिव्याख्या-	- मथुरानाथ
दीधितिरहस्यम्	
-भवानन्दीया	- भवानन्द
-जागदीशी	- जगदीश भट्टाचार्य
-व्याख्या	- शकर मिश्र
-गंगा व्याख्या	- शिवदत्त मिश्र
-गादाधरी	- गदाधर भट्टाचार्य
-न्यायरत्नम्	- रघुनाथशास्त्री
-गंगाव्याख्या	- शिवदत्त मिश्र
सार्वभौमनिरुक्ति	- वासुदेव सार्वभौम
तत्त्वालोकरहस्यम्	- मथुरानाथ
शब्दशक्तिप्रकाशिका	- जगदीश भट्टाचार्य
व्युत्पत्तिवाद	- गदाधर भट्टाचार्य
-विजया	- जयदेव मिश्र
-गूढार्थतत्त्वालोक	- बच्चा झा
-हरिनाथी	- हरिनाथ
प्रामाण्यवाद	
-दीपिका	- बामाचरण भट्टाचार्य
न्यायकोश	- भीमाचार्य झळकीकर
'नच' रत्नमालिका	- शास्तृ शर्मा
तत्त्वप्रभावली	
प्रत्यक्षतत्त्वचिन्तामणि	- गगेशोपाध्याय
-आलोक	-
-दर्पण	-
-न्यायशिखामणि	- रामकृष्णाध्वरि
-चित्रप्रकाश	- रुचिदत्त मिश्र
-माथुरी (मंगलवादान्त)	- मथुरानाथ

वैशेषिक दर्शन

वैशेशिक सूत्राणि	- महर्शि कणाद
प्रशस्तपाद भाष्य	- प्रशस्तपाद
-सूक्ति व्याख्या	- कालीपद तर्काचार्य
व्योमवती (प्रशस्तपादव्याख्या)	- व्योमशिवाचार्य
किरणावली ('')	- उदयनाचार्य
किरणावली भास्कर (किरणावली व्याख्या)	- पद्मनाभ
वैशेषिकसूत्रभाष्य	- रावण
--''--	- चन्द्रकान्त तर्कालंकार
कणादसूत्रवृत्ति	- भारद्वाज
--''--	- जयनारायण तर्कपंचानन
--''--	- नागेश भट्ट
उपस्कार (वैशेषिकसूत्रव्याख्या)	- शकर मिश्र
(प्रशस्तपाद) भाष्यसूक्ति	- जगदीश
कणादरहस्यम्	- शकर मिश्र

लक्षणावली	- उदयनाचार्य
-प्रकाश	- भट्टकेशव
न्यायमुक्तावली (लक्षणावलीव्याख्या)	- शार्ङ्गधर
लक्षणावलीव्याख्या	- विश्वनाथ झा
न्यायकन्दली (प्रशस्तपादभाष्यव्याख्या)	- श्रीधर भट्ट
लक्षणमाला	- शिवादित्य
लीलावती	- श्रीवत्साचार्य
न्यायलीलावती	- वल्लभ न्यायाचार्य
-प्रकाश	-
-विवृत्ति	-
-कण्ठाभरण	-
दशपदार्थी	- ज्ञानचन्द्र
सप्तपदार्थी	- शिवादित्य
-निष्कण्टका	- मल्लिनाथ
-भावविद्येश्वरी	- भावविद्येश्वर
-व्याख्या	- सिद्धचन्द्र
-व्याख्या	- हरि
-व्याख्या	- जिनवर्धनसूरि
-व्याख्या	- बलभद्र
-व्याख्या	- अनन्त
-व्याख्या	- शेषानन्त
-मितभाषिणी व्याख्या	- माधवसरस्वती
-पदार्थचन्द्रिका	- शार्ङ्गधर
-शिशुबोधिनी	- भैरवेन्द्र
सर्वदर्शनकौमुदी	- माधव सरस्वती
मान मनोहर	- वादि वागीश्वर
भाषापरिच्छेद (कारिकावली)	- विश्वनाथ न्यायपचानन
सिद्धान्तमुक्तावली (स्वोपज्ञव्याख्या)	-
-प्रकाश	- बालकृष्ण भट्ट
-रौद्री	- रुद्र
-व्याख्या	- त्रिलोचन
-व्याख्या	- कल्याण
-किरणावली	- श्रीकृष्णवल्लभाचार्य
-प्रभा व्याख्या	-
प्रकाश (दिनकरी-मुक्तावली व्याख्या)	- महादेव-दिनकर भारद्वाज
रामरुद्री (दिनकरी व्याख्या)	- रामरुद्र भट्टाचार्य राजेश्वरशास्त्री द्रविड
न्यायचन्द्रिका (कारिकावली व्याख्या)	- नारायणतीर्थ
तर्ककौमुदी	- लौगाक्षिभास्कर
-व्याख्या	- मोहन भट्ट
तर्कसंग्रह	- अन्नम्भट्ट
-न्यायबोधिनी	- गोवर्धन
-पदकृत्य	- चन्द्रसिंह
-सिद्धान्तचन्द्रोदय	- धूर्जटी
-फक्किका	- क्षमाकल्याण
-व्याख्या	- हनूमान
-चन्द्रिका	- मुकुन्दभट्ट
-वाक्यवृत्ति	- मेरुशास्त्री गोडबोले
-गंगा	- शिवदत्त मिश्र
तर्कसंग्रह-दीपिका	- अन्नम्भट्ट
तर्कसंग्रह- दीपिका प्रकाश	- नीलकण्ठभट्ट
भास्करोदया (दीपिकाप्रकाश व्याख्या)	- लक्ष्मीनृसिंह
सुखकल्पतरु (दीपिका व्याख्या)	- श्रीनिवास
तर्कसंग्रह-सर्वस्वम्	- कुरुगट्टी रामशास्त्री
दीपिका-सर्वस्वम्	- --"--
न्यायसिद्धान्ततत्त्वामृतम्	- श्रीनिवास
लक्षणराजि (लघुन्यायवादत्रय)	: तिप्पभट्ट

सांख्यशास्त्र (परिशिष्ट)

सांख्य सूत्राणि	- कपिल
सांख्यप्रवचनभाष्य	- विज्ञानभिक्षु
-वृत्ति	- अनिरुद्ध भट्ट
-वृत्तिसार	- महादेव वेदान्ती
-वृत्ति	- नागेश भट्ट
-व्याख्या	- ब्रह्ममुनि
-वृत्ति	- हरिप्रसाद
अनिरुद्ध वृत्तिव्याख्या	
-अमला	- प्रमथनाथ तर्कभूषण
-व्याख्या	- कुजबिहारी
तत्त्वसमास सूत्र	
-सांख्यतत्त्वविवेचन व्याख्या	- सीमानन्द या क्षेमेन्द्र
-सांख्यसूत्रविवरण	-
-क्रमदीपिका (वृत्ति)	-
-सर्वोपकारिणी व्याख्या	-
-तत्त्व यायार्थ्यदीपन	- भावागणेश
सांख्यसार	- विज्ञान भिक्षु
-व्याख्या	- कालीपद तर्काचार्य
सांख्यतत्त्वप्रदीप	- कविराज यति
सांख्यकारिका (सांख्यसप्तति)	- ईश्वरकृष्ण
-युक्तिदीपिका व्याख्या	-
-भाष्य	- गौडपाद
-माठरवृत्ति	- माठर
-जयमंगला व्याख्या	- शकराचार्य (या जयमंगल)
-चन्द्रिका व्याख्या	- नारायणतीर्थ
-भाष्य	- लक्ष्मीनारायण, श्रीकृष्ण-वल्लभाचार्य
-व्याख्या	- परमार्थ
सांख्यवसन्त	- नरहरिनाथ
सांख्यतत्त्वप्रदीपिका	- केशव
तत्त्वमीमांसा	- कृष्णमिश्र
सांख्यपरिभाषा	-
सांख्यतत्त्वकौमुदी	- वाचस्पति मिश्र
-आवरणदारिणी व्याख्या	- कृष्णनाथ न्यायपचानन
-गुणमयी व्याख्या	- रमेशचन्द्र तर्कतीर्थ
-पूर्णिमा व्याख्या	- पचानन तर्करत्न
-विद्वत्तोषिणी व्याख्या	- बालराम उदासीन
-सुषमा व्याख्या	- हरिरामशास्त्री शुक्ल
-तत्त्वविभाकर व्याख्या	- वशीधर मिश्र
-किरणावली	- श्रीकृष्णवल्लभाचार्य
-व्याख्या	- भारतीय यति
-सारबोधिनी	- शिवनारायणशास्त्री
-ज्योतिष्मती व्याख्या	-

आधुनिक सांख्य ग्रन्थ

सांख्यतत्त्वालोक	- हरिहरानन्द आरण्य
सांख्यसिद्धान्तपरामर्श	- एम बी उपाध्याय
सांख्यतरंग	- देवतीर्थ स्वामी
गुणत्रयविवेक	- स्वयप्रकाश यति
सांख्यरहस्य	- श्रीराम पाण्डेय
पंचशिखादीनां सांख्यसूत्राणि	- हरिहरानन्द आरण्य

योगशास्त्र (परिशिष्ट)

(पातंजल) योगसूत्राणि	- पतंजलि
-राजमार्तण्डवृत्ति	- भोज (रणरंगमल्ल)
-भोजवृत्तिव्याख्या	- श्रीकृष्णचंद्र
-सिद्धान्तचन्द्रिका	- नारायण तीर्थ
-मणिप्रभा	- रामानन्द यति
-दीपिका	- भावागणेश
-अर्थबोधिनी	- नारायणतीर्थ
-बृहत् तथा लघु व्याख्या	- नागेश भट्ट
-योगचन्द्रिका	- अनन्तदेव
-व्याख्या	- सदाशिवेन्द्र सरस्वती
-व्याख्या	- यशोविजय
-वैदिकी वृत्ति	- हरिप्रसाद
-योगरहस्य व्याख्या (आधुनिक)	- सत्यदेव
-प्रदीपिका	- बलाद्रि
-किरणावली	- श्रीकृष्णवल्लभाचार्य
-भाष्य	- ज्ञानानन्द स्वामी
-योगकारिका	- हरिहरानन्द आरण्य
किताब पातंजल (अरबी मे)	- अल्बेरूनी
योगसूत्र व्यासभाष्यम्	- व्यास
-तत्त्ववैशारदी व्याख्या	- वाचस्पति मिश्र
-भाष्यवार्तिक (योगवार्तिक)	- विज्ञान भिक्षु
-विवरण व्याख्या	- शकराचार्य
-भास्वती व्याख्या	- हरिहरानन्द आरण्य
पातंजलरहस्य (तत्त्ववैशारदी व्याख्या)	- राघवानन्द
विद्वत्तोषिणी व्याख्या	- बालराम उदासीन
योगसारसंग्रह	- विज्ञान भिक्षु
योगशास्त्र	- हेमचन्द्र

योग (प्रकीर्ण ग्रंथ)

घेरण्डसंहिता	- घेरण्डाचार्य
ध्यानयोगप्रकाश	- स्वामी लक्ष्मण वेदसरस्वती
योगकर्णिका	- अघोरानन्दनाथ
शिवसंहिता	
राजयोग भाष्य	- शंकराचार्य
वसिष्ठ संहिता	
योगार्णव	-
षट्चक्रनिरूपण	- पूर्णानन्द
शिवस्वरोदय	-
बिन्दुयोग	-
सिद्धसिद्धान्तपद्धति	- नित्यनाथ
--"--	- गोरक्षनाथ
अमरौघशासनम् (अमरौघप्रबोध)	- --"--
योगमार्तण्ड	- --"--
गोरक्षपद्धति	- --"--
गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह	- --"--
गोरक्षशतकम् (ज्ञानशतकम्)	
सिद्धसिद्धान्तसंग्रह	- बलभद्र
हठयोगप्रदीपिका	- स्वात्माराम
-ज्योत्स्नाव्याख्या	- ब्रह्मानन्द
योगियाज्ञवल्क्य	- याज्ञवल्क्य
योगचिन्तामणि	- शिवानन्द
गोरक्षसंहिता	
विज्ञानभैरव	
-व्याख्या	- व्रजवल्लभ द्विवेदी
योगबीज	- गोरक्षनाथ
अमनस्क योग	- --"--
योगतारावली (स्तोत्र)	- शकराचार्य
गोरक्षस्तुति मंजरी	
पंचदशांग योगप्रकरणम्	
-व्याख्या	- अप्पय्य दीक्षितार्य
शिवयोगदीपिका	- सदाशिव योगीश्वर

सांख्य- योगविषयक

हठसंकेत चन्द्रिका (सरस्वतीभवन, काशी)	- सुन्दरदेव
हठतत्त्वकौमुदी ('')	- -''-
सांख्यतत्त्वविलास (अंशतः प्रकाशित)	- रघुनाथ
सांख्य तरुवसन्त (अड्यार लाय.)	- मुडुम्ब नरसिह स्वामी

तंत्रागम ग्रन्थ

अत्रिसंहिता	-
आहिर्बुध्न्यसंहिता	-
आगमशास्त्रम्	- गौडपादाचार्य
-वृत्ति	-
-व्याख्या	- विधुशेखर भट्टाचार्य
ईश्वर-संहिता (नृसिंहकल्प)	-

उत्सवसंग्रह	-
काश्यपज्ञानकाण्डम् (काश्यपसंहितान्तर्गत)	-
गायत्रीतन्त्रम्	-
जयाख्यसंहिता	-
ज्ञानार्णवतंत्रम्	-
दीक्षातत्त्व-मीमांसा	-
दीक्षाप्रकाश	- जीवनाथ
-व्याख्या	-
-दीक्षाप्रकाशिका	-
नारदपांत्ररात्रम्	-
भारद्वाज-संहिता	-
-व्याख्या	-
नित्याषोडशिकार्णव	-
-सेतुबन्ध टीका	- भास्करराय
पंचांगसंग्रह (महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-सम्बद्ध)	-
परमसंहिता	-
परशुरामकल्पसूत्रम्	-
-वृत्ति	- रामेश्वर
नित्योत्सव	-
-वृत्ति	- उमानाथ
पंचरात्र-रक्षा	- वेदान्तदेशिक
पारमेश्वर-सहिता	-
पौष्कर संहिता (पांचरात्रागमे रत्नत्रयान्तर्गता)	
प्रत्यंगिरापंचांगम्	
प्रपचरहस्यहृदयम्	
बृहद्ब्रह्मसंहिता	
-व्याख्या	-
ब्रह्मसंहिता	-
-व्याख्या दिग्दर्शिनी	- रूप गोस्वामी
वैतानहृदयम्	-
मंत्रकल्प	-
मरीचि-संहिता (विमार्चनाकल्प)	-
महोत्सव-प्रयोग	- रग भट्टारक
माहेश्वरतंत्रम्	-
विष्णु-सहिता	-
वैखानसागम	-
शिवसंहिता	-
श्रीपुराणसंहिता	-
आलवन्दारसंहिता	-

बृहत् सदाशिव संहिता	-
सनत्कुमारसंहिता	-
सात्वतसंहिता (पांचरात्रान्तर्गत)	
हयशीर्ष पांचरात्रम्	
-व्याख्या	-
अजितागम	-
आगमरहस्यम्	-
प्रश्नसंहिता	-
क्रियासार	-
अष्टसिद्धी	-
-व्याख्या	-
आर्य मंजुश्रीमूलकल्प (बोधिसत्व पिटकावतंस)	-
आश्चर्यदीपिका	-
-व्याख्या	
आश्चर्ययोगमालातंत्रम् (योगरत्नावली)	-
ईशान (शिव) गुरुदेवपद्धति	-
उड्डामेश्वरतंत्रम्	-
उपदेशमुक्तावली	-
कश्यपदर्शनतंत्रम्	-
काथबोध (दत्तात्रेयसाम्प्रा.)	- सतोषानन्द
-व्याख्या	- साजनी
कामकलाविलास	- पुण्यानन्द
-चिद्वल्ली	- नटनानन्द
कामाख्यातंत्रम्	-
कार्तवीर्योपासनाध्याय	-
कालीतंत्रम्	-
-टिप्पणी	-
कालीनित्यार्चनम्	-
कालीविलासतंत्रम्	-
कालीस्वरूपतत्त्वम्	-
कुलचूडामणितत्त्वम्	-
-व्याख्या	-
-व्याख्या	-
कौलज्ञाननिर्णय	-
(कौलगजमर्दनम्)	-
कौलावली-निर्णय	-
कौलावलीसग्रह	-
क्रमदीपिका	- केशवाचार्य (१)
-टिप्पणी	- वसिष्ठ भैरव
-व्याख्या	- गोविन्द विद्याविनोद भट्टाचार्य
गणपतितत्त्वरत्नम्	-

गन्धर्वतंत्रम्	- श्रीदत्तात्रेय
(दत्तात्रेयसाम्प्र.)	
गुप्तसाधनरहस्यम्	-
गुह्यसमाजतंत्रम्	-
महानिर्वाणतंत्रम्	-
-व्याख्या	- हरिहरानन्द भारती
चिद्गगनचन्द्रिका	- कालिदास
डाकार्णव	-
डाकिनीविद्या	-
तंत्रराज	- काशीराम विद्यावाचस्पति
तंत्रराजतंत्रम्	-
-मनोरमा	- सुभगानन्द नाथ
-व्याख्या-सुदर्शन	- प्रेमनिधि पन्त
तंत्राख्यायिका	-
तंत्रसमुच्चय	- -
-विमर्शिनी	- -
- --''--	- -
तंत्रसार	- कृष्णानन्द
तंत्रसार	- अभिनवगुप्त
-व्याख्या	-
तंत्राभिधानम्	-
तांत्रिकचिकित्सा	-
तंत्रालोक	- अभिनवगुप्त
-प्रकाश	- जयरथ
तारारहस्यम्	-
तारास्वरूपतत्त्वम्	-
त्रिपुरारहस्यम्	-
-तात्पर्यदीपिका	-
दक्षिणामूर्तिसंहिता	-
दत्तभार्गवसंवाद	-
-व्याख्या	- -
दत्तात्रेयतन्त्रम्	- -
देवीयामविलास	- साहिब कौल
देवीरहस्यम्	-
(सपरिशिष्टम्)	
देवीशतकम्	- आनन्दवर्धन
-विवृत्ति	- कैयट
धन्वन्तरितंत्र शिक्षा	- -
नरोत्तमसंग्रह	-
निष्पन्नयोगावली	-
नृसिंह-परिचर्या	- कृष्णदेव
पंचतत्त्वरहस्यम्	- -
पारानन्दसूत्रम्	- त्रिविक्रमतीर्थ
पुरश्चरणदीपिका	- काशीनाथ भट्ट

पुरश्चरणार्णव	- प्रतापसिंह शाह नेपालेश्वर
प्रपंचसार	- आद्य शकराचार्य
-प्राणतोषिणी	-
-प्रपंचसारसंग्रह	-
बृहद्रत्नजाल	
(कौतूहलभाण्डागार)	
बृहत् तंत्रकोष	-
बृहत् सावरतंत्रम्	- सदाशिव
-व्याख्या	-
भुवनेश्वरीनित्यार्चनम्	-
भुवनेश्वरीरहस्यम्	-
भैरवी-पद्मावतीकल्प	-
-व्याख्या	-
भैरवीचक्रम्	-
भैरवोपदेश	-
मन्त्रमहार्णव	-
मंत्रमहोदधि	- महीधर
-नौका	-
-पदार्थादर्श	- काशीनाथ
-मंत्रवल्ली	- गगाधर
मंत्रयोग संहिता	
-व्याख्या	
मंत्ररत्नमंजूषा	- त्रिविक्रमभट्टारक
महात्रिपुरसुन्दरीपूजाकल्प	-
-व्याख्या	
महाजयप्रकाश	
महामृत्युंजय विधिप्रकाश	-
मातृकाचक्रविवेक	- स्वतत्रानन्दतीर्थ
-व्याख्या	
मातृकाभेदतंत्रम्	
मुद्राविचारप्रकरणम्	
मेरुतंत्रम्	
मोहिनीतन्त्रम्	
योगिनीतन्त्रम्	
-दीपिका	- अमृतानन्द
रत्नगोत्रविभाग (महायाततंत्रम्)	-
रामार्चनचन्द्रिका	
लक्ष्मीतंत्रम्	
वशीकरणतंत्रम् आदिकामरत्नम्	
वामकेश्वरीमतम्	
-विवरण	
वरिवस्यारहस्यम्	- भास्करराय मखी
-प्रकाश	

बालास्तव मंजरी	
वैजयन्तीमतम्	
(वैदिक) बगलामुखी-	-
पूजापद्धति	
शक्तिसंगमतंत्रम्	-
शतचण्डीविधानम्	
शतरत्नसंग्रहः	- उमापति शिवाचार्य
-व्याख्या	
शाक्तप्रमोद	
शाक्तानन्दतरङ्गिणी	- ब्रह्मानन्दगिरी
-व्याख्या	
शारदातिलकम्	- लक्ष्मणदेशिकेन्द्र
-पदार्थादर्श	- राघवभट्ट
शिवपंचाक्षरीभाष्यम्	- पद्मपादाचार्य
-सुबोधिनी	- हरिनाथ दत्त
शेषसमुच्चयः	
-विमर्शिनी	- शंकराचार्य
श्यामारहस्यम्	- पूर्णानन्दगिरि
श्यामारहस्यतंत्रम्	
श्यामासपर्यापद्धति	- श्यामानन्द
-वासना	
श्रीगुरुतंत्रम	
(श्री) चण्डिकोपास्तिदीपिका	-
-अर्थप्रकाश	
श्रीतत्त्वचिन्तामणि	
-व्याख्या	
श्रीस्तवरत्ननिधि	- सेग्रा पुरुषोत्तमदास
श्रीतत्त्वनिधिः	- मैसूरनरेश
श्रीभक्तिगीता	
श्रीविद्याखड्गमाला	
श्रीविद्यानित्यार्चनम्	
श्रीविद्यामंत्रभाष्यम्	

-त्रिकाण्डसमर्थाविबोधिनी-	
श्रीविद्यारत्नसूत्राणि	
-दीपिका	
श्रीविद्यार्णवतंत्रम्	
राधातंत्रम्	
सर्वोल्लासतंत्रम्	
सात्वततंत्रम्	
साधनमाला	- विनयतोष भट्टाचार्य
श्रीगुरुतंत्रम्	
कालिकासहस्रनामानि	-
गायत्रीरहस्यम्	
जपसूत्रम्	
तंत्रसंग्रह	- सक गोपीनाथ कविराज
लुप्तागमसंग्रहः	
विज्ञानभैरवः	-
ज्ञानार्णवतंत्रम्	-
कुलार्णवतंत्रम्	
साधनरहस्यम्	
साम्राज्यलक्ष्मीपीठिका	
सेकोद्देशः	
-व्याख्या	
हंसविलासः	-
हनुमदुपासना	
हनुमत्पंचागम्	
भुवनेश्वरी महास्तोत्रम्	
-प्रबोधिनी	- पृथ्वीधराचार्य
मंत्रकौमुदी	
छिन्नमस्तानित्यार्चनम्	
गायत्रीतत्त्वविमर्श	-
परातंत्रम्	- चन्द्रशयशेरजग
रेणुकातंत्रम्	
गोरक्षसंहिता	

मीमांसावाङ्मय

पूर्वमीमांसादर्शन

मीमांसादर्शनम् (सूत्राणि, द्वादशलक्षणी)	- महर्षि जैमिनि
शाबरभाष्यम्	- शबरस्वामी
बृहती (शाबरभाष्य व्याख्या)	- प्रभाकर मिश्र
ऋजुविमला (बृहतीव्याख्या)	- शालिकनाथ
जैमिनीय सूत्रवृत्तिः	- उपवर्ष
न्यायमालाविस्तरः (जैमिनीय सूत्रवृत्तिः)	- सोमेश्वर
जैमिनीय सूत्रवृत्तिः	- पार्थसारथि मिश्र
जैमिनीय न्यायमालाविस्तरः	- माधवाचार्य
मीमांसानयविवेक (जै.सू.वृ.)	- भवनाथ
भाष्यदीपिका (जै.सू.वृ.)	- खण्डदेव
-प्रश्नावली	- शम्भुभट्ट
सेश्वरमीमांसा (जै.सू.वृ.)	- वेदान्तदेशिक
शांबरभाष्यवार्तिकम्	- वार्तिककार
श्लोकवार्तिकम्	- कुमारिलभट्ट
न्यायरत्नाकर (श्लोकवार्तिक व्याख्या)	- पार्थसारथि मिश्र
काशिका (-''-)	- सुचरित मिश्र
तंत्रवार्तिकम्	- कुमारलिभट्ट
न्यायरत्नमाला (तंत्रवार्तिक व्याख्या	- पार्थसारथि मिश्र -
(तंत्रवार्तिक व्याख्या)	- मण्डनमिश्र
न्यायसुधा (-'')	- सोमेश्वर
तंत्रवार्तिकव्याख्या	- कमलाकर
-''-	- कवीन्द्र
-''-	- पालभट्ट
तंत्ररत्नम्	- पार्थसारथि मिश्र
टुप्टीका	- कुमारिलभट्ट
शास्त्रदीपिका	- पार्थसारथि
-सिद्धान्तचन्द्रिका	- रामकृष्ण
-व्याख्या	- नारायण
-कर्पूरवार्तिकम्	- सोमेश्वर
-मयूखमालिका	- सोमनाथ
-आलोकव्याख्या	- कमलाकर
-प्रभा	- बालभट्ट
शास्त्रदीपिकाप्रकाशः (शास्त्रदीपिका व्याख्या)	- शंकरभट्ट
भाट्टदिनकर (शास्त्रदीपिका व्याख्या)	- भट्ट दिनकर
विधिविवेक	- मण्डनमिश्र
न्यायकणिका (विधिविवेकव्याख्या)	- वाचस्पति मिश्र
विधिरसायनम्	- अप्पय्य दीक्षित
-सुखोपयोजिनी	-
मीमांसानुक्रमणिका	- मण्डनमिश्र
-मीमांसामण्डन	- गगानाथ झा
अधिकरण कौमुदी	- देवनाथ ठक्कुर
अध्वरमीमांसा कुतूहलवृत्ति (जै.सू.वृ.)	- वासुदेव दीक्षित
कल्पकलिता (शावरभाष्य व्याख्या)	
कर्ममीमांसादर्शन	- भारद्वाज
-भाष्य	
तौतातितमततिलकम्	- भवदेव
न्यायबिन्दु	- भट्ट बैद्यनाथ (बालंभट्ट)
पूर्वमीमांसाधिकरण कौमुदी	- रामकृष्ण भट्टाचार्य
प्रकरणपंचिका	- नंदीश्वर
प्रमाणलक्षणम्	- सर्वज्ञात्म महामुनि
मीमांसाकौस्तुभ	- खण्डदेव
वाक्यार्थरत्नम्	-
-सुवर्णमुद्रिकाव्याख्या	- अहोबलसुरि
मीमांसान्यायप्रकाशः	- आपदेव
-सारविवेचिनी	- चित्रस्वामीशास्त्री
-कृष्णनाथी	- कृष्णकान्त
-व्याख्या	- वासुदेवशास्त्री अभ्यकर
विधिरसायनदूषणम्	- शकरभट्ट
प्रभाकरविजयः	- नदीश्वर
अंशतत्त्वनिरुक्ति	- मुरारिमिश्र
नीतितत्त्वाविर्भावः	- चिदानन्द पण्डित
जैमिनीयसूत्रार्थसंग्रह	- ऋषिपुत्र परमेश्वर
मीमांसाबालप्रकाश	- शंकर भट्ट
सुबोधिनी	- -''-
न्यायबिन्दुः (जैमिनीय सूत्रवृत्ति)	- बालम्भट्ट
भाट्टचिन्तामणि	- गागाभट्ट
भाट्टसंग्रह	- राघवानन्द
मीमांसापरिभाषा	- कृष्णयज्वा
प्रकरण-पंचिका	- शालिकनाथ

मीमांसान्यायवृत्ति	- अनन्तदेव
अर्थसंग्रह	- लौगाक्षिभास्कर
-व्याख्या	- अर्जुनमिश्र
-व्याख्या	- शिवयोगी
-व्याख्या	-
भाट्टभाषा-प्रकाशिका	- नारायण
भाट्टभाषाप्रकाश:	- नारायण
जैमिनीय सूत्रवृत्ति	- हरि
-''-	- भर्तृमित्र
-''-	- भवदास
-''-	- प्रभाकर
-''-	- वाचस्पति मिश्र
-''-	- वेंकटाचार्य
-''-**प्रकाशिका**	- रामकृष्ण
-''-	- वल्लभाचार्य
-''-**कुसुमांजलि**	- गागाभट्ट
-''-	- श्रीनिवासाध्वरी
-''-**दीधिति:**	- राघवानन्द
-''-**सुबोधिनी**	- दामोदरभट्ट
-''-	- करविन्दस्वामी
-''-**ज्योतिष्प्रदीपिका**	- लक्ष्मणसूरि
-''-**नयोद्योत**	- लौगाक्षिभास्कर
-''-**विद्वन्मनोहरा**	- नारायणभट्ट
-''-	- महादेव तीर्थ
-''-	- नागेश
-''-**सुबोधिनी**	- नीलकण्ठ दैवज्ञ

परिशिष्ट - वेदान्त दर्शन (अद्वैत)

ब्रह्मसूत्राणि	- वेदव्यास
ब्रह्मसूत्रवृत्ति-मिताक्षरा	- अन्नम्भट्ट
ब्रह्मसूत्रवृत्तिः दीपिका	- शंकरानन्द
ब्रह्मसूत्रवृत्ति अद्वैतामृतवर्षिणी	- सदाशिवेन्द्र सरस्वती
ब्रह्मसूत्रवृत्ति-ब्रह्मामृतवर्षिणी	- रामानन्द सरस्वती
ब्रह्मसूत्रतात्पर्यविवरण	- भैरवतिलक
शारीरकमीमांसाभाष्यम्	- आद्य शकराचार्य
(भाष्य) तात्पर्यसंग्रह	- रामचन्द्रतीर्थ
(भाष्यव्याख्यान)	
भाष्यवार्तिकम् (भाष्यव्याख्यान	- नारायण सरस्वती
वेदान्तवचनभूषणम् ('')	- स्वयप्रकाशानद सरस्वती
शांकरवाद भूषणम् ('')	- रघुनाथसूरि पर्वते
ब्रह्मविद्याभरणम् ('')	- अद्वैतानन्द सरस्वती
न्यायनिर्णयः ('')	- आनन्दगिरी
भाष्यव्याख्यानम् ('')	- विश्वदेव
-''- ('')	- गोपालानन्द
भामती ('')	- वाचस्पति मिश्र
रत्नप्रभा (भामतीव्या.)	- गोविन्दानन्द या रामानन्द
पूर्णानन्दी (रत्नप्रभाव्या.)	- पूर्णप्रकाशानन्द
रत्नप्रभाटिप्पणम्	- केशवानन्दस्वामी
कल्पतरु (भामतीव्या.)	- अमलानन्द सरस्वती
परिमल (कल्पतरु व्या.)	- अप्पय्य दीक्षित
आभोग ('')	- लक्ष्मीनृसिह
पंचपादिका (शाङ्करभाष्य	- पद्मपादाचार्य
-व्या.) व्याख्या	- आनन्दपूर्ण
-व्याख्या	- विद्यासागर
पददीपिका (पञ्चपादिकाव्या.)	- धर्मराजाध्वरीन्द्र
पंचपादिका विवरणम्	- प्रकाशानन्दमुनि
-व्याख्या	- कृष्णभट
-विवरणोपन्यास	- रामानन्द सरस्वती
विवरणभाव प्रकाशिका	- नृसिह मुनि
पंचपादिकादर्पणम्	- अमलानन्द
विवरणप्रमेयसंग्रह	- विद्यारण्यस्वामी
तत्त्वदीपनम् (विवरण-विवरणम्	- अखण्डानन्द सरस्वती
वेदान्तपरिभाषा	- धर्मराजाध्वरीन्द्र
-शिखामणि	-
-मणिप्रभा	
-अर्थदीपिका	- शिवदत्त
सिध्दान्तलेशसंग्रह	- अप्पय्य दीक्षित
-बिन्दुशीकर	- धर्मय्य दीक्षित
-कृष्णालंकार	- अच्युतकृष्णानन्दातीर्थ
संक्षेपशारीरकम्	- सर्वज्ञात्ममुनि
-व्याख्या	- रामचन्द्र
संक्षेपशारीरिक सारसंग्रहदीपिका	- मधुसूदन सरस्वती
--''--तत्त्वबोधिनी	- नृसिहाश्रम
--''-अन्वयार्थप्रकाशिका	- रामतीर्थ
सिद्धान्तबिन्दु	- मधुसूदन सरस्वती
-तत्त्वविवेक	- पूर्णानन्दतीर्थ
-बिन्दुसन्दीपनम्	- पुरुषोत्तम सरस्वती
-व्याख्या	- वासुदवेशास्त्री अभ्यकर
अद्वैतसिद्धि	- मधुसूदन सरस्वती
लघुबृहत् चन्द्रिका	- ब्रह्मानन्द सरस्वती
(अद्वैतसिद्धिव्या. गौडब्रह्मानन्दी	
विठ्ठलेशी (चन्द्रिकाव्याख्यान)	- विठ्ठलेशोपाध्याय
अद्वैतसिद्धि सिद्धान्तसार	- सदानन्द व्यास
-बालबोधिनी	- योगीन्द्रानन्द बागची
प्रत्यक्तत्त्व प्रदीपिका (चित्सुखी	- चित्सुखाचार्य
-नयनप्रसादिनी	- प्रत्यक्स्वरूप भगवत्पाद
अद्वैतरत्नरक्षणम्	- मधुसुदन सरस्वती
वेदान्त कल्पलतिका	- मधुसूदन सरस्वती
प्रस्थानभेद	- मधुसूदन सरस्वती
अद्वैतानुभूति	- गोविन्द भगवत्पाद
आत्मबोध	- शकराचार्य
भावप्रकाशिका	- बोधेन्द्र
बालबोधिनी	- नारायणतीर्थ
अपरोक्षानुभव	- शकराचार्य
अनुभव दीपिका	- चण्डेश्वर
व्याख्या	- नित्यानद
वाक्यवृत्ति	- शकराचार्य
प्रकाशिका	- विश्वेश्वर
उपदेशसाहस्त्री	- शकराचार्य
व्याख्या	- रामतीर्थ
-''-	- आनन्दराम
नैष्कर्म्यसिद्धि	- सुरेश्वराचार्य
चन्द्रिका	- ज्ञानोत्तम
संदेहापहारिणी	- सच्चिदानंद
न्यायमकरन्द	- आनन्दबोध
-व्याख्या	- चित्सुखाचार्य
खण्डनखण्डखाद्य	- श्रीहर्ष

-शांकरी	- शंकरमिश्र
-विद्यासागरी	-
-व्याख्या	- शंकरचैतन्य भारती
शाब्दनिर्णय	- प्रकाशात्ममुनि
तत्त्वदीपनम्	- स्वयप्रकाशयति
माण्डूक्यकारिका	- गौडपादाचार्य
-मिताक्षरा	- स्वयप्रकाशानन्द
-दीपिका	- शंकरानन्द
बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकम्	- सुरेश्वराचार्य
बृहदारण्यक वार्तिकसार:	- विद्यारण्यास्वामी
-लघुसंग्रह	- महेश्वरतीर्थ
न्यायमुक्तावली	- अप्पय्य दीक्षित
अद्वैत-मकरन्द	- लक्ष्मीधर
-व्याख्या	- पूर्णानन्दतीर्थ
जीवन्मुक्तिविवेक	- विद्यारण्य
पंचदशी	- -''-
-व्याख्या	- रामकृष्ण
-व्याख्या	- अच्युतराय मोडक
-व्याख्या	- सदानन्द
भेदधिक्कार	- नृसिहाश्रम
-(सत्क्रिया)	- नारायणाश्रम
-''-	- नृसिह दीक्षित
अद्वैत-चन्द्रिका	- -''-
अद्वैत-दीपिका	- नृसिहाश्रम
-विवरणम्	- नारायणाश्रम
-व्याख्या	- सदानन्द
अद्वैतब्रह्मसिद्धि:	- -''-
जीवन्मुक्तिप्रक्रिया	- -''-
वेदान्तसार:	- -''-
-सुबोधिनी	- दयाशंकर
-विद्वन्मनोरंजिनी	- रामतीर्थ
-व्याख्या	- रामकृष्णाध्वरीन्द्र नृसिहसरस्वती
-मणिप्रभा	- अमरदास
-अर्थदीपिका	- शिवदत्त
-व्याख्या	- धनपति
वेदान्तमुक्तावली	- प्रकाशानन्द
-व्याख्या	- ब्रह्मानन्दसरस्वती
-व्याख्या	- रामसुब्रह्मण्य
अद्वैतप्रकाश	- रामचंद्र
अद्वैतरहस्यम्	- रामचंद्र
अद्वैतनिर्णयसंग्रह	- रामचंद्र
वेदान्तकौमुदी	- अद्वयारण्यमुनि
अद्वैतचिन्तामणि	- रंगोजिभट्ट

-अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ	-
-व्याख्या	- शुकाचार्य
वेदान्ततत्त्वसार	- विद्येन्द्र सरस्वती
अभेदाखण्डचन्द्रमा	- आत्मदेव पंचानन
अद्वैतामोद	- वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर
अद्वैतचन्द्रिका	- सुदर्शनाचार्य
वैयासिक न्यायमाला	- विद्यारण्य
--''--	- भारतीतीर्थ
अद्वैतरत्नाकर	- अमरदास
-व्याख्या	-
अद्वैतरसमंजरी	- सदाशिवब्रह्मेन्द्र
-लघुविवरण	-
अद्वैतवेदान्तरक्षणम्	- योगीन्द्रानन्दगिरि
-व्याख्या	- वासुदेव शास्त्री
अध्यात्मविद्योपदेशविधि	- शंकराचार्य
अनुभवानन्दलहरी	- केशवानन्दयति
आत्मानात्मविवेक	- शंकराचार्य
-विमला	- जगदीशचन्द्र मिश्र
आत्मोल्लास	-
उपक्रम-पराक्रम	- अप्पय्य दीक्षित
तत्त्वबिन्दु	- वाचस्पति
तत्त्वबोध	- शंकराचार्य
त्रिपुरारहस्यम् (ज्ञानखण्ड)	-
न्यायचन्द्रिका	- आनन्दपूर्ण मुनीन्द्र
-न्यायप्रकाशिका	- स्वरूपानन्द मुनीन्द्र
न्यायभास्करखण्डनम्	- राम सुब्रह्मण्यशास्त्री
मध्वचन्द्रिकाखण्डनम्	- --''--
न्यायरत्नदीपावलि	- आनन्दानुभव
-वेदान्तविवेक	- आनन्दज्ञान
पंचपादिकाप्रस्थानम्	- सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती
पंचीकरणम् (भाष्यम्)	- शंकराचार्य
-वार्तिक वार्तिकाभरण	- सुरेश्वराचार्य
-विवरण	- रामतीर्थ
-तत्त्वचन्द्रिका	- सायणाचार्य
पुरुषार्थसुधानिधि	-
प्रज्ञानानन्दप्रकाश	-
-भावार्थकौमुदी	-
पुरुषार्थचतुष्टयम्	-
परमतत्त्वमीमांसा (मति प्रशिक्षण शास्त्रम्)	- श्रीकृष्ण जोशी
-भाष्य प्रणवकल्पप्रकाश	- गंगाधरेन्द्र सरस्वती
प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि	- सदानन्द
-व्याख्या	-
प्रमेय रत्नावली	- बलदेव विद्याभूषण

बोधैक्य सिद्धि	- अच्युतराय
-अद्वैतात्मप्रबोध	-
बोधसार	- नरहरि
-व्याख्या	- दिवाकर
ब्रह्मसिद्धि	- मण्डन मिश्र
-भावशुद्धि	- आनन्दपूर्ण मुनि
-अभिप्राय प्रकाशिका	- चित्सुख
ब्रह्मसूत्रभाष्यार्थरत्नमाला	- सुब्रह्मण्य
मध्वमुखमर्दनम्	- अप्पय्य दीक्षित
ब्रह्मामृतम्	- जयकृष्ण ब्रह्मतीर्थ
महावाक्यविवरणम्	-
लघुयोगवासिष्ठ	- आत्मसुख
-वासिष्ठचन्द्रिका	-
लघुवाक्यवृत्ति	- शंकराचार्य
-व्याख्या	- विश्वेश्वर
वेदान्तडिण्डिम	- नृसिंहसरस्वती
-भावबोधिनी	-
वाक्यसुधा	- शकराचार्य
शंकरदिग्विजय	- विद्यारण्य
शंकरात् प्रागद्वैतवाद	- मुरलीधर पाण्डेय
शांकर पादभूषणम्	- रघुनाथ सूरि
शुद्ध शांकरप्रक्रिया भास्कर	- सच्चिदानन्द
श्रुतिसारसमुद्धरणम्	- तोटकाचार्य
सनत्सुजातीय शांकर भाष्यम्	- शकराचार्य
-नीलकण्ठी	- नीलकण्ठ
हरिहराद्वैतभूषणम्	- बोधेन्द्र सरस्वती

अद्वैतेतर वेदान्त विशिष्टाद्वैत वेदान्त
(रामानुज- रामानन्द)

अधिकरण-सारावली - वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक
-अधिकरणचिन्तामणि - वरदगुरु
-सारार्थरत्नप्रभा - वीरराघवाचार्य
अन्तर्व्याप्तिविचारो - वेंकटाचार्य
बहिर्व्याप्तिविचारश्च
अर्थपंचकम्
अष्टश्लोकी (वैष्णवदासीया) - पराशरभट्टार्य
-सौम्योपयन्तृ व्याख्या - वैष्णवदास
आगमप्रामाण्यम् - यामुन मुनि
-व्याख्या -
ऊर्ध्वपुण्ड्र धारणविधि -
ईशावास्योपनिषद्भाष्य - वीरराघवाचार्य
-आचार्य भाष्यतात्पर्य -
कार्याधिकरणतत्त्वम् - कस्तूरी रंगाचार्य
कार्याधिकरणवाद - टी ए वी रंगाचार्य
कुदृष्टिध्वान्तमार्तण्ड - रंगाचार्यस्वामी
गद्यत्रयम् - रामानुज मुनि
चक्रधारण प्रमाणसंग्रह -
तत्त्वटीका (श्री भाष्यव्याख्या) - वेदान्तदेशिक
तत्त्वनिर्णय - वरदाचार्य
तत्त्वत्रयम् - लोकाचार्यस्वामी
तत्त्वमुक्ताकलाप - डी श्रीनिवासाचार्य
-सर्वार्थसिद्धि -
-आनन्ददायिनी टिप्पणी - नृसिंहदेव
तत्त्वशेखर -
तत्त्वसार - वेंकटाचार्य
-रत्नसारिणी -
तप्तमुद्राधारण-मीमांसा -
दूर्वाविधूननम् - रुद्रभट्ट
द्वारिकापत्तनम् - बीनाबाई
गंगावाक्यावली - विश्वासदेवी
न्यायकुलिशम् - आत्रेय रामानुजाचार्य

न्यायपरिशुद्धि - वेदान्ताचार्य
-व्याख्या - वीरराघवाचार्य
न्यायतत्त्वप्रकाशिका
-रत्नपेटिका -
-रंगरामानुजभाष्य -
पचरहस्यम् - पराशर भट्टार्य

परमार्थप्रकाशिका - टी वी राघवाचार्य
(अद्वैतमोदगव्य परिशीलनरूपा)
पाराशर्य-विजय - रामानुजाचार्य
प्रतिमागुणदर्पणम् -
परमार्थभूषणम्
(शतदूषणीमण्डनम्,
शतभूषण्यादि
खण्डनस्वरूपम्) - वीरराघवाचार्य
प्रपन्नपारिजात -
-व्याख्या -
प्रपन्नामृतम् - अनन्ताचार्य
भस्मधारणविचार - अनन्ताचार्य स्वामी
श्रीभाष्यप्रकाशिका - श्रीनिवासाचार्य
श्रीभाष्यवार्तिकम् -
भेदवाद -
महामोहविद्रावणम् -
सेश्वरमीमांसा - वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक
मीमांसापादुका --"--
मीमांसा पादुकापरित्राणम् - कुमार वरदाचार्य
-सूक्ष्मार्थव्याख्या - वीर राघवाचार्य
-सत्पथसंचार - वीर राघवाचार्य
न्यायसिद्धांजनम् - वेदान्तदेशिक
-रत्नपेटिका -
-रंगरामानुजभाष्य -
मुमुक्षुरहस्यम् - लोकाचार्य
-व्याख्या - अनन्ताचार्य
यतिराजवैभवम् - आन्ध्र पूर्णाचार्य
यतीन्द्र मतदीपिका - श्रीनिवासाचार्य
-प्रकाश - वासुदेव शास्त्री
वडवानल-प्रथमज्वाला - अनन्ताचार्य
वाल्मीकिभावदीप -
विलक्षणमोक्षधिकार -
विशिष्टाद्वैतमतविजयवाद -
विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला - सुदर्शनाचार्य
रामानुज वेदान्तसार -
-अधिकरण सारावली -
विष्णुतत्त्वदीपिका - तिमणणाचार्य
रक्षाग्रन्था -
(निक्षेपरक्षा, सच्चारित्ररक्षा,

पांचरात्ररक्षा, गीतार्थ-संग्रहरक्षा)	- वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक
वेदार्थ-संग्रह	- रामानुजाचार्य
-व्याख्या	-
---''--	-
वेदान्त-कारिकावली	- वेंकटाचार्य
-व्याख्या	- कृष्णमाचार्य
वेदान्तदीप (ब्रह्मसूत्रव्याख्या)	- भगवद् रामानुजाचार्य
-सुबोधिनी	-
-श्री	- राघवाचार्य
वेदान्तरहस्यम्	-
वेदान्तवादावली	-
-तात्पर्यदीपिका	-
वैष्णवधर्म मीमांसा	-
वैष्णवमताब्ज भास्कर	-
वैष्णवव्रतोत्सवनिर्णय	-
व्यामोहनिद्रावरणम्	-
व्याससिद्धान्त मार्तण्ड	-
शतदूषणी	- वेंकटनाथ वेदान्ताचार्य
-व्याख्या	-
-चण्डमारुत	-
शारीरकमीमासा भाष्यम् (श्रीभाष्यम्)	- भगावद्रामानुज्ञाचार्य
-समासोक्ति	-
-श्रुतिप्रकाशिका	- सुदर्शन सूरि
-तत्त्वप्रकाशिका	-
-विवृत्ति	-
श्रीवचनभूषण मीमांसा भाष्यम्	-
श्रीवचनभूषणरहस्यम्	-
-व्याख्या	- लोकाचार्य
वादिभीकर वैभवम् (आचार्यचर्यामृतम्)	-
श्रीशारीरकाधिकरणमाला	- अनन्तदास
-प्रकाश	-
सिद्धित्रयम्	- यामुनाचार्य
-गूढप्रकाश	- वीरराघवाचार्य
गोदाम्बाव्रतानुष्ठानम्	- श्रीकृष्णपादसूरि
-मंजरी	-
ब्रह्मसूत्रीय-वेदान्तवृत्ति	-
सुदर्शनमीमांसा	-
मयूखसंहिता	-
मानरत्नावली	-
श्रीसम्प्रदायेतिहस	-
भगवद्गुणदर्पणम् (रामानन्द संप्रदाय)	- मधुराचार्य
-व्याख्या	- रामप्रपन्नाचार्य
सिद्धान्तदीपक (रामानन्द संप्रदाय)	- अनन्ताचार्य
-किरणावलीवृत्ति	- रामप्रपन्नाचार्य
अध्यासध्वंसलेश (रामानन्द संप्रदाय)	- शीलदेवाचार्य
-तात्पर्यचन्द्रिका	-
श्रौतप्रमेय चन्द्रिका	- श्रियानन्दाचार्य
-प्रभा	-
श्रौतार्थसंग्रह (रामानंद स.)	- अनुभवानन्दाचार्य
षड्भास्करसमुच्चय खण्डनोद्धार	- त्रिदण्डीस्वामी योगिराज
-दीपिका	-
सिद्धिवैतथ्यम्	- रामकृष्ण प्रपन्नाचार्य
बौधायन-मतादर्श (रामानन्द सं)	- पूर्णानन्दाचार्य
अद्वैतवादखण्डनम्	-
नय द्युमणि	- मेघानन्दसूरि
ईशाद्यष्टोपनिषदानन्द भाष्यम्	- श्रीरामानन्दाचार्य
छान्दोग्यानन्द भाष्यम्	-
बृहदारण्यकानन्दभाष्यम्	-
वेदरहस्यम्	- सम्राहक बोधायन पुरुषोत्तमाचार्य
-रहस्यमार्तण्डभाष्य	-
-मार्तण्डभाष्यदीपिका	- रामप्रपन्नाचार्य

द्वैतवादी माध्ववेदान्त ग्रंथ

ब्रह्मसूत्र पूर्णप्रज्ञ भाष्यम्	- मध्वाचार्य
-व्याख्या	- जयतीर्थ
-''	- व्यासतीर्थ
-''	- राघवेन्द्रतीर्थ
वादावली	- जयतीर्थ
सत्तत्त्वरत्नमाला	- आनन्दतीर्थ
सत्तत्त्वरत्नावली	-
सूत्रार्थामृतलहरी	- कृष्णावधूत पण्डित
गीतातात्पर्यनिर्णय	- रामप्रसाद स्वामी
गीता-माध्वभाष्यम्	- मध्वाचार्य
(सर्व मूलम्- I)	
ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्	-
अणुव्याख्यानम्	-
प्रमाणलक्षण सार	-
वेदभाष्यम्	-
देशापनिषद्भाष्यम्	-
(सर्वमूलम्- II)	
गीतातात्पर्यनिणर्य	-
(सर्वमूलम्- III)	
न्यायविवरणम्	-
द्वादशस्तोत्रम्	-
कृष्णामृतमहार्णव	-
तंत्रसारसंग्रह	-
सदाचारस्मृति	-
भागवततात्पर्यनिर्णय	-
महाभारततात्पर्यनिर्णय	
(सर्वमूलम्- IV)	
षट्प्रश्नटीका	- मंकालधर्माचार्य
-भाष्य	-
-व्याख्या	-
ब्रह्मसूत्र-भास्करभाष्यम्	-

शुद्धाद्वैत (वल्लभ) वेदान्तग्रन्था :

अधिकरणसंग्रह	- निर्भयराम भट्ट
अन्त:करण प्रबोध	-
-पंचटीकोपेत	- गोकुलनाथ, रघुनाथ, हरिराम, व्रजराज, पुरुषोत्तम
अवतारवादावली	- पुरुषोत्तम गोस्वामी
-विवृति	-
उत्सवप्रसाद (संवत्सरोत्सव कालनिर्णय)	-
कामाख्यदोष विवरणम्	-
पुष्टिमार्गलक्षणानि	- माधवशर्मा
कृष्णाश्रयस्तोत्रम्	-
-व्याख्याषट्कोपेतम्	- रघुनाथ, कल्याणराय, गोविन्दराज, द्वारिकेश्वर, व्रजराजादि
गायत्रीमंत्रभाष्यम्	- वल्लभाचार्य
-व्याख्या	- पुरुषोत्तम, इन्दिरेश
गीतातात्पर्यम्	-
गूढार्थदीपिका	-
(रासपंचाध्यायी भ्रमरगीतव्याख्या)	- धनपतिसूरि
गोविन्दलीलामृतम्	- कृष्णदास
चतु:श्लोकी षट्टीकोपेता	- वल्लभाचार्य, व्रजराज, श्रीकृष्णदास, द्वारकेश, कल्याणराय, पुरुषोत्तम
तत्त्वार्थदीप	- वल्लभाचार्य
-आवरण भंगव्याख्या	-
-प्रकाश	-
-विद्या वैजयंती	- वल्लभ दीक्षित
त्रिविधनामावली	-
-विवृति	-
द्रव्यशुद्धि (सदाचार प्रवर्तक ग्रंथ)	- गोस्वामी पुरुषोत्तम
नवरत्नम्	- वल्लभाचार्य
-विवृति	- विट्ठलेश
नामरत्नस्तोत्रम् (विट्ठलेशाष्टोत्तरशत नामानि)	- रघुनाथ
-व्याख्या चतुष्टयम्	- देवकीनन्दन, गोपेशादि
निरोधलक्षणम्	-
-बहुविवरणानि	- गोपेशादि
वल्लभवंशवृक्ष	-
निर्णयार्णव (विविध शंका निवर्तक)	- बालकृष्ण भट्ट
न्यायादेश	-
करावलम्बनम्	- पुरुषोत्तम गोस्वामी
-विवरण	-
पुरुषोत्तमनामसहस्रम्	- रघुनाथ
-नामचन्द्रिका	-
पुष्टिप्रवाहमर्यादा	- बलभद्रभट्ट
-विवरणचतुष्टय	-
पुष्टिमार्गप्रमाणनिर्णय	- अनिरुद्ध गोस्वामी
पुष्टिमार्गीय परम्परानिर्णय	-
प्रमेयरत्नार्णव	- बालकृष्ण भट्ट
प्रस्थानरत्नाकर	- गोस्वामी पुरुषोत्तम
प्राभंजन : (शुद्धाद्वैतमण्डन पर सहस्राक्षखण्डनपरश्च)	- विठ्ठलनाथ गोस्वामी
-मारुतशक्तिव्याख्या	- गोवर्धनशर्मा
ब्रह्मवाद	- गोस्वामी हरिराय
-विवरण	- गोपालकृष्ण भट्ट
ब्रह्मवाद	- गोस्वामी व्रजनाथ
ब्रह्मसूत्र अणुभाष्यम्	- वल्लभाचार्य
-भाष्यप्रदीप	- इच्छाराम भट्ट
-भाष्यप्रकाश	- पुरुषोत्तम
-भाष्यप्रकाशरश्मि	- गोपेश्वर
-अणुव्याख्यानपांचकम्	- मुरलीधर प्रभृति
-बालबोधिनी	- श्रीधर पाठक
ब्रह्मसूत्रवृत्ति-मरीचिका	- व्रजनाथ भट्ट
-भावप्रकाशिका	- गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्र
भक्तिमार्तण्ड	- गोस्वामी गोपेश्वर
भक्तिहंस	- गोस्वामी विठ्ठलनाथ
-भक्तितरङ्गिणी	- रघुनाथ
-व्याख्या	- पुरुषोत्तम
भक्तिवर्धिनी	-
-चतुर्दशविवृति	-
भागवतव्याख्या सुबोधिनी	- वल्लभाचार्य
-टिप्पणी, प्रकाश	- विठ्ठलनाथ, पुरुषोत्तम
माधुर्यकादम्बिनी	- विश्वनाथ चक्रवर्ती
वल्लभाष्टकम्	-
-विवरणचतुष्टय	- गोकुलेशादि
वादावली	- गोस्वामी पुरुषोत्तमादि
विद्वन्मण्डनम्	- विठ्ठलनाथ दीक्षित

-सुवर्णसूत्र व्याख्या	- गो पुरुषोत्तम
रसव्याख्या	- जगन्नाथ सुधी
वेदान्तचिन्तामणि	- गोवर्धनशर्मा
वेदान्ताधिकरणमाला	- गो पुरुषोत्तम
शुद्धाद्वैत-सिद्धान्तसार	-
शुद्धाद्वैत-मार्तण्ड	- गो गिरीधर
-प्रकाश	- रामकृष्ण भट्ट
श्रृङ्गाररसमण्डनम्	- विठ्ठलेश
सत्सिद्धान्तमार्तण्ड	-
सम्प्रदायप्रदीप	-
सिद्धान्तमुक्तावली	-
-विवृति	
सिद्धान्तरहस्यम्	-
-एकादश विवरण	-
सिद्धान्तसिद्धापगा	- बलभद्र भट्ट
सुसिध्दान्तोत्तम	- गोणप्रियादासाचार्य
-स्वोपज्ञव्याख्या	-
संन्यासनिर्णय	-
सर्वोत्तमस्तोत्रम्	- वल्लभाचार्य
-विवृतिद्वय	-
भक्तिहेतुनिर्णय	-
-विवृति	- गो रघुनाथ
षोडशग्रन्था	- वल्लभाचार्य
संस्कृतकाव्ये भक्तिरसविवेचनम्	- कृष्णबिहारी मिश्र
पुष्टिमार्गीय स्तोत्ररत्नाकर (117 स्तोत्र)	-
त्रिविध-नामावली	-
-विवृति	-

निम्बार्क वेदान्त ग्रन्थ

वेदान्तपारिजात-सौरभम् (ब्रह्मसूत्रभाष्य)	- निम्बार्काचार्य
वेदान्तसिद्धान्तसंग्रह (श्रुति सिद्धान्त)	- वनमाली मिश्र
-सिद्धान्तजाह्नवी	
वेदान्तकारिकावली -(अध्यात्मसुधातरङ्गिणी)	- पुरुषोत्तमप्रसाद
अर्थपंचकनिर्णय	-
अध्यास (परपक्ष) गिरिवज्रम्	- अमोलकरामशास्त्री
क्रमदीपिका	- केशवभट्ट
-विवरण	- गोविन्दभट्ट
निम्बार्क व्रतनिर्णय	- धनीराम
श्रुत्यन्तकल्पवल्ली	- पुरुषोत्तमदास
श्रुत्यन्तसुरद्रुम	- --''--
श्रुतिसिद्धान्तमंजरी	- व्रजेश्वर प्रसाद
सिद्धान्तरत्नांजलि	- हरिलाल
स्वधर्मामृतसिन्धु	- रामनारायणशरण देवाचार्य
वैराग्यसुधासिन्धु	- राधिकादास
श्यामबिन्दुमहिमा	-
श्रीगोपाललहरी	- बजरंगदास
वेदान्तरत्नमंजूषा (दशश्लोकी व्याख्या)	- निम्बार्काचार्य
-सिद्धान्तजाह्नवी	- गोपालशास्त्री नेने
-व्याख्या (सेतु)	- पुरुषोत्तम
-व्याख्या (लघुमंजूषा)	- अनन्तराम
वेदान्ततत्त्वबोध	-
ब्रह्मसूत्रसिद्धान्त जाह्नवी	-
-सिद्धान्तसेतु व्याख्या	- सुन्दरभट्ट
वेदान्तकौस्तुभ (ब्रह्मसूत्रभाष्य)	- श्रीनिवासाचार्य
-प्रभावृत्ति	
वेदान्तकामधेनु	-
ब्रह्मसूत्रभाष्यम्	- भास्कराचार्य
प्रपन्नसुरतरुमंजरी	
-प्रपन्नकल्पवल्ली	
पंचकलानुष्ठानमीमांसा	- किशोरदास
लघुस्तवराजस्तोत्रम्	- श्रीनिवासाचार्य
-व्याख्या	-
निम्बार्कसहस्रनामस्तोत्रम्	-
राधाकटाक्षस्तोत्रम्	
मुकुन्दमहिम्नः स्तोत्रम्	
वेदान्ततत्त्वसुधा	- निम्बार्क

परिशिष्ट (ञ) काश्मीर शैवदर्शनग्रन्थ

अमरौघ-शासनम्	- गोरक्षनाथ
ईश्वरप्रत्यभिज्ञा	- उत्पलदेव
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी	- अभिनवगुप्त
-भास्करी	
उड्डामेश्वरतंत्रम्	
कामकलाविलास	- पुण्यानन्दाचार्य
-व्याख्या	-
जन्ममरणविचार	- वामदेव भट्ट
तंत्रवर्धनिका	- अभिनवगुप्त
तंत्रसार	- अभिनवगुप्त
-विवेक व्याख्या	- जयरथाचार्य
नेत्रतंत्रम्	
-उद्योतविवरण	- क्षेमराज
परमार्थसार	- अभिनवगुप्त
-विवृति	- योगराजाचार्य
परात्रिंशिका	
-विवृति	- अभिनवगुप्त
पूर्णताप्रत्याभिज्ञा	- रामेश्वर झा
प्रत्यभिज्ञाहृदयम्	- क्षेमराज
षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोहः	-
पराप्रवेशिका	
वातूलनाथ सूत्राणि	
-वृत्ति	- अनन्तशक्तिपाद
बोधपंचदशिका	- हरभट्ट शास्त्री
परमार्थचर्चा	
-विवृति	
महार्थमंजरी	- महेश्वरानन्द
-परिमल व्याख्या	-
-विज्ञानकौमुदी विवृति	- क्षेमराज शिवोपाध्याय
महानयप्रकाशः	- शितिकण्ठाचार्य

मालिनीविजयतंत्रम्	
मालिनीविजयवार्तिकम्	- अभिनव गुप्त
लल्लेश्वरी वाक्यानि	- भास्कराचार्य
नरेश्वर परीक्षा	
-प्रकाशव्याख्या	- रामकण्ठ
विज्ञानभैरवः	- क्षेमराज
-विवृति	- शिवोपाध्याय
शिवदृष्टिः	- सोमानन्दनाथ
-वृत्ति	- उत्पलदेव
शिवसूत्रम्	
शिवसूत्रवार्तिकम्	- वरदराज
शिवसूत्रवृत्ति	- कल्लटवृत्ति
स्पन्दकारिका	- भास्कर
-विवृति, व्याख्या	- रामकण्ठाचार्य
शिवसूत्रविमर्शिनी	- वसुगुप्त
-व्याख्या	- क्षेमराज
षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोहभावोपहार	
अनुत्तरप्रकाश	
सिद्धित्रयी	
(अजड प्रमातृसिद्धि, ईश्वरसिद्धि	
सम्बन्धसिद्धिश्च)	- उत्पलदेव
ईश्वरप्रत्याभिज्ञाकारिका वृत्तिः	-
स्तवचिन्तामणिः	- नारायणभट्ट
-विवृति	- क्षेमराज
स्पन्द (कारिका) निर्णय	- क्षेमराज
स्पन्दसन्दोहः	- क्षेमराज
स्वच्छन्दतंत्रम्	- क्षेमराज
वामकेश्वरी मतविवरणम्	-
गन्धर्वतंत्रम्	
श्रीविद्यार्णवतंत्रम्	

पाशुपत दर्शन ग्रन्थ

गणकारिका	
-रत्नव्याख्या	-
पाशुपतसूत्रम्	
पाशुपतसूत्रभाष्यम्	- कौण्डिन्य

वीरशैवदर्शन ग्रन्थ

क्रियासारः	- नीलकण्ठशिवाचार्य
दुर्वाददूरीकरणम्	- काशीनाथशास्त्री
नन्दिकेश्वरकारिका	
सूत्रविमर्शिनी	- नन्दिकेश्वर (प्रथम उपमन्यु मुनि)
प्रभुदेव वचनामृतम्	- म म.गोपीनाथ कविराज
भस्मनारायणोपनिषद्	
-शैवभाष्य	- चिद्घनशर्मा शिवाचार्य
लिङ्गधारणचन्द्रिका	- नन्दिकेश्वर
-शरद्व्याख्या	
वीरशैवरत्नम्	
वीरशैवानन्दचन्द्रिका	- निरजन परितोषाचार्य शिवयोगी
सिद्धान्तशिखामणिः	- शिवयोगी शिवाचार्य

परिशिष्ट - (ट) जैनवाङ्मय

(धर्मशास्त्र, आगम, स्तोत्र-पूजा, श्वेताम्बर वाङ्मय, दर्शन, काव्य)

जैन ग्रन्थाः धर्मशास्त्र-आगम

रत्नकरण्डक श्रावकाचारः	- आचार्य समन्तभद्र
तंत्रार्थसारः	- अमृतचन्द्रसूरि
पद्मनन्दि पचविंशातिका	- पद्मनन्दाचार्य
पुरुषार्थसिद्ध्युपायः	- अमृतचन्द्रसूरि
सर्वार्थसिद्धिः	- पूज्यपादस्वामी
योगसारः	- अमितगत्याचार्य
लाटीसंहिता	- कविवर राजमल्ल
सुधर्मध्यानप्रदीपः	- मुनिसुधर्मसागर
तत्त्वार्थसूत्रम्	- उमास्वामी
तत्त्वार्थसूत्रम्	- उमास्वामी
तत्त्वार्थसूत्रवृत्तिः	- श्रुतसागर
तत्त्वार्थसूत्रवृत्तिः	- भास्करानन्दी
तत्त्वार्थराजवार्तिकम्	- अकलक भट्ट
तत्त्वार्थवार्तिकभाष्यम्	- विद्यानन्द
तत्त्वार्थसारः	- अमृतचन्द्रसूरि
पंचाध्यायी	- राजमल्ल
अर्थप्रकाशिका	- उमास्वामी
शान्तिसुधासिन्धुः	- मुनि कुन्थुसागर
आत्मानुशासनम्	- गुणभद्रस्वामी
ज्ञानार्णवः	- शुभचन्द्राचार्य
सागारधर्मामृतम्	- आशाधर
धर्मपरीक्षा	- अमितगत्याचार्य
अमितगतिश्रावकाचार	- अमितगत्याचार्य
द्वादशानुप्रेक्षा	- सोमदेव सूरि
सारसमुच्चयः	- कुलभद्राचार्य
पूज्यपादश्रावकाचार	- पूज्यपादस्वामी
रत्नमाला	- शिवकोटि आचार्य
पंचसंग्रहः	- अमितगत्याचार्य
अनगारधर्मामृतम्	- आशाधर
समाधितंत्रम्	- पूज्यपादाचार्य
समयसार	- कुन्दकुन्दाचार्य
-व्याख्या	- कुन्दकुन्दाचार्य
पंचास्तिकायसमरसारः	- अमृतचन्द्रसूरि
कलशव्याख्या	- अमृतचन्द्रसूरि
समयसारकलशटीका	- राजमल्ल
तत्त्वार्थदीपिका	- उमास्वामी
तत्त्वानुशासनम्	- नागसेन
इष्टोपदेशः	
नीतिसारः	
मोक्षपंचाशिका	
श्रुतावतारः	
अध्यात्मतरंगिणी	
चारित्रसारः	- चामुण्डराय
अध्यात्मकमलमार्तण्ड	- राजमल्ल
अनित्यभावना	- पद्मनन्दी
श्रावकधर्मप्रदीपः	- आचार्य कुन्थुसागर
लघुज्ञानामृतसारः	- आचार्य कुन्थुसागर
श्रावकप्रतिक्रमणसार·	- आचार्य कुन्थुसागर
युक्त्यनुशासनम्	- स्वामी समन्तभद्र
विचारमतम्	- तारणतरणमण्डलाचार्य
तारणत्रिवेणी	- तारणतरणमण्डलाचार्य

जैनस्तोत्र-पूजा-ग्रंथाः

देवागमस्तोत्रम्	- समन्तभद्र
पात्रकेसरीस्तोत्रम्	- विद्यानन्दस्वामी
परमेष्ठीगुणस्तोत्रम्	
एकीभावस्तोत्रम्	- वादिराज सूरि
भक्तामरस्तोत्रम्	- मानतुंगाचार्य
श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्रम्	-
चतुर्विंशतिकास्तुतिः	- सुधर्मसागर
बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्	- समन्तभद्राचार्य
जिनशतकम्	- समन्तभद्राचार्य
जिनस्तोत्रसंग्रह (काव्यमाला 7 गुच्छ से)	
अजितशान्तिनाथस्तवनम्	
प्रतिष्ठासारोद्धारः	- आशाधर
प्रतिष्ठातिलक	- नेमिचन्द्रदेव
सिद्धचक्रमण्डलविधानम्	- शुभचन्द्र
स्तुतिसंग्रहः	
-सावचूरिकः	
सिद्धसेनीयद्वाविंशिका	- सिद्धसेन दिवाकर
लघुचैत्यवंदनचतुर्विंशतिका	- विमलगणि
निर्वाणकलिका	- पादलिप्ताचार्य
वीतरागस्तोत्रम्	- हेमचन्द्राचार्य
चतुर्विंशतिका	- बप्पभट्टसूरि
जैनस्तोत्रसन्दोहः	- संग्राहक-चतुरविजयमुनि
महावीरस्तोत्रम्	- जिनवल्लभसूरि

वीतरागस्तोत्रादिसंचय	- हेमचन्द्राचार्य	**हरिभद्रीय अष्टमप्रकरणम्**	
श्वेताम्बर वाङ्मय		**उपदेशसप्तति**	- सोमधर्मगणि
सम्यक्त्वपरीक्षा	- विबुधाविमलसूरि	**गणधरसार्धशतकम्**	- चारित्रसिंह गणि
धर्ममाहात्म्य		**उपदेशसार:**	- कुलसारगणि
धर्मकल्पद्रुम:	- उदयधर्मगणि	**योगदृष्टिसमुच्चय:**	- हरिभद्रसूरि
गुणस्थानक्रमारोह	- रत्नशेखर सूरि	**प्रशमरतिप्रकरणम्**	- उमास्वाति
धर्मबिंदु	- हरिभद्रसूरि	**-व्याख्या**	- हरिभद्रसूरि
शान्तसुधारस	- विनयविजय	**प्रतिमाशतकम्**	- यशोविजय
षोडशक प्रकरणम्	- हरिभद्रसूरि	**ज्ञानार्णवप्रकरणम्**	- यशोविजयगणि
हरिभद्रीय अष्टमप्रकरण	- -"-	**लोकतत्त्वनिर्णय:**	- हरिभद्रसूरि
उपदेशसार:	- कुलसार गणि	**द्रव्यलोकप्रकाश:**	- विनयविजयगणि
शान्तसुधारस	- विनयविजय	**कालभाव लोकप्रकाश**	- -"-
षोडशकप्रकरणम्	- हरिभद्रसूरि	**क्षेत्र-लोकप्रकाश:**	- -"-

(परिशिष्ट - ठ) जैनदर्शन

प्रमेयकमलमार्तण्ड	- प्रभाचन्द्राचार्य
अष्टसाहस्री	- अकलकभट्ट
आप्तमीमांसा (प्रमाणमीमांसा)	- समतभद्राचार्य
सप्तभंगितरंगिणी	- विमलदास
न्यायकुमुदचन्द्र	- प्रभाचन्द्राचार्य
लघीयस्त्रय	- अकलक
न्यायविनिश्चयः	- अकलक
प्रमाणसंग्रह	- अकलक
आप्तपरीक्षा	- विद्यानदी
-व्याख्या	
न्यायविनिश्चयविवरणम्	- वादिराजसूरि
नयचक्रम्	- देवसेन भट्टारक
परीक्षामुखम्	- माणिक्यनंदी
प्रमाणनिर्णयः	- वादिराजसूरि
स्याद्वादसिद्धिः	- वादीभसिह सूरि
न्यायदीपिका	- धर्मभूषणाचार्य
स्याद्वादमंजरी	- हेमचन्द्राचार्य
शास्त्रवार्तासमुच्चयः	- हरिभद्रसूरि
अष्टसाहस्रीविवरणम्	- यशोविजयगणि
जल्पकल्पलता	- रत्नमण्डनसूरि
षड्दर्शनसमुच्चयः	- हरिभद्रसूरि
-व्याख्या	- गुणरत्न
उत्पादातिसिद्धिः	- चन्द्रसेनसूरि
स्याद्वादरहस्यत्रयम्	- यशोविजयसूरि
नयोपदेशः	- -''-
न्यायालोकः	- -''-
न्यायखण्डखाद्यप्रकरणम्	- -''-
गुरुतत्त्वविनिश्चयः	- -''-
प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार	- वादिदेवसूरि
प्रमेयरत्नकोशः	- चद्रप्रभसूरि
अनेकान्तजयपाताका	- हरिभद्र
ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्	- शयोविजय
वेदवादद्वात्रिंशिका	- सिद्धसेन दिवाकर
न्यायकुसमांजलि	
(या महावीरपूजा)	- न्यायविजय
न्यायतीर्थप्रकरणम्	- न्यायविजय
जैनतर्कवार्तिकम्	- ज्ञानाचार्य
योगदर्शन योगविंशिका	- यशोविजय
प्रमाणपरिभाषासूत्रम्	- विजयधर्मसूरि
न्यायावतारः	- सिद्धसेन दिवाकर
सन्मतितर्क-प्रकरणम्	- सिद्धसेन दिवाकर
स्याद्वादरत्नाकरः	- वादिदेव सूरि
जैनतर्कभाषा	- यशोविजय
रत्नाकरावतारिका	- रत्नप्रभाचार्य
स्याद्वादमंजरी	- मल्लिषेणसूरि
प्रमाणमीमांसा	- हेमचन्द्र
अनेकान्तव्यवस्था प्रकरणम्	- यशोविजय
न्यायावतारवार्तिकवृत्तिः	- शान्तिसूरि
न्यायमंजरी ग्रन्थिभंगः	- चक्रधर
स्याद्वादबिन्दुः	- दर्शनविजय गणि
नयरहस्यप्रकरणादिदशग्रन्थाः	- यशोविजय गणि
प्रमाणप्रकाशः	- देवभद्रसूरि

जैन काव्य एवं पुराणादि स्फुट ग्रन्थ

चन्द्रप्रभचरितम्	
पार्श्वाभ्युदयम्	
धर्मशर्माभ्युदयमहाकाव्यम्	
यशस्तिलकचम्पूः	
वर्धमानचरितम्	- पद्मकवि
शान्तिनाथचरितम्	- अजितप्रभाचार्य
सुदर्शनचरितम्	- मुनिविद्यानन्दी
स्थविरावलीचरितम्	- हेमचन्द्र
तिलकमंजरी	
तिलकमंजरीसार	- पल्लीपाल धनपाल
जीवन्धरचम्पूः	
आदिपुराणम्	- जिनसेनाचार्य
उत्तरपुराणम्	- गुणभद्र
पद्मपुराणम्	- रविषेण
महापुराणम्	- पुष्पदत्त
रामचन्द्रचरितपुराणम्	- नागचद्र
वर्धमानपुराणम्	- आचण्ण
शान्तिनाथपुराणम्	- अरागकवि
हरिवंश-पुराणम्	- आचार्य जिनसेन
शास्त्रवार्तासमुच्चयः	- हरिभद्रसूरि
-स्याद्वादकल्पलता	- यशोविजय
शब्दानुशासनम्	- आचार्य मलयगिरी
मदनपराजयः	- नागदेव
उक्तिव्यक्तिप्रकरणम	- पण्डित दामोदर
आचारांगसूत्रम्	
सूत्रकृतांगसूत्र	
-निर्युक्तिव्याख्या	

उत्तराध्ययनसूत्रम्	
द्रव्यसंग्रह	
द्रव्यसंग्रह	- नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकदेव
धनंजयनाममाला	- धनंजय
धर्मरत्नाकरः	- जयसेन
नन्दिसूत्रम्	- देववाचक
-दुर्गपदव्याख्या	- चन्द्राचार्य
-विषमपदपर्याय	- अज्ञातकर्तृक
-वृत्ति	- हरिभद्रसूरि
प्रमेयरत्नमाला	- अनन्तवीर्य
मदनरेखा आख्यायिका	- जिनभद्र सूरि

मूलशुद्धिप्रकरणम्	-
-वृत्ति	- देवचन्द्रसूरि
-स्थानकान्ति	- प्रद्युम्नसूरी
कीर्तिकौमुदी-महाकाव्यम्	- सोमेश्वर
गद्यचिंतामणि	- वादीभसिंह
जंम्बूस्वामिचरितम्	- राजमल्ल
श्रृंगारमंजरीकथा	- भोजदेव
स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा	- स्वामी कार्तिकेय
विशेषावश्यकभाष्यम्	
-वृत्ति	
स्याद्वाद मुक्तावली	

परिशिष्ट (ङ) बौध्दवाङ्मय

अंगुत्तरनिकाय	
अपोहसिद्धि	- रत्नकीर्ति
अभिधर्मकोष:	- वसुबन्धु
अभिधर्मदीप:	
भिभाषाप्रभावृत्ति	
अभिसमाचारिका	- वी जिनानन्द
अर्थविनिश्चयसूत्रम्	-
अवदानकल्पलता	- क्षेमेन्द्र
अशोकनिबन्धौ	
(अश्वविनिराकरणं सामान्य	
दूषणं च)	- अशोक
अशोकावदानम्	-
अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता	-
आलोक	- हरिभद्र
आगमशास्त्रम्	- गौडपादाचार्य
अर्थशालिस्तम्बसूत्रम्	
प्रतीत्यसमुत्पादविभंग	
-निर्देशसूत्रम्	
प्रतीत्यसमुत्पादगाथासूत्रम्	
गण्डव्यूहसूत्रम्	
चतु:शतकम्	
चर्यागीतिकोष	
टिप्पणी	- प्रबोध बागची, शान्तिभिक्षु
जातकमाला	- आर्यशूर
सुभाषितरत्नकरण्डककथा	- आर्यशूर
जातकसंग्रह	
ज्ञातप्रस्थानशास्त्रम्	- कात्यायनीपुत्र
ज्ञानसंग्रह	- शान्तरक्षित
पंजिका	- कमलशील
दिव्यावदानम्	
धम्मपदम् (अनु.)	- पी रामचन्द्रुडु
न्यायबिंदु:	
व्याख्या	- धर्मोत्तराचार्य
पंचस्कन्ध-प्रकरणम्	- वसुबन्धु
प्रमाणवार्तिक भाष्यम्	- धर्मकीर्ती
वृत्ति	- धर्मकीर्ति
प्रातिमोक्षसूत्रम्	- महासंघिका
बोधिचर्यावतार	- शान्तिदेव
पंजिका	- प्रज्ञाकरमति
बौध्द-तर्कभाषा	- मोक्षाकरगुप्त
बोधिपथप्रदीपम्	- रिगजित लुनडुब लामा
बौध्दालंकारशास्त्रम्	- सुबोधालकारसघरक्षित
मंजुश्रीनामसंगीती	- सपा.डॉ रघुवीर
मध्यमकशास्त्रम्	- नागार्जुन
मध्यान्तविभागशास्त्रम्	- मैत्रेयनाथ
भाष्य	- वसुबन्धु
महापरिनिर्वाणसूत्रम्	
महायानसूत्रसंग्रह	
महावस्तु अवदानम्	
मूलसर्वास्तिवाद विनयवस्तु	
रत्नगोत्रविभागो	
महायानोत्तरतंत्रशास्त्रम्	
लंकावतारसूत्रम्	
ललितविस्तर:	
वज्रसूची	- अश्वघोष
वज्रसूचीउपनिषद्	- प्रज्ञानद
वादन्याय प्रकरणम्	- धर्मकीर्ति
विग्रहव्यावर्तनी	- नागार्जुन
विज्ञाप्तिमात्रतासिद्धि:	- वसुबन्धु
शिक्षासमुच्चय:	- शान्तिदेव
सध्दर्मपुण्डरीकसूत्रम्	
समाधिराजसूत्रम्	
सुवर्णप्रभाससूत्रम	
सुवर्णवर्णावदानम्	
महावदान-महापरिनिर्वाणसूत्रम्	- (अनु) राहुल साकृत्यायन
सौगतसिद्धान्तसारसंग्रह	
सौगतसूत्रव्याख्यानकारिका	- कुमारिल स्वामी

संदर्भग्रंथ सूची

संस्कृत वाङ्मय कोश- संदर्भग्रंथ सूची

1) **अमरकोश का कोशशास्त्रीय तथा भाषा शास्त्रीय अध्ययन** : कैलाशचद्र त्रिपाठी

2) **अर्वाचीन संस्कृत साहित्य (मराठी)** : डॉ श्री भा वर्णेकर

3) **अलंकार शास्त्र का इतिहास** : कृष्णकुमार

4) **अष्टादश पुराण दर्पण** : ले पं ज्वालाप्रसाद मिश्र

5) **अष्टादश पुराण परिचय** : डॉ श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

6) **आचार्य पाणिनि के समय विद्यमान संस्कृत वाङ:मय** : प युधिष्ठिर मीमासक

7) **आधुनिक संस्कृत/नाटक (2 भाग)** : डॉ रामजी उपाध्याय

8) **आधुनिक संस्कृत साहित्य** : डॉ हीरालाल शुक्ल रचना- प्रकाशन, इलाहाबाद

9) **आधुनिक संस्कृत साहित्या-नुशीलन** · डॉ रामजी उपाध्याय

10) **आयुर्वेद का इतिहास** : कविराज वागीश्वर शुक्ल

11) **आयुर्वेद का बृहद् इतिहास** : अत्रिदेव विद्यालकार

12) **इतिहास पुराण का अनुशीलन** : डॉ रामशकर महाचार्य

13) **इतिहास पुराण साहित्य का इतिहास** : डॉ कुवरलाल

14) **कालिदास साहित्य कोश** : डॉ हिरालाल शुक्ल, भोपाल वि वि

15) **गणित का इतिहास** : डॉ व्रजमोहन

16) **गणित का इतिहास** : सुधाकर द्विवेदी

17) **गणितीय कोश** : डॉ व्रजमोहन

18) **चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन** : डॉ छबिनाथ त्रिपाठी

19) **बौद्ध धर्म का इतिहास** : (चाऊ सिआग कुआग)

20) **जयपुर की संस्कृत साहित्य की दोन (1835-1965)** : डॉ प्रभाकर शास्त्री

21) **जिनरत्नकोश** : जैन आत्मानद सभा, भावनगर

22) **जैनदर्शनसार** : विष्णुशास्त्री बापट

23) **जैन धर्मदर्शन** : डॉ मोहनलाल मेहता पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसस्थान,वाराणसी-5

24) **जैन धर्माचा इतिहास (मराठी)** : श्री लट्ठे

25) **जैन साहित्य का इतिहास** : ले.नाथुराम प्रेमी

26) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-1)** : प बेचरदास दोशी। (पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान, वाराणसी-5)

27) **जैन साहित्य का बृहद इतिहास (भाग-2)** : डॉ जगदीशचंद्र जैन व डॉ मोहनलाल मेहता (पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसस्थान वाराणसी-5)

28) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-3)** : डॉ मोहनलाल मेहता. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसस्थान वाराणसी-5

29) **जैन साहित्य का बृहद इतिहास (भाग-5)** : डॉ मोहनलाल मेहता व प्रो हिरालाल कापडिया (पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसस्थान वाराणसी-5)

30) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग- 5)** : प अंबालाल शाह (पा वि स वाराणमी-5)

31) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** : (भाग-6)

32) **जोधपूर राज्य का इतिहास** : डॉ मांगीलाल व्यास। (पचशील प्रकाशन, घोडारास्ता, जयपूर)

33) **तांत्रिक साहित्य** : प गोपीनाथ कविराज।

34) **तिब्बत में बौद्ध धर्म** : प राहुल साकृत्यायन

35) **दर्शनदिग्दर्शन** : राहुल साकृत्यायन

36) **धर्मशास्त्र का इतिहास** : भारतरत्न म म पाडुरग वामन काणे। (अनु अर्जुन चौबे काश्यप-6 भाग)

37) **धर्मद्रुम** : राजेंद्र प्रसाद पांडेय (धर्मशास्त्र-परिचय-विवेचन

38) **13 वीं शती में रचित गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत काव्य** : डॉ इन्दु पचौरी (इन्दौर वि वि)

39) **13-14 वीं शती के जैन संस्कृत महाकाव्य** : डॉ. श्यामशकर दीक्षित

40) **13 वीं शती मे रचित गुजरात के ऐतिहासिक काव्य**

41) **न्यायकोश** : प भीमाचार्य झळकीकर

42) **पाणिनि** : वासुदेवशरण अग्रवाल

43) **पालिसाहित्य का इतिहास** : भरतसिह उपाध्याय। (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग)
44) **पुराणतत्त्व मीमांसा** : श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
45) **पुराणविमर्श** : पं बलदेव उपाध्याय
46) **पुराणविषयानुक्रमणिका** : डॉ. राजबली पाण्डेय
47) **पुराणविमर्श** : पं बलदेव उपाध्याय
48) **पुराणपरिशीलन** : प. गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी
49) **पुराणपर्यालोचनम्** : (2 भाग) डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
50) **पौराणिक कोश** : राजाप्रसाद शर्मा
51) **प्राचीन हिंदी शिल्पशास्त्रसार (मराठी)** : ले कृ.वि वझे। भारत इतिहास सशोधन मंडळ, पुणे
52) **प्रतिशाख्यों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का आलोचनात्मक अध्ययन** : डॉ.इन्द्र
53) **प्रमुख स्मृतियोंका अध्ययन** : डॉ लक्ष्मीदत्त ठाकूर
54) **बघेलखंडके संस्कृत काव्य** : डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री
55) **बौद्धदर्शन मीमांसा** : प बलदेव उपाध्याय (चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी)
56) **बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन** : भरतसिह उपाध्याय
57) **बौद्धधर्म** : गुलाबराय, (कलकत्ता 1943)
58) **बौद्धधर्म के विकास का इतिहास** : गोविंदचंद्र पांडेय, (वाराणसी, 1963)
59) **बौद्धधर्मदर्शन** : आचार्य नरेन्द्र देव, (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1971)
बौद्ध संस्कृत काव्य मीमांसा : ले डॉ. रामायणप्रसाद द्विवेदी (काशी हिंदु वि वि सस्कृत ग्रंथमाला)
61) **भारतवर्षीय चरित्र कोश (3 खंड)** - सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, पुणे
62) **भारतीय दर्शन** - वाचस्पति गेरौला
63) **भारतीय दर्शन** - पं. बलदेव उपाध्याय
64) **भारतीय दर्शन** - सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
65) **भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास** - हरिदत्त शास्त्री
66) **भारतीय नाट्यसाहित्य** - डॉ नगेन्द्र।
67) **भारतीय न्यायशास्त्र-एकअध्ययन** - डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी
68) **भारतीय ज्योतिष्य का इतिहास** - डॉ गोरखप्रसाद
69) **भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास** - डॉ भिखनलाल आत्रेय
70) **भारतीय पुरा इतिहास कोश** - अरुण
71) **भारतीय संगीत का इतिहास** - भ श शर्मा
72) **भारतीय संगीत का इतिहास** - डॉ. शरच्चद्र श्रीधर परांजपे, भोपाल
73) **भारतीय संगीत का इतिहास** - उमेश जोशी
74) **भारतीय संस्कृति कोश (मराठी) 10 खंड** - सपादक- महादेव शास्त्री जोशी, पुणे
75) **भारतीय साहित्य की रूपरेखा** - डॉ भोलाशंकर व्यास
76) **भारतीय साहित्य शास्त्र (दो भाग)** - प बलदेव उपाध्याय, प्रसाद परिषद काशी।
77) **भारतीय वास्तुकला** - ले. गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा। वाराणसी।
78) **महाभारत सार-प्रस्तावना** - प्रकाशक-शकरराव सरनाईक पुसद (महाराष्ट्र)
79) **मीमांसादर्शन (मीमांसा का इतिहास)** - डॉ मंडनमिश्र
80) **मध्यकालीन संस्कृतनाटक** - डॉ रामजी उपाध्याय
81) **यशस्तिलक चंपू का सांस्कृतिक अध्ययन** - डॉ. गोकुलचद्र जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोधसंस्थान वाराणसी-5
82) **राजस्थान के इतिहास के स्रोत** - डॉ गोपीनाथ शर्मा। राजस्थान हिंदी ग्रथ अकादमी जयपुर
83) **राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश** - राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
84) **विद्वज्जन चरितामृतम्** - कलानाथ शास्त्री
85) **विंशशताब्दिकं संस्कृतनाटकम्** - डॉ. रामजी उपाध्याय
86) **वेदमीमांसा** - लक्ष्मीदत्त दीक्षित
87) **वेदान्तदर्शन का इतिहास** - उदयवीर शास्त्री
88) **वैदिक एवं वेदांग साहित्य की रूपरेखा** - डॉ रामेश्वरप्रसाद मिश्र
89) **वैदिक साहित्य की रूपरेखा** - डॉ जोशी-खण्डेलवाल
90) **वैदिक साहित्य और संस्कृति** - वाचस्पति गरौला

91) **वैदिक साहित्य और संस्कृति** - पं बलदेव उपाध्याय

92) **वैदिक वाङ्मय का इतिहास (2 भाग)** - प भगवद्दत्त

93) **वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धांत** - प बलदेव उपाध्याय

94) **व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास** - डॉ रमाकान्त मिश्र

95) **व्याकरणशास्त्रेतिहास** - डॉ ब्रह्मानद त्रिपाठी

96) **हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास** - अनु कृपाशकर शुक्ल। (ले विभूतिभूषण दत्त।)

97) **हिन्दू धर्मकोश** - राजबली पाण्डेय

98) **होळकर राजवंश विषयक संस्कृत साहित्य** - ओम प्रकाश जोशी, (इन्दोर वि वि)

99) **संकेत कोश (मराठी)** - सपादक श्री हणमते

100) **संस्कृतकविदर्शन** - डॉ भोलाशकर व्यास- (चौखाम्बा विद्याभवन, वाराणसी)

101) **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास** - डॉ पा वा काणे। (2 भाग) अनु इन्द्रचद्र शास्त्री।

102) **संस्कृत के संदेशकाव्य** - डॉ रामकुमार आचार्य

103) **संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक** - डॉ श्याम शर्मा

104) **संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास** - डॉ रामगोपाल मिश्र

105) **सस्कृत भाण साहित्य की समीक्षा** - डॉ श्रीनिवास मिश्र

106) **संस्कृत वाङ्मय का इतिहास** - सूर्यकान्तशास्त्री (ओरिएटल लॉंगमन न दिल्ली- 1972)

107) **संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त इतिहास** - रमाकान्त मिश्र।

108) **संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परंपरा और आचार्य पाणिनि** - प्रा कपिलदेव

109) **संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास** - प युधिष्ठिर मीमासक

110) **संस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास** - सत्यकाम वर्मा

111) **सस्कृत शास्त्रोंका इतिहास** - प बल्देव उपाध्याय

112) **संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास** - डॉ रामजी उपाध्याय

113) **संस्कृत साहित्य का इतिहास** - प बलदेव उपाध्याय, (शारदा मदिर बनारस 1956

114) **संस्कृत साहित्य कोश** - डॉ राजवशसहाय हीरा।

115) **सांख्य दर्शन का इतिहास** - उदयवीर शास्त्री।

116) **संगीत विषयक संस्कृत ग्रंथ (मराठी)** - चैतन्य देसाई

117) Aspects of Buddhism and its relation to Hinyana - N Dutta, London-1930.

118) Bengal's Contribution to Sanskrit Litrature and studies in Bengal Vaisnavism - S K De, Calcutta-1960

119) Bibliography of plays in Indian Languages - C C Mehta, M S University Baroda and Bhartiya Natya Sanstha, New Delhi

120) Budhist Sanskrit works of Bengal - Chintaharan Chakravati, Indian Antiquery-1930

121) Bibliography of sanskrit works on Astronomy and Mathematics - by Pt I S Sen, New Delhi, 1966

122) Bengal's Contribution to Sanskrit Literature - Chintaharan Chakrawarti ABORI *XI Pt 3,1930,* PP-225-258

123) Bengal's Contribution to Sanskrit learning - Md Shahidulla Orintal conference III-Madaras-1925

124) Buddhist India - Rhys Davids, Delhi-1970

125) Buddhist studies - B C Law, Calcutta - 1931

126) Budhisatva Doctrine in Buddhist Sanskrit Literature - Han Dayal, London-1932

127) Buddhist Philosophy - A B Keith, Oxford 1923

128) Budhist India - Rhys Davids

129) Contribution of Wemon to Sanskrit literature - J.B Chaudhari Prachhawani, Calcutta

130) Contribution of Muslims to Sanskrit literature - J B.Chaudhari, Prachyawani, Calcutta

131) Concepts of Buddhism - B C.Law

132) A Catalogue of chinese translation of the - B Nanjio Oxford 1983

133) Buddhist Tripitaka Distionary of Sanskrit Grammer - K V Abhyankar

134) Early History of the spread of Buddhism and Buddhists Schools - N Datt

135) Glossory of Smriti Literature - Dr.S C Banerjee

136) **History of Ancient Indian Mathematics** - C.N.Shrinivasa Iyangar, World Press, Calcutta

137) **History of Hindu Mathematics** - by 'Vibhutibhushan Datta and Aras Sing, Lahor, 1938'

138) **Hinayana and Mahayana** - R Kimura

139) **History of Sanskrit Literature** - A B Kaith, Oxford Uni press, London

140) **History of Buddhist thought** - E J.Thomas

141) **A History of Sanskrit Literature** - (V Vardachari) Allahabad, 1952

142) **A History of Indian Logic** - Satish Chandra Vidyabhushan Calcutta Uni-1921

143) **A History of Indian Literature** - 2 Vols Winternitz, Calcutta uni, Publication-1927

144) **History of Indian Philosophy** - S N Dasgupta, London

145) **History of Classical Sanskrit Literature** - Dasgupta & De

146) **History of Sanskrit Literature** - Macdonell

147) **History of Anicient Sanskrit Literature** - Max Muller

148) **History of Indian Literature** - Weber

149) ***History of Sanskrit Literature*** - *M Krishnammachari*

150) **History of Fine Arts in India and Ccylon** - by V A Smith

151) **Intorduction to Mahayana Buddhism** - (W M Mc Govern, - London, 1922)

152) **An Introduction to Indian Philosophy** - Dutta and Chatterjee. Calcutta Uni-1939

153) **India as described in the early Text of Buddhism and Jainism** - B C Law

154) **Indian Philosophy** - S Radha Krishnan, London, 1929

155) **Indian Buddhism** - H Kern

156) **Indian Literature in China and the Far-East** - P K.Mukerjee

157) **Indian Historical Quarterly**

158) **Journal of the American Oriental Society.**

159) **Journal of Bihar and Orisa Research Society.**

160) **Journal of the Royal Asiatic Society.**

161) **Literary History of Sanskrit Buddhism** - G K Nariman, Bombay-1920

162) **Muslim Contribution to Sanskrit Literature** - M. Jatindravimal Choudhari

163) **National Bibliography of Indian Literature** - Kesav and V Y. Kulkarni, 3 Vols

164) **More light on Sanskrit Literature of Bengal** - D C Bhattacharya 1 HQ Vol XX, 1946.

165) **Muslim Patranage to Sanskrit Learning** - by Chintaharan Chakrawarti, B C Law Vol II Calcutta, 1946

166) **Muslim Patranage to Sanskrit Learning** - J B Choudhari Calcutta-1942

167) **Moghal Patranage to Sanskrit Learning** by M M Patkar, Poona, Orientalist Vol III

168) **Modern Sanskrit Literature** - V Raghavan 1, Sahitya Akademi, N Delhi

169) **Modern Sanskrit Wrilings** - Dr V Raghavan Brahmavidya

170) **Outlines of Buddshism** - Rhys Davids-1934

171) **Outline of Religious Literature of India** - J N Faruhar

172) **Paniniam Studies in Bengal** - D C Bhattacharya Sir, Ashutosh Mukhargee Silver Jubilee VolIII

173) **Aecent Sanskrit Studies in Bengal** - Gourinath Shastri Calcutta-1960

174) **Sanskrit Literature of Modern times** - Chintaharam Chakravarti Bulletin of the Ramknshna Mission Institute of Culture Vol VII/1956

175) **Sanskrit Literature of the Vaishnavas of Bengal** - Chintaharam Chakravati Prachyavani, Calcutta

176) **Some Vaidyaka Literature of BengaL** - Indian Literature Vol IV

177) **Sanskrit Scholorship of Akbar's line ABPRI-XIII, 1937** - M Z Siddiki Calcutta Review

178) **Services of Muslims to Sanskrit Literature** 1953– PP-215-25

179) **Sanskrit Literature in Bengal during the Sen** - M M Chakravarti JASB-1906

180) **Sanskrit Drama** - A B Kaith

181) **Sanskrit Buddhist** - R L Mitra, Calcutta-1882

182) **Literature of Nepal**

Secred Literature of the Jains - Yākobi

183) **Vangeeya Duta Kavyetihasah** - J B Chaudhuri, Pracyavani Reserach Series Vol IV Cal-1953

184) **Vaidyaka Literature of Bengal in the early medieval period** - N N Dasgupta, Indian Culture (Vol III-1936 PP 153-60)

185) **Vedic Bibliography** - Dr R N Dandakar

186) **Vedic Index** - Macdonald and Keith